



# सामवेदका सुबोध अनुवाद

## भूमिका

वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । ऋग्वेदमें देवताओंके गुणोंका वर्णन है, यजुर्वेदमें मन्त्रा प्रचारके यज्ञोंकी कितनप्रकार करनेवाहिए यह बताया है, सामवेदमें मन्त्रोंका गायन कितनप्रकार होना चाहिए यह बताया है और अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञान है । इसप्रकार चारों वेदोंकी विषय-व्यवस्था है ।

### वेदत्रयी व वेदचतुष्टयी

“ वेद-त्रयी ” भी कई स्थानोंपर आया है जिसका अर्थ है, पद्य, गद्य और गायन । “ पान्दुर्यद्वयप्रस्था ” यत्ति मय ऋग्वेद, “ गद्य माय ” यजुर्वेद और पान्दुर्यद्वय मन्त्रोंका गायन सामवेद है । यह वेदत्रयी है । अथर्ववेद मन्त्रोंके पाठ्यक होनेके कारण उनका अन्तर्भाव ऋग्वेदमें ही हो जाता है । वेदत्रयोंके चार होवेपर भी उनका समावेश ( १ ) पद्य, ( २ ) गद्य और ( ३ ) गायन इन तीन विभागोंमें हो सकता है । इसलिये “ वेद-त्रयी ” और “ वेद-चतुष्टयी ” के मन्त्रोंकी सरपामें कोई फरक नहीं है । वेदत्रयी कहनेके कारण अथर्ववेद पीछेसे बना यह नहीं समझना चाहिए । क्योंकि पश्योंमें “ ब्रह्मा ” अथर्ववेदी ही होता है, और “ ब्रह्मा ” की पक्षमें आवश्यकता होती ही है, तब अथर्ववेद पीछेसे बना यह कैसे कहा जा सकता है ?

पद्य, गद्य और गायन यह ही वेद-त्रयी है । सभी भक्तियोंके पाठ्यक्रममें ये तीन विभाग होते ही हैं । इससे यह

स्पष्ट हो जाएगा, कि वेद-त्रयी और वेद-चतुष्टयीमें कोई भेद नहीं है । और वेद-त्रयीके कारण तो अथर्ववेदकी पीछेसे बना हुआ मानते हैं, वे भी समझ जायेंगे कि उनको यह धारणा गलत है ।

यजुर्वेदमें जो पाठ्यक्रम ऋग्वेद या अथर्ववेदसे लिए गए हैं, वे पद्यके समान नहीं बोले जाते, अपितु गद्य जैसे बोले जाते हैं, अर्थात् वे ही मय ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेदमें पद्यके अनुसार छन्दोंमें बोले जाते हैं और वे ही मय यजुर्वेदमें ओम्मेंके समय गद्यके समान बोले जाते हैं । मन्त्रोंके पाठकों यह परिपाटी पुरानी है ।

वेद-त्रयी अथवा वेद-चतुष्टयीके अनुसार मन्त्र गणनामें कोई फरक नहीं पड़ता । वेद-त्रयीमें भाषाको रचना मुख्य है और वेद चतुष्टयीमें प्रतिपाद्य विषयकी मुख्यता है । इसकी ओर स्पष्ट करनेके लिये नीचे एक तालिका प्रस्तुत है—

१ वेद-त्रयी- पद्यमन्त्र, गद्यमन्त्र और गायनके मन्त्र ।

२ वेद-चतुष्टयी- गुण वर्णनके मन्त्र, पराक्रमके मन्त्र, गानके मन्त्र और ब्रह्मज्ञानके मन्त्र ।

इन दोनों प्रकारकी गणनाओंमें मन्त्रसंख्यामें कोई भेद नहीं आता ।

### सामवेदका विभूतिमन्त्र

भगवान् श्री कृष्णने गीतार्त्त भगवान्की विभूतिर्गोका वर्णन करते हुए “ वेदानां सामवेदोऽसि ” ऐसा कहा

है। चारों वेदोंमें सामवेद भगवान्की विभूति है। पशु, पक्ष और गायनमें मन पर "साधन" का विशेष प्रभाव पड़ता है इसका अनुभव सबको होगा। यही सामगानका विभूतिमत्त्व है। भाषाके तीन प्रकारमें साधनका प्रकार मन पर अधिक प्रभाव डालता है। साधारण अनुष्णके मन पर गायनके आनन्दका प्रभाव ज्यादा होता है। रोमके मन पर भी गायनका प्रभाव पड़ता है और बहु शोष स्वस्थ होता है। गायनका परिणाम घेती, बाप और पोषोंपर भी होता है। खेतमें यदि गाव न किश जाए तो अनाज अधिक उपजता है, रोमियोंके अस्पतालमें यदि गानेके रिकॉर्ड्स लगाये जाएँ तो उनके कारण रोगी जल्दी ही स्वस्थ बन जाता है। दुपाथ साधको जुहुते समय यदि उसे गाना सुनाया जाए तो यह ज्यादा हृष्य होती है। इसप्रकार गायनका प्रभाव पड़ता है।

इस सामगानकी पद्धतिमें गीत आधुनिक पद्धतिमें थोड़ासा अन्तर है, उसका भी विचार यहां आवश्यक है, सामगानमें स्वरही ऊँचे आलापसे शुरु करके उसे धीरे धीरे नीचे आलाप पर लाया जाता है, उसके कारण मनको शांति मिलती है और भडका हुआ मन सामगानकी धुनकर शांत हो जाता है। इसप्रकार सामगानसे शांति मिल सकती है।

आधुनिक पद्धतिके गानमें ऊँचे और नीचे गानोंके मिश्रण होनेके कारण उस गानसे मन शांत होनेके बजाय और अधिक विकारवश होता है। रोगी प्रकारके गानकी पद्धतिमें यह भेद है। इसलिये सबको शांत करनेके लिये सामगानका उपयोग लाभप्रद है।

यही सामवेदका गीतीकण विभूतिमत्त्व है। उक्तखंड मनको शांत करनेका काम सामगान कर सकता है।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें भी कहा है—

सामवेदश्च वेदानां यनुयां शतकद्रियम्।

( म. मा. ११।३।७ )

चारों वेदोंमें "सामवेद" और यजुर्वेदमें "शतकद्रिय" विशेष महत्वके पंग हैं। गीतामें कहा है—

प्रजयः स्वर्गयेदेषु ॥ ( गी ७।८ )

तथा महाभारतमें भी—

योऽपारः सत्यवेदानाम् ॥ ( महाभारतकेप. ४४६ )

ओंकारकी श्रेष्ठता बताई है। इस ओंकारकी प्रशंसा सामवेदके महत्वमें स्पष्टता सामग, ऐसी बात नहीं। क्योंकि "ओंकार" य "उद्गीथ" दोनों सामान्यक है और उद्गीथ सामवेदका पार है।

छान्दोग्य—उपनिषदमें कहा है—

साम्नः उद्गीथो रसः ॥ ( छा. उ. १।१।२ )

"साम्नः रस उद्गीथ" है। इसप्रकार सामवेदका महत्व वर्णित है। यह सामवेद ही भगवान्की विभूति क्यों है? इसके अन्तर कीन्ती विशेषता है, इसका सब विचार करते हैं—

यद्यद्विभूतिमत्तत्त्वं धीमदुर्वृत्तिभेद वा ।

तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोऽज्ञासम्भवम् ॥

( गी. १०।४१ )

विभूतिका यह लक्षण गीतामें कहा है। जहाँ जहाँ विशेष विभूतिका तत्व होगा, धीमत्त्व दोलेगा, अज्ञित-भोजन अनुभवमें आएगी, वहाँ वहाँ भगवान्की विभूति है, यह सामगान चाहिये। इस लक्षणके आधार पर सामवेद वेदोंमें निःसन्देह एक विभूति है। सामवेद गायनरूप होनेके कारण "साम-ग्रह" की गायनरूपी विभूति है। साम अथवा आलापसे सामवेदकी सोभा दीप्यती है, यही इसकी सोभा अथवा धीमत्त्व है। उद्गीथप्रकार इस सामवेदका समुचिततम बिकार - विशिष्टपण - धर्म्यस - विराम - स्वोभ इन चारोंकी योग्यतासे श्रोताओंकी अनुभवमें आयेगा। साधारण गद्यकी अपेक्षा छन्द, छन्दकी अपेक्षा काव्य, काव्यकी अपेक्षा गान और गानमें गानोंका आलाप विशेष प्रशंसाभासी होता है। इसीकारण सामवेदकी विशेष महत्ता है। यह ही छान्दोग्य—उपनिषदमें कहा है—

साचः क्षप्रस्तः, स्रजः समस्तसः ।

साम्नः उद्गीथो रसः ॥ ( छा. उ. १।१।२ )

"गानोंका रस अथवा है, स्रजोंका रस साम है, गीत सामका रस उद्गीथ है। और भी कहा है—

सामवेदं यथ पुण्यम् । ( छा. उ. १।३।१ )

"जैसे कुलके पत्ते और फूलोंमें फूल विशेष सौभाग्यक होते हैं, उसीप्रकार गायनरूप होनेके कारण सामवेद देव-पुत्रता कृण है।

## सामवेदका अर्थ

सामवेदका अर्थ और उसका स्वरूप क्या है? इस पर सब विचार करते हैं। सामवेदका अर्थ केवल मंत्रग्रन्थ ही है अथवा गान भी है, यह अब देखते हैं। छान्दोग्य उपनिषद्का कथन है—

या आकृ तत्तमाम् । ( छा. उ. १।१।४ )

"यथाशोका वृक्ष हो गाय है।" और भी—

उद्वि मध्युदं साम । ( छा. उ. १।१।१ )

"साम यथा पर आकाशित होते हैं।" साम यथाको छोड़कर और शिथीके भावसे नहीं रहता। यन्त्र और

सामयेवका "स्त्री-पुरुष" के समान एक जोड़ा है, ऐसा भी कहा है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं, सामाहमस्मि अहं त्वं ।  
घोरहं पृथिवी त्वे । ताविह संभवाय, प्रजा-  
माजययावहे ।

( अथर्व. १४।२।७१; ऐत. ब्रा. ८।२७; मृ. उ. ६।१।२० )

ये पति "अम" हैं और तू त्वी "अह" है,  
"साम" मैं हूँ और "अह" तू है, "घो" मैं हूँ और  
"पृथिवी" तू है, हम दोनों मिलकर यहां उत्पन्न होते हैं,  
प्रजा उत्पन्न करें।

इसमें साम शब्दकी व्युत्पत्ति की है। "स्वा+अमः"  
= सामः । "सा" मतलब "अह" और "अम" मतलब आत्मा, अतः "साम" का अर्थ है आत्माओंके आधार पर किया गया गान ।

### पादपद्धर्मश्रौंका गान

अप्येव और अथर्ववेदमें पादपद्धर्म गान है, और उनका गान होता है । "अह" क्यो स्त्री और "सामगान" क्यो पुरुषका विवाह हुआ हुआ है । "पति-पत्नी" के समान साम और अहका सम्बन्ध है । उपनिषदोंमें इनका एक और भी सम्बन्ध विद्वानों है, यह इस प्रकार है—

"वाक् च प्राणश्च, मक् च साम च ।

( छां. उ. १।१।५ )

"वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ ( छां. उ. १।७।१ )

"वाणी और प्राण कमलः अह और साम हैं । वाणी अह है और प्राण साम है ।" वाणी और प्राणका जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सामग्य अह और सामका है ।

### स्वर-मंडल

अहका शब्द है चरणवृत्त-अर्थ । इन मंत्रोंका पढ़न, मध्यम आदि स्वरोंमें आलाप होता है । इसलिये कहा है—

मतिषु सामाख्या ॥ ( जे. सू. २।१।२६ )

"वेदमंत्रोंके गानकी संज्ञा "साम" है । न केवल मंत्र-पाठकी ही "साम" संज्ञा है और न केवल गानकी ही, बल्कि इन दोनोंके मिश्रण की ही "साम" संज्ञा है । आलापयत् वाक्यके संवाक्यमें कहा है—

फा साधो मतिरिति ? स्वर इति घोवाच ।

( छां. उ. १।८।४ )

"सामकी गति क्या है ? स्वर-आलाप-ही सामकी गति है । स्वर अथवा आलापके बिना साम नहीं होता तथा-तस्य हेतस्य साक्षी यः स्वं वेदं, भवति हास्यं स्वं, तस्य स्वर एव स्वम् । ( मृ. उ. १।१।२५ )

"सामका स्वल्प आलाप है ।" इस सामके स्वरमण्डलोंकी गणना नारदीय-शिक्षामें इसप्रकारकी गई है—

सप्तस्वराः त्रयो ग्रामाः मूर्च्छनास्वेकविंशतिः ।  
ताना एकैकपंचाशत् इत्येतत्स्वरमण्डलम् ॥

और भी कहा है—

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः ।  
यो द्वितीयः स गांधारः, तृतीयस्तुष्यमः स्मृतः ।  
चतुर्थो पञ्च इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत् ।  
षष्ठो निषादो विशेषः, सप्तमः पंचमः स्मृतः ॥

( नारदीय-शिक्षा )

इस नारदीय-शिक्षामें धैवत और निषादका स्थान-परि-पत्तन शेषता है, उसका बिचार संयोजन करें । ये स्वर सामोंके अनुसार ऐसे होते हैं—

अतिमुष्टः	पंचमः । प ।
१ प्रथमः ( वेणोः )	मध्यमः । म ।
२ द्वितीयः	गांधारः । ग ।
३ तृतीयः	क्रपमः । रे ।
४ चतुर्थः	पञ्चः । स ।
५ पंचमः ( मन्द्रः )	निषादः । नि ।
६ षष्ठः ( अतिस्वार्धः )	धैवतः । ध ।
७ सप्तमः	पंचमः । प ।

( क्रुष्टः ) तद्योतौ क्रुष्टतम इय साम्नः स्वरस्तं देया उपजीवन्ति । । प ।

१ योऽवरोर्षां प्रथमस्तं मनुष्या उपजीवन्ति । म ।

२ यो द्वितीयस्तं गन्धर्वाभिरसः उपजीवन्ति । ग ।

३ यो तृतीयस्तं पशवाः ( वृषभः क्रपमः ) उपजीवन्ति । रे ।

४ यश्चतुर्थस्तं पितरो ये चाण्डेयुरोते । स ।

५ यः पंचमस्तमसुरारक्षोति ( निषादः ) उपजीवन्ति । नि ।

( अन्त्य. ) योऽन्यस्तमोपधयो धनस्पतयश्वा-  
न्यज्यम् ( सामविधान ग्रन्थोः ) । घ ।

सामगानके ये स्वरमण्डल हैं । उद्गाता इन स्वरोंमें गान-

गान करते हैं। छँ सामवेदकार होते हैं, वे दसप्रकार हैं—  
विचार - विरतिगण - विकर्षण - अभ्यास - विरास - स्तोत्र ।

१ विकार- “ अग्ने ” का “ ओसायि ” होता है ।

२ विरतिगण- “ वीतये ” का “ वोयि तोया-  
रक्षि ” होता है ।

३ विकर्षण- “ ये ” का “ यारक्षि ” होता है ।

४ अभ्यास- बार बार बोलना, जैसे “ तोयारक्षि ।  
तोयारक्षि । ”

५ विरास- जैसे “ गृणानो हव्यदातये ” को  
“ गृणानोह । हव्यदातये ” ऐसा बोलते हैं, यद्यपि मूल  
मन्त्र में “ गृणानोह हव्यदातये ” ऐसा रूप नहीं है, फिर  
भी गानके लीकर्वके लिए बीचमें ही तोड़ दिया जाता है, इसे  
विरास कहते हैं ।

६ स्तोत्र- ऋचाओंमें न आये हुए अलंकारों को भोगना ।  
जैसे “ ओ होषा । हाऊ ” इत्यादि ।

सामवेद गानरूप निस्त-रेतु है, पर सामवेद जो आज  
दुस्तकके रूपमें है, वह तो केवल ऋचाओंका सङ्ग्रह है । इनमें  
एक भी सामगान नहीं है । जिन मंत्रोंके आधार पर गान  
होते हैं, वे “ योनिमन्त्र ” हैं । अर्थात् सामवेदके ये मन्त्र  
गाने नहीं जाते हैं, अपितु इनके आधार पर बने हुए जो गाने  
हैं, वे गाने जाते हैं । ऋषियोंने इन योनिमन्त्रोंके आधार पर  
हजारों गाने बनाये हैं । वे आज सामगान कहे जाते हैं ।

सामवेदमें १८४५ मन्त्र हैं, उन मंत्रों पर करीब करीब  
४००० सामगान बने हैं । “ कौशुमी ” शालाकार यह  
सामवेद है और इस पर ही चार हजार गाने बने हैं, दूसरी  
“ राणायणी ” शालाका सामवेद दूसरा है, और उन पर  
भी ४००० गाने पुष्कत् बने हैं । इसप्रकार सामवेद अनेक है  
और उतके गाने भी अनेक हैं । वे सामगान जिस ऋषिने  
बनाये उसने नामसे वे गाने आज भी प्रसिद्ध हैं, जैसे  
“ गीतमस्य पर्कम्, वक्ष्यपस्य वार्हिपम् ” इत्यादि । ये सब  
“ त्रामगान, आरण्यकगान, उद्भगान, उद्भगान ”  
आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं ।

सामवेदके मंत्र सत्र ऋग्वेदके ही लिपु मण्ड है और करीब  
१० मन्त्र भी ऋग्वेदकी आडवलायन शाखासे नहीं मिलते  
घांस्वायण शाखासे मिलते हैं । सातवें यह कि सामवेद  
ऋग्वेदके मंत्रोंका ही सङ्ग्रह है । अतः सामवेदमें जो मन्त्र हैं  
उन्में अथवा जो ऋग्वेद या धर्मवेदमें मन्त्र हैं, उनका भी  
गान किया जा सकता है अर्थात् जितने पाठकद्वयमन्त्र हैं उन  
सब पर सामगान बन सकते हैं ।

## मंत्र और सामगान

ऋग्वेदके मन्त्र जो सामवेदमें आये हैं, उन पर किस तरहके  
गान बने हैं, वह यहाँ दिलाते हैं—

ऋग्वेदका मन्त्र—

अम् आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

नि होता सस्ति वर्हिपि ॥ ( ऋ ६।१६।१० )

सामवेदका मन्त्र ( त्रामयोजि )

अम् आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

नि होता सस्ति वर्हिपि ॥ ( ऋ ६।१६।१० )

इस मन्त्रके सामगान—

( १ ) गीतमस्य पर्कम् ।

आयाहि । आयाहीऽ३ । वोहोयाऽ२३ ।

तोयाऽ२३ । गृणाना ह । हव्यदातोयाऽ२३ ।

तो याऽ२३ । नाह होवासाऽ२३ । त्साऽ२३ ।

वाऽ२३४ आही वा । वर्हिऽ२३४पी ॥ १ ॥

( २ ) वक्ष्यपस्य वार्हिपम्—

अम् आयाहि वी । तयाऽ३ । गृणानो हव्यदाताऽ

२३याऽ३ । नि होता सस्ति वर्हीऽ२३४पी । वर्हीऽ२३

इयाऽ२३४ ओ होवा । वर्हीऽ२३पीऽ२३४५ ॥ २ ॥

( ३ ) गीतमस्य पर्कम् ।

अम् आयाहि । वाऽ५इतयाऽ३ । गृणानो हव्य-  
दाऽ३ ताऽ३ये । नि होताऽ२३४ता । त्साऽ-

२३४ इवाऽ३ । हाऽ२३४ इयोऽ३हा ॥

यहाँ प्रथम ऋग्वेदका एक मन्त्र दिया है, यही मंत्र साम-  
वेदमें गानेने लिए लिया गया है । वही सामवेदके अमरवेद  
की ओंके हैं, वे अक उवाच, अनुवाच आदि स्वरभेद विभागों  
वाले हैं । ऋग्वेदमें जो स्वर नीचे और ऊपर हैं, वहीँकी  
सामवेदमें जोँकी द्वारा दिलाया गया है । जो ऋग्वेदमें  
अनुवाचका विभक्तिक नीचेकी लक्ष्मी ( - ) है, उसने लिए



सामवेदमें ३ अंक है । ऋग्वेदमें उदात्तके लिए कोई चिह्न नहीं है, सामवेदमें उसके लिए १ का अंक है । ऋग्वेदमें स्थितिके लिए लट्टी देता ( १ ) होनी है, उसने लिए साम-वेदमें २ अंक है, जैसे—

अग्र आ याहि वीत्ये  
३ ३ १ ३ ३ ३  
अग्र आ याहि वीत्ये

उ अ उ स्व प्र अ उ स

“ उ ”—उदात्त, “ अ ”—अनुदात्त, “ २ ”—स्वरित, “ प्र ”—प्रत्यय “ स्व ”—सप्रत्यय वे स्वर हैं । ऋग्वेदमें जो स्वर गीष् और ऊपरकी देवतासे दित्ताये गये हैं, उन्हींको सामवेदमें अंकों द्वारा दित्ताया गया है । चिह्नमें करक होने पर भी उच्चारणमें कोई करक नहीं है । सामवेदके अंक गानेके अंक नहीं हैं, यह यहाँ प्याज देने योग्य बात है ।

ऊपर गीतमके बी और कप्रत्यय एक ऐसे स्तोन सामगान बिचे हैं । सामगान तान कालाप आदि स्वरोंमें गाने जाते हैं । मूलमंत्र गानोंमें विवृत हो जाते हैं, इसलिये उनका अर्थ, भावार्थ और स्पष्टीकरण नहीं हो सकता ।

### सामगानके अनेक भेद

“ सहस्रवर्मा सामवेदः ” इस प्रकार पतंजलिने अपने व्याकरण महाभाष्यमें कहा है । सामगानके हजारों भेद हैं । गायक प्रवीण होनेके बाद अपने गायनका नया दर्शन व्यापक करता है । ऐसे अनेक उत्तम गायक उसके अनेक प्रकार बनाते हैं । इसीलिये सामवेदको “ सहस्रवर्मा ” कहा है । उसके प्रकार “ गीतमस्य पक्कं, कदपपस्य पाद्विप्यं ” आदि नामसे दित्ताये हैं । गीतमका सामगान मृषण् और कदपपका सामगान मृषण् है । इस प्रकार अनेक गान हो सकते हैं ।

### सामवेदकी शाखा

सामगानके प्रकार गानेक होनेके कारण उसकी शाखायें भी बहुत हैं और अति प्राचीनकालसे इन अनन्त शाखाओंका प्रचलन होता आया है । चरणव्यूहमें शाखाके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

- १ सप्त सामवेदस्य शाखासहस्रं आधीव ।
- २ राणापणीयाः, सार्लमुषयाः, कालापः, महा-कालापः, कौथुमाः, सांगलिकाश्चेति । कौथु-मालो पद् मेदाः भवन्ति-सायणीयाः, वात-

रायणीयाः, वैपृताः, प्राचीनाः, तजसा, अनिष्ट-कादच्चेति ।

इस तरह सामगानके गहरे हजार भेद थे, पर वे तब धीरे धीरे मरने लगे वैसे गए और अब केवल उसके २-३ भेद ही उपलब्ध हैं । और उत्तम सामगान करनेवाले ही संगलियों पर गिये जा सकते हैं । बलिय भारतमें विशेषकर मंसूरकी तरफ मोड़ने रह गये हैं ।

सामवेदकी तेरह शाखायें हैं, यह “ साम - तर्पण - विधि ” में लिखा है । उनके नाम इस प्रकार हैं—

- १ राणापण, २ दादपमुष्य, ३ व्यास, ४ भागुरि, ५ औधुण्डी, ६ गीत्मुलवी, ७ भागुमान-कीपमस्य, ८ काराटि, ९ मशकगार्य, १० वार्यमय, ११ कुथुम, १२ बालिहोम, १३ जैमिनी ।

इन तेरह शाखाओंमेंसे आज, “ राणापणी, कौथुमी और जैमिनीय ” में स्तोन शाखायें उपलब्ध हैं । चरणव्यूहमें सामवेदकी जो हजार शाखायें कही गई हैं, वे धाम्य नहीं हैं, यह बात ध्यासके प्रसिद्ध विद्वान् सम्भवतः सामभोजने सिद्ध करके दिखाई है । पुराणोंमें और भी सामकी शाखाओंके नाम मिलते हैं, वे विचारणीय हैं—

इन शाखाओंके गानोंमें बहुत भेद है । जैसे—

कौथुमी	राणापणी
हाउ	हापु
राड	रावि
वातेपु गो	वातेपु गो

यह पद्यभेद इन दोनों शाखाओंके गानोंमें मिलता है ।

सामवेदमें ऋग्वेदके बालिलिप्यमें भी कुछ भेद आए हैं, उन परसे ऐसा दीवता है कि बालिलिप्यके मंत्रोंका सामवेद ऋग्वेदमें होनेके बाद इस सामवेदका मंत्रसंग्रह हुआ है ।

### ऋग्वेदमें सायका उल्लेख

ऋग्वेदमें सायका उल्लेख अनेकबार आया है—

- १ अंगिरसां सामभिः स्तुयमानाः । ( देवाः ) ।

( ऋ. १।१०७।२ )

- २ अंगिरसो न सामभिः । ( ऋ. १।०७।१५ )

- ३ उभौ वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रीधुमं चातुरजति ।

- ४ उद्गातेव शकुने माम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु संससि । ( ऋ. २।४३।१-२ )

“ वह पक्षी सामगानेवालेके समान गायत्री और त्रिष्टुभ् इन दोनो छन्दोंमें साथ गाता है और उसके कारण वह मोहित होता है । हे शकुने ! तू उड़वाताके समान सामगान करता है । तू ब्रह्मपुत्रके समान दत्तके सदनमें गाता है ”

५ यो जागार तसु सामानि यन्ति ।

( ऋ ५।४।१४ )

“ जागृत रहनेवालेके पास ही साम जाते हैं ” ।

६ तमेव ऋषिं तसु प्रह्मणमाहुः यक्षन्थं सामगां उक्थशासम् ।

( ऋ १०।१०।७।६ )

“ उसीकी श्रुति, उसीकी ब्रह्मा, उसीको वात करनेवाला, उसीकी सामगायक और स्तोत्र बोलनेवाला कहते हैं । ”

७ उपगासिपत् श्रवस्त्वाम गीयमानम् ।

( ऋ ८।८।१५ )

८ यूय नवि अवध सामधिप्रम् ।

( ऋ ५।५।१।४ )

“ सामगान करो, और सामगान सुनने दो । सामगानमें कुशल ब्राह्मण ऋषिकी सुन रहा करो ” ।

९ एतो भिवन्द स्तवाम शुद्ध शुभेन साक्षा ।

( ऋ ८।९।५।७ )

१० इन्द्राय साम गायत विमाय बृहते बृहत् ।

( ऋ ८।९।८।१ )

“ शुद्ध साम गाकर तेरी हम स्तुति करते हैं । तानी इन्द्रको बृहत् नामक सामका गान करके दिलाओ ” ।

११ बृहस्पति सामभिः ऋक्वो वर्धन्तु ।

( ऋ १०।३६।५ )

१२ मर्चन्त एके महि साम मन्वत ।

( ऋ ८।१९।१० )

“ सामगानसे पूजयोग्य बृहस्पतिकी प्रसा हो । कोई महान् सामका गान करते हैं । ”

१३ आगूष्य शवसानाय साम ।

( ऋ १।६।२।२ )

१४ अतस्य सामन् रणयन्त देवाः ।

( ऋ १।१४।७।१ )

१५ गायत्रेण प्रति भिमिति अर्के अर्केण साम

प्रेषुमेन चायम् ।

( ऋ १।१६।७।४ )

१६ ये न परः साम्नो विदुः ।

( ऋ १।२३।१।६ )

“ महा वसमान् इन्द्रके लिए आगूष्य सामका गान करो । यक्षमें सामगानकी सुनकर देव मान्यित हो गए । चापत्रीते

अर्क बनाते हैं, अर्कते साग और मन्दुभस्ते पानी उत्तम होती है । ये सामकी असेला और कितोकी धेछ नहीं समझते ” ।

१७ त्वष्टाजनत् साम्नः साम्नः कविः ।

( ऋ २।२३।१७ )

१८ साम कृषन् सामन्यो विपश्चित् ऋन्वधेति ।

( ऋ २।१६।२२ )

१९ परावतो न साम तदग्रा रणति धीतयः ।

( ऋ १।११।१२ )

२० स हि युता त्रिबुता वेति साम ।

( ऋ १०।९।१२ )

२१ तस्मात् यन्मात् सर्वद्वुत ऋचः सामानि जशिरे ।

( ऋ १०।९।१९ )

“ त्वष्टाने तुम्हें सामका जानी बनाया है । सामका निर्माण करते हुए सामगायनमें महान् जानी गान करता हुआ आगे होता है । सामगान जिससे दूर तक सुनाई पड़े, इस तरहसे जानी जोरसे स्तोत्र बोलते हैं । यह इन्द्र प्रकाशमान् विष्णुके समान आवृष लेकर साथ सुननेके लिए जाता है । उस सब द्रुत यन्ते ऋचा और साम उत्पन्न हुए ।

२२ अशीतिभिः तिसृभिः सामगेभिः इष्टापूर्वं

अचतुः नः ।

( अथर्व २।१९।४ )

२३ ऋच साम यजामहे याम्या कर्माणि कुर्वते ।

( अथर्व ७।५।११ )

२४ बृहत् परितस्मानि पठ्यात् पंचाधि निर्मिता ।

( अ ८।१।४ )

२५ बद्ध सामानि पठ्य चहन्ति ।

( अ ८।९।१९ )

२६ सामानि वस्य लोमानि ।

( अ ९।६।२ )

“ ८०x३= २४० गायकोंके साथ इष्टापूर्व हमारी रक्षा करें । ऋचा और सामसे-हम यजन करते हैं, जिससे हम कर्म करते हैं । छठे बृहत्के आधार पर पांच प्रकारके साम हमने बनाये हैं । छे साम छे विनके यक्षमें चलते हैं । साम जिसके सोम है । ”

२७ सपतनह ऋक्सतिष्ठः सामतेजा ।

( अ १।५।३० )

२८ यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मदी ।

( अ १।७।१४ )

२९ साम्ना ये साम संधिदुः यजस्तद्बृहदो वयः ।

( अ १।८।११ )

२० यदा समुद्रे मानुष्यश्चक्रः सामानि विभ्रती ।

( अ. १०।१०।१४ )

२१ ग्रहणा परिहृता मन्मा पर्वुदा ।

( अ. ११।३।१५ )

“ शत्रुओंको मारनेवाला, शत्रुओं द्वारा लीश्वर लिया गया व सामानि तेजस्वी वह यन्त्राया गया है । जिसने प्रथम जन्मे हुए ऋषि, शत्रु, साम, यजु व पृथिवी आश्रित है । सामने सामलो जो अष्टौ तरह जानते हैं, उन्होंने अजन्माको भला कहा देला ? यज्ञा ( पाय ) ऋचा और सामको धारण करने भय सन्तुष्ट नृत्य करते लगी । प्रसूने उसे चारों ओरसे पकड़ लिया और सामने उसे घेर लिया । ”

२२ शक्रसमयसुरविष्ट उन्नीय प्रस्तुतं स्तुतम् ।

उच्छिष्टे स्वरसान्ना मेदिद्वच सन्प्रिय ॥

( अ. ११।७।५ )

२३ ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

( अ. ११।७।२४ )

२४ शरीरे ग्रह मायिश्च ऋचः सामा यजुः ।

( अ. ११।८।२९ )

२५ ग्रहाणो यस्यामर्चन्ति आग्निः सामना यजुर्विदः ।

( अ. १२।१।३८ )

२६ तमूचद्वच सामानि च यजुषे च ग्रहा चानु-  
व्यचलन् ।

( अ. १५।६।८ )

२७ ऋचां च ये स सामानां च यजुषां च ग्रहाणश्च  
त्रियं धाम सपति ।

( अ. १५।६।९ )

“ ऋचा, साम, यजु, उद्गोष, प्रस्ताव, स्तोत्र, स्वर और सामके आलाप उच्छिष्टमें हैं । ये मन्त्रमें आर्षे । ऋचा, साम, छव और पुराण मनुष्यके साथ उच्छिष्टमें उत्पन्न हुए । ऋचा साम और यजु ये ब्रह्मसाम शरीरमें प्रविष्ट हुए । जिस भूमिपर ऋचा, साम और यजु जाननेवाले ब्राह्मण यत्कर्त्त करते हैं । उसके पीछे ऋचा, साम, यजु और ब्रह्म चले । यह ऋचा, साम, यजु और ब्रह्मका त्रिप धाम होता है । ”

इन मन्त्रोंमें ऋचा, साम, यजु और ब्रह्म ये चार देवोंके वाचक शब्द आये हैं । इनमें कुछ मन्त्रोंमें ये देवोंके वाचक हैं, तो कुछ मन्त्रोंमें ये शब्द उन उन देवमन्त्रोंके भावक हैं । हमारा प्रस्तुत विषय सामवेद और सामगान है । ऊपरके कुछ मन्त्रोंमें सामवेद ऐसा भी अर्थ है ।

तत्साध्यात्सर्वतुतः ऋचः सामानि अशिरे ।

( अ. १५।६।१३; अ. १०।१०।९; यजु ३।१७ )

२ [ साम. हिन्दो भूमिका ]

सामानि यस्य लोमानि । ( अ. १०।७।२० )

ऋचः सामानि छन्दांसि । ( अ. ११।७।२४ )

इन मन्त्रोंमें “ साम ” का “ अर्थ ” सामवेद ” है ऐसा प्रतीत होता है । ऋषीके मन्त्रोंमें सामगानके बोधक “ साम ” अथवा “ सामानि ” ये पद हैं । इन मन्त्रोंमें यह स्पष्ट होता है कि ऋचाओंके आधारसे सामगान करनेकी पद्धति वैदिककालमें चाधु भी और सामवेद भी जन गया था । यज्ञमें जो ऋचवेदके मंत्र गाये जाते हैं, उनका संग्रह यह सामवेद है । सामवेदकी कानेक आत्मायें प्रचलित थीं और उनकी संहितायें भी पुष्पक जनी हुई थीं ।

ऋग्वेदमन्त्रोंमें सामगानके नाम “ वैरुप, वृहत्, गौर-  
वीति, रैयतं, अर्क, गायत्रं, इलोक्, भद्रं ” इत्यादि आये हैं, इसप्रकार अर्धवेदके मन्त्रोंमें भी सामगानके नाम मिलते हैं, यजुर्वेदमें रश्मिर्भद्रं ( यजु. १०।१० ) ; वृहत् ( य. १०।११ ) ; वैरुप ( य. १०।१२ ) ; वैराजं ( य. १०।१३ ) ; वैखानतं, धामदेयं, यज्ञावशिष्टं ( य. ११।४ ) आर्क्यं, रैयतं ( य. १०।५ ) ; गायत्रं, गौरिचीतं, अना-  
यतं, योधां, सत्रस्याधिं, प्रजापतेर्हृदयं, इलोक्, अमु-  
इलोक्, भद्रं, राजन्, अर्क्यं, इलायं, इत्यादि साम-  
गानके नाम आये हैं ।

ऐतरेय ब्राह्मणमें, “ वृहत्, रथन्तरं, वैरुप, वैराजं, आर्क्यं, रैयतं, गायत्रं, रैयतं, नोपलं, वीर्यं, योधा-  
जयं, अग्निष्टोमीयं, भातं, विकर्षं ” इत्यादि नाम भी मिलते हैं ।

ये नाम उस उस सामगानकी विशिष्टता दिखाते हैं । ऋग्वेद आदि में आये हुए वर्णनेति यह निश्चित होता है कि सामगानने देवोंकी प्रार्थना की जाती थी । यज्ञमें सोमरस निकालकर, उसमें पानी मिलाकर छानकर व पुष्पके धाप, मिलाकर वह पीनेके लायक होने तक सामगान श्रुता था और वह बुरेसे सुनाई पड़ता था । गायन निरसनेह उत्पन्न होता था । कुछ लोगोंकी धारणा है कि सामगानकी पद्धति अर्वाचीन है, पर यह जबकी धारणा गलत है ।

### सामवेदकी स्वरगणना

सामवेदकी स्वरगणना बहुत उत्तमतासे की गई है । उसकी सामगानने गणना कही और नहीं बिलाई देती है । वह गणना केशी है, वैदिक—



उपनिषद् मिलकर "ताण्ड्य महाभ्राह्मण" होता है। यद्विद्याब्राह्मणमें अदभुत कथाओंका संग्रह होनेके कारण उसे "अद्भुतब्राह्मण" भी कहते हैं। सामवेदके दूसरे ब्राह्मणोंका दूसरा नाम "अनु ब्राह्मण" भी है। चीनतीय उपनिषद् ब्राह्मणमें "केनोपनिषद्" है। इस चीनतीय ब्राह्मणका दूसरा नाम "तयस्कार शारदा" भी है, इसलिष्ट केनोपनिषद्को तबलकारीय केनोपनिषद् भी कहते हैं।

### सामवेदके सूत्रग्रंथ

(१) मद्राकनल्पसूत्र, (२) शुद्धसूत्र, (३) लाट-यायन श्रौतसूत्र, (४) गोभिलीय गृह्यसूत्र। और राणा-यनीय शापाके (१) द्वाप्यायन श्रौतसूत्र, (२) खादिरगृह्यसूत्र, (३) पुष्पसूत्र। ये सामवेदके सूत्रग्रंथ "प्रातिशाख्य" के नामसे भी प्रसिद्ध हैं।

### वेदमंत्रोंके अर्थ

वेदमंत्रोंके अर्थके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। वास्तवमें वेदोंमें एक अपनी भिन्न शैली है। यह शैली या प्रक्रिया सामान्य आशय तो फिर मतभेदका कोई कारण नहीं रहता। तब अपन वेदमंत्रों की कहा है कि सत्य यस्तु एक है। और कवियोंने उस एक सत्यके अनेक गुणोंकी वेशकर उसके अनेक नाम रख दिए हैं। उदाहरणार्थ—

इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निमाहुः अयो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सत् विद्मः बहुधा वदन्ति अग्निं धर्मं मातरिदग्नामगृह्णन् ॥ (ऋ. १।१६।४७)

(एकं सत्) एक ही सद्गुण है, उस एक ही वस्तुका (विद्मः बहुधा वदन्ति) जानी लोग अनेक नाम लेकर वर्णन करते हैं। उसी एक सद्गुणको जानी इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यक्ष, मातरिदग्ना आदि नामोंसे वर्णन करते हैं।

इस मंत्रमें वेदकी प्रक्रियाका अर्थपूर्ण वर्णन किया है। अर्थात् अग्नि, वायु, इन्द्र, यम आदि नाम उस एक परमेश्वरकी हैं और इन नामोंसे उनके गुणोंका वर्णन हुआ है।

मत्र अग्नि देवताका ही, अथवा इन्द्र देवताका ही, उन मंत्रोंका मुख्य भाव परमात्मा परब्रह्म ही है, यह यहाँ स्पष्ट डेने योग्य है। अग्नि को "विश्वेदेवाः" कहा है। "विश्वेदेवाः" का अर्थ है "सर्वशक्ति"। अग्नि सर्वशक्ति हीकर "परमात्मा सर्वशक्ति" यह ऊपरके मंत्रमें कहा है।

सर्व वेदा यत्तदमामनान्ति तर्पानि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यद्विच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते पदं संग्रहेण प्रवीमि ओम् इत्येनम् ॥

(काठ उ. २।१५)

"सब वेद जिस परब्रह्म वर्णन करते हैं, सब प्रकारके तप जिसके लिए किए जाते हैं, ब्रह्मचर्यका पालन जिसकी प्राप्ति की इच्छासे किया जाता है, उस परब्रह्म में संश्लेषसे छेरे लिए रहता हूँ कि यह "ओम्" है। अर्थात् "ओम्" शब्दसे जिस तत्त्वका संकेत है उसी परमात्माका वर्णन सब वेद करते हैं। सब तपश्चर्या उसीके लिए की जाती है और ब्रह्मचर्यका पालन भी उसीके लिए किया जाता है। यही आर्यके मंत्रमें प्रतिपादित है—

तदेवाग्निः तदादित्यः तद्वायुः तद्वायुः चन्द्रमाः।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः ॥

(यजु ३२।१)

(तत् एव अग्निः) वह ब्रह्म ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप और प्रजापतिवर्गसे वेदमंत्रोंमें वर्णित है। अर्थात् अग्नि, आदित्य, वायु आदि नाम यद्यपि भिन्न भिन्न, तपस्वि उन विभिन्न नामोंसे उस एक ही ब्रह्मका वर्णन वेदोंमें किया गया है। यही वैजायनी उपनिषद्में और स्पष्ट किया है—

एष खलु आत्मा ईशानः शंभुर्मयो यद्रः।

प्रजापतिर्विश्वसूत्रं हिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो

हंसः शान्तो विष्णुः नारायणोऽर्कः सविता

धाता सध्राद् इन्द्र इन्दुर्गतिः ॥ (वैजायनी ५।८)

"यही जगत्मा ईश्वर, शंभु, भव, छ, प्रजापति, विश्व-सत्त्वा, हिरण्यगर्भ, सत्य, प्राण, शुद्ध, शान्त, विष्णु, नारायण, अर्क, सविता, धाता, सध्राद्, इन्द्र, इन्दु आदि नामोंसे वर्णित है।" इस विवेचनासे स्पष्ट है कि अग्नि, इन्द्र आदि नामोंसे मुख्यतः एक आत्मा अर्थात् परमेश्वरका ही वर्णन किया जाता है। यह ही श्री वात्सनायक अपने निबन्धमें कहते हैं।

महामायादेवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तुयते।

एकस्य आत्मनः अन्ये देवा प्रत्यंगानि मयन्ति।

...आत्मा एव एषां रथो भवति, ब्रह्मा अश्वः,

आत्मा आधुषे, आत्मा इषवः, आत्मा सर्वे देवस्य

(निबन्ध)

"देवोंके महान् आर्यके कारण, महान् सामर्थ्यके कारण एक ही आत्मकी अनेक प्रकारसे स्तुति होती है। एक

आत्माके दूसरे देव अण होते हैं । आत्मा ही इतका रघ, अश्व, मत्स्य, बाण और सब कुछ आत्मा ही है । ”

इस प्रकार वेबके वर्णनोंका तात्पर्य समझना चाहिए । वेदमंत्रोंमें जो रघ, घोड़े आदियोंका वर्णन है, वे सब आलंकारिक हैं । आत्माकी शक्ति बहुत बड़ी है, और वह उन उन रूपोंमें प्रकट होती है, ऐसा समझना चाहिए ।

इन्द्र जोबेकें रचते अमुक यतमें पहुँचा, ऐसा वर्णन यदि कहें है तो इन्द्र अपनी आत्मा ही वहाँ पहुँचा, यही सत्यार्थ है और उसके रघ, घोड़े, चासू तारों आदि सब उसकी शक्तिके आलंकारिक वर्णन हैं । उसी प्रकार आत्मा कहें आता जाता नहीं, वह तो सत्य है, इसलिए उसका आभा जाता भी आलंकारिक ही है ।

### अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत

अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि देव विश्वमें कार्य करते हैं । उनका वर्णन वेदमंत्रोंमें है । ये देव उस सर्वव्यापक विश्वात्माके विराट् देहमें उसके अवयव बन कर रह रहे हैं । सूर्य उसकी आल है, वायु उसका प्राण है, पृथ्वी उसका पाद, अन्तरिक्ष पेट और छल्लो उसका मस्तक है । इस प्रकार यह विराट् पुरुष है । और उसके अवयव अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देव हैं । इससे यह समझमें आजाएगा कि वेद मंत्रोंमें अग्नि आदि देवोंका वर्णन न होकर विश्वात्मा विराट् पुरुषके अवयवोंका ही वर्णन है ।

कित्तीकी आल अवयवा फलका वर्णन जितप्रकार पित्ती अवयवका न होकर उस पूर्णपुरुष का ही वर्णन होता है, उसी प्रकार अग्नि, वायु, इन्द्रादि देवोंका वर्णन उसी विश्वात्मा विराट् पुरुषके विराट् शरीरका वर्णन है । यह विराट् पुरुषका वर्णन अधिदैवत वर्णन है । यह विश्व देवका वर्णन है । प्रत्येक देवता स देहमें महा रहते हैं, यह समझना चाहिए और उस भागका वह वर्णन है वह जानें ।

ये सभी देव मानव शरीरमें अवस्थित हैं—  
स्वर्गो ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥

( अथर्व. ११।८।३२ )

“ सज देवता इस मानवी देहमें रहते हैं, जितप्रकार गावें गोशालामें रहती हैं । ” सूर्य आँखमें, वायु नाकमें, बिजयें कानमें, अग्नि मुँहमें, इन्द्र भुजा और छातीमें, चन्द्रका हृदयमें, अन्तरिक्ष उदरमें, पृथ्वी पैरोंमें, जल शिखर और मूल नाभिमें इसप्रकार सब देव मानव शरीरमें अवस्थित रहते हैं और इस देहमें कार्य करते हैं । जैसे विद्वानें बने बने

वेदताओंका राज्य है, बिल्कुल वैसे ही इस मानव शरीरमें उन वेदताओंके अवस्थित देवोंका राज्य है । देव चाहे बड़े हों या अवस्थित उनके देवत्वमें कोई फरक नहीं पड़ता । यह यहाँ ध्यानमें रखने योग्य है ।

सामान्य धडा होता है और उसकी बिगारी छोटी होती है । पर दोनोंमें अग्निका अंश सामान्य है । उसीप्रकार अग्नि इन्द्र आदि विद्याल वेद विश्वमें हैं और उनका अंश शरीरमें है । दोनों स्थानों पर वेदत्वका अंश समान है । इस प्रकार अव्यापक - मानवीय - शरीरमें वे ही देव अवस्थित हैं और अधिदैवत - विश्व - में वे ही देव महान् आकारमें हैं ।

शरीरमें इन देवोंका साग गुणोंके कारण होता है और सामान्य अवयवा राट्टमें वे गुणी मनुष्यके रूपमें दीखते हैं, यह समझनेके लिए वीचे तालिका दी है—

अध्यात्ममें	अधिभूतमें	अधिदैवतमें
बाणी	ब्रह्मा	अग्नि
शौर्य	सूर्य	इन्द्र
पुद्गेच्छा	सैनिक	चण्ड
प्राण	प्राणी	वायु
कारोषरी	कारोषर	श्वेदा
ज्ञान	ज्ञानी	ब्रह्मणस्पति
चिन्तितता	चिन्तितक	अश्विनी
पाँव	पुद्ग	पृथ्वी
रक्तवाहिनियाँ (ताडियाँ)	वर्दियाँ	आप, जलप्रवाह
नाभ्य	आभ्यबाह्	भग

इस प्रकार व्यक्तियों में गुणरूपसे, समाज और राष्ट्रमें गुणी-रूपसे और विश्वमें देवताके रूपसे ये देवता रहते हैं । उनका ज्ञान अत्यावश्यक है ।

वेदमंत्रोंमें जो वर्णन है वे अधिदैवत वर्णन हैं । ये ही वर्णन कर्णरूप - व्यक्ति - में गुणरूपसे देवसे व्यक्तिए और व्यक्ति-भौतिकमें वर्तमान समाज और राष्ट्रमें गुणी मनुष्योंके रूपमें देवसे व्यक्तिए । इससे वेदमंत्रोंका सत्यार्थ समझमें आ जाएगा । इन दोनों स्थानोंमें अवयव रूपसे वे देवता व्यक्तिए, उसे विचार करके निश्चित करना चाहिए । मंत्रोंमें जबकि अर्थ इस दृष्टिसे देवसे योग्य है । पराहरणार्थ—

इन्द्रका अर्थ

अव्यापक “ इन्द्र ” का अर्थ “ सीधातमः ” है । इस आत्मताके साक्षि इन्द्रिय हैं । इन्द्रकी शक्ति बिसालके लिए यह इन्द्रिय दाय्य बना है । “ इर्वेन्द्र ” इस शरीरमें

आमाने छिद्र मनाये हैं । " मे देवना चाहता हूँ " आत्माके इस संकल्पके साथ ही मेयकी जगह दो छेद हो गए । " मे श्वातोच्छ्वादास कर्त्तव्य " इस संकल्पके कारण माकके स्थान पर छेद हो गए । इसप्रकार इसने इस शरीरमें अनेक छिद्र बनाये । इसलिए इसका नाम " इदं+इ " हुआ । उसका संक्षेप " इन्द्र " है । इस प्रकार यह इन्द्र शरीरमें जीवात्माके रूपमें है ।

अधिभूतमें अर्थात् समान अथवा राश्ट्रमें इन्द्र मुखके लिए, राश्ट्रकी स्वतंत्रताकी रक्षा करनेके लिए होनेवाले युद्धोंमें भाग लेनेवाला अनुस पराक्रमी वीर है । यह " इन्द्र " अर्थात् " शत्रुओंको फाड़नेवाला " पराक्रमी वीर है । यह सेनाको सँघार करता है । शत्रुको हलचल पर मजबूर करता है और उनका नाश करनेके लिए जो कार्य आवश्यक होते हैं, उन्हें करता है ।

आग्निदेवतमें इन्द्र सम्यक्स्थानीय देवता विजयी है । यह मैत्रीकी कोङ्कर पानी बरसाता है । जहाँ विजयी गिरती है वहाँ वृक्षके गिरनेके समान शब्द होता है ।

इसप्रकार वेदमंत्रोंके अर्थ अष्टादश, अधिभूत और अधि-देवत इन तीन क्षेत्रोंमें होते हैं । अष्टादशका मतलब माक-कीम शरीरका वर्णन, अधिभूतका अर्थ मानवसमान अथवा राश्ट्रपरक वर्णन है । यहाँ " भूत " शब्दका अर्थ " प्राणी " सेना चाहिए । " भूत " का अर्थ " संघ " महामृत " नहीं । अधिदेवतका अर्थ है विश्व । वेदोंके मंत्रोंमें आग्निदेविक अर्थात् विश्वपरक वर्णन है । इस वर्णनमें ही अन्य दोनों भाग समाते चाहिए—

### सोमदेवता

तम एक सता है । उसका मंत्र इतप्रकार है ।

५२७ सोमः पयसे जनिता मवीनं

जनिता दियो जनिता पृथिव्याः ।

जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य

जनितेन्द्रस्य जनितात विष्णोः ॥ (श्व. १।१६।५)

" सोम मुदा किया जाता है । वह बुद्धियोंकी पैदा करने-वाला पृथ्वीकी, पृथिवीकी, अग्निकी, सूर्यकी, इन्द्रकी और विष्णुकी भी पैदा करनेवाला है " इस मंत्र पर वाक्क अपने निदत्तमें इसप्रकार कहते हैं—

अर्धतं महात्मात्मानं धत्तानि सृक्तानि

पता क्रचोऽनु प्रवदन्ति ।

अथाध्यात्मं । सोम आत्मा अपि पतस्मादेव ।

- इन्द्रियाणां जनिता इत्यर्थः ॥ ( निष्पत्त )

" इस महान् आत्माका ही वर्णन में सूचित करते हैं । अध्यात्म प्रकरणमें " सोम " आत्मा " है । वह इन्द्रियोंकी पैदा करनेवाला है " और आत्मे स्पष्ट करते हैं—

महिषो मृगाणामिति जयमपि महान् भवति  
मृगाणां मार्गजकर्मणामिन्द्रियाणां । द्येनो  
गृधाणामिति द्येन आत्मा भवति श्यापते शान-  
कर्मणः । गृधाणि इन्द्रियाणि गृध्रपते शान-  
कर्मणः ॥ ( निष्पत्त )

" मृगोंमें महिष बड़ा है । मृग अर्थात् खोजनेवाली इन्द्रियों, उन इन्द्रियोंमें वह आत्मा बड़ा है । द्येन गीधोंमें बड़ा है । मुद्रका अर्थ है शानके साथ-इन्द्रियें, उनमें द्येन आत्मा है क्योंकि वह शान प्राप्त करता है । "

इसप्रकार मंत्रोंका अर्थ समझना चाहिए ।

### देवताओंका गुणवर्णन

अब साधवेदमें देवताओंका जो गुणवर्णन किया गया है । उसे दिखाते हैं—

### इन्द्रके गुण

१ अचेताः [ १४१२ ]- शक्ती, विचारशून्य, विशेष-विचार करनेवाला ।

२ शुक्रः [ १४१२ ]- बुद्ध, निर्दोषी ।

३ विश्वरूपिः [ १४८७ ]- विश्वके अंश ।

४ अशस्ति-हा [ १६३७ ]- विपत्ति दूर करनेवाला ।

५ सुगोपाः [ १७२० ]- उत्तम संरक्षण करनेवाला ।

६ नामधृतः [ १७१८ ]- नामसे सुप्रसिद्ध ।

७ क्रतिवृक्षः [ १७१८ ]- शत्रुको अनुसार उन्नति करनेवाला ।

८ लोकेन्द्रात् [ १८०१ ]- जगत्सक कल्याण करनेवाला ।

९ अशत्रुः [ १८०२ ]- जो स्वयं किसीसे शत्रुता नहीं करता ।

१० शिर्वणः [ १४३१ ]- स्तुत्य, प्रशंसीय ।

११ महान् [ १३५५ ]- महान्, बड़ा ।

१२ मंहिष्ठः [ १३६१ ]- महान् ।

१३ जनुया अश्रातुव्यः [ १३८१ ]- जन्मते ही शत्रुता न करनेवाला ।

१४ यदाः [ १४११ ]- यशस्वी, विजयी ।

१५ चर्यणीयुतिः [ १४११ ]- आगमजातिका धारण-पोषण करनेवाला ।

१६ वायुधामः [ १४११ ]- अपनी दाहिने बड़नेवाला ।

१७ वृषभः [ १३६१ ]- बलवान्, बलके समान सशक्त ।  
१८ वज्रबाहुः [ १४२६ ]- वज्रके समान कठोर भुजाओंवाला ।

१९ भूर्योजाः [ १४८४ ]- बहुल सामर्थ्यवान् ।  
२० रीर्यिः वृद्धः [ १४८७ ]- पराक्रमसे महान् ।  
२१ भूयत् [ १४४२ ]- शत्रुओंको हरातेवाला ।  
२२ सहिपः तुविशुष्मः [ १४४६ ]- जैसेके समान पुष्ट और महान् शक्तिमान् ।

२३ दार्चीपतिः [ १५७४ ]- शक्तिमान् ।  
२४ ध्रुपा [ १३६० ]- बलवान्, प्रबलतेकी कामनापूर्ण करनेवाला ।

२५ अभ्रंयकरः [ १३६१ ]- अभय देनेवाला ।  
२६ शायसः पतिः [ १४११ ]- सामर्थ्ययुक्त ।  
२७ अनुसः [ १४११ ]- अपराजित ।  
२८ असु-रः [ १४११ ]- बलवान्, शरीरसे दृढपुष्ट ।  
२९ जनानां राजा [ १३६६ ]- लोगोंका राजा ।

३० संवननः [ १३६६ ]- सेवाके योग्य ।  
३१ मयया [ १४५९ ]- धनवान् ।  
३२ अभ्यघाह्, गोमाह्, यवमान् [ १४५९ ]- घोड़े, गाय और गीं वातमें रजनेवाला ।

३३ स्वस्पतिः गोपतिः [ १४८९ ]- सज्जनोंका पालक, गायोंका पालन करनेवाला ।

३४ हरीणां पतिः [ १५१० ]- घोड़ों पालनेवाला ।  
३५ अश्वस्य वीरः [ १५८० ]- घोड़ोंका उत्तम पोषण करनेवाला ।

३६ गावां पुदकृत् [ १५८० ]- गायोंका उत्तम पालन करनेवाला ।

३७ क्राक्षीपमः [ १६४४ ]- बर्धनीय ।  
३८ मयः [ १६५७ ]- मत्तप्रवृत्ति धारण करनेवाला ।  
३९ सस्त्वा [ १६६६ ]- बलवान् ।

४० दाकी [ १६६६ ]- सामर्थ्यवान् ।  
४१ सदाबुधः वीरः [ १६८४ ]- सदा बलनेवाला वीर ।  
४२ विम्री [ १६६६ ]- गिररन्ध्रान् धारण करनेवाला ।

४३ तुविशुष्मः [ १७७२ ]- शत्रु बलवान् ।  
४४ तुविशुष्मः [ १७७२ ]- बड़े बड़े कर्मा करनेवाला ।  
४५ शचीयः [ १७७२ ]- शक्तिवाली ।

४६ दामिष्ठः [ १७७२ ]- शक्तिवाली ।  
४७ विदेरी [ १६६१ ]- शत्रुओंके द्वेष करनेवाला ।  
४८ अयकक्षी [ १३६१ ]- शत्रुओंको टक्कर देनेवाला ।

४९ शम्भुः [ १३६१ ]- दुष्टोंका शत्रु ।

५० मृधः सासहिः [ १४८७ ]- शत्रुओंको हरातेवाला ।

५१ वीरतरः नहि [ १५११ ]- जिससे बहुर वीर कोई दूसरा नहीं है ।

५२ अद्रिवः [ १३५४ ]- वज्रपाटी, वज्रास्त्रपाटी ।

५३ चर्यषीसहः [ १३६१ ]- शत्रुसेनाको हरातेवाला ।

५४ पुतनापाद् [ १४३३ ]- शत्रुसेनाका नाश करनेवाला ।

५५ अभिभूः [ १४३० ]- शत्रुको हरातेवाला ।

५६ दूरः [ १४३४ ]- वीर ।

५७ सहावान् [ १४३४ ]- शत्रुको हरातेका सामर्थ्य अपने पास रखनेवाला ।

५८ अमर्तं दस्तु औपः [ १४३४ ]- निमर्गमें न चलने-वाले शत्रुओंको मर्त करनेवाला ।

५९ विश्वास्तु पृतनास्तु हव्यः [ १४९२ ]- सब युद्धोंमें सहायताके लिए युद्धमें योग्य ।

६० उन्नः [ १६०५ ]- उन्नवीर ।

६१ सहस्रकृतः [ १६०८ ]- साहसके काम करनेवाला ।

६२ चर्यषि-प्राः [ १७९३ ]- लोगोंका पोषण करनेवाला ।

६३ अद्वयः वीरः [ १८५५ ]- शत्रुपर हमा न करने-वाला वीर ।

६४ शतमय्युः [ १८५५ ]- शत्रुपर सैकड़ों प्रकारसे कोष करनेवाला ।

६५ अयुध्यः [ १८५५ ]- जिसके साथ युद्ध करना कठिन है ।

६६ दुदृच्यवन्तः [ १८५५ ]- अपने स्वान परसे कठिन-सासे हिलनेवाला योद्धा ।

६७ अग्रतिष्ठुतः [ १६२२ ]- जिसका प्रतिकार करना अशक्य है ।

६८ अतृप्तिषु विश्वाः स्पृचः अभि मसि [ १६१७ ]- युद्धमें सब स्पर्ध करनेवाले शत्रुओंको मारनेवाला ।

६९ तहस्पन् [ १६३७ ]- शत्रुओंको दूर करनेवाला ।

७० अनवीणाः [ १६४१ ]- युद्ध करनेमें कुशल ।

७१ अनध्वयुतः [ १६४३ ]- पराभूत न होनेवाला ।

७२ अवार्थकस्तु जरः [ १६४३ ]- मित्तको कोई रोक नहीं सकता ।

७३ दस्तु-हा [ १६६८ ]- दुष्टोंका नाश करनेवाला ।

७४ वज्री [ १६९१ ]- वज्रपाटी, वज्रास्त्रपाटी ।

७५ स्विः रणाश्व संस्कृतः [ १६९८ ]- युद्धमें स्विर रहनेवाला, युद्ध करनेमें कुशल ।



- ७६ समूहसि [ १३९० ]- संगठन करनेवाला ।  
 ७७ ईशानरुद्र [ १४९३ ]- आसक्त निर्माण करनेवाला ।  
 ७८ तुविधुम्नः [ १४९३ ]- अरपन्त तेजस्वी ।  
 ७९ परमज्या [ १४९२ ]- जिसके घनपक्की होते उत्तम हैं ।  
 ८० उमयाधी [ १३६१ ]- भौतिक और आध्यात्मिक ऐश्वर्य देनेवाला ।  
 ८१ वृत्रहा अहि अवधीत् [ १४५१ ]- वृत्रघातक इन्द्रने अहिका वध किया ।  
 ८२ नमनवर्ति पुरः थाहोजसा यिमेद् [ १४५१ ]- शत्रुके निग्नानये नगरोंकी इन्द्रने अपने बाहुबलसे लोका ।  
 ८३ सप्रतीनि पुरुवृत्राणि हंसि [ १४५१ ]- बहुते घलित शत्रुओंकी मारता है ।  
 ८४ चित्राभिः ऊतिभिः अघसात् [ १४५१ ]- अपने शिस्तान रक्षणके साधनेसे इन्द्र रक्षा करता है ।  
 ८५ लुम्नेषु सः आयागयः [ १४५१ ]- गुल और समुद्रमें ह्वे गया ।  
 ८६ ओजसा ऊयि युधा अभ्यवत् [ १४८८ ]- इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंकी युद्धमें जीतता है ।  
 ८७ शतक्रतुः [ १४५९ ]- सैकड़ों महाबलपूर्व कार्य करनेवाला ।  
 ८८ पुरां दूर्वा [ १७१९ ]- शत्रुके नगर तोड़नेवाला ।  
 ८९ वृद्धा चित् आरजः [ १७१९ ]- वृद्ध शत्रुओंकी भी उखाड़ फेंकनेवाला ।  
 ९० ते ध्रुवमे तुरयन्तं [ १६३८ ]- तेरे बल शत्रुओंका नाश करते हैं ।  
 ९१ गोत्रमिन् वसवाहुः अजमे जयन् ओजसा प्रमुधान्त [ १८५५ ]- शत्रुओंके किले तोड़नेवाला, वधके समान कठोर बाहुओंवाला हो युद्धमें विजयी होता है और शत्रुओंकी नष्ट करता है ।  
 ९२ सत्रा राजा [ १७१५ ]- सत्रों पर एक साथ शासन करनेवाला ।  
 ९३ अनुत्तमन्मुः [ १७१५ ]- जिसका कोष व्यर्थ नहीं होता ।  
 ९४ राधानां पतिः [ १६०० ]- धनोंका स्वामी ।  
 ९५ पशुधिद्रः [ १५७९ ]- निवासके साधन पास रखनेवाला ।

- ९६ इन्द्रे विश्वा भूतानि येमिरे [ १५८८ ]- इन्द्रके आधर्यसे सब प्राणी रहते हैं ।  
 ९७ तुविर्कर्मिः [ १७७१ ]- महान् कार्य करनेवाला ।  
 ९८ कृतीपथः [ १७७१ ]- शत्रुकी दूर करनेवाला, प्रलोभनोंमें न फँसनेवाला ।  
 ९९ त्विपीमान् [ १४८८ ]- तेजस्वी ।  
 १०० सत्रात्राचन् [ १६२१ ]- एकदम फल देनेवाला ।  
 ये इन्द्रके गुण वाचका देखें। इन्हे ममते पाटन कटनेपर ही क्षीरीरमें बल बढता है और मन्वी क्षति पड़ती है ।

### अधिके गुण

- १ अग्निः [ १३४१ ]- अपनी " अग्निः कस्मात् ? अग्रणीर्भवति " ( निरवत )  
 २ पावक [ १३४१ ]- पवित्र करनेवाला ।  
 ३ होता [ १३४१ ]- हवन करनेवाला, देवीकी वृत्ताने-वाला ।  
 ४ पविः [ १३४९ ]- तानी, दूरदर्शी ।  
 ५ मधुमिजः [ १३४९ ]- मधुरभाषी ।  
 ६ धियः [ १३४९ ]- सबको भिय लगानेवाला ।  
 ७ नराक्षसः [ १३४९ ]- सब अनुषों द्वारा प्रशंसित होनेवाला ।  
 ८ मनुर्हितः [ १३५० ]- समुष्णोंका द्वित करनेवाला ।  
 ९ प्रशस्तः [ १३७४ ]- प्रशंसित ।  
 १० दूरे दक् [ १३७४ ]- दूरसे बीजनेवाला, दूरदर्शी ।  
 ११ शुहपतिः [ १३७४ ]- गृहस्वामी ।  
 १२ अयव्युः [ १३७४ ]- प्रपत्तिशील ।  
 १३ सु प्रतिचक्ष्यः [ १३७४ ]- अत्यन्त धार्मीय ।  
 १४ यविष्ठयः [ १३७४ ]- तत्पण ।  
 १५ दक्षपथ्यः [ १३७४ ]- बल बढ़ानेवाला ।  
 १६ शोता [ १३८१ ]- क्षान्ति मुल देनेवाला ।  
 १७ ओहसः पातु [ १३८१ ]- पारोति रक्षा करनेवाला ।  
 १८ रणे रणे धनंजयः [ १३८२ ]- प्रायेण युद्धमें विजयी ।  
 १९ भारतः [ १३८५ ]- नरन कोषण करनेवाला ।  
 २० भजरः [ १३८५ ]- कभी बृद्ध न होनेवाला, हमेशा तत्पण रहनेवाला ।  
 २१ वसिष्ठवत् [ १३८५ ]- तेजस्वी ।  
 २२ द्रुमत् [ १३८५ ]- प्रकाशयुक्त ।

२३ वृत्राणि अघनत् [ १२९६ ]- शत्रुको मारनेवाला ।

२४ सहन्त्यः [ १४१७ ]- शत्रुको हटानेवाला ।

२५ विध्यचर्षणिः [ १४१७ ]- तब जनोका हित करनेवाला ।

२६ सुभगः [ १४१७ ]- उत्तम भाग्यवान् ।

२७ सुदीदितिः [ १४१७ ]- उत्तम तेजस्वी ।

२८ श्रेष्ठशर्चाः [ १४१७ ]- विशेष प्रकाशमान् ।

२९ प्रजायत् प्रज्ज आभर [ १३९८ ]- पुत्रपौत्रोत्ते पृथक् भक्षे ।

३० अपां-न-पात् [ १४१४ ]- जलोंको नीचे गिरने न देनेवाला ।

३१ तनू-न-पात् [ १४१६ ]- छरीरको गिरने न देनेवाला ।

३२ ऊर्जां-न-पात् [ १७१२ ]- बल कम न करनेवाला ।

३३ द्विजग्मा [ १७७६ ]- द्विज, जो अरणिषोंमें जान्न देनेवाला ।

३४ हुहंतार [ १७१५ ]- पुष्ट्योंको जानते मारनेवाला ।

३५ मातुपे जने हितः [ १७४४ ]- मनुष्योंका हित करनेवाला ।

३६ येचः [ १४७६ ]- विशेष कर्म करनेवाला ।

३७ सुक्रतु [ १४७६ ]- उत्तम रीतिते कर्म करनेवाला ।

३८ क्षिप्रमानुः [ १४९८ ]- उत्तम तेजस्वी ।

३९ सहस्रहता [ १५०३ ]- बल बढ़ानेवाला ।

४० प्रचेताः [ १५१४ ]- कितो बानी ।

४१ गातुविद्यमः [ १५१६ ]- उत्तम रीतिते मार्ग जाननेवाला ।

४२ आर्यस्य वर्धनः [ १५१५ ]- आर्योंको बढ़ानेवाला ।

४३ पांचजग्यः [ १५१९ ]- पाँचों जनोका कल्याण करनेवाला ।

४४ आपिः [ १५१९ ]- लानी, प्रथम ।

४५ पयमानः [ १५१९ ]- पृथक् करनेवाला ।

४६ पुरोहितः [ १५१९ ]- नेता, जाने रहनेवाला, जाने स्थापित किया हुआ ।

४७ महागयः [ १५१९ ]- महान् घरवाला ।

४८ स्वर्हक् [ १५१९ ]- बराबर्हट्टिवाला आत्मन्नावी ।

४९ स्वपत्तिः [ १५३३ ]- स्वर्णकांतित ।

५० धूपणः [ १५४० ]- बलवान् ।

५१ जातयेदाः [ १५६६ ]- जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है, उत्पन्न हुआको जाननेवाला ।

५२ गुचिः [ १५६७ ]- गुह्य, धर्मि ।

५३ धुयः [ १५६७ ]- स्थिर ।

५४ असृतः [ १५६८ ]- अमर ।

५५ जागृविः [ १५६८ ]- जागृत रहनेवाला ।

५६ विभुः [ १५६८ ]- व्यापक ।

५७ विदपतिः [ १५६८ ]- प्रजाका पालन करनेवाला ।

५८ जनानां जाभिः मित्रः प्रियः [ १५१६ ]- लोगोंका प्रिय मित्र ।

५९ दूर्यतः [ १५३८ ]- सुदूर, दशमीय ।

६० मग्गः [ १५४३ ]- आनखित, प्रिय ।

६१ विमायसुः [ १५४३ ]- तेजस्वी ।

६२ रौद्रः [ १५४६ ]- भयकर ।

६३ मग्गः [ १५४६ ]- कल्याण करनेवाला ।

६४ विश्वा साहान् अमुक्तः [ १५५८ ]- सब शत्रुओंको हटानेवाला, विजयी, न हारनेवाला ।

६५ समस्तु स्वासहिः [ १५६० ]- पृथक् विजयी ।

६६ वरेज्यः [ १६१९ ]- श्रेष्ठ, ज्येष्ठ ।

६७ अमिषं अर्दय [ १६४८ ]- शत्रुका नाश कर ।

६८ उरुहृत् [ १६४९ ]- बहुत कर्म करनेवाला ।

६९ अरायोष [ १६६३ ]- स्तुतिते प्रबुद्ध होनेवाला ।

७० द्युस [ १६६० ]- सुदूर, दशमीय ।

७१ कृताया [ १७०८ ]- सत्यनिष्ठ ।

७२ वैभ्यानरः [ १७०८ ]- सबका नेतृत्व करनेवाला ।

७३ दशी [ १७०९ ]- सबको अपने अधीन रखनेवाला ।

७४ पायकयोधिः [ १७१२ ]- जिसका प्रकाश पवित्रता करनेवाला है ।

७५ स्मिदितिषु कृष्टिषु जगमनासु दागुपे गये अरक्षत् [ १३८० ]- शत्रुके आक्रमण करने पर बाताके घरकी रक्षा करता है ।

ये जिनके गुण भी अत्यन्त बोधमय हैं । मनुष्यों के ये गुण अपने मन्वर बढ़ाने चाहिए ।

### सोमके गुण

१ जागृवि [ १३५७ ]- जागृत रहनेवाला ।

२ सक्षणिः वृत्राणि परि [ १३५७ ]- साहस करनेवाला वीर शत्रुको कुचलता जाता है ।

३ शुक्रः [ १३५७ ]- वीर्य बढ़ानेवाला ।

४ दिव्यः [ १३५७ ]- बुद्धीकर्म रहनेवाला, पर्यंतपर उपनेवाला ।

- ५ पयूपः [ १३५७ ]- अमृतरूप ।  
 ६ स्तोमः आरः [ १३५८ ]- स्तोम रक्षण करता है ।  
 ७ बधेनः [ १३५९ ]- यत्न बढ़ानेवाला ।  
 ८ दक्षसाधनः [ १३८८ ]- यत्न बढ़ानेका साधन ।  
 ९ वीरः [ १३९५ ]- दूरवीर ।  
 १० हरिः [ १३९५ ]- दुःखोंका हरण करनेवाला ।  
 ११ प्रियः [ १३९५ ]- सर्वोंको प्रिय ।  
 १२ कथि [ १४०० ]- सामी, बुरवर्सी ।  
 १३ रत्नधा [ १४०८ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला ।  
 १४ धूरप्रामः [ १४०९ ]- धूरोंका समूहवाचक अपने नाम रखनेवाला ।  
 १५ सर्ववीरः [ १४०९ ]- सब प्रकारके वीर ।  
 १६ साहायान् [ १४०९ ]- शत्रुको हराने की दक्षिणसे युक्त ।  
 १७ जेता [ १४०९ ]- युद्ध जीतनेवाला ।  
 १८ तिमामुद्यः [ १४०९ ]- तीक्ष्ण शस्त्र अपने बात रखनेवाला ।  
 १९ क्षिप्रधन्या [ १४०९ ]- धन्यको बहुत लीज चलानेवाला ।  
 २० समस्तु अपाब्धः [ १४०९ ]- युद्धमें शत्रुओंके लिए अक्षय ।  
 २१ वृत्तास्तु शत्रुन् सादान् [ १४०९ ]- युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला ।  
 २२ युवा [ १४१९ ]- बलवान् ।  
 २३ सुमेधाः [ १४२० ]- उत्तम बुद्धिमान् ।  
 २४ तैसिष्टाः [ १४२४ ]- तेजस्वी ।  
 २५ यदासा यदाक्षरः [ १४०३ ]- यजते यज्ञस्वी ।  
 २६ यधुः [ १४४४ ]- भूरे रणका ।  
 २७ रूपयथा [ १४४४ ]- अपनी दक्षिणसे दक्षिणम् ।  
 २८ अरणः [ १४४४ ]- धमकानेवाला ।  
 २९ मनसः पतिः [ १४४४ ]- मनका स्वामी ।  
 ३० शुर्पा [ १४४४ ]- बलवान् ।

- ३१ सुमतिः [ १४४४ ]- उत्तम बुद्धिमान् ।  
 ३२ रक्षांसि अपावन् [ १४३९ ]- राक्षसोंको मारने-वाला ।  
 ३३ अमित्रहा [ १४४७ ]- शत्रुओंको मारनेवाला ।  
 ३४ धिम्ब-वर्पणिः [ १४४७ ]- सज लोगोंका हित करनेवाला ।  
 ऐसा यह स्तोम है । स्तोमके ये गुण स्तोमरत्न धीनेवालोंमें नीलते हैं । ये गुण स्तोमके कारण मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, इसलिए ये गुण स्तोमके ही सधस जाते हैं ।  
 अन्य देवताओंका वर्णन सामवेदमें थोडा थोडा है इसलिए उनका विचार करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है ।

### अनुनासिक-सहित मुद्रण

सामवेदका मुद्रण अनुनासिक सहित परम्परागत होता आ रहा है । ए, वा, य, र, इ इय अथर्वसि पढ़ते यदि अनुस्वार आ जाये तो उससे अनुनासिक हो जाता है । जैसे—

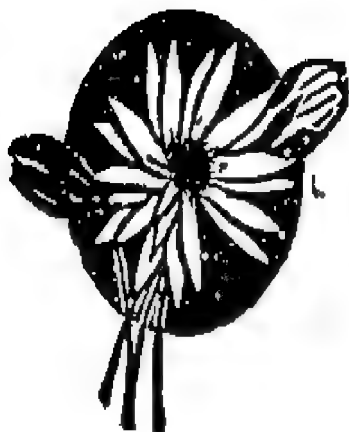
मन्त्रांक अनुनासिकरहित	अनुनासिकसहित
१५ स्तोम व्रजय	स्तोमश्च व्रजय
२७ अपां रैतासि	अपांश्च रैतासि
२७८ शत शत	शतश्च शत
२ यशाना होना	यशानाश्च होना

इसप्रकार अनुनासिक-सहित सामवेदका मुद्रण होना चाहिए ।

इसप्रकार सामवेदके विषयमें थोडासा परिचय यहाँ दिया है । उसका विस्तार बहुत बडा हो जायगा । इसलिए इसका विचार करके यहाँ थोडासा ही परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया है ।

निवेदन

अर्पिण्ड दामोदर सातधलेवर  
 मध्यम-स्वाम्याय मण्डल, पारसी





# सामवेदका सुबोध अनुवाद

पूर्वार्चिकः ( छन्द आर्चिकः )

अग्नेयेयं काण्डम् ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[ १ ]

( १-१० ) १, २, ४, ७, ९ भारद्वाजी बार्हस्पत्य, ३ मेपातिपि काण्व, ५ उशना वाय्व, ६ सुवीतिपुष्यमिन्द्रा-  
वाङ्गिरसी, तयोर्बाण्यतर, ८ यत्त काण्व, १० वामदेव ॥ अग्नि ॥ गायत्री ॥

१ अ॒ग्नं आ या॒हि वी॒तये॑ गृ॒णानौ॑ ह॒व्यदा॑तये । नि॒ होता॑ स॒स्ति व॒र्हिषि॑ ॥ १ ॥ ( ऋ १।१६।१० )

२ त्व॒मये॑ य॒ज्ञाना॑ ह॒ता विश्वे॑षा॒ हितः॑ । दे॒वेभि॑र्मानु॒षे जने॑ ॥ २ ॥ ( ऋ १।१६।११ )

३ अ॒ग्निं दू॒तं वृ॒णीमहे॑ होता॒रं विश्वे॑वे॒दसम् । अ॒स्य य॒ज्ञस्य॑ सु॒कृत्तु॑म् ॥ ३ ॥ ( ऋ १।१६।१२ )

[ १ ] प्रथमः पञ्च ।

[ १ ] हे अग्ने ! ( वीतये आ याहि ) हवि भक्षण करनेके लिए तू मा, देवोक्तो ( हव्य-दातये गृणान ) हवि देनेके लिए जिसको स्तुति की जाती है, ऐसा तू ( होता ) बरामें ऋत्विज होता हुआ ( वर्हिषि नि सस्ति ) यत्नमें जातन पर बैठ ॥ १ ॥

( १ ) वीति—जाना, गति करना, उत्पन्न करना, उपभोग करना, खाना, सारन करना, बाटना ।

( २ ) हव्यदाति—देवोंको हवि पशुचान, हवि देना । ( ३ ) होता—बुलानेवाला, देवोंको अपने पास लानेवाला, ( ४ ) वर्हिषः—जातन, अन्तरिक्ष, जल, यज्ञ ।

[ २ ] हे अग्ने ! तू ( विश्वेषां यज्ञानां त्व होता ) सब यत्नोंमें देवोंको बुलानेवाला है, और ( देवेभि ) देवोंने ही तुझे (मानुषे जने हित ) मनुषी जनोंके बीचमें स्थापित किया है ॥ २ ॥

[ ३ ] हम ( विश्व-वेदस्य ) सबको जाननेवाले, ( होता॒रं ) देवोंको बुलानेवाले ( अ॒स्य य॒ज्ञस्य सु॒कृत्तु॑म् ) इस यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले इस ( अ॒ग्निं ) अग्निको ( दू॒तं वृ॒णीमहे ) हुत मानकर स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

- ॥ अग्निर्वृत्राणि जह्वनद् द्रविणस्युर्विषन्यया । सविद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥ ( अ. ६।१।१२४ )
- ५ प्रेष्ठो वो अतिथिश्स्तुपे मित्रमिव प्रियम् । अग्रे रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥ ( अ. ८।८।५।१ )
- ६ त्वं नो अग्रे महोभिः पादि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥ ( अ. ८।११।११ )
- ७ एधु घु ब्रवाणि तेऽस इत्येतरा गिरः । एभिर्वर्षास इन्दुभिः ॥ ७ ॥ ( अ. ६।१६।१६ )
- ८ आ ते वसतो मनो यमत्परमाधिस्तवस्थात् । अस त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥ ( अ. ८।११।१० )
- ९ त्वामग्रे पुष्करादध्ययवां निरमन्यत । सुभो विश्वस्य वायतः ॥ ९ ॥ ( अ. ६।१६।१२ )
- १० अग्रे विवस्वदा भरासम्भूमय मेहे । देवो दासि नो द्यौ ॥ १० ॥ ( भावेदे वासि )

इति प्रथमा वसतिः ॥ १ ॥ प्रथमः काण्ड ॥ १ ॥ [ स्वरिता ९। उ० ना० । पा० ३७ । ( वै ) ॥ ]

[ १ ]

( १-१० ) १ आयुश्चवहि ( अ. विपद आधिरतः ) २ वाक्तेवो योतनः ; ३, ८-९ अयोवो भाग्यः ; ४ मनुष्यन्ता वैश्यामित्रः ; ५, ७ धुन-रोप आनोर्गतिः ; ६ मेधातिथि वगणः ; १० वस्तः काण्ड ॥ अग्नि ॥ वायव्यी ॥

११ नमस्ते अग्रे ओजसे धृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरभिभ्रमर्दय ॥ १ ॥ ( अ. ८।१०।१० )

[ ४ ] ( विपन्यया ) वित्तोय प्रकारकी स्तुतिसे प्रसन्न हुआ हुआ, ( द्रविण-स्युः ) उपासकोंकी भाव देनेकी इच्छा पाका ( सविद्धः ) अच्छी तरहसे प्रगणित ( शुक्रः ) शुद्ध और ( आहुतः ) सहस्रांश बुझाया गया वह अग्नि ( वृत्राणि जघमत् ) घेरनेवाले दानुर्जनि नाम करता है ॥ ४ ॥

[ ५ ] ( यः प्रेष्ठो ) गुरुहारे आप्त प्रिय ( मित्रं मित्रे इय ) मित्र मित्रके समान प्रिय करनेवाले, ( अतिथिः ) अतिथिसे समान पूज्य अनिरी ( वेद्यं रथं न ) मन देने वाले रथकी जैसे स्तुति को जाती है, उसी प्रकार ( स्तुपे ) में स्तुति करता है ॥ ५ ॥

[ ६ ] हे ( अग्रे ) अग्ने ! ( रथं ) तू ( विश्वस्याः अरातेः ) सभी दानुर्जति ( उत ) और ( द्विषः मर्त्यस्य ) ईष करनेवाले मनुष्यों ( महोभिः ) बड़े बड़े सामर्थीसे ( नः पादि ) हमारा संरक्षण कर ॥ ६ ॥

[ ७ ] हे अग्ने ! तू ( पादि उ ) आ, ( ने ) तेरे लिये ही ( इत्या ) तब प्रकरणी ( इतरा गिरः ) दूसरी स्तुतियों में ( शु घ्राणि ) अच्छी तरहसे कर रहा है, ( यभिः इन्दुभिः वर्षातः ) इन सोमरसोंसे तू बूझ, महान् हो ॥ ७ ॥

[ ८ ] हे अग्ने ! ( यत्नः ) यह तेरा पुत्र ( ते यत्नः ) तेरे मनकी ( यत्नस्य सधस्यात् ) बहुत श्रेष्ठ स्थानसे भी ( आ यमत् ) अपने बचनमें करता है । हे अग्ने ! ( गिरास्व कामये ) अपने स्तुतिसे तेरी मांति की इच्छा करता है ॥ ८ ॥

[ ९ ] हे अग्ने ! ( अघर्षा ) मजबूती ( त्वां ) तुझे ( विश्वस्य वायतः सुभः ) सब विरचने आभार, मूल परम श्रेष्ठ ( पुष्करात् ) पुष्करसे ( निरमन्यत ) भय करने प्रवर्तित किया ॥ ९ ॥

[ १० ] हे अग्ने ! ( वस्तमर्धं यदे ऊनये ) हमारी उताम रक्षासे लिये ( विश्वस्य ) निवास करनेसे योग्य घर ( आ भर ) हमें दे, ( नः द्यौ ) हमें मार्गकी दिशानेवाण्ड तू ही ( देयः दि दासि ) देव है ॥ १० ॥

॥ यदां पदित्वा रंउ नमास हुआ ॥

[ १ ] द्वितीयः काण्डः ।

[ ११ ] हे अग्ने ! हे देव ! ( कृष्टयः ) मनुष्य ( ते ओजसे ) तुझे बलसे लिये ( सभाः धृणन्ति ) नामकार करते हैं । १ ( अग्नेः ) अपनेकी दासिने ( समिधं अर्दय ) दानुका भला करता है ॥ १ ॥

( १ ) कृष्टिः- मनुष्य, विमान । ( २ ) अय- अय, दासिनी ।

- १२ दूतं वा विश्वेदसश्च हव्यवाहममर्यम् । यज्ञिष्ठमुज्जसे गिरा ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।१ )
- १३ उप त्वा जामया गिरा देदिशतीदिविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१०२।१३ )
- १४ उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तथिया वयम् । नमो मरन्त एमसि ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।७ )
- १५ जरायोध तद्विविद्धि विश्वेविश्वे यज्ञियाय । स्तोमश्चद्राघ दशीकम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१७।१० )
- १६ प्रवि त्वं चारुमध्वर गोपीथाय प्र हवसे । मरुद्भिरा आ गहि ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।१९।१ )
- १७ अथ न त्वा वारवन्तं यन्द्या अग्निं नमोभिः । सप्ताजन्तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।२७।१ )
- १८ और्वभृगुवक्षुचिमप्रवानधदा हुवे । अग्निं सप्तद्रवांससम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१०२।१४ )
- १९ अग्निमिन्धानो मनसा धियश्सचेत मर्यः । अग्निमिन्वे विवस्वभिः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१०२।२२ )
- २० आदित्सप्तस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिष्यते दिवि ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।६।३० )

इति द्वितीया वसतिः ॥ २ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ त्व० ६ । उ० २ । पा० ५२ । ( परा ) ॥ ]

[ १२ ] हे अग्ने ! ( विश्व-वेदसं ) सप्त धनैकै स्वामी ( हव्य-वाहं ) हविर्को से जानेवाले, ( अमर्यं ) अमर ( दूतं ) दूत तथा ( जामया ) आत्यधिक प्राप्त करनेवाले अग्निर्को ( घाः ) दुग्धारे तिल्यं ( गिरा ) श्राद्धाले अपनी प्रार्थनासे अनुकूल बनाता हूँ ॥ २ ॥

[ १३ ] हे अग्ने ! ( हविष्कृतः ) हवन करनेवालेकी ( जामया गिराः ) हविको समान त्रिप स्तुति ( देदिशती ) तेरे गुणोंकी प्रकट करती हुई ( वायोः अनीके ) वायुके भाग से जाकर ( उप अस्थिरम् ) स्थापित करती है ॥ ३ ॥

[ १४ ] हे अग्ने ! ( दिवे दिवे ) प्रति दिन ( दोषावस्तः ) रातविष ( वयं ) हम ( धिया नमो भरन्तः ) बुद्धि पूर्वक ममस्कार करते हुए ( त्वा उप एमसि ) तेरे पास माते हैं ॥ ४ ॥

[ १५ ] हे ( जरा-योध ) स्तुतिसे ज्ञात होनेवाले अग्ने ! ( विश्वे विश्वे ) प्रत्येक यन्त्रके हितके लिये ( यज्ञियाय ) प्रणय ( दद्राघ ) दुष्टको कलानेवाले तेरे तिल्य ( दशीकं स्तोमं ) सुन्दर स्तोत्र गायें गते हैं, ( सत् विविद्धि ) उन्हें दू जान ॥ ५ ॥

( १ ) जरा-स्तुति, ( २ ) जरा-योध- स्तुतिसे निकले गुणोंका ज्ञान होता है, ( ३ ) यज्ञिया- प्रणय,

( ४ ) दद्र- अनुकी स्तुतिवाक्य, ( ५ ) दशीक- दर्शनीय, सुन्दर ।

[ १६ ] हे अग्ने ! ( त्वं वातं अध्वरं प्रति ) उस उत्तम-हिंसारहित यत्नमें ( गोपीथाय प्रहवसे ) सरसणके तिल्य तुझे बुलाया जाता हूँ, हे अग्ने ! तू ( मरुद्भिः आ गहि ) मरुतोंके साथ आ ॥ ६ ॥

[ १७ ] ( वारवन्तं अथं न ) अयालवाले घोड़ोंके समान जो ( अ-ध्वराणां सप्ताजन्तं ) हिंसारहित यत्नों उत्तम प्रकार प्रकाशित होनेवाले ( त्वा अग्निं ) तुझ अग्निर्को ( नमोभिः ) नमस्कारोंसे हवा यन्त्रवा करते हैं ॥ ७ ॥

[ १८ ] ( मसुद्रवाससं ) समुद्रमें रहनेवाले ( ज्ञुचिं अग्निं ) शुद्ध अग्निर्को ( और्वे भृगुवक्षुं ) और्वभृगुके समान तथा ( अमप्रवानयत् ) अनप्राप्तके समान ( आ हुवे ) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ८ ॥

[ १९ ] ( मनसा अग्निं इन्धानः ) मन लगाकर अग्निर्को जलानेवाला ( मर्यः ) यन्त्र ( धियं सचेत ) अपनी यथाको प्रयोजन करता है और ( विवस्वभिः अग्निं इन्द्रे ) त्वयं किरणोंके साथ अग्निर्को भी प्रयोजन करता है ॥ ९ ॥

[ २० ] ( परो दिवि ) श्लोकमें ( यत् इष्यते ) जो प्रकाशित होता है, ( याव इव ) उसी ( प्रनस्य रेतसः ) प्राचीन वस्ते युक्त ( वासरं ज्योतिः ) शिवके प्रकाशको ( पश्यन्ति ) सोच देखते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ दुसरा खंड समाप्त हुआ ॥

## [३]

(१-१४) १ प्रयोगो मार्गव, २, ५ सरदाजो बार्हस्पत्य, ३, १० वामदेवो गौतम, ४, ६ वसिष्ठो मैत्रायणि, ७ विश्व आदित्यरत्न, ८ धूमन्यो जाम्बवति, ९ गोषवन् जाम्बव, ११ प्रसूतश्च काण्व, १२ मेघातिथि काण्व, १३ तित्त्वुदीष आम्बरौष, मित आत्तो वा, १४ उजाना काण्व ॥ अग्नि ॥ गायत्री ॥

- २१ अग्निं वो वृधन्तमन्वराणां पुरुतमम् । अञ्छा नम्रे सहस्वते ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१०१७)  
 २२ अग्निस्तग्मेन शोचिषा यद्वसद्विषं न्यद्रेत्रिणम् । अग्निर्नो वद्वसते रयिम् ॥ २ ॥ (ऋ. ६।६।१८)  
 २३ अग्ने मृड महाऽअस्यय आ देवयुं जनम् । इयेय बर्हिःसदम् ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।९।१)  
 २४ अग्ने रक्षा णो अश्वसः प्रति स देव रीपतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।१५।१२)  
 २५ अग्ने युद्ध्वा हि ये तवासांसो देव साधवः । अरं वहन्त्याश्ववः ॥ ५ ॥ (ऋ. ६।१६।४३)  
 २६ नि स्वा नक्ष्य विश्वते धुमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमथ आहुव ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।१५।७)

## [३] तृतीयः खण्डः ।

[२१] (घ.) तुम्हारे (अध्यराणां) अहिता पूर्ण यत्तोंका (नम्रे) नाश न करनेवाले (पुरुतमं) अतिमेध (सहस्वते) बलवान् (वृधन्त) समको बढ़ानेवाले (अग्नि अञ्छा) अग्निके पास [तेरा करनेके लिये] जा ॥ १ ॥

(१) अ-ध्वर-हिता रहित यत्त, (२) अध्व-र-मां विलानेवाला, (३) नस्त (न-प्ता)-न गिराने-पाला, सरसक, (४) सहस्वान्-शत्रुको हरानेवाला ।

[२२] (अग्निः) अग्नि (तग्मेन शोचिषा) अपने तीक्ष्ण तेजसे (यिष्य अग्निर्नो) सब [स्वयं] जानेवाले शत्रुको (नि यद्वत्) नष्ट करता है, बहु अग्नि (नः रयिं वद्वसते) हमें धन देता है ॥ २ ॥

(१) अग्नि (अद्)—स्वयं जानेवाला, अत्यधिक जानेवाला शत्रु ।

[२३] हे अग्ने ! तू (मृड) हमें सुखी कर (महान् अस्ति) तू महावृद्ध, (देव-युं जन्त आ अयः) ईश्वरकी उपासना करनेवाले मनुष्यके पास जा, और (यर्हि-आसद्) आसन पर बैठनेके लिये तू (इयेय) आ ॥ ३ ॥

(१) देव-यु-देव-यु—ईश्वरकी उपासना करनेवाला, ईश्वरसे अपना सम्बन्ध जोड़नेवाला ।

[२४] हे अग्ने ! (अश्वसः) पापी और (रीपतः) हितक शत्रुसे (न) हमारा (रक्षा) सरसक कर, और (अ-जरो) बुझाये रहित तू (तपिष्ठ-अग्निं दह) अपने तेजसे [शत्रुको] जला दे ॥ ४ ॥

(१) अश्व-पाप, पापी, दुष्ट । (२) रीपत-हितक शत्रु, तोड़फोड़ करनेवाला शत्रु ।

(३) अजरो-जरारहित, लक्षण ।

[२५] हे अग्नि देव ! (ये) जो (तज साधव अश्ववः) तेरे उत्तम घोड़े हैं, जो (आश्वय अरं वहन्ति) वेगसे पूर्ण होकर तुमसे जाते हैं, उनको [अपने रथमें] (युद्ध्वा हि) जोड़ ॥ ५ ॥

(१) आहुव-वेगसे जानेवाले घोड़े ।

[२६] हे (नक्ष्य) शरणागते जाने योग्य, (विश्व-पते) प्रजापतिने पालक, (आहुव) सबके सहायके लिये बुलाये गये हे (अग्ने) अग्ने ! (यय) हम (धुमन्त सुवीरं) तेजस्वी, उत्तमवीर तेरा ही (धीमहि) ध्यान करते हैं ॥ ६ ॥

(१) नक्ष्य- (नक्ष्)—पात जाना, पात जाने योग्य, (२) धुमान्-प्रशङ्गमान्, तेजस्वी ।

(३) सुवीर-उत्तम वीर, योद्धा ।



- २७ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पयिव्या अयम् । अपां रेतां शसि जिन्वति ॥७॥ (ऋ. ८।४४।१६)
- २८ इमम् पु त्वमसाकं सनि गायत्रं नव्यांशम् । अथ देवेषु प्र वोचः ॥८॥ (ऋ. १।२७।४)
- २९ तं त्वा गोपवनो गिरा जनिमुदये अक्षिरः । स पायक श्रुषी इवम् ॥९॥ (ऋ. ८।७३।११)
- ३० परि राजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रजानि दाशुषे ॥१०॥ (ऋ. ४।१५।१२)
- ३१ उदु त्य जातयेदसं देवं वहन्ति केतवः । इषे विद्याय स्रवेम् ॥११॥ (ऋ. १।२०।१; यजु. ७।४१)
- ३२ कविमग्निमुष स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥१२॥ (ऋ. १।१९।७)
- ३३ शं नो देवीराभित्यै शं नो मवन्तु पीतये । शं योराभि सवन्तु नः ॥१३॥ (ऋ. १।०१।४; यजु. ३६।१२)

[ २७ ] (अग्निः) यह अग्नि (सूर्य) तपते मुख्य स्वामिण रहनेवाला है, वह (दिवः) ककुत् (शुक्ल) का उज्ज्वल भाग है, और (पयिव्याः पतिः) पुष्पीया पालन करनेवाला है, वही (अपां रेतांसि जिन्वति) कनौका फल शेकर सबको प्रसन्न करता है ॥ ७ ॥

(१) आप—जल, कर्म, जीवन । (२) जिन्व—सन्तुष्ट करना ।

[ २८ ] हे मने ! (त्वं) तू (अस्माकं इमं नव्यांशं) हमारे इस नवीन (सनि) अन्नको और (गायत्रं) गायत्री छन्द के गण स्तोत्रको (देवेषु सु प्रवोचः) देवों में पढ़वा ॥ ८ ॥

(१) सनि—अन्न 'सणु-वाने', (२) गायत्रं—गायत्री छन्द में गाया गया साम-यान ।

[ २९ ] (तं त्वा) उस तुम (गोपवनः) गोपवन ऋषिने (गिरा जनिमुदये) अपनी स्तुति से उत्पन्न किया, है (अक्षिरः) शरीरके अगों में रस रूप में रहनेवाले (पायक) पवित्र करनेवाले अग्ने ! (सः) यह तू (हर्षधुधि) हमारी प्रार्थना सुन ॥ ९ ॥

(१) अक्षिरः—एक ऋषि, अगों में रसरूप में रहनेवाली शक्ति (अवि-रम्),

(२) पायक—पवित्र करनेवाला ।

[ ३० ] (राजपतिः कविः) अन्नोत्पादक, शाही, अग्नि (हव्यानि परि अक्रमीत्) हवनीय पदार्थोंकी स्वीकार करता है, और (दाशुषे रजानि दधत्) बान्धील मनुष्योंकी रत्न देता है ॥ १० ॥

[ ३१ ] (विद्याय, स्रवे ददौ) विश्वको सूर्य बिलाले के लिए उत्पन्न (केतवः) किरण (जातयेदसं देवं) जितने वेद उत्पन्न हुए हैं, उस देवको (उत् उ वहन्ति) अच्छी तरह पारण करती हैं ॥ ११ ॥

(१) जात-येदाः—जिससे ज्ञान प्रगट होता है, जिससे वेद प्रकट होते हैं, किरण सूर्यको आकाश में इसी लिए पारण करती हैं, कि जिससे वह सबको दिखावे ।

[ ३२ ] (अध्वरे) हिसारहित यज्ञ में (सत्यधर्माणं) सत्य धर्म से युक्त (कविं अग्निं) शाही अन्निकी (उप स्तुहि) स्तुति कर, वह (देवं) देव (अमीव-चातनं) रोम नष्ट करनेवाला है ॥ १२ ॥

(१) अमीव-चातनः—कर्मसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको दूर करनेवाला ।

[ ३३ ] (ः) हमें (अभित्यै) इच्छित सुख देने के लिए (देवीः शं) दिव्य जल कल्याणकारी हों । (नः पीतये शं) हमारे पीने के लिए सुखदायी हों । (नः) हमें (शं योः अभिरवन्तु) सुख और शान्ति देने हुए जल प्रवाह बहें ॥ १३ ॥

(१) अभित्यै—इच्छित सुख, (२) पीतये—पानी पीना ।

३४ कस्य नूनं परीणासि विषो जिन्वसि सत्पते । गोपाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥ (ऋ. ८।८४।७)

इति तृतीया वसति ॥ ३ ॥ तृतीय खण्ड ॥ ३ ॥ [ स्व० ९।३० २।५० ५७ (वे) ॥ ]

[ ४ ]

(१-१०) १,३,७ अयुर्वाहस्पत्य (७ तृणपाणि), २,५,८-९ अर्धं प्रापाय; ४ वसिष्ठो मंत्रायतनः; ६ प्रसक्तः काण्वः; १० सोमसिः काण्वः ॥ अग्निः ॥ बृहती ॥

३५ यज्ञायज्ञा यो अग्रे गिरागिरा च दक्षसे ।

प्रम यममृतं जातवेदसं श्रियं मित्रं न श्वसिपम् ॥ १ ॥ (ऋ. ६।४८।१)

३६ पाहि नो अग्न एकया पाह्यूवेत द्वितीयया ।

पाहि गोमिस्तिस्मिरेऊो पवे पाहि चतसृभिर्वसो ॥ २ ॥ (ऋ. ६।६०।२)

३७ वृहद्भिरे अचिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।

भरद्वाजे समिधानो यमिष्ठय रेवत्पावक रीदिदि ॥ ३ ॥ (ऋ. ६।४८।३)

३८ स्वे अग्रे स्वाहुत श्रियासः सन्तु धरया ।

यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्ध्वं दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।६।३)

[ ३४ ] हे (स्वपते) स्वपते पालन करनेवाले ! (नूनं कस्य धियः) विस्वपते लिताकी बुद्धिसे (परीणासि जिन्वसि) समिलित होकर तू आनन्दित होता है ? (यस्य ते गिरः) जितके कारण तेरी स्तुति (गो-पाता) मानना बर्तन करनेवाली होती है ॥ १४ ॥

(१) गो-पाता- पापना पालन करना, इन्द्रियोंका पालन करना, मानना श्राव करना ।

॥ यहाँ तृतीय खंड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ३५ ] (यः) तुम (यज्ञा यज्ञा) प्रत्येक यज्ञमें और (गिरा गिरा) प्रत्येक स्तोत्रमें (दक्षसे मग्नये) बलवान् अग्निसे प्रसक्त बनो, (यस्य) हृद्य (जानवेदसं अमृतं) सबको जाननेवाले अग्न अग्निसे (श्रियं मित्रं न) श्रिय मित्रसे समान (प्रमोयिपम्) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ३६ ] हे अग्ने ! (एकया नः पाहि) एक प्रार्थनासे हमारा संरक्षण कर, (उत द्वितीयया पाहि) और दूसरी प्रार्थनासे भी हमारा रक्षा कर, हे (ऊजो पवे) अग्रे स्थावो ! (निर्युमिः गीमिः पाहि) तीसरी प्रार्थनासे हमारा रक्षण कर, हे (यस्ते) शक्को यज्ञानेवाले अग्ने ! (चतसृभिः पाहि) चौथी प्रार्थनासे भी हमारा पालन कर ॥ २ ॥

[ ३७ ] हे अग्नि देव ! (वृहद्भिः अचिभिः) बड़ी बड़ी उपायोंसे तू प्रशंसित है, (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध तेजसे तू प्रशंसित हो, हे (यमिष्ठय रेवन् पावक) स्वप्न, यमवान् और यमिष्ठ करनेवाले देव ! (भरद्वाजे समिधानः) भरद्वाजे लिए अच्छी तरह प्रवीण होकर तू (रीदिदि) प्रशंसित हो ॥ ३ ॥

[ ३८ ] हे अग्ने ! (स्वे) तुझमें (स्वाहुत) उत्तम रीतिसे हवन करनेवाले (धरया) विज्ञान (श्रियासः सन्तु) तुम श्रिय हो, (ये मघवानः) जो यमवान् (जनानां यन्तारः) प्रजाजनोपर शासन करते हैं, वे (गोनां ऊर्ध्वं दयन्तः) गोपोंके समुहका पालन करते हैं ॥ ४ ॥

- ३९ अग्ने अरितर्विष्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।  
अग्नेषिवान् गृहपते महान् असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६०।१६)
- ४० अग्ने विवस्वदुपसश्चिव राधा अमर्त्य ।  
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमघा देवाश् उषर्वृषः ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४४।१)
- ४१ त्वं नश्चित्र ऊत्या वसा राधाश्चि चोदय ।  
अस्य रायस्त्वमग्ने रयीरसि विदा गाघं तुचे नु नः ॥ ७ ॥ (ऋ. ६।४८।९)
- ४२ त्वमिस्सप्रया अस्वमे जातघ्नतः कविः ।  
त्वां विप्रांसः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वैशसः ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६०।९)
- ४३ आ नो अग्ने वयोवृषश्च रयि पावक शुश्स्वम् ।  
रास्या च न उपमाते पुकस्पृहश्च सुनीती सुवश्चस्वरम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।६०।११)

[३९] हे (अरितः अग्ने देव) जानो अग्नि देव ! तू (विष्पतिः) प्रजापति बालक है, (रक्षसः तपानः) राक्षसोंको सताप देनेवाला है। हे (गृहपते) घरके स्वामी ! तू (अ-ग्नेषिवान्) बगहर कहीं न जानेवाला (दुरोणयुः) घरमें ही रहनेवाला (महान् असि) महान् है और (दिवस्पायुः) दूनीकड़ा रखना करनेवाला है ॥ ५ ॥

[४०] हे (अमर्त्य अग्ने) अमर अग्नि देव ! (उपसः विवस्वत्) उपासे प्राप्त होनेवाले (चित्र राधा) विलक्षण घनको (दाशुषे आ वह) दामघ्रील आदमीको दे, हे (जातवेदः) सर्वग अग्ने ! (त्व अघ) तू आज (उषर्वृषः देवान्) प्रातः काल उठनेवाले देवोंको (आ वह) ले आ ॥ ६ ॥

[४१] हे (वसो अग्ने) सबको बसानेवाले अग्नि देव ! (त्वं चित्र) ॥ बद्धभूत शक्तिवाला है, (उ त्या राधाश्चि) तू अपने सरसाके समाम्यसे घनोंको (नः चोदय) हमारे पास पहुँचा, (त्वं नः) तू (अस्य रायः) इस घनको (रयीः असि) रथके द्वारा लानेवाला है, तू (नः तुचे) हमारे मुख आदिके लिए (गाघं नु निदाः) प्रतिष्ठा दे ॥ ७ ॥

[४२] हे अग्ने ! हे (जातः) रक्षण करनेवाले ! (त्वं दृत्) तू निश्चयसे (स-प्रयाः) बहुत प्रसिद्ध है, इसी लिए तू (मृतः कविः) मृत और जानी है, हे (दीदिवः) तेजस्वी अग्ने ! (त्वां समिधानं) तेरे प्रशंसित हो जानेके बाद (विप्रांसः विप्रांसः) जानी विप्र तेरी (आ विवासन्ति) सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

[४३] हे (पावक अग्ने) पवित्र करनेवाले अग्ने ! तू (नः) हमें (शंसं वयोवृषं रयि रास्य) प्रशंसनीय बसानेवाले घनको दे। हे (उपमाते) जान सम्पन्न ! (सुनीती) उत्तम नीतिके भागसे (पुह-स्पृहं) जिसको बहुतसे लोग प्रशंसा करते हैं, उसे (सुगुहस्तरम्) उत्तम गला देनेवाले घनको (नः) हमें दे ॥ ९ ॥

४४ यो<sup>२३</sup> विश्वा<sup>१२३२३१२३१२</sup> दधते<sup>२२</sup> वसु<sup>२२</sup> होता<sup>२२</sup> मन्द्रो<sup>२२</sup> जनानाम् ।  
मधोर्न<sup>२३२</sup> पात्रा<sup>२२</sup> प्रथमान्यस्य<sup>२२</sup> प्र<sup>२२</sup> स्तोमा<sup>२२</sup> यन्त्वन्नय<sup>२३२</sup> ॥ १० ॥ (ऋ. ८।१०।६)

इति श्रुयीं दक्षति. ॥ ४ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० ९। उ० ३। पा० ८३। (दी) ॥ ]

[ ५ ]

( १-१० ) १ वसिष्ठो भैषावरणिः; २ भर्गः प्राजापः, ३, ४ सोमरिः काण्वः; ५ अनुर्ववस्यतः; ६ तुर्वीतिपुरुमी-  
क्षावागिरसी; ७ प्रारकण्यः काण्वः; ८ जेधातिनेप्यातिपी काण्वी; ९ विश्वाभिन्नो गाविनः; १० काण्वो घीरः

॥ अग्निः, ८ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

४५ एना<sup>२२</sup> वो<sup>२२</sup> अग्निं<sup>२२</sup> नमसोर्जो<sup>२२</sup> नपातमा<sup>२२</sup> हुवे ।  
प्रियं<sup>२२</sup> चेतिष्ठमरति<sup>२२</sup> स्वधरं<sup>२२</sup> विश्वस्य<sup>२२</sup> दूतममृत्वम्<sup>२२</sup> ॥ १ ॥ (ऋ. ७।६।१)  
४६ शेषे<sup>२२</sup> मनेषु<sup>२२</sup> मातृषु<sup>२२</sup> सं<sup>२२</sup> त्वा<sup>२२</sup> मतोस<sup>२२</sup> इन्धते ।  
अतन्द्रो<sup>२२</sup> हर्म्यं<sup>२२</sup> वहसि<sup>२२</sup> हविष्कृत<sup>२२</sup> आदिदेवेषु<sup>२२</sup> राजसि<sup>२२</sup> ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६०।१९)  
४७ अदक्षिं<sup>२२</sup> गातुविचर्मो<sup>२२</sup> यस्मिन्प्रतान्पादेषुः ।  
उपो<sup>२२</sup> पु<sup>२२</sup> जातमार्गस्य<sup>२२</sup> वर्धनमग्निं<sup>२२</sup> नक्षन्तु<sup>२२</sup> नो<sup>२२</sup> गिरः<sup>२२</sup> ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१०।१)

[ ४४ ] ( यः ) जो ( विश्वा घसु दधते ) सब धन देता है, जो ( जनानां ) अनुर्वीर्ण ( होता मन्द्रः ) देवीको बलाकर उगड़े आनन्द देनेवाला है, ( अस्मै अग्नेये ) इति अग्निके लिए ( प्रथोः प्रथमानि पात्रा न ) सोमके पात्र नीचे प्रथम दिये जाते हैं, उती प्रकार ( स्तोमाः यन्तु ) स्तोत्र लिए जाते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौथा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ४५ ] ( एना नमसा ) इति अग्ने ( ऊर्जो-न-पात ) बलको क्षीय न होने देनेवाले, ( प्रियं चेतिष्ठ ) प्रिय और वेतानको देनेवाले ( अरति, स्वधरं ) मृत्यु, उत्तम और हितकरहित यज्ञ करनेवाले, ( विश्वस्य दूतं ) सबको हाव देने-वाले, ( अमृतं अग्निं ) अमर अग्निको ( आनुवे ) ये बुझाता हैं, उसकी मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥

[ ४६ ] हे अग्ने ! तू ( मनेषु ) अगलोंमें ( मातृषु ) भूमिमें जबका माताके गर्भमें ( मोदे ) गुप्त रूपसे रहता है ( मतोसः त्वा सं इन्धते ) मनुष्य मूत्रे उत्तम रीतिसे प्रतीत करते हैं, ( अ-तन्द्रः ) आलस्यको छोड़कर ( हविष्कृतः हर्म्यं यदस्ति ) हवन करनेवालेको हविष्योंने तू देवोक्त बहूबाना है, ( आत् इत् ) और ( देवेषु राजसि ) देवोंमें तू प्रभाविन होता है ॥ २ ॥

[ ४७ ] ( गातु-विचर्मः ) यर्धने मार्गको उत्तम प्रकारसे जाननेवाला, अग्नि ( अदक्षिं ) रोसने लगा है, ( यस्मिन् प्रतानि आदधुः ) जिसमें सब निवध निवे जाने हैं, ( अनुज्ञानं ) उत्तम प्रकारसे श्रवण रूप ( आर्यस्य पर्यनं ) मार्गोंने पशानेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( नः गिरः नक्षन्तु ) हमारी श्रुतिमें प्राप्त हों ॥ ३ ॥

- ४८ अग्निरुक्थे पुरोहितो ब्राह्मणो वहिरध्वरे ।  
अथा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवा वरेणम् ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।२७।१)
- ४९ अग्निमीडिष्वावसे गायामिः शौर्योचिषम् ।  
अग्निं राये पुरुमीड ध्रुवं नरोऽग्निः सुदीतये छदिः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।३।१४)
- ५० श्रुधि श्रुत्कर्णं वह्निभिर्देवैरेषे सयावभिः ।  
आ सोदतु वह्निं मिथो अयमा प्रातयाविमिरध्वरे ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४४।१२)
- ५१ प्र देवोदासो अग्निदेव इन्द्रो न मज्जमा ।  
अनु मातरं पुष्यिर्वो चि वावुवे तस्यो नाकस्य अर्भणि ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१०३।२)
- ५२ अथ क्मो अथ वा दिवा बृहता रोचनादधि ।  
अपा वधस्व तन्वा गिरा ममा जाता मुक्तो पूण ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।१।८)
- ५३ कायमानो वना स्वं यन्मातुरअपः ।  
न तथ अघे प्रमृपे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहामुषः ॥ ९ ॥ (ऋ. ३।६।२)

[४८] (उपधे अग्निः पुरोहितः) उरव प्रथमं अग्निको मन्त्रे पहले स्थापित किया जाता है । (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञ (प्रायाणः) सोम कर्मके फल रहते हैं, तथा (पहिः) आसन से फलाने नाते हैं । (मरुतः) हे मरुतो (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते ! (देवाः) हे देवो ! (अथा) वेदमन्त्रों द्वारा ये मुमते (वरेण्ये अयः यामि) अष्ट संरक्षण मांपता हैं ॥ ४ ॥

[४९] (शौर-श्रेष्ठिषं) जिसकी स्वात्मायें प्रज्वलित हो चुकी हैं, ऐसी (अग्नि) अग्नि की (अयसे) अपने रक्षणों लिए (गायामिः ईडिष्वा) स्तोत्रों से स्तुति कर, (पुरु-मीडः) स्तोत्र (अग्नि) अग्नि की (राये) पनकी प्रातिके लिए प्रार्थना करता है, (ध्रुवं अग्निं) इस प्रसिद्ध अग्नि की (नरः) मनुष्य (सुदीतये छदिः) उत्तम प्रकाशयुक्त घरको प्रातिके लिए प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

[५०] हे (श्रुत्कर्णं) प्रार्थना सुननेवाले अग्ने ! (श्रुधि) हमारी प्रार्थना सुन (सयावभिः) समान पतिते युक्त (देवैः वह्निभिः) दिव्य अग्नि के साथ (मित्रः अयमा) मित्र और अयमा (प्रातयाविमिरध्वरे) सचरे जागृतले देवों के साथ (अघ्वरे वह्निं मिथो आतीदतु) पतनं आसनपर आकर बैठें ॥ ६ ॥

[५१] (मज्जमा इन्द्रः न) अर्जुन इन्द्र के समान, (देवोदासः अग्निः देवः) दिव्योदासका अग्निदेव (मातरं पुष्यिर्वो) पत्नी मत्तानर (अनु प्र धामृते) अनुगुलाने प्रकाशित हुआ, उसके बाद वह अपनी श्रेष्ठताके कारण (नाकस्य अर्भणि तस्यो) स्वर्ग के आनन्द रहने लगा ॥ ७ ॥

[५२] हे अग्ने ! (अपः) पत्नीपर (अध्या) जबवा (बृहता रोचनात् दिवा अधि) अत्यन्त तेजस्वी यत्नेकर (अया तन्वा धर्षस्व) अपने तेजसे बढ़ । हे (यु-मत्तो) उत्तम यज्ञ करनेवाले अग्ने ! (गिरा) अपनी बोलीते (ममा जाता पूण) मेरे सम्मुखी जनकों का पोषण कर ॥ ८ ॥

[५३] हे अग्ने ! (त्वं) तू (वना कायमानः) वनकी इच्छा करनेवाला है, तू (यत् मातृः अपः) जो माताके समान जलति पास गया, (तत् ते निवर्तनं) वह तेरा जाना हमसे (न प्रमृपे) नहीं सह गया (यत्) क्योंकि (दूरे सन्) तू दूर होता हुआ भी (इह आमुषः) वहीं रहता है ॥ ९ ॥

२ (अम, दिरी)

५४ नि त्वामधे मनुर्देधे ज्योतिर्जनाय श्रुते ।

देधेधे कथं श्रुतं ज्ञातुं उक्षितो यं नमस्यन्वि कृष्टयः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।१६।१९ )

इति पञ्चमी वसतिः ॥ ५ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ { स्व० उ० ६ । पा० ७१ । ( वा ) ॥ }

इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

{ ६ }

( १-८ ) १, ७ वसिष्ठो मंत्रावरणिः; २, ३, ५ कण्वो घोरः; ४ लोमरिः शतम्भः; ६ उत्कीलः कात्यः; ८ विश्वामित्रो पापिनः ॥ जनिः; ९ महात्मनः; १० यूपः ॥ बृहती ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ १ ॥

५५ देवा वा द्रविणोदाः पूर्णा विषष्टिसिचम् ।

उक्षा सिञ्चन्मृगं वा पूणञ्चमादिष्टा देव ओहते ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।११ )

५६ प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्यु सुनुता ।

अच्छा वीरं नयं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ २ ॥ ऋ. १।१७।१ )

५७ ऊर्ध्व ऊ पु ष ऊर्ध्वे शिष्टा देवा न संविता ।

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वैवञ्जिविह्वयामहे ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१६।१२ )

{ ५४ } हे मने ! ( मनुः त्वां नि दधे ) मनवर्गोऽस्य मनुष्यं तुभे वारणं करता है, ( दधेते जनाय ज्योतिः ) प्राचीनकालसे आनेवाले मनुष्योंके लिए तेरी ज्योति प्रकाशित है, ( कथं देधेधे ) ज्ञानवान् ऋषिरे आधमर्मे नू प्रकाशित होता है, ( श्रुतं-ज्ञातुः उक्षितः ) यत्नेके लिए उत्सव होनेपर नू और अपि प्रवसित किया जाता है, ( यं कृष्टयः नमस्यन्ति ) जिसको मनुष्य ममन करते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ पञ्चम खंड समाप्त हुआ ॥

{ ६ } षष्ठः खण्डः ।

{ ५५ } { यः द्वेषः } तुम्हारा देव ( द्रविणोदाः ) यव देनेवाला है, अतः वह ( पूर्णा आसिचं विषष्टु ) अष्टौ तरह भरे हुए युवाको स्वीकार करे, और तुम ( उक्षा सिञ्चन् ) ऊपरसे धी इतने, ( या उप पूणञ्च ) और बार बार युवा भर भर कर आहुति दो, ( आत् इत् ) इतने बार ही ( देवः यः ओहते ) वह देव तुम्हें उन्नतिके मार्ग पर ले जाएगा ॥ १ ॥

{ ५६ } { ब्रह्मणस्पतिः } ज्ञानवा स्वामी वह देव ( प्र प्तु ) हमारे पास आवे, ( सुनुता देवी प्र प्तु ) ताव स्वामीने प्राप्तकी देवी हमारे पास आवे, ( नः यज्ञं ) हमारे यत्ने ( देवः ) सब देव ( नयं पङ्क्ति-राधसं दीरं ) मानव जातिके हित करनेवाले, { अतो येनातो } पश्तको यत्तको बनानेवाले औरको ( अच्छा नयन्तु ) उत्तम मार्गसे ले जावे ॥ २ ॥

{ ५७ } हे मने ! ( नः ऊर्ध्वे ) हमारे मंत्रावरणे लिए ( ऊर्ध्वः सुनुता ) ऊर्ध्वे स्थानपर उत्तम रीतिसे स्थित हो, ( सनिता देवाः न ) यूप देवने गवान ( ऊर्ध्वः ) उत्तम होकर ( याजस्य सनिता ) अन्नको देनेवाला हो, ( यत् अञ्जिभिः ) जिस कारण स्तोत्रोंके ( याजिभिः विह्वयामहे ) स्तुति करते हुए हम तुमसे बलावे हैं ॥ ३ ॥

- ५८ प्र वो राये निनोपाति मर्ता यस्ते वसा दाशत ।  
स वीर धत्ते अन्न उक्थशसिन त्मना सदस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥ ( ऋ ८।१०२।४ )
- ५९ प्र वो यद्दे पुरुषा विशा देवयतीनाम् ।  
अभि सुक्तामिषेनामिषूणीमहे यः समिदन्य इन्धते ॥ ५ ॥ ( ऋ १।३६।१ )
- ६० अयमग्निः सुवीर्यस्यश्च हि सोमगस्य ।  
राय ईश स्वपत्यस्य गोमत ईश वृश्रधानाम् ॥ ६ ॥ ( ऋ १।३६।१ )
- ६१ त्वमग्ने गृहपतिस्स्य होता नो अघरे ।  
त्वं पोता विश्वार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ १।३६।५ )
- ६२ सखायस्स वा यवमहे देयं मर्तो ऊनये ।  
अपां नपात सुभग सुदृशसम् सुप्रतृप्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥ ( ऋ १।३६।१ )

इति षष्ठी वयति ॥ ६ ॥ षष्ठः सप्तः ॥ ६ ॥ ( स्व० ११ । उ० २ । पा० ५७ । (क) ॥ )

[ ५८ ] हे ( घसो ) मन्त्रको धत्तेनेवाले अग्नि देव ! ( य. मर्तः ) जो मनुष्य ( राये तिनीपति ) धन प्राप्ति के लिए तेरी उपासना करता है, ( यः ते दाशत ) जो तुझे हवि देता है, ( स ) वह ( उक्थशसिन ) स्तुति करनेवाले, ( सदस्रपोषिण ) हजारों मनुष्योंका पोषण करनेवाले ( वीर ) वीर पुत्रको ( त्मना धत्ते ) अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

[ ५९ ] ( य अन्ये स-इन्धते ) जिस अग्निको दूसरे पुरुष उसयतासे प्रवर्धित करते हैं, उस ( देवयतीनां पुरुषां विशा ) देवताको प्राप्त करनेवाले वायविक भ्राताओंको ( यद्दे ) यद्वा भक्तिवा ( सुक्तेभिः ) यचोभिः ) सुवर्तके वाच्योते ( पूर्णीमहे ) हम वर्धन करते हैं ॥ ५ ॥

[ ६० ] ( अयं अग्निः ) यह अग्नि ( सुवीर्यस्य ) उत्तम वराकर्मका और ( सोमगस्य ) उत्तम भ्राम्यका ( हि ईश ) स्वामी है, ( रायः ईश ) वह धनका स्वामी है, ( स्वपत्यस्य गोमत ईश ) वह अपने पुत्र वीर और गायोरा स्वामी है ( वृश्रधानां ) घेरनेवाले बाधुकी मारनेवालोंका भी वह स्वामी है ॥ ६ ॥

[ ६१ ] हे अग्ने ! ( त्वं गृहपतिः ) तू घरके स्वामी है, ( न-अघरे रं होता ) हमारे हितारहित यत्नमें तू होता है, है ( विश्ववारः ) सभीके द्वारा स्वीकार करने योग्य अग्ने ! ( यः पोता ) तू पवित्रता करनेवाला है, ( प्रचेता ) तू उत्तम स्वामी है, ( वार्यं यक्षि ) तू स्वीकार करने योग्य धनोंको देता है, ( यासि च ) और वह धन प्राप्त भी करता है ॥ ७ ॥

[ ६२ ] हे अग्ने ! ( सखायः-मर्तोसः ) हम सभी समान विचारवाले मनुष्य ( ऊनये ) अपने संरक्षणके लिए ( सु-भग ) उत्तम पैरवर्धनके, ( सु-दृशसः ) उत्तम कर्म करनेवाले ( सु-प्रतृप्तिः ) पावोका नाश करनेवाले ( अनेहसः ) पावरहित ( अपां-न-पात ) पानीको न गिरानेवाले ( त्वा देव ) तुझ देवको ( यवमहे ) प्राप्त करनेको इच्छा करते हैं ॥ ८ ॥

१ अपा-न-पात.- पानीको नोछे न गिरानेवाला, येषोऽपि अन्धर अग्नि रहनके कारण मेषां न विपलनते पानी नहीं बरसता, ( अपा-नपात ) पानीका पीर, पानीके पुत्र सुखोंकी बरस्वर रणसे मेषोंका पुत्र अग्नि पैदा होता है ।

॥ यहाँ छठा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ]

( १-१० ) १ स्वावादेवो वामदेवो वा, २ उपस्तुतो बह्विष्य, ३ बृहद्वक्तो वामदेव्य, ४ कुत्स आगिरस,

५-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्य, ७ वामदेवो गौतम, ८, १० वसिष्ठो नन्दावर्षणि, ९ विश्विरास्त्याद् ॥

१, ३, ५, ९ विष्टुप, २, ४ अगती, १० विश्विरास्त्यागती ॥

६३ आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृह्णति दधिध्वम् ।

इडस्पदे नमसा शतह्वयं सपयसा यजसं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥ ( ऋग्वेदे नास्ति )

६४ चित्र इच्छिशोस्तृणस्य वध्वथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।

अनूषा यदजोजनदधा पिदा धवक्षत्तद्यो महि दुत्यांश् चरन् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१।१९१ )

६५ इदं त एकं पर उ त एकं द्वयोरेन उपोविषा सं धिञ्चल ।

संधिज्ञानस्तन्येदेवास्तरेभि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।१६।१ )

६६ इमं स्तोममहते जातयेदसं रथमिव सं मेधेमा मनीषया ।

मद्रा हि ना प्रमतिरस्य सत्सधये सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।४।१ )

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ६३ ] ( हविषा आ जुहोत ) हे मनुष्यो ! हवि इच्छसि हवन करो, ( मर्जयध्वं ) सर्वत्र जुहता करो, ( होतारं गृह्णति ) हवन करनेवाले घरके स्वामी अग्निको ( नि दधिध्वं ) स्वागत करो, ( इड-स्पदे ) पृथ्वीके यज्ञ-स्थानमें ( पस्त्यानां शतह्वयं ) प्रारम्भ हुए हुए यज्ञमें हवनीय पदार्थोंको वेनेके साथ साथ ( नमसा सप्तमर्ग्य ) नमस्कार पूर्वक अग्निका स्तुति करो ॥ १ ॥

[ ६४ ] ( चित्रोः तृणस्य ) इस तरह बालक अग्निका ( यज्ञयः चित्रः ) जीवन यज्ञ ही विधि है, ( यः ) जो ( धातवे ) रूप पीनेके निवे ( मानरी अथि न धात्रि ) दोनों ही माताओंसे पाल नहीं जाता, ( अन्-ऊघः ) स्तन रहित माताग्रामे ( यदि अजीजनत् ) यदि यह उत्पन्न हुआ है, तो ठीक है, ( अघ च ) उत्पन्न होनेके बाद यह आगि ( महि दुदं चरन् ) यदि मैंने दूतके कामकी करते हुए ( यज्ञश्च ) देवोंकी हवि बहुतपाला है ॥ २ ॥

वो अग्नियोगि सपयसे अग्नि उत्पन्न होती है, पर पैदा होनेके बाद यह माताके पाल दूध पीने नहीं जाती, क्योंकि उसकी मातासे स्तन ही नहीं होते, पर यह उत्पन्न होती ही देवोंकी हवि बहुतबाने रूप दूतके काम करने लगती है । यह आश्चर्य है ।

[ ६५ ] ( ते इदं एकं ) तेरा यह एक अग्नि रूप शरीर है, ( ते पर-एकं ) तेरा दूसरा वायुरूप शरीर है, ( उपोविषा उपोविषा ) तीसरे सुवर्ण तेजसे ( सं धिञ्चल ) तु भिन्न जा, ( तन्यः सं घेदाने ) शरीरसे इस प्रकार सत्पन्न हो जातेपर ( न्यार-धधि ) तु सुचर होकर बड़, ( परमे जनित्रे देवाना प्रियः ) परम अर्थ उल्लसि स्थानमें तू देवोंका प्रिय होकर रह ॥ ३ ॥

मरनेके बाद मृतकरी क्या अवस्था होती है, यह यहां बताया गया है, इसका एवं स्तुत शरीर अग्निते मिल जाता है, दूसरा शरीर वायुते मिल जाता है । यहूति जूयमें बहुतबढ़ यह वस्तुस्थिति विपत्तिमें रहता है, इस अर्थक स्थानमें यह देवोंका प्रिय होकर रहता है । यह बालककी विपत्ति होती है ।

[ ६६ ] ( अहंते जातयेदसं ) कुछ बालबेब अग्निते लिए ( इमे स्तोमं ) इन स्तोत्रकी वक्ता ( रथं इव ) रथके समान ( मनीषया ) बुद्धिपूर्वक ( सं अमेध ) उत्तम प्रकार संन्यास करते हैं ( अन्ध संन्याद् ) इस अग्निने वत स्थानमें ( न-मद्रा प्रमति- ) हमारी वस्तुस्थिति बुद्धि बाध करती है । ( वयं तव सख्ये ) हम तेरी मित्रतामें ( मा रिषाम ) बनी बन्द न हों ॥ ४ ॥



- ६७ मूर्धानं दिवा अरति पृथिव्या वैश्वानरसुत आ जातमग्निम् ।  
कविः सद्भाजमतिथि जनानामासन्नः पात्रे अनयन्त देवाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ६।७।१ )
- ६८ वि त्वदापो न परेतस्य वृष्टादुक्थेमिरमे जनयन्त देवाः ।  
तं त्या गिरः स्तुतयो वाजयन्त्याग्निं न गिर्ववाहो जिग्मुश्वाः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।२४।६ )
- ६९ आ वा राजानमश्वरस्य रुद्रः होतारः सत्ययजः रोदस्योः ।  
अग्निं पुरा तनायैस्तारचिचिद्विरभ्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ४।१।१ )
- ७० इन्द्रे राजा समर्षो नमोभियस्य प्रवोकामाहुतं घृतेन ।  
नरो हव्येभिरीडते सपाथ आग्निरग्रक्षपसामञ्जोचि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।८।१ )
- ७१ प्र कृतुना वृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषमो रोरवीति ।  
दिक्क्षिदन्ताहुपमामुदानडपाभुपस्थे महिषा नवर्ध ॥ ९ ॥ ( ऋ. १०।८।१ )

[ ६७ ] ( दिव्यः सूर्याने ) धृतीकके गिर स्वामीय ( पृथिव्या अरति ) पृथ्वीके स्वाधी ( श्रुते भाजात ) यत्नमे उत्पन्न ह्यु ( वैश्वानरं ) सब विपत्तिके नेता ( कवि सद्भाजं ) ज्ञानी और प्रवर्धमान ( जनानां अतिथि ) मनुष्योंमें अतिथिके समान पूज्य ( आसन्नः ) मुक्तके समान मुख्य ( पात्रं ) योग्य ( अग्निं ) अग्निको ( देवाः जनयन्त ) देवोंने उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥

[ ६८ ] हे अन्ते ! ( परेतस्य वृष्टाद् आपः न ) परतको पीकते अंते जल प्रवाह बहते है, उसी प्रकार ( देवाः उक्थेमिः ) यत्न जती विश्राम स्तोत्रोंके द्वारा ( वि जनयन्त ) अनेक प्रकारसे तुमने उत्पन्न करते है, हे ( गिर्ववाहो ) वागीशे-स्तुतिसे जानने योग्य आने ! ( अम्याः अग्निं न ) घोड़े अंते सपाथमें जाते है और ( जिग्मुः ) चित्रय मिलती है, उसी प्रकार ( स्तुतयोः ) गिरः ) उत्तम स्तुतिसे युक्त हमारी वाणी ( त्वं त्या वाजयन्ति ) उस तुमने बलवान् बवाती है ॥ ६ ॥

[ ६९ ] ( अ-ध्वरस्य राजानं ) हिंस रहित यत्नके राजा ( रुद्रं ) घोषणा करते हुए ( रोदस्योः सत्य यजं ) छाया वृषिबीमें सत्य रूपसे यत्न करनेवाले ( होतारं हिरभ्यरूपं अग्निं ) होता, सुवर्ष रूप अग्निको ( अक्षिस्तात् ) स्वामाधिक रूपसे ( स्तनयिलोः ) विपुलसे ( पुरा अग्रेसे कृणुध्वं ) पहले अपने सरक्षणके लिए उत्पन्न किया ॥ ७ ॥

१- पहले विवृत् अग्निके हस्त अग्निको उत्पन्न किया था ।

[ ७० ] अर्थः राजा अग्निः ) यह श्रेष्ठ राजा अग्नि ( नमोभिः स इन्द्रे ) जसोंने प्रशस्ति किया जाता है, ( यस्य प्रतीक ) निम्नका रूप ( घृतेन आहुतं ) घृतेके हवनसे बढाया जाता है, ( नरः सपाथः हव्येभिः ईडते ) सब मनुष्य मिलकर हवनसे इसको पूजा करते है, ( अग्निः उच्यसां अग्रे अञ्जोचि ) इन प्रकार यह अग्नि उपा बालसे पहले ही प्रशस्ति हुई है ॥ ८ ॥

[ ७१ ] अग्नि ( वृहता केतुना ) स्थान प्रकाशके साथ ( प्रयाति ) प्रकट होता है, ( रोदसी ) छाया पृथ्वीमें ( वृषमः रोरवीति ) यह बलवान् अग्नि वर्जन करता है, ( दिव्यः अन्तात् चित् ) अन्तरिक्ष लोकके एक ( उपमां उद् आनत् ) पासके भागसे यह प्रथम प्रकट हुआ, और ( अपां उपस्थे ) जलके बीचमें-घोषोंके बीचमें ( महिषा चरधं ) यह सामर्थ्यशाली अग्नि बहने लगा ॥ ९ ॥

७२ अग्निं नरो दीधितिभिरत्थोहस्तच्युतं जनयत प्रथस्तम् ।

दूरदृशो गृहपतिमथच्युम्

॥ १० ॥ ( ऋ. ७।१।१ )

इति सप्तमी दत्तति ॥ ७ ॥ सप्तम सण्ड. ॥ ७ ॥ [ त्य० १५ । उ० ८ । था० १०५ (बो) ॥ ]

[ ८ ]

[ १-८ ] १ वृषगविष्टिरात्मान्यो; २, ५ वत्सप्रमौल्यन्; ३ गच्छातो बह्वृत्त्यन्; ४, ७ विश्वामित्रो पापिनः;

६ यत्तिष्ठो मेधावरणिः; ८ वापुर्वाद्यान्; ॥ अग्नि, ३ पुषा ॥ मन्त्र्यम् ॥

७३ अयोच्यभिः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुपासम् ।

यद्वा इव प्र वयामुजिह्वानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ

॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१ )

७४ प्र भूर्जयन्तं मह्यं विषोधां मूरैर्मूरं पुरां दमोणम् ।

नयन्तं गीर्मेवना विथं धा हरिश्मश्रुं न वमेणा धनर्विम्

॥ २ ॥ ( ऋ. १०।४६।५ )

[ ७२ ] ( नरः ) यज्ञ करनेवाले नेता मनुष्योंने ( दीधितिभिः ) अपनी अनुसिधिते ( अरत्थोः ) दो अरजियोंके बीचमें ( हस्तच्युतं ) हाथोंके बलसे उत्पन्न हुए ( प्रशस्तं दूरेदृशः ) प्रशंसित तथा दूरसे ही बोलनेवाले ( गृहपतिं ) घरके स्वामी ( अधच्युं धामि जनयन्तं ) धर्मशाली अग्निको उत्पन्न किया ॥ १० ॥

एक अरणीमें दूसरी अक्षरकर वे अरणिवा विष्टी जाती है, इस वर्णनसे अग्नि उत्पन्न होती है, भीर इस प्रकार यह पतगृहका स्वामी प्रशंसित होता है ।

॥ यहाँ सानयी खंड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ] अधमः खण्डः ।

[ ७३ ] यह ( अग्निः ) अग्नि ( जनानां समिधा ) यज्ञकर्ता मनुष्योंकी समिधाभस्ति ( अयोधि ) प्रज्वलित हुआ है । ( धेनु इव ) [ अग्निहोत्रके लिए पानी हुई ] वायु जिन प्रकार [ प्रातः कात जागती है ] उसी प्रकार ( आयतीं उपासं प्रति ) आनेवाली उपामें [ उठकर इस अग्निकी प्रज्वलित करी ] उस अग्निकी ( भानवः ) वषाळाएँ ( धयां प्रोतिज-ह्वानाः यक्षः ) धर्मियोंकी केशनेवाले महान् बृक्षके समान ( अच्छ नाकं प्रस्रवते ) उत्पन्न रीतिसे आकाशमें फैलती हैं ॥ १ ॥

( १ ) वयां प्रोतिजह्वानाः यक्षाः— आकाशकी केशनेवाले महान् बृक्षके समान ।

( २ ) भानवः अच्छ नाकं प्रस्रवते— अग्निको किरणें अन्तरिक्षमें फैलती हैं, ।

( ३ ) अग्निः जनानां समिधा अयोधि— अग्नि यज्ञ करनेवालोंकी समिधाभस्ति प्रज्वलित हुआ है ।

( ४ ) धेनु इव आयतीं उपासं प्रति— वायुके पास जैसे मनुष्य सवरे जाते हैं, उसी प्रकार आनेवाली उपामें मनुष्य अग्निके पास जाकर उठे जलते हैं ।

[ ७४ ] हे मनुष्य ! ( जयन्तं ) धनुषीको जीतनेवाले ( मह्यं विषोधां ) महान् बुद्धिमानोंकी पारण करनेवाले ( मूरैः पुरां दमोणं ) मूषाकी नपरिवोका नाभ करनेवाले ( अमूरं ) आनी अग्निकी स्तुति करनेके लिए ( प्रभुः ) समर्थ हो, ( गीर्मेः यना नयन्तं ) स्तुतिपात्र धनकी तरफ से आनेवाले ( वामेणा न ) बलवत्के समान रहनेवाले ( हरिश्मश्रुं ) सुगहरे रंगकी व्याकम्भिते मुक्त ( धनर्विं ) मिलने लिए स्तोत्र किए जाते हैं ऐसी अग्निकी ( धियं धाः ) स्तुति कर ।

- ७५ <sup>३ २ ४ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> शुक्रं ते अन्यद्यजते ते अन्यद्विपुरुषं अहनी यीरिवाति ।  
<sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> विश्वा हि माया अवसि मघानमद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।५।१ )
- ७६ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इहामग्ने पुरुदंस्तं सन्नि भोः शशत्तमं हवमानाय साध ।  
<sup>१ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ह्याजः स्नुस्तनयो विजावाय सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।६।१ )
- ७७ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र होता जातो महाश्रमाविन्नुपश्रा सीददर्पां विवर्ते ।  
<sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> दशयो धायी सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।४६।१ )
- ७८ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र सप्ताजमसुरस्य प्रशस्ते पुंसः कृष्टीनामनुमाधस्य ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्रस्येव प्र तवसस्कुतानि बन्दद्द्वारा बन्दमाना विवन्दु ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।६।१ )

[ ७५ ] हे (पूषन्) प्रया वेष ! ( ते शुक्रं अन्यत् ) तेरा तेजस्वी वर्णवात्स विव पूषन् है, ( ते यजतं अन्यत् ) जगो प्रकार तेरी कृष्ण वर्णकी राज्ञी पूषन् है, इस प्रकार (वि-पु-रुषे अहनी) आपसमें एक दूसरेसे भिन्न दिपसके ये दो भाग तेरी महिमासे होते हैं, ( धीः इय अवसि हि ) धूलोकके समान प्रकाशित होता है, हे (स्यधायन्) अन्नधान्य देवता ! ( धीः विश्वाः मायाः अवसि ) सब प्रजाजीका संरक्षण करता है, ( ते भद्रा रातिः ) तेरे कल्याण करनेवाले रात ( इह अस्तु ) यहाँ हमें प्राप्त हो ॥ ३ ॥

( १ ) पूषा- सूर्य, ( २ ) यजतं- दिपससे सम्बन्धित, कृष्णवर्ण, ( ३ ) स्वधा- अन्न, अपनी धारण क्षिति ।

( ४ ) मायाः- कुशलतासे काम करनेवाली प्रजा, कपटका प्रयोग ।

[ ७६ ] हे अग्ने ! ( पुरु-इंस्सं ) बहुत कार्योंमें उपयोगी ( भोः सन्नि इडां ) यावोंको देनेवाली वाणी ( शश्वत्तमं हव्य भानाय ) निरन्तर हवन करनेवाले यज्ञमालके लिए (साध) हे, ( नः सुगुः तनयः स्यात् ) हमारे पुत्र और पीत होवें, ऐसी बी ( ते सुमतिः ) तेरी उत्तम बुद्धि है, वह ( अस्मे विजावा भूतु ) हमारे लिए शक्त हो ॥ ४ ॥

( १ ) विजावा- अवस्थ, सकल, ।

[ ७७ ] ( यः नृपश्रा ) जो मनुष्योंके शरीरोंमें रहनेवाला अग्नि ( अर्पां विवर्ते ) पानीसे भरे ॥ अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे रहता है, वह इस समय ( होता जातः ) बस करनेवाला हो गया है, वह ( महान् नभोवित् ) महान् तथा अन्तरिक्षको जाननेवाला अग्नि ( प्रसीदत् ) भेषिमें प्रत्यक्षित हो गया है, वह ( दधत् ) हविषोंको धारण करनेवाला ( सुधायी ) भेषिमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला है, हे स्तुति करनेवाले उपासक ! वह अग्नि ( विधते ते ) उपासना करनेवाले तेरे लिए ( ययांसि ) अन्न और ( वसूनि ) पत्तोंको ( यन्ता ) देनेवाला ( तनू-पाः भवतु ) और शरीरोंका संरक्षण करनेवाला होवे ॥ ५ ॥

[ ७८ ] ( असुरस्य पुंसः ) बलवान् शीरके और ( कृष्टीनां अनुमाधस्य ) मनुष्यों द्वारा स्तुतिके योग्य ( तयसः इन्द्रस्य इय ) बलमें इसके समान उस अग्निके ( प्रशस्ते सप्ताजं ) प्रशंसनीय उत्तम तेजस्वी ( प्रसीदतु ) स्तुति करो । ( बन्दद्द्वारा बन्दमाना ) क्षुति और बन्धन यादि बलोंसे ( प्र विवन्दु ) उसको उपासना करो ॥ ६ ॥

७९ अरण्योर्निहिता जातवदा गर्भ इवेत्सुमृतो गर्भिणीभिः ।

दिवेदिय ईव्यो जायुवद्विहविष्मद्भिर्भनुष्यभिरग्निः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ३।१९।२ )

८० सनादये मृणसि यातुघानान्न त्वा रथाऽसि पृतनाशु जिघृः ।

अनु दह सहभूरात्कयादा मा ते हत्वा म्रुसत देव्यायाः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।७।१९ )

इति अष्टमो वसति ॥ ८ ॥ अष्टमं लण्ड ॥ ८ ॥ [ स्व० १३। उ० १। पा० ६। (टी) ॥ ]

[ ९ ]

( १-१० ) १ ऋण आग्नेय, २ वायवेय, ३, ४ भरद्वाजो बाह्वेय; ५ द्वितो मुनतवाहा आग्नेय, ६ वसुधेय आग्नेया; ७, ९ गोपचन आग्नेय, ८ पुनरत्रेय, १० वामदेव, कण्वो मा मारीचो, अनुवा वैवस्वत, उभी मा ॥ अग्नि ॥ अनुवदु ॥

८१ अग्न आजिघृमा भर घुम्नमस्यमग्निषो ।

प्र नो रायं पनीयसे रसिस् वाजाय पन्याम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१।०।१ )

८२ यदि वीरो अनु ष्यादधिभिन्धीत मर्येः ।

आजुह्वद्वयमानुषकृ शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥ ( ऋग्वेदे नास्ति )

[ ७९ ] ( जातवेदाः अग्निः ) सब शक्ती के मुक्त यह अग्नि ( गर्भिणीभिः सुभुनः गर्भ इव ) गर्भ धारण करने वाली स्त्रियों द्वारा उत्तम रीतिसे धारण किए हुए गर्भके समान ( अरण्योः निहिताः ) अरण्योर्निहित रहता है, यह अग्नि ( हविष्मद्भिः जायुवद्विः भनुष्येभिः ) हवि सँव्वाह करने हेतु जायु रहनेवाले भनुष्यों द्वारा ( दिवे दिवे ईडयः ) प्रतिदिन स्तुतिसे योग्य है ॥ ७ ॥

[ ८० ] हे अग्ने ! तू ( सनाद ) ह्येता ( यातुघानान्न मृणसि ) बण्ड और पीछा देनेवाले घातुओंसे मारता है ( रथा पृतनाशु ) तुझे पाषाणसे ( रथासि न जिघृः ) रक्षा के योग नहीं बनने, इस प्रकार तू ( सहभूरात् ) समस्त ( प्र-यादः ) मांस भक्षण करनेवाले ( अनुदह ) जला शूल ( ते देव्यायाः देव्या ) केरे दिव्य हविष्यारसे कोई भी घात ( मा मुसत ) न छूटे ॥ ८ ॥

( १ ) सहभूराः—जड़ सहित । ( २ ) प्र-यादः—मांस लावेवाले ।

॥ यहाँ आठवाँ खंड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमं लण्ड ।

[ ८१ ] हे अग्ने ! ( आजिघृमा भर ) कलशपूर्ण धन ( घुम्नमस्य अग्निषो ) हमें भरपूर दे । हे ( अग्नि-घो ) बिना शेर टोह गरिबोंके अग्ने ! ( पनीयसे राये ) प्रजननीय बनने मिलनेवाले मार्गों ( जः प्र ) एवं बिना, उसी प्रकार ( पन्याम् ) अन्न मिलने तथा बल बढ़ानेके ( पन्यां रसिद ) मार्ग बिना ॥ १ ॥

[ ८२ ] ( यदि वीरः ष्यात् ) यदि वीर पुत्र उत्पन्न हो, तो ( मर्येः अर्धं इध्मीय ) वह अनुष्य अग्निसे प्रत्यक्ष करे और ( अनु ) शर्मके ( दैव्य आनुषकृ आजुह्वत् ) हवनीय वशाधीन तथा हवन करे, और ( दैव्यं शर्म भक्षीत ) दिव्य भुज प्राप्त करे ॥ २ ॥

- ८३ त्वेपस्ते धूमः ऋण्वति दिवि सं च्छुक्र आतता ।  
सूरो न हि ध्रुवा त्वं कृपा पायक रोचसे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।१।६ )
- ८४ त्वं हि क्षैतवद्यक्षोऽग्न मित्रो न पत्यसे ।  
रथे चिचर्षणे अग्नो वसो पुष्टि न पुष्यसि ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।१।१ )
- ८५ प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तपेसातिथिः ।  
विश्वे यसिन्नमरत्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥ ५ ॥ ( ऋ. ६।१।८।१ )
- ८६ यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्थं विश्वाचसो ।  
महिषीम त्वदग्नयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।१।९ )
- ८७ विश्वोविश्वो वा अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।  
अग्निं वा दुयं वचः स्तुपे शूपस्य मन्मथिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।७।१ )

[ ८३ ] ( त्वेपस्ते ) प्रणयिता होमके प्राद तेरा ( धूमः धूमः ) ताक धुआ ( दिवि आतता ) अन्तरिक्षमें फैलता है, और ( ऋण्वति ) बर्हति यह धीसमे लगता है, हे ( पायक ) पवित्रता करनेवाले आत्मे । ( च्छुक्रः च्छुक्रः ) सूयके लगाने ( कृपा ) स्तुतिके ( ध्रुवा ) प्रकाशने ( हि रोचसे ) तू प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

[ ८४ ] हे अग्ने ! ( हि ) निश्चयसे ( त्वं ) तू ( क्षैतवत् यदाः ) सूखी समिधाव्य अग्न ( मित्रः न ) सूर्यके समान ( पत्यसे ) प्राप्त करता है, हे ( चिचर्षणे ) सर्व हव्या ( चसो ) सबको बसानेवाले अग्ने ! ( रथे ध्रुवा ) तू अग्नको और ( पुष्टि न पुष्यसि ) कुदीकी बढ़ाता है ॥ ४ ॥

( १ ) क्षैत— जली लकड़ी, ( २ ) यद्वा— अग्न, यज्ञ.

[ ८५ ] ( पुर-प्रियः ) अनेकोंको प्रिय करनेवाले ( विद्वाः अतिथिः ) वनस्पतोंके घरमें अतिथिसे समान जानेवाले ( अग्निः ) अग्निकी ( प्रातः स्तपेत् ) प्रातः काल स्तुति की जाती है, ( यस्मिन् अमरत्ये ) जिस अमर अग्निके ( विश्वे मर्तासः ) सब मनुष्य ( हव्यं इन्धते ) हव्यकी पत्तियोंका हवन करते हैं ॥ ५ ॥

[ ८६ ] ( वाहिष्ठं यत् ) अग्नि प्रीति प्रद करनेवाला जो स्तोत्र है ( तत् वाजये ) यह अग्निके लिए किया जाता है, ( विश्वाचसो ) हे तेजस्वी अग्ने ! ( बृहदर्थं ) बहुतसा धन और अन्न हव्य दे, ( त्वत् ) तुमसे ( महिषी रथिः ) बहुत धन और ( त्वत् ) तुमसे ही ( वाजा उदीरते ) अन्न मिलता है ॥ ६ ॥

[ ८७ ] हे मनुष्यो ! तुम ( वाजयन्तः ) अग्न और बलसे इच्छा करते हुए ( विद्वाः विद्वाः ) सब प्रजाओंके ( पुर-प्रियं ) मान्य प्रिय ( अतिथिं अग्निं ) इस पूज्य अग्निकी स्तुति करो, मे ( यः दुयं ) कुम्हारों लिए घरोंमें रहनेवाले अग्निकी ( शूपस्य मन्मथिः ) सुल देनेवाले स्तोत्रोंसे और ( वचः स्तुपे ) अपनी वाणीसे स्तुति करता है ॥ ७ ॥

८८ <sup>३२४३५</sup> <sup>३१</sup> <sup>२८</sup> <sup>३२३१९</sup>  
सृहद्वयो हि मानवेऽर्चा देवायाग्रये ।

यं मित्रं न प्रशस्तये भर्तासो दाधिरै पूरः

11 乙 11 ( 庚. 912612 )

८९ अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमाग्निमानवम् ।

य स अतर्वचनाक्ष्ये बृहदनीक इष्यते

॥ ९ ॥ (स. ८७४४)

१० जातः परेण धर्मणा यत्तद्वृद्धिः सद्दामुवः ।

पिता यत्कश्यपस्यामिः श्रद्धा माता मनुः कविः

॥ ३० ॥

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ नवम एण्ड. ॥ ९ ॥ [ स्व० १४ । उ० ७ । पा० ५१ । (घ) ॥ ]

[ ३० ]

(१-५) १ अग्निस्तापरा, २, ३ वामदेव कश्यप, अतितो देवतो वा, ४ सोमाहुतिर्भागि; ५ दायुर्भाङ्गाज,  
६ प्रश्वण्य काण्य ॥ अग्नि; १ विश्वेदेवा, २ अङ्गिरा ॥ भन्यस्य ॥

९१ सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारमामहे ।

आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्

॥ २ ॥ ( ऋ १०।१४१।५ )

९२ इत एत उदारुहन्दिनः पृष्ठान्या रुहन् ।

प्र भूर्जयो यथा पयः। यामद्विरसो ययुः

॥ २ ॥

[ ८८ ] ( भानये अग्रये ) तेजसो अग्निके लिए ( धृत्वा यय ) बहत्ता हबिका अग्र विना जाता है, ( हि ) क्योंकि धुम ( दैयाय अर्वा ) प्रवाप्रापुत अग्निकी हो पूजा करते हो । मर्तासः ) भृत्य ( य मित्रं न ) जित अग्निकी मित्रों समान ( प्रशस्तये धुरः दधिरे ) उत्तम स्तुति करवेंके लिए आगे स्थापित करते हैं ॥ ८ ॥

[ ८९ ] ( चूषहन्तर्म ) चूषणे मानेवाले ( उषेष्ठ मानव ) पेष्य मनुष्योंके हित करनेवाले ( अग्नि शरणम् ) अग्निरो हम प्राय करते हैं ( यः ) जो अग्नि ( आर्षे ) श्रुतवेत् अथ पुन श्रुतवाके लिए ( धृष्ट्व अनीकः ) मोटी मोटी पचालाभेन साथ ( इच्छते क्रय ) प्रचलित किया जाता है ॥ ९ ॥

[ ९० ] हे माने ! (यत् सपृङ्गिः सह भयुवः) ओ यत् श्वस्त्रिर्भक्तिं साय उत्पन्न होता है, जत (प्रेरण धर्मेणा) उत्तम यमर्षे साय सृ (जातः) उत्पन्न हुआ है, (यत्) जिस अग्निना (कश्यपस्य पिता) कश्यप पिता, (श्रेया माता) यथा साता और (सन्तः कर्त्तिः) मनु कर्त्ति है ॥ १० ॥

॥ यहाँ नयन खेद सम्यक्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[११] हम (राजाने सोम) सोमराजको तथा वरुण, धनि, मादित्य, सूर्य, ब्रह्मणस्पति, विष्णु और बृहस्पति (अग्न्याग्नि) बार बार याद करते हुए बलाते हैं ॥ १ ॥

[१२] (पुनः मूर्त्यः आह्वितः) ये यत् करनेवाले आगिरा (यथा) बने (यां उपस्थितः) दूधोवनी पर्व, (पथा) इत उदाहृत) उत्तम नामों यहांसे बहो बने गए और (द्विः पृथग्वि व्याहृत) दूधोवनी से दोतर आकर गए ॥ १२ ॥

- ९३ राये अगे महे त्वा दानाय समिधीमहि ।  
ईडिष्वा हि महे वुपं यावा होत्राय पूथियी ॥ ३ ॥
- ९४ दधन्वे वा यदीयन्तु वोचक्रुष्विति वैरु तत् ।  
परि विश्वानि काण्या नैमिषक्रमिवाभुवत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. २।१।३ )
- ९५ प्रत्यये हरसा हरः शृष्याहि विश्वतस्पारि ।  
यातुधानस्य रक्षसो बरं न्युञ्जवीयम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।८।१५ )
- ९६ स्वमग्ने वसुथरिह रुद्राथ आदित्याथ उव ।  
यजा स्वध्वरं जने मनुजातं घृतमुपम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।४।१ )

इति दशमो वृत्तः ॥ १० ॥ वृत्तः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० ४ । उ० ३ । अ० १० । (श्री) ॥ ]

इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः प्रथमः प्रपाठकव्यय समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्थः ॥

( १ )

- ( १-१० ) वीर्यतमा औषधः; २, ४ विश्वामित्रो गार्ग्यः; ३ वीतनी राहूगणः; ५ श्रित आप्यः; ६ इरिन्मिभिः  
काण्डः; ७, ८, १० विश्वमना बर्षस्वः; ९ ऋजिवा भारद्वाजः ॥ अग्निः; ५ वषमानः सोमः; ६ अरितिः;  
९ विदने देवाः ॥ उष्णिक् ॥

- ९७ पुत्र त्वा दाश्रिवाथवोचरिरथ तथ स्विदा ।  
सौदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१५०।१ )

[ ९३ ] हे अग्ने ! ( त्वा ) तुझे ( महे राये दानाय ) अधिक धन देनेके लिए हूँ ( समिधीमहि ) प्रबोधा करते हूँ । हे ( वुपम् ) बलवान् अग्ने ! ( महे होत्राय ) महान् अग्नि होत्रके लिए ( यावा पूथियी ) सुलोक और पुष्पीकीरुकी ( ईडिष्व ) स्तुति कर ॥ ३ ॥

[ ९४ ] ( वा ) अथवा ( हँ ) अन्तु दधन्वे ) इस अग्निको लक्ष्य करके अप्यर्थुं आवि लोग ( ग्रहा अनुवोचत् ) स्तौत्र कहते हैं, ( तत् वे उ ) उन सबको यह जलता है, वह अग्नि ( विश्वानि काण्या ) सब काण्डोंको, तथ क्रमोंको ( नैमिः ) चन्द्री इय ) नामि बचको जैसे पारण करते हैं, उसी प्रकार ( परि अनुवत् ) पारण करता है ॥ ४ ॥

[ ९५ ] हे अग्ने ! ( हरसा ) अग्ने तेजसे ( यातुधानस्य हरः ) यातना कष्ट देनेवाले राक्षसोंके मुखात् हरण करनेवाला तू उनके ( चरं ) बलको ( विश्वतः ) सब प्रकारसे ( परि प्रसि शृष्याहि ) बारों तरफसे बल कर, ( रक्षसाः ) वीर्य ) राक्षसोंके पचाक्रमको ( न्युञ्ज ) नष्ट कर ॥ ५ ॥

[ ९६ ] हे अग्ने ! ( त्वं इह ) तू यहाँ ( वसुथ रुद्राथ उत आदित्याथ ) वसु, रुद्र और आदित्य इन देवोंके लिए ( यज ) पथ कर, उसी प्रकार ( मनुजातं ) मनुष्ये उत्पन्न हुए ( घृत-मुपं ) घृतका तिलक करनेवाले ( स्वध्वरं ) जन यज ) उत्तम पथ करनेवाले मनुष्यपथ साकार कर ॥ ६ ॥

॥ यहाँ दशम खंड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] यषज्जशः खण्डः ।

[ ९७ ] हे अग्ने ! ( त्वा पुत्र दाश्रिवाथ ) तुझे बहुतसी हवि देता हुआ ( वोचे ) मैं कहता हूँ, कि ( महस्य सौदस्य इव ) अग्ने धनवान्की ( शरणे आ ) जरणमें आवे हुए सेवकों समान हैं ( तथ स्विद् आ अरिः ) तेरा ही सेवक हूँ ॥ १ ॥

- ९८ प्र होत्रे पूर्व्वं वचोऽग्रये भरता वृहत् ।  
विपां ज्योतीरपि विभ्रते न वेधसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१०।९ )
- ९९ अग्रे माजस्य गोमत ईक्षानः सहस्रो यदो ।  
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७९।४ )
- १०० अग्रे माजस्यो अघ्यरे देवा देवघते यज ।  
होता मन्द्रो वि राजस्यति सिधः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।१।०।७ )
- १०१ जज्ञानः सप्त मातृभिर्मघामाशासत श्रिये ।  
अयं ध्रुवा रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०२।४ )
- १०२ उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्याममत् ।  
सा श्रन्तावि मयस्करदप सिधः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१८।७ )
- १०३ ईडिप्वा हि प्रतीभ्याश्च यजस्व जातवेदसम् ।  
चरिष्णुधूममृमीतशोचिपम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२१।१ )

[ ९८ ] (विपां ज्योतीरपि विभ्रते) जानिये कि तेजोंकी धारण करनेवाले (वेधसे होत्रे न) बिभाता और देवोंकी पुलानेवालेके समान ( अग्रये ) जगिके लिए ( वृहत् पूर्व्वं यजः ) बहान् और प्राचीन स्तोत्रोंके ( प्र भरत ) कहो ॥ २ ॥

[ ९९ ] (सहस्रो यदो अग्रे) हे बलसे उत्पन्न हुए अग्ने ! (गोमत माजस्य ईक्षानः) गायोंके उत्पन्न होनेवाले जनका पु स्वामी हैं, इस कारण हे (जात-वेदः) जानकी उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! (अस्मे महि श्रवः देहि) हमें बहुतसा धन दे ॥ ३ ॥

[ १०० ] हे अग्ने ! तू ही (अघ्यरे यजिष्ठः) यज्ञमें पुत्राके योग्य है, (देवघते) यज्ञकतिके लिए (देवान् यज) देवोंके लिए यज्ञ कर, तू (होता मन्द्रः) देवोंकी बुलाकर लानेवाला अग्नि (वि अति सिधः) मातृओंकी पराजित करके (राजसि) मोहित होता है ॥ ४ ॥

[ १०१ ] (सप्त मातृभिः जज्ञानः) सात माताओं-नवियों की सहस्रतासे उत्पन्न होनेवाला, (मेघां श्रिये अशासत) भस्म करनेवाले सौर्योंकी शोभाके लिए प्रगल्भ करनेवाला (अयं ध्रुवा) यह स्थिर अग्नि (रयीणां) जानि-केतद् धनोंकी उत्पन्न रीतिते जानता है ॥ ५ ॥

[ १०२ ] (उत स्या मतिः) और यह मुझ (अ-दिति) न सम्भित होनेकी स्थितिमें (ऊन्या) सरसजगती मतिसे साथ (दिया न आगमत्) जानके दिन हमें प्राप्त होये, (सा) यह (श्रन्तावि मयः) जानति और तुझको हमारे लिए (करत्) प्रदान करे, और (सिधः अयं) मातृओंकी बुर करे ॥ ६ ॥

[ १०३ ] (प्रतीभ्या ईडिप्वा हि) मातृको पराजित करनेवाले अग्निकी स्तुति कर, (अ-धूमति-शोचिपम्) जितने प्रजापती कीर्ति भी वहाँ चोक सक्ता, (चरिष्णु-धूम) जिसका धुआं चारों विक्ताओंमें फैलता है, ऐसे (जात वेदस) समको जाननेवाले अग्निकी (यजस्व) पूजा कर ॥ ७ ॥



१०४ न तस्य मायया च न रिपुर्हीतव्यं मर्त्यैः ।

यो अग्रये ददाश हव्यदातये

॥ ८ ॥ (ऋ. ८।१३।१५)

१०५ अप नो धृजिनरिपुस्त्वेनमग्रे दुराप्यम् ।

दविष्टमस्य सत्यते कषी सुगम्

॥ ९ ॥ (ऋ. ८।१३।१३)

१०६ शुधये नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्यते ।

नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह

॥ १० ॥ (ऋ. ८।१३।१४)

इति प्रथमा वृत्तिः ॥ १ ॥ एकवचः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० ९। उ० ३। वा० ४२। (वा) ॥ ]

[ २ ]

(१-८) १ प्रयोषो भाग्य २ ( ऋ० सीमरि काव्यः ), ३, ४, ५-७ सीमरि काव्य, ४ प्रयोषो भाग्य, सीमरि काव्यो वा, ८ विषयना संयज्य ॥ अग्नि ॥ उज्ज्वल

१०७ म महिष्टाय भायत क्रताने बृहते शुक्रशचिपे ।

उपस्तुतासो अग्रये

॥ १ ॥ (ऋ. ८।१०।८)

१०८ म सो अमे सचोविमः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।

यस्य त्वत्सक्यमाविध

॥ २ ॥ (ऋ. ८।११।१०)

[ १०४ ] ( य ) जो ( हव्य-दातये अग्रये ) हव्यवीर कर्माँको देववाले अग्निके लिए ( ददाश ) हवि देता है, ( तस्य ) उसके ऊपर ( मर्त्य रिपु ) कोई भी मनु ( मायया चन ) बच्यते भी ( न हिंसीत ) शासन नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

[ १०५ ] हे मने ! ( त्य ) उत ( धृजिन रिपु ) कषी शत्रु वीर ( दुराप्य स्तेन ) कठिनातासे बशमें आने योग्य वीरको ( धृजिष्ठ अयास्य ) दूर कर, हे ( सत्यते ) सत्यके पालक आने । हमारे लिए ( सुग दृधि ) मायको मात्सानीसे जाने योग्य बनाने ॥ ९ ॥

[ १०६ ] हे ( वीर ) वीर ( विश्यते ) हे प्रजाक पालक आने । इत ( मे नवस्य स्तोमस्य ) मेरे नम तोत्रको ( शुधये ) सुनकर ( मायिनः रक्षस ) छली, कषी रक्षसको ( तपसा निदह ) अपने तेजसे जला दे ॥ १० ॥  
॥ यहा ग्यारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] द्वादश खण्ड ।

[ १०७ ] हे ( उपस्तुतासः ) स्तुति करनेवाले उपामको ! तुम ( महिष्टाय ) महान् ( क्रताने ) सत्यके पालक, प्रभुके पालक, ( बृहते ) महान् ( शुक्र शोचिपे ) स्वच्छ प्रकाशसे युक्त ( अग्रये ) अग्निके लिए ( प्रभायत ) स्तोत्रोंका गाव करो ॥ १ ॥

[ १०८ ] हे मने ! ( त्व यस्य सत्य आविध ) तू जिसका मित्र हो जाता है ( स ) वह ( त्व ) तेरे ( सुवीराभिः ) उत्तम वीरोंसे युक्त ( वाज-कर्मभिः ) अश्व देनवाले वीर पुरुषात्मसे प्राप्त होनेवाले ( ऊतिभिः ) सरसपूर्ण वापनोंसे ( प्रतरति ) बुझाते पार हो जाता है ॥ २ ॥

- १०९ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००</sup> तं गृध्रं स्वर्णं देवासो देवमर्तिं दधन्विरे ।  
देवमा हव्यमृद्धिरे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१९।१ )
- ११० मा नो हृणीया अतिथिं वसुरभिः पुत्रप्रजस्त एषः ।  
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१०३।११ )
- १११ भद्रो नो अमिराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।  
भद्रा उत प्रजस्तयः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१९।१२ )
- ११२ यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवमा होतारममर्त्यम् ।  
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१९।१३ )
- ११३ तदमे युज्ञमा भर यस्तासाहा सद्मे कं चिद्विणम् ।  
मन्युं जनस्य दृढ्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१९।१४ )

[ १०९ ] हे उपासक ! ( स्वः नरं तं गृह्यत ) स्वर्णको हविर् पृथ्वानेवास्ति अग्निर्को स्तुतिं कर, ( देवासः ) ऋत्विग् गण ( देव ) जिह देवकी ( अर्तिं दधन्विरे ) स्वामी मानकर उपासना करते हैं, उत अग्निर्को सहामतास्ते ( देवमा ) देवोंको ( हव्यं आ ऊहिये ) हव्यनीय द्रव्य तू पृथ्वता है ॥ ३ ॥

[ ११० ] ( नः अतिथिं ) हमारे यज्ञस्ते अतिथिस्ते समान श्रेष्ठ अग्निर्को दूर ( मा हृणीयाः ) मत लेना, ( यः सुहोता ) जो अग्नि देवोंको उत्तम रीतिस्ते गुलानेवासा, ( स्वध्वरः ) उत्तम यज्ञ करनेवासा, ( एषः ) यह ( पुत्र-प्रजस्तः वसुः ) अनेकोंसे प्रजस्तित होनेवाला तथा सबको यज्ञाने वाला है ॥ ४ ॥

[ १११ ] ( अमिराहुतः ) जिसमें हव्य दिया गया है, ऐता ( अग्निः ) यह अग्नि ( नः भद्रः ) हमारा कल्याण करने वाला होये, हे ( सुभग ) उत्तम ऐश्वर्यवाले हमें ( भद्रा रातिः ) कल्याणकारी घने प्राप्ति होये, ( अध्वरः भद्र ) हमारा यज्ञ कल्याण करनेवाला होये, ( उत ) और ( प्रजस्तयः भद्राः ) स्तुतिवां हमारा कल्याण करनेवालों होवें ॥ ५ ॥

[ ११२ ] हे अग्नि ! ( यजिष्ठं ) यज्ञ करनेवाले, ( देवमा देवं ) देवोंमें प्रमुख देव ( अमर्त्य होतारं ) अमर होतार, ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञको उत्तम रीतिस्ते करनेवाले ( त्वा ववृमहे ) तुम्हारा हम संस्कार करते हैं ॥ ६ ॥

[ ११३ ] हे अग्नि ! ( त्वं युज्ञ मा भर ) तू तेजस्वी यज्ञको हमें दे, ( यत् ) जो ( सद्मे ) यज्ञ स्थान अथवा घरमें ( कंचित् अग्निं ) किसी भी अत्यल्प स्थानेवाले गन्धुको ( आ सासाहा ) बसा ले, उती प्रकार ( दृढ्यं ) दृढ भुजि और ( जनस्य मन्युं ) लोगोंके ओपरो दूर कर ॥ ७ ॥

११४ यद्वा उ विरपतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।

विशेदपिः प्रति रक्षाशसि सेवति

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१३।१३ )

इति द्वितीया वसतिः ॥ २ ॥ द्वावसः सण्डः ॥ १२ ॥ [ त्य० १२ । उ० २ । पा० ४४ । ( छी ) ॥ ]

इत्यान्वेयं यवं काण्डम् वा ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ इति प्रथमं पर्व ॥

आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११४

सावज्य.	३४ ( १-३४ )
गृह्य.	२८ ( ३५-६२ )
विष्टुम.	१८ ( ६३-८० )
अनुष्टुम.	१६ ( ८१-९६ )
रणिह	१८ ( ९७-११४ )
	११४

[ ११४ ] ( यत् वै ) जय ( विरपतिः शितः ) यज्ञमार्गोंका पासन करनेवाला अग्नि हविसे प्रत्यक्षित होता है. तब यह अग्नि ( सुप्रीतः ) अच्छी तरह प्रसन्न होकर ( मनुषः विशे ) मनुष्यके घर जाता है, तब यह अग्नि ( विश्वा रक्षासि इत् ) सब राजाओंको ( प्रतिवेधति उ ) नष्ट करता है ॥ ८ ॥

॥ यहाँ यादवर्था खंड समाप्त हुआ ॥

॥ इति आग्नेयं काण्डं समाप्तम् ॥

## अभिका स्वरूप

सामवेदके प्रथम काण्ड ' आग्नेय काण्ड ' में ११४ मंत्र हैं. यद्यपि इनमें कई कई सूत्रों देवताओंके भी मंत्र हैं, पर इस काण्डका मुख्य देवता ' अग्नि ' है । जोय देवताओंका वर्णन पर्व, पञ्चरत्नके शुभोक्तों अगने अन्दर धारण करें, धारण करनेके लिये बड़ाई और मनुष्यसे ' देव ' वर्ण इसके लिए वैदिक संप्रदाय और स्तुति है । ' देव ' वर्णनेकी इच्छा प्रत्येक स्तुति करनेवालेके मनमें होती चाहिए । मैं देवताकी स्तुति करता हूँ मैं इस देवताके गुणका वर्णन करता हूँ, इसका उद्देश्य है कि इस देवताके गुण मेरे अन्दर अग्नि, और इन गुण शुभोंमें मैं युक्त होऊँ ।

यत् देवाः अनुपमं तत् करवाणि । सततम ब्राह्मण ।  
' जो देवीने दिया, वह मैं करूँ ' । इस प्रकार करके मनुष्य देवताको प्राप्त करे और देव बनकर समाजमें योगिय हों इष्टी-को आग्नेय काण्डमें इस प्रकार कहा है.

देव-युं जनं वा अयत् । ऋ. ५।१।१३, साम. २३

' हे अग्नि ! देवता प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको ए प्राप्त हो ' तुझे प्राप्त करनेका कार्य है तथापच्छो देवताकी प्राप्ति, अर्थात् सतत उदार । यह देशन प्राप्त करना है, इसी-को मुख्य रूपसे करनेके लिए वेदने कहा है, उसे वैदिक धर्मियोंको करना चाहिए ।

आज हम सामवेदके ' आग्नेय काण्ड ' का विवेचन करते हैं, इस काण्डका मुख्य प्रतिपाद देवता अग्नि है । इस कारण सर्व प्रथम अग्निके स्वरूप पर विचार करते हैं—

### आग्नि के गुण

इस आग्नेय काण्डमें निम्न गुणोंका वर्णन है—

१ विध्य-वेदा- ( विश्व ) सवको ( वेदा ) आग्ने वाला, सर्वज्ञानी, विवेकज्ञान युक्त ( मं. ३ ) ' सव धन युक्त ' यह भी इस सन्दर्भ अर्थ है, क्योंकि वेद धनको भी कहते हैं । ' वेदश्च धति धन नाम ' ( निषे. २।१।१४ )

२ जात-वेदाः ( मं. ३१ )- ( जातं वेत्ति ) वष उत्पन्न दुष्प्रोक्तो ज्ञाननेवाला ।

३ कविः ( मं. ३० )- ज्ञानी, कान्तदर्शी, दूरदर्शी ।

४ पुरोहितः ( मं. ४८ )- आभ्य रहनेवाला, पुरोहित, मनुष्योंका सबसे पहले दितकरनेवाला ।

५ प्र-चेताः ( मं. ६१ )- विशेष बुद्धिमान्, निधोषज्ञानी ।  
६ अतिथिः ( मं. ५ )- अतिथिके अमान पूज्य सत्कार-के योग्य ।

७ जरा-योधः ( मं. १५ )- स्तुतिसे ज्ञात होनेवाला, जिसकी स्तुति होती है ।

८ रुद्रः ( मं. १५ )- ( रुद्र-रः ) चेतने वाला, वक्ता ( रुद्र-रः ) शत्रुको हलानेवाला ।

९ पावकः- ( मं. २८ ) पवित्रता करनेवाला, शुद्धि करने-वाला,

१० चेतिष्ठः ( मं. ४५ )- चेतना देनेवाला, ज्ञेयता देने-वाला, ज्ञानी,

११ गालु-विदु-तमः ( मं. ४७ )- मार्ग ज्ञाननेवालोंमें सर्व प्रेष्ठ, उत्तम मार्गको ज्ञाननेवाला ।

१२ आर्यस्य यर्धनः ( मं. ४६ )- आर्योंको- श्रेष्ठ पुन-र्धोको- बढाने वाला,

१३ शुलु-कर्णः ( मं. ५० )- मर्जनों प्राचीन श्रुतकर उत्तरी कामवादी पति करनेवाला ।

१४ पोता ( मं. ६१ )- स्वपुत्रता करनेवाला, एक अप्युर्गु

१५ विप्रो-धाः ( मं. ७४ )- विशेष ज्ञानी लोगोंको महारा देनेवाला । ज्ञानियोंका आभयदाता ।

१६ ल-मूरः ( मं. ७४ )- जो मूल बहाने अपावृत्त ज्ञानी ।

१७ सु-भगः ( मं. ६९ )- उत्तम देवदेवता ।

१८ धर्मस्य सु-क्रतुः ( मं. ३ )- वज्रका धर्म उत्तम विधिसे करनेवाला ।

१९ सत्य-धर्मा ( मं. १३ )- शत्रुका जलन करनेवाला, महका पालन करनेवाला ।

२० सत्पतिः ( मं. ३४ )- शत्रुओंका पालन करनेवाला ।

२१ यिदपतिः ( मं. ३९ )- प्रजाओंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाला ।

२२ प्राता ( मं. ४२ )- संरक्षण करनेवाला, उत्तम संरक्षक,

२३ धृताः ( मं. ४२ )- धरा, योग्य, सत्, पूज्य ।

२४ वैभ्या-मरा ( मं. ६० )- धन मनुष्योंका दितकरने-वाला, शारंगनिक दितकारी ।

२५ ल-तम्भः ( मं. ४६ )- आकर्षक दक्षित, श्रेष्ठ रक्षित, धरा वाधा, पुण्य ।

२६ दक्षाः ( मं. ३५ )- चक्षुर, कर्मोंमें सदा निपुण,

२७ होता ( मं. १, २ )- देवोंकी मुलाकर जानेवाला, सत्पुण्योंको अपने साथ जानेवाला, हवन करनेवाला ।

२८ प्रेष्ठः ( मं. ५ )- सबका प्रिय, सबको चाहनेवाला

२९ विप्रः ( मं. ५ )- धनका प्रिय, धनके द्वारा वादने योग्य,

३० वाजपतिः ( मं. ३० )- अज और बलका अधिपति ।

३१ विवस्वत् ( मं. १० )- ( विवः ) ज्ञानसे ( वस् ) पुण्य, ज्ञानी, सबको बढानेवाला,

३२ वृषन् ( मं. २१ )- बढानेवाला, संवर्धन करनेवाला ।

३३ सुधीरः ( मं. २६ )- उत्तम धीर, महारथी

३४ वृषणि अंघमन् ( मं. ४ )- धरनेवाले शत्रुको मारनेवाला,

३५ सु-वीर्यस्य ईशो ( मं. ६० )- उत्तम वीर्यका स्वामी,

३६ पुरां दर्माणं ( मं. ७४ )- शत्रुके नगदोंको शोकने-वाला,

३७ वृष्टगृह्यतमः ( मं. ८९ )- वर्षोंको मारनेवाला,

३८ ऊर्जो न-पातः ( मं. ४५ )- बलको कम न करने-वाला, बल बढानेवाला ।

३९ ऊर्जो पति ( मं. ३६ )- बल और सबका पालक ।

४० जपत् ( मं. ७४ )- विप्रवी

४१ प्रलः ( मं. ३० )- प्राचीन, ज्ञानवि

४२ असूतः ( मं. ३५ )- धनर

४३ वृषधः ( मं. ७१ )- बलवान्, सामर्थ्यशाली, शक्ति करनेवाला,

४४ वृष्टः प्रियः ( मं. ८७ )- बहुलोंकी प्रिय, ' प्रिय ' ( मं. ७५ )

४५ स्वयदः ( मं. ४५ )- ( शु-अप्यदः ) हिंसा रहित नष्ट करनेवाला ।

४६ वृष्ट-प्रशस्त्वं ( मं. ११० )- बहुलों द्वारा प्रशंसित

४७ द्रविणस्पुः ( मं. ४ )- धनवाह, बलवाह, ( निधं ११०-११५ मन्, ११५-१६ वर )

४८ सोमवदस्य ईशो रायः ईशो ( मं. ६० )- सोमाध्य और धनका स्वामी ।

४९ दाम्नेये रत्नानि वृषत् ( मं. ३० )- दान देने-बले मनुष्योंको रत्न देनेवाला ।

५० द्रविणोद्गा ( मं. ५५ )- धन देनेवाला,

५१ देवानां प्रियः ( मं. ६५ )- देवोंकी प्रिय, विद्वानोंका चाहनेवाला,

५२ देवेभ्य राजति ( मं. ४६ )- देवोंमें प्रशस्ति होनेवाला, विद्वानोंमें तेजस्वी ।

५३ गृहपतिः ( मं. ६१ )- गृहस्थ, घरोंका स्वामी,  
५४ अनेहस् ( मं. ६२ )- प्यारहित,  
५५ शुक्रशोर्वाः ( मं. १०७ )- तेजस्वी, प्रकाशित  
होनेवाला ।

५६ सहस्रान् ( मं. २१ )- बहान्, शत्रुको पराजित  
करनेवाला ।

५७ भरतिः ( मं. ६० )- प्रगतिशील,  
५८ ज्ञाते जातः ( मं. ६० )- सत्यके लिए प्रयत्न करने-  
वाला, यज्ञके लिए उत्सव हुआ ।

५९ अर्थः राजा- ( मं. ७० )- श्रेष्ठ राजा,  
६० परेषा धर्मणा जाताः ( मं. ९० )- श्रेष्ठ धर्मोंके साथ  
चरण हुआ, श्रेष्ठ धर्मोंका पालन करनेवाला ।

६१ सप्तते सुप्तं कृषि ( मं. १०५ )- हे सज्जनोंके  
पालन करनेवाले ! हमारे मार्ग सरलतासे जाने योग्य बना,  
अग्नि मार्गको सरलतासे जाने योग्य बनाया है ।

६२ अश्वघातां सघ्नाद् ( १७ )- हिंसा रहित क्रमोंका  
सघ्नाद् ।

६३ सत्य-यज्ञः ( मं. ६७ )- सत्य यज्ञ करनेवाला, उत्तम  
यज्ञ करनेवाला ।

६४ अयुमीत-शोचिः ( मं. १०३ )- जिसका तेज  
धन नहीं होता, जिसका तेज रोक ना दबाया नहीं जा सकता ।

६५ रिपुः न हंशत ( मं. १०४ )- जिस पर शत्रु हावम  
नहीं कर सकता, शत्रुको हरा देनेवाला ।

६६ तनु-पशः ( मं. ७७ )- शरीरका शैलग्न करनेवाला,  
६७ नृ-पसा ( मं. ७७ )- मानवीय घरों और शरीरोंमें  
रहनेवाला ।

६८ मानुषे जने देवेभिः हित ( मं. २ )- मनुष्योंके  
हितमें देवीशान् स्थापित किया हुआ ।

६९ वसु ( मं. ७६ )- धनकी वसतिवाला, निवास  
करनेवाला ।

७० अर्माव-व्यातनः ( मं. १३२ )- लोगोंको दर करनेवाला ।

७१ सहस्र-पोषिणं चीरं तमसा धत्ते ( मं. ५८ )-  
हजारों मनुष्योंका पोषण करनेवाले चीरोंको-मीर धुनको खर्च  
काग करता है ।

७२ जनानां सघ्नाद् ( मं. ६७ )- लोगोंका सघ्नाद् ।

७३ विदग्धकप- ( मं. १९ )- सोनेके समान तेजस्वी,  
बल देनेवाला ।

अंगिके इन गुणोंका वर्णन इस आशय काव्यमें है । इनमें  
वही अंगिके हावका वर्णन है, वही उसके बल और शरीरका  
ध ( चाप, बिंदी )

वर्णन है । ये गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर पावते, तो उनकी  
योग्यता निन्द्य होतों । पाठक इस दृष्टिके इन गुणोंका  
विचार करें, और जो गुण अपने अन्दर ला सकते हैं, उनको  
खुश और ठगें बहावें । मनुष्य इन गुणोंके युक्त हो इसलिए  
मेरेके मे मंत्र हैं ।

## अंगिका सामर्थ्य

अंगिका सामर्थ्य बहुत महान् है, इसलिए इसके 'पुस्तकमः'  
( २१ )- सर्वो श्रेष्ठ कहा है । एतस्मिन् यह सम्यक् महान् है,  
इसलिए कहा है, 'महान् अस्ति' ( २२ )- व. बहुत  
कहा है, तेथे बराबरी करनेवाला कोई दूसरा नहीं है, मुक्त श्रेष्ठ  
महान् कोई नहीं है ।

कृष्णपत्र आश्रये से नमः शृणुमि ( मं. ११ )- सब  
मनुष्य एतस्मिन् गुणोंके लिए गुणोंके वर्णन करते हैं, और तेरी स्तुति  
करते हैं ।

इस प्रकारकी अंगिकी शक्ति है ।

## आपोंका संवर्धन

सु-ज्ञाते आर्यस्य वर्धनं न मित्र न शत्रुः ( ४७ )-  
उत्तम रीतिसे उत्तम हुए और श्रेष्ठ पुत्रोंको बढ़ानेके मित्र  
वर्जन हमारा बाणी करती है ।

यसके तीन अर्थ हैं, ( १ ) देव-पूजा, ( २ ) सगतिकरण  
और ( ३ ) दान, इनसे मनुष्योंकी शक्ति बढ़ती है । किं ? इस  
प्रकार कि समाजमें रहनेवाले श्रेष्ठ पुत्रोंका धरका होनेके श्रेष्ठ  
पुत्रोंकी संस्था बढ़ती है, सम्यक् श्रेष्ठ होता है । उसके  
बाद सगति-करणकी आवश्यकता होती है, सगति-करणका अर्थ  
है, संघटन, समाजमें संघटन होनेका अर्थ है समाजकी शक्तिका  
विस्तार । शीघ्र पक्ष है दान । दानका अर्थ देण्ड पान देना ही  
नहीं है, अश्वि जिसके पास जो बीम नहीं है, वह बीम उसको  
देकर उत्तम बहाव करना भी दान ही है ।

यह दान चार प्रकारका है- ( १ ) धिया दान, ( २ ) बल-  
दान, ( ३ ) धनदान और ( ४ ) धर्मदान । इन चार प्रकारके  
दानोंके राष्ट्रीय उत्पत्ति होती है । अज्ञानियोंके विद्याका दान  
करनेसे ये ज्ञानवान् होकर उत्तम होते हैं । जो निर्धन हैं, उनके  
कठकी बहाव उन्हें बलवान् बनाना यह दूसरा कार्य है ।  
धनका दान देकर देण्डमें जन उत्पन्न करनेके धानोंको बढ़ाना  
यह राष्ट्रीय उत्पत्तिमें तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है । बीया काम  
है, बेकरोंको काम देकर उन्हें जन मिले ऐसा बलवान् करना ।  
इन चार प्रकारके दानोंके देण्डोंके उत्पत्ति हो सकती है ।

यज्ञके ये तीन पक्ष उत्तम रीतिसे राष्ट्रीय उत्पत्ति करनेवाले

है। इस कारण गच्छे राष्ट्र और समाजकी उन्नति होती है। यह हमारा विचार बिल्कुल ठीक है।

### गृहपति

यद्यपि यह अग्नि चरके हवन-कुण्डमें ही रहता है, पर तो भी उसे वहां 'गृह-पति' परका मालिक कहा गया है। यज्ञका अग्नि नियमों परका स्वामी है।

गृहपते ! अ-प्रोषितवान् महान् अस्ति ( १९ )

'हे गृहस्थानी अग्नि ! तू कहीं दूसरी जगह नहीं चला, तू नियमों से महान् है।' ( अ-प्रोषितवान् ) तू बाहर इधर उधर बिना कारण नहीं चलता। घरमें ही रहते हुए तथा परका हित करते हुए ए अग्नि। समय विताता है, इसलिए तू ( महान् अस्ति ) महान् है। अपने परका सब प्रकारसे कृपाण करना गृहस्थीका मुख्य कर्तव्य है। सब गृहस्थी इससे बहुतसा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

### गायोंको पालना

गायोंको पालना गृहस्थियोंका एक मुख्य कर्तव्य है। घरमें गायें आसना आवश्यक हैं। घरमें गायोंको पायका दूध, घी, मक्खन आदि प्राप्त होना उत्तम ऐश्वर्यका लक्षण है। इससे मनुष्य कृषी उन्नत होते हैं—

मघधानः जनानां यन्तारः भोजानां ऊर्य द्युतः ( २८ )—

'हो मनुष्यों पर उत्तम प्रकार शासन करते हैं, वे जनान् गायोंके दूधका भी संरक्षण करते हैं। वे लोगोंको गायें देते हैं, और गायोंसे लोगोंकी सहायता करते हैं।

पुण्ड्रंस् गो-स्तनि इडां शश्वचमं ह्यप्रमात्राय साध ( ७४ )—

स्तुति करनेवालेकी अनेक प्रकारसे आज देनेवाले सब प्रकारके आज देने वाले हैं अग्नि ! तू गायका दान कर।

गायोंका दान यह करनेवालेकी कीर्ति। गाय भी वनछासुष्य साधन है। हवन गायके दूध और घीसे होता है। गायके घीकी अग्निमें आहुति देनेसे वह विश्वकी मष्ट करके ईश श्रद्ध करता है।

अनुमसंधिपु धी व्याधिर्गाम्यते।

अनुमसंधिपु यज्ञाः क्रियन्ते।

— गोपथ ब्राह्मण

अनुमोके अग्नि बालमें अर्घ्य एक कतुके धावात होनेपर अब दूसरी अनु श्रावण होता है, तब द्वावै बदनमेंसे रोग पैदा होने है। इसलिए अनुमोके अग्नि बालमें वज्र दिए जाने हैं। इन यज्ञोंमें गायके बी तथा रोगोंके शास्त्र करनेवाले अन्त्याय औषधियोंका हवन किया जाता है, इनके रोग दूर होते हैं।

मनुष्यका रोग इस प्रकार दूर हो सकता है, कि मनुष्य जिस रोगसे पीड़ित है, उस रोगके शासन करनेवाली औषधियोंकी कूटकर उसका तथा गायके घीका हवन यदि उस रोगके कम-रेमें किया जाए तो यज्ञमें उलकी गयी सामग्रो अग्निमें बलकर सुसुप्त हो जाती है, और वह सुसुप्त अंश श्वाह द्वारा रोगके अन्दर जाकर रक्तमें मिला जाता है, और इस प्रकार वह रोगके रोगको दूर करता है।

अग्नि 'हृष्यवाह' कहा है, क्योंकि यह हवनमें जले गए पदार्थोंको बर्षा पहुंचाना होता है, वहां पहुंचा कर शक्ति कायोंमें सिद्ध करता है।

किंच अत्रुमे किं औषधियोंका हवन किया जाए यह संशयो-चनीय विषय है। यदि इसका संशोधन कर उसके अनुसार हवन किया जाए तो वैयक्तिक और सामुदायिक आरोग्यका लाभ होगा, इसमें कोई संशय नहीं। संशोधकोंका कर्तव्य है कि इस महत्त्वपूर्ण विषयका संशोधन अवश्य करें।

### ज्ञानी अग्नि

अग्नि ज्ञानी है, यह पहले ही दिखताया है। अन्धेरेमें यदि अग्निसे जलाना जाए तो वह उस स्थानका उत्तम ज्ञान करा देता है। कौनसा मार्ग है, और वह मार्ग कहीं कहीं और परतोंसे भरा हुआ तो नहीं है, कहीं मार्गमें गड़बड़ी तो नहीं है, इन सबका ज्ञान अग्नि क्या देता है। मनुष्योंको इसका अनुभव कल्प कल्प पर मिलता है। इसीलिए इसे 'विभ्यवेदाः' ( १ ) यज्ञकी आत्माके नामा कहा गया है।

घाजपतिः कविः हृष्याति परि अक्रमीत् ( २० )

यह अज्ञ वा बलका स्वामी और दूरदर्शी है, और वह यज्ञमें जले गए पदार्थोंको चारों दिशाओंमें फैलाता है। अग्निमें शिथिल बालनेपर आगवाह भेदे हुए मनुष्योंको छोड़ आने लगती है, उसी प्रकार सुविषय पदार्थोंका हवन करनेपर पाठमें बैठे हुए मनुष्योंको सुविषय आने लगती है। इस प्रकार यह अग्नि हवनमें जले गए पदार्थोंको वा ( पर्यक्रमीत् ) चारों दिशाओंमें फैलाता है। इसलिए इसे—

यज्ञस्य मुक्तुः ( १ )— दक्षकी उत्तम रीतिमें उत्तम करनेवाला कलापक गता है। जिन यज्ञों पदार्थोंकी हवनमें आहुति दी जाती है, उन पदार्थोंको यह अग्नि चारों दिशाओंमें फैलाकर उसके उत्तम परिणामको सब हवन करनेवालोंको प्राप्त कराता है। यह उत्तम परिणाम मनुष्योंके अनुभवमें आता है। इसलिए इन पदार्थोंका हवन इन जगुमें करना चाहिये और इस अनुभव नहीं, इसका विचार पूर्वक संशोधन करना चाहिये। क्योंकि—

अयं अग्निः सुवीर्यस्य ईशो ( ६० )

यह अग्नि उत्पन्न बनका स्वामी है । इसलिये इसमें अग्नि परायोहा हवन किया जाए उस पर पहले विचार कर लेना-चाहिए ।

पते भूयस्य आगिरसः घां उत्पययुः, इत उदा-  
हरन्, दिचः पृष्टानि आरुहन् ( १२ )

'ये उत्पन्न यज्ञ करनेवाले आगिरस ऋषि युलोचनपर चढ़े, महर्षि और चक्षु स्थानपर पहुँचे, फिर युलोचकी पीठपर जाकर वहाँ से शिराजमान हुए ।'

यह बहरीं व्यक्ति है । इसलिये यज्ञ उदा सात्रोत्पाद् होना चाहिए । 'अंग-रघ' अंगमें जो जीवन रख रहता है, उसे अंगरघ कहते हैं, यह रघ सब अंगोंमें रहता है । यह रघ कैद तैमार होता है, कैद रहता है, और कैद निर्दोष बनाया जा सकता है, इस विद्याको जो जानते हैं, वे 'आगिरस' होते हैं । अंगके जीवन रखी विद्या जो ज्ञानि जानते हैं, वे आगिरस ऋषि कहाते हैं । आगिरसोंने इस विद्याका प्रयोग करके उसे बढ़ाया, और यज्ञस्य होनेवाले परिभाषोंको सौगोंके समने शिक्ष करके दिखलाया, इस कारण ये आगिरस ऋषि प्रेष बने ।

देवत्व प्राप्त करना

सभी बहरीं व्यक्ति को ईश्वर है, तो केवल देवत्व प्राप्त करना ही है । देवोंके जो गुण मैत्रोंमें बताये हैं, उन्हें अपने अन्दर धारण करके उन्हें बढ़ाना यह साधन है, यह कर्मोप कर्म है, यह मनुष्यों द्वारा करने योग्य है ।

देवयुं जन्म आ अयः ( १३ )

देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छावाले और उसके साधनोंका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके पास आगि जाता है । इस 'आग्नेय काष्ठ' में आगिके जो गुण बताये हैं, वे गुण अपने अन्दर बढ़ानेका जो प्रयत्न करते हैं, और उसका तत्त्व अनुष्ठान प्रितना करता है, उतना ही उनके अन्दर अग्नि बढ़ती है और वे अग्निके समान तेजस्वी होते हैं ।

उपयुंघः देघान् मा यद्वा ( १० )— उप-धाममें आगनेवाले देवोंको इस यज्ञमें ले आ । 'उप-धुपः' तथा धाममें उड़ना, छीन न रहना यह देवत्वका एक चिह्न है । सारे पाँके चार बने उड़ना आशानीही हो सकता है । चौच, मुँह घेरना, प्रदान, संध्य उपपन्न करके ७ बने जो अपने काममें लग जाता है, उसकी, प्रातः प्रातः उठनेके लिये उत्साह प्राप्त होता है, यह अनुभव होगा । और इसके निष्पत्ति काठ जो बरतन विशदमें पडा रहनेवाला बिजना लकड़ा होन होता

है, यह बात मयकने योग्य है । 'उप-धुपः' तथा कात्में उठकर अपने कार्यमें लग जाना यह देवत्वका एक लक्षण है ।

'देवेषु राजासि ( २६ )— यह देवोंमें तेजस्वी होता है । देवोंके गुण अपने अन्दर धारण करनेके मनुष्य देवोंमें बंधकने लगता है । देवोंमें केवल बहना ही नहीं अपितु देवोंके धीच तेजस्वी होना ही विशेष महावकी बात है । सभी देव तेजस्वी हैं, उनके बीचमें जो विशेष तेजस्वी होता है, वही देवोंमें प्रथम-कम है । विशेष तेजस्वित्वा प्राप्त करना ही इसका कारण है ।

सयाचमिः द्यौः चन्द्रिभिः प्रातर्वायभिः अघ्नये  
वर्हिषि मासीदहृत् ( ५० )— 'आप रात्रि चतुर्दशाले आगि के जानेवाले तथा प्रातःकाल उठकर काममें लगनेवाले देवोंके साथ यज्ञमें भागनपर बैठ ।' ( स-याचमिः ) समान रीतिसे प्रगति करनेवाले ( प्रातः यायभिः ) प्रातःकाल उठकर उत्पत्ति-कारक काममें लगनेवाले और ( चन्द्रिभिः ) आगे के जानेवाले देवोंके साथ यज्ञमें भागनपर बैठनेकी योग्यता प्राप्त हो, इसलिये इस प्रकारके गुण अपने अन्दर धारण करने चाहिए । मिल मिलकर साधुधर्मोंके प्रगति करना, प्रातःकाल उठकर काममें लगना, और उत्पत्तिशील मार्गसे जाना ये तीन गुण अग्निमें हू । यज्ञकी अग्नि प्रातःकाल प्रवर्धित होती है, सब ऋषिवर मिलकर उसकी उपासना करते हैं, और सब उत्पत्तिके मार्गपर जाते हैं, अर्थात् निर्दोष यज्ञ करते हैं । इन गुणोंको अपनाकर ही मनुष्योंको उन्नति हो सकती है । इस प्रकार यह आग्नेय देव मार्गको दिखानेवाला है, इसलिये कहा है—

मः इतो देवः अस्ति ( १० )

'इसकी मार्ग-दिखावेवाला यह देव है ।' अग्नि देव इस प्रकार लोगोंको मार्ग दिखानेवाला है । अनुष्ठानमें अग्नि अपने प्रकाशके लोभोंको मार्ग दिखाना है, यह सबके अनुभवमें आगि-वासी बात है । 'आग्निः कस्माद्, अग्रणीः भवति' ( निष्ठा ) , इसे अग्नि इसलिये कहते हैं, क्योंकि यह अग्र-णी होता है, अर्थात् ( अग्र-नी ) आगेके मार्गमें रहनेवाला, आगे के जानेवाला यह अग्नि देव है । तत्त्व सबको उत्पत्तिके मार्गसे ले जाता है, इसलिये यज्ञका पूरा नाम 'अग्र-नी' है, जिसका संक्षिप्त रूप 'अग्र' हो गया है ।

अग्र-नी— अग्र-नी

अग्र-नी— अग्नि

यह यज्ञाग्नि भी उसी प्रकार अग्र-नी है, क्योंकि यह अपने उपासकोंको प्रगतिके मार्गसे आगे ले जाता है—

प्रियं मित्रं दध्वा ( ५ )— प्रिय मित्रके समान धराता देकर अपने भर्त्ताओं को आगे ले जाता है—

ते मनः परमात् सपत्न्यात् आयमत् (८)- जो तेरे मनको उन्हे स्थानसे अपने पास बुलव लेता है, तेरे मनको अपने अनुकूल बना लेता है, वह भेष बनता है। देवताके मनको अपने अनुकूल बनानेके लिए देवताके गुणोंको अपने भन्दार लानेकी आवश्यकता है। नहीं तो यदि अपना आचरण देवताके गुणके विरुद्ध होगा, तो विष्णुके देवता हमपर क्रोधित होंगे। इसलिये देवताके कौन कौनसे गुण हैं, इनको जानकर उन्हें अपने भन्दार समुपय चारण करें, और देवताके मनको अपने अनुकूल बनावें।

### शत्रुनाशक अग्नि

अग्निं द्रुह शुण पहले दिखावे। अब 'आग्नेय काण्ड' में अग्निही पुनः कुवसताका जो वर्णन है, उसपर विचार करते हैं- अग्निः पृथ्वाणि जघनत् (४)- अग्नि जनोंको मारता है। दृक्का अर्थ है, चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु। दृक्का अर्थ है, मेघ, दृक्का अर्थ है सग प्रकाशके शत्रु। इन शत्रुओंको अग्नि मार कर देता है।

अयं अग्निः पुत्रहथानां ईहे (१०)- यह अग्नि दृक्को मारनेवाले शत्रुहीरेमें प्रथम है।

पुत्रहृत्तमं ज्येष्ठं आमयं अग्निं अश्वम् (८९)- येनवाले शत्रुओंको मार करनेवालोंमें प्रमुख शत्रुहीरेमें नीमुल्य - यह अग्निमें मैं प्राप्त होता हूँ, उसकी मैं उपस्थान करता हूँ। उससे मैं मित्रता करता हूँ, उसके पास जाकर मैं रहता हूँ, उसके आश्रयमें मैं रहता हूँ।

विश्वस्य हरतिः सद्योमिः पाहि (६)- सभी शत्रु-ओंसे अपनी महती शक्ति द्वारा हर्षादा त्राक्षण कर।

मर्यस्य द्विपः पाहि (६)- देव करनेवाले मनुष्यों और शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर।

अग्निः अग्निर्भ अर्ह्य (११)- अपनी शक्तिये हमारे शत्रुओंको नष्ट कर दे।

रुद्रः (१५), १५- रुद्राग्निः रुद्राग्नेयम् (१५)

अग्निः तिरमेन द्योचिपा विश्वं अग्निर्भं गिर्यसत् (११)- अग्नि अपनी सोक्ष पशानाओंसे सब भूतार्थिक जगते बाते शत्रुओंको मारता है। 'अग्निः'- अत्यधिक खानेवाला शत्रु (अग्नि इति अग्निः)।

तः अहसः दीपतः रुद्रः (१५)- हमारा चापी हस्तक शत्रुओंसे संरक्षण कर।

अजयः तपिष्ठे प्रतिबद्ध (१५)- बुद्धिसे रहित चरा हरण रहनेवाला तू अपने तेमसे शत्रुओंको मार दे।

विश्वपतिः रक्षसः तपामा (१५)- जनाओंका तालन करनेवाला अग्नि राक्षसोंको तपार नष्ट करता है।

सनात् यातुधाना मृणसि (८०)- हमें पाष्ट पीरा देनेवाले शत्रुको तू नष्ट करता है।

त्वा पृथनासु रक्षांसि न शिग्युः (८०)- तुझे बुद्धिसे राक्षस जीत नहीं सकते।

सहमूरान् कव्यादा अनुवृह (८०)- मूर्खोंके साथ रहनेवाले और कव्या गाव खानेवाले जो शत्रु हैं, उन्हें नष्ट दे।

ते देव्यायाः हेरयाः मा मुह्यत (८०)- वे शत्रु [तेरे] विश्व कर्मासे न हूटें।

हरसा यातुधानस्य हरः सर्लं विश्वतः परि प्रति- मृणाहि (१५)- अपनी शक्तिये तुझे सबके संहार करने-वाले बलको सब तरफसे नष्ट कर।

रुद्रसः बलं मृणज (१५)- राक्षसोंका बल नष्ट कर।

शिवाः अपकरत् (१०२)- शत्रुको दूर कर।

सद्य मर्यः रिपुः मायया चान न ईहाते (१०४)- उसको मारनेवाला शत्रु अपनी चतुरतासे फिर शक्तिकामी न पड़े।

स्यं वृजिर्भ रिपुं दुराभ्यं स्तेनं दृषिष्टं जवास्य (१०५)- उस चापी और कठिनतासे धरम करने दाय्य बोर शत्रुको दूर कर दे।

मायितः रुद्रसः तपसा निर्वह (१०६)- कपटी राक्षसोंको अपने तेमसे जला दे।

सद्ये कंचित् अग्निं आ सासहाम (१११)- अपने धरम अपना राक्षसों कोई खाक शत्रु आ जाये तो उसे हम पराजित करें।

विश्व रक्षांसि प्रतिपेयसि (११५)- सब राक्षसोंको नष्ट मारता है।

इस प्रकार अपने सब शत्रुओंके वैयक्तिक और राष्ट्रीय शत्रु-ओंके नाश करनेका विचार इस आग्नेय काण्डमें किया गया है। 'सद्य' समस्त और सग स्थानमें शत्रुओंके नाशके लिए दृष्ट, रुद्रा रवी इत्या प्रकट की जाती है। मनुष्य इस प्रकार अपने शत्रु-ओंको दूर करनेका प्रयत्न करें। अपनी शक्ति बचावें, अपने संभ्रमनका बल बचावें, अपने शस्त्रास्त्रोंको और घेनाओंका बल बचावें और अपने बाहर और भन्दारके घनी शत्रुओंको दूर करें।

### घोडे

अग्नि अपने रथमें सेलगे रोकनेवाले घोड़ोंको जोतकर मारता है। इस विषयमें कहा है—

ये तव स्वापयः आशयः अभ्यासः अर्तं दहगितं युज्य दि (२५)-



जो तेरे चराम प्रकारचे ललितेन और बेगसे जानेवाले होते हैं, जो तुम बहुत सीधे बोकर ले जाते हैं, उन धोखोंके वृत्त्यने रसमें जोड़कर शरीर था ।

यह बोझोंका नग्न आन्तरिक है, यहाँ बोझोंका तात्पर्य अमित्री किरणोंसे है, क्योंकि यह अति धोखेवाले रसमें बैठकर बही जाता नहीं ।

शरीर रूपी रसमें बैठकर आत्मा रूपी अति इस वृत्तों पर उतरती है, और इस रसमें सब देव अंध रूपसे आकर बैठते हैं । यह वर्णन मिलकुल ठीक है । इसके सम्बन्धमें आगे बिलाले करते हैं ।

इस प्रकार अमित्री रसके धोखेका वर्णन आन्तरिक है ।

### संरक्षण

अति अपने मर्कोंका संरक्षण करनेके लिए बुद्ध करता है, यह स्पष्ट है । अपने मर्कोंके चतुर्भोंसे दूर करने और उनको सुरक्षित रखनेके आतिरिक्त उद्योग और कोई उद्देश्य नहीं है । मज्जन इसको अपनी इच्छित रखकर अपनी चरित्र बलमें और निर्मम होकर रहें ।

रस आत्मा समयाः ( ५२ )- हे अति । तू हमारा संरक्षण करनेवाला अधिक है ।

आत्मा धरेपर्य अथाः यामि-वेदमंत्रोंकी सहायतासे मैं सतत संरक्षण प्राप्त करता हूँ । वेदमंत्रोंने जैसे कहा है, उद्यते अतुष्टार धर्मा अपना भल स्वयं बलमें, सब अपना संरक्षण स्वयं करें । यही 'चरेपर्य अथाः' लेख संरक्षण है ।

शरीर-शोचिर्था अति अवसे गद्ययामिः इच्छिष्य ( ५५ ) विशेष तेजस्वी अमित्री अपने संरक्षणके लिए वेदमंत्रोंसे रक्षित करी । इन वेदमंत्रोंकी रक्षित करते हुए अमित्री गुण कीनसे है, वह देखे, उन्हें अपने आन्दर धारण करे, इस प्रकारकी चराम बुद्धि सहायक की हो, वह अपने संरक्षणके लिए प्रयत्न करे और गेह करे ।

अथाः नः ऊत्ये ऊत्येः सुतिष्ठ ( ५७ )-हे अति ! हमारे संरक्षणके लिए क्या रह । ( अथाः ऊत्ये-ऊत्यलनं ) अमित्री जगत्तामें हमेशा ऊपर ही जाती है यानी हमेशा नीचेकी ओर बढ़ता है, पर अति कभी भी नीचेकी ओर नहीं झुकती, उद्यते जगत्तामें सर्वदा चली रहती है । हमेशा स्थिर और सदा रहना नीरसाका लक्षण है । 'समं कायचित्तोरोमीयं धारयन् प्रचलं स्थिरः' ( गीता ) अपने शरीर, वर्णन और शिरकी सदा रखकर खड़े रहें, जैसे और चले, वह नीरसाका चेतक है, और यह शोभापुष्ट कारण होता है ।

त्वं यस्य सत्यं आधिय, स तव सुवीर्यायिः राज कर्मभिः ऊतिभिः प्रतरति- जो तुझसे मिलता करता है, वह तेरे उच्च, नीरसापुष्ट, नतसे युक्त संरक्षणोंके कारण तुझको पार हो जाता है ।

ययं तव सत्ये मा रिपाम ( ५९ )- हम तेरी मित्रतामें नष्ट न हो ।

विभ्वाः माथा अवांसि ( ५५ )- शत्रुओंके सब कपट आलोको दूर करवा हुआ तू हमारा संरक्षण करता है ।

मातिः अदितिः ऊत्य दिवा नः आ रामत्, सा शोचतिः अथाः करत् ( सं. १०२ )- दीनतासे रहित होकर, मनन चरित्र और संरक्षण शक्तिके साथ दिन आज हमारे पास आया है, उसने हमारे लिए श्रुत और चातिरिक्त निर्माण किया है ।

यह संरक्षणकी शक्ति है । 'अ-दिति' का अर्थ है 'अ-दीनता' अपनी मुक्ति कभी भी दीनताकी मायनासे युक्त नहीं बनी चाहिए । अपनेमें कभी दीनताकी मायना ( Inferiority Complex ) नहीं आने देनी चाहिए । उच्च दीनतासे रहित होकर मनुष्य सर्वथा बलसाथ युक्त रहे । संरक्षण शक्ति दीनतासे साथ कभी नहीं गड़ी बरती । अदीनता और संरक्षण शक्तिकी जोड़ी रहती है । वह दीनता रहित संरक्षणका सामर्थ्य हमें आज प्राप्त हुआ है । दिनमें इस चरित्रोप कर्मोंमें संलग्न रहते हैं, उच्च धर्मच सदाशुक्त संरक्षण शक्ति हमारे पास आगत रहती है, इस प्रकारकी जगत्तापुष्ट संरक्षणकी शक्ति हमारा संरक्षण करती है । 'मातिः-अदितिः-ऊतिः' मुक्ति, अदीनता और संरक्षण शक्ति ये तीनों ही मनुष्यकी उन्नति करनेवाले होते हैं ।

### धनकी प्राप्ति

यद्युद्योही धनकी आवश्यकता रहती है । प्रत्येक कार्यमें धनही जरूरत होती है । अति एक धनकी 'देनेशला' है । इस लिए उसे 'दुविण-सु' ( ५४ ) कहा है । स्पष्ट उपाय धन प्राप्ति है ।

अस्वरूपे महे ऊत्ये विचलत् आ मर ( १० )- हमारे महान् संरक्षणके लिए हमें भाग्य धन है ।

नः रवि चोत्ते ( २२ )- वह अति हमें पत देता है ।

दातुये रत्नानि दधत् ( २० )- वह दानयोग मनुष्यको दान देता है ।

उपसः विचलत् खिन्नं राधाः दातुये आ यद् ( ५८ )- उच्च आलो वेदमंत्रों और अद्भुत धन प्राप्ति के ।

यसो । त्वं विश्वः । ऊत्या राधांसि नः चोद  
( ५१ )— हे सबको बसनेवाले । तू विश्वभूषण सप्तम्यवाला है ।  
हमारे संरक्षणके साथ अनेक प्रकारके धर्मोंको हमारे पास भेज ।

त्वं अस्य रायः रयीः आसि ( ५१ )— तू इस धनका  
रयी है, इस धनका सनेवाला है ।

हे पाषाक । नः शंस्यं ययोर्युधं रयिं राय ( ५३ )—  
हे पवित्रता करनेवाले अग्नि देव । हमें ययोर्युध, आगु यहागे-  
वाला अन्धरा ययोर्यो बहानेवाला धन दे ।

सुनोतां पुष्टयूहं सुययस्तरं नः राय ( ५३ )—  
उत्तम मार्गसे, उत्तम प्रशंसनीय तथा मनुको बहानेवाला धन  
हमें दो ।

विश्व्या यस्तु दीयते ( ५४ )— वह सब तरफके धन  
देता है ।

भुवं अग्निं नरः सुदीतये छर्धिः ( ५५ )— इस सुप्र-  
सिद्ध अग्निसे लोग प्रकाश पुष्ट घर जागते हैं ।

यः मर्तः राधे निनीयति ( ५६ )— जो मनुष्य धनके  
लिए तेरी उपासना करते हैं ।

अयं अग्निः सौभगस्य राय ईशे ( ६० )— यह अग्नि  
उत्तम देवसे और धनका स्वामी है ।

स्वराष्टव्य गोमस्तः ईशे ( ६१ )— उत्तम सन्तान और  
गौप्यका स्वामी है ।

धार्यं यस्मिं यासि च ( ६१ )— स्वीकार करने योग्य  
धन देते हो और स्वयं भी प्राप्त करते हो ।

ते मद्रा रातिः इह अस्तु ( ७५ )— तेरे कर्मकाग करने-  
वाले धन हमें यहाँ मिले ।

दिपष्टे ते पर्वांसि यधुनि यन्ता तनुषा भवतु  
( ७७ )— तू अपने उपासकों अन्न और धन देनेवाला और  
उड़के शरीरका भरपूर प्रसार संरक्षण करनेवाला हो ।

ओजिष्ठं पुमं भरमयं माधर ( ८१ )— वह बड़ा-  
मेवाने तेजस्वी धन हमें माधर दे ।

पृथक्त्वं स्वयं मष्टिषी ययिः स्वयं यात्रा उदीरले  
( ८५ )— बहुत कारा धन हमें दे । तुमसे बहुत कारा धन  
और अन्न हमें मिले ।

स्या महे राधे स्वमिधीमहि ( ९१ )— अत्यधिक धन  
प्राप्त करनेके लिए आज तेरी स्तुति करते हैं ।

अधमे मदि अयः ददि ( ९५ )— हमें बहुतसा यकलों  
धन दे ।

मद्रा रातिः ( १११ )— तेरे धन कर्मकाग करनेवाले हैं ।  
तत् धुम्यं मामर ( ११३ )— उह तेजस्वी धनको  
हमें दे ।

अयं भुयः रयीषां आचिकेतत् ( १०१ )— यह अन्ध  
अग्नि धर्मोंको जानता है, धन देनेसे प्रसन्न होता है, यह जानता  
है ।

धनके लिए मनुष्य अग्निही उपासना करते हैं, क्योंकि धन  
प्राप्तिके उत्तम मार्गको वह जानता है ।

### बहवराशि

बहवराशिका वर्णन जो इस आग्नेय काण्डमें है, वह इस  
प्रकार है ।

समुद्रवाससं माग्निं आहुवे ( १८ )— समुद्रके अन्तर  
निवास करनेवाले अग्निही मैं स्तुति करता हूँ । समुद्रमें बहवराशि  
रहती है ।

### सूर्य और अग्नि

सूर्य गुणकर्म रहता है । उसका आग्नेय रूप है, उसका  
वर्णन सामवेदके इस अग्नि काण्डमें इस प्रकार है—

परो दिवि यत् इष्यते, आदित् प्रत्यस्य रेतस-  
वासरे ज्योतिः पश्यन्ति ( २० )— गुणकर्म जो नमक है,  
वह प्राचीन सूर्यका तेज प्रकाशित होता है, उधे मनुष्य देखते  
हैं । सूर्यके उदय होनेपर जो सूर्यका तेज चमकता है, वह  
महान् तेज है, उसीको सप्त मनुष्य आकाशमें देखते हैं ।

विश्वया सूर्यं हवो केतयः जातवेदस देवं उग्र-  
हन्ति ( ३१ )— सभीको सूर्यका दर्शन हो, इसलिये प्रकाशके  
द्वारे ज्ञानी देवकी-सूर्य की अग्निही-आकाशमें पारण करती  
है ।

वह आकाशमें दीप्तनेवाला सूर्य अग्निका ही रूप है ।

### अग्निमन्यन

यहमें विश्व अग्निका प्रयोग होता है, वह दो अग्निवीरोंके  
संयुक्तसे उत्पन्न होती है । और उसीका प्रयोग किया जाता है ।  
अग्निही और स्वयंकी इस प्रकार दो अग्निवा होती हैं । उन  
दोनोंका मध्य करके वह अग्नि उत्पन्न की जाती है, और उसका  
मध्य ऊपरमें स्थापन किया जाता है, फिर उधे उधे इनके योग  
पदार्थको आहुतिमें ही लाती है । इस क्रियाका वर्णन इस  
आग्नेय काण्डमें इस प्रकार है ।

अथर्वा ह्यो विश्वस्य पाषातः सूर्योऽनुकृतात् निर-  
मन्यत ( ५ )— अथर्वाने इस अग्निही स्तुति करनेवाले

तब अग्निशोके समूहमें शिखरानाँव छुटकर मय करके उपस्थ किया है । इस पुच्छरका अर्थ नीचेकी अग्नी है । मयमेवे वहाँ अग्नि उत्पन्न होती है । अगर्वा यज्ञका 'मक्षा' होता है, उसकी निरीक्षणमें अग्नि मन्त्रण होता था ।

**पुच्छर**— यज्ञ, सन्तानकी धारा, मय, इवा, अन्तरिक्ष, पानी, दुग्ध, हाथीकी सूँके आगिका हिस्सा, तात्मान, साँप, सूँ और मेघ ।

**धाघतः**— आता कर्ता मय, रक्षति करनेवाले ।

**अग्निं देवा जनयन्त ( १७ )**— अग्निको देवाने पैदा किया ।

**दिव्यं मूर्धांनं पृथिव्याः अरतिं वैश्वानरं ऋजुमाजातं अग्निं ( १८ )**— पुच्छरके ऊँचे स्थान और पृथ्वीके नीचे स्थान, इस प्रकार इन दोनों अग्निशोके यज्ञमें वैश्वानर अग्नि उत्पन्न हुई है ।

**नर दीधितिभिः अरण्योऽस्त्युत्तं प्रवास्तं हूरे हृद्यं पुष्टपतिं व्यधुं अग्निं जनयन्त ( २२ )**— वन करनेवाले ऋषिय अग्निशोके मयकर प्रयत्नको योग्य, हूरे दीधनेवाले, पुष्टस्थानी हूरे, निरन्तर प्रगति करनेवाले, उवाच-अग्नि तेजस्वी दीधनेवाले अग्निशोके उत्पन्न करते हैं ।

हाथीके अग्निशोके मयकर अग्निशोके अग्निशोके उत्पन्न करने के लिए उत्पन्न करते हैं ।

**जातवेदा अग्निः अरण्योः निहितः दिवे दिवे ईक्ष्वा ( २५ )**— जातवेदा अग्नि अग्निशोके उत्पन्न होनेके बाद उसे वन ऊपरमें स्थापित करते हैं, और प्रतिदिन उसमें हवन किया जाता है ।

**अग्निं जनानां समिधा अयोधे ( २३ )**— अग्नि ऋषीशोके समिधावे प्रयत्नलित किया जाता है ।

**अयं अग्निः दिव्यं ककुत्तं पृथिव्या मूर्धा पतिमयां देतांसि जियति ( २४ )**— यह अग्नि शूलिकके उच्च भागपर तथा पृथ्वी पर जगत्के उत्पन्न स्थानपर रहनेवाला समीक्षा प्राप्त करनेवाला है, और यह कर्मके बलको प्राप्त करता है ।

इस प्रकार नीचे और ऊपरकी अग्निशा मयकर अग्नि उत्पन्न की जाती है । अग्निः यह पहले मान्य होता, कि यज्ञमें अग्निशोके अग्नि के उच्च भाग की जाती है, उत्पन्न समस्तमे यह सब आत्मा ।

अब यहाँ अग्निशोके विषयमें जिसके कुछ ज्ञान हो इसलिए सेलेपसे उत्पन्न विचार करते हैं ।

अग्नि उत्पन्न करनेवाली दो अग्निशो होती है, एक नीचे होती है और दूसरी ऊपर होती है । दोनोंको विष्णुने अग्नि उत्पन्न होती है ।

'पृथिवी' यह नीचेकी अग्नि है, और 'शुलोक' यह ऊपरकी अग्नि है इन दोनों अग्निशोके मयमेवे उत्पन्न रूपी अग्निशो उत्पन्न होती है । इन दोनों ही अग्निशोमें गति है ।

जब बादल आगमें टकराते हैं, तब उनसे बिजली हवी अग्नि पैदा होती है, जिसे हम अपनी भाषामें बिजलीका बग-कना कहते हैं ।

ही और पुच्छर ये दो अग्निशो हैं । ही नीचेकी और पुच्छर ऊपरकी अग्नी है । इन दोनोंके सम्मिश्रणे अग्नि रूपी पुन उत्पन्न होता है ।

जिया अग्निशो है और आचार्य उत्पन्नशी है, इनके सम्मिश्रणे 'शानी' उत्पन्न उत्पन्न होता है । जो शानामिने प्रभावित होता है ।

इस प्रकार यह अग्नि उत्पन्न होती है : ये सभी बन्दनाके योग्य हैं । इनको धन लेण नमस्कार करते हैं । यशामि सबका प्रतीक है । इस यशामिने लिए सब नमन करते हैं, इस विषयमें नीचेके नर मय देखने योग्य है ।

### अग्निशो नमस्कार

**दिवे दिवे दोषाशस्त धिया नमो भरग्त एमसि ( १४ )**— प्रति दिन और रात्री बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुए हम तेरे पास आते हैं ।

**अच्छरायं सन्नयं अग्निं नमोभिः चन्द्रध्वे ( १५ )**— यज्ञके समाप्त अग्निशो नमस्कारों अथवा अग्निशो आहुति-शोके नमस्कार करते हैं । नमः— अथ, नमन,

**ये कृण्वन् नमस्यन्ति ( १६ )**— जिण अग्निशो मनुष्य नमस्कार करते हैं ।

इस प्रकार अग्निशो नमन किया जाता है और इसमें अग्निशो आहुति की जाती है ।

### प्रकाशयुक्त ज्वालायें

अग्नि प्रकाशसे युक्त ज्वालायेंशाला होता है । यह कर्ता इस अग्निशो प्रयत्नलित करते हैं ।

**कण्वे दीद्वे ( ५४ )**— कण्वे आभनमें आह अग्नि प्रकाशित अथवा प्रयत्नलित होता है ।

**आभ्वते जनाय ज्योतिः ( ५५ )**— लोगोंने यह निरन्तर रहनेवाली ज्योति प्रकाशित होती है ।

**प्रतः जाता उदित ( ५६ )**— यज्ञके लिए प्रथम अग्नि उत्पन्न की जाती है, फिर बादमें वह प्रकाशित होती है ।

**अनुत्वा द्ये ( ५७ )**— अनन्तरीन मनुष्य द्वेसे हमेशा धारण करते हैं ।

अग्निशो प्रयत्नलित होने पर उसे स्थान देकर उच्चका उत्पन्न किया जाता है, क्योंकि वह अग्निशो होता है । और अग्निशो उत्पन्न होता ही चाहिए ।

## अतिथिका आसन

अथशरे यर्हिः ( २८ )— यज्ञार्थं आसनं फैलाया हुआ है ।

यर्हिः आसने इत्येष ( २९ )— आसनपर बैठनेके लिए था ।

यज्ञमें अग्निके समान सब देवोंके लिए इसी प्रकार आसन फैलाकर रख दिए जाते हैं, और देव गण आकर उनपर बैठते हैं ।

## वीर पुत्र

यदि वीरः स्वात् मर्त्ये अग्निं इक्षीत ( ८२ )— यदि वीर अपना पुत्र होता है, तो मनुष्य अग्निमें प्रज्वलित करके उसमें हवन करते हैं ।

## अग्नि की स्तुति

आग्निर्मेति अग्निं उपसन्नं होता है । उसे यज्ञ कुण्डमें स्थापित करके उसमें घनिभामें बालकर प्रदीप्त करते हैं और आग्नेयवर्ण वस्त्रों स्तुति करते हैं । इस स्तुतिके ' विष्णव्या ' कहते हैं । इस स्तुतिके विषयमें अग्नि काण्डमें इस प्रकार लिखा है—

मेष्टे अतिथिं स्तुते ( ५ )— मैं इस आग्नि की स्तुति करता हूँ ।

इतरा गिरा सु प्रवाणि ( ७ )— मैं अधिक स्तुति करता हूँ ।

इयं गिरा कामये ( ८ )— अपनी वाग्विसे हुम्न प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ ।

यजित्वे गिरा श्रज्जले ( १२ )— मैं पूज्य अग्नि की अपनी वाग्विसे स्तुति करता हूँ ।

पिये दिवो यज्ञियाय वज्राय इशीर्षं स्तोम ( १५ ) प्रत्येक मनुष्यके हितके लिए पूजनीय तथा अनुमोदकी कानिहाके अग्नि की स्तुतिके ये श्रुतार स्तोत्र हैं ।

अयि स्वरपधर्माण अग्निपिशासनं देवं उपस्तुहि ( २१ )— आगो, अग्ने, धाम, अग्ने, अग्ने, और, देव, अग्ने, पूज्य करनेवाले अग्नि देव की स्तुति कर ।

पथं जातयेदसं असृत्, मियं मित्रं यः, अग्नेऽसिपम् ( २५ )— इस जमी, अग्ने अग्नि की, मित्र मित्रके समान, स्तुति करने है ।

यथा ममसा, ऊर्जानपानं पियं येतिष्ठं वरति स्वप्नरं विश्वस्य दूतं अग्निं आहुषं ( ४५ )— यजमानों समस्त लोग न करनेवाले, मित्र और कनको देनेवाले अग्नि, देव, काम कर देनेवाले, विश्वके दान अग्नि की में स्तुति करना है ।

यं अग्ने इक्षते, वेधवतीनां युक्तां पिशां यक्षं

सुक्तेभिः चकोभिः घृणीमहे ( ५९ )— अग्नि देव अग्निमें प्रज्वलित करते हैं, सब सब देवदेवों प्राप्त करनेवाले प्रजाओंके अग्नि अग्नि की हम सुक्तेसे और आपनोंसे स्तुति करते हैं ।

अहंते जातयेदसं इमं स्तोम, रथं इष, मनीषया रथं महिम ( ६६ ) पूज्य अग्नि के लिए ये स्तोम, रथके समान, अपनी बुद्धिसे अग्नि पूर्यक कहते हैं ।

सुष्टुतयः गिराः स्वां यामपन्ति ( ६८ )— कतक स्तुतिके यजमानोंसे तेरा वर्णन करते हैं ।

प्रशस्तं सज्जामं प्रस्तौतु ( ७८ )— प्रशंसित समस्त अग्नि की स्तुति करो ।

युक्तेभ्यः विद्याः अतिथिः अग्निः प्रताः स्तवेत् ( ८५ )— सबके अग्नि, और प्रजाओंके लिए अतिथिके समान पूज्य, अग्नि की प्राप्त-प्राप्त स्तुति करने चाहिए ।

यः कुर्ये श्वस्य मग्मभिः पचः स्तुये ( ८७ )— अपने यज्ञमें रहनेवाले अग्नि की उत्तम वृक्षकारक स्तोत्रोंमें और भागोंमें मैं स्तुति करता हूँ ।

विषां उप्येतीयं विजिते येधसे अग्ने पूज्यं पूर्वं पचः प्र मरत् ( ९८ )— अग्नि की उप्येतीयके कारण करनेवाले तथा ब्रह्म करनेवाले अग्नि के लिए, महान् और बहुत स्तोत्र करो ।

प्रतीर्या इक्षिष्य ( १०२ )— अनुक प्रतीकार करनेवाले अग्नि की स्तुति कर ।

मंक्षिष्याम्यस्तुताग्ने पूजते युक्तायोजिवि आग्नेयप्रशः यत् ( १०७ )— महान्, यज्ञ करनेवाले, बड़े, धृष्ट प्रकाश-वाले, अग्नि के लिए स्तोत्रोंका मान कर ।

यजित्वं देवभा देवं अमर्यं होतारं यज्ञस्य सुवतु स्वा ययुमहे ( ११९ )— यज्ञ करनेवाले, देवोंमें, रहनेवाले, अमर होना, यज्ञके कर्म उत्तम ( विधि करनेवाले दान अग्नि देव की में स्तुति करता है ।

इस प्रकार अग्नि की स्तुति का वर्णन करनेवाले अनेक इस अग्नि काण्डमें हैं । अग्नि के रूपों और आधुनिक रूपों हस्त प्रकार अग्नि की स्तुति की जाती है ।

## अग्नि दूत

इसमें अग्नि की हस्त किया जाता है, जो हाँके समान पर पहुँचनेवाला काम अग्नि करता है, इस प्रकार यह अग्नि काम दूत है—

दूतं अग्निं घृणीमहे ( १ )— इस दूत का कार्य करनेवाले अग्नि की हम स्तुति करते हैं ।

विष्णवेदसं अमर्यं दूतं ( १२ )— यह अग्नि हमको आग्नेयवाला और अमर दूत है ।

इसमें जो कुछ भी होता जाता है, वही यह जहाँ पहुँचाना होता है, पहुँचा देता है । इस कारण अभिषि किया हुआ हवन अनेक प्रकार से उपयोग होता है । व्यक्ति और समाज दोनोंका लाभ इस प्रकार हो सकता है । वस्त्रों वही लाभ होता है ।

यज्ञ

यज्ञाभिषि अनेक पदार्थोंके हवन किए जाते हैं, यह सभीको मान्य है । अनुष्ठीके बीच कालक्रम से ही उत्पन्न होते हैं, उन लोगोंके लिये यज्ञ किया जाता है । ऐसा भोग्य आहारमें कहा है । आरोग्य बढ़ानेके लिए यज्ञ किए जाते हैं । इस यज्ञके विषयमें इस काण्वमें इस प्रकार कहा है—

१ वाचराणां स-ना ( ११ )— आर्द्धघूर्ण कर्मोक्तो करमेवात्मा । न-स-न गिरमेवात्मा, उन्नत करमेवात्मा, हिंसा रहित कर्मोक्तो उन्नत करमेवात्मा ।

२ सः यज्ञं देवाः सर्वे पत्तिराधसं धीरं सच्छ नयन्तु ( ५६ )— हमारे यज्ञमें सब देव, मानवोंका दिल करने-वाले, मनुष्योंका मन बढ़ानेवाले धीर अभिषि वहाँ जायें ।

३ इयं गृहपतिः, नः अघोरे इयं कोता, पोता प्रवेत्ता ( ६१ )— तू परमात्मा साक्षी है, हमारे यज्ञमें तू देवोंको बुलाकर लानेवाला, पवित्रता करनेवाला और उत्तम प्रकृति केतना देनेवाला है ।

४ शिरोऽपि लक्ष्म्यः यज्ञः चित्रः यः पातये मातरोऽपि न एति ( ६४ )— इस तरह अभिषि कालकला विचित्र जीवन क्रम है । यह अपने पौषणके लिए अपनी माता-आत्मा-के पास जाता, तक नहीं है ।

५ महि दुल्यं चरन् यवक्ष ( ६५ )— कल्पक होनेके बाद ही महान् दत्तके कामकी करते हुए हम देवोंको पहुँचाता है । इस प्रकार यह यज्ञ करनेवाला है । इस अभिषि हवन किया जाता है । सब विषयक मंत्र इस प्रकार हैं—

हवन

यहाँमें हवन मुख्य है । हवन करनेके पहले अभिषि रतुति की जाती है । इन रतुति-मंत्रोंके प्रारम्भ होनेपर अभि प्रवृत्त की जाती है, फिर बादमें उत्तम हवन किया जाता है । इसका वर्णन इस काण्वमें इस प्रकार है—

१ घीतये हृद्यदातये गुणानां जायादि ( १ )— इति मरण तथा देवोंकी इति पहुँचानेके लिए गुण अभिषि रतुति की जाती है, तू हमारे पास ला ।

२ विमेषां यशामां होता ( २ )— सब यज्ञोंमें तू होता बनता है ।

३ देवेभिः मानुषेभ्यो हितः ( ३ )— देवीवारा मनुष्योंमें यह अभि स्थापित की जाती है ।

५ ( धाम, हिंसी )

४ सामिदः शुक्रः माहुता ( ४ )— प्रजालि करके शुद्ध अभिषि आहुति दी जाती है ।

५ हवयवाहः ( १२ )— इति जहाँ पहुँचाना होती है वहाँ पहुँचाता है ।

६ भवसा आग्नि इन्धानोऽभ्यः धियं सखेत ( १९ )— मन लगाकर अभिषि अन्धबलान् मनुष्य अपनी धृष्टा बसाता है ।

७ साहुताः सूरयः ति प्रियासः सन्तु ( २८ )— उत्तम आहुति देनेवाले शान्ति तुल्य भिय होते हैं ।

८ हे दीदियः । स्वा समिधामं घेघसः प्रियासः अविवासासि ( ४२ )— हे प्रकाशमान अभि । तुझे प्रदीत करके जानी विष तेरी सेवा करते हैं ।

९ भद्रः अघरः ( ११ )— यह कल्याण करनेवाला है ।

१० मर्तासः स्वा समिन्धते ( ४६ )— मनुष्य तुझे उत्तम रीतिसे प्रदीत करते हैं ।

११ भूमिः । गृहताः रोचनात् अभि अया तन्वा यधंस ( ५२ )— हे भूमि ! तुमको पर इस तेजस्वी शरीरको बचा ।

१२ हे सुक्रतो ! गिरा मम जाता पूषा ( ५२ )— हे उत्तम कर्म करनेवाले अभि ! अपनी शान्तिसे मेरे पुत्र, पौत्रोंका पोषण कर ।

१३ पूर्णो आसिचं विषधु ( ५५ )— पूर्ण भरे हुए शुभाके इस अर्पणके स्वीकार कर ।

१४ उतु स्त्रिचण्यं, उष पूणज्यं, आदिह देवः सः ओहते ( ५५ )— मर करके आहुति दो, फिर मरकर आहुति दो, इस प्रकार करनेसे अभि देव दुन्दे उन्नत करेंगे ।

१५ इधिया मा जुहोतन ( ६३ )— इति दण्योका हवन करो ।

१६ इह पदे पस्त्रानां रातद्वयं नमना समर्पय ( ६३ )— इन्हीं पर वस्त्र स्थापने करनेसे इति देनेवालेको नमस्कार करो ।

१७ अमल्यं विम्ये मर्तासः इदं इधये ( ८५ )— अमर अभिषि सब वस्त्र करनेवाले मनुष्य हवनोप वषाँका हवन करते हैं ।

१८ मानये अग्ने बृहद्वयः ( ८८ )— तेजस्वी अभिषि बहुतसे अन्नोका हवन किया जाता है ।

१९ हव्य-दातये अघये दान्ना ( १०४ )— इध पदार्थोंका जिसमें हवन किया जाता है, उष अभिषि अर्पण करो ।

२० स्वर्ते तं गृधय ( १०९ )— स्वर्गको इति वसुवाने-वाले अभिषि स्तुति कर ।

२१ देवयज्ञः हव्यं वा ऊहित्वे ( १०९ )— त देवोंका हवि पढ़ुंवाता है ।

२२ सु होता स्व-चरः पुरुप्रशस्तः वसुः ( ११० )— जिसमें सतम हवन किया जाता है, जिसमें सतम यज्ञ होता है, ऐसा यह अग्नि बहुतोंसे प्रशंसित और सनको बधानेवाला है ।

२३ आहुतः अग्निः नः भद्रः ( १११ )— जिसमें हवन होता है ऐसा ॥ अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला है ।

इन हवन मेंमोक्ष सतम रीतिसे बिचार हो गया, अर्थात् यज्ञ भवया यशसि हमारा ( भद्रः ) कल्याण करनेवाला किस प्रकार है, यह समझमें आ गया होगा ।

सर्व ५१म अंगिको अरणिओंको पिसकर सतम किया जाता है, उसे शुष्कमें स्थापित कर उसमें सभिधा तथा घोंदी आहुति देकर उसे जलाया जाता है । अग्नि जल करके आसपासकी हवाको गर्म कर देती है । वह गरम हवा ऊपर चली जाती है, और वहाँ चारों ओरकी हवा आ जाती है । यह किया अग्निके ज्येष्ठ रहने तक रहती है । यह जबतक चालू रहता है, तबतक पासकी हवा गरम होकर ऊपर आती है, और दूसरी हवा उसका स्थान ले लेती है । हवा शुद्ध होनेका यह एक लक्षण मन्त्रसे होता है ।

पहले हर घरमें हवन होता था । सबकी, यदि एक घंटा भर भी घरकी अग्नि जलती रही, तो घरकी हवाके ऊपर आने और बाहरकी हवाके ऊपर आनेसे घरकी हवा शुद्ध हो जाती थी । प्रत्येक घरमें अग्नि जलानेसे प्रत्येक घरकी यह हवा-पलटनेकी क्रिया समझमें आ जायगी ।

पहले हर औरत अथवा चट्टीके सम्मुखें बची बची गङ्गा-शालमें होती थी । उनमें बचे बचे यज्ञ होते थे । सबसे पहली सुती हवाके ऊपर आने तथा बाहरकी शुद्ध हवाके वहाँ आनेकी क्रिया चलती रहती थी । इस प्रकार यज्ञाग्निके रहनेसे वायु-परिवर्तन होता था, और वह लाभदायक था ।

गङ्गामें त्रेवत्त अग्नि ही नहीं जलती थी, अपितु जलमें गङ्गाका भी आहुतिके रूपमें समा जाता है । यह गङ्गाका भी अग्निमें जलता है और उसकी गुणें हवामें फैलती हैं, और उससे हवामें रहनेवाले रोगके कीटाणु नष्ट होते हैं । गङ्गाके घोंमे हवामें रहनेवाले रोगके कीटाणुओंको नष्ट करनेका उपाय गुण है । यज्ञाग्नि इस प्रकार वायुको रोगाणुओंसे रहित करने वाला है ।

दोके अनाया यज्ञमें ऋतुओंके अनुसार हवनीय प्रण्य भी होते जाते हैं । त्रिम ऋतुमें हवाके बदलनेसे त्रिम रोगोंका दोष मान्य है, उन रोगोंको नष्ट करनेवाला वनरूपतिओंके अथवा वन वनरूपतिओंके चारोंसे पैत्रावर दिए गए गन्धके बीजा

हवन किया जाता है और इस प्रकार यज्ञाग्नि रोग दूर करने-वाली और आरोग्य बधानेवाली है ।

अतु संधिषु वै व्याधिर्जायते ।

अतु संधिषु यज्ञाः क्रियन्ते ते गोपय प्राज्ञग ।

‘ ऋतुओंके संधिस्थानमें रोग उत्पन्न होते हैं, उन रोगोंको

नष्ट करनेके लिए यज्ञ क्रिये जाते हैं ’ यह गोपय प्राज्ञगया यह कथन इस प्रसङ्गमें देखने योग्य है । इस प्रकार यह शास्त्रीय दृष्टिके बहुत महत्वका है । यह व्यक्ति और समाजका आरोग्य बधानेवाला है ।

ऊपर सप्त-विषयक और हवन-विषयक मेंमें ‘ यह अग्नि हमारा सबसे सतम कल्याण करनेवाला है ’ यह जो वर्णन है, यह केवल स्तुति ही नहीं बल्कि शास्त्रीय दृष्टिके भी सत्य है । यह बात पाठकोंकी ध्यानमें रखनी चाहिए ।

इस दृष्टिके दोनोसे रोगमें कीमती वनरूपतिओंका हवन लाभदायक होगा, इसकी शास्त्रीय दृष्टिके खोज करके तथा अनुभव करके निश्चित करना चाहिए । अतः वैद्यों और शोधकोंकी चाहिए कि वे इस विषयमें खोज करें ।

इसके अलावा यह करनेवाले यज्ञमानोंकी, अग्निमेंमोक्षी को छुलेध्या और सद्भावना इसके पठित है, तथा मंत्रोच्चारणसे जो परिश्रमा मिलती है, यह अत्यधिक होती है । सबकी किसी भी मायसे साध नहीं आ सकती ।

इस प्रकार यह एक सत्यका अन्तर हवन करना कल्याणकारी है । इसलिए यज्ञ कर सकनेवाले लोगोंको इस तरह ध्यान देना चाहिए ।

### उपमा

१ मित्रे इय मिये ( ५ )— मित्र मित्रके समान ( अग्नि अग्निसे स्तुति कर । ) ( मे. २५ )

२ रथे न चरति ( ५ )— जैसे रथ देनेवाले रथकी स्तुति की जाती है ( उसी प्रकार अग्निकी स्तुति की जाती है ) ।

३ साहस्यन्ते सव्यं न ( १० )— ज्ञातम अयात् ( ज्ञानके लक्ष ) से मुक्त चोपेके समान ( वी. उवाताभर्तित मुक्त है सब अग्निकों में नमस्कार करता है ) वहाँ चोपेके अयात् और अग्निकी जलाशयोंमें यज्ञमानता देखने योग्य है ।

४ मधोऽा प्रयमानि पात्रा न ( ४४ )— जैसे मधु ( सोमरस ) के सबसे प्रथम दिए आनेवाले पात्र होते हैं ( उसी प्रकार अग्निही सबसे पहले स्तुति की जाती है ) ।

५ स्वधिता देवः न ( ५० )— सूर्यके समान ( जैसे स्थान पर रहकर अथवा दान करनेवाला यह अग्नि है )

६ रथं इय ( ६६ )— रथके समान ( सुदृढ़रुद्धरथों का )

७ पर्वतस्य दृष्टात् व्यप. न ( ६८ )— जिस प्रकार

पर्वतों पर रहते हैं, ( उड़ी प्रकार अग्निके लिए स्तों रहते हैं )

८ अग्न्या आग्नि न जिरयुः ( ६८ )— जिर प्रकार पोंके आते हैं ( उड़ी प्रकार तैरे स्तुति तैरे वर्णन करके यथासी होती है )

९ धेनु इव ( ७१ )— गायके समान ( अग्नि सबेरे प्रज्वलित होती है )

१० यदा ह्य म यदा उल्लिङ्गनाः ( ७१ )— यदा वृक्ष जैसे अपनी हाथाओंके फैलाता है, ( उस प्रकार अग्नि अपनी ज्वालाओंको फैलाता है ) ।

११ द्यौः इव अस्ति ( ७५ )— पुलकेके समान ( अग्नि प्रकाशित होता है )

१२ यमिणीभिः सु-भृतः गर्भ इव ( ७५ )— यमिणी जियाँ जिस प्रकार गर्भ धारण करती हैं ( उस प्रकार दी अग्नि-जिह्वोंके बीचमें अग्नि रहती है ) ।

१३ सूर न ( ८१ )— सूरके समान ( अपने तेजसे अग्नि प्रकाशित होता है )

१४ मित्रा न ( ८४ )— सूरके समान ( अग्नि यथाके प्राप्त करता है )

१५ मित्रं न ( ९९ )— मित्रके समान ( अग्निको आपने स्थापित करते हैं )

१६ नैमिः चक्र न ( ९४ )— कैध ( रथकी ) नाभि चक्रकी धारण करती है, उसी प्रकार ( इस स्तौन अग्निके आधार-यके रहते हैं )

१७ महस्य तोदस्य शरण इव ( ९७ )— बड़े पर्वत-तुके शरणके समान ( मैं अग्निसे शरण लूँ )

ये उपमायें अग्नि-वाचकमें आती हैं । इनमें ' न ' यह शब्द उपमायेंके है, और ' इव ' ( समान ) के समान स्वभाव अर्थ होता है ।

### आग्नेय काण्डके सुभाषित

१ समिद्धः शुक्रः पृथ्वाणि जघनत् ( ४ )— प्रज्वलित वृक्षा अग्नि पृथ्वीको मारता है । पूत्र- दोष, ऐंघोंकी पैदा करने गति कीयायु ।

२ हे सोम विभस्व्य अरतो, उत द्विपा मर्त्यस्य महोमि नः पादि ( ६ )— हे अग्ने । हम यज्ञियों और देव करनेवाले मनुष्योंसे अपने महान् धामस्थिते हमारा संरक्षण कर ।

३ अथर्वा र्यां निरमन्थत ( ९ )— अथर्वाने वृद्ध मय करके उत्पन्न किया ।

४ अक्षर्यं मेहे ऊतये विवस्वत् आ भर ( १० )— हमारे वाम शंखके लिए निराक्ष करने योग्य भर दे ।

५ नः द्यौः देवः अस्ति ( १० )— तु हमें मार्ग दिखाने-वाला देव है ।

६ हे अग्ने देव ! ऊषयः ते आजसे नमः कृण्वन्ति ( ११ )— मनुष्य तैरे यज्ञके लिए वृक्ष नमस्कार करते हैं ।

७ अस्मै अग्निर्न अर्दया ( ११ )— इष्टके लिए तू शत्रुका नाश कर ।

८ धिक्मयेदसे अमर्त्यं वृतं गिरा मंजसे ( १२ )— सर्वज्ञ अथवा सब धर्मोंके साक्षी, अमर वृक्ष अग्निकी अपने अशुक्ल बनावा हू ।

९ दिव्ये दिव्ये द्योवायस्ता धिया नमः मरुतः । बर्ग एवा यमसि ( १४ )— अग्नि पृथ्वी और प्रतिदिन बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुए इन सैरे प्राप्त आते हैं ।

१० जरा-बोध ! विश्वे विश्वे यष्टियाय त्वाय द्यौःके स्तोम, तत्त्वं विविष्टि ( १५ )— हे स्तुतिके ज्ञात होनेवाले अग्ने ! प्रत्येक प्रजाजनके हितके लिए पूज्य और शत्रुकी स्वार्थवादी अग्निके लिए ये स्तोत्र पठे जाते हैं, उन्हें तू जान ।

११ अग्निः तिम्रेन तेजसा विभ्य अग्निण नि यस्तत् ( २३ )— अग्नि अपने लोकमें तेजसे सब साक्ष शत्रुओंको नष्ट करता है । अग्नि- आत्म, रोगरोगनाश कीयायु ।

१२ नः रविं यैतते ( २३ )— अग्नि हमें धन पैदा है ।

१३ हे अग्ने ! मृद ( २३ )— हे अग्ने ! हमें सुखी कर ।

१४ महान् अस्ति ( २३ )— तू महान् है ।

१५ देवयु जने वा अयः ( २३ )— ईश्वरकी वरादान करनेवाले मनुष्योंके पास सबकी वराप्राप्ति के लिए जा ।

१६ अग्ने ! नः अहस्यः दीपतः दक्ष ( २४ )— हे अग्ने ! हमारा वाम और शिवक शत्रुओंसे संरक्षण कर ।

१७ मन्त्र- प्रतिष्ठेः प्रतिवृत् ( २४ )— दुःखोंसे रहित तू अपनी ज्वालाओंसे शत्रुको जला दे ।

१८ नक्ष्य विदपते अग्ने । चर्यं शुभं ते तु पीर धीमहि ( २६ )— हे अग्नि ! अपने जने योग्य, प्रभावशाल अग्ने ! हम तेजस्वी तथा उत्तम बार तेरा स्थान करते हैं ।

१९ राजपतिः कविः दाम्नुषे रत्नानि वषत् ( २० )— अक्षर साक्षी और ज्ञानी वह नाम शान्तिन मनुष्योंके रत्न देता है ।

२० अथरे सत्यधर्मानं कविं धीमं उप स्तुति ( ३२ )— हिता रहित यज्ञमें सत्य धर्मका प्रचार करनेवाले अग्निही स्तुति करो ।

२१ देव्यं अमोघ-घातनं ( ३३ )— नष्ट अग्नि देव रोग हट करता है ।

२९ नः पतितये ज्ञं ( ३३ )- पाणी शीवेके लिए दम्पान-  
कारी हो ।

३३ नः शंयोः अभिजावन्तु ( ३३ )- हे जनों ! हमें  
प्राप्त कर द्युल हो ।

३४ चये जातयेदसं अमृतं प्रशंसिष्यम् ( ३५ )- हम  
हर्ष और अमर अमित्री प्रशंसा करते हैं ।

३५ दृष्टिः अर्चिभिः शुकेण गोविषा वीदिहि  
( ३७ )- पक्षी उशलाओ और छद्द तेजसे प्रकाशित हो ।

३६ विप्रपतिः रक्षस्वः तपामः ( ३९ )- तु प्रमाजोछ  
पालक और राक्षसोंको तपता देवेवाला हो ।

३७ हे जातयेद ! त्वे अथ उपवृष्यः देवाय आ वह  
( ४० )- हे ज्ञानी अमे ! तु आज रखे रहनेवाले देवोंकी  
से आ ।

३८ त्वे विचः, ऊत्या राधांसि नः चोदय ( ४१ )-  
तु विलक्षण छविवाला है । छेदकोंके साथ पनोंको हमारे  
साथ लेज ।

३९ नः तुवे शाघं विद्मः ( ४१ )- हमारे छत्तानोंको  
बधा दे ।

४० हे प्रातः ! त्वे स्व-प्रधाः ज्ञातः कविः ( ४२ )-  
हे राक्षस अमे ! तु प्रसिद्ध, सत्य और ज्ञानी हो ।

४१ हे पायक ! नः शश्वं यवोपृषं रविं वास्य  
( ४३ )- हे विश्व करनेवाले अमे ! हमें प्रशंसित तथा आलुको  
बढ़ानेवाला बन दे ।

४२ सुनीतिः, पुष्टवृहं सुयज्ञस्तरं नः रास्य ( ४३ )-  
उत्तम नीतिके मार्गसे मिलनेवाले, बहुवृद्धा प्रशंसित, उत्तम  
यज्ञको बढ़ानेवाले बनको हमें दे ।

४३ या विध्या यस्तु द्यते ( ४४ )- जो धन श्रद्धाके  
पत देता है ।

४४ आर्यस्य वर्धनं अग्निं नः गिरः वक्षन्तु ( ४० )-  
आर्योंका संवर्धन करनेवाले अग्नि स्तुति हमारी वाणी  
करती है ।

४५ अन्वा घरेण्यं अवः यामि ( ४८ )- वेदश्रवणों में  
छेद करण्य मागतो हूँ ।

४६ धृतं अग्निं नरा सुवीतये छर्दिः ( ४९ )- १५  
प्रसिद्ध आग्नेय लोग उत्तम प्रकाश युक्त घर भीतों हैं ।

४७ देवाः नमं पंकिराघसं वीरं अष्टव्य नयन्तु  
( ५६ )- ४७ देव मानव आतिस हित करनेवाले, यज्ञको  
शराही बनानेवाले योरको सत्य और छत्तानोंके मार्गसे ले  
जाते हैं ।

४८ हे अग्ने ! ऊर्ध्वः सुविह ( ५७ )- हे अग्ने ! तु  
ऊँचे स्थान पर रह ।

४९ यः वे दामाव स अमयशंसिनं सहस्रपोषिणं

योरं तन्मा घचे ( ५८ )- जो दूसरे हवि देवा है, वह खोज  
करनेवाले, हजारोंका पोषण करनेवाले वीर पुत्रको स्वयं पारण  
करता है, बन देता है ।

५० अयं अग्निः सुवीर्यस्य सौमगस्य ईशे ( ६० )-  
वह अग्नि वराम पराक्रम और उत्तम ऐश्वर्यका स्वामी है ।

५१ सु-अपत्यस्य ईशे ( ६० )- उत्तम छत्तानोंका  
स्वामी है ।

५२ धृष्ट-हृषानां ईशे ( ६० )- येनेवाले दनुजोंकी  
मारनेवालोंके वह सचसे सुख वीर है ।

५३ प्रसेतः यार्यं यक्षि ( ६१ )- तु ज्ञानी उत्तम धन  
देनेवाला है ।

५४ ऊतये सुमगं सुदंससं सु मत्तिं अनेहसं  
त्वा देवं ववुमहे ( ६२ )- अपने छेदकोंके लिए उत्तम  
आत्मभाव, उत्तम धर्म करनेवाले, पापियोंका नाश करनेवाले,  
पापरहित तुम देवको हम प्राप्त करते हैं ।

५५ हृषिया आ जुहोति, मर्त्ययध्वं ( ६२ )- हवर्तन  
इश्वरसे हवन करी, छद्दता करी ।

५६ ययं सव सवये मा रियाम ( ६६ )- हम तेरी  
मित्रतामें मष्ट न होंगे ।

५७ अग्निं तनयिन्नोः पुरा मयसे कृणुष्वं ( ६९ )-  
पहले अपने छेदकोंके लिए अग्नि को मित्रतामें वरण किया ।

५८ अग्निः उयसां अये अयोषि ( ७० )- अग्नि उषा  
वाक्य में भी पहले प्रयोजित हुआ ।

५९ नरः अरण्याः हस्तकृतं धृष्टपतिं अग्निं जित-  
यन्त ( ७२ )- अणुष्य आणियोंको एक दूसरेके ऊपर रह-  
कर हाथोंसे मचकर परेके लामों अग्निही वरण करते हैं ।

७० विध्वाः मायाः अवसि ( ७५ )- सब प्रमाजोंकी  
रक्षा करता है ।

७१ ते रातिः मद्रा ( ७५ )- तेरे शान वक्ष्या करने-  
वाले हैं ।

७२ नः सुजु-तनयाः स्यान्, ते सुमतिः अस्मे  
विजाया भुतु ( ७६ )- हमारे पुत्र पौत्र होंगे, वह तुम्हारी  
हृष्टा हमारे लिए सकल होवे ।

७३ सनाव यातुधानाव सुपसि ( ८० )- वरा हूँ  
पौत्र देनेवाले अनुजोंका नाश करता है ।

७४ स्वा पुतनासु रक्षांसि न जिम्युः ( ८० )- हमें  
युद्धमें राक्षस जीत नहीं सकते ।

७५ सहस्ररात्र कप्यावः अनुवह ( ८० )- मृत  
छद्दित नये गीश्वो बानेवालोंसे जला दाल ।

७६ ते देवपायाः देवाः मा सुक्षत ( ८० )- तेरे दिव्य  
शस्त्रोंसे कोई न छूटे ।

७७ ओजिषि धुम्ने असस्य वा मर ( ८१ )- ७७  
बनानेवाले तेजस्वी धन हमें मार दे ।



५८ पत्नीसे राखे नः प्र ( ८१ )- प्रसन्नित घन मिलनेका प्राग्वहमे बता ।

५९ वाजाय पन्था राखिस ( ८१ )- अन्न मिलनेके मार्गको दिख ।

६० यदि घोरः स्यात् मर्याः आग्निं इच्छीत ( ८२ )- यदि पुत्र हो तो मनुष्य अग्निको प्रयोजित करे ।

६१ अस्मिन् अमर्यं विश्वे मर्तासः हव्यं इच्छते ( ८५ )- इस अमर अग्निमें सब मनुष्य हवनीय पदार्थोंको हवन करते हैं ।

६२ वृद्ध-हन्तमं ज्येष्ठं आनघं अग्निं अगम्य ( ८५ )- वृद्धको मारनेवाले, ज्येष्ठ माताका दित करनेवाले, अग्निके पास हम आते हैं ।

६३ हे अग्ने ! हरता वासुमानस्य परं विश्वताः परि प्रति धृणीहि ( ९५ )- हे अग्ने ! अपने तेजसे दू पीडा-कष्ट देनेवाले राजाओंके कण्ठों से खे भोरेसे नष्ट कर ।

६४ रक्षसः धीर्यं शृण्वन् ( ९५ )- राजाओंको कण्ठ नष्ट कर ।

६५ अग्नेः वि अतिस्त्रियः राजसि ( १०० )- आनन्दित अग्नि वासुओंको इतकर घोषित होता है ।

६६ सा ज्ञातातिः मया करत् स्त्रियः अप ( १०२ )- वह शास्त्र और युद्ध देनेवाला अग्नि हमें युद्ध देने और वासुओंको दूर करे ।

६७ प्रतीक्यां हृदिष्य ( १०३ )- वसुओं पराजित करनेवालोंकी स्तुति कर ।

६८ अमृमीत-शोचिपं जातयेदसं यजत् ( १०३ )-

जिसके प्रयोजको कोई भी रोक नहीं सकता ऐसे इस अग्निमें यज्ञ कर ।

६९ तस्य मर्याः विष्णुः मायया चन ईषीत ( १०४ )- उसपर कोई भी मनुष्य वासु कपटसे भी धासन नहीं कर सकता ।

७० त्वं भुजिर्न रिपुं, दुराण्यं स्तेनं दधिष्ठि मयास्य ( १०५ )- त्व कपटी वसु और कठिनतासे वशमें आनेवाले बोरको दूर कर ।

७१ सुगं कृधि ( १०५ )- हमारे मार्गको सुगम कर ।

७२ हे वीर ! मायिनः रक्षसः तपसा नि दृढ ( १०६ )- हे वीर ! कपटी राजाओंको अग्नि, ज्वालासे जला दे ।

७३ हे अग्ने ! त्वं पश्य स्वयं आधिप, स्व तव ह्युर्वागमिः ऊतिमिः प्र तरति ( १०८ )- हे अग्ने ! दू मिश्रण भिन्न होता है, वह तेरे उत्तम धीरोंसे पुनः संश्लेषण होकर फिर से जाता है ।

७४ मग्निः नः सद्मः ( १११ )- अग्नि हमारा करवाण करनेवाला हो ।

७५ तत् प्रभं आ भर ( ११२ )- त्व तेजस्वी पत्नीको हमें भरपूर दे ।

७६ सवने कंचिद् अग्निर्न आ सासदा ( ११३ )- हमारे घरमें कोई भी वासु हो खे दूर कर ।

७७ वृष्यं जनेदस्य मभ्यु- हुरी बुद्धिवाले मनुष्योंको वीर भी दूर कर ।

७८ सु-मीतः मनुष्यः विभो विश्वा रक्षसि प्रति-वेचति ( ११४ )- समुद्र दुष्का अग्नि समुद्रके घरमें सब राजा-ओंकी दूर करता दे ।

## आग्नेय काण्डके ऋषि और देवताओंकी सूची

( १ )

ऋषः-संख्या	ऋग्वेद-संख्या	ऋषि	देवता	ऊर्ध्वः
१	६।१६।१०	मरद्वाभो	बाह्यैस्पत्यः	वायवी
२	६।१६।१	मरद्वाभो	बाह्यैस्पत्यः	"
३	१।१२।१	मेषातिभिः	वृषभः	"
४	६।१६।३४	मरद्वाभो	बाह्यैस्पत्यः	"
५	८।८४।१	उत्तमाः	काम्यः	"
६	८।७१।१	सुधातिपुत्रमीवो	आग्निर्हो	"
७	६।१६।१५	मरद्वाभो	बाह्यैस्पत्यः	"
८	८।११।७	वसवः	वसवः	"
९	६।१६।३	मरद्वाभो	बाह्यैस्पत्यः	"
१०	—	शामदेवः	"	"

( २ )

११	८।७५।१०	आयुस्वादिः	"	"
१२	४।८।१	वामदेवो	योतमः	"

अंश-संख्या	साधेयस्थान	साधेय	देशता	उद्गः साधनी
१३	८१०१११३	प्रयोगो मार्गवः	"	"
१४	११११३	मनुष्यछन्दा वैश्वामित्रः	११	"
१५	१११३१०	शुनःशेप आजीर्णतिः	११	"
१६	१११३११	मेघातिथिः काण्डः	११	"
१७	१११३११	शुनः शेष आजीर्णतिः	११	"
१८	८११०११४	प्रयोगो मार्गवः	११	"
१९	८११०११५	प्रयोगो मार्गवः	११	"
२०	८११११०	वस्त्रः काण्डः	११	"
( ३ )				
२१	८११०११३	प्रयोगो मार्गवः	११	"
२२	६११६११८	मरुद्वातो वाईरपत्नः	११	"
२३	४११११	वामदेवो गीतवः	११	"
२४	७११५११३	वसिष्ठो मेत्रावरुणिः	११	"
२५	६११६११३	मरुद्वातो वाईरपत्नः	११	"
२६	७११५१३	वसिष्ठो मेत्रावरुणिः	११	"
२७	८१४४११३	विरूप आगिरुतः	११	"
२८	१११३१४	शुनःशेप आजीर्णतिः	११	"
२९	८१७४१११	वोपवन आश्रयः	११	"
३०	७११५११३	वामदेवो गीतवः	११	"
३१	१११०११	प्रस्फुटः काण्डः	११	"
३२	१११११३	मेघातिथिः काण्डः	११	"
३३	१०१११४	विष्णुर्वाण आम्बरीषः त्रित आण्डो वः	११	"
३४	८१८४१३	वसना काण्डः	११	"
( ४ )				
३५	६१४८११	विष्णुर्वाण आम्बरीषः	११	बुद्धि
३६	८१६०१३	अर्गः प्राणापः	११	"
३७	६१४८१३	विष्णुर्वाण आम्बरीषः	११	"
३८	७११६१३	वसिष्ठो मेत्रावरुणिः	११	"
३९	८१६०११३	अर्गः प्राणापः	११	"
४०	११४४११	प्रस्फुटः काण्डः	११	"
४१	६१४८११	विष्णुर्वाण आम्बरीषः	११	"
४२	८१६०११३	अर्गः प्राणापः	११	"
४३	८१६०११३	अर्गः प्राणापः	११	"
४४	८१६०११३	अर्गः प्राणापः	११	"
( ५ )				
४५	७११६११	वसिष्ठो मेत्रावरुणिः	११	"
४६	८१६०११३	अर्गः प्राणापः	११	"

संन-संख्या	अव्येदस्थानं	कावि	वेद्यता	अन्यः
४७	८११०३११	सोमरः काव्य	==	बृहती
४८	८११७११	मनुबैदसतः	"	"
४९	८१७१११४	सुदीपिपुरुषाकागिरसौ	"	"
५०	११४४११३	प्रस्कणः काव्यः	"	"
५१	८११०३१९	सोमरः काव्यः	"	"
५२	८११११८	मेघातिथिमेष्यातिथौ काव्यौ	इन्द्रः	"
५३	३१११२	विष्णामिनो गाथिनः	अग्निः	"
५४	११३६११९	कण्वो घोरः	"	"
( ६ )				
५५	७११११११	वशिष्ठो मेनावकथिः	"	"
५६	११४०१३	कण्वो घोरः	महाप्रवृत्तिः	"
५७	११३६११३	कण्वो घोरः	सुप्रः	"
५८	८११०३१४	सोमरः काव्य	अग्निः	"
५९	११३६११	कण्वो घोरः	"	"
६०	३१३६११	उत्कलः काव्यः	"	"
६१	७१३६१५	वशिष्ठो मेनावकथि	"	"
६२	३१२११	विष्णामिनो काथिनः	"	"
( ७ )				
६३	—	इषाकाथोः वाग्देवो वा	"	त्रिष्टुप्
६४	१०१११५११	उपस्तुतो वार्हिष्ठ्यः	"	अगती
६५	१०१५६११	बृहदुक्थो वामदेवः	"	त्रिष्टुप्
६६	११७४११	कुन्त्य आगिरसः	"	अगती
६७	६१७११	मरद्वाजो वार्हिष्ठ्यः	"	त्रिष्टुप्
६८	६११४१६	मरद्वाजो वार्हिष्ठ्यः	"	"
६९	४१३११	वाग्देवो रोतमः	"	"
७०	७१८११	वशिष्ठो मेनावकथि	"	"
७१	१०१८११	मिशिरस्त्याहूः	"	"
७२	५११११	वशिष्ठो मेनावकथि	"	त्रिष्टुप्
( ८ )				
७३	५११११	बृहन्निष्ठिरावाग्देवो	"	त्रिष्टुप्
७४	१०१४६१५	मत्स्यत्रिभर्तृद्वयः	"	"
७५	६१५८११	मरद्वाजो वार्हिष्ठ्यः	पुनः	"
७६	३१६१११	विष्णामिनो काथिनः	अग्निः	"
७७	१०१४६११	वाग्देवो रोतमः	"	"
७८	७१६११	वशिष्ठो मेनावकथि	"	"
७९	३१३६११	मिशिरावाग्देवः	"	"
८०	१०१८७११९	वाग्देवो रोतमः	"	"

# अथ ऐन्द्रं काण्डम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

[ ३ ]

( १-१० ) १ शंयुर्वाहिंस्पत्यः; २ धृतकक्षः सुकलो वा आगिरसः; ३ हयंतः प्रागायः; ४, ५ धृतकक्षः ( ऋ० मुकसो वा, ५ मुकसः ) आगिरसः; ६ देवजामय इन्द्रमातरः श्रयिका; ७, ८ गोपूरन्वडवसुस्तिनी काण्वायनी;  
९, १० मेघातिथिः काण्वः त्रिपमेघसर्वागिरसः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ३ अग्निहोत्रं वा ) ॥ गायत्री ॥

११५ तवो गाय सुते सचां पुकृह्वाय सत्त्वे । यद्गवे न द्याकिने ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४९।२९ )

११६ यस्ते नूनश्चतकृताविन्द्रं शुभिवमो मदः । तेन नूनं मदे मदः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९२।१६ )

११७ गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उमा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।७२।१२;  
वा. यजु. ३२।१९ )

११८ अरमसाय गायव श्रुतकक्षार मधे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।९२।२५ )

११९ तमिन्द्रं वाजयामसि मदे वृषाय हन्तवे । स वृषा वृषमो भुवत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९३।७ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ११५ ] हे स्तुति करनेवाले उपासको ! ( यः सुते ) तुम्हारे सोम तैम्पार करनेके बाव ( पुकृ-ह्वाय सत्त्वे ) अनेकों जिसकी स्तुति करते हैं, ऐसे इस बलवान् इन्द्रके लिए ( तत् सचा गाय ) उन स्तोत्रोंको पुनः स्थान पर बैठ करके गाओ । ( यत् ) जो स्तोत्र ( गवे न ) गायको बंते बास सुल देते हैं, उसी प्रकार ( द्याकिने द्यौं ) शक्तिमान् इन्द्रको सुल देते हैं ॥ १ ॥

१ पुकृ-ह्वाय सत्त्वे सचा गाय— अनेकोंसि प्रसन्न चरितशाली इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

[ ११६ ] हे ( यत-प्रातो ) संकष्टों प्रकारके कष्ट करनेवाले इन्द्र ! ( यः शुक्ति-समः मद्रः ) जो तेजस्वी सोमरस ( मूर्त्ते ते ) निरचित रूपसे तेरे लिये तैम्पार किया गया था, ( तेन मूर्त्ते ) उस रससे निरचयते दू ( मदे ) आलसित हुआ, उस कारण हमें भी ( मदेः ) वनादि देकर तू आनन्दित कर ॥ २ ॥

[ ११७ ] हे ( गायः ) गोकुल ! तुम ( यवटे ) यज्ञके स्थानको ( उप वद् ) आलो, तुम ( यज्ञस्य मही रप्सुदा ) यज्ञके लिए बहुतसा दूध स्वी भक्षण देनेवाली हो । तुम्हारे ( उमा कर्णा हिरण्यया ) दोनों ही कान सोनेके आभूषणोंसे शोभित हैं ॥ ३ ॥

१ गायः । यवटे यज्ञस्य मही रप्सुदा— हे गायो ! तुम यज्ञमें बहुतसा दूध देती हो ।

[ ११८ ] हे ( धृतकक्ष ) धृत-कक्ष श्रेष्ठ ! ( अरमसाय अरं ) जोदेके लिए ( यवे अरं ) गायके लिए, ( इन्द्रस्य धाम्ने अरं ) इन्द्रके स्थानके लिए पर्वतों कागामें ( गायत ) स्तोत्रोंका गान कर ॥ ४ ॥

[ ११९ ] ( मदे वृषाय हन्तवे ) उस बलवान् वृषको मारनेके लिए ( तं इन्द्रं ) उस इन्द्रकी हथ ( वाजयामसि ) प्रशंसा करते हैं, स्तुति करते हैं । ( सः वृषा ) यह बलवान् इन्द्र ( वृषमः भुवत् ) हमें पन देनेवाला होके ॥ ५ ॥

१ वृषमः— बलवान्, धनकी वृष्टि करनेवाला, कामना पूर्ण करनेवाला ।

२ मदे वृषाय हन्तवे इन्द्रं वाजयामसि— महान् शक्तिशाली वृषके यज्ञ करनेके लिए हथ इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं ।

५ ( गाय, द्विती )

१२० त्वमिन्द्र यत्नादधि सहस्रो जात ओजसः । त्वत्सन्वृण्वृषेदसि ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।१५३।१ )

१२१ यज्ञ इन्द्रमवधेययज्ञमिदं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपश्रु दिवि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१४।५ )

१२२ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१४।१ )

१२३ पन्यपन्यमित्सोतार आ धावत मघाय । सोम वीराय शूराय ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१२।५ )

१२४ इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनामयित्रिमा वै ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

इति सुतोया वसतिः ॥ ३ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ खण्ड १०।४० ४ । पा० ४६। ( प्रु ) ॥ ]

[ ४ ]

( १-१० ) १, २ सुकामभुतिकसी ( ऋ० सुकाम जायितः ) ; ३ आरुहानः ( ऋ० संवर्वाहृत्पत्यः ) ; ४ भुतिकः

( ऋ० सुकसी वा आभिरन्तः ) । ५, ६ सपुच्छन्वा मन्त्रमित्रः ; ७, ९, १० त्रितोक्त काण्वः ; ८ वसिष्ठो

मैत्रावरुणः ॥ इन्द्रः ( १ ऋ० आमीगो ) ॥ गायत्री ॥

१२५ उद्धेदामि क्षुतामघं पुषमं नर्यापसम् । अस्तारमेपि ध्रुवं ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )

[ १२० ] हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( सहस्रः यत्नात् ) शत्रुके पराभव करनेवाले बलसे तथा ( ओजसः ) सामर्थ्यसे ( अधिजातः ) प्रसिद्ध है ; हे ( वृषभः ) बलवान् इन्द्र ! तू ( सन्वृ ) बलवान् होते हुए भी ( वृषा इत् अस्ति ) इच्छित पदार्थको देने वाला है ॥ १ ॥

१ हे इन्द्र ! त्वं सहस्रः यत्नात् ओजसः अधिजातः— हे इन्द्र ! तू सहस्र, बल और सामर्थ्यके कारण शत्रुके श्रेष्ठ है ।

[ १२१ ] ( यत् ) जिस यज्ञने ( दिवि ) आकाशमें ( ओपश्रु चक्राणः ) स्तकाकार ( भूमिं चि अयर्तयत् ) भूमिकी पृथक्से हुए पक्षा हैं, उस ( यज्ञः ) यज्ञने ( इन्द्रं अवधेययत् ) इन्द्रका यज्ञ बधाय ॥ ७ ॥

[ १२२ ] हे इन्द्र ! ( यथा त्वं ) जैसे तू ( एकः इत् ) जकेला ही ( वस्वः ) धनोक्त स्वामी है, उस प्रकार ( अहं ) मैं भी ( यत् ईशीय ) यदि मनोरथ स्वामी हो जाऊँ, तो ( मे स्तोता ) मेरी स्तुति करनेवाला ( गो-सखा स्यात् ) गायोंका मित्र हो जाऊँ ॥ ८ ॥

[ १२३ ] हे ( सोतारः ) सोमयज्ञ करनेवाले यानकी ! ( मघाय शूराय वीराय ) आनन्दित, शूरवीर इन्द्रके लिए ( पन्यं पन्यं इत् ) प्रशंसके योग्य ( सोमं आ धावन् ) सोमरसका अर्पण करो ॥ ९ ॥

१ वीराय शूराय पन्यं सोमं अघावत— शूरवीर इन्द्रके लिए प्रशंसनीय सोमरस दो ।

[ १२४ ] हे ( वसो ) समकी बसनेवाले इन्द्र ! ( इदं सुतं मन्धः ) इस सोमरस क्षीपी अन्नकी ( पिय ) पी, नितसे ( उदरं सुपूर्णं ) तेरा पेट भरा भर जाय । हे ( अनामयिन् ) निर्भय इन्द्र ! ( ते रयिम् ) तेरे आनन्दके लिए यह सोमरस हम देते हैं ॥ १० ॥

१ अनामयिन् ! ते रयिम्— हे निर्भय इन्द्र ! तुझे आनन्द हो, इसलिये ये-सोमरस हम देते हैं ।

॥ यहाँ पहिला खंड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १२५ ] हे ( सूर्ये ) सूर्यगो इन्द्र ! तू ( क्षुता-मघं ) प्रसिद्ध धनवान् ( पुषमं ) बलवान् ( नर्यं-अपरत् ) मान-धनके हितके लिए कार्य करनेवाला और ( अस्तारं ) शत्रु फेरनेवाला है ( इदं उदेपि ध ) ऐसा तू अब उदय हो रहा है ॥ १ ॥

१ क्षुतामघं पुषमं नर्यापसं अस्तारं— प्रसिद्ध, धनवान्, बलवान्, मानवीका हित करनेवाले और शत्रुपर शत्रु फेरनेवाले इन्द्रकी प्रशंसा कर ।

- १२६ यदय कच वृत्रहन्नुदगा अभि स्ये । सर्वे तदिन्द्र ते वरे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९।१४ )  
 १२७ य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।१५।१ )  
 १२८ मा न इन्द्राभ्याने दिव्यः स्रो अवतुष्वा यवत् । त्वा युजा वनेम वत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।९।११ )  
 १२९ एन्द्र सानसि श्रविः सजित्वानः सदासदम् । वर्षिष्ठभूतये मर ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८।१ )  
 १३० इन्द्रं वयं महाधने इन्द्रमयं हवामहे । युजं वृषेभ्य वज्रिणम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।१५ )  
 १३१ अपिशत्कद्रुवः सुवामिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१५।१६ )

[ १२६ ] हे ( वृत्र-हन् ) शत्रुको मारनेवाले ( सर्वे ) सुप्रेहवी इन्द्र ! ( अथ ) आन ( अभि उदगाः ) तू वदप हुवा है, हे इन्द्र ! ( तत् सर्वे ) वह सब ( ते यदो ) तेरे मपीन है ॥ २ ॥

१ ते यदो तत् सर्वे— तेरे भापीन सब कुछ है ।

[ १२७ ] ( यः ) जो इन्द्र शत्रु द्वारा हर केके हुए ( तुर्वशं यदुम् ) तुर्वश और यदुको ( सु-नीती ) उत्तम नीतिसे ( परायतः आनयत् ) हरवान्ते भी बात के आया ( युवा सः इन्द्रः ) ऐसा वह सख्य इन्द्र ( नः सखा ) हमारा मित्र है ॥ ३ ॥

१ यः सुनीती तुर्वशं यदुम् परायतः आनयत्, युवा सः नः सखा— जो इन्द्र तुर्वश और यदुको उत्तम भातिसे चुकते के आया, ऐसा वह इन्द्र हमारा मित्र है ।

[ १२८ ] हे इन्द्र ! ( आदिवाः ) चारों विषामोंमें शस्त्रोंके फेंकनेवाला ( सूरः ) विरतर चलनेवाला राजा ( अकतुषु ) शस्त्रियोंमें ( नः मा अभ्यायमत् ) हमारे ऊपर आक्रमण करनेकी इच्छासे न आवे, और यदि वह आ भी जाये तो ( तत् त्वा युजा ) तेरी सहायता ( वनेम ) उतकी हम मार दें ॥ ४ ॥

१ आदिवाः सूरः अकतुषु नः मा अभ्यायमत्, तत् त्वा युजा वनेम— चारों विषामोंमें शस्त्रोंको फेंकते हुए राजा शस्त्रोंके समय हम पर आक्रमण न करे, और यदि बंध करे भी सी तेरी सहायतासे हम उसे मार दें ।

[ १२९ ] हे इन्द्र ! ( उत्तये ) हमारे संरक्षणके लिए ( सानसि ) उत्तम उपभोग देनेवाले ( स-जित्वाने ) शत्रु पर विजय दिलानेवाले ( सदा-सदं ) तथा शत्रुकी हारनेवाले ( वर्षिष्ठं श्रविं ) श्रेष्ठ यज्ञसे ( अमर ) हमें मर दें ॥ ५ ॥

( १ ) उत्तये सानसि सजित्वाने सदासदं वर्षिष्ठं श्रविं अमर— हमारे संरक्षणके लिए उपभोगके योग्य, शत्रुपर विजय प्राप्त करानेवाले, हमेशा शत्रुओंकी हारनेवाले श्रेष्ठ यज्ञोंसे हमें मर दें ।

[ १३० ] ( वयं ) हम ( महाधने ) बड़े संभारमें ( इन्द्रं ) इन्द्रकी बुलाते हैं, ( अयं इन्द्रं हवामहे ) छोटे यज्ञमें भी इन्द्रकी बुलाते हैं, ( वृषेभ्यु ) यज्ञके साथ होनेवाले यज्ञोंमें भी ( युजं वज्रिणं ) सहायता करनेवाले तथा यज्ञ पारण करनेवाले इन्द्रकी हम बुलाते हैं ॥ ६ ॥

( १ ) वयं महाधने, अयं, वृषेभ्यु युजं वज्रिणं हवामहे— हम बड़े तथा छोटे संभारोंमें तथा यज्ञके आरम्भमें सहायता करनेवाले तथा यज्ञकी पारण करनेवाले इन्द्रकी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

[ १३१ ] ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( कद्रुवः ) कद्रु नदिके ( सुने अपिशत् ) सोमरसकी पी लिया, ( सहस्रबाह्वे ) हजारों भुजाओंवाले शत्रुकी युद्धमें मारा ( तय ) पतनमें इन्द्रना ( पौंस्यं आददिष्ट ) सामर्थ्य प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

( १ ) सहस्र-बाहुः— हजारों संतानोंकी रखनेवाला । ( २ ) सहस्रबाह्वे तत्र पौंस्यं आददिष्ट— सहस्र-बाहु मांसक शत्रुकी मारा उससे इन्द्रकी वलित चमरी ।

१३२ व१मिन्द्र त्वा१यवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् । वि१द्वी त्वा ३३३ १ २ स्य नो वसो ॥ ८ ॥

( ५. ७३१४ )

१३३ आ धा ये अमिमिन्धते स्तृणन्ति बहिरानुपक् । येषामिन्द्रो यूवा सखा ॥ ९ ॥

(क्र. ८४५११)

१३४ मिन्धि विद्या अय द्विपः परि पाषो अही मृषः । वसु स्वाहे वदा भर ॥१०॥

( अ. ८४५४० )

इति चतुर्थी वसतिः ॥ ४ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ स्व० ८ । उ० ३ । पा० ३२ । (हा) ॥ ]

[44]

( १-१० ) १ कण्वो घोरः; २ त्रिशोकः कण्वः; ३ वल्लः कण्वः; ४ कुसीरी कण्वः; ५ मेघातिथिः कण्वः;

६ अतपसः ( प्र० तपसः ) आगिरसः ७ स्याबाज्ज आग्नेयः ८ प्रगायः काण्वः ९ वासः काण्वः

१० हविर्विद्धि. काण्वः॥ इन्द्रः॥ ( ऋ० १ मरुतः; ४ विश्वे देवाः; ५ ब्रह्मणस्पतिः; ७ सविता ) ॥ गायत्री ॥

१३५ इह<sup>३५</sup> मृण<sup>३५</sup> एषा<sup>३५</sup> कशा<sup>३५</sup> हस्तेषु<sup>३५</sup> यद्वादान् । नि<sup>३५</sup> याम<sup>३५</sup> चित्रमुज्जते ॥ १ ॥ (अ. १।३७।३)

१३६ इम उ त्वा वि चथर्त सखाय इन्द्र सौमिनः । पृष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥

[३२२ हे (युष्मन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (स्वायम्) तुमने पातेकी इच्छा करनेवाले हम तुम (अग्नि नोदुमः) जालनेसे भस्मकार करते हैं, हे (यस्ते) सबको निघात देनेवाले इन्द्र ! (अव्यय मः यिद्धि) इस हमारे स्तोत्रके भावकी समझ ॥ ८ ॥

[१३३] (ये) जो ऋत्विज (आ चा) आगे होकर (अग्नि इन्द्राते) अग्निकी जलती हैं, (येयां) जिनका (गुवा इन्द्रः सखा) तपण इन्द्र मित्र है, जिसके लिए वे (आनुषक यहिः स्तुणमि) क्रमते आसक्तको सँलाते हैं ॥ ९ ॥

[१३५] (विध्याः द्विपः) सप्त शत्रुभोंका (अप भिक्षि) बाध कर, (धाधः सृधः परि जहि) बिना बाधने-  
वाले शत्रुभोंकी हरा, उसके बाध (स्पाहँ ततु धसु) चाहने योग्य पने (आ भर) हमें भरपुर दे ॥ १० ॥

(१) विश्वाः द्विषः अपग्निनिध—सब शत्रुओंका नाश कर। (२) याघः सृघः परि जहि—दिन करकेबाले शत्रुओंको हरा। (३) स्पाँहं घसु आभर—चाहने योग्य बनको हवें भरपुर दे।

॥ यद्वा दसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

॥ १३५ ॥ (यस्य हस्तेषु कक्षाः) इन मण्डलके हाथोंमें पाचूक हैं, वे (यद् यदाह्) जो शब्द करते हैं उनके में (इह इय मृण्वे) यही होनेके समान सुनता हूँ, वह ध्वनि (यामं) युद्धमें (त्रियं न्यूञ्जते) अबभुत शक्तिको दिखाता है ॥ ११ ॥

१ यामं चिधं न्युजते— युद्धे मादत्तपन्ननक सामर्थ्यं रिखाता हं ।

। १३६ ॥ हे वृद्ध ! (इमे सोमिनः सखायः) ये सौम्याय कर्ननेवाले मित्र (पुत्रायन्तः यथा पन्तु) जालको हारमो लिए हुए भिकारी जैसे पशुको देखते हैं, जसी तरह एकत्र चित होकर (त्या विप्रक्षणे) मुझे विशेष करने देखते हैं ॥ २ ॥

- १३७ समस्य मन्यवे विंशो विंशो नमन्त कृष्टयः । समुद्रायैव सिन्धवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६।४ )  
 १३८ देवानामिदमो महत्तदा वृणीमहे वषम् । वृष्णामसम्पृतये ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।८३।१ )  
 १३९ सोमानांश्चरणां कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कधीवन्तं य औन्नजः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१।८।१ )  
 १४० सोधन्मना हृदस्तु नो बृम्हा भूयांसुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।८३।१८ )  
 १४१ अथ नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सोमगम् । परा दुःस्वप्न्यश्सुव ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।८१।४ )  
 १४२ वषश्चस्य वृषभो युषा तुविप्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तत्सपर्यति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६१।७ )  
 १४३ उपहरे गिरौषांश्चङ्क्रमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।६।१८ )

[ १३७ ] ( विंश्याः कृष्टयः पित्राः ) सब प्रजायें ( अस्य मन्यवे ) इसके स्तोत्रको मुनिके लिए ( समुद्राय सिन्धयः द्रुघ ) जिस प्रकार समुद्रकी ओर नदिवा बौछती हैं, उस प्रकार ( सं नमन्त ) सब मिलकर नम्र होकर बँटती हैं ॥ ३ ॥

अन्वु— कोय, स्तोत्र, मननोय वचन

[ १३८ ] ( देवानां अयः इत् महत् ) देवों के ये सरलण निरचयते महान् है । ( वृष्णां तत् ) वरमनाओंको पूर्ण करनेवाले उन देवोंसे मिलनेवाले सरलणोंकी ( असम्पृतये ) अपने सरलणके लिए ( ययं आशुणीमहे ) हम स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥

( १ ) देवानां अयः महत् इत्— देवोंसे मिलनेवाले सरलण निरचयते महान् है ।

( २ ) वृष्णां तत् असम्पृतये ययं आशुणीमहे— हमारी इच्छा पूर्ण करनेवाले सरलणके साधनोंको अपनी रक्षाके लिए हम स्वीकार करते हैं ।

[ १३९ ] हे ब्रह्मणस्पते ! ( सोमानां ) सोमपत्र करनेवाले ( कधीवन्तं ) कधीबान्की ( यः औन्नजः ) जो उन्निकता पुत्र है, ( चरणां कृणुहि ) प्रकाशमान कर ॥ ५ ॥

[ १४० ] ( वृत्र-ह्रा ) वृत्र राजाको मारनेवाला, ( भूरे-आसुतिः ) जिसके लिए बहुतसे लोग सोमरस लेयाकर करते हैं, वह इन्द्र ( सः ) हमारी ( योधन्त-मनाः ) इच्छाकी जागनेवाला ( हृद अस्तु ) यहाँ होये। वह ( शक्रः ) साम-ध्वंशान् इन्द्र ( आशिषं शृणोतु ) हमारी स्तुति सुने ॥ ६ ॥

[ १४१ ] हे ( सविनः देव ) सूर्य देव । ( नः ) हमें ( अथ ) आत्र ( प्रजायत् सोमगं ) पुत्र पीवेंसे युक्त पेशव-यन ( सःवीः ) दे ( दुःस्वप्न्य परा सुव ) दु सत्रायक स्वप्नोको सनेवाले दुर्मायवो हवसे हूर कर ॥ ७ ॥

( १ ) हे सवितः देव ! अथ प्रजायत् सोमगं सावीः— हे सवित देव ! हमें मान पुत्र पीवेंसे युक्त पत्र दे ।

( २ ) दुःस्वप्न्य परा सुव— दुष्ट देनेवाले स्वप्नोको हूर कर ।

[ १४२ ] ( सः वृषभः ) वह सामध्वंशान् ( युषा ) तपत्र ( तुवि-प्रीवः ) वनवत गर्दनवाला ( अनानतः ) बनी भी किसीसे न झुकनेवाला ( कः ) कहा है ? ( कः प्रह्ला ) कोन जानी ( तं सपर्यति ) उसको पूजा करता है ? ॥ ८ ॥

( १ ) स वृषभः युषा तुविप्रीवः अनानतः कः— वह तपत्र, बतवान्, वनवत गर्दनवाला, किसीसे न झुकाना जानेवाला इन्द्र कहाँ है ? ( २ ) तुविप्रीवः— गर्दन जिसकी गयो है ।

( ३ ) अनानतः— किसीसे न झुकाना या खनेवाला ।

[ १४३ ] ( गिरौषां उपहरे ) पर्वतोंकी उपलब्धानें ( च ) और ( नदीनां संगमे ) नदियोंके संगमपर ( धिया ) अपनी बुद्धि-मानी स्तुतिनौके ( विप्रः अजायत ) अनुप्य विप्रोंसे सानी होता है ॥ ९ ॥



१४४ प्र संम्राज चर्षणीनाभिन्द्रस्तोता नन्य गीभिः । नर नृपाह म० हिष्ठम् ॥ १० ॥

( ऋ ८।१६।१ )

इति पञ्चमी दत्ति ॥ ५ ॥ तृतीय खण्ड ॥ ३ ॥ [ स्व० १ । उ० ना० । पा० ४४ । ली । ]

इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) १ भूतकक्ष ( ऋ० सुकक्ष ) आङ्गिरस, २ वेधातिवि ( ऋ० शयुर्वाहस्वल्प ) काण्व, ३ गौतमो  
राहूगण, ४ मरद्वाजो वाहस्वल्प ५ बिन्दु वृत्तद्वयो वा आङ्गिरस, ६, ७ सुतकक्ष सुकक्षो वा ( ऋ०  
सुकक्ष ) आङ्गिरस, ८ वसन्त काण्व, ९ सुत शय जातोवसि १० सुत शयो भाजीगति, वामदेवो  
वा ॥ इन्द्र, ( ऋ० इन्द्रापूर्वपौ ) ५ वसन्त ॥ गायत्री ॥

१४५ अपाद् क्षिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्द्रोऽरिन्द्रो यवाक्षिरः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।१७।१ )

१४६ इमा उ रमा धुक्तासोऽभि प्र नोनुनधुगिरः । गावो वसन्त न धेनवः ॥ २ ॥ ( ऋ ६।४९।२९ )

१४७ अत्राह गौरमन्वत नाम त्वन्दुरधीच्यम् । इन्धा चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ ( ऋ १।८४।१९ )

१४८ यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो धृपन्तमः । तत्र पूषाभवरसचा ॥ ४ ॥ ( ऋ ६।९७।४ )

[ १४४ ] ( चर्षणीना स्रम्राज ) मनुष्योंमें उत्तम रीतिसे प्रकाशमान होनवाले ( गीभिः नन्य ) स्तोत्रोक्ति स्तुति करके योग्य ( नृ पाह नर ) शत्रुओंकी पराजित करनेवाले वता ( म० हिष्ठ इन्द्र ) महान इन्द्रकी ( प्रस्तोत ) स्तुति कर ॥ १० ॥

( १ ) चर्षणीना स्रम्राज नृपाह नर म० हिष्ठ इन्द्र प्रस्तोत—मनुष्योंमें स्रम्राज शत्रुओंको हरातवाले महान इन्द्रको स्तुति करो ।

॥ यहा तीसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] अनुर्थ खण्ड ।

[ १४५ ] ( क्षिप्रि इन्द्र ) गिरत्प्राण धारक करनेवाले इन्द्रने ( प्र-होषिण सुदक्षस्य ) विषय हवन करनेवाले उपसर्ग ( अपाक्षिर ) जोके जाह और रूपसे भिन्नित ( इन्द्रो अपक्षसः ) जोमस्त अपक्ष असक्त ( अपाद् ) क्षायाः ॥ १ ॥

[ १४६ ] हे ( धुक्-वसो ) अनकों प्रकारके धन रत्ननवाले इन्द्र ! ( गावो धेनव वसन्त न ) जिस प्रकार दूध देन वाली गायें अपने बछड़ोंके पास जाती हैं उसी प्रकार ( रमा ) सुत ( इमा गिर प्रनोनधु ) स्तोत्र बार बार प्राप्त होते हैं तेरी बार बार स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४७ ] ( अत्राह ) इस ( गौः चन्द्रमस ) गतिमान् च अके ( गृहे ) घरमें—च इषण्डलमें ( गृहम् ) स्वयं इस धृपका ( अ-धीच्य नाम ) राजाके समय छिप जानेवाला प्रसिद्ध तेज है ( इन्धा अमन्वत ) देवा लोग मानते हैं ॥ ३ ॥

[ १४८ ] ( यद् धृपन्तम इन्द्र ) जब बहुत बलवाला इन्द्र ( मही रित ) बड़ बड़ प्रवाहोंके रूपमें बहनेवाले ( तत्र ) यवति माये हुए जलोंकी ( अनयत् ) बहता है ( तत्र ) तब ( पूषा सन्धा धुवत् ) पूषा उसका महामर होता है ॥ ४ ॥

- १४९ गौर्धपति मरुताश्चनस्युर्गौता मघोनाम् । युक्ता वद्धा रथानाम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९।१ )  
 १५० उप नो हरिमिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिमिः सुतम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९।१ )  
 १५१ इथा होत्रा असृशतेन्द्रं वृधन्तो अघ्नरे । अञ्जवमृधमोजसा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।९।१ )  
 १५२ अहमिद्धि पितृष्पति मेघामृतस्य जग्रह । अहर्ध्वं हवाजनि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६।१० )  
 १५३ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो यामिर्मदेम ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१०।१० )  
 १५४ सोमः पूषा च चेतुर्विश्वासास्सुक्षितानाम् । देवशा रथमोहिवा ॥ १० ॥  
 इति पद्यो वृत्तिः ॥ ६ ॥ पदसंख्या ॥ ४ ॥ [ स्तं ८ । उ० ५ । पा० ४५ । (गो) ॥ ]

( ७ )

- ( १-१० ) १. ४ श्रुतकथाः सुकलो वा आङ्गिरसः; २ प्रसिद्धो ब्रह्मवर्षिणः; ३ मेधातिथिः काण्वः; प्रियवेदवर्षाङ्गिरसः;  
 ५ हरिमिद्धिः काण्वः; ६-१० पयुषस्तथा ब्रह्मवर्षिणः ७ त्रिशोकः काण्वः; ८ कुतोरी काण्वः; ९ क्षुमः सोप आनी-  
 गतिः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

- १५५ पान्तमा वां अन्धस इन्द्रमग्निं प्र गायत । विश्वासाहश्चतकतुं मर्हिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥  
 ( ऋ. ८।९।१ )

[ १४९ ] ( मघोनां मरुतां ) घनवत् मरुतांकी ( माता ) माता ( रथानां युक्ता यद्धिः ) रथोंमें जोड़ी हुई और  
 वनको लौंवनैकी ( गोः ) गाय ( अथस्युः ) अथ देनेकी इच्छा करती हुई ( अघ्नति ) दूध देती है ॥ ५ ॥

[ १५० ] हे ( मरुतां पते ) सोमरसोंके स्वामी इन्द्र ! ( हरिमिः ) अपने घोडोंके ( नः ) सुतं उप याहि ) हमारे  
 सोम घनमें आ । ( हरिमिः नः सुतं उपयाहि ) घोडोंके हमारे यज्ञमें आ ॥ ६ ॥

[ १५१ ] ( अघ्नरे वृधन्ताः ) हमारे यज्ञमें इन्द्रकी प्रज्ञता करते हुए ( इथा होत्राः ) यज्ञ करनेवाले होता यण  
 ( अघ्नमृधं अञ्ज ) अमृध स्नान होनेतक ( ओजसा ) अपने बलमें ( इन्द्रं असृशत ) इन्द्रके लिए आहुति देते हैं ॥ ७ ॥

[ १५२ ] ( अह इत् ) मैंने ( पितुः श्रतस्य मेघां ) बालन करनेवाले यक्षकी इन्द्रकी बुद्धिकी ( परि जग्रह )  
 अपनी ओर मोड़ लिया है । ( हि ) इस कारण मैं ( सूर्यः ह्य अजनि ) सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ॥ ८ ॥

[ १५३ ] ( यामिः क्षु-मन्तोः मदेम ) गितकी सहायताही हम अन्न युक्त होकर आग्नित होते हैं; ( सधमादे  
 इन्द्रे ) इन्द्रके साथ हमें युक्त होकर ( नः ) हमारी वह गाय ( देवतीः ) दूध और घी देनेवाली होकर ( तुवि-वाजाः  
 सन्तु ) ब्रह्मके घन देनेवाली हो ॥ ९ ॥

[ १५४ ] ( देवशा ) देवोंमें ( रथ्यः अहिंता ) रथपर बैठने योग्य ( सोमः ) सोम ( पूषा च ) और पूषा ( विश्वासां  
 सुक्षितानां ) सप्त अनुष्मोंकी उत्साह देने वाले हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौथा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १५५ ] ( नः ) तुम ( विश्वा-साहं ) सब अनुष्मोंके नाश करनेवाले ( शतकतुं ) सैकड़ों कर्म करनेवाले ( चर्ष-  
 णीनां मर्हिष्ठं ) अनुष्मोंमें बहुत सावधान्यपूर्वक ( अन्धसः ) आपसमें ( सोमरसं पीनेवाले ) इन्द्रं अग्निं प्र गायत )  
 इन्द्रका विशेष स्तुतिगी गात करो ॥ १ ॥

१ विश्वासाहं शतकतुं चर्षणीनां मर्हिष्ठं इन्द्रं अग्निं प्रगायत— सब अनुष्मोंके नाश करनेवाले, सैकड़ों  
 कर्म करनेवाले, प्रजाओंमें सर्वाधिक प्रशंसनीय, इन्द्रके गुणोंका स्तुतिसे ध्यान करो ।

- १५६ प्र व इन्द्राय मादन् इत्येसाय गावत । सखायः सोमपात्रे ॥ २ ॥ (ऋ. ७।१।१)
- १५७ ययमु त्वा तदिदर्या इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कषवा उक्थेमिर्जरन्ते ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१।१६)
- १५८ इन्द्राय मज्जने सुतं परि शोमन्तु नो मिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।२।१९)
- १५९ अयं स इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।१।७।१)
- १६० सुरूपकृत्सुमूतये सुदुषामिष गोदुहे । जुहूमसि घविघवि ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४।१)
- १६१ अमि त्वा वृषभा सुते सुतं सुजामि पीतये । वृम्पा न्यइनुही मदम् ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।४।१२)
- १६२ य इन्द्र चमसेष्वा सोमक्षपू ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीक्षिये ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।८।१७)

[ १५६ ] हे (सखायः) मित्रो । (यः) तुम (इत्येसाय) हरि नामके घोड़ोंको रखनेवाले (सोम-पात्रे) सोम पीनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (मादन् प्रगायत) आनन्द देनेवाले स्तोत्रोंको गाओ ॥ २ ॥

[ १५७ ] हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वायन्तः सखायः) चर्यं तुमसे मित्रता करनेकी इच्छावाले और तेरे मित्र हम (सत्-इत्-अर्धाः) तेरी स्तुति करनेकी इच्छा रखनेवाले (कषवाः उ) कष्य भी (उक्थेमिः त्वा जरन्ते) स्तोत्रोंसे तेरी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

[ १५८ ] (मज्जने इन्द्राय) आनन्दके स्वभाव वाले इन्द्रके लिए (सुतं) निकाले गए सोमरसकी (नः मिरः परि-स्तोमन्तु) हमारी याँगीया प्रशंसा करें । (कारवः) स्तुति करनेवाले (अर्कं अर्चन्तु) इस पूज्य सोमकी अर्चना करें ॥ ४ ॥

[ १५९ ] हे इन्द्र ! (अयं सोमः) यह सोम रस (से) तेरे लिए (बर्हिषि याधि) बेविवर रसे गए आसन पर (निपूतः) गूँध करके रसा हुआ है । (इं घहि) इसके पास आ, (द्रव्य) बीड़कर आ और (पिब) पी ॥ ५ ॥

[ १६० ] (उतये) हमारे सरक्षणके लिए (सु-रूपकृत्सुं) सुन्दर रूपको बनानेवाले इन्द्रको (घवि-घवि) प्रति-भिन (गोदुहे सुदुषां इय) जिस प्रकार दूध डूबनेके समय उत्तम दूध डैलेवाली गायको मुलाखा जाता है, उसी प्रकार (जुहूमसि) हम बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ उतये सुरूपकृत्सुं घवि घवि जुहूमसि— अपने सरक्षणके लिए सुन्दर रूप बनानेवाले इन्द्रके लिए हम प्रतिबिन स्तुति करते हैं ।

[ १६१ ] हे (वृषभा) बलवान् इन्द्र ! (त्वा) तुम (सुते) सोमयजमं (सुतं पीतये) सोमरस पीनेके लिए (अमि सुजामि) मैं सोमरसका अर्पण करता हूँ, उस समय (वृम्पा मदं व्यइनुहि) मृत्त करनेवाले या आनन्द देनेवाले सोमरसको स्वीकार करो ॥ ७ ॥

[ १६२ ] हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (सुतः सोमः) तँपार मिया हुआ सोमरस (चमसेषु चयमु आ) बर्ष और छोटे बर्तनोंमें भरा हुआ रसा है । (अस्य त्वं पिब इत्) इसकी तू पी, हे इन्द्र ! (त्वं ईक्षिये) तू सामग्र्य-प्राप्ति हे ॥ ८ ॥

२ त्वं ईक्षिये— तू सबका स्वाधी है ।

१६३ योगेयोगे तयस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रपुत्रये ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।३।७ )

१६४ आ खेता नि गीद्वेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।६।१ )

इति सप्तमो वसतिः ॥ ७ ॥ पञ्चमः सङ्खः ॥ ५ ॥ [ स्व० ५ । उ० २ । धा० ३९ । ( छे ) ]

[ ८ ]

( १-१० ) १ विद्वानिजो गायित्रः, २ यदुक्तवा वैश्वामित्रः, ३ कुलोवो काण्वः, ४ प्रियमेध आगिरतः;

५, ८ मागदेवो गीतमः, ६, ९ भुतकसः सुखोः वा अगिरतः, ( ९ ऋ० सुख आगिरतः );

७ मेधातिमिः काण्वः, १० विन्दुः पुत्रयो वा आगिरतः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ३ वसतस्तपतिः;

१० मस्तः ) ॥ गायत्री ॥

१६५ इदंक्षन्वेजसा सुतंक्षानानां पते । पिवा त्वाइस्य निर्वेणः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।५।१० )

१६६ महाइन्द्रः पुरश्च नो महिस्वमस्तु वाजिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।५ )

१६७ आ तु न इन्द्र क्षुमन्वे पित्रे श्रामश्चं शृमाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।८।१ )

१६८ अमि प्र गोपतिं गिरिन्द्रमचं यथा विदे । सनुस्त्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।६।४ )

[ १६३ ] ( योगे योगे ) प्रत्येक कार्यमें ( घाजे घाजे ) प्रत्येक संपादनमें ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( तयस्तरं इन्द्रं ) अति बलवान् इन्द्रको ( सखायः ) मित्रके समान व्यवहार करनेवाले हम ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥ १ ॥

१ योगेयोगे घाजेघाजे ऊतये तयस्तरं इन्द्रं हवामहे— प्रत्येक कार्य और संपादनमें अपना संरक्षण हो इसके लिए इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

[ १६४ ] हे ( स्तोम-वाहसः ) यज्ञ करनेवाली । ( सखायः ) हे मित्री ! ( आ तु आ इत ) शीघ्र यहां जाओ और ( निपीदत ) यहां बंठो, और ( इन्द्रं अमि प्रगायत ) इन्द्रके स्तोत्रोंका गान करो ॥ १० ॥

॥ यहां पंचमया खंड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १६५ ] हे ( रक्षानां पते ) पनोंके स्वामी । हे ( निर्वेणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( भोजसा ) बलके संग्रह करि गए ( इदं सुतं ) इस लोभरसको ( अस्म तु अन्तु पिय दि ) तू शीघ्र ही अनुकूल होकर भी ॥ १ ॥

[ १६६ ] ( नः इन्द्रः महान् ) हमारा यह इन्द्र महान् है, और ( परः च ) श्रेष्ठ भी है, ( वाजिणे महिर्वा मस्तु ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रका यज्ञ बढे, ( द्यौः न ) धुलोकेके समान ( शवः प्रथिना ) उत्तम नत बढ़ता है ॥ २ ॥

[ १६७ ] हे इन्द्र ! ( महा-हस्ती ) बड़े बड़े हाथोंवाला तू ( नः तु ) हमें देनेके लिए ( क्षुमन्तं चित्रं श्रामं ) प्रशस्तभीय और अनेक प्रकारसे स्वीकार करने योग्य यज्ञ ( दक्षिणेन आ संशृमाय ) बायें हाथोंमें ले ॥ ३ ॥

[ १६८ ] ( गो-पतिं ) गायोंका पालन करनेवाले ( सत्यस्य सनुं ) सत्यके प्रचारक ( सत्-पतिं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( गिरा अमि प्र अर्च्यं ) वाणीसे प्रार्थना कर ( यथा विदे ) जिससे कि उसको सहायतासे यज्ञका और उस इन्द्रका गान हो ॥ ४ ॥

७ ( साम. द्विती )

१६९ कया नश्चिन्ध आ श्रवदूतो सदावृधः सखा । कया श्चिच्छया वृता ॥ ५ ॥

( ऋ. ४।३।१; यजु. ३।७।२९ )

१७० त्यद्यु नः सत्रासाहं विश्वासु गीर्वायतम् । आ न्याययस्युतये ॥ ६ ॥

१७१ सदसस्पतिमद्भुतं श्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सन्नि मेधामयासिपम् ॥ ७ ॥

( ऋ. १।१।८६; यजु. ३२।११ )

१७२ ये तै पन्था अबो दिवो येभिर्वयस्यैरयः । उत ओपन्तु नो सुवः ॥ ८ ॥

१७३ भद्रंभद्रं न आ भरेयमूर्जेश्वतक्रतो । यदिन्द्रं मृच्छयासि नः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।९३।२८ )

१७४ अस्ति सोमो अवशस्तुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत खराजो अभिना ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।९४।१७ )

इति लघ्वनी वसतिः ॥ ८ ॥ पठः ऋग्वेदः ॥ ६ ॥ स्व० १२। उ० १। पा० ४०। ( ली ) ॥

[ ९ ]

( १-१० ) १ देवतामय इन्द्रमातरः, २ गीष्वा अयिका; ३ वयस्यैरयस्यैः; ४ प्रसक्तः काण्डः; ५ योतनो इन्द्रायः।

६ मयुष्यन्ता वैश्यामिन्द्रः; ७ यामिन्द्रो योतनः; ८ वसः काण्डः; ९ सुत सौम्य आजीमतिः; १० उक्तो कात्यायनः ॥

इन्द्रः ( ऋ० ४ अतिपनी; १० वायुः ) ॥ वायवी ॥

१७५ ईक्ष्वायन्तीरपस्युष इन्द्रं जातमुपासते । वन्वानासः सुर्वीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१९३।१ )

[ १६९ ] ( सत्रा-पृथः ) तत्रा बहनेवाला ( चित्रः सखा ) वितसण थैठ पित्र पह इन्द्र ( कया कृति ) कौन्ते संरसणकी शक्तिते धुत होकर ( नः आ भुयत् ) हमारे पास आयेगा ? उत्तो प्रकार ( कया श्चिच्छया वृता ) कौन्ते शक्तिते धुत व्यवहार वाला होकर वह हमारे पास आएगा ? ॥ ५ ॥

[ १७० ] ( सत्रा-साहं ) बहुतते सत्राओंकी हरायेवाले ( यः ) तुम्हारी ( विश्वासु गीर्वा ) आयतं, तब श्रुतिवर्गे वर्णित ( त्यं उ ) इस इन्द्रकी ( उतये ) अपने संरसणके लिए तुम ( आच्याययसि ) अपने पास मूलावो ॥ ६ ॥

[ १७१ ] ( मेधां ) बुद्धि ब्रह्मके लिए ( मद्भुतं ) अपूर्व ( इन्द्रस्य श्रियं ) इन्द्रकी श्रिय ( काम्यं ) इच्छा करनेके योग्य पक्षके ( सन्नि ) वाग देनेवाले ( सदसस्पति ) सदसस्पति देवकी ( अवशिपं ) मेने प्राप्त किया है ॥ ७ ॥

[ १७२ ] हे इन्द्र ! ( ये ते पन्था ) ओ तैरे शायं ( दिवः अधः ) धुलीरसे गोवे हे ( येभिः विष्यै वेरयः ) जिन भागोसे तब विषयोंकी तु चलाता है, ( ते ) वे शायं ( नः भुयः ) उत ओपन्तु ) हमारे यत्न स्थानमें पहुँचते हैं, उन भागोसे हमारे यत्न स्थानको आ ॥ ८ ॥

[ १७३ ] हे ( शतक्रतो ) शंकरों कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( भद्रं भद्रं ) आयतन कार्य करनेवाले ( एवं ऊर्जं ) शन और बलकी बढ़ानेवाले शन ( नः आ भर ) हमें भरपूर दे । ( यत् ) क्योंकि ( नः मृच्छयासि ) तु हमें मुष्ठी करता है ॥ ९ ॥

१ हे शतक्रतो ! भद्रं एवं ऊर्जं नः आभर— हे शंकरों उतम कार्य करनेवाले इन्द्र ! बन्वाण करने वाले, शन और बलकी हमें भरपूर दे । २ नः मृच्छयासि— हमें तु मुष्ठी करता है ।

[ १७४ ] ( अवशस्तुतः ) यत्न अस्ति यह सोमरत हमने तैय्यार करके रखा हुआ है । ( मरुतः ) इते ( खराजः ) मरुतः। तेजस्वी मरुत गण ( पिबन्ति ) पीते हैं । ( अभिना ) मोर अधिकारी देव भी पीते हैं ॥ १० ॥

॥ यद्यं उक्ता क्लृप्त समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमाः वज्रः ।

[ १७५ ] ( सु-वीर्यं ) वन्वानासः ) उतम बल प्राप्त करनेकी इच्छावाली ( ईक्ष्वायन्तीः ) इन्द्रके पास ( अपस्युषः ) उतम शायं करनेकी इच्छा वाली इन्द्रकी माता ( आते ते उपासते ) प्रशत हुए उत इन्द्रकी सेवा करती हैं ॥ १ ॥

- १७६ न किं देवा इनीमसि न क्या योपयामसि । मन्त्रधुत्पं चरामसि ॥ २ ॥ (ऋ. १०।१३४।७)
- १७७ दोषो आगाद् बृहद्गाय सुमद्रामन्नाथर्वण । स्तुहि देवस्त्वितारम् ॥ ३ ॥ (अथर्व. ६।१।१)
- १७८ एषो उपा अपूर्व्या व्युच्छति मिया दिवः । स्तुपे वामधिना बृहत् ॥ ४ ॥ (ऋ. १।४६।१)
- १७९ इन्द्रो दधीचो अस्यामिधुत्राण्यप्रतिष्कृतः । जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८४।१२)
- १८० इन्द्रो हि मत्स्यन्धतो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महान् अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥ (ऋ. १।९।१)
- १८१ आ तु न इन्द्र वृत्रहन्साकमधेमा गहि । महान्महोभिर्मुक्तिभिः ॥ ७ ॥ (ऋ. ४।२२।१)
- १८२ ओजस्तदस्य तित्थिप उभे यत्समवर्तयन् । इन्द्रधर्मव रोदसी ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६।२)

[ १७६ ] हे (देवाः) देवो ! (न किं इनीमसि) हम कोई हानि नहीं करते और (न किं आयोपयामसि) हम कोई विपद् कार्य नहीं करते (अन्त्र-धुत्पं चरामसि) वेध-मन्त्रों में जो कहा है, उसके अनुसार हम आचरण करते हैं ॥ २ ॥

१ न किं इनीमसि— हम किसीको हानि नहीं करते । २ न किं आयोपयामसि— हम कोई विपद् कार्य नहीं करते । ३ अन्त्रधुत्पं चरामसि— वेधमन्त्रों में जो कहा है, उसके अनुसार हम आचरण करते हैं ।

[ १७७ ] हे (बृहद् गाय) बृहत् नामक सामका गायन करनेवाले, हे (सुमद्-गामन्) अनामके मार्गसे जानेवाले (आधर्वण) अथर्ववेदी ब्राह्मण ! (दोषः अगात्) मत्कर्ममें जो दोष हों उन्हें दूर करनेके लिए (देवस्त्वितारं स्तुहि) सविता देवकी स्तुति कर ॥ ३ ॥

१ दोषः अगात्, देव स्तुतिारं स्तुहि— दोष होनेपर तथिता देवकी स्तुति कर ।

[ १७८ ] (एषा मिया) यह शिव (अपूर्व्या उपा) अपूर्व उपा (दिवः व्युच्छति) घुलोकसे प्रकाशित होती है, हे (अभिना) अभिरुचि ! (या बृहत् स्तुपे) तुम्हारी हथ बहुत बड़ी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[ १७९ ] (अ-प्रतिष्कृतः) जिसका कोई मुक्तबला नहीं कर सकता ऐसे इस इन्द्रने (दधीचः अस्थिमः) दधीचिकी हड्डियोंसे (मय जयतीः) आठ सौ दस (धुत्राणि) धुत्रोकी (जघान) मारो ॥ ५ ॥

१ नव नयतीः— नौ गुना मन्त्रे, १०×९ = ८१० ।

[ १८० ] हे इन्द्र ! (यहि) आ (अम्यसः) अन्न रन्धी (विश्वेभिः सोमपर्वभिः) सब सोमरसोंसे (मल्लि) दू भान्वित होता है, अब (ओजसा) अपने बलसे (महान् अभिष्टिः) बड़ेसे बड़े शत्रुको भी हराने वाला हो ॥ ६ ॥

१ ओजसा महान् अभिष्टिः— सामर्थ्यसे यह महान् शत्रुको भी हरानेवाला है ।

[ १८१ ] हे (वृष-हन्) वृत्ररूपी शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! तु (अः) हमारे पास (महान् आ तु) महान् होकर आ । (महोभिः ऊतिभिः) महान् संरक्षणके सामर्थ्यके साथ (अरुमाक अर्ध व्यग्रहि) हमारे पास आ ॥ ७ ॥

१ महोभिः ऊतिभिः अस्माकं अर्ध आगहि— महान् संरक्षणके सामर्थ्यके साथ हमारे पास आ ।

[ १८२ ] (अस्य तत्तु ओजा) इस इन्द्रका वह सामर्थ्य (तित्थिपे) चमकने क्या है, (यत्) जिससे कारण यह इन्द्र (उभे रोदसी) घुलोक और भूलोकको 'चर्म हय समवर्तयत्' चमकने लगाने संछाता है ॥ ८ ॥

१८३ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिषु । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।३०।४ )

१८४ वात आ वातु मेघनश्शुम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूषि तारिपत् ॥ १० ॥

( ऋ. १०।१८६।१ )

इति नवमी वयति ॥ ९ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ ख० १० । उ० २ । वा० ४५ । ( कु. ) ॥ ]

[ १० ]

( १-९ ) १ कण्ठो घोरः; २, ३, ९ वात. ( ऋ० २, ९ वयोऽयम्भः ) काण्डः; ४ अतःपुनः सुकृषो वा आद्रिपरतः।

५ मधुच्छत्वा वैजयन्तिः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ इरिम्बिः काण्डः; ८ तत्पुनर्विर्वाणि ॥ इन्द्रः ( ऋ०

१ वचननिर्वाणमनः; ८ आरित्यः ) वायव्ये ॥

१८५ य रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अथमा । न किं स दृश्यते जनः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।४१।१ )

१८६ गृध्रो पु जो यथा पुराशपोत रथया । वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४६।१० )

१८७ इमास्त इन्द्र पृथ्वी पृथु दुहव आशिरम् । एनामृतस्य पिप्पुयीः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६।१९ )

१८८ अया धिया च गन्धया पुरुषान्मपुरुषुत । यत्सोमेसोम आशुवः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।९१।१० )

[ १८६ ] हे इन्द्र ! ( अथ उ ) यह सोमरस निश्चयसे ( ते ) तेरे लिए तैयार किया गया है, उसके पास ( सम-तसि ) न जाता है ( फायोतः गर्भधिषु इव ) जैसे बबूतर गर्भको चारण करनेमें सफल बबूतरीके पास जाता है ( तत्प-चित् ) उन्नी प्रकार ( नः ) जयः ) हमारी स्तुति ( ओहसे ) तु मुक्ता है ॥ ९ ॥

[ १८४ ] ( वातः ) यह वायु ( नः ) हृदे शोभु मयोभु ) हमारे हृदयको आलित और सुल देनेवाली ( मेघजं ) शीव-धियोको ( आ वातु ) लाकर देवे, वे शीवधियां ( नः ) आयूषि प्रतारिपत् ) हमारी आयुको लम्बी करें ॥ १० ॥

१ वातः नः हृदे शोभु मयोभु मेघजं आ वातु— यह वायु हमारे हृदयको सुल और आरोग्य देनेवाली शीवधियोंको लाकर देवे । २ नः आयूषि प्र तारिपत्— हमारी उम्र लम्बी करे ।

॥ यहाँ सातवाँ खंड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १८५ ] ( प्र-चेतसः ) तानी ( यं रक्षन्ति ) जिसका रक्षण करते हैं ( सः ) जनः ) वह मनुष्य ( न किं दृश्यते ) किसीसे भी नहीं दबाया जा सकता ॥ १ ॥

१ प्रचेतसः यं रक्षन्ति सः जनः न किं दृश्यते— तानी देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसे कोई भी मर्दा हरा सकता ।

[ १८६ ] हे इन्द्र ! ( यथा पुरा ) पहलेके समान ( नः ) हमें ( पु-गन्ध्या ) उत्तम गंधोंके समूह, ( उ अभ्यया ) उत्तम घोड़े ( उत रथया ) और रथ तथा ( महोनां ) बड़ा बजानेवाले यन्त्र देनेकी इच्छासे ( वरिवस्य ) हमारे पास आ ॥ २ ॥

[ १८७ ] हे इन्द्र ! ( ते इमाः पृथ्वीः ) तेरी ये माँ ( पृथ्वीस्य पिप्पुयीः ) पत्नी बरनेवाली हैं, और ( पुनं एनां आशिरं ) पी देनेवाले शीवधियों ( दुहते ) दुहती हैं ॥ ३ ॥

[ १८८ ] हे ( पुरु-नामनः ) अनेक नामोंवाले और ( पुर-पुत ) बहुतांगि प्रसंगित इन्द्र ! ( सोमे सोमे ) प्रायेक सोमपत्राणें ( यन् आशुवः ) जहाँ न जाता है, वहाँ ( अया गन्धया धिया ) इस गंधकी इच्छा करनेवाली स्तुतिसे हम तेरी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

१८९ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु चिवावसुः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१।१० )

१९० क इमं नाहुपीत्वा इन्द्र सोमस्य वर्षयात् । स नो वषन्त्या भरतु ॥ ६ ॥

१९१ आ याहि सुपुमा हि त इन्द्र सोमं पिवा इमम् । एदं वहिः सदी मम ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१।७१ )

१९२ महि त्रीणामवरस्तु युक्षं मित्रस्याव्यम्णाः । दुरावर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।१।८५।१ )

१९३ स्वावतः पुरुवसो वपमिन्द्र प्रणेतः । असि स्वावर्हीणाम् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१६।१ )

इति दशमो वसतिः ॥ १० ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्त० ६ । उ० ४ । पा० ३५ । ( ५ ) । ]

इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः; द्वितीयः प्रपाठकाय समाप्तः ।

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्थः ।

[ १ ]

( १-१० ) १ प्रपाथः काण्यः; २ विश्वामित्रो याधिनः; ३, १० सामवेदो गीतकः; ४, ६ अतककः आदित्यरसः

( ऋ० ४ मुकसोः वा; ६ मुकस आगिरतः ) ; ५ यवुण्डन्ता वैश्वामित्रः; ७ युक्समदः शौनकः; ८, ९ भरद्वाजः

( ऋ० -८ वांङ्मुः ) आहस्वत्यः ॥ इन्द्रः ( ९ ऋ० इन्द्राप्रवर्षा ) ॥ गायत्री ॥

१९४ उववा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधां अद्रिर्वै । अव ब्रह्मद्विपो अहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१६।१ )

[ १८९ ] ( पावका ) पवित्रता करनेवाली ( याजिनीयती ) अन्न देनेवाली ( धिया वसुः ) बुद्धि की स्थापना करने देनेवाली ( सरस्वती ) विद्या देवो ( याजेभिः ) अर्पिते ( नः यज्ञं वष्टु ) हमारे यज्ञको पूर्ण करे ॥ ५ ॥

[ १९० ] ( नाहुपीतु ) प्रजाजनमें ( इमं इन्द्रे ) इस इन्द्रको ( कः वर्षयात् ) कौन भला वृत्त करता है ? ( राः ) यह इन्द्र ( नः वसुनि आ भरतु ) हमें भरपूर मन देवे ॥ ६ ॥

[ १९१ ] हे इन्द्र ! ( आयाहि ) तू आ, हमने ( ते ) तेरे लिए ( सुपुमा हि ) सोमरस उत्तम रीतिसे तैयार किया है, ( इमं सोमं पिवा ) इस सोमरसको तू पी, ( मम ) मेरे ( एदं वहिः ) इस आसन्नपर ( आसन्नदः ) बैठ ॥ ७ ॥

[ १९२ ] ( मित्रस्य, अव्यम्णाः यगमस्य ) मित्र अर्चना और वरुण इव ( त्रीणां ) तीनोंसे मिलनेवाले ( युक्षं ) तेजस्वी ( दुरावर्षं ) इतरोंके द्वारा सहनेमें कठिन ऐसे ( महि अवः ) बहान् संरक्षण ( अस्तु ) हमारे लिए हीं ॥ ८ ॥

१ युक्षं दुरावर्षं यदि अयः अस्तु—तेजस्वी, इतरोंको हरा देनेमें समर्थ, महान् संरक्षण हमें मिले ।

[ १९३ ] हे ( पुरु-वसो ) बहुतसे यमको अपने पास रखनेवाले, ( अ-वेतः ) उत्तम कर्म करनेवाले, ( हरीणां स्वातः ) घोषोपर बैठनेवाले इन्द्र ! ( स्वावतः ययं स्वासि ) तुमसे संरक्षित होकर हम सुरक्षित रहें ॥ ९ ॥

॥ यहाँ आठवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ १९४ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुम ( सोमाः ) ये सोमरस ( उत्तु मन्दन्तु ) उत्तम जलान् देने, हे ( अद्रि-वः ) वरुणको पारण करनेवाले इन्द्र ! तू हमें ( राधां कृणुष्व ) यव दे और ( ब्रह्म-द्विपः ) ज्ञानसे द्वेप करनेवाले शत्रुओंको ( अव जहि ) तू मार ॥ १ ॥

१ राधाः कृणुष्व—हमें यव दे ।

२ ब्रह्मद्विपः अवजहि—ज्ञानसे द्वेप करनेवालोंको तू मार ।



१९५ गिर्वेणः पाहि नः सुतं मघाधारागिरिज्यसे । इन्द्र त्वादातमिधयः ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।४।६ )

१९६ सदा व इन्द्रमकृपदा उपो जु स सपर्यन् । न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥

१९७ आ स्वा विशन्तिन्धवः समुद्रमिध सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति सिन्धवते ॥ ४ ॥

( ऋ. ८।९१।१२ )

१९८ इन्द्रमिद्राधिना बृहदिन्द्रमकभिरकिणः । इन्द्रं वाणीरनूपत ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।७।१ )

१९९ इन्द्र इये ददातु न अमुष्यमपृथुरपिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९३।१४ )

२०० इन्द्रो अग्न महद्भयमभी पदप चुष्यवन् । स हि स्थियो विष्वर्षणिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. २।४१।१० )

२०१ इमा उ स्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वेणो मिरः । गावो वरसं न धेनवः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ६।४९।१८ )

[ १९५ ] हे ( गिर्वेणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र । ( नः सुतं पाहि ) हमारे द्वारा निकाले गए सोमरसोंको पी, क्योंकि न इत ( मघोः धाराभिः अज्यसे ) सोमरसकी धाराओंसे मींचा जाता है, और है इन्द्र । ( त्वादातं इत् यशः ) तेरी सहायतासे यश मिलता है ॥ २ ॥

१ त्वादात यशः इत्— तेरी सहायतासे यश मिलता है ।

[ १९६ ] ( इन्द्रम् ) यह इन्द्र ( सदा उपो जु ) सदा तुम्हारे पास है, ( सः सपर्यन् ) वह पूजित होता हुआ ( सः आचरुष्यन् ) तुम्हारे यत्नकी ओर आकर्षित होता है, ( नः वृतः इन्द्रः शूरः ) हमारे द्वारा स्वीकार किया गया इन्द्र वेच महान् वीर है ॥ ३ ॥

१ सः वृतः इन्द्रः शूरः— हमारे द्वारा स्वीकार किया गया इन्द्र वेच बहुत वीर है ।

[ १९७ ] हे इन्द्र ! ( सिन्धवः समुद्र नः ) जिस प्रकार नदियाँ समुद्रसे मिलती हैं, उसी प्रकार ते ( इन्द्रः ) सोमरस ( स्वा विशन्तु ) तुममें प्रविष्ट हों, हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वा ) तुमसे बढकर ( न अतिरिच्यते ) और कोई महान् नहीं है ॥ ४ ॥

१ हे इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते — हे इन्द्र ! तुमसे बढकर और कोई महान् नहीं है ।

[ १९८ ] ( पाधिनाः ) सामयान करनेवाले मनुष्य ( इन्द्रं इत् ) इन्द्रसे ही ( वृहत् अमूपत ) बृहत्तामकी गारक प्रशंस करते हैं । ( अकिणः अकेंभिः ) पूजा करनेवाले मनुष्य स्तोत्रोंसे उसीकी पूजा करते हैं, ( वाणीः इन्द्रं अनूपत ) हमारी वाणी इन्द्रका ही गान करती है ॥ ५ ॥

[ १९९ ] इन्द्रः ( अमुष्यमपृथुः शूरः ) श्रेष्ठ वन हमें देवे ( जमुः सः इये ददातु ) हमें अपने लिए वारीगर हैं ( वाजी वाजिनं ददातु ) घलवान् इन्द्र हमें वन देवे ॥ ७ ॥

१ अमुष्यमपृथुः शूरः ददातु— इन्द्र वारीगरोंका धामन करनेवाले वन हमें देवे ।

२ नः इये अमुः ददातु— हमें अन्न मिलानेके लिए वारीगर देवे ।

३ वाजी वाजिनं ददातु— घलवान् इन्द्र वन देवे ।

[ २०० ] ( स्थिरः विष्वर्षणिः ) स्थिर, अवकल यह जानो इन्द्र ( महत् अय ) महान् भयने । अंग हि अग्नी यम् ) दीप ही दूर करता है, और जन अग्निकी ( अय-चुष्यवन् ) स्वान्ते हृद्य देता है ॥ ७ ॥

१ स्थिरः विष्वर्षणिः महत् अय अग्नीयम् अपचुष्यवन्— मुझमें स्थिर रहनेवाला और जानो वह इन्द्र महान् भयने दूर करता है और जट्टे स्वान्ते हृद्य भी देता है ।

[ २०१ ] हे ( गिर्वेणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र । ( नुते सुते ) प्रायेण यत्नसे ( इमा मिरः ) ये हमारी स्तुतिवा ( स्वा ) तुम हो ( पदप धेनवः गावो नः ) जिस प्रकार बढतेही दूध देनेवाली गायें प्राप्य होती हैं, उसी प्रकार ( नक्षन्ते ) प्राप्य होती हैं ॥ ८ ॥

२०२ इन्द्रा तु पूषणा वयःसख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसावये ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।५।७।१ )

२०३ न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् । न वयं यथा त्वम् ॥ १० ॥

( ऋ. ४।१०।१ )

इति प्रथमा वरातिः ॥ १ ॥ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ खण्ड ८ । उ० ७ । पा० ३५ । (५) ]

[ २ ]

( १-१० ) १, ४ त्रिमोकः काण्वः; २ मधुच्छन्दा ब्रह्ममित्रः; ३ यत्तः काण्वः; ( ऋ० पत्रोऽश्वः ); ५ मुक्ता आदिपरतः;

६, ९ वामदेवो गोमनः, ७ विश्वामित्रो गामिनः । ८ गोपूषण्यवसृष्टिनी वाजसावयी; १० श्रुतपक्षः मुक्ता वा

आदिपरतः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

२०४ तरणिं यो जनानां ब्रह्म वाजस्य गोमनः । समानमु प्र वृत्सिपम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४।१८ )

२०५ असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । सजोषा वृषमं पतिम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१५ )

२०६ सुनीधौ यां स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रास्पान्न्यद्रुहः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।४।१५ )

२०७ पद्मोडाविन्द्र यस्मिन् यस्पशने पराभूतम् । वसु स्वाह तदा भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।४।१४ )

[ २०२ ] ( इन्द्रा पूषणा ) इन्द्र और पूषा इन देवताओंके ( तु वयं ) हम ( स्वस्तये ) अपने कल्याणके लिए ( सख्याय ) मित्रताके लिए और ( वाज-सावये ) अश्वकी प्राप्तिके लिए ( हुवेम ) आर्पणा करके बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ २०३ ] हे ( वृत्र-हन् इन्द्र ) पशुको मारनेवाले इन्द्र ! ( त्वत् उत्तरं न कि अस्ति ) तुझसे ज्यादा कोई और कोई नहीं है, और ( ज्यायान् ) महान् भी कोई नहीं है ( यथा त्वं ) वैसा तू है, ( वयं ) वैसा ( न कि ) दूसरा कोई नहीं है ॥ १० ॥

१ ते वृत्रहन् इन्द्र ! त्वत् उत्तरं न कि अस्ति— हे वृत्र नाशक इन्द्र ! तुझसे ब्रह्मर श्रेष्ठ कोई भी नहीं है ।

॥ यहाँ नवमं खंड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] द्वादशः खण्डः ।

[ २०४ ] ( याः जनानां तरणिं ) तुम लोगोंको ' बुलाते ' पार करनेवाले ( ब्रह्म ) पशुको भय विह्वलनेवाले ( गोमनः वाजस्य ) गायत्री मिलनेवाले अश्वका दान करनेवाले ( समानं उ ) और सदा उन्नत रहनेवाले इन्द्रकी ( प्रवृत्सिपम् ) में प्रशंसा करता हूँ ॥ १ ॥

हे जनानां तरणिं, ब्रह्म, समानं प्रवृत्सिपम्— सबका सारक्षण करनेवाले और पशुको भय देनेवाले इन्द्रकी हम सदा स्तुति करते हैं ।

[ २०५ ] हे इन्द्र ! ( ते गिरः असृग्रं ) तेरी स्तुतिके लिए शत्रुओंको मैंने सँघार किया है । वे स्तुतिवां ( वृषमं पतिं त्वा ) यत्नवान् और सबका शासन करनेवाले तुझे ( प्रति उदहासत ) प्राण हुई है, और उन्नत होने ( स-जोषाः ) केबल किया है ॥ २ ॥

[ २०६ ] ( अ-द्रुहः ) ग्रीह न करनेवाले मर्त्य, मित्र और अर्यमा ( यं पान्ति ) जित्तोके रक्षा करते हैं, ( सः मर्त्यः ) वह मनुष्य ( सु-नीधः य ) निश्चयसे उत्तम मार्गपर चलनेवाला होता है ॥ ३ ॥

१ यं अद्रुहः पान्ति स मर्त्यः सुनीधः— जितना ग्रीह न करनेवाले देव सारक्षण करते हैं, वह मनुष्य उत्तम मार्गसे जानेवाला होता है ।

[ २०७ ] हे इन्द्र ! ( यत् ) जो वन तुने ( वीहौ ) मजबूत सजानेवं रखा हुआ है, ( पत् स्थिरे ) जो वन विश्व स्थानमें रखा हुआ है, ( यत् पशानि पराभूतं ) जो भूमिमें रखा हुआ है, ( तत् स्वाह वसु ) उस उत्तम वनको ( गायत्री ) हमें भरपूर है ॥ ४ ॥

२०८ भुवँ वाँ सुवदन्तमं म श्रुधे चरषीनाम् । आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९।१।६ )

२०९ अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरश्शक्र परमणि ॥ ६ ॥

२१० धानाग्रन्ते करमिणसपुपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुपस्व नः ॥ ७ ॥ ( १।९।१।७ )

२११ अपां केनेन नमुचेः शिर इन्द्रादवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।११।११ )

२१२ इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥

२१३ तुर्यसुतासः सोमाः स्तौर्णि बर्हिर्विमावसो । स्तौवुर्य इन्द्र मृडया ॥ १० ॥

( ऋ. ८।९।१।९ )

इति द्वितीया वसति ॥ २ ॥ वसयः सप्त ॥ १० ॥ [ स्व० ८ । प० २ । पा० ३३ । ( ६ ) । ]

[ २०८ ] ( सुव-हन्तमं श्रुधे ) सपुत्रे मारनेवाले बलको सुमने ( भुवँ ) सुना ही है, ( चरषीनां ) अनुबोधों ( महे राधसे ) महान् प्रभो की प्रायिके लिए उस बलको ( अ आशिषे ) उपभोगके लिए ( वाँ ) सुनैँ देता हूँ ॥ ५ ॥

[ २०९ ] हे ( शूर इन्द्र ) पीर इन्द्र ! ( ते श्रवसे ) तेरा वय सुननेके लिए ( अरं गमेम ) बहुतसे भवतार हमें मिलें, हे ( शक्र ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( रायतः परमणि ) तेरे समान भेद देवताके सरक्षणमें ( अरं ) मान्यित होनेके लिए हमें पर्याप्त अवसर मिले ॥ ६ ॥

[ २१० ] हे इन्द्र ! ( धानाग्रन्ते ) भुने हुए, ( करमिणं ) बही और सत्तुते विभित ( अपुपवन्तं ) पुत्रोंके साथ तथा ( उक्थिनं ) स्तोत्र जिसके साथ बोले जाते हैं, ऐसि ( नः ) हमारे सोमरसको ( प्रातः जुपस्व ) तबोंरे सेवन कर ॥ ७ ॥

[ २११ ] ( यम् ) जब ( विश्वाः स्पृधः अजयः ) सब सपुत्रों तेनाओंको हरा दिया, सब ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( अपां केनेन ) जलके शायते ( नमुचेः शिरः उदयर्तयः ) अनुबोधे सिरको तोड़ा ॥ ८ ॥

१ अपां केन—पानीका शय, सपुत्री प्राग ।

२ नमुचिः—शीघ्र अग्राह न होनेवाला रोग, शीघ्र अग्राह न होनेवाला रोग समुद्रो प्रायगे अनुपालते हीन हो जाता है ।

[ २१२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( इमे सोमाः ) ये सोमरस ( सुतासः ) विशालहर तैय्यार किए गए हैं ( च ये सोत्वाः ) और जो रस विशालहर तैय्यार किए गए हैं, हे ( प्रभू-यसो ) बहुत सारा मन पताने रखनेवाले इन्द्र ! ( तेषां मत्स्व ) उन सोमरसमें तू मान्यित हो ॥ ९ ॥

[ २१३ ] हे ( विमावसो ) तेजस्वी मन वालने रखनेवाले इन्द्र ! ( तुर्यसोमाः सुतासः ) तेरे लिए ये सोमरस विशालहर तैय्यार किए हैं और ( बर्हिः स्तौर्णि ) आसन बँकाकर रसा हुआ है, हे इन्द्र ! इन सुतामन्दार बँद और सोम पी, तथा ( स्तौवुर्य ) उपलब्धिले ( मृडया ) मुझो कर ॥ १० ॥

॥ यदां दसयां लंष्ट समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

( १-१ ) १ सुत रोष आजीर्णति, २ भुतकृष आगिरस ( अ० सुबोधो आगिरसो वा, ) ३ विदोक्तः काण्वः ;  
४ मेपातिविः काण्वः ; ५ गीतमो राहूयणः ; ६ ब्रह्मातिविः काण्वः, ७ विश्वामित्रो मायिनो जमदग्निर्वा ;  
८ प्रसव्यः काण्वः ( अ० कण्वो घीरः ) ; ९ मेपातिविः काण्वः ॥ इन्द्रः ( अ० ५ विश्वेदेवा ),  
६ अश्विनो; मित्रावरुणो; ८ भरतः, ९ विष्णुः ) ॥ गायत्री ॥

२१४ आं व इन्द्रं कृविं यथा वाजयन्तः श्रवक्रतुम् । म० हिंस्रसिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

( अ० १।१०।१ )

२१५ अतश्चिदिन्द्रं न उपा याहि श्रववाजया । इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥ ( अ० ८।९२।१० )

२१६ आं बुन्दे वृषहा ददे जातः पृच्छाद्भि मातरम् । क उग्राः के ह मृगिरे ॥ ३ ॥

( अ० ८।४९।४ )

२१७ वृषदुष्य० हवामहे सुप्रकरस्त्वृतये । साधः कृषन्तमवसे ॥ ४ ॥ ( अ० ८।३२।१० )

२१८ अञ्जनीवी नो वरुणो मित्रो नयति पिद्वान् । अयमा देवैः सजोषा ॥ ५ ॥ ( अ० १।९०।१ )

२१९ दूरादिदेव यत्सतोऽरुणसुराशिवितत् । वि भानुं विशयावतन् ॥ ६ ॥ ( अ० ८।१।१ )

[ ११ ] एकदशः खण्डः ।

[ २१४ ] ( वाजयन्तः ) अथवाते ह्य यनमान ( शतधनुं ) संकडों उत्तम काम करनेवाले ( महिष्टं ) महान् ( वा : इन्द्रं ) कुम्हार इन्द्रको ( कृविं यथा ) संतको अंते वाजोते सींचते हैं, उसी प्रकार ( इन्दुभिः आ सिञ्च ) सोनरसोते सींचते हैं ॥ १ ॥

[ २१५ ] हे इन्द्र ! ( अतः चित् ) इस शुलोषने ( दात-प्राजया ) संकडों प्रकारके बलसे तथा ( सहस्र-वाजया ) हजारों तरहके अग्रेसे युक्त होकर ( इषा ) रत्नके साथ ( नः ) हमारे पास ( उपा याहि ) वा ॥ २ ॥

[ २१६ ] ( जातः पुनहा ) उत्पन्न होते ही वृषरो मारनेवाले इन्द्रने ( बुन्दे वाददे ) बाण हाथमें ले लिया और ( यत्सतोऽरुणसुरा ) अपनी मातासे पूछा कि ( के के उग्राः इह मृगिरे ) कौन कौन यहाँ और यहाँ प्रसिद्ध हैं ॥ ३ ॥

[ २१७ ] ( ऊतये ) सभीके सरसणके लिए ( सुप्रकरस्ते ) हारोंके फैलनेवाले, ( अवसे ) सरसणके लिए ( साधः कृषन्तं ) साधनोंको देनेवाले, और ( वृषदुष्यं ) जिसकी बहुत स्तुति की जाती है, ऐसे उस इन्द्रको ( हवामहे ) हम वृत्तते हैं ॥ ४ ॥

[ २१८ ] ( मित्रः वरुणः ) मित्र और वरुण ये ( पिद्वान् ) जानी देव ( नः ) हमें ( अञ्जनीवी नयति ) सरस नौनिके मार्गसे लेजाते हैं । ( देवैः सजोषाः अयमा ) देवोंके साथ समान रीतिसे रहनेवाला अयमा भी हमें सरस मार्गसे उपजितो पहुँचावे ॥ ५ ॥

[ २१९ ] ( दूरात् ) दूर आकाशको पुर्व दिशावासी ( इह सतः पयः ) मात्नी यहाँ है ऐसी रिपाई देनेवाली तथा ( अरुणपुतः ) अरुण प्रकाशको फैलनेवाली उपा ( यत् अग्निश्वितत् ) जब प्रकाशित होने लगी, तब ( भानुं ) प्रकाशको ( विश्वया यतन्तम् ) चारों ओर फैलाने लगी ॥ ६ ॥

८ ( साध, हिरो )

२२० आ नो मित्रावरुणा धृतेर्मन्युतिष्ठसुतम् । मन्वा रवांसि सुकृत् ॥ ७ ॥ (ऋ १।२।१६)

२२१ उदु त्य सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत । वात्रा अग्निं यातवे ॥ ८ ॥ (ऋ १।२।१०)

२२२ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दमे पदम् । समूढमस्य पाशुले ॥ ९ ॥ (ऋ १।२।१७)

इति तृतीया वसति ॥ १ ॥ एकावत खण्ड ॥ ११ ॥ [ ख० ६ । उ० १ । पा० ३९ । (को) ॥ ]

[ ४ ]

( १-१० ) १, ७, ८ वेपातिषि काण्ड, २ वाग्देवो गीतम्, ३, ५ वेपातिषि काण्ड, प्रियमेयश्चादिगुरस, ४ विश्वा-  
मित्रो गायिन्, ६ दुनित्र ( सुमित्रो वा ) कोत्स, ९ विश्वामित्रो गायिनीम्भीपाद् उदतो वा, १० भुतकम्

( ऋ० सुकृत्वा वा ) आगिरत् ॥ इष्ट ॥ गायत्री ॥

२२३ अतीहि मन्युषाविणश्सुषुवाशसमुपेरय । अस्य रातौ सुवत् पिब ॥ १ ॥ (ऋ ८।१।११)

२२४ कदु प्रचेतसे महे नवो देवाय शस्यते । तदिष्यस्य वर्धनम् ॥ २ ॥

२२५ उक्थं च न शस्यमानं नामो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥ (ऋ ८।१।१४)

२२६ इन्द्र उक्थमिन्द्रिद्यो वाजानां च वाजपतिः । हरिवारमुत्तानां श्लथा ॥ ४ ॥

[ २२० ] ( सु-कृत् मित्रा-वरुणा ) उत्तम कर्म करनेवाले मित्र और वरुण ( न. गन्धर्वादि ) हमारे गी-समूहको ( धृते या उदत ) कोषित भयवा धी उत्पन्न करनेवाले कृषते भरपूर करे, अर्थात् हमें बहुतसा ह्वान देनेवाली गर्भ दे, ( रजास्ति ) लोकोको ( मन्वा ) मधुर रसले तिलिल करे ॥ ७ ॥

[ २२१ ] ( त्ये सुतव गिरः ) तेरे पुत्र नरन् गजवा करते हुए ( यज्ञेषु ) यज्ञमें ( काष्ठा उ उदु अतले ) विश्वामित्रे उवाकामित्रे समस्त फलते हैं इस कारण ( वात्रा ) रमाती हुई गायिको ( अग्निं यातवे ) घुड़नेतक भरे पानीमें जाना पड़ता है ॥ ८ ॥

[ २२२ ] ( विष्णु ) ग्वाण्ड ईश्वरने ( इदं विचक्रमे ) इस विश्वमें ऐसा पराक्रम किया है, कि यहाँ ( त्रेधा पद निदमे ) तीन प्रकारसे अपने पैरोंको इतने रखा है । ( अस्य पाशुले ) इसके घुससे भरे एक कदमके स्थानमें सब जात ( समूढ ) सत्ता गया है ॥ ९ ॥

॥ यद्वा ग्वाण्डवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १२ ] द्वादश्या खण्ड ।

[ २२३ ] हे इन्द्र ! ( मन्यु-गायिन् ) कोषित होकर सोमरातीको निकालनेवाले यज्ञमानको ( अतीहि ) छोड़ दे, ( सु-सुषुवा उपेरय ) और उत्तम रीतिसे सोमरस निकालनेवालेके पास जा, और ( अस्य रातौ ) इतके यत्नमें ( सुव पिब ) सोमरस पी ॥ १ ॥

[ २२४ ] ( महे प्रचेतसे देवाय ) महान् सानो इन्द्र देवके लिए ( कदु पन्व शस्यते ) बुद्धता दिखाई देनेवाला हमारा शत्रु भी प्रशस्ति होता है, नवोकि ( तद् इत् अस्य वर्धन ) वे शत्रुके इन्द्रके गुणोक्त वर्धन करनेवाले हैं ॥ २ ॥

[ २२५ ] ( अ-गो ) स्तुति न करनेवालेके ( अग्नि ) घन् इन्द्र ( शस्यमान उक्थ चन ) बड़े मानवाले स्तोत्रोको ( न गायिष्वेत ) नहीं जानता है, ऐसी बात नहीं, और ( गीयमान गायत्र न ) गायने करनेवाले गायत्र सामको नहीं सुनता, ऐसा भी नहीं, वह मन्वज जानता और सुनता है ॥ ३ ॥

[ २२६ ] ( वाजानां वाजपति ) बज्रजानोंमें श्री शत्रुके अधिक बलवान् ( हरिवान् इन्द्र ) घोड़ोंको पाल रखने वाला इन्द्र ( उक्थेभिः मन्दिष्ट- ) शत्रुओंसे प्रथम होकर ( सुत्तानां श्लथा ) सोमरस करनेवालोंका मित्र होता है ॥ ४ ॥

२२७ आ याह्युप नः सुतं वाजैर्मिमां हणीयथाः । महा इव युवजानि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।२।१९ )

२२८ कदा वसो स्तोत्र-हृत्य आ अव इमंशा रुमद्वाः । दीर्घसुते वाताप्याय ॥ ६ ॥

( ऋ. १०।१०५।१ )

२२९ ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृत्-धरु । तवेद-सख्यमस्तुतम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।१५।५ )

२३० वयं या ते अपि ससि स्तोतार इन्द्र गिर्वेणः । स्व नो जिन्य सोमपाः ॥ ८ ॥

( ऋ. ८।१९।७ )

२३१ इन्द्र पृथु काम चिकुम्णा तन्पु धेहि नः । सत्राजिदुग्ध पी-स्यम् ॥ ९ ॥

२३२ एवा असि धीरधुरवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१९।१८ )

इति कृत्योर्गङ्गातिः ॥ ४ ॥ इन्द्रा, सख्यः ॥ १९ ॥ [ स्व १९ ] उ० ना । वा० ३० । धी ॥ ]

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इत्येकस्मिन् समाप्तम् ॥

[ २२७ ] हे इन्द्र ! हमारे ( सुतं उप आ याहि ) सोमयज्ञमें आ, ( वाजैभिः मा हणीयथाः ) इतरोंके द्वारा दिए गए हविष्याभ पर वृष्टि भी मत डाल, ( युवजानिः महान् इव ) जवान स्त्री रत्ननेवाला तबन् पुत्रव अपनी स्त्रीकी और जिस प्रकार मकर रत्नता है, उस प्रकार तू कर ॥ ५ ॥

[ २२८ ] हे ( वसो ) व्यापक इन्द्र ! ( स्तोत्र हृत्य ) स्तोत्रोंकी पुनर्देकी इच्छा करनेवाले तुझे ( दीर्घं सुतं ) विशेष रूपसे निकाले गए सोमरसोंमें ( वाताप्याय इमंशा ) जल मिश्रानेके लिए जैसे नहरों रोकेते हैं, उसी प्रकार ( कदा अवारुधत् वा ) तुझे कब रोके और तुझे धरण करें ॥ ६ ॥

[ २२९ ] हे इन्द्र ! ( ब्राह्मणात् राधसः ) ब्राह्मण धर्मोंकी बोलनेवालेके यज्ञ पात्रसे ( सोमं मृत्-धरु पिब ) सोमरसोंकी मृदुगंधोंके अनुसार पी, क्योंकि ( तव इव सख्यं ) तेरी यह मित्रता ( अस्तुतं ) कभी न टूटनेवाली है ॥ ७ ॥

१ तव सख्यं अस्तुतं— तेरी मित्रता कभी टूटती नहीं है ।

[ २३० ] हे ( गिर्वेणः इन्द्र ) प्रशस्तीय इन्द्र ! ( ते ) तेरी ( वयं या ) हम ( स्तोतारः ससि ) स्तुति करनेवाले हैं, हे ( सोम-पाः ) सोम पीनेवाले इन्द्र ! ( स्व नः जिन्य ) तू हमें सन्तुष्ट कर ॥ ८ ॥

[ २३१ ] हे इन्द्र ! ( पृथु कामचिकुम्णा ) सम्बन्धमें आये हुए किन्हीं ( नः तन्पु ) हमारे गणों ( मृ-मनं आपोहि ) मल स्थापन कर, हे ( उत ) और इन्द्र ! ( सत्रा-जिदुग्ध पीस्य ) तब शत्रुओंकी मिलते हम एक साथ जीत लें और कम हर्षमें स्थापित कर ॥ ९ ॥

१ पृथु नः तन्पु नृग्र्यां आपोहि— हमारे सम्बन्धियोंमें नेतृत्वके गुणों और बतोंसे बढ़ ।

२ सत्राजिदुग्ध पीस्य आपोहि— तब शत्रुको एक साथ मिलानेवाले बलसे हमें दे ।

[ २३२ ] हे इन्द्र ! ( धीर-युः पथ असि ) बलशाली शत्रुओंके साथ भी तू युद्ध करनेवाला है । ( दि ) धर्मोंके ( शूरः उत स्थिरः ) शूर हैं और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है । इतिवि ( ते मनः ) तेरा मन ( राध्यं ) स्तुतिसे योग्य है ॥ १० ॥

१ धीरयुः असि— शत्रुओंके साथ तू युद्ध करनेवाला है, अथवा धर्मोंको सन्तुष्ट करने के उद्देश्ये । ताने-वाला है ।

२ शूरः उत स्थिरः असि— तू धीरवीर और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है ।

३ ते मनः राध्यं— तेरा मन स्तुति और पूजाने योग्य है ।

॥ यहाँ बारहवां खंड समाप्त हुआ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

[५]

(१-१०) १, ६, ९ वसिष्ठो मेधावदणि, २ भरद्वाज (ऋ० श्रुत्यु) बार्हस्पत्य, ३ प्रत्यक्ष वाप्य, ४ भोपा गौतमः  
५ कवि, प्रामात्य, १० मेधातिथि कप्य, ८ वर्ग प्रागाय, १० प्रगायो घोर. काप्य ॥ इन्द्र, ९ सरत ॥ बृहती ॥

२३३ अमि त्वा शूर नोनुमा<sup>३१२</sup>ऽदुग्धा इव<sup>३१२</sup> धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वदेसमीयानमिन्द्र तस्युपः

॥ १ ॥ (ऋ ७।१२।१२)

२३४ त्वामिद्वि<sup>३१२</sup> इवामहे सातो<sup>३१२</sup> वाजस्य कारवः ।

त्वा<sup>३१२</sup> धृमेष्विन्द्र ससर्पति नरस्त्वा<sup>३१२</sup> काष्ठास्वर्षतः

॥ २ ॥ (ऋ ६।४६।१)

२३५ अमि प्र वः सुराभसमिन्द्रमचं यथा विदे ।

यो अरिद्वयो मघया पुरुवसुः सहस्रेण विशति

॥ ३ ॥ (ऋ ८।४९।१)

२३६ तं वा दसमृतीपहं वसोमन्दानमन्वसः ।

अमि वसं न स्वसरेषु धेनव इन्द्र गीभिर्नवामहे

॥ ४ ॥ (ऋ ८।८।१)

[१३] मघोदशः खण्डः ।

[२३३] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र । (अस्य जगतः तस्युप, ईशानं) इस जगम और त्वापर जगत्के स्वामी तथा (स्वर-धर्मा त्वा) सत्योके देखनेवाले तुम हो (ऋ-दुग्धाः धेनवः इव) इव न कुहो हुई बाधेके समान (अमि नोनुमः) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

१ अस्य जगतः तस्युपः ईशानं स्वदेसं त्वा अभिमोनुमः— इस जगनेवाले और त्वापर जगत्का स्वामी है, तू समीची देखनेवाला है, तुम हम ममस्कार करते हैं ।

[२३४] (कारवः) स्तुति करनेवाले हम (वाजस्य सातो) असका दान होनेके समय हे इन्द्र ! (त्वा इव हि इवामहे) तुम ही ब्रूते हैं (ससर्पति) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुम (नरः धृमेषु ह्यन्ते) सब मनुष्य धृमके साथ होनेवाले मुझमें सहायताके लिए ब्रूते हैं, उसी प्रकार (अर्षतः) घोटोंके कारण होनेवाले (काष्ठासु) मुझमें भी तुम ही सहायताके लिए ब्रूते हैं ॥ २ ॥

१ ससर्पति त्वा नर. धृमेषु ह्यन्ते— सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाले तुम लोग मुझमें मददके लिए ब्रूते हैं ।

२ काष्ठासु त्वा ह्यन्ते— अन्य मुझमें भी तुम ही ब्रूते हैं ।

[२३५] (यः पुरु-यसुः मघया) जो बहुतसा धन अपने पास रखनेवाला इन्द्र (अरिद्वयोः सहस्रेण हि विशति) स्तुति करनेवाले हमारे लिए हजारों प्रकारसे धन देता है, (यथा-विदे) जैसे जैसे तुम जानते हो, उस प्रकार हे पञ्च करनेवाले ! (वः) तुम (सु-पुधसं इन्द्रं) उत्तम धन देनेवाले इन्द्रकी (अभि अर्चं) पूजा करो ॥ ३ ॥

१ पुरुवसुः मघया सहस्रेण विशति— बहुत धनवाला वह इन्द्र तुम्हारे मकरसे धन देता है ।

[२३६] हे पनमानो ! (दसमं) तुम्हारे और (ऋती-पहं) खराबों पेदा करनेवाले शत्रुको मारनेवाले (वसो) अन्वसः अन्वानं) सभी जीवम देनेवाले सोमरस लयी अन्नको पीकर आनन्दित होनेवाले (वः) तुम्हारे पूज्य इन्द्रकी (स्वसरेषु) गीमालमें (धेनव. धन्वं न) बाधे जैसे मछरोंके पास जाते हैं, उसी प्रकार (गीभिः अभिनवामहे) स्तुति करते हुए हम प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

१ अतीपहं गीभिः अभि नवामहे— बाधा करनेवाले शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रको हम ममस्कार करते हैं ।

- २३७ <sup>१३</sup>तरोभिर्वो <sup>३१२३१२</sup>विदद्वसुमिन्द्र <sup>३१२</sup>स्तथा <sup>३१२</sup>ऊतये ।  
<sup>३१</sup>बृहद्वायन्तः <sup>३१</sup>सुतसोमे <sup>३१</sup>अवरे <sup>३१</sup>हुवे <sup>३१</sup>भरे <sup>३१</sup>न कारिणम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।६६।१ )
- २३८ <sup>३१</sup>तरणिः <sup>३१</sup>स्तिषासति <sup>३१</sup>वाजं <sup>३१</sup>पुरन्ध्या <sup>३१</sup>युजा ।  
<sup>३१</sup>आ न <sup>३१</sup>इन्द्रं <sup>३१</sup>पुरुहूतं <sup>३१</sup>नमे <sup>३१</sup>गिरा <sup>३१</sup>नेमिं <sup>३१</sup>तष्टेव <sup>३१</sup>सुद्रुवम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।३२।२० )
- २३९ <sup>३१</sup>पिरा <sup>३१</sup>सुतस्य <sup>३१</sup>रसिनो <sup>३१</sup>भस्त्वा <sup>३१</sup>न <sup>३१</sup>इन्द्रं <sup>३१</sup>गोमतः ।  
<sup>३१</sup>आपिनो <sup>३१</sup>वोधि <sup>३१</sup>सधमाये <sup>३१</sup>वृषे <sup>३१</sup>नैऽस्मा <sup>३१</sup>अवन्तु <sup>३१</sup>ते <sup>३१</sup>धियः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३।१ )
- २४० <sup>३१</sup>स्व <sup>३१</sup>क्षोहि <sup>३१</sup>चेरवे <sup>३१</sup>विदा <sup>३१</sup>भगं <sup>३१</sup>यमुच्ये ।  
<sup>३१</sup>उद्वा <sup>३१</sup>युपस्व <sup>३१</sup>मघवन् <sup>३१</sup>गविष्ट्य <sup>३१</sup>उदिन्द्राय <sup>३१</sup>मिष्ट्ये ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६१।७ )

[ २३७ ] हे ऋषिभो ! ( घः ) तुम ( तरोभिः ) तेज दौड़नेवाले घोड़ोंसे युक्त ( विदद् वस्तु ) धनवान् ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( सु-याघः ) राक्षसोंसे ( ऊतये ) तरलणके लिए ( बृहद् वायन्तः ) बृहद् नाम पाते हुए दूता करो, मैं भी ( सुत-सोमे अघरे ) सोम यज्ञमें ( भरे कारिणं न ) भरपूर पोषण करनेवाले इन्द्रकी ( हुवे ) बुलाता हूँ ॥ ५ ॥

१ विदद्वस्तु इन्द्रं ऊतये बृहद् वायन्तः हुवे— धनवान् इन्द्रकी अपने तरलणके लिए बृहद् नामका गान करते हुए सहायताके लिए हम बुलाते हैं ।

[ २३८ ] ( तरणिः इत् ) युद्धोंमें तारनेवाला योद्धा ( युजा पुरन्ध्या ) उत्तम बुद्धिसे वीर ( वाजं स्तिषासति ) मग्न प्राप्त करना चाहता है, और ( सुद्रुयं नेमिं ) उत्तम लकड़ीकी धुरस्त्रों ( स्वष्टा इव ) जैसे बड़ई छीक करता है, उसी तरह ( पुट-हूतं ) अनेकोंके द्वारा प्रजित होनेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( गिरा यः आ ममे ) पापीसे तप्तकर करके अपने अनुकूल बनाने हैं ॥ ६ ॥

[ २३९ ] हे इन्द्र ! ( रसिनः गोमतः ) रसवाले तथा मीठप्यते मिश्रित द्रव्य ( नः सुतस्य पिर ) हमारे द्वारा निचोरे गए सोमरसोंकी पी, और ( भस्त्व ) आनन्दित हो, ( सधमाये ) एक साथ बैठकर जिताने आनन्दित होने हैं, ऐसे द्रव्य यज्ञमें ( आपिः ) तू हमारा भाई होता है, इसलिये ( नः वृषे वोधि ) हमारे उपस्थिते मग्नको दिला, ( ते धियः अवन्तु ) तेरी बुद्धि हम सोंका तरलण करे ॥ ७ ॥

१ सधमाये आपिः नः वृषे वोधि— एकत्र बैठकर जहाँ बर्ग दिया जाता है, उस काममें तू हमारा मित्र हो, और हमारी उपस्थिते भाग्य हमें बता ।

२ ते धियः अवन्तु— तेरी बुद्धि हमारा तरलण करे ।

[ २४० ] हे इन्द्र ! ( हि त्वं ) निश्चयसे तू ( यमुच्ये षदि ) धन देनेके लिए आ, और आकर ( चेरये ) उत्तम आचरण करनेवाले मुझे ( भगं विदाः ) धन दे, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( गविष्ट्ये उत् पावृषहन् ) गायोंको इष्टा करनेवाले भूते पाव दे, हे इन्द्र ! ( इष्ट्ये ) इष्टा करनेवाले भूते ( अग्ने उत् ) अग्नि भी दे ॥ ८ ॥

१ त्वं यमुच्ये षदि— तू धन देनेके लिए आ ।

२ चेरये भगं विदाः— उत्तम आचरण करनेवाले अनुचकों धन दे ।



२४१ न हि बध्मरमे च न वासिष्ठः परिमन्सते ।

असाकमथ मरुतः सुते सचा विभे पिबन्तु कामिनः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ७।१९।१ )

२४२ मा चिदन्वदि श्रंसत सखायो मा रिपण्यत ।

इन्द्रमितस्तोता वृषणसचा सुते सुहुरुक्या च श्रंसत ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

इति पञ्चमी वसति. ॥ ५ ॥ अथम लण्ड ॥ १॥ [ स्व० १२। ७० ५। पा० ७३। ( जि ) ॥ ]

इति तृतीय प्रपाठके प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) १ पुबहमा आपिरसः; २, ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी; ४ विन्वामिषो माधिनः; ५ गोतमो

( गोतमो वा ) राहूवणः; ६ नृमेयपुबमेयावापिरसो; ७, ८, ९ मेधातिथिवेध्यातिथिर्वा ( ऋ० मेध्यातिथि )

काण्वः; १० वेधातिथी काण्वः ॥ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

२४३ नकिट कर्मणा नशद्यश्चकार सदावधम् ।

इन्द्रं न यमैर्विश्वगृहेमृभवसमष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।१ )

२४४ य श्रुते चिदभिधिपः पुरा जनुम्य आहूदः ।

सन्धाता सन्धि मघवा पुरुवसुनिष्कतो विद्रुते पुनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।१९ )

[ २४१ ] हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( वासिष्ठः यः ) वसिष्ठ ऋषि तुल्यते ( खरमे चम ) छोटेको भी ( नहि परि-  
मन्सते ) छोड़कर स्तुति नहीं करता, अथि तुल्यको स्तुति करता है, ( अथ ) आग ( अस्मार्क सुते ) हमारे यत्नमें ( विभे  
मरुतः ) सब मरुत ( सचा ) एक स्थानपर बैठकर सोमरस ( पिबन्तु ) पीयें ॥ ९ ॥

[ २४२ ] हे ( सखाया ) मित्रो ! ( अन्वत् मा चित् श्रंसत ) इन्द्रके सिवाय और किसीकी स्तुति न करो,  
( मा रिपण्यत ) बैकार परिधम मत करो, ( सुते ) सोम यत्नमें ( धृष्णं इन्द्रं इत् ) बलवान् इन्द्रकी हो ( सचा  
स्तोत ) एक साथ बैठकर स्तुति करो, ( उफया च ) और स्तोत्रोंकी ( मुद्रुः दोसत ) बार बार कहो ॥ १० ॥

१ सचा स्तोता—एक जगह बैठकर स्तुति करो ।

॥ यहाँ तेरहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १६ ] चतुर्दशः लण्डः ।

[ २४३ ] ( यः ) जो यजमान ( सदा-मृधे ) सदा ब्रह्मकी प्राप्त होनेवाले ( विभे-यूने ) समीपे प्रशस्ति होने-  
वाले ( ऋग्यजुः ) महान् ( मोजसा अष्टुष्टं ) यत्नके कारण जिससे न इनवेवाये ( धृष्णुं ) दानको बचानेवाले ( इन्द्रं )  
इन्द्रको न ( यतो न चकार ) यत्नके लिये अनुकूल बनता है । ( तं ) उक्त यजमानकी ( यमैः वा न विः नरात् ) बन्धि  
कोई बन्धि नहीं करता ॥ १ ॥

म—समान, अनुकूल, नहीं ।

[ २४४ ] ( यः ) जो इन्द्र ( अभि-धियः ) जोइन्द्रके साथलोक ( श्रुते चित् ) बिना भी ( जनुम्यः आहूदः )  
गलेकी स्तुत्यप्रति रक्त निरन्तर भी ( पुरा संधि सन्धाता ) फिर संधियोंकी ओर देता है, वह ( मघवा पुदयत् )  
यजमान और ब्रह्मको इन्द्रोंकी काममें रखनेवाला इन्द्र ( पिबन्तु पुनः निष्कर्ता ) कटे हुए भागोंकी फिर ओर देता है ॥ २ ॥

१ पुरा संधि संधाता—फिर संधियोंकी ओर देता है ।

२ पिबन्तु पुनः निष्कर्ता—कटे हुए भागोंकी ओर देता है ।

- २४५ आ त्वा सहस्रमा श्रुतं युक्ता रथे हिरण्यये ।  
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र फेडिना वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१।२४ )
- २४६ आ मन्दैरिन्द्र हरिमियादि मयूरोमभिः ।  
मा त्वा कै चिन्नि येषुनिन पाशिनोऽस्ति धनैव ताश्दहि ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।४५।१ )
- २४७ त्वमङ्ग प्र श्रुतसिषो देवः अविष्ट मर्त्यम् ।  
न त्वदन्तो मयवन्नस्ति मर्दितेन्द्र अवीमि ते वचः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८४।१९ )
- २४८ त्वमिन्द्र यथा अस्यजीपी अचसस्पतिः ।  
त्वं वृत्राणि हृत्स्वप्रसीन्येक इत्सुर्षुत्तुचर्षणीधृतिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९०।५ )
- २४९ इन्द्रमिदेषतातये इन्द्र प्रयत्यपरं ।  
इन्द्रश्सभीके घनिनो हवामह इन्द्रं घनस्य सातये ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३।५ )

[ २४५ ] हे इन्द्र ! ( ब्रह्म-युजः फेडिनः ) मय मोलते ही युद्ध जानेवाले, अच्छे बालोंवाले ( हिरण्यये रथे ) सोनेके रथमें ( युक्ता ) जुड़े हुए ( आ सहस्रं श्रुतं ) सैकड़ों और हजारों ( हरयः ) घोड़े ( त्वा ) तुम ( सोमपीतये ) सोम पीनेके लिए ( आयहन्तु ) ले आये ॥ ३ ॥

श्रुतं सहस्रं हरयः— सैकड़ों और हजारों घोड़े, फिरण ।

[ २४६ ] हे इन्द्र ! ( मन्दैः ) आलस्यदायक ( मयूर-ओमभिः ) मोरोंके समान वेजोते युक्त ( हरिमिः ) पीडित पापी जैसे ( धन्या इव ) देगितलको बार कर जाता है, उसी प्रकार ( तान् अति अश्वरुहि ) बीचमें मानेवाली रक्षाबंदीको हार करते हुए आ, ( इत् ) मोर ( पाशिनः न ) हावमें जालकी लेकर शिकारी जैसे पक्षियोंको पकड़ता है, उस प्रकार ( त्वा मा तियेतुः ) तुम पकड़कर तेरे बीचमें कोई रक्षाबंद पैदा न करे, ( पश्चि ) तू आ ॥ ४ ॥

[ २४७ ] ( अङ्ग शविष्ट ) हे प्रिय और बलवान् इन्द्र ! ( देवः ) प्रकाशित होनेवाला ॥ ( मर्त्यं प्रशंसिपः ) उपासक मनुष्योंकी प्रशंसा करता है, हे ( मघधन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( त्वदन्तः ) तेरे सिवाय दूसरा कोई भी ( मर्दिता नास्ति ) कुल देनेवाला नहीं है, तेरे लिए ही ( वचः प्रवीमि ) ये सुनिश्चय करता हू ॥ ५ ॥

१ त्वदन्तः मर्दिता नास्ति— तेरे अलावा और कोई मुझ देनेवाला नहीं है ।

[ २४८ ] ( इन्द्र ) हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( श्यसः पतिः ) बलवान् ( ऋजीपी ) ओमरस पीनेवाला और ( यथाः ) यथासी ( मसि ) है, तू ( अ-मर्तति पुर वृत्राणि ) अत्यधिक बलवाली बहुतसे मित्रोंको ( अनुत्तः ) किसीकी प्रेरणाके बिना ही ( चर्षणी-धृतिः ) लोगोंके सख्तके लिए ( एकः इत् ) अकेले ही ( हंसि ) मारता है ॥ ६ ॥

१ अमर्तति पुर वृत्राणि अनुत्तः, चर्षणी-धृतिः एक इत् हंसि— पीछे न हड़नेवाले बहुतसे शत्रुओंको हारते किसीकी प्रेरणाके बिना, सब मनुष्योंके हित करनेके लिए अकेले ही मार देता है ।

[ २४९ ] ( देवतातये ) देवोंके लिए लिए गए यज्ञमें ( इन्द्र इत् हवामहे ) इन्द्रको हो हम बुलाते हैं, ( प्रयते अचरे इन्द्रं ) यज्ञके आरम्भ हो जानेपर इन्द्रको ही बुलाते हैं ( सभीके वनिनः इन्द्रं ) यज्ञके समाप्त हो जानेपर भी हम उपासक इन्द्रको बुलाते हैं, उसी प्रकार ( घनस्य सातये इन्द्रं ) घनकी प्राप्तिके लिए भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ७ ॥

२५० इमा उ त्वा पुरुवसो गिरौ वर्धन्तु या मम ।

पावकयणाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूपत

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।३।९ )

२५१ उदु त्वे मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव

॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।३।९ )

२५२ यथा गौरौ अपा कृतं तुष्यन्त्येवैरिणम् ।

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।३।९ )

इति पठ्यो वसतिः ॥ ६ ॥ द्वितीयः छन्दः ॥ २ ॥ [ त्यं ११ । ७० ७ । पा० ७२ । (शा) ॥ ]

[ ७ ]

( १-१० ) १ भगः प्राणायः; २, ८ दैमः कावयः; ३ जसद्विनिर्मायवः; ४, ९ सैषातिथिः काण्वः; ( ऋ० वेष्ठा-  
तिथिः काण्व ) ; ५, ६ नुमेपपुष्टेपावागिरसोः; ७ वसिष्ठो मंत्रावयणिः; १० अरद्वाजः ( अ० रायु ) बार्ह-  
स्पत्यः ॥ इन्द्रः; १ मित्रावयणावित्याः ॥ बृहती ॥

२५३ श्वघृष्टेषु दक्षीपते इन्द्र विश्वामिरुतिभिः ।

भगं न हि त्वा यज्ञसं वसुविदमनु दूर चरामसि

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१३ )

२५४ या इन्द्र भुज आभरः स्वर्गोऽअसुरेभ्यः ।

स्तोतारमिन्मघवजस्रस्य वर्धये ये च स्वे वृक्तर्षदिपः

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७।१ )

[ २५० ] हे ( पुरु-वसो ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( मम इमाः याः गिरः ) गिरौ वे जो स्तुतिवां हूँ, वे ( त्वा ) वर्धन्तु ) तेरे यहाँ बड़ाई, ( पावक-यणाः ) अभिके समान तेजस्वी ( शुचयः विपश्चितः ) यद्यत्र विद्वान् लोग तेरी ( स्तोमैः अभ्यनूपत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[ २५१ ] ( सत्रा-जितः ) शत्रु मनुष्योंको जीतनेवाले ( धन-सा ) धन देनेवाले ( अक्षित-ऊतयः ) क्षीण न होनेवाले शरणागोत्रों बरनेवाले, ( वाजयन्तः ) बलवान् ( रथाः इव ) रथों के समान ( त्वे मधुमत्तमाः गिरः ) उन बहुत उत्तम स्तुति और ( स्तोमासः ) स्तोत्रोंकी ( उत् ईरते ) कोला माला हूँ ॥ ९ ॥

[ २५२ ] ( यथा गौरः ) जैसे गौर नृग ( तुष्यन् ) व्यासा होकर ( अपा कृतं इरिणं ) पानीसे भरे हुए तागा बने पाता ( अपीतः ) पीता है, उसी प्रकार ( आपितो प्रपित्वे ) भार्ये को पाव करने हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः स्वर्ग आगहि ) हमारे पास गव्यो आ, और ( कण्वेषु सचा सु पिय ) कण्वों के यहाँ बैठकर उत्तम स्तोत्रोंसे सोम पी ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौदहवां पंडित समाप्त हुआ ॥

[ १५ ] पञ्चमः छन्दः ।

[ २५३ ] हे ( दक्षीपते दूर इन्द्र ) दक्षिण तटपक्ष दूर इन्द्र ! ( विश्वामिः ऊतिभिः ) सब संरक्षणने तापनोंके ताप ( दक्षिण ) दक्षिण तर हूँ वे, ( भगं न ) ऐश्वर्यवान् के समान ( यज्ञसं ) यज्ञस्वों और ( वसु-विन् ) धन देने-वाले ( त्वा ) तेरी ( मनुचरामसि ) आराधना हम करते हैं ॥ १ ॥

[ २५४ ] हे इन्द्र ! ( भुजः ) आत्म दक्षिणते मुख नृ ( पाः भुजः ) ओ भोज ( असुरेभ्यः आभरः ) अनुरोंके से भाव दे, हे ( मघान् ) धनवान् इन्द्र ! ( अन्व ) हम चलो ( स्तोतारं वर्धये ) तेरी स्तुति करनेवालोंका संरक्षण कर, ( च ) और ( ये त्वे नृग-वर्हिणः ) जो तेरे लिए यज्ञों आगनों की माला हैं, उनको बड़ा ॥ २ ॥

- २५५ प्र मित्राय प्रार्थ्यन्ते सचध्यमृतावसो ।  
चरुध्यैवेचरुणे छन्द्यं वनः । स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१०।१५)
- २५६ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।  
समीचीनासः ऋभवः समस्वरज्जुद्रा गृणन्त पूर्यम् ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।१।७)
- २५७ प्र च इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्माचरत ।  
वृत्रहन्तति वृत्रहा शतक्रतुर्वैज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।८९।१)
- २५८ बृहद्दिन्द्राय गायत मरुतो बृत्रहन्तमसु ।  
येन ज्योतिरजनयभूतावुषो देवं देवाय जागृवि ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।८९।१)
- २५९ इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।  
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरश्रीमहि ॥ ७ ॥ (ऋ. ७।१९।१६)

१ स्वर्वाङ्गं या भुजः अनुदेभ्यः आभरः, अस्य स्तोत्रार्थं वर्धय—अपनी शक्तिसे पुत्र रहनेवाला तू जो मन अदुरीति से आभा है, उस मनको सहायतासे उपासकोंको बढ़ा ।

[ २५५ ] हे (मित्रा-यसो) यन्त्रके लिए अपने पास पद रखनेवाले यज्ञ करनेवाले ! (मित्राय) मित्रके लिए (अर्घ्ये) अर्घ्यदानके लिए और (चरुध्यै चरणे) यज्ञ भालामें बँधे हुए चरणके लिए (सचध्यं छन्द्यं वनः) गान्त्रिके वीथ, छन्दोबद्ध स्तोत्रोंको (राजसु प्रगायत) उनके विराजमान होजायेके बाद गावो ॥ ३ ॥

[ २५६ ] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आयवः) शक्तिरूप जन (पूर्व-पीतये) सबसे पहले सोम पीनेके लिए (स्तोमेभिः रसो अग्नि) स्तोमोंसे तेरी स्तुति करते हैं (समीचीनासः ऋभवः) एकत्रित हुए ऋग्वेदोंमें (समस्वरज्जु) तेरी स्तुति की, (रज्जु) रज्जुके हुए मन्त्रोंमें भी (पूर्यं गृणन्त) पहलेके पुरवोंके समान तेरी स्तुति की ॥ ४ ॥

[ २५७ ] हे (मरुतः) मरुतो ! (बृहते) बृहत् इन्द्रके लिए (चः) तुम (ब्रह्मा अचरत) स्तोमोंकी कही, उसके अनन्तर (वृत्र-हा) वृत्रका नाश करनेवाला (शत-क्रतुः) सैकड़ों कर्म करनेवाला (शत-पर्वणा यज्रेण) सैकड़ों धाराओंवाले यज्ञसे (पूर्यं हन्ति) वृत्रको मारता है ॥ ५ ॥

१ मरुतः—मरुत् गण, स्तुति करनेवाले, यज्ञ करनेवाले ।

२ वृत्रहा शतक्रतुः शतपर्वणा यज्रेण वृत्रं हन्ति—वृत्रको मारनेवाला तथा सैकड़ों कर्म करनेवाला इन्द्र सैकड़ों धाराओंवाले यज्ञसे वृत्रको मारता है ।

[ २५८ ] हे (मरुतः) यज्ञकर्त्ताओ ! (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (बृहत्-हन्तमं बृहत् गायत) वृत्रको मरुद् करनेवाले बृहत् नामक सामका गान करो, (स्तोत्र-राजसु) यज्ञकी बढ़ानेवाले कोषमें (देवाय) इन्द्र देवके लिए (देवं जागृवि ज्योतिः) दिव्य जागृत्तिको करनेवाली सूर्यकी ज्योति (येन अजनयत्) उसकी सहायतासे उत्पन्न की है ॥ ६ ॥

[ २५९ ] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः क्रतुं आभर) हमें यज्ञ कर्म करनेका नाम दे, (यथा पिता पुत्रेभ्यः) नित प्रकार पिता पुत्रको शिक्षा देता है, उसी प्रकार (नः शिक्ष) हमें शिक्षा दे, हे (पुरु-हूत) बृहत्पौराणिक यज्ञसे जन्मवाले इन्द्र ! (यामनि) यममें (जीवाः) हम लोग (ज्योतिः अशीमहि) सूर्यकी ज्योति प्रतिदिन देखें ॥ ७ ॥

१ नः क्रतुं आभर—हमें गुरुशि है, उत्तम कर्म करनेकी बुद्धि दे ।

२ यथा पुत्रेभ्यः पिता, नः शिक्ष—संसे पिता लड़कोंको शिक्षा देता है, उस प्रकार तू हमें शिक्षा दे ।

३ यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि—यममें जोषित रहकर हम तीन प्राण करें ।

- २६० <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२</sup> मा न इन्द्र परा वृणग्मवा नः सधमाद्ये ।  
<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२</sup> त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१७।७ )
- २६१ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२</sup> वयं घ त्वा सुतावन्ते आपो न वृक्षवर्हिषः ।  
<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२</sup> पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्पति स्तोत्रार आसते ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१९।१ )
- २६२ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२</sup> यदिन्द्र नाहुषीणा ओजा नृम्यं च कृष्टिषु ।  
<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२</sup> यद्वा पञ्चक्षितीनां घुम्नमा मर सत्रा विस्वानि पौंशस्या ॥ १० ॥ ( ऋ. ६।१६।० )  
 इति सप्तमी दशति ॥ ७ ॥ तृतीय काण्ड ॥ ३ ॥ [ स्व० १० । उ० १ । पा० ६२ । ( पा ) ॥ ]

[ &lt; ]

- ( १-१० ) १ मेधातिथिः ( ऋ० मेधातिथिः ) काण्डः २ देव काश्यपः ३ वत्स ( ऋ० वत्सः ) ;  
 ४ भरद्वाज ( श्व० बार्हस्पत्यः ) ५ नृमेघ आगिरसः, ६ पुत्रहन्ता आगिरसः ७ नृमेघ-युक्तेषां आगिरसी,  
 ८ वसिष्ठो नैरावर्णि, ९ मेधातिथि-मेधातिथि काण्डौ, १० कति प्रापाय ॥ इन्द्र ॥ वृहती ॥
- २६३ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२</sup> सत्यमित्था नृपदसि नृपजतिर्नोऽविता ।  
<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२</sup> वृषा घुम्र ऋग्विषे परावति घृषो अर्धावति भ्रुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।१० )

[ २६० ] हे इन्द्र ! ( नः आ परावृणक् ) हमें दूर मत कर, ( नः सधमाद्ये भव ) हमारे यज्ञमें भा, हे इन्द्र !  
 ( त्वं नः ऊती ) तू हमारा रक्षक है, ( त्वं आप्यं नः ) तू ही हमारा भाई है, हे इन्द्र ! ( नः आ परावृणक् )  
 हमें दूर मत कर ॥ ८ ॥

१ हे इन्द्र ! नः आ परा वृणक्— हे इन्द्र ! तू हमें दूर मत कर ।

२ नः सधमाद्ये भव— हमारे यज्ञमें आ और सबके साथ बैठ ।

३ त्वं नः ऊती— तू हमारे रक्षा करनेवाला है ।

४ त्वं नः आप्यं— तू हमारा भाई है ।

[ २६१ ] हे ( पुत्रहन् ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! ( स्वा ) नृमे ( वयं घ सुतावन्तः ) सोमरस तैय्यार करनेवाले हम सोमयज्ञमें ( आपः न ) जल प्रवाहोंके समान प्राप्त होते है, ( पवित्रस्य प्रस्रवणेषु ) पवित्र यज्ञोंमें ( वृत्त-वर्हिष-स्तोत्रार ) आसन कैलाकर स्तुति करनेवाले ( परि आसते ) एकत्र बैठते हैं, उसी प्रकार हम बैठते हैं ॥ ९ ॥

[ २६२ ] हे इन्द्र ! ( नाहुषीण कृष्टिषु ) मानवी प्रजाओंमें ( ओजः नृम्यं च ) जो बल और शक्ति है, ( यद्वा ) अथवा जो ( पञ्चक्षितीनां घुम्रं ) पाच जनोंमें जो धन है, उस प्रकारके धन ( आ मर ) हमें भरपूर दे, उसी प्रकार ( सत्रा ) एकतासे करनेवाला ( विस्वानि पौंश्या ) सब बल हमें दे ॥ १० ॥

१ पञ्चक्षितीनां घुम्रं आभर— पचजनोंकी एकतासे उत्पन्न होनेवाले तेज हमें प्राप्त हों ।

२ सत्रा विस्वानि पौंश्या आभर— एकतासे उत्पन्न होनेवाले सब बल हमें प्राप्त हों ।

॥ यद्वा पँश्रहवां खर समातं भुवा ॥

[ १६ ] पौंडराः खण्डः ।

[ २६३ ] हे ( उग्र ) भोर इन्द्र ! तू ( इत्या ) इस प्रकार ( सत्यं नृपा इव अस्ति ) निचयसे बलवान् है, ( घृष-जति नः अविता ) सोमपत करनेवालों द्वारा रक्षाके लिए बुलाके कारण तू हमारा ररभग कर । ॥ ( घृषा दि ऋग्विषे ) बलवान् मुना जाता है, ( परावति नृपा ) दूर देशमें भी तू बलवान् है और ( अर्धावति भ्रुतः ) पातमें भी तू ही शक्तान् हुआ जाता है ॥ १ ॥

- २६४ यच्छक्रासि परावति यदवावति वृत्रहन् ।  
अतस्त्वा गीर्भेयुगादिन्द्र केशिभिः सुतावाश्वा विवासति ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९७।४ )
- २६५ अग्नि यो वीरमन्वसो मदेयु गाय गिरा महा विचेतसम् ।  
इन्द्रे नाम श्रुत्यश्वाकिने वचो यथा ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।४६।१४ )
- २६६ इन्द्र भिषातु शरणं श्रिवरुचश्स्वस्तये ।  
छर्दिष्यच्छ मघवद्रुचश्च मघं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।४६।२ )
- २६७ धायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य मध्वत ।  
यसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति मामं न दीधिमः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९९।३ )

१ युषा— बलवान्, कामनामोके पूर्ण करनेवाला,

२ युषा श्रुण्विदे— तू बलवान् प्रतिद है ।

३ परावति अर्वावति युषा श्रुतः— तू दूर और पासके देशोंमें शक्तिमान् प्रतिद है ।

[ २६४ ] हे ( शक्र ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( यत् परावति अस्ति ) जब तू दूर देशमें रहता है, और हे ( वृत्र-हन् ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! ( यत् अर्वावति ) जब तू पासके देशमें रहता है, हे इन्द्र ! ( अतः ) इस स्थानसे ( केशिभिः गीर्भिः ) अश्वस बलि घोड़ेके समान वीरप्रणामी स्तुतिवर्ति ( सुतावान् ) सोमयज्ञ करनेवाला ( स्वद आधिवासति ) तुझे बुलाता है ॥ २ ॥

१ शक्र ! परावति अस्ति, अर्वावति अस्ति— हे इन्द्र ! जैसा तू दूर है, वैसा ही तू पास भी शक्तिमान् है ।

२ अयाल— पर्वतके भाग ।

[ २६५ ] हे उद्यमता ! ( यः ) तुम अपने हितके लिए ( अश्वसः मदेयु ) सोमरसके आगमनमें ( घोरं नाम ) स्वयं घोर रहते हुए शत्रुको मुकनेवाले ( विश्वेनसं श्रुत्यं ) शत्रुकी और श्रुतसिद्ध ( शाकिने इन्द्रं ) इन्द्रकी शक्तिवाली ( महा गिरा यच्च यथा ) विशेष स्तुतिके स्तोत्रोंकी जैसे हो वैसे ( गाय ) गाने ॥ ३ ॥

[ २६६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्रि-धातु श्रिवरुचं ) तीन भक्तिवाले तथा तीनों ऋतुओंमें सुख देनेवाला ( स्वस्तये छर्दिः शरणं ) सुखसे रहने योग्य उत्तम घर ( मघवद्रुचः ) पवनान् यजमानोंकी ( मघं च ) और मुझे भी वे ( एभ्यः दिद्युं यावय ) और इनसे अस्त्रोंको दूर कर ॥ ४ ॥

१ त्रि-धातु श्रिवरुचं छर्दिः शरणं स्वस्तये— तीन भक्तिवाले और तीनों ऋतुओंमें सुख देनेवाले घर रहनेके लिए प्राप्त हो ।

[ २६७ ] ( सूर्यं धायन्तः इव ) जिस प्रकार किरणें सूर्यका आश्रय लेकर रहती हैं, उसी प्रकार ( विश्वं इत् ) सब जगत् ( इन्द्रस्य भक्षत ) इन्द्रके ही आश्रयसे रहता है क्योंकि वह इन्द्र ( जातः जनिमानि ) उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवालोंकी ( ओजसा करोति ) वस्त्रों भरण देता है जैसे पुत्रको अपने ( भ्रातं न ) पिताके धर्मसे भरण प्राप्त होता है, वत प्रकार ( प्रति दीधिमः ) हम अपने आपकी इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥

१ विश्वं इन्द्रस्य भक्षत— सब जगत् इन्द्रके आश्रयसे रहता है ।

२ जातः जनिमानि ओजसा करोति— उत्पन्न हुए और होनेवाले वस्तुओंके वह अपने शक्तिते बनाता है ।

- २६८ न सीमदेव आप तदिष दीर्घायो मर्यः ।  
एतन्वा चिय एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।७।७ )
- २६९ आ नो विश्वासु हृष्यसिन्द्रस्समस्तु भूपत ।  
उप ब्रह्माणि सवनानि वृषहन्परमञ्चा ऋचीपम ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।९।१ )
- २७० तथेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।  
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्वा गोपु वृष्वते ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।१२।१६ )
- २७१ ध्वेयथ क्वेदसि पुत्रा चिदि वे मनः ।  
अलपि युध्म खजकृत्पुरंदर प्र गावत्रा अगासिपुः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१।७ )

[ २६८ ] हे (दीर्घायो) लम्बी आयुवले इन्द्र ! (अ-देवः मर्यः) ईश्वरकी उपासना न करनेवाला मनुष्य (सी त्व) उस प्रसिद्ध अन्नको (न आप) नहीं पा सकता, (यः) जो (एतन्वा चित्) बड़ा जानकी इच्छा करते हुए (एतशः युयोजते) जोड़े जोड़ता है, उसी प्रकार (इन्द्रः हरी युयोजते) इन्द्र भी अपने घोड़ोंकी पत्के स्थानकी जानके लिए जोड़ता है ॥ ६ ॥

१ अदेवः मर्यः सीं न आप— ईश्वरकी उपासना न करनेवाला उस प्रसिद्ध धनकी प्राप्ति नहीं कर सकता ।

[ २६९ ] (विश्वासु समस्तु) सब मुर्दोंमें (हृष्य इन्द्रं) सह्यत्वसे लिए बुलाने योग्य इन्द्रको (नः ब्रह्माणि उप भूपत) हमारे स्तोत्र सुशोभित करते हैं, इन्द्रकी स्तुति करते हैं । हे (वृष-हन्) वृषको मारनेवाले (परम-उपाः) जिसके धनुषकी शरी उत्तम हैं ऐसे (ऋची-पम) ऋची स्तुति करनेके योग्य इन्द्र ! (सवनानि ब्रह्माणि उप) हमारे गीन सवनो और स्तोत्रोंकी अलङ्कृत कर ॥ ७ ॥

[ २७० ] हे इन्द्र ! (अवमं वसु त्वं इत्) सबसे निम्न कोटिका धन तेरा ही है, (त्वं मध्यमं पुष्यसि) तू ही मध्यम कोटिके धनका पोषण करता है, (परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि) और तू ही सबसे उत्तम धनका भी भरेला ही स्वामी है, (त्वा) तुझे (गोपु नकिः वृष्वते) बाघ जादि बैठे हुए कोई भी रोष नहीं सकता ॥ ८ ॥

१ हे इन्द्र अवमं वसु त्वं इत्— निम्न धन तेरा ही है ।

२ त्वं मध्यमं पुष्यसि— तू ही मध्यम धनको बढ़ाता है ।

३ परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि— तू सबसे उत्तम धनका भी भरेला ही स्वामी है ।

[ २७१ ] हे इन्द्र ! (क इयथ) तू कहा गया था ? (क इत् अशि) अब तू कहा है ? (पुत्र-त्रा चित् हि ते मनः) बहुतसे स्थानोंपर तेरा मन जाता है, हे (युध्म) युद्ध करनेमें कुशल, (खज-कृत्) युद्ध करनेवाले (पुरंदर) शत्रुको नगरीका नाश करनेवाले इन्द्र ! (अलपि) या (गावत्राः अगासिपुः) हमारे गधनें कुशल लोग स्तोत्रोंकी पालन करते हैं ॥ ९ ॥

१ हे युध्म, खजकृत्, पुरंदर, अलपि— हे युद्धमें कुशल, युद्ध करनेवाले, शत्रुके नगर तोड़नेवाले इन्द्र ! या ।

२७२ वयमेनमिदा शोऽपीमेमह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य सवने सुत भरा नूनं भूषत श्रुते

॥ १० ॥ ( ऋ ८।६६।७ )

इति अष्टमी वसतिः ॥ ८ ॥ वसुधः सप्तः ॥ ४ ॥ [ स्व० १४ । उ० १ । या० ७४ । (तो) ॥ ]

[ ९ ]

( १-१० ) १, ६ पुष्ट्या वागिरसः; २ भर्गः प्राणापः; ३ हरिर्ब्रह्मि वाग्वः; ४ जमर्हानिर्भारः; ५, ७ देवा-  
लियि कण्वः; ८ वसिष्ठो रथायवणिः; ९ भद्राजो बार्हस्पत्यः; १० वेपथुः वाग्वः ॥ इत्यः

( ऋ० ३ वास्तोष्पतिर्वा; ४ वसुधः; ९ इन्द्राणी ) ॥ वृत्ती ॥

२७३ यो राजा चर्यणीनां याता रथेभिरग्निगुः ।

विश्वासां तुरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गुणे

॥ १ ॥ ( ऋ ८।७०।१ )

२७४ यत इन्द्र भयामहे सर्वा नो अभयं कृधि ।

मध्वन्मृगिष तव तत्र ऊलये वि द्विषो वि मृधो ब्रहि

॥ २ ॥ ( ऋ ८।६१।१३ )

२७५ वास्तोष्पते ध्रुवां स्फुणां सत्रं सौम्यानाम् ।

द्रुप्तः पुरां भेत्ता द्राम्बतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा

॥ ३ ॥ ( ऋ ८।१७।१४ )

[ २७२ ] ( वयं ) हम वज्रमार्गोंने ( पनं वज्रिणं ) इस वज्रधारी इन्द्रको ( इदा ) इस समय और ( ह्यः ) कल ( मपीम ) सोमरस तिसकट वृत्त किया, ( तस्मा उ ) इसीलिए ( अद्य स्वने ) आजके पक्षमें भी ( सुतं भर ) सोमरस भरकर उसे दे, ( नूनं श्रुते आभूषत ) निश्चयमेव इस समय स्तोत्र सुननेके बाद उसको अलङ्कृत कर ॥ १० ॥

॥ यहां सोलहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १७ ] सप्तदशः खण्डः ।

[ २७३ ] ( यः चर्यणीनां राजा ) जो इन्द्र मानवोका राजा है, ( रथेभिः अग्नि-गुः याता ) रथसे वीर्रतासे जो जाता है, ( विश्वासां पृतनानां तरना ) सब शत्रु सेनामार्गोंका जो नाश करता है, ( यः वृत्र-हा ) जो वृत्रको मारने-  
वाला है ( ज्येष्ठं गुणे ) उस श्रेष्ठ इन्द्रकी भेंट स्तुति करता है ॥ १ ॥

[ २७४ ] हे इन्द्र ! ( यतः भयामहे ) जहासे हम डरते हैं, ( ततः नः अभयं कृधि ) बहासे हमें निर्मम बनामो, है ( मध्वन् ) घनवान् इन्द्र ! ( शश्वि ) तू समर्थ है, ( तत् ) इसलिए ( तव ) अपने सामर्थ्यसे ( नः ऊलये ) हमारे शरसभके लिए ( द्विषः विजहि ) शत्रुओंका नाश कर और ( मृधः पिजहि ) हिनकींको नष्ट कर ॥ २ ॥

१ यतः भयामहे ततः नः अभयं कृधि — जहासे हम डरते हैं, बहासे हमें भयरहित करो ।

२ नः ऊलये द्विषः पिजहि, मृधः पिजहि — हमारे शरसभके लिए शत्रुओं और हिनकींको नष्ट कर ।

३ शश्वि — तू सामर्थ्यवाली है ।

[ २७५ ] हे ( वास्तोष्पते ) वृहत्पामी ! ( स्फुणा ध्रुवा ) धरके लगने दृढ़ हों, ( सौम्यानां अंसत्रं ) सोमरस करनेवालोंमें मग्नता बल उत्पन्न हो, ( द्रुप्तः ) सोम पीनेवाला ( द्राम्बतीनां पुरां भेत्ता ) अयुक्तोंको बहुतती नगरियोंको तोड़नेवाला ( इन्द्रः ) इन्द्र ( मुनीनां सखा ) ऋषियोंका मित्र है ॥ ३ ॥

१ द्राम्बतीनां पुरां भेत्ता मुनीनां सखा इन्द्रः — अयुक्तोंको बहुतती नगरियोंको तोड़नेवाला इन्द्र मुनि-  
योंका मित्र है ।



- २७६ <sup>१ ३ १</sup> वणमहा२ <sup>१</sup> असि <sup>३ १</sup> सूर्यं <sup>१ २</sup> वडादित्य <sup>३ १</sup> महा२ <sup>१</sup> असि ।  
<sup>३ १</sup> महस्ते <sup>३ १</sup> सतो <sup>३ १</sup> महिमा <sup>३ १</sup> पनिष्टम <sup>३ १</sup> महा <sup>३ १</sup> देव <sup>३ १</sup> महा२ <sup>१</sup> असि ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१।११ )
- २७७ <sup>३ १</sup> अग्नी <sup>३ १</sup> रथी <sup>३ १</sup> सुरुष <sup>३ १</sup> इतोमा२ <sup>३ १</sup> थदिन्द्र <sup>३ १</sup> ते <sup>३ १</sup> सखा ।  
<sup>३ १</sup> आत्रमाजा <sup>३ १</sup> वयसा <sup>३ १</sup> सचते <sup>३ १</sup> सदा <sup>३ १</sup> चन्द्रैर्याति <sup>३ १</sup> समाग्रुष ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१।९ )
- २७८ <sup>३ १</sup> यद्वाय <sup>३ १</sup> इन्द्र <sup>३ १</sup> ते <sup>३ १</sup> ज्ञत२ <sup>३ १</sup> ज्ञतं <sup>३ १</sup> भूमीकृत <sup>३ १</sup> स्युः ।  
<sup>३ १</sup> न <sup>३ १</sup> त्वा <sup>३ १</sup> वजिन्सहस्र२ <sup>३ १</sup> सूर्या <sup>३ १</sup> अनु <sup>३ १</sup> न <sup>३ १</sup> जातमष्ट <sup>३ १</sup> रोदसी ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।७।९ )
- २७९ <sup>३ १</sup> यदिन्द्र <sup>३ १</sup> प्रागपामुदग्न्यग्वा <sup>३ १</sup> ह्यसे <sup>३ १</sup> नृमिः ।  
<sup>३ १</sup> सिमा <sup>३ १</sup> पुरु <sup>३ १</sup> नृपुतो <sup>३ १</sup> अस्यानवे२ <sup>३ १</sup> असि <sup>३ १</sup> प्रशर्ष <sup>३ १</sup> तुर्वेज ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )
- २८० <sup>३ १</sup> कस्वमिन्द्र <sup>३ १</sup> त्वा <sup>३ १</sup> वसवा <sup>३ १</sup> मर्यो <sup>३ १</sup> दधर्षति ।  
<sup>३ १</sup> अद्वा <sup>३ १</sup> हि <sup>३ १</sup> ते <sup>३ १</sup> मघवन्पायै <sup>३ १</sup> दिवि <sup>३ १</sup> वाजी <sup>३ १</sup> वाज२ <sup>३ १</sup> सिपासति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।११।४ )

[ २७६ ] हे ( सूर्य ) मेरक इन्द्र ! ( महान् असि ) तू गृह्णत है, ( यद् ) यह सत्य है, हे ( वायुदेव ) अवितिके पुत्र इन्द्र ! तू ( महान् असि ) महान् है यह ( यद् ) सत्य है, ( महः ) से शतः महिमा ) महान् होनेवाले तेरी महिमा ( पनिष्टम ) वर्णन हम करते हैं, हे ( देव ) देव ! तू ( महा महान् असि ) अपने वस्त्रों तू गृह्णत है ॥ ४ ॥

[ २७७ ] हे इन्द्र ! ( यत् ) ते सखा ) अब तेरा मित्र कोई मनुष्य होता है, तब ( इत् ) वह ( अग्नी ) घोषोंसे युक्त ( रथी ) रथ रखनेवाला, ( सुरुषः ) उत्तम हथियार ( गोमात् ) बहुत पापें रखनेवाला, ( आत्र-माजा ) वस्त्राल ( वयसा सचते ) अपने सदा उपस्थित होता है, तथा वह हमेशा ( चन्द्रैः सर्वा उप याति ) उत्तम भूभागोंसे युक्त होकर समाने जाता है ॥ ५ ॥

[ २७८ ] हे इन्द्र ! ( यत् वायः ज्ञतं स्युः ) यदि सुलोक तौ गुवा हो जायें तब भी ( त्वा न अनु-अष्ट ) तुझे घेर नहीं सकते, ( उत भूमी दातं स्युः ) पृथ्वी की गुनी हो जायें, तो भी वह तुझे आधार नहीं दे सकती, हे ( वाग्रिन्द्र ) वज्रधारी इन्द्र ! ( सहस्रं सूर्याः ) यदि हजारों सूर्य हो जायें, तो भी ( त्वा न ) तुझे प्रकाशित नहीं कर सकते, ( अनु-जातं न अष्ट ) तेरे पीछे हुए में सब तुझे व्याप नहीं सकते, वे ( रोदसी ) सुलोक और पृथ्वी लोक तुझे व्याप नहीं सकते ॥ ६ ॥

[ २७९ ] हे इन्द्र ! ( यस् प्राग् ) क्योंकि तुम दिशासे ( अपाक् ) पश्चिमसे ( उदक् न्यक् ) उत्तर दिशा अपवा दक्षिण दिशासे ( नृमिः इयसे ) तू मनुष्योंद्वारा सहामाते लिए सुलया जाता है, इस कारण हे ( सि ) इन्द्र ! ( आनवे पुत्र नृपुतः असि ) मनुके लिए बहुत प्रकारसे तेरी शर्पणा होती है, हे ( प्रशर्षे ) अनुनाशक इन्द्र ! ( तुर्वेजे ) तुमसे लिए भी उसी प्रकार तुझे सुलया जाता है ॥ ७ ॥

[ २८० ] ( वयो इन्द्र ) हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! ( ते त्वा कः मर्योः आदधर्षति ) उस तुझे कौन मनुष्य मत्ता था दिशाता है ? हे ( मघक् ) वज्रका इन्द्र ! ( ते अद्वा ) तुमपर अद्वा रखनेवाला ( वाजी ) बलवान् होता है, और वह तुझे ( पायै दिवि ) पार होनेके लिये भी ( वाजं सिपासति ) अथवा दान करनेकी इच्छा करता है ॥ ८ ॥

१ ते अद्वा वाजी— तुमपर अद्वा करनेवाला मनुष्य बलवान् होता है ।

२८१ इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वाग्नात्पद्वर्ताम्यः ।

द्वित्वा शिरो जिह्वाया सारपधरत्विश्वत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।१९।६ )

२८२ इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधामिरूतिभिः ।

आ श्रुतम श्रुतमाभिराभिष्टमिरा स्वापि स्वापिभिः ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१३।५ )

इति नयनो वसतिः ॥ ९ ॥ इति पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ [ स्व० १६।३० ५।५ पा ७२ । ( इति ) ॥ ]

[ १० ]

( १-१० ) १ मूलेष आगिरसः; २,३ वसिष्ठो मेधावर्णि, ४ भरद्वाज. ( ऋ० धनुः ) बाहुंस्पत्यः; ५ पल्लवेयो वैश्वो-  
वासिः; ६ वामदेवो गीतमः; ७ मेध्यातिथि. कान्वः; ८ भगं प्रापायः; ९, १० मेधातिथि-मेध्यातिथी कान्वी ॥

इन्द्रः ( ५ ऋ० व्याधिनी ) ॥ बृहती ॥

२८३ इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आश्रु जेतारं हेतारं रथीतमममूर्तं सुप्रियावृषम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।७ )

२८४ मो पु त्या वायतश्च नरो असन्नि रीरमन् ।

आराचाद्वा सधमादं न आ गहीह वा संभुप भुधि ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३१।१ )

[ २८१ ] हे इन्द्र जीर अग्नि ! ( अ-पाद् इयं ) विनाः वरंवाली यह उवा ( पद्वतीभ्यः ) वरंते युवत, कोई हुई प्रजापति ( पूर्वा अगात् ) पहले ही आ गई है, ( शिरः द्वित्या ) शिरको छोड़कर ( जिह्वाया सारपत् ) जीभसे प्रेरणा करती ॥ ९ ॥ यह ( स्वरत् ) आगे जाती हुई ( जिह्वात् पदाणि अग्रमर्मात् ) तीस कवच-तीस मुहूर्त एका विषयं चलती है ॥ ९ ॥

[ २८२ ] हे इन्द्र ! ( नेदीयः ) पास ही हमारा यज्ञशाला है, इस कारण तु ( आ इत् इहि ) आ, ( मित-  
मेधामिः ऊतिभिः ) बुद्धिमान्, और सरसगकी इच्छा करनेवालोंके साथ आ, हे ( शान्तमः ) अत्यन्त शान्त स्वभाववाले इन्द्र ! ( शान्तमभिः अभिष्टिभिः आ ) अत्यन्त सुख देनेवाली नशिलापाओंके साथ आ, हे ( सु-अपे ) उत्तम वन्यो ! ( स्वापिभिः आ ) उत्तम भाइयोंके साथ आ ॥ १० ॥

॥ यहाँ सत्रहवाँ खंड समाप्त हुआ ॥

[ १८ ] अष्टादशः खण्डः ।

[ २८३ ] ( चः ) तुम ( अ-अरं ) बुद्ध्या रहित ( अ-हेतारं ) शत्रुपर प्रहार करनेवाले, ( अ-प्रहितं ) कोई भी जिसे प्रेरणा नहीं दे सकता, ऐसे ( आश्रु जेतारं ) शीघ्र विजय प्राप्त करनेवाले, ( हेतारं ) यत्नमें जानेवाले ( रथीतमं ) उत्तम रथवाले ( अ-मूर्तं ) किसीसे भी न मारे जानेवाले ( सुप्रिया-वृषं ) जलोंकी बुद्धि करनेवाले इन्द्रको ( ऊतये ) सरसगके लिए ( इतः ) यहाँ से आओ ॥ १ ॥

[ २८४ ] हे इन्द्र ! ( त्या ) तुम ( वायतः चन ) यजमान ( अस्मत् आरे ) हमसे दूर ( मा उ निरमन् ) तेजावर आनन्दित न होवे, इसलिये तू ( आराचात् वा ) पास रहकर ( नः सधमादं ) हमारे पतन ( सु आगम् ) उत्तम रीतिसे आ, ( वा इह सन् ) उसी प्रकार यहाँ रहकर ( उपश्रुधि ) हमारी स्तुतिर्घोषों वास्तसे सुन ॥ २ ॥

- २८५ सुनोत सोमपात्रे सोममिन्द्राय वज्रिणे ।  
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमितृणञ्जितृणते मयः ॥ ३ ॥ (ऋ. ७।३।८)
- २८६ यः सत्राहा विश्वर्षणिरिन्द्रं तं हृमहे वयम् ।  
सहस्रमन्यो तुविनृम्य सत्पते मवा समत्सु नो वृधे ॥ ४ ॥ (ऋ. ६।२।१३)
- २८७ शचीभिर्नः शचीवसु दिवा नक्तं दिशस्पतम् ।  
मा पा२ रातिरुपदस्तकदाचनोऽस्मद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥ (ऋ. १।१।१९।५)
- २८८ यदा कदा च भीतुषे स्तोता जरेत मर्यः ।  
आदिदग्देत वरुणं विषा गिरा वचोरं विप्रतानाम् ॥ ६ ॥
- २८९ पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेघ्यातिथे ।  
यः संमिथ्ठा ह्ययोर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१।१४)

[ २८५ ] हे यावको ! ( वज्रिणे सोमपात्रे इन्द्राय ) वस्त्रको धारण करनेवाले और सोमरसको पीनेवाले इन्द्रके लिए ( सोम सुनोत ) सोमरस निकालो, ( अन्धसो ) अपने सरसम्पत्के लिए अथवा उसको प्रसन्नताके लिए ( पक्तीः पचत ) घुटोवाता पकाओ, ( कृणुध्वं इत् ) इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए यज्ञ करो, क्योंकि इन्द्र ( मयः वृणन् इत् ) यज्ञमानकी तुल्य जिते हुए ( वृणते ) स्वयं भी हवि ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

[ २८६ ] ( यः सत्रा-हा ) जो एक साथ शत्रुओंको मारता और ( विश्व-वर्षणिः ) सबको देखता है, ( तं इन्द्रं-हृमहे ) उस इन्द्रको हम बुलाते हैं, है ( सहस्र-मन्यो ) हजारों उस्ताहते युवत ( तुवि-नृम्य ) बहुत मनबाध ( सत्पते ) सज्जनके वाला इन्द्र ! ( समत्सु ) युद्धमें ( नः वृधे मवा ) हमारे वैश्वयंकी बुद्धिमें सहायता करने वाला हो ॥ ४ ॥

१ यः सत्राहा विश्व-वर्षणिः तं इन्द्रं वयं हृमहे— जो शत्रुओंको एक साथ मारता और मानवोंका कल्याण करता है, उस इन्द्रको सहायताके लिए हम बुलाते हैं ।

२ हे सहस्र-मन्यो तुविनृम्य सत्पते ! समत्सु नः वृधे मवा— हे हजारों उस्ताहते युवत, बहुत मनबाध और सज्जनके वाला इन्द्र ! युद्धमें हमारे वैश्वयंकी बुद्धिमें सहायता करने वाले बन ।

[ २८७ ] हे ( शची-वसु ) कर्म करने वाले श्राव्य करनेवाले अश्विनोद्भवाओ ! तुम ( शचीभिः ) अपनी शक्तिसे ( दिवा-नक्तं दिशस्पतं ) रात दिन हमें इच्छित धन दो, ( मा पा२ रातिः कदाचन ) तुम्हारे दान कभी भी ( मा उपदस्त ) कम नहीं होके, ( अस्मत् रातिः कदाचन ) हमारे दान से कभी कम न हों ॥ ५ ॥

[ २८८ ] ( यदा कदा च ) जिस समय ( भीतुषे ) यज्ञ करनेवालेके लिए ( मर्यः ) मनुष्य ( स्तोता जरेत ) स्तुति करे, ( आत् इत् ) उस समय यह ( विप्रतानां वचोरं वरुणं ) विशेष रूपसे मनेके, कर्मोंको धारण करनेवाले वरुणकी ( विषा गिरा वन्देत् ) विशेष वक्ष्य करनेवाली स्तुतिसे वन्दना करे ॥ ६ ॥

[ २८९ ] हे मेघ्यातिथे ! ( यः इन्द्र- ) जो इन्द्र ( ह्ययोः संमिथ्ठा ) दो वीर्योंकी अपने रथमें जोड़ता है, और जो ( ययोर्यं ) यज्ञ धारण करता है, और जो ( हिरण्ययः ) रमणीय है, तथा जो ( हिरण्ययः ) सोनेके रथमें बैठता है ऐसे ( इन्द्राय ) इन्द्रकी ( अन्धसः मदे ) सोमपानसे उस्तह प्राप्त होनेके बाद ( गाः पाहि ) अपनी गायका संरक्षण कर ॥ ७ ॥

२९० उभयं मृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सत्राच्या मधवान्सोमपीतये धिया अविष्ट आ ममत् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६।१ )

२९१ महे च न त्वाद्विषः परा शुल्काय दीयसे ।

न सहसाय नायुताय वज्रिवौ न श्वाय अतामव ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१।९ )

२९२ वसाश्चन्द्राक्षि मे पितुरुत आतुरमुञ्जतः ।

माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्यनाय राधसे ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१।६ )

इति दशमो वसतिः ॥ १० ॥ पञ्च लघ्व ॥ ६ ॥ [ स्व० १५ । छ० ४ । घा० ७६ । ( ५ ) ॥ ]

इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्ध, तृतीय प्रपाठकश्च समाप्त ॥

[ २९० ] ( नः इदं उभयं वचः ) हमारे इन दोनों ही प्रकारके स्तोत्रोक्तो ( अर्वाक् इन्द्रः मृणवच्च ) पास आकर इन्द्र मुने, ( च ) और ( सत्राच्या धिया ) एक स्थानपर बैठकर गाये जानेवाले स्तोत्रोक्तो मुलकर ( शनिप्रः मघयान् ) बलवान् और धनवान् इन्द्र वहाँ ( सोम-पीतये आगमत् ) सोम पीनेके लिए जाये ॥ ८ ॥

[ २९१ ] हे ( अग्नि-वः ) वयको पारण करनेवाले इन्द्र ! ( महे च शुल्काय ) बहुतो पनके बदलेमें भी ( त्या ) तुम ( न परा दीयसे ) देवा नहीं जा सकता, हे ( यज्ञि-वः ) वयधारी इन्द्र ! ( सहसाय न ) हमारे बदलेमें भी नहीं बेचा जा सकता, हे ( शता-मघ ) बहुत धनसि मुक्त इन्द्र ! ( न श्वाय ) न सौके ( अयुताय न ) और न दस हजारके बदलेमें ही तुम बेचा जा सकता है ॥ ९ ॥

१ हे अ-ग्निवः ! महे शुल्काय त्या न परा दीयसे— हे वयधारी इन्द्र ! बहुतो धन मिलनेपर भी मैं तुमसे नहीं दूगा ।

२ हे यज्ञि-वः ! सहसाय न— हे वयको पारण करनेवाले इन्द्र ! हजारोंमें भी तुमसे नहीं दूंगा ।

३ हे शतामघ ! शताय न— हे धनवान् ! सौमें भी नहीं दूंगा ।

४ न अयुताय— दस हजारमें भी मैं तुमसे नहीं बेचूंगा ।

[ २९२ ] हे इन्द्र ! तू ( मे पितुः वस्यान् ) मेरे पिताके भी अधिक धनवान् है, ( उत अमुंजतः आतुः ) और भोजनको न देनेवाले मेरे भाईकी अपेक्षा भी तू महान् है, हे ( वसो ) सबको बतानेवाले इन्द्र ! ( मे माता च समा ) मेरी माता और तू समान है, तू ( वसुत्यनाय राधसे ) धनवान् और अन्नवान् होनेके लिए तुमसे धनस्वी बना ॥ १० ॥

१ हे इन्द्र ! मे पितुः वस्यान्— है इन्द्र ! मेरे पिताकी अपेक्षा तू अधिक धनवान् है ।

२ अमुंजतः आतुः— न जानेवाले भाईकी अपेक्षा तू महान् है ।

३ मे माता समा— मेरी माता मेरे समान है ।

४ वसुत्यनाय राधसे— धनवान् और अन्नवान् होनेके लिए तूसे महान् बना ।

॥ यहाँ महारथवां खट समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्घः ।

[ १ ]

( १-१० ) १ वसिष्ठो मैत्रवर्षणिः; २, ५, ७ वासदेवो गीतमः; ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी, विद्वर्षाणि इत्येकै;  
४ गोपा गीतमः; ५ मेधातिथिः ( ऋ० मेध्यातिथिः ) काण्वः; ८ वृष्टिः काण्वः; ९ मेध्यातिथिः  
( मेधातिथिर्वा ) काण्वः; १० सुमेध आगिरसः ॥ इन्द्रः; ७ बभ्रुः ॥ बृहती ॥

२९३ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।

ता<sup>१</sup> आ<sup>२</sup> मदाय<sup>३</sup> बज्रहस्त<sup>४</sup> पीतय<sup>५</sup> हरिभ्यां<sup>६</sup> याज्ञो<sup>७</sup>क आ<sup>८</sup> ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१२।४ )

२९४ इम इन्द्र मदाय ते सोमाधिकिप्र उन्विधनः ।

मधोः<sup>१</sup> पपान<sup>२</sup> उप<sup>३</sup> नो गिरः<sup>४</sup> मृगु<sup>५</sup> रास्व<sup>६</sup> स्तोत्राय<sup>७</sup> भिर्वेणः<sup>८</sup> ॥ २ ॥

२९५ आ त्वाश्च सपदुघा<sup>१</sup> हुवे<sup>२</sup> गायत्रवेपसम् ।

इन्द्र<sup>३</sup> धेनु<sup>४</sup> सुदुघामन्यामिषमुखा<sup>५</sup> मरङ्ग<sup>६</sup> तम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१।१० )

२९६ न त्वा बृहन्वा<sup>१</sup> अद्रयो<sup>२</sup> वरन्त इन्द्र बीडवः ।

याच्छिञ्चसि<sup>३</sup> स्तुवते<sup>४</sup> मायते<sup>५</sup> वसु न<sup>६</sup> किष्टा<sup>७</sup> मिनाति<sup>८</sup> ते ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।८।१९ )

२९७ क ई वेद सुते सचा<sup>१</sup> पिबन्त<sup>२</sup> कद्रयो<sup>३</sup> दधे ।

अयं यः<sup>४</sup> पुरा<sup>५</sup> विभिनत्योजसा<sup>६</sup> मन्दानः<sup>७</sup> शिष्यन्धसः<sup>८</sup> ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१३।७ )

[ १९ ] एकोनविंशः खण्डः ।

[ २९३ ] हे ( वज्र-हस्त ) बज्रको हाथमें धारण करनेवाले इन्द्र ! ( दध्याशिरः इमे सोमासः ) वही मिले हुए ये सोमरस गुप्त ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( सुन्विरे ) तैय्यार किये घड़े हैं, ( मदाय ) जानबूझ प्राप्त करनेके लिए तथा ( स्तोत्राय ) उन सोमरसोंकी ( पीतये ) पीनेके लिए ( योक्तः आ ) यज्ञमण्डपको ( हरिभ्यां आ याहि ) दोनोंही द्वारा था ॥ १ ॥

[ २९४ ] हे इन्द्र ! ( ते मदाय ) तेरे आजन्बके लिए ( उन्विधनः ) यज्ञकर्त्ताओं ( इमे सोमाः शिक्वित्र ) ये सोमरस बुद्धिपूर्वक तैय्यार किए हैं, ( मधोः पिपानः ) इन मधुर रसोंको पीकर ( नः गिरः उपमृगु ) हमारी स्तुति पाससे गुप्त, है ( भिर्वेणः ) प्रवर्धित इन्द्र ! ( स्तोत्राय रास्व ) स्तुति करनेवालेके लिए यज्ञ दे ॥ २ ॥

[ २९५ ] हे इन्द्र ! ( अघ ) आज ( सपदुघा ) अधिक दूध देनेवाली ( गायत्र-वेपसं ) प्रसन्नगोप देववाली ( सु-दुघा ) गुप्तसे दूध देनेवाली ( अन्यां ऊरुधारां ) विलक्षण चीतिसे बहुत सा दूध देनेवाली ( इषं धेनु ) बातमें रखने योग्य मायके समान गुप्त ( अरं कृतं तु आहुये ) अजकल इन्द्रको मैं बुझता हूँ ॥ ३ ॥

[ २९६ ] हे इन्द्र ! ( बृहन्वाः बीडवः अद्रयोः ) महान् दृढ पर्वत भी ( त्वा न वरन्ते ) तुझे अपने कर्त्तव्यसे डिगा नहीं सकते, ( स्तुवते मायते ) स्तुति करनेवाले गुप्त जैसे पुष्पकी ( वसु धासु शिक्वित्र ) तू जो पन बेता है, ( ते सद् ) उस तेरे बलको ( न किं अयं मिनाति ) कोई भी रोक नहीं सकता ॥ ४ ॥

[ २९७ ] ( सुते ) सोमपक्षमें ( सचा पिबन्त ई ) एक बारह पीठकर सोमरस पीनेवाले इस इन्द्रको ( कः वेद ) भला बीड जानता ॥ १ तथा वह ( कद्रु ययः दधे ) बिलना अन्न धारण करता है इसे भी कौन जानता है ? ( यः अयं शिनी ) जो यह इन्द्र शिरस्त्राण धारण करके ( अन्धसः मन्दानः ) शीघ्ररससे उत्ताहित होकर ( ओजसा पुरः विभिनचि ) अपने सामर्थ्यसे धनुओंके अगलकी तोहता है ॥ ५ ॥

२९८ यदिन्द्र शसि अग्रते ञ्चावपा सदसस्पतिः ।

असाकमंशु मघवन्पुरुस्पृहं वसन्त्ये आधि बर्हय

॥ ६ ॥

२९९ स्वष्टा नो देव्य वचः पर्जन्या ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रेभ्योवृमिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं ग्रामणं वचः

॥ ७ ॥

३०० कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सद्यसि दाशुषे ।

उपोपेक्षु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य वृच्यते

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।९।७ )

३०१ युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।

अर्वावीनो मघवन्सोमवीतय उग्र ऋष्येमिरा गहि

॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।९।१७ )

३०२ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वजिन्भूयैः ।

स इन्द्र स्तोममाहस इह श्रुचुपु स्वस्तरमा गहि

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।९।११ )

इति प्रथमा वृत्तिः ॥ १ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्त० ११ । उ० २ । पा ८२ । ( डि ) ]

[ २९८ ] हे इन्द्र ! ( यत् वासः ) निम कारण अवतरावियोंको तू वन्द्य वेता है, इतलिए ( सव्त्सः यदि अग्रते ञ्चावपा ) हमारे यज्ञस्थानके चारों ओरसे यज्ञ न करनेवालोंको दूर कर, हे ( मघवन् ) मघवान् इन्द्र ! ( पुत्र-स्पृहं असाकं अंशु ) हमारे प्रजासन्तान सोमरसको ( वसन्त्ये अपि यर्हय ) यज्ञ स्थानमें बढा ॥ ६ ॥

[ २९९ ] ( स्वष्टा ) देवीका कारीगर स्वष्टा देव ( पर्जन्या ) वृष्योक्त देव, ( ब्रह्मणस्पतिः ) ब्रह्मणस्पति ( पुत्रैः भ्रातृभि रदितिः ) अपने पुत्र और भ्रातृयोंके साथ अदिति-देवमाता, ये सब देवता ( दुष्टरं ग्रामणं न वच ) दुष्टोंसे पार करानेवालों और वक्ष्य करनेवालों हमारी स्तुतिमेंसे सन्तुष्ट होकर ( नु पातु ) निवृत्तयते हमारी रक्षा करें ॥ ७ ॥

[ ३०० ] हे इन्द्र ! तू ( कदाचन ) कभी भी ( स्तरी- न अस्ति ) सत्ताल उत्पन्न न करनेवाली [ पृथ्या ] वायुके समान नहीं है ( दाशुषे सद्यसि ) हवि देनेवाले यज्ञयान्त्रके तू विष्णु हुआ रहता है, हे ( मघवन् ) मघवान् इन्द्र ! ( देव-स्य ते ) प्रकाशस्वरूप तेरे ( भूयः दानं ) बहुतेके दान ( उपोपेक्षु वृच्यते ) हमारे पास आकर पड़्यन्ते हैं ॥ ८ ॥

[ ३०१ ] हे ( वृत्र-हन्तम ) वृत्रके नाश करनेमें कुशल इन्द्र ! ( हि हरी युङ्क्ष्व ) निवृत्तयते अपने प्रोष्ठ पदमें गोंड, हे ( मघवन् ) मघवान् इन्द्र ! ( उग्रः अर्वावीनः ) बलवान् होकर सामने ( परावतः ) दूरको देशसे ( ऋष्येभिः ) गुल्मर मल्लोंके साथ ( आ गहि ) आ ॥ ९ ॥

[ ३०२ ] हे ( वज्रिन् ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! ( त्वां ) तुझे ( सीप्यैः नरः ) यज्ञकर्ता यज्ञमातों ( इदा ह्यः अपीप्यन् ) आज और पहलेके दिनमें भी सोमरस पीनेके लिए दिया, हे इन्द्र ! ( सः ) वह तू ( इह ) इस यज्ञमें ( स्तोममाहसः श्रुति ) स्तोत्र कहनेवाले याज्ञिकोंके स्तोत्रोंके सुन, और इसके लिए ( स्वस्तरं उग्र आ गहि ) यज्ञ मन्त्रमें आ ॥ १० ॥

॥ यहाँ उन्नीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

( १-१० ) १, २, ६ वसिष्ठो मंत्रावरणि, ३ गणुरात्रेय, ४ पुष्यवैव्य, ५ सप्तपुरागिरम, ७ गीरिवीति शास्त्र, ८ वेनो सायव, ९ बृहस्पतिर्नकुलो वा, १० सुहोत्रो भारद्वाज ॥ इन्द्र, ( ऋ ५ इन्द्रो वक्रुण्ड )  
८ वेन ॥ त्रिष्टुप् ॥

३१३ असौ वि देवं गोश्रुजीकमन्थो न्यसिञ्चिन्द्रो जनुगेमुवोच ।

• घोषामसि त्वा हर्यश्च यद्वैवोधा न स्तोममन्थसो मदपु ॥ १ ॥ ( ऋ ७।२।१ )

३१४ योनिष्ट इन्द्र सदेने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।

असौ यथा नोऽविता वृषाश्चिदो यस्मिन्ममदश्च सोमः ॥ २ ॥ ( ऋ ७।२।१ )

३१५ अददेकस्तमसुजां वि खानि न्वमणवान्मदधानाः अरम्णाः ।

महान्तमिन्द्र पर्वत वि यद्रः सृजद्गारा अव यद्गानवान्द्वन् ॥ ३ ॥ ( ऋ ७।२।१ )

३१६ सुप्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्पन्थश्चितुविनृम्ण नाजम् ।

आ नो मर सुचितं यस्य कोना तना रमना सहाम त्वोताः ॥ ४ ॥ ( ऋ १०।१४।१ )

[ २१ ] एकविंशः खण्डः ।

[ ३१३ ] ( देवं गो-श्रुजीक अम्य ) दिव्य तेजस्वी गायकं वृषसे मिथित सोमरूपी अम्य ( असाधि ) तैय्यार किया है, ( ई इन्द्रः ) यह इन्द्र ( अस्मिन् जनुपा नी उद्योच ) इस सोमरससे स्वभावत ही प्रेम करता है, हे ( इन्द्रो अम्य ) योर्होको पालनेवाले इन्द्र ! ( त्वा यस्मै घोषामसि ) तुमसे इस यज्ञके द्वारा कहते हैं, कि ( अम्यस्य मदेपु ) सोमरसके आनन्दमें ( स. स्तोमं योध ) हमारी इन स्तुतियोंपर ध्यान दे ॥ १ ॥

[ ३१४ ] ( ते सदेने योनिः अकारि ) तेरे बैठनेके लिए हमने स्थान बनाया है, हे ( पुरु-हूत ) बहुतते प्राप्त सित इन्द्र ! ( तं नृभिः आ प्र याहि ) उस स्थानपर अपने मनुष्योंके साथ तु जा, और ( न. यथा भविता ) हमारी रक्षा करनेवाला बन और ( धृधे च अस ) हमारा सर्वजन करनेके लिए तैय्यार रह, हमें ( यस्मिन् च ददः ) अपने प्रभारके धन दे और ( सोम ममदः च ) सोमरससे अन्नदित हो ॥ २ ॥

[ ३१५ ] हे इन्द्र ! ( त्व उत्तरे अददे ) तुने मेर्होको छोड़ा, और ( खानि वि अष्टुज ) पानी निकलनेके द्वारा पौको खोला ( वद्रधानान् अण्वान् अरम्णा ) लुब्ध होनेवाले महान् ससुर्होको आनन्दित किया, और ( महान्त पर्वत ) महान् बावलोंको काड़ा, और ( गाराः अष्टुजन् ) अस्की धाराओंकी बहाय, और ( यद् दानवान् अवद्वन् ) सब वं दानवोंको धिक्कृत किया ॥ ३ ॥

[ ३१६ ] हे इन्द्र ! ( सुप्वाणास ) सोमरस तैय्यार करनेवाले यज्ञकर्ता ( त्वा स्तुमसि ) तेरी स्तुति करते हैं, हे ( सुचितं नृम्ण ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( चाज सनिष्पन्थ ) पुरोडास तैय्यार करनेवाले हुए तेरी स्तुति करते हैं, इसलिये ( न. सुचितं आ मर ) हमें उत्तम धन अस्पर दे, ( यस्य कोना ) जिस धनकी हम इच्छा करते हैं, वह धन हमें दे, ( त्वा उताः ) तुझसे अच्छी प्रकार रहित हुए हम लोग ( तना ) बहुत धन ( रमना सहाम ) अपनी धनितसे प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

- ३१७ जगृह्णा ते दक्षिणमिन्द्र इस्ते वसुधयो वसुधते वसुनाम् ।  
विद्या हि त्वा गोपतिश्शूर गोनामसम्भ्यं चित्रं वृषणश्चर्यं दाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०४७।१ )
- ३१८ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पायां युनजते धियस्ताः ।  
शूरो नृपाता अवसश्च कामा वा गोमति प्रजे भजा स्वं नः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।२७।१ )
- ३१९ वयः सुपर्णा उप सेतुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋपयो नाधमानाः ।  
अप ध्वान्तमूर्णुहि पृषि चक्षुर्मेमुष्या देसाधिपयेव यद्वान् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १०।७९।११ )
- ३२० नाके सुपर्णमुप अस्पतन्त इहृदा येनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।  
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूर्तं यमस्य योनीं अकुर्वन् शूरण्यम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।१२९।९ )
- ३२१ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् सीमतः सुरुषो वेन आवः ।  
स वृष्ण्या उपमा अस्य विष्टाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ९ ॥

अथर्व. ९।६।१; यजु १।१।३

[ ३१७ ] हे ( घस्त्रां ) घसुपते इन्द्र ! बहुते पानोंरवानो इन्द्र ! ( ते दक्षिणं हस्ते ) तेरे बायें हाथको ( घस्त्रयः जगृह्णा ) पानकी इच्छा करनेवाले हम पकड़ते हैं, हे ( शूर ) वीर बन्ध ! हम ( त्वा ) तुम ( गोनां गोपतिं विद्मः ) गोपोंके पास करनेवालेके रूपमें जानते हैं, इसलिये ( चित्रं वृषणं रयिं अस्मभ्यं दाः ) अनेक प्रकारसे मत बछानेवाले घन दू हमें दे ॥ ५ ॥

[ ३१८ ] ( यत् ) जब ( ताः पायाः धियाः युनजते ) संकटसे बचनेके लिये बुद्धिपूर्वक कर्म किए जाते हैं, तब ( नरः नेमधिता ) नेतापण युद्धके समय ( इन्द्रं हवन्ते ) इन्द्रको अपनी लक्ष्यपताके लिये बुझते हैं, इस प्रकार ( त्वं शूरः नृपाता ) दू शूर वीर मनुष्योंको घन बनेवाला है, ( अवसश्च कामाः ) मत बछानेकी इच्छा करनेवाला ( स्वं ) तू ( गोमति प्रजे ) गोपोंके बाढ़ने ( नः आ भज ) हमें पहुँचा ॥ ६ ॥

[ ३१९ ] ( सुपर्णाः वयः ) उत्तम रीजवाली विधियोंके समान ( प्रिय-मेधाः, ऋपयोः नाधमानाः ) यहाँ प्रेम करनेवाली, सर्वदर्शी, प्रतापुडिको पानोंकी इच्छा करनेवालीं सुर्गोंके किरणों ( इन्द्रं उपसेतुः ) इन्द्रको प्राप्त हुईं, अब हे इन्द्र ! दू ( ध्वान्तं मूर्णुहि ) भयंकार दूर कर, ( चक्षुः पृषि ) तेजसे आँखोंको भर दे, ( निधया यद्वान् हव ) पाशोंके बंधे हुए ( अस्मान् मुमुक्षि ) हमें मुक्त कर ॥ ७ ॥

१ निधया यद्वान् अस्मान् मुमुक्षि— पाशोंके बंधे हुए हमें मुक्त कर ।

[ ३२० ] ( सुपर्णं पतन्तं ) उत्तम पक्षसे युक्त वीर आकाशमें अजकी तरह उड़नेवाले ( हिरण्यपक्षं ) सुनहरे रीजोंवाले ( वरुणस्य दूर्तं ) वरुणके दूत ( यमस्य योनीं ) यमके उत्पत्ति स्थान-अन्तरिक्षमें ( शूकुर्वन् ) पक्षी रूपमें रहने वाले, ( शूरण्यं ) सबका पोषण करनेवाले ( त्वा ) तुम ( इहृदा येनन्ता ) श्लेष्म हृदयसे जानते हैं, तब वे ( नाके अभ्यचक्षत ) अन्तरिक्षमें तुम देखते हैं ॥ ८ ॥

[ ३२१ ] ( येन ) नेनने ( पुरस्ताद् जज्ञानं ब्रह्म ) अपनेते प्रथम उत्पन्न हुए ब्रह्म वेजक ( प्रथमं विस्मं ) पहलेसे उपवेश करते हुए ( अतः सुरुषः आवः ) अपने उत्पन्न तेजसे सबका रक्षण करते हुए सबको कानिष्ठत किया ( सः वृष्ण्या ) वह अन्तरिक्षमें ( अस्य उपमाः ) इस ब्रह्मकी उपमा देने योग्य कानिष्ठको ( विष्टाः ) विशेष रूपसे स्थापित करता है, ( सतः असतः च योनिं ) पहले उत्पन्न हुए वीर अपने उत्पन्न होनेवाले विश्वकी उत्पत्तिके कारणको महो ( वि वः ) उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥



३२२ अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महं वीराय तवसे तुराय ।

विरिञ्चिने वज्रिणे द्यन्तगानि वचास्यस्मै स्वाविराय तक्षुः ॥ १० ॥ (ऋ ६।२।१)

इति तृतीया वसति ॥ ३ ॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [स्व० १३। उ० ६। पा० ९१। ट।]

[ ୪ ]

( १-९ ) १, २, ४ छत्तानो मासत ( षट् तिरस्चोशङ्गिरत ), ३ बल्लुकयो बामदेव्य, ५ शमदेवो गौतम, ६, ८ वसिष्ठो मंगमवर्जिन, ७ विश्वामित्रो गायित्रि, ९ गोरिवीरि त्वाक्य ॥ इन्द्र ॥ विष्णुः, ( ६ षट् विराट् ) ॥

३२३ अ० द्रप्सो अ० शुभतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।

आवत्तमिन्द्रः शब्दा ध्यन्तमप स्नीहितं नृमणा अधद्राः ॥ १ ॥ (ऋ ८९६।१)

३२४ पुत्रस्य त्वा श्वसथादीपमाणा विश्वे देवा अजहुय सखायः ।

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्यथेमा विश्वाः पुनरा जयासि ॥ २ ॥ (ऋ ८.१६७)

३२५ विधुं दद्राणः समने बहूनां युवानां सन्तं पलितो जगार ।

देवस्य पश्य कान्यं महिम्नाद्या मभार स ह्यः समान ॥ ३ ॥ (अ १०/१२/१)

[ ३२२ ] (मते धीराय) महान् वीर (तवसे मुराय) बलवान् वीर जलसे काम करनेवाले (धियायाने यज्ञिणे) स्तुतिके धोष्य वीर बलवती (स्थीयराय धस्मै) वृद्ध इत इन्हके लिए (अपूर्याय) जलपूर्व वीर (पुरत मानि) बहुतसे (शान्तमानि प्रचासि) स्तुति करनेवाले स्तोत्र (तथ्यु) बोले जाते हैं ॥ १० ॥

॥ यह इकीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २२ ] द्वाविंशः खण्डः ।

[ ३२३ ] ( इष्टम् ) योगि चलकर अनेवाला ( दक्षिण सहस्रं इयान् ) दस हजार सैनिकों का ताब आकन करनेवाला ( धृष्ट ) क्षुण्ण नामका अमुर ( अमुमुर्ता अवातिप्रत् ) अमुनति नदी पर आकर पड़क गया, ( हास्या धमस्त त ) अमन बलसे जगज्जो कष्ट देनेवाले उस अमुर पर ( इन्द्र आवात् ) इन्द्र षष्ठ योग, ( अथ ) बादमें ( शुभया ) लोगों के मनोंकी अन्धी तरह लेंचनेवाले इष्टने ( स्त्रीहिंस्रि अधद्रा ) उसकी हितस सेनाओंकी भी मार रीतिया । १॥ ॥

[ ३२४ ] है इन्द्र ! ( ये यिष्ये देद्या ) जो सब देव तेरे ( सज्जाय ) मित्र थे, वे सब देव ( वृत्रस्य श्रमसाया ) वृत्रासुरके श्रमसे बरकर ( ईशमाणा त्या न्यजुः ) भारों दिशाओंमें जाग गए और तुम छोड़ गए, है इन्द्र ! सब ( मरुद्भिः ) ते सख्य बरसु ) मरुतोंके साथ तेरी मित्रता होने और ( अथ ) इसके बाद तू ( इमां विभ्वा पृतनां जयासि ) इन सब अश्वकी सेनाओंपर विजय प्राप्त कर ॥ २ ॥

[ ३२५ ] (समने विधु) पृथक् वषट्कार करनेवाले, (यष्ट्या द्वाद्या) यष्टिसे शत्रुको संतुलितको भजानेवाले (युवान) तबप इष्टको रूपसे (पलित जगार) तर्कसे बालीयाका बहुत भी अपने कर्तव्यमें जागृत रहता है, (देवस्य मरित्या) इस इष्टक मरुत अथवा पराक्रमसे तेरे भूष (काव्य पश्य) भाष्यको देखो जो (अद्य ममार) जो आज भर जाता है पर अपने बिन (स ह्य समान) बहुत ही कलके समान सहायके कार्य करने लगता है ॥ ३ ॥

- ३२६ एवं ह्येतत्सप्तम्यो जायमानोऽश्वमुभयो अश्वः शत्रुरिन्द्र ।  
शूदे चावापृथिवी अन्वविन्दो विसुमद्भयो भुवनेभ्यो रणे वाः ॥ ४ ॥ (ऋ ८।९६।१६)
- ३२७ मेडि न त्या वाजिर्ण शृष्टिमन्तं पुरुषसानं वृषमस्थिरप्सुम् ।  
करोप्यर्षेस्तस्यीदृचस्तुरिन्द्र धुसं वृत्रहणं शृणीषे ॥ ५ ॥
- ३२८ प्र वो मेहे मेहे वृधे भरक्ष प्रवेतसे प्र सुमतिं कृणुष्वम् ।  
विशः पूर्वोः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।२।१।१०)
- ३२९ शुनः कुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्मरं नूतमं वाजसातौ ।  
शृण्वन्तमप्रमृतये समस्तु भन्तं वृत्राणि सजितं धनानि ॥ ७ ॥ (ऋ ३।१०।२२)
- ३३० उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रसमये महया वसिष्ठ ।  
आ यो विशानि श्रवसा ततानोपश्रोता म इवता वचांसि ॥ ८ ॥ (ऋ ७।२।१।१)

[ ३२६ ] हे इन्द्र ! ( एवं ह्येतत् जायमानः ) तु जन्म होते ही ( अ-प्राबुध्यः स्वतभ्यः ) अवतक शत्रुभोजे रहित कृष्ण-सुमनसुवि-शम्यर सावि तात समुरीका ( शत्रुः अभयः ) शत्रु होयया, हे इन्द्र ! तू । शूदे चावापृथिवी ) मघवाकरमें मेहे हुए धु और धुन्वी लोहको ( अन्ययिन्द्रः ) प्रकाशमें ले आया और श्व तू ( विसुमद्भयोः भुवनेभ्यः ) भववशात् भुवनोंमें ( रणे वाः ) लुन्धरतासे स्वाभिसा इन लोहोंको और अधिक रक्तवीय धनात्त है ॥ ४ ॥

[ ३२७ ] हे इन्द्र ! ( धुयस्तुः ) प्रशस्तवीय ( अर्थः ) शत्रुवाशक तू हमें ( सशरीः ) विजयी करता है, ( मेडि न ) शित प्रकार प्रशस्तवीय मनुष्यकी स्तुति की जाती है, उसी प्रकार मैं ( वृश-दृषा ) वृषकी मारनेवाले ( धु-क्ष ) धुलीकमें रहनेवाले ( धु-धस्मानं ) अनेक शत्रुओंके नाश करनेवाले ( वृयमे ) बलवान् ( स्थिर-प्सुम् ) युद्धमें स्थिर रहनेवाले ( वाजिर्णं ) बल्यपारी ( शृष्टि-भन्तं ) समुनाजक ( त्या शृणीषे ) तुझ इन्द्रकी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

[ ३२८ ] हे मनुष्य ! ( वः ) तुम ( मेहे वृधे महे प्रमदरक्षे ) मेहे मेहे कर्षण करनेवाले महान् इन्द्रकी भायुर सोम दो, ( प्रवेतसे सुमतिं प्रकृणुष्वे ) विशेष जानी इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो, हे इन्द्र ! ( चर्षणि-प्राः ) प्रजाजनोंकी इच्छा पूरी करनेवाला तू ( पूर्वोः विशः प्रचर ) हवि देनेवाले हुए प्रजाजनोंको महायता कर ॥ ६ ॥

[ ३२९ ] ( वाज-सार्ता अस्मिन् भरे ) लक्ष्मी प्राप्ति होनेवाले इस युद्धमें ( नूतं ) उत्तमही ( मघवानं नूतमं ) पतवान्, शीतमें श्रेष्ठ ( शृण्वन्तं ) प्रार्थनाओंको सुननेवाले, ( उदं ) दूरवीर ( समस्तु वृत्राणि धान्तं ) युद्धमें शत्रु-भोजी मारनेवाले, ( धनानि सजितं इन्द्रे ) धनोपे जीतनेवाले इन्द्रकी हय ( उत्तये कुवेम ) अपने सरसमके लिए युताते हैं ॥ ७ ॥

[ ३३० ] ( श्रवस्या ) शत्रुको धानेकी इच्छासे ( ब्रह्माण उदु परयन् ) स्तोत्रोंकी बहो, हे ( वसिष्ठ ) इन्द्रियोंकी जीतनेवाले श्रेष्ठ । ( यः विश्यानि ) जो सब लोपोंको ( श्रवसा आतनान ) अत्यन्त मघवा यत्ताते ब्रह्मा है, और जो ( ईषतः मे ) उपासता करनेवाले मेरी ( वचांसि उप श्रोता ) प्रार्थनाओंको सुनता है ऐसे ( इन्द्रे ) इन्द्रकी महिमाया ( समये महय ) यत्तमें वर्णन कर ॥ ८ ॥

३३१ चक्रं पदस्याप्स्वा निषत्तमती तदसौ मन्विच्छच्छात् ।

पृथिव्यामतिपित यदूधः पयो गावदधा औषधीषु

॥ ९ ॥ ( ऋ. १०७/१९ )

इति चतुर्थी वृत्तिः ॥ ४ ॥ वसन्तः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० १६ । उ० ६ । पा० ७३ । कि॥ ]

[ ५ ]

( १-१० ) १ अरिष्टनेमिस्तत्सर्वः; २ भरद्वाजः ( ऋ० यवी भरद्वाजः ); ३ विषद ऐश्वर्यः, वसुहृद्वा वामुक्तः ( ऋ० प्राजापयो वा ) ४-६, ९ यामदेवो योतमः ( ९ ऋ० यमी यवस्वतो ) ७ विश्वामित्रो गाविनः; ८ रेणु-वैश्वामित्रः; १० योतयो राहूषणः ॥ इन्द्रः; ( ऋ० १ तात्पर्यः; ७ पर्वतेन्द्रो; ९ यमी यवस्वतः ) ॥ त्रिदृप् ॥

३३२ त्वम् पु वाजिनं देवजूतं सहावानं वृक्षारं रथानाम् ।

अरिष्टनेमिं वृत्तनाजमाश्रुस्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम

॥ १ ॥ ( ऋ. १०१/७८/१० )

३३३ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवह्वे सुहवश्च गुरमिन्द्रम् ।

हुवे तु शक्रं पुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेस्विन्द्रः

॥ २ ॥ ( ऋ. ६१४/११ )

३३४ यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथं यो विप्रतानाम् ।

प्र श्मश्रुमिदोषु वदध्वेषा भुवद्वि सेनाभिर्मघमानो वि राघसा

॥ ३ ॥ ( ऋ. १०१२/११ )

[ ३३१ ] ( अस्य सर्कः ) इत इन्द्रका वज्र ( यत्पु आ निषत्तं ) अन्तरिक्षमें वनकता है, ( उत उ ) और वह ( अस्य मधु इत् चच्छात् ) इत उपासकके लिए मीठा वस्तु भेजता है, उसी प्रकार ( पृथिव्यां अतिपितं यत् ऊषः ) पृथिवीपर जो जल बहुत है, ( गोषुः पयः ) ऊँहें गावोंमें दूधके रूपमें और ( ओषधीषु आवृधाः ) औषधिघोंमें रस रूपसे रसता है ॥ ९ ॥

॥ यहाँ वाहसर्वां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २३ ] अयोविंशः खण्डः ।

[ ३३२ ] ( त्वं वाजिनं ) उत कल्पान् ( देव-जूतं सहोवानं ) देवोंके द्वारा सेवित, वसितमान्, ( रथानां त्वं तारं ) रथोंके संघाममें तारनेवाले ( अ-रिष्ट-नेमिं ) तीक्ष्ण अश्व अपने पास रखनेवाले ( वृत्तनाजं ) शत्रुकी सेनापर विजय प्राप्त करनेवाले, ( आश्रु तार्क्ष्यं ) शीघ्र उठनेवाले सुपंखों हव ( स्वस्तये इह हुवेम ) अपने कल्याणके लिए यहाँ बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ३३३ ] ( त्रातारं इन्द्रं हुवे ) संरक्षण करनेवाले इन्द्रको मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( अवितारं इन्द्रं ) सहायक दृष्टिको मैं बुलाता हूँ, ( हव ह्वे सुहवश्च ) प्रत्येक युद्धमें ब्रह्मणे योग्य ( गुरं शक्रं पुहूतं इन्द्रं ) गुर, सामर्थ्य-वान् और बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रको सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( मघवान् ) इन्द्र ( इदं हविः वेत्तु ) इत हविष्ठाश्रको खाते ॥ २ ॥

[ ३३४ ] ( यजामह इन्द्रं ) अपने दावें हाथमें वज्रको पारण करनेवाले ( विप्रतानां हरीणां रथं ) वेपते बौद्धे वाले घोड़ोंके रथमें बैठनेवाले ( इन्द्रं वज्रमह ) इन्द्रके लिए हुम यत्न करते हैं, वह इन्द्र ( श्मश्रुभिः दोषुवत् ) अपनी दाहिनी ओर भूके द्वारा हो सककी कपात है, वह ( ऊर्ध्वं विमुचत् ) सककी ऊपेक्षा भेद है, ( सेनाभिः भयमानः ) अपनी सेनासे शत्रुओंको भयभीत करता हुआ वह ( राघसा यि ) उपासकोंको पन देता है ॥ ३ ॥

- ३३५ सन्नाहण दाधृषि तुभमिन्द्र महामपारं वृषभस्सुवज्रम् ।  
हन्ता यो वृश्च सनिता वाज दाता मघानि मघवा सुराधा ॥ ४ ॥ ( ऋ. ४।१।८ )
- ३३६ यो नो वनुष्यधमिदाति मते उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।  
क्षिपी युधा ध्रुवता वा तमिन्द्राभी प्याम वषमणस्त्वोताः ॥ ५ ॥
- ३३७ यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना य युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।  
यश्च शूरसातो वमपामुपक्रमन् विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥
- ३३८ इन्द्रापर्येता घृहता रयेन वामोरिप आ वहत सुवीराः ।  
वीत हव्यान्यध्वरेषु देवा वधेया गोमिरिदया मदन्ता ॥ ७ ॥ ( ऋ. ३।१३।१ )
- ३३९ इन्द्राय गिरा अनिशितसगा अपः प्रेरयत्सगरस्य पुष्पात् ।  
यो अक्षणेव चक्रिषी शुचीभविष्वक्तस्तम् पृथिवीमृत धाम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।८।१४ )

[ ३३५ ] हन (सन्नाह-साह) एक साथ अनेक शत्रुओंको मारनेवाले, (दाधृषि) शत्रुको भयभीत करनेवाले, (तुभं) तमको भयानेवाले (महा अपारं वृषभं) महान् अत्यधिक शक्तिशाली (सु-वज्र इन्द्र) उत्तम बलको धारण करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं, (यः पृथु हन्ता) जो वृषका वध करता है, (उत घानं सनिता) और अन्न देता है, वही (सु-राधा) मघना उत्तम वन पात रखनेवाला इन्द्र (मघानि दाता) भक्तोंको वन देनेवाला है ॥ ४ ॥

[ ३३६ ] (यः मते) जो शत्रु मनुष्य (म वनुष्यन्) हमें जानते मारनेकी इच्छा करते हुए (अभि दासति) हमपर घटा घसा आता है, और जो (मन्यमानः) घनेश्री (क्षिपी युधा शरसा) सहार करनेवाले हथियारोंको लेकर बहुत वेगसे (उगणाः तुरः) सेनाओंके साथ हम पर बड़ाई करता हुआ चला आता है, उसको हम (त्या ऊताः) तुमसे रक्षित होकर तथा (पुष-मणः) बलवान् मनसे युक्त होकर (अभिप्याम) हरायें ॥ ५ ॥

[ ३३७ ] (यः पृथु स्पर्धमानाः क्षितयः) शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाली प्रजायें, (यं हवन्ते) जिसको सहायताके लिए बुलाती हैं, (युक्तेषु तुरयन्तः यं) अश्वोंको हाथमें लेकर जाती ही मारबाद करनेवाले वीर जिसको बुझते हैं, (शूर-सातो यं) शूरोंके युद्धोंमें जिसे बुलाया जाता है (अप्रां यं) पानीके लिए जिसे पुकारते हैं, (उपक्रमन् यं) वर्षा होनेके लिए जिसकी प्रार्थना की जाती है, (विप्रासः वाजयन्ते) शर्मा यत् करनेवाले जिसके लिए हथि दैं हैं, (सः इन्द्रः) यह इन्द्र है ॥ ६ ॥

[ ३३८ ] है (इन्द्रा पर्येता) इन्द्र और वनत । (घृहता रयेन) महान् रथसे आकर (गामी-सुवीराः) स्तुतिके योग्य, उत्तम वीर पुत्रोंके पुत्र (इयः आउहते) अन्न साकर हमें दो, है (देवाः) देवों ! (अध्वरेषु हव्यानि वीत) हमारे यज्ञोंमें हविकी लाभो, (इदया मदन्ता) हमारे द्वारा जिनमें नष्ट अन्नसे आनन्दित होनेवाले तुम्हारे पत्न (गोमि-रिदयां) हमारी स्तुतिमेंसे बर्दे ॥ ७ ॥

[ ३३९ ] (यः) जो इन्द्र (शचीमि) अपनी शक्तिमेंसे (पृथिवीं उत धाम्) पृथ्वी और ध्रुवोंको (चक्रिषी) अक्षेण इय जिस प्रकार घनेश्री हान नामता है, उसी प्रकार (विष्वक् तस्तम्भ) चारों ओरसे धारण करता है । (इन्द्राय अनिशित सगा गिरः) ऐसे इन्द्रको ऊँचे स्वरसे जो जानेवाली स्तुतियाँ (सगरस्य पुष्पात् अपः प्रेरयत्) अतरिकसे स्थानसे जलोंको बहाती है ॥ ८ ॥

- ३४० आ त्वा सखायः सख्या नवृत्त्युस्तिरः पुरु चिदर्णा जगम्याः ।  
 पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन्स्ये प्रतरा दीधानः ॥ ९ ॥ (ऋ १०।१०।१)
- ३४१ को अद्य युद्धके धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भायिनो दुर्हणायून् ।  
 आसन्नपामस्तुवाहो मयोभून् एषां मृत्यामृणधस्त जीवात् ॥ १० ॥  
 इति पञ्चमी वृत्ति ॥ ५ ॥ एकवचनः सण्ड ॥ ११ ॥ { स्व० १८। उ० ४। पा ८६। (इ) ॥ }  
 इति निष्पत् सनापत् ॥ इति अतुर्थपञ्चमकस्य प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

[६]

( १-१० ) १ मयुष्मन्ना वेश्वाभिव, २ जेता मायुष्मन्त, ३, ६ मोतमो रद्वयण, ४ अग्निभौम, ५, ८ तिर-  
 वकीरागिरस, ७ मोवातिवि काव्य, ९ विश्वाभिओ मायिन, १० तिरवकीरागिरस अयुर्बाहुंस्पत्यो इति ॥

॥ इन्द्र ॥ अनुवृत् ॥

- ३४२ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।  
 ब्रह्माणस्त्वा ऋतकृत उद्वृक्षमिव येमिरे ॥ १ ॥ (ऋ ११।०।१)
- ३४३ इन्द्र विश्वा अवीवृधन्तसमुद्रज्यचसं गिरः ।  
 रथीतमथरथीनां वाजानां सरथति पतिम् ॥ २ ॥ (ऋ ११।१।१)

[ ३४० ] हे इन्द्र ! (सखायः) मित्र जन (सख्या त्वा आयुस्तु) उत्तम स्तोत्रेति तुमो भवने सामने बुद्धते  
 हे, त्र । तिर। पुत्र अर्णये जगम्या ) ऊपर जाकर विलुप्त अन्तरिक्षमें पहुँच गया है । ( अस्मिन् इत्ये ) इस भूतमें  
 ( प्र तरा दीघ्यानाः ) अत्यधिक प्रकाशित होकरके ( वेधाः ) बहु इन्द्र (पितुः नपाति आदधीत) पिताने वाली पोते  
 मर्णां मेरे लक्षणेय लक्षक हो ऐसा करे ॥ ९ ॥

[ ३४१ ] ( अद्य ) आज ( ऋतस्य धुरिः ) मतमें जानेवाले इन्द्रके रथकी घुरामें ( गाः ) शीमेनेवाले (शिमीयतः  
 भायिनः) बीर यीर सैन्यकी ( दु-र्हणायून् ) मयुषर अत्यधिक क्रोध करनेवाले (मयोभून्) मुखदायक प्रोत्रकी  
 ( आसन् ) बुद्धते कहे जानेवाले स्तोत्रकी सहायतासे ( कः युक्ते ) भक्त कीव जोड़ता है ? ( यः यथाभूत्वा प्राणधन् )  
 जी इन्द्रके ( धीरोरि ) भरण पोषणके कार्य करता है, ( सः ) जीवात् ) यही जोमित रहता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ तेइसवां श्लोक समाप्त हुआ ॥

[ ३४ ] अतुर्विचः सण्ड ।

[ ३४२ ] हे (रात-यत्रो) संहर्षो उत्तम कार्य करनेवाले इन्द्र ! (त्वा गायत्रिणः गायन्ति) उरगाता तेरा  
 यर्णन करते हैं, ( अर्किणः अर्क अर्चन्ति ) स्तुति करनेवाले पूजणीय इन्द्रका सत्कार करते हैं, ( ब्रह्माणः ) ब्राह्मण (त्वा)  
 तुमो ( यद्वा इय ) जित प्रचार नष्ट लोग वासीर ऊपर लक्ष रखते हैं उसी प्रचार ( उतु येमिरे ) ऊपर स्थापित करते  
 हैं, अर्थात् तेरी प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ३४३ ] ( विश्वाः गिरः ) सब मृत्तिकां ( समुद्रज्यचसं ) समुद्रके समान विलुप्त ( रथीनां रथीतम् ) रथने  
 बटनेवाले घोड़ोंमें घोड़ और ( वाजानां पति ) कर्तार और अर्जने स्वामी ( सरथति इन्द्र ) सगजघोड़े पालन करनेवाले  
 इन्द्रकी मददका बराही है ॥ २ ॥

- ३४४ इममिन्द्र सुत पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।  
शुक्रस्य त्वाम्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८४।४ )
- ३४५ यदिन्द्र चित्रं म इह नास्ति त्वादातमाद्रिव ।  
राधस्तको विददस उभयाहस्त्या भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ५।९।१ )
- ३४६ शुषो हवं तिरिक्स्या इन्द्र वस्त्या सपयति ।  
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्ध्वं महाश्रजि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९।४ )
- ३४७ असावि सोम इन्द्र तं शविष्ठ घृण्वा गाहि ।  
आ त्वा पणविश्वन्दिश्वरजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८४।१ )
- ३४८ एन्द्र याहि हरिमिरुष कण्वस्य सुपुतिम् ।  
दिवा अमृष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।९।१ )
- ३४९ आ त्वा गिरो रयीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वेणः ।  
अभि त्वा समनूयत गावो वत्स न धेनवा ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।९।१ )

[ ३४४ ] हे इन्द्र ! ( इमं ज्येष्ठं मदं ) इस घेष्ठ और आलन्द बढानेवाले ( अमर्त्यं सुतं पिब ) जलर सोम रणोंकी पी, क्योंकि ( ज्ञानस्य सादने ) यज्ञके मण्डपमें ( शुक्रस्य धाराः ) शुद्ध सोमरसकी धारा ( त्वाम्यक्षरन् ) तेरी तरफ बह रही है ॥ ३ ॥

[ ३४५ ] हे ( चित्रः अद्रिघः ) विसञ्जन और बखकी धारण करनेवाले ( चिद्वत्सो इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( यत् त्वादातं राधा ) जो तेरे देने योग्य धन ( इह न नास्ति ) यहा मेरे, वाल नहीं है, ( नत्वाः ) उस धनको हर्ने ( उभया हस्त्या आभर ) दोनों हाथोंसे भरपूर दे ॥ ४ ॥

[ ३४६ ] हे इन्द्र ! ( यः त्वा सपयति ) जो तेरी उपासना करता है, ऐसे उस ( तिरिक्स्याः हवं शुषि ) तिरिचि श्रविकी प्रार्थना मुन, और तू ( सुवीर्यस्य गोमतः रायः ) उत्तम बल युक्त और साप युक्त धन देकर ( पूर्वि ) हर्ने पूर्ण कर, ( महान् अजि ) वृ महान् तं ॥ ५ ॥

[ ३४७ ] हे इन्द्र ! ( ते सोमः असावि ) तेरे लिए सोमरस भिजाला है, हे ( शविष्ठ ) बलवान् ( घृणो ) शत्रु-मौल्यो हटानेवाले इन्द्र ! ( आ गहि ) आ, ( इन्द्रियं त्या ) सोमपातसे तेरे जन्दर घसित ( सूर्यः रश्मिभिः यजः न ) जिस प्रकार सूर्य अपनी चिरपोंसे जलतिलरों भर देता है, उसी प्रकार ( ज्ञा घृणक्तु ) भर जाय ॥ ६ ॥

[ ३४८ ] हे इन्द्र ! ( कण्वस्य सुपुति ) कण्वकी उत्तम स्तुतिसे पास ( हरिभिः उप याहि ) पोरसे द्वारा आ, ( अमृष्य ) इसको ( दिवः शासतः ) सुलोचने शासनमें हर्ने मुख मिलता है, इसलिये हे ( दिवावसो ) तेजसे साप रहनेवाले इन्द्र ! ( दिवं यय ) सुलोच पर आ ॥ ७ ॥

[ ३४९ ] हे ( गिर्वेणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( सुतेषु ) सोम यज्ञमें ( गिरः ) हजारी स्तुतिवा ( रयीः इव ) रथमें घेठनेवाले घोर जिस प्रकार अपनी डीर-स्थान पर पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार ( त्वा अस्थुः ) तेरे पास पहुँचनी है, हे इन्द्र ! ( यत्सं धेनवाः गावः न ) बछड़ेके पास जैसे डुपान पाय पहुँचती हैं, उसी प्रकार हमारी स्तुति ( त्वा आभि समनूयत ) तेरे पास पहुँचनी है ॥ ८ ॥

३५० ए॒वां नि॒न्द्रं स्त॒वाम शु॒द्धं शु॒द्धेन सा॒म्ना ।

शु॒द्धैरु॒च्यैर्वा॒वृ॒ष्वा॒सं शु॒द्धैराशी॒र्वा॒न्मम॒चु

॥ ९ ॥ ( ऋ ८।९।७ )

३५१ यो रा॒य यो रा॒यन्त॒मो यो शु॒भ्रं शु॒भ्रव॒चमः ।

सामः सु॒तः स इन्द्र॑ वे॒ऽस्ति स्व॒पाप॒ते म॒दः

॥ १० ॥ ( ऋ ६।४।१ )

इति पृथो वसति ॥ ६ ॥ इत्यत्र कण्व ॥ १२ ॥ [ स्व० ४ । उ० ४ । पा० ५४ । (घो) ॥ ]

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

[ ७ ]

( १-१० ) १ भरद्वाजो बर्हस्पत्यः, २ वामदेवो गौतमः, शाकल्यो वा, ३ प्रियनेष आगिरसः, ४ प्रयागः काव्यः;  
५ श्यावासः आत्रेयः, ६ शबुर्वाहस्पत्यः, ७ वामदेवो गौतमः, जेता माधुकन्वतः ॥ इन्द्रः; ८ भरतः,  
९ दक्षिणः वा ॥ अनुष्टुप् ॥

३५२ प्र॒त्यस्मै॑ पि॒यी॒यते॑ वि॒श्वानि॑ वि॒दुषे॑ मर । अ॒र॒क्ष॒माय॑ ज॒ग्मये॑ऽप॒श्वाद्भवे॑ नरः ॥ १ ॥

( ऋ ६।४।१ )

३५३ आ नो व॒यो वयः॑ श॒यं म॒हान्तं॑ ग॒ह्वरे॑ष्ठां म॒हान्तं॑ पू॒र्विण॑ष्टाम् । उ॒ग्रं व॒चो॑ अ॒पाव॒धीः ॥ २ ॥

[ ३५० ] ( तु पते उ ) जलवी वा, ( शुद्धेन साम्ना ) शुद्ध साम और ( शुद्धं उच्यते ) शुद्ध मन्त्रों द्वारा हम  
( शुद्धं इन्द्रं स्तवाम ) शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करते हैं, ( वावृष्वांस ) दक्षिणको बसानेवाले इन्द्रको ( शुद्धैः ) शुद्ध मन्त्रों  
से स्तुति किए गए ( आशीर्वात् ममचु ) वी द्रुपते मिले हुए सोम मान्य देखें ॥ ९ ॥

[ ३५१ ] हे इन्द्र ! ( यः रयितमः ) जो अत्यन्त शोभायुक्त है, और ( यः शुभ्रः शुभ्रवचमः ) जो तेजसे  
अत्यन्त तेजस्वी है, ( सः सोमः ) वह सोम ( यः ) तेरे उपरतलोंको ( रयिं ) धन देता है, हे ( शुभ्रवचने ) अपनी धारणा  
प्रकृतिसे युक्त इन्द्र ! ( सुत ते मदः अस्ति ) यह सोमरस तुझे आनन्द देनेवाला हो ॥ १० ॥

॥ वहाँ चौथीस्तया रीढ़ समाप्त हुआ ॥

[ ३५ ] पञ्चविंशः अध्यायः ।

[ ३५२ ] हे यागवी ! ( नर ) यज्ञको जाये के जानेवाले तुम यज्ञकर्त्ता ( अग्ने पियीयते ) इस सोम पीनेकी  
इच्छा करनेवाले ( विश्वानि विदुषे ) सबको आनन्दनेवाले ( अरं क्षमाय ) उचित समय पर क्षमा स्वीकार कर पशुबानेवाले  
( जग्मये ) प्रत्येक जानेवाले ( अपश्वात्-अपचने ) सबसे पहले पशुबानेवाले ( प्रति मर ) इन्द्रको इच्छानुसार  
सोम दो ॥ १ ॥

[ ३५३ ] ( महान्तं गह्वरेष्ठां वयः शयं ) महान् पर्वतपर रहनेवाले और सब जगह निपनेवाले ( वयः ) सोमस्त्री  
भरतों ( नः ) हमारे लिए ( वा मर ) भरत के भा । ( महान्तं पूर्विणष्टाम् ) बहुत सारे प्रविष्ट होनेवाले ( उग्रं वचः  
अपावधी ) बटोर भाषणोंके हुए बट, भूरे दाढ़ हवाले पात न आने देता कर ॥ २ ॥

३५४ आ त्वा रथं यथोत्तये सुम्नाय वर्तयामसि ।

तुविर्कर्ममृतीपद्ममिन्द्रश्चविष्टं सत्यतिष्ठ

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६।८।१ )

३५५ स पूर्यो महानां वेनः क्रतुमिरानजे ।

यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे

॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।६।१।१ )

३५६ यदा बहन्त्याश्रयो आजमाना रथेष्व ।

पिबन्तो मादिरं मधु तत्र श्रवाश्चि कृष्वते

॥ ५ ॥

३५७ स्यमु वो अप्रहृणं गुणोपि अयसस्पतिम् ।

इन्द्र विश्वासाहं नरश्च शचिष्ठं विश्ववेदसम्

॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।४।४।४ )

३५८ दधिक्राव्णो अकारिपं जिष्णोरशस्य वाजिनः ।

सुरभि नो मुखा करस्म ण आयूश्चि वारिषत्

॥ ७ ॥ ( ऋ. ४।३९।६ )

[ ३५४ ] हे ( शचिष्ठ ) बलवान् इन्द्र ! ( ऊतये सुम्नाय ) संरक्षण और सुखके लिए ( रथं यथा ) जैसे रथको घुमाते हैं, उसी प्रकार ( तुवि-कर्म ) बहुत पराक्रमी ( मृती-पद्म ) शत्रुओंको हरानेवाले ( सत्यतिष्ठ ) सत्यजनोंके पालन करनेवाले तुझ इन्द्रकी ( वर्तयामसि ) हम लाते हैं ॥ ३ ॥

१ तुवि-कर्म मृती-पद्मं सत्यतिष्ठं त्वया इन्द्र वर्तयामसि—अत्यन्त पराक्रमी, शत्रुओंको हरानेवाले सत्यजनोंका पालन करनेवाले इन्द्रकी हम पास लाते हैं ।

[ ३५५ ] ( सः पूर्यो ) वह इन्द्र सुख है, ( महानां क्रतुभिः ) महान् धनधान्यके यशकी सहामता ( वेनः आनजे ) हविष्याग्रकी इच्छा करते हुए वह इन्द्र यशमें आता है, ( यस्य द्वारा ) जिस यशके द्वारा ( धियः ) कर्मोंको करते हुए ( देवेषु पिता मनुः आनजे ) देवीयों सबका पालन करनेवाला मनवश्रीस वह इन्द्र प्रकट होता है ॥ ४ ॥

[ ३५६ ] ( यदा ) जहां जिस यशमें ( आजमानाः आश्रयो ) तेजस्वी और क्षीर जानेवाले नरन् ( आश्रयस्ति ) तुम पहुंचाते हैं, ( तत्र ) उस यशमें वे ( मादिरं मधु पिबन्तो ) अत्यन्त बढ़ानेवाले उस शत्रु सौमरसको पीते हैं, और ( श्रवाश्चि कृष्वते ) अन्न उत्पन्न करते हैं, अर्थात् चानी धरसाकर अन्न उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

[ ३५७ ] ( यः ) तुम्हारे हितके लिए ( त्वं उ अप्रहृणं ) उस उपकार करनेवाले—हिंसा न करनेवाले ( अयसः पति ) बलके स्वामी, अप्रहं स्वामी ( विश्वा-साहं ) सब शत्रुओंको हरानेवाले ( नरं शचिष्ठं ) नेता और शक्तिमान् ( विश्ववेदसं ) सर्वज्ञ इन्द्रकी ( गुणोपि ) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

[ ३५८ ] ( जिष्णोः ) विजयी ( अश्वस्य वाजिनः ) अश्वरथी वेगवान् ( दधिक्राव्णः ) दधिक्रावकी स्तुति ( अकारिपं ) मने की, यह ( नः मुखा सुरभि करत् ) हमारे मुखादि अंगोंकी शक्तितात्पर्य करता है, ( नः आयूश्चि प्रसारिषत् ) और हमारी आयु बढ़ाता है ॥ ७ ॥



३५९ पुरां भिन्दुर्मुखा कविरभितौजा अजायत ।

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्रो पुरुष्टुतः

॥ ८ ॥ ( ऋ. १।१।१४ )

इति सप्तमो वसति ॥ ७ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्व० ५। उ० २। पा० ५५। ( पु० ) ]

[ ८ ]

( १-१० ) १, २, ५ प्रियमेव आगिरतः, २, १० वायवेनो यौतमः; ४ यमुष्मन्ता वीरवामिन्ः; ६ भद्राजो बार्हस्पत्यः;

७ अत्रिमौमः; ८ प्रस्कम्बः काश्वः; ९ शित आन्वः ( अ० आगिरतो वा ) ॥ इन्द्रः; ( ६ ऋ० अग्निः )

८ उषा, ९ विश्वदेवाः ॥ अनुष्टुप् ॥

३६० प्रप्र वक्षिण्टुभूमिषं चन्द्रहीरायेन्द्वे ।

धिया वो मेघसातये पुरन्ध्या धिवासति

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६९।१ )

३६१ कश्यपस्य स्वर्षिदो यावाहुः स्युजाविति ।

ययोर्विश्वमपि व्रत यज्ञं धीरा निचाय्य

॥ २ ॥

३६२ अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।

अर्चन्तु पुत्रका सत पुरमिद् धृष्टार्चत

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६९।८ )

३६३ उक्थमिन्द्राय श्वस्यं यधेनं पुरुनिर्गधे ।

शक्रो यया सुतेषु नो शरज्जर्मख्येषु च

॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।१५ )

[ ३५९ ] ( पुरां भिन्दुः ) शत्रुके नगरीको तीक्ष्णवाला, ( युवाः कथिः ) सख्य, सानी ( अ-मित-ओशा ) अपरिमित धनवान्, ( विश्वस्य कर्मणः धर्ता ) सब द्रुम कर्मको धारण करनेवाला ( पुत्र-पुत्रः इन्द्रः अजायत ) अनेकोंके द्वारा प्रसूतित यह इन्द्र उत्पन्न हुआ है ॥ ८ ॥

॥ यद्गं यच्छीरसं खंडं समात हुजा ॥

[ २६ ] पर्वतिताः खण्डः ।

[ ३६० ] हे वातको ! ( यः ) तुम ( प्रिन्दुमं इव ) तीक्ष्ण स्तोत्रैर्निर्गन्धवार किया गया अन्न ( चन्द्रं धीराय इन्द्रये ) प्रशस्तोय और इन्द्रके पास ( प्रप्र ) पर्वधाको, वह इन्द्र ( यः ) तुम्हें ( मेघसातये ) वनके अनुष्ठानके लिए ( पुरन्ध्या धिया ) मित्रों के मुझोंके लिए गए कर्मोंके ( आ धिवासति ) इष्ट काल केकर तुम्हारा सत्कार करता है ॥ १ ॥

[ ३६१ ] ( कश्यपस्य ) गन्धर्वका इन्द्रके ( यी ) जो दोनों घोड़े हैं, ( ययोः ) बिनके ( विश्वं अपि व्रतं ) सब कार्य ( यज्ञं इति ) वह हो है, ऐसा ( निचाय्य ) निश्चय करके ( स्युजां ) के दोनों घोड़े रथमें जोड़े जाने हैं, ऐसा ( स्वर्षिदुः धीराः आहुः ) सानी और मुझियान् पुत्र कहते हैं ॥ २ ॥

[ ३६२ ] हे ( नरः ) मनुष्यों ! तुम ( अर्चत ) इन्द्रका सत्कार करो, ( प्र अर्चत ) प्रिये इन्द्रके सत्कार करो, हे ( प्रिय-मेधासः ) यन्त्रके प्रेम करनेवाले ! ( अर्चन्तु ) इन्द्रका सत्कार करो, हे ( पुत्रकाः ) पुत्रों ! ( पुरं इद् धृष्टं ) भद्राजो इन्द्रा पुत्र करनेवाले, यन्त्रको हरनेवाले इन्द्रका ( अर्चन्तु, अर्चत ) सोच सत्कार करें और तुम भी सत्कार करो ॥ ३ ॥

[ ३६३ ] ( पुत्र-निर्गधे इन्द्राय ) बहुतसे पुत्रोंके भाग करनेवाले इन्द्रके लिए ( यधेनं उक्थं ) उसके बानी बहानेवाले शीश ( श्वस्यं ) बहो, वह : शक्रः ) सत्कर्मवान् इन्द्र ! ( नः ) हमारे ( सुतेषु च नख्येषु ) पुत्रोंके और पित्रोंके ( यया शरज्जर्म ) जिस पीढ़ीके उत्तम बोले, इस प्रकारके इन्द्रके लिए शीशोंको बहो ॥ ४ ॥

- ३६४ विश्वानरस्य वस्पातिमनानतस्य श्वसः ।  
एवंश्च चर्पणीनामृती हुवे रयानाम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।६।४ )
- ३६५ स या मस्तो दिवो नरो धिया मत्तस्य अगतः ।  
ऊती न बृहतो दिवो द्विषो अश्वो न तरति ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।२।४ )
- ३६६ विमोष्ट इन्द्र राघसो विस्वी रातिः अतक्रतो ।  
अथा नो विश्वचर्पणे पुमश्चक्षुदश्च मश्वय ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।२।८।१ )
- ३६७ वयश्चित् पतत्रिणौ द्विषाचतुष्पादजुनि ।  
उपः प्रारक्षुत्क्षनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।४९।१ )
- ३६८ अमी ये देवा स्यन मध्ये आ रोचने दिव ।  
कद्र प्रत कद्रमृत् का प्रता न आहुतिः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१०।१९ )

[ ३६४ ] ( विश्वानरस्य ) सब शत्रुओंके सैनिकोंपर आक्रमण करनेवाले अथवा यिज्जके नेता ( अनामतस्य ) शत्रुके भागे बची न शुकनेवाले ( श्वसः पति ) बलके स्वामी इन्द्रको, हे मस्तो ! ( यः ) तुम्हारे ( चर्पणीनां पथे ) सैनिकोंके आक्रमणके लिए होनेवाले गोरके समान ( रयानां ऊती हुवे ) रथोंके सरसणके लिए हम बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[ ३६५ ] ( यः ) जो ( शमतः मत्तस्य ) शान्त मनुष्यकी ( धियाः ते धिया ) तैश्वरी शीलनेवाली उस स्तुतिकी सहायतासे ( नरः सखा ) मनुष्य मित्र होता है, ( सः ) यह मनुष्य ( बृहतः दिवः ऊती ) महान् विष्य सरसणसे पुनः होकर ( अंहः न ) पारंगति सुरक्षित होनेके समान ( द्विषः तरति ) शत्रुओंसे सुरक्षित होता है ॥ ६ ॥

१ सः बृहतः दिवः ऊती, अंहः न, द्विषः तरति— जो मनुष्य इस विद्याल सरसणसे पुनः होता है, यह जैसे पापसे सुरक्षित होता है उसी प्रकार शत्रुओंसे भी सुरक्षित होता है ॥ ६ ॥

[ ३६६ ] हे ( शतक्रतो इन्द्र ) हे लकड़ों पराक्रम करनेवाले इन्द्र ! ( विमोः राघसः ) बहुते धनोंके ( ते रातिः विस्वी ) तेरे बान महान् हैं, ( अथ ) इसके बाद ( विश्व-चर्पणे सु-दश्च ) हे सर्वदृष्टा और उसमें बान देनेवाले इन्द्र ! ( नः पुमश्च मश्वय ) हमें यह देकर महान् कर ॥ ७ ॥

[ ३६७ ] हे ( अर्जुनि उपः ) सुभ वरुणकी उये ! ( ते कान् अनु ) तेरे अग्रेके बाद ( द्विषाद् चतुष्पाद् ) मनुष्य और पशु ( पतत्रिणः वयः चित् ) तथा पक्षीवाले पक्षी भी ( दिवः अन्तेभ्यः ) आकाशके अन्ततक ( परि प्रारन् ) अपर इच्छानुसार उड़ते हैं ॥ ८ ॥

[ ३६८ ] हे ( देवा ) देवों ! ( ये अमी ) जो इन ( दिव आरोचने ) दिनोंके प्रकाशित होनेपर ( मध्ये स्यन ) तुम उस आकाशमें रहते हो, ( यः अन्ते कद्रः ) तुन्हें वहा क्या वस प्राप्त होता है ? अथवा क्या ( यः प्रता आहुतिः का ) वहा तुन्हें पहलेके समान कोई आहुति भी मिलती है ? ॥ ९ ॥

३६९ अ० च० साम यजामहे ब्रह्मर्षी कर्मणि कृण्वते ।

वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वसतः

॥ १० ॥

इति अष्टमो दशति ॥ ८ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ इत्यनुष्टुप् ॥ [ स्व० ७ । उ० ३ । पा० ५४ । जो ॥ ]

[ ९ ]

( १-११ ) १ रेभः काश्यप, २ सुवेदा शैब्य, ३ वामदेवो गौतम, ४, ७, ८ सव्य आङ्गिरस, ५ विश्वामित्रो गामिन, ६ कृष्ण आङ्गिरस, ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्य, १० मेधातिथि काण्व ( ऋ० मान्धाता यौवनाश्व ), ११ कुत्स आङ्गिरसः ॥ इन्द्र, १ छात्रापूर्विको ॥ जगती, १ अति जगती, १० महापङ्क्ति ॥

३७० विश्वाः पृतना अभिभूतं नरः सज्जुस्तक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसः ।

क्रत्वं वरे स्थेमन्यामुरीषुतोप्रमोजिष्ठं तरस तरस्विनम् ॥ १ ॥ ( ऋ ८।९।१० )

३७१ अथै दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्वहस्यु नये विवरपः ।

उमे यस्या रोदसी धावतामनु श्यसाते शुष्मात्पृथिवी विदद्रिवः ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१४।१ )

३७२ समेत विश्वा ओजसा पति दिवो य एक इन्द्रसिधिविजनाम ।

स पूर्यो नूतनमाजिगीष व तसनीरनु धावत एक इत् ॥ ३ ॥

[ ३६८ ] ( धाम्या कर्मणि कृण्वते ) जिसकी सहायतासे यसादि कर्म चिन्त जते हैं, ( नृच साम यजामहे ) उस ऋचा और प्रसाहो वाक्य हम मन करते हैं, ( ने ) के श्रुप् भञ्ज और साम मन ( सदसि विराजते ) यत् मन्यमाने विराजमान है, और के ही ( देवेषु यज्ञ वसतः ) देवीने यज्ञको वसुचाले हैं ॥ १० ॥

॥ यदा छन्दोस्यो खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३७ ] सप्तविंशः खण्डः ।

[ ३७० ] ( विश्वा पृतनाः नरः ) सब शत्रुतेजोके नेता और सैन्यके साथ ( सज्जु ) एकजिन्त होनेके पार वे ( अभि-भू-तर इन्द्रः नतश्चु ) शत्रुको बुरी तरह हरानेवाले इन्द्रको सम्प्राप्यते युक्त करते हैं, ( य राजते जजनु ) और अधिक प्रशंसित करते हैं ( उत ) और ( मन्ये वरे स्थेमनि ) यज्ञमें श्रेष्ठ स्थानपर श्रुतिपू वेंडकर ( आसुरी ) शत्रुको मारनेवाले ॥ उग्र ओजिष्ठ तरस तरस्विनः ) उग्र, वीर, सामर्थ्यवान्, प्रतपी और क्षीप्रगते कार्य करनवाले इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ३७१ ] हे ( अद्रि-य ) बलवती इन्द्र ! ( ने प्रथमाय मन्यवे ) तेरे यहाँ भोजपर य ( अथ दधामि ) श्रद्धा करता हूँ ( यत् दस्युः अहन् ) क्योंकि यह वधो युद्धोंको सारता है, और ( नये धप रिपे ) शत्रुओंके लिए हितकारी पानीकी प्रसाहित करता हूँ, ( उमे रोदसी ) सोनीं ही धुलोक और पृथिवीको ( यत् त्या अनु धावता ) शय तेरे अनुकूल होकर गति करते हैं और ( पूर्यो नूतनी चित् ) पूरियो भी ( ते शुष्मात्पृथिवी ) तेरे बलसे भारण कापने लगती हैं ॥ २ ॥

[ ३७२ ] हे ( विश्वा ) सब प्रजातो ! ( ओजसा पति दिवः ) अपने शक्तिको इन्द्र धुलोकपर स्वामी हैं । उतरो ( रग्मेन ) सब एक स्थानपर मिलकर स्तुति करो, ( य एक इत् ) जो अपेक्षा ही ( जनानां वसतिः ) शत्रु शत्रुओंके स्थान प्रथम है, ( पूर्ये स्तः ) यह पुराण पुरुष इन्द्र ( आजिगीष न नूतन ) अपने शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा को मने सोरोंकी ( एक इत् ) अपेक्षा ही ( धर्षन्ती ) अनुयायते ) विजयके भागमें आने से जाता है ॥ ३ ॥

- ३७३ इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुव ये त्वारभ्य चरामासि प्रभूवसो ।  
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सधस्त्राणोरिव प्रति तद्दयं नो वचः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।५७।४ )
- ३७४ चर्यणीधृतं मघवानमुवध्यामिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूयत ।  
सावुधानं पुरुहवः सुवृत्तिभिरमर्यै जरमाणं दिवोदिवे ॥ ५ ॥ ( ऋ. ३।२१।१ )
- ३७५ अञ्छा य इन्द्रं मतयः स्वर्धुवः सघ्रीचीर्विषा उशतीरनूयत ।  
परि ज्वजन्त जनयो यया पतिं मयं न शुन्धुं मघवानमृतयै ॥ ६ ॥ ऋ. १।७३।१ )
- ३७६ आभि रयं मेपं पुरुहूतमुग्मियमिन्द्रं गोभिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।  
यस्य धायो न विचरन्ति मानुषं भुजे मथहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।५१।१ )
- ३७७ रयंसु मेपं महया स्वविदः खलं यस्य सुमुवः सामगरीत ।  
अस्य न वाजः हवनस्यदः रयमिन्द्रं वषुत्यामवसे सुवृत्तिभिः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।५२।१ )

[ ३७३ ] ( प्रभूवसो पुरुष्टुव इन्द्र ) हे अत्यधिक धनवान् भीरु बहुतैति प्रशंसित इन्द्र । ( ये ) जो हव ( त्या आरभ्य चरामासि ) तेरा आरम्भ लेकर कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, ( ते इमे वयं ते ) वे ये हव तेरे ही हैं, हे ( गिर्वणः ) प्रशस्तीय इन्द्र । ( त्वद-अन्यः ) तुझसे भिन्न और कोई इन्द्र ( गिरः न हि सख्यः ) स्तुतिके योग्य नहीं है, ( तव ) इतकिए ( नः वचः ) हमारा स्तुतिमौल ( क्षोणीः इव ) धूम्यो जैसे सबको स्वीकार करती है, उस प्रकार ( प्रति हयं ) स्वीकार कर ॥ ४ ॥

[ ३७४ ] ( गृहती गिरः ) हमारी बहुत स्तुति ( चर्यणी-धृतं ) सब धन्युवोंका अरण्योपवन करनेवाले ( मघवानं उन्धयं ) धनवान् भीरु प्रशस्तीय (सावुधानं पुरुहवं ) सब अर्थोंको बढ़ानेवाले और बहुतैति प्रशंसित ( अमर्यै ) अमर, भीरु ( सुवृत्तिभिः दिवे दिवे ) उत्तम स्तोत्रोंसे प्रतिदिन (जरमाणं) प्रशंसित ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( अभि अनूयत ) प्रशंसा करती है ॥ ५ ॥

[ ३७५ ] ( यया जनयः मयं पतिं न ) जैसे स्त्रियां अपने पतिका ( परिपूज्यन्त ) आर्जित करती हैं, उसी प्रकार ( ऊतये ) अपने सरसणके लिये ( शुन्धुं मघवानं इन्द्रं ) शूद्र और धनवान् इन्द्रको ( स्वः-धुयः ) आत्माकी शक्तिको बढ़ानेवाली (सघ्रीचीः) एकत्रित हुई हुई ( विषाः उशती मतयः ) सब उन्नतिको इच्छा करनेवाली हमारी स्तुतिवा ( अञ्छा अनूयत ) प्रशंसा करती हैं ॥ ६ ॥

[ ३७६ ] ( रयं मेपं ) उस शत्रुकी हारनेवाले ( पुरु-हूतं उग्मियं ) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित, वेद मन्त्रोंसे जिसको स्तुति की जाती है, ऐसे ( यस्वः अर्णवं ) धनके समूह ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( गोभिः आभि मदन ) स्तुतिसे आनन्दित करो, ( यस्य मानुषं ) जिसके मनुष्योंके लिए हितकारी कार्य ( धायः न ) छुड़ोकने समान ( विचरन्ति ) चारों ही ओरसे प्रभावशाली होते हैं, अतः ( भुजे ) शीर्ष मिलें इतकिए ( मथिष्ठं किं ) गहन ज्ञानी इन्द्रको ( अभि मर्चत ) पूजा करो ॥ ७ ॥

[ ३७७ ] ( यस्य सुमुवः ) जिसके उत्तम स्थान ( दासं साकं ईन्ते ) सैकड़ों एक गणपमें ही उन्नति करते हैं, ( रयं मेपं स्वविदं रयं ) उस शत्रुओंसे स्वयं करनेवाले, धन देनेवाले स्वके समान इच्छित स्थानमें पहुँचानेवाले ( अत्यं चानं न ) वेगसे दौड़नेवाले घोड़ोंके समान ( हवन-स्यदः ) बड़े स्थानपर जानेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रके पासको ( अवसे ) अपने सरसणके लिए ( सु-वृत्तिभिः ) महद्य उत्तम स्तोत्रोंसे प्रकट करो, और ( शत आवृत्त्यां ) स्तुति सैकड़ों बार करो ॥ ८ ॥

- ३७८ घृतवतीं सुवनानामभिधियोर्वीं पृथ्वीं मधुदुधे सुपेशसा ।  
 यावापृथिवीं वरुणस्य धर्मेणा विष्कभिते अजर भूरिरेतसा ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।७०।१ )
- ३७९ उमे यदिन्द्र रोदसी आपामाया इव ।  
 महान्तं त्वा महीनां स मग्राजं वर्षणीनाम् ।  
 देवीं जनित्र्यजीजनद्भ्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १० ॥ ( ऋ. १०।१३।१ )
- ३८० म मग्निने पितुमदचेता वचो यः कृष्णमर्मा निरहन्तुजिघत्सा ।  
 अवस्यसो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुस्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥ ११ ॥ ( ऋ. १।१०।११ )
- इति नवमी वसतिः ॥ ९ ॥ तृतीयः सख्यः ॥ ३ ॥ [ स्व० १४ । उ० ७ । पा० ९३ । पि ॥ ]  
 ॥ इति नवमः ॥

[ १० ]

( १-१० ) १ नारदः काण्वः, २, ३ गोपूतवचसपुत्रितनी काण्वावनी, ४ पर्यतः काण्वः, ५-७, १० विद्यमाना वैश्वः  
 ८ मुनेष आङ्गिरसः, ९ गीतको रङ्गपकः ॥ इन्द्रः ॥ उज्जिक् ॥

- ३८१ इन्द्रं सुतेषु सोमेषु कृतं पुनीप उक्थ्यम् ।  
 विदे वृषस्य दक्षस्य महाश्चि यः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )

[ ३७८ ] ( यावापृथिवी ) ये सुलोक और पृथिवीलोक ( घृतवती ) जलवाले, ( सुवनानां अभिधिया ) तब प्राणिपौरो आभय देनेवाले ( उर्वीं पृथ्वी ) महान् और विस्तीर्ण ( मधु दुधे ) मीठा अन्न देनेवाले ( सु-पेशसा ) उत्तम रूपसे युक्त ( वरुणस्य धर्मेणा विष्कभिते ) ईश्वरकी पारकभितो रहनेवाले ( अजरे भूरि रेतसा ) नरारहित, तिल और उत्तम वीर्यसे सम्पन्न हैं ॥ ९ ॥

[ ३७९ ] हे इन्द्र ! ( उमे रोदसी ) सुलोक और पृथ्वीलोक इन दोनोंको ( यम् ) जो तू ( उपा इव ) उपाने समान रूपसे तेजसे ( आ पामाय ) अन्न देता है वेदे ( महीनां मग्राजं ) महान्मे भी महान् ( वर्षणीनां सग्राजं ) मधुपौर्मे सम्पन्न ( स्या इन्द्रं ) तुझ इन्द्रकी ( देवीं जनित्री ) देवमाता अदितिने ( अजीजनत् ) उत्पन्न किया, ( भ्राज नित्री अजीजनत् ) बन्धाण करनेवाली देवीने उत्पन्न किया ॥ १० ॥

( ३८० ) हे आदिमर्मा ! ( मग्निने ) अस्मिन्नीय इन्द्रकी ( पितुमन् वचः अ मर्चत ) हविष्याग्रसे वृषण रङ्गी करो, ( यः ) जिस इन्द्रने ( प्राजिघत्सा ) अजिघत्सी सम्पत्तिसे ( कृष्ण-गर्माः ) कृष्ण अगुस्ते गर्भवती स्त्रियोंके इच्छासे साथ ( निरहन्तु ) आनसे पार दिया, उम ( वज्र-दक्षिणं ) शक्ति हाथमें बज्र पारण करनेवाले ( मरुस्वन्तं ) मरुतीको तेजसे साथ करनेवाले ( वृषणं ) बम्बान् इन्द्रकी अवस्थायः ) अपने संरक्षणको इच्छा करनेवाले हम ( सख्याय हुवेम ) मित्रतासे सिद्ध बुझाते हैं ॥ ११ ॥

॥ यहाँ सखाइयों वज्र सम्पन्न हुआ ॥

[ २८ ] अष्टाविंशः स्कन्धः

[ ३८१ ] हे इन्द्र ! ( सोमेषु सुतेषु ) सोमरसोंकी जिघत्साके बाद ( वृषस्य दक्षस्य वृषे ) बहनेवाले ब्रह्मको प्रान्न करनेके लिए ( तन्तुं उक्थ्यं पुनीपे ) यत्न और साथ साथ भुनकर उम्मे तू पवित्र करना है, क्योंकि हे इन्द्र ! ( राः महान् हि ) बह तू महान् है ॥ १ ॥

३८२ तमु<sup>१२ ३१</sup> अमि<sup>२४</sup> प्र गायत पुरुहूतं<sup>३१ २ ३२</sup> पुरुहुतम् ।

इन्द्रं<sup>१ ३</sup> गीभिस्तपिपमा<sup>१ २ ३ १</sup> विवासत

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१५।१ )

३८३ तं ते<sup>१ ३</sup> मर्दं<sup>१ २</sup> गृणीमसि<sup>३ १ २ ३</sup> वृषणं<sup>१ २ ३</sup> पृषु सासहिम् ।

उ लोककृत्तुमद्रिवो<sup>१ २</sup> हरिभियम्

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१५।४ )

३८४ यत्सोममिन्द्र<sup>१ २</sup> विष्णवि<sup>१ २</sup> यद्वा<sup>१ २</sup> प त्रित आप्त्वं ।

यद्वा मरुत्सु मन्दसे<sup>१ २</sup> सभिन्दुभिः

॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१२।१६ )

३८५ यदु<sup>१ २</sup> मघोमोदिन्तरं<sup>१ २</sup> सिञ्चा<sup>१ २</sup> प्वषा<sup>१ २</sup> अन्धसः ।

एषा हि<sup>१ २</sup> वीरस्तवते<sup>१ २</sup> सदायुधः

॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१४।१६ )

३८६ यन्दुमिन्द्राय<sup>१ २</sup> सिञ्चत<sup>१ २</sup> पिपाति<sup>१ २</sup> सोम्यं<sup>१ २</sup> मधु ।

प्र राधांसि<sup>१ २</sup> चोदयते<sup>१ २</sup> महित्वना

॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१४।१७ )

३८७ एतौ निन्द्रं<sup>१ २</sup> स्तवाम<sup>१ २</sup> सखायः<sup>१ २</sup> स्तोम्यं<sup>१ २</sup> नरम् ।

कृष्टीर्षो<sup>१ २</sup> विषा<sup>१ २</sup> अन्धस्येक इव

॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१४।१९ )

। ३८२ ] हे स्तुति करनेवाले ! ( पुन-हुतं ) अनेकेंलि मुनाये जानेवाले ( पुन-स्तुतं ) और अनेकेंलि प्रशंसित होनेवाले ( तं उ अमि प्रगायत ) उस इन्द्रकी ही बार बार स्तुति करो, ( तविपं इन्द्रं ) महान् इत इन्द्रकी ( गीभिः आ यिवासत ) अनेकेंलि आराधना करो ॥ २ ॥

[ ३८३ ] हे ( आद्रि-या ) बलघाती इन्द्र ! ( ते ) तेरे ( तं ) उस ( वृषणं । बलवान् ( पृषु सासहिं ) संपादनमें शायकी हुरानेवाले ( लोक कृत्तुं ) मनुष्योंके लिए हितकर काम करनेवाले ( हरि-भियं उ ) पीछे जिसके पास शोनित होते हैं, ऐसे ( मर्दं ) सोमपातले उत्पन्नहुए इस उत्साहकी ( गृणीमसि ) हूय प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

[ ३८४ ] हे इन्द्र ! यद्यपि ( विष्णवि ) विष्णूके अनेकेंलि बाह होनेवाले यत्नमें ( यत् सोमं ) जो सोमरस तुने पिपा ( यद् वा ) अपना ( आप्ये यिते ) आप्य जितके यत्नमें ( यद्वा मरुत्सु ) अथवा मरुतोंके साथ अपना ( मन्दसे ) मन्द यत्नोंमें सोम पीकर आनन्दित होना है, तो भी तू ( यन्दुभिः स ) हमारे सोमरस पीकर प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

[ ३८५ ] हे ( अन्धस्यो ) अन्धबो ! ( मघोः अन्धसः ) पीछे सोमके इस ( मर्दि-तरं इत् ) मानव देनेवाले रसको ( आ सिञ्च ) इन्द्रकी वर्षण करो क्योंकि वह ( वीर सदा-युधः ) पराक्रमी और सदा बलवानेवाला इन्द्र ( पय हि स्ताजते ) ही स्तोत्र पढ़नेवालोंके द्वारा प्रशंसित होता है ॥ ५ ॥

[ ३८६ ] हे अश्विजो ! ( इन्द्राय इन्दुं सिञ्चत ) इन्द्रके लिए सोमरस दो, जवने बाह ( सोम्यं मधु पिपाति ) पीछा सोमरस बहुत पीता है, और यह अपनी ( महित्वना ) महत्तासे ( राधांसि प्र चोदयते ) धन देता है ॥ ६ ॥

[ ३८७ ] हे ! ( सखायः ) मित्रो ! ( तु यत् ) योीप्रभाजो, ( तं स्तोम्यं नरं स्तवाम ) उस प्रशस्तकीय नेता इन्द्रकी स्तुति करें, ( यः एकः इत् ) जो अकेला ॥ ( विषा-कृष्टीः अमि अद्रि ) एक शायनेवालोंकी हुराता है ॥ ७ ॥

३८८ इन्द्राय साम गायते विप्राय बृहते बृहत् ।

ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्पवे

॥ ८ ॥ ( ऋ ८।९।८। )

३८९ य एक इद्विदयते वसु मताय दाशुषे ।

इक्षानो अप्रतिष्कृत इन्द्रो अज्ज

॥ ९ ॥ ( ऋ १।८।७ )

३९० सखाय आ शिषामहे अश्वेन्द्राय वज्रिणे ।

स्तुप ऊ पु वो नृत्तमाय धृष्णवे

॥ १० ॥ ( ऋ ८।९।९। )

इति वसामो वज्रिण ॥ १० ॥ इति वसुर्वे सख ॥ ४ ॥ [ ३८० १०।३०।४।४।० ६२।१०॥ ]

इति वसुप्रापाठके द्वितीयोऽर्थः, वसुप्रापाठकस्य समाप्तः ॥

अथ पञ्चमः प्रापाठकः ।

[ १ ।

( १-८ ) १ प्रगाथो पीर काण्व, २ भरद्वाजो बहस्पत्यः, ३ नृमेय अयदगिरस, ४ पर्वत काण्व, ५ उ इतिमिदि काण्व, ६ विजयमना वेपथ्व, ८ कनिष्यो मेन्नावर्णि ॥ इन्द्र, ५, ७ आदित्या ॥ उज्जिक ८ विराडुज्जिह्व ॥

३९१ गुणे तदिन्द्र ते क्षम उपमां देवतातये ।

पद्मः स वृषमोजसा द्वावीपते

॥ १ ॥ ( ऋ ८।९।१।८ )

३९२ यस्म त्यच्छम्भर भदे दिवोदासाय रन्धयन् ।

अयः स सोम इन्द्र ते सुतः पिप

॥ २ ॥ ( ऋ ६।१।१। )

[ ३८८ ] हे उवगातामो ! ( विप्राय ) शमी ( बृहते ब्रह्मकृते ) महावस्तुति जिसके लिए की जाती है उसे ( विपश्चिते ) विज्ञान और ( पनस्पते ) स्तुतिके योग्य ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( बृहत् स्वाम मापत ) बहुत मानके सामना मान करते ॥ ८ ॥

[ ३८९ ] हे ( य एक इत् ) जो अमोला हो ( द्वाशुषे मताय ) बावगील वसुध्वने ( धस्तु विदयते ) वन देता ह ( अ-प्रतिष्कृत इन्द्र ) जिसका प्रतिकार कोई कर नहीं सकता, वृत्ता यह इन्द्र ( अज्ज ईदरान ) हे शिव ! शमीका स्वामी है ॥ ९ ॥

[ ३९० ] हे ( सखाय ) मित्रो ( शिषिणे ) अश्वपारी इन्द्रो ( अश्व व्याशिषामहे ) लोत्रोक्ति स्तुति करते हैं वसते हम आगोमाव मांगते ह ( य ) तुम सबके लिए ( नृत्तमाय धृष्णवे सुस्तुपे ) अथ बोर और ननुमोंका वराध करनेवाले इन्द्रको मैं स्तुति करता हूँ ॥ १० ॥

॥ यथा अट्टाहसया खड समाप्त हुआ ॥

[ १९ ] पक्षोत्तर्जिना खण्ड ।

[ ३९१ ] हे इन्द्र ! ( ते क्षम दाय ) उस तेरे साथध्वरो ( उपमा देवतातये गुणे ) वापने यतनें स्तुति करत है ( द्वावीपते ) इन्द्र ! तू ( ओजसा वृष दैमि ) अपने सामर्थ्यसे मुझको मारता ह ॥ १ ॥

[ ३९२ ] हे इन्द्र ! ( यस्म भदे ) जिस सोमरगको पीकर उसका श्राव होनेपर ( दिवोदासाय ) दिवोदासोंके लिए ( पद्मः शम्भर ) उस शम्भरगपुरको ( अरन्धयन् ) जानते मार जाना ( स अयं वत्त यह ) सोम ! सोम ( ते सुत ) तेरे लिए तय्यार किया ह उसे हूँ की ॥ २ ॥

३९३ <sup>१ २</sup> इन्द्र नो गधि <sup>३ १ २</sup> त्रिश्राजिदगोष ।

<sup>१ २ ३</sup> गिरिर्न <sup>३ १ २</sup> विश्वतः <sup>३ १ २</sup> पृथुः <sup>१ २ ३</sup> पतिर्दिनः ।

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।९।८।९ )

३९४ य इन्द्र सोमपातसो मदः श्विष्ठ चेतति ।

<sup>१ २ ३</sup> येना <sup>३ १ २</sup> हृत्सि <sup>३ १ २</sup> न्याश्चिण <sup>३ १ २</sup> तमीमहे

॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१।१।१ )

३९५ तुचे तुनाय वस्तु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।

<sup>१ २</sup> आदित्यासः <sup>३ १ २</sup> सुमहसः <sup>३ १ २</sup> कृपातन

॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१।८।८ )

३९६ चेत्या हि निर्रैतीनां वज्रहस्त परिवृजस् ।

<sup>१ २</sup> अहरहः <sup>३ १ २</sup> शुन्धुः <sup>३ १ २</sup> परिपदामिव

॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।२।४।२४ )

३९७ अपामीयामप सिधमप सेधत दुर्मतिम् ।

<sup>१ २</sup> आदिद्यासो <sup>३ १ २</sup> धुयंतना <sup>३ १ २</sup> नो अहसः

॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१।८।१० )

३९८ पिषा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा ये ते सुपात्र हर्षमाद्रिः ।

<sup>१ २ ३</sup> सातुमोहम्या <sup>१ २ ३</sup> सुयतो नावां

॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।२।१।१ )

इति प्रथमा वसति ॥ १ ॥ पञ्चमः खण्ड ॥ ५॥ इत्युक्त्वित् । खं ५ । उं २ । धां ९१ । क ॥ ]

[ ३९३ ] ( गधि ) हे तबके गधि । ( त्रिश्राजित् ) एक ताव अनुभोको जीतनेवाले ( अ-गोह्य ) किसीसे न हारनेवाले इन्द्र । ( गिरिः न ) पर्वतके समान । ( विश्वतः पृथु ) बाएँ ओरसे विशाल । ( त्रिषः पतिः ) धुकोकना स्वामी । ( नः आगहि ) हमारे बात आ ॥ ३ ॥

[ ३९४ ] हे इन्द्र । ( यः सोमपा-तमः ) तू अत्यधिक सोम पीनेवाला और ( श्विष्ठः ) बलवान् है, वह तेरा ( यः मदः ) उल्लास तुझे ( चेतति ) जगाता है, ( येन ) जिस उल्लाहते ( अचिषे नि हंसि ) काज राक्षसोंको मारता है, ( से ईमहे ) उस तेरी हम शर्पता करते हैं ॥ ४ ॥

[ ३९५ ] हे ( सुमहसः आदित्यासः ) महान् आविर्भाव । ( नः तुचे ) हमारे पुत्रोंके और ( तुनाय ) पीनेके ( जीवसे ) दीर्घजीवनके लिए । ( तत् द्राघीय आयुः ) यह दीर्घ आयु प्राप्त हो, ऐसा ( तु कृपातन ) करो ॥ ५ ॥

[ ३९६ ] हे ( वज्र-हस्त ) हाथमें बल धारण करनेवाले इन्द्र ! ( निर्रैतीनां परिवृजन्ते ) विघ्न करनेवालोंको दूर करनेवाला मैं तू । ( चेत्या हि ) जानता हो है, इसलिये ( अहः अहः शुन्धुः ) प्रतिदिन स्वर्गकी शृङ्खलनेवाला मनुष्य जिस प्रकार ( परि-पदां हन् ) आपसियोंको-दोषादिकोंको-दूर करता है, उसी प्रकार तू विपत्तियोंको दूर करता है ॥ ६ ॥

[ ३९७ ] हे ( आदित्यासः ) आविर्भाव । ( अमीवां अप सेधत ) हमारे रोगोंको दूर करो, ( सिधे अप ) मनुष्योंको दूर करो, ( दुर्मतिं अप ) बुद्धयुक्तिके दूर करो, और ( नः अहसः सुपात्रन ) हमें शर्पति दूर रखो ॥ ७ ॥

[ ३९८ ] हे इन्द्र । ( सोम गिष ) सोमरस को, ये सोमरस ( त्या मन्दतु ) तुझे आनन्दित करो, हे ( हरि-मय ) पीने पासमें रखनेवाले इन्द्र । ( ते सोतुः ) तेरे लिए सोमरस निकालनेवालेका ( याहुम्यां अयां न सुयतः ) रस्सीसे पीने सामान अच्छी तरह रक्का हुआ ( अये आद्रिः ) यह पत्थर तेरे लिए ( सुपात्र ) सोमरस निजाता है ॥ ८ ॥

॥ यहाँ उन्तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

( १-१० ) सोमरि-वत्सवः ७, ८ नुमेव आविरस ॥ इन्द्र, ३, ६ भवत ॥ ककुम् ॥

३९९ अध्रातृणो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुपा सनादसि । शुभदापित्वमिच्छते ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१।१२ )

४०० यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तस्य व स्तुपे । सप्तम इन्द्रमृतपे ॥ २ ॥

( ऋ. ८।१।१९ )

४०१ आ गन्ता मा रिपण्यत प्रस्थावानो माप स्यात समन्यवः । दृढा विधमयिष्णवः ॥ ३ ॥

( ऋ. ८।१।०१ )

४०२ आ पाशयमिन्द्रवेऽश्वपते गोपते उर्वरापते । सोमस्य सोमपते पिब ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१।१३ )

४०३ स्वयो ह स्विद्युजा वषे प्रति श्वसन्ते घृषम भुवीमहि । सधस्य जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥

( ऋ. ८।१।११ )

४०४ गोवधिद्धा समन्यवः सजात्येन भरुतः सन्यवः । रिहते ककुमो मिधः ॥ ६ ॥

( ऋ. ८।१।०१ )

[ ३० ] शिवाः खण्डः ।

[ ३९९ ] हे इन्द्र ! ( त्वं जनुपा अध्रातृण्यः ) तू जन्मसे ही अनुदहित है, ( अ-ना ) तुझपर शासन करनेवाला कोई नहीं है, ( सनात् अनापिः ) तबसे ही भाईरहित है, ( युधा हस् ) मुझसे मैं ( आपित्व इच्छसे ) भाइयोंको पानेकी इच्छा करता हूँ, भवत ही ऐसी इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥

१ अध्रातृण्य — भाइयोंके संगदेते युक्त ।

२ अनापिः — अकेला, जिसकी सहायताके लिए कोई भी भाई नहीं है ।

[ ४०० ] हे ( सप्तमः ) मित्रों ! ( य ) जिस इन्द्रने ( पुरा ) पहले ( इदं वस्यः ) वह यम ( नः प्र आनिनाय ) हमें दिया, ( तं उ इन्द्र ) उसी इन्द्रकी ( यः उतये स्तुपे ) तुम्हारे सरक्षणके लिए मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ ४०१ ] हे ( प्रस्थावानः ) गतिवान् बन्तों ! ( आगन्त ) हमारे पास आओ, ( मा रिपण्यत ) हमें हाथ मत पहुँचाओ, ( स-मन्यवः ) हे उत्तमो वीरो ! ( दृढा विध् यमयिष्णवः ) बलवान् शत्रुओंसे भी सपानेवाले बन्तों ! ( मा अपस्थात ) हमसे दूर मत रहो ॥ ३ ॥

[ ४०२ ] हे ( अश्व-पते ) घोड़ेके स्वामी ! ( गो-पते ) गीधोंके स्वामी ! और हे ( उर्वरा-पते ) भूमिके पालक इन्द्र ! ( इन्द्र्ये ) सोमरस पीनेके लिए ( अयं ) यह सोमरस निकला है, ( आयुहहि ) आ और हे ( सोम-पते ) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! ( सोमं पिब ) सोमरस पी ॥ ४ ॥

४०३ ( घृषम ) बलवान् इन्द्र ! ( गोमतः जनस्य संस्थे ) गाव पालन करनेवाले लोगोंके समूहमें ( श्वसन्तं ) क्रूर कर्म करनेके कारण लम्बी लम्बी तास लेनेवाले जनुको ( त्वया युजा ) तेरी सहायतासे ( ह सिन्धु ) ही ( प्रति भुवीमहि ) भोग्य उत्तर देकर जसे हृदयों ॥ ५ ॥

[ ४०४ ] ( समन्यवः ) समान दीर्घिते उत्साहित बन्तों ! ( गायः चित् ह ) मैं गायें भी ( स-जात्येन सन्यधमः ) एक जातीय होनेके कारण परस्पर बहिनें हैं, मैं ( ककुमः ) जनेक विद्याओं में धूमती हुई ( मिध रिहते ) परस्पर एक दूसरेकी चाहती हूँ ॥ ६ ॥

१ गायः सजात्येन सन्यधमः ककुमः मिधः रिहते — गायें सजातीय होनेके कारण एक दूसरेकी बहिन हैं, ये नाता देशोंमें धूमती हुई परस्पर एक दूसरेकी चाहती हैं, उसी प्रकार मनुष्योंकी भी एक दूसरेमें प्रेम करना चाहिए ।

४०५ एवं न इन्द्रा भर औजो नृम्णश्चतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥  
( ऋ. ८।९।१० )

४०६ अथा दीन्द्र गिर्वेण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदव ग्मन्त उदमिः ॥ ८ ॥  
( ऋ. ८।९।१० )

४०७ सीदन्तस्ते ययो यथा गोभीते मघो मदिरे विवक्षणे । अमि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥  
( ऋ. ८।९।११ )

४०८ वपमु त्वामपूर्य स्थूरं न कश्चिद्भरन्तोऽवस्थवः । वाजि चित्रश्हवामहे ॥ १० ॥  
( ऋ. ८।९।११ )

इति द्वितीया दशति ॥ २ ॥ यज्यः सख्य ॥ ६ ॥ इति ककुभः ॥ [ स्व० २ । उ० २ । पर० ४१ । छ ॥ ]

[ ३ ]

( १-१० ) १-८ गीतमी ( सम्मदो वा ) राहुमण ; ९ भित्त. मान्य ( ऋ० कुत्त अगिरसो वा )

१० अवस्पुरायेव. ॥ इन्द्र ; ९ विश्वेदेवा., १० अरिबन्धो ॥ भित्त ।

४०९ स्वादोरिस्था विपुवयो मघोः पिपन्ति गौर्यः ।

या इन्द्रेण सपावरीवृष्या भदन्ति श्वाभवा वसोरिजु स्वराज्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१० )

[ ४०५ ] हे ( दास-प्रसते वि-चर्षणे इन्द्र ) संक्रांत कायं करनेवाले विशेष शानी इन्द्र ! ( त्वं नः ) तू हमें ( औजः नृम्ण ) बल और धन ( आ भर ) भरपूर दे । उसी प्रकार ( वृत्ता-उदं यीरे आ ) शत्रुतेनाशो करनेवाला चोर पुत्र भी दे ॥ ७ ॥

१ त्वं नः औजः नृम्णं पृतना-सहं यीरे आ भर—तू हमें सामर्थ्य, मानसिकबल और धातुतेनाशो करनेवाले बीरोका सामर्थ्य भरपूर दे ॥

[ ४०६ ] हे ( गिर्वेण इन्द्र ) स्तुत इन्द्र ! ( अथा हि त्वा ) अब हम तुमसे ( कामः ईमहे ) अपनी कामनाओंको पूर्णके लिए प्रार्थना करते हैं, और ( उप ससृग्महे ) तेरी मात्तो स्तुति करते हैं, जिस प्रकार ( उदा ग्मन्तः उदमिः इव ) पानी के जानेवाले मित्र मित्रताके कारण पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हम तुमसे मित्रता करते हैं ॥ ८ ॥

[ ४०७ ] हे इन्द्र ! ( गोभीते ) गाय दूधसे मिश्रित ( मदिरे विवक्षणे ) उत्तमाह बढानेवाले, प्रथम करनेवाले ( मे मघो ) तेरे लिए निकाले गए सोमरसके पास ( ययो यथा ) जिस प्रकार पत्नी इन्द्रदेव होती है, उसी प्रकार हम ( त्वामिन्द्रोनुमः ) मातर तुझे बचल करते हैं ॥ ९ ॥

[ ४०८ ] हे ( न-पूर्य वाजिन् ) अपूर्व, बढाको धारण करनेवाले इन्द्र ! ( त्वामिन्द्रोनुमः ) तुम ही ( चित्रं अरन्तः ) इस विशालण सोमरसको भरपूर देते हुए ( अवस्थवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम ( हवामहे ) तेरी प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार ( कश्चित् स्थूरं न ) किसी गुणसे महान् मनुष्यके पास दूसरे मनुष्य ज्ञाने हैं, उसी प्रकार हम तेरे पास आते हैं ॥ १० ॥

॥ यहां तीसरा दण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३१ ] एकविंशः खण्डः ।

[ ४०९ ] ( स्वादोः ) स्वादिष्ट ( इत्यम विपुवतः ) इस प्रकार सब बनोंमें होनेवाले इस मघोः ) मोटे सोमरसको ( गौर्यः पिपन्ति ) स्वेत बर्णकी घासे पीती हैं, ( याः ) जो घास ( वृष्या सपावरी ) भवतोपी बामना पूर्ण करनेवाले इन्द्रके साथ बचनेवाली ( भदन्ति ) अमनस्ते रहती हैं, और ( श्वाभवाः ) गुणोभित होती हैं, वे ( वसोरिजुः ) उत्तम रूप सेती हुई ( स्वराज्यं अजु ) स्वराज्यके अनुदल कार्यं करती हैं ॥ १ ॥

१३ ( छाप हिन्वी )

४१० इत्या हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।

अविष्ट वज्रिभोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमचैवतु स्वराज्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८०।१ )

४११ इन्द्रो मदाय वावृषे धनसे वृत्रहा नमिः ।

तमिन्महस्वाजिपूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र मोऽविपत् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८१।१ )

४१२ तुभ्यमिदद्रियोनुचं वज्रिन्वीर्यम् ।

यद्द त्वं मायिनं मृगं तव त्यन्मायबावधीरर्धेवतु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।८०।७ )

४१३ प्रेक्षमीहि धृष्णुहि न ते वज्रा नि यश्सते ।

इन्द्र नृम्णश्चि ते धनो हनो वृषं जया अपोऽर्धेवतु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८०।१२ )

४१४ यदुदीरव आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।

युहस्वा मद्वयुता हरी कश्हनः कं वसो दघोऽस्मान् इन्द्र वसो दधः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८१।१९ )

[ ४१० ] हे ( अविष्ट वज्रिन् ) बलवान् और वज्रधारी इन्द्र ! ( इत्या हि ) इस प्रकार ( सोमे मदः ) सोम-रसमें उस्ताह बढानेवाले गुण हैं, इसलिए उनके ( वर्धनं ब्रह्म चकार ) गुणवर्धन करनेवाले ये स्तौत्र बनाने हैं, ( स्वराज्यं अनु अर्चन् ) स्वराज्यकी लक्ष्य करके ( पृथिव्याः नि-हिं ) पृथिवीपर कम न होनेवाले शत्रु ( निः शशाः ) बिल्कुल गष्ट हो जायें, ऐसे करना चाहिए ॥ २ ॥

[ ४११ ] ( धृष-वा इन्द्रः ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रका यश ( मदाय वावृषे ) मानन्द और उस्ताहकी प्राप्ति करनेके लिए ( नृमिः वावृषे ) अनुम्येक द्वारा बढ़ाया जाता है, इस कारण ( ते नृमि इत् ) उस रक्षण करनेवाले इन्द्रकी ही हम ( महत्सु आतिषु ) महान् युद्धोंमें और ( अर्भे ) छोटे युद्धोंमें ( हवामहे ) मुक्तते हैं, ( सः वाजेषु नः प्राविपत् ) वह युद्धोंमें हमारा पराजय करे ॥ ३ ॥

[ ४१२ ] हे ( अद्रि-यः वज्रिन् इन्द्रः ) पर्वतपर रहनेवाले वज्रधारी इन्द्र ! ( तुभ्यं इत् वीर्यं अनुत् ) तेरा ही सामर्थ्य शत्रुओंसे पराजित नहीं हो पाता, ( यद्द ह ) जो निश्चयसे ( स्वराज्यं अर्चन् अनु ) स्वराज्यकी अर्चना करने-वालोंकी उपयोगी है ऐसे सामर्थ्यसे ( मायिनं मृगं त्वं ) कपटसे लखनेवाले, शोका करके मारने योग्य वृत्रको ही ( तव मायया अधधीः ) अपने छल और कपटके प्रयोगसे ही मारता है ॥ ४ ॥

[ ४१३ ] हे इन्द्र ! ( प्रेक्षि ) आगुपर धवाई कर ( अमीहि ) चारों ओरसे हमला कर, ( धृष्णुहि ) शत्रुओंका नाश कर ( ते वज्रा न नियसते ) तेरा वज्र कम क्षतिवाला नहीं है, ( ते शवः नृम्णः ) तेरा बल शत्रुओंको मारने-वाला है, ( हि स्व-राज्यं अनु अर्चन् ) स्वराज्यकी अर्चना अनुकूलतासे करते हुए ( वृत्र हवः ) वृत्रको मार ( अपः जयः ) और जलोको जीत ॥ ५ ॥

[ ४१४ ] ( यत् आजयः उदीरते ) जब युद्ध शुरू हो जाते हैं, उस समय ( धृष्णवे धनं धीयते ) शत्रुको जीतने वालीकी ही धन मिलते हैं, हे इन्द्र ! इस प्रकार युद्धके शुरू होनेपर ( अन्-व्युता हरी युहस्व ) मर चुकानेवाले अपने घोड़ोंकी रथमें जोर, ( कं हनः ) वृ किते मारे और ( कं वसो दधः ) किते घन हैं, यह तेरे अधीन है, इसलिए हे इन्द्र ! ( अस्मान् वसो दधः ) हमें यथोचित स्थापित कर, हमें बहुत सारा धन दे ॥ ६ ॥

२. यत् आजयः उदीरते धृषणवे धनं धीयते— जब युद्ध शुरू हो जाते हैं, तब शत्रुओंको परेति कुचलने-वालीकी ही धन मिलता है ।

४१५ अक्षजमीमदन्त इव प्रिया अधूपत ।

अस्तोपत स्वमानवो विप्रा नविष्टया मयी योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।८२।२ )

४१६ उपो पु शृणुही गिरो मधवन्मातथा इव ।

कदा नः क्षुतावतः कर इदमेषास इयोवा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।८२।१ )

४१७ चन्द्रमा अप्सवाऽश्नन्ता सुपर्णो धावते दिवि ।

न वो हिरण्यमेमयः पदं विन्दन्ति विष्टुतो विषं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।९०।१ )

४१८ प्रति प्रियतमं रथं पुष्पणं वसुधाहनम् ।

स्तोता वामघ्निनाकृमि स्तामेभिर्भूयति प्रति माघ्नी मम श्रुतं हवम् ॥ १० ॥ ( ऋ. १।९१।१ )

इति तृतीया वसतिः ॥ ३ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ ख० १३ । उ० ५ । पा० ७५ । वृ० ]

[ ४ ]

( १-८ ) १, ७ वसुधुत आश्रयः; २, ४ विमल योगः ( ख० प्राणापलो वा, वसुहृदा वासुक् ) ; ३ सत्यधवा माश्रयः;

५, ९ गीतनी राहमणः; ८ अंशोपवायवेत्याः ( ख० कुरुसप्तद्विषः वसुधुर्विषः ) ॥ अग्निः; ९ उषाः;

४ सौमः; ५, ९ इन्द्रः; ८ विरयेदेवाः ॥ पवित्रः; ८ वृहती ॥

४१९ आ ते अम इधीमहि धुमन्त देवानाम् ।

यद्वा स्या ते पनीयसी समिदीदयति घवीप५ स्तोमस्य आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९।४ )

[ ४१५ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! यजमानो ( अक्षन् ) अन्न का लिया और ( हि अमीमदन्त ) ये सुप्त हो गए ( प्रियाः अथ अधूपत ) मानभित होकर जहाँने अपने लिए आनन्दते हिलाये, उसके बाद ( स्त-मानवाः विप्राः । स्वयं तेजस्वी वीक्षनेवाले उन बाहुरंगीने ( मविष्टया मयी अस्तोपत ) नवीन स्तोत्रोत्ति स्तुति की, अब वृ इस घासमें घासने लिए ( ते हरी सु योज ) अपने घोड़े जोड़ ॥ ७ ॥

[ ४१६ ] ( मधवन् इन्द्र ) हे धनवान् इन्द्र ! ( गिरः उप उ सु शृणुहि ) हमारे स्तोत्र पात आकर धुन, ( म-तथा इव मा ) पहलेके विपद व्यवहार मत कर, ( नः क्षुतावतः कदा करः ) हमें सत्यभाषण करनेवाला बच कराता ? वृ ( अर्यपासे इत् ) हमारी स्तुति जाननेकी इच्छा करता है, इसलिये ( ते हरी नु योज ) वृ अपने घोड़े जोड़ ॥ ८ ॥

[ ४१७ ] ( मन्तु अन्तः ) अन्तरिक्षमें रहनेवाला ( सु-पर्णो चन्द्रमाः ) उत्तम किरणोंवाला चन्द्रमा ( दिवि आधावते ) आकाशमें बीछता है, ( हिरण्यमेमयः विष्टुतः ) हे सोनेके समान वषकनेवाले विमलरूपी तेजो ! ( यः पदं ) तुम्हारे चरणरूपी किरणोंकी गैरी इन्द्रिय ( न विन्दन्ति ) नहीं पा सकी, हे ( रोदसी ) धावसुनिषी ! ( मे अस्म्य विषं ) मेरी इस स्तुतिसे तुम जानो ॥ ९ ॥

[ ४१८ ] हे ( अग्निवनी ) अग्निनी देवी ! ( यां प्रियतमं ) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय, ( पुष्पणं वसु-धाहनं ) मजदत और धनकी ओवर से आनेवाले, ( रथं ) रथको ( स्तोता ऋषिः ) स्तुति करनेवाला ऋषि ( स्तामेभिः प्रति मृषति ) स्तोत्रोंसे मुनीभित करता है, हे ( माघ्नी ) मनुष्यवासी आननेवाले अग्निनीकुमारो ! ( मम हव्यं श्रुतं ) मेरी प्राप्तिना मुने ॥ १० ॥

॥ यहाँ इधनीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३२ ] द्वारिषाः खण्डः ।

[ ४१९ ] हे ( अग्ने देव ) अग्निदेव ! ( धुमन्तं अजरं ते ) तेजस्वी और बुझाते रहित तुम ( या इधीमहि ) हम सज्जते हैं, ( यद्वा ह । निवचयते । ते स्या पनीयसी समिद् ) तेरी यह प्रयत्नसे ज्योति ( घवि दीदयति ) घुलीनेमें चमकती है, ( स्तोमस्य हव्यं आ भर ) वृ स्तोत्राभीको अन्न भरपूर है ॥ १ ॥

- ४२० आग्निं न स्ववृत्तिमिहोतारं त्वा वृणीमहे ।  
 और पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।२।१ )
- ४२१ महे नो अद्य बोधयोपो राये दिवित्मती ।  
 यथा चित्रो अबोधयः सत्यश्रवासि वाय्ये सुजाते अमघ्नृते ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।२।१ )
- ४२२ मद्रं नो अपि वातय मनो दक्षगुप्त क्रतुम् ।  
 अथा ते सत्ये अन्वसो वि वो मदे रणा भावो न यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।२।१ )
- ४२३ क्रत्वा महाऽनुप्यधं भीम आ वायुते श्वः ।  
 श्रिय ऋध्य उपाकृषोनि शिप्रो हरिषां दधे हस्तपोर्वजपायसम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।२।१ )
- ४२४ स धा सं वृषणऽरथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।  
 यः पात्रं हारिषोऽजने पूर्णमिन्द्र चिकेतति गोजा म्विन्द्र वे हरी ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।२।१ )

[ ४२० ] ( न ) इस समय ( सु-वृत्तिभिः ) उत्तम स्तुतिर्गोते ( होतारं ) हुबह करनेवाले ( धः यज्ञेषु ) पुण्डरे यगमें निमने लिए ( स्तीर्ण-बर्हिषं ) आतन फौलाये गये हैं, ऐसे ( वारं पावक-शोचिषं ) व्यापक, पवित्र करनेवाले तेजसे युक्त ( त्वा आग्निं ) तुम अग्नि ( वि-मदे आवृणीमहे ) विशेष आतन प्राप्त करनेके लिए हम आराधना करते हैं, ( विवक्षसे ) हूँ महान् है ॥ २ ॥

[ ४२१ ] ( उपाः ) हे उपादेवो ! ( अद्य ) अद्य ( दिवित्मती ) तू प्रकाशित होकर ( नः महे राये बोधय ) हमें धनसे प्राप्तिके लिए उसी प्रकार जगा, ( यथा चित्रो नः अबोधयः ) जैसे हमें पहले जगती थी, हे ( सुजाते ) उत्तम शीतिसे प्रकट हुई उबै ! ( अमघ्न-सुनृते ) हे सत्यप्रिय उबै ! ( वाय्ये सत्यश्रवासि ) मैं अथवा तुम सत्यधवा मैं अतः सुश्रवण कृपा कर ॥ ३ ॥

[ ४२२ ] हे भीम ! ( विवक्षसे ) महान् होनेके लिए ( अन्वसः विमदे ) सोमरसके आतनमें ( नः मतः ) हमारा मत ( दक्षं उत क्रतु ) बलकी, कर्म करनेकी तथा ( मद्रं वातय ) कल्याण करनेकी शक्ति प्राप्त करे ऐसे मेरणा कर ( अथा ते सत्ये ) और तेरी मित्रता प्राप्त हो, ऐसा कर, ( यन्मसे रणाः भावः न ) जिस प्रकार पासकी सुन्दर धारें प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार हम तेरी मित्रताकी प्राप्त हो ॥ ४ ॥

[ ४२३ ] ( क्रत्वा ) सम्पन्नके ( महान् भीमः ) बहुत अथवा इन्द्र ( अनु-प्यधं श्वः आ वायुते ) सोमरस पीकर अपना बल बढाता है, उसके बाद ( क्रतुः ) सुन्दर, ( शिप्रो ) उत्तम शिरस्त्राय धारण करनेवाला और हरि-यान् ) रथमें घोड़े जोड़नेवाला वह ( उपाकृषो हस्तयोः ) बांधे हाथमें ( आयत्वं यज्ञं ) फौलादेते बने यज्ञकी ( श्रिये निदधे ) शोभाके लिए धारण करता है ॥ ५ ॥

[ ४२४ ] ( यः ) जो रथ ( हारिषो-योजने पूर्णं पात्रं ) खोल और सोमसे भरे हुए पात्र धारण करता है, ऐसे ( वृषणं गोविदं रथं ) बलवान् और मायकी प्राप्त करनेवाले रथपर ( स धा ) वह इन्द्र ( अधि तिष्ठाति ) चढकर बैठता है, तथा ( सं चिकेतति ) उस रथको आवाता है । इसलिये हे इन्द्र ! ( ते हरी नु योज ) अपने घोड़े रथमें नु योज ॥ ६ ॥

४२५ अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमर्चन्त आशवाऽस्तं नित्यासो वाजिन इव स्तोत्रम् आ मेर ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।१।१ )

४२६ न तमश्नो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।

सजोषसो यमयेमा मित्रो नयति चरुणो अति द्विषः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।१।२६।१ )

इति चतुर्थो वसतिः ॥ ४ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० ७ । उ० ३ । पा० ५७ । जे ॥ ]

इति पञ्चमः ॥

[ ५ ]

( १-१० ) ऋण प्रतदस्युः ( १, २-५, १० अन्वेषो विण्वा ऐश्वरा ; २, ६ प्रवृत्तत्वेवृण, प्रमदस्यु पौष्टकस्य )

७ बलिष्ठो मैत्रावरुणिः ८ यामवेको गीतकः ॥ यवमानः सोमः ९ मरुतः ८ अग्निः, ९ वाजिनः ॥

द्विषसा पिताद् ८ पवयतिः ९ दुरजगित्, २, ६ त्रिषदा अनुष्टुप्त्रिषोक्तिकामध्या ॥

४२७ परि प्र घन्वेन्द्राय सोम स्वादुमित्राय पूर्णे भगाय ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०९।१ )

४२८ पयं पु प्र वन्य वाजसातये परि वृथाणि सक्षणिः ।

द्विपस्तरुष्या ऋणया न ईरसे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।०९।१ )

४२९ पवस्व सोम महान्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१०९।४ )

[ ४२५ ] ( यः ससुः अस्तं ) जो पशुको अग्नि भरने हे, ( यं घेतः यन्ति ) जिस अग्निके पास गाये जाती हे, ( अस्तं आश्वः अर्चयन्तः ) जिस वक्ते घरकी ओर बैगवान् पीढे जाते हे, ( अस्तं नित्यासः वाजिनः ) जिस घनस्पावकी ओर अश्वको पासमें रखनेवाले घनमान जाने हे, ( त आग्निं मन्ये ) उस अग्निको मे स्तुति करता हूँ, [ ( स्तोत्रम् यः एवं आ मेर ) स्तोताओंके लिए भरपूर अन्न दे ॥ ७ ॥ ]

[ ४२६ ] ( देवासः ) हे देवो ! ( स-जोषसः ) एक विपारते रहनेवाले ( अर्चयमा, मित्रः, चरुणः ) अर्चना, मित्र और चरण ( अति-द्विषः ) प्रभुने दूर करने ( ये नयति ) जिसको उन्नतिके ओर ॥ जाते हे, ( तं मर्त्यं ) उस मनुष्यको ( अष्टः न ) पाप नहीं समता और ( दुरितं न अष्ट ) दुर्गति उसे दूरीतक नहीं ॥ ८ ॥

॥ यहाँ वसीसयां पाण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३३ ] अथस्त्रिंशः खण्डः ।

[ ४२७ ] हे सोम ! ( स्वादुः ) स्वादिष्ट तु ( इन्द्राय मित्राय पूर्णे ) इन्द्र, मित्र और पुराके लिए और ( भगाय ) भगते लिए ( परि प्र घन्व ) वर्तनमें बरा रह ॥ १ ॥

[ ४२८ ] हे सोम ! तु ( वाज-सातये ) पशुको प्राप्तिके लिए ( सु परि प्रघन्व ) उत्तम रीतिसे वर्तनमें भरा रह, ( सक्षणिः वृथाणि परि ) सामर्थ्यवान् हीरक तु समुद्र हमला कर, ( नः ऋणया ) हमारे ऋणोंको नष्ट करनेवाला ॥ ( द्विषः तरुष्ये ) दानुमें धार होनेके लिए ( ईरसे ) उन दानुओंपर पड़ाई करनेके लिए जाता हे ॥ २ ॥

[ ४२९ ] हे सोम ! ( महान् समुद्रः ) महान् समुद्रके समान ( पिता ) प्रार्थन करनेवाला तु ( देवानां विश्वा धाम ) देवोंके सब स्थानोंमें-पानोंमें-( आभि पवस्व ) भरा रह ॥ ३ ॥

४३० पयस्व सोम महे दक्षायामो न निक्तो वाजी वनाय ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१० )

४३१ इन्दुः पविष्ट चारुमदायापामुपस्थे कविर्ममाय ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०९।११ )

४३२ अनु हि त्वा सुतः सोम मदामसि महे समयराज्ये ।  
वाजाः अभि पवमान ॥ माहते ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।११।१२ )

४३३ क ई व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मया अथा स्वभ्याः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ७।९६।१ )

४३४ अमे तमघासं न स्तोमैः कर्तुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।  
शृण्वामा त अहैः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ४।१०।१ )

४३५ आभिर्मया आ वाजं वाजिनो अगमं देवस्य सवितुः सवम् । स्वर्गाश्च ध्रुवन्तो जयत ॥ ९ ॥

४३६ पयस्व सोम धुम्नी हुधारी महाः अवीनामनुपूर्वैः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।१०९।१० )

इति पञ्चमी वसतिः ॥ ५ ॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ एव० ८।३० २।५ ३५।६ ॥ ]

इति पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

[ ४३० ] हे सोम । ( अथः न ) घोड़ेके समान ( निक्तः ) पानीसे साक किया हुआ ( वाजी ) बल बढ़ानेवाला तू ( महे दक्षाय ) महान् बल और ( वनाय ) वनको प्राप्तिके लिए ( पयस्व ) बर्तनमें भरा रह । ॥ ४ ॥

[ ४३१ ] ( चारुः कविः ) सुन्दर जानी ( इन्दुः ) यह सोम ( अपां उपस्थे ) पानीके पास ( भगाय मदाय ) ऐश्वर्ययुक्त आनन्दके लिए ( पविष्ट ) पहुँचता है, पानीमें मिलाया जाता है ॥ ५ ॥

[ ४३२ ] हे सोम । ( सुतः त्वा ) रत्न निकालनेके बाद तेरी ( अनु मदामसि हि ) हम उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं । हे ( पवमान ) पवित्र सोम । ( महे समय-राज्ये ) महान् श्रेष्ठ राजकी संरक्षणके लिए ( वाजान् अभि प्रवाहसे ) अपने बलसे युक्त होकर दामुतेनागर तू हमला करनेके लिए जाता है ॥ ६ ॥

[ ४३३ ] ( व्यक्ता नरः ) हे प्रसिद्ध नेताओ । ( स-नीडाः मयाः ) एक घरमें रहनेवाले ( अथा स्वभ्याः ) उत्तम घोड़े पासमें रहनेवाले मस्तू ( ईं रुद्रस्य के ) इस घरके गौन लगते हैं ? ॥ ७ ॥

और भद्राण इस घरके पुत्र हैं ।

[ ४३४ ] हे अमे । ( अय ) आज हम इत बलके अहिबन्ध ( अहैः स्तोमैः ) अथवा नाशक स्तोमोंसे ( अगमं न ) घोड़ेके समान और ( कर्तुं न ) वास्तविक समान ( भद्रं हृदि-स्पृशु ) कल्याण करनेवाले और हृदयको छूनेवाले अर्थात् अत्यन्त मिय ( ते शृण्वामा ) तेरे घरको बढानेवासी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

१ अर्थ न— जैसे घोडा यज्ञस्थानको पहुँचता है उसी प्रकार तू उन्नतिके स्थानपर पहुँचता है ।

२ अर्थात् न— वास्तव्य जैसे उपकार करते हैं, उसी प्रकार तू उपकार करता है ।

[ ४३५ ] ( मयाः ) मनुष्योंना हित करनेवाले तथा ( आभिः वाजिनः ) प्रपन्नित हुए इस बलवान् वेशतान् ( सवितुः सचं यानं ) सवितादेवके लिए तैयार किए गए सोमरसहवी अन्नको ( अगमं ) प्राप्त किया है, इसलिये है यजमानों । तुम ( सवम् ) स्वयंको और ( ध्रुवन्तो जयत ) धोड़ीको विजयके लिए प्राप्त करो ॥ ९ ॥

[ ४३६ ] हे सोम । तू ( धुम्नी ) तेजस्वी, ( हु-धारी ) उत्तम प्रकारसे पार भँसकर बर्तनमें गिरनेवाला, ( अनु-पूर्वः महान् ) पहलेके समान ही महान् रहनेवाला है, अतः तू ( अवीनां अनु पयस्व ) रत्ने भालेवाले बर्तनमें ठीक प्रकारसे भर आ । बर्तनमें सोमरस भरा जाता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ तैत्तिरीयों खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) तस्यत्सुः ॥ संवत् अंगिरसः ॥ इन्द्रः ॥ १ विष्नेवेवाः ॥ ७ उपाः ॥

द्विषदा विराट् ॥

- ४३७ <sup>१२ ३ ४ १ २ ३ ३ १ २</sup> विंशतोदायन्विषतो न आ भर य स्वा श्विष्टमीमहे ॥ १ ॥
- ४३८ <sup>३ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २</sup> एष ब्रह्मा य अस्त्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ २ ॥
- ४३९ <sup>३ १ ३ १ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्षयन्महे हन्तवा उ ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।३।१४ )
- ४४० <sup>१ २ ३ १ ३ १ ३ १ ३ १ २</sup> अनवस्ते रयमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूतं घुमन्तम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।३।१४ )
- ४४१ <sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> शी पदं मघं रयीणि न काममब्रवो हिनोति न स्पृशन्नयिम् ॥ ५ ॥
- ४४२ <sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> सदा गावः शुक्लो विशधापसः सदा देवा अरेपसः ॥ ६ ॥
- ४४३ <sup>१ १ ३ १ ३ १ ३ १ ३ १ ३ १ ३ १</sup> आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तन्ति यदूर्ध्वमिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।३।७९।१ )

[ ३४ ] चतुस्त्रिंशः खण्डः ।

[ ४३७ ] हे ( विंशतो दायन् ) तब तरफते तन्मूर्खों के नष्ट करनेवाले इन्द्र ! ( विंशतः नः आ भर ) दू तब धोरते हमें इच्छित मन भरकर दे; ( यं श्विष्टं स्वा ईमहे ) जिस अत्यन्त बसबात् तेरी हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ४३८ ] ( अस्त्वियः यः इन्द्रः ) त्वत्सुओं अनुसार काम करनेवाला जो यह इन्द्र ( नाम श्रुतः ) गानसे प्रसिद्ध है, ( एषः ब्रह्मा ) यह बहुत शान्ति है, उसकी मैं ( गृणे ) स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ ४३९ ] ( अहये हन्तयं ) अहि अनुरकी मारनेके लिए ( अर्कैः महयन्तः ब्रह्माणः ) स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले शान्ति ( इन्द्रं अवर्षयन् ) इन्द्रके पक्षोंसे बघाते हैं ॥ ३ ॥

[ ४४० ] हे इन्द्र ! ( अनवः ) तन्मूर्खोंकी शत्रु देवतामीने ( ते अभ्यायः ) तेरे पक्षोंके लिए ( रथं तक्षुः ) रथ तैयार किया, हे ( पुरु-हूत ) अनेकोंसे बुराये जानेवाले इन्द्र ! ( त्वष्टा ) त्वष्टाके ( घुमन्तं वज्रं ) तेजस्वी वज्रको तेरे लिए बनाया ॥ ४ ॥

१ अनयः अभ्याय रथं तक्षुः— तन्मूर्खोंकी शत्रुदेवता या कारीगरोंके इन्द्रके धोरतेके लिए उत्तम रथ तैयार किया ।

२ त्वष्टा घुमन्तं वज्रं— त्वष्टाके तेजस्वी वज्र बनाया ।

[ ४४१ ] ( रयीणिः ) वनको अर्पण करनेवाले यात्रक लोग ( शी पदं मघं ) शुक्ल, उत्तम रथान और घन प्राप्त करते हैं; ( अ-ग्रतः ) पक्ष न करनेवाले, ( न हिनोति ) कुछ भी प्राप्त नहीं करता, और ( कामं रयिं न स्पृशत् ) अपने इच्छित मनको तो यह दूर भी नहीं सक्ता ॥ ५ ॥

१ रयीणिः शी पदं मघं— वनको देनेवाले यात्रक पानि, उत्तम रथान और घन प्राप्त करते हैं ।

२ अ-ग्रतः न हिनोति— जो वज्र आचरण नहीं करता, उसको कुछ भी नहीं मिलता ।

[ ४४२ ] ( गायः ) गायें ( सदा गृजयः ) हमेशा बुद्ध रहती हैं, ( विश्व-धापसः ) सभीका पोषण करनेवाली और ( सदा देवा अ-रेपसः ) हमेशा उग्रत और विघ्नाप रहती हैं ॥ ६ ॥

[ ४४३ ] हे उपे ! ( घनसा राह आयाहि ) इच्छित तेजसे साथ आ, ( यत् ऊर्ध्वमिः ) जो भरे हुए पक्षियों हैं, वे ( गायः ) गायें ( वर्तन्ति सचन्ते ) तेरे मार्गमें चलती हैं ॥ ७ ॥



४४४ उप प्रथे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं भीमहे त इन्द्र ॥ ८ ॥

४४५ अर्चन्त्यर्के मरुतः स्वर्का आ स्तोमति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ ९ ॥

४४६ म च इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गायं गायत यं जुजोषते ॥ १० ॥

इति षष्ठी वसतिः ॥ ६ ॥ दशमं लघः ॥ १० ॥ [ स्व० ७ । उ० २ । ध० ४२ । पठ ॥ ]

[ ७ ]

( १-१० ) १ पुष्यः काण्वः ; २, ३, ४ वयः सुवयः सुतवयुर्विप्रवयुश्च क्रमेण गोपावना लीपावना वा ; ५ संवत् आगिरतः ; ६ भुवन आपयः ; सावनी वा भीमनः ; ७ कषय ऐन्द्रः ; ८ भरद्वाजो बाहृत्पत्यः ; ९ आत्रेय ।  
१० वसिष्ठो मेधावर्जिः ॥ अग्निः ; ५ उपाः ; ६, ७, ९ विप्रदेवाः ; ३, ४, ८, १० इन्द्रः ॥

क्षिपदा विराट् ; १० एकपदा ॥

४४७ अर्चन्त्यग्निर्भक्तिर्हव्यवाद् न सुमद्रथः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।१६।१ )

४४८ अग्ने त्वं नो जन्तम उत त्राता शिवो भुवा वरुध्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२४।१ ; यजु. १।१५ )

४४९ भगो न विप्रो अमिर्महानो दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥

४५० विप्रस्य म स्तोम पुरो वा सन्वादि वेह नूनम् ॥ ४ ॥

[ ४४७ ] ( मधुमति प्रथे ) मधुरसते भरे हृष्ट धनधनें हविर्को रथकर ( ते क्षियन्तः ) तेरे पास रहनेवाले हम, हे इन्द्र ! ( रयिं पुष्येम ) धन प्राप्त करें, और तेरा ( भीमहे ) ध्यान करें ॥ ८ ॥

[ ४४५ ] ( स्वर्काः मरुतः ) उत्तम तेजस्वी मरुतगण ( अर्के अर्चन्ति ) पूजणीय इन्द्रकी पूजा करते हैं, ( स० ) यह ( युवा ) तव्य ( धृतः ) प्रसिद्ध ( इन्द्रः ) इन्द्र ( आ स्तोमति ) सब शत्रुओंको मारता है ॥ ९ ॥

१ युवा श्रुतः आ स्तोमति — तव्य प्रसिद्ध और सब शत्रुओंको मारता है ।

[ ४४६ ] हे तानी लीगो ! ( वृत्र-हन्तमाय विप्राय इन्द्राय ) वृत्रको मारनेमें निपुण, ज्ञानी इन्द्रके लिए ( गायं गायत ) स्तोमकी गान करो, ( यं जुजोषते ) जितरो वह ध्यानसे सुनता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ चोर्तासवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३५ ] पंचविंशः खण्डः ।

[ ४४७ ] ( हव्य-पाद ) हविर्को देवताके पास पहुचनेवाला, ( चिक्तिः ) विशेष बुद्धिमान् ( सुमद्रथ ) उत्तम हविसे जो भरा हुआ है, वह ( रथः न ) रथके समान इन्कितस्त्रानकी पहुचानेवाला ( अग्निः अजोति ) अग्नि सब जानता है ॥ १ ॥

[ ४४८ ] हे ( अग्ने ) अग्नि ! ( वरुध्यः ) सेवा करनेके योग्य ( त्वं ) तू ( नः जन्तमः ) हमारे समीप ( उत शिवाः वाता ) और कल्याण करनेवाला वरुधक ( भुवा ) हो गया है ॥ २ ॥

[ ४४९ ] ( महानो अग्नः न ) बड़ोंमें सूर्यके समान ( विप्रः अग्निः ) पूज्य अग्नि धाजकोंको ( रत्नं दधाति ) पद देता है ॥ ३ ॥

[ ४५० ] ( विप्रस्य अस्तोम ) यह सारे शत्रुओंका नाश करता है, ( यदि वा इह नूनं ) और इस यज्ञमें निःपणने यह ( पुरो वा सन्वादि ) पूर्ण रीतिसे विधात करता है ॥ ४ ॥

- ४५१ उषा अप स्वसुष्टमाः सं वर्तयति वर्तनि९ सुजातता ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।१०२।४ )
- ४५२ इमा नु के भुवना सीपथमन्द्रश्च विषे च देवाः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।१५७।१ )
- ४५३ वि सुतया यथा यथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ७ ॥
- ४५४ अया वाजं देवहित९ सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ६।१७।१५ )
- ४५५ ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिष कृणुही न इन्द्र ॥ ९ ॥
- ४५६ इन्द्रो विषस्य राजति ॥ १० ॥ ( वा. य. १६।८ )
- इति सप्तमी वसतिः ॥ ७ ॥ एकादश. खण्डः ॥ ११ ॥ । स्व० ५ । उ० ४ । पा० ४१ । ५ ॥ ]

[ ८ ]

( १-१० ) १, १० मूलमदः शौनकः; २ गौरागिरस्तः; ३, ५, ९ पदच्छेपो ईवीरस्तः; ४ ईमः कावयः;  
६ ययामरदात्रेयः; ७ अनातः पारच्छेभिः; ८ नकुतः ॥ १, ३, ५, १० इन्द्रः; २ सुषः; ५ विषदेवाः;  
६ मरुतः; ७ पथमानः सोमः; ८ सयिता; ९ अग्निः ॥ १, १० अष्टिः ( १० अतिग्रामरी वा ) ;  
३, ५, ७-९ अत्यष्टिः; १, ५, ९ अतिग्रामरी ( अष्टिर्वा ? ) ॥

- ४५७ प्रिक्रुकेषु महिषा यवाशिरं तुविशुम्स्तुम्पस्तोममपिवादिष्णुना सुवं ययानशम् ।  
स ई ममाद महि कर्म कथेय महाश्रुतः सैनसथदेवो देव९ सत्य इन्द्रः सत्यमिन्द्रम् ॥ ११ ॥  
( ऋ. २।२१।१ )

[ ४५१ ] ( उषाः ) उषा ( इयमुः तमः ) अपनी बहिन रात्रीके अन्वकारको ( अप सं वर्तयति ) नन्द करती है, और ( सु-जातता ) अपने उत्तम प्रकाशति ( वर्तनि ) अपने सार्वको प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

[ ४५२ ] ( इमा भुवना ) इन सब भुवनोंको ( नु के ) निदबधमे मुख प्राणिके लिए ( सीपथमे ) ई नियमोंमें बलाता है, ( इन्द्रः च विषदेवा च ) इन्द्र और सब अन्य देव इस कार्यमें मेरी सहायता करते हैं ॥ ६ ॥

[ ४५३ ] हे इन्द्र ! ( त्वय रातयः ) तुझसे मिलनेवाले रात ( यथा सुतया यथा ) बड़े राजमार्गमें जैसे हमारे छोटे-छोटे रातों मिल जाते हैं, उसी प्रकार ( वि यन्तु ) सबको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

[ ४५४ ] ( मया देवहितं यानं सनेम ) इस स्तुतिसे देवोंके द्वारा लिए गए अन्न यजुषा बल प्राप्त कर्के, और ( सु-वीराः शत-हिमाः मदेम ) उत्तम वीर पुत्रोंमें युक्त होकर सौ वर्षोंतक अभिन्वते रहें ॥ ८ ॥

॥ सु-वीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीर पुत्रोंमें युक्त होकर हम सौ वर्षोंतक अभिन्वते रहें ॥

[ ४५५ ] हे इन्द्र ! ( मित्र वरुण ) मित्र और वरुण देव ( ऊर्जाः इत्याः पिन्वते ) बल बढ़ातेवाले अन्न हमें देते हैं, पू ( नः इपं ) हमारे अन्नको ( पीवरीं कृणुहि ) और अधिक पुष्ट करनेवाला बना ॥ ९ ॥

॥ नः इपं पीवरीं कृणुहि— हमारे अन्नको अधिक पुष्ट करनेवाला बना ॥

[ ४५६ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( विषस्य राजति ) सब भुवनोंपर शासन करता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ पैंतीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १६ ] पदविशदः खण्डः ।

[ ४५७ ] ( महिषः तुवि-शुष्माः ) बलवान् और अत्यंत सामर्थ्यशाली ( सुषम् ) सुष्ट होनेवाले इन्द्र ( प्रिक्रुकेषु सुते ) सोम प्राप्तति रहें हुए सोमरसमें ( यवाशिरं ) जोषा अन्न विलम्बर ( सोमं ) उम मोषको ( यिष्णुना ) विष्णुके साथ ( यथा-युक्तं ) इष्टानुसार ( अपिवात् ) पिपा, ( सः ) उम मोषने ( महि कर्म कथेय ) महान् कर्म करनेके लिए ( महां उरं ई ) महान् श्रेष्ठ इन्द्रको ( ममाद ) उत्प्राहित रिपा, ( सत्यः इन्द्र देवः सः ) उत्तम, बहु मोक्षको प्रकाशकात् रत ( सत्यं यतं देवो इन्द्र ) उत्तम भुवनोंमें युक्त इस इन्द्र देवको ( सत्यम् ) प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥

१४ ( साम. द्विती )

४५८ अयं सहस्रमानयो दशः कवीनां मतिर्व्योतिर्विधर्मः ।

ब्रध्नः समीचीरुपसः समैरयदेवसः सचेतसः स्वसरे मनुयुमन्तश्चित्ता गोः ॥ २ ॥

४५९ एन्द्र याहुप नः परावतो नायमच्छा विद्यानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।

हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासां न पितर वाजसातये मरुद्भिर्वा वाजसातये ॥ ३ ॥  
( अ १११०१ )

४६० तमिन्द्र जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कृतं श्रवांस्ति भूरि ।

मरुद्भिरो गौर्मरा च याज्ञियो ववर्वा राये नो विस्मा सुपया कृणोतु यज्ञी ॥ ४ ॥  
( अ १११०११ )

४६१ अस्त औपद् पुरो अयि धिया दध आ नु त्यच्छर्वा दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।

यद् क्राणा विवस्यते नामा सन्दाय नव्यसे ।  
अथ प्र नूनमुप पन्ति धीतयो देवाऽअच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥ ( अ १११०११ )

[ ४५८ ] ( सहस्र-मानयः ) हमारी मनुष्योंका हित करनेवाला ( दश ) बर्तनीय ( कवीना मतिः ) बुद्धिमानों द्वारा सम्मानके योग्य ( विधर्म-व्योतिः ) विशेष धर्मसे युक्त और तेजस्वकल्प ( अयं ग्रन्थः ) यह ग्रन्थ ( समीचीन अ-रेपसः ) निर्मल और अप्रकाररहित ( सचेतसः उपसः ) तेजस्वी उपाओंको ( समैरयद् ) प्रेरित करता है, उसके धार ( स्वसरे ) विनम्र ( मनुयुमन्त ) तेजस्वी शोकनेवाले चन्द्र आदि ( गोः ) सूर्यके तेजके भाग्य ( चित्ता ) तेजरहित फीके हो जाते हैं ॥ २ ॥

[ ४५९ ] हे इन्द्र ! ( परावत न अच्युत उप आयाहि ) इन्द्रसे तु हमारे पास आ, ( अयं न ) जैसे प्रह आति ( सत्पति ) तत्पत्नीका पालन करनेवाला होकर ( विद्यानि द्य ) यज्ञमालसे आता है, और जैसे ( अस्ता सत्पतिः ) राजा द्य) वायुवर दात्र केनेवाला उत्तम वालक राजा अपने घर आता है, उसी प्रकार आः ( प्रयस्वन्तः सुतेषु त्वा हवामहे ) हमविषय लेकर हम सोमयज्ञमें तुम बुलाते हैं, ( पुत्रासः वाजसातये पितरं न ) पुत्र जैसे अन्न पालने लिए पितासे बुलाते हैं, और जैसे ( मरुद्भिर्वा वाजसातये ) महान् वीरको महामुद्रमें बुलाते हैं, उसी प्रकार हम तुम बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ४६० ] ( मघवान् ) यन्वान् ( उग्र ) वीर ( सत्रा भूरि श्रवांसि दधान ) एक साथ बहुता सब धारण करनेवाले तथा ( अ-प्रतिष्कृतं त इन्द्रं ) यद्यपि कभी भी परान्त न होनेवाले उस इन्द्रको ( जोहवीमि ) सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( मरुद्भिर्वा यज्ञियः ) वृष्य और यज्ञोंमें तत्पत्नीके योग्य इन्द्रको ( गौर्मि आ पयसे ) लोभिते स्तुति की जाती है, इस प्रकार ( यज्ञी ) यज्ञको धारण करनेवाला इन्द्र ( राये ) धनको प्राप्तिके लिए ( नः ) विश्वा सुपया एणोतु ) हमारे सब भाग्य सुधाम करे ॥ ४ ॥

[ ४६१ ] ( पुर अग्नि ) उत्तरवेदोंमें अग्निके ( धिया आदधे ) ज्ञानपूर्वक मने स्थापित किया, ( त्यद् दिव्यं शर्थः ) उस दिव्य वस्तुना अग्निके ( आ वृणीमहे ) हम आराधना करते हैं, ( इन्द्रवायू ) इन्द्र और वायुकी ( वृणीमहे ) हम प्रार्थना करते हैं, ( यत् ह ) जो ( वि-यस्यते नव्यसे ) यन्वान् और यज्ञोंमें यज्ञमानने ( नामा ) पत्नीपतिसे मुख्य स्थापन ( सन्दाय याणा ) एक अवह आकर मनोरथको पूरा करते हैं, ( औपद् अस्तु ) उन मनुष्योंका भरण होवे । ( अथ ) इसके बाद ( नः ) धीनिय- ) हमारी स्तुति ( प्र नून उपपन्ति ) निरुपयते तेरी ओर जाएंगे, ( देवान् अच्छा नः ) देवोंको और वरुणसे लिए हमारे ( धीतय- ) ये बर्तन चल रहे हैं ॥ ५ ॥

- ४६२ प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत ।  
 प्र शर्षाय प्र यज्यवे सुस्तादये तवसे मन्ददिष्टये धुनिव्रताय श्वसे ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८७। )
- ४६३ अया रुचा हरिण्या पुनानां विष्या द्वेपांसि तरति सयुग्मभिः सूरौ न सयुग्मभिः ।  
 धारा पृष्टस्य रोचते पुनानां अरुपा हरिः ।  
 विष्या यद्वृषा पौर्यास्यकभिः सप्तास्येमिक्रकभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।११। )
- ४६४ अमि त्वं देवत्सवितारमाण्योः कविक्रतुमचांमि सत्यसवत् रत्नचामभि मियं मसिम् ।  
 ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदियुतस्सवीमनि हिरण्यपाभिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ८ ॥  
 ( वाय ४।१९९ )

- ४६५ अग्निश्होतारं मय्ये दास्यन्तं वसाः सुनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।  
 य ऊर्ध्वा स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।  
 घृतस्य विभ्रादिमनु शुक्रशोचिप आजुह्वानस्य सविपः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१९७। )

[ ४६२ ] ( एवया मरुत् ) एवया मरुत् नामने ऋषिरे द्वारा अयली ( गिरिजाः मतयः ) वाणीसे की हुई स्तुतियां ( मरुत्वते विष्णवे ) मरुत्वते साथ पहननेवाले किलुको और ( महे यः प्रयन्तु ) बहान् तुल इन्को प्राप्त हो, उसी प्रकार ( प्र-यज्यवे ) विसौ यत् करनेवाले ( सु-स्तादये ) उत्तम आभूषण पहननेवाले ( तवसे ) बलवान् ( मन्ददिष्टये ) स्तुतिवपी यत् करनेवाले ( धुनि-व्रताय ) धनुको दूर करना जिनका ज्ञत है, ऐसे ( श्वसे शर्षाय ) उस उत्तिदायक मरुत्वते बलको ( प्र ) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

[ ४६३ ] ( पुनानः ) छानवीसे छानाजानेवाला सोमरस ( हरिण्या अया रुचा ) हरे श्वसे अपने इस तेजसे ( विष्या द्वेपांसि तरति ) सब धनुओंकी दूर करता है, ( सूरः सयुग्मभिः न ) सूर्य अपने निरपॉले जैसे भयकारको मन्द करता है, उत्तीप्रकार ( पृष्टस्य धारा रोचते ) उत्तम शीलनेवाले इस सोमरसकी धार बमरतों है, ( पुनानः हरिः अरुपः ) छानाजानेवाला हरे रुचा यह सोमरस बमरता है, ( यत् ) जो ( सप्तास्येमि अक्रभिः ) तेजसे सात मुर्कों तथा स्तोत्रों और ( अक्रभिः ) तेजोंसे ( विष्या रूपाणि परियासि ) अनेक रूप धारण करता है ॥ ७ ॥

[ ४६४ ] ( यस्य माः ) जिसका प्रकाश ( ऊर्ध्वा ओष्ण्योः अदियुतम् ) उच्चपतिते इन पृथिवी और धुलोके बीच फैलता है ऐसे उस ( कधि-यन्तुं ) ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाले ( सत्य-सवत् ) सत्यकी प्रेरणा देनेवाले ( रत्न-चां ) शीर्षक फैलता है ऐसे उस ( अमि-प्रियं ) अत्यन्त प्रिय ( मतिं त्वं सवितारं देवं ) बुद्धिमान् उस सवितारदेवकी ( अचीमि ) में आराधन देनेवाले ( अमि-प्रियं ) अत्यन्त प्रिय ( मतिं त्वं सवितारं देवं ) बुद्धिमान् उस सवितारदेवकी ( अचीमि ) में आराधन करता हूँ, ( सवीमनि अमतिः ) उत्पन्न होनेके बाद इसका प्रकाश फैलता है, ( सु-क्रतुः हिरण्य-पाणिः ) उत्तम धना करता हूँ, ( सवीमनि अमतिः ) उत्पन्न होनेके बाद इसका प्रकाश फैलता है, ( सु-क्रतुः हिरण्य-पाणिः ) उत्तम धन करनेवाला और सोनेके समान बमरनेवाला सवितार ( कृपा स्वः अमिमीत ) इसने अपना प्रकाश फैलता है ॥ ८ ॥

[ ४६५ ] ( होतारं ) जिसमें हवन किया जाता है, ऐसे ( दास्यन्तं ) पन देनेवाले ( यसोः सहस्रः ) निवातक बलसे ( सुनुं ) पुत्र अपना पात्र बजानेवाले, ( जात-वेदसं विप्रं न ) विद्वान् ब्राह्मणके समान ( जातवेदसं अग्नि मय्ये ) परम पुन्य अग्निवपी में स्तुति करता हूँ, ( यः देवः ) जो अग्निदेव ( सु-अध्वरः ) उत्तम धारावाले ( ऊर्ध्वा देवाच्या रुपाः ) उच्च वेधोंकी इया हो इस इच्छाने ( शुक्र-शोचिपः ) शुद्ध तेजस्वी ( आजुह्वानस्य ) जिससे हवन किया जाता है, ऐसे उत ( सविपः ) तुम्हारी योकी ( विभ्रादि ) आहुतिके स्वर प्रसन्न होता है ॥ ९ ॥

४६६ तव त्यक्त्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूज्यं दिवि प्रवाज्यं कृतम् ।

यो देवस्य शवसा प्राविणा असु रिणन्नपः ।

भुवा विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्ध्वं श्वत्क्रतुर्विदेद्विपम् ॥ १० ॥ ( ऋ २।२।४ )

इति मन्त्रो ब्रूयति ॥ ८ ॥ इत्येन्द्रा खण्ड ॥ २२ ॥ इत्येन्द्र पर्व काण्ड वा समाप्तम् ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### ऐन्द्रकाण्डे ।

आरण्य	११५-२४२	( ११८ )
तत्र १५५ ' पार्ष्णं ' इत्यनुष्टुप् ।		
बृहस्प	२३३-३१२	( ८० )
विश्वसु	३१३-३४१	( २९ )
तत्र ३२८ ' प्र सो ' इति त्रिपद्विराट् ।		
अनुष्टुभ	३४२-३६९	( २८ )
जगात्	३७०-३८०	( ११ )
तत्र ३७९ ' उमे यद्विन्द्रे ' महापङ्क्तिः ।		
उत्तिष्ठ	३८१-३९८	( १८ )
तत्र ३९८ ' पिये ' ति विराट् ।		

ककुभ	३९९-४०८	( १० )
पक्षतय	४०९-४२६	( १८ )
तत्र ४२६ ' नतमि ' सुप्राष्टाङ्गुलतो ।		
द्विपदा	४२७-४५५	( २५ )
[ ४२८, ४३२, ४३४, ४३५ अनुष्टुबादयत्तत्रैवोक्ता ]		
अत्यष्टय	४५६-४६६	( ११ )
तत्र ४५६ ' इन्द्रो विश्वस्ये ' त्येकपदा ।		

३५२

ऐन्द्रकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ३५२  
आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११४

सर्वयोगः ४६६

[ ४६६ ] हे ( नृत्त इन्द्र ) तवको अपनी इच्छासे चलावेवले इन्द्र ! ( नर्ये ) सब सन्तुष्टीका हित करनेवाले ( प्रथम पूज्यं ) सर्व प्रथम, मुख्य ( तव त्यक्त्य अपः ) तेरे वे कर्म ( दिवि प्रवाज्यं कृतम् ) द्युलोकमें प्रशंसनीय हुए हैं, यह मत यह है कि ( देवस्य भानु ) राजसर्पिक प्राणीकी तुम्हें ( शवसा रिणम् ) अपने बलसे मल्ट किया, और ( अपाः अरिणः ) सर्पोंको बहाया । उस तूने ( विश्व अदेव ) सब अणुओंकी ( ओजसा अभिभूय ) अपने बलसे हराया, इसलिये ( श्वत्क्रतुः ) संकरी कर्म करनेवाला इन्द्र ( ऊर्ध्वं श्वत्क्रतुर्विदेव ) अलनाम्न होवे और उसको हविष्यान्न प्राप्त होवे ॥ १० ॥

॥ यहाँ छत्तीसवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ ऐन्द्र काण्ड समाप्त ॥

## ऐन्द्र काण्ड

सामवेदेके इस ऐन्द्र काण्डमें ३५२ मन्त्र हैं, यह काण्ड यद्यपि " ऐन्द्र-काण्ड " के नामसे प्रसिद्ध है जो भी उगमें " अग्नि, भरतृ " आदि अन्य देवताओंके भी मन्त्र आये हैं । पर हम देवताओंकी तुलनामें स्पष्ट करेंगे । इस काण्डमें इन्द्र देवताके अतिब मन्त्र होनेके कारण इस काण्डका नाम " ऐन्द्र-काण्ड " रखा गया है । इसमें विशेषबलसे इन्द्रका ही वर्णन है, इसलिये पहले इन्द्रके सुबोधका अध्ययन

करके फिर बाहरमें यह देखेंगे, कि उन मन्त्रपत्रोंमें हमें क्या ज्ञाना मिलती है ।

### इन्द्रके गुण

यह इन्द्र भोगा दूर है, वेगम ही जानने भो है । इसने जान और गुणको प्रवृत्त करनेवाले में विशेषतः इस काण्डमें आये हैं—

१ युवा कविः ( ३५९ )—यह इन्द्र तपण कवि है, कविका अर्थ है, कान्तरसों, दूरसे ही देखनेवाला, दूरदर्शी, जानी ।

२ एयः प्रह्ला ( ४३८ )—यह जानी है, बहुतको जानने-वाला है ।

३ विप्रः ( ३८८ )—विशेष बुद्धिमान्, विशेष जानी ।

४ विपदिचक्षुः, घृहत् प्रह्लादुत् ( ३८८ )—जानी, बहुजानका प्रसार करनेवाला ।

५ ध्रुतः इन्द्रः ( ४४५ )—जानके लिए विशेष प्रसिद्ध ।

६ नाम ध्रुतः ( ४३८ )—नामसे ही जानी प्रसिद्ध ।

७ कश्यपः ( पश्यकः ) ( ३६१ )—दृष्ट, ठोकठोक स्थिति जाननेवाला ।

८ विश्वानि यिदुपे ( ३५२ )—सभी सामर्थ्यको जाननेवाला ।

९ यिद्वन्तु चित्राः ( ३४५ )—चित्राणीं विलक्षण, भेद्य जानी ।

१० वि-वेता. ( २६५ )—विशेष बुद्धिमान्, विचार करनेवाला ।

११ विश्वर्षणिः ( १९९ )—विशेष जानी ।

१२ मुनीनां सखा ( २७५ )—ऋषि-मुनियोंका मित्र, जनका हित करनेवाला ।

१३ देवस्य महिषा काव्यं पश्य ( ३२५ )—इस इन्द्रके महिषके काव्य देख ।

१४ कश्चित् दधृर न अघस्ययः त्वां वृणीमहे ( ४०८ )—जैसे मनुष्य विद्वान्के पास सलाह लेने और विचार करने जाते हैं, उसी प्रकार अपने सरसाणके लिए इन्द्रके पास हज जाते हैं ।

१५ सुरुप-हस्तुः ( १६० )—उत्तम मुखर टपकी इन्द्र बनाता है, वह उत्तम बारीबर है ।

१६ युवा ( १२७ )—वह बचपुत्रके समान उत्साही और विचार करनेवाला है ।

१७ सखा, मित्रः ( १२७ )—वह बराबरके मित्रके समान है ।

१८ विश्वः सखा ( १६९ )—वह विलक्षण और हित करनेवाला मित्र है ।

१९ पतिः ( २०५ )—उत्तम पालक, उत्तम अधिकारी, रक्षामी ।

२० स्रगपतिः ( १६८ )—सम्पन्नोत्तम उत्तम पालन करनेवाला है ।

२१ गोपति ( १६८ )—गर्वाका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाला है ।

२२ सत्यस्य सन्नु ( १६८ )—सत्यका प्रचारक है ।

२३ आध्वरः ( ४२३ )—महान्, सुन्दर है ।

२४ शिमी ( १४५ )—शिरपर शिरत्राण धारण करनेवाला है ।

२५ य अचरुषत् ( १९६ )—वह इन्द्र अपने हाथसे और चतुर्दशे तुम्हें अपने पास आकर्षित करता है ।

२६ चन्द्रः सदा उपो नु ( १९६ )—इन्द्र हमेशा पास ही रहता है। सबके पास नाकर निरीक्षण करता है ।

२७ एय मः ऊती ( २६० )—तू हमारा उत्तम सखक है ।

२८ इवे न. आपय. ( २६० )—तू हमारा मित्र है ।

२९ नः स्वधमादे भव ( २६० )—हमारे एव साथ बैठनेके स्थानपर आकर बैठ ।

३० न परा वृषक् ( २६० )—हमारा त्याग मत कर । इस प्रकार इन्द्रके सारी और आश्चर्य गुण सम्पन्नी विशेषण हैं, और उसके सार्वजनिक हित करणवाले गुण ये हैं—

१ सु-नीती ( १२७ )—इन्द्र उत्तम नीतिके मार्गसे चलनेवाला है, और लोगोंकी भी उत्तम नीतिसे चलता है ।

२ नय-अपस् ( १२५ )—सब लोगोंके हितकारी कार्य करनेवाला ।

३ यस्व मातुर्वं चाय न विश्वरन्ति ( ३७६ )—नित्ये सार्वजनिक हितके बापोंमें कोई भी रोग नहीं भटका सकता ।

४ चर्वणीसां सप्रद ( १४४ )—मनुष्योंका सप्रद ।

५ दात-क्रतुः ( ११६ )—संकल्प प्रसारने कार्य करने-वाला, संकल्प प्रसारकी बुद्धि और मुभितियोंवाला, जिसकी सहायतासे वह अन्धमें ही उत्तम हित कर सकता है ।

इन्द्रका बल

इन्द्र जेता विद्वान् है, वेसा ही वह यक्षवान् भी है—

१ सत्त्वा ( ११५ )—सत्यवान्, यत्नवान् ।

२ शास्त्रिन् ( ११५ )—शानिमान् ।

३ शस्त्रः ( १४० )—सामर्थ्यवान् ।

४ वृषन्तमः ( १४८ )—अत्यन्त सामर्थ्यवान्, सबसे बलवान् ।

५ वृषज, वृषा ( ११९ )-बलवान्, वर्षा गिरानेवाला ।

६ तुजि-म्रीपः ( १४२ ) मजबूत गर्दनवाला, अर्थात् उसका सिर नहीं कापता ।

७ मंहिष्ठः ( १४४ )-महान्, शक्तिसे महान् ।

८ इन्द्रः महान् परः ( १६६ )-इन्द्र महान् और थोड़ा है ।

९ धजिणे महत्यं अस्तु ( १६६ )-बलपातो इन्द्रका महत्व है ।

१० महा-वस्ती ( १६७ )-इन्द्रके हाथ मजबूत और शक्तिशाली ह ।

११ त्वत्तः उत्तर ज्यायान् न कि अस्ति ( २०३ )-मुझे अधिक बलवान् कोई दूसरा नहीं है ।

१२ यथा त्वं परं न कि ( २०३ )-जैसा तू है, वैसे दूसरा कोई नहीं है ।

१३ अग्नि-ओजाः ( ३५९ )-अपरिमित सामर्थ्यसे युक्त ।

१४ शची-पतिः ( २५३ )-शक्तिका स्वामी, सामर्थ्यवान् ।

१५ स्वयान् ( २५४ )-आत्मशक्तिते युक्त ।

१६ शयिष्ठः धृष्णः ( ३४७ )-सत्यवान् और शत्रुघ्न आक्रमण करनेवाला ।

१७ इन्द्रियं यथा आपूणकतु ( ३४७ )-इन्द्रियोंकी उत्तम शक्ति तेरे पास भरपूर है ।

१८ सहस्रः घटात् ओजसा अधिजातः ( १२० )-साहस्र, बल और सामर्थ्यके कारण जन्मते ही वह प्रसिद्ध है ।

१९ सद्यं ते यशो ( १२६ )-सब कुछ तेरे आयीन है ।

२० ऊनये तयस्तर इन्द्रं हयामहे ( १६३ )-अपने सरसपणे लिए हम महान् बलवान् इन्द्रको बुलाते हैं ।

२१ शयः प्रथिमा ( १६६ )-उसका बल बढ़ता ही रहता है ।

२२ यदा न अतिरिच्यते ( १९७ )-तेरी ओजा कोई भी अधिक बलवान् नहीं है ।

२३ चन्द्रोदीरः ( ३६० )-चन्द्र पुण्य जिसका हथेला चन्दन करते है ।

२४ चाजी पाजिनं द्वादशु- ( १९९ ) बलवान् इन्द्र हमें बल देवे, हमें बलवान् बने, हमें बलवान् कीरोकी सहायता प्राप्त हो ।

२५ मृशानि चिन्वा गीम्या आ अर ( २६२ ) सब सामर्थ्य हमें एक ही मगध प्राप्त हो ।

२६ मस्य नग् ओजः नित्यमे यत् उभे रोदसी

चर्म इय समवर्तयत् ( १८२ )-इसका वह सामर्थ्य चमकता है कि जिसकी सहायतासे वह दोनों छाया-पुनिकियोंको चमकके समान छपेट देता है ।

२७ त्यावतः परे अग्निः अरं गमेम ( २०९ )-तेरी सहायतासे सुरक्षित होकर और तेरे आश्रयमें रहकर हम कुतकृत्य हों ।

२८ शग्धि ( २७४ )-तू सामर्थ्यवाला है ।

२९ वीरं नाम धृत्यं शक्तिं इन्द्रं गाय ( २६५ )-इन्द्र वीर है, शत्रुको मृकानेवाला है, प्रसिद्ध बलवान् है, इसलिए उसके पुर्णोंका गान करो ।

३० परावति वृषा, अर्वावति वृषा, वृषा हि शृष्टियिषे, सत्यं वृषा अस्ति, वृषजृतिः नः अयिता ( २६३ )-तू इन्द्र वेशमें बलवान् है, पासके वेशमें भी बलवान् है, तेरी बलवान् कीर्ति मैं सुनता हूँ, निश्चयसे तू बलवान् है, मगधे तू हमारा सरंक्षण करता है ।

वृषा- इसका दूसरा अर्थ है, वामनाजोंको पूर्ण करनेवाला ।

३१ अ-देवः अत्यं सौं तं न आप ( २६८ )-ईश्वरकी उपसलन न करनेबलर अब नहीं पासकता, अर्थात् इन्द्रकी उपसलन करनेवाला ही उस योग्य अक्षकी प्राप्त कर सकता है ।

३२ शिवास्तु समस्तु इत्यः ( २६९ )-सब मुझोंके इन्द्र सहायताके लिए बुलाने योग्य है । ऐसा वह शक्तिमान् है ।

३३ धृष्णः, खज-इत्, पुरन्दरः अलर्पि ( २७१ )-इन्द्र बुद्ध बलमें कुशल, युद्ध करनेवाला, शत्रुके जगतीकी तोड़नेवाला है, वह हमारी सहायताके लिए आवे ।

३४ शन्द्रतीनां पुरां भेषा ( २७५ )-मजबूत बने हुए शत्रुजनोंके अर्पणके भोजन करनेवाला है ।

३५ चरणीनां राजा, रथेभिः अग्निगुः, दाता, विश्वासां धृतनानां तयता, वृषत्र, ज्येष्ठः धृणे ( २७६ )-सब मनुष्योंका हित करनेवाला राजा, रथोंके आगे जानेवाला, सबके साथ जानेवाला, शत्रुघ्न आक्रमण करनेवाला, शत्रु-सेनाका नेता करनेवाला, वृषको मारनेवाला, ऐसा थोड़ा इन्द्र है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ ।

३६ छाया-गृधिनी जगं ह्युः, भूमीः जगं ह्युः, महर्द्धं ह्युः, न त्वा अनु अष्ट, अनु जगं न अनु अष्ट, रोदसी न अनु अष्ट ( २७८ )-छायागृधिनी,

भूमि ये संकटों हो जाए, हजारों सुयों हो जाए, वे सभी भी तेरी बराबरी नहीं कर सकते । पीछेसे होनेवाले पदाब्ज तेरी बराबरी नहीं कर सकते ।

३७ यत् इन्द्र भयामहे, ततः नः अभयं दधि ( २७४ )— हे इन्द्र ! जहासे हमें भय हो, बहासे हमें निर्भय कर ।

३८ ॥ ऊनये द्विष- विजाहि, मूयः विजाहि ( २७४ )— हमारे सरसपत्ने लिए शत्रुओंको जीत, दुष्टोंको हरा ।

३९ ते सखा अश्वी, रयी, गोमान्, सुरुष, श्वाप्रः मागः वयसा सदा सखते । चन्त्रेः सर्भा उपयसि ( २७७ )— तैरा मित्र इन्द्र पोछे रत्ननेवाला, रथमें घेड़ोवाला, गाध रत्ननेवाला, सुन्दर, शीघ्र हो कर्म करनेवाला, वज्रसे-ताकपत्ने मुक्त रहता है, वह आमूषण बह्वक्तरके सभामें जाता है ।

४० इन्द्र हरी युयोजिते ( २९८ )— इन्द्र घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ता है ।

४१ इन्द्रः हयोंः संमिदल, यज्ञी हिरण्यय ( २८९ )— इन्द्र पोछे रक्षता है, वज्र धारण करनेवाला और तेजस्वी है ।

४२ सत्रा-हा विध्य-सर्षपिः सं पयं द्रुमहे ( २८६ )— इन्द्र सब शत्रुओंको एक साथ मारता है । सब मनुष्योंका कल्याण करता है, इसलिये हम उसकी सहायतामें बुलते हैं ।

४३ प्रशर्षीः ( २७९ )— शत्रुनाशक बलसे युक्त इन्द्र है ।

४४ अनये पुष्ट नृपूत- अस्ति ( २७९ )— सब मनुष्योंका हित करनेके लिए लोग तेरी बहुत प्रार्थना करते हैं ।

४५ इवा काः मर्तः आदधर्षति ( २८० )— तुमसे कौन मनुष्य डरा सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं ।

४६ ते भद्रा धात्री पायें दिवि धात्री सिपासति ( २८० )— तेरे ऊपर भद्रा रत्ननेवाला बलवान् होता है और अस्तिम विनतक भी दाव कर सकता है ।

४७ अ-जर्द, प्रहेतार्द, अ-प्रतिर्द, आशुजेतार्द, होतार्द, रसीतमं, अ-तुर्तं, ऊतये इत ( २८१ )— जरा-रहित, मेरुना देनेवाले, पीछे न रहनेवाले, शत्रुको शीघ्र जीतनेवाले, दान देनेवाले, रथमें बैठनेवाले, जितोसे भी न हारनेवाले, इन्द्रको यही हमारे पास बुलावो, सहायताके लिए उसे अपने पास बुलावो ।

४८ तु आपे ! स्वापिभिः आ ( २८२ )— हे उत्तम मित्र इन्द्र ! अपने उत्तम मित्रोंके साथ यहाँ आ, हमारे पास हमारी सहायताके लिए आ ।

४९ सहस्रमन्यो तुवि-नृम्य, सत्यते ! समस्तु नः द्यूधे भव ( २८६ )— हे हजारों उत्साहोसे युक्त, बहुत बलवान्, सज्जनके पातक, इन्द्र ! तू युद्धमें हमारी उन्नति करने-वाला हो ।

५० त्वा वाघत अस्मत् आरे मा निरमत् ( २८४ )— तेरी स्तुति करनेवाले भक्त तुमसे हमसे दूर न सेजयें ।

५१ आरुत्तात् न सधमादे सु आगाहि ( २८४ )— हमारे यज्ञमें हमारे पास ठीक तरह आ ।

५२ महे शुस्त्राय त्वा न परा देयां, न शताय न सहस्राय न वयुताय परा देयां ( २९१ )— बहुत साधन मिलनेपर भी मैं तुमसे दूर नहीं करूँ, सी, हजार या सहस्रहजार-के बढतेमें भी तुमसे न दू ।

### इन्द्रका शीर्ष

इस प्रकार इन्द्रके बलका वर्णन है, अब उसके शीर्षका वर्णन देखिए—

१ मघ शूरः वीरः ( १२३ )— इन्द्र आनन्द देनेवाला शूर और वीर है ।

२ अनामयिन् ( १२४ )— निर्भय, भयरहित ।

३ अनात ( १४२ )— किसीके भी भागेन मुकनेवाला ।

४ अस्ता ( १२५ )— दास, शत्रुपर शासन करनेवाला ।

५ मर ( १४४ ) प्रनेता— ( १९३ )— नेतृ, शीर्षके साथ भागे सेजानेवाला ।

६ त्वं ईशिये ( १६२ )— तू सबपर शासन करता है ।

७ अ-प्रति-पुक्तः ( १७९ )— जिसका विरोध कोई भी नहीं कर सकता ।

८ स्वदा-सुषः ( १६९ )— हमेशा बढनेवाला ।

९ स्थिरः ( २०० )— युद्धोंमें हमेशा स्थिर रहनेवाला ।

१० धिदरा-सातं चर्यणीतं मीहिष्ठं इन्द्रं अभि प्रगायत ( १५९ )— सब शत्रुओंकी हारनेवाले, सब लोगोंमें श्रेष्ठ इन्द्रके गुणोंका गाव करो ।

११ महद् अयं अर्षिपत् अप शुच्युवत् ( २०० )— बहुत भयंसे हमें दूर करो ।

१२ वृथहर्षं, पुष्ट धस्मानं, वृषभ, स्थिरपञ्चं, यज्ञिभं, मृष्टिमन्तं द्यूधे ( २२७ )— वृषभो मारनेवाले, बहुतों द्वारा पुजित, बलवान्, हमेशा दुष्टोंका नाश करनेवाले, वज्र-धारी, शत्रुनाशक इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ।

१३ त्वत् जायमानः, अ-शत्रुभ्यः सप्तभ्यः शत्रुः त्वं अमया ( ३२६ )— उत्पन्न होते ही, जिनका कोई भी शत्रु



नहीं पा, ऐसे सात शत्रु राजसीका तू अकेला ही शत्रु हुआ ।

१४ वहुनां युद्धार्थे युवान् पालितं जगार ( ३२५ )-  
बहुतोंको मारनेवाले जवान शत्रुको शकड़े मालोंवाला बड़ा बौर  
भी पराजित करता है । ( यदि इन्द्र उनको सहायता करे । )

१५ याजसातो अस्मिन् भरे नृतमे इन्द्रं हुवेम  
( ३२६ )- बलसे लड़े जानेवाले इस युद्धमें मनुष्योंमें थोड़े  
इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१६ शृण्वन्तं उग्रं समस्तु वृषाणि प्रान्तं इन्द्रं हुवे  
( ३२७ ) भवनकी प्रार्थना सुननेवाले, बौर, युद्धोंमें शत्रुओंको  
मारनेवाले, इन्द्रको सहायताके लिए मैं बुलाता हूँ ।

१७ ज्ञातारं अघितारं हवे हवे सुहवं शकं इन्द्रं  
हुवे ( ३२८ )- सरसण करनेवाले और प्रत्येक युद्धमें सहायताके  
लिए बुलाये जानेवाले, सामर्थ्यवान् इन्द्रको मैं बुलाता हूँ ।

१८ वज्र-वर्षिणं विवृतानां हरीणां रथ्यं इन्द्रं  
यजामहे ( ३२९ )- अपने हाथे हाथमें वज्रकी धारण  
करनेवाले, वेगवान् घोड़ोंके रथमें बँडनेवाले इन्द्रको मैं पूजा  
करता हूँ ।

१९ सनासाहं वापुर्वि तुघ्नं महां अपारं घृषभं  
तुघ्र्यं ( ३३० ) शत्रुओंका एक साथ गाँस करनेवाले,  
शत्रुको डरानेवाले, शत्रुको डूर करनेवाले, महान् अपार  
शक्तिसे पक्षधारी इन्द्रकी प्रशंसा करता हूँ ।

२० इन्द्रा-पर्यन्ता यामी सु-धीरा ( ३३१ )- इन्द्र  
और पर्यंत में प्रसक्तनीय उत्तम धीर हैं ।

२१ अये शिमी भोजसा पुरः विभिन्नसि ( ३३२ )-  
यह शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र अपने बलसे शत्रुके  
नगरोंकी तोड़ता है ।

२२ भदे धीराय तजने तुपाय निरिच्छिने यक्षिणे  
रथिराय असे अपूर्व्या पुष्टमासि दांतमामि यवांसि  
तज्जुः ( ३३३ )- महान् धीर, बलवान्, प्रीतिसे साथे रहने-  
वाले, बड़े पक्षधारी, मुटु धीरे इस इन्द्रके लिए अपूर्व, बहुल  
और प्राप्ति करनेवाले शीघ्र बने जाते हैं ।

२३ इमाः पित्र्याः वृतनाः जयासि ( ३३४ )- इन  
शत्रु शत्रुओं पर तू विजय प्राप्त करता है ।

२४ द्रुप्तः दृढभिः सहृदी ह्यातः शृणाः अंशु-  
मर्ता अघानिष्ठः दाच्या धमन्तं ते इन्द्रः सायय  
नृमणाः स्मिहसि अधद्राः ( ३३५ )- अक्षय्य करनेवाला  
इन्द्र शत्रु अपने दमदमोर से निजने साय अंशुपति मर्ती  
पर पहुँच गया, अपने सायमणसे अच्छी अच्छी मार्ग सेनेवाले

उस शत्रुको घेरकर, मनुष्योंका हित करनेकी इच्छासे इन्द्रने  
उस हितक सेनाको नष्ट कर डाला ।

२५ यत् पावर्ध धियः युनजते, नरः नेमधिता इन्द्रं  
हवन्ते ( ३३६ )- जब शकटोंसे पार होनेकी बुद्धि होती है,  
तब सशस्त्रमें सड़नेवाले लोग इन्द्रको अपनी सहायताके लिए  
बुलाते हैं ।

नेमधिता सपाम ।

२६ यत् शासः सद्रुस परि भयतं च्यापय  
( ३३७ )- तू शासक है, इसलिए हमारे समूहसे क्षत न  
पातन करनेवाले अघानिष्ठोंको डूर कर ।

२७ भरे भरे हव्यः ( ३३८ )- प्रत्येक युद्धमें सहायताके  
लिए इन्द्र बुलानेके योग्य है ।

२८ वियः सद्योभ्य भोजसा प्र रिनिक्षे ( ३३९ )-  
गुल्लेकसे भी तू बँधे रह ।

२९ नः अजिता वृषे च असः ( ३४० )- तू हमारी  
रक्षा और बुद्धि करनेवाला है ।

३० त्वं यावतः ईक्षिषे पतापसु अहं ईक्षीय ( ३४१ )-  
तेरा जितनेके अवर अधिकार है, उतनेपर मेरा भी अधिकार हो ।

३१ न पापरथाय रक्षिषम ( ३४२ )- कर्णोंमें हम न  
रहे, ऐसा कर ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन समाप्त करने आया है । ये गुण  
मनुष्य बेलें और इन्हें अपने अन्दर धारण करते उन्हें  
बढ़ाये । “ यदेयाः अपूर्व्यस्तत्कन्याणि ” अंता आचरण  
देवोंने किया, उतती प्रसार से भी कहें । यह उद्देश्य मनुष्य  
रसकर उत्तरे अनुसर आचरण करें, इन्द्रके इन गुणोंकी  
बहुता इस अर्थसे प्रहर्षमें इसलिये कहा है कि मनुष्य भी इन्द्रके  
सामान धूर, बौर, उत्साही, सतत परिश्रमी, युद्धमें कुशल,  
उदार, प्रजाप्रेमी पालक और सरसक ही ।

इन्द्रके यदि दो पाप भवोपर हो ध्याय दिया जाए और  
उनको अपने अन्दर धारण करनेका प्रयास किया जाए, तो  
उनकी भी मनुष्यकी उत्पत्ति अवश्य होगी, ऐसे ये गुण हैं ।

अब इन्द्रकी मुद्धमें कुशलता कित प्रसारको है, उत्तम  
विचार करते हैं ।

इन्द्रकी युद्ध कुशलता

इन्द्र विजयदायक संरक्षण-यही मयका मुद्ध-अंगी है ।  
इन कारण उत्तम मनुष्योंसे साथ युद्ध बराबर होता रहता  
है । अब यह युद्ध कैसे करता है, उत्तरे प्रसार मुद्ध कुशलता  
कैती है, इसका विचार अब करते हैं ।

१ नु-पाहः ( १४४ )- शत्रुके यीरोंको हरायेवाला ।

२ अद्रिचः ( १९४ )- वन्यधारण करने के लड़नेवाला, ( अद्रि-च ) पहाड़ोंके किलोंमें रहनेवाला, अथवा किलेमें रहकर लड़नेवाला ।

३ पूतनासहः धीरः ( ४०५ )- शत्रुका सेनाको हराकर-वाला धीर ।

४ स्वराज्यं यनु अर्चन् त्वं मायिमं मृग घृन् प्रायया यनुपी. ( ४१२ )- स्वराज्यको बृह बनानेके लिए उस मायावी बुधबुध और मायावी पणिका वध किया । बुधबुध कपड़से लड़ता था, उसे हारने कपड़से ही मारा । कपड़ोंसे कपड़का ही व्यवहार करें, यह शोध बड़ा निम्नता है, और अपने स्वातन्त्र्य-संरक्षण और प्रजाओंके संरक्षणके लिए कपड़े शत्रुओंका नाश करनेका उपदेश इसमें है ।

५ या प्रकः इत् विश्वाः कृष्टी अभ्यस्यति ( ३८७ )- यह इन्द्र अकेले ही सब शत्रुके संशिकोंको हरा देता है । इसका इतना सामर्थ्य और पुष्ट-कीर्तन्य है ।

६ विश्वतोवान् ( ४३७ )- सब शत्रुओंका नाश करता है ।

७ विश्वस्य प्रस्तोमः ( ४५० )- सब शत्रुओंका इन्द्र प्रस्थ करता है ।

८ या कृष्णधर्मः निरहन् ( ३८० )- कृष्ण नामके मयुरकी गर्भवती पत्नियोंका भी इन्द्रने नाश किया । कृष्ण नामका एक मयुर था, वह लोगोंकी बहुत कष्ट देता था, इस-वत्-मृगहार राक्षसोंकी सेना लेकर वह आक्रमण करता था, इन्द्रने सब सेनाके साथ कृष्णका वध किया, और जिससे जग्ने उसका वध भी न रहे, इसलिए उसकी गर्भवती स्त्रियोंकी भी मार डाला ।

९ पुनश्चम शर्धं धृतं, कर्पणीनां महे राघते प्र साधिपे ( २०८ )- पुननामक मयुरके नाश करनेमें इन्द्रका जो बल प्रसिद्ध हुआ, उसे सभीने सुना । यह सब इन्द्रने इसलिए किया कि इससे प्रजाजनोंका बहान् कल्याण हो । बुधबुध प्रजाओंको कष्ट देता था, वे कष्ट दूर हों इसलिये उसका इन्द्रने वध किया, उससे प्रजाओंकी बहान् उसति, प्रजाओंको साधिन-निपति उत्पन्न हुई और प्रजाओंका सुख बढा ।

१० पृष्ठ सासर्दि लोकहन्तुं मर्दं हरिश्चिधं शुष्णी-मसि ( ३८९ )- मुझमें शत्रुओंकी हरायेवाले, प्रजाओंका

१५ ( साम हिन्दी )

कल्याण करने उन्हें मारकर हरायेवाले, प्रजाओंकी सम्पत्ति बढ़ानेवाले इन्द्रकी हूँ प्रशंसा करते हैं । “ हरि ” पदका अर्थ मनुष्य है, “ हरिरिति मनुष्य नाम ” ( निघ १।३।१० ) । लोगोंकी शोभा बढ़ानेवाला इन्द्र है ।

११ ते महत्सु आगिषु अमं चित् उर्ति हवामहे ( ४११ )- उस इन्द्रकी महान् और छोटे पुष्टोंमें अपने संरक्षणके लिए हम कुलते हैं ।

१२ सः वाजेषु नः प्राधिपत् ( ४११ )- यह इन्द्र मुझमें हमारा उत्तम संरक्षण करता है । ऐसा वह पराक्रमी है ।

१३ ते हाजः शुष्म ( ४१३ )- तु हमें शत्रुओंकी शूका-वाला बल भरपूर दे ।

१४ उपाकयोः हस्तयोः मायस वसं श्रिये निवृधे ( ४२३ )- अपने हाथोंमें फौजली बख्शी कल्याणके लिए धारण करता है ।

१५ मेहि, अमोहि, धृष्णुहि म ते वधो नियंसते ( ४१३ )- शत्रुपर आक्रमण कर, चारों ओरसे आक्रमण कर, शत्रुका नाश कर, तेरा वज्र किसिते परानित होनेवाला नहीं है । इस स्वाभमान “ मेहि, अमोहि, धृष्णुहि ” वे तीनों सब युद्धका वधन करनेवाले हैं । “ मेहि ” का अर्थ है, शत्रुपर बड़ाई करना, “ अमोहि ” का अर्थ है चारों ओरसे शत्रुकी ओरकर उन्हें चक्करमें डालकर फिर उनपर आक्रमण करना, और “ धृष्णुहि ” का अर्थ है शत्रुओंका पर्यव करना, शत्रुओंका वध करना और प्रायः ऐतत्सि उत्तका नाश करना । इन्द्र इन सब युद्ध प्रणालियोंमें कुशल है ।

१६ अरंमाय जग्मने अपदद्यावर्जने ( ३५२ )- इन्द्र पूर्ण रीतिसे शत्रुपर आक्रमण करता है, शत्रुओंको कुच-लता चला जाता है । शत्रुओंको कुचलनेमें यह देर नहीं करता । समग्रपर बड़ा पटुपना होता है, वहाँ पटुप जाता है । से तीनों ही मृग बीरोंमें आवश्यक है । शत्रुपर बड़ाई करना, शत्रुका पूर्णतया नाश करना और उचित समय पर आक्रमण करना ये आवश्यक बातें हैं ।

१७ पुरां भिन्दुः, युवा कविः, व्यभिर्ताजा, विश्वस्य कर्मणः धर्ष्टी, अज्योपत ( ३५९ )- शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाला, तबण, जानो, अपराधिन सामर्थ्यवाला, सब कर्षोंको धारण करनेवाला यह इन्द्र है, ऐसा यह धीर है ।

१८ पुरं धृष्णं अर्चत ( ३६२ )- शत्रुके नगरोंका करनेवाले इन्द्रकी अर्चना करो ।

१९. इन्द्रो विभ्वस्य राजति ( ४५६ )- इन्द्र विश्वका राजा है, विश्वका आविपत्य इन्द्रके पास है, इतना वह सामर्थ्यवान् है ।

२०. उतये सुम्नाय तुवि-कर्मि शस्तीषां सत्पति इन्द्रं यतयामसि ( ३५४ )- हमारा संरक्षण हो इसलिए सुपदायी, विविध सामर्थ्योंका कार्य करनेवाले, हिंसक शत्रु-ओंको हरा देनेवाले, सज्जनोका पालन करनेवाले, इन्द्रको हम यहाँ लाते हैं ।

२१. पुन-निःपद्ये इन्द्राय उष्यं शंस्यम् ( ३६३ )- बहुतसे शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रकी प्रशंसाके स्तोत्र कहो ।

२२. विश्वामरस्य अनातस्य श्रयसः पतिं दुये ( ३६४ )- विश्वका नेता, किसीके आगे अपना सिर न झुकानेवाला, बलका स्वामी इन्द्र है, उसे वे सहायताके लिए बुलाता है ।

२३. चर्मणीनां रथानां पद्येः ऊती दुये ( ३६५ )- मनुष्योंके रथोंके संरक्षणके सामर्थ्यके ह्वाला रक्षण हो, इसलिए इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२४. निम्बाः पृतनाः नरः अभिभूतारं आमुर्गि उर्मो ओजिष्ठं तरसं तरदिनं इन्द्रं राजते तवभुः ( ३७० )- सब मनुष्योंके नेताओंके दुराचारी शत्रुओंको हरानेवाले, शत्रु-को मारनेवाले, उप, बलवान्, कुलति पार करनेवाले इन्द्रको राजा बनानेके लिए प्रसन्न किया ।

२५. यः सदाधुधे, निम्बगर्तं, क्रभ्यपसं, ओजसा धधुष्टं ध्रुव्यं इन्द्रं यदः चकार ( २४३ )- जो हमेशा धड़नेवाले, सबसे प्रशंसित, महाबुद्धिमान्, बलान् सामर्थ्यके कारण जितना सभी भी पराभव नहीं होता, ऐसे शत्रुओं को हरानेवाले इन्द्रकी पसन्दे भक्ति करता है, ( वह महान् रोगा है ) ।

२६. तं चर्मणा न किं जन्तु ( २४३ )- किसी भी चर्मसे उसका नाश नहीं हो सकता ।

२७. पुन नः तनुषु नृण्यं आपोहि, सत्राजिक् पांस्यं आपोहि ( २३१ )- हे इन्द्र ! हमारे प्रजापति शरीरमें बहुतसा बल दे, और हम शत्रुओंको क्षत्रिय मारने-का बल भी दे ।

२८. वारयः पात्रमासी ग्वां ह्यमाहे ( २३४ )- हम चर्म करनेवाले मनुष्यों को ही क्षत्रियोंके लिए बुलाते हैं ।

२९. वृत्रेषु सत्यति नरः हवन्ते, अयंतः पाप्रासु त्वा हवन्ते ( २३४ )- वृत्रादि असुरोंके साथ युद्ध करनेके समय नेता साथ सज्जनोका पालन करनेवाले तुम इन्द्रको ही बुलाते हैं । प्रयत्नको अत्यधिक करनेके बाद अपनी सहायताके लिए तुम ही बुलाते हैं ।

३०. उभे रोदसी त्वा अनुघायतां ( ३७१ )- दोनों ही धृमेण और पृथोक्कोक तेरे अनुकूल हो चले हैं ।

३१. पुषिषी ते शुष्माद् अभ्यसते ( ३७१ )- पुषिषी तेरे बलसे अभ्यसित है । इस प्रकार इन्द्रका बल है ।

३२. सत्राजितः शक्षित-ऊतयः, घाजयन्तः रथाः हव, गिरः उदीरते ( २५१ )- एकताप सब शत्रुओंको हरानेवाले, जिसके संरक्षणके साथ सब कमी क्षीण नहीं होते, ऐसे तेरे भवत, बलवान् रथके सज्जन, स्तोत्र कहते हैं । तुम इन्द्रके यशका पाल करते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रकी युद्ध कुशलताका धर्मान सामर्थ्यमें किया गया है । इसको देखतेही इन्द्रकी कितनी विमल शक्ति थी इसको क्षरणा हो सकती है ।

यहाँ इन्द्रके वर्णन करनेका यही उद्देश्य है, कि इन्द्रके सामर्थ्य करने भी बोर अपने राष्ट्रकी रक्षाको करें, और अपने राष्ट्रको सबल बनावें ।

इन्द्र अपने पास बन्ध रखता है, उसी प्रकार हम भी संकष्टों पारानोंवाले फौजारी बन्ध सँभार करें और उनका उपयोग करें यह उद्देश्य यहाँ कहीं है, अतित जैसे उसके पास तीक्ष्ण बन्ध है, उसी प्रकार हमारे पास भी हमेशा तीक्ष्ण शस्त्र रहें, वह उपदेश यहाँ प्रत्यक्ष है ।

इसी प्रकार दूसरे उपदेशोंके विषयमें भी सामर्थ्य । इन्द्र अपने शत्रुओंका नाश करता है, उसी प्रकार हम भी अपने शत्रुओंका नाश करें । शत्रुनाशके साथ ही क्षत्रिय शायक सामर्थ्य बढाते हैं । पहलेसे प्रजापति धनुष-बाणों मुझ होते थे, पर आज धनु धारण है । पर दोनों इसामोंमें उद्देश्य एक ही है शत्रुनाश का करना । यह उद्देश्य जिन सामर्थ्यों की पूरा हो, उन सामर्थ्योंका उपयोग करने समयानुसार धनु इन्द्र वंश लिए जानेवाले बन्धोंके रूप में ।

### द्वयका नरः

इन्द्रका मुख्य कार्य सब प्रजाओंका उन्नत संरक्षण करना है । जो शत्रु आते हैं, उनका समूह नाश कर प्रजाओंका

सरक्षण करना यह कार्य इन्द्र करता है । उसीको वेदमंत्रोंमें कहा है—

१ महे वृत्राय हन्तये इन्द्र चाजयामसि ( ११९ )— महान् वृत्रका वध करनेके लिए हम इन्द्रके यत्नको गाते हैं । वृत्रका अर्थ है ( आघृणोति इति वृत्र ) चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु । ऐसे क्षत्र्ये आनेपर उसके लिए इन्द्रको बुलाते हैं ।

२ वृत्र-हा ( १२६ )— वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र है । इन्द्रका यह नाम ही है ।

३ वयं महाद्यते अमं इन्द्रं हवामहे ( १३० )— हम महान् युद्धमें और छोटे युद्धमें अपनी सहायताके लिए इन्द्रको बुलाते हैं ।

४ धुनेषु गुजं यक्षिणं हवामहे ( १३० )— वृत्रके साथ होनेवाले सप्तग्राममें यक्षपारी इन्द्रको विजय समझकर सहायता के लिए बुलाते हैं । यहा " धुनेषु " इस प्रकार बहुवचनका प्रयोग हुआ है । अनेक युद्ध हैं । वृत्रका अर्थ केवल एक शत्रु नहीं, अपितु घेरनेवाले अनेक शत्रु । ऐसे सब शत्रुओंका इन्द्रने नाश किया ।

५ तत् त्वा युजा वनेम ( १२८ )— इस प्रकार तेरे साथ रहकर तेरी सहायतामें सब क्षत्र्योंको मार दें । इन्द्रके साथसे और उसकी सहायतासे हमारी रक्षित बढती है ।

६ आदिशः सूरः अन्तुषु नः आ अभ्यायमत् ( १२८ )— आशा करनेवाले शक्तिमान् राजस अथवा शत्रु राजीमें हमारे ऊपर आक्रमण न करें । " आदिशः " आशा देनेवाले, ऐसा कर और ऐसा न कर ऐसी आशा देनेवाले शत्रु । " सूरः " ( सु-उरा ) जिसकी छाती विशाल है । ऐसे बलवान् होनेवाले शत्रु राजीके समय हमपर आक्रमण न करें, इसलिए हे इन्द्र ! हमारी रक्षा कर ।

आदिशः— आदेश देनेवाले, शस्त्र डँकनेवाले ।

सूरः— हथिया चलनेवाले, विशाल छातीवाले ।

७ सद्यस्-यादे तव पौंस्यं आर्वादिष्ट ( १३१ )—हजारों सैनिकोंको आप लेकर आक्रमण करनेवाले शत्रुपर जब इन्द्र भलकर गया, तब उसका सामर्थ्य प्रकट हुआ ।

८ विभ्याः त्रिपः अप भिन्धि ( १३४ )— सब शत्रुओंको मार ।

९ वायः मृधः परिजहि ( १३४ )— रवावटें उत्पन्न करनेवाले जो शत्रु हैं, उनका पराभव कर ।

१० इन्द्रः दधीचो अस्थभिः नयनवर्तीः पुत्राणि

जघान ( १७९ )— इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोंसे नौ पुत्रा नन्दे वृत्रोत्ते मारा । ९×९०=८१० शत्रुओंका इन्द्रने नाश किया ।

दधीचः अस्थभिः— दधीचिकी हड्डी; दधीचिने अपने हड्डी वी, और उससे बने हुए शस्त्रोंसे इतने रक्षकोंका नाश हुआ, यह आलंकारिक कथा है ।

११ ओजसा महान् अभिष्टिः ( १८० )— अपने सामर्थ्यमें महान् शत्रुओंका पराभव करनेवाला ।

१२ अस्तद्विपः अयजहि ( १९४ )— जानते होय करने-वालेका पराभव कर ।

१३ विभ्याः सृष्टः वजयः, इन्द्रः अयां फेनेत सिरः उद्वर्ययः ( २११ )— सब शत्रुओंको हराया, और इन्द्रने पानीसे सागसे मनुषिकी सिर तोड़ा ।

" अयां फेनेतः "— यह समुद्री क्षाण है, " न-सुचिः " सौम्य दूध न होनेवाला रोप, ऐसे रोप पर समुद्री क्षाण उत्पन्न होय है, यह कथा आलंकारिक है ।

१४ अमर्तीनि वृत्र-पुत्राणि अनुतः, चर्यणीधृतिः, एक इत् हंसि— ( २४८ )— अत्यधिक शक्तिवाले वृत्रोत्ते शत्रुओंकी स्वयं पराभूत न होनेवाले इन्द्रने सब प्रणामोंके कृत्याणके लिए अरेते ही मारा ।

१५ वृत्र-हा शतकतुः शतवर्षणा यजेण पुनं हवति ( २५७ )— वृत्रको मारनेवाले, संकड़ों कार्य करने-वाले, इन्द्रने संकड़ों शत्रुओंवाले बलसे वृत्रको मारा ।

१६ इन्द्राय वृत्रहन्तमं वृहत् गायन ( २५८ )— इन्द्रके लिए वृत्रको मारनेवाले बृहत् गायके सामका गान करो ।

१७ त्वं प्रवर्तिषु त्रिभ्याः सृष्टः अन्धसि ( ३११ )— तू युद्धोंमें सब शत्रुओंका नाश करता है ।

१८ तूयः ( ३११ )— शत्रुका विनाश करनेवाला ।

१९ अशस्ति-हा ( ३११ )— अमरासनीयोंका नाश करनेवाला ।

२० जनिता ( ३११ )— शत्रुओंपर आवृत्ति सानेवाला ।

२१ सद्यस्वत-पुत्र-न्यः अस्ति ( ३११ )— विजय करने-वालोंका विवादाक है ।

२२ ते प्रथमाय मन्धवे अत् दधामि, यत् दश्यं अहन् ( ३०१ )— तेरे प्रथम आये हुए उत्ताहपर मैं अज्ञा करता हूँ, क्योंकि तूने जगते शत्रुको मारा ।

२३ द्विषोदासाय त्वत् शम्भरं अरंयधन ( ३१२ )— द्विषोदासाके द्विषके लिए तूने उस सम्भर राक्षसको मारा ।

२४ येन अग्निर्णे नि हंसि ( ३१४ )- जिससे तुने केवल स्वयं खानेवाले शत्रुओंको मारा ।

२५ वृषेषु सर्धमानाः क्षितयः यं हवन्ते ( ३३७ )- मुद्गोंमें लड़नेवाले मनुष्य जिसको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२६ युक्तेषु तुर्यन्तः यं हवन्ते ( ३३७ )- युद्धके प्रारम्भ होनेपर युद्ध करनेवाले जिसको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२७ शूरसातौ यं हवन्ते ( ३३७ )- शूरोमे जिसमें लड़ाई होती है, ऐसे युद्धोंमें लड़नेवाले लोच जिसको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं । यह श्वेद इन्द्र है ।

२८ यः मर्तः नः वतुष्यन्, अभिद्राति, मयमानः, क्षिप्री बुधा, शयसा उगणाः, तुरः त्योता, वृषमणः अभिप्याम ( ३३६ )- जो शत्रु हमारी हिता करनेको इच्छाते हमपर घडा बना जाता है, अपनेको बहुत शक्ति-शाली समझता है, तथा विनाशक शस्त्रोंसे आक्रमण करता हुआ चला आता है, उन सबको, शीघ्रतासे कार्य करनेवाले हम सब जन तेरे सरक्षणसे सुरक्षित होकर तथा बलवान् मनसे युद्ध होकर मारें ।

२९ एवं उरखं अर्द्धदं ( ३१५ )- तुने भेदोंको कोडा ।

३० खानि ध्यरुजः ( ३१५ )- पानीके द्वारोंको बोल दिया ।

३१ महानं पर्यतं धारा अष्टजत् ( ३१५ )- बहान् पर्वतके ऊपरसे पानीकी धाराबै छोडी ।

३२ यद्वधानान् अर्णयान् अरुण्याः ( ३१५ )- उफनते हुए मनुष्योंको आनदित किया ।

३३ यस् दानयान् व्ययहन् ( ३१५ )- जब तुने शत्रुओंको मारा । यह वर्धन मेघोंसे पानी बरसनेका है । आलंकारिक रूपमें मेघ वह राक्षस है, और उसे इन्द्रने मारा यह वर्धन किया है ।

३४ गोमतः जतस्य संस्थे श्वसन्तं त्वा युजा प्रति ध्रुवीमदि ( ४०३ )- गाध पास रखनेवाले, सोमोंसे स्वर्णोंपर आक्रमण करनेवाले, लम्बी लम्बी तल्लेवाले शत्रुको तेरी सहायतासे हम उत्तम उत्तर दें ।

३५ इराज्यं अनु अर्चन् धृष्टेभ्याः आर्हि निः दाताः ( ४१० )- स्वराज्यका संरक्षण करनेके लिए पृथिवीपर आये हुए अहि नामक शत्रुपर तुने ज्ञात किया ।

३६ राक्षसिः घृषाणि परि, नः क्रुषया द्विपः, तरयै, ईरसे ( ४२८ )- तू उत्तमसे युध है, इसलिये

तू शत्रुओंको मारनेके लिए अपने शत्रुतामक सामर्थ्यसे द्वेष करनेवालोंको दूर करनेका प्रयास करता है ।

इन्द्र शत्रुओंको मारता है, और इस प्रकार वह शत्रुहित होता है । इसलिये वह प्रबल शक्तियोंसे सम्पन्न है । यह सब बातें इन वचनोंमें पाठकोंको मिलेगी । इसलिये पाठक इन वचनोंको ध्यावते पढ़ें और स्वयं शक्तिसम्पन्न कंति हो, यह विचार करें । पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें और उससे बोध प्राप्त करें । जो इस रीतिसे अध्ययन करेगा, यह इन्द्रके समाधि शूरवीर और शत्रुको जीतनेवाला होगा ।

### संरक्षण करनेवाला इन्द्र

सभी देवता मनुष्योंका संरक्षण करते हैं, पर उनमें भी इन्द्रका संरक्षण विशेष महत्त्वका है, इस विषयमें निम्न पत्रोंको देखो—

१ देवानां महत् अयः, ऊतये घयं आ ध्रुवीमदे ( १३८ )- देवोंका महान् संरक्षण हम अपने रक्षणके लिए मागते हैं ।

२ कथा ऊनी, कथा शविष्ठाया पुता, नः आधुयद ( १६९ )- कौन्ती संरक्षणकी क्षमताके साथ, और कौन्ती सामर्थ्यके साथ वह इन्द्र हमारे पास आवे ?

३ ऊतये सत्रा-सादं, दिभ्यासु गांयुं, आपतं, आप्यायपसि ( १७० )- अपने संरक्षणके लिए, सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाले, सब स्तुतियोंसे वर्णनके योग्य इन्द्रको अपने पास बुताओ ।

४ अहीभिः ऊतिभिः वससां अर्थ आगाहि ( १८१ )- महान् संरक्षणके साथमेंके साथ मैं हमारे पास आ ।

५ प्रचेतसः ये रक्षन्ति, स्वः जतः न किः ध्रुयते ( १८५ )- शत्रुों जिसका संरक्षण करते हैं, उन मनुष्योंको कोई भी बुरा नहीं सजता ।

६ शुश्रे दुराश्वं महि अयः अस्तु ( १९२ )- तेजस्वी, हमारे निम्नपर आक्रमण नहीं कर सजते, ऐसे संरक्षणके महान् साधन हमें प्राप्त हों ।

७ त्वायतः पर्यं ससि ( १९३ )- तेरे संरक्षणसे हम सुरक्षित रहें ।

८ जनानां तराणि प्रदं गोमतः याजम्य ममानं प्रदांसिधम् ( २०४ )- सोमोंसे तू भूति तारनेवाला, शत्रुको भय बिगानेवाला, मायोंके मित्रनेवाले अश्वोंका दाता इन्द्र है, उगरी में प्रज्ञा करता है ।

९ ऊतये श्मशरत्नं, अयमे साधः दृण्यन्ते,

सुवदुस्यं हवामहे ( २१७ )- सरक्षणके लिए अपना हाथ मागे बढ़ानेवाले, सुरक्षितताके लिए साधनोंको तैयार रखनेवाले सब जिसको प्रशंसा करते हैं, ऐसे इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१० तराभिः रिद्धद्वं इन्द्रं ऊतये वृहत् गावन्तः ( २१७ ) अनेक धनीसे युक्त, सब प्रकारके जान जिससे होते हैं, ऐसे इन्द्रके लिए वृहत् नामके सामको हम अपने रथानके लिए पाते हैं ।

११ ते धियः नः अवन्तु ( २१९ )- तेरी बुद्धि हमारा सरक्षण करे ।

१२ त्रिभ्याभिः ऊतिभिः शग्धि ( २५३ )- सब सरक्षणके साधनोंसे तू सामर्थ्यवान् है ।

१३ मणिपः तुषि क्षुप्मः ( ४५७ )-तू सामर्थ्यवान् और भयपिक बलवान् है ।

१४ सना भूरि ध्यांसि दधानं अप्रतिपुतं इन्द्रं जोहवीमि ( ४६० )- एकसाथ बहुताया यज्ञ प्राप्त करनेवाले, जिसका मुक्तामाला कोई भी धर नहीं सकता ऐसे इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१५ चञ्च्री राये विभ्या सुपथ्य करत् ( ४६० )- बलधारी इन्द्र धन प्राणिके सब मार्गोंकी तरल करता है ।

इस तरह इन्द्र सरक्षण करता है, इस विषयके उत्तम वचन बिधार करनेके योग्य हैं । उनका बिधार पद्यक करें, और अपनेमें ऐसी सरक्षणकी शक्ति प्रदान करें ।

### चनवान् और धनदाता इन्द्र

इन्द्र स्वयं धनवान् है और वह धन दूसरोंको देकर उनकी सहायता करनेवाला भी है । इस विषयमें निम्न वचन प्रत्यक्ष हैं—

१ धृता-मघः ( १२५ )- प्रसिद्ध धनवान् ।

२ वसुः ( १३२ )- सबको बसानेवाला, धनवान् ।

३ राधाना-पतिः ( १६५ )- अनेक प्रकारके धनीयोंका स्वामी ।

४ पुर-वसुः ( १४६ )- बहुताया धन जिसके पास है ।

५ रिभा-वसुः ( २१३ )- तेजस्वी धन रखनेवाला ।

६ प्रभु-वसुः ( ३७३ )- प्रभुत्व करनेवाले धन जिसके पास हैं ।

७ दिवा-वसुः ( ३४८ )- विषय धनोंकी रखनेवाला ।

८ तुगि-वसुः ( ३१६ )- बहुताया धनोक्ति मुला ।

९ त्वं एकः इह यस्वः ईशीमः ( १२२ )- तू अकेला ही धनीना स्वामी है ।

१० धन-सा ( २५१ )- धनोक्ता धन करनेवाला ।

११ धनस्य सातये इन्द्रं हवामहे ( २४९ )- धनके दानके लिए हम इन्द्रको बुलाते हैं ।

१२ पंच क्षितीनां शुम्नं आ भर ( २६२ )- पांच प्रकारके जनोंके तेजस्वी धन हमें भरपूर दे ।

१३ नः सुवितं आ भर ( ३१६ )- हमें उत्तम धन दे ।

१४ धनानि संजितं ऊतये हुयेम ( ३२९ )- धनोक्तो जीतकर लानेवाले इन्द्रको अपने सरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं ।

१५ मापते स्तुवते यत् वसु दिशन्ति, तत् न किः वामिनसि ( २९६ )- मेरे जैसे स्तुति करनेवालोंको जो धन तू देता है, उसे कोई भी रोक नहीं सकता ।

१६ देवस्य ते भूयः दानं उपोषेत् पृच्यते ( ३०० )- तू इन्द्रदेव है, तेरे लिए हुए बन्धन प्राप्त आनेपर बहते हैं ।

१७ ज्यायः इन्द्रः, इयताः कतीयसः तत् आ भर ( ३०९ )- हे इन्द्र ! तू श्रेष्ठ है, अन इच्छा करनेवाले और तेरी अपेक्षा छोड़े मुझे वह धन भरपूर दे ।

१८ धसुनि वदः ( ३१४ )- अनेक प्रकारके धन दे ।

१९ त्वं मेघ-मणिमयं, यस्वः अर्णयं गीमिः क्षमि-पुत ( ३७६ )- उस प्रसन्ननीय, मनसि स्तुतिके धोम, धनोंके समूह इन्द्रको स्तोत्रोंसे स्तुति करते ।

२० मंहिष्ठे इन्द्रं अभ्यर्चत ( ३७६ )- महान् इन्द्रको पूजा करो ।

२१ मे पितुः यस्यान् ( २९२ )- तेरे पिताकी अपेक्षा तू धनवान् है ।

२२ अनुजतः भ्रातुः यस्यान् ( २९२ )- धनोंका उपभोग न करनेवाले भाईकी अपेक्षा भी तू धनवान् है ।

२३ मे माता सभा ( २९२ )- मेरी माँ तेरे समान है ।

२४ वसुत्वान्य राधसे छदयथा ( २९२ )- धन-प्राप्ति और तिष्ठिके लिए हमारा सरक्षण कर ।

२५ त्वोताः तना रमना सधाम ( ३१६ )- तेरे पाससे सरक्षण प्राप्त होनेके बाद हम पनसे धुमपत्र हैं ।

२६ ऊतये सामिनि सजितयानं सदागहं यमिष्ठं रथि आ भर ( १२९ )- हमारे सरक्षणके लिए, उपभोगके योग्य, धनको वराजित करनेवाले, हमेशा विजय प्राप्ता करनेवाले, श्रेष्ठ धन हमें भरपूर दे ।

२७ हे शतक्रतो ! भर्तुं इयं ऊर्जं नः आ भर ( १७३ )- हे शतश्रीं कर्म करनेवाले इन्द्र ! कल्याण करनेवाले भग्न और सामर्थ्य हबें दे ।

२८ ऋतु-क्षणं रायि ददातु ( १११ )- कारीगरीके संरक्षण करनेवाले पन हमें इन्द्र देवे ।

२९ यत् धीर्घो, यस्मिन्, यत् पशानि पराभूतं तत् स्याहं यस्तु आ भर ( २०७ ) जो पन मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, जो पन विरर रूपमें रखा हुआ है, जो पन कठिन स्थानपर भूमिमें गाढ़ा गया है, उत तुम्हरे धनको हमें भरपूर दे ।

३० पुन-यस्तुः मधया जरितृभ्यः सहस्रेण शिवाति ( २३५ )- बहुतसे धनोंकी पासमें रखनेवाला, इन्द्र अपने उपासकोंकी अनेक प्रकारके धन देता है ।

३१ हे इन्द्र ! धत्तुचये पाहि, खेरवे भागं धिदा, गयिप्रये धाद्युपस्व ( २५० )- हे इन्द्र ! पन देनेके लिए आ, तबाबारी मनुष्योंको पन दे, गायोंकी अपने पास रखनेकी इच्छावालेकी गाय देकर कनवान् कर ।

३२ दामुपे रत्नानि धत्तं ( ३०६ )- दानशीलके लिए रख दे, अर्थात् धन दे ।

३३ या भुजा मरुदेभ्य आ भर, भर्य स्तोतारं धर्षय, ये च त्वे वृकमर्हिष- ( २५४ )- जो उपभोगके योग्य धन है, उन्हें अनुर्वि पाससे ले आ, उनकी सहायतासे उपासकोंकी महान् कर, जो तेरे लिए आसन फैलाते हैं, उन्हें भी महान् कर ।

३४ अयमं यस्तु तय, मध्यमं त्वं पुष्यसि, परमस्य धिभ्यस्य सत्रा राजसि, त्या गोपु न किः वृणजे ( २७० )- निदृष्ट पन तेरा है, अयम पनका वृ वीक्षण करता है, परम भेद धनोंपर भी तेरा ही अधिकार है, गाय देनेवाले तेरा कोई भी प्रतिहार नहीं कर सकता ।

३५ अस्यत् वातिः कदाचन मा उपदस्य ( २८७ )- हमारा दान कभी भी नष्ट न होवे ।

३६ चित्रं वृषणं रायि द्याः ( ३१७ )- विलक्षण और बल शायीवाले पन हमें दे ।

३७ ते दक्षिणं हस्तं पश्यः पञ्चम्या ( ३१७ )- पान प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम तेरे दायें हाथकी पञ्चमते हैं ( वृ उत हाथों पन देता है ) ।

३८ त्या गोर्ना गोपसि पित्र ( ३१७ )- वृ गायोंका स्वामी है, यह हम जानते हैं, इसलिए वृ गाय दे ।

३९ अहं मदो याचन् आनुभुञ्चं ( ३०७ )- मेरे हमेशा भोगमें रहनेके क्या वृ मुझसे हो गया है ?

४० यः ईदाम् न याचिष्यत् ( ३०७ )- अपने स्वामीते

कोन मन्त्र नहीं मागता ? सब अपने स्वाधीन ही मागते हैं, उसी प्रकार मैं मांगता हूँ, अतः कौन न करते हुए मुझे पन दे ।

४१ सुराघाः मधया मयानि दाता ( ३३५ )- उत्तम धनसे युक्त इन्द्र पन देता है ।

४२ यत् त्वा आदातं राघः मे नास्ति, तत् नः उभया हस्त्या भर ( ३४५ )- तेरे लिए गए पन अब मेरे पास नहीं रहे, इसलिए दोनों हाथोंसे मुझे भरपूर पन दे ।

४३ सुवीर्यस्य गोमताः रायः पूर्णं ( ३४६ )- उत्तम वीर्यसे युक्त गायोंवाले पन हमें भरपूर दे ।

४४ धिभ्यचर्पणे सुदम्न ! नः दुष्मं ग्रहय ( ३६६ )- हे सब लोगोंके हित करनेवाले, उत्तम दान देनेवाले इन्द्र ! हमें पन देकर महान् मन्त्र ।

४५ महित्वना राधांसि प्रचोदयते ( ३८६ )- हे इन्द्र ! तू अपने पनाके अनुकूल हो पन देता है ।

४६ यः पुष्य इदं यस्य न प्र आ तिनाय, तं इन्द्र ऊतये स्तुये ( ४०० )- जो इन्द्र पहलेसे ही हमें पन देता आया है उस इन्द्रकी हम अपने संरक्षणके लिए स्तुति करते हैं ।

४७ यत् आजयः उदीरते, धृजये धनं वीयते ( ४१४ )- जब बुद्ध शुरु होते हैं, उत समग्र सन्निधाली वीरोंकी धन प्राप्त होता है ।

४८ कं हनः ? क यसी दधः ? भसान् वसी दधः ( ४१४ )- वृ धिबलको सारता है ? विसकी धन देता है ? यह सब तेरे ऊपर है, पर हमें धन दे ।

इन्द्र पन प्राप्त करता है और उन्हें अपने उपासकोंको देता है, उन पनको लेकर उपासक उत्तम नियतिमें रहते हैं, धनका सर्व है गाय, घोड़े, दूध, भूमि, तोना, दान और दूसरे भी धर्म्य जिनकी सहायतासे समुप्य ऐश्वर्यमंशाली होता है । तो, हजार, अमूल-वस्तुकार आदि धर्म्य भी भवोंमें प्रयुक्त हुए हैं । अतः—

४९ मधया सहस्रेण शिवाति ( २३५ )- इन्द्र हमारा दान देता है ।

५० धीर्घो, विरर, पशानि पराभूतं ( २०७ )- निजरीमें ऐसे, विरर और भूमियोंमें गये हुए वे तीन प्रकारके धन होते हैं, ऐसा बड़ा है ।

ये धन मोहर, रुपये इत प्रचार कुछ होने से ताम्र पड़ता है । तो, हजार, वस्तुकार इन तस्मात्प्रभे मिले जाने हैं, वेही कोई चीज होगी । यह विचारणीय है ।

यह पन ऐसा होना चाहिए जो सिजोरीमें रखा जा सके, बैकमें तिरपर रफमें रखा जा सके, और भूमिमें घर्तमें धन्द करके गाड़ा जा सके। सोनेके मोहरके रफमें ये पन होंगे ऐसा कुछ प्रतीत होता है।

आतकृत लो, हज्जार, दसहज्जार तकके कामजके नोट प्रयोगमें आते हैं, पर उस समय इसप्रकार कामजके नोटोंका प्रचलन नहीं था। रत्नोंका प्रयोग था पहले, पर उन्हें भी हजार, दसहजारोंकी संख्यामें देना सम्भव नहीं था, इसलिए सोने, चांदीको ही मुद्रायेँ होगी ऐसा प्रतीत होता है। पर यह विचारणीय है।

### यदि मैं भगवान् हो जाऊँ तो ?

यदि मैं भगवान् हो जाऊँ तो मेरी प्रतिष्ठा पड़ेगी, यह विचार प्रायिक मनुष्यका स्वभाविक है। इस प्रकारका एक भाव विभिन्न मंत्रमें आया हुआ है—

१ अहं यत् दृष्ट्वा ईदृशिय, मे स्तोता गोपयता द्याम् ( १२२ )— यदि मैं भगवाँ स्थायी हो जाऊँ तो मेरी स्तुति करनेवाला पापका मित्र हो जाए। मैं भगवान् हो जाऊँ तो मेरी स्तुति होती रहेगी, ऐसा यहाँ कहा है। भगवान्-को सब अणु स्तुति होती है। इन्द्र भगवान् हैं, इसलिए उसकी सब लोग स्तुति करते हैं। उसी प्रकार भी भगवान् होग्य, उसकी स्तुति सभी करते रहेंगे। क्योंकि स्तुतिसे प्रसन्न होकर वह पन देता। यहाँ प्रमुखता हुआ पन “ द्यम् ” गौरीके रूपमें नहीं है, यह व्यवहारमें आने योग्य कोई वस्तु ही पन है, जो हजारोंकी संख्यामें दूसरोंकी दिया जाता था।

२ स्वाहं द्यम् आ भर ( १३४ )— सुन्दर वस्तु नामक पन हमें भरपूर दे।

३ साः नः यस्तुमि आ भर ( १९० )— वह इन्द्र हूँ मनुष्यात्मक पन दे।

४ यधः एतुयत् ( १९४ )— हमें पन दे।

५ ध्रुमन्तं चिन्मं प्रामिं दक्षिणेन आ संयुम्याय ( १६७ )— दान्य करनेवाले, लेने योग्य, विलक्षण धन बाँधे हाथसे संपन्न करनेके हमें हैं।

इसमें “ चिन्मं, प्रामिं, ध्रुमन्तं ” ये तीन धनके विशेषण हैं। यहाँ उनका योद्धा सब विचार करते हैं।

चिन्मं— विलक्षण, समझनेवाले, तेजस्वी।

प्रामिं— हाथमें लेने योग्य।

ध्रु-मन्तं— दान्य करनेवाले, भरण देनेवाले।

इन त्रयोंके विचारसे यह ज्ञात होता है कि वे पन धमकनेवाले अर्थात् सोने, चांदीके, हाथोंमें धनके संख्यामें लेने योग्य और दान्य करनेवाले, भरण करनेवाले होते होंगे। धातुके सिक्के अथवा विशिष्ट प्रकारके टुकड़े ही ये हो सकते हैं। ‘ आ संयुम्याय ’ यह शब्द यह बताता है, कि लोग इनका संपन्न करते थे। इससे, ये सिक्के छोटे छोटे टुकड़ोंके रूपमें थे, यह भी प्रतीत होता है।

६ नः सुमग्या अश्वया द्यया महोनां धरियस्य ( १८६ )— हमें उत्तम गाव, उत्तम घोड़े और उत्तम रथें संपन्न कर। इसमें गाव, घोड़े और रथ भी संरक्षित हैं ऐसा कहा है, पर यह पन ‘ प्रामिं ’ अनेक संख्याओंमें हाथमें ग्रहण करने योग्य, ‘ ध्रु-मन्तं ’ आपास देनेवाले, और ‘ चिन्मं ’ धमकनेवाले नहीं है। इस लिए गाव, घोड़े और रथोंकी सम्पत्ति हजारोंकी संख्यामें दिए जानेवाले पनसे भिन्न है।

इस प्रकारका पन वैदिक कालमें उपयोगमें आता था। यह विषय और भी विचारणीय है।

### रथ और घोड़े

इन्द्रके रथ में गौर रथ चलानेके लिए उत्तम अश्वित घोड़े भी उसके पास थे।

१ अग्नेः प्रयूर-चेममिः हरिभिः आयाहि ( २४६ )— सुन्दर गौरके रथके समान अवालवाले घोड़ोंसे इन्द्र। तू यहाँ आ।

२ ऽरीनां स्वाता ( १९३ )— घोड़ोंके रथमें बँधने-वाला इन्द्र।

३ ध्रुवया हृषी उप युयुजे-ध्रुवया आ जगाम ( ३०८ )— चलवान् दोनों घोड़े उसने रथमें गीड़ लिए हैं, और ध्रुवकी सारनेवाला इन्द्र आ गया है।

४ प्रस्युजः केमिनः हिरण्यये रथे युक्ताः आ सहर्षं शतं हरयः त्वा आ चदन्तु ( २४५ )— कहने मात्रसे ही रथमें जुड़ जानेवाले सुन्दर अमालवाले, सुनहरे रथमें बँधे जानेवाले हजारों और सैकड़ों घोड़े इन्द्रको यहाँ जाना होता है, यहाँ पहुँचते हैं। इस वचनसे इन्द्रके घोड़े कैसे सुविश्रित थे, यह बताया गया है।

प्रस्य-युजः— सुनवाले दान्य सुनकर ही घटकर लड़ते हो जानेवाले, मंत्र बोलते ही रथमें जुड़ जानेवाले। यह उत्तम



सुनिश्चित धोड़ोंका लक्षण है । इसारा होते ही खुद-ब-खुद जायकर खड़े हो जानेवाले । अत्यन्त सुनिश्चित धोड़े ही ऐसा कर सकते हैं ।

केशिनः- उत्तम अयाल ( गर्दन के बाल ) वाले ।

हिरण्यये रथे युक्ताः- सोनेके रथमें जोड़े जानेवाले ।

सहस्रं शतं हरयः- हजारों अथवा सौ घोड़े ।

एक रथमें हजार अथवा सौ घोड़ोंका जोड़ा जाना सम्भव नहीं । इन्हें साथ दूसरे अधिकारी भी होंगे, ये घोड़े उन्हींके होंगे । बड़े लोगोंके रथके साथ अनेक घुड़सवार होते हैं, उसी प्रकार इन्हें साथ भी होंगे । अथवा आम्कारिक भाषामें यह “ किरणों ” का वर्णन होया क्योंकि अनेक स्वल्पपर “ हरी ” भी घोड़ोंके जोड़े जानेका वर्णन है । सौ घोड़ोंका रथमें जोड़ा जाना सम्भव है । अतः हजार और सौ यह वर्णन आम्कारिक होना चाहिए अथवा किरणोंका आम्क होना चाहिए ।

### गाय

इन्द्रका सम्बन्ध जैसा धोड़ोंके साथ है, वैसा ही गायोंके साथ भी है । जैसे—

१ यन्मस्य मही रघुवृद्धा ( ११७ )- यन्के लिए बहुतसा दूध देनेवाली गायकी आवश्यकता होती है, क्योंकि यन्में इन्द्रकी युक्ताया जाता है ।

२ उभा कर्णा हिरण्यया ( ११७ )- गायके दोनों कर्ण सोनेके किहूके सुसोभित होते हैं ।

३ नः देयतीः तुवि-याजाः सन्तु ( १५३ )- हमारी गायें बहुत दूध देनेवाली हों ।

४ अयलः न कामः गोमति यजे नः आ मज ( ३१८ )- बस अथवा अमरों द्वारा करनेवाला सू हमें गायोंके गोष्ठको दे । गायोंके गोष्ठमें हथ पड़े ।

५ सयर्जुयां सुदुग्धां उरुधारां दधे चेन्नु इन्द्रं ब्राह्मणे ( २५५ )- दूध देनेवाली, सरलतारों युक्तनेवाली, बहुत दूध देनेवाली, समरूपी गायोंके लिए इन्द्रकी भेदायना करता हूँ ।

६ नः गव्यूर्ति घृतैः यज्ञ उक्षतं ( २२० )- हमारे गायोंने स्नानोपर घीकी चूसे हो, हमें घी बहुत मिले ।

७ घेतयः गावः वत्स ( २०१ )- हुआव गायें अपने पछड़ेके पाल जाती हैं ।

यह गायोंका वर्णन इस ऐन्द्र काण्डमें है । बहुतसी गायें हमारे पास रहे, और दूध व घी लूट मिले, यह तात्पर्य है ।

### इन्द्रकी माता

१ इन्द्रं त्वा देवीं जनिनी अजीजनत् ( १७९ )- तुम इन्द्रकी सबको उत्पन्न करनेवाली धावर्ण्यपित्री इन देवियोंने उत्पन्न किया । इस इन्द्रकी भी मातायें हैं ।

२ घन्धानासः ईस्त्रयन्तीः अघस्युवः जातं ॥ उपासते ( १७५ )- स्तुतिके योग्य, गति करनेवाली, निरन्तर कार्य करनेवाली उस माताका यह बलवाली पुत्र उत्पन्न हुआ, उस पुत्रकी वह उपासना करने लगी, उसके पास रहकर उसकी सेवा करने लगी ।

### एक स्नानपर बैठकर स्तुति करना

एक स्नानपर बैठकर, सब संगठित होकर इन्द्र परस्पर का ही उपासना कार्य लोग करते थे ।

१ तत् सचा गाय ( ११५ )- उस सत्त्वोंकी एक स्वातंत्र्य बैठकर गायो ।

२ आ इव, नियीद्वत्, इन्द्रं अभिप्र गायत ( ११४ )- जानो, बेंडो और, सब मिलकर इन्द्रके स्तोत्र गाओ ।

३ इन्द्रं इत् सचा स्तोत, मुद्रेः शंसत ( ११२ )- इन्द्रकी एक जगह बैठकर स्तुति करो और उसकी बारबार स्तुति करो ।

४ यामनि जीवाः ज्योतिः भशीमहि ( २५९ )- यन्में एक जगह मिलकर स्तोत्र गावें और तेज प्राप्त करें ।

५ संभ्राच्या धियाः मयवान् आगमत् ( २९० )- एकत्र बैठकर गावें यवे स्तोत्रोंको सुननेके लिए इन्द्र आता है ।

६ धियां ओजसा दिवाः पतिं स्मेत ( १७२ )- अपने धन्वे धुलोकके स्वामी इन्द्रको एक जगह इन्द्रके होकर बैठकर स्तुति करो ।

७ यथो यथा, त्वा स्विदन्त अभिनेनुमः ( ४०७ )- यथो जैसे एक जगह इन्द्रके होते हैं, उसी प्रकार हम भी एक जगह इन्द्रके होकर तुल्य उपासना करते हैं ।

८ सधमाये जाधि नः वृधे भय ( २३९ )- धम स्वानमें एकत्र बैठकर तू इन्द्र । हमारा मित्र हो, और हमारी उन्नतियों सहयोग हो ।

जहाँ यज्ञ होता था, वहाँ सब कार्य करते थे, एक जगह

इकट्ठे होकर बैठते थे और साथ मिलकर इन्द्रजी प्रार्थना, स्तुति और उपासना करते थे और एकजगह बैठकर प्रार्थना करने के कारण उनमें एकता थी । एक जगह इकट्ठे होनेका यह लाभ है ।

**ज्ञानी कैसे होता है ?**

१ कः प्रश्ना तं इन्द्रं सचयति ( १४२ )— कौन सागो उस इन्द्रजी उपासना करता है ? एक स्वामय्य बैठकर उसकी प्रार्थना करनेसे ज्ञानकी वृद्धि और सामर्थ्य प्राप्त होता है ।

२ उपहरे गिरिणा संगमे च नदीनां धिया निमो अजायत ( १४३ )— पर्वतकी उपासका और नदीके संगम पर बैठकर अपना मन उस परमात्मानमें लगाते महाज्ञानी बनता है ।

सागी बननेके लिए ऐसी सपस्या करनी चाहिए । पर्वतपर और नदीके संगमपर मनकी एकाग्रताके लिए अनुकूल वातावरण मिलता है । घरमें भी यदि एकाग्र स्थान मिले और मन एकाग्र हो इसके लिए आवश्यक संस्कारों के साधना आरम्भ होनेपर मन एकाग्र होनेसे जो लाभ होने सम्भव है, वे लाभ हो सकते हैं । योंही अधिक बच्ये हैं, वत इतना ही है, पर लाभ होगा अवश्य ।

**इन्द्रका रथ और वज्र**

१ अनया (अमयः) ते अभ्याय रथे ततश्च, इन्द्रा युगमन्तं घञं ( ४४० )— मनुष्य वादीकर श्रमपूर्वमे इन्द्रके घोड़ेके लिए रथ बनाया, और देखने कारीगर तैयारने इन्द्रके लिए तेजस्वी वज्र तैयार किया ।

उत्तमसे उत्तम रथ और वज्र लेकर इन्द्र उत्तमशक्तिके संपन्न हो जाता था, और आमु रथ इत्यादि जगति में और तथ्या फोकारके वज्र बनाकर इन्द्रकी देता था । मुद्र करने-वाले जोरोंकी उत्तमसे उत्तम शस्त्रास्त्र बनाता आवश्यक है, यही तो मुद्रमें विजय मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है । इन्द्रके पास शत्रु, स्वयं आदि उत्तम कारीगर हैं, और मुद्रके लिए आवश्यक शस्त्रोंका उत्तम रीतिसे निर्माण करते हैं । इस कारण इन्द्र सदा ही विजयी होता है ।

**इन्द्र जलम ठीक करता है**

१ यः समिधियः श्रुते जित् जुष्टयः आवदः पुरा सधि संधाता, मधया पुरु-वसुः सिद्धिं पुनः निष्कृती

१६ (ताम र्हन्वो)

( २४४ )— वह इन्द्र जोइनेका कोई साधन न होते हुए भी किसी सधिके दूट जानेपर शीघ्र जोड़ देता है, और धनधान्य, बहुत ऐश्वर्यवान् इन्द्र दूटे हुए भागीकी उत्तम रीतिसे फिर जोड़ देता है, और धानोंकी ठीक करता है ।

अत्राहं प्रति मुद्र करनेवाले योनोंकी इतना ज्ञान आरम्भक है । मुद्रमें सचयति जलम जो होने हो है, पर उनको शीघ्र ही ठीक करनेका ज्ञान होता आवश्यक है । इन्द्र इस विद्यामें कुशल है, इसे उबरोरन बनन स्पष्ट करता है । अन्य देवोंमें अजितकीकुमार इस कार्यमें निपुण है, पर इन्द्र बीर होते हुए भी पारंगतो ठीक करनेमें वह कुशल है । यह यहां इच्छ्य है ।

**दुःख दूर करना**

इन्द्र दुःखोंके दुःख दूर करता है । इस विषयमें निम्न यह है—

१ दुष्कर्म्यं पपासुय ( १४१ )— दूरे स्वर्जोंकी और उनके कारकोकी दूर कर । दुःख देनेवाले स्वप्न आये हो न ऐसा कर ।

२ निर्मतीतां परिकृज्य वेद्य ( १५५ )— दुःखोंकी दूर कैसे किया जाए यह व जानता है ।

३ अहः धदः शुभ्यु परियदां ह्य ( १५६ )— प्रति-दिन अपनी मुद्रता करनेवाला अपनी अनिष्ट अथवा दूर करता है । उसी प्रकार रोज साफ रहनेसे विपत्तिया दूर होती है ।

४ अग्नीनां अप दुर्मतिं अप, नः बंहसः अप युयुतन ( १५७ )— रोग दूर करो, दुर्बुद्धि दूर करो और हमसे होनेवाले पाप दूर करो । दुष्ट बुद्धि दूर होनेका अर्थ है, पाप दूर होने और पाप दूर होनेका मतलब है रोगोंका दूर होना ।

५ वै द्विपः अति नयति, तं मय्यं अहः न, दुर्गितं न अष्ट ( १५८ )— जिसे दायते दूर ले जाया जाता है, उस मनुष्यको पाप नहीं लगता और दुष्ट भाव भी उसके पास नहीं आते ।

पापके कारण दुःख उत्पन्न होते हैं, इसलिए अपनेमें पापको प्रवृत्ति न हो, मन-साधधान रहना चाहिए । अपना शरीर, मन, इन्द्रियें शुद्ध रहें, पापको प्रवृत्ति दूर हो । इन सबसे होनेसे हमसे दुःख स्वयं ही दूर हो जायेंगे, और हम सुखी होंगे । वास्तव दूर होनेका यह अर्थान् प्रत्येकको करना चाहिए ।

### विरुद्ध आचरण न करना

हम विरुद्ध आचरण न करे, इस विषयमें जागेंगे मन्त्र देखें—

१ न कि इनीमसि ( १७६ )- हम कोई हानिकारक काम नहीं करते ।

२ न कि आयोपयामसि ( १७६ )- हम कोई विरुद्ध कार्य नहीं करते ।

३ मंत्रश्रुत्यं चरामसि ( १७६ )- भर्त्ताओं को उपदेश किया है । उसीका हम आचरण करते हैं ।

४ हे आधर्येण । दोषः भागात्, सधितारं वेधं स्तुहि ( १७७ )- हे अश्ववेदके अध्ययन करनेवाले । यदि तेरे आचरणमें कोई दोष हो गया हो तो जगत्के उत्पन्न करनेवाले देवकी स्तुति कर ।

“ सधिता ये सूर्यस्य प्रसधिता ” सधिता यह सब जगत्का उत्पन्न करनेवाला देव है । उसकी स्तुतिसे सब दोष दूर होते हैं ।

५ उग्रं घञः अपाधघीः ( ३५३ )- क्रोधयुक्त बातें न कर, इससे बहुत कष्ट होते हैं ।

६ अयतः न हिमोति, कामं रथि न हृदुशते ( ४४१ )- शूद्र आचरण न करनेवाला मनुष्य उस उच्च स्थानको नहीं पा सकता । जितना चाहिए उतना धन नहीं प्राप्तता ।

७ विद्वान् मित्रः नः मनुनीती नयति ( २१८ )- ज्ञानी मित्र हमें सरल मार्गसे ले जाता है ।

८ यं अद्रुहः पामि सः मृत्यः सुमीय स ( २०६ )- जिसकी शत्रुता करनेवाले देव रखा करते हैं, वह मनुष्य सुनीतिसे कलनेवाला होता है । उसमें मार्गसे चलनेवाले मनुष्यकी देवोंके सहायता मिलते हैं, इसलिये सदाचारसे प्रवीण करें, यह वेदमें कहा है ।

९ वि-भ्रतानां धर्तारं यद्वज्र वपा गिरा धन्वेत ( २८८ )- विभ्रोय शूद्र नियमोंके पालन करनेवाले वज्रकी स्तुतिपूर्वक वज्रका करें, और उसके समान स्वयं भी उत्तम नियमोंका पालन करें ।

### पुष्टिकारक अन्न खावें

१ नः इयं पीवरीं वृणुहि ( ४५५ )- हमारे अन्न अधिक पोषण करनेवाले कर, और ऐसे अन्न तू खा ।

### माईबन्ध कोई नहीं

१ त्वं जनुया अभातृव्यः, अ-ना, सनातु अभापि, शुधा इव आपित्वं इच्छसे ( ३९९ )- हे इन्द्र ! तू जन्मसे

ही अनुप्राप्त है, तेरे ऊपर शासन करनेवाला कोई नहीं है, तेरा भाई कोई नहीं, मुझसे ॥ भाईपनेकी इच्छा करता है ।

इन्द्रका कोई भाई नहीं, इस कारण भाईबन्धका समझ उसके लिए कुछ है ही नहीं । इन्द्र पर शासन करनेवाला भी कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि यह ही सब पर अधिकार करता है । इसको किसी मित्रकी भी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह इतना सामर्थ्यवान् है, कि यह अकेला ही सारे शत्रुओंका नाश कर सकता है । यह युद्ध द्वारा सब शत्रुओंको दूर करता है, इस कारण जिसके शत्रु दूर होते हैं, वह इससे प्रेम करता है । इस प्रकार इसको चाहनेवाले मित्र बहुत हैं, पर वे इन्द्रकी युद्ध कुशलताके कारण ही मिले हैं ।

### घर कैसे हों

१ निधातु त्रिकथं वयस्तये छविः दिशुं दारणं मरं [ देहि ] ( २९६ )- तीन मजिन, तीन छपरवाले, रहनेवालोंका कल्याण करनेवाले, आश्रयके योग्य और उत्तम प्रकाशयुक्त घर मुझे दे ।

घर तीन मजिलोंवाले हों, तीन भागवाले हों, एतमें बहुत प्रकाश आवे रहनेवालोंका कल्याण हो, एतमें लोगोंको रहनेकी इच्छा हो, ऐसे सुखकारक घर हों ।

### दीर्घायु हों

१ यातः नः हृदे शंसुः मयोभुः मेयज आयातु, नः आर्युषि प्रसारिपत् ( १८४ )- बापु हमारे घरमें हृदयकी सुख और आरोग्य देनेवाले औषध अपने साथ लावे, इससे हमारी आयु लम्बी हो । घरमें शूद्र बापु आवे, उसके साथ आरोग्य देनेवाले, सुख सुख हमारे घरमें मनुष्योंको प्राप्त हों, और इस कारण हम सब दीर्घायु हों ।

२ नः तुवे तुनाय जीवसे द्राघीयः आयु इ कृष्येतन ( ३९५ )- हमारे पुत्र पौत्रोंकी दीर्घजीवन उत्पन्न रीतिसे प्राप्त हो ।

३ सुवीराः शतहिमाः मदेम ( ४५४ )- उत्तम वीर समान हमारे हों, और वे सब दीर्घायु तक जायन्ते रहें ।

### यज्ञ प्राप्त हो

१ त्याम्नातं इत् यज्ञ ( १९९ )- तेरी सहजपासे यज्ञ मिले ।

२ श्रवसा पाति यज्ञाः अस्ति ( २४८ )- तू धनका स्वामी है, और यज्ञकी है ।

इतलिय हम यज्ञस्वी हों, ऐसा कर ।

## भूमि धूमती है

भूमि धूमती है, इस विषयका आगेके भग्नभागमें उल्लेख है—

१ भूमिं व्यधत्तयत् ( १२१ )— उसने भूमिकी किरने-  
वाली बनाया ।

चन्द्रको धूपकी किरणें प्रकाशित करती हैं

१ गो चन्द्रमसः गृहे त्यङ्क्तु अपीच्यं नाम  
अमन्वत ( १४७ )— प्रकाशित होनेवाले चन्द्रके मन्वत्तमें  
धूपकी गुप्त किरणें बिलीन होकर उसे प्रकाशित करती हैं,  
ऐसा माना जाता है ।

## विधादेवी

१ पावका वासिनीयती धियावसुः सरस्वती  
( १८९ )— पवित्र करनेवाली, अन्न और वस्त्र देनेवाली, बुद्धि  
बढ़ाकर दान देनेवाली, सरस्वतीदेवी है ।

## सौभाग्य प्राप्त हो

१ अथ नः प्रजायत सौभागं सायीः ( १४१ )—  
यान हर्ने उत्तम सत्तातोंकि साथ सौभाग्य है ।

२ नः सुळपासि ( १७३ )— हमें दू सुखी करता है ।

३ स्तोतृभ्यः सुळय ( २१३ )— स्तुति करनेवालोंकी  
मुखी कर ।

४ इन्द्रावृषणा धर्यं स्वस्तये सव्याय वाजसातये  
हुयेम ( २०६ )— हम इन्द्र और वृषाकी अपने धनपाणके  
लिए, अपने साथ मित्रताके लिए, अन्न और वस्त्र बढ़ानेके  
लिए बुलाते हैं ।

## सोमरस

इन्द्रकी यतमें बुलाया जाता है, वह अन्न है और शासन  
पर बैठता है, उसके बाद उसे सोमरस पिया जाता है । उन  
सोमरसोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ अम्यः ( १२४ )— सोमरस यह अन्न है ।

२ युक्षितमः ( ११६ )— सोमरस तेजस्वी है, वह  
धमकता है ।

३ इन्दुः ( १४५ )— चन्द्रके समान वह धमकता है ।

४ तेजन्ममदः ( ११६ )— उसके उताहा और आनन्द  
मिलता है ।

५ यथा शिरः ( १४५ )— जोर आटा और दूध  
मिलाकर उसे पिया जाता है ।

६ सोमः विद्वत्सां सुक्षितीनां चेततुः ( १५४ )—  
सोम सब उत्तम मनुष्योंका उताहा बढ़ानेवाला है ।

७ नि पुत ( १५९ )— सोमरस छानकर शुद्ध पिया  
जाता है ।

८ दध्याशिरः सोमावः ( २९३ )— सोमरसमें दही  
मिलकर वह पिया जाता है ।

९ आदीर्घान्ममत्तु ( ३५० )— दूध आदि जितमें  
मिलकर जाता है, ऐसा वह सोमरस हमारा उताहा बढ़ाता है ।

१० ख्येन्ममः सुस्रवभ्रमः सोमः ( ३५१ )—  
शोभावाला और तेजस्वी सोमरस है ।

११ पुनानः हरिण्या यथा विद्वत् क्षेपांसि तरसि  
( ४६३ )— सोम शुद्ध होकर अपने हरे रंगके तेजसे सभी  
जन्तुओंकी पारता है । उसके पीनेसे इतना बल अर्पण बढ़ता है ।

१२ धाप रोचते । पुनमः हरिः अरुपः ( ४६३ )—  
इत सोमरसको पारा धमकती है । छाननेके बाद यह  
सोमरस चमकता है ।

१३ रसिनः गोमसः सुतक्ष पित्र ( २३९ )— पाणके  
दूधमें मिश्रित सोमकी धी ।

१४ सोमं सुनोत पत्नी एवत ( २८५ )— सोमरस  
मिलाली और पुरोडाशकी चमकती है ।

१५ घानावर्तं करमिणं मपूपयन्तं उन्निधमं नः  
प्रसः सुपस्य ( २१० )— धानकी लीकसे मिश्रित, पुरोडाशसे  
सम्पर्क होनेसे पुनत हमारे इस सोमरसकी सबेरी थी । ( धान-  
वन्त ) धानकी भूजकर उसका आटा सोमरसमें मिलाने है,  
( करम्भ ) हात्ती मिले हुए बड़ीकी करम्भ कहते हैं, ( मपूप )  
दूध और धानके घीन होसके साथ परोये जाते हैं । यह इन्द्रका  
सर्वेका पावता है ।

१६ अद्रमया प्रता अंशुना क्षपमाणः, यथा आदन्,  
इत्येत्त ( ३०५ )— पावरती सोम पीतनेके कारण प्रसन्न  
होकर जानेपर भी बहुलता मग्न पानेवाले रामाके समान,  
धामर्भ्यावान् हो होता है, निर्वल नहीं होता ।

सौमलता यह एक बलवती हिमालयके भीजवान् शिखर  
पर उबती थी । १०—१२ हजार फीटकी ऊँचाईपर मिलने-  
वाला सोम अत्युत्तम माना जाता था, यतमें यह सोमलता  
झड़ी जाती थी, अथवा पाववर्षासे परोसी जाती थी । यह  
पता पत्यरोसे कूटी जाती थी, और हाथकी अगुनियेति  
बहाकर जगहा दल निकाला जाता था, उसके बाद उसे  
थोड़ी-छलनीसे छान कर उसमें पानी, दूध, दही मिलाया  
जाता था, गहद भी उसमें मिलाया जाता था, तब यह पीने-  
के

लापक होता था । केवल रस लीला होता था, उममें पानी, बहो अथवा दूध मिलाकर थोडा घट्ट मिलातेसे वह पीनेके योग्य होता था ।

यह रस अग्नेमें चमकता था । इसके साथ पुआ, बडे, लोले और दुरोढास आदि खानेके लिए दिया जाता था । इसको पीनेके बाद भूर दुरोधमें सहान् उत्साह उत्पन्न होता था, और उस उत्साहमें घोर पुरष महान् शौर्यके काम करते थे ।

इन्द्र यह रस पैद चरकर पीता था, दूसरे लोग भी इसे पीते थे । आनन्द बढ़ानेवाला उत्साह बढ़ानेवाला यह पेय होता था । यममें यह पेय तैय्यार किया जाता था । हयनेके करनेके बाद यह पिया जाता था । यह सोमरसका वर्णन है ।

### इन्द्र स्तुत्य है

इन्द्र बहुत पराक्रमी है, इसलिये उसकी चारों ओरसे स्तुति की जाती है । देखिए—

१ पुर-हृतः ( ११५ )- बहुत खोप जिसकी स्तुति करते हैं ।

२ गिर्यणः ( १६५ )- ब्रह्मलोक ।

३ इन्द्रस्य गिरः न हि स्रगम् ( ३७३ )- तुम इन्द्रके सिवाय और किसीकी स्तुति नहीं होती ।

४ ये न्या आरभ्य चरामसि, ते इमे वर्धते ( ३७३ )- जो तुमसे स्तुति करना आरम्भ करते हैं, वे मे हूँ मेरे ही हैं, तेरे भक्त हैं ।

५ महान् अस्ति ( ३४६ )- इन्द्र 'तू' महान् है ।

६ विश्वा गिरः समुद्र-व्यथलं, रथीनां रथीतमं, पाजामां पति, सारपाति इन्द्रं अवीरुपम् ( ३४३ )- सब स्तुतियों, समुद्रके समान किसीके, रथियोंमें मुख्य, बलोंके स्वामी, भयनेके पालनकर्ता इन्द्रके यशकी बढ़ाती है ।

७ योजानां यानपतिः, हरिचान् इन्द्रः उक्थेभिः मन्दुष्ट ( २२६ ) बलोंके और अग्नेके स्वामी, घोड़ोंके रसनेवाला इन्द्र स्तोत्रमें प्रशंसित होता है ।

८ तव इदं सग्यं अस्तुतं ( २२९ )-तेरी यह मित्रता मज्द है ।

९ त्वदन्य- सार्धिता न अस्ति ( २४७ )- तेरे सिवाय स्तुतिके योग्य और शीर्ष भी नहीं है ।

१० यची-पमः ( १६९ )- वेदमंत्रों इस इन्द्रकी स्तुति की जाती है ।

### इन्द्रकी स्तुति

१ वोधन्मना शक्रः आशिषं शृणोतु ( १४० )- हमारे मनको इच्छा जाननेवाला सामर्थ्यवान् इन्द्र हमारी स्तुति सुने ।

२ चर्षणीनां सघ्राजं, गीभिः नव्यं, नृपाहं नरं मंहिष्ठं इन्द्रं यस्तोत ( १४४ )- मनुष्योंके सघ्राज, स्तोत्रमें स्तुति करने योग्य, यज्ञका परानव करनेवाले, नेता महान् इन्द्रकी स्तुति करो ।

३ ऊतये सुकप-हृन्तुं धवि धयि जुहमसि ( १९० )- हमारे सारक्षणके लिए, उत्तम रूप करनेवाले इन्द्रको हम प्रतिदिन बुलाते हैं ।

४ इन्द्रं गिरा अभि प्र अर्चं ( १६८ )- इन्द्रकी स्तुति करो ।

५ इन्द्रं घाणी अनुपस ( १९८ )- इन्द्रकी हमारी वाणी स्तुति करती है ।

६ ते गिरा अखुभं, धुपमं पतिं त्वाप्रति उब्रह्मन्तु ( २०५ )- तेरी स्तुति हमने की, वह वसवान् स्वामी तुम इन्द्रको पकड़ गई है ।

७ महे प्रचेतसे देवाय कदु वचः शस्ते, तप इत् अस्य वर्धनम् ( २२४ )- महान् जानी इन्द्रकी साधारण स्तुति भी उसके चरित्रका वर्धन करती है ।

८ यथा विदे सु-राघसं इन्द्रं अभि अर्चं ( २१५ )- जैसा चाकले हो, वैसा ही इन्द्रकी आराधना करो ।

९ अन्यत् मा चित् विशंसत, मा रिपण्यत, नृपणे इत् त्तोत ( २४२ ) हमारा कुछ न करो, बेरार प्रयत्न मत करो, बलवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो ।

१० इमा गिर राजा धर्षन्तु ( २५० )- यह स्तुति तेरा प्रभाव बढ़ाती है ।

११ पात्रकचर्षाः शुचयः पिपादिततः स्तोमं- अभ्यनूपत ( २५० )- अग्निके समान तेजस्वी नुद कानी स्तोत्रमें इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

१२ धृहते ब्रह्म अर्चतं ( २५७ )- महान् इन्द्रके लिए स्तोत्र कहो ।

१३ इन्द्रं नः ब्रह्माणि उप भूयत ( २६७ )- इन्द्रकी हमारे लोच अलक्ष्य करते हैं ।

१४ गायत्रिण- त्वा गायन्ति, आर्षेण- अर्चं अर्चन्ति, ब्रह्मणः त्वा उपेसिरे ( ३४२ )- गाय करनेवाले अनुष्य तेरे स्तोत्र गाते हैं, उपासक तेरी उपासना

करते हैं, और बाह्यग तुल्य इन्द्रका यह सबसे थोड़ा है, ऐसा वर्णन करते हैं ।

१५ मुद्गेन स्वाग्ना मुद्गेः उपधैः, मुद्गं इन्द्रं स्वामा ( ३५० )- मुद्ग सामगानते, मुद्ग स्तोत्रोक्तिं मुद्ग इन्द्रको स्तुति करते हैं ।

१६ अग्रहणं दायसः पतिं विश्वासाहं नरं दायिष्ठं विदन्वेदम् इन्द्रं गृणीषि ( ३५७ )- धार्मिकोंका सरक्षण करनेवाले, वल्ले स्वामी, सब अग्रभोंका नाश करनेवाले, नेता, सामर्थ्यवान्, सर्वथा इन्द्रकी स्तुति करो ।

१७ विश्वा ओजसा दिवः पतिं समेन ( ३७२ )- सब सामर्थ्यसे ध्रुवोके पालक इन्द्रकी एक स्वायत्त बंधन चपलता करो ।

१८ यः एक इत् जनानां अतिथिः भूः ( ३७२ )- जो अकेला ही इन्द्र अतिथिके समान लोगोंका प्रभु है ।

१९ घृह्णीः गिरः चरणी-धूतं इन्द्रं अभ्यनूयत ( ३७४ )- बहुत स्तुतिवां अनुयायिके प्रभु इन्द्रकी स्तुति करती हैं ।

२० अयसे इन्द्रं स्तुतिभिः अंहय ( ३७७ )- अपने सरसालके लिए इन्द्रके महत्त्वको उत्तम वर्णनति बढावो ।

२१ शतं आयसुरयाम् ( ३७७ )- इन्द्रकी स्तुति सैकड़ों समय करो ।

इस प्रकार इन्द्रकी स्तुति की जाय, यह इस वर्णनका उद्देश्य है । इन्द्रके गुण मानेवाले, सुननेवाले और इतरे लोग जो सामां हैं, उन सबका साथ इस स्तुतिके अवलम्बे होता है । अंतः—

“ वयवाही, शूरवीर, पराजित न होनेवाला, हमेशा विजयी, सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाला, युद्धमें किसीके भाग न झुकनेवाला इन्द्र है । ”

यही इन्द्रकी स्तुति है । बारबार यह कहा गया है । बार-बार सुनते-अपने मनपर उसका परिणाम क्या होगा इसका विचार पाठक करें । इस स्तुतिकी करनेवालेमें और सुननेवालेमें, मेरे अन्दर ये गुण आवें, ऐसा भाव उत्पन्न होता है, और यदि वह मूल करे तो कुछ दिनोंके अनुरूपनसे उसमें ये गुण जा जायेंगे और तब वह धूर्त बन सकेगा । स्तुतिसे यह काम होता है । देखीये गुण नुसलें आरंभ होते बिचार यह काम होता है । देखीये गुण नुसलें आरंभ होते बिचार मानेका मतलब है कि धनरति प्रारम्भ हो गई । उसके आगे उन गुणोंके अपने अन्दर जाननेका यत्न करना चाहिए । ऐसा भी यत्न करेगा वह थोड़ा होगा इसमें कोईशंका ही नहीं है ।

## उपमा

वेदोंमें उपमायें देकर विषय समझाया जाता है, वे उपमायें ऐन्द्र-काण्डमें इस प्रकार हैं—

१ गवे शं न ( ११५ )- गायको जैसे घास सन्तोष देते हैं, उसी प्रकार ये स्तोत्र ( श्राकिने इन्द्राय शं ) शान्तिमान् इन्द्रको सन्तोष देते हैं ।

२ पुण्यन्तः यथा पशुं ( १३६ )- जाल हाथमें लिए शिकारी जैसे पशुको खोजते हैं, उसी प्रकार हम ( त्या विचक्षते ) तुम इन्द्रको खोजते हैं ।

३ सिन्धवः समुद्राय इव ( १३७ )- नदियां जैसे समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार ( सिन्धवा कृष्टयः पिशाः अस्य मन्यये सं नमन्त ) सब प्रजायें इस इन्द्रके उत्साहके भागे झुकती हैं ।

४ गायः घेनयः वरखं न ( १४६ ) जैसे दुग्धाव गाय बछड़ेके पास जाती हैं, उसी तरह हमारी ( इमाः गिरः त्या अभि प्रनोनुयः ) ये स्तुतिवां तुम इन्द्रके पास जाती हैं ।

५ सुदुधां गोदुधे इव ( १६० )- उत्तम दूध सेनेवाली गायको जित प्रकार दूध-बुद्धिके समर्थ दुलते हैं, उस तरह ( उतये सुरूपकृतं घवि घवि लुहमसि ) अपने सरसालके लिए उत्तम दूध करनेवाले इन्द्रको रोज दुलते हैं ।

६ यौः न ( १६९ )- जित प्रकार ध्रुवोके विस्तीर्ण है, उस प्रकार ( दायः प्रथिता ) इस इन्द्रका बल विस्तृत है ।

७ कपोतः गर्वाधि इव ( १८३ )- जिस प्रकार कबूतर कबूतरोंके पास जाता है, उसी प्रकार ( अयं ते ) यह तेरे पास जाता है ।

८ सिन्धवः समुद्रं न ( १९७ )- जित प्रकार नदियां समुद्रको प्राप्त होती हैं, उस प्रकार ( इन्धवः त्या आयि- शन्तु ) ये सोमरत्न तुझे प्राप्त होते हैं ।

९ शशुं मधुसूयं रथि न ( १९९ )- काशीगरकी जिस प्रकार घोषण करनेवाले अन्न मिलते हैं, उसी प्रकार ( वाजी घातिनं ददन्तु नः ) भलवान् इन्द्र हमें पन देवे ।

१० वाजयन्तः सुवि यथा ( २१४ )- भय उत्पन्न करनेवाले जिस प्रकार भूयोंके पानीसे खेतोंको सींचते हैं, उसी प्रकार ( मंहिष्टं इन्द्रभिः सिंच ) भवान् इन्द्रको सोमरत्नो- से सींचो ।

११ युवजानिः महान् इव ( २२७ )- तबण स्त्रीका पति जित प्रकार स्त्रीके पास जाता है, उसी प्रकार ( युतं

उप याहि ) इस सोमने पास तु जा । इसमें समान मनके आकर्षणका वर्णन है ।

१२ सुते पाताप्याय इमसा ( १२८ )- सोमरसमें पानी मिला देनेके लिए लोग जिस प्रकार पानीके नहरोंके पास जाने हैं, उसी तरह ( दीर्घं मुने कदा अवावध्यात् ) इस महान् यज्ञमें तुझे सोमनेके लिए तेरे पास बच जायें ?

१३ अदुरया. धेन३. ॥ ( १३३ )- जिस तरह लोग न डूही पायने पास जाते हैं, उसी तरह ( अयं जगतः तत्पुत्रः इशानं स्पष्टं स्या अभिषोक्तुम् ) इस स्वावर व जगत् जगत्के स्वामी और आपन्नानी हम तुझे नष्ट होकर कब मिले ?

१४ स्वसरेषु धेयवः पसं न ( १३६ )- बीजात्ममें हुआ व पाप जिस तरह अपने बछड़ेके पास जाती है, उसी प्रकार ( पसं मनीषह इन्द्रं ग्रीभिः अभि नचामहे ) सुन्दर और शत्रुकी हारनेवाले इन्द्रके पास स्तुति करते हुए जाते हैं ।

१५ सुद्रव्यं नेमिं स्वधा इव ( १३८ )- उत्तम लज्जरीकी पुराणी बढई जिस प्रकार उत्तम बनाता है, उसी तरह ( पुगृहते गिरा आ मने ) हाथों द्वारा प्रसूतित इन्द्रको न प्रभाव करने अनुत्तम बनाता हूँ ।

१६ पाशिनः धेन३ इव तान् भति आयाहि ( १४६ )- ज्ञान हाथोंमें धारण करीयाले मित्रारी जिन तरह रेगिस्तानको पार करने जाते हैं, उस प्रकार तू दुष्टोंको पार करने आ ।

१७ पाशिनः न, मा स्या निपेसुः, पदि ( १४६ )- ज्ञान लिए हुए मित्रारी जिन प्रकार बर्षायोंको बचते हैं, उस प्रकार तुझे भीष्ममें कोई भी न बचने, तू हमारे पास आ ।

१८ धाजयन्तः स्याः इव ( १५१ )- अन्न लेकर जानेवाले अपने ताम्र ( मधुसूतमाः सिरः स्या उद्वरते ) मयूर स्त्रीके तेरे लिए धोते जाते हैं, वे तुजको पकड़ने हैं ।

१९ यथा गौरः ( गृधः ) यध्यन् अपाटयते हरिणं भर्गनि ( १५२ )- जिन प्रकार व्याघ्र हरिण पारित भरे हुए ताम्राङ्गे पाग जाता है, उसी प्रकार ॥ ( नः सुयं आगदि ) हमारे पास जखी आ ।

२० भाने न ( १५३ )- भस्मकान्ते सामान ( यज्ञागं यगुविद् स्या पराजयसि ) ब्रह्मकी, पाकान्ते तेरी हम आतापना करते हैं ।

२१ यथा पुनेऽया पिता ( १५९ )- जैसे पुत्रोंकी पिता

मित्रा देता है, वैसे ही ( नः शिष्टः ) तू हमें भी मित्रा दे ।

२२ व्याप. न ( १६१ )- जैसे पानी सोममें मिलाया जाता है, वैसे ही हम तुझे प्राप्त करते हैं ।

२३ सूर्यं आयन्तः इव ( १६७ ) जिस प्रकार बिजोंमें सूर्यका सहाय लेती हैं, उसी प्रकार ( विद्वेत् इन्द्रस्य मक्षत ) सब विद्वत् इन्द्रका आश्रय लेता है ।

२४ भानं न ( १६७ )- पिताके पत्नी भागकी व्रत तरह पुत्र पानेकी इच्छा करता है, उसी तरह ( प्रति दीधिमाः ) हम अपने पितारे बननेसे हिरसा मिले ऐसा चाहते हैं ।

२५ नियया पद्वान् इव ( १७१ )- बन्धनमें बंधे हुएों जैसे भुक्त क्रिया जाता है, उसी तरह ( अस्मान् मुमुग्धि ) हमें मुक्त कर ।

२६ चक्रिणीं भक्षेण इव ( १७९ )- जैसे बन्धुनके आधारपर रहते हैं, उसी तरह ( पृथिवीं उत धा विपद्म तत्संभ ) पृथिवी और धृ पों दोनों ही सोरोंकी वह आधार देता है ।

२७ यंश इव स्या उपेमिरे ( १८२ )- पांश जैसे ऊपर उठते हैं, उस तरह तुझे ऊपर करते हैं । इन्द्रकी स्तुति पाकर इन्द्रने यज्ञको बढ़ाते हैं ।

२८ सूर्यः रदिमभिः रजा न ( १८७ )- जैसे सूर्य अपनी विरसति भस्मरिषको भर देता है । उस प्रकार ( इन्द्रियं रस आ वृणक्तु ) तेरी इन्द्रियको शक्ति तुझमें भर दे ।

२९ स्यीः ॥ ( १८९ )- स्यमें बैठनेवाले बौर जैसे अपने इन्द्रिय स्थानपर पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार हमारी ( सिरः ) शक्तियाँ तुझे पहुँचती हैं ।

३० पसं धेयवः स्याः इव ( १९१ )- बछड़ेके पाग जैसे हुआ पाग जाती है, उस तरह ( स्या अभि अनूयन् ) तेरे पाग हमारी स्तुति पहुँचती है ।

३१ सूर्यं यथा ( १९४ )- सूर्यको जैसे हम बतारा अपने इन्द्रिय स्थानको ले जाते हैं, उसी तरह ( इन्द्रं मा पर्वमामांय ) इन्द्रको हम पर्वमें लाते हैं ।

३२ अंहः न ( १९५ )- हूँ वापने जैसे बचने हैं, उसी तरह ( द्विषः तरनि ) पात्रमंभि भी अपना बचाव करते हैं ।

३३ शोणीः इव ( १९३ )- लूणको जैसे तारको आयाव देती है, ( नः पयः प्रति ह्वय ) उसी तरह हमारी स्तुति स्वीकार कर ।

३४ यथा जनयः यथे पति न पतिष्यन्तः ( १९५ )- जैसे पितापुत्र अपने पतिजा आत्मन्य बचती हैं, उस तरह

(ऊतये इन्द्रं स्वर-युवः मतस्यः अचछन्नं अनुयत) अपने सरसगने लिए इन्द्रको आत्मज्ञानमुक्त अपनी स्तुतिसे प्राप्त होते हैं।

३५ उषा इव ( ३७९ )- उषा जिस प्रकार प्रकाशमें दिव्यको भर देती है, उस प्रकार तू ( उम्मे रोदसी या प्रमाय ) पृथ्वी और द्युलोकको अपने तेजसे भर देता है।

३६ गिरिः न ( ३९३ )- पर्वतके समान ( निदरतः पृथुः दिव्यरूपितः ) सबसे महान् तू द्युलोकका स्वामी है।

३७ उद्गा समन्तः उद्भिः इव ( ४०६ )- पानी लेकर जानेवाले मित्र जिस प्रकार पानीसे लेकते हैं, उसी तरह हम ( त्वा उप सख्यमहे ) तेरे पास आते हैं।

३८ यस्यसे रणा गावः न ( ४२२ )- जिस प्रकार पासको सुन्दर गावें प्राप्त करती हैं, उसी तरह ( ते सस्ये ) तेरी मित्रताके लिए हम तेरे पास आते हैं।

३९ पुनासः वाज सातये पितरं न ( ४५९ )- पुष लग्न प्राणिके लिए जैसे पिताके पास जाते हैं, वैसे ही हम तेरे पास आते हैं।

४० महिषं यौरं वाज-सातये ( ४५९ )- जिस प्रकार महान् बीरको युद्धमें बुलाते हैं, उसी तरह तुझे अपने सरसगने लिए बुलाते हैं।

४१ सूरः सयुग्मिः न ( ४६३ )- सूर्य जैसे अपनी गिरणोंसे धमकाता है, उसी प्रकार सौमरस ( वृष्टस्य घारा रोचते ) अपने तेजसे धमकाता है।

४२ नृत्तः । मयं प्रथमं पुर्यं तव तत् अयः दिवि प्रयाक्यं ( ४६६ )- हे इन्द्र ! मनुष्योंका हित करनेवाले तेरे ये अश्वं कर्म द्युलोकमें प्रजलनीय हो गए हैं।

४३ देवस्य अस्तुः सहसा रिणन् ( ४६९ )- राक्षसोंके प्राण तू मार देता है। ( देवः- राक्षस )

४४ विश्वं अ-देवं सहसा अभिभुवः ( ४६९ )- सभी मनुष्यों से तुने अपने सामर्थ्यसे पराजित किया।

### सुभाषित

१ सरयने सखा गाय ( ११५ )- सामर्थ्यशाली इन्द्रकी एक साथ स्तुति करो।

२ शाकिने दां ( ११५ )- क्षत्रियमान्को मुक्त प्राप्त होता है।

३ हे शतप्रतो ! ते घुम्नितामः ( ११६ )- हे सैकड़ों बन्नें करनेवाले घोर ! तेरा आनन्द निरचयसे तेजकी बगनेवाला है।

४ त्वं सारसः बलात् बोजसः अधिजानः ( १२० )- तू शत्रुको हरातेवाले बल और श्रेष्ठ सामर्थ्यसे उत्तम हुआ है।

५ भूमिं व्यर्जयत् ( १२१ )- उतने भूमिको घुमाते हुए स्थापित किया है।

६ त्वं एक इत् वस्य ( १२२ )- तू अकेला ही पर्वतोंका स्वामी है।

७ हे अनामयिन् ! तेरिम ( १२४ )- हे निर्मयबीर ! तुझे हम आनन्दित करते हैं।

८ नर्यापस वृषमं अस्तारं ( १२५ )- तार्क्षत्रिक हितके काम करनेवाले, बलवान् और शत्रुपर शासक फेंकनेवालेकी मैं प्रशंसा करता हूँ।

९ हे इन्द्र ! तत् सर्वं ते ददो ( १२६ )- इन्द्र ! ये सब तेरे आधीन हैं।

१० युवा सरता सुवीती आनयत् ( १२७ )- जो तबज मित्र है, वह सुवीतिसे युक्त जाता है।

११ आदिश सूरः अस्तु पुनः मा अभ्यायमत ( १२८ )- चारों ओरसे शस्त्रोंकी मार करनेवाला शत्रु हमारे ऊपर शत्रुके समय चढ़ाई न करे।

१२ तत् त्वा युजा वमेम ( १२८ )- यदि वंसा शत्रु आये भी तो हम तेरी सहायतासे उसे दूर करेंगे।

१३ ऊतये सारसि सजित्यान् सदसाहं यर्पिष्ठं रयिं आभर ( १२९ )- हमारे सरसगने, लिए, उपभोगके योग्य, शत्रुपर विजय प्राप्त करनेवाले, हमेशा शत्रुकी हरातेवाले, श्रेष्ठ वनते हमें भर दे।

१४ वय महाधने अमं वृमेपु युजे पक्षिण इन्द्रं हवामहे ( १३० )- हम सब तथा छोटे पक्षियों और पक्षी-वाले शत्रुसे साथ होनेवाले छोटे युद्धमें सहायताके लिए मित्रके समान इन्द्रकी सहायताके लिए मुकाते हैं।

१५ सहस्रपादे पौंस्य आदिदिष्ट ( १३१ )- हमारों भुजाओंवाले राक्षसोंसे साथ होनेवाले युद्धमें इन्द्रका बल प्रबल होता है।

१६ दिव्वाद्धिः अपचिन्धि ( १३४ )- सब शत्रुओंका नाश कर।

१७ वाघः मृषाः परिजहि ( १३४ )- बाघा करनेवाले शत्रुओंको मार दे।

१८ स्याहं तत् यमु आभर ( १३४ )- सुन्दर पन हमें भरपूर दे।

१९ यामं चित्रं नृयजते ( १३५ )- युद्धमें शत्रुपक्ष शत्रुकोरता बहूँ दिताता है।



२० चिद्रवाः कृष्टयः चिद्राः अस्य मन्यवे संनमन्त  
( १३७ )- तव प्रजायै इतके औषके आषे झुकती है ।

२१ देवानां भवः इत् महत् ( १३८ ) देवोत्ते प्राप्त  
होनेवाले सारक्षण निदम्बयो महान् है ।

२२ तत् अस्माकं ऊतये घये आतृणीमहे ( १३८ )-  
उन सरक्षणोंको हम अपनी रक्षाके लिए स्वीकार करते हैं ।

२३ न प्रजायत् सौभगं सावीः ( १४१ ) हमें पुत्र  
पौत्रोंकी प्राप्त करानेवाले सौभाग्य दे ।

२४ दुप्यज्यं परास्तुष ( १४१ )- दुलकारक स्वल्प  
झर हों ।

२५ सः ध्रुवभः युधा नुवि प्रीयः अनन्त क ?  
( १४२ )- वह बलवान्, तरुण, मजबूत गर्वनेवाला, और  
किसीके भागे न झुकनेवाला इन्द्र कहा है ?

२६ गिरिणां उपहरे च नदीनां स्वंगमे धिया यिप्रः  
भजायत ( १४३ )- पर्वतोंकी उपरपका और नदियोंके समान  
पर बंटकर बुद्धि स्थिर करके अनुप्य गानो होता है ।

२७ चर्यणीनां सप्ताजं नृपाहं महिष्ठं नरं इन्द्रं  
प्रस्तोत ( १४४ )- मनुष्योंके सप्ताजके समान, शत्रुजन  
पराभव करनेवाले, श्रेष्ठ नेता इन्द्रको स्तुति करो ।

२८ अमृमसः शूरे रघुः अर्षीचर्यं नाम ( १४७ )-  
सन्त्रके मण्डलमें सूर्यका प्रकाश समकता है ।

२९ अहं पिनुः श्रुतह्य मेघा परिजग्रह सूर्यः इव  
अजनि ( १५१ )- मैंने पालन करनेवाली तारकी मुझ  
स्वीकार करली है, इस कारण मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो  
गया है ।

३० नः देयतीः नुवि-वाजाः सन्तु ( १५३ )-  
हमारी गाँवें बहुत दूध देनेवाली होंगें ।

३१ पिथ्वासां सुक्षितीनां चेतुः ( १५४ )- सब  
उत्तम मनुष्योंको उत्तम प्रेरणा मिले ।

३२ विश्वा-साहं शतक्रतुं चर्यणीनां महिष्ठं इन्द्रं  
अभि प्र गायत ( १५५ )- सब मनुष्योंके नाम बहने-  
वाले, संकष्टों कायं करनेवाले, सब प्रजाओंमें श्रेष्ठ इन्द्रकी  
स्तुति करो ।

३३ ऊतये सुरुपशतं घाविघानि सुहृमसि ( १६० )  
-मन्ये सरक्षणके लिए शूरवर रूप बनावेवाले इन्द्रको रोग  
हम दुष्टता है ।

३४ त्वं ईशिपे ( १६२ )- तू सभीपर रवाना है ।

३५ योगे योगे वाजे वाजे ऊतये तयसतरं इन्द्र  
ह्यामहे ( १६३ )- प्रत्येक कार्यमें अपनी रक्षाके लिए  
इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ।

३६ इन्द्रः महान् परः च ( १६६ )- इन्द्र महान् और  
श्रेष्ठ है ।

३७ वशिणे महत्यं अस्तु ( १६६ )- वधपारी इन्द्रको  
यज्ञ प्राप्त हो ।

३८ धीः न शवः प्रथिना ( १६६ )- दुष्टोंके समान  
उसका यज्ञ विनाश है ।

३९ शुमन्तं चित्रं ग्रामं वशिणेन आ संघुभाय  
( १६७ )- तेजस्वी, विलक्षण और प्रहृण करने योग्य वन  
हमें राधे हावसे दे ।

४० सप्तासाहं ऊतये आच्याययामसि ( १७० )-  
सब मनुष्योंको एक साथ मारनेवाले इन्द्रकी अपने सरक्षणके  
लिए अपने पास बुलाते हैं ।

४१ हे शतक्रतो ! अद्रं अद्रं इयं ऊजं न आ भर  
( १७३ )- हे संकष्टों कर्म करनेवाले इन्द्र ! हमें बलपूर्ण-  
कारक अन्न और बल भरपूर दे ।

४२ नः सुलघामसि ( १७३ )- हमें तू ही सुखी करता है ।  
४३ न कि इमीमसि ( १७६ )- हम कोई हानिकारक  
कार्य नहीं करते ।

४४ न कि आपोययामसि ( १७६ )- हम कोई भी  
विषम कार्य नहीं करते ।

४५ मंत्रधुर्यं चरामसि ( १७६ )- वेदमंत्रों को  
कहा है, वही हम करते हैं ।

४६ हे आर्यण ! दोष अगाम् देवं सविता  
स्तुधि ( १७७ )- हे अर्षा ! यदि कोई दोष हो गया है  
तो तत्प्रातिवेकी स्तुति कर ।

४७ अमतिरकुतः इन्द्रः दधीचः अस्थिभिः नय  
नयतीः वृत्राणि जघान ( १७९ )- जितरा कोई मूकबला  
महो कर सक्ताहो इन्द्रने सभीविषी हड़ियोंके ८१० बुनोरी  
मारा ।

४८ ओजसा महान् अविधिः ( १८० )- तू अपने  
सामर्थ्यसे शत्रुको हरता है ।

४९ महीमिः ऊतिभिः अस्माकं अर्धं क्षामति ( १८१ )  
- महान् सरक्षणके साथमें सब हमारे पास आ ।

५० घानः नः हवे शंसु मयोमु मेवजं आयातु, नः  
आयुर्वि प्रतारिवत् ( १८४ )- यहवान् शान्ति और सुख-  
कारण औषधि हमारे शाय लाने और हमारी भाव बढ़ावे ।

५१ पायका वाणिनीव्रती भिया वसुः सरस्वती ( १८९ )- पवित्र करनेवाली, अन्न देनेवाली और वृद्धि देने देनेवाली यह विवाही देवी है ।

५२ सः नः वसुनि आभरात् ( १९० )- वह हमें भरपूर धन दे ।

५३ सुप्तं दुराधर्षं माहि अन्नः अस्तु ( १९१ )- तैमरी और शत्रु जिस पर आक्रमण नहीं कर सकते, ऐसे महान् तरक्षण हमें मिले ।

५४ हे अग्निवः । राधः कृणुष्व ( १९४ )- हे वज्र-धारी हूँ । हमें धन दे ।

५५ अन्न-द्विपः अयजिह ( १९४ )- ज्ञानसे द्वेप करने-वालों को मार ।

५६ त्वादातं इत् यथाः ( १९५ )- तेरी सहृदयतासे ही यथा मिलता है ।

५७ नः वृताः देवा इन्द्र शूरः ( १९६ ) हमारे द्वारा बरन किया हुआ इन्द्र वेश शूर है ।

५८ हे इन्द्र । रघां न अतिरिष्यते ( १९७ )- हे इन्द्र । तेरी अपेक्षा कोई भी महान् नहीं है ।

५९ क्रामुर्गणे सत्यं वदातु ( १९८ )- कारीगरीका रखण करनेवाला धन हमें दे ।

६० नः इये क्रामुं वदातु ( १९९ )- हमें अन्न प्रदान हे इसलिय कारीगरी दे ।

६१ घासी घाजिनं वदातु ( १९९ )- बलवान् इन्द्र हमें बल देवे ।

६२ स्थिरः विचरदणिः महत् भय अभीयत्, अशु-क्युयत् ( २०० )- जो पुर्वानं स्थिर रहता है तथा महातापी है, वह महान् भयको दूर करता है ।

६३ हे वृषभन् । त्वत् उत्तरं न किः अस्ति ( २०३ )- हे वृषभानक इन्द्र । तुमसे महान् कोई नहीं है ।

६४ जन्मानां तरणि, प्रदः, सामानं प्रशंसिषम् ( २०४ )- सब लोगोंकी सारनेवाले, शत्रुको बध् देनेवाले, सबको समान मुक्त देनेवाले, इन्द्रकी भो प्रशंसा करता हूँ ।

६५ ये अशुहः पाणिः, स मर्त्यः सुनीय ( २०५ )- जिसका संरक्षण प्रोह न करनेवाले देव करते हैं, वह मनुष्य उत्तम और नीतिवाला होता है ।

६६ विश्वाः सृष्टः अजय ( २११ )- सब स्पर्षा करने-वाले शत्रुओंपर जय प्राप्त हो ।

६७ अयां फेनेन नमुष्ये दिशः उद्यर्तयः ( २११ )- इन्द्रने पानीके भागसे नमुषिके सिरको कोश ।

१७ ( साम हिन्वी )

६८ ज्ञातः घृत्रहा वृन्दं आददे, के के उग्रः शृणुप्रे, मातरं वि घृञ्जतु ( २१६ )- उत्पन्न होते ही इन्द्रने बाण हाथमें लिया और अपनी मातासे पूजा कि कीन कीनसे वीर बुने जाते हैं ।

६९ उत्तये सुप्रकरस्त्वं, साधः कृणन्तं हवामहे ( २१७ )- हमारे सत्पणके लिए जो वाहुओंको फंसाता है, और जो सत्पणके साधनोंको तैयार करता है, उन इन्द्रकी हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

७० तव इत् सवर्षं अस्तुतं ( २१९ )- तेरी ही मित्रता न दूनेवाली है ।

७१ नः पृथु तनुषु नृणां माधेहि ( २१९ )- हम लोगोंमें मैतृब करनेवाले बलकी वडा ।

७२ सत्राजित्पांस्यं आधेहि ( २१९ )- सब शत्रुओंकी एकसाथ जीतनेवाला सामर्थ्य हमें दे ।

७३ वीर्यु अलि ( २२२ )- शत्रुके साथ लड़नेवाला हूँ है ।

७४ नृत् उत स्थिरः अग्नि ( २२२ )- नृ मूर और और पुर्वानं स्थिर रहनेवाला है ।

७५ ते मनः राधे ( २२२ )- तेरा मन आराधनाके योग्य है ।

७६ अस्य तरधुपः जयतः ईशानं स्पृष्टं नृना अभिनोत्तुम- ( २३३ ) इस रथावर और जगम जगम करनेवाली और सत्यतापी तुमो हम नमस्कार करते हैं ।

७७ सत्यं त्वा नरः वृष्टेः हवन्ते ( २३४ )- सत्यनोंके उत्तम पालन करनेवाले तुमो, पुर्वानं सहायताके लिए हम बुलाते हैं ।

७८ काष्ठातु रवा हवन्ते- ( २३४ ) छोटे पुर्वानं भी तुमो बुलाते हैं ।

७९ पुष्टरतुः मघवा सदश्रेण शिशति ( २३५ )- बहुत धनवान् इन्द्र हमारा प्रशंसते धन देता है ।

८० नतीपहं मीमिः अभि नयामहे ( २३६ )- बाणक शत्रुकी हरानेवाले इन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ।

८१ विददस्व इन्द्रं उत्तये हुये ( २३७ )- धनवान् इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ।

८२ सधामदे यापिः नः वृषे वोधि ( २३९ )- एक जगह बैठकर जहाँ कर्म किए जाते हैं, वहाँ इन्द्र हमारा मित्र और उत्पत्ति करनेवाला हो ।

८३ ते विपः अवन्तु ( २३९ )- तेरो वृद्धिो हमारा तरक्षण करें ।

८४ सचा स्रोत, मुहुः शंसत ( २४२ )- एक स्थान पर बैठकर स्तुति करो, बारबार स्तुति करो ।

८५ यः सदावृधे विश्वगृत्तिं, ओजसा अभृष्टं, धूर्णुं इन्द्रं चकार, ते भक्तिः कर्मणा नशत् ( २४३ )- जो सदा बढ़ानेवाले, सबके द्वारा स्तुति किए जानेवाले, सामर्थ्यके कारण जो किसीसे दबाया नहीं जा सकता, जो धनार्थोंको मारता है, उस इन्द्रकी ओर उपासना करता है, उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ।

८६ संधिं सन्धाता ( २४४ )- दूटो हुई सन्धियोंको जोड़नेवाला ।

८७ विन्दुतं पुनः निष्कृत्तां ( २४५ )- कटे हुए भागोंको फिर जोक करता है ।

८८ त्वदग्न्यः मर्हिता नाऽस्ति ( २४७ )- तेरे सिक्काम दूसरा कोई भी मुक्त देनेवाला नहीं है ।

८९ अमतीनि पुरच्छुराणि अनुसः चर्यन्ती-धृतिः एक इत् संसि ( २४८ )- बहुत बचसाली बहुतसे धूर्तोंको स्वयं ही, केवल सब लोगोंके हित करनेके लिए अकेलाही तु मारता है ।

९० हे शचीपते इन्द्र इन्द्र ! विश्वाभि ऊतिभिः शशिभिः ( २५३ )- हे सामर्थ्यवान् इन्द्र ! सब तरफ़णके साथनेके साथ तू सामर्थ्यवाना है ।

९१ भगं यशसं घसुविद्ं त्या परिचरामि ( २५३ )- ऐश्वर्यवान्, यशस्वी और धनवान् तेरी आराधना हम करते हैं ।

९२ याः मुजः असुरेभ्यः आ भरः अस्य घर्षय ( २५४ )- जो धन तू मनुष्योंसे दीनवर लाभ, उनसे हमें बढ़ा ।

९३ नः क्रतुं आ भर ( २५५ )- हमें अच्छी बुद्धि दे ।  
९४ यया पुनेभ्य पिता, नः शिशुः ( २५५ )- जैसे पिता अपने लड़कोंकी शिक्षा देता है, उसी प्रकार तू हमें शिक्षा दे ।

९५ जीधाः ज्योतिः अशीमहि ( २५६ )- हम सबजित दृष्टर तेजस्विता प्राप्त करें ।

९६ नः आ परागृण्य ( २६० )- हमें दूर मतकर ।

९७ त्वं नः ऊती ( २६० )- तू हमारा संरक्षक है ।

९८ त्वं नः आग्यः ( २६० )- तू हमारा भाई है ।

९९ नः मघमाघे भय ( २६० )- तू हमारे साथ बैठ ।

१०० सचा विदयानि पीसया आ भर ( २६२ )- उपास सब बल ऐसे दे ।

१०१- पंच सितीनां पुम्न आ भर ( २६२ )- पांच जनोंकी एकतासे उत्पन्न होनेवाले तेज हमें दे ।

१०२ परावति अग्रावति युषा धृतः ( २६३ )- दूर और आसके देशोंमें तू ही शक्तिके लिए प्रसिद्ध है ।

१०३ दान्तरं परावति भसि, अग्रावति अभि ( २६४ )- हे इन्द्र ! तू दूर है और पास भी है ।

१०४ निधातु निवरुथं स्वस्तये छर्दिं शरणं मह ( २६५ )- तीन भूमिजोवाला और तीनो अस्तुधर्मोंमें सुख-कारक, हमारे कल्याणके लिए उत्तम आश्रम देनेवाला परदे ।

१०५ विदवा इन्द्रस्य भक्षत ( २६७ )- सब जगत् इन्द्रके माययते रहता है ।

१०६ जातः जनिमानि ओजसा करोति ( २६७ )- उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवाले सभी वषाणोंको अपनी शक्तिके दनाता है ।

१०७ अदेवः मर्यः सीम आपा ( २६८ )- ईश्वरही उपासना व करनेवाला उस धनको प्राप्त नहीं कर सकता ।

१०८ हे इन्द्र ! अयमं मध्यमं पुष्यसि, परमस्य विद्वस्य सत्रा राजसि ( २७० )- हे इन्द्र ! कनिष्ठ और मध्यम धन तेरे ही हैं, श्रेष्ठ धनना तू स्वामी ही त्वासी है ।

१०९ हे सुधम, राजहृत्, पुरन्दर ! अलर्षि ( २७१ )- हे योद्धा, सत्ताम करनेवाले और शत्रुओंके नगरोंकी तोड़ने-वाले बोर इन्द्र ! तू यहाँ आ ।

११० यः चर्यन्तीनां राजा, रघेभिः अभिगुः याता, विश्वास्तां पूतनानां तरता, युध-हा वयेष्ठ धृमे ( २७१ )- जो सब मनुष्योंपर राजा, रघेसे शीघ्र ही मार्ग जानेवाला, सब शत्रुसेनाना नष्ट करनेवाला, और दूसरोंको मारनेवाला है, उस इन्द्रकी भेंट स्तुति करता है ।

१११ यतः भयामहे, तनः नः अभयं दधि ( २७५ )- जहाँ जहाँ हम बहते हैं, वहाँसे हमें निर्भय कर ।

११२ नः ऊतये दिवः पिजहि, मृधः पिजहि ( २७५ )- हमारे संरक्षणके लिए अनुग्रहों द्वारा पर और दूर बरने-वालोंका नाश कर ।

११३ उभिघि ( २७४ )- वह सामर्थ्यवान् है ।

११४ नदधनीनां पुगं भेत्ता, सुनीनां मारा इन्द्र ( २७५ )- अनुत्तरी बहुतनी नगरियोंका नाश करनेवाला और भूमियोंका विध्वंसक है ।

११५ मरुः सतः ते महिमा पानिष्टम ( २७६ )- तेरे जैसे महा पुत्रको महिमाका हो बर्षन किया जाता है ।

११६ मतो महान् अस्मि ( २७६ )- तू अपने यशसे महान् है ।

११७ यः अद्विती रथी सुरूषः भोगान्, इवाधमजी बयसा, सदा सचते, चन्द्रः स्मर्भा उपयाति ( २७७ ) जो घोड़े रजता है, रथमें बैठता है, उत्तम रूपवाला है, मायोंकी पालता है, धन और अमरों युक्त है, ऐसा वह इन्द्र आपूणोंकी पहनकर मभागों आकर बैठता है ।

११८ यत् धावः शतं स्युः, उत भूमी शतं स्युः, सहस्रं स्युः, अनुजाते त्वा न अष्ट ( २७८ )- सैकड़ों घुनोक्त, सैकड़ों पृथिवी, हजारों सूर्यअधवा जो कुछ भी पीछे उत्पन्न हुए पदार्थ हैं, वे सब भी तेरी बरानेरी नहीं कर सकते ।

११९ वसो इन्द्र ! तं ह्या कः मर्तः आबधयति ( २८० )- हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! उस तुझे कौनसा मनुष्य भय दिखा सकता है ?

१२० ते श्रद्धा याजी ( २८० )- तू सब पर मद्धा रखने-वाला धनवान् होता है ।

१२१ तु आये ! स्वायिभिः आ ( २८२ )- हे उत्तम मित्र ! उत्तम मित्रोंके साथ आ ।

१२२ अ-जर्द, प्र-हेतारं अ-प्रहितं माशु जेतारं हेतारं रथीतमं अनुतं ऊतये इत ( २८३ )- जरारहित, शत्रुपर प्रहार करनेवाले, कोई भी नितका विरोध नहीं कर सकता, शीघ्र विजय प्राप्त करनेवाले, प्रेरणा करनेवाले, रथपीढ़में श्रेष्ठ, जिते कोई भी मार नहीं सकता, ऐसे इन्द्रको महो ला ।

१२३ या नम्राहा विश्ववर्षणिः, तं इन्द्रं ययं हमहे ( २८६ )- प्रभुओंकी एकताय माननेवाले, और सब मनुष्योंका हित करनेवाले उस इन्द्रकी हम सहाम्यर्थ दुलाले हैं ।

१२४ हे सहस्रमयौ ! तुयिनुष्णा सप्तये ! समस्तु मः घृषे मय ( २८६ )- हे हजारों जलवाहते कार्य करनेवाले ! बहुत धनवान्, और मन्त्रजनोंके पालक इन्द्र ! मुझमें हमारा यश पडे ऐसा कर ।

१२५ शचीभिः दिवानकते दिशस्यते ( २८७ )- तू अपनी शक्तिमें हमें रातदिन धन दे ।

१२६ यो रातिः कदाचन मा उपदसत् ( २८७ )- तेरा रात कभी भी कम न हो ।

१२७ अस्तु रातिः कदाचन मा उपदसत् ( २८७ )- हमारा रात भी कभी कम न हो ।

१२८ विद्यतामां धर्तारं वषणं वषा गिरा वन्देत ( २८८ )- विज्ञेय अनेक कर्मोंको धारण करनेवाले बधनकी विजये सरासयके लिए स्तुति करने बन्दता करते हैं ।

१२९ याः पाहि ( २८९ )- मायोंका रक्षण कर ।

१३० इन्द्रः धृयोः सैमित्तः वज्री हिण्ययः ( २८९ )- इन्द्र अपने रथमें घोड़े जोड़ता है, वज्र धारण करता है, और सुनहरे रथमें बैठता है ।

१३१ हे अद्रिचः ! महे शुल्काय त्वा न पदादीधमे ( २९१ ) हे वज्रपाती इन्द्र ! यदि बहुत धन प्राप्त हो तो भी मे तुझे इतनेको देनेकी तैय्यार नहीं ।

१३२ हे घञिवः ! न अयुताय, न सहस्राय, न शताय ( २९१ )- उस हजार, एक हजार अधवा सी मिले तो भी मैं तुझे छोड़नेवाला नहीं ।

१३३ हे इन्द्र ! मे पितुः वस्यन् ( २९२ )- हे इन्द्र मेरे पिताके अधेसा तू अधिक धनवान् है ।

१३४ मे अर्भुजतं आतुः वस्यन् ( २९२ )- भोग न भोगनेवाले मेरे भाईसे भी तू अधिक धनवान् है ।

१३५ मे माता समा ( २९२ )- मेरी माता मेरे समान है ।

१३६ यतुत्त्वान्य राधते छदययः ( २९२ )- धन और अन्नके लिए महान् बन्ध ।

१३७ बृहन्तः वीडयः मद्रया त्वा न वरन्ते ( २९६ )- बहुत बड़े वृक्ष बर्बत भी तुझे अपने बर्तव्यसे डिंगा नहीं सकते ।

१३८ यत् यतु शिस्तस्मि, तत् न किः आ मिनाति ( २९६ )- तू जो धन देनेको इच्छा करता है, उस तेरे दानको कोई भी रोक नहीं सकता ।

१३९ यः अयं शिभी भोजला पुण विमिनति ( २९७ )- यह निरस्त्राय धारण करनेवाला इन्द्र अपनी शक्तिसे शत्रुके गहरोंके तोड़ता है ।

१४० यन् शस्रः स्रदसः परि अमर्तं व्यापय ( २९८ )- तू जीतान करता है, इसलिए हमारे स्थानों दुस्तराहियोंको दूर कर ।

१४१ कदाचन स्तरीः नः अग्नि ( ३०७ )- तू कभी भी बर्षा माफके समान नहीं होता ।

१४२ देवस्य ते दानं स्युः उपोपेतं पृथयते ( ३०० )- तेरे जैसे देवों दान बहुत होकर हमारे पास आकर बरते हैं ।

१४३ शची-यतु ( ३०४ )- यह इन्द्र अपनी शक्तिसे धन प्राप्त करनेवाला है ।

१४४ दानुये रत्नानि धत्तं ( ३०६ )- दानशीलने रत्न धन दे ।

१४५ अहे सदा याचन् अनुद्युध ( ३०७ )- क्या हमेशा मागते रहनेके कारण तू मुझसे नाराज हो गया है ?

१४६ कः ईदाने न याचियत् ( ३०७ )- अपने स्वामीसे भला कीन नहीं मागता ।

१४७ वृषणा हरी उपयुयुजे, वृजहा आ जगाम ( ३०८ )- बलवान् घोड़ोंको रथमें जोड़ लिया है, और वृषणी नारनेवाला आ गया है ।

१४८ ज्यायः इन्द्रः ईपतः तत् वसीयसः अभि आ भर ( ३०९ )- महान् इन्द्र इच्छा करनेवाले छोटेको भी बह धन भरपूर दे ।

१४९ पुष्ट-प्रसुः भरे भरे हव्यः ( ३०९ )- बहुत धनवान् वह इन्द्र प्रायिक युद्धमें सहस्रमत्ताके लिए बुलाये योग्य है ।

१५० यत् त्व यावतः ईदिये पतायत् अहं ईदीय ( ३१० )- तू जितने धनीका स्वामी है, उतने मुझे मिले, ऐसी मैं इच्छा करता हूँ ।

१५१ पापत्याय न रंसिषं ( ३१० )- पापी होनेको मैं संस्कार नहीं ।

१५२ त्वं प्रतृतिषु रिद्धा, स्पृधाः श्रम्यसि ( ३११ )- तू युद्धमें सभी शत्रुओंका नाश करता है ।

१५३ त्वं अशस्त्रिहः ( ३११ )- तू युद्धोंका नाश करता है ।

१५४ जमिता ( ३११ )- शत्रुके लिए आपत्तिमोको पैदा करनेवाला है ।

१५५ तदप्यतः यूषनः अग्नि ( ३११ )- तू विजय करनेवालोंको नष्ट करता है ।

१५६ विदधे अति यशसिधः ( ३१२ )- तू सब विजयमें श्वात है ।

१५७ नः अजिता वृधे च अमः ( ३१४ )- तू हमारा रक्षक और हमें बढ़ानेवाला है ।

१५८ वसुनि ददः ( ३१४ )- धन दे ।

१५९ यत् दानयान् अउद्व ( ३१५ )- जब मुझे शायीकी मार ।

१६० नः गुणिष आ भर ( ३१६ )- हमें उत्तम धन दे ।

१६१ रतोताः नना म्मनः म्मराता ( ३१६ )- गुणित संरक्षित हुए हम रथों ही धन कमायें ।

१६२ हे वसुतां वसुपते ! वसुधया ते दक्षिणं हस्तं जगृह्य ( ३१७ )- हे धनोके स्वामी ! धनकी इच्छा करने वाले हम तुम्हें दायें हाथसे पकड़ते हैं ।

१६३ हे शूर ! चित्रं वृषणं रथि दाः ( ३१६ )- हे शूर ! अनेक प्रकारके बल बढ़ानेवाले धन दे ।

१६४ यत् पार्याः धियः मुनजते नरः नेमिधता इन्द्रं हव्यन्ते ( ३१८ )- जब मकड़ोंसे पार होनेके लिए बुद्धि-पूर्वक काम किए जाते हैं, तब युद्धके समय लोग इन्द्रकी पंखबके लिए बुलाते हैं ।

१६५ त्वं शूरः नृपाता शायसः म्मकानः ( ३१५ )- तू शूर, मनुष्योंको धन देनेवाला, बलसे तेजस्वी है ।

१६६ निधया यद्वान् अहमान् मुमुग्धि ( ३१८ )- पागोले बंधे हुए हमें मुक्त कर ।

१६७ महे धीराय तवसे नुराय विरक्षिते यज्ञिणे स्वयिराय अस्मै अपूर्व्या यचांसि तधुः ( ३२२ )- महान्, बोर, शक्तिमाल, बोर तीव्र कार्य करनेवाले, बल-शाली, सिंघर ऐसे इरा इन्द्रके लिए अबभुत तृप्ति करो ।

१६८ द्रुमः दशभिः सहस्रैः इयानः कृष्णाः अंनुमती अयातिष्ठत्, दाध्या धमन्तं तं इन्द्राः अश्वत्, अथ द्रुमणाः स्त्रीर्हिर्ति अधद्राः ( ३२३ )- आक्रमण करनेवाला कृष्ण अमुर बस हजार सैनिकोंके साथ अनुमती नदी पर आया पर अपने बलसे जाहने भय देने-वाले उस अमुर पर इन्द्रने आक्रमण किया और उसकी क्षिति मिलाकी भी मार डाला ।

१६९ इमाः विदधाः पुतनाः जयासि ( ३२४ )- तब दानुवेनाओं पर तू अजय करता है ।

१७० देवस्य महिष्या काश्ये पदयः ( ३२५ )- देवों के वाहनों प्रकट करनेवाले काश्यको देव ।

१७१ अथ ममार स हः सपान ( ३२५ ) भी आश्रय कर गया, वही बल पहलेके समान कार्य करने लगता है ।

१७२ त्वं तत् जायमानः अनाश्रुभ्यः सप्तयः दानुः अमयः ( ३२६ )- तू उत्पन्न होने ही दानुभूमि रहित उर मात अमुरोंका धनु हुआ ।

१७३ मुदे चायावृषिभिः सन्धयिन्दुः ( ३२६ )- तू ही संघनारमें पड़े हुए चाका वृषिधर्मोंकी प्रकाशमें लाग ।

१७४ विभुमद्रुचः भुवनेभ्यः रणे धाः ( ३२६ )- विभवशाली भुवनोंकी और अभिर युद्धर बनया ।

१७५ बुधस्तुः सूर्यः तरपीः ( ३२७ )- प्रसन्ननीय  
और शत्रुनाशक नृ हने विजयी करता है ।

१८६ घृषहणं पुंशं पुं-घस्यमानं घृषमं स्थिरपुंशं  
वक्षिणं धृष्टिमन्तं त्वा गृणीषे ( ३२७ )- बुधको मारने-  
वाले तेजस्वी, अनेक शत्रुओंका नाश करनेवाले, बलवान्  
युद्धमें स्थिर रहनेवाले, वक्ष्यपारी, शत्रुनाशक ऐसे तुम  
इन्द्रको मैं स्तुति करता हूँ ।

१७७ राजसत्ता अशिन भरे शुनं मध्यामं इन्द्रं  
हुयेम ( ३२९ )- धन प्राप्त होनेवाले इस युद्धमें उत्साही  
धनवान् इन्द्रको अपने मदके लिए बुलाते हैं ।

१७८ द्रुपयन्तं उग्रं सप्रस्तु घृषाणि चरन्तं धमानि  
संजिन्तं ऊतये हुयेम ( ३२९ )- प्रार्यना घुमनेवाले, उग्र-  
वीर, युद्धमें बुधका नाश करनेवाले, पनोंकी ओखनेवाले  
इन्द्रको अपने सरलनके लिए हम बुलाते हैं ।

१७९ वाजिनं देवजुतं सहोच्चानं रथानां तरनारं  
भरिष्टमैमि पृतनाज्यं आशुं ताश्वं स्वस्तये हुयेम  
( ३३१ )- चलवान्, देवैस्ते तेजिष्ठ, सामर्थ्यवान्, रथोंकी  
सपामोंमें चार करनेवाले, तेज आश्व पामोंमें रखनेवाले, शत्रु  
सेनापर विजय प्राप्त करनेवाले, घोषप्रणीत सुपथोंकी अपने  
रथवाणके लिए हम बुलाते हैं ।

१८० जतारं अजितारं, हवे हवे सुहयं, दारं शर्कं  
इन्द्रं हुये ( ३३३ )- दुर्लभि चार करनेवाले, सरलण  
करनेवाले प्रायेक युद्धमें सहयोगी बुलाने योग्य इस दूरवीर  
बलवान् इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

१८१ यज्ञ-वक्षिणं, धि मयानां हरीणां, रथ्यं इन्द्र  
यजामहे ( ३३४ )- हार्यं हावयं वक्ष्यको धारण करनेवाले,  
तेज वीहनेवाले घोड़ेके रथमें बैठनेवाले इन्द्रको हम यज्ञमें  
बुलाते हैं ।

१८२ इमधुमिः दोधुयत्, ऊर्ध्वया नि सुवल्  
( ३३४ )- यह अपनी बाली और भूशोंकी हिलाते हुए  
तकने धौल हुआ है ।

१८३ सेनाभिः मयमानः राधसा वि ( ३३४ )-  
मयनी सेनाते शत्रुको भय दिखलाकर घन सेता है ।

१८४ सत्रामाहं वाधुषिं पुंशं महां अपारं घृषमं  
सुपयं इन्द्रं ( ३३५ )- हम एकताप अनेक शत्रुओंकी  
मारनेवाले, शत्रुको हथभील करनेवाले, शत्रुओंकी भगानेवाले,  
महान्, अपार बलवान्, उत्तम वक्ष्यपारी इन्द्रकी जगंसा  
करते हैं ।

१८५ य घृयं हस्ता, वाजं सनिता, सुराधाः  
मधवा, मधानि दान्ता ( ३३५ )- यह इन्द्र युध्वी मारने-  
वाला, अन्न देनेवाला, उत्तम धनवान् है, वह भक्तियोंको पन  
देता है ।

१८६ यः मर्तः नः घनुष्यन् अभिदाति, मन्यमानः  
क्षिपी युधा शक्वासा उगणाः सुरः, त्वोताः वृष-मणाः  
अभिष्याम ( ३३६ )- जो शत्रु हमें मारनेकी इच्छा करता  
हुआ हम पर चढ़ाई करता हुआ जाता है, जो घमण्डी  
बिनाशक शत्रुओंकी लेकर तेजस्से सेनाके साथ चढ़ाई करता  
है उसे हम तेरे सरलणके स्थित होकर बलवान् मनसे  
युद्ध होकर पराजित करें ।

१८७ विश्वानि विदुषे अरं गमाय अमये अपदवा-  
दध्यमे प्रति भर ( ३५२ )- सर्व शानी, ठीक समय पर  
पहुँचनेवाले, सबके पहले पहुँचनेवाले इन्द्रकी भरपूर सोम है ।

१८८ उग्रं वक्ष्य अपावधीः ( ३५३ )- बडीर भावण  
करे ।

१८९ तृनि-वृमिं जनीरहं, खरपतिं त्वा इन्द्रं  
वर्तयामसि ( ३५४ )- बहुत पराक्रमी, शत्रुओंका पराभव  
करनेवाले, सरलणके पालक इन्द्रको हम लाते हैं ।

१९० त्वं अ-प्रहणं धवसः पनि निभ्यासाहं  
दाधिष्ठे निभवेदसं नरं गृणीषे ( ३५७ )- उस उपकार  
करनेवाले धरके स्वाधी, सब शत्रुओंकी हरानेवाले, शक्तिमान्,  
सर्वत नेताकी मैं स्तुति करता हूँ ।

१९१ पुरां भिन्दुः युवा कथिः अमिनोजा विभ्वर  
कर्मणः धर्ता, पुरुष्टुतः इन्द्रः अजायत ( ३५९ )-  
शत्रुके शत्रुओंकी तोड़नेवाला, सरलण, कवि, अवरिहित  
सामर्थ्यवाला, सब शत्रुओंकी धारण करनेवाला, बहुतीक्ष्ण  
प्रसन्नित इन्द्र है ।

१९२ हे नरः ! यधंत, प्रार्थंत, भूषुं अर्धन्तु  
( ३६२ )- हे यन्त्रवी ! तुम इन्द्रका साकार करो, युध  
सत्कार करो, शत्रुको हरानेवाले इन्द्रका सत्कार सभी करें ।

१९३ पुंश-नि-पिषे इन्द्राय यधंत उपथं नम्यं  
( ३६३ )- बहुतेक शत्रुओंकी हरानेवाले इन्द्रने यदा प्रणम  
करनेवाले स्तोत्र पावो ।

१९४ निभ्यावरस्य अनाजतस्य दावमः पनि हुये  
( ३६४ )- सब शत्रुनेनाओंपर सामर्थ्य करनेवाले, शत्रुके  
भाग्य शत्रु में शत्रुनेवाले, सामर्थ्यके स्वाधीकी मैं बुलाता हूँ ।

१९५ सः वृहतः दिवः ऊनी दिवः तरति ( ३६५ )-

वह महान् दिव्य सरक्षणेति युक्त होकर सब शत्रुओंको दूर करता है ।

१९६ दातःतो ! विभोः राघसः ते रातिः विम्बी ( ३६६ ) - हे सेकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! बहुत धनके तेरे दान बहुत महान् और विशाल है ।

१९७ विश्वचरणे सुदध ! नः शुम्भं मंहय ( ३६६ ) - हे सर्व द्रव्य, उत्तम दान देनेवाले इन्द्र ! हमें धन देकर महान् कर ।

१९८ आसुरि उग्रं ओजिष्ठं नरसं नरसिन् ( ३७० ) - हम शत्रुको मारनेवाले, उग्रवीर, सावधान, प्रतली और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

१९९ पुर्यः सः आ जिगीषतं नूतनं एकः इत् पार्त्तमं अनु वावृते ( ३७२ ) - वह पुराण पुण्य इन्द्र शत्रुओंकी जीतनेवाला इच्छावाले नये धीरोंको अकेला ही विजयके मार्गसे लेजाता है ।

२०० पृथ्वी शिरः चरणीधृतं पावृधानं अमर्ष्य इन्द्रं अभ्यनुपत ( ३७४ ) - हमारी बहुतसी स्तुतिपां मनुष्योंका धारणपोषण करनेवाले, बढ़ानेवाले अमर इन्द्रको प्रशंसा करती हैं ।

२०१ उतये शुण्ड्यु इन्द्रं क्वर्युवाः उवासीः मनयः अछज अनुपत ( ३७५ ) - हमारे सरसजगते लिए पवित्र करनेवाले इन्द्रजी, अत्यधिक बड़ानेवाली, उन्नतिकी इच्छा करनेवाली, हमारी स्तुति प्रशंसा करती हैं ।

२०२ त्वं मेघं वरुधः अर्णवं इन्द्रं गीमिः अमि-मदत ( ३७६ ) - उस शत्रुका पराभव करनेवाले धनके समुद्र इन्द्रकी स्तुतिसे आगमित करी ।

२०३ वरुध मानुषं दायः न दिव्यरनि ( ३७७ ) - जिसके मनुष्योंके लिए हितकारी कार्यं दुल्लोके समान सब अणु-कैले हुए हैं ।

२०४ भुजे मंहिष्टं विधं अम्यर्चत ( ३७८ ) - भोग प्राप्तिसे लिए महान् शत्रुको इन्द्रजी बध्नायता करो ।

२०५ यः कृष्णगर्भाः निरहन् ( ३८० ) - जिस इन्द्रने कृष्णकी गर्भवती स्त्रियोंको मारा ।

२०६ यजदक्षिणं कृण्वं अवस्यवे हुवेम ( ३८० ) - दाये हाथमें यज्ञ धारण करनेवाले बलवान् इन्द्रकी अपने-एकजगति इच्छा करनेवाले हम बुलाते हैं ।

२०७ हे घजिघः ! ते नं कृण्वं पृथु रासहिं लोकः गनुं मदे शुणीमसि ( ३८३ ) - हे बलवारी इन्द्र ! तेरे

उस बलवान्, युद्धमें शत्रुओंका पराभव करनेवाले, सब लोगोंका हित करनेवाले आनन्दकी मैं प्रशंसा करता हूँ ।

२०८ यः एकः इत् विद्या कृष्टीः अभ्यस्यति ( ३८७ ) - जो अकेला ही इन्द्र सब धनुषतेनाओंका विनाश करता है ।

२०९ यः एकः इत् वायुये मर्ताय वातु विदपते ( ३८९ ) - जो अकेला ही दान देनेवाले मनुष्यों पर घन देता है ।

२१० अग्रतिप्सुतः इन्द्रः ईशानः ( ३८९ ) - जिसका कोई भी प्रतिस्वर नहीं कर सकता होता इन्द्र सबका ईश्वर है ।

२११ नूतमाय धृणये सुस्तुपे ( ३९० ) मैं धैर्य और और शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करता हूँ ।

२१२ ओजसा त्वं पुत्रं हंसि ( ३९१ ) - अपने सामर्थ्यसे तू पुत्रको मारता है ।

२१३ सत्राजित् अमोघः विद्वतः पुष्टु दिवः, पतिः, नः आगहि ( ३९३ ) - हे सब शत्रुओंकी जीतनेवाले, जिसे कोई भी हरा नहीं सकता ऐसे इन्द्र ! तू सब ओरसे विशाल और बुलोककन स्थायी है । तू हमारे मातृ आ ।

२१४ अत्रिणं निहंसि, तं ईमहे ( ३९४ ) - यात्रा शत्रुओंकी तू मारता है, अतः तेरी हम प्रार्थना करते हैं ।

२१५ स्रमहसः आदिष्यासः नः तुने तुनाय जीवसे द्रापीयः आयुः सुकृणोतन ( ३९५ ) - महाद आदित्य हमारे पुत्रस्रोत्रोंको जीनेके लिए दीर्घायु करें ।

२१६ यज्रहस्तः निर्मतीनां परिमजं घेत्य ( ३९६ ) - हे यज्ञधारी इन्द्र ! विज्र हूटकरनेसे मार्ग तू लागता है ।

२१७ अहः अहः शुण्युः परिपदां ( ३९७ ) - प्रति-दिन स्वच्छता रखनेवाला रोगोंको दूर करता है ।

२१८ हे आदिष्यासः ! अमीचां, स्रघं, दुर्मिर्नं भद्रमः सः अप युयोनन ( ३९७ ) - हैं आदित्यों ! रोग, शत्रु, दुष्टबुद्धि, पाप इन सबको हथके हूट करे ।

२१९ त्वं जुनुया अभातुयः, वः-नाः, अनारिः ( ३९९ ) - हे इन्द्र ! तू अन्धमे ही शत्रुहरित है, तेरा नेता कोई नहीं है, और माई भी कोई नहीं है ।

२२० युधा इत् आदित्ये इच्छते ( ३९९ ) - तू पड़ोसों कोई माई मिले ऐसी इच्छा करता है ।

२२१ या पुरा धरयः नः अ आनिनाय तं इन्द्रं उतये स्तुपे ( ४०० ) - जिसने हमें पृथ्वी भी धन दिया, उत इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ।

२२३ ददा चित् यमयिष्यावः मा अवस्थात (४०१)  
- बलवान् और शत्रुको सुकानेवाले बरो। हमसे दूर मत  
रहो।

२२३ श्वसन्तं त्वया युजा प्राति युवामिहि (४०३)  
- दूर करने करनेके कारण लम्बो प्राति लेते हुए शत्रुको तेरी  
सहायतासे हम ठीक जबाब दें।

२२४ त्वं नः ओजः नृम्यं आ भर, धृतनासहं धीरं  
आ भर (४०५) - तू हमें सामर्थ्य और धन भरपूर दे,  
और शत्रुसेनाको पराजित करनेवाला बराकम भी हमें दे।

२२५ स्वराज्यं अनु अर्चन् पृथित्याः मर्हि निः  
शक्ता (४१०) - स्वराज्यके संरक्षणकी दृष्टिसे पृथिवीके  
अहि नामक शत्रुपर तुने शासन किया।

२२६ तं महत्सु आभिषु अग्ने च उर्वितं हवामहे  
(४११) - उससे बड़े और छोटे संसारीयों संरक्षणके साधन  
माने हैं।

२२७ सः चाजेषु नः प्राविषत् (४११) - वह युद्धमें  
हमारा संरक्षण करे।

२२८ अत्रिचन् यन्त्रिह इन्द्र ! तुभ्यं इत् ययि  
धनुस्तं (४१२) - हे यज्ञकारी इन्द्र ! तेरा बराकम  
अत्रेय है।

२२९ स्वराज्यं अनु अर्चन् मायिनं मृगं धृमं मायया  
अयधीः (४१९) - अपने स्वराज्यकी रक्षाके लिए कपटी  
शत्रुको तुने बध्ने ही मारा।

२३० प्रेहि भमिहि धृष्णुहि (४१३) - शत्रुपर आक्रमण  
कर, धाँसी मोरसे आक्रमण कर और उनका नाश कर।

२३१ ते बह्वः न निर्वसते (४१३) - तेरा बख  
बिनीते भी रोका नहीं जा सकता।

२३२ ते शयः नृम्यं (४१३) - तेरे बल शत्रुकी  
सुकानेवाले हैं।

२३३ स्वराज्यं अनु अर्चन् धृष्टं हनः अपः जय  
(४१३) - स्वराज्यकी रचना करनेके लिए शत्रुकी मार  
और धन लोतकर अपने अधिकारमें ले।

२३४ यत् आलयः उदीरते, धृष्टय्ये धनं धीयते  
(४१४) - जब युद्ध मुफ होता है, तब धनुकी जीतनेवालेको  
धन मिलता है।

२३५ कं हनः (४१४) - तू बिगड़ो मारता है।

२३६ कं धात्री दधः (४१४) - कितनी धनमें स्थापित  
करता है अपनी किने धन देता है।

२३७ नः स्तुतावतः कदा करः (४१६) - हमें  
तत्परोक्षनेवाला कब करेगा, कब धन दान देगा।

२३८ स्तोत्रम्यः इयं आ भर (४१९) - स्तुति करने-  
वालोंको भरपूर धन दे।

२३९ नः मनः दक्षं उत कर्तुं मद्रं चानय (४२२)  
- हमारे मन, उत, कर्म और कल्याण प्राप्त हों इसलिये  
प्रेरित कर।

२४० दिप्री उपाकयोः हस्तयोः आयसं यमं  
निद्वे (४२३) - निरस्त्राण पारण करनेवाले इन्द्रने अपने  
बोनों हाथोंमें फौजदके बखको धारण किया।

२४१ यं सज्जोपसः द्विपः अति नयन्ति, तं मर्त्य  
अंहः न, दुरितं न मष्ट (४२६) - जिसको समान बिचार  
और मनवाले देव शत्रुओंमें दूर करके उन्नति के रास्ते ले जाते  
हैं, उस मनुष्यको धन नहीं लायता और दुर्गति उसके पास  
फटकती भी नहीं।

२४२ स्रग्निः धृष्टाणि परि, नः द्रणया द्विपः  
तरप्ये ईरसे (४२५) - सामर्थ्यशाली तू शत्रुपर घडाई  
करनेके लिए जा, हमारे शत्रुओंको दूर करनेवाला तू शत्रु-  
ओंसे पार होनेके लिए शत्रुपर घडाई करनेके लिए जाता है।

२४३ हे विद्वतो-दायन् । विद्वतः नः आ भर  
(४३७) - हे धारों मोरसे शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन्द्र !  
धारों मोरसे हमें भरपूर धन दे।

२४४ पर ब्रह्मा (४३८) - वह इन्द्र जानी है।

२४५ त्वया शुमन्तं यज्ञं (४४०) - त्वयाने तेरावो  
यज्ञ संस्कार किया।

२४६ तयीपिणः शो पदं मयं (४४१) - धनसे धन  
करनेवाले धानि, उत्तम स्थान और धन प्राप्ति करते हैं।

२४७ अ-यतः नः हिनोति (४४१) - जो धनका  
वाहन नहीं करता उसे कुछ भी नहीं मिलता।

२४८ गावः सदा शुचयः (४४२) - गावें हमेशा पूज  
रहती हैं।

२४९ युया धृताः इन्द्रः आ स्तोमनि- (४४५) -  
तपण और प्रसिद्ध इन्द्र सब धनुओंको मारता है।

२५० हे अम्ये ! त्वे नः मन्तमः शिवः आना भुयः  
(४४८) - हे अपने ! तू हमारे पास बन्धाण करनेवाला  
और संस्कार है।

२५१ विप्रस्य प्रस्त्रोमः (४५०) - सब शत्रुओंका  
नाश करनेवाला वह इन्द्र है।



२५२ सु घोरा शतहिमा मन्देम् ( ४५४ ) उत्तमघोर  
पुत्रोत्तं पुत्र होकर हय सौ वर्ष तक आनन्द रहे ।

२५३ न इयं पीथरीं वृणुहि ( ४५५ )- हमारे  
अग्रको पुष्टिकारक बना ।

२५४ इन्द्रं विश्वस्य राजति ( ४५६ ) इन्द्र सब  
विश्वपर राज्य करता है ।

२५५ मघवान उग्र सत्रा भूरि यथासि दधान

अप्रतिभुत तं इन्द्रं जौहवीमि ( ४६० )- हम वनवान,  
उषवीर, बहुत बल धारण करनेवाले, शत्रुसे कभी पराजित  
न होनेवाले, उस इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२५६ वज्रीं राये विभ्वा सुपथां करत् ( ४६० )-  
वज्रधारी इन्द्र धन प्राप्तिके सब मार्ग सुगम करता है ।

इस प्रकार इस ऐन्द्रं काण्डमें सुभाषित हैं । ये षष्ठाह्वान,  
लेख अथवा पुस्तकीमें प्रयोग करनेके लिए उपयोगी और  
नित्याग्रह हैं ।

### ऐन्द्रकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता सूची

मन्त्रसंख्या	ऋषिदेवता	ऋषि	देवता	छन्द
		( ३ )		
११५	६।४५।१२	शमुर्बाहिरपत्य	इन्द्र	गायत्री
११६	८।७२।१६	भुतकञ्ज सुबन्धो वा आबिरस	"	"
११७	८।७२।१९	हयस प्रागाय	इन्द्र ( श्च अरिर्हवीषि वा )	"
११८	८।७२।२५	भुतकञ्ज अगिरस	इन्द्र	"
११९	८।७३।७	भुतकञ्ज अगिरस	"	"
१२०	१०।१५३।१	देवनामघ इन्द्रमन्तर ऋषिक	"	"
१२१	८।१३।५	गोमूकस्यश्वसूत्रितनो काष्वापनी	"	"
१२२	८।१४।१	गोमूकस्यश्वसूत्रितनो काष्वापनी	"	"
१२३	८।१५।५	मेधातिथि कण्वः, त्रियमेघश्चागिरस	"	"
१२४	८।१६।१	मेधातिथि कण्व त्रियमेघश्चागिरस	"	"
		( ४ )		
१२५	८।१६।१	सुवकाभुतकञ्जो	"	"
१२६	८।१६।४	सुवकाभुतकञ्जो	"	"
१२७	६।४५।१	भारद्वाज	"	"
१२८	८।१६।३१	सुमकस	"	"
१२९	१।८।१	मधुच्छन्दा वैश्वामित्र	"	"
१३०	१।७।५	मधुच्छन्दा वैश्वामित्र	"	"
१३१	८।४५।१६	विजोक्त काण्व	"	"
१३२	७।३१।४	वसिष्ठो भोजावरणि	"	"
१३३	८।४५।१	विजोक्त काण्व	"	"
१३४	८।४५।४०	विजोक्त काण्व	"	"
		( ५ )		
१३५	१।३७।३	वक्त्रो घोर	"	"
१३६	८।४५।१६	विजोक्त काण्व	"	"

## चतुर्थ अध्याय ]

## सामवेदका सुगोच मनुवाद

मन्त्राख्या	ऋग्वेदस्थानं	अधि	देवता	छन्दः	गायत्री
१३७	८१६/४	प्रत्यः काण्वः	इन्द्रः	"	"
१३८	८१८३/१	कुसोदो काण्वः	"	"	"
१३९	१११८/१	मेधातिथिः काण्वः	"	"	"
१४०	८१९३/१८	भुतकण्वः आभिरस	"	"	"
१४१	५१८२/४	प्रभावायः आनेय	"	"	"
१४२	८१६४/७	प्रभायः काण्वः	"	"	"
१४३	८१६/१८	वसतः काण्वः	"	"	"
१४४	८१६/११	इरिन्विदिः काण्वः	"	"	"
( ६ )					
१४५	८१९०/४	भुतकण्वः आभिरस	"	"	"
१४६	६/४५१/१७	मेधातिथिः काण्वः	"	"	"
१४७	११८४/१५	मौतमो राहृगण	"	"	"
१४८	६/५७/४	भरद्वाजो वाहृरपत्य	"	"	"
१४९	८१६४/१	विष्णुः प्रतरतो वा आभिरस	भरतः	"	"
१५०	८१९३/३१	भुतकण्वः सुवसो वा	इन्द्रः	"	"
१५१	८१९३/२३	भुतकण्वः सुवसो वा	"	"	"
१५२	८१६/१०	वसतः काण्वः	"	"	"
१५३	११९०/१३	भुन रोष आजीर्गति	"	"	"
१५४	—	भुन रोष आजीर्गति वाभरेदो वा	"	"	"
( ७ )					
१५५	८१९३/१	भुतकण्वः सुवसो वा आभिरस	"	"	"
१५६	७/११/१	मौतमो राहृगण	"	"	"
१५७	८११/१६	मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधः वाहृरपत्य	"	"	"
१५८	८१९३/१९	भुतकण्वः सुवसो वा आभिरस	"	"	"
१५९	८१९७/११	इरिन्विदिः काण्वः	"	"	"
१६०	११४/१	मधुच्छन्दा वैश्वामित्र	"	"	"
१६१	८१४५/२९	विशोऽसः काण्वः	"	"	"
१६२	८१८९/७	कुसोदो काण्वः	"	"	"
१६३	११३०/३०	भुन रोष आजीर्गतिः	"	"	"
१६४	११५/१	मधुच्छन्दा वैश्वामित्र	"	"	"
( ८ )					
१६५	११५१/१०	विश्वामित्रो वाभिरस	"	"	"
१६६	११८/५	मधुच्छन्दा वैश्वामित्र	"	"	"
१६७	८१८१/१	कुसोदो काण्वः	"	"	"
१६८	८१६९/४	प्रियमेधः आभिरस	"	"	"
१६९	४/३१/१	वाभरेदो गौतम	"	"	"
१७०	८१९१/७	भुतकण्वः सुवसो वा आभिरस	"	"	"

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषि	देवता	छन्द
१७१	१।१८।६	मेधातिथि काण्व	इन्द्र	भाषयी
१७२	—	वामदेवो गौतम	"	"
१७३	८।९३।१८	श्रुतकक्ष सुकशो वा आभिरत्त	"	"
१७४	८।९४।४	बिन्दु पुतरथो वा आभिरत्त	"	"

( ९ )

१७५	१०।१५३।१	हेवजामय इन्द्रमातर	"	"
१७६	१०।१३४।७	गोधा ऋषिका	"	"
१७७	—	इन्द्रशुडामर्षण	"	"
१७८	१।४६।१	प्रतकण्व काण्व	"	"
१७९	१।८४।१३	गोतमो दाहूगण	"	"
१८०	१।९।१	मधुवृष्ट्या वेंदवाभित्र	"	"
१८१	४।३१।१	वामदेवो गौतम	"	"
१८२	८।६।५	वसन् काण्व	"	"
१८३	१।३०।४	शुन डेप आभोपति	"	"
१८४	१०।१८६।१	उलो वातावन	"	"

( १० )

१८५	१।४१।१	कण्वो यौर	"	"
१८६	८।४६।१०	वत्स काण्व	"	"
१८७	८।६।११	वत्स काण्व	"	"
१८८	८।९३।१०	श्रुतकक्ष सुकशो वा आभिरत्त	"	"
१८९	१।३०।१	मधुवृष्ट्या वेंदवाभित्र	"	"
१९०	—	वामदेवो गौतम	"	"
१९१	८।१७।१	इतिनिधि काण्व	"	"
१९२	१०।१८५।१	शत्यपुतिर्वादिनि	"	"
१९३	८।४६।१	वत्स काण्व	"	"

( ११ )

१९४	८।६४।१	प्रगण्व काण्व	"	"
१९५	३।४०।३	विन्दवाभित्रो गाभित्र	"	"
१९६	—	वामदेवो गौतम	"	"
१९७	८।९२।११	श्रुतकक्ष आभिरत्त	"	"
१९८	१।३।१	मधुवृष्ट्या वेंदवाभित्र	"	"
१९९	८।९३।३४	श्रुतकक्ष आभिरत्त	"	"
२००	२।४१।१०	मृतमथर दौनक	"	"
२०१	६।४५।१८	अरुद्रात्र वाहृण्य	"	"
२०२	६।५७।१	अरुद्रात्र वाहृण्य	"	"
२०३	४।३०।१	वामदेवो गौतम	"	"

मंत्रनंश्या	ऋग्वेदस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
( १२ )				
१०४	८।४।५।२८	निरीकः काण्व	इन्द्र	गायत्री
१०५	१।१।४	मधुच्छन्दा यदवाभिप्रः	"	"
१०६	८।४।५।४	वत्स काण्व	"	"
१०७	८।४।५।१	त्रिजोक्तः काण्व	"	"
१०८	८।१३।१।६	सुवत्स आगिरस	"	"
१०९	—	वामदेवो गीतम	"	"
११०	३।५।२।१	विश्वामित्रो गाविष	"	"
१११	८।१३।१।१	सोयस्यस्यसूविन्नी काण्वायवी	"	"
११२	—	वामदेवो गीतम	"	"
११३	८।१३।१।५	धुतकस्त सुवत्सो वा आगिरस	"	"
( १३ )				
११४	१।३।०।१	धुन घोष मासौगति	"	"
११५	८।१३।१।०	धुतकस्त आगिरस	"	"
११६	८।४।५।४	मिरीक्तः काण्वः	"	"
११७	८।३।२।१०	मेधातिथिः काण्वः	"	"
११८	१।१०।१	घोतमो दाहृगण	"	"
११९	८।५।१	बहुमतिथिः काण्वः	अश्विनो मित्रावरुणौ	"
१२०	३।६२।१।६	विदवामित्रो गाविषो जम्बदमिवी	इन्द्रः	"
१२१	१।३।५।१०	प्रवक्ष्य काण्व	वत्स	"
१२२	१।२३।१।७	मेधातिथिः काण्वः	विष्णुः	"
( १४ )				
१२३	८।३।२।०।१	मेधातिथिः काण्वः	इन्द्रः	"
१२४	—	वामदेवो गीतम	"	"
१२५	८।३।१।४	मेधातिथिः काण्वः प्रियमेघस्यआगिरस	"	"
१२६	—	विदवामित्रो गाविष	"	"
१२७	८।१।१।०	मैधानिथिः काण्वः प्रियमेघस्यआगिरसः	"	"
१२८	१।०।१।०।५।१	हुमित्र ( सुमित्रो वा ) गीतम	"	"
१२९	१।१।५।५	मेधातिथिः काण्वः	"	"
१३०	८।३।०।॥	मेधातिथिः काण्वः	"	"
१३१	—	विदवामित्रो गाविषोऽभीषाव् उवलो वा	"	"
१३२	८।१०।२।८	धुतकस्त आगिरसः	"	"
( १५ )				
१३३	७।३।२।२२	वसिष्ठो भंग्रावरुणिः	"	बृहती
१३४	४।४।६।१	वराडासः काण्वः	"	"
१३५	८।४।३।१	प्रवक्ष्यः काण्वः	"	"

अंशसंख्या	अश्वमेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
२३६	८८८।१	मोषा गौतमः	इन्द्रः	बृहती
२३७	८८९।१	कलिः प्रागायः	"	"
२३८	७८३१।१०	वसिष्ठो मैत्रावरुणि.	"	"
२३९	८८३।१	मेधातिथिः काण्व	"	"
२४०	८८५।१७	भर्गः प्रागायः	"	"
२४१	७८५९।१	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	भरतः	"
२४२	८८१।१	प्रगायो धीमः काण्वः	इन्द्रः	"
( १६ )				
२४३	८८७०।३	बृहस्पतिर्वागिरसः	"	"
२४४	८८१।१२	मेधातिथि-मेघ्यातिथिौ काण्वौ	"	"
२४५	८८१।२४	मेधातिथि-मेघ्यातिथिौ काण्वौ	"	"
२४६	३।४५।१	विश्वामित्रो वापिषः	"	"
२४७	१।८४।१९	गोतामो बृहस्पतः	"	"
२४८	८९०।५	नृमेघपुरुमेधावागिरसौ	"	"
२४९	८८१।५	मेधातिथिमेघ्यातिथिर्वा काण्वः	"	"
२५०	८८१।३	मेधातिथिमेघ्यातिथिर्वा काण्वः	"	"
२५१	८८३।१५	मेधातिथिमेघ्यातिथिर्वा काण्वः	"	"
२५२	८८४।३	देवातिथिः काण्वः	"	"
( १७ )				
२५३	८८५।५	भर्गः प्रागायः	"	"
२५४	८९७।१	रैमः काण्वः	"	"
२५५	८८१०।१५	जमदग्निर्भार्गवः	"	"
२५६	८८३।७	मेधातिथिः काण्वः	"	"
२५७	८८९।३	नृमेघपुरुमेधावागिरसौ	"	"
२५८	८८९।१	नृमेघपुरुमेधावागिरसौ	"	"
२५९	७८३५।१६	वसिष्ठो मैत्रावरुणि	"	"
२६०	८८९।१७	रैम काण्वः	"	"
२६१	८८३।१	मेधातिथिः काण्व	"	"
२६२	६।४६।१७	भरद्वाज बार्हस्पत्य	"	"
( १८ )				
२६३	८८३३।१०	मेधातिथि काण्व.	"	"
२६४	८८९।४	रैम काण्वः	"	"
२६५	८८५६।१४	वसि	"	"
२६६	६।४६।१७	भरद्वाज बार्हस्पत्य	"	"
२६७	८८९।३	नृमेघ आगिरस	"	"
२६८	८८७०।७	बृहस्पतिर्वागिरस	"	"
२६९	८८७०।२	नृमेघपुरुमेधावागिरसौ	"	"

## चतुर्थ अध्याय ]

## सामयेदका सुयोध अनुवाद

मंत्रसंख्या	सुखदेवस्थानं	श्रुति	हेयता	छन्द
१७०	७।३१।१६	वसिष्ठो मंत्रावदधि	इन्द्र	बृहती
१७१	८।१।७	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी	"	"
१७२	८।६६।७	कलि प्राणाय	"	"

( १९ )

१७३	८।७०।१	पुषहन्मा आंगिरस	"	"
१७४	८।६१।१३	नग प्राणाय	"	"
१७५	८।१७।१४	इरिभिडि काण्व	"	"
१७६	८।०१।११	जयवसिर्मागव	"	"
१७७	८।४९	मेधातिथि काण्व	"	"
१७८	८।७०।५	पुषहन्मा आंगिरस	"	"
१७९	८।४।१	देवातिथि काण्व	"	"
१८०	७।३१।१४	वसिष्ठो मंत्रावदधि	"	"
१८१	६।५९।६	भरद्वाजो बाह्वृषस्य	"	"
१८२	८।५३।५	मेध्या काण्व	"	"

( २० )

१८३	८।९९।७	सुमेध आंगिरस	"	"
१८४	७।३१।१	वसिष्ठो मंत्रावदधि	"	"
१८५	७।३१।८	वसिष्ठो मंत्रावदधि	"	"
१८६	६।४६।३	भरद्वाज बाह्वृषस्य	"	"
१८७	१।१३।९।५	वसिष्ठो मंत्रावदधि	"	"
१८८	—	वामदेवो गीतम	"	"
१८९	८।३३।७	मेध्यातिथि काण्व	"	"
१९०	८।३१।१	नग प्राणाय	"	"
१९१	८।१।५	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी	"	"
१९२	८।१।६	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी	"	"

( २१ )

१९३	७।३१।४	वसिष्ठो मंत्रावदधि	"	"
१९४	—	वामदेवो गीतम	"	"
१९५	८।१।१०	मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी विश्वामित्र हायके	"	"
१९६	८।८८।१	नोधा गीतम	"	"
१९७	८।३३।७	मेधातिथि काण्व	"	"
१९८	—	वामदेवो गीतम	"	"
१९९	—	वामदेवो गीतम	"	"
२००	८।१।१७	पुष्टियु काण्व	"	"
२०१	८।३।१७	मेधातिथि काण्व	"	"
२०२	८।९९।१	सुमेध आंगिरस	"	"

१९ ( साम हिन्दो )

( १४२ )

## सामवेदका ह्रस्वोद्य गलुवाद्य

[ ऐन्द्रं काण्डम् ]

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋग्निः	देवता	छन्दः
		( २२ )		
३०३	७।८।१।१	वसिष्ठो मंत्रावरणि	उषा	बृहती
३०४	७।७।४।१	वसिष्ठो मंत्रावरणि	अश्विनौ	"
३०५	—	अश्विनौ संवत्सरी	"	"
३०६	१।४।७।१	प्रत्यक्ष काण्वः	इन्द्रः	"
३०७	८।१।१०	मेषातिवि-मेध्यातिवी काण्वौ	"	"
३०८	८।४।१।१	देवातिवि काण्वः	"	"
३०९	७।३।१।०४	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
३१०	७।३।१।१८	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
३११	८।११।१०	सुमेष आगिरसः	"	"
३१२	८।८।१।५	गौमाः गौतमः	"	"
		( २३ )		
३१३	७।१।१।१	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	मिष्टुप्
३१४	७।१।४।१	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
३१५	५।३।१।१	वातुराश्वेयः	"	"
३१६	१०।१४।८।१	बृधुबन्धः	"	"
३१७	१०।४।७।१	सप्तगुरागिरसः	"	"
३१८	७।१।७।१	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
३१९	१०।७।३।१।१	गोरिवोति क्षाण्वः	"	"
३२०	१०।१।१।३।६	विनो आगंवः	वेनः	"
३२१	—	बृहस्पतिर्नहुलो वा	इन्द्रः	"
३२२	६।३।१।१	सुहृन्मो भारद्वाज	"	"
		( २४ )		
३२३	८।११।१।१	धुतानो मास्तः	"	"
३२४	८।११।१।७	धुतानो मास्तः	"	"
३२५	१०।५।५।५	बृहदुवयो वामदेव्य	"	"
३२६	८।११।१।१	धुतानो मास्तः	"	"
३२७	—	वामदेवो गौतम	"	"
३२८	७।३।१।१०	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
३२९	३।२०।११	विदवागिनी गायिनि	"	"
३३०	७।५।३।१	वसिष्ठो मंत्रावरणि	"	"
३३१	१०।७।३।११	गोरिवोति क्षाण्वः	"	"
		( २५ )		
३३२	१०।१।७।८।१	अरिष्टनेषिस्तार्य	"	"
३३३	६।४।७।२।१	भारद्वाज	"	"
३३४	१०।१।१।१	विमद ऐन्द्रः, धनुहृद्वा वासुक्	"	"
३३५	४।१।७।८	वामदेवो गौतमः	"	"

## चतुर्थ अध्याय ]

## सामवेदको सुबोध अनुवाद

मंत्रसंख्या	श्रवणेवस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः	प्रियम्
३३६	—	वामदेवो गीतमः	"	"	"
३३७	—	वामदेवो गीतमः	"	"	"
३३८	३।५३।२	विश्वामित्रो गायित्र	"	"	"
३३९	२।०।८९।४	देवुर्वैश्वामित्र	"	"	"
३४०	२।०।२०।१	वामदेवो गीतमः	"	"	"
३४१	२।८४।२६	गीतमो राहूगणः	"	"	"
( २६ )					
३४२	२।१०।१	समुच्छन्दा वेऽश्विनः	"	"	मनुष्यम्
३४३	२।२१।२	जेता माधुच्छन्दसः	"	"	"
३४४	२।८४।४	गीतमो राहूगणः	"	"	"
३४५	५।३२।१	अश्विनोऽश्वः	"	"	"
३४६	८।९५।४	तिरश्चोरागिरसः	"	"	"
३४७	२।८४।१	गीतमो राहूगणः	"	"	"
३४८	८।३४।२	वीर्यातिथिः काश्यपः	"	"	"
३४९	८।९५।२	तिरश्चोरागिरसः	"	"	"
३५०	८।९५।३	विश्वामित्रो गायित्रः	"	"	"
३५१	६।४४।१	तिरश्चोरागिरसः संपुर्वार्हस्त्यजो वा	"	"	"
( २७ )					
३५२	६।४४।२	मरुताजो सार्हस्त्यजः	"	"	"
३५३	—	वामदेवो गीतमः, वारिपूतो वा	"	"	"
३५४	८।६८।१	प्रियमेघः आगिरसः	"	"	"
३५५	८।६९।२	प्रगाथ काश्यपः	सूर्यः	"	"
३५६	—	इषावादन आत्रेयः	इन्द्रः	"	"
३५७	६।४४।४	संपुर्वार्हस्त्यजः	वसिष्ठा	"	"
३५८	४।३९।३	वामदेवो गीतमः	इन्द्रः	"	"
३५९	२।११।४	जेता माधुच्छन्दसः	"	"	"
( २८ )					
३६०	८।६९।२	प्रियमेघः आगिरसः	"	"	"
३६१	—	वामदेवो गीतमः	"	"	"
३६२	८।६९।८	प्रियमेघः आगिरसः	"	"	"
३६३	२।१०।५	समुच्छन्दा वेऽश्विनः	"	"	"
३६४	८।६८।३	प्रियमेघः आगिरसः	"	"	"
३६५	६।११।४	मरुताजो सार्हस्त्यजः	"	"	"
३६६	५।३८।२	अश्विनोऽश्वः	उषा	"	"
३६७	२।९९।३	प्रत्यक्षः काश्यपः	विन्दवेदेवाः	"	"
३६८	२।१०।५	विश्वामित्रो गायित्रः	इन्द्रः	"	"
३६९	—	वामदेवो गीतमः	"	"	"



मन्त्राख्या	शृङ्गेहरचानं	श्रुतिः	श्रवता	छन्दः
		( २९ )		
३७०	८९७।१०	रेमः काण्डयः	"	अति जगती
३७१	१०।१४७।१	सुवेदाः संलुपिः	"	जगती
३७२	—	यामवेदो गीतमः	"	"
३७३	१।५७।४	सव्य आगिरसः	"	"
३७४	३।५१।१	विश्वामित्रो यामिनिः	"	"
३७५	१०।४३।१	वृण्य आगिरसः	"	"
३७६	१।५१।१	सव्य आगिरसः	"	"
३७७	१।५१।१	सव्य आगिरसः	"	"
३७८	१।७०।१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	शाखापुष्पिणी	"
३७९	१०।१३४।१	मेघातिथि काण्वः	इन्द्रः	महर्षितः
३८०	१।१०१।१	कुस्त आगिरसः	"	जगती

## ( ३० )

३८१	८।६१।१	नारव काण्वः	"	उष्णिक्
३८२	८।१५।१	गोवृक्षयस्वस्तितनो काण्वायनो	"	"
३८३	८।१५।४	गोवृक्षयस्वस्तितनो काण्वायनो	"	"
३८४	८।१२।१६	यमंतः काण्वः	"	"
३८५	८।१४।१६	विश्वमना वयंसवः	"	"
३८६	८।१४।१६	विश्वमना वयंसवः	"	"
३८७	८।१४।१६	विश्वमना वयंसवः	"	"
३८८	८।१५।१	मृगेष आगिरसः	"	"
३८९	१।८४।७	गौतमो राहुमनः	"	"
३९०	८।१४।१	विश्वमना वयंसवः	"	"

## ( ३१ )

३९१	८।१२।८	प्रगयो धीरः काण्वः	"	"
३९२	१।४३।१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
३९३	८।१८।४	मृगेष आगिरसः	"	"
३९४	८।१२।११	यमंतः काण्वः	"	"
३९५	८।१८।६	हरिश्मिन्ति काण्वः	आदित्या	"
३९६	८।१४।१४	विश्वमना वयंसवः	इन्द्रः	"
३९७	८।१८।१०	हरिश्मिन्ति काण्वः	आदित्या	"
३९८	७।१२।१	वसिष्ठो मेनायवणि	इन्द्रः	विराटुष्णिक्

## ( ३२ )

३९९	८।११।१३	सौमरि काण्वः	"	ककुप्
४००	८।११।३	सौमरि काण्वः	"	"
४०१	८।१०।१	सौमरि काण्वः	मरुतः	"
४०२	८।११।३	सौमरि काण्वः	इन्द्रः	"

## चतुर्थ अध्याय ]

## सामवेदका सुबोध अनुवाद

संज्ञासंख्या	श्रुत्यवस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
४०३	८।११।११	सौमरिः काण्वः	इन्द्रः	ऋग्वृत्
४०४	८।१०।११	सौमरिः काण्वः	मरुतः	"
४०५	८।९।१०	मुमेष जागिरतः	इन्द्रः	"
४०६	८।९।७	मुमेष जागिरतः	"	"
४०७	८।११।५	सौमरिः काण्वः	"	"
४०८	८।११।११	सौमरिः काण्वः	"	"
( ३३ )				
४०९	१।८४।१०	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	पंक्तिः
४१०	१।८०।१	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४११	१।८१।१	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१२	१।८०।७	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१३	१।८०।३	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१४	१।८१।३	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१५	१।८१।१२	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१६	१।८१।१	गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः	"	"
४१७	१।१०।५।१	त्रित आप्त्यः	विश्वेदेवताः	"
४१८	५।७५।१	अयस्सुदाधेयः	अग्निदेवी	"
( ३४ )				
४१९	५।६।४	वसुवृत्त आग्नेयः	अग्निः	"
४२०	१।११।११	विमद ऐन्द्रः	"	"
४२१	५।७९।१	सत्यधवा आग्नेयः	उषा	"
४२२	१।०।१५।१	विमद ऐन्द्रः	सौर्यः	"
४२३	१।८१।४	गोतमो राहूगणः	इन्द्रः	"
४२४	१।८१।४	गोतमो राहूगणः	"	"
४२५	५।६।१	वसुवृत्त आग्नेयः	अग्निः	"
४२६	१।०।११।१	अहोमुवाग्नेयः	विश्वेदेवताः	सूची
( ३५ )				
४२७	९।१०९।१	श्रुण वसवस्सु	वसवानः सोमः	द्विपरा विराट्
४२८	९।११०।१	श्रुण वसवस्सु	"	विपरा भृगुवृत्तयोः विश्वामस्या
४२९	९।१०९।३	श्रुण वसवस्सु	"	द्विपरा विराट्
४३०	९।१०९।१०	श्रुण वसवस्सु	"	"
४३१	९।१०९।१३	श्रुण वसवस्सु	"	"
४३२	९।११०।१	श्रुण वसवस्सु	"	विपरा भृगुवृत्त त्प्रीतिता सप्त्या
४३३	७।५६।१	यतिष्को यन्त्रावदग्निः	यदः	द्विपरा विराट्
४३४	७।१०।१	वायवेवो यौगवः -	अग्निः	परयंविः
४३५	—	श्रुण वसवस्सु	वायविः	पुट उगिष्णु

मन्त्रसंख्या	श्रव्यवस्थान	श्रुति	देवता	छन्द
४२६	२।१०५।७	श्रुणु प्रसदस्युः ( ३६ )	पथमान सोम	द्विपदा विराट्
४३७	—	प्रसदस्युः	इन्द्र	द्विपदा विराट्
४३८	—	प्रसदस्युः	"	"
४३९	१।३१।४	प्रसदस्युः	"	"
४४०	१।३१।४	प्रसदस्युः	"	"
४४१	—	प्रसदस्युः	"	"
४४२	—	प्रसदस्युः	विश्वेदेवा	"
४४३	१०।१७२।१	सवर्तं आगिरस	जघा	"
४४४	—	प्रसदस्युः	इन्द्र	"
४४५	—	भरादस्युः	"	"
४४६	—	प्रसदस्युः	"	"
( ३७ )				
४४७	८।१६।५	पुष्यं कान्य	मति	"
४४८	१।१४।१	अग्न्यु सुवग्धु धृतवग्धु मित्र-	"	"
४४९	—	अग्न्यु सुवग्धु धृतवग्धु मित्र-	"	"
४५०	—	अग्न्यु सुवग्धु धृतवग्धु मित्र-	इन्द्र	"
४५१	१०।१७२।४	सवर्तं आगिरस	"	"
४५२	१०।१५७।१	भुवन आप्य सापनो वा नीवन	विश्वेदेवा	"
४५३	—	कन्य ऐक्य	"	"
४५४	२।१७।१५	भरादस्युः	इन्द्र	"
४५५	—	आग्नेय	विश्वेदेवा	"
४५६	मनु० ३६।८	वसिष्ठो मीमांसयति	इन्द्र	एकपदा
( ३८ )				
४५७	२।१२।१	मृत्समव शीनक	इन्द्र	अष्टि
४५८	—	मीरागिरस	पुष्य	अतिनगती
४५९	१।१३०।१	पदच्छेवो देवोवाति	इन्द्र	अत्यष्टि
४६०	८।१७।१३	रेत कान्य	"	अतिनगती
४६१	१।१३५।१	पदच्छेवो देवोवाति	विश्वेदेवा	अत्यष्टि
४६२	१।१७।१	एवमासकान्येव	मक्ष	अतिनगती
४६३	२।१११।१	जानत वादच्छेपि	पथमान सोम	अत्यष्टि
४६४	—	मकुल	सविता	"
४६५	१।१२७।१	पदच्छेवो देवोवाति	मति	"
४६६	२।१२७।३	मृत्समव शीनक	इन्द्र	अष्टि

## अथ पाष्षमानं काण्डम् ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

[ ९ ]

( १-१० ) १. ४ अयरीप्राह्मिणः, २ मयुपुडन्वा सैन्धामिणः, ३ मयुपर्दरिर्गर्भमिर्गर्भो वा; ५ त्रिण आत्वाः;  
६ जामयो मारोहः; ७ जयवर्गिर्गर्भः; ८ वृद्धयुत आगस्त्यः; ९, १० अस्ति धारया देवनी वा ॥

पवमानः सोम ॥ पावनी ॥

४६७ उवा<sup>१</sup> ते जा<sup>२</sup>मन्व<sup>३</sup>सो दि<sup>४</sup>वि स<sup>५</sup>द्रु<sup>६</sup>या द<sup>७</sup>दे । उ<sup>८</sup>म<sup>९</sup> श<sup>१०</sup>र्म म<sup>११</sup>हि अ<sup>१२</sup>वः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१।१० )

४६८ स्वा<sup>१</sup>दि<sup>२</sup>ष्टया<sup>३</sup> म<sup>४</sup>दि<sup>५</sup>ष्टया<sup>६</sup> प<sup>७</sup>वस्व<sup>८</sup> सोम<sup>९</sup> धार<sup>१०</sup>या । इ<sup>११</sup>न्द्राय<sup>१२</sup> पा<sup>१३</sup>तवे<sup>१४</sup> सु<sup>१५</sup>तः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।१ )

४६९ वृ<sup>१</sup>षा<sup>२</sup> प<sup>३</sup>वस्व<sup>४</sup> धार<sup>५</sup>या म<sup>६</sup>रु<sup>७</sup>त्यवे<sup>८</sup> च म<sup>९</sup>त्सरः । वि<sup>१०</sup>द्या<sup>११</sup> द<sup>१२</sup>धान<sup>१३</sup> ओ<sup>१४</sup>जसा<sup>१५</sup> ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१।१० )

४७० य<sup>१</sup>स्त<sup>२</sup> म<sup>३</sup>द्रो<sup>४</sup> वरि<sup>५</sup>ण्यस्तेना<sup>६</sup> प<sup>७</sup>वस्वान्ध<sup>८</sup>सा । द<sup>९</sup>वावीर<sup>१०</sup>प<sup>११</sup>ष्ठ<sup>१२</sup>स<sup>१३</sup>हा ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१।१९ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ४६७ ] हे सोम ! ( ते अन्धसः ) तेरे इस जन्मकी राता ( जल उवा ) जग ऊचे ( दिवि ) धूलोकमें ठहा है, ( सव् उर्म शर्म ) धूलोकमें होनेवाले प्रभाववाली सुत और ( महि अवः ) महान् अन्न ( भूम्या ददे ) भूमि पर प्राप्ता होते हैं ॥ १ ॥

१ ते जाते दिवि उवा— तुम सोमना सग्य धूलोकमें ऊंचे स्थान पर हुया है ।

२ उर्म शर्म महि अवः भूम्या ददे— वहसि महान् सुत और उत्तम अन्न भूमि पर हमें प्राप्त होते हैं ।

[ ४६८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( इन्द्राय पातवे सुतः ) इन्द्रके पीनेके लिए निबाला गया यह रस रूप तू ( स्वादिष्टया ) स्वादिष्ट और ( मदिष्टया ) हर्ष उत्पन्न करनेवाली ( धारया पवस्व ) धारया प्रवाहित हो ॥ २ ॥

१ इन्द्राय पातवे सुतः— इन्द्रके पीनेके लिए यह रस निबाला गया है ।

२ स्वादिष्टया मदिष्टया धारया पवस्व— यह रस स्वादिष्ट और हर्ष बढ़ानेवाला है ।

[ ४६९ ] हे सोम ! ( वृषा धारया पवस्व ) बलवाली धारया तू कलशमें आ और ( मत्सरये ) मरुत् निवृत्ती सहपता करते हैं, उस इन्द्रके लिए ( विद्या ओजसा दधानः ) सब सामर्थ्यसे युक्त होकर ( मत्सरः ) आनन्द बढ़ाने-वाला हो ॥ ३ ॥

१ वृषा पवस्व धारया— जोरके प्रवाहसे धर्तनमें रत पडे ।

२ मरुत्यवे ( इन्द्राय )— इन्द्रके मदके लिए मद आते हैं ।

३ विद्या ओजसा दधानः— सब सामर्थ्यसे धारण कर ।

४ मत्सरः ( मद्-सरः )— आनन्द बढ़ानेवाला हो । सोमरस पीनेसे शक्ति और आनन्द बढ़ता है ।

[ ४७० ] हे सोम ! ( ते देवानीः ) तेरा ओ देवीको युजनेवाला ( व्यध-शंस-द्वा ) पापी और दुष्टको नाश करनेवाला, ( परेण्यः मद्- ) ओष्ठ जाकज बेनेवाला ( यः रसः ) जो रस है, ( तेन अन्धसा ) उस अन्न रूप रतने सोम ( पवस्व ) कलशमें तू आ ॥ ४ ॥

- ४७१ तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरिति कनिक्कदत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।११४ )  
 ४७२ इन्द्रायेन्द्रो मरुच्यते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।६४।२२ )  
 ४७३ असाव्यश्शुभेदावाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । ज्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।६२।४ )  
 ४७४ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।२५।१ )

१ देवार्थः ( देव-प्राची )— देवोंकी प्रिय, देव जिते पीते हैं ।

२ अद्य-शंस-हृ— वायो और बुद्धीका शास करनेवाला ।

३ धरेण्यः मदः— धेठ आनन्द देनेवाला ।

४ पयस्य— स्वच्छ होनेके लिए बर्तनमें डाला जाता है, साफ होकर बर्तनमें गिर ।

[ ४७१ ] ( तिस्र वाचः उदीरते ) अश्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन तीन वेदोंके घन बोले जाते हैं । ( धेनवः गावः मिमन्ति ) बुधाय गायें ब्रूय ब्रूयके लिए शब्द करती हैं, ( हरिः कनिक्कदत् पति ) हरे रयका सोम शब्द करता हुआ छाना जाता है ॥ ५ ॥

१ तिस्रः वाचः उदीरते— तीन वेदोंके भन्न बोले जाते हैं ।

२ धेनवः गावः मिमन्ति— बुधाय गायें अपना ब्रूय जल्दी ही ब्रूयानेके लिए शब्द करती हैं ।

३ हरि कनिक्कदत् पति— हरे रयका सोम शब्द करता हुआ छाना जाता है ।

सर्वे यज्ञशालामें गया होता है, उसका यह धर्म है ।

[ ४७२ ] हे ( इन्द्रो ) सोमरस । ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा तू ( अर्कस्य योनिं ) उसके मध्य भागमें ( आसदं ) बैठनेके लिए ( मरुच्यते इन्द्राय ) बध्नु जिसकी सहायता करते हैं, उस इन्द्रके लिए ( पयस्य ) कलशमें जा ॥ ६ ॥

१ मधु-मत्-तमः— अत्यन्त मीठा ।

२ अर्कस्य योनिः— धूमनीय यज्ञ जहाँ होते हैं, अर्क-बुध ।

३ पयस्य— रस छाननेके लिए एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें डाला जाता है ।

[ ४७३ ] ( गिरि-ष्ठाः अंशुः ) पर्वत पर होनेवाले सोमका रस ( मद्वाय असाव्य ) आनन्द प्राप्तिके लिए निर्बीज है, ( अप्सु दक्षः ) पानीमें मिलकर बह बड़ा है, ( ज्येनः न ) ज्येन पक्षीके तलाप ( योनिं आसदत् ) भागें स्थापन कर वह जाकर बँधा है ॥ ७ ॥

१ गिरि-ष्ठाः अंशुः— पर्वत पर सोमलता होती है ।

२ असाव्य— उच्छ्र, रस, मिश्रण, है ।

३ अप्सु दक्षः— पानीमें मिलकर बह बड़ा है । यह बल बढ़ानेवाला हो गया है ।

४ ज्येनः न योनिं आसदत्— ज्येन पक्षी जैसे पर्वतसे उड़कर अपने स्थापन कर जाता है, उतनी प्रकार यह सोम पर्वतसे यहाँ यज्ञशालामें आया है ।

[ ४७४ ] हे ( हरे ) हरे रयके सोम । ( दक्ष-साधनः ) बल बढ़ानेका साधन तू ( मद्वाः ) आनन्ददायक ( देवेभ्यः मरुद्भ्यः पीतये ) देवों और मरुतोंके पीनेके लिए ( पवस्य ) इस बर्तनमें जा ॥ ८ ॥

१ हरिः— सोम हरे रयका होता है ।

२ दक्ष-साधनः— बल बढ़ानेका यह साधन है ।

३ मदः— आनन्द बढ़ानेवाला सोमरस है ।

४ देवेभ्यः पीतये— यह देवोंके पीनेमें आता है ।

५ पवस्य— यह छाना जाता है ।

४७५ परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षत् । मदेषु सर्वथा असि ॥ ९ ॥ ( ऋ. २।१८।१ )

४७६ परि शिवा दिवा कविर्वया धसि नप्योदितः । स्वानैर्याति कविकृतः ॥ १० ॥ ( ऋ. २।१९।१ )

इति नवमी वसतिः ॥ ९ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ खण्ड १ । उ० ३ पा० १ ४२ १ का ॥ ]

[ १० ]

( १-१० ) १ ( कविर्नप्यो ) अथाप्यस्य आनेत्रः २ त्रित आत्य, ३, ८ अष्टमीमुत्तमिन्तरा, ४ भृगुर्वागिर्नमः-  
गिरिर्नमो वा, ५, ६ कश्यपो मारौच, ७ विधुभिः कश्यपः, ९, १० अगित वाद्ययो देवलो वा ॥

पञ्चमास सोम ॥ गायत्री ॥

४७७ प्र सोमासो मदच्युतः श्वसे नो मयानाम् । सुता विदधे अक्रमुः ॥ १ ॥ ( ऋ. २।२०।१ )

४७८ प्र सोमासो विदधिवोऽपो नयन्त ऊर्मयः । यनानि महिषा इव ॥ २ ॥ ( ऋ. २।२१।१ )

[ ४७५ ] ( सोमः पवित्रे पर्यक्षत् ) सोमस्य सत्त्वोत्ते जाते गिरता है, ( गिरि-ष्ठाः स्वानः ) यह सोम पर्यतपर होता है, यहाँसे साकर इतका रस निकाला जाता है । ( मदेषु सर्वथा असि ) मानव्य देवैर्वासीमं नू तस्यो भेष है ॥ ९ ॥

१ स्थानः— उत्तका रस निकाला जाता है ।

२ सोमः पवित्रे परि-माक्षत्— सोमस्य छन्दोमते छाना जाता है, और यह नीचे बर्तनमें गिरता है ।

३ मदेषु सर्व-था असि— मानव्य देवैर्वाले वराण्यं यह सत्त्वो अश्विष आत्मक देवैर्वाता है ।

[ ४७६ ] ( कवि-कृतः पविः ) बुद्धिको बढानेवाला तथर स्वयं शानवान् यह सोम ( नप्योऽदितः ) सोमस्य निकालनेके दो तल्लोके बीचमें रखा गया है, ( दिवः भिया ययांसि ) ये तल्लोके भ्रिय यही अर्थात् यहाऊपर परध ( स्थानः ) रस निकालनेके लिए ( परिधाति ) उसके ऊपर धलते हैं, सोम वायरोसे पीछा जाता है ॥ १० ॥

१ कवि-कृतः— सोम बुद्धि और शर्म करनेकी शक्ति बढाता है ।

२ नप्योऽदितः— दो तल्लोके बहुतो बीचमें सोम रखा जाता है, और वनाकर उत्तका रस निकाला जाता है ।

३ दिवः ययांसि— बहाऊके ऊपर, तल्लोके नीचे ।

४ स्थानः परिधाति— ( स्थान-स्थानः ) रस निकालनेवाले वाजक वायरोसे सोम पीतकर उत्तका रस निकालते हैं ।

॥ यहाँ प्रथम खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ४७७ ] ( मद-च्युतः सोमासः ) मानव्य बढानेवाले सोमस्य ( सुताः ) निचोरे गए हैं । ( मयोर्ना नः विदधे ) हाथ देनेवाले हमारे इस धर्म ( अयसे प्राश्नमुः ) सोम और पचके लिए ये रस पात्रमें भरे गए हैं ॥ १ ॥

१ सोमासः मद-च्युतः— सोमस्य आत्मक बढानेवाले हैं ।

२ मयोर्ना नः विदधे— हाथपात्र तैय्यार करके हम धर्म करते हैं ।

३ अयसे प्राश्नमुः— सोमस्यकृपी अक्षरत पीनेके लिए जब तल्लोके वातोंमें भरा है ।

[ ४७८ ] ( विदधिवो सोमासः ) बुद्धिको बढानेवाले सोमस्य ( अपः ऊर्मयः ) पानीके लहरोंके साथ मिलाये जाते हैं, ( महिषा यनानि इव ) जैसे जैसे पवन जाते हैं, उस तथह वे सोमस्य ( प्र नयन्त ) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ २ ॥

२० ( साम हिन्वी )

४७९ यवस्वेन्दो वृषा सुतः कृषी नो यज्ञसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।६।१३८ )

४८० वृषा क्षसि भानुना छुमन्त त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दक्षम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।६।१४ )

४८१ इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सुषदश्चरिरीरिव ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।६।१५ )

४८२ असृक्षत प्र याजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाश्ववः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।६।१६ )

१ सोमासः विपश्चितः— सोमरस बुद्धि और उत्साह बढ़ानेवाला है ।

२ अपः ऊर्मयः— पानीकी सहर । पानीमें वै रस मिलाये जाते हैं ।

३ महिषाः घनानि इव— पशु जैसे वनमें जाते हैं, उसी तरह वै रस पानीमें जाते हैं ।

४ प्र-मयस्त— विशेष पद्धतिसे वे पानीमें मिलाये जाते हैं ।

[ ४७९ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( सुतः ) विचोड़ा गया और ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला तू ( पवस्व ) पवित्र हो, ( जने नः यज्ञसः कृषि ) सोमोंमें हमें यज्ञस्वी कर, और ( विश्वाः द्विषः अप जहि ) सब शत्रुओंकी हरा ॥ ३ ॥

१ हे इन्दो ! सुतः— हे सोम ! तेरा रस निकाला है ।

२ वृषा पवस्व— तू बल बढ़ानेवाला है, तू इस पात्रमें छाया जाता है ।

३ जने नः यज्ञसः कृषि— लोगोंमें तू हमें यज्ञस्वी कर ।

४ विश्वाः द्विषः अप जहि— सब शत्रुओंकी पराभूत कर, दूर कर ।

[ ४८० ] हे सोम ! ( हि वृषा क्षसि ) निश्चयसे तू बल बढ़ानेवाला है । हे ( पवमान ) पवित्र होनेवाले सोम ! ( स्व-दक्षं ) सबको हलनेवाले ( भानुना छुमन्त ) तेजसे घमकनेवाले ( त्वा हवामहे ) तुझे हम बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ हि वृषा क्षसि— निश्चयसे तू बल बढ़ानेवाला है ।

२ पवमानः— छनकर पवित्र होनेवाला, छाननेके बाद यह साफ होता है ।

३ स्वः-दक्षं— अपने आप घमकनेवाला ।

४ भानुना छुमन्त त्वा हवामहे— तेजसे घमकनेवाले तुझे हम बुलाते हैं, तेरा वर्धन करते हैं ।

[ ४८१ ] ( चेतनः प्रियः इन्दुः ) उत्साह बढ़ानेवाला प्रिय सोमरस ( कवीनां मतिः ) बानी लोगोंकी स्तुतिके साथ ( पविष्ट ) वर्तन में छाया जाता है, ( रयीः अश्वे इव ) रथका स्वामी जैसे घोड़ेकी बलता है, उसी प्रकार ( सुषदम् ) यह पात्रमें भर जाता है, ॥ ५ ॥

१ चेतनः प्रियः इन्दुः— उत्साह बढ़ानेवाला हीमेंके कारण यह सोमरस सभीको अच्छा लगता है ।

२ कवीनां मतिः पविष्ट— शाली लोगोंके स्तुतिके साथ-साथ यह छाया जाता है, और वर्तनमें भरा जाता है ।

३ रयीः अश्वे इव सुषदम्— रथमें बंठनेवाला जिस प्रकार घोड़ोंकी हाकता है, उसी प्रकार यह सोमरस पात्रमें भरा जाता है ।

[ ४८२ ] ( याजिनः ) बल बढ़ानेवाले ( गव्याः ) और उत्साह बढ़ानेवाले, और ( शुक्रासः सोमासः ) घमकनेवाले सोमरस ( गव्या अश्वया वीरया ) गाय, घोड़े और वीर पुत्रोंकी इच्छा करनेवालोंके द्वारा ( प्रासृक्षत ) निचोड़े जाते हैं ॥ ६ ॥

१ याजिनः आश्वयः सोमासः— ये सोमरस बल और उत्साह बढ़ानेवाले हैं ।

२ गव्या अश्वया वीरया प्रासृक्षत— गाय, घोड़े और वीर पुत्र प्राप्त हों, इस इच्छासे घमकाने द्वारा रस निचोड़ा जाता है ।

४८३ पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥ ( ऋ १/६१/२२ )

४८४ पवमानो अजीजनद्विषित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥ ( ऋ १/६१/१६ )

४८५ परि स्वानास इन्द्रवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्पन्ति धारया ॥ ९ ॥ ( ऋ १/१०/४ )

४८६ परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरुर्माविधि ध्रितः । कारुं विअन्तुसुस्पृहम् ॥ १० ॥ ( ऋ १/११/१ )

इति वसन्तो वदति ॥ १० ॥ द्वितीय खण्ड ॥ २ ॥ ( स्ब० ११ । उ० मा । धा० ४९ । हो ॥ )

इति पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्थः, पञ्चम- प्रपाठकस्य समाप्तः ॥ ५ ॥

[ ४८३ ] हे सोम । ( देवः पवस्व ) तू बधवनेवाला है, अब पानमें छननेके लिए जा, ( ते मदः ) तेरा यह आनन्द बढ़ानेवाला रस ( आयुषम् इन्द्रं गच्छतु ) सबके साथ इन्द्रके पास जावे, ( धर्मणा ) अपनी धारकावृत्तिते ( वायुं आरोह ) वायुमें मिल ॥ ७ ॥

१ देवः पवस्व— तू बधवने हुए जाना जानकर लाऊ हो ।

२ ते मदः आयुषम् इन्द्रं गच्छतु— तेरा यह आनन्द बढ़ानेवाला रस सबके साथ इन्द्रको प्राप्त हो ।

३ धर्मणा वायुं आरोह— अपनी धारकावृत्तिते यह वायुको प्राप्त होवे ।

सोमरस शुद्ध होनेके बाद इन्द्र और वायुको दिया जाता है ।

[ ४८४ ] ( पवमानः ) पवित्र हुए इस सोमरसने ( द्विषः चित्रं ) चुलोरुमें बीलनेवाले ( बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः ) महान् वैश्वानर तेजस्वी ( तन्यतुं न ) बिजलीके समान ( अजीजनत् ) उत्पन्न किया ॥ ८ ॥

सोमरस छनकर शुद्ध हो मनेवर बधवने लगता है, उसको देखकर देखनेवाले समझते हैं कि मानों मिलली हो बमक रही है ।

[ ४८५ ] ( स्वानासः इन्द्रवः ) निचोड़े जानेके बाद ये सोमरस ( बर्हणा गिरा ) मधुर स्त्रियोंके साथ तथा ( मधोः धारया ) इस मोठे रसकी धाराके साथ ( मदाय ) आनन्द बढ़ानेके लिए ( परि अर्पन्ति ) छाननीसे छाने जाते हैं ॥ ९ ॥

१ स्वानासः—सुवानासः इन्द्रवः— सोमरस निकालते हुए ( बर्हणा गिरा ) ऊँची भार्याजने स्त्रियों मिले जाते हैं, और उस समय यह मोठे रसकी धारा, बीनेवालोंका आनन्द बढ़ानेके लिए बर्तनमें छोड़ी जाती है, और छाननीसे छापी जाती है ।

[ ४८६ ] ( कविः ) जान वर्षक, ( सिन्धोः ऊर्मौ ) सिन्धु नदीके ऊपरमें ( अविध्रितः ) मिला हुआ ( पुट-स्पृहं कारुं विअत् ) अनेकोंने मतसनीय, स्तुति करनेवाले यज्ञकर्त्ताओंको धारण करनेवाला यह सोम ( परि प्रासिष्यदत् ) पानमें उपकता है ॥ १० ॥

१ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अविध्रितः— जान घड़ानेवाला यह सोमरस नदीके पानीमें मिलाया जाता है । इसमें पानी मिलाया जाता है ।

२ पुटस्पृहं कारुं विअत्— प्रससनीय याज्ञक एक स्थानपर बैठते हैं । यज्ञमण्डपमें सभी याज्ञक बैठते हैं ।

३ परि प्रासिष्यदत्— यह सोम छाननीमें छाना जाता है । छाननीका नाम " दयापवित्र " है, इस दया-पवित्रमें यह रस नीचे बर्तनमें पड़ता है ।

॥ यहां द्वितीय खण्ड समाप्त हुआ ॥



## [ १ ]

अथ दण्डप्रपाठकस्य प्रयोगोऽर्थः ॥ ६ ॥

( १-१० ) १, ८, ९ अमहीपुरागिरसः, २ बृहन्मतिराद्गिरसः; ३ जमदग्निर्मर्षिणः; ४ प्रभूवसुरागिरसः; ५ मेष्पा-  
तिवि रात्रे, ६, ७ निशुवि. मादय्य; १० उषध्या आगिरसः ॥ पवमान. सोमः ॥ गाथी ॥

४८७ उपो पु जातमपतुर गोभिर्मङ्ग परिष्कृतम् । इन्दु देवा अयासिपुः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।११ )

४८८ पुनानो अक्रमीदमि विश्वा मृषो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विर्म धीतिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७।१ )

४८९ आविशन्कलश सुतो विश्वा अर्षयामि श्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीपते ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।६२।१२ )

४९० असाजि रथयो यथा पवित्रे चरन्तोः सुतः । कामन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।६३।१ )

४९१ म यद्वाजो न भूयस्त्वेषा आयासो अकम्पुः । मन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥

( ऋ. १।६४।१ )

४९२ अपमन्वसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादिव्यु जनम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।६५।२४ )

## [ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ४८७ ] ( सु-जातं ) उत्तम पीतिले तम्बार किये हुए ( अपतुर ) पानीमें मिलाये हुए ( अंग ) दानुको बारने-  
वाले ( गोभिः परिष्कृतं ) मायके रूपमें मिले हुए ( इन्दु ) सोमरसके वात ( देवाः उप अयासिपुः ) देव पशुके ॥ १ ॥

सोमरस निकालनेके बाद ( अप-तुर ) उत्तम पानी मिलाया जाता है, ( गोभिः परिष्कृतं ) जहाँ गावका  
रूप मिलाया जाता है, और वह ( मङ्ग ) दानुको बारनेवालोंका उत्साह ध्वनितवाला होता है । उत्तरे वात सोमरस  
पीनेकी इच्छासे देव आते हैं ।

[ ४८८ ] ( विचर्षणिः ) काम बढानेवाला ( पुनानः ) पवित्र हुआ सोमरस ( विश्वाः मृषाः अभ्यग्रीम् )  
सब दानुओंपर आक्रमण करता है, ( श्रियं ) उस काम बढानेवाले सोमकी श्रद्धा ( धीतिभिः शुम्भन्ति ) स्तोत्रोंसे  
सुशीलित करते हैं ॥ २ ॥

सोमरस पीनेके बाद उत्साह बढता है, उस रसको छावकर पीनेसे सब दानुओंपर आक्रमण करनेका बल  
बढता है । उस सोमरसके निकालनेसे तथय सब ओरसे आते हैं इस कारण के और अधिक सुशीलित होने हैं ।

[ ४८९ ] ( सुतः ) सोमरस निकालनेके बाद ( कलश आविशन् ) बलपूर्वक धरनेके समय ( विश्वाः श्रियः  
अभ्यर्षन् ) सब दानुओंकी बढानेवाला ( इन्दुः ) यह सोमरस ( इन्द्राय धीपते ) इन्द्रके लिए दिया जाता है ॥ ३ ॥

[ ४९० ] ( यथा रथयोः ) जिस प्रकार रथका घोडा घोडा जाता है, उस प्रकार ( चरन्तोः सुतः ) वो वृषभोंके  
घट्टीसे निषोडा गया यह सोमरस ( पवित्रे असाजिं ) छाननेके बर्तनमें छोडा जाता है, इस प्रकार यह ( याजी )  
बलवान् सोमरस ( कामन्वाजी न्यक्रमीत् ) देवोंको आकर्षित करने लाता है और बर्तनमें भरा रहता है ॥ ४ ॥

[ ४९१ ] ( यत् भूयसः ) जो दीपता करनेवाले ( तेषाः अयासः ) तेजस्यो और मर्ग करनेवाले सोम अपनी  
( कृष्णामप त्वचं ) बानी कमरीको ( अपमन्वसे ) दूर करते हुए यशकी ( म यद्वचः ) आक्रमण करते हैं । ( मायः न )  
मायें जिस प्रकार धरनेमें आती हैं, उसी प्रकार सोमरस यशमें जाता है और यश बढता है ॥ ५ ॥

सोमरसके कारणकी बानी पशुकी रात्रो छावनेको दूर हो जाती है, और वह सोमरस छाननेके मोक्ष रसो बर्तनमें  
छाना जाता है । घट्टीके यह यशकायमें आता है, और दानुओंकी आगे बांधे करनेके लिए प्रयुक्त रहता है ।

[ ४९२ ] ( मृधः सोमः ) मायक बढानेवाला और ( क्रतु-वित् ) यशकी पशुमें जलनेवाला दू ( मृधः  
अपमन्वन् ) दानुओंको दूर करते हुए ( मयसे ) पवित्र होता है, दू ( मन्त-देव-युं जनं नुदस्व ) देवकी भक्ति न  
करनेवाले मनुष्योंको दूर कर ॥ ६ ॥

४९३ अया पयस्व धारया यया ध्रुवमरोचयः । हिन्वानो मानुपीरपः ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।६।६ )

४९४ स पयस्व य आविषेन्द्र वृषाय इन्तवे । वमिवाक्षं महोरपः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।६।१२ )

४९५ अया वीती परि स्व यस्त इन्द्रा मदेव्या । अवाह्वयतीनेव ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।६।११ )

४९६ परि वृषयः सनद्रिषि भरद्वाजं नो अन्धसा । ह्यानो अपि पवित्र आ ॥ १० ॥ ( ऋ. १।६।११ )

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ सूतोयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ खण्ड १। ७० ६। ५० १५। १७ ॥ ]

[ २ ]

( १-१४ ) १ सैपातिविः काण्डः ; २, ७ भृगुर्वातिर्गन्धर्वाभिर्गन्धो वा ; ३ उच्यते गाह्निरपः ; ४ अवाह्वयः काण्डः ; निभृयिः काण्डः ; ५, १० अतिरः काण्डो देवतो वा ; ८, ९ काण्डो वारोचः ; ११ कविर्भाष्यः ; १२ जमदग्निर्गन्धर्वः ; १३ अयाय आगिरतः ; १४ जमदग्निरागिरतः ॥ पवमानः सोमः ॥ पाषण्डो ॥

४९७ अचिन्मद्वृषा हरिमद्वान्मित्रो न दक्षतः । सध्रुवैर्गण दिद्युते ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२।६ )

१ अद्रुवैर्गणं जनें जुदस्व — देवको भविष्यति न कर्मवले मनुष्यसो दूर कर ।

२ सध्रुवः अपच्यन् — सध्रुवो मर्य कर ।

३ पयसे — सुतो वृष किया जाता है, सुतो छला जाता है ।

[ ४९३ ] हे सोम ! ( मानुषीः अपः हिन्वानः ) मनुष्यों के लिए हितकारी पानी की प्रेरणा देते हुए ( यया सूर्य अरोचयः ) अति प्रकाश करने वाले को प्रकाशित किया, ( अया पयस्व ) उठी पारने कीवले वर्तमान छनता हुआ तू जा ॥ ७ ॥

पानी मनुष्योंका हित करनेवाला है, उस पानीको सोमरसमें मिलाया जाता है; तब यह रस और अधिक चमकने लगता है, ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वह सूर्यको भी प्रकाशित करता हो, ऐसा यह सोमरस कीवले पात्रमें छाना जाता और भरा जाता है ।

[ ४९४ ] हे सोम ! ( महीः अपः पविष्यांश्च ) बहान् जल प्रवाहोको अपने अधिकारमें रखनेवाले ( वृषाय वृषतवे ) वृषको पारनेके लिए ( इन्द्रं आविष्य ) इन्द्रको उताहित कर और ( सः पयस्व ) वह तू नीचे वर्तमान छनता जा ॥ ८ ॥

वृषनें जल प्रवाहोकी रोक दिया था, इन्द्रने वृषको भारकर जल बहाया । इस इन्द्रका उताहा सोम पीनेसे ही बढ़ा था । वृषका अर्थ है मेघ । इन्द्र मेघोंको तोड़ता है और पानी बहाता है । बरसात होती है ।

[ ४९५ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( अया वीती परिस्वय ) इस प्रकार इन्द्रकी सोम पिलानेके लिए तू कलशमें छन । ( से यः ) तैरा यह रस ( मदेव्यु ) सगन्धर्व ( जयन्तीः नय अयाह्वय ) सध्रुव के निधायनके पारोंको तोड़नेके लिए इन्द्रको सामन्तशाली बनाता है ॥ ९ ॥

[ ४९६ ] ( वृषयः ) तेजस्यो और ( सनद्रिषि ) देने योग्य वस्तुओं और ( भरद्वाजं ) मन्त्री ( अन्धसा नः परि भरद्वाजं ) अपने अन्धशी रससे हममें बड़ा तथा ( ह्यानः पवित्रे आ अर्प ) रस निपातनेके बाद ताप होकर पात्रमें भरा रह ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौसर खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ४९७ ] ( वृषा हरिः ) बलवान् और हरे रंगका तथा ( अहान् मित्रः न ) बहान् मित्रके समान ( दर्शतः ) दर्शनयोग्य सोम ( अचिन्मद्वृषा ) शब्द करता है ( सध्रुवैर्गणं दिद्युते ) और सूर्यके समान प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

सोमरस चमकता है और उसके रस निपातनेका शब्द भी होता है ।

- ४९८ आ ॥ दक्षे मयोभुवं वद्विभया वृषीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६५।१८ )
- ४९९ अघ्नयो अग्निभिः सुतः सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातये ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।६५।१९ )
- ५०० तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्वसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।६५।२० )
- ५०१ आ पवस्व सहस्रिणः रयिः सोमं सुवीर्यम् । अस्मे अवांसि धारय ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।६५।२१ )
- ५०२ अनु प्रज्ञास आयवः पदं नरीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।६५।२२ )
- ५०३ अयो सोमं युमत्समाऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्पौनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।६५।२३ )
- ५०४ वृषा सोमं युमाः असि वृषा दस वृषमत्तः । वृषा धर्माणि दग्धिषे ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।६५।२४ )
- ५०५ इये पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।६५।२५ )

[ ४९८ ] हे सोम ! ( ते ) मेरे ( मयो-भुवं ) कुछ देनेवाले ( यद्वि ) धन यदि देनेवाले, ( पान्तं ) शत्रुवैशिष्ट्य करनेवाले और ( पुर-स्पृहं ) अनेक लोगों द्वारा पाहने योग्य ( दृष्टं ) बलको हृष ( अघ्न आहुणीमहे ) आज धारण करते हैं ॥ २ ॥

[ ४९९ ] हे ( अघ्नयो ) अघ्नयू । ( अग्निभिः सुतं सोमं ) परंपरित कूटकर निकाले गए सोमरसको ( पवित्रे आनय ) छानने के बतने के पास ला ( इन्द्राय पातये ) इन्द्रको पिलाने के लिए ( पुनाहि ) उसे छानकर पवित्र कर ॥ ३ ॥

[ ५०० ] ( सुतस्य अन्वसः धारा ) सोमरसरूपी अमररसकी धारा ( मन्दी ) अत्यन्त देनेवाली है, ( तरत्स ) वह सोम नीचभावेति दूर रहता है और वह ( धावति ) प्रगति करता है ॥ ४ ॥

सोमरसकी पीने के बाद उताह बढता है और उस कारण वह उत्तम काम करने लगता है ।

[ ५०१ ] ( सोम ) हे सोम ! ( सहस्रिणं सुवीर्यं रयिं ) हजारों प्रकारसे उत्तम शक्ति बढानेवाले धन ( आ पवस्व ) हमें है, और ( अस्मे ) हमें ( अवांसि धारय ) भक्ष है ॥ ५ ॥

[ ५०२ ] ( प्रज्ञासः आयवः ) प्राज्ञान लोगोंवे ( नरीयोः पदं ) नवीक उत्तम स्थान ( अनु अक्रमुः ) प्राप्त किया और ( रुचे ) तेजको प्राप्त करने के लिए ( सूर्यं ) सूर्य के समान तेजस्वी सोमको ( जनन्त ) उत्पन्न किया ॥ ६ ॥

सूर्य — सूर्य के समान तेजस्वी दीलनेवाले सोमरसको निबाला ।

[ ५०३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( युमत्समाऽभि ) अत्यन्त तेजस्वी तु ( द्रोणानि ) रात्रि के ( रोरुवत् ) अर्धे रात्रि का करता हुआ छनता जा, ( वनेषु योनौ आसीद्वत् ) और तू वनमें और घनस्थलमें रह ॥ ७ ॥

सोमरसकी छानने समय शब्द होता है, उस समय वह बहुत शक्तता है, जवमें यथाशक्त्ये बनते हैं, उसमें यह सोमरस तैयार किया जाता है ।

[ ५०४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( युमा युमस्य असि ) तू बलवान् और तेजस्वी है, ते ( देव ) सोमदेव ! तू ( वृषा वृषमत्तः ) बलवान् और बल बढाने के बलका पालन करनेवाला है । ( वृषा धर्माणि दग्धिषे ) बल बढानेवाले मयीको तू धारण करता है ॥ ८ ॥

[ ५०५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( मनीषिभिः मृज्यमानः ) सारी ऋषियों द्वारा छाना जाता हुआ तू ( इये धारया पवस्व ) अमररसकी प्रगति के लिए धारया छनता जा, ( रुचा ) तेजसे ( गाः आभि इहि ) गायोंको शक्ति हो ॥ ९ ॥

ऋषियन रस निकालते हैं, और वह रस छाया जाता है, बादमें—

१ गाः आभि इहि — गायको प्राप्त हो । गायका हृष उत्तम मिलते हैं । गायको प्राप्त होनेका अर्थ है, सोममें गायका हृष मिलाया । ( रुचा ) यह सोमरस शक्तता है ।

५०६ मन्द्या सोम धारया वृषा पवस्य देवयुः । अन्वा वारिमिरस्मयुः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।६।१ )

५०७ अया सोम सुकृत्यया महान्तमभ्यवर्षयाः । मन्दान् इन्द्रप्रापसे ॥ ११ ॥ ( ऋ. १।४७।१ )

५०८ अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेति । दिन्वान् आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥ ( ऋ. १।६२।१० )

५०९ प्र न इन्द्रो महं तु न ऊर्मिं न विभ्रदर्षसि । अभि देवाऽअयास्यः ॥ १३ ॥ ( ऋ. १।४४।१ )

५१० अपघ्न्यवते मृषोऽप सोमो अराण्यः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥ ( ऋ. १।६१।२५ )

इति त्रितोया दशति ॥ १ ॥ अनुषेः सप्तः ॥ ४ ॥ [ स्व० १५ । उ० १ । पा० ५७ । को ॥ ]

इति गायत्र्य ॥

[ ३ ]

( १-१२ ) सप्तमं ( १ भरतानो बह्वृतस्य, २ कश्यपो भारीष, ३ गेतानो बह्वृतस्य, ४ अभिमौम, ५ विश्वामित्रो गायित्रि ; ६ जमदग्निर्भार्गवः ; ७ कतिष्ठो मन्त्रावरुणि ) ॥ पवमान सोम ॥ बृहती ॥

५११ पुनानः सोम धारयापो पसानो अर्षसि ।

आ रत्तया योमिष्टतस्य सीदस्यस्तो देवो हिरण्यवः

॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०७।४ )

[ ५०६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृषा ) बल प्रधानवाला ( देव-युः ) देवताओंको प्राप्त होनेवाला ( अस्म-युः ) हमें मिलनेवाला ( अघ्नया ) सरलण करनेवाला वृ ( धारयिः ) बाकीको छाननीसे ( मन्द्या धारया पवस्य ) आत्मन् देनेवाली धारसे बृहत् हो ॥ १० ॥

१ धारयिः— बाकीको छाननी, बराबरवित्र, इस छलनीसे सोमरस छाना जाता है ।

२ देव-युः— छान कर देवोंको पीनेके लिए दिया जाता है ।

३ अस्मयुः— बारमें अधिकज भी पीते हैं ।

[ ५०७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( मया सुकृत्यया ) इस उत्तम कार्यसे वृ ( महान् सन् ) सम्मानके योग्य होकर ( अभ्य-वर्षयाः ) महान् होता है, ( मन्दान् इत् ) आत्मन् देकर ( इन्द्रप्रापसे ) बल बढ़ाता है ॥ ११ ॥

सोम स्वयं सम्माननीय है, और वह दूसरोंको भी अधिक बलवान् करता है ।

[ ५०८ ] ( वि-चर्षणिः ) विशेषतः मान बढ़ानेवाला ( हितः पवमानः ) पावसे भरा हुआ और बृहत् किया हुआ ( अयं ) यह सोमरस ( आप्यं ) जलसे मिश्रित होकर ( बृहत् दिन्वानः ) बहुत जल बैठा हुआ ( सचेति ) प्रसिद्ध होता है ॥ १२ ॥

[ ५०९ ] ( इन्द्रो ) हे सोम ! ( नः ) हमें तु न ( हमें बहुत मन मिले, इसके लिए ( प्र अर्षसि ) न कलशमें छाना जाता है । ( अयास्यः न ) अयास्य अधिक ( ऊर्मिं विभ्रत् ) तेरो लहरोंको धारण करते हुए ( देवान् अभिः ) देवोंको पुनः करनेके लिए जाता है ॥ १३ ॥

अयास्य अधिकसे सोमरस छान लिया है, और अब वह आपे यत्नमें करनेके लिए जाता है ।

[ ५१० ] ( सोमः मृधः अपघ्नन् ) सोम जम्बूओंको पास्ता है, ( अराण्यः ) रान न देनेवालोंको भी मारता है, और ( इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् ) इन्द्रके स्थानके पास जाता हुआ ( पथते ) छनता है ॥ १४ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ५११ ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनानः ) पवित्र होते हुए ( अपः यस्मान् ) पानीसे मिलते हुए ( धारया अर्षसि ) धारसे वृ नीचेके बर्तनमें भरता है, ( रत्त-या ) रत्न-यन-देनेवाला वृ ( ऋतस्य योनि ) यत्नके स्थानपर ( मासीदसि ) आकर बैठता है, और ( देव्यः ) प्रकाशित होकर ( हिरण्यवः उत्सवः ) जमकते हुए रहता है ॥ १ ॥

- ५१२ परीतो पिञ्चता सुतः सोमो य उचमः हविः ।  
दधन्वाः यो नर्यो अप्स्यार्त्नन्तरा सुपाव सोममद्विभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१ )
- ५१३ आ सोम स्यानो अद्विभित्तरो वाराण्यम्या ।  
जनो न पुरि चम्योविशद्भरिः सदा वनेषु दधिये ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१० )
- ५१४ अ सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।  
अश्वोः पयसा मदिरा न जागृषिरच्छा कोशे मधुपञ्चुतम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१२ )
- ५१५ सोम उ ष्वाणः सौवभिरधि प्युभिरवीनाम् ।  
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०७।८ )
- ५१६ तवाहः सोम रारण सख्य इन्दो दिधेदिधे ।  
पुरुणि पथो नि वरन्ति मामव परिधीरवि ताः इहि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१९ )

[ ५१२ ] ( यः सोमः उचमः हविः ) ओ यह सोम है, यह उत्तम हवि है । ( नर्यः ) वह अनुष्योका हित करने-वाला है, ( यः अप्स्यु अन्तराः दधन्वाः ) ओ पानीमें मिला हुआ है, ऐसा ( सोमो अद्विभिः सुपाव ) यह सोमका रस पत्थरोंसे कूटकर मजमान द्वारा निकाला गया है । हे अश्विओ ! इस ( सुतं इतः पारिचितत ) सोमरसमें पानी मिलाओ ॥ २ ॥

[ ५१३ ] हे ( सोम ) सोम ! तेरा ( अद्विभिः स्यान् ) पत्थरोंसे कूटकर निकाला हुआ रस ( अन्यया पाराणि तिरः ) भेड़ोंके बालोंकी छलनीसे नीचेके पाथमें गिरा जाता है, ( हरिः चम्योः ) हरे रंगका यह रस वर्तनमें ( पुरि जमः न ) नगरीमें धुवय जैसे प्रवेश करते हैं, उस प्रकार ( विशावः ) प्रविष्ट होता है, ओर ( वनेषु सदाः दधिये ) लकड़ीके बर्तनमें अपने स्थान पर रहता है ॥ ३ ॥

१ घन — जगल, जवतमें होनेवाले बूझोंकी लकड़ी, लकड़ीके बर्तन ।

[ ५१४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( त्वं देव-वीतये ) तू देवोंके पीनेके लिए ( सिन्धुः न ) सिन्धु नदीके लगान ( अर्णसा प्रपिये ) पानीसे मिश्रित किया जाता है । ( मदिरा न जागृषिः ) तू आनन्ददायक होनेके साथ साथ आपत्ति उत्पन्न करनेवाला भी है, तू ( अश्वोः पयसा ) बर्तनमें पानीसे मिलाकर ( मधुपञ्चुतं कोशं अच्छ ) सीधे रसको उदरमेंवाले बर्तनमें जा ॥ ४ ॥

[ ५१५ ] ( सोटुभिः स्यान् ) रस निचोड़नेवाले पात्रकोंके द्वारा निचोड़ा गया ( सोमः ) सोमरस ( अवीनां स्तुभिः ) बकरीके बालोंकी बनी छलनीसे छुड़ा होकर ( अधि याति ) नीचे बर्तनमें पड़ता है, ( उ ) यह धन्य है, ( अश्वया इव ) घोड़ोंके लगान ( हरिता धारया याति ) हरे रंगकी धाराले यह सोम बर्तनमें जाता है, ( मन्द्रया धारया याति ) मानन्ददायक धाराले यह बर्तनमें जाता है ॥ ५ ॥

[ ५१६ ] हे ( इन्दो सोम ) सोमरस ! ( तव ) तेरी ( सख्ये ) मित्रतामें ( दिधे दिधे अहं ) प्रतिवित्त में ( रारण ) आनन्दित होऊँ, ( यथो ) हे सोम ! ( पुरुणि प्रां न्यवचरन्ति ) बहुतते कुछ मनुष्य मुझे कष्ट देते हैं, ( सोम परिधीन् अतोहि ) उन दुष्टोंको नष्ट कर ॥ ६ ॥

- ५१७ मज्जमानः सुहस्ता ससुद्रे वाचमिन्वसि ।  
रयि पिशङ्गे बहुले पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षति ॥ ७ ॥ ( ऋ ९।१०७।२१ )
- ५१८ अमि सोमास आयवः पवन्ते मघं मदम् ।  
ससुद्रसाधि विष्टये मनीषिणो मत्सरसा सोमदच्युतः ॥ ८ ॥ ( ऋ ९।१०७।१४ )
- ५१९ पुनानः सोम जागृविरव्या चारिः परि प्रियः ।  
स्वं विप्रो अभषोऽङ्गिरस्तम मच्चा यज्ञं मिमिक्ष जगः ॥ ९ ॥ ( ऋ ९।१०७।१५ )
- ५२० इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुतव्ये सुतः ।  
सहस्रधारो अत्यभ्यमर्षति तमो मुजन्त्यायवः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।१०७।१७ )
- ५२१ पवस्व वाजसातमोऽमि विष्वानि धार्या ।  
स्व ससुद्रः प्रथमे विषमं देवेभ्यः सोम मत्सरः । ॥ ११ ॥ ( ऋ ९।१०७।२२ )

[ ५१७ ] हे ( सु-हस्ता ) उत्तम हाथवाली अगुलिते निरुलिते गये सोम ! ( मज्जमानः ) पवित्र करनेवाला तू ( ससुद्रे वाचं इत्यसि ) गोत्रे वालीके वर्तनमें पड़ता हुआ गन्ध करता है, हे ( पवमान ) मुझ होनेवाले सोम ! तू ( पिशङ्गे ) पीले रंगके ( बहुले पुर-स्पृहं रयि ) बहुत बाहने योग्य धन ( अभ्यर्षति ) देता है ॥ ७ ॥

१ ससुद्रा— वालीके भरे हुए वर्तन ।

२ पिशीर्ग रयि— पीले रंगका सोम, सोमके निकले ।

[ ५१८ ] ( आयवः मनीषिणः ) मनुष्योंका हित करनेवाले, ज्ञान बढ़ानेवाले ( मत्सरसा सोमदच्युतः सोमासः ) आनन्द देनेवाले, छलनीसे गोत्रे विरनेवाले सोमरस ( ससुद्रस्य विष्टये अघि ) वालीके भरे हुए रक्तमें ( मघं मदं ) आनन्द देनेवाले अपने रक्तको ( अमि पवन्ते ) साफ करके छोड़ते हैं ॥ ८ ॥

[ ५१९ ] ( जागृविः प्रियः पुनानः ) उत्साही, प्रिय और शुद्ध होनेवाला तू ( मच्चा चारिः परि ) धरतीके बालोंकी छलनीसे गोत्रे गिरता है, हे ( अङ्गिरस्तम ) अङ्गिरसोंमें श्रेष्ठ सोम ! तू ( विप्रः ) ज्ञानी, ( अभयः ) हुया है, जग अब तू ( मः दधं ) हमारे बतकी ( मच्चा मिमिक्ष ) सपूर रतते पवित्र कर ॥ ९ ॥

[ ५२० ] ( मदः सुतः सोम ) आनन्ददायक निबोडा हुआ सोम ( मरुतव्ये इन्द्राय पवते ) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिए शुद्ध होता है, आनन्दें वह ( सहस्र-धारः ) गनेक धारावाले ( अत्यभ्यमर्षति ) धरतीके बालोंकी छलनीसे छलता है, ( तं ) उसे ( आयवः मृजन्ति ) कृत्विज शुद्ध करते हैं ॥ १० ॥

[ ५२१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( विष्वानि धार्या ) सब स्तोत्रोंमें पवित्र हुआ और ( अमि ) मुझ रूपसे ( वाज-सातमः ) अत्र प्राप्य करनेवाला तू ( पवस्व ) शुद्ध हो, हे सोम ! ( देवेभ्यः मत्सरः ) देवताओंसे आनन्द देनेवाला तू ( ससुद्रः ) वालीके बोधमें (मेलकर ( विधर्वन् ) विशेष मुण्यमोंमें युक्त होकर ( प्रथमे ) श्रेष्ठ यगमें पवित्र हो ॥ ११ ॥

२१ ( वाज ह्विषी )

५२२ पवमाना अमृक्षत पवित्रमाति धारया ।

मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया ह्या मेधाममि प्रयाशति च ॥ १२ ॥ ( ऋ ९।१०।२९ )

इति तृतीया दशति ॥ ३ ॥ पञ्चम खण्डः । ५ ॥ इति बृहत् ॥ स्व० १९।३० ३ । पा १९।३ ॥

[ ४ ]

( १-१० ) १, ९ उशना काण्ड, २ व्यगणो वासिष्ठः, ३, ७ पराशर काण्ड, ४, ६ यतिष्ठी ममावहनि, ५, १० प्रतरन्तो देवोराति; ८ प्रहृष्य काण्ड ॥ पवमान सोम. ॥ विट्पृ ॥

५२३ म तु द्रव परि कोक्षे नि पीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्प ।

अथ न त्वा वाजिनं मज्जयन्तोऽच्छा वही रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥ ( ऋ ९।८।१ )

५२४ म काव्यमुद्यन्तं वृषाणा देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

साहिध्रतः शुचिचन्द्रः पावकः पदा वराहो अमृषति रमन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।७ )

५२५ छिन्नो वाच ईरयति म वृद्धिर्मेतस्य पीति ब्रह्मणो मनीषाम् ।

मावो यन्ति गोपतिं वृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०।३४ )

[ ५२३ ] ( मरुत्वन्तः ) मरुतोति वृक्ष ( मरमराः ) जानन् देवोवाले ( इन्द्रियाः ) इन्द्रको वाहनोवाले, ( मेधां प्रयाशति ) स्तुति और भस्मको ( अभि ) सामने रखनेवाले ( ह्याः पयमानाः ) यज्ञमें जानेवाले और शुद्ध होनेवाले सोमरस ( धारया पयिषे अमृक्षत ) धारणके लक्षमें छागमोमेसे पीछे गिरने लगते हैं ॥ १२ ॥

॥ यहाँ पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पष्ठः खण्डः ।

[ ५२३ ] हे सोम ! ( तु मद्रव ) तू क्षीप्र जा, और ( कोक्षे परि निपीद ) बर्तनमें जाकर रह, ( नृभिः पुनानाः ) याजकीके द्वारा शुद्ध किए जानेके बाद ( याजं अर्धमर्प ) अन्न यजमानको दे, ( वाजिनं अथ न ) बलवान् पीडेको जैसे शुद्ध करते हैं, उसी प्रकार ( त्वा मज्जयन्तः ) तुझे शुद्ध करनेवाले आत्विज ( रशनाभिः वही ) अण्ड नयन्ति ) भगुनिपीसे यज्ञ स्थापके पास तुझे छेजते हैं ॥ १ ॥

[ ५२४ ] ( उशना इय ) उशना अधिके समस्त ( काव्यं वृषाणः ) स्तोत्र बोलनेवाला ( देवः ) स्तोत्र ( देवानां जनिमा म विवक्ति ) वेदके जन्म वृत्तान्तोंका वर्णन करता है । ( साहिध्रतः शुचिचन्द्रः पावकः ) महान् घृत करनेवाला, शुद्ध तेजसे युक्त और शुद्ध करनेवाला ( वराहः ) उत्तम अण्ड विनसे निकाला हुआ सोमरस ( रमन् पदा अमृषति ) शब्द करते हुए याजमें जाता है ॥ २ ॥

[ ५२५ ] ( वाहि- ) हवि लेजानेवाला यजमान ( छिन्नः वाच- ) ऋक्, यजु, साम इन तीनोंसे स्तुति ( प्रेरयति ) करता है, ( मेतस्य पीति ) यज्ञको धारण करनेवाले ( ब्रह्मणः मनीषां ) ज्ञानसे कौं वही स्तुति वह बोलता है, ( गोपति माव यन्ति ) बेलके पास बैसे गायें जाती हैं, उसी प्रच्छर ( वृच्छमानाः पावशानाः ) वृच्छा करनेवाले, इच्छा करनेवाले तथा ( मतयो ) स्तुति करनेवाले ( सोमं यन्ति ) सोमके पास जाते हैं ॥ ३ ॥

१ वृच्छमानाः— श्रेष्ठतत्त्वा विचार करनेवाले ।

२ पावशानाः— शुद्धको इच्छा करनेवाले ।

३ मतयोः— बुद्धिमान्, स्तुति करनेवाले ।

४ सोमं यन्ति— सोमयागमें जाते हैं ।

- ५२६ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।  
सुतः पयित्रं पयेति रेमन् मितेय सय पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।९।१ )
- ५२७ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।  
जनितामेजनिता ध्रुवस्य जनितेन्द्रस्य जनिता विष्णोः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९।१९ )
- ५२८ अग्निं त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामह्नापिणमवावञ्चन् वाणीः ।  
यना वसानो वरुणा न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।९।१९ )
- ५२९ अक्रांसमुद्रः प्रथमे विधमं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।  
वृषा पवित्रं अग्निं सानो अघ्ये वृहत्सोमो वावृषे रानो अग्निः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९।४० )

[ ५२६ ] ( अस्य प्रेषा ) इस बलवा प्रेरक ( हेमना पूयमानः ) सुवर्णसे पवित्र हुआ ( देवः रसं ) शिव्य सोमरस ( देवेभिः समपृक्त ) देवोंकी शिव्य गन्ता है, ( सुतः रेमन् पयित्रं पयेति ) निचोडा हुआ यह सोमरस छाननीसे बर्तनमें गिरता है । ( होता मित्ता ) हवन और यज्ञ करनेवाला तथा ( पशुमन्ति सय इव ) गायोंकी रतनेवाला जैसी यज्ञशालामें जाता है, उसी तरह सोमरस बर्तनमें छाया जाता है ॥ ४ ॥

१ द्विरप्यपायिः अभिषुणोति— ( सा० भा० ) सोनेकी झगड़ी पहने हुए हावसे सोमरस गिराता जाता है ।

[ ५२७ ] ( मतीनां जनिता ) बृद्धिको उत्पन्न करनेवाला ( दिवः जनिता ) धुलीवकी उत्पन्न करनेवाला ( पृथिव्याः जनिता ) पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला ( अग्रेः जनिता ) अग्निको उत्पन्न करनेवाला ( सूर्यस्य जनिता ) सूर्यको उत्पन्न करनेवाला ( इन्द्रस्य जनिता ) इन्द्रकी उत्पन्न करनेवाला । उन विष्णोः जनिता और विष्णुको उत्पन्न करनेवाला ( सोमः पवते ) सोम पवित्र किया जा रहा है । छाना जा रहा है ॥ ५ ॥

सोनवाग प्रारम्भ होमेवर देव आते हैं । इसलिये सोमको यहाँ देवोंका छानेवाला या प्रेरक बताया है, उसीकी आत्माकारिक भाषामें देवोंको उत्पन्न करनेवाला कहा है ।

[ ५२८ ] ( त्रि-पृष्ठं ) तीन स्वाध्यायोंमें रहनेवाले, ( वयोधामह्ना-पिणं ) बलवान् और अन्नदाता सोमरी ( अग्नि-पिणं ) अग्ने स्वरसे ( वाणीः वायुशब्द ) स्तोतावो वाणियां स्तुति करती हैं । ( सिन्धुः वरुणः न ) अग्ने पानीमें घटन रहता है, उसी तरह ( यना वसानः ) पानीमें मिला हुआ सोम ( रत्न-धा ) रत्न और ( वार्याणि दयते ) पन स्तोतावोंकी देता है ॥ ६ ॥

[ ५२९ ] ( समुद्रः ) जलमें मिला हुआ ( यो-धा ) गायोंका पाश बननेवाला, ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला ( स्वान ) रत निकाला हुआ गोम ( अग्रमे ) पहले ( भुवनस्य त्रिधमन् ) प्रजाओंको उत्साह देते हुए ( प्रजाः जनयन् ) प्रजाजननी उत्पत्ति करते हुए ( अक्रान् ) लगेसे लगे हो गया है ॥ ७ ॥

१ गोपाः— गायका पाश बननेवाला, सोमरसमें गी ब्रूष मिलाते हैं, इसलिये सोम गोबर्षी पाशनेवाला है ।

२ भुवनस्य त्रिधमन्— भूधनमें प्राणियोंका उत्साह बढ़ता है ।

३ प्रजाः जनयन्— प्रजाओंमें उत्पत्ति बढ़ता है ।



५३० कनिष्कन्ति हरिरा सज्जमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।

नमिर्यतः कृणुते निर्णिजं मायतां मतिं जनयत स्वधाभिः ॥ ८ ॥ ( ऋ ९।१५।१ )

५३१ एष स ते मधुमांश्च इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।

सहस्रदाः श्रुतदा भूरिदावा श्रुतन्तमं बहिरा वाजयस्थात् ॥ ९ ॥ ( ऋ ९।८७।४ )

५३२ पवस्व सोम मधुमांश्च श्रुतावापो बसानो अधि सानो अग्रे ।

अव द्रोणाणि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १० ॥ ( ऋ ९।१६।१९ )

इति कथुर्वां दशति ॥ ४ ॥ पठ पण्ड ॥ ९ ॥ [ स्त० १८।३० ३। पा० ८७।६ ॥ ]

[ ५ ]

( १-१२ ) १ श्रुतन्तो देवोवाति, २, १० परासर-शाक्य, ३ इन्द्रप्रपत्तिर्वांसिष्ठ, ४ वसिष्ठो तन्मावदधि, ५ कनिष्कधांसिष्ठ, ६ सोमा योतम, ७ कण्वो घोर, ८ मधुर्वांसिष्ठ, ९ कुत्त भादगिरि, ११ काम्यो मारीचः ; १२ प्रसक्य काण्व ॥ पचमान सोम ॥ विद्वत् ॥

५३३ प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गज्यन्तेति हर्षते अस्य सेना ।

भद्रान् कृष्णभिन्द्रहर्षांसिस्त्रिम आ सोमो बक्ष्ण रभसानि दत्ते ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१६।१ )

[ ५३० ] ( भा श्रुज्यमानः ) रस निकले जानेवाला ( हरिः । हरे रयका सोम ( वमिन्कति ) शम्भ करता है, छात्रते साम्य उत्तक शम्भ होता है, ( पुनानः ) पवित्र किया जाता हुआ ( वनस्य जठरे सीदन् ) पनकी लकड़ीसे तैय्यार किए गए वर्तनों परता हुआ ( नृभिः यतः ) मनुष्यों द्वारा बगकर निकला गया सोम ( गां निर्णिजं कृणुते ) गायके दूधका रूप धारण करता है। गौ दुग्धमें वह मिलाया जाता है। इसकी ( मतिं स्वधाभिः जनयत ) स्तुति हविष्यारके साथ यज्ञकर्ता करते हैं ॥ ८ ॥

[ ५३१ ] हे इन्द्र ! ( वृष्णः ते ) बल बढ़ानेवाले तेरा ( एषः स्य ) यह वह सोम ( मधुमान् वृषा ) मोठा और बलवान् होकर ( पवित्रे पर्यक्षाः ) वर्तनों परकता है, उसी प्रकार वह ( सहस्रदा श्रुतदा ) हजारों और संकशों और ( भूरिदावा ) बहुतता धन देनेवाला ( याजी ) बलवान् सोम ( श्रुतन्तमं बहिरा ) निरन्तर चलनवाले यज्ञमें जाकर ( धस्वथात् ) बंठा है ॥ ९ ॥

[ ५३२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमान् ) मोठा दूध ( अपः यसान् ) पानीमें मिलकर ( अधि सानो ) अग्रे पवस्व ) ऊंचे स्थानपर रावे हुए अकरीके बासकी छलकीसे छनता जा, उसके बाद ( मदिन्तमः ) आनन्ददायक और ( इन्द्र पान ) इन्द्रके पीने योग्य ( मत्सरः ) आनन्द देनेवाला यह सोम, घृतवन्ति द्रोणाणि ) जलपुस्तक पात्रमें ( अघरोह ) जाकर रहता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः पण्डः ।

[ ५३३ ] ( सेनानीः ) सेनकों बलानेवाला ( शूरः सोमः ) शूर सोम ( गज्यन् ) गायकी इच्छा करते हुए ( रथानां अग्रे ) रथके आगे ( प्रेति ) जाता है, ( अस्य सेना हर्षते ) इसकी सेना आनन्दित होगी है । ( सजिग्यः ) मिश्रके लिए-पानके लिए ( इन्द्र-दवान् भद्रान् कृष्णान् ) इन्द्रकी आर्चनाकी कल्याणकारी याते हुए ( रभसानि यथा आदत्ते ) तेराभी बत्तीकी धारण करता है ॥ १ ॥

१ सेनानी — सेना, यानकोंका समूह ।

२ सोम गज्यन्-सोम गायकी इच्छा करता है। सोम धपनेमें गायका दूध मिलाया जाय, ऐसी इच्छा करता है ।

३ अस्य सेना हर्षते — यह यानकोंकी आनन्द होता है ।

४ रभसानि यथा आदत्ते — तेराभी बत्तीकी धारण करता है । दूध मिलावनेके धारण यह तेराभी होता है

- ५३४ प्र ते घारा मधुमतीरसुन्धार पत्पूतो अत्युष्यव्यम् ।  
पयमान पयसे धाम गोनी जनयस्त्वयमपिन्वो अर्कः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९।३१ )
- ५३५ प्र गायताभ्यर्चय देवास्तोमश्चिद्विदो बहते धनाय ।  
स्वादुः पयतामति चारमज्यमा सोदतु कलशं देव इन्दुः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९।७४ )
- ५३६ प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजश्च सनिपन्नयासीत् ।  
इन्द्रं गच्छन्नायुषा सञ्जिज्ञासौ विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।९।७१ )
- ५३७ तक्षषदी मनसा येनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं घृष्टारनीक ।  
आदीमायन्यरमा वाक्शाना जुष्टं पति कलशे गाव इन्दुम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।९।७२ )
- ५३८ साकमुक्षो मर्जयन्त्स्वसारो दश धोरस्य धातया धनुयीः ।  
हरिः पर्यद्रवज्जातौ ध्वंस्य द्रौणं ननस्य अस्थो न वाजी ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२।३१ )

[ ५३४ ] ( यत् पूतः अर्घ्यं घारं अत्येति ) जयं पवित्र होनेके लिए बकरिके बालोंकी छलनीसे पीये वर्तनमें मिला है, तब ( ते मधुमतीः घाराः प्रातुप्रन् ) तेरी पीठी घारामें बहती है । हे ( पयमान ) पवित्र सोम ! ( धाम पयसे ) हृदयमें तू पवित्र होता है । ( जनयन् ) उत्पन्न होनेके बाद गर्भों ( अर्कः सूर्यं अग्निव्यः ) तू अपने तेजसे सूर्यको चमकाला है ॥ ३ ॥

१ धाम पयसे— अपने स्वानसे पवित्र होता है । हृदय सोमका स्थान है । सोममें मूत्र मिलाया जाता है ।

२ अर्कः सूर्यं अग्निव्यः— तेजसे सूर्यको पूर्ण करता है । सोमरस विशेष चमकने लगता है ।

[ ५३५ ] ( प्र गायत ) सोमकी स्तुति करो, ( देवान् अभि अर्चयः ) देवोंकी हम पूजा करें ( बहते धनाय स्तोमं हिद्विदो ) बहुत धनकी प्राप्तिके लिए सोमकी प्रेरित करो । ( स्वादुः अर्घ्यं घारं अति पयतां ) पयसात् यह पीठा रस घातोंके बालोंकी छलनीसे छाना जाये ( देवः इन्दुः ) वह तेजस्वी गोमरस ( कलशं अति अस्तीदतु ) कलशमें भर रहे ॥ ३ ॥

[ ५३६ ] ( हिन्वानः ) गति करनेवाला या बहनेवाला ( रोदस्योः जनिता ) वावापृषीका उपाहृत यह सोम ( इन्द्रं गच्छन् ) इन्द्रके पास जाता हुआ ( वाजं सनिपन् ) बमकी रथा है । ( आयुषा स जिज्ञासौ ) चारधोरों उत्तम रीतिसे तीक्ष्ण करता हुआ यह सोम ( विश्वा वसु हस्तयोरादधाना ) सब वन वनमें दौरीं हावनि चारण करता हुआ ( प्र अयासीत् ) हमें देवोंके लिए आया है ॥ ४ ॥

[ ५३७ ] ( येनतः मनसा वाग् ) जज्ञितकी इच्छा करनेवालेने मनमें विचारों द्वारा प्रेरित स्तुति ( यत् तक्षषः ) मितको तैयार करती है, उस ( धर्मं ज्येष्ठस्य घृष्टोः जनीये ) यज्ञके थोड़ हविर् वास सोमकी प्रशंसा होती है, ( आ परं जुष्टं ) इतके बाद अग्यी तरह तैयार किए गए ( प्रति ) पालन और ( कलशे ) कलशमें रहनेवाले ( इन्दुः ) इस सोमके पास ( पयद्राजाः गावः आयन् ) इच्छा करनेवाली गायें आती हैं ॥ ५ ॥

यशोंमें स्तोमोंका गान होता है, सोम कूटकर उसका रस निबालते हैं, वह रसमें छाना जाता है, और बादमें उसमें गावका हृदय मिलाया जाता है । इस विधिका यह आरम्भारम्भ वर्णन है ।

[ ५३८ ] ( साकं उक्षः स्वसारः ) एक जगह रहकर बावें करनेवाली बटिनें-अभुत्तियां ( मर्जयन्तः ) सोमको पृथक् करती हैं, वे ( दश धातयः ) दश अभुत्तियां ( धोरस्य धनुयीः ) धानर्ष्यवान् सोमको चारण करती और हिलती हैं । यह ( हरिः ) हरे रणका सोम ( पर्यद्रव्यं जाः पर्यद्रव्यं ) मूत्रों द्वारा उत्पन्न विषाज्योंमें बुझाया जाता है । ( वात्यः प्राजी न ) वेगले दौड़नेवाले घोड़ोंके सहाय यह सोम ( द्रौणं जगसे ) बलसेमें मिलाता है ॥ ६ ॥

५३९ अधि यदसिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सरे न विशाः ।

अपा वृणानः पवते कर्षीयान्मजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९।१ )

५४० इन्दुवोजी पवते गोन्वोधा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

हन्ति रक्षो वाधते पर्यशति वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।९।१० )

५४१ अपा पवा पवस्वेना वधुनि मास्वत्य इन्दो सरसि प्र धन्व ।

प्रधन्विष्य वातो न जूति पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं वात् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।९।११ )

[ ५३९ ] ( असिन्वाजिनि इव शुभः ) जिस प्रकार घोड़ों के जेवर पहनाकर उसे सजाते हैं, उसी प्रकार ( सरे विशाः न ) सुर्पकी किरणे उस सोमको घेरना बढ़ाती हैं, ( धियः अधि स्पर्धन्ते ) बुद्धिपूर्वक अगुनियाँ रत निकालनेमें स्पर्धा करती हैं, ( अपा वृणानः ) पानीमें मिलते हुए और ( कर्षीयान् पवते ) स्तोत्रोंको धुनते हुए सोम धनता जाता है, जिस प्रकार ( पशुवर्धनाय मन्म मजं न ) पशुसम्बर्धनके लिए गोपाल उत्तम गोधालामें जाता है ॥ ७ ॥

१ वाजिनि शुभः— जैसे घोड़ोंको जेवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार सोममें दूध अग्नि मिलाकर उसकी शोभा बढ़ाते हैं ।

२ सरे विशाः— सुर्पमें जंटे किरणे चमकती हैं, उसी तरह सोमका तेज चमकता है ।

३ धियः अधि स्पर्धन्ते— बुद्धिपूर्वक अगुनियाँ रत निकालनेमें स्पर्धा करती हैं । इस तरह रत बढ़ता है ।

४ कर्षीयान्— रत निकालते हुए स्तोत्रोंका घाट किया जाता है ।

५ पवते— सोमरत छाना जाता है ।

६ पशुवर्धनाय मन्म मजं— पशुसम्बर्धनके लिए जंटे गोपाल गोधालामें जाता है, वैसे ही सोम वर्तनमें छाना जाता है ।

[ ५४० ] ( याजी इन्दुः ) बलवान् ( गोन्वोधाः ) गोधे रने वर्तनमें छाना जानेवाला ( इन्द्रे सहः इन्वन् ) इन्द्रका बल बढ़ानेवाला ( वरिवः कृण्वन् ) यानकोंको धन देता हुआ ( वृजनस्य राजा सोमः ) बलका राजा सोम ( मदाय ) मान्य बढ़ानेके लिए ( पवते ) छाना जाता है । वह ( रक्षः हन्ति ) राक्षसोंको मारता है, और ( अ-रातिं परि याधते ) दुष्टोंको दूर करता है ॥ ८ ॥

[ ५४१ ] हे सोम ! ( अपा पवा ) इस शुद्ध हुई धारसे ( पवा वधुनि पवत्य ) ये धन हमें दे, हे ( इन्दो ) सोम ! ( मांश्चत्ये ) सम्मानको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ( सरसि ) पानीके कलसेमें ( प्र धन्व ) जा । ( यस्य प्रधन्विष्यत् ) जिसका मूल आधार भाषित्य ( वस न ) जिस प्रकार धाम्यको प्रेरित करता है, उसी तरह ( नर जूति घात् ) नेतासे वेगको यह सोम धारण करता है, और वह सोम ( पुर-मेधाः चित् ) बहुत बुद्धिमान् इन्द्रकी भी ( तन्वे ) प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

१ अपा पवा— एक धारसे सोम छाना जाता है । बावमें—

२ सरसि प्र धन्व— पानीके कलसेमें पहुँचता है । छाननेके बाद उसे पानीमें मिलाया जाता है ।

३ मजः वातः न— सुर्प जैसे धाम्यको प्रेरित करता है, उस तरह छाननेवाला सोमको गति देता है, और वह ( पुर-मेधाः तन्वे ) बुद्धिमान् इन्द्रकी दिया जाता है ।

४ मांश्चत्ये सरसि प्र धन्व— जंटे लोग सम्माननीय लोगोंके पास जाते हैं, उसी प्रकार पानी सम्मानके योग्य सोममें मिलाया जाता है ।

- ५४२ महत्सरोमा महिष्यकारापां यद्रभोवृणीत देवान् ।  
अदधादिन्ने पवमान ओजोऽजनयस्त्वय ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।९।४१ )
- ५४३ असर्जि वक्त्रा रथ्ये यथाज्ञो धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।  
दश स्वसारा अधि सानो अव्ये मजान्ति वद्विषदनेष्वच्छ ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।९।११ )
- ५४४ अपामिवेदूर्मयस्त्वराणाः प्र मनीषा इरते सोममच्छ ।  
नमस्यन्तीरुण च यन्ति सं चाच विशन्त्युश्वतीरुशन्तम् ॥ १२ ॥ ( ऋ. ९।९।१२ )
- इति पञ्चमी वराति ॥ ५ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १९। उ० ३। पा० ८२। २१ ॥ ]  
इति त्रिपुनः ॥ इति षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्थः ॥ ६ ॥

[ ५४२ ] ( महिष्यः सोमः ) बहून् वलपान् सोम ( महत् तत् खण्डर ) उन बहून् कावोंको करता है । उनके कार्य में है— ( यत् अर्पां गर्भः ) पानीको अपने गर्भमें धारण किया, बादमें ( देवान् अपृणीत ) देवोंको प्रान्त किया ( पयमानः इन्द्रो ओजः स्यधात् ) शूद्र हुए सोमने इन्द्रमें सामर्थ्यको स्थापित किया और ( इन्दुः सूर्ये ज्योतिः ) सोमने सूर्यमें तेज ( अजनयत् ) उत्पन्न किया ॥ १० ॥

- १ अर्पां गर्भः— पानीको अपने गर्भमें धारण किया । सोममें पानी मिलाया जाता है ।
- २ देवान् अपृणीत— देवोंका धरण किया । देवोंको सोममें के लिए सोम दिया जाता है ।
- ३ इन्द्रमें मल बढ़ाया, सूर्यमें तेज बढ़ाया । सोमरस देवोंके कारण देवोंका सामर्थ्य बढ़ा ।

[ ५४३ ] ( मन ऊता ) समया मन जिसमें सलग्न है, ( प्रथमा मनीषा ) पहले ही जिसकी स्तुति की है, वह ( यक्त्रा ) शब्द करनेवाला सोम ( ओजो धिया ) मनमें स्तोत्र पाठ करने साथ ( रथ्ये यथा ) जिस प्रकार संग्राममें घोड़े भेजे जाते हैं, उस तरह ( असर्जि ) पानीमें मिलाया जाता है ( दश स्वसाराः ) दस जीवितियां ( वद्विषदनेषु धाम्नि ) दश स्थानमें वद्विषदनेवाले सोमको ( सानो अधि ) उच्च स्थानपर ( अव्ये अच्छ मृजन्ति ) बकरीके बालोंकी छानतीसे खसत रीतिसे शूद्र करती हैं ॥ ११ ॥

- १ मनोता— मन जिस पर लग गया है, वह सोम ।
- २ प्रथमा मनीषा— प्रथम जिसकी स्तुति की है, ऐसा सोम ।
- ३ यक्त्रा— शब्द करनेवाला; छाने जाते हुए वह शब्द करता है ।
- ४ ओजो धिया असर्जि— मनमें स्तोत्र पाठ करते हुए सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।
- ५ अव्ये मृजन्ति— बकरीके बालोंकी छानतीसे छाना जाता है ।

[ ५४४ ] ( अर्पां ऊर्मयः इय ) पानीकी सहारे जिस प्रकार पत्थी बसती है, उस प्रकार ( तर्तुपामाः इय ) शीघ्रता करनेवाले शक्तिज ( मनीषाः ) स्तुतियोंकी ( सोमं अच्छ इ इरते ) सोमके पास शीघ्र प्रेषित करते हैं । ( उशतीः नमस्यन्तीः ) उन्नतिकी इच्छा करनेवाली और नमस्कार करनेवाली स्तुतियां ( उदान्तं ते उययन्ति च ) बढ़ा करनेवाले सोमके पास पहुँचती हैं । ( सं आविशन्ति च ) और उसमें प्रवेश करती हैं ॥ १२ ॥

सर्व ऋषिज सोमकी इच्छावत् स्तुति करते हैं ।

[ ६ ]

( १-९ ) १ अन्धोऽयं प्रयातिविः २ नहुषो मानवः, ३ ययातिर्नाहुषः, ४ धनुः सावरणः, ५, ८, अन्धरीयो वाष्पिगिरः  
अजिष्वा भारद्वाजस्य, ६, ७ देवसूनु कश्यपो, ९ प्रजापतिर्वेदवाग्मिनो वाच्यो वा ॥ पचमानः सोमः ॥ अनुष्टुप्; ७ नहुषो ॥

अथ षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्थः ॥ ६ ॥

- ५४५ पुरोजिती वा अन्धसः सुताय मादयित्वेव ।  
अप सान्धश्चरिष्येन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥ १ ॥ ( ऋ. २।१०।११ )
- ५४६ अयं पूषा रयिमगः सोमः पुनानो अर्पति ।  
पतिर्विमस्य भूमनो ष्वरुयद्रोदसी उमे ॥ २ ॥ ( ऋ. २।१०।१७ )
- ५४७ सुतासा मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।  
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वां मदाः ॥ ३ ॥ ( ऋ. २।१०।१४ )
- ५४८ सोमाः पवन्त इन्द्रोऽस्मभ्यं गातुविचमाः ।  
मित्राः खाना अरेवसः स्वाप्यः स्वविदः ॥ ४ ॥ ( ऋ. २।१०।१० )
- ५४९ अमी नो वाजसातमश्चरयिमर्षं छतस्पृहम् ।  
इन्द्रो सहस्रमर्षसं तुविद्युमं विभासदम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. २।१८।१ )

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

{ ५४५ } ( सखायः ) स्मृति करनेवाले सखाजी । { यः } तुष { पुरोजिती अन्धसः } आगे रते हुए सोमरूपी भग्नके { मादयिष्ये सुताय } मानन्द देनेवाले इस रतके पास { दीर्घ-जिह्वे स्वाने अपश्चरिष्येन } जानेकी इच्छा-वासे बड़ी भीम बाले कुत्तेकी दूर हटाओ ॥ १ ॥  
कुत्ते सोमरस न खाटे ऐसा करो ।

[ ५४६ ] { पूषा भगः रयिः अयं सोमः } पोषण करनेवाला, तेज न करने पोष्य, सोमवान् ऐसा यह सोमरस { पुनानः अर्पति } छाना जाता हुआ नीचेके धर्तनमें गिरता है । { पतिर्विमस्य भूमनः पतिः सोमः } सब प्राणियोंका पालन करनेवाला यह सोमरस { उमे रोदसी इत्यरयत् } दोनों ही कुत्ते और वृष्योक्षोक्षी अपने तेजसे प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

सोमरस समकता है, इसलिए आलकारिक भक्षामें उसे दोनों लोकोंकी प्रशंसित करनेवाला बताया है ।

[ ५४७ ] { मधुमत्तमाः मन्दिनः } मोटे और आनन्द भजानेवाले { सुतासः } सोमरस { पवित्रवन्तः } छनेले हुए श्रद्धे के लिए तैयार होते हैं, हे सोम ! { यः } तुम्हारे { मदाः } ये मानन्दवाचक रस { देवान् गच्छन्तु } वेनोंके पास पहुँचें ॥ ३ ॥

[ ५४८ ] { गातु-विच-तमाः } यागोंकी उत्तमरीतिसे जाननेवाले { मित्राः } मित्रके समान { स्वाप्यः } रस निजाले हुए { अ-रेवसः } निष्यस्य { स्वाप्यः } भक्तके उत्तमतासे एकत्र करनेवाले { स्वः-विदः इन्द्रयः } आप-वाणी में { सोमाः } सोमरस { अस्मभ्यं पवन्ते } हमारे लिए पवित्र होते हैं, छाने जाते हैं ॥ ४ ॥

[ ५४९ ] हे { इन्द्रो } सोम ! { छत-स्पृहं } तेजमें जिसकी प्रशंसा करते हैं { सहस्र-मर्षसं } हजारोंका जो पोषण करता है { तुविद्युमं } बहुत तेजस्वी { विभा-सदं } विशेष प्रकाशकी अपेक्षा जो अधिक प्रकाशमान { घाज-सातमं } सब भजानेवाले { रयिं } धन { नः अर्पयं } हमें दे ॥ ५ ॥

१ विभा-सदं—विशेष तेजस्वी लोकीति यी यह सोम अधिक तेजस्वी है ।

५५० अमी नवन्ते अद्रुहः प्रियामिन्द्रस्य काम्यम् ।

वत्सं न धृवे आयुनि जातश्चिहन्ति मातरः

॥ ६ ॥ ( ऋ. १।१०।१ )

५५१ आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्त्वन्ति पौंस्यम् ।

शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विषामग्रे महीयुवः

॥ ७ ॥ ( ऋ. १।११।१ )

५५२ परि त्वं हर्षत हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

यो देवान्निश्वांश्चरि मदेन सह गच्छति

॥ ८ ॥ ( ऋ. १।१२।७ )

५५३ प्र सुन्वानावाग्धसो मतो न यद्य वद्वचः ।

अप खानमराधसं हता मत्तं न भृगवः

॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१०।११ )

इति पद्यी वार्ताः ॥ ६ ॥ अन्वयः. सङ्. ८ ॥ [ स्व० १०।३०५।पा० ६१।म ॥ ]

वाक्यमुद्गमः ( एका युद्धी ) ॥

[ ५५० ] ( मातरः ) गौमातायें ( पुर्वें आयुनि जातं वत्सं ) पहली आयुर्वें उत्पन्न हुए बच्चेको ( चिहन्ति न ) बावती है, उस प्रकार ( अ-द्रुहः ) दोह न करनेवाले जल ( इन्द्रस्य प्रियं काम्यं ) इन्द्रके प्रिय और चाहने योग्य सोमको ( अमि नवन्ते ) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

१ अ-द्रुहः इन्द्रस्य प्रियं अमि नवन्ते— दोह न करनेवाले जल, इन्द्रको प्रिय लगनेवाले सोमको प्राप्त होते हैं । जल सोमरसमें मिश्रण जाता है ।

[ ५५१ ] ( हर्यताय ) सवर्षों पूजनीय और ( धृष्णवे ) शत्रुका पराजय करनेवाले होमको ( पौंस्यं धनुः ) आतन्वन्ति ) जैसे घुरपायं प्रवृत्त करनेवाले धनुष लेकर उत्तर ओरी चढ़ते हैं, उसी प्रकार शत्रुबल छाननेके लिए तीर्यार करते हैं । ( विषां अग्रे ) विशालोंके आगे ( महीयुवः शुक्राः ) पृथ्वीपर भूजित होनेवाले अश्वर्षुं स्वर्ण्य गायके दूधको ( यन्त्यसुराय निर्णिजे ) बलवान् होमके कपको चमकानेके लिए ( वयन्ति ) आच्छादित करते हैं ॥ ७ ॥

१ शत्रिय जिस प्रकार धनुषपर ओरो चढ़ाकर युद्धी तीर्यारी करते हैं, उसी प्रकार शत्रुबल छाननेके तीर्यारी करते हैं ।

२ स्वर्ण्य गायके दूधसे सोमरसको ढक देते हैं । अर्थात् सोमरसमें गायका दूध मिलाने हैं ।

[ ५५२ ] ( हर्यतं हरिं ) सुन्दर हरे रंगके और ( बभ्रुं त्वं ) भूरे रंगके उस सोमको ( वारेण परि पुनन्ति ) ऊनको छागोसे छाया जगाते हैं । ( यः ) यह सोम ( निग्धान् देवान् हव् ) सब देवोंके पास ( मदेन सह परि गच्छति ) अपने आनन्ददायक गुणोंके साथ जाता है ॥ ८ ॥

[ ५५३ ] ( सुन्वानाय अग्धसः ) सोमका रस निकालनेके बाद उस अग्धका ( तत् यद्य- ) यह वर्णन ( मतो न प्रवद्य ) घमि मनुष्य न सुनें, ( अ-राधसं भवें भृग-न ) जैसे बान्-बलिवासे रहित यज्ञको धुनुन्वन्ति दूर कर दिया उसी प्रकार ( श्यामं अप हतं ) कुत्तेको दूर करो ॥ ९ ॥

१ अन्वयः तत् यद्य- मतो न प्रवद्य— सोमरसके उस वर्णनकी तन्ने आबकी न सुनें । केवल विज्ञेय योग्यतावाले ही उसे सुनें ।

॥ यहाँ आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ]

( १-१५ ) १-३, ५ कविर्मायैवः; ४, ६ तिफला निवाचरी; ७ रेणुर्वैश्वानरः; ८ वेनो भार्गवः; ९ वसुभरद्वाजः;  
१० परातिभ्रातन्वः; ११ मत्समदः; शीतकः; १२ पवित्र आहृतिरसः ॥ पयमानः सोमः ॥ जगती ॥

५५४ अग्निं प्रियाणि पयते चनोहितो नामानि यद्वा अधि येषु वर्धते ।

आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नाभिं रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७५।१ )

५५५ अचोदसो नो चन्यान्तिपन्दवः प्र खानासो बृहद्वेषु हरयः ।

वि चिदभाना इषयो अरातयोऽर्षो नः सन्तु सनिपन्तु नो धियः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७६।१ )

५५६ एष प्र कोशे मधुमाऽअचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वधुषो वधुष्टमः ।

अभ्युक्षस्य सद्युषा घृतश्चुतो वाश्रा अर्पन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।७७।१ )

५५७ प्रो अयासीदिन्द्रुरिन्द्रस्य निष्कृतश्सखा सरुपुनं प्र भिनाति सङ्गिरम् ।

मयं इव युवतिभिः समर्पति सोमः फलशे श्रुतयामना पया ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।७८।६ )

[ ९ ] नक्षमः खण्डः ।

[ ५५४ ] ( चनो-हितः ) अथ अर्षां हितकारक सोम ( प्रियाणि नामानि अग्निं पयते ) प्रिय जलोंमें मिलाकर छाता जाता है । ( येषु यद्वाः अग्निवर्धते ) उन जलोंमें वह मिलाकर बढ़ता है, बादमें ( घृहन् ) मलान् होकर ( घृततः ) सूर्यस्य महान् सूर्यके ( विष्वञ्चं रथं अधि ) सब जगह जानेवाले रथपर ( विचक्षणः आहृत् ) विषयकी वेतनवाला सोमवैद्य बढ़ता है ॥ १ ॥

[ ५५५ ] ( अ-चोदसः ) किसी दूसरेके द्वारा प्रेरित न होनेवाले ( हरयः खानासः ) हरे रगके उत्तम रीतिसे निकाले पडे ( इन्द्रयः ) सोमरस ( नः बृहद्वेषु प्र धम्यन्तु ) हमारे यज्ञमें हमें प्राप्त हों । ( अ-रातयः ) दान न करनेवाले ( अः अरयः ) हमारे शत्रु ( इषयः ) अधरकी इच्छा करते हुए ( अदनानाः वि चित् ) भूल-जल न पाने-वाले ( सन्तु ) हेमि, ( नः प्रिया सनिपन्तु ) हमारे स्तोत्र देवोंको प्राप्त होयें ॥ २ ॥

१ अ-रातयः नः अरयः इषयः अश्वानाः वि चित्—हमारे शत्रुओंको क्षामके लिए जल न मिलें, वे वैतेही बिना अन्नके भुजें रहें ।

[ ५५६ ] ( इन्द्रस्य यज्ञः ) इन्द्रका यज्ञ यामों यही है, ऐता ( यधुषा यधुष्टमः ) बलसे बहुत बलशाली ( एषः मधुमा ) यह मीठा मधुमत्त ( कोशे प्र अभ्युक्षन्तु ) कलमेंमें धाव्य करता है । ( अरातयः ) यज्ञके लिए, ( सरुपुनः ) घृतश्चुतः ) उत्तम रूपसे दूध देनेवाली, और भी चुवानेवाली ( वाश्राः पयसा धेनवः च ) रंभाती हुईं दुधार गायें ( अग्निं अर्पन्ति ) प्राप्त आती हैं ॥ ३ ॥

१ सोमके प्राप्त दुधार गायें आती हैं—सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है ।

[ ५५७ ] ( इन्द्रुः ) यह सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं ) इन्द्रके स्थानमें-वेदमें ( प्र अ जयासीत् ) जाता है और यहाँ शानर ( सखा ) मित्ररूपी यह सोम ( सरुपुनः संगिरं ) मित्ररूपी इन्द्रके वेदमें ( न प्र भिनाति ) कोई भी कष्ट नहीं देता, ( सुवतीभिः अर्षयः इव ) जित् प्रकार तरण पुत्र्य जनेका स्त्रियोंने साथ रहता है, उस प्रकार सोम जलके साथ ( सं अर्पन्ति ) मिलाकर रहता है । यह सोम ( श्रुत-यामना पया ) यो छेदवाले छकनीके रास्ते ( फलशे ) कलशमें छाना जाता है ॥ ४ ॥

१ सुवतीभिः अर्षयः इव सं अर्पन्ति—अनेक स्त्रियोंके साथ भंसे एक पति मिलाकर रहता है, उस प्रकार सोम जलोंमें मिलाया जाता है अर्थात् सोमरस बहुत सारे अन्नमें मिलाया जाता है ।

- ५५८ धर्ता दिवः पवते कृत्वा रसा दसो देवानामनुमाद्य नृभिः ।  
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वमिव धा पाजा ऽसि कृष्ये नदीन्वा ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।७६।१ )
- ५५९ युषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अद्भ्यं प्रवरीतापसा ऽदिवः ।  
प्राणा सिन्धूनां कलशां च अचिक्रददिन्द्रस्य ह्यर्धाविश्वमनोपिभिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८६।१ )
- ५६० शिरस्मै सप्त धेनवा दुदुहिरे सत्वामाशिरं परमे व्योमनि ।  
चत्वारिण्या भुवनानि निर्णिजे चारुणि चक्रे पट्टैरवर्धत् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।९०।१ )
- ५६१ इन्द्राय सोम सुपुतः परि सवापामीवा मवतु रक्षसा सह ।  
मा ते रसस्य मस्तव द्रवाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्निवन्द्यः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।८५।१ )
- ५६२ असावि सोमो अरुणो बृषा हरी राजव द्रुमा अमि गा अमिकदत् ।  
पुनानो धारमत्येष्येष्यथ इयेना न पोनि धुवन्तमासदत् ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।८१।१ )

[ ५५८ ] ( धर्ता कृत्वा : रसा ) धारणावहिते पुन कर्म करनेवाला यह सोमरस ( देवताओं द्वारा ) देवताओं का रस बढानेवाला ( नृभिः अनुमाद्य ) ऋषिर्वाओं द्वारा प्रसारित ( हरिः ) हरे रसका सोम ( दिवः पवते ) उपरसे बर्तनते छाता हुआ नौबेके कलशोंमें गिरता है । ( सत्वमिः सृजानः ) मलयान् ऋषिर्वाओं द्वारा निकाला गया वह रस ( अन्य न ) पीनेके समान ( वृषा ) सरसतासे ही ( पाजांसि ) अपनी शक्तिसे ( सद्भिषु कृष्यते ) नदीके जलमें अपनेको मिलाता है ॥ ५ ॥

[ ५५९ ] ( मतीनां युषा ) स्तुति करनेवालोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाला ( वि-चक्षणः ) शिरोव शाली ( अद्भ्यं उपसां दिवः ) दिन, वषा भीर सूर्यके यन्त्रों ( प्रवरीता ) बढानेवाला ( सोमः पवते ) सोम छाता जाता है । ( सिन्धूनां प्राणाः ) नदीके प्राणवर्षी जलमें मिलाया गया ( मनीपिभिः ) शाली ऋषिर्वाओं द्वारा निकाला गया यह सोमरस ( इन्द्रस्य ह्यर्धां भाविदात् ) इन्द्रके पैरोंमें जानेके लिए ( कलशान् यभिः ) कलशोंमें ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ ५६० ] ( परमे व्योमनि ) श्रेष्ठ यत्नमें रहनेवाले ( अरुणैः ) इस सोमरसके लिए ( शिः सप्त धेनवाः ) इष्टकीत गावें ( सत्यां आशिरं दुदुहिरे ) निरन्तरसे दूध देती हैं, भीर यह सोम ( चत् क्रतैः अवर्धत् ) जब पतले बढाना जाता है तब ( अग्न्या चत्वारिण्याः ) हुन्दरे चार भुवनोंमें अन्तः चार बर्तनोंमें तिपिजे छातकर दृढ़ करनेके लिए ( चारुणि चक्रे ) छतन कल्याणकारी पद्धतिसे दृढ़ किया जाता है ॥ ७ ॥

बाह्य मास, पंच ऋतु, तीन लोक भीर यह जावित्व मिलकर २१ घण्टें हैं, यह भाव प्रहा दियाया है ।

[ ५६१ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( सु-पुनः ) उत्तम प्रकारसे रस निकालनेके बाद ( इन्द्राय परिश्रय इ-र्ये ) लिए प्रवाहित हो, ( अमीवा द्रुमसा सह यप मवतु ) रोग रक्षकोंके साथ दूर हो जाए ( ते रसस्य ) तेरे रसकी पीकर ( ह्यपा वितः ) सत्य भीर असत्य दोनोंका मानरण करनेवाले वृष्ट आनन्दित न हों । ऐसे वृष्टोंको सोमरस पीनेको न मिले । ( इन्द्रचा ) सोमरस ( इह ) इस यत्नमें ( द्रविणस्वन्तः सन्तु ) पनपुनत होये ॥ ८ ॥

[ ५६२ ] ( अरुणः वृषा ) नेत्रस्वी, बलवर्धक ( हरिः सोमः ) हरे रसका सोमरस ( असावि ) निकाला है । यह ( राजा इय द्रुम ) राजाके समान कुन्दर है । ( गा अमि ) गायका दूध मिलनेके बाद ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ वह ( पुनानः ) छाते आते हुए ( अव्यं द्याव अत्येधि ) गङ्गाके बालोंको नये छातनेसे छाया जाता है, छाया जानेके बाद ( इयेना न ) ऐसे पक्षोंके समान ( धुतयन्तं योनिं आ सवत् ) बलपुनत कलशोंमें वह जाकर रहता है ॥ ९ ॥



५७४ गोमन्त्र इन्द्रो अश्ववत्सुतः सुदक्ष घनिव । श्रुचिं च वर्णमभि गोपु धारय ॥ ९ ॥  
( ऋ. ९।१०५।४ )

५७५ असभ्ये त्वा वसुविदमभि वाणीरनुपत । गोभिरे वर्णमभि वासयामसि ॥ १० ॥  
( ऋ. ९।१०४।४ )

५७६ परवे हर्षतो हरिरति ह्वराथसि रथसा । अम्यर्थ स्तोतृभ्यो वीस्वयज्ञः ॥ ११ ॥  
( ऋ. ९।१०६।१३ )

५७७ परि कोशे मधुश्चुतः सोमः पुनानो अर्षति । अभि वाणीर्नवीना च तप्ता नृपत ॥ १२ ॥  
( ऋ. ९।१०३।३ )

इत्यादिमी दशतिः ॥ ८ ॥ वसन्तः सप्तः ॥ १० ॥ ( स्व० ८।३०३। पा० ४६।४ ॥ )

[ ९ ]

( १-८ ) १ गीरबोति. शाकल्यः; २ उपर्वतपा आङ्गिरसः; ३, ८ अश्विन्वा भारद्वाजः; ४ कुक्षपा आङ्गिरसः;  
५ अश्विनयो राज्ञीधः; ६ अश्विर्वातिष्ठः; ७ ऊरुगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ कसुपु. ५ पवमन्वा पायत्री ॥

५७८ पयस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोमः कसुविचयो मदः । महि धुश्चुतमो मदः ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।१०८।९ )

[ ५७४ ] ( सुदक्ष इन्द्रो ) है बलवान् सोम ! ( श्रुतः ) रस विचलनेके बार ( नः ) हर्षे ( गोमन्त्र भद्रपयस्व घनिव ) गाय, घोडेति पृथक् पद है । उसके बाद तु ( श्रुचिं वर्णं ) गूढ़ वर्णको ( गोपु आधि धारय ) गायके रूपमें प्राप्त कर ॥ ९ ॥

गोहृदमें सोमरस मिलाया जाता है, फिर उसका तेजस्वी वर्ण चमकता है ।

[ ५७५ ] है सोम ! ( वसु-विदं त्वा ) घन देनेवाले तेरी ( असभ्ये वाणीः अभि अनुपत ) हर्षे पद मिले इतिहृद् हमारी वाणी बहुत स्तुति करती है । उतती प्रकार हम ( ते वर्णे ) तेरे वर्णको ( गोभिः असिवाशयामसि ) गायके रूपमें आच्छादित करते हैं ॥ १० ॥

[ ५७६ ] ( हर्षतः हरिः ) प्रसन्नतामें हरे रथका सोम ! ( इह्वा ह्वराथसि अति पयसे ) वेपले बुरे भागोंको दूर करत हुआ गोबेके पात्रमें आता है । सराव हिंसेको दूर करता हुआ छनता जाता है । है सोम ! तु ( स्तोतृभ्यः ) स्तोताओंको ( वीरयत् यज्ञः ) पुनःपुनः कीर्ति ( अम्यर्थ ) दे ॥ ११ ॥

[ ५७७ ] ( पुनानः सोमः ) छाना जानेवाला सोम ( मधुश्चुतं कोशं परि अर्षति ) मोठे रसको कसभमें छोड़ता है, ( अपिणां सप्त वाणीः ) ऋषियोंकी सप्त पर्वोवाली वाणी इस सोमवरी ( अभि अनुपत ) स्तुति करती है ॥ १२ ॥

॥ यहाँ दसवां खण्ड सम्पन्न हुआ ॥

[ ११ ] पयस्वयज्ञः खण्डः ॥

[ ५७८ ] है सोम ! ( मधुमत्तमः ) बहुत मोठा ( कसु विचयः ) पक्षके सम्बन्धमें पय कुछ जाननेवाला, ( महि पशुधृतमः ) महान् तेजस्वी वीर ( मदः ) हर्षे बढ़नेवाला तु ( इन्द्राय मदः पयस्व ) इन्द्रको आनन्द देनेके लिये पिन हो ॥ १ ॥

५७९ अ॒भि धु॒म्ने वृ॒हद्य॒स इ॒पस्प॒ते दि॒वोहि॒ दे॒व दे॒वमु॒म् । वि॒ को॒र्यं मे॒ध्यं यु॒व ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०।१९ )

५८० आ॒ सोतो॑ परि॒ वि॒ज्जता॑सं न॒ स्तोम॑म॒प्सुर॒श्च॒स्तुर॒म् । धन॑प्र॒धुमु॒दप्रु॒तम् ॥ ३ ॥  
( ऋ. ९।१०।८७ )

५८१ ए॒तमु॒ त्वं म॒द॒च्युत॑ सह॒स्रधा॑रं वृ॒षमे॑ दि॒वोदु॒हम् । वि॒श्वा व॑स॒मि वि॒ज्जत॑म् ॥ ४ ॥  
( ऋ. ९।१०।८११ )

५८२ स॒ सु॒न्ये यो॑ व॒धूना॑ यो॒ राया॑माने॒ता य॒ इ॒डाना॑म् । सो॒मो यो॑ सु॒क्षितो॑नाम् ॥ ५ ॥  
( ऋ. ९।१०।८१२ )

५८३ त्वं शा॒श्व॒हं दे॒व्ये प॑व॒मान॑ ज॒निमा॑नि धु॒मच॑मः । अ॒मृत॑त्वाय॒ घोष॑यन् ॥ ६ ॥  
( ऋ. ९।१०।८१९ )

५८४ ए॒ष स्य॑ धा॒रया॑ सु॒तो॒ऽज्या॑ यो॒रेभिः॑ प॒वते॑ म॒दि॒न्त॑सः । कौ॒डन्त॑र्मि॒रपा॑मि॒व ॥ ७ ॥  
( ऋ. ९।१०।९।९ )

[ ५७९ ] हे ( इषस्पते ) अतः स्वाधी ( देव ) प्रकाशमान देव सोम ! ( देवर्षि ) तू देवोंको प्राप्त होनेवाला है, तू हव्यं ( धुम्ने वृहद्यसः ) तेजस्वी और श्रेष्ठ यज्ञ ( अभि दीदिहि ) दे, और ( मध्यं कोर्यं ) ग्राह्यके कलत्रने ( वि युव ) जाकर भर जा ॥ २ ॥

[ ५८० ] हे श्वत्किन्वा ! ( अर्थ न ) घोड़ेके समान वेगवान् ( स्तोम ) स्तुतिके योग्य ( अप्सुर ) जलके समान वेगवान् ( दजस्तुरं ) प्रकाशकी किरणके समान तीव्रता करनेवाले ( धन-प्रधुमुदप्रुतम् ) जलसे मिश्रित ( उद-प्लुतं ) जलके साथ मिले हुए सोमका ( सोत ) रस निकोरो, ( परि विज्जत ) और उत्तम रूप मिलजो ॥ ३ ॥

[ ५८१ ] ( दिवः ) तेजस्वी श्वत्किन ( म॒द॒च्युत॑ सह॒स्रधा॑र ) आनन्दके श्रेष्ठ और हजारों पाराजोति प्रदानने गिरनेवाले ( वृषम ) दलवर्षक ( वि॒श्वा व॑स॒मि वि॒ज्जत॑ ) सब बनोंके धारण करनेवाले ( ए॒त ए॒व उ॒ ) इस उस सोमका ( दुहं ) रस निकालते हैं ॥ ४ ॥

[ ५८२ ] ( यः वसूनां ) जो धनोका ( य रायां ) जो रूप आदि पदार्थोंका ( य इ॒डानां ) जो भूमिर्षोषा ( यः सु॒क्षितानां ) जो उत्तम सन्तानोंका ( आनेता ) देनेवाला है, ( सः ) उस सोमका रस ( सु॒न्ये ) निकाल लिया है ॥ ५ ॥

[ ५८३ ] हे ( पवमान ) गूढ़ होनेवाले सोम ! ( धु॒मच॑मः ) अत्यन्त तेजस्वी ( त्वं हि ) तू ( दे॒व्ये ज॒निमा॑नि ) दिव्य जन्मोंको आनता है, और हे ( अ॒गं ) श्रेष्ठ सोम ! तू ( अ॒मृत॑त्वाय॒ घोष॑यन् ) अमरताको घोषणा करता है ॥ ६ ॥

[ ५८४ ] ( म॒दि॒न्त॑सः ) अत्यन्त आनन्द देनेवाला ( अपां ऊ॒र्मि इ॒व प्री॒डन् ) जलके सहृदके समान खेल करते हैं । ( स्यः प॒पः सु॒तः ) यह सोमरस ( अ॒ज्या धा॒रेभिः ) नकरीके थालसे बने हुए छाननीसे ( धा॒रया॑ प॒वते ) धार धाँधकर कलत्रने छाता जाता है ॥ ७ ॥

५८५ य उक्षिया अपि या अन्तरमनि निर्मा अकुन्तदोजसा ।

अभि व्रजं तसिपे गन्धमश्न्यं वमीव धृष्णवा रुज । ओरम् वमीव धृष्णवा रुज ॥ ८ ॥

( ऋ- ११०८१६ )

इति मयसो दशतिः ॥ ९ ॥ एकवशः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० ७ । ४० १ । वा० ४३ । वि ॥ ] इत्युत्तिगक्तुभाः ॥

इति पण्डप्राठकस्य द्वितीयोऽर्थः, पाण्डप्राठकश्च समाप्तः ॥ ६ ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति छन्दोप्रकृतिः समाप्ता ॥ इति सौम्यं पायमानं कण्डं पर्वं वा समाप्तम् ॥

॥ इति पूर्वार्चिकः ( छन्द आर्चिकः ) समाप्तः ॥ पायमानकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११९

तत्र गायत्र्यः ४६७-५१० ( ४४ ), बृहत्सः ५११-५२२ ( १२ ), त्रिष्टुभः ५२३—

५४४ ( २२ ), भद्रुष्टुभः ५४५—५५६ ( ९ ), [ तत्र ' आहर्गव ' इति ५५१ बृहती ],

जागत्यः ५५४—५६५ ( १२ ), छण्डिकककुभः ५६६—५८५ ( २० ), ११९

पेन्द्रवज्रण्डस्य मन्त्रसंख्या ३५२

आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११४

सर्वयोगः ५८५

[ ५८५ ] ( या । ) जो ( उक्षियाः अपि याः ) जलनेवाले और जलोको चारण करनेवाले ( अद्रमनि अद्रतः ) मेघोंमें ( गाः ) जलोंको ( ओजसा निरुहन्तन् ) बलसे छिन्नभिन्न करते हुए तू ( गन्धं अश्न्यं व्रजं ) गाव और घोड़ोंपर समूहको ( अभि तसिपे ) चारों ओरसे घेरता है । हे ( धृष्णो ) अद्रुओको चारनेवाले सोम ! ( यमीव ह्य आदज ) कदव चारण करनेवाले बीरोंके समान तू शत्रुओंका नाश कर ॥ ८ ॥

॥ यहाँ ग्यारहवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पवमान काण्डम् ॥

## पवमान काण्ड

“ पवमान ” का अर्थ है, ' शुद्ध होनेवाला, छाना जाने-वाला, छानकर जिसका कूड़ा बाहर निकाल देते हैं, इस प्रकार “ पवमान ” का अर्थ हुआ वह शुद्ध जिसमें सोमकी छाननेका पर्वण है । पवमान पुरतमम अर्थ है सोमरस छान कर त्वकृत् करनेका दर्शन करनेवाला सूक्त । “ पवमान ” इस पर्वके कारण ही सामवेदके इस काण्डका नाम “ पवमान काण्ड ” है । आग्नेयके नवम खण्डसमें “ पवमान सूक्त ” ॥ १ ॥ है । उनमेंसे कहीं कहींसे गज लेकर सामवेदके पवमान काण्डकी रचना की है । इस पवमान काण्डमें सोमरस छाननेके, उसे

इन्द्रकी देवोंके और ऋत्विजों द्वारा स्वयं पीनेके वर्णन करने-वाले मंत्र हैं ।

सोम यह एक जेल है उसका रंग हरा होता है । उसके रसको निकालकर उसे देवोंकी पिलाकर बादमें ऋत्विज सोम तर्पण पीते हैं ।

### सोमका उत्पत्ति स्थान

सोमका उत्पत्ति स्थान पर्वतका ऊँचा प्रदेश है । इसलिये उसे—

१ गिरि-ट्टाः अंशुः ( ४७३ )- ' पर्वत पर होनेवाली सोम बेल है ' , ऐसा कहा है ।

२ ते अन्धसः जाते उज्या दिवि ( ४६५ )- " अन्ध रूप सोमका स्थान ऊंचे प्रदेशे घुलोममें है । " इससे यह मालूम पड़ता है कि पर्वतके ऊंचे स्थानपर सोम उगता था । यहासे यह संबन्धोत्पन्न जाता था । देखिए—

१ सत्त्वं उर्मं धर्मं भूम्या ददे ( ४६७ )- " वे सुख देनेवाले उर्म अर्ध भूमिपर साये दये " पर्वतके ऊंचे भाग पर उगनेवाली यह सोमवल्ली वहाँसे दत्तके लिए भूमिपर काई गई । अर्थात् इस सोमको " भोजवान् " कहा गया है ।

सोमस्येय मोक्षयत्तस्य मन्त्रः ॥ ३८ ( १०१३५१ )

" भोजवान् पर्वतपर होनेवाले सोमरसरूपी अन्न मत्स्यन् प्रिय है " , इस मन्त्रमें " भोजवान् " पर्वत पर होनेवाले सोमको उत्तम माला गया है । भोजवान् हिमालयपर्वत एक शिखर है । उसपर १२ हजार फीटकी ऊँचाई पर पाया जानेवाला सोम उत्तम माना जाता है । ऊपर ' उज्या दिवि ' अर्थात् घुलोममें यह सोमरूपी अन्न उत्पन्न होता है , ऐसा कहा है । हिमालय पर्वतपर १९ हजार फीट या उससे अधिककी ऊँचाईके स्थानको घुलोका समझा जाता है । " त्रिविष्टिप् " इस वाक्यका अर्थप्रकाश होकर " त्रिविष्ट " वाक्य बना है । यह " त्रिविष्ट " हिमालय पर्वतमें १२ हजार फीटकी ऊँचाईपर है । त्रिविष्टप् ही घुलोका या स्वर्गकी है ।

गंगा नदीका नाम " त्रिपथ्या " है । स्वर्ग, भुलोका और प्रातःश्री अक्षय तीनों स्थानोंपर यह बहती है । यह हिमालयके शिखरका, भूमिपर बहती हुई भीके भाकर समुद्रमें मिलती है । इससे भी यह सत्य होता है कि हिमालयका ऊँचा प्रदेश ही स्वर्ग है । और घुलोकापर उगनेवाली सोमवल्ली अष्ट होती है ।

यदा करनेवाले लोग इस भोजवान् पर्वतसे सोमवल्ली लाते थे, अथवा यहासे लाकर ब्रह्मन्वाले लोगोंने वे खरीदते थे । सोमकी पाप वैकर खरीदते थे । इस सोमवल्लीकी गुच्छमें बांधकर लाते थे । उन्हें लक्ष्मिपति से तत्तत्किं वीथमं रखते थे—

१ नप्योः हितः ( ४७६ )- वो सत्त्वोके वीथमं उते रखत जाता था, ३३ लक्ष्मकी पहिचोके " अक्षयवध कष्ट " कहते थे । इसका अर्थ " सोमरस निकालनेकी कष्ट " है । ये पट्टियाँ भी होती थीं । अर्थात् पट्टीकी लम्बाई और चौड़ाई ३६×१८ अंगुल होती थी । दोनों पट्टियोंको मिलाकर रखनेसे

२३ ( साम हिन्दी )

३६ अंगुली वर्गाकार पहियाँ ही जानी थीं । इन पट्टियोंपर काले हिरणकी छाल बिछाते थे । उसपर सोमवल्ली रखकर पत्थरोंसे कुटते थे ।

चम्योः सुतः ( ४९० )- दोनों पट्टियों पर रखकर और सोमका रस निकालकर उसे बर्तनोंमें भरकर रखते थे ।

### परमरोंसे कृतना

रस निकालनेके लिए सोमको पत्थरोंसे अच्छी तरह कुटते थे । इन पत्थरोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ कथिकस्तुः, नप्योः हितः, दिवः प्रिया यथांसि, स्वानैः परियाति ( ४७६ )- शापी और कर्ममें हुआ इस सोमके पट्टियोंपर रखे जानेके बाद घुलोमसे प्रियापत्नी गर्भात् कुटनेके पथपर रस निकालनेवाले अन्धवृद्धों द्वारा इसपर छिराये जाते थे । अन्धवृद्धका मतलब है दास करनेवाले । वे उन पत्थरोंसे सोमवल्ली कुटते थे और उसका रस निकालते थे । यहा पत्थरोंको " प्रिया यथांसि " प्रिय पत्नी कहा है । पर्वतसे बँधे सोमवल्ली लाते थे, वंती ही पाथर भी यहासे ही लाये जाते थे । इसलिये पत्थर ऊपर बँधनेवाले पत्थी ही हैं, यह अलंकारमें कहा है ।

स्वानैः ( सुपानैः )- रस निकालनेवाले अक्षयिन् सोम कुटते थे, उसके मत्स्य उनका रस निकालते थे ।

२ सोमं अद्रिभिः सुपाय ( ५१२ )- सोमरस पाथरोंसे कुटकर निकाला गया । वहाँ " अद्रिः " पथ " पर्वत " का वाक्य है और यह पद वहाँ पर्वतपर होनेवाले पत्थरोंका वाक्य है । यह पदकी अपनी विशेष होती है । उस शब्दीको समझानेके लिए यहाँ कुछ उदाहरण देते हैं ।

### अंशुके लिए पर्षका प्रयोग

पाथर पर्वतका अंग है । उस अन्तर्धो पाथरके लिए पूर्ण पर्वतका प्रयोग किया गया है " पर्वत " का अर्थ पर्वतका अर्थ " पत्थर " है । इस प्रयोगके जोर भी उदाहरण हैं, जैसे—

१ अद्रिभिः सुतः ( ४९९ )-

२ अद्रिभिः स्वाय ( ५१३ )- ( अद्रि ) पर्वतोंसे अर्थात् यहावने पत्थरोंसे कुटकर सोमवल्लीका रस निकाला जाता था, यह रस सक्कीके बर्तनोंमें रखा जाता था । उसका वर्णन इस प्रकार किया है ।

३ वनेषु सद्य दधिपे ( ५१३ )-

४ आशुप्यमानः दधि कनिनान्ति, यम्य जटरे

सीदन् ( ५३० )- यनको अपना घर बनाया है । सोमका हरे रंगका रस पान्द करता हुआ यनके पेटमें जाता है । “ यनेषु सद्- ” और “ यनस्य अटरे सीदन् ” इन वाक्योंका अर्थ है, पात्र- ‘ यनमें दूध होते हैं, उन दूधोंसे सड़की बनती है, और उस सड़कीसे यतन यनते हैं, इसलिये पात्र अन्न है और दूध अथवा यन पूर्ण है । इस अन्वयके लिये पूर्वका प्रयोग यहा हुआ है । इस कारण “ यनेषु सद्- दग्धिये ”, अथवा ‘ यनस्य अटरे सीदन् ’ इसका अर्थ है, कि सड़कीके यतनमें सोमरसका रस आता । यह वैदिक वर्णनकी सीली है । “ यन ” का अर्थ है, “ सड़कीके यतन ” यह वैदिकी परिभाषा है । यह सीली ठीक तरह समझ लेनी चाहिए, नहीं तो वेदमंत्रोंका अर्थ ठीक तरहसे ध्यानमें नहीं आएगा और अर्थके अन्तर्ग होकर कष्टार्थ भी नहीं होगा । इस सीलीके दूसरे पदाहरण भी यहा देलने प्रोष्य है—

५ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अभिधितः ( ४८६ )- ज्ञानी सिन्धुके लहरीमें रहता है । ( कविः ) ज्ञानी, ज्ञान बढ़ाने-वाला सोम नदीके पानीमें मिलाया जाता है ।

६ सोमाम्नः क्षप ऊर्मयः प्र नयन्ता ( ४८७ )- सोमरस पानीके लहरे पाल लाया गया । सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं ।

७ मृज्यमानः समुद्रे घाव्यं इन्धसि ( ५१७ )- मुड़ होता हुआ यह सोमरस समुद्रमें डबक करता हुआ जाता है । सोमरस छनते समय पानीके बर्तनमें डबक करते हुए पड़ता है । सीधे पानीके बर्तन है, उसका निर्बल बहा “ समुद्र ” पदसे किया है ।

८ सोमादाः समुद्रस्य चिष्टये अग्नि वयन्ते ( ५१८ )- सोमरस समुद्रके अग्निके भागमें छाने जाते हैं । सोमरस पानीके बर्तनमें छाने जाते हैं ।

९ देवेभ्यः प्रतसरः समुद्रः ( ५२१ )- देवोंके लिए शान्द देनेवाला यह सोमरस समुद्रमें मिलाया जाता है, अथवा सोमरसका समुद्र लहरा रहा है । अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।

१० अत्यः न भृषा पात्रांसि नदीषु दृणुते ( ५५८ )- योडा जैसे शरलतापूर्वक अपनी शक्तिसे स्नान करता है, उसी प्रकार ये सोमरस नदीमें स्नान करते हैं । अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाया जाता है । इस स्थानपर “ नदीषु ” ( नदियोंमें ) यह पद मनुष्यजनमें प्रयुक्त हुआ है । अनेक नदियोंमें स्नान करता है । सोमरस पानीमें मिलाया जाता

है यह कहनेके बजाय सोम नदियोंमें स्नान करता है, ऐसा कहा है ।

११ सिन्धुनां प्राणाः फलशान् अभि अचिक्रदत् ( ५५९ )- नदीके प्राण बर्तनमें डबक करते हुए जाते हैं । इसका अर्थ है कि नदीके प्राणदृष्टी यानी बर्तनमें भरे जाते समय डबक करते हैं ।

१२ सिन्धोः उच्छ्रवासे पतयन्तं उक्ष्णं हिरण्य-पायः पशुं गुरुणाते ( ५६४ )- नदीके पानीमें पड़े हुए बेलको सोनेके आभूषणकी पहनें हुए हाथोंसे पशु समझकर पकड़ते हैं । “ उक्ष्ण ”- बेल, सोमरस; पशु, जानवर, देखनेवाला, चमकनेवाला, नदीके पानीमें सोम मिलाया जाता है, और यह वहा चमकने लगता है, और वह सोनेकी भंगूटी पहनें हुए हाथोंसे छाना जाता है । यहा “ सिन्धोः उच्छ्रवासे ” ( नदीके अवतरण ) यह शब्द नदीके पानीमें भरे हुए बर्तनके लिये प्रयुक्त हुआ है । “ पशु ” शब्दका अर्थ है, चमकने-वाला सोमरस ।

“ पश्यति इति पशुः ” जो देखता है वह पशु है । देखनेका अर्थ है चमकना । वह चमकता है, वह अपने तेजसे सबको देखता है । उक्ष्णः- बेल, बल बढ़ानेवाला सोम ।

इस प्रकार “ बंशके लिए पूर्णका प्रयोग ” केसमें संकरों स्थानपर आता है । उर्ध्वं समझ लेना अत्यवश्यक है । इसके घोड़ेसे और भी उदाहरण देखिए—

### दूधमें सोमरसका मिलान

गायके दूधमें सोम मिलाया जाता है । इसका वर्णन वेदमें इस प्रकार है—

१ सुजातं अप्सुरं गोभिः परिप्लुतं इन्दुं ( ४८७ )- उत्तम प्रकारसे तैयार किया गया और औषधतसे पानीमें मिलाया गया सोमरस ( गोभिः परिप्लुतं ) गायके दूधमें मिलाया जाता है । “ गायसे परिप्लुत ” का अर्थ है “ गायके दूधसे मिश्रित ” । दूध पायका अन्न है, इस अन्नके लिए पूर्ण “ गाय ” का प्रयोग किया है । और भी देखिए—

२ हे इन्दो ! गा-अभि इहि ( ५०५ )- हे सोमरस ! तू गायके पास जा, अर्थात् तू गायके दूधमें मिल जा । यहाँ पर “ गाः ” अनेक गायोंका प्रयोग “ गायके दूध ” के लिए किया है । उसी प्रकार—

३ नुभिः यतः गाः निर्जिजं बुरते ( ५३० )- मनुष्यों-जड़ियों द्वारा बजाकर निर्जोडा गया सोमरस पायका दूध

पारण करता है, अर्थात् सोमरस पायके रूपमें मिलाया जाता है । “ गाः निपिञ्ज ” गायके रूपका मतलब है “ गायके रूपका रूप ” । यो शब्द पायके रूपका वाचक है । उसके लिए पूर्णका प्रयोग वेदमें इस प्रकार होता है । और भी देखिए—

४ कलशो इन्द्रं वायसानाः गात्रः आयन् ( ५३७ )— कलशमें सोमके पास इच्छा करती हुई गायें आईं । इसका अर्थ है कि कलशमें भरे हुए सोमरसमें गायोंका रूब मिलाया जाता है । कलशमें गाय जा ही नहीं सकती । जब एक ही नहीं जा सकती तो फिर अनेक कैसे जा सकती हैं । अतः यहाँ गायको रूपका वाचक मानना पड़ेगा ।

५ शुचिं वर्णं गोषु अधि धारय ( ५७४ )— शुद्ध वर्णको गायमें स्थापित कर । सोमरसके शुद्ध वर्णको गायके रूपमें मिला । सोमरस और गायके रूपका मिलाप कर ।

६ ते वर्णं गोभिः अमियासयामसि ( ५७५ )— तेरे सोमके रंगको गायसे आच्छादित करते हैं । सोमरसमें गायका रूब मिलाकर उसमें रूयका संकलन हम करते हैं ।

७ रसः हृदि दिव्य पयसे ( ५७८ )— हरे रंगका सोमरस धूलोके छाना जाता है । “ ऊपरके घर्तनेसे ” सोमरस छाननीसे छाना जाता है । “ ऊपरके घर्तनेसे ” बहुतेके बजाय “ दिया ” धूलोके बह दिया । धूलोक हमेशा ऊपर ही है, इसलिये ऊपरके घर्तनको “ ऊ ” लोका सुधव पत्रमें माना गया ।

इस प्रकार “ अतके लिए पूर्णके प्रयोग ” को संदिग्धशैली देखने योग्य है । यह वैदिक मन्त्रोंकी विशेषता बनती है ।

### सोमको सोनेसे छाना

सोमबस्ती पायकेसे बूटी जाती थी । ये पायद बूटनेसे सज्ज पपड़नेके लिए ऊपर पतले और नीचेकी ओर मोड़ और मोटे होते थे । बूटनेके बाद हाथकी अंगुलियोंसे बराबर रस घर्तनमें भरते थे । उस हाथमें सोनेकी अंगूठी पहनते थे । इस सोनेके उस रसके साथ सभनेसे इसमें विशेष गुण उत्पन्न होते थे । इसलिये बहुत भी है—

१ हेमना पूयमानः देवः रसः देवेभिः समष्टुक्त ( ५२६ )— सोनेसे पवित्र होनेवाला यह दिव्यरस देवोंकी पिलाया जाता है ।

२ हिरण्य-पायः ( ५२७ )— सोनेसे पवित्र होनेवाला यह रस है ।

इस प्रकार हाथमें पहनी हुई सोनेकी अंगूठी सोमरससे छूती थी । इससे सोनेसे उसमें कुछ विशेष गुणोंका आना स्वाभाविक है ।

इस बूटे हुए सोमका रस हाथकी अंगुलियोंसे बराबर निकाला जाता था । उसका वर्णन इस प्रकार है—

१ साकं उक्षः स्वसारः मर्जयन्ताः, दश धीतयः धीरस्य धनुर्भिः ( ५३८ )— एक जगह रहकर कार्य करने वाली बहनें— हाथकी अंगुलियाँ सोमको बूट करती हैं, सोमकी पोसकर उसका रस निकालती हैं । ये दस अंगुलियाँ धैर्यवान सोमको पारण करती हैं, हाथसे रस निकालती हैं । इस प्रकार सोमबस्तीसे रस निकलता था ।

### सोमरसमें पानी मिलाया

ऊपर लिखे हुएके अनुसार सोमका रस निकालनेके बाद जो छत्राव हिस्सा हाथसे बचता उसे “ तृतीय ” कहते थे । यह छत्राव हिस्सा एक तरफ करके रस निकाला जाता था । फिर यह रस छत्रनीसे छाना जाता था । इसे छाननेके बहुते इसमें पानी मिलते थे । पानीको मिलानेके सम्प्रदायमें वर्णन इस प्रकार है—

१ अथु दक्षः ( ५७३ )— पानीमें मिला हुआ सोमरस बल बढ़ानेवाला होता है ।

२ कचि सिन्धोः ऊर्मौ अपिध्रितः ( ४८९ )— यह शान बढ़ानेवाला सोमरस नदीके पानीमें मिलाया गया है ।

३ सानुधीः अपः हिंजानः ( ४९३ )— मनुष्योक्त द्रव्य करनेवाले पानीमें सोमरस मिलाया गया है ।

४ यही अपः यधियास ( ४९४ )— मनुष्यवाले जलोमें सोमरस मिलाया गया है ।

५ विधर्षाभिः हितः पयमानः अयं आयं पृहत् हिंजानः स घेतति ( ५०८ )— शानो, हितकारी, शुद्ध किया जानेवाला यह सोमरस महान् जलोंमें मिलानेके बाद ध्वितकी बढानेवाला होता है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सोमरस डूबने या तिरुने पानेमें मिलाया जाता था ।

“ शृहत् आयं हिंजानः ” अर्थात् पानीमें यह मिलाया जाता था ।

६ अथु अस्तः दधन्वान ( ५१२ )— पानीमें सोमरस मिलाया जाता है ।

७ मुत्तं पौर पिचत् ( ५१२ )— सोमरसमें पानी डालो । इससे भी भासूब पड़ता है कि सोमरसमें पानी अधिक होता था ।

८ अर्णसा प्रपिये ( ५१४ )- पानीमें सोम मिलाया जाता है, " अर्णस् " का अर्थ वह पानोका समुद्र । समुद्रमें मिलानेका अर्थ है, बहुतसे पानीमें मिलाना ।

९ देवेभ्यः मत्सरः समुद्रं पिबेत् ( ५२१ )- देवोंको देनेके लिए आनन्दवर्धक सोम पानीमें मिलाया जाता है । इसे मिलानेके बाद यह विदेय मुषोति मुक्त होता है, अर्थात् पानेके लायक होता है ।

१० यना यसानः रत्न-पा ( ५२८ )- पानीमें मिला हुआ सोम रत्नोंकी धारण करता है । बहु धनकता है ।

११ मधुमान् अपः यसानः ( ५३२ )- भीटा सोम पानीमें मिलाया जाता है ।

१२ सरसि प्रच-य ( ५४१ )- पानीमें जाकर मिल जा ।

१३ अयां गार्धः सोम आदिः ( ५४२ )- पानीमें मिला हुआ सोम पलवान् है । पानीके धर्ममें सोम रहता है, अर्थात् पानी अधिक और सोम थोड़ा रहता है ।

१४ दध्ने यथा असर्जि ( ५४३ )- मुठमें जिस प्रकार घोड़ा भेजा जाता है, उसी प्रकार सोम पानीमें छोड़ा जाता है ।

१५ अ-मुहः प्रियं काम्यं अमि नयन्ते ( ५५० )- मोह न करनेवाले पानी मित्र और चाहने योग्य सोमसे मिलनेके लिए जाता है । अर्थात् यह मित्रण पुत्र और उत्सव होता है ।

१६ सिन्धूनां प्राणा इन्द्रस्य दार्दि आधिान् ( ५५९ )- "दोरे प्राण इन्द्रके प्रिय सोममें मिल गए । इन्द्रकी सोमरस बहुत अच्छा स्वादा है, उसमें नदीके प्राण अर्थात् पानी मिलाया जाता है ।

१७ अदन् न अपतुर् यनप्रश्नं उद्वृणुतं सोत परि दिवत् ( ५८० )- मोरके समान पानीमें जलेशाना, पानीसे मिश्रित होनेवाला सोम है । उसका रस निराकरक उसमें पानी मिलाओ ।

१८ मदिन्तमः अपां ऊर्मिः इव श्रीष्ट ( ५८४ )- मादर देवेषाम सोम पानीमें छटोरे लाय सेलता है । सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।

१९ ममुद्रः गोपाः कृषा रुजः ( ५२९ )- पानीमें और गायके रूपमें मिलानेके बाद यह बल बढानेवाला होता है ।

२० अपः यमानः पुनानः धारया अयंति ( ५११ )- पानी मिलाये के बाद छाना जाता हुआ सोम धारसे नीचे नीचे गिरता है ।

२१ भंजो पयसा मधुदधुं कोटीं अचष्ट ( ५१४ )-

सोमका दूधसे मिश्र होनेके बाद यह चाहते भरे बर्तनमें सीधा जाता है ।

इस प्रकार सोमरसमें पहले पानी मिलाकर यह छाना जाता था । हाथसे दबाकर निकाला गया सोमरस गाड़ा होता था, उसमें पानी मिलानेसे यह पतला होता था । उसके बाद यह द्वापवित्र अर्थात् बकरीके बालोंसे बनी छलनीसे यह छाना जाता था, उससे छननेसे सोमबत्तोका मोटा-भोटा भाग उसमें गहों जाता था, और वह योगेलायक होता था ।

### सोमरसकी छलनी

सोमरस छाननेकी छाननी बकरीके बालोंकी मुनी हुई होती थी । उस छलनीका वर्णन इस प्रकार है—

१ वृषा देवयुः अय्यायारोमिः मंद्रया धारया पयस्य ( ५०९ )- बल बढानेवाला देवोंके पास जानेवाला सोमरस बकरीके बालोंकी छलनीसे धीरे-धीरे छाना जाता है ।

२ सोटुपि स्वान मयीनां स्तुभिः अभिप्राति ( ५१५ )- रस निकालनेवाले श्रुतिवां द्वारा निबोझा गया सोमरस बकरीके बालोंसे छाना जाता है ।

३ अय्या यारिः परि पुनानः ( ५१९ )- बकरीके बालोंसे छनकर यह रस नीचे गिरता है ।

४ पुनानः अय्य धारिः अयेपि ( ५१२ )- छाना जाता हुआ यह रस थोड़ी थोड़ी छाननीसे नीचे गिरता है ।

५ पुनान सोम ऊर्मिणा अय्य धारिः पिपापति ( ५७३ )- छाना जाता हुआ सोमरस सहर्षसे मुक्त होकर भेदे बालोंकी छाननीमें शेडकर जाता है । जराही नीचे छाना जाता है ।

६ सुतः मय्या धारोमिः धारया पयसे ( ५८४ )- सोमरस निराकरके बाद यह थोड़े थोड़े पानीकी छाननीसे मुक्त होता है ।

७ सोमः पवित्रे पयंशरत् ( ४७५ )- सोमरस छलनीसे नीचे गिरता है ।

८ सहस्रधारः अय्य अत्यर्णि ( ५२० )- हजारों धाराओंमें, भेदे बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है ।

९ पुनः अय्य धारिः मयेपि ( ५३४ )- मुक्त होता हुआ वह थोड़े थोड़े बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है ।

१० रुशुपु अय्य धारिः अति पयसाम् ( ५१५ )- भीटा यह सोमरस थोड़े थोड़े बालोंसे छाना जाता है ।

११ हरिं त्वं चारेण परि पुनरिति ( ५५२ )- हरे रगके उस सोमको छलनीमें छानते हैं ।

१२ हरिः रंहा द्योसि अति पवते ( ५७६ )- हरे रंगका यह सोमरस अपनेसे स्वरूप हिंसरेके दूर करते हुए शुद्ध होता है ।

इन पवनेसे सोमरस छाननेकी वस्त्रणा अच्छी तरह की जा सकती है । भेड़के घालोंकी बुनी हुई वह छलनी होती है, वह वर्तनके ऊपर बांधी जाती है, और ऊपरसे एक वर्तनके पार बाँधकर उस छाननीपर पानी मिश्रित सोमरस डाला जाता है । जो कुछ सोममें फूट करकट होता है, वह रस छाननीपर रह जाता है, और नीचे वर्तनमें शुद्ध रस भर जाता है । छाननीसे छाने बिना रसको किसी भी वेबताके लिए नहीं बिधा जाता । इसप्रति देवोंको देनेके लिए, कुछ कुछ सोमरसमें न रहने पाने, इसलिये धरी हुई सावधानीसे छाना जाता था । इस प्रकार यह सोमरस छाना जाना था, उसके बाद उसमें रूप भारि मिलाया जाता था । इसलिये पहले इस छाननेके सम्बन्धमें प्रथम कहा है, वह इष्टम्भ है ।

**सोमरस छानते हुए शब्द होजा है**

कोई द्रव पदार्थ जब दूसरे द्रव पदार्थमें डाला जाता है, तब शब्द होता है । उसी प्रकार सोमरसको छानते हुए शब्द होता था । नीचेके वर्तनमें पानी होता था । उसमें छलनीके द्वारा सोमरस छाना जाता था । इस कारण आवाज होती थी । उसका वर्णन वेदमन्त्रमें इस प्रकार है—

१ हरिः कनिमद्वय एति ( ५७१ )- हरे रंगका सोमरस शब्द करता हुआ नीचेके वर्तनमें जाता है ।

२ सुतासः अपसे प्राग्भुः ( ५७७ )- सोमरस पवने लिये शब्द करते हुए नीचेके वर्तनमें जाता है ।

३ सोमासः अपः ऊर्मयः प्र नयन्त ( ५७८ )- सोमरस पानीके लहरोंमें लेजाया जाता है । पानीमें मिलकर जाता है ।

४ सुतः धृया पवस्व ( ५७९ )- रस निकालनेके बाद बल बढ़ानेके लिए छेनता जा ।

५ पवमानः ( ५८० )- छाना जानेवाला सोम ।

६ स्वानासः इन्द्राय मधोः धारया मद्राय परि अर्पति ( ५८५ )- रस निकाला हुआ सोम मीठी पारसे आनन्द बढ़ानेके लिए छाना जाता है ।

७ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अधिष्ठितः परि प्रासिष्यत्

( ५८६ ) ज्ञान बढ़ानेवाला सोमरस मीठे पानीमें मिलानेके बाद नीचे वर्तनमें गिरता है ।

८ सुतः कल्दां आविशत् ( ५८९ )- सोमरस बलशक्त गिरता है ।

९ सुतः पवित्रे अर्वाङ्गि न्यक्रमीत् ( ५९० )- सोमरस छाननीसे छाना जाता है ।

१० भूर्धयः त्वेषा अपासः कृष्णां त्वचं अपग्रस्तः प्राग्भुः ( ५९१ )- जरदीसे जानेवाले तेजस्वी, गतिशील सोमरस अपने हरे रंगके घालकी उत्तार कर वर्तनमें छनते हुए जाते हैं ।

११ अया पवस्व ( ५९३ )- इस भारसे छन जा ।

१२ अया धीती पवस्व ( ५९५ )- इस रीतिसे शुद्ध हो ।

१३ स्थानः पवित्रे आ धर्य ( ५९६ )- रस निकालनेके बाद छाननीसे छन ।

१४ घृणा हरिः कनिमद्वय ( ५९७ )- घन बढ़ानेवाला यह हरे रंगका सोम शब्द करता हुआ छनता जाता है ।

१५ पवित्रे आनय, इन्द्राय पातये पुनीदि ( ५९९ )- छलनीमें सोमरस डाल । इन्द्रके पीनेके लिए पवित्र कर ।

१६ द्रोणामि रोस्वय अर्ध ( ५७३ )- वर्तनमें शब्द करता हुआ जा ।

१७ मनीषिभिः सृज्यमानः धारया पवस्व ( ५०५ )- बुद्धिमान् श्रुतिवर्माँ द्वारा शुद्ध होनेवाला सोमरस शुद्ध हो ।

१८ इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् पवते ( ५१० )- इन्द्रके पास जानेके लिए शुद्ध होता है ।

१९ अय्यया याराणि तिर आ पवसे ( ५१३ )- तेडके बालोंकी बनी छलनीसे सोमरस शुद्ध होता है ।

२० हरिः चम्बोः, पुरि जनः न, विशत् ( ५१६ )- हरे रंगका सोमरस वर्तनमें, जिस प्रकार नगरमें मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार जाता है ।

२१ सुहस्वया मृज्यमानः समुद्रे धार्च इयति ( ५१७ )- उत्तम हाथसे निकला गया और छाना गया यह सोमरस समुद्रमें शब्द करता हुआ प्रविष्ट होता है । नीचे वर्तनमें रखे हुए पानीमें सोमरस मिलाया जाता है ।

२२ धारया पवित्रं अस्मरसत ( ५२२ )- पार बाँधकर छलनीसे नीचे सोमरस जाता है ।

२३ अद्रव कोप परि निषीद ( ५२३ )- वर्तनमें भर था ।



२४ वराह रेभन् पदा अभ्येति ( ५२४ ) उत्तम दिनमें शब्द करता हुआ वर्तनमें जाता है ।

२५ सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ( ५२५ ) सोमरस शब्द करते हुए छाननीसे नीचे आता है ।

२६ मधुमात्रं वृषा पवित्रं पर्येक्षाः ( ५३१ ) - मीठ और बल बढ़ानेवाला सोमरस छाननीसे उपकृता है ।

२७ अधिस्तानी अद्ये पयस्त्व ( ५३२ ) - ऊँचे स्थान-पर भेड़के घासकी छलनीसे छनता जा ।

२८ मत्सरः घृतयन्ति द्रौणानि अवरोह ( ५३२ ) - आणव्य देनेवाला सोमरस जलके पात्रमें उतरता है ।

२९ मधुमतीः धाराः प्रासृप्रतं ( ५३४ ) - मीठी धारा बहती है ।

३० दूयः इन्दुः फलशं मयि आसीदनु ( ५३५ ) - तेजस्वी सोमरस कलशमें आकर बैठता है ।

३१ धियः अधिरपर्येति ( ५३९ ) - अगुलियारस निकाल-नेके लिए परस्पर स्पर्धा करती है ।

३२ सोम पुनानः अर्षेति ( ५४६ ) - सोम छाना जाता हुआ वर्तनमें जाता है ।

३३ स्थानाः स्वर्दिदं इष्ट्याः सोमा पयस्ते ( ५४८ ) - रस निकालनेके बाद ये तेजस्वी सोमरस छाने आते हैं ।

३४ चनोदितः प्रियाणि नामानि अभि पयस्ते ( ५५४ ) - अन्नके समान हितकारी सोम शिव जलोंमें मिला-कर छाना जाता है ।

३५ येषु पक्षः अभिवर्षेते ( ५५४ ) - इन जलोंमें निकलनेके कारण सोमरस बढ़ता है ।

३६ पय कोशो ॥ अविभ्रदत् ( ५५६ ) - यह सोम-रस वर्तनमें शब्द करता है ।

३७ शतयामना पया फलशो क्षं अर्षेति ( ५५७ ) - ती छिरोवाली चलनीके छालेसे यह सोमरस कलशमें जाता है ।

३८ पयमानः कनिज्जदत् ( ५७२ ) - सोम छानते समय शब्द करता है ।

३९ पुनानः सोमः मधुदन्तुं कोशं परि अर्षाति ( ५७७ ) - छाना जाता हुआ सोमरस बीठे रस छानेवाले-घाले वर्तनमें जाता है ।

४० मध्यमं कोशं पि युय ( ५७९ ) - छहदके वर्तनमें मिला ।

इय प्रकार सोम छाना जाता है । ऊपरके वर्तनसे सोम-

रस भेड़के घाससे बने छलनीसे नीचेके पात्रोंके वर्तनमें छाना जाता है, तब उसका शब्द होता था । ये वर्णन ऊपरके श्रंखोंमें अनेक प्रकारसे किये हैं । उनको देखनेमें छाननेकी क्रिया अच्छी तरह सात होगी ।

### सोमका दूधमें मिलाना

सोमरसकी पानीमें मिलाकर छाननेके बाद वह दूधमें मिलाया जाता था । इस सम्बन्धमें वर्णन इस प्रकार है—

१ सु-जातं अनुरं गोभिः परिप्लुतं इन्दुं देवाः उप अयांसिधुः ( ४८७ ) - उत्तम प्रकारसे तैयार किये गये सोमरसमें पानी मिलावनेके बाद गायका दूध मिलाते हैं, और फिर सब देव सोमके पास आते हैं । इससे सब प्रक्रियाएँ सान हो जाती हैं, प्रथम सोमरस निकालना, फिर उसमें पानी मिलाकर उसे छानना, उसके बाद उसमें दूध और शहद मिलाया फिर अन्तमें पीना यह सोमरसकी प्रक्रिया थी ।

२ दद्या मां अभि इति ( ५०५ ) - भगवन्नेवाला सोमरस गायके दूधके पास आता है, अर्थात् वह गायके दूधमें मिलाया जाता है ।

३ सोमः गव्यन् ( ५३३ ) - सोम गायके दूधमें मिलाया जाता है ।

४ हे पर्यमान ! धाम पयसे ( ५३४ ) - हे सोमरस ! तू दूधमें मिलाया जाता है, अपना स्थान पवित्र करता है । दूध मिलानेके बाद सोमका घर पवित्र होता है ।

५ कलशे इन्दुं वायशानाः गावः आयन् ( ५३७ ) - कलशमें सोमरसकी इच्छा करती हुईं गायें आईं, अर्थात् सोमरसमें गायका दूध मिलाया गया ।

६ शुक्लाः यत्पुराय निर्भिजे घयति ( ५५१ ) - सफेद रंगका गायका दूध यत्पुराय सोमके रूपकी साफ करनेके लिए आच्छादित करता है । दूधमें सोम मिलाया जाता है ।

७ सुदुयः घृतयुतः वाध्याः पयसा पेतयः अभि अर्षेति ( ५५६ ) - उत्तम दूध देनेवाली, घी पुत्रानेवाली, रमाती हुईं गायें सोमके पास आती हैं । अर्थात् सोममें गाय-का दूध मिलाया जाता है ।

८ अरिं प्रिसस पेतयः त्वा शिरं दुदुहिरे ( ५६० ) - इस सोमके लिए २१ गायें दूध देती हैं । इन गायोंका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है ।

९ पेनन् वचनयन्तः उक्षिपाः ऊधभिः परिप्लुतं निर्भिजे धिरे ( ५६३ ) - गायें रमाती हुई अपने घनसे

उपबन्धनेवाले ब्रूयते सोमके लक्षणे पारण करती हैं, अर्थात् ब्रूयते सोम मिलाकर उसे सफेद बनाती हैं ।

१० शुद्धिं यणे गोषु अधिचारय ( ५७४ )- शुद्ध रगरी गोषोंमें स्थापित कर । सोमरस गायके ब्रूयमें मिलाकर सफेद रगका हो जाता है ।

११ ते वर्णो गोभिः अभिशस्त्रयामसि ( ५७५ )- तेरे सोमके रगरी हम गायके ब्रूयमें आच्छादित करते हैं । अर्थात् सोमरसका हुआ रग गायके ब्रूयमें आच्छादित होनेपर सफेद रगका रीझने लगता है ।

इस प्रकार गायका ब्रूय सोमरसमें मिलावनेके बाद वह हरे रगका सोमरस सफेद रीझने लगता था और चमकने लगता था । इसके बाद वह पिपा जाता था । पीनेके पहले उसमें गूहद डाला जाता था, जीरा आदि आदि इच्छा हो तो मिलाया जाता था, जो भूतचर उरका आदि बनाकर मिलाते थे और फिर उसे पीते थे ।

यह चमकता भी था, उसके विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

### सोमरस चमकता है

सोमरस पानी और ब्रूयमें मिलानेके बाद चमकने लगता था, और इसके दिना भी यह चमकता था । इससे ऐसा मान्य पड़ता है कि उसमें फास्फोरसका मात्रा अधिक होती होगी । उसके चमकनेका यह गुण बहुत महत्त्वका है, इसी कारण उसे बुद्धिचर्यक, उत्साहचर्यक और आनन्दचर्यक कहा है । अब उसके चमकनेके विषयमें वर्णन देखिए—

१ स्वर्दश भानुना शुमन्त इयामहे ( ४८० )-स्वर्ष तेजस्वी और अपने तेजसे चमकनेवाले सोमरसको हम बुलाते हैं, हम उसकी स्तुति करते हैं ।

२ देव पयहन ( ४८१ ) चमकनेवाला सोम शुद्ध होवे, दू छनवा जा ।

३ पयमानः धैर्यान्तर उपोतिः द्वियः विश्व अजी-जन्तु ( ४८४ ) छाना जानेवाला यह सोमरस सब मनुष्योंका हित करनेवाला, तेजस्वी, सुकोकर्म चमकनेवाला उत्सव हुआ ।

४ आययः रचे सूर्ये जनन्त ( ५०२ )- मनुष्योंने-श्रुतिगोत्र तेजके लिए सूर्य-सोम-उत्सव किया है ।

५ शुमन्तम ( ५०३ )- सोम बहुत तेजस्वी है ।

६ हे देव । मृषा शुमान् असि ( ५०४ )-हे प्रकाश मान् सोम । दू उस बढ़ानेवाला और तेजस्वी है ।

७ हिरभ्यय देव ( ५११ )- यह सोमने समान चमकता है ।

८ रमस्तानि यन्ना आदचे ( ५३३ )- यह सोम तेजस्वी वस्त्र पहनता है ।

९ अर्के सूर्ये अपिन्व ( ५३४ )- तेजसे सूर्यको भरता है । सूर्यको भी तेज देता है, इतना यह सोमरस तेजस्वी है ।

१० सोम उमे रोदसी व्यरयत् ( ५४६ )- सोम-रस पीनें हो लोको-छायापुत्रिणीको-तेजस्वी करता है ।

११ त्रिचक्षुषाः सूर्यस्य रथ अधि आरुह्यु ( ५५४ )- यह तानी सोमरस सूर्यके रथपर चढ़ गया है, अर्थात् इससे सूर्यका तेज बढ़ा है, अर्थात् यह स्वयं तेजस्वी है ।

१२ राजा इव दुस ( ५६२ )- राजाके समान यह तेजस्वी दीप्तता है ।

इस प्रकार सोमरस अपने तेजसे चमकता है इस विषयमें यह वर्णन उपरोक्त मंत्रोंमें आया है । अब इसका एक दूसरा गुण देखिए—

### उत्साह बढ़ानेवाला सोम

सोमरस चमकता है, अर्थात् उसमें स्वाभाविक तेज है । ऐसा कोई पदार्थ उसमें है, जिसके कारण वह चमकता है । अपने चमकनेवाले गुणके कारण ही वह उत्साह बढ़ानेवाला है । देखिए—

१ धेतन प्रिय इन्दु ( ४८१ )- यह सोमरस धेतना बढ़ानेवाला है, इस कारण यह समीको प्यारा है ।

२ काजिब आशय सोमास माश्रुत ( ४८२ )- यत्पर्यक और उत्साह बढ़ानेवाले सोमरस छाने जाते हैं ।

३ मरिदः आशुवि ( ५१४ )- आनन्द बढ़ानेवाला और उत्साह बढ़ानेवाला, सबको जाग्रत रखनेवाला यह सोम है ।

४ अदाय पयने ( ५४० )- आनन्द बढ़ानेवाला यह सोम शुद्ध किया जाता है ।

इस प्रकार सोमरस उत्साह बढ़ानेवाला है, ये इस तन्म-यमें वर्णन हैं । जिस कारण यह चमकता है इसीलिए यह उत्साह बढ़ानेवाला है । अब उसके आनन्द बढ़ानेवाले गुणोंका वर्णन देखिए—

### आनन्द बढ़ानेवाला सोम

१ मदेधु सार्वधा असि ( ४७५ )- आनन्द देनेवाले रसोंमें सोमरस सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है ।

२ ते मदः इन्द्रं गच्छतु ( ४७८ )- तेरा आनन्द बढ़ाने-  
वाला गुण इन्द्रको प्राप्त हो ।

३ अस्तरः क्रतुयित् पयसे ( ४९२ )- आनन्द बढ़ाने  
वाला और यज्ञमें जानेवाला सोमरस छाया जाता है ।

४ सुतस्य अग्नयः धारा अग्नी ( ५०० )- सोमरस  
रूपी अग्निकी धारा आनन्द देनेवाली है ।

५ अन्धानः वृषायसे ( ५०७ )- हे सोम ! तू अन्ध  
और बल बढ़ानेवाला है ।

इस प्रकार यह सोमरस आनन्द बढ़ानेवाला है ।

### बुद्धिबर्धक सोम

अथ सोमके बुद्धिबर्धक गुण कौन—

१ कथिः ( ४८६ )- शाली, बुद्धिमान्, कामदशी ।

२ कथीनां मतिः ( ४८९ )- शाली लोगोंकी बुद्धि  
बढ़ानेवाला ।

३ कथिरुतुः ( ४७६ )- शाली और कर्म जाननेवाला ।

४ विमः अग्नयः ( ५१९ )- सोम शानका बढ़ानेवाला है ।

५ पुरमेधाः ( ५१४ )- बहुत बुद्धिमान् ।

६ सोमासः विपश्चितः ( ४७६ )- सोमरस बुद्धि  
बढ़ानेवाला है ।

७ मनीषिणः सोमासः ( ५१८ )- बुद्धि बढ़ानेवाले  
सोमरस है ।

इस प्रकार सोम बुद्धिबर्धक है ।

### बलवर्धक सोम

सोम पीनेके बाद बल बढ़ाता है ।

१ दक्षसाधनः ( ४७४ )- सोमरस बल बढ़ानेवाला है ।

२ वृषा नसि ( ४८० )- तू बलवान् है ।

३ वृषा वृषप्रतः ( ५०४ )- सोम बलवर्धक है, और  
पीनेवालेके अत और बल बढ़ानेवाले हैं ।

४ ते दक्षं बलं आपुणीमहे ( ४९८ )- तेरे सामर्थ्य  
और बल हम ग्रहण करते हैं ।

इस प्रकार उसके बल बढ़ानेवाले गुणका वर्णन है ।

### स्वादित और मीठा सोम

सोम स्वादित और हृद्य बढ़ानेवाला है ।

१ रुनादिष्ठया मदिष्ठया धारया पयस्य ( ४६८ )-  
स्वादित और उत्साहवर्धक धाराले सोमरस छाया जाता है ।

इस यज्ञमें सोमरस अत्यन्त स्वादित और हृद्य बढ़ानेवाला है,  
यह कहा है ।

२ तेन अन्धसा पयस्य ( ४७० )- सोममें अग्निकी  
सत्त्व हैं और यह सुखदायक हैं ।

३ मधुमत्तमः ( ४७२ )- यह अत्यन्त मीठा है ।

४ पप मधुमान् ( ५५६ )- यह मीठा है ।

इस प्रकारका यह सोमरस है, स्वादित और मीठा होता  
था । इस कारण यह लोकप्रिय हो गया था ।

### मनुष्योंका हित करनेवाला सोम

सोम मनुष्योंका हित करनेवाला है, यह मं. ५१२ में  
“ नर्यं. ” शब्दसे प्रकट किया है ।

### बुष्टोंका नाश करनेवाला सोम

सोम शूरवीरोंका उत्साह बढ़ानेवाला है । उससे बल और  
शीर्ष बढ़ता है, इस कारण शूर सोमरसका पान करते हैं, और  
वे शूर-वीरताके काम करते समते हैं । इस कारण बुष्टोंका  
नाश होता है । इस विषयमें निम्न मन्त्र हैं—

१ अघ-शंस-हा ( ४७० )- वायवर्धक लिए प्रसिद्ध  
मनुष्योंका नाश करनेवाला है । सोमरस पीनेसे वीरोंमें  
उत्साह बढ़ता है, और वह उत्साह शरीरलोगोंका नाश करता है ।

२ अ-रायण अपाघ्न ( ५१० )- दान न देनेवाले  
कमजोरोंका सोम नाश करनेवाला है ।

३ विदवाः द्विपः अप जहि ( ४७९ )- सब द्वेष करने-  
वालोंका नाश करनेवाला है ।

४ विदवाः मृघः अग्नयमीत् ( ४८८ )- सब बुष्टोंका  
नाश कर ।

५ मृघः अपाघ्न ( ४९२ )- वह मनुष्योंको मारता है ।

६ अदेययुं जनें जुदस्य ( ४९२ )- देवोंकी भाँति न  
करनेवाले बुष्टोंको दूर कर ।

७ ते मदेयु नयवीः नव अचाहन् ( ४९५ )- तेरे  
पीनेसे उत्साह बढ़नेके कारण वीरोंने शत्रुके निपटानसे नगरों-  
को सोझा ।

८ सेनानीः शूरः सोमः रथानां शत्रे प्रीतिः, अयस्य  
सेना हर्षते ( ५३३ )- सेनाएँ तत्कालन करनेवाला शूर  
सोम रथके अग्रभागमें जाता है और इसकी सेना हर्षित  
होती है । सोमरस पीनेसे इस प्रकार बल बढ़ता है ।

९ रक्षः हन्ति, अरातीः परि याधते ( ५४० )-

पाससोंकी मारता और कुट्टोंकी पीडा देता है। ऐसा यह सोम है।

१० बुधाय इन्तये इन्द्रं आविधि (४९४) - बुधको मारनेके लिए इन्द्रका बल बढ़ाया। सोमरस पीनेके बरतन बुधको मारनेका बल इन्द्रमें बढ़ा।

सोम पीकर मूर संजिक ऐसा कर्म कर सवते हैं।

### इन्द्रके लिए सोमरस

इन्द्रमें सोमपानसे सोम बढ़ता है और यह राक्षसोंका वध करनेमें सक्षम होता है। इसलिए इन्द्रको सोम देनेकी परिपाटी है, वैतिए—

१ इन्द्राय पातये सुताः (४६८) - इन्द्रको पिलानेके लिए यह सोम तैयार किया गया है।

२ इन्द्रु इन्द्राय धीयते (४८९) - सोमरस इन्द्रके लिए है।

३ मधुमत्तमः पुक्षतमः भद्रः इन्द्राय पयस्य (४७८) - अत्यन्त मीठा, तेजस्वी और आनन्द प्रदानेवाला यह सोमरस इन्द्रके लिए छान।

४ मरुवते इन्द्राय पयस्य (४७२) - मरुतोंकी सेनाके साथ इन्द्रको यह सोमरस छानकर दे। इन्द्रकी पिलानेके साथ उसके सेनािकोंकी भी रस पीनेके लिए दिया जाता है। अर्थात् सब उदात्त होकर समुत्थोका भाव करते हैं।

५ सुतासः पयिषवन्तः इन्द्राय क्षरन् (५४७) - सोमरस छाना जानेके बाद इन्द्रको दिया जाता है।

६ इन्द्रु इन्द्रस्य निष्कृतं प्र धयासीत, सख्युः संगिरं म धामिनाति (५५७) - सोमरस इन्द्रके वेदमें जाता है, और वहा अपने निजके वेदमें कुछ भी कष्ट नहीं देता। सोमरसको पीनेसे इन्द्रको कोई कष्ट नहीं होता।

सोमरस मकेले इन्द्रको ही दिया जाता हो चुकी बात नहीं, अपितु सभी देवोंकी दिया जाता है। वैतिए—

७ देधेभ्यः पीतये पयस्य (४७४) - देवोंको पिलाने योग्य सोमरस छान।

८ मदुम देवान् गच्छन्तु (५५७) - सोमरस देवोंको ले।

९ पिहयान् देवान् मदेन सख्यं धरि मच्छति (५५२) - जब देवोंके पास यह सोमरस अपने आनन्द प्रदानेवाले गुणके साथ जाता है।

इस प्रकार सब देव सोमरस पीते हैं और उस कारण वे जस्ताह गौर आनन्द युक्त होते हैं।

२४ (आप. हिन्वी)

### सोम घन देता है

सोम पनको भी देनेवाला है। इस विषयमें निम्न मंत्र है—

१ रत्नधाः (५११) - सोम रत्न देनेवाला है।

२ वार्याणि दयते (५२९) - सोम घन देता है।

३ सहस्रदाः शतदाः भूरिदाया पावी (५११) - हजारों, सैकड़ों और बहुतसा घन देनेवाला सोम है।

४ शतस्युतं, सहस्रभर्गसं त्रुविद्युमं रयिं न अभ्यर्प (५४९) - सैकड़ोंके द्वारा चाहने योग्य बहुतसे घनको न भोग करनेवाले, तेजस्वी घन हमें दे।

५ रिशंरं बहुलं पृथस्पृहं रयिं अभ्यर्पसि (५१७) - पीने योग्य बहुतके द्वारा चाहने योग्य बहुतसे घनको घन देता है।

६ सहस्रिणं सुधीर्यं रयिं आ पयस्य (५०१) - हजारों प्रकारके उत्तम वराकम करनेवाले घन हमें दे।

७ नः महे सुने म अर्पसि (५०९) - हमें बहुत घन प्राप्त हो इसलिए घृष्टा जाता है।

सोम घन देता है; अर्थात् सोमपान करनेवाले पनमानकी योग्यसे घन मिलता है। यद्यपि यान् बहुल पयिष कार्य है। उत्तमं मदा कर्म होता है। यत् यान्कोले दानरूपमें मिलता है।

### वेदमंत्रोंका गान

सोमरस निकालते हुए मंत्रोंका पाठ भी साथ-साथ चलता है; उसके सम्बन्धमें ये निम्नो है—

१ तिस्रः बान्यः उद्गिरते (४७१) - तीन वेदोंका पाठ होता है।

२ पुनस्ताप प्रयायत (५६८) - सोमरसको छानते समय वेद मंत्रोंका गान करो।

३ पुनानं तं समिगायत (५६८) - सोमरस छानते हुए वेद मंत्रोंका गान करो।

४ ऋषीणां सप्तवाणीः अग्निं अनुपत (५७७) - ऋषियोंकी सात छन्दोंवाली वाणी - वेद कहो।

५ इन्द्रवाहान् मद्रान् छण्यन् (५१३) - इन्द्रकी कन्यापन करनेवाली स्तुतिका गान करो।

६ विमं धीतिभिः शुम्भन्ते (४८८) - तानी सोमको छाननेके समय स्तोत्रोंकी शोभा बढ़ाई जाती है।

७ वर्हणं गिर्य (४८५) - महान् स्तोत्रोंके गीत बोले जाये हैं।

इस प्रकार वेदपाठ करते हुए सोमरस छाना जाता है।

### यज्ञ कर्त्ताओंका संगठन

सोम यज्ञकर्त्ताओंका संगठन करनेवाला है। इस विषयमें मंत्र देखिए—

१ पुरुषस्य हं फाके विभृत् ( ४८६ )— जनेक जितकी प्रशंसा करते हैं, उन यज्ञ कर्त्ताओंको यह सोम संगठित करता है। यज्ञ करनेसे महान् संगठन होता है। यज्ञ संगठिकरणका एक महान् साधन है।

### कुत्तेको दूर करो

यज्ञमें कुत्तेको आने नहीं देना चाहिए। मंत्र भी कहता है—

१ श्वानं अप हत ( ५५३ )— कुत्तेको दूर करो।

२ सुताय दीर्घाजिह्वं श्वानं अपश्राविष्टम् ( ५४५ )— सोमरसके पास लम्बी जीभवाले कुत्तेको मत आने दो।

इस प्रकार यज्ञ मन्त्रमें कुत्तेको, सोमरसके पास नहीं आने देना चाहिए यह स्पष्ट कहा है।

### उपमा

पाचमान काण्डमें जो उपमाएँ आई हैं, और उन उपमाओं द्वारा जो सान दिया गया है, वह उनके ज्योंकी देसकर समझमें आएगा—

१ श्वेनः न गिरिष्ठाः वंशुः योनिं आ सद्त् ( ४७३ )— श्वेन पक्षीके समान पर्वत पर रहनेवाला सोम यज्ञालागै, जाकर बैठता है। श्वेनके समान सोम भी पर्वत पर रहता है, और वहासे जैसे श्वेन पक्षी उड़कर अपने स्थानपर जाता है, उसी प्रकार सोम यज्ञालागै जाता है।

२ महिषा घनाभि इव, सोमासः अथ ऊर्मयः प्र जयन्त ( ४७८ )— भैसे जिस प्रकार वनमें जाकर पानी पीते हैं, उसी प्रकार सोम पानीमें मिलीपाश जाता है, और जिस प्रकार भैसे यलवान् होते हैं, उसी प्रकार सोमभी यलवान् होता है।

३ रथीः अश्वं इव इन्द्रः पथिष्ठ अश्वजत् ( ४८१ )— जिस प्रकार रथमें बैठनेवाला घोड़ेको हाँकता है उसी प्रकार सोम छाया जाता हुआ नीचेके बर्तनमें जाता है।

४ पचमानः दिवः चित्रं ज्योतिः, तन्यतु न, अजी-जानत् ( ४८४ )— छाया जानेवाला सोम, झुत्कीकमें चमकने लगे बिजलीके समान, चमकता है।

५ यथा रथ्यः, पाम्योः सुतः पवित्रे असाजि

( ४९० )— जिस प्रकार रथके घोड़े छोड़े जाते हैं, उसी प्रकार बर्तनमें सोमरस छलनीसे छाने जाते हैं, नीचे छोड़े जाते हैं।

६ त्वेषाः अयासः, गावः न प्र वक्रसुः ( ४९१ )— तेजस्वी प्रथमनखील सोमरस, जिस प्रकार गायें गोष्ठमें जाती हैं, उसी प्रकार यज्ञ-गण्डपमें जाता है।

७ यथा सूर्ये अरोचयः, अपः हिन्द्वानः ( ४९३ )— जिस प्रकार सूर्यको प्रकाशित किया, उसी प्रकार पानीमें जाकर नू भी तेजस्वी हो गया।

८ महान् भियो न दशीत्, सूर्येण सं दिव्यते ( ४९७ )— महान् भिवके समान दशमीय सोमरस सूर्यके समान चमकता है।

९ हृदि चम्बोः, पुरि जनः न, विशत् ( ५१३ )— हृदे रंगका सोम बर्तनमें, नगरमें जिस प्रकार मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार जाता है।

१० मन्दिरः न जागृधिः ( ५१४ )— आगन्वित होनेके समान नू जागृत है।

११ अश्वया इव हरिता धारया याति ( ५१६ )— घोड़ेके समान, यह सोम हृदे रंगका धारसे बर्तनमें जाता है। घोड़ी जिस प्रकार एक लगायते चलती है, उसी प्रकार यह सोमरस एक धारसे बर्तनमें चढ़ता है।

१२ ह्याः पचमानाः, अस्तसः धारया पथिष्ठ अश्व-क्षत् ( ५२२ )— घोड़ेजैसे घोड़े जाते हैं, उसी प्रकार सोमरस एक धारसे छानकर छुड़ किया जाता है।

१३ घाजिनं अश्वं न, रथा अजीयन्तः ( ५२३ )— जिस प्रकार यलवान् घोड़ेको धोते हैं, उसी प्रकार सोमको छाककर छुड़ करते हैं।

१४ अत्यः वाजी न, हृदिद्रोणं ननक्षे ( ५२८ )— घुड़ बीछमें बीछनेवाले घोड़ेके समान, हृदे रंगका सोम बर्तनमें जाता है।

१५ घाजिन इव शुभः, स्रे विशाः, पशुधर्धनाय धजं न मन्म ( ५३९ )— जिस प्रकार घोड़ेको जैवरति सजते हैं, सूर्यमें किरणें चमकती हैं, जिस प्रकार पशुधर्धके संवर्धनके लिए व्याघ्र बिजराटोल होकर गावोंके घासेमें जाता है, उसी प्रकार सोमरस बर्तनमें छाया जाता है, तब वह चमकने लगता है।

१६ मातरः पूर्वं आयुनि जातं यत्तं रिहन्ति न, अद्रुहः इन्द्रस्य कश्यपे अभिनयन्ते ( ५५० )— जिस प्रकार माय पहले बहलके बच्चेको घाटती है, उसी प्रकार

द्रोह न करनेवाले अत इन्द्रको प्रिय समनेवाले सोममें मिलाये जाते हैं ।

१७ अराघसं मते शुभवा न, श्वानं अप हत ( ५५२ )— जिस प्रकार बल दक्षिणसे रहित बतको भूयुद्धवि-  
ने त्याग दिया या अर्थात् दूर कर दिया या, उसी प्रकार यत्न  
भूमिसे कुत्तेको दूर करो ।

१८ युयतिभिः मर्यै इय, इन्द्रः सं अर्पति ( ५५७ )—  
अनेक स्त्रियोंने साथ अंते एक पुण्य रक्षता है, उसी प्रकार  
सोमरस जलमें साथ मिलाता है ।

१९ अत्यः न, पृथा रसः नदीषु फणुते ( ५५८ )—  
अंते पुत्रदोषका घोडा रोडता है, उसी प्रकार सरलतासे ही  
सोमरस सबको पानीमें मिलकर जाता है ।

२० इयेन न, सोमः धृतघृतं योनिं आ सद्धत् ( ५६२ )—  
इयेनके समान सोमरस जलसे भरे हुए बर्तनमें  
आकर बैठता है । पानीमें मिलाया जाता है ।

२१ शिनुं न, श्रिये परिभूयत ( ५६८ )— जिस  
प्रकार बालकको जैवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार सोमरसको  
धोमाके लिए पायके रूपमें मिलाते हैं ।

२२ शिनुं न, हव्यैः गृहीभिः कथ्यन्त ( ५६९ )—  
जिस प्रकार बालकको जैवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार हव्य  
पशुओं में श्रिये रूप अर्थात् पदांशों और स्तुतिमें स्थापित  
करते हैं ।

२३ भुति न, सोमाय यथा प्रोच्यते ( ५७१ )—  
श्रीकरके जैसे प्रम देते हैं, उसी प्रकार सोमकी स्तुति करते  
हैं, यहाँ प्राचीनकालमें भी नीकर वेतन देकर रखे जाते थे,  
और उन्हें यासिक भयदा बंकिन वेतन धरके रूपमें दिया  
जाता या ऐसा प्रतीत होता है ।

### सुभाषिष

१ सत् उग्रं शर्म, महि धक् भूम्वा ददे ( ५७७ )—  
हे सौम्यसे मिलनेवाले सुख और महान् धरा अथवा अन्न  
भूमिपर हमें मिले ।

२ विद्या ओजसा दधानः मत्सरः ( ५७९ )— सब  
ज्ञानमें युक्त होकर आनन्द बढ़ानेवाला यह सोम हो ।

३ ते देवावीः अघशंसदा यरेण्यः मद्- ( ५७० )—  
तेरा सान्त्व देवोंके पास बहुचक्षेवाला, शत्रुओंका नाश  
करनेवाला और धैर्य है ।

४ दक्षसाधनः मद्- ( ५७४ )— तेरा यह आनन्द बल  
बढ़ानेवाला है ।

५ मरेषु सर्वथा अस्ति ( ५७५ )— आनन्द देनेवाले  
पदांशों में सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है ।

६ जने नः यशसः दृष्टि ( ५७९ )— तु लोगोंमें हमें  
यशस्वी कर ।

७ विद्वता द्विपः अप जाहि ( ५७९ )— तब शत्रुओंको  
हरा ।

८ सर्वदां यातुना एगमत् त्वा हरामहे ( ५८० )—  
निरोधन करनेवाले और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाले  
जुने हम घुलते हैं ।

९ स्येतनः प्रिया कवीनां मतिः पविष्ट ( ५८१ )—  
ज्ञान देनेवाला, प्रिय और ज्ञानियोंकी बुद्धि देनेवाला शुद्ध  
होता है ।

१० देवाः पयस्व ( ५८१ )— तु तेजस्वी और गूढ हो ।  
११ पवमानः वेदज्ञानरं ज्योतिः अनीजमत् ( ५८४ )—  
शुद्ध होनेके बाद सब मनुष्योंका हित करनेवाले तेज प्रकाश  
होते हैं ।

१२ पुरस्पृहं कां रिभत् ( ५८६ )— बहुतेलि प्रस-  
न्नित कारीगरकी धारण करता है । “ कां ” = कारीगर  
पात्रक ।

१३ भर्ग देवाः उप अयासिपु ( ५८७ )— शत्रुका  
नाश करनेवाले कोरको देव प्राप्त होते हैं ।

१४ विश्वपांसिः विद्वताः सुधा अभ्यनमीत् ( ५८८ )—  
विश्व ज्ञानी सब शत्रुओंको हराता है ।

१५ विद्वताः धियः अभ्यर्गन् ( ५८९ )— सब शीघ्रकी  
बढाओ ।

१६ मत्सरः सुधाः अपमन् ( ५९२ )— सोमका आनन्द  
शत्रुकी दूर करनेवाला है ।

१७ अ-देव-युं जनें बुद्धय ( ५९२ )— देवकी मज्जित न  
करनेवाले मनुष्योंको दूर कर ।

१८ ते यः मरेषु नयनीः नयः अग्राहन् ( ५९५ )—  
तेरा यह उत्तम बुद्धि शत्रुके ९९ जगत्को तोड़ता है ।

१९ सुलं सनत् रयिं अन्धतानः परिभरत् ( ५९६ )—  
तेजस्वी और देने बोध धन अथके साथ हमें दे ।

२० ते दक्षे यत् अथ आनुर्गामदे ( ५९८ )— तेरे  
बल और सामर्थ्यकी आज हम बढ़ाने करते हैं ।

२१ ते यत् भ्योयुं यन्ति पातं पृष्टपृष्टं ( ५९८ )—  
तेरे बल बुद्धिवादी, मन देनेवाले, रक्षा करनेवाले और शत्रुओं  
झारा प्रखणित होते हैं ।

२२ सहस्रिणं सुययिं रयिं अस्मै अघांसि धारय

( ५०१ )- हजारों प्रकारसे बल बढ़ानेवाले और उत्तम पराक्रम करनेवाले धन दे, और इसे अन्न अपना यज्ञ दे ।

२२ घृणा घृमान् अंसि ( ५०४ )- तू बलवान् और तेजस्वी है ।

२३ क्षुपतमः धर्माणि दधिपे ( ५०४ )- तू अत्यन्त बलवान् है और बल बढ़ानेवाले सब गुणधर्मोंको धारण करता है ।

२५ घृणा देयसुः ( ५०६ )- तू बलवान् और देवोंको प्राप्त करनेवाला है ।

२६ अया सुकृतयया महान् अभ्यवर्धयः ( ५०७ )- इस उत्तम धूम कर्मसे तू महान् होता है ।

२७ मग्धानः वृषावस्ये ( ५०७ )- तू आलम्बित होकर बलवान् होता है ।

२८ विचर्यणिः हितः स चेत्तति ( ५०८ )- जानी हितकारक होकर ज्ञान देते हैं ।

२९ मृधः अपरणः अपणन् ( ५०९ )- जलनों और जान न देनेवालोंको यह भारता है ।

३० रत्नधा व्रतस्व योनिं आसीद्वि ( ५११ )- रत्नोंको धारण करते तपके आधारसे यह रहता है ।

३१ नर्यः ( ५१२ )- भागवोक्त हित करनेवाला है ।

३२ मदिरः न जाययिः ( ५१४ )- तू आलम्ब देनेवाला और जाग्रत रहनेवाला है ।

३३ पुरुणि मां स्पयधरन्ति, ताम्परिधीन् अतीहि ( ५१५ )- बहुते दुष्ट बुरे कष्ट देते हैं, उन दुष्टोंका ॥ गात्र कर ।

३४ पिशोमं बहुलं पुष्टस्पर्शं रयिं अभ्यर्षसि ( ५१७ )- पीते सोमके रंगवाले बहुते दारु प्रशस्तभीष बहुते धन तू देता है ।

३५ धाययः मृजन्ति ( ५२० )- मनुष्य मृदु होते हैं ।

३६ देयः देयानां जनिता प्र विचरतिः ( ५२४ )- देव देवोंके जन्मोद्धार वर्णन करता है ।

३७ रत्नधाः चायाणि दयते ( ५२८ )- रत्नोंको धारण करनेवाला धर्मोंको धारण करता है ।

३८ सहस्रदाः शतश्वः भूरिक्षाया दात्री दाम्भ्यचमं पाहिः अस्यान् ( ५३१ )- हजारों, शीशों और बहुत साधन देनेवाला सामर्थ्यवान् और निज आत्मनपर बँधता है ।

३९ सेनानीः दूरः रथानां अग्रे ग्रीति ( ५३३ )- सेनानी राजासक दूरदूर तक आगे बढ़ता है ।

४० अस्य सेना हर्षते ( ५३४ )- इसकी सेना आनन्दित होती है ।

४१ धाम पवसे ( ५३४ )- अपना घर स्वच्छ रखता है ।

४२ देवान् अभि अर्चामि ( ५३५ )- देवोंकी हम पूजा करते हैं ।

४३ महते हिनोति ( ५३५ )- महान् कार्यके लिए प्रेरित करता है ।

४४ आयुधा संशिक्षाजः ( ५३६ )- शास्त्रोंकी सीख करता है ।

४५ विश्वा वसु हस्तयो आदधानः प्रायासीत् ( ५३६ )- सब धर्मोंकी अपने दोनोंही हाथोंमें रखकर वह जाता है ।

४६ अरावी परि वाधते ( ५४० )- यह शत्रुओंकी दूर करता है ।

४७ शतस्पृहं सहस्रभर्गसं त्रिपुष्पन् विभासहं पाञ्चसत्तमं रयिं नः अभ्यर्ष ( ५४१ )- सौकों निसकी स्पृष्ट करते हैं, हजारों वस्तुधर्मों को दीपन करता है, जो तेजस्वी है, जो विशेष प्रकाशमान है, जो बल पडाता है वह बन हमें दे ।

४८ अ-यतयः नः अरयः हययः अहयतः वि चिन्त् सन्तु ( ५४५ )- दात न देनेवाले हमारे शत्रु, अरकी इच्छा करते हुए भी अन्न न मिलनेसे भूखे हो रहे ।

४९ युवतेभिः मर्यै सं अर्पति ( ५४७ )- धनैक स्थिरैके साथ एक पुरुष आनन्दते रहता है ।

५० अमीवा रक्षसा ररह अप भरतु ( ५४१ )- रोगके कोटागु रससंके साथ दूर जायें ।

५१ ह्याग्निः मा अस्वत ( ५४१ )- जो तारुणा आचरण करनेवाले ( धनते और आचरणते और ) मानवित न होयें ।

५२ राजा ह्यदस् ( ५६२ )- राजाके समान सुन्दर है ।

५३ अ-तत-तनुः तत् शामः न अदनुते ( ५६६ )- तप न करनेवाला उस सुगुण प्रपन्न नहीं कर ताता ।

५४ श्रुतासः इत् तत् समाशते ( ५६६ )- तपते तथा हुआही उस आनन्दनो पा सवता है ।

५५ घुमन्तं स्पर्षिद् घुम्प या सर ( ५६७ )- तेजस्वी ज्ञान बढ़ानेवाले बल हमें दे ।

५६ सृति न प्रभर ( ५६२ )- जोपरको जिन प्रहार वेतन देते हैं, उस प्रहार हमें धन दे ।

- ५७ धीरयन् यदा अर्घ्यः ( ५७६ )- नीर पुत्रो ( ५७८ )- सेष जगत् अत्यन्त मीठा, कर्म करनेकी पढति जाननेवाला, और अत्यधिक तेजस्वी है ।
- ५८ ऋषीणां स्वस्याणी अभि अनूषत् ( ५७७ )- ६० देवेषु पुमान् बृहद् यदा अभि दिवीति ( ५७९ )  
 ऋषीणो तात एदोवालो वाणो बहो-वेदमत्र बोले । -देवोको प्राप्ता करनेवाले तेजस्वी और महान् यदा हमें दे ।
- ५९ मधुमन्तम क्रतुवित्तम मदि पुष्टतमः मदः

### पवमानकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसङ्ख्या	ऋषिदेवतार्थ	* ऋषि	देवता	छन्द
		( ३९ )	पवमान सोम	गायत्री
४६७	९।६१।१०	अमहीपुरागिरत	"	"
४६८	९।६१।१	मधुमन्ता वंश्यामित्र	"	"
४६९	९।६५।१०	भृगुर्वाहनिर्मलनिर्वाणो वा	"	"
४७०	९।६१।१९	अमहीपुरागिरत	"	"
४७१	९।६१।१८	त्रित आत्य	"	"
४७२	९।६५।१९	कश्यपो गारीच	"	"
४७३	९।६१।१८	जमदग्निर्भागव	"	"
४७४	९।६५।१९	बृहस्पति आगस्त्य	"	"
४७५	९।६१।१९	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
४७६	९।६१।१९	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
		( ४० )	"	"
४७७	९।६१।१९	इत्यावाह आग्नेय	"	"
४७८	९।६१।१९	त्रित आत्य	"	"
४७९	९।६१।१८	अमहीपुरागिरत	"	"
४८०	९।६५।१९	भृगुर्वाहनिर्मलनिर्वाणो वा	"	"
४८१	९।६१।१९	कश्यपो गारीच	"	"
४८२	९।६१।१८	जमदग्निर्भागव	"	"
४८३	९।६१।१९	बृहस्पति आगस्त्य	"	"
४८४	९।६१।१९	अमहीपुरागिरत	"	"
४८५	९।६१।१९	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
४८६	९।६१।१९	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
		( ४१ )	"	"
४८७	९।६१।१९	अमहीपुरागिरतः	"	"
४८८	९।६१।१९	बृहस्पतिर्गिरतः	"	"
४८९	९।६१।१९	जमदग्निर्भागव	"	"



मंत्रसंख्या	श्रव्यदेशानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
४९०	३३३१	प्रभुवत्पुत्रगिरतः	पद्मभानुः सोम	गायत्री
४९१	२१४११	मेघातिथिः काण्वः	॥	॥
४९२	३३३१२४	निष्पुत्रिः काश्यपः	॥	॥
४९३	३३३३३	निष्पुत्रिः काश्यपः	॥	॥
४९४	३३३३३३	अमहीयुरागिरतः	॥	॥
४९५	३३३३३३	अमहीयुरागिरतः	॥	॥
४९६	३३३३३३	उच्चय आगिरतः	॥	॥

( ४९ )

४९७	३३३३३	मेघातिथिः काण्वः	॥	॥
४९८	३३३३३३८	भुवुर्वादिनिर्ममदनिर्ममो वा	॥	॥
४९९	३३३३३३	उच्चय आगिरतः	॥	॥
५००	३३३३३३	अमहीयुरागिरतः	॥	॥
५०१	३३३३३३	निष्पुत्रिः काश्यपः	॥	॥
५०२	३३३३३३	अतिः काश्यपो देवलो वा	॥	॥
५०३	३३३३३३३	भुवुर्वादिनिर्ममदनिर्ममो वा	॥	॥
५०४	३३३३३३३	कश्यपो भारीचः	॥	॥
५०५	३३३३३३३	कश्यपो भारीचः	॥	॥
५०६	३३३३३३३	अतिः काश्यपो देवलो वा	॥	॥
५०७	३३३३३३३	कश्यपो भारीचः	॥	॥
५०८	३३३३३३३०	अमहीयुरागिरतः	॥	॥
५०९	३३३३३३३३	अमहीयुरागिरतः	॥	॥
५१०	३३३३३३३३	अमहीयुरागिरतः	॥	॥

( ५० )

५११	३३३३३३३३	सप्तमं [ १ अरुद्रागो बह्वृत्पुत्रः; २ कश्यपो भारीचः; ३ शीतलो रघुवर्णः; ४ अग्निर्भोजः; ५ विष्णुमित्रो गायिनिः; ६ अमहीयुरागिरतः; ७ अतिष्ठो मंत्रावर्णः ]	॥	बृहती
५१२	३३३३३३३३	सप्तमं	॥	॥
५१३	३३३३३३३३०	सप्तमं	॥	॥
५१४	३३३३३३३३३	सप्तमं	॥	॥
५१५	३३३३३३३३३८	सप्तमं	॥	॥
५१६	३३३३३३३३३३	सप्तमं	॥	॥
५१७	३३३३३३३३३३	सप्तमं	॥	॥
५१८	३३३३३३३३३३३	सप्तमं	॥	॥
५१९	३३३३३३३३३३३	सप्तमं	॥	॥
५२०	३३३३३३३३३३३	सप्तमं	॥	॥
५२१	३३३३३३३३३३३	सप्तमं	॥	॥
५२२	३३३३३३३३३३३	सप्तमं	॥	॥

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदसंख्या	ऋविः	देवता	छन्दः
		( ४४ )		
५३३	९।८७।१	उपमना काव्यः	पवमान. सोमः	बृहती
५३४	९।९७।७	बृषणनो वासिष्ठिः	"	"
५३५	९।९७।३४	परामारः शाक्यः	"	"
५३६	९।९७।१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
५३७	९।९७।१	प्रतर्वनो वैश्वरातिः	"	"
५३८	९।९७।१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
५३९	९।९७।४०	परामारः शाक्यः	"	"
५४०	९।९७।१	प्रत्यक्षः काव्यः	"	त्रिष्टुप्
५४१	९।८७।४	उपमना काव्यः	"	"
५४२	९।९७।१३	प्रतर्वनो वैश्वरातिः	"	"
		( ४५ )		
५४३	९।९७।१	प्रतर्वनो वैश्वरातिः	"	"
५४४	९।९७।३१	परामारः शाक्यः	"	"
५४५	९।९७।४४	इन्द्रप्रमतिर्वातिष्ठः	"	"
५४६	९।९७।१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
५४७	९।९७।१२	कर्णमुद्रासिष्ठः	"	"
५४८	९।९७।१	मौषा पीतम.	"	"
५४९	९।९७।१	काव्यो धीरः	"	"
५४०	९।९७।१०	वायुर्वातिष्ठः	"	"
५४१	९।९७।५१	कुत्स आगिरसः	"	"
५४२	९।९७।४१	परामारः शाक्यः	"	"
५४३	९।९७।१	काव्यो वारीवः	"	"
५४४	९।९७।३	प्रत्यक्षः काव्यः	"	"
		( ४६ )		
५४५	९।१०१।१	अग्नीमः इमावसिष्ठि	"	मनुष्टुप्
५४६	९।१०१।८	मृग्यो यानव	"	"
५४७	९।१०१।४	वसतिर्वातिष्ठः	"	"
५४८	९।१०१।१०	मनु सावरण	"	"
५४९	९।१०१।१	मन्वीरीयो वायुगिरः ऋनिष्वा भारद्वाजस्य	"	"
५५०	९।१००।१	रेवत्यू काव्यो	"	बृहती
५५१	९।१०१।१	रेवत्यू काव्यो	"	मनुष्टुप्
५५२	९।१०१।७	अम्बरीषो वायुगिरः ऋनिष्वा भारद्वाजस्य	"	"
५५३	९।१०१।१३	प्रमत्तिर्वायुमित्रो वाक्यो वा	"	"
		( ४७ )		
५५४	९।७५।१	कविर्मागव	"	जगती
५५५	९।७५।१	कविर्मागव.	"	"

( १८८ )

## सामवेदका सुयोध अनुवाद

[ पायमान काण्डम् ]

सप्तसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषिः	देवता	छन्दः
			पयमान सोम	जगती
५५६	९१७७।१	कविर्मर्गव		
५५७	९१८६।१६	सिकता निवायरी	"	"
५५८	९१७६।१	कविर्मर्गव	"	"
५५९	९१८६।१७	सिकता निवायरी	"	"
५६०	९१७०।१	रेणुर्वेदवामित्र	"	"
५६१	९१८५।१	मेनोभार्गव	"	"
५६२	९१८२।१	वसुभाण्डाजः	"	"
५६३	९१६८।१	वत्सप्रिभस्तिव.	"	"
५६४	९१८६।४३	गुत्समद. मौनक.	"	"
५६५	९१८३।१	बजिब आगिरसः	"	"
( ४८ )				
५६६	९११०६।१	अग्निश्वाशुवः	"	उष्णिक्
५६७	९११०६।४	वधुमानव	"	"
५६८	९११०४।१	पर्वतनारदी काण्वी	"	"
५६९	९११०५।१	पर्वतनारदी काण्वी	"	"
५७०	९११०२।१	वित आप्यः	"	"
५७१	९११०६।७	मनुराप्तकः	"	"
५७२	९११०६।१०	मग्निश्वाशुवः	"	"
५७३	९११०३।१	वित आप्यः	"	"
५७४	९११०५।३	पर्वतनारदी काण्वी	"	"
५७५	९११०५।४	पर्वतनारदी काण्वी	"	"
५७६	९११०६।१३	अग्निश्वाशुवः	"	"
५७७	९११०६।३	वित आप्यः	"	"
( ४९ )				
५७८	९११०८।१	गौरवीतिः शक्त्वः	"	ककुप्
५७९	९११०८।१	कर्षसद्या आगिरसः	"	"
५८०	९११०८।७	ऋजिश्वा भारद्वाजः	"	"
५८१	९११०८।११	कृतपशा आगिरसः	"	"
५८२	९११०८।१३	ऋजंचयो राजर्षिः	"	यवमन्वा पायत्री
५८३	९११०८।३	शस्तिर्वीतिष्ठः	"	ककुप्
५८४	९११०८।५	ऊररागिरसः	"	"
५८५	९११०८।६	ऋजिश्वा भारद्वाजः	"	"

## अथ अक्षरार्थं काण्डम् ।

अथ पष्ठोऽध्यायः ।

[ १ ]

( १-९ ) १ शंसुर्वाहंसवत्यः ( भरद्वाजः ) ; २ वसिष्ठो यन्नावर्णिः ; ३, ६ वामदेवो गौतमः ; ४ शुनः सोम आनीतगतिः  
कुत्रितो देवरातो वंसवर्णिनो वा ; ५ कुल आगिरतः ( पुस्तकः ) ; ७, ८ अमहीपुत्रागिरतः ; ९ आत्मा ॥  
इन्द्रः ; ४ वरुणः ; ५, ७, ८ यममानः सोमः ; ६ विजिजे देवाः ; ९ अग्रम् ॥ गृहवी ; २, ४, ५, ९ मिष्ट्युः  
३, ७-८ गायत्री ; ६ एकपात्रागती ॥

५८६ इन्द्रं ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुति भवः ।

यदिष्टुसेम वज्रहस्त रोदसी उमे सुशिप्र यमाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४६।९ )

५८७ इन्द्रो राजा जगतश्चरणीनामविश्रमा विश्वरूपं यदस्य ।

ततो ददाति दाशुषे वसुनि चोदद्राष उपस्तुतं विदवाक् ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२७।३ )

५८८ यस्य दमा राजाद्युजस्तुजे जने वनस्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥ ( अथर्व. ६।२३।१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ५८६ ] हे ( यज-हस्त ) हाथमें वज्र धारण करनेवाले तथा ( सु-शिप्र ) सुन्दर ओरीवाले इन्द्र ! ( ज्येष्ठं ओजिष्ठं ) श्रेष्ठ और बल बढ़ानेवाले ( पुपुति भवः ) इच्छा पूर्ण करनेवाले अग्र ( नः आभर ) हमें भरपूर दे । ( यत् ) जो अन्न हम ( दिष्टुसेम ) पातमें रखनेकी इच्छा करते हैं, और जो ( उमे रोदसी ) धूलोक और पुष्पोत्तोक दोनोंको हो ( या यमाः ) पूर्ण करते हैं, उसे हमें दे ॥ १ ॥

१ ज्येष्ठं ओजिष्ठं पुपुति भवः नः आभर— सबके उत्तम और सामर्थ्य बढ़ानेवाले तथा इच्छा पूरी करने-वाले अग्र हमें भरपूर दे ।

२ यत् दिष्टुसेम— जिसको हम अपने पास रखनेकी इच्छा करते हैं, उसे हमें दे ।

[ ५८७ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( जगतः चरणीनां राजा ) सत्त्वनेवाले यदुर्ध्व और मनुष्योक्ता राजा है, उसी प्रकार ( यमि क्षमा ) इस पुन्वीपर ( विदवरूपं यत् ) अनेक रूपोंवाले जो कुल है ( अस्य ) इन सबका वही राजा है । ( ततः दाशुषे वसुनि ददाति ) इसलिए दानशीलको वह धन देता है, उसी प्रकार ( उप-स्तुतं ) पताते उत्तम स्तुति करनेवालेको ( राधः ) धन ( अर्माक् चोदत् ) लाकर देता है ॥ २ ॥

१ इन्द्रः जगतः चरणीनां, मविश्रमा विदवरूपं यत् अस्य राजा— इन्द्र इस स्थावर जगम, मनुष्य और इस पुन्वीपर अनेक रूपोंवाले जितने पदार्थ हैं, उन सबका अकेला ही राजा है ।

२ दाशुषे वसुनि ददाति— दानशीलको वह धन देता है ।

३ उपस्तुतं अर्माक् राधः चोदत्— उत्तम स्तुति करनेवालेके पास ऋतु धन भेजता है ।

[ ५८८ ] ( यस्य रजो युजाः ) जिस अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रका ( इदं ) यह धन ( स्वः तुजे जने वने ) स्वर्गमें और बल देनेवाले नवीनं प्रशस्नीय है, इसलिए ( इन्द्रस्य बृहत् रन्त्यं ) इन्द्रके धन महान् और रमणीय है ॥ ३ ॥

२५ ( साम. हिन्दी )

- ५८९ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००</sup> लुप्तमं वरुणं पाशमसादवाधमं वि मध्यमं अथाय ।  
 अथादित्यं व्रते वयं तवानागता अदितये स्वाय ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२४।१५ )  
 ५९० त्वया वयं पयमानेन सोम भरे कृते वि चिनुयाम अश्वत् ।  
 तत्रा मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उव द्यौः ॥ ५ ॥  
 ५९१ इमं वृषणं कृणुतेकमिन्माम् ॥ ६ ॥  
 ५९२ स न इन्द्राय यज्यसे वरुणाय मरुद्भ्यः वरिवोविस्परिस्व ॥ ७ ॥  
 ( ऋ. १।६।११; वा. प. २६।२५ )  
 ५९३ एना विश्वाययं आ धुमानि मानुषाणाम् । सिंवासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥  
 ( ऋ. ७९।६।११; वा. प. २९।१५ )

[ ५८९ ] हे ( वरुण ) उत्तम देव ! ( उत्तमं पाशं 'अस्वत् उव अथाय' उत्तम वृषणोंको हमने बूट कर, ( अधमं पाशं अवधधाय ) अधम पाश त्रिपल कर बोर ( मध्यमं पाशं विश्वायय ) मध्यम पाशको ढोला कर, ( अध ) इतके बाध हे ( आदित्य ) जबितिके पुत्र वरुण ! ( तय व्रते ) तेरे कर्षणं ( वयं ) हम ( अ-दितये ) हमारा नाश न हो इसलिये ( अनागताः स्वाय ) पावरहित होकर रहें ॥ ४ ॥

१ वरुणः— उत्तम देव, खेष्ट ईश्वर ।

२ उत्तम, मध्यम और अधम पाश-मुद्रि, मल और इमिध्रोंके बंधन, इनके कारण होनेवाले विघ्न बूट कर ( अय-अथाय, उच्छ्रथाय, विश्वायय ) होते कर ।

३ अदितिः— अपराधीनता, स्वतंत्रता, अविनाश ।

४ अदितये अनागताः स्वाय— मुक्त होनेके लिए त्रिपल होम ।

५ तय व्रते— तेरे नियमके अनुसार मैं रहूँ, तेरे नियमोंका पालन कर ।

[ ५९० ] हे ( सोम ) तोम ! ( पयमानेन त्वया ) गुड़ होनेवाले तेरी सहायतासे ( भरे ) सदायमं ( दास्यत् कृते ) हमारा किए जानेवाले कर्तव्य ( वयं वि चिनुयाम ) हम विशेष सावधानीसे करें, ( तत् ) इसलिये वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी ( उव द्यौः ) और ध्रुवोक्त ये ( मा महन्तां ) मुझे मल प्रदान करें ॥ ५ ॥

१ भरे शश्वत् इतं वयं चिनुयाम— युद्धमें किए जानेवाले कमोंको हम सावधानीसे करें ।

२ तत् मा महन्तां— उत्तमी सहायतासे मुझे बल प्राप्त होये ।

[ ५९१ ] हे देवो ! ( वरुण इमं ) इस वृकको ( वृषणं कृणुत ) तुम बलवान् करो, उषी प्रकार ( मां ) मुझे भी अपने कार्यमें सफल करो ॥ ६ ॥

[ ५९२ ] हे सोम ! ( सः यरिवो विस् ) धमको अपने पास रखनेवाला वह वृ ( नः यज्यसे इन्द्राय ) हमारे द्वारा जितके लिए यज्ञ किशा जाता है, उस वृषय इन्द्रके लिए ( वरुणाय मरुद्भ्यः ) वरुण और मरुतोंके लिए ( परिस्वय ) उत्तम प्रकारसे छानता जा ॥ ७ ॥

[ ५९३ ] ( एना ) इस सोमकी सहायतासे ( मानुषाणां ) मनुष्योंके ( विश्वाणि धुमानि ) सब जगोंके ( अयः ) पात काकर ( सिंवासन्तो ) उत्तके उपशोषकी इच्छा करनेवाले हम ( वनामहे ) उस जगत्को प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

५९४ अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्व देवभ्या अमृतस्य नाम ।

यो मा ददाति स इदेवमावदहमस्मभक्तमदन्तमग्नि

॥ ९ ॥

इति प्रथमा वज्रति ॥ १ ॥ प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

( १-७ ) ऋतस्य आगिरसः १ पवित्र आगिरसः २, ४ यमुष्मन्वा वंशवामिनः, ५ प्रचो वातिष्ठ, ६ गृत्तमहा शानका, ७ नृमेयपुत्रमेधावागिरसो ॥ इन्द्रः, २ पवमान सोम, ५ विजये देवाः, ६ आयु ॥ माययो, जगती, ५ निष्पद्यु, ७ जनुष्यु ॥

५९५ स्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुद्रस्ययः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।११।१ )

५९६ अरुरुचदुपसः पृथिराग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।

मायायिनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८१।१ )

[ ५९४ ] ( देवेभ्यः पूर्वे ) देवैति पहले ( अहं ) मैं अन्नरूपी देवता ( अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा अस्मि नाम ) विनाशरहित यत्नमें प्रथम उत्पन्न हुआ हूँ । ( यः मां ददाति ) जो मुझे दानमें देता है ( सः इत् पर्व आचरत् ) ॥ विश्वपुत्रके इस शानके समीप राख कराना है । ( अग्रं अदत्तं ) अन्नको स्वयं पानेवाले लोगों मनुष्यों ( अहं अन्नं अग्नि ) मैं अन्न देवता ही सा जाता हूँ ॥ ९ ॥

१ देवेभ्यः पूर्वं अहं अन्न — तब देवैति पहले उत्पन्न हुए आचरत्यक यह अन्न उत्पन्न हुआ । प्रागिवोरे उत्पन्न होनेके पहले ही उनका पोषण करनेवाला अन्न उत्पन्न हुआ ।

२ अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा अस्मि — अन्नरूपी देवता पहले ही यह अन्न उत्पन्न हुआ । उस अन्नके उत्पन्न होनेके बाद वह किया गया ।

३ यः मां ददाति स आचरत् — जो अन्नका दान करता है, वह इस दानसे सत्यका संरक्षण करता है ।

४ अग्रं अदत्तं अहं अन्न अग्नि — अन्नका दान न करते हुए जो स्वयं ही अन्नको खाता है, उस कर्वाएँ मनुष्यों वह अन्न देवता ही सा जाता है, नष्ट कर देता है ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ५९५ ] हे इन्द्र ! ( कृष्णासु ) काली ( रोहिणीषु ) लाल ( परुष्णीषु ) और अनेक रागीशाली मायोंमें ( कृष्णत् पतत् पयः ) तेजस्वी सफेद दूधका रूप ( त्व अधारयः ) तुने रखा है, यह तेरा अद्भुत सामर्थ्य है ॥ १ ॥

[ ५९६ ] ( उपसः पृथिः ) जबसे सम्बन्ध रखनेवाला भूय ( अग्रियः ) यहाँ मुख्य है । वही ( अरुरुचत् ) धमकता है । ( उक्षा ) धरतल निरानेवाला मेघ आकाशमें ( मिमेति ) गडगडहटका शब्द करता है । ( भुवनेषु वाजयुः ) प्राणियोंमें अन्नको इच्छा उत्पन्न करके ( मायायिनः ) कर्मोंमें कुशलता दिखानेवाले देवोंने ( अस्य मायया ममिरे ) इस अपनी कुशलतासे जगत्का निर्माण किया । ( नृचक्षसः पितरः ) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले पितरोंने माताके पेटमें ( गर्भं आदधुः ) गर्भ स्थापित किया । इस प्रकार सृष्टि उत्पन्न हुई ॥ २ ॥

१ उपसः पृथिः अग्रियः अरुरुचत् — जब कामके बाद उदय होनेवाला भूय इस स्थानपर मुख्य है और यह उदय होनेके बाद प्रकाशित होने लगता है ।

२ उक्षा मिमेति — जलमें बुझके धीमेधनेवाला मेघ आकाशमें घबड़ा करता है ।

३ भुवनेषु वाजयुः — प्राणियोंमें अन्न पानेको इच्छा उत्पन्न होती है ।

४ मायायिनः अस्य मायया ममिरे — जो कुशल है वे अपनी कुशलतासे सृष्टिको निर्माण करते हैं ।

५ नृचक्षसः पितरः गर्भं आदधुः — जगत्के कर्मोंका निरीक्षण करनेवाले पितर माताके पेटमें गर्भ स्थापित करते हैं, जिससे सृष्टि होती है ।

५९७ इन्द्र इन्द्रोऽस्य सन्मिदल आ वचोयुजा । इन्द्रो वजी हिरण्ययः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७।१ )

५९८ इन्द्र वाजेषु नोऽय सहस्रमधनेषु च । उग्र उग्रामिहस्ताभिः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।७।४ )

५९९ प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नावानुष्टुमस्य हविषो हविर्पतु ।  
धातुधुतानात्सवितुश्च निष्णो रथन्तरमा जमारा वसिष्ठः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।७।८।१ )

६०० नियुत्वाभ्यायवा गस्य च ध्रुको अयामि ते । मन्तासि सुन्वतो युद्धम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. २।४।१२ )

६०१ यज्ञायथा अपूर्णं मघवन्ब्रह्मत्याय । तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तमा उतो दिवम् ॥ ७ ॥

( ऋ. ८।८९।१ )

इति द्वितीया ब्रह्मति ॥ २ ॥ द्वितीय खण्ड ॥ २ ॥

[ ३ ]

( १-१३ ) १, ५, ७, १० सामवेदो गीतम्, २, ३, गीतवो राहुगण, ४ मधुच्छादा वैश्वामिनि, ६ गृत्तमव गीतक  
८ भरद्वाजो वाहसव्य, ९ अग्निश्वा भारद्वाज, ११ हिरण्यस्तूप आगिरत्न, १२, १३ विश्वामिनो गाथिन ( १२ बह्म ) ॥

१ प्रजापति, २, ३ सोम, ४, ५, ८, १३ अग्नि, ६ अचानपात, ७ रात्रि, ९ विश्वेदेवा, १० लीलोचना,

११ इन्द्र, १२ आर्या अग्निर्वा । भिष्टुष, १, ७ मनुष्टुष, ४ गयवो, ८, ९ जयती, १० महापति ॥

६०२ मयि वचो अथो यज्ञोऽथो यज्ञस्य यत्पयः । परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि धामिष दहदु ॥ ११ ॥

[ ५९७ ] ( इन्द्र इन्द्र ) इन्द्र ही ( ह्यो ) हो घोड़ोंको अपन रथमें ( सचा सन्मिदल ) एक साथ जीर्नैवाला  
है । ये घोड़े ( वचो-युजा ) सकेतते ही रथमें भुङ्ग जानेवाले हैं इस प्रकार यह ( इन्द्र- वजी हिरण्यय ) इन्द्र वज्र  
धारण करनेवाला और होमेके धामुधन धारण करनेवाला है ॥ ३ ॥

[ ५९८ ] तु ( उग्र ) वीर है, इतिष्ठ ( उग्रामि ऊतिमि ) वीरतासे युक्त तरलमति ( वाजेषु ) छोटे घोड़ोंमें  
( सहस्र-मघनेषु च ) हमारे प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले बड़े बड़े यज्ञाभौमें ( न अय ) हमारा संरक्षण कर ॥ ४ ॥

१ सहस्र प्र-धन— धनुको हरागके बन्ध उसे सूटकर जगकों तरहके धन जिसमें मिलते हैं, ऐसे बड़े संप्राप्त ।

२ उग्र ऊति — वीरतासे लिए गए संरक्षण ।

[ ५९९ ] ( यस्य प्रथ च स-प्रथ च नाम ) जिसके प्रथ और सप्रथ ये नाम हैं जिनके लिए ( अनुष्टुमस्य  
हविष हवि यत् ) अनुष्टुम छन्दमें अथवा पाठकर हविका अथवा किया जाता है । उस ( धुतानात् धातु ) सजानी  
भासा, लक्षित, विष्णुके पाससे वसिष्ठने ( रथन्तर व्याजमार ) रथन्तर ताम प्राप्त किया ॥ ५ ॥

[ ६०० ] हे ( धायो ) वायुदेव ! तू ( नियुत्वात् ) नियुक्त नामक रथसे ( जा गहि ) जा । ( अय नून ) यह  
ब्रह्मरुतवाला सोमरत्न ( ते अयामि ) तब लिए सम्प्राप्त किया गया है ( सुन्वतो बृह ) तू सोम यज्ञ करनेवालेके घरको  
( मन्ता अस्ति ) जाता है ॥ ६ ॥

[ ६०१ ] हे ( अपूर्णं मघवन् ) अधुना धनवाले इन्द्र ! ( ब्रह्मत्याय ) ब्रह्मके वध करनेके लिए ( यत् जायया )  
जब तू तम्पार हुआ ( तत् पृथिवीं व्यप्रथय ) तब तूने पृथ्वीको विस्तृत किया ( उतो उ दिव्य ब्रह्मरुतना ) और  
पृथ्वीको ऊपर स्थिर किया ॥ ७ ॥

॥ यहा दुसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीय खण्ड ।

[ ६०२ ] ( परमेष्ठी प्रजापति ) श्रेष्ठ स्वामिपर रहनेवाला प्रजापतिको पालक परमेश्वर ( मयि ) मुझमें ( यच्च  
तत्र ) अयो यदा ) और यत्र ( अथो यज्ञस्य यत्पय ) और यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाला यो दूध है, उन्हें ( दिवि धां  
ह्य ) पृथ्वीमें भित प्रकाश सेज होता है । अती प्रकार ( दहदु ) बर्बाद ॥ १ ॥

६०३ सं ते पर्याप्तिं सन्तु याजाः सं वृष्णान्पमिमाविषादः ।

आप्पायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाश्स्पुत्तमानि धिष्व ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।१।८ )

६०४ त्वमिमा ओपधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनवस्त्वं गाः ।

त्वमावनोरुर्वाश्न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तर्मा नवर्थ ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।९।१।२२ )

६०५ अमिमोहे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारश्चक्षरावतम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।१ )

६०६ ते मन्वत प्रथमं नाम योनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।

ता जानतीरभ्यनूपत धा आविभुवन्नरुणीषंशसा गावः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१।१।६ )

परमेश्वर मुझे तेज, यज्ञ और दूध आदि जलके पदार्थ भरपूर देने, आकाश जिस प्रकार तेजस्वी है, उसी प्रकार मैं भी तेजस्वी होऊँ ।

[ ६०३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अमिमाति-यादः ) वायुका पराभव करनेवाले ( ते ) तेरे पास ( पर्याप्ति सं सन्तु ) दूध हो, ( याजाः सं सन्तु ) अन्न तेरे पास हों और ( वृष्णान् सं ) यज्ञतुमें प्राप्त होंगे । ( अमृताय आप्पायमानः ) अमरत्व प्राप्त करनेके लिए बहते ॥ १ ( दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ) धुलोकमें उत्तम भक्षकोंको प्राप्त कर ॥ २ ॥

१ ते पर्याप्तिं सं सन्तु— तेरे पास दूध हो, तेरे अन्दर दूध मिलाया जाए । सोपरसमें दूध मिलते हैं ।

[ ६०४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( त्वं ) तुने ( इमा विश्वाः ओपधीः अजनवः ) इन सभी जीवियोंको उत्पन्न किया, ( त्वं यमः ) तुने जल उत्पन्न किया, ( त्वं गाः ) तुने गायोंको उत्पन्न किया, ( त्वं उदः अन्तरिक्षं आ तनोः ) तुने ही विस्तृत अन्तरिक्षको फैलाया ( त्वं तमः ज्योतिषा वि नवर्थ ) तुने अन्धकारका तेजसे नाश किया ॥ ३ ॥

[ ६०५ ] ( पुरो-हितं ) आगे रहनेवाले ( यज्ञस्य देवं ) यज्ञके प्रकाशक ( मृत्विजं ) ऋतुओंके अनुसार हुवन करनेवाले ( होतारं ) देवीकी भुलाकर लानेवाले ( चक्षर-धातमं ) रत्नोंकी धारण करनेवाले ( अग्निं देवे ) अग्निही मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

यज्ञमें अग्निका सामने स्थापन किया जाता है, उसमें हुवन किया जाता है । ऋतुओंके अनुसार पशु होता है, यह सब देवीको बुझकर लगता है, यज्ञकोंके बरतारपर बरतार करनेके लिए यह रत्नोंको देता है, देवे अग्नि देवकी हम स्तुति करते हैं ।

[ ६०६ ] ( ते ) उन ऋषिर्वाँने ( योनां नाम ) वाणिके धान ( प्रथमं अमन्वत ) स्तुति करनेके योग्य है, यह प्रथम समता, फिर ( त्रि सप्त परमं नाम जानन् ) तीन घुना सप्त वर्गत् २१ छन्दोंमें स्तोत्र होते हैं, यह जाना इसके बाद उन्होंने सावनीते ( ता जानतीः सा अभ्यनूपत ) उस वाणीसे जगकी स्तुति की, उस ( यज्ञसा ) तेजसे ( अरुणीः गावः आविभुवन् ) अरुण रंगकी गायें-किरणें-प्रगट हुई ॥ ५ ॥

१ ऋषिर्वाँने आगके प्रथम स्तुतिके योग्य है, यह प्रथम समता ।

२ उसके बाद २१ छन्दोंमें स्तोत्र हो सकते हैं, यह जाना ।

३ उससे उस वेदके स्तोत्र बनाये और उनका गान किया ।

४ तब सूर्यकी किरणें बाहर निकलीं, सूर्यका उदय हुआ ।



- ६०७ समन्था यन्त्पुपयन्त्यन्याः समानमुर्वे नद्यस्पृणन्ति ।  
तमु शुचिः शुचयो दीदिवाऽसमपाजपातमुप यन्त्यापः ॥ ६ ॥ ( अ. २।३।१३ )
- ६०८ आ रागाद्भद्रा युवतिरङ्गाः केतुसमोत्सति ।  
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥
- ६०९ प्रक्षस्य वृष्णो अरुणस्य नू महः प्र नो वचो विदया जातवेदसे ।  
वैश्वानराय मतिनेव्यसे शुचिः सोम इव पवते चाक्षरप्रथे ॥ ८ ॥ ( अ. ६।८।१ )
- ६१० विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञस्य रोदसी अपा नपाद्य मन्म ।  
मा वो वचाऽसि परिचक्ष्पाणि वोचः सुमेध्विद्वा अन्तमा मुदेम ॥ ९ ॥ ( अ. ६।९।१४ )
- ६११ यज्ञो मा द्यावापृथिवी यज्ञो मेन्द्रसृहस्पती । यज्ञो भगस्य विदन्तु यज्ञो मा प्रतिमुच्यताम् ।  
यज्ञसाक्षस्याः सत्सदाऽहं प्रवदिता स्याम् । ॥ १० ॥

[ ६०७ ] ( अर्थाः संयन्ति ) दूसरे वर्षके जल मिल जाते हैं, ( अर्थाः उपयन्ति ) दूसरे पानी भी इसमें मिलाये जाते हैं, वे सब पानी ( समाने जायः ) एक साथ मिलकर नदीके रूपसे ( उर्वे घृणन्ति ) बाङ्गबाल-सागरकी अग्नि-की आलम्बित करते हैं, ( तं उ शुचिं दीदिवांसं अपा नपाते ) उस शुद्ध तेजस्वी जलके पीपकपी मग्निके पास ( अपाः उपयन्ति ) सब जलप्रवाह पड़ते हैं ॥ ६ ॥

१ अपा न-पातः— जलोंको नीचे न गिरने देनेवाला मेघ, ( अपा नपातः ) जलोंका पीप-अग्नि ।

२ सब पानी मिलकर नदीके रूपमें सागरमें मिल जाते हैं, उसी प्रकार सोमरसमें पानी मिलाया जाता है, दोनों ही तरहके पानी सोमरसमें मिलाये जाते हैं ।

[ ६०८ ] ( भद्रा मुपतिः ) कल्याण करनेवाली स्त्री ( भगता ) रात्री आपर्द है, ( अङ्गः केतुः ) बिलाली शिरगोला ( सं ईरसति ) वह प्रतिबन्ध करनेकी इच्छा करती है, ( विश्वस्य जगतः निवेशनी ) सब जगत्को विश्राम देनेवाली यह ( रात्री भद्रा अभूत् ) रात्री कल्याण करनेवाली है ॥ ७ ॥

[ ६०९ ] ( प्रक्षस्य वृष्णः ) व्यासक, बलवान् ( अरुणस्य ) और तेजस्वी अग्निके ( महः ) तेजकी से ( नू ) स्तुति करता है, वे ( नः वचः ) हमारे स्तोत्र ( यिन्त्या ) यज्ञमें ( जातवेदसे ) अग्निके लिए ( प्र ) बोले जाते हैं, ( नव्यसे वैश्वानराय अग्रथे ) नवीन, सब यन्त्रियोंका हितकरनेवाले अग्निके पास वे ( शुचिः चाद्यः मतिः ) शुद्ध शुद्ध स्तोत्र ( सोमः इव पवते ) सोमके समान जाते हैं ॥ ८ ॥

[ ६१० ] ( भद्रा देवाः ) सब देव ( मम यज्ञं मन्म ) मेरे गुण स्तोत्र ( शृण्वन्तु ) सुनें, ( उमे रोदसी ) रौतों गुल्लक और पुष्पोल्लक ( अपा नपात् ) और अग्नि मेरे स्तोत्र सुनें, हे ( देवाः ) देवों । ( यः परिचक्ष्पाणि ) सुहारे द्वारा न सुनने योग्य ( यचांसि मा वोचं ) स्तोत्रोंकी मैं न बोझू । इतोलिए ( यः अन्तमाः सुमेधु इत् मुदेम ) सुहारे पास जाकर सुहारे द्वारा दिए गए गुणोंमें आलम्बित होऊँ ॥ ९ ॥

[ ६११ ] ( द्यावा-पृथिवी ) गुल्लक और पुष्पोल्लक ( यज्ञः मम ) यज्ञ मुझे प्राप्त हों, ( इन्द्रासृहस्पती मा ताः ) इन्द्र और बृहस्पति भी मुझे यज्ञ मिले ( भगस्य यज्ञाः मा यिन्तु ) भग देवराय मुझे प्राप्त हों, मुझे यज्ञः ( यः मा मति मुच्यताम् ) जोइन्द्र और बृह न आए, ( अस्याः सत्सदा यज्ञासा ) हम सततसे यज्ञसे भी पूर होऊँ ( अहं प्रवदिता स्यां ) मैं सधामें जायज करनेवाला बनूँ ॥ १० ॥

६१२ इन्द्रस्य तु वीर्याणि प्रबोचं यानि चकार प्रथमानि बज्रो ।

अहन्नहिमन्वपस्ततद् ॥ वक्ष्णा अभिनृत्यतानासु ॥ ११ ॥ ( ऋ १।२।१ )

६१३ अधिरसि अन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।

त्रिधातुरको रजसो विमानोजसं ज्योतिर्विरसि सर्वम् ॥ १२ ॥ ( ऋ १।२।१० )

६१४ पात्यमिर्विपो अग्रं पदं वो पाति यद्वधरणं सूर्यस ।

पाति नाभां समशीर्षणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्यः ॥ १३ ॥ ( ऋ. १।१।१९ )

इति सुशोभा वसति ॥ ३ ॥ सुशोभं सप्त ॥ ३ ॥

[ ४ ]

( १-१२ ) कामदेवी पीतम ३-७ नारायणः ॥ १-२ अग्निः, ३-७ पुरुषः, ८ शावाण्विषी, ९-११ इन्द्रः, १२ वायुः ॥ अनुष्टुप्, १-२ पङ्क्तिः, ८, ११, १२ त्रिष्टुप् ॥

६१५ आजन्त्यग्रे समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्पन्तरासनि ।

स त्वं नो अग्रे पयसा वसुविद्राविं वचो दशोऽदाः ॥ १ ॥

[ ६१२ ] ( वज्रो ) वज्र धारण करनेवाले इन्द्रने ( यानि प्रथमानि ) जित मुख्य ( वीर्याणि चकार ) पराक्रमके कार्य किया, उस ( इन्द्रस्य ) इन्द्रके उन पराक्रमके कार्योंका ( तु प्रयोच ) मैं वर्णन करता हूँ, ( अहिं अहन् ) अहि मेवोंको उसने मारा, ( अनु अणः ततद् ) उसके बाद उसने अपनी बह्व्य, और ( पर्यवर्तानां वक्ष्णा प्र अभिनृत्य ) परवर्तपरकी महियोंकी बहने योग्य बनाया ॥ ११ ॥

[ ६१३ ] ( जन्मना अग्निः अस्मि ) मैं जन्मले ही अग्नि हूँ, मैं ( जात-वेदाः ) सबको जाननेवाला हूँ ( मे चक्षुः घृतं ) मेरी आलें प्रकाशके साग्न्य की हैं, ( अमृतं मे आसन् ) अमरत्व मेरे मुक्तमें है, ( त्रिधातु अरुः ) प्राण, अपान और स्थान इन तीनोंमें रहनेवाला प्राण मैं हूँ ( रजसः विमानः ) अन्तरिक्षको भाषनेवाला वायु मैं हूँ, ( अ-जको ज्योतिः ) हमेशा तेजसे युक्त रहनेवाला सूर्य मैं हूँ ( सर्वं हविः अस्मि ) सभी प्रत्यरका हवि मैं ॥ १२ ॥

मैं जन्मले ही अग्नि-तेजस्वरूप हूँ, मैं सर्वज्ञ हूँ, घृतके हवनसे जो प्रकाश होता है, उसको देखनेपाला मैं हूँ । अमरत्व देनेवाली वाणी मेरे मुक्तमें है, मैं प्राण हूँ, वायु मैं हूँ, सूर्य मैं हूँ, हवि भी मेरा ही रूप है ।

अनिका अर्पं है अग्नी, शरीरमें अग्नी जात्वा है, और वही शान स्वरूप है, सभीमें वही है ।

[ ६१४ ] ( अग्निः ) यह अग्नि ( येः विपः ) गति करनेवाली भूमिके ( अग्रं पदं पाति ) मुख्य स्थानका रक्षण करती है । ( यक्षः सूर्यस्य चरत्स पाति ) अह्मन् अग्नि सूर्यके अग्नेके सार्वभौम रक्षण करती है ( नाभा ) अन्तरिक्षमें ( सप्त दीर्घाणां ) सात गणोंमें रहनेवाले मन्त्रोंका ( पाति ) रक्षण करती है, ( नृप्यः अग्निः ) सर्वनीय यह अग्नि ( देवानां उपमादं पाति ) देवोंको मानन देनेवाले यज्ञका रक्षण करती है ॥ १३ ॥

अग्नि, भूमि, अन्तरिक्ष और धूलोक्ता सरक्षण करती है । भूमि पर अग्नि रूपसे, अन्तरिक्षमें विद्रुत रूपसे और धूलोक्तामें सूर्यरूपसे यह अग्नि रहती है । मयन् वायु है, वह विद्रुत अग्नि है, और पयस्य अग्नि जो होती है वह हवनके द्वारा सब देवोंका सरक्षण करती है ।

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ६१५ ] ( समिधान अग्रे ) हे प्रबोच हूँ अग्नि देव । तेरे ( आजन्त्यो आसनि ) जन्मको मुझमें तेरी ( जिह्वा ) जीम ब्याला ( चरति ) हविष्का भक्षण करती है, हे ( अग्रे वसुविद्रां ) धनयुक्त जाने । ( सः त्वं ) वह तू ( नः ) हमें ( पयसा ) हृष्ययी अग्रेसे युक्त ( अयिं ) धन और ( दशो अर्थः ) वर्धनीय देन ( अदाः ) दे ॥ १

६१६ वसन्त इन्नु रन्त्योऽग्नीष्म इन्नु रन्त्यः ।

वषोण्यु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः

॥ २ ॥

६१७ सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिः सवेतो वृत्वात्यतिष्ठद्वाङ्मुखम्

॥ ३ ॥ ( ऋ १०९०१ )

६१८ त्रिपादस्य उदैत्युरुषः पादोऽस्येहामवत्पुनः ।

सथा विष्वह् व्यक्रामदशनानवनं अग्नि

॥ ४ ॥ ( ऋ १०९०४ )

६१९ पुरुष एवेदः सव यजूते यव भाव्यम् ।

पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि

॥ ५ ॥ ( ऋ १०९०१२ )

६२० तावानस्य महिमा ततो ज्यायाऽथ पुरुषः ।

उतामृतस्त्वस्पर्धानौ यदभेनातिरोहति

॥ ६ ॥ ( ऋ १०९०१३ )

६२१ ततो विशडजायत विराजो अग्नि पुरुषः ।

स जातो अत्यविरुध्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः

॥ ७ ॥ ( ऋ १०९०१९ )

[ ६१६ ] ( वसन्तः इत् नु रन्त्यः ) वसन्तः ऋतु निष्पत्यते रमणीय है, ( अग्नीष्मः इत् नु रन्त्यः ) अग्नीष्मः ऋतु भी रमणीय है, ( वषोण्यि शरदः हेमन्तः शिशिरः ) वर्षा, शरदः, हेमन्त और शिशिर ये ऋतुओं में ( इत् नु रन्त्यः ) रमणीय है ॥ २ ॥

[ ६१७ ] ( सहस्रशीर्षाः ) हजारों शिरवाला, ( सहस्र-अक्षः ) हजारों आंखोंवाला और ( सहस्रपात् ) हजारों पैरवाला एक पुरुष है, ( सः भूमिं सवेतो पृथ्वा ) वह भूमिसे सब ओरसे घेर कर ( द्वाङ्मुखं अत्यतिष्ठत् ) सब इतिष्ठति ओगने योग्य इस जगत्की घेरकर भी योग्य बना हुआ है ॥ ३ ॥

[ ६१८ ] ( त्रिपाद पुरुषः ) तीन भागोंवाला वह पुरुष ( ऊर्ध्वं उदैत् ) ऊपर स्थानपर रहता है, ( अस्य पादः पुनः इह अवयत् ) इसका चौथा भाग इस क्षतारसे फिर फिर प्रकट होता है, ( साशन-भनशने अग्नि ) अन्न जलनेवाले और अन्न में जलनेवाले के चारों ओर ( सथा विष्वह् व्यक्रामत् ) विभिन्न रूपोंवाला वह व्याप्त है ॥ ४ ॥

[ ६१९ ] ( यत् सूर्यं ) जो उत्पन्न हुआ ( यत् स भव्यं ) और जो उत्पन्न होनेवाला है, ( इदं सर्वं पुरुषः पथः ) माा तब पुरुष ही है, ( अस्य पादः सर्वा भूतानि ) इसका चौथा भाग ये सब प्राणी हैं, और ( अस्य त्रिपाद् दिवि अमृतं ) इसके तीन भाग सुखोक्तों में भरते हैं ॥ ५ ॥

[ ६२० ] ( अस्य तावान् महिमा ) इस पुरुषकी ऐसी महिमा है, बातबर्मे वह ( पुरुषः ) पुरुष ( ततः ज्यायान् च ) उसकी अपेक्षा भी बड़ा है, ( उता अमृतस्त्वस्पर्धानः ) और वह अमरवाला स्वामी है, ( यत् अग्नेः अति रोहति ) जो अग्निसे बढते हैं, जबकी भी वह स्वाधी है ॥ ६ ॥

[ ६२१ ] ( ततः विषाद् अजायत ) उस पुरुषसे विषाद् पुरुष हुआ, ( विराजो अग्नि पुरुषः ) उस विषाद् पुरुषका विरोधन करनेवाला एक पुरुष है, ( स जातो ) वह उत्पन्न होते ही ( अति अविध्यतः ) सबसे भेद्य हुआ, उसने सबसे पहले ( भूमिं ) भूमि उत्पन्न की और ( अथो पश्चात् पुरः ) अथर्वे शरीर उत्पन्न किया ॥ ७ ॥

६२२ मन्वे वां यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथयाममितमभि योजनम् ।

यावापृथिवी भवतः स्योने ते नो भुञ्जतमहसः

॥ ८ ॥ (अथर्व. ४।२६।१)

६२३ हरी त इन्द्र दमधून्मृतां वे हरितो हरी । वे त्वा स्तुवन्ति कनयः पुरुषास्तो वनर्गनः ॥९॥

६२४ यद्वचो हिरण्यस्य यद्वा वचो गवाधुत । सत्यस्य व्रक्षणां वचस्तेन मा सत्सुजासि ॥१०॥

६२५ सहस्रतश्च इन्द्र दद्वयोश्च ईशे सस्य महतो विरिषिन् ।

मृतुं न नृम्यस्यविरे च वाज वृत्रेषु शत्रुन्तसहना कधी नः

॥ ११ ॥

६२६ सहस्रमाः सहस्रता उदेत विश्वा रूपाणि विश्वतीद्वर्षणीः ।

उरुः पृथुरथ वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त

॥ १२ ॥

इति ऋग्वेदोक्तम् ॥ ४ ॥ ऋग्वेदः अथ ॥ ४ ॥

[ ६२२ ] हे ( यावा-पृथिवी ) मूलोक और पृथ्वी लोक ! ( या सु-भोजसौ ) तुम उत्तम भोजन देनेवाले हो, इस प्रकार ( मन्वे ) मैं मानता हूँ ( ये ) जो मैं दोनों लोक हूँ, वे ( अमितं योजनं ) अपरिमित भन भादि ( अभि अप्रथेयां ) हर्ष देने, हे ( यावा-पृथिवी ) हे मूलोक और पृथ्वी लोक ! तुम ( स्योने भवत ) हमारे लिए बुद्धिवादी होवो, ( ते नः अहसां मुञ्चते ) मैं हर्ष पावते छुड़ावें ॥ ८ ॥

[ ६२३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते दमधूनि हरी ) तेरी भूछे हरे रणनी हो गई हैं, ( उत ते हरितो हरी ) और तेरे बीनों पीछे पीछे रक्के हैं, ( वनर्गनः ) उत्तम गावोंको पालनेवाले ( कनयः पुरुषास्तः ) मानो युवक ( ते त्वा स्तुवन्ति ) उस तेरी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

१ ते दमधूनि हरी— धीमरत हरे रणनी होता है, उसे पीछे के कारण तेरी भूछे हरे रणनी हो गई हैं ।

[ ६२४ ] ( हिरण्यस्य यत् वचः ) सोनेवा जो तेज है, ( यद्वा वा गवा यत् वचः ) जो गावोंका तेज है, ( उत ) और ( सत्यस्य व्रक्षणाः वचः ) सात्वानवा जो तेज है, ( तेन मा सत्सुजासि ) उस तेजसे मैं मुक्त होता हूँ ॥ १० ॥

[ ६२५ ] हे ( विरिषिन् इन्द्र ) बहुतमा भन अपने पास रखनेवाले इन्द्र ! ( सस्य सहस्रः अश्वः न दद्वि ) वह बल और सामर्थ्य हर्ष दे, ( ईशे अश्व महतः ईशे ) क्योंकि तू इत महात् बलका स्वामी है, हे इन्द्र ! ( नः ) हमारे ( मृतुं न ) मरने सामान ( नृम्यस्यविरे याज ) भन और महान् सामर्थ्य ( नः वृधि ) हर्ष दे, और ( पृथेयुः शत्रुन्तसहना वृधि ) पृथेयुं शत्रुओंको हरानेका बल हर्ष दे ॥ ११ ॥

[ ६२६ ] हे ( सह-ऋषमाः ) बीनों साथ रहनेवाली, ( सह-यत्सराः ) बहुतके साथ रहनेवाली, ( दृष्टणीः ) दुपुन बड़े दुभाग्यवाली ( विश्वा रूपाणि विश्वतीः ) अनेक रूपोंको धारण करनेवाली गावो । तुम ( उदेत ) हमारे पास आओ, ( उरुः पृथुः अयं लोकः यः अस्तु ) महान् और विशाल यह लोक तुम्हारे लिए हो, ( इमाः आपः ) मैं बल प्रपाह ( सु-प्र-पाणाः इह स्त ) बलसे पीने योग्य होकर तुम्हें यहाँ मिलें ॥ १२ ॥

॥ यहाँ चौथा एण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

( १-१४ ) १ शत वंशानसः, २ विभ्राद् सीर्व, ३ कुत्स आभिरत्, ४-६ सार्वरातो, ७-१४ अश्वत्थ काण्ड ॥  
सूर्यं, १ अग्नि पवमान, ४-६ आत्मा वा ॥ वायव्यो, २ जयतो, ३ त्रिष्टुप् ॥

६२७ अग्र आयूष्पि पचस आसुवोजमिपं च नः । आरं वाधस दुच्छुनाम् ॥ १ ॥ ( ऋ १५६।१९ )

६२८ विभ्राद् वृक्षपिपतु सोम्य मन्वायुर्दधघ्नपतावविहृतम् ।  
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपतिं बहुधा नि राजति ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।७०।१ )

६२९ चित्र देवानामुदगादनीके चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्निः ।  
आमा धामापृथिवी अन्तरिक्षं धृष्य आत्मा जगत्सस्तुपुष्य ॥ ३ ॥ ( ऋ १।१।९।१ )

६३० आर्य गौः पृथिवीरुमीदसन्मातरं पुरा । पितरं च प्रयन्तस्यः ॥ ४ ॥  
( ऋ. १०।१८९।१; वा. प १।६ )

६३१ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । उपरुपन्महिषा दिवम् ॥ ५ ॥  
( ऋ १०।१८९।१; यजु ३।७ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ६२७ ] ( अग्ने ) अग्ने ! ( आयूष्पि पचसे ) दीर्घ आयु हर्षं दे, ( नः ऊर्जे हर्षं च आसुय ) हर्षं शत और  
अन्य वे, और ( दुच्छुनां आरे वाधस्य ) राक्षसोंको डूब कर ॥ १ ॥  
१ दुच्छुनां—( दुः-शुनां ) पावल कुले, राक्षस, दुर्बल, दुःखदायक ।

[ ६२८ ] ( वि-भ्राद् ) विशेष प्रकारमान् सूर्यं ( वृक्ष सोम्य मधु पिपतु ) बहुत तोषरत पीवे, ( यद्वा-पती )  
यात बल्लेवालेकी ( अ-वि-हृत आयुः दधत् ) कुटिलनारहित आयुष्य प्राप्त हो, ( वात-जूत यः ) वायुते पुनः  
यद् सूर्यं ( त्मना प्रजाः अभिरक्षति ) स्वयं ही सब प्रजाओंका रक्षण करता है, उतने ( पिपतिं ) अन्नको पूर्ण करता है  
और ( बहुधा विराजति ) अनेक प्रकारसे प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

१ अ-वि-हृतं आयुः—उपग्रहहित आयु ।

२ वात-जूतः सूर्यः त्मना प्रजाः अभिरक्षति पिपतिं—वायुने रातय सूर्यं सब प्राणियोंका रक्षण  
करता है, और ऊर्जे अन्न होकर पुष्ट करता है ।

[ ६२९ ] ( देवानां चित्रं अनीके उद्गात् ) देवोंका अद्भुत तेज सम्पूर्ण पीवे सूर्यं उद्यत हो गया है, यह मित्र,  
वरुण और अग्नि ( चक्षुः ) नेत्ररूप है, उद्यत होते ही हमने ( धामापृथिवी अन्तरिक्षं आमाः ) धूमोष्ठ, धूमोक  
और अन्तरिक्षको तेजको भर दिया है, ऐसा यह सूर्यं ( जगतः तस्युयः च आत्मा ) बर्धन और तपाकर जगत्को  
साक्षात् ॥ ३ ॥

[ ६३० ] ( अय गौः ) यह गवियाम् ( वृद्धि ) तेजस्वी सूर्यं ( आ अन्नमीत् ) उद्यत होकर ऊपर हो गया है,  
( पुरा मातरं अयन्त् ) पहले वह पृथ्वी माताको प्राप्त हुआ, फिर वह ( पितरं स्वः च ग्रयन् ) धूमोष्ठकी सरने  
पिताको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

[ ६३१ ] ( अक्ष्य रोचना ) इन सूर्यका प्रकाश ( अन्तः चरन्ति ) आवागमने संचर करता है । ( प्राणाद्  
अपानती ) उद्यते वायु प्रकाशित होता है और अन्न होनेसे वायु वह निमीक हो जाता है । ( महिषः हिंसं दधमयम् )  
यह महत् सूर्यं धूमोष्ठकी विनाश करने प्रकटित करता है ॥ ५ ॥

६३२ त्रिंशद्भ्याम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरहं युभिः ॥ ६ ॥  
( ऋ. १०।८९।३; पञ्च ३।८ )

६३३ अप त्वे तापयो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सुराय विश्वचक्षुसे ॥ ७ ॥  
( ऋ. १।९०।३; अथर्व. १३।२।७, २०।४७।१४ )

६३४ अदध्यक्षस्य केतवो वि रश्मयो जनाश्चक्षुः । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥  
( ऋ. १।९०।३; अथर्व. १३।२।८, २०।४७।१५ )

६३५ तरणिर्विश्वदर्शो ज्योतिष्कदक्षि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ९ ॥  
( ऋ. १।९०।४; अथर्व. १३।२।९, २०।४७।१६ )

६३६ प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्कुटुर्देवि भानुपान् । प्रत्यङ् विश्वश्चक्षुद्वे ॥ १० ॥  
( ऋ. १।९०।५; अथर्व. १३।२।१०, २०।४७।१७ )

६३७ येना पावक चक्षुसा भूरण्यन्धं जनाश्चक्षुः । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥  
( ऋ. १।९०।६; अथर्व. १३।२।११; २०।४७।१८ )

आत्मपद — ( अक्ष्य रोचमा ) इस आत्मपद तेज ( ज्यन्तः खरति ) शरीरके अक्षर संभार करता है, ( भाषात् अमानती ) प्राण और अपानके रूपसे उत्तरी गति शरीरमें होती है, यह ( महिषः ) महान् शक्तिमान् आत्मा ( दिवं द्यव्ययात् ) पतिष्पत्नें शासन प्रकाश करता है ॥ ५ ॥

[ ६३२ ] ( वस्तोः त्रिंशद्भ्याम भिराजति ) दिने तीस सूर्य होते हैं ( अहः ) यह सूर्य ( युभिः विराजति ) अपनी किरणसे प्रकाशित होता है, ( पङ्गाय वाक् प्रति धीयते ) उस सूर्यकी स्तुति की जाती है ॥ ६ ॥

[ ६३३ ] ( विद्व-चक्षुसे सुराय , सबकी प्रकाश देनेवाले सूर्यके उदय होनेके बाद ( नक्षत्राः अक्तुभिः ) सप्त रात्रिके साथ साथ ( यथा त्वे तापयः ) जैसे दिनें और रात्रि जाते हैं, उसी प्रकार ( अप यति ) छिप जाते हैं ॥ ७ ॥

[ ६३४ ] ( अक्ष्य केतवः रश्मयः ) इस सूर्यकी प्रकाशकी किरणें ( जमान् अनु वि अदध्यक्ष ) लोगोंकी देखती हैं, ( यथा भ्राजन्तोः अग्नयः ) जिस प्रकार प्रबलित हुई अग्निकी किरणें देखती हैं ॥ ८ ॥

[ ६३५ ] हे ( सूर्य ) सूर्य ! तू ( तरणिः ) सबोंकी तारनेवाला ( विद्व-दूर्धतः ) सबोंके द्वारा देखे जाने योग्य ( ज्योतिष्कदक्षि ) प्रकाश करनेवाला है, ( विश्वे रोचन्ते आभासि ) सब जगत्में अपने स्वकीय प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

अध्यात्मपद — ( सूर्य ) हे सबकी प्रेरणा देनेवाले परमेश्वर ! तू ( तरणिः ) सबकी तारनेवाला है,

( विद्व दूर्धतः ) सबोंके द्वारा साक्षात्कार करनेके योग्य ( ज्योतिष्कदक्षि ) तेजस्वी मोक्षरक्षा दू बता है, ( विद्व रोचन्ते आभासि ) सब तेजस्वी लोगोंकी तू ही प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

[ ६३६ ] हे सूर्य ! तू ( देवानां विशः प्रत्यङ् ) देवोंके प्रकाशन को भङ्ग है, जबके सामने ( भानुपान् प्रत्यङ् ) मनुष्योंके आगे, ( विद्वं चक्षुद्वे प्रत्यङ् ) सब विश्वकी देखनेके लिए सामने ( उदेवि ) उदय होता है ॥ १० ॥

[ ६३७ ] हे ( पावक वरुण ) पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ सूर्य ! ( त्वं ) तू ( जनान् भूरण्यन्धं ) प्राणियोंको पोकल करनेवाले इस मोक्षको ( येना चक्षुसा अनु पश्यसि ) जिस प्रकाशसे देखता है, उस तेरे प्रकाशकी हृष स्तुति करते हैं ॥ ११ ॥

६३८ उद्दामाभि रजः पृथ्व्या मिमानो अकृतुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्यं ॥ १२ ॥  
( ऋ १।५।०; अथर्व १३।२।२२; २।४।१९ )

६३९ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूर्यो रथस्य नज्यः । ताभिर्वाति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥  
( ऋ १।५।९; अथर्व १३।२।२४; २।४।२१ )

६४० सप्त त्वा हरितो रथं वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥  
( ऋ १।५।८; अथर्व १३।२।२३; २।४।२० )

इति पञ्चमी दशति. ॥ ५ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ इति सामवेद-तद्विज्ञानाचारण्य काण्डः पर्व वा समाप्तम् ॥

[ ६३८ ] हे सूर्य ! ( पृथु रजः चां उदैरि ) तू इस विलुप्त अन्तरिक्ष और धूलोकेमें संचार करता है, ( अद्दामाभिः मिमानः ) दिगकी रात्रोसे नागता हुआ तू ( अज्जन्मानि पश्यन् ) जन्म लेनेवाले प्राणिमात्रको देखता जाता है ॥ १२ ॥

[ ६३९ ] ( सूर्यः ) सूर्यने ( शुन्ध्युवः सप्त अयुक्त ) शृद्ध करनेवाले सात घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ा है, ( रथस्य नज्यः ) जो रथको चलाते हैं, ( ताभिः स्वयुक्तिभिः याति ) उनसे और अपनी योजनाओंसे वह सूर्य जाता है ॥ १३ ॥

१ शुन्ध्युवः— सूर्यकिरणें स्वच्छता करनेवाली होती हैं ।

२ सप्त— सूर्यकिरणें सात रगकी होती हैं ।

३ रथस्य नज्यः— रथ चलातेवाली घोड़ेरूपी किरने हैं ।

[ ६४० ] ( वि-चक्षण देव सूर्य ) हे प्रकाशक सूर्यदेव ! ( सप्त हरित ) सात घोड़े-सात किरने ( शोचि-ष्केतो त्वा ) शृद्ध करनेवाली किरणोंसे युक्त तुझे ( रथे वहन्ति ) रथसे ले जाती है ॥ १४ ॥

१ शोचिष्केताः— सूर्यकी किरने शुद्धता करनेवाली हैं ।

२ सप्त हरित — सात रगकी सात किरनें ।

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति आरण्यं काण्डम् ॥

अथ महानाम्नाधिकः ।

( १-१० ) प्रजापतिः ॥ इन्द्रस्तोत्राद्याम् ॥ त्रिक = [ १ श्रवण द्विषदा + ( २ ) तत्त्वस्य शाश्वरा पादाः + ( ३ ) तत् उपसर्ग + ( ३ ) उभय ( शाश्वरापसर्ग ) + ( ५ ) तत्-शाश्वरास्य पादा + ( ६ ) उपसर्ग ]

६४१ वि३दा१ म३षवन् वि३दा१ गा३तुमनु३श३सिषो३ दि३शः३ । शि३क्षा३ श३चीनां३ प३ते३ पू३र्वो३र्णां३ पू३रुष३सो३ ॥१॥

६४२ आभिपूषमभिष्टिमिः स्वाप्सर्चाश्चुः । प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र युसाप न इपे ॥ २ ॥

६४३ एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।

शनिष्ठ वज्रिन्नुज्जसे मन्दिष्ठ वज्रिन्नुज्जसे । आ याहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥

६४४ विदा राये सुधीर्य भुवो वाजाना पातेपशाश्मसु ।

म<sup>१</sup>ह<sup>२</sup>हि<sup>३</sup>ष्ठ वज्रि<sup>३</sup>धू<sup>३</sup>स्तं सः श<sup>१</sup>वि<sup>३</sup>ष्ठः शू<sup>१</sup>राणाम् ॥ ३३ ॥

६४५ यो म<sup>१५</sup>हृद्यो म<sup>३</sup>घोनाम<sup>२</sup>५ शु<sup>२५</sup>र्च शौचिः । वि<sup>३</sup>क्तिवो अ<sup>३</sup>मि नो न<sup>३</sup>पेद्रो वि<sup>२५</sup>दे त<sup>१५</sup>मु स्तुहि ॥५॥

६४६ ईं हि शक्रत्तमृतये हवामहे जेतारमपरानितम् ।

स नः स्वर्पदति द्विपः कृतञ्छन्दः अतः शृष्टु ॥ ६ ॥

[ ६४१ ] हे (मधयन्) धनवान् परमात्मन् ! (निन्दाः) इह स्वयं आत्मा है, (मातुं) विदा। इह योग्य मार्ग  
 ज्ञाता है। दिशः अन्तु संसिपः। ह्यहं जीवतो दिशस्ते जायंते, उक्तमा ह्यहं उपदेश कर, हे (पूर्वाणां) शास्त्रिणां पते।  
 मादि शक्तिते ज्ञातरी। (पर-यसो) हे धनलाभक भग्नो ! (शिरः) सर्वं विधाते ॥ १ ॥

【 ६५५ 】 हे ( प्रचेतन ) चेतना देवोक्ति ईश्वर । हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( रा. न ) शृंग के समान ( अंशुः , तेजस्वी स्र् ) आभिः अभिरिप्तिभिः ) इन तरंगानां ( इवे धुन्नाय ) अथ बीर तेज प्राप्त करने के लिए हमें ( प्र चेतय ) प्रेरित कर ॥ २ ॥

[ ५४३ ] है (मंदिष्ठ अग्निवाः) मह्यं और बलवती इन्द्र । तू (दास्यः पृथ हि) सामर्थ्यवान् है, हासिए ऐ (शशिष्ठ) बलवान् प्रभो ! तू हमें (शय्ये पाजाय मृज्जसे) धन और वस्त्र अथवा अन्न प्राप्त करनेके लिए समय करता है (मृज्जसे) हमें सामर्थ्यवान् कर । (ध्रुवाय हि) हमारे पास आ (पित्र) वह तोमरी और (मन्त्र्य) आनखित हो ॥ ३ ॥

[ ६४४ ] द्वे इन्द्र ! ( साधे सुवीर्यं विद्राः ) पन प्राप कनकेने लेण उत्तम सामर्थ्य कैसे प्राप्त करें यह तु जानता है, ( यः दूराणां दारिद्र्यं ) जिस प्रकार दूर बुध्योंमें नलताहू है, उस प्रकार ओ तू है, हे ( भंडित्ति मज्जिनं ) महान् पट्यामरी इन्द्र ! यह तू / याजानां पति भवः ) सब सन्निवर्धन स्वामी है, तू ( वराभ्यः अनु क्रजसे ) अपने वराने होकर अनन्त रूप भवनोंको सामर्थ्यवान् करता है ॥ ४ ॥

[ ६४ ] ( य प्रज्ञोता महिष्ठः ) जो महान् पनिकोंमें भी बहुत महान् है, ( अद्भु. न ) और स्वयं प्रकाशित होने-  
वालोंके समान ( शोचि. ) प्रकाशमान है, वंशात्तु है, हे ( चिन्तिन. ) ज्ञानवान् ! तू ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यशायक है, इस  
लिए ( तः ) तूने अभिमनय ) हनं ज्ञान प्राप्त करनेके लिए योग्य सागसि है आ, ( तं ऊ स्तुदि ) तू जगदीश प्रसन्ता पर  
भी शान्तमार्गसे जाता है ॥ ५ ॥

[ ६४ ] ( दाय- ईश दि ) पाषिन्दाकी होवे हुए वह स्वाभिमल करता है, इसकि ( ऊतये जेतारं अपराजितं ॥ इयामहे ) अन्वे संरूपये तिरु हम विजयी बीर पराजित न होनेवाले उस धीरको बुलाने हैं, ( सः नः द्रियः सु अर्यत् ) ॥ हमारे पाशुओंकी पूर करता है, यह ही ( प्रलुः ) शक्तीका कर्ता ( उन्द्ः ) रक्षक, ( अतः ) साय भग्न गौर ( ग्रहात् ) गदान् है ॥ ६ ॥



६४७ इन्द्रं धनस्य सातथे हवामहे जेतारमपराजितम् ।

स नः स्वपदति द्विषः स नः स्वपदति द्विषः

॥ ७ ॥

६४८ पूर्वस्य यत् अद्रिवाऽऽशुर्मदाय । सुम्न आ घेहि नो वसो पूर्तिः श्विष्ठ शस्यते ।

वशी हि शक्रो नूनं तन्नय्यऽसन्नयसे

॥ ८ ॥

६४९ प्रमो जनस्य वृषहेन त्समयेषु प्रवावहे ।

शूरा यो गोषु गच्छति सखा सुधेवा अद्वयः

॥ ९ ॥

अथ वज्रं पुरीयवहानि ॥

६५० एवाहोऽइऽइऽइ न । एवा ह्यमे । एवाहीन्द्र ।

एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ॐ एवाहि देवाः

॥ १० ॥

इति वज्रं पुरीयवहानि ॥

इति महानाम्याचिकः समाप्तः ॥

इति सामवेद महितानां पूर्वाचिकः समाप्तः ॥

पूर्वाचिकस्य मन्त्रसंख्या

१ आग्नेयस्य	काण्डस्य ( १-११४ )	११४
२ ऐन्द्रस्य	काण्डस्य ( ११५-४६६ )	३५२
३ पावमानस्य	काण्डस्य ( ४६७-५८५ )	११९
४ आरण्यस्य	काण्डस्य ( ५८६-६४० )	५५
५ महानाम्याचिकस्य	( ६४१-६५० )	१०

सर्वयोगः ६५०

[ ६४७ ] ( धनस्य सातथे ) धनवी प्राणिके लिए हव ( अपराजितं जेतारं इन्द्रं ) पराजित न होनेवाले विजयी इन्द्रको सहोत्साहके लिए बुलाते हैं, ( सः नः द्विषः अति शत्रुत्वं ) वह हमारे शत्रुओंको बुर बदे ॥ ७ ॥

[ ६४८ ] हे ( अद्रिवाः ) अश्वघोरी इन्द्र ! ( पूर्वस्य ) सबसे पहले रहनेवाले तेरे ( यम् धनुः शूर्मदाय ) को प्रशस्त मानन्द बढानेके लिए है, हे ( वशी ) हे शक्रको बलानेवाले इन्द्र ! जमे ( नः ) सुखे व्यापेहि ) हमारे गुप्तके लिए हमें दे, हे ( श्विष्ठ ) प्रसन्न ! ( पूर्तिः शस्यते ) पूर्णता करनेकी शक्तिही हो सब अथवा प्रशान्त होती है, ( नूनं तन्नयः ) धनी विरचयते नू सामर्थ्यवान् और सबको धनमें बढनेवाला है, इतलिए ( अत् नय्ये स्तन्नयसे ) मैं इस धनीन शत्रुनि धोष गुण अपने आगे स्थापित करता हूँ ॥ ८ ॥

[ ६४९ ] हे ( वृषहेन प्रमो ) वज्रको आनेवाले प्रमो ! ( जनस्य समयेषु प्रवावहे ) थोड़े मनुष्योंमें जेते हो हम प्रशस्त करते हैं, ( यः ) जो ( गोषु गच्छति ) गायोंमें रहता है, वह ( मखा ) मित्र ( शूरोयः ) उत्तम प्रवर्तने मेरा करने धोष मोह ( म-द्वयः ) अश्रितोय थोड़ा है ॥ ९ ॥

[ ६५० ] ( एवा हि एव ) यह ऐसा ही है, हे आने ! ( एवा हि ) तुम ऐसे प्रशस्तकरन हो, हे इन्द्र ! ( एवा हि ) तुम इस प्रकार शत्रुको हरातेवाले हो, हे ( पूषन् ) प्रुषा ! ( एवा हि ) तुम ऐसे ही धोषन करनेवाले हो, हे ( देवाः ) सब देवो ! तुम ( एवा हि ) इस प्रकार दिग्गजगन्धर्व हो ॥ १० ॥

## आरण्यक काण्ड

संहिता-शाहण-आरण्यक और उपनिषद् ये प्राचीन शास्त्रमयके चार विभाग हैं। संहितामें भजपाठ, शाहणोंमें यज्ञकाण्ड और आरण्यक तथा उपनिषदोंमें वेदमंत्रोंमें आये हुए अभ्यास-विद्याका विस्तारसे वर्णन है। इस आरण्यक काण्डमें अन्तर्गत महारामिन् आधिक्यके तथा कुछ अन्य मंत्रोंकी छोड़कर शेष सब मंत्र आग्नेयके ही हैं। उनका पता हर मंत्रके नीचे दिया हुआ है। जो मंत्र ऋग्वेदमें नहीं हैं, उनका गहरा दिया गया।

आरण्यकोंका विषय अभ्यासज्ञानका स्पष्टीकरण ही है। इस प्रकार इस सामवेदीय आरण्यक-काण्डका विषय भी अभ्यासज्ञानका स्पष्टीकरण ही है।

आग्नेय, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चार वेद हैं। आग्नेयमें वेदोंकी स्तुति है, यजुर्वेदमें यज्ञकाण्डका विषय है, सामवेद उपसनावका वेद है, और अथर्ववेदमें ऋतुज्ञान मुख्य है। यद्यपि इस प्रकार ये विभाग हैं, पर आग्नेय वेदमें किसी न किसी रूपसे अभ्यासका विषय आ ही गया है। यजुर्वेद कर्मकाण्डका ग्रन्थ है, पर फिर भी उसका अन्तिम चालोत्सर्ग अभ्यास " ईश-उपनिषद् " है। अथर्ववेदमें ऋतुज्ञानके अनेक सूक्त हैं।

उत्ती प्रकार सामवेदके इस आरण्यक-काण्डमें अभ्यासका विषय आया है। इसके मंत्र यद्यपि आग्नेयके ही हैं, पर उनका ज्ञान अभ्यासकी बुद्धिसे देवता चाहिए।

इसमें अग्नि, इन्द्र, वायु, उषा आदि देवताओंके मंत्र हैं, ये विभिन्न देवता हैं, इनका अभ्यासके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा कोई यदि समझे, अथवा ऐसा समझकर शका भी करे, तो उसका निराकरण आग्नेयके निम्न मंत्रमें उत्तम रीतिसे दिया गया है—

एक सत्य वस्तु

इन्द्रं मिथं धरुणमग्निमाहुः

अयो दिव्यः सः सुपुणो मरुतमान् ।

एकं सदिमं बहुधा पदन्ति

अग्निं यम सातिरभ्यासमाहुः ॥

( अ. ११।६४।४६; अथर्व १।१०१२८ )

( एकं सत्यं ) सत्य वस्तु एक ही है, पर उष एक ही

सत्य वस्तुको ( यिमाः बहुधा पदन्ति ) सानीसीग अनेक नामोंसे पुकारते हैं, उसीका अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य सुवर्ण, यक्षमान्, यम, यत्तरिखा आदि नामोंसे वर्णन करते हैं। अर्थात् अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नाम यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, तथापि उन नामोंसे वर्णित की जानेवाली शक्ति एक ही है। इस सिद्धान्तसे बहु-देवतावादका खण्डन होता है और एक-देवतावाद ( सब देवता मिलकर एक देवताका प्रतिपादन करते हैं ) की सिद्धि होती है।

इस आरण्यक काण्डका विचार करते हुए यह लावश्यक है कि हम अपनी बुद्धि एवात्मवाद पर ही प्रेरित रहें। और इस बुद्धिसे ही इस काण्डका विचार करना चाहिए—

१ अथ सद्यं प्रते खंयं अ-दितये अनागतः स्यात् ( ५८९ )—हे ईश्वर ! तेरे विषयमें रहकर, हमारा विनाश न हो, इतनाए हम आपरहित हों। " दिति " का अर्थ है लपटत होना, दूधने होना, विस्फोट होना, और अशान्ति का अर्थ है, असन्तुष्ट स्थिति, स्वतन्त्रता अविनाश, मोलती अवस्था। यह अवस्था पानेके लिए मैं पाप-रहित होऊँ। परमेश्वरका जो विषय है, यजुर्वेदकी उसलिके लिए उत्तम जो नियम निश्चित किए हैं, उन नियमोंका पालन करके हम उस पूर्वापत्त्याकी प्राप्त करेंगे। मुक्त होनेका वर्णन यह मंत्र उत्तम रीतिसे करता है—

बन्धनं ढीले कर

१ उत्तमं पाशं असत् उक्थयाय ।

मध्यमे पाशे असत् वि अथाय ।

अधर्मं पाशं असत् अथ अधाय ।

उत्तम, मध्यम और अधम ऐसे तीन पाशोंमें अन्वय बोधा गया है। बुद्धि, मन और शरीर इन तीन स्थानोंमें ये बन्धन हैं। बुद्धिका बन्धन अज्ञानसे है, मनका बन्धन विचारोंकी हीनताके कारण है और शरीरका बन्धन आचार हीनताके कारण है। बहुतसे अनृत्य इन बन्धनोंसे जकड़कर बोध दिये गए हैं। उत्तम सत्यज्ञान प्राप्त करने बुद्धिके पाशोंकी ढीले करो, उत्तम विचारोंसे मनके और उत्तम आचारोंसे शरीरके बन्धन दूर करने चाहिए। ऐसा करनेसे तीनों पाशोंमें अनृत्य मुक्त हो सत्यता है।

२ त्वया भरे शम्भ्वत् कृत्तं वयं चिनुथाम् ( ५९० )- हे ईश्वर ! तेरे सहायतासे हमेंशा करने योग्य स्वर्धाओंमें हम अपने कर्तव्योंको सावधानीसे करें। प्रमाद न करें। मनुष्य इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ तबसे उसके जीवनमें स्वर्धां धुस हुई, छोटीसी स्वर्धां ही विशाल स्वर्धां जगत् सप्राप्तका रूप धारण कर लेती है। यह स्वर्धां चालू हो है। इस स्वर्धामें अपना कर्तव्य न पूरने हुए विजयी होना हो मनुष्यका कर्तव्य है। पाप या दण्डन झोले करनेके लिए इसकी आवश्यकता है।

३ यः अन्तमाः सुन्नेषु मदेम ( ६१० )- हे ईश्वर ! तेरे पास रहकर तेरे द्वारा दिए गए सुखमें आनन्दते हूय रहें। मनुष्योंको देवोंके पास जाकर रहना चाहिए। देवोंके कौण-कौनसे गुण हैं उन्हें देखना चाहिए, और वे ही गुण अपने अन्दर बढाकर देवोंके सात्त्विकमें आनन्दते रहें। मनुष्योंकी उन्नतिका यही साधन है।

देवोंमें देवोंकी स्तुति इसी लिए है कि उस स्तुतिमें जो देवोंके गुण वर्णित हैं, वे ही गुण उपासक अपनेमें बढावें। यह ही मनुष्योंकी उन्नति है। “ यत् देवा अनुर्जैन तत् कथयामि ” ( रातपत्र आरण्य ) जो देव करते हैं उसीको मैं गाऊ। यह उन्नतिका नियम है। देवोंकी जो स्तुति है उसका विचार करने, उसका नमन करने उपासक देवताओंके गुण अपने अन्दर अधिकसे अधिक किस तरह बढावें, यह देखना चाहिए देवोंकी स्तुति मानवोंकी उन्नतिमें इस प्रकार सहायक होती है। प्रथम अपनेमें देवत्व लावें, फिर क्षुध गुणोंसे उसकी वृद्धि करें। यही अनुष्ठान मनुष्यों द्वारा करना चाहिए।

### पुरे धन न पोलना

सबसे पहले वाणीकी शुद्धता करनी चाहिए। यह इस प्रकार है—

१ हे तैःवाः । यः परिचक्ष्यामि वर्चसि मा वोच्य ( ६१० )- हे देवी ! तुम्हें अच्छे न समझेसके वचनोंकी मैं न बोलू। यह रीति वाणीकी शुद्ध करनेकी है। वाणीकी शुद्धिसे बहुतसे काम सिद्ध हो जाते हैं।

### शुद्ध भाषाका ज्ञान

अपने आचरणके मार्गें शुद्ध और स्वच्छ होने चाहिए। इस विषयमें ये वेशवचन हैं—

१ हे मयधन ! विद्याः गातुं विदा । दिशः अनु-  
वसित्वा । पूर्वाणां शस्त्रीनां पते, पुरवसो । दिशः ।

( ६४१ )- हे धनवान् इन्द्र ! तू सब भाषाओंको जाननेवाला है, उत्तम भाषां कलेशता है, बहुत जानता है। हम कौनसी दिशासे जाए इसका तू हमें उपदेश कर। हे आदिशक्तिसे स्वामी ! हे धनसम्पन्न प्रभो ! हमें उत्तम शिक्षा दे, और उत्तम भाषासे हमें चला।

यह प्रार्थना उपासकोंको करनी चाहिए। ईश्वरके पास अनन्य भाषासे ही यह प्रार्थना करनी चाहिए। तब देवगण भाषांकी बलते हैं। इस प्रकार निर्दोष भाषां ज्ञानमें आता है। उपासक स्वयं भी कौनसा भाषां ज्ञान है और कौनसा नहीं इसका विचार करके निश्चय करें।

### मुझे श्रेष्ठ होना है

मुझे महान् होना है, यह भावना सबमें होनी चाहिए। इस विषयमें उपदेश इस प्रकार है—

१ तत् नः मिषो घटर्णो मा महन्तां अदितिः  
सिन्धुः पृथिवी उत पौः ( ५९० )- “ इसके लिए मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और धुलोकमुसे महान् करें। ” इसमें पृथ्वीसे लेकर धुलोक तक, रहनेवाले सब देव भरे महान् होनेके काममें सहायक हों, यह प्रार्थना है। मनुष्यकी यदि महान् होना है तो उसे इन सब देवोंकी सहायता अवश्य ही चाहिए। मनुष्यके शरीरमें ये सब देवताएं हैं। यदि एक भी देव प्रतिकूल होगा तो यह अवयव रोगी ही जाएगा और उसकी उन्नतिमें रुकावट आ जाएगी।

२ इमं एकं धूपणं धुपुत ( ५९१ )- इसको अक्षितीय शक्तिमान् करो। अक्षितीय शक्तिवाला यदि मनुष्य हो जाए तो उसके महान् होनेमें कोई सन्देह ही नहीं।

३ हे प्रवेतन ! आभिः अतिष्ठिभिः दये पुम्नाय प्र-  
वेतय ( ६२२ )- हे मेरेक ईश्वर ! इस अपने संरक्षणसे अथ व तेज प्राप्त करनेके लिए हमें प्रेरित कर, अर्थात् हम उत्तम मार्गसे जावें तथा अन्नवाले और तेजस्वी होंवें।

४ धावापुथिजि, इन्द्रा-वृहस्पती, अगस्त्य धनाः  
मा चिन्दुतु ( ६११ )- धु, धुष्को, इन्द्र, वृहस्पति, और अगस्त्य देवोंसे मुझे यश प्राप्त हो।

५ यदाः मा प्राते मुञ्चतां ( ६११ ) यदा मुने  
छोड़कर दूर न जावे। हमेशा जब मुने ही मिलता रहे, जबान् भी सदा धनरत्नों होवें।

६ यदा मनुष्याणां निध्यानि पुम्नानि अयं मिपा-  
सन्मः धनामदे ( ५९२ )- इसकी सहायतासे मनुष्योंके

पास रहनेवाले सब तेजोंको प्राप्त करके उसका उपयोग करनेकी इच्छावाले हम उसका तेज प्राप्त करें ।

७ अस्याः संसन्, यशसा अहं प्रवक्षिता स्वाम् ( ६११ )— इस सप्तके यजसे में युक्त होऊ और मैं इस समेतों उत्तम भाषण करनेवाला होऊ ।

सब प्रकारसे मेरी उज्ज्वल होकर मैं सभामें उत्तम प्रकारसे प्रभावशाली भाषण करनेवाला होऊ, राष्ट्रमें ऐसा मान प्राप्त होना उन्नतिको लक्षण है ।

### पूर्णताकी प्रशंसा

जगत्में पूर्णताकी ही प्रशंसा होती है इसलिए कहा है कि—

१ पूर्तिं वाक्यते नूनं शक्यं धर्षति ( ६४८ )— पूर्णता सदा प्रभावित होती है, निश्चयसे जो शक्तिशाली है वह सभीको धर्षानें करके अपने अधीन करता है ।

२ शक्यं ईदो हि ( ६४६ )— सामर्थ्यवान् ही ईदल करता है । निर्बल धातन नहीं कर सकता इसीलिए कहा है ।

३ जेतारं अपराजितं ऊतये ह्यमामहे ( ६४६ )— जो विजयी और अपराजित है उस वीरको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

४ यजियः शयिष्ठ ( ६४३ )— हे बलपारी क्षत्रवान् वीर ! हमारी सहायता कर ।

५ राये वाजाय क्रंजसे ( ६४३ )— धन वीर अन्नकी प्राप्ति करनेके लिए हमें तू समर्थ करता है ।

६ यः दारुणां शयिष्ठः, वाजानां वाजपतिः, वशान् अशु क्रंजसे ( ६४४ )— जो शूरोंमें अत्यधिक बलवान् है, जो हलिकोंमें भी सबसे अधिक बलवान् है, वह अपने वशमें रहनेवालोंकी सामर्थ्यवान् बनाता है ।

ऐसी ही शक्ति हमें भी प्राप्त हो, ऐसी इच्छा मनुष्योंकी मनमें करनी चाहिए । सामर्थ्यशाली होनेसे धन मिलता है । इस धनके विषयमें निम्न बचन इस काव्यमें हैं ।

### धन

जिससे मनुष्य धन्य होता है, वह धन है । धनका अर्थ वेधन धरने ही नहीं है, अपितु धर, पुत्र, गण, घोड़े आदि भी धन हैं । इनकी पास रहनेसे मनुष्य धन्य होता है ।

१ नः सुम्ने आधेदि ( ६४८ )— हमें सुख देनेवाले धनमें स्थापित कर ।

२ धनस्य सातये जेतारं अपराजितं ह्यमामहे

२७ ( साम हिम्वी )

( ६४७ )— धनकी प्राप्तिके लिए विजयी और हमी भी पराजित न होनेवाले वीरको हम अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ।

३ राये सुवीर्यं विद्मः ( ६४४ )— धन प्राप्त करनेके लिए उत्तम प्रकारसे करनेकी शक्ति अपनेमें किस प्रकारसे मानें वह तू जानता है ।

४ राये वाजाय क्रंजसे ( ६४३ )— धन प्राप्त करनेके लिए हम बल प्राप्त करें, मत तू हमें सहायता दे ।

५ नः ऊर्जं ह्येष च आसुत्र ( ६२७ )— हमें सामर्थ्य और बल दे ।

६ हे यिराशान् ! तत् सहः भोजः न दधि । अस्य महताः ईदो । नः नृमणं स्थयिरं वाजः दृधि ( ६२५ )— हे बहुतसा धन प्राप्तमें रखनेवाले वृद्ध ! वह साहस और सामर्थ्य हमें दे । इस महान् सामर्थ्यका तू रक्षामी है, तू हमको धन और सहान् स्थायी बल दे ।

७ हिरण्यस्य, मवां, सत्यस्य ब्रह्मणः, यत् धर्षः, तेन मा संसृजामसि ( ६२४ )— सोना, धातु और सत्य मानका जो तेज है, उससे धनें युक्त कर ।

८ अमितं योजनं अग्निं अग्रयेयाम् ( ६२२ )— अपरिमित धन योजनापूर्वक हमें दे ।

९ पायापृथिवीं रूपाने भवतं, ते नः अंहस्तः सुंचतम् ( ६२२ )— सुलोक और पृथ्वीको हमें सुख देनेवाले हों, और ये हमें पावसे बचावे ।

हम निष्पन्न हों, अर्थात् हमारे पास धन आये, उसी प्रकार बल और सामर्थ्य भी प्राप्त हो । धन आदि तापन मिले तो भी आदुके रहनेपर ही उसका उपयोग किया जा सकता है, इसलिए आयुकी कायदा हम करें, ऐसा कहा है—

### दीर्घ आयुष्य

१ अग्ने ! आयुषि एवते ( ६२७ )— हे भग्न ! हमें दीर्घायु दे ।

२ यक्षपवीं अ-विहरते आयुः दधत् ( ६२८ )— धन करनेवालेकी उपदेवहित दीर्घ आयु दे । इस प्रकार आयु प्राप्त करें वह इच्छा इन वचनोंमें है ।

### संरक्षण

हमें धन, बल, तेज, घोषादि आदि प्राप्त हों और अपने लिए संरक्षण मिले यह मनुष्यकी इच्छा स्वाभाविक है । इस विषयमें निम्न बचन देखिये—

१ उग्रः उग्राभिः ऊतीभिः वाजेषु सहस्रप्रबन्धेषु नः अय ( ५९८ ) वृ पदान्ते चोर है, इसलिय अपने उत्तम सरसपति छोटे और बड़े युद्धोंमें हमारा सरक्षण कर ।

२ जातजूतः ( सूर्य ) तमना प्रजा अभिरक्षति, पिपतिं बहुधा विराजति ( ६२८ )- वायुके साथ सूर्य स्वयं हो सब प्रजा(लोक) सरक्षण करता है, सभी अजोको पूर्ण करता है, और उन्हें विज्ञेय रीतिसे प्रकाशित करता है ।

३ सूर्यः जगतः तस्थुषः आत्मा ( ६२९ )- सूर्य इस स्थावर और जगम जगत्का राजा है ।

४ सूर्यः तरणिः विश्वदृशतः उपोतिष्णतु अस्ति विश्वं रोचन् आभासि ( ६३५ )- सूर्य सबको तारनेवाला, सब देखनेवाला, प्रकाश करनेवाला और सरक्षण करनेवाला है । सब विश्वको बहुत प्रकाशित करता है ।

### युद्ध

यदि संरक्षण करना है तो लड़के साथ युद्ध करके शत्रुको पराजित करना ही पड़ता है । उसके बिना उत्तम सरक्षण ही हो नहीं सकता । इसलिय युद्ध करना आवश्यक ही है । इस युद्धके सन्वयमें निम्न बचन है—

१ सः नः दिवः सु उर्षतु ( ६४६ )- वह हमारे शत्रुओंको दूर करता है ।

२ धृषेणु शत्रून् सहना वृषि ( ६२५ )- युद्धमें शत्रुओंको अपने बलसे पराजित कर ।

३ अहिं भद्रम् ( ६१२ )- शत्रुको हानि नाना ।

४ हे अपूर्व्य मघधम् ! वृषहत्याय जावघाः ( ६०१ )- हे लज्जितय धावाम् इन्द्र ! तू वृषको मारनेके लिय उत्सन्न हुआ है ।

इन प्रकार शत्रुसे युद्ध करना अत्यावश्यक है, उसको किय बिना प्रजाका सरक्षण ही हो नहीं सकता । युद्धमें उत्तमवीर होने चाहिये । वे और कैसे होयह इन्द्र देवताके यन्त्रके द्वारा विजया है । इसलिय इन्द्र देवताका वर्णन यहाँ देलें—

### देवोंके गुण

देवोंमें विशेष सामर्थ्य होता है, इसी सामर्थ्यके कारण उनको देवत्व प्राप्त हुआ है । उन देवोंके गुण देखिए—

१ वज्रहस्तः ( ५८६ )- हाथोंमें वज्र धारण करनेवाला इन्द्र ।

२ इन्द्रः यज्ञी दितृण्ययः ( ५९७ )- इन्द्र बन्ध धारण करता है और वह सोनेके आभूषण भी धारण करता है ।

३ अभिमातिपाहः ( ६०३ )- वह शत्रुओंका पराभव करनेवाला है ।

४ वज्री यन्त्रे प्रथमानि वीर्याणि चमार, तु प्रवोचं ( ६१२ )- वज्रधारी इन्द्रने प्रथम जो पराक्रम किया उसका मैं वर्णन करता हूँ ।

५ इन्द्रः जगतः चर्याणानां राजा ( ५८७ )-

६ अधिष्ठामा विपुल्यय यत् अस्ति ( ५८७ )-

७ दाम्नुमे वसुनि ददाति ( ५८७ )-

८ उपस्तुतं राघः अर्धाक्ष्णोदित् ( ५८७ )-

इन्द्र स्थावर जगम और सब मनुष्योंका राजा है । ॥॥ वृषीवर जनेक रघुवर्षयले जो कुछ भी पदार्थ है, उनका भी बड़ी राजा है । वनलोकोको वह मनेक प्रकारके धन देता है । जो उसकी स्तुति करता है, उसके पास वह धन भेजता है ।

९ ज्येष्ठ ओजिष्ठं पशुरि अयः नः आभर ( ५८६ )- श्रेष्ठ, बलवर्धक और पूर्णता करनेवाले धरा और अन्न हमें भरपूर दे ।

१० परमेष्ठीः प्रजापतिः मयि वर्षः अधो वशाः पयः दहतु ( ६०२ )- परमेष्ठी प्रजापति मुझे तेज, धरा और दूध देवे ।

११ हे अग्ने ! नः पयसा रयि ददो घर्षः भद्राः ( ६१५ )- हे अग्ने ! हमें दूधके साथ धन और तेज दे । हमें अन्न और तेज दे ।

१२ चावावृथिवी सुभोजसो ( ६२२ )- धुलीक पृथ्वीको हमें उत्तम भोजन ॥॥ ।

१३ अरियोवित् ( ५९२ )- धन अपने पास रखनेवाला । १४ रत्नघातमे अग्नि ईदे ( ६०५ )- रत्न देनेवाले अग्निको मैं स्तुति करता हूँ ।

ये देवताओंके गुण हैं । उन्हें देलें और उन गुणोंको अपने अन्तर बढ़ानेका उपाय करें और देवत्वसे मुक्त हों ।

### सभी समय उत्तम हैं

प्रसन्न, लोभ, समयको बोध देते हैं, पर सभी समय उत्तम हैं—

१ वसन्ता, ग्रीष्मन्, वर्षाणि, शरदः, हेमन्तः, शिशिरः रन्त्यः ( ६१६ )- ये सभी ऋतुये रमणीय हैं, मुख देनेवाली हैं, इसलिय सगणको दोष देना ठीक नहीं । अपने प्रयत्नमें लोभ होते हैं, उन प्रयत्नोंको प्रयासोप करना चाहिये । इसीलिय वेदोंमें मनुष्योंको " अतु " कहा गया ।

है। मानवी जीवन कनुक्य-यसक्य होना चाहिए। इस उद्देश्यसे कहा है—

### क्रतु

० सः क्रतुः छन्दः क्रते बृहत् ( ६४६ )— यह कर्म करनेवाला है, उसका पुरस्कार करनेका स्वभाव है, यह सत्य-निष्ठ और सरल व्यवहार करनेवाला है, इस कारण बृहत् महान् है। ये चार शब्द बृहत् ही महत्त्वके होनेके कारण इनके अर्थ आगे दिए जाते हैं—

क्रातुः— निश्चय, क्षति, बुद्धि, यज्ञ, अन्त प्रकाश, प्रज्ञा।

छन्दः— आनन्द, इच्छा, निश्चय, तत्परता।

क्राते— घोष, शान्ति, सामर्थ्य, बृहत्, पूज्य, तेजस्वी, विभव।

बृहत्— उच्च, महान्, बहुल, सामर्थ्यवान्।

इस प्रकार इनके अनेक उत्तम अर्थ हैं, और ये अर्थ सामर्थ्यकी भाँति बिखाले हैं।

### अश्व

अश्वश्च यत् किम्प जाता है। ये अश्व देखोंके पहले जी उपग्रह हुए—

१ देवेभ्यः पूर्वं अहं अमृतस्य क्रतस्य प्रथमता अस्मि ( ५९४ )— देवोंके पहले, अमरत्व देनेवाले यज्ञके पूर्व में मम उत्पन्न हुआ। पहले जन्म उत्पन्न हुए और उसके बाद उते मानेवाले उपग्रह हुए। प्राप्त पहले पैदा हुई और प्राप्त पानेवाले पशु यादमें उत्पन्न हुए। पहले वृक्ष पहले पैदा हुए और कल जाननेवाले मनुष्य पीछेसे पैदा हुए।

### गायोंमें दूध

१ कृणामु रोदिणीषु पदध्यासु कशत् पयः अधारयः ( ५९५ )— बाली, लाल और अनेक रंगके गायोंमें तेजस्वी दूधकी दूधने स्थापित किया। वह देवोंका महान् सामर्थ्य है।

० सहजगभाः महत्सवाः द्यूधूध्याः विदश रूपानि विधत्ताः उदैत ( ६३६ )— बेलोंके गावें करनेवाली, बछड़ोंके ताप करनेवाली, भुगुने बड़े पनोंवाली अनेक रंगकी भाँति हमारे पास आईं।

### दानका महत्त्व

यत्न उत्पन्न हुआ, ब्रह्म मिलने लगा, और जगत्से यज्ञ होने शुरू हुआ। तब दानका महत्त्व समझमें आया। उसके सकारण यथा इत प्रसार है—

१ यः मां ददाति स आवत् अर्घं अदन्तं अहं अर्घं अस्मि ( ५९४ )— 'जो मुझ अन्नकी दानरूपसे दूसरोंको देता है, उसका सत्त्व होता है, परन्तु दान न देता हुआ अन्नकी स्वयं ही जाता है उस कनूत मनुष्यकी मैं स्वयं अन्न ही ला जाता हूँ, अर्थात् पहले अन्नका दान करें फिर स्वयं अन्न खावे।

### सच्चा मित्र

१ सखा सुतोऽः अद्युः ( ६४९ )— वह ही सच्चा मित्र है, जो उत्तम देवोंके योग्य और दोहरा व्यवहार नहीं करता। अन्तरसे दूसरा और बाहरसे दूसरा जो व्यवहार करता है वह सच्चा मित्र नहीं।

### कल्याण करनेवाली रात्री

१ भद्रा युषति रात्री प्रागात्, गङ्गाः केतुः सं ईर्लसितं, विश्वस्य जगलः मिथेशनी रात्री भद्रा अभूत् ( ६०८ )— कल्याण करनेवाली रात्रीरूपी स्त्री का गर्ह है। वह विनये प्रकाशसे रोशनी है। रात्र जपन्ती विधाय देनेवाली वह रात्री निश्चयसे सोमोंका हित करनेवाली है।

### कुत्तोंको दूर करो

१ इच्छुन्वां आरे वाधय ( ६२० )— इच्छ कुत्तोंको दूर कर। कुत्तोंको दूर कर। कुच्छ हमारे काममें दिव्य न पैदा करें ऐसा कर।

### घोड़े

देवोंके रथमें घोड़े जुते होते हैं। उत्तम वर्णन उस प्रकार है—

१ इन्द्र इव ह्ययोः सचा आ स्वमिदलः घघोयुजा ( ५९७ )— इन्द्र ही घोड़ोंका सच्चा मित्र है और उन घोड़ोंकी अपने रथमें जोड़नेवाला है। ये घोड़े कहने मात्रसे ही रथमें जुड़ जानेवाले हैं। इतने वे तिष्ठते हैं। इस प्रकार घोड़ोंकी सत्तावर सुनिश्चित करना चाहिए।

२ वायो ! नियुन्वान् आगति ( ६०० )— हे वायो ! तू अपने नियुत नामके घोड़ोंको अपने रथमें जोड़कर उनसे आ।

यहां वायो घोड़ोंकी नियुत कहा है। "मियुन" का सम्बन्ध अर्थ ही, रथमें उत्तम प्रकारसे जोड़े जानेवाले, है।

३ शुम्भ्युवाः सस्य अयुक्तं, रथस्य नज्यः ( ६३९ )— ४ सस्य हरितः शोचिषेदां त्या रथे वदन्ति ( ६४० )— पवित्रता करनेवाले सान घोड़े, पवित्रता करनेवाली सान किरणें जिसरी हैं, ऐसे घोड़े रथमें ले जाते हैं।

यह सूर्यका विशेषण "शोचिषेदां" दिया है। सूर्यकी किरणें पृथ्वी करनेवाली होती हैं। सान घोड़े में किरणों

सात रग हैं। अर्थात् सात घोड़े य घोड़िया आलकारिक हैं। वायु और इन्द्रके घोड़ोंका प्रयोग आलकारिक है। वायु रथमें बैठता है, इन्द्र और सूर्य रथमें बैठते हैं यह भी सब आल-कारिक है। सच्चे घोड़ेका यहा कोई सम्बन्ध नहीं है।

### नक्षत्र

जिस प्रकार चोर रात्रोमें घूमते हैं और बिनमें छिप जाते हैं, उसी प्रकार तारे रात्रोके समय आकाशमें चमकते हैं और दिनमें सूर्यके आते हो छिप जाते हैं। इसका वर्णन हेतिए—

१ नक्षत्रा अप्तुभिः अपयन्ति यथा त्वे सायवः ( ६३३ )— जिस प्रकार चोर रात्रोके समय होनेके साथ साथ बिलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार नक्षत्र रात्रोके साथ साथ छिप जाते हैं, यह उषमा अलकारका एक उत्तम उदाहरण है।

### मोक्ष

मनुष्य जो कुछ भी प्रयत्न करता है वह बचनेके छूटनेके लिए ही करता है। सभी आध्यात्मिक ज्ञान, जो अन्तर्गत कहा है, गन्धर्वाके निवृत्ति और मोक्ष प्राप्तिके लिए ही है। इस विषयमें कहा है—

१ अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि भवांसि धिष्य ( ६०३ )— अमरत्व प्राप्त करनेके लिए उच्छस्तिप्रति प्राप्त करते हुए छुटोकर उत्तम अन्न प्राप्त कर। स्वर्गके उत्तम उपयोग प्राप्त कर।

अमरता प्राप्तिकी इच्छासे जो अमृच्छान किया जाता है, उन्हें करते हुए मनुष्यकी उन्नति होती रहती है और उसे उन्नतिके मार्गमें स्वर्गके भोग मिलनेसे आनन्द प्राप्त होता रहता है। यह इस अमृच्छानके कारणैपालोको प्रत्यक्ष अनुभव होता है। इस अमृच्छानका साधक पृथ्वीपर रहते हुए भी उसका मन दिव्य आनन्दका साध उपजाता है। हमें छुटोकरमें जानेकी जरूरत नहीं। उसे यहीं दिव्यसुखकी प्राप्ति होती है और यह सदा आनन्द प्रसन्न रहता है।

### श्रापिका कार्य

१ कवयः पुरुषाः त्वा स्तुवन्ति ( ६२३ )— कवि वयोकी स्तुति करते हैं। यह स्तुति मनुष्योंकी उन्नतिका कार्य दिखाती है। इसलिए स्तुतिको साधक साधकानीते करे और उसमें अर्थ और गुणार्थ अपने ध्यानमें लवे।

२ ते गोनां नाम प्रथम अमन्वतः। निः सप्त परम्

नाम जानन् ( ६०६ )— इन ऋषियोंने याजीके शब्दोंका प्रथम विचार करके स्तुति करने योग्य है ऐसा समझा। यह स्तुति इच्छासे छन्दोंमें हो सकती है, इस प्रकार उन ऋषिने अनुभव किया।

भाषाके शब्दोंमें गूढ़ अर्थ हैं और उन शब्दोंसे इच्छासे छन्दोंमें स्तोत्र बनते हैं। इस प्रकारका महान् ज्ञान ऋषिको हुआ, यह ज्ञान हमेंके बाद अनेक छन्दोंमें स्तोत्र बनाये और मन्त्र प्रकट हुए। उन शब्दोंमें अष्टाश्रम-विद्या प्रकट हुई, उसे देखनेके लिए मानवजाति उत्पन्न हुई। मानवकी कृत-कृत्यता इस ज्ञानसे हुई।

### वैश्वानरकी कल्पना

वैश्वानर, विश्वकृष्टि, सब मनुष्य भूषण पृथ्वीके सब मनुष्य मिलकर एक “पृथ्व” है, पृथ्वीके सब मनुष्य एक विशाल “अरीर” है। इसकी एकता मनुष्य समाजमें होनी चाहिए, यह धर्म वैश्वने इस स्थानपर कहा है। वह मन्त्र यहा देखिए—

१ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपादः। स भूमिं सर्वतो ह्युवास्तितिष्ठदशांगुलम् ( ६१७ )— “हजारों शिर, हजारों आँख और हजारों पैरोंवाला एक पुरुष है। वह पृथ्वीके चारों ओर भ्रमण है, इस इन्द्रियोंसे ज्ञात होनेवाले जगत्को व्याप रहा है।

पृथ्वीपर ज्ञान सधमग १०० करोड़ मनुष्य हैं। सम्पूर्ण मनुष्योंके मानव समाज हमारे एक शरीर है। उस शरीरके १०० करोड़ मस्तिष्क, चारसी करोड़ पैर, चारसी करोड़ आँखें आदि हैं। यह पृथ्वीपर चारों ओर है। ये वो ही करोड़ मनुष्य परस्पर मिलकर शरीरमें अवयवोंके समान एकताका स्थापन करें। एक शरीरमें जिस प्रकार निर, हाथ, पैर और पाद सब एक दूसरेमें मदद करते हुए सुखसे रहते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य एकतासे रहते हुए अपनी उन्नति करें इस सर्वेशको व्यवहारमें लानेके लिए सब मिलकर प्रयत्न करें, इसकी यहा सूचना दी है।

### सुभाषित

१ ज्येष्ठ ओजिष्ठं पशुरि श्रयः नः आभर ( ५८६ )— ज्येष्ठ और पशु बढानेके, सुख करनेवाले जन्म होने भरपूर है।

२ इन्द्रः जगत्-चर्योर्नाम राजा ( ५८७ )— इन्द्र-प्रभु-चलनेवाले प्राणियों और मानवोंका राजा है।

३ अधिष्ठम्य विश्वरूपं यत्, अस्य राजा ( ५८७ )

— इस पृथ्वीपर अनेक रूपवाले जो कुछ भी परार्थ हैं उनका भी वही राजा है ।

४ दानुषे घसन्ति ददाति ( ५८७ )— दानशैल मनुष्यको वह राजा घन देता है ।

५ उपस्तुतं पायः अर्गाक् चोदत् ( ५८७ )— ईश्वरको स्तुति करनेवालेको वह पान मिलता है ।

६ धस्य रजोयुजः इन्द्रस्य इदं दृष्ट्व रज्यं स्यः तुजे जने घनम् ( ५८८ )— इस तेजस्वी इन्द्रके ये महान् रजनीय पान दानों और श्रेष्ठता करनेवाले लोगोंमें प्रसन्ननीय हैं ।

७ वृत्ताः । उत्तमं, अधमं, मध्यमं पाशं असम् उक् अध्याय ( ५८९ ) है वक्ष्य । उत्तम, अधम और मध्यम वर्णोंकी हमसे दूर कर ।

८ तप धत्ते धर्मं अ-दितये अनायसः स्याम ( ५८९ )— तेरे नियममें रहते हुए हम स्थानत्रा प्राप्तिके लिए निष्पाप होंगे ।

९ पयमानेन त्वया भरे दाक्षयस् एतं ययं विचि-नुयाम ( ५९० )— पवित्र रहनेवाले तेरी महाधनतासे हमेशा किए जानेवाले कार्यय हम साधनावीत करते रहें ।

१० तत्त्वा मा महतां ( ५९० )— उत्तको समुत्तमाने मूले महागता प्राप्त हो ।

११ इमं पक्षं धृषणं कृणुत ( ५९१ )— इस एकको तुम बलवान् करो ।

१२ एता मातृपाण्यं विद्वानि घृन्तानि अर्यः, लिपात्तमः, घनामहे ( ५९२ ) इसकी महाधनतासे मनुष्यों द्वारा इच्छित धनोंके पान जाकर उसके उपतोष करनेकी इच्छा करनेवाले हम उस धनको प्राप्त करते हैं ।

१३ अमृतस्य अमनस्य पयमजा अंसि ( ५९४ )— अमर पक्षके पहले अम उपपन्न हुआ, मैं भी ब्रह्मके पहले उत्पन्न हुआ, अतः मैं इस अमका यज्ञ करता हूँ ।

१४ यः मां ददाति स आयन् ( ५९४ )— जो इस मधका दान करता है, वह सबका संरक्षण करता है ।

१५ अर्धं अदन्तं सार्धं अर्धं अन्धि ( ५९४ )— ओ अमका दान न करने स्वयं खाता है, उसे मैं अम स्वयं खा जाता हूँ ।

१६ हे इन्द्र ! कृष्णाशु, रोहिणीशु, पशुपतिशु शत्रु-पयः सधारयः ( ५९५ )— हे इन्द्र ! तु हानी, साध और अनेक रंगी गायोंमें तेजस्वी रूप स्थापित करता है ।

१७ उपसः क्षप्रियाः शुद्धिः अकुरुचात् ( ५९९ )— उप.शालके बाद पगनेवाला शुद्ध प्रवाहने लगता है ।

१८ मुन्नेषु वाजयुः ( ५९६ )— प्राणियोंमें अन्न खानेकी इच्छा होती है ।

१९ मायाविनः अस्य मयया मामिरे ( ५९६ )— कुशल भोग अपनी कुशलतासे पदार्थोंका निर्माण करते हैं ।

२० वयः उग्रभिः ऊतिभिः वाजेषु सहस्रप्रधनेषु च नः अय ( ५९८ )— तु मूर्ख है, इसलिए अपने विशेष संरक्षणमें छोटे और महान् मूढोंमें हमारा संरक्षण कर ।

२१ परमेष्ठी प्रजापतिः मयि यय्वः, दशाः, पयः दंष्टु ( ६०२ )— परमेश्वर मुझे तेज, बल, दान और रूप भरपूर देवे ।

२२ अभिमातिपादः ते पयंसि वाजाः धृष्यानि स्तं घन्तु ( ६०३ )— तू शत्रुका पराभव करनेवाला है, इस लिए तुमने बूध, अन्न और बलको प्राप्ति ही ।

२३ अमृतस्य आप्यायमानः त्रिवि उत्तमानि धर्वांसि धिष्व ( ६०३ )— मोक्ष प्राप्तिके लिए तू अपनी उन्नति करते हुए धृतेको उत्तम यज्ञ प्राप्त कर ।

२४ त्वं तमः ज्योतिषा वि यय्वं ( ६०४ )— तू अत्यन्तारका तेजसे वाता करता है ।

२५ पुरोहितं, यजस्य येयं, अरियजं, होतारं, रत्न-घातमं अंसि ईदे ( ६०५ )— जाये रहनेवाले, यज्ञके प्रवर्तक, शत्रुभ्रंशक अनुसार यज्ञ करनेवाले, देवोंको अपने साथ लाने-वाले और उपासकोंको दान देनेवाले अमनीकी मैं स्तुति करता हूँ ।

२६ भद्रा युवतिः रारिं प्रागात् ( ६०६ )— बन्ध्याग करनेवाली रानीरूपी स्त्री भी आई ।

२७ विद्वस्य जगतः निषेदानी चर्या भद्रा अभूत् ( ६०६ )— सब जगत्की शाराग देनेवाली रानी सबका बन्ध्याग करनेवाली है ।

२८ प्रहस्य धृष्य-अरगस्य महः नः ययाः ( ६०९ )— धापाक, असवान्, तेजस्वी और महान् देवोंके मैं स्तुति करता हूँ ।

२९ धैद्वानपाय नृधिः चागः मतिः ( ६०९ )— सब मनुष्यके हित करनेवालेने मूढ और सुन्दर स्तुति की जाती है ।

३० हे देवाः ! यः परित्यक्त्यानि यचांसि मा पोचं ( ६१० )— हे देवों ! तुम्हारे य मुनिके पोष बाणोंके न ग बोधः ।

३१ यः अन्तमाः शुम्नेषु हव मयेन ( ६१० )—



तुम्हारे पास रह करके तुम्हारे द्वारा दिए गए सुखमें हम आनन्दते रहें ।

३२ यशः मा प्रति मुच्यतां ( ६११ )- यश भूमे छोड़कर दूर न जाये । भूमे यश मिलता रहे ।

३३ अस्याः संसदः यशसा अहं प्रयविता स्याम् ( ६११ )- इस लक्ष्मी में तेजस्वितासे बोलनेवाला होऊँ ।

३४ यथा यानि प्रयमानि धीर्याणि चकार, प्रयो-  
ज्याम् ( ६१२ )- यज्ञयात्रे ईश्वर ने जो महान् पराक्रम किए  
उनका मैं वर्णन करता हूँ ।

३५ जग्मना जातवेदाः अग्निः अस्मि ( ६१२ )-  
जग्मते ही मैं सर्वत और अग्रणी हूँ ।

३६ हे पशुपति आने ! नः पयसा रयि दशे खचेः  
अदाः ( ६११ )- हे धनवान् आने ! हमें दूधके साथ धन  
और शर्मावी तेज दे ।

३७ यस्तन्ताः, प्रीष्म. यर्षाणि, शारद, देभन्ताः,  
शिशिरा, रम्याः, ( ६१६ )- यस्तन्ता, प्रीष्म, यर्षा, शारद,  
हेमन्ता और शिशिर ये ऋतुवें रमणीय हैं ।

३८ सहस्रशोर्षा, सहस्राक्षः, सहस्रपाद, पुरुषः  
स भूमिं विश्वतो द्युया दशानुलं अत्यतिष्ठत् ( ६१७ )  
- हजारों तिर, हजारों ओंखें, हजारों पांववाला एक पुरुष है,  
वह सब पृथ्वीपर चारों ओर व्याप्त होकर दस अंगुलियोंके  
समान इस विश्वको व्याप्त करके रह रहा है ।

३९ त्रिपाद् पुण्यः ऊर्ध्वः उर्द्वस ( ६१८ ) तीन  
भागोंवाला यह पुण्य ऊपर स्वर्ग स्थानमें रह रहा है ।

४० अस्य पादः इह पुनः अग्रेषत् ( ६१८ )-  
इसका एक भाग इस जगत्में बार-बार पैदा होता है ।

४१ ततः भद्रान-अमराने अभि विपद् व्यक्रामत  
( ६१८ )- बादमें अत्र धामेवाले और न जानेवाले ऐसे  
विपक्ष स्थिति चारों ओर प्रकट होता है ।

४२ यत् भूतं यत् च आभ्य ईदं नयं पुष्टय धव  
( ६१९ )- जो उत्पन्न हो चुका और जो होनेवाला है वह  
मम यह पुरुष ही है ।

४३ सर्वान् भूतानि अम्य पादः ( ६१९ )- सारे  
उत्पन्न हुए प्राणी इनमें पीये हो हिये हैं ।

४४ अस्य तावान् महिमा ( ६२० )- इसकी ऐसी  
महिमा है ।

४५ समुत्पत्यस्य ईशानः ( ६२० )- अमरताका वह  
स्वामी है ।

४६ ततः विराट् अजायत ( ६२१ )- इस पुरुषसे  
विराट् पुरुष हुआ ।

४७ विराजः अघि पुरुषः ( ६२१ )- विराट् पुरुषका  
अविच्छाता एक पुरुष है ।

४८ स जातः अत्यरिच्यत, भूमिं पदन्वात्, पुरः  
( ६२१ )- वह उत्पन्न हुए प्राणियोंसे धेड़त वा, पहले भूमि,  
बादमें भूमिपर उत्पन्न हुए दूसरे पदार्थोंके रूपसे वह प्रकट हुआ ।

४९ हे धावापृथिवी ! वां सुभोजसी ( ६२२ )- हे  
धु और पृथ्वी लोकी ! मम ही उत्तम भोजन देनेवाले हो ।

५० हे धावापृथिवी ! स्थोने भवते ( ६२२ )- हे  
धावापृथिवी ! तुम हमारे लिए कुछ देनेवाले होयी ।

५१ ते नः अंहसः सुंचतम् ( ६२२ )- तुम हमें  
पारसि छुड़ावो,

५२ अभितं योजनं अभि अग्रयेथां ( ६२२ )- हमें  
अप्रीतिविर धन योजनानुबंध दो ।

५३ धनमैवः कथयः पुरुषासः त्या स्तुयन्ति ( ६२२ )  
- गाय पाकनेवाले गावी जन तुम्ह इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

५४ हिरण्यस्य, गर्या, सत्यस्य प्रक्षालः यत् चर्च्य,  
तेन मां संतृजामसि ( ६२४ )- होना, पाप और सत्य-  
ज्ञान इनमें जो तेज है उस तेजसे मुझे पुरत कर ।

५५ हे धिरीशन् ! सहः भोजनः दधि ( ६२५ )-  
हे बहुत धनवान् ! हमें सामर्थ्य और दल दे ।

५६ अस्य महतः ईशो ( ६२५ )- इस महान् धनका  
तु स्वामी है ।

५७ नः नृग्र्यं स्थविरं यजं कृधि ( ६२५ )- हमारे  
लिए धन और स्वामी सहान् बल दे ।

५८ धृष्टेयु दादृन् सहता रुधि ( ६२५ )- तपासमें  
धृष्टयुओंकी वरति बुधत्वेका सामर्थ्य हमें दे ।

५९ सह-ऋषयाः गृहयन्ताः प्रधृषनीः उद्येन ( ६२६ )  
- ब्रह्मर्षि ताव रहनेवागें, ऋद्धोंके साथ ज्ञानविद्या, धृष्टने बने  
दुष्पापकाशी धार्य हमारे पास आर्य ।

६० उग्रः धूम्रः अयं शोचः ( ६२६ )- यह धूम्र  
तुम्हारे लिए मरान् और मिलान् हो ।

६१ अग्ने ! मादृषि पयमे ( ६२७ )- हे आगें ! दू  
हमें दीर्घ आयु दे ।

६२ नः ऊर्जे इयं च आसुय ( ६२७ )- हमें बल और  
अन्न दे ।

६३ दुष्टयुगौ भारे वापय ( ६२७ )- दुष्टोंको दूर कर ।

६४ यमपतौ अविहृतं आयुः दधत् ( ६२८ )-  
यमपतौ उपश्रवणं कृतं आयुः ।

६५ प्रजाः अमिरक्षति, पिषति ( ६२९ )- वह  
प्रजाओंका तरलान करता है । और अमरको पूर्ण करता है ।

६६ सूर्यः जगतः तस्युपः च आस्था ( ६२९ )- सूर्य  
स्वावर और जगत् अगत्वा आत्मा है ।

६७ महियः दिव्यं व्यस्यत् ( ६३१ )- यह महान्  
सूर्य दलोकको प्रकाशित करता है ।

६८ यथास्ये सायवः, विदवचक्षसे सुराय, नक्षत्रा  
अकनुमिः अपयन्ति ( ६३३ )- जंते चोर दिनमें छिप  
जाते हैं, उसी तरह सबको प्रकाश देनेवाले सूर्यके उदय होते  
ही तारे राश्रीं साय विलोम हो जाते हैं ।

६९ अस्य केतयः रदमयः जनान् अनु व्यहृदयन्  
( ६३४ )- इस सूर्यकी किरणें लोगोंको देवता हैं । लोगोंका  
निरोधन करती हैं ।

७० तरणिः निद्राश्रुतः ज्योतिष्कृतं अग्नि ( ६३५ )  
- तू सबको तापनेवाला, सर्वांगि देवने योग्य और प्रकाश  
करनेवाला है ।

७१ विद्वे रोचने आभासि ( ६३५ )- सब तेजस्वी  
पदार्थोंको प्रकाशित करता है ।

७२ मानुषान् विद्वन् स्पृष्टो अस्पृह उदेयि ( ६३६ )  
- मनुष्योंके आगे सब विश्व दौंस इतलिए तू उदय होता है ।

७३ मययन् विद्वः ( ६४१ )- हे जनवान् परमायन् !  
तू सब कुछ जाननेवाला है ।

७४ गातुं विद्वः ( ६४१ )- तू उत्तम मार्गोंको जानता है ।

७५ विद्वः अनु संक्षिपः ( ६४१ )- हम नीनतो  
विभागे जाए यह मत ।

७६ पूर्वाभां द्रवीनां पते ! पुरुषसो ! शिशु ( ६४१ )  
- हे आदिभक्तिके स्वामी ! धनवान् ! हमें शान दे ।

७७ प्रचेतन ! आग्निः अमिष्टिभिः इये धुम्नाय प्र  
चेतय ( ६४२ )- हे चेतना देनेवाले देवो ! इन सद्यन्तसि अग्नि  
और तेज प्राप्त करनेके लिए हमें उत्तम मार्गसे प्रेरित करो ।

७८ महिष्ठः सन्निधः ! आग्निः एव हि ( ६४३ )- हे  
महान् सन्निधो अग्नि ! तू सामर्थ्यवान् है ।

७९ हे अग्नि ! महे याजाय अक्षजसे ( ६४३ )-  
हे जनवान् ! महान् धन और बल प्राप्त करनेके लिए हमें  
सामर्थ्य कर ।

८० अन्जले ( ६४३ )- तू सामर्थ्यवान् बनाता है ।

८१ राये सुबोधं विद्वः ( ६४४ )- धनप्राप्त करनेके  
लिए उत्तम सामर्थ्य जिस प्रकार प्राप्त करें, यह जानता है ।

८२ शूराणां शत्रिघ्नः ( ६४४ )- शूरोंमें तू सबसे अधिक  
शूर है ।

८३ वाजानां पतिः ( ६४४ )- तु सर्वोत्तम स्वामी है ।

८४ वदन् अनु क्रञ्जे ( ६४४ )- अपने अनुकूल  
रहनेवालोंको तू सामर्थ्यवान् बनाता है ।

८५ अघोनां महिष्ठः ( ६४५ )- महान् धनवानेति श्री  
तू अधिक धनवान् है ।

८६ अन्तुः न शोचिः ( ६४५ )- सूर्यके समान तू  
अपराजमान् है ।

८७ नः विदे अभिनय ( ६४५ )- हमें शान प्राप्त  
करनेके लिए तू उत्तम मार्गसे ले जा ।

८८ आग्निः ईजे ( ६४६ )- वो सामर्थ्यशाली होता है,  
वह स्वामी होता है ।

८९ ऊतये अंतरं अपराजितं हवामहे ( ६४६ )-  
सत्त्वणके लिए विजयी और अपराजित वीरको हम बुलाते हैं ।

९० नः नः क्षिप. अर्यत् ( ६४६ )- यह हमारे  
धनुषोंको दूर करता है ।

९१ सः क्रतुः छन्दः अतं मृदत् ( ६४६ )- वह  
कर्म करनेवाला, रक्षक सत्यवित् और मृदुवान् है ।

९२ धनस्य सावये अपराजितं अंतरं हवामहे  
( ६४७ )- धनकी प्राप्तिके लिए अपराजित और विजयी  
इन्द्रकी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

९३ वृतिः शस्यते ( ६४८ ) पूर्णता करनेकी शक्तिको  
प्रस्ताव होता है ।

९४ आग्निः वशी ( ६४८ )- सामर्थ्यवान् सबको वशमें  
करता है ।

९५ यः सदा सुबोधः अद्वयः ( ६४९ )- जो उत्तम  
विद्वत्, उत्तम प्रकारसे सेवाके योग्य तथा योगला व्यवहार न  
करनेवाला है, वह उत्तम होता है ।

### उपमा

१ द्विषि घां इव ( ६०२ ) जिस प्रकार धूलोकमें  
तेज है, उसी प्रकार ( यहस्य पथः ) धनका दूध होता है ।

२ यथास्ये सायवः ( ६३३ )- जंते चोर दिनमें भाग  
जाते हैं, उसी प्रकार ( नक्षत्रा अकनुमिः अपयन्ति )  
तारे राने साय छिप जाते हैं, दिवमें रोचते नहीं ।

३ यथा अजन्तः अग्रयः ( ६३४ )- जिस प्रकार  
तेजस्वी अग्नि जलती है, उसी प्रकार ( अस्य केतयः  
रदमयः ) इस सूर्यकी किरणें चलती हैं ।

इस आरम्भ-काण्डमें इतनी ही उपमाएँ हैं ।

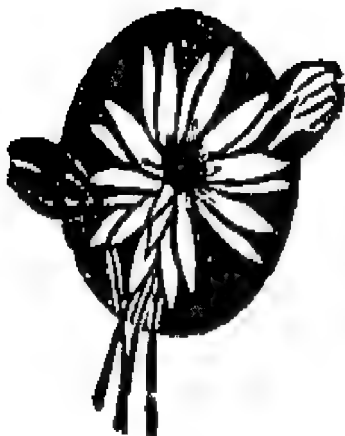
## आरण्यकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
५८६	६।३६।५	शंभुर्बाह्मिष्ठ्यः ( भरद्वाजः )	इन्द्रः	मूर्त्ती
५८७	७।१७।३	यसिष्ठो भर्त्रावर्षाणः	"	त्रिष्टुप्
५८८	—	शामदेवो गीतमः	"	गायत्री
५८९	१।१४।१५	शुभ्र, सोम आनीर्गन्धिः कुत्रिभो देवरातो		
		वैश्वामित्रो वा	वरुणः	त्रिष्टुप्
५९०	९।१७।५८	कुत्स आगिरसः ( युत्समदः )	यवमानः सोमः	"
५९१	—	शामदेवो गीतमः	विश्वेदेवाः	एकपाद्भगती
५९२	९।३१।१३	अमहीश्वरागिरसः	यवमानः सोमः	गायत्री
५९३	९।६१।११	अमहीश्वरागिरसः	"	"
५९४	—	आत्मा	अस्य	त्रिष्टुप्
( २ )				
५९५	८।९३।१३	भृत्कन्वा आगिरसः	इन्द्रः	गायत्री
५९६	९।८२।३	यजिन्न आगिरसः	यवमानः सोमः	जगती
५९७	१।७।९	अपुच्छन्वा वेद्वामित्रः	इन्द्रः	गायत्री
५९८	१।७।४	अपुच्छन्वा वेद्वामित्रः	"	"
५९९	१०।१८।११	प्रभो यासिष्ठः	विश्वेदेवाः	त्रिष्टुप्
६००	४।४१।९	युत्समदः क्षीनकः	यपुः	गायत्री
६०१	८।८९।५	युनेष्यपुमेयावागिरसी	इन्द्रः	अनुष्टुप्
( ३ )				
६०२	—	शामदेवो गीतमः	प्रजापति	अनुष्टुप्
६०३	१।९१।१८	गीतमो राहूगन्धः	सोमः	त्रिष्टुप्
६०४	१।९१।२९	गीतमो राहूगन्धः	"	"
६०५	१।१।१	अपुच्छन्वा वेद्वामित्रः	अग्निः	गायत्री
६०६	४।११।६	शामदेवो गीतमः	"	त्रिष्टुप्
६०७	९।३५।३	युत्समदः क्षीनकः	अपानपातु	"
६०८	—	शामदेवो गीतमः	रश्मिः	अनुष्टुप्
६०९	६।८।१	भरद्वाजो बाह्मिष्ठ्यः	अग्निः	जगती
६१०	६।५१।१४	ऋजिश्वा भारद्वाजः	विश्वेदेवाः	"
६११	—	शामदेवो गीतमः	स्मिणोषताः	महापञ्चितः
६१२	१।३१।१	हिरण्यस्तूप आगिरसः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
६१३	३।१६।७	विन्वामित्रो याजिन्ः ( बह्व )	अरुणः अग्निर्वा	"
६१४	३।१।१	विन्वामित्रो याजिन्ः ( बह्व )	अग्निः	"

## पष्ठ अध्याय ]

## सामवेदका सुवोष अनुवाच

मंत्रांस्या	श्रुवेदस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
		( ४ )		
६१५	—	धामदेवो गीतमः	अग्निः	पंक्तिः
६१६	—	धामदेवो गीतमः	"	"
६१७	१०१७०१	नारायणः	पुरुषः	अनुष्टुप्
६१८	१०१७०४	नारायणः	"	"
६१९	१०१७०७	नारायणः	"	"
६२०	१०१७०९	नारायणः	"	"
६२१	१०१७०५	नारायणः	शापापुषिनी	विष्टुप्
६२२	—	धामदेवो गीतमः	इन्द्रः	अनुष्टुप्
६२३	—	धामदेवो गीतमः	"	"
६२४	—	धामदेवो गीतमः	"	विष्टुप्
६२५	—	धामदेवो गीतमः	"	"
६२६	—	धामदेवो गीतमः	"	"
		( ५ )		
६२७	१०१७०९	शत मेषानसः	अग्निः वसवानः	गायत्री
६२८	१०१७०११	विजिह्वः सौर्यः	सूर्यः	जपती
६२९	१०१७०१२	कुत आगिरता	"	विष्टुप्
६३०	१०१७०१३	सर्पराज्ञी	सूर्यः अतस्मा वा	गायत्री
६३१	१०१७०१४	सर्पराज्ञी	"	"
६३२	१०१७०१५	सर्पराज्ञी	"	"
६३३	११५०१२	प्रस्कण्यः	सूर्यः	"
६३४	११५०१३	प्रस्कण्यः	"	"
६३५	११५०१४	प्रस्कण्यः	"	"
६३६	११५०१५	प्रस्कण्यः	"	"
६३७	११५०१६	प्रस्कण्यः	"	"
६३८	११५०१७	प्रस्कण्यः	"	"
६३९	११५०१८	प्रस्कण्यः	"	"
६४०	११५०१९	प्रस्कण्यः	"	"
		अथ महानाम्न्याचिकः ।		
६४१	—	प्रजापतिः	इन्द्रश्चैतोरवासा	
६४२	—	प्रजापतिः	"	
६४३	—	प्रजापतिः	"	
६४४	—	प्रजापतिः	"	
६४५	—	प्रजापतिः	"	
६४६	—	प्रजापतिः	"	
६४७	—	प्रजापतिः	"	
६४८	—	प्रजापतिः	"	
६४९	—	प्रजापतिः	"	
६५०	—	प्रजापतिः	विष्णोस्तः	





# सामवेदका सुबोध अनुवाद

( उत्तरसंहिता ) उत्तरार्चिकः ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ अस्तिः काश्यपो देवको वा; २ काश्यपो भारीयः; ३ सप्तं संशामसः; ४, २१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५, ७ विश्वामित्रो वायिनः; ५ जमदग्निर्वा; ६ इरिग्विष्टिः काश्यः; ८ अमहीयुरागिरसः; ९ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ काश्यपो भारीयः; ३ शीतमो राहुगणः; ४ अत्रिर्गोवः; ५ विश्वामित्रो वायिनः; ६ जमदग्निर्वाग्यः; ७ वसिष्ठो मीमांसकः ); १० उग्रनाः काश्यः; ११ वसिष्ठो मन्त्रावर्णिः; १२ कामदेवो शीतमः; १३ नोषा शीतमः; १४ कर्मिः प्रागायः; १५ मयुचक्रवा वीरवामिनः; १६ गौरवीतिः शापत्य; १७ अग्निदवाधुपः; १८ मण्योगुः श्वावारिचः; १९ कविर्गोवः; २० क्षमुर्बार्हस्पत्यः ( तुलवाधि. ) २२ सोमर्षिः काश्यः; २३ नृपेयः आगिरसः ॥ १-९, ८-१०, १५-१९ पवमानः सोमः; ४, २०, २१ जग्निः; ५ मित्रावरुणी; ७ इन्द्राग्नी; ९, ११-१४, २२-२३ इन्द्रः ॥ १-८, १२ ( १-२ ), १५, १८ ( २-३ ), २१ गायत्री; ९, ११, १३, १४, २० प्रवायः = ( विद्यया बृहती, समा सती बृहती ); १० त्रिव्युः १२ ( ३ ) सोमविष्णुः १६, २२ काकुमः प्रवायः = ( विषया ककुपु समा सती बृहती १७ उष्णिहः; १८ ( १ ) अनुष्टुप्; १९ जपती; २३ ( १ ) ककुपु, ( २ ) उष्णिह ( ३ ) पुर उष्णिह ॥

६५१ 'उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अग्निं देवाँश्च इयक्षते ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१ )

६५२ अग्निं व मधुना पयोधर्वाणो अग्निश्रपुः । देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।२ )

[ १ ] प्रथमः प्रपाठः ।

[ ६५१ ] हे (नरः) अश्विनो ! ( देवान् अग्निं इयक्षते ) देवोंके लिए हुवन करनेकी इच्छावाले ( पवमानाथ भस्मि इन्दवे ) बृह होनेवाले इस सोमकी ( उप गायत ) तुम स्तुति करो ॥ १ ॥

सोमरसको छानकर तैय्यार करते उससे देवोंके लिए हुवन किया जाता है । उसे छानते हुए पद करनेवाले उस सोमके लिए स्तोत्रोंका गायन करते हैं ।

[ ६५२ ] ( ते देवयु देवं ) तेरे देवोंकी लिए अग्निवाले दिव्य रसको ( देवाय ) इन्द्रदेवके लिए ( मधुना पयः ) मोठे दूधके साथ ( अयर्वाणः ) अथर्वदेवके अश्विनो ( अग्नि-अग्निश्रपुः ) भिलाया है ॥ २ ॥

दिव्य सोमरस देवोंको दिये जानेके लिए गायके मोठे दूधके साथ मिलाकर उसे अश्विनो तैय्यार करते हैं । अथर्वदेवोपगत अग्निवाले सोमरसको दूधके साथ भिलाते हैं ।

१ [ साम. द्वितीया. २ ]

६५३ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय श्रमवेते । शशराजशोषधीभ्यः ॥ ३ ॥ १ ( ती ) ॥

( ऋ. ९।१।१२ )

६५४ दविद्युतत्या रुचा परिष्टोमन्त्या रुपा । सोमाः शुक्रा गवाक्षिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।२८ )

६५५ हिन्वानो हेतुभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रीमत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६४।२९ )

६५६ श्रधक्सोम इत्यस्त्ये संजगमानो दिवा कवे । पवस्व सूर्यो द्यौ ॥ ३ ॥ २ ( यि ) ॥

( ऋ. ९।६४।३० )

६५७ पवमानस्य ते कवे वाजितसर्गा अस्तुवत । अर्धेनो न अवस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६६।१० )

[ ६५३ ] हे ( राजन् ) तेजस्वी सोम ! ( सः ) यह तू ( सः गवे शं ) हमारी गायोंका कल्याण कर, ( जनाय शः ) पुत्रपौत्रोंका कल्याण कर ( अनेक शं ) हमारे घोड़ोंका कल्याण कर और ( शोषधीभ्यः शं ) शीर्षमयोका कल्याण कर, तथा ( पवस्व ) तू स्वयं भी छाया आकर बृद्ध हो ॥ ३ ॥

सोम पाय, घोड़े, पुत्रपौत्र और शीर्षमयोंका हित करे और वह स्वयं भी छनकर पवित्र होवे ।

[ ६५४ ] ( दविद्युतत्या रुचा ) तेजस्वी कान्तिसे युक्त और ( परिष्टोमन्त्या ) शय्य करनेवाली पारासे युक्त ( शुमाः सोमाः ) स्वच्छ सोमरस ( गवाक्षिरः ) गायके दूधमें मिलाकर संध्याकर किये गये हैं ॥ १ ॥

सोमरस बनकता है और पार बाधकर छाया जाता है, सब शय्य होता है, उसमें पायका दूध मिलाकर उसे संध्याकर किया जाता है ।

[ ६५५ ] ( घाजी ) बलवर्धक सोमरस ( हेतुभिः हिन्वाः ) लोताभोंसे प्रशमित होता है, ( हिताः ) वह हित करनेवाला ( वाजं अज्रमीत् ) यन्में चलता जाता है, ( यथा ) जित प्रकार ( वनुषः सीदन्त ) मुड़ करनेवाले वीर मुड़भूमिमें आक्रमण करते हैं ॥ २ ॥

सोमरसके स्तोत्र पाये जाते हैं, और उसका रस निचोटा जाता है । बारमें यह सोम सबका हित करनेवाला होकर यन्में उसी प्रकार प्रविष्ट होता है, जित प्रकार घोड़ा शत्रुवर आक्रमण करनेके लिये मुड़भूमिमें प्रविष्ट होते हैं । सोम पीनेके बाद उत्साह बढ़ता है और उलते बीरोंकी वीरता भी बढ़ती है । वे वीर शत्रुओंपर आक्रमण करके घातकी होते हैं ।

[ ६५६ ] हे ( कवे सोम ) जागी सोम ! तू ( सूर्यः ) सूर्यके समान ( श्रधक् ) ऊपर बाधपर ( संजगमानः ) तेजसे युक्त होकर ( इत्यस्त्ये द्यौ ) सबके कल्याणके लिये ( दिवा ) दिव्य प्रकाशसे युक्त होकर ( पवस्व ) प्रजता जा ॥ ३ ॥

सोमरससे ज्ञानयुक्त उत्साह बढ़ता है । जैसे सूर्य ऊपर चढ़ता-चढ़ता तेजस्वी होता है, उसी प्रकार सोमरसकी चपक बढ़ती जाती है । सोमरससे सबका कल्याण होता है, तेज और उत्साह बढ़ता है ।

[ ६५७ ] हे ( कवे वाजिन् ) जावी और बलवर्धक सोम ! ( पवमानस्य ते ) छाये गलेवाले तेरी ( श्रवस्ययः सर्गाः ) पवस्वी पारा ( अर्धेनो न ) घोड़े जैसे मुड़तालते बाहुर घेपते दोड़ते हैं, उसी प्रकार ( अस्तुवत ) चलनेमें गिरती है ॥ १ ॥

सोमरस ज्ञान और बल बढ़ाता है, छानते समय उसकी पारा छानपीते चौपेके बर्तनमें उसी प्रकार गिरती है, जित प्रकार घोड़े मुड़तालते बाहुर आकर दोड़ते हैं । घोड़े जित प्रकार घेपते दोड़ते हैं, उसी प्रकार सोमरस पारा ऊपरकी छानपीते चौपेके बर्तनमें गिरती है ।

६५८ अच्छा कोशं मधुवसुतमसुधं वारे अन्वये । अवावशन्त यीतयः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।११ )

६५९ अच्छा समुद्रमिन्द्वोऽस्ते गावा न धेनवः । अग्नन्तस्य योनिरा ॥ ३ ॥ ३ ( कौ ) ॥  
( ऋ. १।६।१२ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

६६० अम आ याहि वीतये गुणानां हव्यदातये । नि होता ससि वर्हिषि ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१० )

६६१ ॥ स्वा समिद्धिरक्षिरो धृतेन वर्षयामसि । युहच्छाचा ययिष्ठय ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।११ )

६६२ स नः पूषु अवाप्यमच्छा देव विवाससि । युहदये सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।१६।१२ )

६६३ आ नो मित्रावरुणा धृतेर्षेण्युतिशुस्रतम् । मध्या रजाधसि सुकृत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१३ )

[ ६५८ ] ( मधुवसुतं कोशं अच्छा ) कोश रस निधनं भय जाता है, उस कलसमें ( अन्वये दाते ) भेङ्के पालते घनी छलनीसे हव्य सोमरसको ( असुप्तं ) छानते हैं, ( यीतयः ) हवारी उगलियां ( अवावशन्त ) धारधार बचाकर रस निचोड़नेकी इच्छा करती हैं ॥ २ ॥

धतंनके अगर भेङ्के बातमि घनी छलनी होती है, उसमें रस छाया जाता है और वह पीचके कलसमें गिरता है । हमारी उगलियां सोम हवाकर रस निचोड़नेका प्रयत्न करती हैं ।

[ ६५९ ] ( हव्यदातः ) सोमरस ( समुद्रं ) नल्युक्त कलसमें ( गावः धेनवः अस्ते ज्ञातस्य योनिं न ) जिस प्रकार बलती हुई गाँव अपने घर अर्थात् दत्तस्थानमें ( आ यग्मन् ) जाती हैं, उसी प्रकार ( अच्छा ) पीया जाता है ॥ ३ ॥

सोमरस पायीसे युक्त कलसमें छाया जाता है, वे सोमरसके प्रवाह कलसमें उसी वेधते जाते हैं, जिस देवने गाँव अपने स्थानमें जाती हैं ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ६६० ] हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! तू ( गुणानः ) स्तुतिके बाध ( यीतये ) एवं हव्योंके भक्षण करनेके लिए और ( हव्य-दातये ) हवि देवीको मनुवानेके लिए ( आ याहि ) या, हमारे यज्ञमें ( होता ) देवीको बुलानेवाला होकर ( वर्हिषि नि गसि ) आसनपर बैठ ॥ १ ॥

[ ६६१ ] हे ( अग्निः ) सुदूर जाने ! ( तं स्वा ) उस तुझे ( समिद्धिः ) गविषाग्नि और ( धृतेन ) पीते ( वर्षयामसि ) हम प्रवर्जित करते हैं, हे ( ययिष्ठय ) तरुण अग्ने ! ( युहस्त दोषः ) तू अपवित्र प्रकाशित हो ॥ २ ॥

[ ६६२ ] हे ( देव ) तेराही अग्निदेव ! ( सः ) वह तू ( पूषु अवाप्यं ) बहुत पनरपी ( युहस्त सुवीर्यं ) महार वीर्यवान् करनेवाले सामर्थ्य ( नः ) हमें ( अच्छा विवाससि ) सरलतासे प्राप्त हों ऐसा कर ॥ ३ ॥

[ ६६३ ] हे ( सुयवः ) उत्तम करनेवाले ( मित्रा-वरुणा ) मित्र और वरुण देवों ! ( नः गज्युनिं ) हमारे गाण्डे स्थानको ( धृतेः आ उक्षतं ) पीते लीची, और ( मध्या ) पीते रसते ( रजाधसि ) राजा लीच-दूधरे सोरहे स्थानको उत्तम रीतिसे सिंचित करो ॥ १ ॥

हमें गाण्डे भरदूर पी पीते और सब स्थानोंपर पीडा अग्ररस प्राप्त हो ।



६६४ उरुध॑सा नमो॑वृ॒धा म॒हा दक्ष॑स्य राज॒यः । द्राघि॑ष्ठाभिः शुचि॑यता ॥२॥ ( ऋ. ३।६।१७ )

६६५ गृ॒णाना॑ जमदग्नि॒ना यो॒नावृ॑तस्य सीद॒तम् । पात॑स्य सोम॒मृता॑वृ॒धा ॥ ३ ॥ ५ ( पि ) ॥  
( ऋ. ३।६।१८ )

६६६ आ याहि॑ सु॒पुमा॑ हि त इन्द्र॑ सोमं पि॒बा इमम् । एदं॑ वरि॑हः सदो॒ मम ॥१॥ ( ऋ. ८।१७।१ )

६६७ आ स्वा॑ ब्रह्म॒पुजा॑ हरी॒ बह॑तामिन्द्र॑ के॒शिना॑ । उप॑ ब्रह्मा॒णि नः॑ गृ॒णु ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१७।२ )

६६८ ब्रह्मा॑णस्त्वा यु॒जा व॑ष॒स्य सोम॑पा॒मिन्द्र॑ सोमि॒नः । सु॒ताव॑न्तो हवामहे ॥ ३ ॥ ६ ( फौ ) ॥  
( ऋ. ८।१७।३ )

६६९ इन्द्रा॑ग्नीं आ गत॑स्य सु॒ते गो॑मि॒र्नभो॑ वरे॒ण्यम् । अ॒स्य पा॑तं वि॒येपि॑ता ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१।१ )

६७० इन्द्रा॑ग्नी जरि॒तुः स॒खा य॑ज्ञो जि॒गापि॑ चेत॒नः । अ॒या पा॑तमि॒मस्य॑ सु॒तम् ॥२॥ ( ऋ. ९।१।२ )

[ ६६४ ] हे ( द्राघि-ब्रता ) हे सुद कर्म करनेवाले मित्रावली ! ( उरुधोसा ) बहुत प्रशस्ति और ( नमो वृधा ) हविष्प्राप्तसे बढ़नेवाले पुत्र ( द्राघिष्ठाभिः ) बहान् स्तुतिसे प्रशस्ति होकर ( दक्षस्य महा राजयः ) अपने बलके माहात्म्यसे शोभित होते हो ॥ २ ॥

[ ६६५ ] हे मित्रावली ! ( जमदग्निना ) जमदग्नि ऋषिके द्वारा ( गृणाना ) स्तुति किए गए पुत्र दोनों ( ऋतस्य योमी ) यज्ञके स्थानपर ( सीदतं ) बँधे, और ( ऋता-वृधा ) पत्नी बहानेवाले पुत्र दोनों ( सोमपातं ) सोमरस पियो ॥ ३ ॥

[ ६६६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आ याहि ) आ, हमने ( ते ) तेरे लिए ( सुपुमा हि ) सोमरस निकाला है, ( इम सोम पिब ) यह सोमरस पी, और ( मम इदं वरिहः आ सदः ) मेरे इस आसनपर बैठ ॥ १ ॥

[ ६६७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ब्रह्म-पुजा ) मम मोलते ही रथमें चढ़ जानेवाले ( केशिना हरी ) अयाववाले रीतों पीछे ( स्वा अवहतां ) तुझे यहाँ के बाँधे, और यहाँ आकर तू ( यः ब्रह्माणि ) हमारे स्तोत्र ( उप गृणु ) वातते पुन ॥ २ ॥

[ ६६८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सोमिनः ) सुतावन्तः वषस्य सोमयस करनेवाले और सोमरस तैय्यार करनेवाले हम ( ब्रह्माणः ) शानीयस्तकर्ता ( सोमपां स्वा ) सोमरस पीनेवालेपुत्र ( युजा हवामहे ) योग्य स्तोत्रोंसे बृल्लते ॥ ३ ॥

[ ६६९ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( गोमिः ) स्तोत्रोंसे प्रशस्ति ( नभः आगतं ) आकाशसे अवर्षित पर्वतके ऊँचे शिखरसे आया हुआ यह ( वरेण्यं ) श्रेष्ठ सोमरस है ( विप्या हपिता ) बुद्धिसे प्रेरित किए गए पुन ( अस्य पातं ) इसका पान करो ॥ १ ॥

सोमलता पर्वतके ऊँचे शिखरसे काँई जाती थी, इसलिये उसे “ नभः आगतं ” आकाशसे आया हुआ सोम ऐसा कहा गया है ।

[ ६७० ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! पुत्र ( जरितुः सखा ) स्तुति करनेवालेके सहपात्र होवो, ( यज्ञः चेतन विप्राति ) जिनसे पत्र होता है, और जो चेतना-स्कृति देता है, यह सोम पुनर् प्राप्त होता है, ( अया ) स्तुतिसे बृल्लये गये पुन ( इमं सुतं पातं ) इस सोमरसका पान करो ॥ २ ॥

६७१ इन्द्रमग्निं कावेन्दुदा यज्ञस्य जूत्या घृणे । ता सोमस्येह हृष्यताम् ॥ ३ ॥ ७ ( ता ) ॥

( ऋ. १।१।३३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

६७२ उद्यां ते जातमन्वसो दिवि सद्रूपा ददे । उग्रं धर्मं महि श्रवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१० )

६७३ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भूषः । परिबोवित्परि सव ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।१२ )

६७४ एना विशान्यर्थ आ पुमान् मानुषाणाम् । सिपासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥ ८ ( टी ) ॥

( ऋ. ९।१।११ )

६७५ पुनानः सोमं शरयापो वसानो अर्पसि ।

आ रतघा योनिमुत्तस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्यपः

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७४ )

[ ६७१ ] ( यज्ञस्य जूत्या ) यज्ञो मेरित होकर ( कथिच्छदा ) स्तुति करनेवालोंसे योग्य फल देनेवाले इन्द्र और अग्नि देवोंकी ( घृणे ) मैं स्वीकार करता हूँ, ( ता इह ) ये दोनों इस यज्ञमें ( सोमस्य हृष्यतां ) सोमरसके पाकसे युक्त होंगे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ६७२ ] हे सोम ! ( ते मग्ध्यसः ) तेरे अन्नरूपी सोमका ( दिवि उद्यां जातं ) धुलीपत्रों ऊँचे स्थानपर जन्म हुआ है, तेरे ( उग्रं सत् ) शीर्षकी बड़ावैकाले ( धर्मं महि श्रवः ) सुख देनेवाले महान् यज्ञवाले मन्त्र ( भूमिं आवदे ) भूमिपर हृम प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

सोमलता हिमालय पर्वतकी मीनबान् घामक ऊँची चोटीपर उगती है, वहासे वह पृथ्वीपर लाई जाती है, और यज्ञमें उसका प्रयोग किया जाता है, उस सोमलताका रस क्षवितवर्षक, सुखदणक और पुष्टि करनेवाला है ।

[ ६७३ ] हे ( परिबो-वित् ) वन देनेवाले सोम ! ( सः ) वह तू ( नः यज्यवे ) हमारे पूज्य ( इन्द्राय वरुणाय ) इन्द्र, वरुण और ( मरुद्भूषः ) मरुतोंके लिए ( परिभूष ) छन्ता जा ॥ २ ॥

[ ६७४ ] हे सोम ! ( मानुषाणां ) मनुष्यों द्वारा प्राप्त करने योग्य ( एना विशानि पुमानि ) ॥ तारे पत्नीकी ( आ अर्थः ) प्राप्त करके तेरी ( सिपासन्तः ) सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले हम ( वनामहे ) तेरा भजन करते हैं ॥ ३ ॥

[ ६७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनानः ) छाना जाता हुआ तू ( आपः वसानः ) पानीमें मिलकर हुआ ( शरया अर्पसि ) शर वायुकर बर्तनमें गिरता है । ( रतघा ) रत्नोंकी जेबाला और ( उत्तः देयः ) अलक्षसे धमकनेवाला ( हिरण्यपः ) सोनेके शानन तेजस्वी तू ( मरुत्स्य योनिं वासीदसि ) यज्ञके स्वादपर बैठता है ॥ १ ॥

सोमरस पानीमें मिलकर जाता है, फिर वह छन्तीसे छाना जाता है, तब वह, धमकता है, ऐसा यह सोम यज्ञमें रसा जाता है ।

६७६ दुहान ऊर्ध्वदिग्धं मधु मित्रं प्रतः सधस्थमासदत् ।

आपृच्छये वरुणं वाज्ययसि नृमिषातो विनसुणः ॥ २ ॥ ९ (हु) ॥ (ऋ. १।१०७।९)

६७७ प्र तु द्रव परि कोशे नि यीद नृभिः पुनानो अभि वाजमय ।

असं न स्वा वाजिनं मज्जयन्तोऽच्छा बर्ही रक्षनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥ (ऋ. १।८७।१)

६७८ स्वायुधः पवते देव इन्दुरश्वस्तिहा पुजना रक्षमाणः ।

पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥ (ऋ. १।८७।२)

६७९ ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृध्वीर उल्लना काव्येन ।

स चिक्षिदेद निहितं पदासामधीच्याइः शुशं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥ १० (हु) ॥ (ऋ. १।८७।१०)

॥ इति तृतीयः पञ्च ॥ ३ ॥

[ ६७६ ] ( मधु मित्रं दिग्ध ऊर्ध्वः ) पीठे, मित्र और विष्णुरसको ( दुहानः ) दुहनेवाला यह सोम ( प्रतं स्वर्ग्यं ) प्राचीन यज्ञस्थानपर ( आसदत् ) बंट गया है, उसके बायमें ( याजो ) बलवर्धक सोम ( नृभिः घौतः ) यज्ञकर्त्ताओं द्वारा छाना गया है, यह ( विनसुणः ) वितोषकसे निगीसण करनेवाला सोम ( आपृच्छये वरुणं ) प्रशंसनीय यज्ञको धारण करनेवाले यज्ञमानकी ( अश्वि ) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

पर्यन्तसे सोम यज्ञशालामें लाया जाता है, यज्ञकर्त्ताओं द्वारा उसका रस निकालकर वह छाना जाता है उसके बाद वह यज्ञ करनेवाले यज्ञमानके पास पहुँचाया जाता है ।

[ ६७७ ] हे सोम ! तू ( तु म द्रव ) सीम खोदकर आ, ( कोशे परि निपीद ) कलामें आकर भर जा ( नृभिः पुनानः ) याजकसे छाना जलके बाद ( याजं अभि अर्प ) हविरूप अन्न होकर रहे, ( वाजिनं अयं न ) बलवान् घोड़ेको जिस प्रकार स्वेच्छ करते हैं, उसी प्रकार ( स्वा मज्जयन्तः ) तुझे धुँड करनेवाले ऋषियन ( बर्ही ) अच्छ ( उल्लना ) यज्ञ स्थानके पास ( रक्षनाभिः ) अगुमियसे तुझे ( नयन्ति ) ले जाते हैं ॥ १ ॥

सीमरस छानकर साफ किया जाता है, घोड़ेको जिस प्रकार साफ करते हैं, उसी प्रकार सीमरसको साफ करते हैं, और बायमें यज्ञस्थानके पास ले जाते हैं और वहाँ उसका हवन करते हैं ।

[ ६७८ ] ( स्वायुधः ) उत्तम वास्त्रास्त्रोंसे युक्त ( अ-श्वि-न-हा ) वायुकर गता करनेवाला ( पुजना ) उग्रद्वीकी दूर करनेवाला, ( रक्षमाणः ) रक्षण करनेवाला ( पिता ) पालन करनेवाला ( देवानां जनिता ) देवोंको उत्पन्न करनेवाला ( सु-द्रव्यः ) उत्तम बलवान् ( दिवः विष्टम्भः ) छलोकको आपरा देनेवाला ( पृथिव्या, धरुणः ) पृथिवीको धारण करनेवाला ( देव इन्दुः पवते ) दिव्य सोम छाना जाता है ॥ २ ॥

सीमरस बल और उत्साह बढ़ानेवाला होनेके कारण ऊपरके विदोषण आर्वाकारिक रूपसे उसे दिए गए है ।

[ ६७९ ] ( विप्रः पुरः एता ) क्षात्री और आगे आगे चलनेवाला ( जनानां ऋतुः ) लोगोंने तेजस्वी नेता ( वीर उशाना ऋषिः ) धर्मवाली उशाना ऋषि है, ( स चिक्षुः ) यह ही ( आसां गोनां ) इन पापीयों रहनेवाला ( यत् अपीर्यं शुशं नाम ) जो मूलरूपसे द्रव्य है, उसे ( काव्येन विवेद ) काव्यकी सहायतासे जानता है ॥ ३ ॥

भीरोंमें जो गुप्तस्वरूपसे रहनेवाला उत्तम द्रव्य है, उसे उशाना ऋषिने जान लिया और नेता होनेके कारण उसे सब अनुष्मोंको बताया ।

॥ यहाँ तीसरा पञ्च समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

६८० अभि त्वा शूर नोनुमोऽनुग्धा हव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वर्देशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥ ( ऋ ७।२।१२ )

६८१ न स्वावाध अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

अस्वायन्तो मघवाभिन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥ ११ ( यी ) ॥

( ऋ ७।२।१३ )

६८२ कया नधिष आ भुवदती सदाधुधः सखा । कया अचिष्टया वृता ॥ १ ॥ ( ऋ ४।१।१ )

६८३ कस्तवा सत्यो मदानां मरुद्दिहो मत्सदन्धतः । ददा चिदाकं वसु ॥ २ ॥ ( ऋ ४।१।२ )

६८४ अमी पु णः सरतीनामपिठा जरितृणां । शतं मवास्पृते ॥ ३ ॥ १२ ( डा ) ॥

( ऋ ४।१।३ )

६८५ तं यो दसमुत्तीरहं वसोर्मेन्दानमन्धसः ।

अभि घत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्र गीर्भिर्नरामहे ॥ १ ॥ ( ऋ ८।८।१ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ६८० ] हे ( इन्द्र ) धूर्तवीर इय । ( अ-नुग्धाः धेनवः इय ) न इहो यदि गव्यं जित प्रकार यज्जहेके पात पानी हे, उसी प्रकार हव ( अस्य जगतः ईशानं ) इस जनम जगत्के स्वामी और ( तस्थुषः ईशानं ) स्वामीर जगत्के स्वामी ( स्वः ददां त्वा ) स्वय समीप दान करनेवाले तुम ( अभितोनुमः ) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

[ ६८१ ] हे ( मघयन् ) पनयान् इन्द्र । ( स्वायान् ) वेरे सवाय ( अन्यः ) दूसरा कोई भी ( दिव्यः न ) धुत्कोर्म नहीं है, और ( पार्थिवः न ) धूमोपर रहनेवाला भी नहीं है, ( न जातः ) न कोई हुआ और ( न ) जनिष्यते ) न कोई होगा, है ( इन्द्र ) इन्द्र । ( अग्रजयमनः ) धीर्योकी इच्छा करनेवाले ( धाजिसः ) पनकी इच्छा करनेवाले ( मन्धसः ) गायकी इच्छा करनेवाले हम ( त्वा हवामहे ) तेरी प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[ ६८२ ] ( सदा-धुधः ) सदा यवनेवाला ( चिष्टः सखा ) विलक्षण मित्र यह इन्द्र ( कया ऊती ) कीन कीनसे तरलपणे लाभको ( अचिष्टया कया वृता ) और कीनसे अकितले भुक्त होकर ( नः अदभुषत् ) हमारे पात आयुष ? ॥ १ ॥

[ ६८३ ] ( मरुद्दिहः ) महान् ( सधः ) सत्यकर्म करनेवाला और ( मदानां वः ) आनन्द देनेवालोंमें नैन भला विषय आनन्द देनेवाला है ? ( अन्धसः ) सोमरस ऐसे आनन्दका देनेवाला है, क्योंकि वह ( ददा चिदाकं वसु आरजे ) शुद्ध रहनेवाले अनुजोंके धनको धनष्ट करनेके लिए ( त्वा मत्सत् ) तुम उस्ताहित करते हैं ॥ २ ॥

[ ६८४ ] ( सरतीनां जरितृणां ) अपने मित्र स्तोताओंकी तृ ( अजिता ) रक्षा करनेवाला है, इसलिए ( नः ) हमारी ( शतं ऊतये ) संकटों प्रकारकी रक्षा करनेके लिए ( सु अभि भवासि ) उत्तम प्रकारसे तैयार होकर सामने स्थिर रह ॥ ३ ॥

[ ६८५ ] ( स्वसरेषु ) गीशालयोंमें ( घत्सं धेनवः इय ) यज्जहेके पात जित प्रकार गव्यं जाता है, उसी प्रकार ( दसं ) धनोप और ( त्रुतीरहं ) अनुको हरानेवाले ( वसोः अन्धसः मन्धानं ) पात्रमें रखे हुए सोमरससे आनन्दित होनेवाले ( वः तं इन्द्रं ) कुन्हारे उस इन्द्रकी ( गीर्भिः नयामहे ) स्तोत्रोंसे हव स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

६८६ सुध३ सुदानुं३ तविपीमिरावृत्तं३ मिरिं३ न पुरुमाञ्जसम् ।

धुमन्तं३ वाज३ स्रतिनं३ सहस्रिणं३ मक्षु३ गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥ १३ (ही) ॥ (ऋ ८।८।२)

६८७ तरोभिर्वा३ विद्वसुभिन्द्र३ सवाध३ ऊतये ।

वृद्धा३यन्तः३ सुतसोमे३ अश्वरे३ हुवे३ भरे३ न कारिणम् ॥ १ ॥ (ऋ ८।६।१)

६८८ न यं३ दुधा३ वरन्ते३ न स्थिरा३ मुरो३ मदेषु३ श्रिमन्धसः ।

य३ आ३र३त्मा३ शश३मानाय३ सुन्वते३ दाता३ जरित्र३ उक्थ्यम् ॥ २ ॥ १४ (सु) ॥ (ऋ ८।६।२)

॥ इति चतुर्थं खण्ड ॥ ४ ॥

[ ५ ]

६८९ स्वादिष्टया३ मदिष्टया३ पवस्य३ सोम३ धारया३ । इन्द्राय३ पातये३ सुतः ॥ १ ॥ (ऋ ९।१।१)

६९० रशोहा३ विश्व३चर्षणि३रभि३ योनि३मयो३हते । द्रोणे३ सव३स्यमा३सद् ॥ २ ॥ (ऋ ९।१।२)

[ ६८६ ] (सु-ध३) सुलोकोमें रहनेवाले (सु-दानुं) उत्तम दान देनेवाले (तविपीमिः आधुत्तं) अनेक सामर्थ्योत्त युक्त और (पुह-भोजसं) बहुत भोजन करनेवाले इन्द्रके पासते (धुमन्तं) पोषण करनेवाले (श्रतिनं सहस्रिणं) संकर्मों और हजारों घनते युक्त (गोमन्तं वाजं) गायोते उत्पन्न किए गए (मक्षु ईसहे) सीमा मिले ऐसी इच्छा हम करते हैं ॥ २ ॥

[ ६८७ ] हे कोवर्षी ! (यः) तुम (सुतसोमे अश्वरे) सोमयागमें (तरोभिः) वैषवायु अश्वोंके साथ रहनेवाले (विद्वसु इन्द्रं) घनके दान करनेवाले इन्द्रके लिए (स-वाधः) अशुभोत्ति (ऊतये) रक्षणके लिए (वृद्धा यान्तः) बहुत नामके सामका गमन करके (भरे न) भरण पोषण करनेवाले जिस प्रकार बुलाये जाते हैं, उसी प्रकार (कारिणं हुवे) हित करनेवाले इन्द्रको मैं सहायताार्थ बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[ ६८८ ] (सु-शिमं यं) सुन्दर ठोड़ीवाले इस इन्द्रको (दु-ध्याः न वरन्ते) कुछ धूर अथवा भी नहीं हटा सकते, (स्थिरा न) मृद्धमें स्थिर रहनेवाले धूर भी इन्द्रको नहीं हटा सकते, (मुरः) मरनेवाले शत्रु भी उत्तका निवारण नहीं कर सकते, ऐसा (यः) जो इन्द्र है, वह (अन्धस मदे) सोमरसके अलन्दमें (आहृत्य शाशमानाय) अन्धरी रतुति करनेवाले (सुन्वते जरित्रे) सोमयज्ञ करनेवाले सोतोके लिए (उक्थ्यं दाता) प्रसन्नोच मन देता ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चम खण्डः ।

[ ६८९ ] हे (सोम) सोम ! (इन्द्राय पातये) इन्द्रके पीनेके लिए (सुतः) निकाला हुआ यह सोमरस है, (स्वादिष्टया मदिष्टया धारया) स्वादिष्ट और गलन्य बदानेवाली धाराले (पवस्य) जनता जा ॥ १ ॥

[ ६९० ] (रशो-हा) रक्षाशोंका नाश करनेवाला (विश्व-चर्षणिः) सब मनुष्योंका हित करनेवाला (मयोहते द्रोणे) सोनेके बर्तनमें छनकर (सधसं योनिं) पासके गलस्थानमें (अभि आहृत्य) सोमरस जाकर भेंट गया ॥ २ ॥ सोमरसको छानकर पीनेके बर्तनमें भर दिया ।

६९१ वैरिघोषांतमो युधौ मंथदिष्टो वृत्रहन्तमः । पर्वि राषौ मेषानाम् ॥ ३ ॥ १५ (पौ) ॥  
( ऋ. ११।१२ )

६९२ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोमः कृतुविचमो मदः । महि शुश्रुतमो मदः ॥ १ ॥  
( ऋ ९।१०।१ )

६९३ यस्य ते पीत्वा वषाभो वषाघतेऽस्य पीत्वा स्वर्दिदः ।  
॥ सुषकेतो जस्यक्रमीदिपोऽच्छा वाज नेतव्यः ॥ २ ॥ १६ (प) ॥ (ऋ. १।१०।२)

६९४ इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे आतास इन्दवः स्वविदः ॥ १ ॥  
(श्रु. ९।१०६।१)

६५ अयं मराय सानसिन्ध्राय पयते मुने । सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥  
(श्र. ९।१०६।१)

६९६ अस्वदिन्द्रो मदेष्वा ग्रामं शुभ्णाति सानसिधु ।  
 वज्रं च ध्वजं भरत्समप्लुजित् ॥ ३ ॥ १७ (कि) ॥ (क ९१०६१३)

[ ६२१ ] हे सोम ! तू ( परियो-धातमः ) धन केनवाता ( मंहिष्ठः ) गहान् ( धृञ्-हन्तमः ) शत्रुणा वृषी  
 तरुणाद्यः करनवाता ( अयः ) हे, इत्थलिए ( मघोनां राद्यः परिं ) धनवान् शत्रुके पास रहनेपाले धन हमें दे ॥ १ ॥

[ ११२ ] हे तोम ! इ ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त भीता ( क्रतु-विश्व-तमः ) शब्द बर्णने के मागों को उत्तम रीतिसे  
 जाननेवाला ( मादि युक्तमगः ) महान् तेजस्वी भीरु ( मद्ः ) आकाश देतेवाला है इसलिये ( इन्द्राय मद्ः ) इन्द्रको  
 मानाज्य देने के लिए ( पयस्व ) छत्रकर संस्कार हो ॥ १ ॥

[ ६९३ ] हे सोम ! ( वृषभः ) बलवान् इन्द्र ( यक्ष्यते पोषिया ) जिस तुम पोषण ( वृषपत्ये ) अधिक बलवान् होता है, ( स्व-विद्- बभूव पोषिया ) आत्मज्ञानी भी इसे पोषण अर्पित होता है । ( सु-प्र-मेतः तः ) उत्तम तानी वह इन्द्र ( इषः ) शत्रुके अर्पणी ( एतशः चार्ज्यं अग्नि न ) जिस प्रकार घोड़ा सप्राप्तमें जाकर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार ( अश्वप्रभृतीन् ) अपने अधिकारमें करता है ॥ २ ॥

[ ६९४ ] ( श्रुते ) शीघ्र ही ( जातास्य इन्द्रवः ) तम्पार हुए, समकनेवाने और ( स्वः-विदः हरयः इमे सुताः ) शाल मदानेवाले हरे रंभके थे तोमरत ( कृपण इन्द्रं अञ्छ यन्तु ) बलवान् इन्द्रके पाश शीघ्र पहूँचे ॥ १ ॥

【 ६९५ 】 भराय वसनाय समय ( सावधिः ) सेवन करनेके योग्य ( अर्थ सुतः ) यह सोमरस (इन्द्राय सरति ) इन्द्रके लिए छाता वाता है, यह ( जैत्रस्य चेतति ) विजयी इन्द्रको उत्साहित करता है, ( यथा विदे ) वंता कि सब लोग आवते हैं ॥ २ ॥

[ ६९६ ] ( अस्मद् अवेपु ) इति सोमके आनन्वये ( सान्निधि ) सेवन करनेके योग्य ( प्राग्भू सुभणति ) पशुको एकदत्ता है, शायमे ( अप्सुजित इन्द्रः ) पत्नीके प्रवाहोको जीतनेवाला इन्द्र ( धृषणं धर्म्मं च ) मल्लार्क वज्रको ( सं भरतु ) पारण करता है ॥ ३ ॥

६९७ पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्वे ।

अप श्वानश्चयिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०।११ )

६९८ यो धारया पायकया परिप्रखन्दते सुतः । इन्दुरसो न कृन्ध्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१०।१२ )

६९९ तं दुरोपमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्वयः ॥ ३ ॥ १८ ( यि ) ॥

( ऋ. १।१०।११ )

७०० अग्निं प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यद्धो अग्निं येयु वधते ।

आ सूर्यस्य पृहतो पृहन्वाभि रषं विश्वश्चमरुद्विचक्षुषः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७।११ )

७०१ श्रुतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं भक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।

दधाति पुनः पित्रारषीण्यां देनाम त्वीयमग्निं रोचनं दिवः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७।१२ )

[ ६९७ ] हे ( सुताय ) निम्नो ! ( य. पुरोजिती ) तुम अपने आगे निम्न है ऐसा समझकर ( अन्धसः सुताय ) अश्वरूपी इस सोमरससे ( मादयित्वे ) आनन्द देनेवाला होनेके कारण आनेवाले ( दीर्घ-जिह्वयम् ) लम्बी जीमवाले कुत्तेकी ( अपदनयिष्टन ) दूर करो ॥ १ ॥

कुत्ता सोमरसको न बाड़े ऐसी सामपानी बरती ।

[ ६९८ ] ( सुतः पृहता ) सोमरस यत्नका सहायक है, ( यः इन्दु ) वह सोमरस ( पायकया धारया ) बूढ़ होनेवाली धारासे ( अदुः न ) जैसे घोड़ा जोरसे बीछता है, उसी प्रकार ( परि प्रखन्दते ) छाना जाता है ॥ २ ॥

सोमरस यत्नका सहायक है, वह बूढ़ होनेके लिए छसनीसे छाना जाता है, और नीचेके बर्तनमें अश्वद्वय पारसे छनता जाता है, घोड़ा जैसे बीछता है, उसी प्रकार वह नीचेके बर्तनमें वेगसे पिरता है ।

[ ६९९ ] ( नरः ) ऋत्विज लोग ( दुरोपः ) दुष्टोंका नाश करनेवाले ( तं सोमं अग्निं ) उस सोमके पास जाकर ( विश्वाच्या धिया ) सबके सरलज करनेकी बुद्धिसे ( यज्ञाय ) यत्नको ( सन्त्वद्वयः सन्तु ) आभारसे देसने-वाते हों ॥ ३ ॥

[ ७०० ] ( चतो-हितः ) अश्वरूपसे हित करनेवाला सोम ( प्रियाणि नामानि अग्निं पयते ) सबको तुल्य करनेवाले पानीकी पवित्र करता है, ( येयु ) जिन अर्जोमें ( यद्धो अग्निं ) वह सहाय सोम बधता है । ( पृहताः सूर्यस्य ) महान् सूर्यके ( पृहन्वाभि रषं ) सब जगह जानेवाले रश्मि ( पृहन्वाभि रक्षुषः ) सब जगह, और सब इष्टा सोम चढता है ॥ १ ॥

सोम अश्वरूप है, वह पानीमें मिलताया जाता है, तब वह पानीकी पवित्र करता है । पानी मिलानेके कारण सोमरस बढता है, सबमें वह सूर्यके रश्मिवाले रखा जाता है ।

[ ७०१ ] ( श्रुतस्य-जिह्वा ) पानी वह यत्नकी बीम है, ऐसा यह ( भक्ता ) दण्ड करनेवाला सोमरसो ( प्रियं मधु पयते ) प्रिय और मीठा रस छाना जाता है, ( अस्या धियो पति ) इस यत्नकर्मका पतन यह सोम किमीते ( अ-दाभ्यः ) न देनेवाला है, और ( पुनः ) बरमानरूपसे यह पुन ( पित्रोः अर्षीच्या ) मातापिताने नामकी न जाननेवाले ( दिवः रोचनं ) दुष्टोके प्रशस्ति करनेवाले ( त्वीयं नाम ) तोमरे नामको ( अपि दधाति ) धारण करता है ॥ २ ॥

सोमरसकी छाने जानेके समय उसका दण्ड होता है, इसलिए वह सोम बधता है । यह न दबाया जानेवाला यत्नका बीम है, यत्नके बाद इस यत्नकर्तरी " सोमवासी " यह सोमरस नाम मिलता है । यत्नकर दण्ड नाम, व्यवहारमें दण्ड नाम और यत्न करनेके कारण " सोमवासी " यह सोमरस नाम उसे मिलता है ।

७०२ अ० पु०तानः कलशाश्चिक्रदन्तृमि०मानः कोश आ हिरण्यये ।

अभी श्रतस दोहना अनूपावि निष्ठ उपसो वि राजसि ॥ ३ ॥ १९ ( दि ) ॥

( ऋ. २।७६।२ ) -

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

७०३ यज्ञायज्ञा वो अग्रये गिरागिरा च दक्षसे ।

प्रप्र घमममृतं जातयेदसं प्रियं मित्रं न शशसिषम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४।११ )

७०४ ऊर्जा नपात०स हिनायमसपुदाशेम इन्पदातये ।

सुवद्वाजेश्वरिता सुवद्वच उत प्राता तन्ताम् ॥ २ ॥ २० ( घृ ) ॥ ( ऋ. ६।४।१२ )

७०५ एषु पु प्रवाणि तसम इत्येतरा गिरा । एभिर्वर्षास इन्दुभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१६ )

७०६ यत्र कश् च ते मनो दक्षं दक्षस उचरम् । यत्र मानि कृणवसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।१७ )

[ ७०२ ] ( पु०तानः ) तेजस्वी सोम ( नृभिः ) ऋषिगो द्वारा ( हिरण्यये कोशे ) सोनेके कलशमें ( येमानः ) छाना जाता हुआ ( कलशाश्चिक्रदन्तृ ) कलशमें घम्व करता हुआ भरता है, इस समय ( यतस्य दोहनाः ) यज्ञ करनेवाले ऋषिजन सोमकी ( अभि अनूपत ) स्तुति करते हैं, हे सोम ! ( भि-पुष्टः ) क्षीन सबर्णोंमें ( उपसः अधि ) उप-नालके प्रयोगके बाद ( पिराजसि ) तू घम्वकता है ॥ ३ ॥

सोमरस ऋषिगोके द्वारा सोनेके पात्रमें छाना जाता है, वह घम्व करता हुआ गोषेके बर्तनमें गिरता है । इस समय ऋषिजन इस सोमके स्तोत्र कहते हैं । क्षीर्ण ही सबर्णोंमें यह सोमरस चमकता है ।

॥ यहाँ पाचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पष्ठः खण्डः ।

[ ७०३ ] हे स्तुति करनेवाले ऋषिगो ! ( यः ) तुम ( यज्ञायज्ञा ) प्रत्येक यज्ञमें ( दक्षसे अग्रये ) प्रवीक्ष होनेवाले अग्निकी ( गिरागिरा ) अपनी धापीसे स्तुति करो । ( यः ) और ( यव ) हम भी ( अमृतं जातयेदसं ) अमर जानी अग्निकी ( प्रियं मित्रं न ) प्रिय मित्रके समान ( प्र शशसिषम् ) प्रशसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ७०४ ] ( ऊर्जा न-पातं ) बल कम न करनेवाले अग्निकी हम स्तुति करते हैं, ( हिना सः अयं ) निश्चयसे यह यह अग्नि ( असपुः ) हमारा हित करनेवाला है, ( ह्यव-दातये दाशेम ) देवोंकी हवि पट्टवानेवाले इस अग्निकी हम हवि देते हैं, यह ( याज्ञेषु अविता ) युद्धोंमें हमारी रक्षा करनेवाला और ( वृध- ) हमारी वृद्धि करनेवाला ( भुवन् ) होवे, ( उत ) और ( तन्तां जात भुवन् ) हमारे सरीरोंका रक्षण करनेवाला होवे ॥ २ ॥

[ ७०५ ] हे अग्ने ! ( यद्दि ) या, ( ते गिराः ) तेरे स्तोत्रोंकी हम ( इत्या सु दयाणि ) इस प्रकार उत्तम रीतिसे कहते हैं, ( उ ) और ( इत्ययः ) दूसरे स्तोत्रोंकी भी कहते हैं, उन्हें तू सुन, ( यग्निः इन्दुभिः ) इन सोम-रसोंसे ( यर्षासे ) तू मदत है ॥ १ ॥

[ ७०६ ] ( ते मनः ) तेरा मन ( यत्र कश् च ) जहाँ कहीं है, ( तत्र ) वहाँ ( उचरं दक्षं ) श्रेष्ठ वक्ता ( दक्षसे ) तू स्थापन करता है, उसी प्रकार वहाँ ( योनि कृणवसे ) घरका भी निर्माण करता है ॥ २ ॥



७०७ न हि तं पृतमक्षिपद्भुवनेमानां पते । अथा हुवी वनघते ॥ ३ ॥ २१ ( यी ) ॥  
( ऋ. ६।१६।८ )

७०८ वयसु त्वामपूर्व्यं स्थूरे न कश्चिद्भ्रन्तोऽवस्रवः । वाञ्छि चित्रह्वामहे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२१।१ )

७०९ उप त्वा कर्मन्तये स नो युवाग्रयक्राम यो धृषत् ।  
रवामिष्यवितारं यवमहे सखाय इन्द्र सानसिष् ॥ २ ॥ २२ ( च ) ॥ ( ऋ. ८।२१।२ )

७१० अथा हीन्द्र गिर्वेष उप त्वा काम इमहे ससुग्रमहे । उदेव गन्त उदमिः ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।१८।७ )

७११ वार्षं त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूरं ब्रह्माणि । वावृष्णात्सं चिदद्विषो दिवैदिवे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।१८।८ )

७१२ युजन्ति हरी इषिरस्य गाधयौरौ रथं उरुयुगे वचायुजा ।  
इन्द्रवाहां सविंदा ॥ ३ ॥ २३ ( यि ) ॥ ( ऋ. ८।२८।९ )

॥ इति पठ. खण्ड. ॥ ६ ॥

इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्घ्यः ॥ १ ॥ इति प्रथमोऽर्घ्यायः ॥ १ ॥

[ ७०७ ] हे भाने । ( ते पूर्वं अधिगत् ) तेरा तेज संशोभो हानिकारक ( नहि भुयात् ) नहीं होता, हे ( नेमानां पते ) निषवीर्षे रहनेवाले मनुष्योंके स्वामिन् । ( अथाः दुयः ) अथ हमारी सेवा तु ( वनघते ) स्वीकार कर ॥ १ ॥

[ ७०८ ] हे ( अपूर्व्यं कश्चिन् ) अपूर्व बन्धुपारी इन्द्र ! ( भ्रन्तः ) तुम तोमरत वेनेवाले और ( अवस्रवः ) अपने सरासरी इच्छा करनेवाले हम ( चित्रं त्वां उ ) चित्ररूप और धेनु तुम सहायताके लिए ( कश्चिद्भ्रन्तोऽवस्रवः ) जैसे कोई मछे आलस्योकी बुलाता है उसी प्रकार ( ह्वामहे ) बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ७०९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( कर्मन् ) कर्म करते हुए ( ऊतये ) सरसभरे लिए ( उपचक्राम ) तेरे पास हम आते हैं, ( या ) जो ( धृषत् ) समुर्ध्वः पराभव करनेवाला ( युवाग्रयः ) तरुण और दूरबीर है ऐसा तु ( नो ) हमारे पास आ, ( सखायः ) हम तेरे मित्र ( सानसिः अधिवारं त्वा इव ) सेवा करने योग्य और सरसल करनेवाले तुम ही सहायताके लिए ( यवमहे ) स्वीकार करते हैं, ( हि ) अहं सभीको वात्सल्य है ॥ २ ॥

[ ७१० ] हे ( गिर्वेषः इन्द्र ) हे तुम इन्द्र ! ( अथा हि ) अब : इया वामि ईमहे ) तेरी अपनी इच्छा तुम करनेके लिए प्रार्थना करते हैं, और ( उदमः गन्तः उदमिः इव ) पानी सेजानेवाले मनुष्य जिस प्रकार पानीमें सेकते हैं, पानी प्रकार हम ( उप ससुग्रमहे ) तेरे पास आते हैं ॥ १ ॥

पानी सेजानेवाले जिस प्रकार एक दूसरेपर पानी फैलकर सेकते हैं, उसी प्रकार हम अपनी इच्छा तुम करनेके लिए इन्द्रके पास आते हैं, यह हमारी इच्छा पूर्ण करेगा, जो भी इच्छा हम इन्द्रके करते हैं, उसे वह पूरा करता है ।

[ ७११ ] ( अधिवः शूर ) हे मध्यवारी शूर इन्द्र ! जिस प्रकार ( वार्षं ) समुद्रकी ( अव्यापिः पर्वणि ) गहिरा बड़ाही है उसी प्रकार स्तुति करनेवाले ( ब्रह्माणि ) स्तोत्र वा-वाकर ( वावृष्णात्सं चित् ) महारं मछे हुए ( त्वा दिवैदिवे ) तुम प्रतिदिन बनाते हैं ॥ २ ॥

[ ७१२ ] ( इषिरस्य ) प्रथमगीत इन्द्रके ( ऊरुयुगे ) महान् बुझावने ( उदो रथे ) महान् रथमें ( इन्द्र-याहा ) इन्द्रकी जीनेवाले, ( पचो-युजा ) इन्द्रके बुझ जानेवाले ( स्य-विद् ) सब ही जानने के स्वामी जानेवाले ( हरि ) शीर्षो पीर ( गाधया युजन्ति ) स्तोत्रके बीजने ही बुझ जाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यदां छन्दोऽपठ समाप्त हुआ ॥

॥ इति प्रथमोऽर्घ्यायः ॥

## प्रथम अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्र, सोम, अग्नि, मित्र, वरुण इत्यादि देवोंके मंत्र हैं। इन देवताओंका गुणवर्णन इस अध्यायमें किया है। देवताओंके ये गुण उपासक अपने अन्तर धारण करें और वहाँमें इतनाएँ यह गुणवर्णन है। अतः वहाँ पहले हम उनके गुणोंका विचार करते हैं—

१ शुचि-मता [ ६६४ ]- शुद्ध और पवित्र वस्त्रके आचरण करनेवाले, अपवित्र आचरण कभी न करनेवाले।

२ उक्त-श्रुता [ ६६४ ]- जिसकी प्रशंसा बहुत होती है, सब लोग जिसकी प्रशंसा करते हैं।

३ नामो-वृधा [ ६६४ ]- भग्नते घटनेवाले, अपने पास बहुतसा भग्न रखनेवाले, नश्वरतासे बढ़नेवाले।

४ दक्षस्य मन्त्रा राजघः [ ६६४ ]- अपने सामर्थ्यसे विराजमान होते हैं। अपनी स्वयंकी महानतासे जो तेजस्वी होता है।

५ अता-मृधा [ ६६४ ]- घनकी बढ़ानेवाले, सत्व-मार्गसे बढ़ानेवाले, मनुष्यकी बढ़ानेवाले।

६ अतस्त्व योनी सीदतं [ ६६४ ]- घनके स्वात्मपर ईदते है, सत्यकर्तृको करनेके लिए तैय्यार रहते हैं।

७ कथि-च्छदा [ ६७१ ]- ज्ञानी जिसकी स्तुति करते हैं। बुराईओं लोग जिसका बखान करते हैं।

मित्र और वरुणके उपबर्णन गुण हैं, अब इन्द्रके गुण देखिए—

१ वृषणः इन्द्रः [ ६९४ ]- वसवान् इन्द्र है।

२ सदा-वृधः [ ६८९ ]- हमेशा बढ़नेवाला, महान् होनेवाला।

३ विश्वः सप्ता [ ६८२ ]- अद्भुत और वडा जिन, सहायक।

४ अमनु-जित् [ ६९६ ]- अतर्हिनामे विजयी होनेवाला, पानीके प्रवाहोंकी सीतकर अपने अधिवारमें रखनेवाला।

५ यजं संमरत् [ ६९६ ]- यज्य धारण करके मरता है।

६ सानर्त्तिस ग्रामे भुम्णाति [ ६९६ ]- हाथोंमें एकत्रने पोष्य मनुष्यों हाथमें धारण करके मरता है।

७ कया उज्जी कया शचिष्ठया पुता, नः आमुवत् [ ६८९ ]- कीन्से संरक्षणके साधनोंके साथ और कीन्से

सामर्थ्यसे युक्त होकर वह हमारी सहायताके लिए हमारे पास आवे ?

८ यं सु-शिर्षं पुधाः न चरन्ते [ ६८८ ]- उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले जित इन्द्रकी शीर्ष भी वृष्ट धनु हरा नहीं मरता।

९ स्थिरा यं च चरन्ते [ ६८८ ]- युद्धमें स्थिर रहने-वाले वीर भी जिते हरा नहीं मरते।

१० मुरः न चरन्ते [ ६८८ ]- वय करनेमें कुशल धनु भी जिसका पराभव नहीं कर मरते। नाश करनेमें चतुर धनुके वीर भी जिसके आगे स्थिर नहीं रह सकते।

११ देव ! सः त्वं पृथु ध्रुवाय्यं दृष्ट्वा सुधीर् यं नः शच्छ धियास्तसि [ ६९२ ]- वह तू महान् धरात्रीप्रचक्ष सामर्थ्य हमें सरलतासे मिले ऐसा कर।

१२ यजेतु अधिता [ ७०४ ]- युद्धमें हमारा रक्षण करनेवाला।

१३ वृधः-भुवत् [ ७०४ ]- हमें बढ़ानेवाला।

१४ तनुतो प्राता भुवत् [ ७०४ ]- हमारे शरीरोंका संरक्षण करनेवाला होवे।

१५ ते मन्त्रः यत्र क च, तत्र, उत्तरं दक्षं दधसे, योनिं कृणयसे [ ७०६ ]- तेरा मन जहाँ रहता है, वहाँ तू ध्येन्द्रक बादता है, और अपना धर निर्माण करता है।

१६ दूर्ध्वं मतीयस्यै यतोः अग्रधतः मन्दानं इन्द्रं नयामहे [ ६८५ ]- सर्वनीय धनुको हरानेवाले, सोमरससे आनन्दित होनेवाले इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं।

१७ सस्तीनां अविता [ ६८४ ]- मित्रोंका रक्षण करनेवाला।

१८ नः शतं उत्तये ॥ अग्नि भयाति [ ६८४ ]- हमारे संकटों प्रकारसे रक्षण करनेके लिए ॥ उत्तम प्रकारसे तैय्यार रहता है।

१९ स-याधः उत्तये [ ६८७ ]- बाधा करनेवाले अद्भुतसे रक्षण करनेके लिए तैय्यार रह।

२० हे अपूर्व्यं यजिन् ! अवश्ययः मरुतः ययं चित्रं त्वं ध्रुवामहे [ ७०८ ]- हे अद्वितीय शास्त्रधारी इन्द्र ! अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम विलक्षण शक्ति धारण करनेवाले तुझे अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं।

२१ कर्मन् ऊतये उप चक्राम [ ७०९ ]- हम कर्म करते हुए अपने सरक्षणके लिए तेरे पास आते हैं।

२२ यः धृपत् युया उग्रः नः चक्राम [ ७०९ ]- वह शत्रुओंका पराभव करनेवाला तबण उग्रवीर हमारे पास हमारे सरक्षणके लिए आये।

२३ सानसि अवितारस्या धनुमहे [ ७०९ ]- बिजवी सरसक तुमसे हम धरण करते हैं।

२४ गिर्यणः इन्द्र ! इया कामे ईमहे, उप ससृग्महे [ ७१० ]- हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिए हम तेरी प्रार्थना करते हैं।

अब सोमके विशेषण देखिए—

१ देवः [ ६५२ ]- तेजस्वी, धमकनेवाला।

२ देवधुः [ ६५२ ]- देवोंके साथ रहनेवाला।

३ राजन् [ ६५३ ]- तेजस्वी, धमकनेवाला।

४ द्वियुत्तया रच्चा [ ६५४ ]- धमकनेवाले तेजसे युक्त।

५ शुक्रः सोमः [ ६५४ ]- धीर्यवान् सोम, स्वच्छ।

६ वाजी [ ६५५ ]- बलवान्।

७ हितः [ ६५५ ]- हितकारक।

८ हेतुभिः हिन्यान्तः [ ६५५ ]- स्तोत्रांशोंके द्वारा प्रशंसित होनेवाला।

९ कथिः [ ६५६ ]- शानी।

१० संजग्मानः [ ६५६ ]- तेजस्वी, मिलकर रहनेवाला।

११ दिवा [ ६५९ ]- तेजस्वी, धमकनेवाला।

१२ रक्षो-हा [ ६६० ]- शस्त्रोंको मारनेवाला।

१३ विद्व-वर्षणिः [ ६६० ]- सब देखनेवाला।

१४ मंहिष्ठः [ ६६१ ]- महान्।

१५ गृहन्तम' [ ६६१ ]- घेरनेवाले शत्रुको मारनेमें प्रवीण।

१६ परिचो-धा-तमः [ ६६१ ]- अधिक धन देनेवाला।

१७ मधुमत्तमः [ ६६२ ]- अत्यन्त मीठा।

१८ मनुविस्त्रमः [ ६६२ ]- ज्योंही उतम प्रशस्ते करनेमें प्रवीण।

१९ महि शुभ्रतमः [ ६६२ ]- महान् तेजस्वी।

२० मद्गः [ ६६२ ]- अमर बनायेवाला।

२१ धृपमः [ ६६३ ]- बलवान्।

२२ तस्य पीया घृणयते [ ६६३ ]- जहने पीनेसे बस भडता है।

२३ स्व-विद्रः [ ६६३ ]- सार बनायेवाला, जाननेवाला।

२४ सु-प्र-केतः [ ६६३ ]- उत्तम शानी।

२५ हरयः इन्द्रयः [ ६६४ ]- हरे रणका सोम।

२६ चनोहिताः [ ७०० ]- अन्नरूपसे हितकर।

२७ द्युतासः [ ७०२ ]- तेजस्वी।

२८ विवक्षणः [ ६७६ ]- विशेष शानी।

२९ वाजं अभि अर्प [ ६७७ ]- बल बड़ा।

३० प्र-द्रव [ ६७७ ]- बौध, वेगसे जा।

३१ पुनामः [ ६७७ ]- साफ होनेवाला, साफ किया जानेवाला।

३२ स्वायुधः [ ६७८ ]- उत्तम शस्त्रास्त्रोंकी पातमें रखनेवाला।

३३ अशस्ति-हा [ ६७८ ]- अशस्तीका नाश करनेवाला।

३४ पुजना [ ६७८ ]- उपासककारी शत्रुओंकी बुरा करनेवाला।

३५ रक्षमाणः पिता [ ६७८ ]- पिताके समान रक्षा करनेवाला।

३६ सु-दक्षः [ ६७८ ]- उत्तम दक्ष।

३७ युधिज्या धदपः [ ६७८ ]- युधिबीका धारण करनेवाला।

३८ मिमः [ ६७९ ]- शानी।

३९ जनानां पुर एता [ ६७९ ]- लोगोंके भागे चलने-वाला, नेता।

४० धरिः [ ६७९ ]- धैर्यशाली बीर।

४१ सत्यः [ ६८३ ]- सत्य कार्य करनेवाला।

४२ कृत्यः [ ६८८ ]- बर्ण करनेवालेका तहायक।

४३ दुरोधं सोम [ ६९९ ]- दुर्दोषोंका नाश करनेवाला सोम है।

अब अग्निके विशेषण देखिए—

१ ऊर्जः न पातः [ ७०४ ]- बलको बर्ण न करनेवाला।

इस अग्न्यायमें ये देवताओंके मुख वर्णित हैं। ऊर्ज उरताथ अपने अन्दर धारण करें और बड़ाई तथा इन गुणोंके गुण होवे, इसलिये इन गुणोंका महा धर्मय बिधा है।

इससे मनुष्यकी उन्नति हो सकती है। इन गुणोंमें कुछ गुण इन्होंने, अग्निके, चरणों और मित्रों हैं, और कुछ लोकों हैं। पाहे देवता बने हों या छोटे, उनसे गुणोंके और सत्य रक्षा चाहिए, और देवत्व प्राप्त करना चाहिए। दूसरेकी ओर ध्यान न देना चाहिए, यह नियम महा पातनीय है।

## धन प्राप्त करना

मनुष्यको उन्नतिसे सब कार्य फलते होते हैं। धनके बिना कुछ नहीं हो सकता। धनका उचित उपयोग करनेसे मनुष्य धन्य होता है। इस प्रकार यह धन मनुष्यको सुख प्राप्त करनेवाला है। इस धनके सम्बन्धमें इस अध्यायमें इस प्रकार कहा है—

१ छु-रं [ १८१ ]- छलोकमें रहनेवाला, तेजस्वी, सुलोकमें जो कुछ भी है, वह तेजस्वी है, उसी प्रकार धन तेजस्वी है।

२ सु-दातुं [ १८१ ]- उत्तम दान देने योग्य।

३ तपिरीभिः आधृतं [ १८१ ]- अनेक सामर्थ्यसे युक्त, जिसके कारण अनेक प्रकारके सामर्थ्य प्रकट होते हैं।

४ पुनमोजसं [ १८१ ]- बहुलता अत्र देखते हैं। यदि धन प्राप्त नहीं हो तो बहुलता अत्र प्राप्त हो सकती है।

५ सु-मन्तं [ १८१ ]- बहुत भग्नते युक्त।

६ शक्तिं सङ्गमिणं [ १८१ ]- संकष्टों और हजारों सामर्थ्यसे युक्त।

७ गोमन्तं वाजं [ १८७ ]- गायेंसे युक्त अत्र देखेवाला।

धनके से गुण इन मंत्रोंमें बड़े हैं, वे धनहीन हैं—

८ मानुषाणां पित्र्या धुम्माभि आ अर्थः सिपासन्तः घनामहे [ १७५ ]- मनुष्योंके लिए उपयोगी सब धनोंको प्राप्त करने तेरी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं।

९ रत्नधा देयः हिरण्ययः ऋतस्य धोमि आसी-  
दसि [ १७५ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला यह सुवर्णमय देव यज्ञमें अपने स्वयंपर ईश्वर है। यह देव रत्नोंको धारण करता है। यह अपने भक्तोंको धन देता है।

१० हे इन्द्र ! अर्घ्यायन्तः गन्धायन्तः घग्निजः इया ह्यामहे [ १८१ ]- हे इन्द्र ! घोड़े, गाय और धन अथवा अन्नको इच्छा करनेवाले हम तेरी प्रार्थना करते हैं। हमें यह सब दे।

११ इदा चित् वसु आरजे त्या मत्सत् [ १८३ ]- सुदृढ़ रहनेवाले शत्रुओंका धन विनष्ट करनेके लिए वह सोम युद्ध प्रसन्न करता है।

१२ अटिरे उपकथ्यं दाता [ १८८ ]- स्तुति करने-  
वालोंको प्रशंसायोग्य धन देता है।

१३ मयोर्ना राधः परिं [ १९१ ]- धनवान् शत्रुके पास रखे हुए धन हमें दे।

इस प्रकार धनके विषयमें इस अध्यायमें कहा है। शत्रुके

धनको उसे हराकर हम अपने पास ले जायें ऐसी इच्छा यहां है। शत्रुको हराकर धन अपनेमें हो यह इसका उद्देश्य है। धनके साथ-साथ बल, सामर्थ्य, शूरवीरता आदि गुण अपने अन्दर होने चाहिए यह सब यहां है।

## देवोंके लिए सोम

सोमरसको तैयार करके पहले देवोंको अर्पण करना चाहिए फिर राजाको भी पीना चाहिए। वह विलासनेके लिए कहा है—

१ इन्द्राय मद्रः घवस्य [ १९२ ]-

२ इन्द्राय घृणाय मरुद्गुणः परिश्रु [ १७३ ]-  
इन्द्र, वज्र, यक्ष आदि देवोंके लिए सोमरस छानकर बुद्ध करो।

३ सा अस्मयुः, हव्यवाते वासोम [ ७०५ ]- वह मर्नि हमारा हित करनेवाला है। उसे हव्य देनेके लिए हम हवनीय हव्य देते हैं।

४ पुरोजिती [ १९७ ]- तुम ऐसा समझो कि लय सुन्दर सामने है। अपनी पराजय करी न हो इतना बल अपनेमें होना चाहिए, जरा भी भय न होना चाहिए। तभी विजय निश्चित है।

## सोमरसके पास कुत्ता न आवे

सोमरस जहाँ रखा जाता है, उस जगह कुत्ता न आवे, इतनी सावधानी रखनी चाहिए। इसलिए कहा है—

१ सुताय मादयितये दीर्घजिह्वां भव अघिष्ठम [ १९७ ]- वह सोमरस आगम्य देनेवाला होनेके कारण लम्बी जीभवाला कुत्ता पास न आवे। कुत्तेकी बहुत बुर करना चाहिए। वह सोमरसके पास न पहुंचे, ऐसा प्रवृत्त करना चाहिए।

## स्तुतिसे लाभ

इन्द्रादि देवोंकी स्तुति यज्ञमें मुख्य होती है। देवोंकी स्तुति सुनने और देवोंके समाप्त होने, यह स्तुतिको उपयोग है।

१ नः प्रहोषि उप शृणु [ १९७ ]- हमारे स्तोत्रोंको पास्तो सुन। “ प्रहोषि ” आह्वानार्थ है, “ शान ” देनेवाले स्तोत्र। महान् होनेकी जिज्ञासा देनेवाले स्तोम मनुष्योंको, महान् होनेकी सिद्धांते हैं। देवोंके गुण सुनकर उन्हें अपने अन्दर धारण करने उन्हें बढ़ानेसे मनुष्य महान् होता है। प्रशंसीय होता है।

२ मघान् । त्यावान् अन्यः दिव्यः न, पार्थिवः न, न जातः न अनिष्यते [ ६८१ ]- हे इन्द्र ! तेरे समान दूसरा कोई भी धुलोकमें जन्मा बुद्धीपर न हुआ है, न होगा । ऐसे अद्वितीय हम स्वयं भी बनें, यह स्तुतिका आशय है ।

३ यथायथा दक्षसे अग्रये गिरागिरा [ ७०३ ]- अग्रिक पतनमें चतुर और बलवान् अग्निकी स्तुति करो । जो बल और बलवान् होता है, उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, इसलिफ कर्तव्यमें चतुर और बलवान् बनें । ऐसा जो होकर, उसकी सब जगह प्रशंसा होगी ।

देवताओंकी स्तुतिसे ऐसा काम होता है ।

### यज्ञ

यज्ञ देवोंकी सम्पुष्टिके लिए है ।

अनुसंधिषु व्याधिर्नायते ॥

अनुसंधिषु यज्ञाः नियन्ते ॥ ( गोपथ का )

अनुओंके सम्पिकालमें हवा भिगवती है, इस कारण दीप दूर करनेके लिए यज्ञ किए जाते हैं । ये यज्ञ औषधियोंसे होते हैं, सर्पात् जिन् रोगोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना होती है, अथवा जो रोग मृग ही गए हैं उन रोगोंके दूर करने-वाली औषधियोंके चूर्णसे हवन किए जाते हैं । इससे हवामें रहनेवाले रोगबीज नष्ट हो जाते हैं, और वायु शुद्ध होती है ।

१ त्वा समिन्निः घृतेन घर्षयामसि [ ६९१ ]- तुमसे तमिषाओं और गायके घीसे हथ घर्षाया करते हैं । यज्ञमें गायका घी ही डालना चाहिए, और दूसरे घीसे काम नहीं चल सकता ।

२ ययिष्य्यः घृह्ण्योच [ ६९१ ]- हे तपण लगे । तू अधिक प्रकाशित हो, अधिक जल ।

३ हव्यदातये आ याहि [ ६९० ]- हवनीय इव्योंकी देवोंके पास पहुंचानेके लिए आ । सर्पात् तुममें हम जो भी हवनीय इव्य वाले, उन्हें तू देवोंको प्रव्रत करनेके लिए उन्हें देवोंके पास पहुंचा ।

४ नः गन्धर्वाः घृतेः उत्सृजाम् [ ६९२ ]- हमारी गर्धों जहां रहती हैं, वहां गायके घीका सिजन होकर यह स्थान पवित्र हो । गायके घृतके हवनसे सब स्थान पवित्र होता है, इसना बिषयो नष्ट करनेका सामर्थ्य गायके घीमें है ।

### इन्द्रके घोड़े

इन्द्रके घोड़े अस्तिष्ठ ह । इन्द्र घोड़ोंको परत सुधारता है

और उन्हें त्रिभित करता है । इस विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

१ तरोमिः इन्द्रं घृह्ण्य मायत [ ६८७ ]- घोड़ोंके साथ रहनेवाले इन्द्रकी बृहत् नामका साथ सुनाओ । “तरो” का अर्थ यहां घोड़ा बोलनेवाले घोड़े ऐसा है । घोड़ोंमें जिन घोड़ोंका श्रमोव होता है, वे घोड़े इन्द्रके पास रहते हैं ।

२ ब्रह्मयुजा केशिनी हरी रथा मा घहतां [ ६९७ ]- ब्रह्मोंका भस्त्र होते ही रथमें ब्रह्मजानेवाले, सुन्दर अयालवाले भी घोड़े इन्द्रकी रथसे जाते हैं । घोड़ोंके भयाल उत्तम होते हैं, इसलिफ उन्हें यहां “केशिनी” कहा गया है ।

३ इषिरस्य उबुये उरी रथे इन्द्रयाहा चक्रोयुजा स्थिदिः हरी गायया युञ्जति [ ७१२ ]- प्रतिबोधि, इन्द्रके महान् सुपुत्राले रथमें शस्त्रोंके लक्षेते ही बुद्ध जाने-वाले इन्द्रके घोड़ोंके घोड़े स्वयं ही अपने स्थानपर जानेवाले, रथोंके कहते ही दृढ़ जाते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रके घोड़े हैं । उनको केवल इसीरकी ही जरूरत है, जब सारा काम वे स्वयं ही कर देते हैं । इतने वे होशियार हैं । यहां यह बताया है कि घोड़ोंको इस प्रकार त्रिभित करना चाहिए ।

### सोम

सोमरसका यज्ञमें बहुत महत्त्व है । यह ऊंचे पर्वतसे लाया जाता है । देखिए—

१ नमः आगते यरेष्य सुते [ ६९९ ]- भावागत लाया गया यह महान् सोम है, उसका रस निकाला है । हिमालयके ऊंचे शिखरसे यह सोम लाया गया है ।

२ ते अयसः दिवि उध्या जातं [ ६७२ ]- पुनः सन्न-क्य सोमकी उत्पत्ति ऊंचे धुलोकमें हुई है । वहां धुलोकका अर्थ है हिमालयका ऊंचा शिखर ।

३ मधु प्रियं दिव्यं ऊधः दुद्धानः [ ६७६ ]- मोठे प्रिय ऐसे धुलोककी पुष्पाशयसे यह दुधकर निकाला गया है ।

४ दिवाः सिद्धम्मा देवः [ ६७८ ]- धुलोककी आधारा देनेवाला यह दिव्य सोम है ।

इस प्रकार सोमका स्थान ऊंचे हिमालयका शिखर है । वहांसे यह लाया जाता है, और उन्नत रस निकालकर उससे यज्ञ किया जाता है ।

५ उन्नं सत्तु धर्मा गदि अयः भूमि आन्दे [ ७७२ ]- उन्नता और नीरता बगानेवाले मुषदायी सोमरसकरी महान् वन भूमिपर आगये हैं । सोम स्वर्गसे पृथ्वीपर लाया

जाता है । सोमरस यश-प्राप्तिके उत्कृष्ट साधन है । सोमयश करनेवालेको महान् यश प्राप्त होता है ।

### सोमरसको पानीमें मिलाना

१ सोमः पुनानः, आपः यसानः धारया अर्पति [६७५]- सोमरसको छलनेसे पहले पानीमें मिलाना जाता है, फिर यह छलनीसे नीचेके बर्तनमें छाना जाता है । यह नीचेके बर्तनमें धार वाधकर पड़ता है, तब उसका शब्द होता है ।

२ धीतयः मयावदाग्नौ [ ६५८ ]- हाथकी अंगुलियों सोमको बारबार दबाकर रस निकालनेकी इच्छा करते हैं । अच्छी तरह दबाये बिना उससे सारा रस बाहर नहीं निकलता ।

३ यहिँः अच्छ रक्षानामि नयन्ति [ ६७७ ]- यज्ञ-स्थानके पास अंगुलियोंसे पकड़कर श्रविलज लोक सोमको लेजाते हैं ।

### छलनी

१ अन्यये घारे मधुदधृतं कोशं अच्छ अचुर्ध्र [ ६५८ ]- अरेके बालोंकी अनी छलनीसे मोठा रस भरनेके बर्तनमें मैं छानता हूँ ।

अरेके बालोंकी अनी छलनीसे यह रस छाना जाता है ।

### सोमरस छानना

१ दिवा पयस्य [ ६५६ ]- दिव्य प्रकाशसे युक्त होकर छनता जा, कमलता हुआ छनता जा ।

२ हे सोम ! इन्द्राय पातये सुतः स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पयस्य [ ६८९ ]- हे सोम ! इन्द्रके लिए स्वादिष्ट और शल्यकारक धारसे छनता जा ।

३ अयोहते द्रोणे लघ्वस्य योनिं अभि आसदत् [ ६९० ]- सोनेके पात्रमें पात हो प्रकाशक्रमें सोमरस बीता है ।

४ अयोहितः प्रियाणि नामानि अभिपवते, येषु पक्षः अपि वर्पते [ ७०० ]- अग्ररूप हितकारक सोम सबको युक्त करनेवाले पानीमें मिलकर छनता जाता है, इस कारण यह महान् सोम बढ़ता जाता है ।

५ ऋतस्य जिज्ञा यका मधु पवते, अस्य धिवः पतिः अनाभ्यः [ ७०१ ]- सगर्वा यह वक्ताकी जिज्ञा ही है, ऐसा ज्ञान करता हुआ मोठा, धातवा पालन करनेवाला और न दगनेवाला यह सोमरस छनता जाता है ।

इस प्रकार सोमरस छाना जाता है, उस समय इसका

३ [ साम. हिन्दी पा. २ ]

शब्द होता है, यह पयसता है । इस सब वर्णनसे आलं-कारिक आपार्थमें येदर्थें बहता है ।

### सोम छाननेके समय साम-गान

जब सोमरस बर्तनमें छाना जाता है, उस समय उद्गाता सामका गायन करते हैं । एक तरह सामगान चलता है, दूसरी तरह सोमरस छाना जाता है ।

२ हे नटः ! यथामासाय इन्द्रये उप गायत [ ६५१ ]- हे नाचको ! सोमरस छानते हुए तूच उससे पास बैठकर सामगान करो ।

२ ऋतस्य दोहना अभि अनुपत, त्रिपुष्टः उपसः अधि विराजसि [ ७०२ ]- यज्ञ करनेवाले ऋत्विज सोमकी स्तुति पाते हैं । तीनों सपनोंमें उप बालके बाह्य हे सोम ! तू अधिक कमलता है ।

### सोमरसमें दूध मिलाना

१ देवेषु देवाय मधुना पयः अभि अशिध्रयुः [ ६५२ ]- ईश्वरके देनेके लिए तैम्पर दिया गया सोमरस बीते पायके दूधके साथ मिलाना जाता है ।

२ दन्ताः शुक्राः स्तोमाः गव्यादिभ्यः [ ६५४ ]- तैलस्त्री सोमरस पायके दूधमें मिलाया जाता है ।

३ यिमः पुर एता जलसां ऋभुः धीरः क्षयिः गौनां अरीच्य गुह्यं नाम काप्येन यिषेद् [ ६७९ ]- आभी, अग्रभी, मनुष्योंका गेता, धर्मशास्त्री श्रद्धा गायोंमें जो गुप्तकपसे दूध है, उसे अपने ज्ञानसे जानता है ।

इस प्रकार पायके दूधमें छाया हुआ सोमरस मिलाया जाता है, और वास्तवमें उसे देवोंकी अर्पण दिया जाता है, उसके बाह्य उसे दूसरे गोप पीते हैं ।

इस प्रकार इस समय अर्घ्यायर्ग वर्णन है । उसे पाटगण प्यानपूर्वक पढ़ें, और गोप प्राप्त करें ।

### सुभाषित

१ हे राजन् ! न गवे, अर्धते, जनाय ओषधिभ्यः शम् [ ६५३ ]- हे राजन् ! गाय, घोड़े, मनुष्य, और ओषधियों हमारे लिए कल्याणकारी होवें ।

२ हितः खाजं अकसीत्, यथा धनुषः सीदन्तः [ ६५५ ]- हित करनेवाले और युद्धभूमिपर जावे, जिस प्रकार बीजा युद्धमें जाते हैं ।

३ इत्येते दशो दिवा यवस्य [ ६५६ ]- सबका बन्धाव हो, इस दुष्टिते तेजसे युध्न होनेके लिए युद्ध हो ।

४ श्रवणस्यः सर्गाः अक्षत [ ६५७ ]- मन्त्रको कर्म उत्पन्न करे ।

५ धीतया अयावशन्त [ ६५८ ]- अगुप्तिया काम करने की इच्छा करती है ।

६ अतस्त्य योनिं आ जग्मन् [ ६५९ ]- तत्त्वके मूल केन्द्रमें आ । तत्त्वके अथवा यत्नके केन्द्रमें जा ।

७ हृदयदातये आपाहि [ ६६० ]- अन्नदान करनेके लिए आ ।

८ घर्हिपि नि सत्ति [ ६६० ]- अपने आसनपर बैठ ।

९ हे यधिष्ठिर ! बृहत् शोच [ ६६१ ]- हे सरण । तू विमोघ तेजसे युक्त हो । विमोघ तेजस्वी हो ।

१० हे देव ! पृथुश्रयाप्यं बृहत् सुबोधं नः अक्षुधियासि [ ६६२ ]- हे देव ! बहुत यशस्वते यहान् सामर्थ्य हमें प्राप्त हो ऐसा कर ।

११ शुचिमता उरशोऽसा नमोऽध्या दक्षस्य महा राज्ञः [ ६६४ ]- शुद्ध निर्दोष यत्नका आचरण करके, बहुत प्रशंसित होकर अन्नको समृद्धि करके सामर्थ्यकी महिमतासे विराजमान हो ।

१२ अताध्या अतस्त्य योनीं सीदते [ ६६५ ]- तत्त्व, यत्न कर्मका तत्पर्यन्त शरीरके यत्नके स्थानपर बैठ ।

१३ नः प्रह्लापा उपशृणु [ ६६७ ]- हमारे ज्ञान बढ़ानेवाले स्तोत्रोंकी पाठ आकर सुन ।

१४ प्रह्लापाः द्या पुना ध्यामहे [ ६६८ ]- हम सबानी तुमसे निम्नताके नाते सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१५ यज्ञः चेतनः जिगाति [ ६७० ]- यत्न चेतना उत्पन्न करके तुम्हें श्रेया देता है ।

१६ यज्ञस्य जूया कविच्छदा घृणे [ ६७१ ]- यत्नकी श्रेण्यासे श्रेष्ठ होकर ज्ञानके छन्द धारण करनेवालोंकी ये स्वीकार करता हूँ ।

१७ उन्नं सत्त्व मदि श्रयः शर्म [ ६७२ ]- तेरे उपलब्धि और वीरताकी बढ़ानेवाले यहान् यश कल्याण करनेवाले हैं ।

१८ मातृपापं विश्वा सुम्भानि आ अर्यः विधा-सन्तः वनामहे [ ६७४ ]- अनुषांगोंकी इष्ट सब तेजस्वी धर्मोंकी प्राप्त करके हम तेरी सेवा करनेकी इच्छावाले तेरी सेवा करते हैं ।

१९ रत्नया हिरण्ययः देवाः अतस्त्य योनिं आसी-दसि [ ६७५ ]- रत्नोंकी धारण करनेवाला, सौतेले समान तेजस्वी देव यत्नके स्थानपर बैठता है, यत्न करता है ।

२० बाजी विचक्षणः नृभिः धौतः आपृच्छयं धरुणं अर्पसि [ ६७६ ]- बखानू, जानो, घोर नेताओं द्वारा निर्दोष किया गया, प्रशस्तनीय कर्मोंको करता है ।

२१ स्वायुध-अ शस्ति ह्य पुजना रक्षमाणः देवानां पिता जनितान् सु-दक्षः देवः पवते [ ६७८ ]- उत्तम सत्त्वात्मनोंकी धारण करनेवाला, दायुओंका नाश करनेवाला, उपद्रवोंको दूर करनेवाला; संरक्षण करनेवाला, उत्तम व्यवहार करनेवालोंका पालक, बहुत ही शुद्ध होता है ।

२२ विशः पुर एता, जनानां प्रभुः धीरः क्षमिः परध्वेन विवेद [ ६७९ ]- शान्ति, नेता, आगे चलनेवाला, धैर्यशाली, इच्छा अपने सामने सब जानता है ।

२३ अस्य तस्थुषः जगतः ईशानं स्वर्द्धं अग्नि नोनुमः [ ६८० ]- इस सब रथावर जगत्के स्वामी और आत्मबर्द्धोंकी हम प्रणाम करते हैं ।

२४ हे इन्द्र ! स्वायाम् अन्या दिव्यः पार्थिवः न जातः न जनिष्यते [ ६८१ ]- हे इन्द्र ! तेरे समान पृथ्वीक और बुद्धीपर कोई भी दूसरा न हुआ न होगा । तेरे समान तू ही है ।

२५ सदाबृधः चित्र सदा कया जत्या कया शशिष्ठया पुता नः आ सुयत् [ ६८२ ]- हमेशा बढ़ने-वाला उत्तम मित्र अला कौतवी सरक्षणकी शक्तिपाते युक्त होकर हमारी सहायताके लिए हमारे पास आया ?

२६ मंहिष्ठः सत्य मदानां क [ ६८३ ]- महान्, सत्यका आचरण करनेवाला आत्मन् देनेवाला है ।

२७ ना शस्ते उत्तये सु अग्नि भवांसि [ ६८४ ]- हमारा शेकड़ों प्रकारसे सरक्षण करनेके लिए तू उत्तम सहायता करनेवाला है ।

२८ धर्मं कर्तव्यं अ-धत्सः अम्भान् इन्द्रं गीमिः मद्यामहे [ ६८५ ]- धुन्दर, समूर्णोंका पराभव करनेवाले, अग्रसे आनिष्ठित होनेपावे इन्द्रकी योग्यता हम स्तुति करते हैं ।

२९ धुम्भं मुदानं तथिपिभिः बापुते पुष्पोजत् क्षुम्भन्तं शतितं राक्षसिष्णं योमन्तं यानं मक्षु ईमहे [ ६८६ ]- तेजस्वी उत्तम बल करनेवाले, अन्नक सामर्थ्यसे युक्त, बहुत भोजन देनेवाले अश्वोंसे युक्त, संकड़ों और हमारा प्रकारके बाधोंसे उत्पन्न होनेवाले अन्नकी प्राप्ति शीघ्र हो, ऐसी इच्छा हम करते हैं ।

३० स्वायधः उत्तये इन्द्रं बृहत् गायत [ ६८७ ]- उपद्रव करनेवाले दायुओंसे सरक्षण करनेवाले इन्द्रके लिये बृहत् याम्ये सामकाय गान करो ।

३१ भरं न कारिणं हुवे [ ६८७ ]- भरण पोषण करनेवालेके सम्मान कार्य करनेवालेके में वृत्ताता है।

३२ सु-शिषं दुष्माः स्थिराः मुरः न चरन्ते [ ६८८ ]- उत्तम ताका शिष्यवाले इन्द्रका प्रतीकार वृद्ध, स्थिर, और मूर्ख धनु नहीं कर सकते।

३३ जरित्रे उपध्वं शता [ ६८९ ]- स्तुति करनेवालेको यह प्रशंसनीय घन देता है।

३४ रक्षोहा पिभ्य-चर्यणिः [ ६९० ]- राक्षसोंका घब करनेवाला तब मनुष्योंका हित करता है।

३५ वरियोधातमः कृमहृत्तमः मघोनां राघः पवि [ ६९१ ]- अधिक घन बेनेवाला, कृमजोरो कारनेवाला कृमशुओंके घन छीतकर हमें दे।

३६ अभुमसमः फनु-विचमः यहि पुस्ततमः [ ६९२ ]- अत्यन्त सीधा, यत्नही विधि उत्तम रीतिसे जाननेवाला महान् तेजस्वी है।

३७ इयः-विदः सु-प्रकेतः इयः अभ्यक्रमीव [ ६९३ ]- अत्यन्तानी विदोय विद्वान् शत्रुके अत्यन्त अपना अधिकार स्थापित करता है।

३८ जैत्रस्य चेतति [ ६९४ ]- विजय प्राप्त करनेका उत्साह देता है।

३९ इन्द्रः प्रामं कृपणं पक्षं च गृभ्णाति [ ६९५ ]- वह सीर इन्द्र कृपण और बलपुस्त कयको धारण करता है।

४० पुरोजिती [ ६९६ ]- अपने सामने विजय है, ऐसा समझ।

४१ नराः वुरोपसं तं विभ्याज्या धिया भद्रयः सन्तु [ ६९७ ]- नेतागण, कुप्योका नाश करनेवाले उस वीरका सबका संरक्षण करनेवालेकी वृद्धिसे आनंद करें।

४२ चिर्वचं अधिरयं विचक्षणः आकहत् [ ७०० ]- धारों और जानेवाले रथपर विजय प्राप्ती देता है।

४३ अस्थ धियः पतिः अन्दाभ्यः [ ७०१ ]- इक्ष कर्मका पालन करनेवाला हवाया नहीं जा सकता।

४४ यशायमा दक्षसे गिरा मयूतं प्रशंसिगम् [ ७०२ ]- प्रायेक मतमें बल प्राप्तिके लिए अपनी धानीसे समर देवकी स्तुति करो।

४५ ऊर्जां न-पार्त [ ७०४ ]- बलको कलन करनेवालेको मैं प्रशंस करता हूँ।

४६ वाजेसु अविता [ ७०५ ]- युद्धोंमें वह हमारा रक्षण करनेवाला है।

४७ कृधः सुवत् [ ७०४ ]- वह हमारी शक्ति बढ़ानेवाला है।

४८ तनुनां श्रता भुवत् [ ७०५ ]- वह हमारे धारीको रक्षा करनेवाला है।

४९ ते मगः यत्र फय च तत्र उत्तरं दक्षं दधसे [ ७०६ ]- तेरा मन जहाँ कहीं भी हो, उत्तम बलको धारण करता है।

५० पोमिं छणयसे [ ७०६ ]- तू अपना घर संभार करता है।

५१ ते यूतं अक्षिपत् न हि भुपत् [ ७०७ ]- तेरा तेज भाषोंकी हानि पहुंचानेवाला नहीं है।

५२ हं अपूर्व्यं यजिन् [ ७०८ ]- अरन्तः वयं अवस्थयः विषं त्वां हवामहे [ ७०८ ]- है अक्षितीय बरुधारी इन्द्र। हम तुझे हवीय पशायं देते हैं, अपने तारुणके लिए बिलक्षण अक्षिपवले तुझे सहायताके लिए धुकाते हैं।

५३ अवितां त्वां वज्रमहे [ ७०९ ]- रक्षण करनेवाले तुझे हम धुकाते हैं।

५४ कर्मज ऊनये उप चक्राम [ ७०९ ]- कर्म करते सर्वसमके लिए हम तेरे पास आते हैं।

इस प्रकार इस अध्यायमें सुभाषित है। पाठकोंको सरलतासे समझमें आनंद इच्छित इन्द्रका शर्पं योडा वितारते दिया है।

### उपमा

इस प्रथम अध्यायमें आगे की हुई उपमायें आई हैं—

१ हितः वाजी घातं अक्रमीत् यथा वलुवः सविशः [ १५५ ]- हित करनेवाला सोप घातमें उसी प्रकार जाता है जिस प्रकार घोड़ा वीर युद्धभूमिमें जाते हैं।

२ अर्थन्तः न [ १५७ ]- घोड़े जैसे घुसतालके बाहर जाते हैं, उसी प्रकार "पवमानस्य ते सर्गाः अयुक्षत" शुद्ध होनेवाले सोमकी धारा बोकेके वर्धनमें पड़ती है।

३ घेनयः अस्तं न [ १५९ ]- तायें जिस प्रकार अपने बाड़ेमें जाती हैं, उसी प्रकार "इन्द्रवः सगुर्ध्रं कल्दशं न अञ्छ वा अगमन्" सोमरस पानीके वर्धनमें सीपे जाते हैं।

४ वाजिनं अर्धं न, त्वा मर्शयन्तः [ १७७ ]- बलवान् घोड़ेकी जिस प्रकार पीते हैं, उसी प्रकार सोमरसकी साथ करते हैं।

५ अयुग्धाः घेनवा इव, जगतः सत्पुषा ईशानं स्वदशं त्वा अभिनोतुमः [ १८० ]- जिना इन्ही हुई गायें



जिस प्रकार अपने बछड़ेके पास जाती है, उसी प्रकार स्थावर जगत्के ईश्वर तेरे पास नज़र होकर हम आते हैं।

६ रुसरेषु वसंस धेनव इव, दुस्स इन्दं गीर्मिः नवामहे [ ६८५ ]- गीशालामें गावें जिस प्रकार अपने बछड़ेके पास जाती हैं, उसी प्रकार दर्शनीय इन्द्रके पास अपनी प्राणोसे स्तुति करते हुए हम आते हैं।

७ धरं न, कारिणं हुवे [ ६८७ ]- भरणपोषण करने-वालेकी जिस प्रकार आवश्यकता होती है, उसी प्रकार कर्मशाले मुख्यकी हम बुलाते हैं।

८ पतशः धानं अभि न, सु प्रेते इषः अभ्य-ग्रमीन् [ ६९६ ]- घोषा जिस प्रकार धूममें विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार उत्तम कर्मों के लक्ष्य को प्राप्त करने प्राप्त करता है और उसपर विजय प्राप्त करता है, और उसे भी लेता है।

९ अश्वः न, इन्दुः धारया परि प्रसम्पुते [ ६९८ ]

- घोड़ेके समान सोम धार बाँधकर उना जाता है, बर्तनमें जाता है।

१० प्रियं मित्रं न, अमृतं जातयेद्दसं प्रशसिपम् [ ७०३ ]- प्रिय मित्रके सम्मान अमर अनिकी न प्रशंसा करता है।

११ रथूरं न, चित्र त्वा हवामहे [ ७०८ ]- जेंते कोई बहानु भन्तृपको बुलाता है, उसी प्रकार विलक्षण, धेक सुते हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

१२ उदा इव श्रमन्त उदभिः त्वा उप ससृग्महे [ ७१० ]- पानी केकर जानेवाले जिस प्रकार पानीसे जेलते हैं, उसी प्रकार हम तेरे साथ खेलते हैं।

१३ हे अद्रिच दूर! यार्णं यन्याभिः वर्धन्ति, चापु-ध्यास त्वं मिदं दिवेदिदे, [ ७११ ]- हे अद्रिचमरे, पृथ्वी जिस प्रकार तपस्वियों के बर्धिया बढ़ाती है, उसी प्रकार बढ़ने-वाले तुमकी हम रोज स्तुतिसे बढ़ाते हैं।

इस प्रकार ये उपमायें इस अध्यायमें आई हैं।

## प्रथमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रस्थान	ऋषिहरिधान	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
६५१	१।१।१।१	असित काश्यपो देवलो वा	वसवान् सोमः	गायत्री
६५२	१।१।१।१	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
६५३	१।१।१।१	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
६५४	१।१।१।१८	काश्यपो वारीच	"	"
६५५	१।१।१।१९	काश्यपो वारीच	"	"
६५६	१।१।१।२०	काश्यपो वारीच	"	"
६५७	१।१।१।२०	शत वंशानस	"	"
६५८	१।१।१।२१	शत वंशानस	"	"
६५९	१।१।१।२२	शत वंशानस	"	"
( २ )				
६६०	१।१।१।२०	अरुहानो बार्हस्पत्य	अग्नि	"
६६१	१।१।१।२१	अरुहानो बार्हस्पत्य	"	"
६६२	१।१।१।२२	अरुहानो बार्हस्पत्य	"	"
६६३	३।६१।१६	विश्वामित्रो गायित्र	मिनाक्षरपो	"
६६४	३।६१।१७	विश्वामित्रो गायित्र	"	"

संज्ञासंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
६६५	३।६२।१८	विश्वामित्रो यागिनः अमरनिर्वा	मित्रावरुणो	वायवी
६६६	८।१७।१	हरिश्मिदिः वाण्यः	इन्द्रः	"
६६७	८।१७।२	हरिश्मिदिः वाण्यः	"	"
६६८	८।१७।३	हरिश्मिदिः काण्वः	"	"
६६९	३।६२।१	विश्वामित्रो यागिनः	इन्द्राग्नी	"
६७०	३।६२।२	विश्वामित्रो यागिनः	"	"
६७१	३।६२।३	विश्वामित्रो यागिनः	"	"

( ३ )

६७२	९।११।१०	अमहोभुरागिरसः	यवमानः सोमः	"
६७३	९।११।११	अमहोभुरागिरसः	"	"
६७४	९।११।१२	अमहोभुरागिरसः	"	"
६७५	९।१०७।८	सप्तर्षयः	"	प्रगाथः ( विपना बृहती, समस्तो बृहती )
६७६	९।१०७।५	सप्तर्षयः	"	"
६७७	९।८७।१	उशना वाण्यः	"	श्रिष्टुषु
६७८	९।८७।२	उशना वाण्यः	"	"
६७९	९।८७।३	उशना वाण्यः	"	"

( ४ )

६८०	७।१२।२२	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	इन्द्रः	प्रगाथः ( विपना बृहती, समस्तो बृहती )
६८१	७।१३।१३	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	"	"
६८२	४।१३।११	वामदेवो गीतमः	"	वायवी
६८३	४।१३।१२	वामदेवो गीतमः	"	"
६८४	४।१३।१३	वामदेवो गीतमः	"	वादनितृषु
६८५	८।८८।१	वीथो गीतमः	"	प्रगाथः ( विपना बृहती, समस्तो बृहती )
६८६	८।८८।२	वीथो गीतमः	"	"
६८७	८।८८।३	वीथो गीतमः	"	"
६८८	८।८८।४	वीथो गीतमः	"	"

( ५ )

६८९	९।११।१	मधुच्छन्दा यज्ञवामित्रः	यवमानः सोमः	वायवी
६९०	९।११।२	मधुच्छन्दा यज्ञवामित्रः	"	"
६९१	९।११।३	मधुच्छन्दा यज्ञवामित्रः	"	"
६९२	९।१०८।१	गौरवीति साक्यः	"	आहुतः प्रगाथः ( विपना बृहती, समस्तो बृहती )
६९३	९।१०८।२	गौरवीति साक्यः	"	"

मन्त्रसंख्या	श्रुत्येवस्थान	श्रुति	देवता	छन्द
६९४	९।१०६।१	अग्निश्चासुष	पवमान सोम	उष्णिक्
६९५	९।१०६।२	अग्निश्चासुष	"	"
६९६	९।१०६।३	अग्निश्चासुष	"	"
६९७	९।१०१।१	अन्वीषु इषावादिष	"	अनुष्टुप्
६९८	९।१०१।२	अन्वीषु इषावादिष	"	गायत्री
६९९	९।१०१।३	अन्वीषु इषावादिष	"	"
७००	९।७५।१	कविर्भाग्यं	"	क्षयती
७०१	९।७५।२	कविर्भाग्यं	"	"
७०२	९।७५।३	कविर्भाग्यं	"	"
( ६ )				
७०३	६।७८।१	अयुर्बार्हस्पत्य ( तुषपाणि )	अग्नि	प्रगाथ ( विषमा बृहती समा सतो बृहती )
७०४	६।७८।२	अयुर्बार्हस्पत्य ( तुषपाणि )	"	"
७०५	६।१६।१६	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	गायत्री
७०६	६।१६।१७	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
७०७	६।१६।१८	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
७०८	८।११।१	सोमरि काण्व	इन्द्र	ककुभ प्रगाथ ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती )
७०९	८।११।२	सोमरि काण्व	"	"
७१०	८।१८।७	नृमेघ आगिरसः	"	ककुप्
७११	८।१८।८	नृमेघ आगिरस	"	उष्णिक्
७१२	८।१८।९	नृमेघ आगिरस	"	पुरउष्णिक्



## अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ प्रथमपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ १ ॥

[ १ ]

( १-२२ ) १, ४ धृतकक्षः पुण्ड्रो वा जागिरसः; २, ८, १३-१५ वसिष्ठो मेधावर्षिणः; ३ मेधातिथिः काण्वः; प्रियपेय-  
श्वागिरसः; ५ इरिगिरिः काण्वः; ६ कुसोदो काण्वः; ७ त्रिज्योः काण्वः; ९ विज्याविज्यो गायिनः; १० मधुनल्ला  
वैज्यामिथः; ११ नूनलोप आजीगतिः; १२ नारदः काण्वः; १६ अयासारः काण्वः; १७ ( १ ) नूनलोप भारी-  
गतिः ॥ देवरातः कुत्रिपो वैज्यामिथः; १७ ( २-३ ) मेघ्यातिथिः काण्वः; १८ ( १, ३ ) अस्तिः काण्वो देवलो  
वा; १८ ( २ ) अमहीयुरीगिरसः; १९ जित आण्वः; २० सप्तर्वयः ( १ भरद्वाजो बह्वृत्पादः, २ काण्वो  
भारीचः; ३ गोतपो राहूणः, ४ अग्निर्वीणः, ५ विज्यामिथो गायिनः, ६ जमरनिभर्गवः, ७ वसिष्ठो  
मेधावर्षिणः ); २१ दाषाण्य आनेयः; २२ ( १-२ ) अग्निज्याशुयः; २३ ( ३ ) प्रजापतिर्वैज्यामिथो  
गाय्यो वा ॥ १-१२ इन्द्रः; १३ अग्निः; १४ उषाः; १५ अग्निवनीः; १६-२२ ववमवः सोमः ॥  
१ ( २-३ )-११; १६-१९; २१; गायत्री, १२, २२ ( १-२ ) उज्जिष्णुः; १३-१५,  
२० प्रजापतिः = ( विधवा बृहती, समा जनोबृहती ); १ ( १ ), २२ ( ३ ) अनुवृष्टः ।

७१३ पान्तमा यो अन्वस इन्द्रमग्निं प्र गायत ।

विस्वासाहश्चतुर्कृतं मथिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९।१ )

७१४ पुरुहूतं पुरुहूतं गायान्पादे च सनश्रुतम् । इन्द्र इवि प्रवीतन ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९।२ )

७१५ इन्द्र इक्षो महानां दाता वाजानां नृत्त । महाश्चभिश्वा ययत ॥ ३ ॥ ( बा. १ ) ॥  
( ऋ. ८।९।३ )

७१६ प्र य इन्द्राय मादनश्च हयंश्वाय गायत । सखायः सोमपात्रे ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३।१ )

[ १ ] प्रथमः शण्डः ।

[ ७१३ ] ( वः अश्वघः आपान्तं ) सुम्नरे द्वारा विष्टु कए सोमरूप शलका पान करनेवाले, ( विज्या-साहं )  
शल गायत्रीका परागव करनेवाले ( श्वत-श्रुतं ) सैकड़ों प्रकारके कर्मा करनेवाले ( चर्षणीनां-मथिष्ठं ) मनुष्योंमें बहुत  
महान् ( इन्द्र अग्नि प्रगायत ) इन्द्रको स्तुतिका धाम करो ॥ १ ॥

[ ७१४ ] ( पुरु-हूतं ) बहुत लोग सहायताके लिए जिसे बुलते हैं, ( पुरुहूतं ) बहुत लोग जितको स्तुति करते हैं,  
( गायान्पादे ) जो स्तुति करनेके योग्य है, ( सन-श्रुतं ) लगातार कालसे जो प्रसिद्ध है, ( इन्द्र इवि प्रवीतन ) उम ६४को  
१२ प्रकार स्तुति करो ॥ २ ॥

[ ७१५ ] ( नृत्तः ) सबको चलानेवाला ( महोनां वाजानां दाता ) महान् पन और जलको देनेवाला ( महान्  
इन्द्रः इक्षु अग्नि-हूः ) महान् इक्षु ही हमारे सामने आकर ( यः ) हमें ( आ यमस् ) पन मागि देवे ॥ ३ ॥

१ नृत्तः— सबको नचानेवाला, सबको चलानेवाला ।

२ अग्निः-हूः— सामनेसे देखनेवाला ।

[ ७१६ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( वः ) तुम ( हयंश्वाय ) घोड़ोंकी पास रखनेवाले ( सोम-पात्रे ) सोम  
पीनेवाले इन्द्रको ( मादनं प्रगायत ) आनन्द देनेवाले स्तोत्र गाओ ॥ १ ॥

१ हयंश्वाः ( हरि-श्वध्वः ) लाल घोड़े जिसके पास रहते हैं ।

७१७ शंसेदुक्थं सुदानव उत धुषं यथा नराः । चक्षुमा सत्पराधसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३।१२ )

७१८ त्वं न इन्द्र वाजसुस्त्वं गन्धुः शतक्रतो । त्वं हिरण्यसुर्वसो ॥ ३ ॥ २ ( गी. ) ॥  
( ऋ. ७।३।१३ )

७१९ वयस्य स्वा तादित्यो इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्था उक्थेभिर्जान्ते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१६ )

७२० न घेमन्यदा एष न वज्रिन्नपसो न विष्टौ । तदेतु स्वामैश्चिकेव ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।१७ )

७२१ इच्छन्ति देवाः सुम्वन्तं न स्वप्राय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादभवन्द्राः ॥ ३ ॥ ३ ( पा. ) ॥  
( ऋ. ८।१।१८ )

७२२ इन्द्राय मध्वने सुतं परि शोभन्तु नौ गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१२।१९ )

७२३ यस्मिन्निष्ठा अधि त्रिषो रणन्ति सप्त सत्सदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।१२।२० )

[ ७१७ ] ( उत्तं ) और हे मित्रो ! ( सु-दानवे ) उसम बल देनेवाले, ( सत्य-राधसे ) सत्यतासे अपने बात धन रखनेवाले इन्द्रके लिए ( उक्थं ) स्तोत्रोंका गान करो, ( नराः ) स्तुति करनेवाले दूसरे लोग जिसे प्रकार स्तुति करते हैं, वैसी स्तुति तुम ( धुषं मांस ) तेजस्वी रीतिसे करो, ( इत् चक्षुः ) और हृष भी उसरी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ ७१८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं नः घात्र-युः ) तू हमें अन्न देनेवाला हो, हे ( दात-यज्ञो ) अनेक प्रकारसे पराक्रम करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं गन्धुः ) तू घाम देनेवाला हो, हे ( वसो ) सवरी बसानेवाले इन्द्र ! ( त्वं हिरण्यसुः ) तू सोना देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ ७१९ ] हे इन्द्र ! ( त्वायन्तः ) मुझे प्राप्त करनेवाले इच्छा करनेवाले ( सखायः ) हम मित्र ( तादित्यः ) उसी प्रयोजनके लिए ( स्वा ) तेरी स्तुति करते हैं, ( उ ) और ( कण्थाः ) कण्ठयोजनमें उत्पन्न होनेवाले लोग भी ( उक्थेभिः ) जरते ) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ ७२० ] हे ( वज्रिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( अणसः ) बल बलोंमेंसे ( सप्त नविष्टौ ) तेरे पांच बलमें ( घेमन्तु घेम् ) मैं तेरे स्तोत्रके सिवाय दूसरे स्तोत्र ( न न्य-पयन ) नहींगा ही नहीं। ( तप इत् उ ) तेरी ही ( स्तोत्रिः चिरन्त ) स्तोत्रोंसे स्तुति करना मैं जानता हूँ ॥ २ ॥

[ ७२१ ] ( देवाः ) देवगण ( सुम्वन्तं इच्छन्ति ) भीषयत करनेवालेसे प्रेम करते हैं, ( स्पृहन्त्या न स्पृह-यन्ति ) आपसीसे प्रेम नहीं करते, ( शतवन्द्राः ) परिष्कृती देव ( प्रमादं यन्ति ) परम आदर देनेवाले लोगमें प्रमाद करते हैं ॥ ३ ॥

[ ७२२ ] ( मध्वने इन्द्राय ) धानरहायक सोमधारी इन्द्रा करनेवाले इन्द्रके लिए ( सुतं ) सोमरग तैय्यार करनेवाले ( नः गिरः ) परिष्कृतिमान् ) हमारी लक्ष्मी उसरी स्तुति करती है, ( कारवः ) स्तोत्रगण ( अर्कः अर्चन्तु ) स्तुतिके योग्य सोमधारी स्तुति करें ॥ १ ॥

[ ७२३ ] ( यस्मिन् ) जिस इन्द्रमें ( निष्ठाः त्रिषोः अधि ) तारी लोचनों परती हैं, और ( सप्त सत्सदः रणन्ति ) जितनी स्तुति पतने सात स्तोत्र करते हैं, उस ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( सुते हवामहे ) सोमयज्ञमें हृष बुलाते हैं ॥ २ ॥

७२४ त्रिकटुकेषु चेतनं देवासौ यज्ञमन्त्र । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥ ४ (ला) ॥  
(ऋ ८।१२।१)

॥ इति प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

७२५ अयं च इन्द्र सोमो निपूतो अधि वर्धिषि । एहोमस्य ब्रूना विव ॥ १ ॥ (ऋ ८।१७।१)

७२६ शाचिनां शाचिपूजनाय श्रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र ह्यसे ॥ २ ॥ (ऋ ८।१७।२)

७२७ यस्ते मृगपूषो णाश्रयणपात्कुण्डपात्यः । न्यसि दध आ मनः ॥ ३ ॥ ५ (दि) ॥  
(ऋ ८।१७।३)

७२८ आ तू न इन्द्र भुमन्त्रं चित्रं आमं सं बृभाय । महाहस्तो दक्षिणेन ॥ १ ॥ (ऋ ८।८।१)

७२९ विद्या हि त्वां तुविक्त्रमिं तुविदेय्नां तुवोमं वयम् । तुविमाश्रमवाभिः ॥ २ ॥ (ऋ ८।८।२)

७३० न हि त्वां घ्रा देवा न मवांसौ दिस्सन्तम् । मीमं न मां वारयन्ते ॥ ३ ॥ ६ (के) ॥  
(ऋ ८।८।३)

[ ७२४ ] (देवाः) तप देव (त्रि-कटुकेषु) यज्ञके सोम विनर्मे (चेतनं) उत्साह बढ़ानेवाले यज्ञका (अन्तः) विस्तार करते हैं । (सं इत्) उसीकी (न. गिरः) वर्धन्तु । हमारी वाणी प्रतीक्षा करती है ॥ ३ ॥  
॥ यदा पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ७२५ ] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (अयं सोम) यह सोम (वर्धिषि) अधि-वेधीनर (निपूतः) छाया जाता है, (हं मस्य पदि) इतके पास आ (ब्रूना) बोल आ, और (विव) उले पो ॥ १ ॥

[ ७२६ ] (शाचि-नां) सामर्थ्यवान् किरमंति युष्म और (शाचि-पूजनां) शक्तिवाली होनेके कारण युग्मे मानेवाले, (आ-खण्डल) वायुओंकी तोड़नेवाले हे इन्द्र । (ते श्रणाय) तुम्हें सुख हो इतलिए (अयं सुतः) यद् रत संप्यार किया है, इतलिए (प्र ह्यसे) तुम्हें मुनते हैं ॥ २ ॥

[ ७२७ ] (शृंगः-पूषः-न-पात्) किरणोंके विस्तारकी सङ्कुचित न करनेवाले इन्द्र । (ते प्रणपात्) तेरा सहायक (यः कुण्डपात्यः) कुण्डपात्य नामका जो सोम-मानवाका यज्ञ है, (अस्मिन् मनः आ नि दधे) उसमें अपना धन लगा ॥ ३ ॥

१ शृंगः-पूषः-न-पात् — किरणोंके विस्तारकी कम न करनेवाला । प्रकाशकी जो संज्ञाता है ।  
२ कुण्ड-पात्यः — जिसमें बड़े वर्तनके सोम पिपा जाता है ऐसा यज्ञ ।

[ ७२८ ] हे इन्द्र ! (महा-हस्ती) बड़े हाथोंवाला तू (नः) हमारे लिए (भु-मन्त्रं चित्रं आमं) तेजस्वी, बिलजग और स्वीकार करनेके योग्य मन (दक्षिणेन सं बृभाय) दाहिने हाथसे धारण कर, धन देनेके लिए हाथोंमें धन धारण कर ॥ १ ॥

[ ७२९ ] हे इन्द्र । (तुविक्त्रमिं) अनेकपरान्त्र करनेवाले (तुविदेय्नां) देने योग्य बहुतेके पनको अपने पासमें रखनेवाले (तुवि-मार्धं) महान् धनवान् (तुवि-आभं) महान् आकारवाले (अवोभिः) संरक्षणके अनेक साधनोंसे युक्त (त्वा) तुझे (विद्या हि) हम जानते हैं ॥ २ ॥

[ ७३० ] हे (शूरा) वीर इन्द्र । (दिस्सन्तं त्वा) देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे (देवाः) देव और (मवांसः) मनुष्य भी (मा वारयन्ते) किसी प्रकार हटा नहीं सकते, जिस प्रकार (हि मीमं मां न) भयकर दैत्यों की हटा नहीं सकता ॥ ३ ॥

४ [ साम. द्वितीया. २ ]

७३१ अ॒भि त्वा॒ वृ॒ष॒मा सु॒ते सु॒तः॒ सृ॒जामि॒ पौ॒त्र॒ये । त॒म्पा न्य॒श्नु॒हो म॒दम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४५।१२ )

७३२ मा त्वा मू॒रा अ॒वि॒ष्य॒वा मो॒प॒ह॒स्त्रान आ द॒मन् । या कीं म॒ल्ल॒द्विषं॒ वनः ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।४५।१२ )

७३३ इ॒ह त्वा गो॒परी॒णसं॒ मा म॒न्दन्तु॒ राघ॒से । स॒रो गो॒रो यथा॒ पिब ॥ ३ ॥ ७ ( या ) ॥  
( ऋ. ८।४५।१४ )

७३४ इ॒दं व॒सो सु॒तम॒न्यः पि॒वा सु॒पू॒णमु॒दर॒म् । अ॒नाम॒यि॒त्रि॒मा ते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

७३५ नु॒मि॒र्धा॒तिः सु॒तो अ॒भिर॒व्या वा॒रिः परि॒पू॒तः । अ॒सौ न नि॒कृ॒तो न॒दी॒षु ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

७३६ ते ते य॒वं यथा॒ गो॒भिः स्वा॒दु॒म॒कर्म॒ श्री॒णन्तः । इ॒न्द्र स्वा॒सि॒स्त॒ध॒मादे॒ ॥ ३ ॥ ८ ( यो ) ॥  
( ऋ. ८।१।१ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

७३७ इ॒दं श॒स्त्रा॒न्यो॒जसा॒ सु॒त॒श्रा॒धानां॒ पते । पि॒वा त्वा॒श्सि॒र्गि॒षणः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।५।१।१० )

[ ७३१ ] हे ( वृषम ) बलवान् इन्द्र ! ( सुते त्वा ) सोमयज्ञके तेरे ( पीतये सुतं अभि सृजामि ) पौत्रोंके लिए सोमरस अच्छी तरह तैयार करता हूँ, ( तम्पा ) तू उतले गुप्त हो, और ( मदं न्यश्नुहो मदम् ) उस आणवदायक रसको पी ॥ १ ॥

[ ७३२ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( अविष्यवाः मूराः ) रक्षणशील इच्छा करनेवाले मूल ( मा दमन् ) न दबावे, तेरा ( उपहृद्ग्रानः मा ) उपहास करनेवाले भी तुझे न डरावे, ( मल्लद्विषं वनः ) शत्रुके द्वेष करनेवालेकी ( मा कीं वनः ) तू सहायता न कर ॥ २ ॥

[ ७३३ ] हे इन्द्र ! ( इह ) इस यज्ञमें ( गो-परीणसं ) गायके दूधसे भिन्ना हुआ सोमरस अर्पण करने मात्रक ( मदे राघसे ) बहुत सारा घन श्राव्य करनेके लिए ( राघ मन्दन्तु ) तुझे आनयित करने हूँ । ( यथा गोरो सरो ) जिस प्रकार घृण ताछावपद लाकर पानी पीता है, उसी प्रकार तू ( पिय ) सोमरस पी ॥ ३ ॥

[ ७३४ ] हे ( वसो ) निवासक इन्द्र ! ( इदं सुतं अन्यः ) यह सोमरसहवी अग्न तू ( उदरं सु-पूणं ) पेट भरकर ( पिय ) पी, हे ( अनामयित्रिमा ते ) तेरे रित्रिमा तुझे हव सोमरस देते हूँ ॥ १ ॥

[ ७३५ ] ( नुमिर्धातिः ) यात्रकोंसे लच्छ किया गया, ( वाः ) सुतः ) पारशीसे दूधकर निकाला गया यह रस ( अश्या वाः परिपूतः ) भेड़के वालोंसे चनी छलनीसे छाया गया है । ( नदीषु अश्वः स ) पर्वतों में जिता प्रकार घोड़ोंकी पीते हैं, उसी प्रकार पानीमें पीया हुआ और ( निकः ) छानकर तैयार किया गया यह रस है ॥ २ ॥

[ ७३६ ] हे इन्द्र ! ( ते ते ) वह रस तुझे देनेके लिए ( यं यथा ) जिस प्रकार ओसा पुरोडास बनाते हैं, उसी प्रकार ( गोभिः श्रीणन्तः ) गायके दूध आदिसे भिन्नकर ( स्वादु मकर्म ) पीया किया गया है । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वा अस्मिन् स्वधमादे ) तुझे इस यज्ञमें आनन्द प्राप्तिके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ७३७ ] ( श्राधानां पते ) हे धनपते ! ( श्रिर्गणः ) लुब्धके योग्य इन्द्र ! ( ओजसा ) बलसे युक्त तू ( इदं सुतं अनु ) इस सोमरसके अनुपूरक होकर ( अस्म्य सु पिय ) इसको पी ॥ १ ॥

७३८ यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ, तन्वम् । स त्वा ममचु सोम्य ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१।११ )

७३९ प्र ते अश्रोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र प्रक्षणा शिरः । प्र बाहू भूर राघसा ॥ २ ॥ ९ ( पी ) ॥  
( ऋ. ३।१।१२ )

७४० आ त्वेता नि पीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय सोमबाहसः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१ )

७४१ पुरुतमं पुरुषामोक्षानं वार्याणाम् । इन्द्रसोमं सखा सुते ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।२ )

७४२ स पा नो योग आ सुवत्स राये स पुरन्ध्या । मयद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥ १० ( टी ) ॥  
( ऋ. १।१।३ )

७४३ योगेयोगे त्वत्सरे वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रसूतये ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।७ )

७४४ अनु प्रत्यस्योक्तसो दुवे सुविप्रति नरम् । ये ते पूर्ये पिता दुवे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।३।९ )

[ ७३८ ] हे इन्द्र ! ( ते यः ) तेरे लिए वह सोम ( इच्छा अनु असत् ) अन्नके समान है, ( सुते ) इस सोम यज्ञमें तू ( त्वं ) नियच्छ ( अपने शरीरको ले जा, और हे ( सोम्य ) सोमके योग इन्द्र । ( सः त्वा ममचु ) वह सोम तुझे मान्यित करे ॥ २ ॥

[ ७३९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सः ते कुक्ष्योः प्राश्रोतु ) वह सोम तेरे कुक्षियोंमें भर रहे । ( प्रक्षणा शिरः ) शीर्ष द्वारा वह तेरे शिरस्क-जब शरीरमें-पहुंचे, है ( बाहू ) भूर इन्द्र ! ( राघसा बाहू प्र ) धन देनेके लिए तेरे बाहू भी उठे प्राप्त हों ॥ २ ॥

[ ७४० ] हे ( सखा-बाहसः सखायः ) यज्ञ करनेवाले मित्रो ! ( तु आ यत ) शीघ्र आओ, ( निपीदत ) पीरो, और ( इन्द्रं अभि प्र गायत ) इन्द्रको लक्ष्य करके साम-गाय करो ॥ १ ॥

[ ७४१ ] ( सखा ) एक जगह बैठकर ( सुते ) सोम यज्ञमें ( पुरुतमं ) बहुतसे शत्रुओंको हरानेवाले, ( पुरुषां वार्याणां ) बहुत श्रेष्ठ धनके स्वामी ( इन्द्रं ) इन्द्रकी स्तुति करो ॥ २ ॥

१ पुरु-तम — बहुतसे शत्रुओंका नाश करनेवाला ।

२ तमा — नाश करनेवाला ।

३ वार्ये — ग्रहण करने योग्य धन ।

[ ७४२ ] ( सः घ ) वह निजसुते ( नः योगे ) हमारे पुत्राधिक ( आशुवत् ) हर्षमें सहायक होवे, ( सः राये ) वह धन प्राप्त करनेके कार्यमें ( सः पुरन्ध्या ) वह बहुत बुद्धि प्राप्त करनेके कार्यमें सहायक होवे, ( सः वाजेभिः नः आगमत् ) वह अन्नके साथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

१ पुरं-धी — बहुत बुद्धि, स्त्री ।

२ योग — अपनी सहायतासे मिले हुए धन, जोड़ना ।

[ ७४३ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( योगे-योगे ) प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें ( वाजे-वाजे ) शीघ्र प्रत्येक युद्धमें ( त्वत्सरेन्द्रं ) आपनत बलवान् इन्द्रको ( उतये हवामहे ) संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ७४४ ] ( प्रत्यस्य ओक्तसः ) अपने प्राचीन घरसे ( सुवि-प्रति ) बहुतसे प्राप्त जानेवाले ( नरः ) नेता इन्द्रकी ( अनु दुवे ) मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ ( ये ते ) जिसको ( पिता पूर्ये दुवे ) मेरे पिताने पहले बुलाया था ॥ २ ॥

१ प्रत्यस्य ओक्तसः — इन्द्रका प्राचीन घर यह निज्य है । स्वधंयाम है ।



७४५ आ धा गमद्यदि अन्तस्सहस्रिणीमिरुतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ३ ॥ ११ (ला) ॥  
( ऋ. १।१।८ )

७४६ इन्द्र सुतेषु सोमेषु ऋतु पुनीष उक्थ्यम् ।  
विदे घृक्षस्य दक्षस्य महाश्चि पः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )

७४७ स प्रथमे व्योमनि देवानां सद्ने वृषाः ।  
सुपारः सुभ्रस्तमः समस्तुजित् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१३।२ )

७४८ तमु द्रुवे वाजसातय इन्द्र मराय शुष्मिणम् ।  
मवा नः सुभे अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥ १२ (वा) ॥ ( ऋ. ८।१३।३ )

॥ इति सुतोयः खण्ड ॥ ३ ॥

[ ४ ]

७४९ एना वा अग्नि नमसोर्जो नपातमा द्रुवे ।  
प्रिय चेतिष्ठमरुति स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।१; या य. १।२ )

[ ७४५ ] ( यदि वाः हव्यं भवत् ) यदि वह हमारी प्रार्थना सुन लेगा तो ( सहस्रिणीभिः ऊतिभिः सह ) हजारों तक्ष्म सत्जनके साथनोंके साथ और ( वाजेभिः ) अन्नके साथ वह ( उप आगमत् ) हमारे पास भाषेगा ( आ घ ) यह निश्चित है ॥ ३ ॥

[ ७४६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सुतेषु सोमेषु ) सोमरस निकालनेके बाद ( घृक्षस्य दक्षस्य विदे ) महान् वर प्राप्त करनेके लिए ( ऋतु उक्थ्यं पुनीषे ) बर्ष और स्तोत्रोंको सू पवित्र करता है, ( सः महाश्चि । ) ऐसा वह वृ महान् है ॥ १ ॥

[ ७४७ ] ( सः ) यह इन्द्र ( प्रथमे व्योमनि देवानां सद्ने ) प्रथम आकाशमें देवोंके घरमें ( वृषाः ) वज्रगजों वज्रनेवाला ( सुपारः ) उत्तम प्रकारके दुर्लभ वार करानेवाला ( सु-अवस्तामः ) उत्तम यज्ञारो ( सं अमृतजित् ) शासकोंको जीतनेवाला रहता है, उसे हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

१ स्व-अमृत-जित् — जानकी रोहनेवाले राजाओंको जीतनेवाला । पत्नीको रोहनेवाले नैष अथवा बर्ष होते हैं, उक्त प्रतिगमको दूत करनेवाला ।

२ देवानां सद्ने — स्वर्ग ।

[ ७४८ ] ( सं उ ) उत ( शुष्मिणं इन्द्र ) बलवान् इन्द्रको ( वाज-सातये ) भराय । भस प्राप्त करनेके पक्षसे लिख ( द्रुवे ) बुलाया है । हे इन्द्र ! ( सु-अन्ते अन्तमः अथ ) सुन्दरे तमय हमारे पास रह, पत्नी प्रवार ( वृधे सखा ) उत्तरिते तमय विश्व होकर हमारे पास रह ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ७४९ ] ( यः ) सुन्दरे लिख ( एना नमसः ) इन स्तोत्रोंके ( ऊर्जं न-पार्जं ) बगलों कम न करनेवाले, ( प्रिय चेतिष्ठ ) प्रिय और केना देनेवाले ( अरुति ) अग्निमीमांसा ( सु अमृतं ) उत्तम यज्ञ करनेवाले ( विश्वस्य दूतं ) सभी यात्रकके दूत ( अमृतं अग्निं ) अन्न अग्निको ( आ द्रुवे ) मैं बुलाया हूँ ॥ १ ॥

- ७५० स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दद्रवत्स्वाहुतः ।  
सुन्नदा यत्तः सुशमी वसुनां देवः राधो जनानाम् ॥ २ ॥ १२ ( तु ) ॥ ( ऋ ७।६।२ )
- ७५१ प्रत्य अदर्शयिष्येच्छन्ती दुहिता दिवः ।  
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सनरी ॥ १ ॥ ( ऋ ७।८।१ )
- ७५२ उदासियाः सृजते सूर्यः सचा उधनक्षत्रमचिवत्  
तरेदुषा सूर्यि सूर्यस्य च स मक्तेन गमेमाहि ॥ २ ॥ १४ ( वा ) ॥ ( ऋ ७।८।२ )
- ७५३ इमा उ वां दिविष्ट्य ससा हवन्ते अश्विना ।  
अयं वामह्रस्वसे द्याचियस्य विश्वेविशः हि गच्छथः ॥ १ ॥ ( ऋ ७।७।१ )
- ७५४ युवं चित्रं ददधुमोजनं नरा चोदेयाः सनुतावते ।  
अवोप्रथः समनसा नि यच्छते पिपेतः सोम्यं मधु ॥ २ ॥ १५ ( चा ) ॥ ( ऋ ७।७।२ )
- ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ७५० ] ( सः ) वह अग्नि ( अरुषा पिथ-भोजसा ) तैजस्वी और सर्वभक्ष भगवोंकी ( योजते ) अपने रथमें जोड़ता है । उसके धार ( सु-प्रदा ) उत्तम ज्ञानी ( यद्वाः ) पूर्य ( सु-शमी ) उत्तम सगर्भी ( स्वाहुतः ) उत्तम आहूतिमेंसे प्रदीप्त हुआ वह अग्नि देवोंकी लानेके लिए ( दद्रवत् ) जाता है । तब ( देवः ) उस अग्निकी ( वसुनां राधा ) चतोंछा देवस्य प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ ७५१ ] ( आयती उच्छृमती ) आकर घूमनेवाली ( त्रिवः दुहिता उषाः ) सुलोचनी पुत्री उषा ( प्रति अदर्श ) दीपने लगी है, वह ( मही तमः उ ) महान् अन्वहारकी ( चक्षुषा उप वृणुते उ ) प्रकाशमें हारानी है ( सनरी ज्योतिः कृणोति ) उत्तम नेत्रय करनेवाली यह उषा प्रकाश करती है ॥ १ ॥

[ ७५२ ] ( सूर्यः ) सूर्य ( सचा ) एकदम ( उदासियाः ) अपनी किरणोंकी फैलता है, ( उधत् ) उधव होके बाद ( मधुनं ) मातासमै यह गहन प्रकाश फैलते हैं । हे ( उषा ) उषे ! ( सव सूर्यस्य च ) तेरे और सूर्यके ( द्युषि ) प्रकाश होनेके बाद ( मक्तेन संगमेमाहि इत् ) अग्रे हम युक्त हों ॥ २ ॥

[ ७५३ ] हे ( अश्विना ) अश्विनो देवो ! ( इमा दिविष्ट्यः उ ) इस स्वर्गकी दृष्टा करनेवालीं प्रजायें ( उच्छ्रौ वां हवन्ते ) सबकी बतानेवाले तुम्हें सहस्रातके लिए पुकारती हैं, हे ( द्याचि-वस्य ) अपनी शक्तिते गिनात करनेवाले देवो ! ( अयं ) यह स्तुति करनेवाला ( अघसे ) शरक्षणके लिए ( वां अहे ) तुम्हें बुलाता है, ( हि ) अर्थोंकी तुम हो ( विश्वं विश्वं गच्छथः ) अत्येक प्रजाजनके पास जाते हो ॥ १ ॥

[ ७५४ ] ( नरा ) हे नेतागो ! अश्विनदेवो ! ( युवं ) तुम ( चित्रं भोजनं ददधु ) विलक्षण भोजन देते हो, ( सनुतावते चोदेयां ) स्तुति करनेवालेकी तुम प्रेरित करते हो, तुम ( स-भनसा ) एक विचारते ( रथं अर्धाङ्ग नियच्छतं ) रथकी हथर रोती और यहां ( सोम्यं मधु पिपेतं ) मौख सोमरस पिपेते ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

७५५ अस्य प्रज्ञामनु युतः शुक्रं दुदुहे अद्भ्यः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१४।१ )

७५६ अयं सुष इषोपद्यमयं सराशसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१४।२ )

७५७ अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो सुवनोपरि । सोमा देवो न ध्रुवः ॥ ३ ॥ १६ ( ते ) ॥  
( ऋ. ९।१४।३ )

७५८ एष प्रत्नं जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्पति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१४।४ )

७५९ एष प्रत्नं जन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावुषे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१४।५ )

७६० दुहानः प्रत्नमिषयः पवित्रे परि पिच्यते । क्रन्द देवाः अजीजनः ॥ ३ ॥ १७ ( हा ) ॥  
( ऋ. ९।१४।६ )

७६१ उप शिक्षापतस्सुषो मिषसमा चेहि क्षत्रवे । प्रवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१४।७ )

७६२ उपो पु जातमपतुर गोभिर्मङ्गं परिष्कृतम् । इन्दु देवा अयासिषुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१४।८ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ७५५ ] ( अस्य ) इस सोमरसके ( प्रज्ञां युतं अनु ) पुराने तेजको याद करने ( शक्रं सहस्रसाम् ) तेजस्वी और हजारों इच्छा पूर्ण करनेवाले ( कवि पयः ) ज्ञानवर्धक रसको ( अद्भ्यः दुदुहे ) शक्ती गण हैम्यारकरते हैं ॥ १ ॥

[ ७५६ ] ( अयं ) यह सोम ( सुषः इव ) सूर्यके समान ( उप-दृक् ) सबको देखनेवाला है, ( अयं सराशसि धावति ) यह ( तीस ) जलके पार्श्वमें जाना जाता है, उसी प्रकार ( आ दिवं ) बुलोकक यह ( सप्त प्रवते ) सात धाराओंमें बहता है ॥ २ ॥

१ सर्वासि—[ तीस ] पानीके बर्तन ।

२ धावति—बैठता है, छाया जाता है ।

[ ७५७ ] ( अयं पुनानः सोमः ) यह पवित्र होनेवाला सोमरस ( विष्वाणि सुवनोपरि ) सब भूवर्गोंपर ( सुषः देवः न ) सूर्यदेवके समान ( तिष्ठति ) प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

[ ७५८ ] ( हरिः पयः देवः ) हरे रसका यह सोम ( प्रत्नं जन्मना ) पहलेसे ही ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंके लिए निबोधकर ( प्रवित्रे अर्पति ) छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ७५९ ] ( प्रत्नं जन्मना ) प्राचीन स्तोत्रोंकी सहायतासे ( पयः देवः ) यह प्रज्ञानवान् ( कविः ) शक्ती सोम ( देवेभ्यः ) देवोंके लिए ( विप्रेण परिवावुषे ) ब्राह्मणों द्वारा बढ़ाया जाता है ॥ २ ॥

[ ७६० ] ( प्रत्नं दत्तः पयः ) पहलेसे यह रस कर्तव्य ( दुहानः ) निघोषा जाता है, और बारम्बार ( पवित्रे परि-पिच्यते ) छलनीसे छाना जाता है । यह ( क्रन्दन् ) शब्द करता हुआ ( देवान् अजीजनः ) देवोंको मानों घरमें बुलाता है ॥ ३ ॥

[ ७६१ ] हे ( प्रवमान ) सोम ! ( उप-सुषुषुः ) पासमें बैठनेवालोंको ( उप शिक्ष ) समझाकर यता और ( क्षत्रवे ) शत्रुको ( मिषसं आधेहि ) अथ हो ऐसा कर तथा ( रयिं विद्मः ) धन हमें दे ॥ १ ॥

[ ७६२ ] सोमरस ( जातं ) निकालनेके बाद ( अप-तुर ) पानीमें मिलाया जाता है । ( रयिं ) शत्रुके नाश करनेवाले ( गोभिः परिष्कृतं ) गायके दूधसे मिले ॥ ( इन्दुं ) सोमरसके पास ( देवाः उप अयासिषुः ) देव जाते हैं ॥ २ ॥

७६३ अ०साँ गायता नराः पवमानायेन्दवे । अभि देवा इयस्यते ॥ ३ ॥ १८ (वी) ॥

( ऋ. ९।१।१ )

॥ इति यजुस्मः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

७६४ प्र सोमातो विपथितोऽषा नपन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।१ )

७६५ अभि द्रोणानि यज्मयः शुक्रा शतस्य धारया । वाज गोमन्तमश्वरन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३।१ )

७६६ सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्पन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥ १९ (वि) ॥

( ऋ. ९।३।३ )

७६७ प्र सोम देवधीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

अंशो पयसा मदिरो न जागुविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।३ )

७६८ आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अयत मिथः स्रुर्न मर्ज्यः ।

तनीहिन्वन्त्यपतो यथा रथं नदीना गमस्त्योः ॥ २ ॥ २० (क) ॥ ( ऋ. ९।३।३ )

७६९ प्र सोमातो मद्भ्युतः श्रवसे नो मघानाम् । सुता विदधे अकधुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।३ )

[ ७६३ ] हे (नराः) गायको ! (देवान् यभि इयस्यते) देवोक्तिं किं यत् करनेकी इच्छा करनेवाले पवमानको अपनेसा (पवमानाये अस्मै इन्दवे) छाने जानेवाले इन्द्र सोमके लिए (उप-गायत) सायका याग करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ ७६४ ] (विपथितः) ऊर्मयः सोमासः । तान् बढानेवाले ये सोमरस (वनानि महिषाः इव) जित प्रकार पवनमें भैसे जाते हैं उसी प्रकार (आपः प्र नयन्ते) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ १ ॥

[ ७६५ ] (यज्मयः शुक्राः) भूरे रंक्के ये सोमरस (शतस्य धारया) पानीकी धाराले साथ (द्रोणान्) धारामें (गोमन्तं वाजं) गौ ब्रूयन्पी अपनेके साथ (अभि मश्वरन्) मिलाये जाते हैं ॥ २ ॥

[ ७६६ ] (सुताः सोमाः) सोमरस विपथितके बाद इन्द्र, वायु, मरुद्, विष्णु इन देवोक्ति (अर्पन्तु) प्राप्त हों ॥ ३ ॥

[ ७६७ ] हे (सोम) सोम ! तू (देव-धीतये) देवोक्ति देनेके लिए (अर्णसा) पानीमें (सिन्धुः कः) जित प्रकार नदियाँ पानीसे भरी जाती हैं, उसी प्रकार (प्र पिप्ये) मिलाया जाता है । (मदिरो न जागुविरच्छा) मानव्य देनेवाले पदार्थोंके समान तू उत्साह बढानेवाला है, (अंशो) इस सोमरसको (पयसा) दूधमें मिलाओ, बावमें (मधुश्चुतं कोशं मच्छ) इस भीठे रसको रसनेके अर्जनमें मछली तरह करो ॥ १ ॥

[ ७६८ ] (हर्यतः स्रुतः नः) मिथ पुनके समान (मर्ज्यः अर्जुनः) मुद्द होनेवाला यह खण्ड सोमरस (अत्के आ मयत) अर्जनमें छाना जाता है । (तं हि) उत इस सोमको (नदीषु) जलमें (गमस्त्योः) हारोंसे (अपसः रथं यया) जित प्रकार बैलगाड़ी रथको संशाममें लेजाते हैं उसी प्रकार (आ हिन्वति) मिलाते हैं ॥ २ ॥

[ ७६९ ] (मद्-भ्युतः सोमासः) मानव्य बढानेवाले ये सोमरस (सुताः) निजीके अपनेके बाद (विदधे) पवनमें (मघानां नः) हविष्यान् देनेवाले हवासे (अयसे) यथाके लिए (प्र अकधुः) बहायक होते हैं ॥ १ ॥

७७० आदी५ दृश्या यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अंत्यो न गोभिरित्यते ॥ २ ॥

( ऋ. ९।२।११ )

७७१ आदी५ अितस्य योषणो हरि२ हिन्वन्त्षद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥ २१ ( ली ) ॥

( ऋ. ९।२।११ )

७७२ अया पवस्व देवय रेभन्पवित्रं पर्षेपि विश्वतः । मभोधारा असुक्षत ॥१॥ ( ऋ. ९।१०६।१४ )

७७३ पवते हर्षतो हरिरिति हर्गासि रक्षा । अय्यर्षे स्तोत्रम्यो वीरवर्धनः ॥२॥ ( ऋ. ९।१०६।१९ )

७७४ म सुन्यानायान्धसो मतो न यष्ट तद्वचः ।

अप इवानमराघसं हता मखे न भृगवः ॥ ३ ॥ २२ ( लि ) ॥ ( ऋ. ९।१०१।११ )

॥ इति पठ्यः अष्टः ॥ ६ ॥

॥ इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः प्रथमप्रपाठश्च इत्य त्वाप्तः ॥ १ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

[ ७७० ] ( आत् ६ ) और यह सोम ( देखः यथा गणं ) हूँ जिस प्रकार अपने समूहमें जाता है, उसी प्रकार ( विश्वस्य मतिं ) सबकी बुद्धिको ( अपीवशात् ) वशमें करता है, ( अंत्यः न ) चौड़ा जिस प्रकार पानीमें घुसता है, उसी प्रकार ( गोभिः अज्यते ) वह बायके हृषमें लिखाया जाता है ॥ २

[ ७७१ ] ( आत् ६ ) हरि इन्द्रं ) इस हरे रंगके सोमकी ( अितस्य योषणः ) अित ऋषिकी अनुतिपां ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रके पीनेके लिये ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पथरोंसे कूटती है ॥ ३ ॥

[ ७७२ ] हे सोम ! ( देव-युः ) देवोंसे मिलनेकी इच्छा करनेवाला तू ( अया पवस्व ) पारसे छनता जा, ( रेभन् ) बान्ध करता हुआ ( पर्षेपि विश्वतः ) छलनीसे पारों और बाहर गिरता है, और बारमें तेरे ( मधोः धारा ) अक्षुधत ) नीचे रसकी धारा बाहर गिरने लगती है ॥ १ ॥

[ ७७३ ] ( हर्षतः हरिः ) इच्छा करनेके योग्य यह हरे रंगका सोम ( स्तोत्रम्यः ) स्तुति करनेवालोंकी ( वीर-वर्धनः ) वीर पुत्रों सहित वशकी ( अय्यर्षे ) देकर ( रक्षा ) रक्षणीय ( हर्गासि अद्रि पवते ) छलनीसे छाना जाता है ॥ २ ॥

[ ७७४ ] ( सुन्यानायान्धसः ) निचोडे जानेवाले इस अन्धकी सोमके बलमें ( तत् त्वचः ) तेरे हीन प्रवचनकी ( मतो न प्र यष्ट ) मनुष्य ॥ तुने, हे पात्रकी । ( अ-राघसं श्वानं ) अयोध कुत्तेकी ( भृगवः मखे न ) जिस प्रकार भृगुने अयोध्य मरुकी दूर किया था, उसी प्रकार ( अप हता ) दूर करने ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

## द्वितीय अध्याय

### इन्द्रदेवता

इस द्वितीय अध्यायमें आगे हुए इन्द्रके गुण इस प्रकार हैं—

१ विभवा-साहः [ ७१३ ]- सब शत्रुओंको हरनेवाला ।

२ शत-धनुः [ ७१३ ]- सैकड़ों उत्तम कर्म करनेवाला ।

३ चर्यपणीनां महिष्ठुः [ ७१३ ]- अनुषोंमें आधधिक महान् ।

४ इन्द्रः [ इन्द्रः ] [ ७१३ ]- सबमेंको फारनेवाला ।

५ पुण्ड-हुता [ ७१४ ]- जितो बहुत लोग अपनी सहस्रताके लिए बलि देते हैं ।

६ पुण्ड-पुता [ ७१४ ]- बहुतोंके द्वारा प्रशंसित ।

७ गाधान्यः [ ७१४ ]- प्रशंसनीय, स्तुत्य ।

८ सन-धुता [ ७१४ ]- सनातन कालसे जितती प्रशंसा होती आई है ।

९ द्युतः [ ७१५ ]- सबोंको बल देनेवाला, सबोंको अपने अपने कर्ममें प्रवृत्त करनेवाला ।

१० महोमां पाजानां दाता [ ७१५ ]- बहुत धन और भस्त्र देनेवाला ।

११ हव्यदधः [ हवि-अदधः ] [ ७१६ ]- लाल रंगके घोड़े अपने पास रखनेवाला ।

१२ सुदातुः [ ७१७ ]- उत्तम दान देनेवाला ।

१३ सत्यन्वाधाः [ ७१७ ]- झेठ धन जिसके पास है । हुमेता रहनेवाले धन जिसके पास है । हित करनेवाले धनोंकी भी अपने पास रखता है ।

१४ पु-क्षः [ ७१७ ]- धनोक्त रहनेवाला, धूलोक्तों से शत्रुकी ।

१५ पाज-युः [ ७१८ ]- भस्त्र और बल देनेवाला, भस्त्र और बल जिसके पास भरपूर है ।

१६ गय्युः [ ७१८ ]- जो गायोंका पालन करता है, गायें जिसके पास हैं ।

१७ यस्तुः [ ७१८ ]- निवात करनेवाला, धनवान्, आठ वस्तु जिसके पास हैं । आठ वस्तु- आपः, ध्रुवः, सोमः, परः, अनिलः, प्रयूयः और प्रगासः । वस्तुके अर्थ- भिष्ट, मोठा, धन, रत्न, सुवर्ण, उत्तम, जल, धुत, किरण, फलवान् ।

१८ हिरण्य-युः [ ७१८ ]- सोना बातामें रखनेवाला, सोनेका दान करनेवाला ।

५ [ सत्य. हिम्वी पा. २ ]

१९ वज्री [ ७२० ]- वज्रका उपयोग करनेवाला, वज्रधारी ।

२० मद्-या [ ७२२ ]- आनन्दित, जिसके पास आनन्द है ।

२१ यस्मिन् विभवाः श्रियः अधि [ ७२२ ]- जिसके पास सब प्रकारकी सम्पत्ति और ऐश्वर्य है ।

२२ शश्वि-शुः [ ७२६ ]- जो अपनी शक्तिसे सुप्रसिद्ध है, जिसकी इन्द्रियें प्रसिद्धांगी हैं ।

२३ शश्वि-पूजतः [ ७२६ ]- शक्तिके कारण पूजा जानेवाला ।

२४ सा-खण्डलः [ ७२६ ]- शत्रुके हृदय करनेवाला, शत्रुओंको मारनेमें प्रवीण ।

२५ अंश-पृषः न पात् [ ७२७ ]- अपने प्रकाशको कम न करनेवाला । किरणोंकी धारों और फैलानेवाला । जिसके सौगाँव बल कम नहीं होता ।

२६ महाहस्ती [ ७२८ ]- बलवत् और बड़े हाथोंवाला ।

२७ महाहस्ती नः क्षुमन्ति चिरं प्रार्भं वक्षिणेन संगृभाय [ ७२८ ]- बलवान् हाथोंवाला वह इन्द्र तेजस्वी, अनेक प्रकारके और बल करने योग्य धन हमें देनेके लिए हमें हाथमें लेता है ।

२८ सुवि-कूर्मः [ ७२९ ]- पराक्रमके अनेक कार्य करनेवाला ।

२९ सुवि-देव्याः [ ७२९ ]- देनेके लिए बलवान् धन अपने पास रखनेवाला ।

३० सुवि-मघः [ ७२९ ]- बहुत धनवान् ।

३१ सुवि-माश्रः [ ७२९ ]- शत्रुवृत्त शरीरका ।

३२ अयोभिः त्वा विपहि [ ७२९ ]- संरक्षणके अनेक तानत्र वह इन्द्र अपने पास रखता है, यह हमें मान्य है ।

३३ मूर्तः [ ७३० ]- धूर्तवीर ।

३४ वृषभा [ ७३१ ]- बलवान्, बलके समान सामर्थ्यवान् ।

३५ हिस्मन्तं त्वा देवाः मर्तातः न पारयन्ते [ ७३० ]- धन देनेकी इच्छा करनेवाले सुते देव और मनुष्य रोग नहीं सकते ।

३६ अग्रिप्यवः त्वा मा दमन् [ ७३२ ]- अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले मर्त्य लोग सुगे न हथों ।

३७ ब्रह्मद्विष मा किं वनः [ ७३२ ]- ज्ञानते द्वेष करनेवाले को तू सहायता मत कर ।

३८ अनामयी ( अन्-आमयी ) [ ७३४ ]- निर्मय, न करनेवाला ।

३९ राधानां पतिः [ ७३७ ]- अनेक चनोंका स्वामी ।

४० गिरवणा [ ७३७ ]- स्तुत्य ।

४१ हे दूर ! राघस्ता याहू [ ७३९ ]- हे दूर इन्द्र ! तेरी भुक्तार्थ वन रखनेवाली है ।

४२ तद्यस्तर [ ७४३ ]- अत्यन्त बलवान् ।

४३ तवस्तर ऊतये हवामहे [ ७४३ ]- बलवान् भीरु इन्द्रकी अपने सरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

४४ तुयि प्रतिः [ ७४४ ]- बहुतेके वाता सहायता करनेके लिए जानेवाला ।

४५ नर [ ७४४ ]- नेता, आगे चलनेवाला ।

४६ प्रत्यस्य ओकसः तुयि-प्रति नर द्युये [ ७४४ ]- अपने पुराने घरते बहुतेकोंकी सहायताके लिए जानेवाले नेता इन्द्रको मैं अपने सरक्षणके लिए बुलाता हूँ ।

४७ य ते पिता पूर्य द्युये [ ७४४ ]- जिस इन्द्रकी तेरी पूर्वजोंने सहायताके लिए बुलाया था ।

४८ स महान् हि [ ७४६ ]- वह इन्द्र महान् है ।

४९ द्युध [ ७४६ ]- बढानेवाला, क्षवितका विकार करनेवाला ।

५० सु-पार [ ७४६ ]- सकटोंसे पार पड़कानेवाला ।

५१ सुभ्रपस्तम [ ७४६ ]- कीर्तिमान्, प्रसारी ।

५२ स-अप्सुजिह्व [ ७४६ ]- वाधोंमें रहनेवाले शत्रुओं-को कौतुबनवाला ।

५३ शुभ्री [ ७४८ ]- बलवान्, सामर्थ्यवान् ।

५४ सुजेने अन्तम [ ७४८ ]- सुजेनेके समय पास रहनेवाला ।

५५ वृधे सखा [ ७४८ ]- उन्नति करानेमें मित्रके सखा ।

५६ शुभ्रिण इन्द्र वाजसातये मरय द्युये [ ७४८ ]- बलवान् इन्द्रको भक्षण दान होनेवाले वतमें बुलाता हूँ ।

५७ सहस्त्रिणाभि ऊतिभि सह उपागमत् [ ७४५ ]- हमारी सरक्षणके साधनोंसे साथ वह इन्द्र आता है ।

५८ सः योगे राये पुरश्चया वाजोभि न आगमत् [ ७४२ ]- वह इन्द्र लाभ होनेके समय, वन मिलनेके समय, और बुद्धिके काम करनेके समय अन्नके साथ हमारी तरफ आता है ।

५९ हे सखाय ! योगे योगे, घाने घाने तवस्तर इन्द्र उतये हवामहे [ ७४३ ]- हे मित्रो ! प्रत्येक लाभके काम करनेके समय, प्रत्येक युद्धके समय अपना बलशाली इन्द्रको सरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

६० सखाय ! आ पत, निर्पदित, इन्द्र अभि प्र गायत [ ७४० ]- हे मित्रो ! आभी, झेंडो, और इन्द्रके गुणोंका शान करो ।

६१ सखा सुते पुरुषतम पुरुषा ईशानं वार्याणां इन्द्र [ ७४१ ]- बलमें बहुत पनोने स्वामी ऐसे इन्द्रके गुणोंका वर्णन करो ।

इस प्रकार इन्द्रके श्रेष्ठ गुणोंका वर्णन इन मन्त्रोंमें आया है । धीर्य, वीर्य, युद्ध कीक्षम्य, क्षीणोंकी सहायता करनेकी तैय्यारी, जनताके हित करनेकी तत्परता इत्यादि सगुण इन मन्त्रोंमें आये हैं ।

पर केवल " इन्द्र वर है " इतना पढ़नेका कुछ भी उपयोग नहीं, तब तक कि वह शूरता अपनेमें न लाई जाए । बेदोंमें भी धर्म बताये हैं, उनका उपयोग तभी हो सकता है, जब उनके अनुसार आचरण किया जाए । तब पाठक वृद्ध जब धर्मोंका आचरण करे और उन्नत हों ।

## अग्नि देवता

१ ऊर्जो-म-पात् [ ७४९ ]- बल कम न करनेवाला, उस्ताह काम न करनेवाला ।

शरीरमें बलोंके रहनेतक ही इस शरीरमें बल रहता है । शरीरके ठंढे होतेही इसकी हलचल बन्द हो जाती है । इससे यह शक्त हो जाएगी कि अग्नि किस प्रकार बलकी आधार देनेवाला है ।

२ अरति [ ७४९ ]- अवतिशील ।

३ म्रिय, वीतिष्ठ [ ७४९ ]- म्रिय और वीतय उत्पन्न करनेवाला ।

४ अमृत [ ७४९ ]- जलर, नष्ट न होनेवाला ।

५ सु-अन्तर [ ७४९ ]- उत्तम हितारहित कार्य करनेवाला ।

६ विश्वस्य दूत [ ७४९ ]- विश्वका दूत, हवनमें शक्ते वह पशवोंकी शय वगैरह पहुचानेवाला ।

७ सु-महा [ ७५० ]- उत्तम शान्ति ।

८ यज्ञ [ ७५० ]- पूजक ।

९ सु-श्रीमि [ ७५० ]- उत्तम सन्ध्या ।

१० सु-आहुत [ ७५० ]- उत्तम आहुति जिसमें पदवी है ।

११ दुद्रवत् [ ७५० ]- देवोंको लानेके लिए शीघ्र जाता है ।

१२ देयं वसुतां राध- [ ७५० ]- इस अग्निदेवको मनोसे प्राप्त होनेवाले ऐश्वर्य मिलते हैं ।

१३ स अरुण विश्वभोजसा योजते [ ७५० ]- वह तेजस्वी, जाल रागके घोषोंको अपने रश्मिमें जोड़ता है ।

इतने गुण अग्नि देवताके इस अम्यायमें आए हैं ।

### उषा देवता

उषा देवताके गुण भी वैसे महत्त्वके और मनकीय हैं—

१ आर्यसि उच्छन्सी [ ७५१ ]- उषा आती है और प्रकाश फैलाने लगती है । अणकार दूर करनेके लिए प्रकाश फैलाना अत्यन्त आवश्यक है ।

२ दिवाः दुहिता उषा मस्यर्दसि [ ७५१ ]- धूम्रकी कुची उषा दीखने लग गई है । उसका प्रकाश भेड़ने लग गया है ।

३ महीतमः वक्षुषा उप बृणते [ ७५१ ]- वह उषा महान् अणकारको अपनी आँखों-किरणोंसे नष्ट करती है । अणकारको प्रकाशसे दूर करती है ।

४ सुनरी ज्योतिः कुणोति [ ७५१ ]- उत्तम नैतृय कालेबली प्रकाश करती है । अणकार दूर करके प्रकाश फैलाती है ।

५ सूर्यः सखा उक्षियाः उत्सृजते [ ७५२ ]- उषाके साथ सूर्य आकर अपनी किरणें फैलाता है ।

६ उषात् मक्षमं अर्चियन् [ ७५२ ]- उषय होते ही मक्षर चमकने लगते हैं ।

॥ हे उषा ! तव सूर्यस्य च व्युपि मकेन संगमे-  
मति [ ७५२ ]- तेरे और सूर्यके प्रकाशके बाद हम अणका सेवक हैं ।

उषा आती है और प्रकाश फैलाकर अणकार दूर करना शुरू करती है । उषाके बाद सूर्य उदय होकर प्रकाशने लगता है । तात्पर्य यह कि उषाके उदय होते ही अणकारका नाश होकर प्रकाश फैलता है । उसी प्रकार अनुप्यने अपने समान व राष्ट्रमें अपने कामके द्वारा मत्तान्याकारका नाश करना चाहिए और अपने समान व राष्ट्रमें प्रकाशमें लावेना प्रयत्न करना चाहिए । उषा प्रतिदिन लोगोंके यह ज्ञान देती है । उस ज्ञानकी मनुष्योंके अपने जीवनमें उतारना चाहिए ।

### अग्निर्नौ देवता

१ उक्षिया [ ७५२ ]- तेजस्वी, चमकनेवाले, किरण, प्रकाशकी किरण, बँस, ईश्वर, धूम्र, दिवस, अग्निनीकुमार ।

२ उक्षा [ ७५३ ]- प्रकाश, प्रकाश, चमकनेवाला माताका, गाय, पुष्पी, अग्निनीकुमार ।

३ शचीवत् [ ७५३ ]- अपनी शक्तिसे रहनेवाले ।

४ नरा [ ७५४ ]- नेतृत्व करनेवाले ।

५ युवं चिद भोजनं ददयुः [ ७५४ ]- तुम विलक्षण भुण्कारो भोजन देते हो ।

६ सुसुतावते चोदेयां [ ७५४ ]- साधमार्गसे क्षत-  
वालेको उत्तम प्रेरणा तुम ही देते हो ।

७ समनसा रथ अर्गक् नियच्छते [ ७५४ ]- एक विचारवाले होकर अपने रथकी इधर लाओ ।

८ पिशं विश्व मच्छयः [ ७५४ ]- तुम सर्वके प्रका-  
शनकी ओर जाते हो । उसके रोगकी चिकित्सा करनेके लिए जाते हो ।

९ अचछे घां अक्षे [ ७५३ ]- अपने सरलरूपके लिए तुमको मैं दुःखाता हूँ ।

१० इनाः दिविष्टयः उक्षो वां हवन्ते [ ७५३ ]- ये देवता प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली प्रजायें अग्निनीकी अपने सहायताके लिए बुलाती हैं ।

अग्निनी दो देव हैं । इनमें एक वास्तविकार्थमें कुशल है और दूसरा औषधि-चिकित्सक । ये दोनों ही रोगोंके पास जाते हैं और उसके रोग दूर करनेका प्रयत्न करते हैं । ये देव हैं पर उनके रोगी बाध होते हैं, अर्थात् ये देव होते हुए भी मनुष्योंको चिकित्सा करते हैं ।

रोगीको ये ऐसा उत्तम भोजन तैयार करने देते हैं कि उसकी सानेमें ही रोगी भला बग हो जाता है । औषधि लेनकी अपेक्षा औषध विहित भोजनकी पानसे रोगीकी अधिक लाभ होता है । क्योंकि औषधि लेते ॥ रोगीके मनमें " मे रोगी हूँ " ऐसे भावना रहती है, पर भोजन लानेमें बीबी भावना नहीं रहती । रोगीको ऐसा मांस्य होता है कि " मे बीमार नहीं हूँ, अपना भोजन मैं खाता हूँ " । सत मानसिक स्वास्थकी वृद्धिसे औषधिकी अपेक्षा भोजन रूपसे शरीरमें बर्बाद पड़वाना और उसको सहायतासे रोगीको रोग मुक्त करना अधिक लाभदायक है ।

वैद्योंके अपने रोगियों पर ऐसे प्रयोग करने चाहिए । कानेके द्वारा रोगियोंके शरीरमें औषध पड़वाना चिकित्साका एक उत्तम उपाय है ।

अग्निनीकुमारोंकी " दत्ता " कहा गया है, क्योंकि वे सबके रोगियोंकी तरफ जाते हैं । रोगियोंकी निरीक्षण करनेके लिए सर्वत्र सदा उत्तम होता है ।



## सोम

सोम हिमालयके सोनवान् शिखरपर मिलनेवाली एक बेलना नाम है। इसीलिए वेदोंमें उसे “ सोनवान् सोम ” कहा है।

## सोमको छानते समय सामगान

यसमें सोमको छानते समय सामगान दिया जाता था, उस विषयमें वर्णन इस प्रकार है—

१ पथमानाय इन्द्रो उप गायत [ ७६३ ]— छाने जानेवाले सोमके लिए सामगान बोलो।

इस समय बड़े ध्वज बोलना शीघ्र नहीं, धीना स्पष्ट कहा है—

२ सुन्नाताय अन्धसः तन् घञ् मर्नः न प्रचष्ट [ ७७४ ]— निचोडे जानेवाले इस अन्धरूपी सोमके विषयमें किसीकी भी होना शक्य नहीं। बोलने चाहिए। तथा सोमरस निकालते हुए उस स्थानपर कुत्ते या आ पावें ऐसा भी प्रवच्य करना चाहिए—

३ अराधसं इमानं अपहत [ ७७४ ]— अनुहार कृता परि यहा आजाए सो उसे भारकर भगा दो।

## सोमको कूटकर रस निकालना

सोमकी बेल काटी जाती थी, उसे पत्थरोंसे कूटते थे, और उसका रस निकालते थे। इस विषयमें भंज इस प्रकार है—

१ हरिं इन्दुं योषण इन्द्राय पितये अग्निभिः हिन्वन्ति [ ७७१ ]— हरे रमके चमकनेवाले सोमकी हाथ पत्थरोंसे कूटते हैं और कूटनेके बाद उगलिया उसे दबाकर उसका रस निकालती है। इन्द्रके पीनेकी देनेके लिए यह किया जाता है। कण्ठकी पट्टे पर सोमकी दमक उठी पत्थरोंसे कूटते हैं फिर हाथोंसे उसका रस निकाला जाता है। ऐसे इस रसमें निचोडनेके बाद पानी मिलाकर इसे छाना जाता है। छाननेका वर्णन इस प्रकार है—

१ नृभिः धीत , यद्रीः सुत , अश्वामारि परिपुत निपतः [ ७३५ ]—माखरोंसे हाथ प्रथम धोया गया, पत्थरोंसे कूटकर रस निवाला गया, अश्वके बालोंकी धनी छलनीसे छाना गया यह सोचरत है।

राग निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाते हैं और बाइमें छलनीसे उसे छानते हैं।

२ अयं गरागिन् धायन्ति [ ७५९ ]— यह सोम सोचरने का पाग ओरता हुआ जाता है। यहा “ सरः ” सरप थासीका

वर्तन है। सोमरस पानीके वर्तनमें जाता है और वहा जाकर पानीसे मिल जाता है।

३ हरिः पप देवेभ्यः सुतः पविने अर्पति [ ७५८ ]—यह हरे रमका चमकनेवाला देवोंको देनेके लिए निघोडा गया, यह सोमरस छलनीसे होकर नीचेके वर्तनमें गिरता है।

४ पपः देवः देवेभ्यः शिप्रेण परि वासुधे [ ७५९ ]— यह चमकनेवाला दिव्य सोमरस बाह्यगोंके द्वारा बड़ाया जाता है, अर्पित बाह्यण उसमें पानी मिलाकर उसे बड़ाते हैं, और उसे पीने योग्य बनाते हैं।

५ सुहातः पवित्रे परिपिच्यते [ ७६० ]—रस निवालनेके बाद छलनीसे यह छाना जाता है। छानते समय यह नीचेके कलशमें गिरता है और उससे कारण घब्र होता है, उस अपने अपने बड़े बड़े बेलोंकी मुलाता है। यह आत्मकारिक भाषा है।

६ क्रन्दन् देवान् अजितान् [ ७६० ]— छलनीसे नीचे गिरते हुए जो सोमका शब्द होता है, उससे भानी बड़े बेलोंकी मुलाता है।

७ विपिच्यतः ऊर्ध्वैः सोमरसः आपः प्रतप्यते [ ७६४ ]— क्षान बझानेवाले ये सोमरस लहरके रूपमें पानीके पास सेजाये जाते हैं अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं।

८ हे सोम ! देवकीलये अर्णसा प्रपिप्ये [ ७६९ ]— हे सोम ! तू देवोंके लोनेके लिए पानीमें मिलाया जाता है।

९ नदीषु गमस्त्योः आ दिग्गन्ति [ ७६८ ]— नदीके पानीमें यह सोमरस हाथोंसे मिलाया जाता है। यहा “ नदीषु ” “ नदियोंमें मिलाया जाता है ” ऐसा कहा है। “ नदीके पानीमें ” कटनेसे स्थानपर “ नदियोंमें ” ही बड़ा बिधा है। अतःके लिए पूर्णका प्रयोग देवोंमें होता है। “ अतः ” के लिए “ नदी ” का प्रयोग आत्मकारिक है।

इस प्रकार इस अष्टाध्याये सोमरस निकालने, पानीमें मिलाने और छाननेका वर्णन है।

१० गोभिः शीघ्रान्त स्यादु शकर्म [ ७३९ ]— गावके दूधमें सोमरस मिलाकर उसे हमने थोड़ा बर दिया है।

११ जान अच्युर मर्नं, धोमिः परिपृष्टन इन्द्रो देवा उप शयासिपु [ ७६३ ]— सोमरस निवालोंका बाद उनमें पानी मिलाते हैं उस धनुर्वे धारनेवाले सोमकी गावके दूधमें मिलाते हैं तब उनसे पाग देव जाते हैं। रस निकालना, पानी मिलाया, छानना और इसमें पावका दूध मिलाया बाइमें बोलना अथवा हवनमें उनका आहुति देकर दितर पीना। यह सब है सोमके तीसरे अष्टाध्याय कटनेका।

१२ अथयः शुक्राः श्रुतस्य धारया प्रोणान् सोमस्ते पाजे अभि मक्षरन् [ ७६५ ]- स्वच्छ सोमरस पानेकी धारये साथ बससेमें तथा गोदुग्धको अन्नके साथ मिलावे जाते हैं ।

१३ अंशोः पयसा मधुपच्युतं कोशं मच्छ [ ७६७ ]-सोमरस दूधमें मिलावनेके बाद उठे मोठे रसवाले बर्तनमें ढाकते हैं ।

१४ गोमिः मज्यते [ ७७० ]- पायके दूधके साथ सोमरस मिलाया जाता है । यह " गो " पद पायके दूधका भावक है ।

१५ मर्यपः अर्जुनः अत्के आ अच्यत् [ ७६७ ]- गुड़ होनेवाला सोम बर्तनमें छलनीसे छाना जाता है ।

१६ रेमन् पविशं विभ्यतः पर्येषि [ ७७२ ]- पाय करता हुआ दू छलनीसे नीचेके बर्तनमें जाता है ।

१७ अया पयस [ ७७२ ]- बार बांधकर छनता है ।

१८ मयोः धारा अयक्षत [ ७७२ ]- मोठे रसकी धारा नीचे गिरती है ।

१९ हयंत हृदि, स्तोतृभ्यः पीरयत् यदाः अमर्यव रंदा छरंति अति पयने [ ७७३ ]- हरे रसका सोमरस स्तोत्रवाँकी पीरपुत्रिके साथ मिलनेवाला यश देकर छलनीसे छनता है ।

२० अये सूर्यः इय उपदृक्ष [ ७५६ ]- यह सूर्यके समान तेजस्वी और सबोंको देखनेवाला है ।

२१ अये पुनामः सोमः विभ्या भुवना उपरि, देवो न सूर्यः विष्टति [ ७५७ ]- यह स्वच्छ होनेवाला सोमरस सब भुवनोंके ऊपर सूर्यके समान प्रकाशित होता है ।

इत सोमरसकी हवन करके देवोंको पीनेके लिए दिया जाता है ।

२२ हे इन्द्र ! त्वा अस्मिन् सधमादे [ ७६६ ]- हे इन्द्र ! तुम इस यज्ञमें नुलाया जाता है ।

२३ इदं सुत अनुपिन [ ७६७ ]- इत सोमरसकी तुपी ।

२४ ते याः स्यधा अनु असत [ ७६८ ]- तेरे लिए सोमरस अन्नके समान है ।

२५ सुते त्वं नियच्छ [ ७६८ ]- सोमयज्ञमें अपनेको केडा ।

२६ सोम्य ! स्व त्वा ममसु [ ७६८ ]- सोम पीनेवाले इन्द्र ! यह सोम तुममें आनव देवे ।

२७ स ते शुक्रयोः प्रादन्ता [ ७६९ ]- यह तेरे कोखोंमें भर जावे ।

२८ सोम्य मधु पिबतं [ ७५४ ]- सोमके मधुर रसको पियो ।

२९ देययुः [ ७७२ ]- यह सोम देवोंके पात जानेवाला है ।

३० विभ्यस्य मति आ यियशात् [ ७७० ]- सबकी बुद्धियोंको यह अपने अधिपारमें रखता है । सबकी बुद्धिपर अपना प्रभाव डालता है ।

३१ उदरं सुपूर्णं सुतं अग्नेः पिय [ ७६४ ]- पेट भरकर सोमरसको अन्न दो ।

३२ मधुप्युतः सोमासः सुताः विद्ध्ये मघोनः नः अयसे प्रागमुः [ ७६९ ]- आनन्द बढ़ानेवाले सोमरस यज्ञमें मजमानका यश यथाते हैं ।

### शुक्रका भयभीत करना

सोमरस पीनेके बाद मन्त्रका जस्ताह बबता है, शरीरकी शक्ति बढ़ती है । और शत्रुको भय हो ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न होता है—

३३ हे सोम ! उपस्थुष उपदिक्ष, द्वाप्रये गिवसं आपेदि [ ७६६ ] हे सोम ! वस बैठनेवाँसे क्वा कि वे शत्रुको भयभीत करें ।

शत्रुको भयभीत करने योग्य बल सोमरसको पीनेसे बढ़ता है । सब देव इत्ते पीकर सामर्थ्यवान् होते हैं और शत्रुओंको हराते हैं ।

### सुभाषित

इत दूसरे अध्यायमें सुभाषित इस प्रकार है—

१ विभ्या-साह, श्रुतभक्तुं, कार्यणीनां मंदिष्टं इन्द्रं प्र नायत [ ७६३ ]- सब शत्रुओंको हरादेवाले सेऊँ प्रवरके कर्म करनेवाले भवुष्योंमें बहुत महान् इन्द्रकी स्तुति करो ।

२ ननुतः नः अहोनां याजामां दाता [ ७६५ ]- वह इन्द्र सबोंको यज्ञानेवाला और हमें बहुतसे धन और अन्नका देनेवाला है ।

३ चः हव्यंशय सोम-पाप्ने प्रमायत [ ७६६ ]- हे मित्रो ! तुम पोरोंके रखनेवाले, सोम पीनेवाले इन्द्रके लिए मानव देनेवाले स्तोत्रोंका गान करो ।

४ सु दानवः सस्य-रक्षसः [ ७६७ ]- यह इन्द्र

उत्तम दान देनेवाला और ईमानदारीसे धन अपने पास रखनेवाला है ।

५ बाज-युग, गन्धुः, हिरण्य-युग [ ७१८ ]- बहु इन्द्र हमें अन्न, पाय, और सोना देनेवाला है ।

६ इन्द्र ! त्वापन्तः सखाय त्वा [ ७१९ ]- हे इन्द्र ! तुम प्राप्त करनेको इच्छा करनेवाले हमें विश्व तेरी स्तुति करते हैं ।

७ अपसः तव नविद्यो अम्यत् न र्षं आपपन [ ७२० ]- हे इन्द्र ! यत्कर्मोंमेंसे तेरे नये यत्नमें तेरे स्तोत्रके सिवाय मैं दूसरेके स्तोत्र नहीं ब्रूँगा ।

८ तव इत् उ स्तोमेः चित्रेत् [ ७२० ]- तेरे ही स्तोत्रमें स्तुति करना मैं जानता हूँ ।

९ देवाः सुयन्ते इच्छन्ति [ ७२१ ]- देव सोमरस निबालनेवालेको इच्छा करते हैं, अर्थात् सोमरस करनेवालेसे प्रेम करते हैं ।

१० स्वप्नाप न स्पृहयन्ति [ ७२१ ]- मांसही मनुष्यको पसन्द नहीं करते ।

११ अ-तन्द्राः प्र-भ्रादं यन्ति [ ७२१ ]- परिपक्वों देवता परम आनन्द देनेवाले सोमको प्राप्त करते हैं, अर्थात् उष्णीषी मनुष्य ही मुक्तको प्राप्त कर सकता है ।

१२ यस्मिन् विभ्याः श्रियः अधि [ ७२१ ]- इत इन्द्रमें सभी सोमाय रहती है ।

१३ सप्त संसदः रणन्ति [ ७२१ ]- इन्द्रकी स्तुति पहले सात ऋषिज करते हैं ।

१४ देवा वि-कद्रुकेषु येननं आनत [ ७२४ ]- सब देवता पहले ही दिवसमें उत्तम ब्रह्मज्ञानवाले यज्ञका विस्तार करते हैं ।

१५ दाशिय-गोः-शावि-पूत्रनः [ ७२६ ]- यह इन्द्र सामर्थ्यवान् किरणोंसे मुक्त और दाशियमान् होनेके कारण प्रेमा जाता है ।

१६ हे आ-सपहल ! प्र हवसे [ ७२६ ]- हे वायुको माननेवाले इन्द्र ! गोमने लिए तुम बुलाते हैं ।

१७ गुंम-वृषः न पाम् [ ७२७ ]- किरणोंके विस्तारने कम न करनेवाला यह इन्द्र है ।

१८ इन्द्र ! महा-हरती न क्षुमन् विषं प्राभं दक्षिणेन सं युभाय [ ७२८ ]- हे इन्द्र ! महान् हाथों-वाला तू हमारे लिए तेजस्वी मिलक्षण और स्वीकार करने योग्य बन देनेके लिए नहीं हाथें धारण करता ।

१९ तुषिर्धूमः, तुषि वैष्णवः, तुषि मघाः, तुषि-

मात्रं अयोभिः [ ७२९ ]- अनेक पराक्रम करनेवाला, देने योग्य बहुतेके धर्मोंकी अपने पास रखनेवाला, महान् पनपान्, महान् आकारवाला, सरसणके अनेक सामर्थ्यसे युक्त यह इन्द्र है ।

२० हे शूर ! दित्सन्ते त्वा देवाः न, प्रतीतः न धारयन्ते [ ७३० ]- हे वीर इन्द्र ! दान देनेकी इच्छा करनेवाले तुमसे देव अथवा मनुष्य, कोई भी रोक नहीं सकता ।

२१ त्वा अग्निष्वः मृतः उपहृत्याना मा दमन् [ ७३२ ]- तुम रक्षणकी इच्छा करनेवाले मृत और उपहात करनेवाले भी कष्ट न देंगे ।

२२ व्रत-त्रिपं मा वीं धनः [ ७३२ ]- हातसे डेब करनेवालेकी तू कष्टग्रस्त मत कर ।

२३ राधानां-पते गिर्यं ! ओजसा पित्र [ ७३७ ]- हे धनपते ! स्तुत्य इन्द्र ! बलसे पुत्र तू दत्त सोमरसकी दी ।

२४ हे शूर ! राधसा वाह प्र [ ७३९ ]- धन देनेके लिए तेरे बाहु भी सोमरसको प्राप्त हों ।

२५ पुरु-तमः पुरुर्णां यार्पाणां ईशानः [ ७४१ ]- वह इन्द्र बहुतेके मनुष्योंको हारनेवाला और स्वीकार करने योग्य बहुतेके वर्णोंका स्वामी है ।

२६ सः ध नः योगे, राये, पुरण्डा आ सुषय [ ७४२ ]- वह इन्द्र निम्नवर्गोंहमारे पुरपायोंके वर्णोंमें, धन प्राप्त करनेके वर्णोंमें, बहुत बुद्धिवा प्रयोग करके विपु जानेवाले वर्णोंमें सहस्रक होते ।

२७ योगे-योगे, याजे-याजे लघुस्तर् इन्द्रं ऊनये हयामहे [ ७४३ ]- प्रत्येक कर्ममें प्रारम्भमें और प्रत्येक युद्धमें अव्यक्त बलवान् इन्द्रको सरलप करनेके लिए हम बुलाते हैं ।

२८ प्रालस्य ओजसः, तुवि-प्रति नरं आगु ह्ये [ ७४४ ]- अपने पुरावें करने बहुतोंके पाग आनेवाले नेता इन्द्रकी हम सहायताके लिए बुलाते हैं । " प्रलस्य ओ-जसः " इन्द्रका सहायता पर यह विश्वास ही है ।

२९ सः दामन् दि [ ७४५ ]- वह महान् है ।

३० सः देवानां सन्ने शृषः शु-पारः सु-धवः सनमः स्रं अपु-जिन् [ ७४७ ]- वह इन्द्र देवोंके स्वागतके यज्ञमानकी बड़ानेवाला, अग्नी तरफसे बुलाये पारबाने-वाला, उत्तम यज्ञको और राक्षसोंको बलनेवाला है ।

३१ हे इन्द्र ! मुझे अन्नमः मघ, मृधं सता [ ७४८ ]- हे इन्द्र ! मुझे सम्यक् भी हमारे पास रह, उत्ती प्रचार उष्णिगे सम्यक् भी हमारे पास रह ।

३२ ऊर्जः न-पातं, प्रियं, चेतिष्ठं अस्ति सु-अध्यरं विश्वस्य दूतं अमृतं अग्निं भा हुवे [ ७५९ ]- यत्तरो वम न बर्त्तव्यते प्रिय, शान देनेवाले प्रगतिशील, उत्तम यत्न करनेवाले सभी यात्राके लिए दूतने समान उता अमर अग्निरो हम दूताते हैं ।

३३ सः अग्न्या विश्व-गोत्रसा योजते [ ७५० ]- बहु अग्नि तेजस्वी, सबने भक्षण अश्वोरो अपने रथमें जोरता है ।

३४ सु-प्रज्ञा, यतः सु-शामी सु-आहुतः [ ७५१ ]- बहु अग्नि उत्तम शानी, दूत, उत्तम आहुतिवाले प्रगतिशील दूता है ।

३५ व्यापती उच्छन्ती दिव्यः दुहित्वा उपाः महीतमः चक्षुषा उप मृणुते उ [ ७५२ ]- आरर समनेवाली धूलोत्तकी पुत्री उपा महा ॥ अथवा रक्षा प्रकाशने निवारण करती है ।

३६ सुनरी ज्योतिः एणुते [ ७५३ ]- उत्तम नैतुल्य करनेवाली यह उपा प्रकाश करती है ।

३७ उपाः तन सूर्यस्य च द्युपि भक्तेन संगमे-महि [ ७५४ ]- हे उवे । तेरे और सूर्यके प्रकाश हो जाने पर भस्ते हम युक्त होते हैं ।

३८ अभिना । इमाः द्विपिष्टयः उर्ध्वी घां ह्यन्ते [ ७५५ ]- हे अग्निनी देवी । इस स्वर्गके इच्छा करनेवाली राजावें सबको बतानेवाले तुम्हें महायज्ञाके लिए बुलाती हैं ।

३९ विदा विशं मच्छुगः [ ७५६ ]- तुम प्रत्येक प्रज्ञानके वात जाते हो ।

४० नरा । पुष समनसा चित्र भोजनं द्दधु [ ७५७ ]- हे नेता अश्विदेवो । तुम विलक्षण भोजन देते हो ।

४१ शुक्र सहस्रशो पयः [ ७५८ ]- तेजस्वी और अनेकों प्रकारकी इच्छा पूर्ण करनेवाला यह सोमरस है ।

४२ अयं सूर्य इव उपदृक् [ ७५९ ]- यह तोम सूर्यके समान सबको देखनेवाला है ।

४३ अयं सोम निग्वानि भुयना उपरि तिष्ठति [ ७६० ]- यह सोमरस सब लोकों पर प्रकाशित होता है ।

४४ पवमान । शत्रवे प्रियसं आपोदि [ ७६१ ]- हे सोम । शत्रुको भय प्रगट हो ऐसा कर ।

४५ ई विश्वस्य मर्ति मा चिदशाय [ ७६२ ]- यह तोम सबकी बुद्धिको दशमें करता है ।

४६ हव्यं दधिः रतोदुम्यः पीरव्व यदा अभ्यवेत्

[ ७६३ ]- बाहनेने योग्य यह हरे रंगका तोम द्रुति करने-वालोंको बौर मुनेति दूतत यदा देता है ।

४७ तम् यजः मर्तः न न नष्ट [ ७६४ ]- ॥ हीन यजन्त मनुष्य न मुने ।

४८ अ-राधयं श्वानं अपहत [ ७६५ ]- अयोग्य दूतरो सोमने दूर करो ।

## उपमा

इत अन्वयमें निम्नलिखित उपमाएँ आई हैं—

१ भीमं गां न [ ७६० ]- जिस प्रकार भयकर बैलका निवारण कोई नहीं कर सकता, उसी प्रकार " द्रिस्तमं तथा न वेपाः न मर्तासः धारयन्ते " शान देनेकी इच्छा करनेवाले इच्छा निवारण देव अथवा मनुष्य कोई भी नहीं कर सकता ।

इम मशय " गा " वह बैलका वाचक है ।

२ यथा गौरः सूरः [ ७६१ ]- जिस प्रकार गौर मूष सरोवरपर पानी पीता है, उसी प्रकार " गो-परीणातं प्रिय " वाक्ये दूतने मिले हुए सोमरसको पी । मूष सरोवरके पास जाता है और वेट भरकर पानी पीता है, उसी प्रकार दूत भी यज्ञमें जाकर वेट भरकर सोम पीते ।

३ नदीषु मध्यः न [ ७६२ ]- नदीके पानीमें जंते घोड़े घोड़े जाते हैं, उसी प्रकार " अग्नी द्युतः मृभिः धीताः अन्यायारैः परिप्लुतः " वाक्यमें बूढ़कर दस निष्काला गया, यात्राकोरे द्वारा पानीसे धोकर स्वच्छ किया गया, भेड़ने बाजोंकी बनी छलनीसे छानकर साफ किया गया सोमरस तैयार किया जाता है ।

४ देवो सूर्य न [ ७६३ ]- दूर जिस प्रकार सबके ऊंचे स्थानपर जोरित होता है, उसी प्रकार " अयं पुनानः सोम विश्वा भुवना उपरि तिष्ठति " यह छानकर साफ किया गया सोमरस सब लोकोंमें अन्य सब देवोंकी अनेका भेद्य है । जैसे सूर्य तेजस्वी और भेद्य है, उसी प्रकार सोम तेजस्वी और भेद्य है ।

५ यनानि महिषा इव [ ७६४ ]- जंते बतमें हालावके पास भंते जाते हैं, उसी प्रकार " सोमासः आपः प्र नयन्ते " सोमरस पानीमें मिलाने जाते हैं ।

६ सिन्धुः न [ ७६५ ]- जिस प्रकार नदी पानीसे सरो रहती है, उसी प्रकार क्षीरमय " अर्गस्ता प्र पिप्ये "

पानीसे पूर्ण किया जाता है । सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।

७ मंदिरः न आगृयिः [ ७६७ ]- आनन्द बढ़ानेवाले परार्थके समान नू लोगोंको ज्ञाप्त करनेवाला उनका उत्साह बढ़ानेवाला है । सोमरस जो पीते हैं उनमें आनन्द और प्रसाह बढ़ता है ।

८ हर्यतः ससुः न [ ७६८ ]- प्रिय पुत्रके तथाग यह " मर्याः अर्जुनः " कुछ होनेवाला और छाना गया सौम प्रिय है ।

९ अपसः रथं यथा [ ७६९ ]- वेष्टवान् रथको जैसे युद्धमें ले जाते हैं, वैसे ही " नदीषु मयस्त्वोः आ हिम्यन्ति " सोमरसकी नदीके जलोंमें हावोति मिलाते हैं । वेष्टे सोम पानीमें ले जाते हैं, जैसे रथ युद्धमें जाता है ।

१० हंसः गर्णं यथा [ ७७० ] हंस जैसे अपने मुँहमें जाता है, वैसे ही सोम " विभ्यस्व मर्ति वाविघनात् " सबकी बुद्धिमें जाता है, बुद्धियोंको उत्तम प्रेरणा देता है ।

११ अत्यः न [ ७७० ]- थोड़ेको जिस प्रकार नहलाते हैं, उसी प्रकार सोम " गोमिः अज्यते " गायके रूपमें मिलाते हैं, उसे रूपसे नहलाते हैं ।

१२ श्रुगवः मखं न [ ७७४ ]- जिस प्रकार भृगुजने अथोव्य यज्ञको दूर किया, उसी तरह यहते " ध्यानं अप- हत " कृतिको दूर करते ।

इस प्रकार दूसरे अष्टावक्ता निरीक्षण यहाँ किया है । पाठक वृन्द इस अध्यायके सर्वांगीण सूक्ष्म अध्ययन करके उस पर मनन करें ।

## द्वितीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

संज्ञकव्या	ऋष्येष्टवर्ण	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
७११	८१९११	भुतकजः सुखलो वा आगिरसः	इन्द्रः	अनुष्टुप्
७१४	८१९११	भुतकजः सुखलो वा आगिरसः	"	वापरी
७१५	८१९११	भुतकजः सुखलो वा आगिरसः	"	"
७१६	७११११	वसिष्ठी मंत्रावहनिः	"	"
७१७	७११११	वसिष्ठी मंत्रावहनिः	"	"
७१८	७११११	वसिष्ठी मंत्रावहनिः	"	"
७१९	८११११	वैधातिभिः काण्वः, प्रियमेवश्वागिरसः	"	"
७२०	८११११	वैधातिभिः काण्वः, प्रियमेवश्वागिरसः	"	"
७२१	८११११	वैधातिभिः काण्वः, प्रियमेवश्वागिरसः	"	"
७२२	८११११	भुतकजः सुखलो वा आगिरसः	"	"
७२३	८११११	भुतकजः सुखलो वा आगिरसः	"	"
७२४	८११११	भुतकजः सुखलो वा आगिरसः	"	"
( २ )				
७२५	८११११	हरिन्मिहिः काण्वः	"	"
७२६	८११११	हरिन्मिहिः काण्वः	"	"
७२७	८११११	हरिन्मिहिः काण्वः	"	"
७२८	८११११	कुसीवी काण्वः	"	"
७२९	८११११	कुसीवी काण्वः	"	"

संज्ञासंख्या	अक्षरसंख्या	शब्दः	वैयर्थ्यता	लक्षणः
७३०	८१८११३	दुत्तरीयः बाण्यः	द्वयः	गायत्री
७३१	८१८५११२	त्रितीयः बाण्यः	"	"
७३२	८१८९११३	चतुर्थः बाण्यः	"	"
७३३	८१९१११४	पंचमः बाण्यः	"	"
७३४	८१९३१	षष्ठिः संज्ञावर्णिः	"	"
७३५	८१९५१	सप्तमः संज्ञावर्णिः	"	"
७३६	८१९७१	अष्टमः संज्ञावर्णिः	"	"

( ३ )

७३७	३१९९१२०	निर्यामिनी गायिनी	"	"
७३८	३१९९१२१	निर्यामिनी गायिनी	"	"
७३९	३१९९१२२	निर्यामिनी गायिनी	"	"
७४०	३१९९१	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७४१	३१९९२	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७४२	३१९९३	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७४३	३१९९४	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७४४	३१९९५	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७४५	३१९९६	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७४६	३१९९७	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७४७	३१९९८	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७४८	३१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७४९	३१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७५०	३१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"

( ४ )

७५१	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	अधुनान्ता	प्रमाणः ( विपदा मूहती, सत्ता सत्ता मूहती )
७५२	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७५३	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७५४	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७५५	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७५६	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"

( ५ )

७५७	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	अधुनान्ता	प्रमाणः
७५८	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७५९	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७६०	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७६१	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"
७६२	७१९९९	अधुनान्ता निर्यामिनी	"	"

पानीसे पूर्ण किया जाता है । सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।

७ मन्दिरः न जागृयिः [ ७६७ ]- आनन्द बढ़ानेवाले पदार्थके समान नृ लोकोके जाग्रत करनेवाला उनका जैसाहृ बढ़ानेवाला है । सोमरस जो पीते हैं उनमें आनन्द और जागृता बढ़ता है ।

८ हयंतः सृजुः न [ ७६८ ]- श्रिय पुत्रके समान यह " मय्यं अर्जतः " शुद्ध होनेवाला और छाया गया सोम श्रिय है ।

९ अपस्तः रथं यथा [ ७६८ ]- वेपवात् रथको जैसे युद्धमें ले जाते हैं, वैसे ही " नदीषु गमस्तयोः आ हिम्वान्ति " सोमरसको नदीके जलमें हीम्वान्ति मिलते हैं । वेगसे सोम पानीमें ॥ जाते हैं, जैसे रथ युद्धमें जाता है ।

१० हंसः गणं यथा [ ७७० ] हंस जैसे अपने गृध्रमें जाता है, वैसे ही सोम " विश्वस्य मर्ति आधिपशत् " सबको बुद्धियोंमें जाता है, बुद्धिको उत्तम प्रेरणा देता है ।

११ अत्यः न [ ७७० ]- छोड़के जिस प्रश्नपर नहलाते हैं, उसी प्रकार सोम " गोमिः अज्यते " गायके द्वयमें मिलाते हैं, उसे ब्रूषसे नहलाते हैं ।

१२ सृगथः मर्यं न [ ७७४ ]- जिस प्रकार भ्रूमुर्धने लघोभ्य यज्ञको दूर किया, उसी तरह यज्ञसे " श्वानं अप- हत " कुत्तेको दूर करो ।

इस प्रकार दूसरे अध्यायका निरीक्षण यहाँ किया है । पाठक वृत्त इस अध्यायके मंत्रोंका सूक्ष्म अध्ययन करके उस पर मनन करें ।

## द्वितीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसंख्या	ऋषिदेवतानां	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
७११	८१९१०१	भुतकणः सुकलो वा आगिरसः	इन्द्रः	अनुष्टुप्
७१४	८१९१०२	भुतकणः सुकलो वा आगिरसः	"	गायत्री
७१५	८१९१०३	भुतकणः सुकलो वा आगिरसः	"	"
७१६	७१९१०४	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	"	"
७१७	७१९१०५	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	"	"
७१८	७१९१०६	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	"	"
७१९	८१९१०७	मेषातिथिः काण्वः, श्रियमेवमगिरसः	"	"
७२०	८१९१०८	मेषातिथिः काण्वः, श्रियमेवमगिरसः	"	"
७२१	८१९१०९	मेषातिथिः काण्वः, श्रियमेवमगिरसः	"	"
७२२	८१९११०	भुतकणः सुकलो वा आगिरसः	"	"
७२३	८१९१११	भुतकणः सुकलो वा आगिरसः	"	"
( २ )				
७२५	८१९११२	हरिश्चिदिः काण्वः	"	"
७२६	८१९११३	हरिश्चिदिः काण्वः	"	"
७२७	८१९११४	हरिश्चिदिः काण्वः	"	"
७२८	८१९११५	कुत्सीवी काण्वः	"	"
७२९	८१९११६	कुत्सीवी काण्वः	"	"

संज्ञार्थत्वा	अध्वनेहस्त्यान्	अग्निः	देवता	छन्दः
७३०	८१८११३	कुसीरो वायवः	इन्द्रः	शापत्री
७३१	८१८५१२५	त्रिमोहः वायवः	"	"
७३२	८१८५१२३	त्रिमोहः वायवः	"	"
७३३	८१८५१२४	त्रिमोहः वायवः	"	"
७३४	८१८११	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
७३५	८१८११	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
७३६	८१८१३	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"

( ३ )

७३७	३१५११२०	विरयामित्रो वायवः	"	"
७३८	३१५११२१	विरयामित्रो वायवः	"	"
७३९	३१५११२२	विरयामित्रो वायवः	"	"
७४०	३१५११	मधुषट्पन्था मंत्रावहनिः	"	"
७४१	३१५१२	मधुषट्पन्था मंत्रावहनिः	"	"
७४२	३१५१३	मधुषट्पन्था मंत्रावहनिः	"	"
७४३	३१३०१७	दुनःसोप आजीगतिः	"	"
७४४	३१३०१९	दुनःसोप आजीगतिः	"	"
७४५	३१३०१८	दुनःसोप आजीगतिः	"	"
७४६	८१३३११	नारवः वायवः	"	उद्विगच्छ
७४७	८१३३१२	नारवः वायवः	"	"
७४८	८१३३१३	नारवः वायवः	"	"

( ४ )

७४९	७१२६१२	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	अग्निः	मंत्रावः ( विद्यमा बृहती, समा रातो बृहती )
७५०	७१२६१२	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
७५१	७१८१११	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	उषा	"
७५२	७१८११२	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
७५३	७१७७११	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	अरिष्टती	"
७५४	७१७७१२	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"

( ५ )

७५५	७११७११	अवत्सारः काश्यपः	मरुतानः सोमः	वायवो
७५६	७१५७११	अवत्सारः काश्यपः	"	"
७५७	७१५७१२	अवत्सारः काश्यपः	"	"
७५८	७१३१९	दुनःसोप आजीगतिः वा वेवरातः कुत्रिमो	"	"
७५९	७१७२११	वेवरातिभिः वायवः	"	"
७६०	७१७२१२	वेवरातिभिः काश्यपः	"	"



मन्त्रसंख्या	श्रुतेरस्थान	श्रुतिः	देवता	छन्दः
७६१	९।१९।६	असित. काश्यपो देवलो वा	पवमान सोमः	गायत्री
७६२	९।६१।१३	अमहीयुरागिरसः	"	"
७६३	९।११।१	असित. काश्यपो देवलो वा	"	"
( ६ )				
७६४	९।३३।१	त्रित आप्य.	"	"
७६५	९।३३।२	त्रित आप्यः	"	"
७६६	९।३३।३	त्रित आप्यः	"	"
७६७	९।१०७।१३	सप्तर्षयः	"	प्रगाय* ( विदमा बृहती, समा सतो बृहती )
७६८	९।१०७।१३	सप्तर्षयः.	"	"
७६९	९।३१।१	इषावाश्व आग्नेयः	"	गायत्री
७७०	९।३१।३	इषावाश्व आग्नेयः	"	"
७७१	९।३१।५	इषावाश्व आग्नेयः	"	"
७७२	९।१०६।१४	अग्निश्वाशुवः	"	उरिणक्
७७३	९।१०६।१३	अग्निश्वाशुवः	"	"
७७४	९।१०१।१३	प्रजापतिर्वैश्वानरो वायवो वा	"	अनुष्टुप्

## अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्थः ॥ २ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १ जगद्विभर्तागवः; २, ५, १५ अथहीमुरागिरतः; ३ कज्जयो मारीचः; ४, १० भृगुर्वाहर्णिर्मरणिमर्ता-  
मवो वा; ६-७ मेपातिभिः काण्डः; ८ मयुष्यन्ता वन्दामित्रः; ९ वसिष्ठो मंत्रावर्णिः; ११ उपमन्युर्वासिष्ठः;  
१२ वायुर्वाहस्वयः; १३ वात्सवित्पाः; अस्त्वयः काण्डः; १४ नृपेय आगिरतः; १५ नहुवो भानवः; १७  
( १-२ ) तिरुता निवावरी; १७ ( ३ ) पुमिनयोऽन्ताः; १८ भुवःकजः सुकसो वा आगिरतः; १९ नेता  
मायुष्यन्तः; ॥ १-५, १०-११, १५-७ वज्रमलः सोमः; ६ अग्निः; १७ निशावर्णी; ८, १२-१४,  
१८-१९ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नी ॥ १-१०, १५, १८ वायवो; ११ भिष्टुः; १२-१४ प्रपायः=  
( विषमा बृहती, सप्ता सतीबृहती ), १५, १९ अनुष्टुप्; १७ जगती ॥

७७५ पवस्व वाचो अग्निवः सोमं चित्रामिस्त्वभिः । अग्निं विश्वानि काण्ड्या ॥ १ ॥ ( ऋ १।६१।१५ )

७७६ स्वसमृद्धिषो अपोऽग्निषो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वचर्पणे ॥ २ ॥ ( ऋ १।६१।१६ )

७७७ तुभ्यमां ध्रुवना कवे महिसे सोम तस्थिरे । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥ ( यी ) ॥ ( ऋ १।६१।२० )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

१ [ ७७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अग्निवः ) तू आवेके भागमें रहनेवाला अर्वात् मुख्य है, तू ( चित्राभिः कृतिभिः ) अपनी विलक्षण रसवकी शक्तिसे मूल्य होकर ( वाचः पवस्व ) द्वारा तू स्तुतिको पुनः, उतरी प्रकार तू ( विश्वानि काण्ड्या भभिः ) अपने सब स्तुतिके काण्ड्याकी पुनः ॥ १ ॥

१ अग्निवः—आगे रहनेवाला ।

२ चित्राः ऊतया—विशेष संरक्षणको शक्ति अपने पास हो ।

३ विश्वानि काण्ड्या अभि—सब स्तुतिके काण्ड्य हों, ऐसे कर्म करने चाहिए ।

[ ७७६ ] हे ( विश्व-चर्पणे ) सबका निरोक्षण करनेवाले सोम ! ( अग्निवः ) तू आगे चलनेवाला होकर ( वाचः ईरयन् ), स्तुतिपौकी प्रेरित करता हुआ ( समृद्धिषो आपः ) अन्तर्लिखे जलको ( पवस्व ) प्राप्त कर । सोमरसमें जल मिलाया जाता है ॥ २ ॥

१ विश्व-चर्पणिः—सब कर्मोंके जलकी तरह निरोक्षण करना चाहिए । सर्वजनिक हित करनेवाला ।

२ अग्निवः—अगे स्थान पर रहने, नेता बने ।

३ वाचः ईरयन्—दूतकी वाणी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो, ऐसे उत्तम कर्म करने चाहिए ।

४ समृद्धिषो आपः पवस्व—सोमरसमें अन्तर्लिखे जलकी कणमें प्राप्त होनेवाले जलको मिलाने ।

[ ७७७ ] हे ( कवे ) इन्द्राग्नी सोम ! ( तुभ्यं ) तेरी ( महिसे ) अक्षमताके कारण ( इमा ध्रुवना तस्थिरे ) वे ध्रुव स्थिर हैं, उसी प्रकार ( धेनवः ) वे गायें ( तुभ्यं धावन्ति ) तुमें दूध देनेके लिए तेरे पास दौट रही हैं ॥ ३ ॥

७८८ ये ते पवित्रमूर्धयोऽमिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।१५ )

७८९ सु नः पुनान आ भर रयि वीरवतीमिपम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥ ५ ( ला ) ॥  
( ऋ. १।६।१६ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

७९० अग्निं दूर्तं वृणीमहे होतारं विश्वदेसम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१९।१ )

७९१ अग्निमग्निं हवीमग्निः सदा हवश्च विश्वपतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१९।२ )

७९२ अग्ने द्रवांश्च हवा वह जज्ञानो वृक्तवर्हिषे । असि होता न ईश्वरः ॥ ३ ॥ ६ ( यौ ) ॥  
( ऋ. १।१९।३ )

७९३ मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षता ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१९।४ )

[ ७८८ ] हे सोम ! ( ते ये ऊर्ध्वयः ) तेरो ओ लहरें हैं, वे ( धारया पवित्रं अमिक्षरन्ति ) एक धारासे छनगले भीचे बिर रही हैं, ( तेभिः नः मृडय ) उनके द्वारा हमें मुझ मिले ऐसा कर ॥ २ ॥

[ ७८९ ] हे सोम ! ( विश्वतः ईशानः ) तू सबका स्वामी है, ( सः पुनानः ) वह तू इस निकाल कर छाता जानेके बाद ( नः ) हमें ( रयि वीरवतीं हव्यं आ भर ) मन और पुत्रपौत्रद्वय अन्न भरदुर दे ॥ ३ ॥

१ विश्वतः ईशानः— सब प्रकार सबका स्वामी ।

२ पुनानः— पवित्र होकर ।

३ रयि वीरवतीं हव्यं आ भर— मन और पुत्र सब देवैवाले जल हमें भरदुर दे ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ७९० ] ( होतारं ) देवोंकी बुलाकर लानेवाले ( विश्व-येदः ) सब मन पासमें रखनेवाले ( अस्य यज्ञस्य सुकृतम् ) इस यज्ञकी उत्तम ढंगसे सिद्ध करनेवाले ( दूर्तं अग्निं वृणीमहे ) देवोंकी हवि पटुवानेवाले अग्निकी हम आराधना करते हैं ॥ १ ॥

१ होता— षोष्ठ देवोंको बुलाकर लानेवाला ।

२ विश्व-येदः— सब प्रकारके धनोंकी अपने पास रखनेवाला ।

३ यज्ञस्य सुकृतम्— यज्ञको उत्तम ढंगसे करनेवाला ।

४ दूर्तः— हमें देवोंकी पटुवानेवाला ।

५ अग्निः— “ अग्निः कस्मादग्नीर्मयिषि ” ( निरुक्त )— अग्नी, आये से जानेवाला, मंसित तक पटुवानेवाला ।

[ ७९१ ] ( विश्वपतिं ) प्रजाओंके शासन करनेवाले ( हव्य-वाहं ) हविकी देवोंके पास पटुवानेवाले ( पुरु-प्रियं ) बहुतोंकी प्रिय लगनेवाले ( अग्निं अग्निः ) आग से जानेवाले नेता अग्निकी ( हवीमग्निः सदा हव्यमे ) हवनको मन्त्रों हम सदा बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ ७९२ ] हे ( अग्ने ) अग्नि देव ! ( जज्ञानः ) अग्निपति उत्पन्न होनेवाला तू ( वृक्त-वर्हिषे ) आतन कंतने वाले भजनानके लिए ( हव्यं देवान् आ वह ) इस यज्ञमें देवोंको बुला ला, तू ( नः होता ईदयः अस्मि ) देवोंकी बुलाने वाला, स्तुत्य और हमारा सहोदक हैं ॥ ३ ॥

[ ७९३ ] ( वयं ) हम ( सोम-पीतये ) जो यज्ञमें मानेवाले और पवित्र वस्तुबुल दे, उन ( मित्रं वरुणं ) मित्र और वरुणकी ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥ ४ ॥

७९४ ऋतेन यावृत्तारुधावृत्तस्य ज्योतिषस्त्वती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२।१९ )

७९५ वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरुतिभिः । कर्ता नः सुरावसः ॥ ३ ॥ ७ ( वा ) ॥  
( ऋ. १।२।१६ )

७९६ इन्द्रमित्राधिपो बृहदिन्द्रमर्कभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनुषत् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३।१ )

७९७ इन्द्र इद्वयोः सचा समिधस आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्रो हिरण्यपः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।३।२ )

७९८ इन्द्रं वाजेषु नोऽव सहस्रप्रघनेषु च । उग्र उग्रामिरुतिभिः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।३।४ )

७९९ इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आ स्यैश्वरोहयदिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ४ ॥ ८ ( खा ) ॥  
( ऋ. १।३।९ )

८०० इन्द्रं अग्रा नमो बृहत्सुवृत्तिमेरयामहे । धिया येना अवस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।९।४ )

८०१ वा हि शश्वन्त ईदत इत्या विप्राय ऊतये । सचा वाजसावये ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।९।५ )

[ ७९४ ] ( यो ऋतेन ) जो सायबचनसे ( ऋतावृद्धौ ) सायका सर्वजन करते हैं, जो ( ज्योतिषः-पत्नी ) तेजके स्वामी हैं; ( ता मित्रावरुणा ) उन मित्र और वरुणको में ( हुवे ) बुलाता हूँ ॥ २ ॥

२ ऋतेन ऋतावृद्धौ—साय नियमका वातन करने सत्यके कार्यको उन्नति करते हैं।

३ ज्योतिषः-पत्नी—प्रकाशके स्वामी, प्रकाश फैलाते हैं।

[ ७९५ ] ( वरुणः मित्र ) वरुण और मित्र ( विश्वाभिः ऊतिभिः ) अपने-अपने सरक्षणके साधनसे ( प्राविता भुवन् ) हमारे सरक्षण करनेवाले हैं, ( नः सु सुरावसः कर्ता ) और हमें उत्तम पदसे युक्त करें ॥ ३ ॥

[ ७९६ ] ( वाधिमः ) सामगान करनेवालोंने ( इन्द्रं इत् ) इन्द्रको ही ( बृहत् अनुषत् ) बृहत् नामका सामगानसे स्तुति की। ( अर्किणः ) अर्कना करनेवालोंने ( अर्कभिः इन्द्रं ) मन्त्रोंसे इन्द्रको स्तुति की, उसी प्रकार ( वाणीः इन्द्रं ) स्तोत्रोंसे भी इन्द्रको ही स्तुति की ॥ १ ॥

[ ७९७ ] ( ध्वजी हिरण्यपः इन्द्र इत् ) बखवारी, सोनेके आभूषण धारण करनेवाला इन्द्र ( वचो युजा हयोः ) कहनेसे ( एषमं ) मूढ़ जाननेवाले बौद्धोंकी ( सचा ) एक साथ ( आ समिधसः ) अपने-अपने ओजनेवाला है ॥ २ ॥

[ ७९८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( उग्रः ) वीरशू ( उग्रामिः ऊतिभिः ) सरक्षणके प्रबल साधनोंसे ( सहस्रप्रघनेषु वाजेषु ) हमारा प्रकाशके घन प्राप्त होनेवाले युद्धोंमें ( नः अव ) हमारी रक्षा कर ॥ ३ ॥

१ उग्रः उग्रामिः ऊतिभिः नः अव—तु उग्रवीर होकर उग्र सरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर।

२ सहस्रप्रघनेषु वाजेषु नो अव—हमारे प्रकाशके घन प्राप्त होनेवाले युद्धोंमें हमारा सरक्षण कर।

[ ७९९ ] ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( दीर्घाय चक्षसे ) महान् प्रकाशके लिए ( दिवि स्यैश्वरोहयत् ) धूम्रजमों द्वाराके चढ़ाया, उसी प्रकार ( गोभिः अद्रं व्यैरयत् ) किरणोंसे भेगोंकी शक्ति किया ॥ ४ ॥

[ ८०० ] ( अग्रस्यपः ) अपने सरक्षणको इन्द्र करनेवाले हम ( इन्द्रे ) इन्द्रके पास और ( अग्री ) अग्निके पास ( बृहत् नमः सुवृत्ति ) बहुत ब्रह्म और उत्तम स्तुति ( ऐरयामहे ) पहचानते हैं। उसी प्रकार ( धिया येनाः ) बह्मपूर्वक जनकी प्राप्ति कराते हैं ॥ १ ॥

[ ८०१ ] ( ता हि ) उन इन्द्र और अग्निकी ( शश्वन्तः विश्वासः ) वस्तुसे शान्ति मिलकर ( ऊतये ) अपने सरक्षणके लिए ( इत् ईदत ) ऐसी स्तुति करते हैं, जिस प्रकार ( स-वाधमः ) आपसमें शयना करनेवाले ( याज-सातये ) शत्रु प्रातिके लिए स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

८०२ तां वां गोभिर्विपन्ययः प्रपश्यन्तो हवामहे । मेघसाता सनिप्ययः ॥ ३ ॥ ९ (हु) ॥  
( ऋ. ७।९।१६ )

॥ इति द्वितीयः पण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

८०३ वृषा पयस्य धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१० )

८०४ तं त्वा धतोरमोण्योऽः पवमान स्वदेशम् । दिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।११ )

८०५ अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युर्व वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥ १० (ट) ॥  
( ऋ. ९।६५।१२ )

८०६ वषा शोणो अधिकनिकृद्वा नदयन्नेपि पृथिवीमुत घाम् ।  
इन्द्रस्येव वयसुरा मृष्य आजौ प्रचोदयज्जर्षसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।११ )

८०७ रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेपि मधुमन्तमश्नुम् ।  
पवमान सन्तनिमेषि कृष्णजिन्द्वाय समे परिविप्यमानः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।१४ )

[ ८०२ ] ( विपन्ययः ) स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले ( प्रपश्यन्तो ) हविष्यान्की पसमें रखनेवाले ( सनिप्ययः ) घन पानेकी इच्छा करनेवाले और ( मेघ-साता ) यत् करनेवाले हम ( तां वां ) उन तुम दोनों इन्द्र और अग्निकी ( गोभिः ) हवामहे । स्तुतिसे मुक्त है ॥ १ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] टीकाः खण्डः ।

[ ८०३ ] हे सोम ! तू ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला होकर ( धारया पवस्व ) एक बारसे छतता जा, और तू ( विश्वा ओजसा दधानः ) सब धनोको अपने बलसे धारण करके ( मत्सरते मत्सरतः ) मत्सरोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको आनन्द देनेवाला हो ॥ १ ॥

[ ८०४ ] हे ( पवमान ) मुझ होनेवाले सोम ! ( ओषयोः धर्तारि ) दावापुत्रिणीको धारण करनेवाले ( स्व-दशो वाजिनं ) आरभ्योका साक्षात् करनेवाले, बलवान् ( तं त्वा ) ऐसे उस तुमसे मैं ( वाजेषु दिन्वे ) संग्राममें जानेके लिए प्रेरित करता हूँ ॥ २ ॥

[ ८०५ ] हे सोम ! ( मया धिया ) इस-वधुलीके ( चित्तः हरिः ) निजोपर नजर हट्टे खेपतकरा-तू ( अया चित्तो पयस्य ) एक धारासे बचनमें छतता जा, और ( विपानया युर्व चोदय ) मुझमें जानेके लिए अपने मित्र इन्द्रकी प्रेरित कर ॥ ३ ॥

[ ८०६ ] ( शोणः वृषा ) काल रंगवाला बल ( वाः आभि कलिःक्रद्न् ) गम्यको देखकर जित प्रकार शर्र करता है, उस प्रकार ( नदयन् ) शब्द करनेवाला यह सोम है, हे सोम ! तू ( पृथिवीं उत घां पयि ) पृथ्वी और पृथ्वीको प्राप्त होता है, ( आजौ ) मुझमें ( इन्द्रस्य वयसुः इय ) इन्द्रके शब्दके समान तेरे शब्दको ( सागृण्ये ) मे मुक्ता हूँ, ( प्रचेतयम् ) अपने स्वरूपका शान देता हुआ ( इमा वाचं आ अपरिदि ) इस स्तुतिकर वाचोकी तू प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ ८०७ ] ( रसाय्यः ) प्रबल स्वयं भयूर और ऊपरसे ( पयसा पिन्वमानः ) शब्दके रूप मिलानेसे और अधिक ( मधुमन्तं ) मधुर रूप ( अंशुं ) सोपकी ( ईरयन् पयि ) प्रेरणा करते हुए तू जाता है । हे ( सोम ) सोम ! ( परि-विप्यमान पवमानः ) पानीमें बिलकर छना जानेवाला तू ( संतनिमेषयन् ) अपनी धारा बनाते ॥ तू ( इन्द्राय पयि ) इन्द्रकी प्राप्त होता है ॥ २ ॥

८०८ एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्रासस्य नमयन्वचस्तुम् ।  
परि वर्ण भरमाणा रुधन्तं गन्धुनो अपि परि सोम सिक्तः

॥ ३ ॥ ११ ( रि ) ॥

( ऋ. २।९।१५ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

८०९ त्वामिद्धि हवामहे सातो वाजस्य कारवः ।

॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४६।१ )

त्वो धुत्रेणिन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वधवः

८१० स त्वं नक्षिप्र वज्रदस्त धृष्णुया मह स्ववाना अद्रिचः ।

॥ २ ॥ १२ ( कु ) ॥

गामस्य रथमिन्द्र स किं सत्रा वाजं न जिग्युषे

[ धा. १०।३२।स्त्र. ५ ] ( ऋ. ६।४६।२ )

८११ अभि म वः सुराधसमिन्द्रमर्चं यथा विदे ।

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।१ )

यो जरिहृम्या मयसा पुरुवसुः सहस्रेणव शिक्षवि

[ ८०८ ] हे सोम ! ( मदिरो ) उत्साहवशानेवात्मा तू ( पव-स्तुम् ) वृत्रवध होनेके बाद ( उदग्रासस्य नमयन् ) पानी बहानेवाले मेघको धुकाते हुए ( मदाय पवस्य ) मानव देनेके लिए छनता जा । ( रुधन्तं वर्णं परि भरमाणाः ) तेजस्वी रथको धारण करते हुए ( सिक्तः ) पानीमें छनते हुए ( गन्धुः ) गायके दूधकी इच्छा करते हुए ( नः परि अपि ) तू हमारे चारों ओर बह ॥ ३ ॥

॥ यद्वां तीक्ष्ण खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] अनुर्थः खण्डः ।

[ ८०९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( कारवः ) स्तुति करनेवाले हम ( वाजस्य सातो ) अन्नको प्रापिके लिए ( त्वां हि हवामहे ) तुझे ही बुलाते हैं, हे इन्द्र ! ( सत्पतिं ) श्रेष्ठ पुत्रवर्षका पालन करनेवाले तुझे ( नरः ) लोग ( धुत्रेणु ) [ हृद्यन्ते ] शत्रुके उत्पन्न होनेपर बुलाते हैं, उसी प्रकार ( अवैतः काष्ठास्तु ) घोडोंके युद्धोंमें भी ( त्वां ) तुझे ही सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ८१० ] ( क्षिप्र वज्रदस्त अद्रिचः ) हे विजयजन पराक्रमी, वज्रधारी तथा श्वन्तवर रहनेवाले इन्द्र ! ( धृष्णुया ) अपनी राजनाशक शक्तिके ( महः ) महान् हुआतू ( स्ववानः ) शत्रुके लिए अपनेके बाद ( गां अपश्यं रथं संक्षिप्रं ) गाय, घोडे और रथ उत्तम प्रकारसे हमें दे, ( जिग्युषे ) विजयी पुत्रवर्षको ( सत्रा वाजं न ) अन्ते एक साथ घोडे भागि पराजय दू देता है, उसी प्रकार हमें दे ॥ २ ॥

१ धृष्णुया महः— शत्रुके पराजय करनेकी शक्तिके महान्ता प्राप्त होती है ।

२ जिग्युषे सत्रा वाजं— विजयी वीरको सहजमें ही अन्न और बल प्राप्त होता है ।

[ ८११ ] ( पुरु-वसुः मयसा ) बहुत सारा धन प्राप्त करनेवाला धनवान् ऐसा ( य ) जो इन्द्र ( जरिहृम्याः ) सहस्रेण इष्ट शिक्षाति ) स्तुति करनेवालोंको हजारों प्रकारसे धन देता है, ऐसे ( सु-राधसं इन्द्रं ) उत्तम धन देनेवाले उस इन्द्रको ( यः ) तूम ( यथा-विदे ) जिस प्रकार जानते हो, उस प्रकार ( अभि म वः अर्चं ) श्रुति करो ॥ १ ॥

७ [ साम. हिथी भा. २ ]

८१२ शतानीकेव ॥ जिगाति धृष्युया हन्ति वृत्राणि दाशुपे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुमोजसः ॥ २ ॥ १३ (हि) ॥

[ पा. १६ । उ. ना. । ख १, ( ऋ ८।१२।२ )

८१३ स्वामिदा द्यो नरोऽपीप्यन्वजिन् भूर्णयः ।

स इन्द्र स्तामवाहस इह श्रुष्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥ ( ऋ ८।१९।१ )

८१४ मत्स्वा सुशिमिन्द्रतिवस्तपीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।

तव अवाऽस्युपमान्युष्य सुतेपिन्द्र भिर्वणः ॥ २ ॥ १४ (ल) ॥

[ पा. १९ । उ. ना. । ख १ ] ( ऋ ८।१९।२ )

॥ इति चतुर्थं खण्ड ॥ ४ ॥

[ ५ ]

८१५ यस्ते मदी वरेण्यस्तेना यवस्वान्यसा । देवावीरयश्चसहा ॥ १ ॥ ( ऋ ९।६।१९ )

[ ८१२ ] ( धृष्युया शतानीक इव ) दूरबीर जिस प्रकार शत्रुसेनापर ( प्र जिगाति ) चढ़ाई करता है, उस प्रकार इन्द्र ( दाशुपे वृत्राणि हन्ति ) दान देनेवाले के लिए शत्रुओंको मारता है, ( पुर-मोजसः ) बहुत साधन अपने पास रखनेवाले ( अस्य ) इस इन्द्र के ( दत्राणि ) दान लोगोंको, ( गिरे-रसाः इव ) जिस प्रकार पर्वतके जल लोगोको तुल्य करते हैं, उसी प्रकार ( प्र पिन्विरे ) मूल करते हैं ॥ २ ॥

१ धृष्युया शतानीक इव प्र जिगाति— दूर पुरुष अपने शीर्षके शत्रुसेनापर आक्रमण करता और विजय प्राप्त करता है ।

२ दाशुपे वृत्राणि हन्ति— वह इन्द्र उपकार करनेवालोंकी उन्नतिके लिए शत्रुओंको मारता है, और शत्रुओंको रक्षा करता है ।

३ गिरे रसा इव अस्य पिन्विरे— पर्वतके जल जिस प्रकार सबको मिलते हैं, उस प्रकार इन्द्रके दान सबके लिए लाभकारी होते हैं ।

[ ८१३ ] है ( यजिन् ) वज्रधारी इन्द्र । ( भूर्णयः मर- ) हवि देनेवाले यजमान ( इदा त्वां अपीप्यन् ) आज पहले ही दिते तुझे सोम देते हैं । ( सः ) वह तू ( स्ताम-वाहस- ) तोष गानेवालोंकी स्तुतिओंको ( इह भुधि ) इस पक्षमें भुन और ( स्वसरं उपागहि ) प्रशस्तिपूर्ण विप्रेक्षण हो ॥ १ ॥

[ ८१४ ] है ( सु-शिमिन्द्रतिवस्तपीमहे ) सुन्दर शिरस्त्राण धारण करनेवाले, मोक्षोका पालन करनेवाले, स्तुतिके योग्य इन्द्र । ( वेधसः ) तेरी सेवा करनेवाले, ( त्वया भूषन्ति ) तुझे उत्तम प्रकारसे सुशोभित करते हैं, ( मत्स्व ) तू सोम पीकर तुल्य हो, है ( उपप्य ) स्तुतिके योग्य इन्द्र । ( सुतेपु ) सोमरस तैम्पार होनेके बाद तुझे ( तव उपमानि अवांसि ) तेरी उपमा देने योग्य अब भी दिए जाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ८१५ ] है सोम । ( देववी- ) देवताकी देने योग्य ( अथ द्राक्ष ह्य ) पानी राखसोंको पारनेवाला और ( वरेण्यः मद्- य- ते ) श्रेष्ठ आनन्द देनेवाला जो तेरा रस है, ( तेन अन्यथा पयस्व ) उस सेवन करने योग्य रमके साथ पूरा करने उन्नत का ॥ १ ॥

८१६ जमि<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००</sup>

८१७ सम्मिश्रो अरुणो भुवः स्रपस्यामिने धनुमिः । सीदे च्यनो न योनिमा ॥३॥ १५ (चौ) ॥

[ भा. १२। उ. १। २२. नास्ति ] ( ऋ १।६।२१ )

८१८ अये पूषा रयिभेगः सोमः पुनानो अर्पति ।

पतिर्विषस्य भूमनो व्यरुयद्रोदसी उमे ॥ १ ॥ ( ऋ १।१०।१७ )

८१९ सधु पिषा अनूपस गाधो मदाय घृष्वयः ।

सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१०।१८ )

८२० य ओजिष्ठस्तमा मर पवमान अवाय्यम् ।

यः पञ्च चर्पणीरभि रयि येन वनामहे ॥ ३ ॥ १६ (फु) ॥

[ भा. १२। उ. २। स्व. ९ ] ( ऋ १।१०।१९ )

८२१ पुषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतापसां दिवः ।

प्राणा सिधूनां कलशाश्च अधिकदिन्द्रस्य हाद्याविश्वमनीषिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ १।८६।१९ )

[ ८१६ ] हे सोम ! तू ( अ-मिनियं वृत्रं जहि ) सप्तर्षी इन्द्रोका मत्स्य करनेवाला है, तू ( दिवे दिवे ) प्रति-दिन ( पासे सस्तिनः ) मुझमें जाता है, और ( यो-पाति. ) नामका दान और ( मद्र-सा असि ) घोड़ोंका दान तू करता है ॥१॥

१ अ-मिनियं वृत्रं जहि — सप्तर्षी वप करना चाहिए ।

२ दिवे दिवे पासे सस्तिनः— प्रतिदिन तू मुझ करता है ।

[ ८१७ ] हे सोम ! तू ( सु-उपस्थाभि. घेनुभि. संमिदलः ) सुन्दर वायके वृषमें मिलनेपर ( दयेन. म ) जिस प्रकार वाय ( योमि भासीर्दे ) अपने घोसकेमें बैठकर ( न अरुयः भुवः ) तेजस्वी होता है, उसी प्रकार ॥ चमकता है ॥ ३ ॥

[ ८१८ ] ( पूषा ) पीपय करनेवाला ( मय ) मजनीय ( रयिः ) धनके समान ( अये पुनानः अर्पति ) यह सोम छाने जाते हुए कलशमें जाता है, ( विषस्य भूमनः पतिः सोमः ) सब प्राणियोंका पालन करनेवाला यह सोम ( उमे रोदसी व्यरुयद्रः ) घोड़ों घुमोकर और पृथ्वी लोक पर अपने तेजसे चमकता है ॥ १ ॥

[ ८१९ ] ( मिषा. घृष्वयः गाधः ) प्रेम और स्पर्धा करनेवाली गाधों ( मदाय स्रमनूपत ) दानद्व प्राप्त करनेके किए खुति करती हैं, ( उ ) यह सत्य है कि ( पवमानासः इन्दवः ) छूट होनेवाले तथा ऐश्वर्यवाले ( सोमासः ) सोमरस ( पथ घृष्वते ) अपने यहुनके यामोंको बनाते हैं ॥ २ ॥

[ ८२० ] हे ( पवमान ) सोम ! ( यः ओजिष्ठः ) जो सोमरस शक्ति बढ़ानेवाला है, ( य. ) जो ( यंस्य चर्पणीः ) पांचजनोंको ( अभि ) प्राप्त होता है, और ( येन रयिं वनामहे ) जिसकी सहस्रवृत्ताते हम धन प्राप्त करते हैं उस ( अवाय्य सा मर ) प्रसन्नमयी रसकी हमें भरपूर दे ॥ ३ ॥

[ ८२१ ] ( मतीनां पुषा ) नृदिक यत्न बढ़ानेवाला ( विचक्षणः ) विवेक शाली, ( अह्नां उपसां दिवः प्रतरीता ) दिन, उषा और घटोत्कर्षा तेज बढ़ानेवाला ( सिधूनां प्राणा ) नदियोंका प्राण ( मनीषिभिः ) विद्वानों द्वारा खुति किए जाने योग्य ऐसा यह सोम ( इन्द्रस्य हादि भाविश्वन् ) इन्द्रके दूरपरमें प्रवेश करनेकी इच्छा करते हुए ( कलशाश्च अधिकदिन्द्रः ) तथा मत्स्य करते हुए कलशमें जाता है, छाया जाता है ॥ १ ॥



८२२ मनीषिभिः पवते पूज्यः कविर्नृमियतः परि कोशाः असिष्यदत् ।

व्रितस्य नाम जनयन्मधु स्रश्चिन्द्रस्य वायुः सख्याय वर्षयन् ॥ २ ॥ ( ऋ ९।८६।१० )

८२३ अयं पुनान उपसो अरोचयदर्थं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।

अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरः सोमो हृदे पवते चाक मत्सरः ॥ ३ ॥ १७ ( गी ) ॥

[ पा. ३६ । ठ. ३ । स्व. ४ ] ( ऋ ९।८६।११ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

८२४ एवा क्षसि घोरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राज्यं मनः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।९१।१८९ )

८२५ एवा रातिस्तुविमघ विभोभिषाधि भावुभिः । अषा चिदिन्द्र नः सचा ॥ २ ॥

( ऋ ८।९१।१९० )

८२६ मां पु ब्रह्मैव तन्द्रयुर्भवां बाजानां पते । मत्सचा सुतस्य सोमतः ॥ ३ ॥ १८ ( ति ) ॥

[ पा. १४।७ । १२२. ३ ] ( ऋ ८।९१।१९० )

८२७ इन्द्रं विश्वा अवीवृधंसमुद्रव्यचसं गिरः ।

रथीतमः रथीनां बाजानां सत्यति पतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ १।१।१ )

[ ८२२ ] ( पूज्यः कविः ) यन्नेते ही सान्नी यह लोग ( मनीषिभिः पवते ) यात्रकों द्वारा छाना जाता है ( कृषिः पतः ) पतकताओं द्वारा नियन्त्रित यह लोग ( कोशाः पर्यसिष्यदत् ) कलकल जाता है, ( व्रितस्य इन्द्रस्य नाम जनयत् ) लोगों लोगों में प्रसिद्ध होनेवाले इन्द्रके नामकी ओर अधिक प्रसिद्ध करता हुआ ( मधु ) यह मधुर रस ( इन्द्रस्य स्वय्याय ) इन्द्रकी मित्रताके लिए ( ययुर्ध्वयन् ) वायुका सैन्य करता हुआ ( शूरः ) बलवान् गिरता है ॥ २ ॥

[ ८२३ ] ( लोक-कृत् ) लोगोंका हित करनेवाला ( अयं पुनानः ) यह लोग पवित्र होता हुआ ( उपसो अरोचयत् ) उपाकी प्रकाशित करता है, ( सिन्धुभ्यः अभवत् ) नदियोंको बढ़ानेवाला यह है, ( अयं हृदे ) यह सोम वेदमें बानेके लिए ( त्रिः-सप्त दुदुहानः ) ब्रह्मकी सातवीं रूप निकालकर ( मत्सरः आशः पवते ) आत्मश्रद्धाके होकर उत्तम रीतिसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाँचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ ८२४ ] हे इन्द्र ! तू ( घोरयुः एवं असि हि ) युद्धमें शेरोंका उपवीध करनेवाला है, क्योंकि तू ( शूरः पयः ) शूर है, ( उत स्थिर ) गौर युद्धमें स्थिर रहनेवाला है, इसलिए ( ते मनः ) तेरा मन ( राज्यं पदम् ) भरापना करनेके योग्य है ॥ १ ॥

[ ८२५ ] हे ( तुवी-मध ) कृत्त वनयान् ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( विभोभिः भावुभिः ) धारण करनेवाले सब देवताओंको हृदि देनेवाले यज्ञमन्त्रोंके पास तेरे द्वारा विष्णु यत् ( रथिभिः ) बल ( याधि विष्णु ) स्थिररूपसे रहते हैं, ( अथ ) इसलिए, हे इन्द्र ! ( नः सचा ) हमें बल देकर हमारी सहायता कर ॥ २ ॥

[ ८२६ ] हे ( बाजानां पते ) जहाँके पतकोंके स्वामी इन्द्र ! ( तन्द्र-युः ब्रह्मा इव ) आलसी ब्राह्मणके समान ( मां उ सु भुवः ) तू आलसी मत हो, बलितु ( योतमः सुतस्य मत्स्य ) गोवृद्ध विधित सोचरतते भावयित हो ॥ ३ ॥

[ ८२७ ] ( विभ्याः गिरः ) सब स्तुतिवां ( समुद्र-व्यचसं ) समुद्रके समान बिरल ( रथीनां रथीतमं ) रथी शेरोंमें भयानक पथ ( बाजानां पतिं ) बलोंके स्वामी ( सत्यति इन्द्र-अवीवृधन् ) सत्यवर्षके सारक्षण करनेवाले इन्द्रका भयन करती हैं, और उसके पदोंके बढ़ाती हैं ॥ १ ॥

८२८ सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम श्वसस्पते ।

त्वाममि प्र नोनुमा जेतारमपरजितम्

॥ २ ॥

( ऋ. १।१।१२ )

८२९ पूर्वाग्निन्द्रस्य रातयो न वि दस्यंत्यूवयः ।

यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मधम्

॥ ३ ॥ १९ ( ली ) ॥

[ भा. १८।८. नासि१। २६. ४ ] ( ऋ. १।१।१९ )

॥ इति पद्यः सप्त ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयप्रपादके प्रथमोऽर्थः ॥ २ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

[ ८२८ ] हे ( श्वसः पते ) बल्लोको रत्ना करनेवाले ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते सख्ये वाजिनः ) तेरी मित्रतामें बलवान् होकर हम ( मा भेम ) न डरें, निभय हों, ( जेतारं ) विजयी ( अपरजितं ) पराजित न होनेवाले ऐसे ( त्वामि प्रणोनुमः ) तुझे हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

[ ८२९ ] ( इन्द्रस्य रातयः पूर्वाग्नी ) इन्द्रके दान प्राचीनकालसे मिलते आ रहे हैं, ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करने-वालोंकी ( गोमतः वाजस्य मधः ) गायसे उत्पन्न हुए मधरसयी धन ( यदा मंहते ) जब वह देता है, तब उसने ( रातयः ) दान ( न वि दस्यन्ति ) डर नहीं होते ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

## तृतीय अध्याय

### इन्द्र-देवता

इस अध्यायमें इन्द्र देवताके गुणोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ उग्रः [ ७९८ ]— इन्द्र उग्रवीर है, वह बुर है ।

२ यक्षीः— [ ७९७ ]— वह यक्षोंको धारण करता है ।

३ इन्द्रः ( इन्द्र, इन्द्र ) [ ७९७ ]— यज्ञियोंकी फाटता है ।

४ हिरेण्ययः [ ७९७ ]— सोनेके आभूषण धारण करता है ।

५ वज्रो युजा हयोः सच्चा आ संमिदन्ः [ ७९७ ]— प्राक्षोके मुनते ही रथमें वज्रजानेवाले ऐसे होविषाद घोड़े इन्द्रके हैं ।

इन्द्रके घोड़े इतनी अचलते तरह मिलित हैं कि शत्रु भोसते ही अपनी जगह जाकर खड़े हो जाते हैं ।

६ उग्रध्वः [ ८१४ ]— स्तुत्य, प्रशस्तनीय ।

७ याजानां पतिः [ ८२६ ]— अन्न और बलोंका स्वामी ।

८ हे इन्द्र ! सहस्र प्रघनेषु वाजेषु नः अय [ ७९८ ]— हे इन्द्र ! हजारों धन जिसमें प्राय होते हैं ऐसे युद्धमें हमारी रक्षा कर ।

युद्धमें हजारों प्रकारके धन मिलते हैं । शत्रुओंको हरा देने बाद उसने जो स्रष्टा जाता है, उस युद्धमें धन प्राप्त होता है, अर्थात् युद्धमें विजय मिलनेके बाद शत्रुओंके मृतेका अविदार विजयोंमें लोभोंको है । यह प्रयासोंको साथ धो, ऐसा होता है ।

९ हे इन्द्र ! वीर्येषु शूरैः अस्ति, स्थिरैः अस्ति [ ८२४ ]— हे इन्द्र ! तु लोगोंके साथ रहकर शूरता बिलाने-वाला है, और युद्धमें अपनी जगह पर स्थिर रहनेवाला है । क्योंकि उसको हार कभी थी नहीं होती, इतनाय यह इन्द्र युद्धमें अपनी जगह पर स्थिर रहता है ।

१० सत्पति नरः नृप्रेषु हवन्ते [ ८०९ ]- उत्तम रीतिसे पालन करनेवाले इन्द्रको लोग धृष्टसे सहृदयताके लिए बुलाते हैं ।

११ सुदिमित्र हरिवः गिर्विणः [ ८१४ ]- उत्तम साक्षात् सामनेवाला और उत्तम थोड़े पालनेवाला प्रजासन्निध इन्द्र है ।

१२ पुष्पगुप्ता सतामीक इष प्र जिगाति [ ८१९ ]- धीर्घसे संकष्टों से निकट पासमें रहनेवाले वीरके सन्धान क्षत्रु पर इन्द्र आक्रमण करता है ।

१३ द्यामुपे वृत्राणि हसित [ ८१९ ]- दान देवैर्बालोकि कात्यायन करनेके लिए उनके शत्रुओंको मारता है ।

१४ हे इन्द्र ! कारयः वाजसातो रयां हवन्ते [ ८०९ ]- हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले अनेक यज्ञमें तुझे बुलाते हैं ।

१५ गायिन्ः इन्द्रं वृहत् अनुपत, अर्किणः अर्केभिः धाणीः इन्द्रं [ ७९६ ]- लोग कहनेवाले इन्द्रको बृहत् साम गाकर स्तुति करते हैं, अर्चना करनेवाले भस्मसे प्रशसा करते हैं, सभीकी धाणी इन्द्रका वर्णन करती है ।

१६ अयस्थयः इन्द्रे अग्नौ बृहत् नमः शुशुकि पेरधामहे [ ८०० ]- अपने संरक्षणको इच्छा करनेवाले इन्द्र और अग्निकी हम महान् स्तुति करते हैं, ऐसा कहते हैं ।

१७ विभ्याः तिराः समुद्रपयसं रथानां रथीतमं घाजानां पतिं सत्पतिं इन्द्रं अवीं वृधन् [ ८२७ ]- तम स्तुतिवां समुद्रके समान विद्याल, अष्ट रथी, धनोंके स्वामी, उत्तम अधिपति ऐसे इन्द्रके यशको बढ़ाती हैं ।

१८ इन्द्रा वीर्याय चक्षसे दिवि सूर्य आरोहयत् [ ७९९ ]- इन्द्रने महान् प्रकाशके लिए सूर्यको धुल्ले पर बढ़ाया ।

१९ गोभिः अग्निं द्यैदयत् [ ७९९ ]- किरणोंसे भेषोंकी कौड़ा और पानी बरसाया ।

इन्द्रके ये गुण इन भेषोंमें आए हैं । इनमेंसे भी गुण अपनेमें लाये आ सकेँ उन्हें पाठक कानेका प्रयत्न करें, और जो गुण ॥ आ सकने हों उनका आशय ही पाठक अपने मनमें धारण करें। जैसे “ सबके प्रकाशके लिए इन्द्रने सूर्यकी आकाश पर बढ़ाया ” इस प्रकार सूर्यकी बढ़ावा अनुष्ठीक पशुको बात नहीं है, फिर भी ज्ञानान्तर्याममें पड़े हुए पशुधर्मोंकी शानका प्रकाश देकर उन्हें ज्ञानयुक्त करनेका काम साधकोंसे आसारमें ही सकता है । अतः साधकोंकी ऐसे काम अन्वय करने चाहिए ।

“ वज्रपाटी ” इन्द्र है । हम “ वज्रपाटी ” नहीं हो सकते, क्योंकि हमारे पास वज्र नहीं है, पर हम “ ज्ञानपाटी ” तो हो ही सकते हैं । इस रीतिसे इन्द्रके गुणोंका ज्ञान इन भेषोंमें दिया गया है । उन्हें जनि और उनके आश्रयको अपने अन्तर कानेका प्रयत्न करें । अब दूसरे देवोंके गुण देखिए—

### अग्नि-देवता

अग्नि देवताके निम्न गुण इस अध्यायमें आए हैं—

१ अग्निः [ ८९० ]- अग्नि-जो-आगे से जानेवाला, अन्ततः पशुवानेवाला ।

२ दिव्य-वेदाः [ ७९० ]- सर्वज्ञ, सब धर्मोंको अपने पास रखनेवाला ।

३ यक्षस्य सुनक्तुः [ ७९० ]- यत्तका सम्पादन उत्तम रीतिसे करनेवाला, सज्जनोका सत्कार करनेवाला, सब लोगोंका साठन करने और बल बेकर सबका उद्धार करनेवाला ।

४ विदपतिः [ ७९१ ]- प्रजाओंका पालन करनेवाला ।

५ पुष्ट-मित्रः [ ७९१ ]- बहुतोंकी मित्र ।

६ हव्यथाह [ ७९१ ]- हवि देवोंको पहुँचानेवाला ।

७ द्रुतः [ ७९० ]- हविषोंके सके पशुवानेवाला द्रुत ।

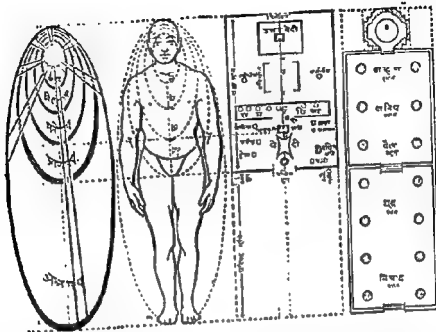
८ द्रोता [ ७९० ]- देवोंको बुलाकर कानेवाला ।

९ जघानः वृक-वर्हिपे इह देवान् आ वह [ ७९१ ]- उल्लस होते ही यजमानोंके लिए देवोंको बुलाकर ला ।

१० नः द्रोता ईदयः अग्नि [ ७९० ]- तु हमारा होता और स्तुत्य है ।

यहां पर अग्निको देवोंकी बुलाकर कानेवाला और यज्ञ शास्त्रमें उन्हें अपने अपने स्थान पर बंधानेवाला कहा गया है । यहाँ यज्ञशास्त्र हमारा शरीर है । इस शरीरके यज्ञ-शास्त्रमें नेत्र स्वात्ममें सूर्य, हृदयके स्थान पर चक्षुः, फुफ्फुसमें वायु, छातीमें इन्द्र, मूत्रमें अग्नि, कानमें विद्या ऐसे अनेक अवयवोंमें अनेक देव आकर बसे हुए हैं और इस वेष्टमें अपना-अपना काम वे करते हैं । ये वेष्ट शरीरमें उष्णता कभी अग्निसे रहनेवत् होती रहते हैं । शरीरके ठंडे होनेसे पहले ही सब निकल जाते हैं । इसलिए कहा है कि अग्नि शरीरके ही यज्ञशास्त्रमें सब देवोंकी बुलाकर रहता है और उन्हें अपने-अपने स्थान पर बंधाता है, और उनके द्वारा वहाँके सब कार्य करता है । शरीरमें यह अनुभव सभी साधकोंकी सेवा चाहिए । और अपने शरीर कपो यज्ञशास्त्रमें सब देव कैसे और कहाँ रहते हैं, यह ज्ञानवा चाहिए ।

यज्ञशालाका चित्र



यज्ञशाला घाटोरका चित्र है । इस प्रकार मन्त्रिके जो गुण मंत्रमें कहे हैं उन्हें पाठक अपने अन्दर धारण करें ।

देवोंको बुलाकर मानेका अर्थ राष्ट्रमें पिढाओंको बुलाकर माना है । “ यिद्वांसो हि देवाः ” ( अ. भा. ) विद्वान् ही राष्ट्रमें देव हैं । इस प्रकार देवोंके गुण अपने राष्ट्रीय और वैयक्तिक कर्तव्यकी जानकारी दे रहे हैं । उसे जानकर अपनी उन्नति करनेकी चाहिए ।

इन्द्र-अग्निकी स्तुति

इन्द्र और अग्निकी स्तुति एक ही जगह है, इस विषयमें इस प्रकार कहा है ।

१ उतये ता इत्था इदंते [ ८०१ ]- अपने संरक्षणके लिए उन दोनोंकी इस प्रकार स्तुति की जाती है ।

२ सवाधः वाजसातये इदंते [ ८०१ ]- शत्रुके नाश करनेके लिए सानेवर अन्न प्राप्तिके लिए इनकी स्तुति की जाती है ।

३ धिपन्यतः प्रयस्वन्तः सनिधयः मेधसाता ता वां गीर्भिः हवामहे [ ८०२ ]- स्तुति करनेवाले,

हविष्यका हवन करनेवाले, धनकी इच्छा करनेवाले, यज्ञ करनेवाले, हय पुत्र दोनों-द्वारा और अग्निवर्ण स्तुति करने बुलाते हैं ।

४ यथायिदे सुरधर्षी इन्द्रे अग्निं प्र अर्चं [ ८११ ] - अग्नी जानकारी है वैसे ही उत्तम धन देनेवाले इन्द्रकी आराधना करो ।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निकी स्तुति इस अध्यायमें है ।

मित्र और वरुणकी स्तुति

मित्र और वरुण इन दोनों देवताओंकी स्तुति भी इस अध्याय में है ।

१ ऋतेन कृतानृधौ ज्योतिपस्पती मित्रावरुणा हुवे [ ७९४ ]- सत्य पालने लयके मार्गका संवर्धन करनेवाले, देखेखि तेजस्वी, मित्र और वरुण हैं, उन्हें में सहम्यताके लिए बुलाता है ।

इनमें मित्र और वरुणको सत्यका पालन करनेवाला और सत्यमार्गका संवर्धन करनेवाला कहा गया है । सत्यपालन और सत्यमार्ग का संवर्धन ये दोनों गुण इतने महत्व के हैं,

यह जानकर उन्हें अपनावें । ये तेजस्वी हैं अतः हम भी तेजस्वी बनें ।

२ चित्रयामिः उतिभिः मिथः वरुणः प्राविता मुदत् [ ७१५ ]- सब प्रकारके सरक्षणोंके साधनसिधे मिथ और वरुण हमारा सरक्षण करते हैं ।

अपने सरक्षणके साधन लोग अपने बात रखें और उससे दूसरोंकी भी रक्षा करें ।

३ नः सुरुधसः करताम् [ ७१५ ]- हमें ये उत्तम धनसे युक्त करें ।

### दान

ये देवता दान देते हैं । ये उदार हैं—

१ गा अर्बतः नः राये दुर चिपृधि [ ७८३ ]- गाव और घोड़े तु देता है, इसलिये धन प्राप्तिके बरखानोंको हमारे लिये खोल दे ।

२ अमिषुतः पुनाम न रायि धीरयतां इयं आभर [ ७८९ ]- रत निकालनेके बाद छाने छानेबातन तु हमें धन और पुन पीत्रसे युक्त भरपूर मात्र दे ।

धन और अन्न पुत्र पीत्रसि युक्त हो, घरमें अन्न और धनसे साथ उनका उपभोग करनेवाले पुत्र पीत्र भी हों ।

३ चित्र वज्रहस्त अग्निषः । धुरणुया महः स्तयान गां रथ्यां संकिर [ ८१० ] हे मिल्क्षण पराक्रमी वज्र धारण करनेवाले और कितनेमें रहनेवाले इन्द्र ! अपनी राक्ष-नाशक शक्तिते बड़ी शक्ति होनेके बाद गाव और घोड़े हमें उत्तम रीतिते दे ।

४ पुरधसु, मघया जरिदुभ्यः सहस्रेण इय शिक्षति [ ८११ ] बहुत धनवान् इन्द्र अपने स्तोत्रार्थोंकी हजारी प्रकारके धन देता है ।

५ पुरमोजस्तः अस्य द्वात्रिण प्रथिगिषेरे [ ८१२ ]- बहुत अभयासे इस इन्द्रके दान भी बहुतसे हैं ।

६ गोधातिः मघयामा [ ८१६ ]- गाव और घोड़ोंका दान इन्द्र करता है ।

७ इन्द्रस्यः रातयः पूर्वा [ ८२९ ]- इन्द्रके दान पहले से चलते आ रहे हैं ।

८ स्तोत्रभ्यः गोमतः याजस्य मघ यदा भंहते, उत्तयः न विदुस्यग्नि [ ८२९ ]- स्तुति करनेवालोंके लिये अन्न पावसि उत्पन्न हुए अन्नरूपी भन यह देगा है, तब भी उत्तमे दान हम नहीं छोड़े ।

९ न प्रचार इत अभ्यायमे दानके कार्य है ।

### तेजस्वी

१ हे वयमान ! स्वर्दशं भातुना शुमन्तं द्या हया सहे [ ७८४ ]- हे युद्ध होनेवाले सोम ! तू आत्मवर्त्ता और ध्वजने तेजसे तेजस्वी है, ऐसे तुझे सहायताके लिये हम बुलाते हैं ।

यहा “स्वः-दर्श” और “भातुना शुमन्तं” ये गुण महत्वके हैं । सब कुछ अपनी शक्तिते ही देखें, दूसरेकी शक्तिते न देखें, दूसरेकी दृष्टिते न देखें । उसी प्रकार अपने तेजसे तेजस्वी हों, अपने तेजसे विश्वमें घमने ।

### यशस्वी होना

१ जसे नः पशसः दृधि [ ७७८ ]- मनुष्योंमें हमें यशस्वी कर ।

२ तय अयांसि उपमानि [ ८१४ ]- तू यश उपमा देनेके योग्य है ।

इत लोकमें अपना यश बढ़े ऐसे कीर्तिप्राप्तिकी करणी चाहिए । जीवन यशस्वी करना यहा अत्यन्त आवश्यक है ।

### शत्रुको दूर करना

शत्रुसे दूर करनेवा उपदेश अनेक प्रकारसे इत अभ्यायमें आया है ।

१ मिथ्याः श्रियः मघ जहि [ ७७८ ]- सब शत्रुओंको दूर कर

२ ते देवपीः अघशंस-रा घरेण्यः मद् [ ८१५ ]- तेरा मान्य देवसे सम्पन्न जोउनेवाला और पापियोंकी धारणेवाला है । पापी दुष्टोंको मार कर दूर करना चाहिए ।

३ अमिषिर्व युयं अग्निः [ ८१६ ]- शत्रुओंकी तु मारनेवाला है ।

४ ते सख्ये, तय उत्तमे सुम्ने, पूतग्यतः सास-क्षामः [ ७७९ ]- तेरी मित्रता और तेरी तेजस्वितासे युक्त हुए हम, तेना तेजस्व अपने ऊपर चढ़ते हुए बने मानेवाले शत्रुओंको हरा सकें ।

५ ते वा भीमानि तिमाम्नि आयुधा धूर्ध्वेण, समस्य जिदुः नः रक्षा [ ७८० ]- तेरे वाग ओ मयस्वर और तीक्ष्ण शस्त्र धनुर्भेजे नाश करनेके लिये हैं । उनसे डरा हमारे निश्चयसे हमारी रक्षा कर ।

६ टे द्यमस्यसे इन्द्र ! ते सख्ये याजिनः मा मोम [ ८२८ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरे साथ मित्रता होने पर हम बलवान् बनकर शत्रुओंके न करें ।

७ जेगार्द अपराजितं द्या अग्नि प्रमोनुमः [ ८२८ ]-

विजयी और बनी भी पराजित न होनेवाले तुझे हम बार-बार प्रणाम करते हैं ।

तब दूर करनेके विषयमें तब शत्रुको हराकर उसके गड्ढा करनेके विषयमें इस तरहके वर्णन इस अध्यायमें हैं ।

### सोमके गुण

सोम हिमालयकी छोटी पर उगनेवाली एक बेल है । उसका रस श्वेत और यत्न करनेवाले पीते हैं, और उसके चारण उनका उत्साह बढ़ता है, दीर्घ बढ़ता है, और वे प्रत्येक काममें यशस्वी होते हैं । इस सोममें उत्तम गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं—

- १ देवः [ ७८१ ]— तेजस्वी, प्रकाश करनेवाला ।
- २ द्युमान् [ ७८१ ]— तेजस्वी, चमकनेवाला ।
- ३ इन्द्रः [ ७८६ ]— चमकनेवाला ।
- ४ धृषा [ ७७८ ]— यक्षप्रभु, क्षीरप्रभु, सामर्थ्यसम्पन्न ।
- ५ धृषमस्तः [ ७८१ ]— बल बढ़ानेका जिसका प्रत है ।
- ६ कयिः [ ७७७ ]— सानी, दूरदर्शी ।
- ७ अग्निधः [ ७७५ ]— आगे रहनेवाला ।
- ८ सु-आयुधः [ ७८१ ]— उत्तमशस्त्र धारण करनेवाला ।
- ९ विश्व-चर्यणिः [ ७७६ ]— सम अनुष्ठीका हित करनेवाला ।
- १० विश्वताः ईशानः [ ७८६ ]— समका स्वामी, सबका ईश्वर ।

सोमके ये गुण इस अध्यायमें दिए गए हैं । उनमें कुछ गुण आलंकारिक हैं, जैसे “ कयि ” दूरदर्शी । विद्वान् सोम-रस पीते हैं, और उसके कारण उनकी क्षान्तिजित होती है । इसलिए यह सोमरस कवि है ।

दूरगुण सोमरस पीते हैं और उनका उत्साह बढ़ता है और उसके कारण वे दूरवीरताके काम कर सकते हैं, इसलिए यह धीर्ष और बल बढ़ानेवाला है । यह उत्तम शस्त्रोंका प्रयोग करता है, क्योंकि दूरवीर सोमरस पीकर और उत्साहित होकर युद्धमें जाते हैं और वहाँ अपने शस्त्र शस्त्रश्रीका उपयोग करते हैं । इस प्रकार आलंकारिक रीतिसे इन पदोंको समझें और जिस प्रकार सोम बलवान्, दूर और विजयी है, उसी प्रकार साधक भी बनें ।

### सोमकी रक्षणशक्ति

१ चित्राभिः ऊतिभिः घृचः पवस्व [ ७७५ ]— अपनी विलक्षण सरलानकी क्षतिसे क्षुत्तिके अन्तर्गत पवित्र कर ।

८ [ साम द्वितीया २ ]

२ विश्वानि काव्या अभि धवस्व [ ७७५ ]— हमारे क्षुत्तिके काव्य सुन ।

३ हे धृषन् ! धृष्याः ते शवः धृष्ये [ ७८२ ]— हे बलवान् देव ! तेरे समान बलवान् वीरवा सामर्थ्य विजय प्रभावशाली है ।

४ धन धृषा [ ७८२ ]— तेरा तेवम बल बढ़ानेवाला है ।

५ सुतः धृषा [ ७८२ ]— सोमरस बल बढ़ानेवाला है ।

६ त्वं धृषा असि [ ७८२ ]— तू बल बढ़ानेवाला है ।

सोमरसके ये वर्णन उसके बल बढ़ानेवाले गुणके कारण हैं । सोमरस पीनेसे वीरोंका बल बढ़ता है, इसलिए ये गुण सोमरसके ही हैं ऐसा कह दिया ।

### सोमके धीर्ष और तेज

सोम धीर्षवान् और तेजस्वी है ।

१ त्रिध्वस्य भूमन् पतिः सोमः उभे रोदसी ह्यययत् [ ८१८ ]— सब प्राणिमात्रका पालन करनेवाला सोम धूमनी और धुकीरने अपने तेजसे चमकता है ।

२ हे सु-आयुध ! भवमान् सुधीर्ष आ पयस्य [ ७८६ ]— हे उत्तम आयुध धारण करनेवाले सोम ! तू मान-बढ़ानेवाला होकर हमें उत्तम धीर्ष प्रदान कर । इस स्वावधर शोकसे उत्तम शस्त्र धारण करनेवाला बताया है, उसका सात्त्व्य यह है कि वीर सोम सोमरस पीते हैं, यससे उनका उत्साह बढ़ता है, और वे उत्तम शस्त्र लेकर लड़ते हैं । यह सब सोम धारण होता है, इसलिए सोमकी ही उत्तम शस्त्रधार लेकर लड़नेवाला बताया ।

३ हे पयमान ! आजिष्टा भयार्थ्यं नामरः, यः पचचर्यणि अभि तिष्ठति, येन रयि यनामहे [ ८२० ]— हे सोम ! तू सात्त्व्य बढ़ानेवाला है, इसलिए यश बढ़ाने बलि सामर्थ्य हमें भरपूर दे । पांच प्रकारके लोभीयत कलमन करनेके लिए संभार रह और हमें वच मिलें ऐसा कर ।

सोम पीनेसे ऐसा सामर्थ्य बढ़ता है ।

### सोमकी महिमा

१ नुभ्य महिम्ने इमं भुक्त्वा तस्यिरे [ ७७७ ]— तेरी महिमामें लिए ही ये सारे भुवन स्थिर हैं, अर्थात् सब जगह तेरी महिमा ही सबका पल्ला बढ़ाती है ।

२ नृपा धर्मीणि दधिभि [ ७८१ ]— तू अपने बलसे सब कर्तव्योंको मारण करता है ।

इस प्रकार सोमकी महिमा सबका उत्साह बढ़ाती है ।

सोममें उस्ताह बढ़ानेका सामर्थ्य है, इतना ही इस वर्णनका तात्पर्य है। इसलिए हम सोमके साथ मित्रता करें और उसके उस्ताहसे उस्ताहित होकर अपने अपने कार्य करते रहे।

### सोमके साथ मित्रता

१ पयमानस्य ते सप्रित्वं आधृणीमहे [ ७८७ ]-  
सोमके साथ मित्रता करनेकी हम इच्छा करते हैं।

२ ते ऊर्मयः धारया पवित्रं अग्निं क्षरन्ति, तैभिः नः मृष्ट [ ७८८ ]- तेरी लहरें एक धारासे छलनीमें गिरती हैं, उससे हमें मुक्ति कर।

सोमसे उस्ताह बढ़ता है और महान् कार्य करनेकी क्षमता अपने अन्दर बढ़ती है। इसलिए उसके साथ मित्रता करनेकी इच्छा लोग करते हैं। यह मित्रता सोमरस पीनेकी इच्छा ही है। सभीकी इच्छा ऐसी रहती है, क्योंकि उस्ताह बढ़े और हम महान् कार्य करनेमें समर्थ हो ऐसी इच्छा सबके लिए सामान्य है।

### सोमपान

१ ययं सोम-पीतये पूतक्षसा मित्रं परणं हवामहे [ ७९३ ]- हम सोमपान करनेके लिए पवित्र बलसे युक्त मित्र और वधनकी बुलते हैं।

मित्र और वधनके बल पवित्र काममें बड़े उपयोगी हैं। अतः उनको सोमपानके लिए बुलाया जाता है। इन्हें यदि दूसरे देवोंकी भी ऐसे ही सोमपानके लिए बुलाया जाता है। शायद वेच भयमें आते हैं, सोम पीते हैं और महान् शारीरिक हितके नाम करते हैं। उसी प्रकार दूसरे भी यममें जाकर सोमरसका पान करते हैं और उस्ताहसे अपना बर्तव्य करते हैं।

जोका थाटा इनमेंसे जिसकी इच्छा हो उसे मिलाते हैं, फिर उसका हवन होता है और अन्तमें उसे लोग पीते हैं।

### सोममें पानी मिलाना

१ समुद्रियाः आपः पवस्य [ ७८५ ]- अन्तरिक्षकी समुद्रका पानी मिलाओ। पृथ्वीके समुद्र धारे पानीके होते हैं। और वह धारा पानी पीनेके लायक नहीं होता। अन्तरिक्षमें यैव होते हैं, और वह सोठे पानीका समुद्र है। उसका, कुएरा अथवा नदी और नहरोंका पानी सोमरसमें मिलाया जाता है।

२ आयुभिः मर्मज्यमानः यत् अद्भिः परिदिच्यसे द्रोणे सधर्ष्य अरुणये [ ७८५ ]- जब अद्भिज्ज सोमको छानते हैं, तब वह पानीमें मिलाया जाता है और द्रोण-फलज-में उसे स्नान मिलता है, अर्थात् छना हुआ सोमरस कलसेमें भरा जाता है।

३ रुद्रान्तं वर्षे परि भरमाणः सित्त गन्धु पर्येति [ ८०८ ]- तेजस्वी रम धारण करने पानीके साथ मिलाकर पायके दूधकी इच्छा करते हुए सोमरस आगे आता है।

छाननेके बाद उसमें गन्धका दूध मिलाया जाता है। सोमकी छलनीसे छाननेका वर्णन इस प्रकार है।

१ अया विपातया हरिः धारया पयस्य [ ८०५ ]- हे सोम! इस अशुक्तिसे निवाला अया हरे रगका दू एक धारसे छनता जा।

२ अयं पुनानः अर्पति [ ८१८ ]- यह सोम पवित्र होता-छनता-हुआ भीचेके बर्तनमें गिरता है।

३ नृभिः यत् कौदान् पर्येतिप्यद्व [ ८२२ ]- राजकी द्वारा निवाला अया यह सोमरस कलसेमें गिरता है।

४ कलशान् अविज्जद्व [ ८२१ ]- छनता हुआ कलसेमें डाल करारा हुआ आता है।

### सोमरसमें दूध मिलाना

छाननेके बाद सोमरसमें दूधजुस्तार रूप, यही इत्यादि मिलाया जाता है। इस विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

१ धेनवः तुभ्यं धावन्ति [ ७७७ ]- गायें तुम सोमके पास दौड़ती आती हैं। गायका दूध सोमरसके पास लाया जाता है।

२ रस्तायः पयसा पिग्गमानः मधुमन्त्रं अंगु ईरयन् पयि [ ८०७ ]- परतेसे मोटे फिर गायके दूधसे और अधिक मोटे हुए हुए सोमको प्रेरित करते हुए तु जाता है।

३ प्रिया घृण्यः गात्र मदाय समनूयत पत्रभावातः इन्दुधं सोमासः पयः कृण्वते [ ८१९ ]- प्रेम और स्वर्ण करनेवाली गायें सोमके साथ मिश्रनेके आनन्दको प्राप्त करनेकी इच्छा करती हैं। दूध सोम रूप प्राप्त करते हैं।

४ लोकहृत् अयं पुनावः सिन्धुभ्यः अमयत्। अयं हृये मिः सप्त बुधानः सत्वरः चाय पयते [ ८२३ ] सोमोहा दित् वन्देवासा मत् प्राणा जनेवासा सोम नदिवोको यदनेवासा है। इसके लिए हस्वीत गायें दूहती जाती हैं, बावमें यह आनन्द देनेवाला होता है।

अर्थात् इसमें पहले नवीका पानी मिलाया जाता है, बावमें गायका दूध।

५ गोमतः सुतस्य मत्स्य [ ८२६ ]- गोतुल्य मिलित सोमरससे आनमित हो।

इस प्रकार सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है और फिर यह पिघा जाता है।

### सुभाषित

१ अत्रियः विनामिः ऊतिमिः वधः ववस्म [ ७७५ ]- नेता होकर अपने बिलक्षण सरक्षणसे अपने वधन पवित्र कर।

तू अग्रणी हो, अपने पास सरक्षणके साधनोंका संग्रह करके रथ और अपनी वाणीको पवित्र निवारसे युक्त कर

२ विभ्यानि काव्या भग्नि [ ७७५ ]- सब श्रेष्ठ काव्योंको देस, गुण।

३ हे विभ-चरणे! अत्रिय वाचः ईयत्स्व नवस्व [ ७७६ ]- हे तमके निरीक्षण करनेवाले! नेता होकर अपनी वाणीकी प्रेरणासे सबको पवित्र कर।

४ हे करे! तुभ्य सहिन्ने इमा भुवना तस्थिरे [ ७७७ ]- हे शूरवीरों आनी पुण्य! तेरी महानताके लिए ही ये लोक स्थिर हैं।

५ धेनवः तुभ्यं धावन्ति [ ७७७ ]- गायें तुमके देसकर दौड़ती हुई आती हैं। ( इतना प्रेम गाय पर है )।

६ घृणा पचस्व [ ७७८ ]- बलवान् होकर मृद हो।

७ जने न यशसः कृधि [ ७७८ ]- लोगोंमें हमें घातपी कर।

८ पिग्वाः द्विपः सप जाहि [ ७७८ ]- सप्त हस्तुभोका पराभव कर।

९ वयं ते सच्ये, तय उत्तमे सुमने, पृतन्यतः सप्तसप्तम्य [ ७७९ ]- तेरे साथ मित्रता होकर यह तेरे उत्तम तेजसे तेजवी होकर, तबसे साथ हम पर बल कर आनेवाले शत्रुको हम हरावें।

१० ते या मरिमानि सिग्मानि आयुधा धूर्धणे, समस्य निदुः नः रक्ष [ ७८० ]- तेरे जो भयकर तीक्ष्ण अस्त्र शत्रुके नाश करनेके लिए हैं, उनही तहाजतासे हमारे सब मित्रक शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर।

११ घृणा घृमान् असि [ ७८१ ]- तू बलवान् और तेजस्वी है।

१२ हे देव! घृणा घृणतः घृणा धर्मिणि दधिरे [ ७८१ ]- हे देव! तू बलवान् है बल बढ़ानेवा तेरा घत है, ऐसा तू बलवान् होकर अपने वर्तमान स्वयं करता है।

१३ घृणन् घृण्यः ते शाय घृण्य [ ७८२ ]- बल बढ़ानेवाले तेरे सामर्थ्य अत्यन्त प्रभावशाली हैं।

१४ तं घृणा असि [ ७८२ ]- तू निदधयते बलवान् है।

१५ नः राये दुरा त्रिमुषि [ ७८२ ]- हमारे लिए सम्पत्ति प्राप्त होनेके शरवासे लोभ है।

१६ क्वा-दशं भानुना शुमन्तं त्वा हयामते [ ७८४ ]- स्वयं देवनेकी शक्तिसे पुष्प तथा स्वयंके तेजसे तेजस्वी हुए तेरी हम प्रशंस करते हैं।

१७ आयुभिः मर्मज्वमान [ ७८५ ]- मनुष्योंके द्वारा शुद्ध होनेवाला।

१८ सु-आयुध! मग्दमानः सुवीर्यं आ पचस्व [ ७८६ ]- हे उत्तम शस्त्रोंको पासमें रखनेवाले योद! तू आनन्द बढ़ानेवाला होकर जराय वीरता प्रकट कर।

१९ पयमानस्य ते ससित्वं आयुषीमहे [ ७८७ ]- पवित्रता करनेवाले तेरी वीर्यवीर्य हम दुन्या करते हैं।

२० मः सुकय [ ७८८ ]- हमें सुखी कर।



२१ विश्वतः ईशानः नः रयिं वीरयतीं इयं आ भर [ ७८९ ] - तू सबका स्वामी होकर हमें वीर पुत्रोंके युक्त पन और अन्न भरपूर दे।

२२ होतारं विश्व-वेदसं यक्षस्य सुकृतं दत्तं आग्निं घृणामहे [ ७९० ] - देवताओंकी युक्तकर करनेवाले, सर्वज्ञ, यज्ञकी उत्तम रीतिले करनेवाले ब्रूत अग्निका हम वरण करते हैं।

२३ चिदपतिं पुराग्रियं आग्निं सदा हवामहे [ ७९१ ] - प्रजाओंके पालक बहुतेको त्रिय ऐसे अग्रणीको हम हमेशा अपने पास बुलाते हैं।

२४ इह देवान् आ वह [ ७९२ ] - यहां देवोंको बुला ला।

२५ नः ईक्ष्यः अस्मि [ ७९३ ] - प्रजांताके योग्य तू हमारा सहायक है।

२६ पूत-दक्षसा वयं हवामहे [ ७९३ ] - शिवके पवित्र सामर्थ्य है, उम्मे हम बुलाते हैं।

२७ अतोम अतावृधौ उपोत्तिपस्पती हुये [ ७९४ ] - साथसे तत्वधर्म बढ़ानेवाले तेजस्वी धीरोंको न बुलाता हूँ।

२८ विश्वामिभिः कृतिभिः प्राथिता भुवन् [ ७९५ ] - सब संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करनेवाला हो।

२९ नः सुराघसः करतीं [ ७९५ ] - हमें उत्तम धर्मसे युक्त कर।

३० गाधिमः इन्द्रं वृहत् अनुपस्य [ ७९६ ] - हे साम-पायको। तून इन्द्रकी बृहत् सामके द्वारा स्तुति करो।

३१ उग्रः उग्रामिभिः कृतिभिः सहस्रप्रघमेषु नः अय [ ७९८ ] - उग्रवीर, प्रबल संरक्षणके साधनेसे हमारा प्रभारके धन प्राप्त होनेवाले यज्ञमें हमारी रक्षा कर।

३२ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत् [ ७९९ ] - इन्द्रने दिवसे प्रकाशके लिए धूलोकमें सूर्यको धावा।

३३ विश्वा ओजसा दधानः [ ८०३ ] - सब सामर्थ्योंको पारण कर।

३४ स्य-दर्शं याजिनं त्वा याजेषु हित्वे [ ८०४ ] - आभरदर्शं बलवान् ऐसे तुम संपाद्यमें जानेकी प्रेरणा करता हूँ।

३५ याजेषु सृजं चोदय [ ८०५ ] - युद्धमें जलनेके लिए मित्रको प्रेरणा दे।

३६ आतो इन्द्रस्य यस्तु आ ऋष्ये [ ८०६ ] यद्धयं इन्द्रसे प्राप्त सुनाई देते हैं।

३७ यक्षस्तुं नमयन्, मद्राय पयस्व [ ८०८ ] - यक्ष करनेवाले शत्रुकी मुकाबर आनन्द बढ़ानेके लिए धुड़ हो।

३८ सतपतिं नरः वृत्रेषु हवामहे [ ८०९ ] - सज्जनोंके पालन करनेवालेको लोग युद्धोंमें सहायताके लिए बुलाते हैं।

३९ हे धक्षहस्त अदिवन्! धृष्ण्या मद्- गां रय्यं संकिर [ ८१० ] - हे वधवादी इन्द्र! अपनी शत्रु-नाशक शक्तिले आनन्दित हुआ तू माय और घोड़े हर्ष दे।

४० अिगुये सत्रा याजं [ ८१० ] - बिजयी वीरोंको एक साथ अन्न और अन्न मिलते हैं।

४१ पुरुवसुः मधवा अरिब्रह्मः सहस्रेण शिक्षति [ ८११ ] - बहुत धनवान् इन्द्र तोताओंकी अनेक प्रकारसे धन देता है।

४२ यथा विदे सुराघसं इन्द्रं अमि प्र अर्ष [ ८११ ] - जैसे तून जानते हो वैसे-ही इन्द्रकी आराधना करो।

४३ धृष्ण्या शतानीकः इय म जिगाति [ ८१२ ] - शूरवीर इन्द्र समूहों सेना पर आक्रमण करता है।

४४ वातुये वृत्राणि हति [ ८१२ ] - राताके हितने लिए शत्रुओंकी मारता है।

४५ पुरुमेजसः अय वृत्राणि म पिगिन्द्रे [ ८१२ ] - बहुत अन्तरे युक्त इस इन्द्रके बल सभीके लिए लाभकारी है।

४६ तव उपमानि अर्वांसि [ ८१५ ] - तूने वषा उपमा देनेके योग्य हैं। तेरे अन्न उपमाके योग्य हैं।

४७ ते मद्- देववीः अघर्वांस-द्वा वरेण्यः [ ८१५ ] - तेरे आनन्द देवोंके पास वृद्धनेवाले और पापियोंका नाश करनेवाले तथा धेठ हैं।

४८ अमित्रियं वृत्रं जघिनः [ ८१६ ] - तू शत्रुहनी दुष्टोंका नाश करनेवाला है।

४९ दिधे दिधे वाजं सस्विन् [ ८१६ ] - प्रतिबिम्ब तू मुझ करता है।

५० गोपातिः अभवसा [ ८१६ ] - तू गाँवों और घोंसलोंका रक्षक करता है।

५१ अरघः सुयः [ ८१७ ] - तू तेजस्वी हो।

५२ पूषा भगः रयिः [ ८१८ ] - यह घोषण करनेवाला, साम्य बढ़ानेवाला और धन देनेवाला है।

५३ विश्वस्य सूम्नसः पतिः [ ८१८ ] - सब प्राणियोंका पालन करनेवाला।

५४ ओजिष्ठः ध्रुवाय्यं आ भर [ ८२० ] - बल बढ़ाने-वाला तू प्रजांतोष धन भरपूर दे।

५५ येन रयिं वनामहे [ ८२० ] - जितने हर्ष धन मिले ऐसा कर।

५६ मतीनां वृषा [ ८२१ ]- तू बुद्धिवा बल बढाने-  
वाता हो ।

५७ पूर्ण कवि [ ८२२ ]- पहलेते ही तू सानी  
प्रतिष्ठ है ।

५८ लोककृत् पुनातः उपसः जरोचयत् [ ८२३ ]-  
लोगोंका हितकारी, यह पवित्र करनेवाला उप-पातमें  
प्रकाशित होता है ।

५९ हे इन्द्र ! घोरयुः अस्ति [ ८२४ ]- हे इन्द्र ! तू  
घोरतया उपयोग करनेवाला है ।

६० दारः पय अस्ति [ ८२४ ]- तू दूर है ।

६१ स्थिरः अस्ति [ ८२४ ]- तू मुझमें अपनी जगह  
पर स्थिर रहता है ।

६२ ते मनः राध्यं [ ८२४ ]- तेरा मन आराधना  
करनेके योग्य है ।

६३ रातिः धायि चित् [ ८२५ ]- तेरे बाल स्थिर,  
शिकनेवाले हैं ।

६४ नः सचा [ ८२५ ]- हमारा मित्र हो ।

६५ तन्द्रयुः मा सु भव [ ८२६ ]- तू आत्मोक्त मत हो ।

६६ विश्वाः गिरः समुद्र-व्यवर्त्त, रथानां रथी-  
समं, स्वर्पाति इन्द्रं शवीभृत् [ ८२७ ]- सब स्तुतिया  
समुद्रके समान विलुप्त, रथोंकीरथोंमें प्येष्ट, अस्त्रोंके स्वामी,  
सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्रकी महिमा बढाती है ।

६७ हे शायस -पते इन्द्र ! ते खरये याजिनः मा  
भेम [ ८२८ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरी निश्चिन्ताके कारण  
हम बलवान् होकर निर्भय होवें ।

६८ जेतारं य-पराजितं अभि प्रणोतुमः [ ८२८ ]-  
विजयी और पराजित वीरोंको हम प्रणाम करते हैं ।

६९ इन्द्रस्य रातयः पूर्वाः [ ८२९ ]- इन्द्रके दान  
प्राचीनकालसे चलते आ रहे हैं ।

७० मध यद्वा मंहते, रातयः न विदस्यन्ति [ ८२९ ]  
- मध बहु धन देता है, तब उसके दान कम नहीं होते ।

## उपमा

इस अध्यायमें निम्न उपमायें आयी हैं :

१ मध्यः न [ ७८१ ]- घोड़ेके समान ( संचरमादः )  
सोनरस छत्रते समय शब्द करता है ।

२ द्रोणः वृषा याः अभि कनिक्व [ ८०६ ]- लाल  
रंगका बैल जिस प्रकार घायकी तरफ देखकर शब्द करता है,  
उसी प्रकार सोम वायुके बीचके साथ मिलते हुए शब्द करता है ।

३ जिन्मुपे सचा याजं न [ ८१० ]- विजयी पुत्रकी  
एक साथ तू घोड़े इत्यादि देता है, उसी प्रकार हमें दे ।

४ गिरेः खसः इव [ ८१२ ]- पर्वतोंसे जैसे जलप्रवाह  
बहते हैं, उसी प्रकार इन्द्रके दान लोगोंकी ओर बहते हैं ।

५ द्येनः न योनिं आसीदन् [ ८१७ ]- धान पक्षी  
जित प्रसार अपने स्थान पर बैठ कर सुशोभित होता है,  
और ( न अर्याः भुवः ) जिस प्रकार यह चमकता है, उसी  
प्रकार सोम चमकता है ।

इस प्रकार इस अध्यायमें उपमायें आई हैं ।

## तृतीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रतरंग	ऋग्वेदस्थान	ऋषिः	देवता	छन्दः
७७५	१।६।१५	जगद्विनिर्वाण	पशुपानः सोम.	वायवी
७७६	१।६।२६	जगद्विनिर्वाण.	"	"
७७७	१।६।१७	जगद्विनिर्वाण.	"	"
७७८	१।६।१८	जगदीश्वरागिरस	"	"
७७९	१।६।१९	जगदीश्वरागिरस	"	"

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
७८०	९।३।१०	अमहीमुरागिरतः	पवमान. सोमः	गायत्री
७८१	९।३।११	कश्यपो मारीचः	"	"
७८२	९।३।१२	कश्यपो मारीचः	"	"
७८३	९।३।१३	कश्यपो मारीचः	"	"
७८४	९।३।१४	भृगुर्वाहविजम्बदन्निर्भर्गवो वा	"	"
७८५	९।३।१५	भृगुर्वाहविजम्बदन्निर्भर्गवो वा	"	"
७८६	९।३।१६	भृगुर्वाहविजम्बदन्निर्भर्गवो वा	"	"
७८७	९।३।१७	अमहीमुरागिरतः	"	"
७८८	९।३।१८	अमहीमुरागिरतः	"	"
७८९	९।३।१९	अमहीमुरागिरतः	"	"

( २ )

७९०	१।११।१	मेघातिथिः काण्वः	अग्निः	"
७९१	१।११।२	मेघातिथिः काण्वः	"	"
७९२	१।११।३	मेघातिथिः काण्वः	"	"
७९३	१।११।४	मेघातिथिः काण्वः	मित्रावरुणी	"
७९४	१।११।५	मेघातिथिः काण्वः	"	"
७९५	१।११।६	मेघातिथिः काण्वः	"	"
७९६	१।७।१	मयुच्छन्दा वीश्वामित्रः	इन्द्रः	"
७९७	१।७।२	मयुच्छन्दा वीश्वामित्रः	"	"
७९८	१।७।३	मयुच्छन्दा वीश्वामित्रः	"	"
७९९	१।७।४	मयुच्छन्दा वीश्वामित्रः	"	"
८००	७।९।१४	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	ईश्वराग्नी	"
८०१	७।९।१५	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	"	"
८०२	७।९।१६	वसिष्ठो मित्रावरुणिः	"	"

( ३ )

८०३	९।३।१०	भृगुर्वाहविजम्बदन्निर्भर्गवो वा	पवमान सोम	"
८०४	९।३।११	भृगुर्वाहविजम्बदन्निर्भर्गवो वा	"	"
८०५	९।३।१२	भृगुर्वाहविजम्बदन्निर्भर्गवो वा	"	"
८०६	९।३।१३	उपमन्युर्वासिष्ठः	"	त्रिष्टुप्
८०७	९।३।१४	उपमन्युर्वासिष्ठः	"	"
८०८	९।३।१५	उपमन्युर्वासिष्ठः	"	"

( ४ )

८०९	६।४।३१	वायुर्वाहस्थः	इन्द्रः	अगाधः = ( विषमा द्यूती, समा सतो द्यूती )
-----	--------	---------------	---------	---

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
८१०	६।४६।१	अंयुराहंस्परयः	इन्द्रः	प्रगायः- ( विपमा बृहती, समा सतो बृहती )
८११	८।३९।१	वात्सित्त्याः प्रस्कण्वः बाण्वः	"	"
८१२	८।३९।२	वात्सित्त्याः प्रस्कण्वः बाण्वः	"	"
८१३	८।३९।१	मृमेय आगिरतः	"	"
८१४	८।३९।२	मृमेय आगिरतः	"	"

( ५ )

		अमहीयुरागिरतः	ववमानः सोमः	पायत्री
८१५	९।६१।१९	अमहीयुरागिरतः	"	"
८१६	९।६१।२०	अमहीयुरागिरतः	"	"
८१७	९।६१।२१	अमहीयुरागिरतः	"	"
८१८	९।१०१।७	महुयो मानवः	"	अनुष्टुप्
८१९	९।१०१।८	महुयो मानवः	"	"
८२०	९।१०१।९	महुयो मानवः	"	"
८२१	९।८६।१९	सिकता निवावरी	"	"
८२२	९।८६।२०	सिकता निवावरी	"	"
८२३	९।८६।२१	वृन्निषोऽजाः	"	"

( ६ )

		धृतकसः सुक्लो वा आगिरतः		पायत्री
८२४	८।३९।२८	धृतकसः सुक्लो वा आगिरतः	"	"
८२५	८।३९।२९	धृतकसः सुक्लो वा आगिरतः	"	"
८२६	८।३९।३०	धृतकसः सुक्लो वा आगिरतः	"	"
८२७	१।११।११	जेता मधुच्छान्दसः	"	"
८२८	१।११।१२	जेता मधुच्छान्दसः	"	"
८२९	१।११।१३	जेता मधुच्छान्दसः	"	"

८४३ पुनानो देववीतये इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । सुतानो वाविभिर्हितः ॥ ३ ॥ ४ ( या ) ॥  
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।६४।१९ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

८४४ अग्निनाग्निः समिष्यते कविर्गृहपतिर्गुवा । हव्यवाद् जुह्वास्यः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२।६ )

८४५ यस्त्वामग्ने हविष्यतिर्दूतं देव सपयसि । तस्य स भ्राविता भव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।८ )

८४६ यो अग्निं देववीतये हविष्माश्च आविवांसति । तस्य पावक मृदव ॥ ३ ॥ ५ ( रि ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।१२।९ )

८४७ मित्रं ह्रुवे दूतदर्शं वरुणं च रिशादसम् । विर्यं घृताचीं साधन्ता ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१३।७ )

८४८ क्रतुर्न मिश्रावरुणा घृताघृताघृतस्पृश्या । क्रतुं बृहन्वभायाये ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१३।८ )

८४९ कवी नो मिश्रावरुणा तुमिजाता उरुक्षया । दर्शं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥ ६ ( व ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।१३।९ )

[ ८४३ ] हे सोम ! ( वाजिमिः ) अनेक क्षणितयसि ( सुतानः ) तेजस्वी बोलनेवाला ( देव-वीतये पुनानः ) देवोंको देनेके लिए पवित्र किया जानेवाला ( हितः ) हितकारी तू सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं याहि ) इन्द्रके स्थानके पास जा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ८४४ ] ( कविः ) गृहर्षी ( गृह-पतिः ) यज्ञगृहका यज्ञ करनेवाली ( गुवा ) तबल ( हव्य-वाद ) हविर्को देवोंतक पहुचानेवाली ( जुह्वास्यः अग्निः ) यज्ञनामक मुखवाली अग्नि ( अग्निना समिष्यते ) मयबसे उत्पन्न की जलनेवाली अग्निकी सहामतासे प्रदीप्त की जाती है ॥ १ ॥

[ ८४५ ] हे ( अग्ने देव ) अग्ने ! ( यः हविष्यतिः ) जो हविष्यान्की देवोंतक पहुचानेवाला यज्ञमान ( दूतं स्वां सपयसि ) तुम दूतकी उत्तम प्रकारसे पूजा करता है, तू ( तस्य भ्राविता भव ) उसकी पूरी तरह रक्षा कर ॥ २ ॥

[ ८४६ ] हे ( पावक ) मृद करनेवाले अग्नि ! ( यः हविष्माश्च ) जो हवि अर्पण करनेवाला यज्ञमान ( देव-वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( अग्निं वा विवांसति ) तुम अग्निकी आराधना करता है, ( तस्यै मृदय ) उसे मुली कर ॥ ३ ॥

[ ८४७ ] मैं ( दूत-दर्शं मित्रे ) पवित्र बलबले मित्रको और ( रिशा-अदसं वरुणं च ) हितक शत्रुके नाशक वरुणको ( ह्रुवे ) बुलाता हूँ । ये मित्र और वरुण ( घृताचीं विर्यं साधन्ता ) जल उत्पन्न करनेके कार्य सिद्ध करते हैं ॥ १ ॥

[ ८४८ ] ( मिश्रा-वरुणा ) मित्र और वरुण ये देव ( क्रता-घृता ) सत्य यज्ञको ब्रह्मनेवाले हैं, ( क्रतु-स्पृश्या ) सत्यकी सार्थक करनेवाले हैं, हे देवो ! तुम दोनों ( बृहन्तं क्रतुं ) इस ब्रह्मन् यज्ञको ( घृतेन आश्राये ) सत्यसे पूर्ण भरते हो ॥ २ ॥

[ ८४९ ] ( कवी ) गृहर्षी ( तुमि-जाता ) अनेक कार्यके लिए उपयोगी ( उरु-क्षया ) अनेक स्थलोंमें रहनेवाले ( मिश्रा-वरुणा ) मित्र और वरुण ( नः दर्शं यपसं दधाते ) हमारे बलकी और कार्यके मृद करते हैं ॥ ३ ॥

८५० इन्द्रेण संहि दधसे संजगमानो अविष्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।० )

८५१ आदह स्वधामनु पुनर्गर्भतरमेति । दधाना नाम यत्तिष्य ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।४ )

८५२ वीड चिदारुजस्तुमिगुदा चिदिन्द्र वाहिमिः । अविन्द उस्त्रिया अनु ॥ ३ ॥ ७ ( ति ) ॥  
[ पा० १।४।७० १ । २७० २ ] ( ऋ. १।६।२ )

८५३ ता हुवे ययोदि पन्ने विष्यं पुता कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्षतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।६०।४ )

८५४ उग्रा विघनिना मघ इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदगे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।६०।५ )

८५५ हयो वृषाण्यायो हयो दासानि सत्पती । हयो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥ ८ ( पी ) ॥  
[ पा० १।०।७० १ । ४०० ४ ] ( ऋ. ६।६०।६ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

८५६ अग्नि सोमास आयवः पवन्ते मघं मदम् ।

समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो अस्तरासो मदन्वुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. २।१०७।१४ )

[ ८५० ] ( मन्दू ) समानवर्चसा ( समान वर्चसा ) समान तेजस्वी होते मन्त्रण ( अविष्युषा इन्द्रेण सं जगमानः ) निर्भय इनके साथ रहकर ( संहि दधसे हि ) उत्तम दोषते हैं ॥ १ ॥

[ ८५१ ] ( आदह सह ) शीघ्र हो ( स्वधां अनु ) अन्नको लय करके ( यत्तिष्य नाम दधानाः ) पूज्य भावको प्राप्त करनेवाले मघ ( पुनः गर्भत्वे ईदरे ) फिर गर्भको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

[ ८५२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( वीड चित् ) सुदृढ़ किन्तोंको भी ( आ रुजस्तुमिः ) होबनेवाले ( वाहिमिः सदाभिः ) तेजस्वी मनीषिणो ( गुहा चित् ) गुह्य रहनेवाले ( उस्त्रियाः ) गाओंको ( अनु-अविन्दः ) प्राप्त किया ॥ २ ॥

[ ८५३ ] ( ता इन्द्राग्नी हुवे ) उस इन्द्र और अग्निको मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ ( ययोः ) जिन दोनोंके द्वारा ( पुताकृतं निर्भय इत् ) पहले किए गए सभी पराक्रमोंकी ( पन्ने ) स्तुति की जाती है, वे इन्द्र और अग्नि ( न मर्षतः ) स्तुति करनेवालोंको क्षुब्ध नहीं करते ॥ १ ॥

[ ८५४ ] वे ( उग्रा ) उग्रवीर ( मघः विघनिना ) जानुका भाज करनेवाले हैं, उन ( इन्द्र-अग्नी ) इन्द्र अग्निको हम सहायताके लिए ( हवामहे ) बुलाते हैं, ( तां ) वे ( ईदगे ) इस प्रकार इस सत्रागमें ( नः मृडातः ) हमें क्षुभी करें ॥ २ ॥

[ ८५५ ] हे इन्द्र और अग्नि ! ( आयो ) ज्येष्ठ पुत्र ( वृषाणि हवः ) शम्भुओंको वारो, ( सत्पती ) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुम ( दासानि हवः ) मोर्षोंको बुर करो, वही शत्रुवर ( विश्वाः द्विषः अप हवः ) सब द्वेष करनेवालोंका नाश करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ८५६ ] ( मनीषिणः आयवः ) बुद्धिमान् अतिवज्र ( अस्तरासो मदन्वुतः सोमासः ) आनन्द बजनेवाले, जसाही सोमरासोंके ( समुद्रस्य अधि विष्टपे ) जलप्रायके ऊपर रकी हुई छलनीमें ( मघं मदं अग्नि पवन्ते ) आनन्द और उत्साह बढ़ानेके लिए आते हैं ॥ १ ॥

- ८५७ <sup>१२ ३१ २८ ३२ ३ १ १ ३१ ३३ ३३</sup> तरत्समुद्रं पयमान ऊर्मिणा राजा देव श्रुतं बृहत् ।  
<sup>१ १ ३ ३ १ १ ३ ३ ३ १ १ ३ ३ ३ १</sup> अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वाम श्रुतं बृहत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०७।१५ )
- ८५८ <sup>१ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> नृभिर्मेमाणा हृतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रतः ॥ ३ ॥ ९ ( तु ) ॥  
 [ घा० १५ । उ० नास्ति । स्व० ५१ ( ऋ. ८।१०७।१६ )
- ८५९ <sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> तिस्रो वाच ईरयति प्र बद्धिर्ऋतस्य धीर्ति ब्रह्मणो मनीषाम् ।  
<sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मलयो वावशानाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१७।१४ )
- ८६० <sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मयिभिः पृच्छमानाः ।  
<sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोम अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१७।१५ )
- ८६१ <sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> एवा नः सोम परिषिच्यमान आ ववस्व पूयमानः स्वस्ति ।  
<sup>३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३</sup> इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥ ३ ॥ १० ( धी ) ॥  
 [ घा० ३० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।१७।१६ )

॥ इति तृतीया खण्डः ॥ ३ ॥

[ ८५७ ] ( पयमानः देवः ) बृहत् किवा जग्नेवाला ( राजा ) तेजस्वी सोम ( बृहत् श्रुतं समुद्रं ) महात् जलसे युक्त कलशमें ( ऊर्मिणा तरत् ) लहरोंसे युक्त होकर बहता है, ( हिन्वातः श्रुतं बृहत् ) श्रेणा देनेवाला यह सत्य सोमरस ( मित्रस्य धरुणस्य ) मित्र और वरुण द्वारा ( धर्मणा प्र अर्षा ) धारण किए जानेके लिए जाना जाता है, कलशमें गिरता है ॥ २ ॥

[ ८५८ ] ( नृभिः मेमाणाः ) ऋतुवर्जिके द्वारा तैम्पार होनेवाला ( हृतः विचक्षणः ) वर्णनीय, विशेषज्ञान धरानेवाला ( देवा राजा ) विष्व सोम राजा ( समुद्रतः ) जलोंमें इन्हके लिए जाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ८५९ ] ( वाच तिस्रः वाचः ईरयति ) यत्कर्ता ऋक्, यजु और साम इन तीनों वागियोंका उच्चारण करता है, ( ऋतस्य धीर्ति ) यत्की रीति और ( ब्रह्मणः मनीषां ) ज्ञानमें पवित्र ॥ विचारका इसमें उच्चारण किंवा जात है, ( गावः गो-पतिं यन्ति ) जिस प्रकार गायें गोपालके पास जाती हैं उसी प्रकार ( पृच्छमानाः सोमं यन्ति ) गायें शब्द करती हुई सोमके पास जाती हैं, सब ( वावशानाः मलयः ) इच्छा करनेवाली बुद्धियाँ उनको स्तुति करती हैं ॥ १ ॥

[ ८६० ] ( धेनवः गावः ) बुवाय गायें ( सोमं वावशानाः ) सोमकी इच्छा करते हैं, ( विप्राः मयिभिः सोमं पृच्छमानाः ) जानी लोग अपने बुद्धियोंसे सोमका वर्णन करते हैं, ( सुतः सोमः ) सोमरस निकालनेके बाद ( पूयमान ऋच्यते ) जाना जाता हुआ सोम रचे हुए वर्तनोंमें गिरता है, ( त्रिष्टुभः अर्काः सोमो सं नवन्ते ) त्रिष्टुभ छन्दके मंत्र सोमका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

[ ८६१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( परिषिच्यमानः ) वर्तनों पानीसे भिजाया हुआ तथा ( पूयमान ) पवित्र होता हुआ तू ( नः पश्य स्वस्ति पश्य ) हमारे कल्याणके लिए जनता वा, ( बृहता मदेन इन्द्रं आविश ) बड़े आनन्दसे तू इन्द्रके पेटमें जा, ( वाचं वर्धय ) स्तुतिका सवर्धन कर, ( पुरंधिं जनय ) बहुत काम करनेवाली बुद्धिके उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

८६२ यत् धाव इन्द्र ते शतशतं भूमौ हव स्युः ।

न त्वा वज्रिन्तसहस्रस्यर्षा अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥ ( ऋ ८।७०।१ )

८६३ आ प्रमाथ महिना वृष्णा वृषन्विषा श्विष्ठ श्वसा ।

अस्माश्च मघवन् गोमति मजे वज्रि चित्राभिस्तमिः ॥ २ ॥ ११ ( ली ) ॥

[ धा० १९। उ० नास्ति । ख० ४ ] ( ऋ ८।७०।६ )

८६४ वयं य त्वा सुतावन्त आपो न वृक्षतर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृषहन्पारि स्तोतार आसते ॥ १ ॥ ( ऋ ८।९३।१ )

८६५ स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उषियनः ।

कदा सुते वृषाण ओक आ गमदिन्द्र स्वन्दीव वत्सगा ॥ २ ॥ ( ऋ ८।९३।२ )

८६६ कण्वेभिर्धृग्या धृपद्राजं दर्पि सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्ष गोमन्तमीमे ॥ ३ ॥ १२ ( छा ) ॥

[ धा० २७। उ० २। ख० १ ] ( ऋ ८।९३।१ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ८६२ ] हे इन्द्र ! ( ते ) तेरी बराबरी करनेके लिए ( यत् धाव शत स्युः ) यदि धृतीक सी हो जावे, ( उत भूमिः शतं स्युः ) और भूमियां भी सी होजावे और हे ( प्रसिद्ध ) वज्रधारी इन्द्र ! ( सहस्र स्यर्षाः ) हजारों स्यर्ष हो जावें, तो वे सब भी ( त्वा म अनु न अष्ट ) तेरी बराबरी नहीं कर सकते, ( जाते म अनु अष्ट ) कोई भी पैदा हुआ जगत् तेरी बराबरी नहीं कर सकता, ( रोदसी ) वे दोनों श्रावणस्थि भी तेरी तकता नहीं कर सकते ॥ १ ॥

[ ८६३ ] हे ( वृषन् ) बलवान् इन्द्र ! तू अपने ( वृष्ण्या महिना ) सामर्थ्यके सहस्रसे मुक्त ( श्वसा ) बलसे ( विष्वा आ प्रमाथ ) सभीको धुँस करता है । हे ( श्विष्ठ ) बलवान् ( मघवन् चित्रिन् ) धनवान्, वज्रधारी इन्द्र ! ( गोमति मजे ) गायोंसे भरे हुए गौशालामें ( चित्राभिः ऊतिभिः ) अनेक प्रकारके सरासके साधर्मिसे ( नः अथ ) हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

[ ८६४ ] हे ( वृक्षहन् ) शत्रुका वध करनेवाले इन्द्र ! ( त्वा वयं य ) तेरे पास हम ( सुतावन्तः ) सोमरस निकाल कर ( आपः न ) जलप्रवाहके समान आते हैं, ( पवित्रस्य प्रस्रवणेषु ) पवित्र सोमकी गूढ़ि करते हुए ( वृक्ष-वर्हिषः स्तोतारः ) आसन्की रीत्याकर स्तुति करनेवाले ( परि उप आसते ) तेरी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ ८६५ ] हे ( वसो ) निवासाक इन्द्र ! ( सुते निरेके ) सोमरस निकालनेके बाद ( उषियनः नरोः ) स्तुति करनेवाले ऋत्विज ( त्वा स्वरन्ति ) तेरी स्तुति करते हैं, ( सुते वृषाणः ) सोमरस पीनेकी इच्छा करनेवाला इन्द्र ( वत्सगा ) बल बल ( स्वन्दीव ) शब्द करता हुआ ( कदा ओकः आगमत् ) कब हमारे घर आया ? ॥ २ ॥

[ ८६६ ] ( धृग्या ) हे धूर्वीर इन्द्र ! ( कण्वेभिः ) कण्वोंके द्वारा स्तुति किए जानेके बाद उन्हें ॥ ( सहस्रिणं यजं आदर्पि ) हजारों प्रकारके बल अथवा धन देता है । हे ( मघवन् विचर्षणे ) धनवान् और शाली इन्द्र ! तेरे पाससे ( धृपत् ) शत्रुका नाश करनेवाले ( पिशङ्ग-रूपं ) सोनेके समान चमकनेवाले ( गोमन्तं धाव्यं ) पायते ताम रहनेवाले धन ( मभ्यु ईमेहे ) जीम पाया चाहते हैं ॥ ३ ॥



८६७ तरणिरिसिपासति वाजं पुरंध्या युजा । आ च इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नैमि तष्टेव सुद्रुवम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ७।१२।१० )

८६८ न दुष्टुतिद्विणिोदेपु शस्यते न स्नेषन्तश्चरिर्नशत् ।  
सुशक्तिरिन्मयव तुभ्यं मावते दण्यं यत्पार्थे दिवि ॥ २ ॥ १३ ( पि ) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । १२० २ ] ( ऋ. ७।१२।११ )

॥ इति ऋषेः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

८६९ तिस्रा वाच उदीरते गावो मिमन्ति घेनवः । हरिरेति कनिक्कदत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।४ )

८७० अमि ब्रह्मीरनृषत् यद्दीकृतस्य मातरः । मज्जयन्तीर्दिवः शिशूश्च ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३।५ )

८७१ रायः समुद्राश्चतुराऽस्मम्बश्चोम विमत्तः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ३ ॥ १४ ( टा ) ॥  
[ धा० १८ । उ० १ । १२० २ ] ( ऋ. ९।३।६ )

८७२ सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

पविप्रवन्तो अक्षरं देवान्गच्छन्तु वा मदाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।७ )

[ ८६७ ] ( तरणिः इत् ) दुष्को पार कर जानेवाला वीर ही ( युजा पुरंध्या ) योग्य और विशाल दुष्को लहावता ( वाजं सिपासति ) बल प्राप्त करना चाहता है । हे यश करनेवाली ! ( चः ) दुष्टारे लिए ( गिरा ) स्तुतिके द्वारा ( पुष्ट-हूत इन्द्रं ) बहुशक्ति के द्वारा स्तुति किये गये इन्द्रको जिस प्रकार ( तष्टा सुद्रुवं नैमि इव ) बर्षा लकड़ीकी पुरि बनाता है, उसी प्रकार ( आ नैमि ) नमन करता हूँ ॥ १ ॥

[ ८६८ ] ( द्विणिोदेपु ) घनके बान करनेवाली पुर्वीकी ( दु-स्तुतिः न शस्यते ) शिन्धकी कोई भी प्रशंसा नहीं करता है, ( स्नेषन्तं ) बान बानाओंकी स्तुति न करनेवालोंको ( रयिः न नशत् ) घन प्राप्त नहीं होता, है ( मज्जयन् ) घनवान् इन्द्र ! ( पार्थे दिवि ) सौम्यवक्त्रके विन ( मावते ) मूल नैतीको, ( देण्यं यत् ) देने योग्य जो घन है, ( तुभ्यं सुशक्ति इत् ) उन्हें तुमने उतथा अभिताली ही प्राप्त करता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ८६९ ] ( तिस्रः वाचः उदीरते ) ऋतु, यजु, साम इन तीन वागियोंका वस्तुकार्ता उच्चारण करते हैं, ( घेनवः गावः मिमन्ति ) दुपाव गायें रमाती हैं, ( हरिः कनिक्कदत् पति ) हरे रणक सौपरत शब्द करता हुआ कल्लाई गिरता है ॥ १ ॥

[ ८७० ] ( दिवः दिातुं मज्जयन्तीः ) धूलोके पुनरुपि सोमको मुद करती हुई ( ब्रह्मीः ) वेदोंमेंसे ( श्रुतस्य यद्दीः मातरः ) यशके बड़े महत्वका वर्णन करनेवाली स्तुतिवा ( अमि अनृषत् ) गर्व जाती हैं ॥ २ ॥

[ ८७१ ] हे ( सोम ) सोय ! ( रायः चतुराः समुद्रान् ) यशके चार समुद्रोंको ( अस्मभ्यं ) हमारे लिए ( विमत्तः आ पवस्व ) चारों ही ओरसे लाने दे, और ( सहस्रिणः ) हमारी हजारों इच्छाओंको पूर्ण कर ॥ ३ ॥

[ ८७२ ] ( मधुमत्तमाः ) अत्यन्त मीठे ( मन्दिनः सुतासः ) अत्यन्त बढानेवाले सोमरस ( पविप्रवन्तः ) शुद्ध होकर ( इन्द्राय अक्षरन् ) इन्द्रके लिए कल्लाई पड़ते हैं, है ( सोमाः ) सोमरसी ! ( चः मदाः देवान् गच्छन्तु ) दुष्टारे अत्यन्तयशक रत वेदोंको प्राप्त हों ॥ १ ॥

८७३ इन्द्रुरिन्द्राय पयते इति देवासो अद्भुवन् । वाचस्पतिर्मखस्पते विश्वस्पृष्टान ओजसः ॥ २ ॥

( ऋ २।१०।१३ )

८७४ सहस्रधारः पयते समुद्रा वाचमीहयः ।

सोमस्पती रयीणाश्चखेन्द्रस्य दिवादिब

॥ ३ ॥ १५ ( ति ) ॥

[ धा० २९। ३० नास्ति । ख० २ ] ( ऋ. १।१०।१६ )

८७५ पवित्रे ते वितते ब्रह्मणस्पते प्रमुखात्राणि पर्वणि विशतः ।

अवपतन्तूनं तदामो अद्भुते मृतास इन्द्रन्वः स तदाश्रत

॥ १ ॥ ( ऋ. १।८१।१ )

८७६ सपोपवित्रे विशतं दिवस्पदेऽचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।

अवन्तपस्य पवितारमाश्रयो दिवः पृथुमर्षि रोहन्ति तेजसा

॥ २ ॥ ( ऋ. २।८१।२ )

८७७ अरुचचदुपसः पृथिराग्रिय उक्षा भिमैति भुवनेषु वाजयुः ।

मायाविनो भमिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भसा दधुः ॥ ३ ॥ १६ ( डु ) ॥

[ धा० ३८। ३० । १ । ख० १ ] ( ऋ. २।८१।३ )

॥ इति पञ्चम सर्गः ॥ ५ ॥

[ ८७३ ] ( इन्द्रुः ) सोमस्य ( इन्द्राय पयते ) इन्द्रके लिए छाया जाता है, ( इति देवासः अद्भुवन् ) इस प्रकार स्तुति करनेवाले कहते हैं, ( वाचः-पतिः ) स्तुतिपति रसक और ( विश्वस्य ओजसः ईशानः ) सब बलोंके स्वामी इस सोमका ( प्रखर्यते ) यज्ञमें उपयोग किया जाता है ॥ २ ॥

[ ८७४ ] ( समुद्रः ) पानीमें भिलाया हुआ ( पार्थ इत्ययः ) बायीं ओर रेखा देनवाला ( रयीणां पतिः ) पनोंका स्वामी ( इन्द्रस्य सखा ) इन्द्रका मित्र ( सोमः ) यह सोम ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( सहस्र-धारः पयते ) हजारों भारोंमें कलशमें छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ८७५ ] है ( ब्रह्मणः पते ) यज्ञके स्थायी सोम । ( ते पवित्रं विततं ) वेदा पवित्र हुआ भाग सब जगह फैला हुआ है, ( प्रमुः ) सामर्थ्यवान् ( गात्राणि पर्वणि ) पौर्णमासीके अवधियोंमें व्याप्त होता है, ( विशतः अ-तस-तन्तुः ) सब तरफसे धारीको सपते बिना सपावे ( अग्रः तन् न अद्भुते ) अग्रज धारीसे उस मुखको कोई प्राप्त नहीं कर सकता । ( मृतासः इन् ) जो परिचर्य हैं, वे ही ( पद्भन्तुं स आशने ) मत करते हुए मुख प्राप्य करते हैं ॥ १ ॥

[ ८७६ ] ( सपोः पवित्रं ) यज्ञको सपानेवाले सोमके पवित्र अंग ( दिवः पदे विततं ) पृथोरके स्थानमें फैले हुए हैं, ( अस्य तन्तवः ) इसकी किरणें ( अचन्तो व्यस्थिरन् ) चमकते हुए विजये रोतिते स्थिर हो गई हैं, ( अस्य आशयः ) इस सोमके जलही ही कर्म्मभावे रहा ( पवितारं अश्रन्ति ) बूढ़ करनेवालोंसे रक्षा करते हैं, वे ( दिवः पृष्ठं ) पृथोरके पृष्ठ भाग पर ( तेजसा अपिरोहन्ति ) यज्ञमें तेजसे चटकर बैठने हैं ॥ २ ॥

[ ८७७ ] ( उपसः पृथिनः ) उपचारमें हुए ( अग्रियः अरुचचत् ) पहले प्रकाशित होता है । ( उक्षा ) पर्व करनवाला वह ( भुवनेषु यिमैति ) सब भुवनोंमें जल बाँटता है और प्रकाश ( पाज-युः ) अन्नने दूध करता है, ( माया यिनः ) कल्पितान् देवता ( अस्य मायया ) इसकी धारिते ( भमिरे ) जगन्नाथ निर्धार्य करते हैं, ( अरयः ) इस सोमकी शक्तिते ( नृचक्षसः पितरः ) मानवोंका निरोक्षण करनेवाले शाला ( गर्भे दधुः ) ओपधियों में गर्भ स्थान करन हैं ॥ ३ ॥

॥ यदा पाँचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

८७८ प्र मध्दिष्टाय गायत्र श्रुतांते गृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्रये ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१०।१८ )

८७९ आ वंस्तते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो घुमन्याहुतः ।

कुविन्नो अस्य सुमतिर्मवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ २ ॥ १७ ( या ) ॥

[ घा० १७ उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१०।१९ )

८८० तं तं मदे गृणीमसि वृषणं पृथु सासहिम् । उ लोककृत्सुमद्रिवो हरिःश्रियम् ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१५।४ )

८८१ येन ज्योतीरव्यायवे मनये च विवेदिष । मन्दानो अस्य चर्हिषा वि राजसि ॥ २ ॥

( ऋ. ८।१५।५ )

८८२ तदया चित् उविधनोऽनु प्दुवन्ति पूर्वया । वृषपत्नीरथो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥ १८ ( ह ) ॥

[ घा० २१ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१५।६ )

८८३ ध्रुवी हवे तिरश्चया इन्द्र यस्त्वा सपर्यति । सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाश्रुति ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१५।४ )

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ ८७८ ] ( उप-स्तुतासः ) हे स्तुति करनेवालो ! तुम ( मध्दिष्टाय ) श्रेष्ठ ( श्रुतांते ) पद्य करनेवाले ( गृहते ) शुक्र-शोचिषे ) यहाँ तेजस्वी ( अग्रये प्र गायत ) अग्निके लिए स्तुतिका गान करो ॥ १ ॥

[ ८७९ ] ( मघवा घुमन्नी ) 'मघवान् तेजस्वी ( समिद्धः आहुतः ) प्रदीप्त और हवन किया गया अग्नि ( वीरवद्य यशः ) पुत्रसि होनेवाला यश ( आ वंस्तते ) देता है, ( अस्य ) इस अग्निकी ( मघवीयसी सुमतिः ) हमारे मनुज रहनेवाली बुद्धि ( सः अच्छ ) हमारे पास ( वाजेभिः ) अग्निके साथ ( कुवित् आगमत् ) अनेक बार आवे ॥ २ ॥

[ ८८० ] हे ( अद्रियः ) बज्रकारी इन्द्र ! ( ते वृषणं ) तेरे वृषणकी पुत्ति करनेवाले ( पृथु सासहिम् ) मुझसे शत्रुको हरातेवाले ( लोककृत्सुमद्रिवो ) लोकोंका हित करनेवाले ( हरि-श्रियं ) अस्वर्गकी शोभा जिसके पास है, ऐस ( तं मदे ) उस सोम पीनेके उत्तम हुए हुए उत्साहको ( गृणीमसि ) हम प्रशंसा करते ॥ १ ॥

[ ८८१ ] हे इन्द्र ! ( येन ) जिस उत्साहसे ( व्यायवे मनये ) वीर्यायवाले मनुष्यके हितके लिए ( ज्योतीरि विवेदिष ) स्वर्गके अनेक तेजस्वी पदार्थ प्रकाशित किए, उसी उत्साहसे युक्त होकर ( अस्य चर्हिषा मन्दानः ) इस प्रकारके भासन पर आनन्दित होकर ( विराजसि ) तू विराजमान होता है ॥ २ ॥

[ ८८२ ] हे इन्द्र ! ( ते तत् ) तेरे उस बलकी ( मया चित् ) आज भी ( पूर्वया ) पूर्वके समान ( उविधनः अनुस्तुवन्ति ) स्तुतिकर्ता स्तुति करते हैं, इस प्रकार तू ( वृषपत्नी अपः ) बलके वालन करनेवालोंको ( दिवे दिवे जय ) प्रतिदिन जीत करके प्राप्त कर ॥ ३ ॥

[ ९८३ ] ( यः रथा सपर्यति ) जो तेरी आराधना करता है, ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( तिरश्चयाः हवे ध्रुवि ) उस तिरश्चिष्ट अग्निकी प्राधना तुम और ( सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्धि ) उत्तम श्रेष्ठ युवते युक्त और गायते युक्त बलके हमें पूर्ण कर । ( महान् श्रुति ) तू महान् है ॥ १ ॥

८८४ यस्त इन्द्र नवीयसी गिरं मन्द्रामजीजनत् ।

चिकित्स्विमनसं विषं प्रतामृतस्य पिप्पुपीम्

॥ २ ॥ ( ऋ ८/११/१ )

८८५ तमु प्रवाम ये गिर इन्द्रपुण्यानि वामूधुः ।

पुरुषस्य पोऽस्या सिषासन्तो वनामहे

॥ ३ ॥ १९ ( का ) ॥

॥ ६ [ धा० १५ / उ० २ / स्व० ३ ] ( ऋ ८/१९/६ )

॥ इति षष्ठं खण्डं ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः । द्वितीयप्रपाठकस्य समाप्तः ॥ २ ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

[ ८८४ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यः ) जो ( नवीयसी ) नवी जोर ( मन्द्रां गिरं ) आनन्दवामक स्तुति ( ते अजीजनत् ) तेरे लिए करता है, उस स्तोत्राको ( प्रतां मृतस्य पिप्पुपीं ) पुरातन यज्ञकी बढानेवाली ( चिकित्स्विमनसं ) मनकी बाढ़ करनेवाली ( विषं ) बुद्धि दे ॥ २ ॥

[ ८८५ ] हम ( तं उ इन्द्र स्तनाम् ) उस इन्द्रको स्तुति करते हैं, ( यं गिरः पुण्यानि वामूधुः ) जिसकी महिमा यज्ञ और स्तोत्र बढ़ाते हैं, इतलिए ( अस्य ) इस इन्द्रके ( पुरुषि पोऽस्या ) महान् पराक्रमीका हम ( सिषासन्तः ) घनामहे ) भजिते बर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

## चतुर्थ अध्याय

इस चौथे अध्यायमें इन्द्रका जो गुण वर्णन किया है, वह इस प्रकार है ।

### इन्द्रके गुण

१ अविभ्युपः [ ८५० ]- निर्भय, किसीसे न डरनेवाला ।

२ धृष्ट्युः [ ८६६ ]- दास्योंको डर करनेवाला, शूरवीर ।

३ तरणिः [ ८६७ ]- कुलते पार होनेवाला ।

४ धृषा [ ८६३ ]- धनवान्, सामर्थ्यवान् ।

५ चक्षिन् [ ८६३ ]- वरदापारी, शत्रुनाशकारी ।

६ शयिष्ठः [ ८६३ ]- सामर्थ्यवान् ।

७ भयदान् [ ८६३ ]- धनवान् ।

८ वसुः [ ८६५ ]- धनवान्, निवास करनेवाला ।

९ विचर्यणिः [ ८६६ ]- विजय करने

१० [ ताम द्वितीय भा. २ ]

१० पुरु-इन्द्र. [ ८६७ ] जिसे बहुत लोग अपनी सहजताके लिए बुलते हैं ।

११ अस्य पुरुणि पोऽस्या सिषासन्तः घनामहे [ ८८५ ]- इस इन्द्रके बहुतसे पराक्रमके कार्योंका बर्णन हम-भजिते करते हैं ।

१२ सुवीर्यस्य गोमतः रायः धूर्धि [ ८८३ ]- उत्तम वीर्यवान् पुत्र और नाथसे युक्त धन हमें भरपूर दे ।

१३ हे धृषन् ! धृषया महिमा शयसा विभ्या वा पपाथ [ ८६३ ]- हे बलवान् इन्द्र ! सामर्थ्य और महान् बलसे तू धन कर्मोंको पुर्ण करता है ।

१४ हे इन्द्र ! यः नवीयसी मन्द्रां गिरं ते अजी-जनत्, प्रतां मृतस्य पिप्पुपीं चिकित्स्विमनसं

[ ८८४ ]- हे इन्द्र ! जो तेरी गई और आनन्द बढ़ानेवाली स्तुति करता है, उसे प्राचीनकालसे ही बसको बढ़ानेवाली और मनकी पवित्र करनेवाली बुद्धि तू देता है ।

१५ हे इन्द्र ! यत् पात्र शत स्युः, यत् मूमिः शतं स्युः, सहस्रं स्युः त्वा न अनु अष्ट, ज्ञातं न अनु अष्ट, रोदसी न अनु अष्ट [ ८६२ ]- हे इन्द्र ! यदि तो घुलोक होशायें, संकहां भूमियां हो जायें, हजारों सूर्य हो जायें, सो भी वे तेरी बराबरी नहीं कर सकते, उत्पन्न हुआ जगत् तेरी बराबरी नहीं कर सकता, धाधापुमिषी जो तेरी बराबरी नहीं कर सकते ।

इन्द्रके ये गुण इस अण्डस्यमें वर्णित हैं, उन्हें उपासक अपने अन्दर लानेका प्रयास करें । जो अपने अन्दर लानेके योग्य न हों तो उनका भावार्थ मनमें सादर उनको जितना पारंगत किया जा सकता है, उतना करें ।

### इन्द्रका रक्षण

इन्द्र सभीका संरक्षक करता है, इसलिये कहा है—

१ हे मघधन् ! यस्मिन् ! योमति प्रजे चित्राभिः ऊतिभिः । नः अथ [ ८६३ ]- हे धनवान् ! यस्मिन् ! पायोंसे भरी हुई गीसात्ममें अनेक सरक्षणके राशियोंसे हमारा संरक्षण कर, अर्थात् हमें पायोंसे भरी हुई गीसात्मा भी है और साथ ही हमारा संरक्षण भी कर ।

२ हे अध्रिषः ! ते दुष्पथं पृथु सासाहं लोककलुं मयं घृणीमसि [ ८८० ]- हे धनवादी इन्द्र ! बलवाली, युद्धमें शत्रुको हारनेवाले लोगोंका हित करनेवाले ऐसे तेरे उस्ताहकी हम प्रशंसा करते हैं । इन्द्रका उस्ताह लोगोंका हित करनेवाला है ।

३ ते तत् अघासित् पूर्वथा उक्थितः अनुस्तुवन्ति [ ८८२ ]- तेरे उस मूर्खोंप्राणीको पहलेके क्षमल धान भी स्तोता स्तुति करते हैं ।

### इन्द्र धन देता है

इन्द्र स्तुति करनेवालोंको धन देता है, इस विषयमें आपके मन भाग देनेमें योग्य हैं—

१ हे धृषणी ! सहजिषं वाजं व्यादधि [ ८६६ ]- हे धुरधीर इन्द्र ! तू हमें हजारों प्रकारके बछ अथवा धन देता है ।

२ हे मघधन् चित्रर्षणे ! भृपत् पिदांगरुषं गोमन्तं पात्र मधु ईमहे [ ८६६ ]- हे धनवान् ! ज्ञानी इन्द्र ! जड़को

हारनेवाले, सोनेके सधान धनकनेवाले, गोमंति साथ रहनेवाले धन हर्षे शीघ्र प्राप्त हों, ऐसी हम इच्छा करते हैं ।

३ सर्वाणः युजा पुरन्धा वाजं सिपासति [ ८६७ ]- तु जसि पार होनेवाला धीर तेरी उत्तम और विगास बुद्धिसे बल अथवा धन पानेकी इच्छा करता है ।

४ पुरु-हृतं इन्द्रं आनमे [ ८६७ ]- बहुतके द्वारा स्तुति किया गया इन्द्रको मैं अपनी सहायताके लिए बुलाता हूँ ।

५ त्रयिणो देसु दु-स्तुतिः न शस्यते [ ८६८ ]- धन देनेवाले इन्द्रादिकी निन्दा करना अच्छा नहीं है, क्योंकि उनकी उत्तम स्तुति ही कदवी चाहिए ।

६ हे मघधन् ! पायें दिवि माधते देषणं तुभ्यं सुद्राकिः इत् [ ८६८ ]- हे इन्द्र ! दुष्कृति पार करनेवाले दिव्य यज्ञमें मूल अंतेकी देने योग्य जो धन है, वे तेरे पातसे उत्तम शक्तिमान् हो प्राप्त कर सकता है । शक्तिमान् धन करता है और धन पाता है ।

इन्द्र उपासकोंको धन देता है, इस विषयमें ऊपरके मन भाग मनन करने योग्य हैं । वरामें इन्द्रादि देवोंकी सोमरस बिचा जाता है, इस विषयमें मन्त्र भागोंकी अब वैशिष्ट्य—

### इन्द्रको सोम देना

यज्ञमें सोमका रस पिलाता जाता है, और यह इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है । इस विषयमें विष्णु मन्त्र है—

१ इन्द्रुः इन्द्राय परते इति देवास्तः अमुधन् [ ८७३ ]- सोम इन्द्रको दिया जाता है ऐसा देवोंने कहा है ।

२ रयीणां पतिः विदेदिये इन्द्रस्य सखा सोमा सहव्यधारः पवते [ ८७४ ]- ऐश्वर्योंका धामक, प्रक्षिप्त इन्द्रका मित्र सोम हजारों बारामेंसे छाया जाता है ।

३ वाचस्पतिः विभ्यस्य ओजस्तः ईशानः मक्षरयते [ ८७३ ]- वाणीका पति, सब सामर्थ्योंका दीवर ऐसा यह सोम यज्ञमें सम्पत्तिके योग्य है । यज्ञमें इन्द्रकी सोनेके कप दिया जाता है यह सोमका सम्मान है ।

४ बृहता मदेन इन्द्रं आविश [ ८७३ ]- हे सोम ! तू महान् आनन्दसे इन्द्रमें प्रवेश कर ।

५ वाचं वर्धय पुरन्धि जनय [ ८६९ ]- वक्तृत्वशक्ति बढ़ा और उत्तम बुद्धि निर्माण कर । सोमरस पीनेके द्वारा जो उस्ताह बढ़ता है उससे अच्छी तरह मोलनेकी शक्ति आती है और मूर्ख भी सीध होवी है ।

इस तरह इन्द्रादि देवता सोमरस पीते हैं, और महान् गुर वीरताके काम करते हैं । वैशिष्ट्य—

६ सवृत्त-धृष्णु मदीमद्विषत् मयं शतं पुरः रुद्र-  
क्षिणे [ ८३७ ]- जिसने अपने शत्रु हरा दिए, जो महान्  
महान् कार्य करता है, जो शत्रु से भी बिले तोड़ता है, उस  
सोमरस के आनन्द की हम प्रशंसा करते हैं। सोमरस पीने से  
पराक्रम करने की शक्ति अपने अन्दर आती है।

इस प्रकार इन्द्र के वर्णन इस अध्यायमें है। अब अग्निके  
वर्णन देखिए—

### अग्निका वर्णन

इस अध्यायमें अग्निका इस प्रकार गुणवर्णन किया है—

१ पविः [ ८४४ ]- सानो, बूढ़वाला।

२ युवा [ ८४४ ]- तनव।

३ गृहपतिः [ ८४४ ]- घर की रक्षा करनेवाला।

४ पायका [ ८४६ ]- पवित्र करनेवाला।

५ प्रानेता [ ८४९ ]- उत्तम चीजों से रक्षा करनेवाला।

६ मधवा [ ८७९ ]- धनवान।

७ सुम्नी [ ८७९ ]- तेजस्वी।

८ महिष्ठ [ ८७८ ]- महान्।

९ अस्ताज्व [ ८७८ ]- सत्यपालक, मर करनेवाला,

उत्तम कार्य करनेवाला।

१० गृह्व [ ८७८ ]- बडा, महान्।

११ शुक्रदोषि [ ८७८ ]- धृष्ट प्रकाशवाला।

१२ हव्यमर [ ८४४ ]- हवन किए गए ब्रह्मों देवताओं के  
पास पहुँचानेवाला।

१३ द्रुतः [ ८४९ ]- देवों को हवि पहुँचानेवाला।

१४ वीरवत् यशः आ धसते [ ८७९ ]- पुत्रपौत्रों के  
साथ मिलनेवाला मर प्राप्त करता है।

१५ अस्य मदीयसो सुमतिः नः अद्य वाजेभि  
हुविष् व्यागमत् [ ८७९ ]- इसके अनुकूल होनेवाली उत्तम  
युद्ध हमारे पास आज अग्निके साथ आवे।

इस तरह अग्निके गुण इस अध्यायमें वर्णन किये हैं, ये  
गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर धारण कर ले तो उत्तमी योग्यता  
पिता की कंठी हो जाए ?

### सूर्य

सूर्यका वर्णन इस अध्यायके एक ही धनमें किया है, उसे  
देखिए—

१ उपसः प्रदिनः सप्रियः अरुहन्त [ ८७७ ]-उप-  
कालके बाद सूर्य प्रमथ चमकने लगता है।

२ उक्षा भुवनेषु मिमेति [ ८७७ ]- वृद्धि करनेवाला  
यह सूर्य सब भुवनों में जलका संचन करता है।

३ मायाविमः अस्य मायया मिमेति [ ८७७ ]- कुशल  
देवता इस सोमके सामर्थ्य से जगत् में पदार्थोंका निर्माण  
करते हैं।

उप बाल होते ही उक्षा और दूसरों की प्रकाशके द्वारा  
समं दिखाना, दूसरों को जल अर्थात् जीवन देकर अनेक  
प्रकारके कुशलताके काम करनेके लिए प्रेरणा देना ये दोष  
इन वचनोंसे मिल सकते हैं।

### मरुत्

मरुत् देवताका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार किया है—

१ मरूत् स्वमानस्येला अग्निमुपा अग्नेण संज-  
ग्मावः सवक्षसे [ ८५० ]- स्वभावसे अलगव्युक्त और  
समान तेजस्वी मरुत् वच निर्ज्वर इन्द्रके साथ रहनेके कारण  
उत्तम तेजस्वी होजते हैं।

२ यौलु चित् आरुजस्तुभिः घनिभिः मरुद्भि-  
रुहाचित् उक्षिपाः गन्धद्विग्दः [ ८५१ ]- मरुत किले  
सोडनेवाले तेजस्वी घनत्वों में गुह्यमें छिपाये गई गंधोंको  
घात किया।

मरुत् गण ऐसे तेजस्वी और लडाकू वीर हैं, ये दागुके किले  
तोड़ते हैं और उन पर अपना अधिकार करते हैं। ऐसी  
वीरता लोग अपने अन्दर बढावे।

### इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्नि इन देवताओंका वर्णन भी इस अध्यायमें  
आया है। यह अब देखिए—

१ ता इन्द्रासी, ययोः पुरातन विश्व पन्ने [ ८५१ ]  
- ये सुप्रसिद्ध इन्द्र और अग्नि हैं, जिनके द्वारा पहले किए  
गए मर वस्तुम कसोटी कायल किया जाता है।

२ न मर्थेत् [ ८५३ ]- वे कसो भी कुछ नहीं देते।

३ ता उज्जा मृधः विश्वनिना इन्द्रासी हयामहे  
[ ८५४ ]- ये उज्ज्वलशुक्ल साम करनेवाले इन्द्र और अग्नि  
हैं, उन्हें हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

४ हेदूषो नः मृष्टातः [ ८५४ ]- ये हमें सुख देने हैं।

५ हे इन्द्रासी। आपसी वृषाणि हव्यः [ ८५५ ]- हे  
इन्द्र और अग्नि। तुम आपसी कल्याण करनेके लिए शत्रुओंका  
संहार करते हो।

६ हे सत्यवी। दासग्न विभ्या द्विपः अप हव्यः

[ ८५५ ]- हे तत्त्वपालको ! तुम भीषको और उसी प्रकार सब शत्रुओंको मारो और बुर करो ।

इस प्रकार उपासक उत्तम बौर बनें और जो शत्रु हों उन्हें बुर करे ।

### पानीकी उत्पत्ति

मित्र और वरुण ये दोनों वायु हैं, ये पानी उत्पन्न करते हैं, ऐसा मन्त्रमें कहा है—

१ मित्रं हुये पूतदक्षं वरुण च रिशादसम् । धियं धृतावीं साधन्ता [ ८५७ ]- ( पूत-दक्षं मित्र ) पवित्र बलवाले मित्रको और ( रिशादस वरुण ) हिनक शत्रुओंके नाश करनेवाले वरुणको ( हुये ) मैं धुलता हूँ, ये दोनों ( धृतावीं धियं साधन्ता ) पानी उत्पन्न करनेके काम करते हैं ।

२ रिशा-अद्भुत् वरुणः [ ८५७ ]- बल लगानेवाला, ( औरतीजन वायु ) भी जग पैदा करता है ।

३ पूतदक्षः मित्रः [ ८५७ ]- पवित्र बलवान् वायु ( हाइड्रोजन ) ।

इसमें " रिम्, रिष्ट ( रस्ट Rust ) ये दोनों धातु किसी धातु ( लोहे आदि ) में जग लगानेके आचको दिखाते हैं । हल्लिशका " रस्ट " ( Rust ) भी तस्फुलके " रिम् " से निकट सम्बन्ध रखता है ।

४ मित्रायययणी अस्तावृधौ [ ८५८ ]- मित्र और वरुण ये पानी बढानेवाले हैं ।

५ कवीं नुविजता उरुश्रया मित्रावरुणा नः अपस पलं दधाते [ ८५९ ]- ( क-वी ) " क " का अर्थ है जल और " वी " का अर्थ है उत्पन्न करनेवाले, ( नुविजता ) अनेक कार्यमें उपयोगी, ( उरु-श्रया ) अनेक स्वाधो पर रहनेवाले मित्र और वरुण ये वायु हमारे कार्य और बलको पुष्ट करें ।

इस मन्त्रमें ये दोनों वायु ( धृत-अवीं धियं साधन्ता ) पानी उत्पन्न करनेके काम करते हैं ऐसा स्पष्ट कहा है ।

### सोमके गुण

इस अध्यायमें सोमका भी वर्णन है । उसमें सोमके गुण वर्णित हैं । उन्हें अब देखिए—

१ वाजी [ ८३० ]- बलवान्, अग्रवान् ।

२ राजा [ ८३१ ]- राज्य चलानेवाला, तेजस्वी, धमकानेवाला ।

३ सहः श्रुवा [ ८३४ ]- बल बढ़ानेवाला ।

४ संवृक्त-धृष्युः [ ८३७ ]- जिहने अपने सभी सामर्थ्यवान् शत्रुओंको हरा करके नष्ट कर दिया है ।

५ महान्-महि-प्रतः [ ८३७ ]- अनेक महान् महान् कार्य करनेवाला ।

६ सुप्रतुः [ ८३८ ]- उत्तम कर्म करनेवाला ।

७ विश्वस्य ओजसः ईशानः [ ८३७ ]- सब सामर्थ्योक्त स्वामी ।

८ शर्त पुरः कदली [ ८३७ ]- शत्रुके संकड़ों मगर तोड़नेवाला ।

९ पुर दुरिता विप्रन् [ ८३९ ]- बहुतसे घातक शत्रुओंका-वास कर्म करनेवालोंका नाश करनेवाला ।

१० तपोः पवित्रं [ ८७६ ]- शत्रुको धूल देनेवालेका पवित्र भाव ।

११ विचर्योषिः [ ८३९ ]- बिरोध शान्ति ।

१२ अमिष्टिकृत् [ ८३९ ]- इच्छित कार्योंको करनेवाला ।

१३ ऋतस्य गोपा [ ८४० ]- सत्यका रक्षक, वरुणा रक्षक ।

१४ हितः [ ८४१ ]- कल्याण करनेवाला ।

१५ देवः [ ८५७ ]- प्रकाशमान, दिग्ग ।

१६ वाच-वसिः [ ८७४ ]- भाषण देनेवाला, बानीका स्वामी ।

१७ ब्रह्मण्य-पतिः [ ८७५ ]- शानका स्वामी, शान्ति ।

१८ विचक्षुषः [ ८५८ ]- बिरोध शान्ति, वरुण ।

१९ हव्यतः [ ८५८ ]- पूज्य, वरुणोप ।

२० पुरधि जनय [ ८९१ ]- विशाल बुद्धि प्रकट करनेवाला ।

२१ इन्द्रिय हिग्न्यान् [ ८३९ ]- अपनी इन्द्रिय दक्षिणो उत्साहित करनेवाला ।

२२ अनीपिभिः सुज्यमानः [ ८४१ ]- आनी जितकी खुदता करते हैं, जानियोंके द्वारा बुद्ध होनेवाला ।

२३ विश्वस्मै स्वदृशे साधारणः [ ८४० ]- सब भाषण-वर्णों शानियोंमें साधारणतया रहनेवाला ।

२४ वासिभिः युतान् [ ८४३ ]- बलवानोंके द्वारा प्रदीप्त किया गया, बलवान् जिसे आगे स्थापित करते हैं ।

२५ मत्सरः अद्भुतः [ ८५६ ]- आनन्द बढ़ानेवाला ।

२६ पवमानः [ ८५७ ]- धुल होनेवाला ।

२७ वृहत् क्रते हिग्न्यान् [ ८५७ ]- महान् ताप प्रकट करनेवाला, महान् यज्ञ करनेवाला ।

२८ दिवा। पदे निततः [ ८७५ ]- विष्य स्वानमे रहनेवाला ।

२९ मधुमत्तम [ ८७२ ]- अत्यन्त मीठा ।

३० रयीणां पतिः [ ८७४ ]- धाँयाका स्वामी ।

३१ रयिः अभि अयत् [ ८३८ ]- धनके पास जानेवाला ।  
ये सोमके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं। सोमरस पीनेसे जो उरसाह और सामर्थ्य बढ़ता है, उससे और पुष्ट्य और ताके काम करते हैं, इसलिए ये गुण सोमके ही हैं, यह बात आल-कारिक भाषामें कही है। यह बात ध्यानमें रखनेसे ऊपरके गुण सोमके कित प्रकार हैं, यह स्पष्ट हो जाएगा ।

### सोमका स्वर्गसे लाया जाना

सोम स्वर्गसे पृथ्वी पर लाया गया, इस प्रकार सोमका वर्णन वेदोंमें अनेक जगह पर आया है। सोमवान् हिमालयके एक ऊँचे शिखरका नाम है। उस ऊँची चोटी पर सोम उगता है और वहाँसे लाया जाता है। हिमालयके ऊपरवा भाग स्वर्ग है, वहाँसे सोम लाया जाता है, इसलिए यह स्वर्गसे लाया गया ऐसा कहते हैं। यह वर्णन अब देखिए—

१ रयिः अभि अयत् राजानं त्वा दिवाः अय्ययी सुपुषीः आभरत् [ ८१८ ]- धनके पास पहुँचनेवाले तेजस्वी राजाके सामान्य सुषे स्वर्गसे उड़ ल म माननेवाला गवड़ के आया ।

२ अतस्य गोपीः विष्वस्ते वष्टैश्चे साधारणं विः भरत् [ ८५० ]- यतके सारक्षण करनेवाले, तब स्वर्गके देवनेवाले, देवोंको साधारण रीतिसे प्राप्त होनेवाले नीमकी पत्ती आया ।

३ तपोः पयिन्नं दिवाः पदे धिततं [ ८७६ ]- बाबुकी हाथ देनेवाले सोमके ये पवित्र अंग स्वर्गलोकमें छिंते हुए हैं ।

४ दिवः पृष्ठं तेजसा अधिरोहन्ति [ ८७६ ]- स्वर्गकी पीठ पर सोम अपने तेजसे चढ़ता है। सोमकी वेल चमकती है। इस प्रकार सोम स्वर्गसे लाया जाता है, और यज्ञमें उसका रस निकाल कर उसका हवन किया जाता है ।

### सोम धन देता है

सोमके धन देनेके विषयमें आगेके अंग देखने योग्य हैं—

१ इन्दुयः विभ्यानि सोमगा अभि [ ८३० ]- सोम सब सोमाग्य देता है ।

२ मद्रो दिवः सधस्थेषु, मृषाभि विभ्रनं, चार्त्तं ते त्वा सुकुर्यया ईमहे [ ८३६ ]- मद्रम घोषलके अनेक स्वर्गनीमें रहनेवाले अनेक प्रकारके धाँयोको धारण करनेवाले, मुन्वर ऐसे दुस्त सोमकी उत्तम यज्ञके द्वारा प्राप्त करते हैं ।

### सोम गाय और घोड़े देता है

१ वाजिनः, पुर दुरिता विभ्रन्तः, तोकाय सु गाः अयंतः तस्मा वृणन्तः [ ८३१ ]- बल बढ़ानेवाले, बहुतसे पाषाँका नाश करनेवाले ये सोमरस, हमारे पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम गाय और घोड़े भिन्ने, इसलिए स्वयं ही मार्ग बताते हैं ।

२ हे इन्दो ! शातग्विन्मं गवां पोरं, इव यं भगतिं नः आग्रह [ ८३५ ]- हे सोम ! ली गायोंसे मुक्त, गायोंका पोषण करनेवाले मुन्वर घोड़ोंसे मुक्त ऐसे भाग्यके दात हूँ मैं ।

इस प्रकार सोम गाय और घोड़े देता है। सोमका रसमें उपयोग होता है और यज्ञमें गाय और घोड़े आते हैं। बहुत मामो सोम हो जाता है इस प्रकार आलकारिक भाषामें वर्णन है ।

### सोमका पानीमें मिलाना

सोम बूँदकर उसका रस निकालते हैं, और उसमें पानी मिलाकर उसे छानते हैं, इस विषयके वर्णन आगेके पानोंमें है—

१ हे सोम ! परिपिच्यमानः, नः स्वस्ति पयस्य [ ८६१ ]- हे सोम ! कर्तव्यमें रखे हुए पानीमें मिलाकर हमारे कर्माग्यके लिए छानता जा ।

२ हे सोम ! पयः चतुर समुद्रान् असुभ्यं विभ्रतः आ पयस्य [ ८७१ ]- हे सोम ! धनके चारों समुद्रोंको हमारे लिए चारों ओरसे लाकर छानता जा । पानीमें मिलाकर तपा छानकर सोम गुड़ किया जाता है ।

### सोमरस छाना जाता है

सोमको पानीमें मिलानेके बाद उसे छाया जाता है—

१ पते आशयः इन्दुवः तिरः पयिन्नं अश्रमम् [ ८३० ]- ये शीघ्र पति करनेवाले सोमरस छाननेसे छाने जाते हैं ।

२ हे इन्दो ! मनीषिभिः मृज्यमानः इपे धारया पयस्य [ ८५१ ]- हे सोम ! बुद्धिमान् यज्ञकोंके द्वारा गुड़ किया जानेवाला तू हमारे अग्निके लिए छानता जा ।

३ वाजिभिः पुतानः देवघोषिते पुतानः दितः इन्द्रस्य निष्कृतं पाहि [ ८५३ ]- अनेक शक्तिपति तेजस्वी नीलनेवाला, देवोंके लिए छानता हुआ, हितकर करने-वाला सोम इन्द्रके पास जावे ।

४ मनीषिणः आयतः, भरतरासः मरुच्युतः सोमासः समुद्रस्य गधि विष्टपे, मधं मद्रं अभि पयस्ते [ ८५६ ]- बुद्धिमान् यज्ञक मानन्द बढ़ानेवाले उताही



सोमरसको, जलके वर्तनके ऊपर रखी हुई छत्रनीसे आनन्द और उत्साह बढ़ानेके लिए छानते हैं ।

५ पयमानः देवः राजा बृहद् कृतं समुद्रं ऊर्मिणा तरद्, हिन्वानः कृतं घृहत् मित्रस्य वरुणस्य धर्मिणा प्र अपि [८५७]— शुद्ध किया जानेवाला तेजस्वी सोम राजा, बड़े जल सुषत कनशर्म धारसे, मित्र और वरुणके लिए छाना जाता है ।

६ नृभिः येमापाः हृततः पिथक्षणाः देवः राजा समुद्रप्रः [ ८५८ ]— ऋत्विजों द्वारा तैयार किया जानेवाला, वर्णनके योग्य और ज्ञान बढ़ानेवाला यह दिव्य सोमरस जलोर्मों मिलाकर छाना जाता है ।

७ सुतः सोमः पयमानः क्षुच्यते, त्रिधुभः अर्काः सोमं संमघ्नते [ ८६० ]— सोमरस छनकर पानोंमें गिरता है, उस समय विशुद्ध छत्रके मंत्र सोमका वर्णन करते हैं ।

इस प्रकार सोमरस पानीमें मिलाकर छाना जाता है । छाननेके बाद उसमें दूध मिलाया जाता है और पिया जाता है ।

### सोमरसको गायके दूधमें मिलाना

इम विषयमें आगेके अंश देखें—

१ नृया गाः अमीहि [ ८५१ ]— तेजस्वी सोमरस गायके दूधमें मिलाये जाते हैं ।

२ धेनवः गायः सोमं घायशानाः [ ८६० ]— दुग्धाह गायें सोमकी इषा करती हैं । अपना दूध सोमरसमें मिलाया जाये ऐसी इच्छा करती हैं ।

३ आशिरे वृजानः पुनानः [ ८५१ ]— दूधमें मिलाकर सोम छाना जाता है ।

४ धेनवः गायः मिमग्निः, हरिः कनिक्कद् पति [ ८५१ ]— दुग्धाह गायें रंगमती हैं और हरे रंगका सोम सब्ज करने हुए कलधर्में उत्पन्न हैं ।

इस प्रकार सोमका वर्णन इस अध्यायमें है । इस वर्णनमें श्वेताभिका ओ गुण वर्णन है, उन्हें ताम्रक जपते अन्तर साधें और बढावें और देवस्य प्राप्त करके यज्ञस्वी वर्तें ।

### सुमापित

१ विश्वानि सोमगा अमि असुमं [ ८३० ]— सब सोमाय-घन-प्राप्त करनेके लिए वे आगे जाते हैं ।

२ वाजिनः, पुग दुरिक्षा विद्वन्तः, लोकस्य सु-गाः

अर्धतः तस्मा कृण्वन्तः [ ८३१ ]— यल बढ़ानेवाले और बहुतेरे पापीका नाश करनेवाले पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम गाय व घोड़े मिलें इसलिए अपने आप यत्न करते हैं ।

३ गये असुम्यं वरिवः इडां कृण्वन्तः [ ८३२ ]— वाजोंके लिए और हृषारे लिए श्रेष्ठ वन और अन्न प्राप्त करनेके लिए यत्न करते हैं ।

४ अमी अधि पयमानः राजा मेधाभिः अन्तरिक्षेण यातये ईयते [ ८३३ ]— मनुष्योंमें शुद्ध होनेवाला राजा अपनी बुद्धिसे उच्च मार्गसे जानकी कोशिश करता है ।

५ देववीतये सहः चर्वसे नः आ भर [ ८३४ ]— देवत्व प्राप्त करनेके लिए समूहों हृषारोंकी दासि हृषारे तेज बढ़ानेके लिए हमें भरदूर है ।

६ शातरियं न गवां पोयं, स्वहृदयं भर्गासि नः आ घह [ ८३५ ]— ती गायोंसे युक्त, गायका पोषण करनेवाले तथा उत्तम घोड़ोंवाले भाग्य हूयें है ।

७ नृम्यानि विश्रतं चारं स्या सुहृदस्यया ईमहे [ ८३६ ]— अनेक घनोंके धारण करनेवाले सुहृद ऐसे सुते उत्तम कर्म करके प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं ।

८ संवृक्त-धूर्णुं उक्थ्यं महामहिद्यतं मदं दातं पुरः सुसिधिं [ ८३७ ]— जितने अपने प्रभावी शत्रु मध्य किए हैं ऐसे प्रशंसनीय और अनेक महत्वके कार्य करनेवाले, आनन्द देनेवाले, शत्रुके संकटों नभरोंको तोड़नेवाले वीरने हम पन मांगते हैं ।

९ हे सुकृते! रयिः अभि अयम् स्वा राजानं अयस्यी आभरत् [ ८३८ ]— हे उत्तम कर्म करनेवाले ! धनके प्राप्त करनेवाले ! हे समाय राजाको कर्म करनेमें हुआ न माननेवाले सगुण लोभे हैं ।

१० विचर्यणिः, अमिष्टिहृत्, इष्टिर्यं हिम्याना, ज्यायः मंहित्यं आनशे [ ८३९ ]— विजय मानी और इष्टकी सिद्धि करनेवाला अपनी शक्तिको प्रयोगमें लाकर श्रेष्ठत्व प्राप्त करता है ।

११ ऊवस्य गोपं, त्रिचर्मस्वदेशे साधारणं भरत् [ ८४० ]— सत्यके संरक्षण करनेवाले, अपनी बुद्धिसे देखनेवाले, सबकी बोधमें साधारण तीरसे रहनेवाले तेज हमें प्राप्त हों ।

१२ जनस्य वरिवः ऊर्जे रुधि [ ८४१ ]— लोगोंमें मध्य वल पैदा कर ।

१३ वाजिभिः सुतानः पुनानः दितः [ ८४२ ]—

अनेक शक्तिवंति तेजःको, स्वच्छ तथा निर्दोष रहनेवाला हो हितकारक होता है ।

१४ कविः गृहपतिः युवा अग्निः समिप्यते [ ८४४ ] - ब्रह्मर्षी, घरका स्वामी, सहज, अपने रहनेवाला प्रशंसित किया जाता है, अधिक तेजस्वी किंवा आता है ।

१५ यः सपर्याति तस्य प्रापिता भव [ ८४५ ] - जो तेरी पूजा करता है, उसका पूरक हो ।

१६ यः अग्निं वा विधासति तस्मै मृदय [ ८४६ ] - जो अग्निकी आराधना करता है उसे मुक्त कर ।

१७ धृत-दत्तं मित्रं रिशादसं यक्षणे हुये, धृतायां धियं साधन्ता [ ८४७ ] - पवित्र बलते युवा मित्र और शत्रुकी दूर करनेवाले बलको ये सहायताके लिए धृताता हैं । ये धृत अर्थात् धीरिष्ठक यथायं प्राप्त करनेवाली धृष्टिकी बद्धाते हैं । पवित्र कार्य करनेवाले बल और शत्रुकी दूर करनेके सामर्थ्य जहाँ होते हैं, वहाँ कोषण करनेवाले यथायं भी रहते हैं ।

१८ अताधृषां अतस्सृष्टां अतेन मृद्वन्तं मनुं आश्राये [ ८४८ ] - साथ बहानेवाले, साथकी स्वार्थ करनेवाले सत्यते हो महान् कार्य करते हैं ।

१९ कवी नृपिजाता उरभया भयसं यलं दधते [ ८४९ ] - अनेक कार्य करनेवाले, अनेक स्थानोंमें रहनेवाले, उत्तम कार्य करनेके बलको धारण करते हैं ।

२० सन्धुः समान वर्धसा अविभ्रुपा संजग्मानः [ ८५० ] - आनमित्र और तेजस्वी और न करनेवाले औरके साथ मिल गया है ।

२१ यीड आ यज्ञरनुमिः यज्ञिभिः गुहा उक्थियाः अम्ययिन्वः [ ८५१ ] - शत्रुके बलबल हिमकी तीक्ष्णताके तेजस्वी यीरोंने शत्रुओं द्वारा धुराकर लं जाई गई और गुहामें छिपाकर रहो गई गाँवोंकी प्राप्त किया ।

२२ ता पुराकृत धिभ्यं इत् पन्ने, न मर्धतः [ ८५२ ] - उनके द्वारा पहले किए गए सब पराक्रमोंकी स्तुति होती है, न दुल नहीं देते ।

२३ ता उम्रा विघनिना ह्ययामहे [ ८५३ ] - ये बलवान् और शत्रुके नाश करनेवाले हैं, उनकी हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२४ ईदरो नः मृदातः [ ८५४ ] - इत प्रकारके इत संग्राममें हमें ये मुक्त करते हैं ।

२५ आर्यां पूषाणि ह्यग्र [ ८५५ ] - आर्योंके कल्याणके लिए तुम शत्रुओंकी मारो ।

२६ सपर्याति दासति ह्यग्रः [ ८५६ ] - तुम सज्जनोंके पावन करनेवाले हो, इसलिए यीरोंकी मारकर दूर करो ।

२७ त्रिभ्यः द्विषः अय ह्यग्रः [ ८५७ ] - तब होय करनेवाले शत्रुओंका नाश करो ।

२८ याचं वर्धय [ ८५८ ] - वाढ्यपका संवर्धन कर ।

२९ पुरेन्ध्र जनय [ ८५९ ] - बहुतेको उत्तम कर्म करनेमें समर्थ बुद्धिको उत्पन्न कर ।

३० हे नृपन् ! मृदया अहिना शयसा विभ्या वा घमाघ [ ८६० ] - हे बलवान् और ! सामर्थ्ययुक्त माहात्म्यके और बलते दू सब कार्य पूर्ण करता है ।

३१ हे शयिष्ठ मघन्न बहिन् ! गोमति ग्रमे विनामिः ऊतिभिः नः अय [ ८६१ ] - हे बलवान् पनवान् बलधारी और ! आपोंने भरी हुई गीतालामें विलक्षण प्रकारके तरङ्गको सापनीते हवावा रक्षण कर ।

३२ हे विध्वंसे मघवन् ! धृवन् विहांगमन् गोमन्तं घानं मधु ईमहे [ ८६२ ] - हे शत्रु और पनवान् इन्द्र ! तेरे वांसे शत्रुके नाश करनेवाले, सोनेके समान बलमानेवाले, गर्वके साथ रहनेवाले धन शीघ्र प्राप्त हो, ऐसी हम इच्छा करते हैं ।

३३ तरभिः युजा पुरग्म्य वाजं सिधासति [ ८६३ ] - तुल्ये पार हो जानेवाला और, विशाल और उत्तम बुद्धिके बल प्राप्त करनेकी इच्छा करता है ।

३४ द्रविणोदेयु दु-स्तुतिः नः शस्यते [ ८६४ ] - धनके दान करनेवालोंकी निन्दा करना अशुभा नहीं ।

३५ रथिः न नश्वर [ ८६५ ] - उस निन्दककी धन नहीं मिलता ।

३६ प्राचते देष्णं नुभ्यं सुदातिः [ ८६६ ] - पुन जँहोकी देने श्रेष्ठ धनको तुमसे शक्तिवाला ही प्राप्ता कर सकते हैं ।

३७ घेनवः गायः मिमान्ति [ ८६७ ] - तुमसे गायें पूष दुहनेके समय रमाती हैं ।

३८ ग्रामीः अतस्व यहीः मातरः दिधः शिन्तु मजं यन्ति [ ८७० ] - शानी रात्रिको मजो मातायें एक दिनके बच्चोंको नहलाती हैं ।

३९ रायः अस्मभ्यं विभ्यतः अय पवस्व [ ८७१ ] - धन हमें पारो ओरसे लाकर दे ।

४० याचं-यतिः विभ्वस्व ओजसः ईशानः मल-स्वते [ ८७२ ] - शत्रुकी स्वामी-विहान्-सब सामर्थ्यकी स्वाभी हो तो पूज्य होता है ।

४१ हे ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं चित्तं [ ८७५ ]- हे ज्ञानके पति- हे ज्ञानो ! तेरे पवित्र कार्यं सब जगह फैले हुए हैं ।

४२ अतस्तनूः आमः तत् न अदनुते [ ८७५ ]- जिसने तप नहीं किया ऐसे अपवध शरीरवालेको कुछ नहीं मिल सकता ।

४३ श्रुतासः इत् तत् समादाते [ ८७५ ]- जो परि-पक्व होते हैं उन्हें ही यह सुख मिल सकता है ।

४४ तपो पवित्रं दिवः पदे चित्तं [ ८७५ ]- तपुको ताप देनेवाले कीर्तिका वह पवित्र स्थान सुलोकमें फैला हुआ है ।

४५ दिवः पृष्ठं तेजसा अधिरोहन्ति [ ८७६ ]- वे [ तपुको कष्ट देनेवाले ] सुलोककी भीठ पर अपने तेजसे ढककर बैठते हैं ।

४६ उपसः पृथिनः अग्निः अरुरुचत् [ ८७७ ]- उप कासरो बाद सूप आगे होकर कमचने लगता है ।

४७ उक्षा भुवनेषु मिमेति वायवुः [ ८७७ ]- वेध पृथ्वी पर बरसत गिरता है और अन्न उत्पन्न करता है ।

४८ महिष्ठाय श्रुतायान्ते बृहते शुक्रशोचिषे प्रगायत

[ ८७८ ]- जो चण्ड, सत्यनिष्ठ और महान् तेजस्वी है उसका वर्णन कर ।

४९ मघवा नीरयत् यशः आ चंसते [ ८७९ ]- बनवान् इन्द्र पुत्रपौत्रोंके साथ होनेवाला पक्ष देता है ।

५० ते वृषणं वृषु सासहिं लोकहन्तुं मर्दं मृणीमसि [ ८८० ]- बलवर्षक मुटमें तपुओंको हरानेवाले, लोगोंका हित करनेवाले हैं उस्ताहकी हम प्रशंसा करते हैं ।

५१ ते तत् पूर्वणा अथ उमिधमः अनुस्तुचन्ति [ ८८२ ]- तेरे उस बलकी पहलेके समान आज भी स्तोता स्तुति करते हैं ।

५२ सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्धि [ ८८३ ]- उत्तम श्रेष्ठ पुत्रोंसे युक्त और दायेंसे युक्त घनते हमें पूर्ण कर ।

५३ अतस्य पिभ्युपीं चिकिपिन् मनसं धियं [ ८८४ ]- तापका पीवण करनेवाली, मनको शुद्ध करने-वाली शुभ बढि है ।

५४ अस्य पुरुणि पौंस्या सिपासन्तः घनामदे [ ८८५ ]- इसके बहुते पराक्रमके कामोंका वर्णन हम वर्णित करते हैं ।

## चतुर्थाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रांख्या	ऋषिदेवतायान्	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
८१०	१।१५।१	जमदग्निर्भगिन्ः	पवमानः सोमः	गायत्री
८११	१।१५।२	जमदग्निर्भगिन्ः	॥	॥
८१२	१।१५।३	जमदग्निर्भगिन्ः	॥	॥
८१३	१।१५।४	भृगुर्वाचिर्जमदग्निर्भगिन्ः वा	॥	॥
८१४	१।१५।५	भृगुर्वाचिर्जमदग्निर्भगिन्ः वा	॥	॥
८१५	१।१५।६	भृगुर्वाचिर्जमदग्निर्भगिन्ः वा	॥	॥
८१६	१।१६।१	वसिर्भगिन्ः	॥	॥
८१७	१।१६।२	वसिर्भगिन्ः	॥	॥
८१८	१।१६।३	वसिर्भगिन्ः	॥	॥
८१९	१।१६।४	वसिर्भगिन्ः	॥	॥
८२०	१।१६।५	वसिर्भगिन्ः	॥	॥
८२१	१।१६।६	वसिर्भगिन्ः	॥	॥
८२२	१।१६।७	वसिर्भगिन्ः	॥	॥



( ८२ )

## सामवेदका सुयोध अनुवाद

[ उत्तरार्चिक।

श्रंखसंख्या	श्रुतवेदसंख्या	श्रुति	देवता	छन्दः
८७२	९।१०१।४	ययातिर्नाहुषः	पवमानः सोमः	अनुष्टुप्
८७३	९।१०१।५	ययातिर्नाहुषः	"	"
८७४	९।१०१।६	ययातिर्नाहुषः	"	"
८७५	९।८३।१	पवित्र आगिरसः	"	अगती
८७६	९।८३।२	पवित्र आगिरसः	"	"
८७७	९।८३।३	पवित्र आगिरसः	"	"

( ६ )

८७८	८।१०३।८	सोमरिः काण्वः	अग्निः	प्रवापः ( विषमा ककुप्, सप्ता सप्तो बृहती )
८७९	८।१०३।९	सोमरिः काण्वः	"	"
८८०	८।१५।४	गोपूक्षयश्चसुस्तिनी काण्वायनी	इन्द्रः	उगिक्
८८१	८।१५।५	गोपूक्षयश्चसुस्तिनी काण्वायनी	"	"
८८२	८।१५।६	गोपूक्षयश्चसुस्तिनी काण्वायनी	"	"
८८३	८।१५।४	तिरश्चोरागिरसो	"	अनुष्टुप्
८८४	८।१५।५	तिरश्चोरागिरसो	"	"
८८५	८।१५।६	तिरश्चोरागिरसो	"	"

## अथ पंचमोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽंशः ॥ ३ ॥

[ १ ]

( १-२२ ) १ अहञ्जा वाचाः; २ अमहीपुरागिरतः; ३ मेघ्यासिधिः काशः; ४, १२ मुह्यतिरागिरतः, ५ भृगुर्वा-  
गिरतमदनिर्मायवो वा; ६ सुनंवर आग्नेयः; ७ मूलमहाः सोमः; ८, २१ गीतयो द्यूतवयः; ९, ॥ वसिष्ठो मेजा  
वर्षाणि; १० पुष्यपुत आगस्त्यः; ११ सप्तर्षयः ( भद्राक्षी वार्हस्पत्य, २ वज्रस्यो नारदः; ३ गीतमो द्यूतवयः;  
४ अत्रिर्भीमः; ५ विश्वामित्रो नाबिनः, ६ जम्बवन्निर्मायवः, ७ वसिष्ठो मेजावदतिः ) १४ देवः काश्यपाः;  
१५ पुष्यहन्ता आगिरतः; १६ अस्तिः काश्यपो वैवली वा; १७ ( १ ) वसिष्ठवसिष्ठः, १७ ( २ )  
उदरागिरतः; १८ अग्निश्चाक्षुषः; १९ प्रतर्जिनो बंधोदासिः; २० प्रदीप्तो भर्गवः; २१ वावकोऽग्निर्वाह-  
स्वरो वा, पुष्यसिध्विष्ठो सहस्रः पुनावन्मरुतो वा; २२ ॥ २-५; १०-१२, १६-१९ पवमानः  
सोमः; २१, २० मग्निः; ७ मित्रावरुणः; ८, १३-१५, २१ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नीः; २२ ॥ १, ६  
वागीः; २-५, ७-१०, १२; १६, २० नायबी; ११, १५ प्रगायः= ( विपमा गृह्णी,  
तथा सतोबृहती ); १३ विराट्; १४ ( १ ) अग्निं नयतो, १४ ( २-३ ) उपरिच्छाद्  
गृह्णी; १७ काष्ठानः प्रगायः= ( विपमा ककुप तथा सतोबृहती ); १८ उणिक्  
१९ त्रिष्टुप्; २१ अनुष्टुप् ॥

८८६ प्र स आग्निनीः पवमानं वेनवो दिव्या असुग्रन्वयसा घरीमणि ।

प्रान्वरिक्षास्साविरीस्ते असृक्ष्व ये स्वा मृजन्त्युपिषाण वैषसः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८६।४ )

८८७ उमयतः पवमानस्य उमयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति कृतवः ।

यदी पवित्रं अधि मून्मते हरिः सत्ता नि योनी कलशेषु सीदति ॥ २ ॥ ( ख. १।८६।५ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ८८६ ] हे ( पवमान ) ध्रुव होनेवाले सोम ! ( ते ) तेरी ( आग्निनीः वेनवः ) वेनवान् युवाव गायें ( दिव्याः )  
दिव्य हैं, ( पयसा ) अपने दूधसे ( घरीमणि ) कलशमें ( प्र असृग्रन् ) गृह्णती है । क्षपिषाण ) हे ऋषिके द्वारा  
निकाले गए सोमरस ! ( ये वैषसः स्वा मृजन्ति ) जो क्षत्री ऋत्विज तुम्हें छानते हैं ( ते ) वे ऋत्विज ( अन्तरिक्षात् )  
ऊपरके बर्तनसे ( स्वाविरीः असृक्ष्व ) स्थिर भारावोंसे नीचेके कलशोंमें तुम गृह्णताते हैं ॥ १ ॥

[ ८८७ ] ( पवमानस्य ध्रुवस्य सतः ) छाने जानेवाले स्थिर सोमकी ( उमयोऽथ कृतवः उमयतः परि यन्ति )  
कलमें योनीं ॥ तरफते फेलती हैं, ( यदि ) जब ( पवित्रे हरिः अधिमून्मते ) छलनीसे हरे रंगका सोम छाना जाता  
है, उस समय ( सत्ता ) स्थिर रहनेकी इच्छा करनेवाला सोम ( योनी कलशेषु निषीदति ) कलशकी बर्तनसे  
जाकर रहता है ॥ २ ॥

८८८ विश्वा धामानि विश्वस्य ऋग्वसः प्रमोष्टे सतः परि यन्ति कैतवः ।

व्यानशी पयसे सोम धमेणा पतिविश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ३ ॥ १ (वी) ॥

[ पा० ३५ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।८६।५ )

८८९ पवमानो अजीजनदिविश्वं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं वृद्धेत् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९१।१६ )

८९० पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छ्रुतः । वि वारमव्यमर्षति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९१।१८ )

८९१ पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति युमान् । ज्योतिर्वैश्वस्वरं रेशे ॥ ३ ॥ २ (पा) ॥

[ पा० २० । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।९१।१७ )

८९२ प्र यद्वावो न भूर्णयस्वेपा अयासो मक्रमुः । मन्तः कृष्णामप स्वचम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९१।१ )

८९३ सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराटयम् । साधाम दस्युमम्रतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९१।२ )

८९४ मृषे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।९१।३ )

८९५ आ पवस्य महामिप गोमदिन्द्रो हिरण्यवत् । अश्ववरसोम वीरवत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।९१।४ )

[ ८८८ ] ( विश्वस्यः ) तब जगह देखनेवाले सोम ! ( प्रमोष्टे सतः ते ) प्रभुत्वकी इच्छा करनेवाले तेरो ( ऋग्वसः कैतवः ) बड़ी बड़ी किरणें ( विश्वा धामानि परि यन्ति ) सब जगह पहुँचती हैं, तब हे ( सोम ) सोम ! ( व्यानशी ) व्यापक स्वभावका तू ( धमेणा पयसे ) अपने स्वभाव धर्मे से युद्ध होता है, और ( विश्वस्य भुवनस्य पतिः ) सब भुवनोंका स्वामी तू ( राजसि ) समकता है ॥ ३ ॥

[ ८८९ ] ( पवमानः ) बहिय किया जानेवाला सोम ( युदुत् वैश्वानरं ज्योतिः ) महान् वैश्वानर नामके तेजको ( दिवः चिदं तन्यतु न ) [ शुक्रोक्तं विसखण तेजस्वी विजलीके समान ( अर्जजिवत् ) उत्पन्न करता है, वह समकता है ॥ १ ॥

[ ८९० ] हे ( राजन् पवमान ) तेजस्वी युद्ध होनेवाले सोम ! ( तव मद्रः ) तेरा जसाह बढानेवाला तपा ( अ-दुच्छ्रुत रसः ) रासकोंके न मिलनेवाला रस ( अव्यं पारं वि अवर्षति ) बकरीके बालोंको छलनासे नीचे बर्तने पड़ता है ॥ २ ॥

[ ८९१ ] हे सोम ! ( पवमानस्य ते ) युद्ध किए जानेवाले ऐसे तेरा ( दक्षः युमान् रसः ) बलवान् और तेजस्वी रस ( विराजति ) चमकता है ( विश्वं स्वः ज्योतिः दक्षो ) सयं व्यापक तेरो ज्योतिः यहाँ बीसती है ॥ ३ ॥

[ ८९२ ] ( मायः ॥ ) मायोंके समान ( भूर्णयः ) शीघ्र चलनेवाला ( त्येषाः अयासः ) तेजस्वी गतिमान् ( यदुत् ) ओ सोम ( कृष्णं पयचं अपाम्रतः ) पानी चमकी [ छाल ] को दूर करके ( प्र अक्रमुः ) अंतर्गम गिरता है, उसकी प्रशंसा होती है ॥ १ ॥

[ ८९३ ] ( सु-वितस्य ) सुखवादी सोमकी ( दुराटयं अति सेतुं ) दुष्प्रिय बन्धनको दूर करनेके लिए हम ( पनामहे ) आर्पणा करते हैं, ( अ-म्रत दस्युं साधाम ) सकर्म न करनेवाले दस्युको हथ हरायें ॥ २ ॥

[ ८९४ ] ( वृष्टेः स्वनः द्य ) वृष्टिके शब्दके समान ( पवमानस्य ) युद्ध किए जानेवाले सोमका शब्द ( श्रुयते ) सुना जाता है । उस समय ( शुष्मिणः विद्युतः ) बलशाली सोमकी किरणें ( दिवि चरन्ति ) आकाशमें संचार करती हैं ॥ ३ ॥

[ ८९५ ] हे ( इन्द्रो सोम ) रसस्य सोम ! तू ( महीं हयं ) बहुतसा मय ( गोमत् ) पायोंके साथ ( हिरण्यवत् ) सोने के साथ ( अद्राजत् ) पीछेके साथ और ( वीरवत् ) युवकीनैके साथ हूँ ( आ पवस्य ) दे ॥ ४ ॥

८९६ पवस्व विश्वर्चये आ मही रोदसी वृण । उवाः सूर्यो न रदिमभिः ॥ ५ ॥ ( ऋ ९।४।१५ )

८९७ परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपथ ॥ ६ ॥ ३ ( भी ) ॥  
[ धा० १९ । उ० ४ । स० ४ ] ( ऋ ९।४।१६ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

८९८ आशुरप्य वृहन्मते परि मियेण धाम्ना । यत्रा देवा इति भुवन ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१९।१ )

८९९ परिष्कृष्यनिष्कृते जनाय यातयन्निपः । वृष्टि दियः शरि सव ॥ २ ॥ ( ऋ ९।१९।२ )

९०० अयस्स यो दिवस्वारे रघुयामा पयित्र आ । सिन्धोरुर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥ ( ऋ ९।१९।३ )

९०१ सुत एति पयित्र आ त्विपि दधान औजसा । निचक्षानो विरोचयन् ॥ ४ ॥ ( ऋ ९।१९।४ )

९०२ आचिवास्तपरायता अथो अर्वायतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥ ( ऋ ९।१९।५ )

९०३ समीचीना अनूपत हरिः हिन्त्यन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥ ४ ( जी ) ॥  
[ धा० ३२ । उ० ३ । स० ४ ] ( ऋ ९।१९।६ )

[ ८९६ ] हे ( विश्व-वर्चये ) सबको देखनेवाले तोम ! ( पवस्व ) वृद्ध हो, और अपने इस रससे ( मही रोदसी ) इन नहान् धूलिके और धूमिलोके ( सूर्यः रदिमभिः उवाः न ) जित प्रकार सूर्य अपने किरणोंसे प्रकाशमें आर सत्य विश्वको भर देता है उसी प्रकार ( आ वृण ) भर दे ॥ ५ ॥

[ ८९७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( विष्टप रसा इव ) इस धूलिकेको जैसे पानी घेरे हुए है, उसी प्रकार अपने ( शर्मयन्त्या धारया ) सुखवाक्य वाराते ( न-विश्वतः परि सर ) हमें वारों मोरसे घेर ले ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ८९८ ] हे ( वृहन्मते ) वृद्धिमान् तोम ! ( मियेण धाम्ना ) अपने मित्र वारीरसे-वाराते ( आशु परि अर्प ) शीघ्र आ, ( यत्र देवाः ) जहाँ देव रहते हैं ( इति भुवन ) ऐसा कहते हैं, उस यज्ञमें आ ॥ १ ॥

[ ८९९ ] ( अनिष्टृतं परिष्कृष्यन् ) सत्काररहित स्थानको सत्कारमुक्त करते हुए ( जनाय इपः यातयन् ) लोगोंके साथ देनेके लिए ( दियः वृष्टि परिस्त्रव ) धूलिकेमें वर्षा कर ॥ २ ॥

[ ९०० ] ( यः दिवः परि रघुयामा ) जो धूलिकेके ऊपर घीरे घीरे चलता है, ( सः अयं ) वह यह तोम ( पयित्रे आ ) छलनीसे छाना जाता है, और ( सिन्धोः ऊर्मा वि अक्षरत् ) पानीके लहरमें टपकता है ॥ ३ ॥

[ ९०१ ] ( सुतः त्विपि दधानः ) सोमरस तेजस्वितर वारण करके ( निचक्षानो विरोचयन् ) सबका निरीक्षण करके सबको प्रकाशमान करते हुए ( औजसा ) वेगसे ( पयित्रे आ एति ) छलनीसे शीघ्र छाना जाता है ॥ ४ ॥

[ ९०२ ] ( सुत ) रस निकालनेके बाद ( परावताः अथो अर्वायत ) दूरसे और पाससे ( अर यिवास्वन् ) गूढ़ करके ( इन्द्राय ) इन्द्रको ( मधु ) यह मधुर रस ( सिच्यते ) दिया जाता है ॥ ५ ॥

[ ९०३ ] ( समीचीनाः ) स्तुति करनेवाले एक जगह संगठित होकर ( अनूपत ) स्तुति करते हैं, ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रको पीनेको देनेके लिए ( हरि इन्दुं ) हरे रसके सोमको ( अद्रिभिः हिन्त्यन्ति ) बल्यरोंसे कूटते हैं ॥ ६ ॥



९०४ हिन्वन्ति सरमुस्रयः स्वसारो जामयस्सर्वतिम् । महामिन्दु महीयुवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१ )

९०५ पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वघ्नया विश्व ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।२ )

९०६ आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इपे पवस्य संपतम् ॥ ३ ॥ ५ ( इ ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६५।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

९०७ जनस्य गोपा अन्ननिष्ठ जागृविरभिः सुदक्षः सुविताय नम्यसे ।

घृतप्रणीको घृहता दिविस्पृशा घुमद्भि सति सरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।१ )

९०८ स्वाममे अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दं न्निभ्रियार्णं वनेवने ।

स जायसे मध्यमानः सहो महश्चामाहुः सहसस्पृशमङ्गिरः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।६ )

[ ९०४ ] ( उरुयः जामयः स्वसारः ) सग जगह जानेवालो, आपसमें प्रेमसे रहनेवालो बहिनै-अंगुलियां ( मही-युवः ) महान् कार्य-सोमरस निकालनेका कार्य करतो हूं, और ( सुर्त पति ) अष्ट स्वामी देते ( महर्त इरुर्तु ) महान् सोमरसकी ( हिन्वन्ति ) निकालती हूं, सोमरसको निचोड़ती हूं ॥ १ ॥

[ ९०५ ] हे ( रुचा रुचा ) तेजसे ( देव पवमान ) चमकनेवाले तथा शुद्ध होनेवाले सोम ! ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंकी देनके लिए विभोवा गया तू ( विश्वा यस्मि आ विश्वा ) सब मन हर्ष दे, सब वनोंमें तू प्रविष्ट होकर रह ॥ २ ॥

[ ९०६ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( सुष्टुतिं वृष्टिं ) उत्तम स्तुतिके योग्य वर्षाकी ( देवेभ्यः दुवः ) देवतामेंसे प्राप्त होनेवाले आसीनवाके समान ( आ पवस्य ) हमारे पास पहुँचा, ( इपे संपतं ) अन्न प्राप्ता हो इसके लिए वर्षा कर ॥ ५ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ९०७ ] ( जनस्य गोपा ) लोगोंका रक्षक ( जागृति सुदक्षः ) जागृत और उत्तम कर्ममें कुशल ( अग्निः ) अग्नि ( नम्यसे सुविताय यजनिष्ठ ) नम्र प्रकरसे लोगोंका बत्थाप हो इसके लिए प्रणत हुआ है, उसके बाद ( घृत-प्रणीकः ) घृतसे प्रणालि किया गया ( घृहता दिविस्पृशा ) महान् लोकोकको स्पर्श करनेवाले तेजसे युक्त ( शुचिः ) शुद्धता करनेवाला अग्नि ( सरतेभ्यः ) सग करनेवाले लोगोंके लिए ( घुमत् विभाति ) प्रकाशमान होकर चमकता है ॥ १ ॥

[ ९०८ ] हे ( अङ्गरे ) अग्निदेव ! ( अंगिरसः ) अंगिरस ऋषियोंने ( गुहा-हितं ) गुहामें रले हुए ( घने घने निभ्रियार्णं ) प्रत्येक नालके आश्रयसे रहनेवाले ( त्वां अन्वविन्दन् ) तुझ अग्निको प्राप्त किया । ( महत् सद्गः सः ) महान् चलते पुनत तू अग्नि ( मध्यमानः जायसे ) संयम करने के वेदा किया जाता है । हे ( अंगिरः ) अंगोंने रहनेवाले अग्ने ! ( त्वां सहसः पुन आहुः ) तुमने सामर्थ्यका पुन कहते हैं ॥ २ ॥

९०९ यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।

इन्द्रेण देवैः सरथस्थं पहिपि सीदन्ति होता यज्जथाय मुकतुः ॥ ३ ॥ ६ ( वे ) ॥

[ भा० ३० । उ० नास्ति । स्य० ७ ] ( ऋ. ५।१।१२ )

९१० अयं वा मिश्रावरुणा सुतः सोमं क्रतानृषा । ममेदिह अतः पृथ्वम् ॥ १ ॥ ( ऋ १४१।४ )

१११ राजानावनभिद्रव्य ध्रुवे सदस्यचमे । सहस्रस्युण आश्रिते ॥ २ ॥ ( अ. २।४।५ )

९१२ तां समाजां घृतासुती आदित्या दानुरपती । सचेत् अनवह्वरम् ॥३॥ ७ ( पि ) ॥

[ पा० १५ । उ० १ । सू० ३ ] ( अ २।४।६ )

९१३ इन्द्रो दधीचीं अस्त्रमिवैवाप्यप्रसिक्तुः । जघान नवरीर्नव ॥ १ ॥ (क. १८४।१३)

९१४ इन्द्रसमस्तस्य यन्त्रिः पर्वतेश्वरपथितम् । रद्विदन्त्यर्पणायति ॥ २ ॥ ( ऋ १८४।१४ )

११५ अम्राह गौरसन्वत नाम स्वप्नरपीन्यम् । इत्या चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ ८ (डी) ॥

[ ਥਾ० ੧੨ | ਤੇ० ੨ | ਲੜ ੪ ] (ਸ਼ੁ ੧੮੪/੧੯)

[ ९०९ ] ( तस्य ) श्रावितो लोभ ( यद्यस्य केतुः ) यत्के ज्वनः, ( पुणेति ) आगे राजे गप ( दैवैः सारथं ) वैदिके ताप एक लक्ष्मण बनेनेवाले ( प्रथमं अग्निं ) मुख्य अग्निको ( नि-सप्तस्थे ) तीन बगह ( सं हृष्यते ) दमनो तरह प्रवर्तित करते हैं, उसके धाव ( सुक्रतुः शोका सः ) उत्तम कर्म करनेवाला तथा वैदिके लिए हुवन, करनेवाला वह अग्नि ( धर्मिणि ) अपने स्थानमें ( यज्ञधाय ) यज्ञ करनेके लिए ( निधीयतु ) बैठता है ॥ १ ॥

[ ११० ] है (सुतापृष्ठा मित्रावरुणा) बतलाने बढानेवाले मित्र और वरुण । (धा) तुम्हारे लिए (अर्थ स्तौम सुतः) यह स्तौम निकालकर और धानकर रखा गया है, इसलिये (इह) यहाँ इस यज्ञमें (मम इह हव्यं धृतं) मेरी ही प्रायश्चा धनी ॥ १ ॥

【 १११ 】 हे (राजातों अनभिदुहा) तेजस्वी और श्रेष्ठ न करनेवाले विज और वरुण ! (ध्रुवे उत्तम सहस्र-  
रूपों सदासि) रिपु, जेठ और हजार सम्भोषिते इत यश मण्डपमें (आशासे) आकर बने ॥ १ ॥

[ ११२ ] ( सप्ताजा ) सप्ताह ( घृतासुती ) घृतकृषी अथवा वेवले ( आदित्या ) अवतारके पुत्र ( दानुज पति ) यन्त्रके स्वामी ऐसे ( ता ) के विजय और वध ( मनश्चरं ) कुदृष्टतासे रहित यज्ञमानके ( सचेते ) सहायता करते हैं ॥ ३ ॥

[ ९१३ ] (अ-प्रति-प्लुतः) जितना कोई विरोधी नहीं ऐसे (इन्द्र-) इराने (दधीच-अस्यभिः) शोषितो  
हृषीकेशे (नयती। नय) निग्यानके (पञ्चाणि जघान) घेरनेकाले शयमोंको मार ॥ १ ॥

[११४] (पर्वतेषु भगप्रसृतं) पर्वतोंमें रसा हुआ (अथवस यत् सारः) पोष्टका जो सार है, उसे (इच्छन्) प्राप्त करनेकी इच्छने इच्छा की, उस इच्छने (शर्यणाकृतितत्त्वं विद्त्) शर्यणाकृती कृतोद्धारके पास उसे प्राप्त किया और उससे उत्तरोंका सत्कार किया ॥ २ ॥

[ ९१५ ] ( अत्राह ) यहाँ ( गो ) खन्दमलः गृहे समन करनेवाले चन्द्रमाले बण्डलमें ( स्थण्डः अर्पण्यं माम् ) पूर्णकी पुष्ट किरणें समीपे समन प्रकाशित होती हैं ( इत्या खमन्दत ) ऐसा भावना जाता है ॥ १ ॥

९१६ इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्ण्यस्तुतिः । अत्राद्वाष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।९।१ )

९१७ मृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनवै गिरः । ईशाना पिप्यतं धियाः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।९।२ )

९१८ मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिश्चस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥ ९ ( वा ) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।९।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

९१९ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पौतये हरे । मरुद्भूयो वायवे मदः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२५।१ )

९२० स देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि म्रियः । पवमानो अदाम्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२५।२ )

९२१ पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिऋद् । धमेणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥ १० ( ख ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।२५।३ )

९२२ तवाहसोम राशे सख्ये इन्दो दिवेदिवे ।

पुङ्गवे यत्रो नि चरन्ति मामव परिधीश्रति तांश्चिह्नि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१६ )

[ ९१६ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! ( इयं वा पूर्ण्य-स्तुतिः ) यह तुम दोनोंकी अपूर्व स्तुति ( मन्मन्य वामस्य मन्मनः ) इत कुत्तर और मननम्य विधानसे ( अत्राद्वाष्टिः इयं ) जिस प्रकार वेदसे वर्ण होती है, उसी प्रकार ( अजनि ) जन्म न हुआ है ॥ १ ॥

[ ९१७ ] हे ईशानो ! ( जरितुः हव्यं मृणुतं ) त्वोत्तरी शर्पणा तुम मुनो, ( गिरः घनतं ) घनकी स्तुति मुनो ( ईशाना ) शासन करनेवाले तुम दोनों ( धियाः पिप्यतं ) उसके कर्मोंका फल दो ॥ २ ॥

[ ९१८ ] ( नरा इन्द्राग्नी ) हे नेता स्वरूप इन्द्र और अग्ने ! ( नः ) हमें ( पापत्वाय मा रीरधतं ) पापसे कामोंमें न लगाओ, ( माभिश्चस्तये मा ) हिंसाके कामोंमें हमें युक्त मत करो, ( निदे न मा ) और निन्दाने लिए भी हमें मत लगाओ ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ९१९ ] हे ( हरे ) हरे रणके लोग ! ( दक्ष-साधनः मदः ) बल व उत्साह बढ़ानेवाला तू ( देवेभ्यः मरुद्भूय ) देवों और मरुतोंके तथा ( वायवे ) वायुके ( पौतये घवस्य ) पीनेके लिए शक्ति हो ॥ १ ॥

[ ९२० ] ( वृषा पविः ) बलवर्धक शान्ति ( योनिं अवि ) अपने स्थान पर ( पवमान म्रियः ) शूद्र होनेके कारण म्रिय ( अदाम्य ) न बढ़ाया जानेवाला सोम ( देवैः संशोभते ) देवोंके साथ उत्तम प्रकारसे शोभित होता है ॥ २ ॥

[ ९२१ ] हे ( पवमान ) शूद्र होनेवाले लोग ! ( धिया हितः ) विचार कर अच्छी तरह रक्षा पाया तू ( कनिऋद् ) शम्भु करते हुए ( योनिं अभि आरुहः ) कलशोंमें चढ़ता है, ( धमेणा वायुं आरुहः ) अपने गुणोंसे वायुको प्राप्त कर ॥ ३ ॥

[ ९२२ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रताके लिए ( अहं दिवे दिवे राशे ) मैं प्रतिदिन चल करता हूँ, हे ( यत्रो ) कान्तिमान् सोम ! ( पुङ्गवे मां ) बहुतसे रातों में ( नि अय चरन्ति ) कष्ट देते हैं ( तान् परिधीन् अति शिह्नि ) उन वायुवर्णोंके मध्य कर ॥ १ ॥

९२३ त्वाहं नक्तमृत सोम ते दिवा दुहानो वञ ऊर्ध्वनि ।

घृणा तपन्तमति ययै परः शकुना इव पक्षिम्

॥ २ ॥ ११ ( ति ) ॥

[ धा० १४। उ० १। स्त० २ ] ( ऋ. ९।१०७।२० )

९२४ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृषो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विभ्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

( ऋ. ९।४०।१ )

९२५ आ योनिमरुणो रुद्रमदिन्द्रो घृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।४०।२ )

९२६ नू नो रायि महाविन्दोऽस्मभ्यं सोम विषयः । आपवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ १२ ( वा ) ॥

[ धा० १२। उ० १२। स्त० २ ] ( ऋ. ९।४०।३ )

॥ इति वसुधे. ऋ. ४ ॥

[ ५ ]

९२७ पिषा सोमभिन्द्र मदेन्तु त्वा पं ते सुषाव हर्षसाद्रिः । सीतुर्वाहुभ्यां सुपतो नाभी ॥ १ ॥

( ऋ. ७।९।१ )

९२८ वरुते मदी युज्यश्वाकरसि वन वृत्राणि हर्षश्च हृत्सि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममसु ॥ २ ॥

( ऋ. ७।९।२ )

[ ९२३ ] हे ( यज्ञो ) भूरे रंगके सोम ! ( उत सर्क उत दिवा ) रात भयवा दिन ( तप ऊर्ध्वनि अहं ) तेरे पास मैं रहा, ( ते घृणा ) अपने तेजसे ( तपन्तं ) घमकनेवाले सुते तथा ( परे सूर्य ) इत घमकनेवाले पूर्वको ( शकुनाः इव अति पक्षिम् ) पक्षीके समान हृष देखते हैं ॥ १ ॥

[ ९२४ ] ( पुनानः विचर्षणिः ) पक्षिज होनेवाला गिरीशक सोम ( विश्वा मृषः अक्रमीत् ) सब शत्रुओंको हराता है, वन ( धिभ्रं ) शानी सोमको शक्तिज ( धीतिभिः शुम्भन्ति ) स्तुतिपत्रोंसे सुजीवित करते हैं ॥ १ ॥

[ ९२५ ] ( अरुणः ) अरुण रश्मि का सोम ( योनि आरुहत् ) कल्पमें पुता है, नाभमें ( घृषा इन्द्रः ) बलवान् इन्द्र ( सुतं गन्तुं ) उत सोमरसके पास जाता है, और ( ध्रुवे सदसि ) भिन्नर स्थानमें ( सीदतु ) रहता है ॥ २ ॥

[ ९२६ ] ( इन्दो सोम ) हे सोमरस ! ( अस्मभ्यं ) हमें ( नू ) क्षीम ही ( महा सहस्रिणं रायि ) बहुत और अनेकों प्रकारके वन ( विषय आ पवस्व ) चारों ओरसे काकर दे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः :

[ ९२७ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( सोमे पिषा ) सोमरस पी, ( त्वा मदेन्तु ) तुझे ये रस आनन्द देवें, हे ( हर्षसाद्रिः ) मोडे पातनेवाले इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( सीतुः बाहुभ्यां ) सोमरस निकालनेवाले भुजाओं द्वारा ( सु-पतोः आद्रिः ) पक्षीका हुआ पक्षर ( पं सुषाव ) जिस रातको निकालता है, वह रस ( नाभी न ) मोड़ेके समान सुते आनन्द देवे ॥ १ ॥

[ ९२८ ] हे ( हर्षय इन्द्रः ) इन्द्र गायक मोडे पातमें रसनेवाले इन्द्र ! ( ते युज्यः ) तेरे पोष ( चारः मरुः ) उत्तम आनन्द देनेवाला ( यः अस्ति ) जो सोम है ( येन वृत्राणि ) जिसके जराहके गू बुझोंको ( हंसि ) मारता है, हे ( प्रभूवसो ) बहुत बलवान् ! ( सः त्वा ममसु ) वह सोम तुझे आनन्द देवे ॥ २ ॥

१२ [ साम हिन्दी भा. २ ]

९२९ बोधा सु मे मधवन्वाचमेयां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

इमा मध्व सधमादे जुषस्व

॥ ३ ॥ १३ (चा) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । स्त० २ ] ( अ. ७।२।१ )

९३० विश्वाः पृतना अभिभूतं नरः सज्जस्तवक्षुस्त्रिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

क्रत्व वर रथमन्यामुरांमुताग्रमोजिष्ठं तरसे तरस्विनम्

॥ १ ॥ ( अ. ८।९।१० )

९३१ नमि नमन्ति वससा मेघे विप्रा अभिस्वरे ।

सुवोतयो वो अद्वहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्षमिः

॥ २ ॥ ( अ. ८।९।११ )

९३२ सध्व रेमासा अस्वरभिन्द्रं सोमस्य पीतये ।

स्वः पतिपदो वृधे घृतप्रतो ह्योजसा समूर्तिमः

॥ ३ ॥ १४ (वी) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । स्त० ४ ] ( अ. ८।९।११ )

९३३ यो राजा चर्षणीनां याता रथमिराभिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृधहा गृधे

॥ १ ॥ ( अ. ८।१०।१ )

[ ९२९ ] हे (मध्वम्) मधवान् इन्द्र ! (यां प्रशस्तिं वाचं) मिल स्तुतिरूप वाचीने (यसिष्ठः ते अर्चति) पसिष्ठ सेती अर्चना करता है, (इमां सु आ बोध) उस स्तुतिको तू उत्तम रीतिसे समझकर स्वीकार कर और (इमां ग्राह्य) इस हालकी अपवा इस अग्रकी (सधमादे जुषस्व) यज्ञशालामें सेवन कर ॥ ३ ॥

[ ९३० ] (विश्वाः पृतनाः) सब संभ्रानमें शत्रुको (अभिभूतं इन्द्रं) पराजित करनेवाले इन्द्रकी (नरः सज्जः सज्जः) सब लोग मिलकर स्तुति करते हैं । (राजसे अजनुः) इन्द्रका तेन बढानेके लिए स्तोत्रागण डरका सामर्थ्य बढाते हैं (क्रत्व वरे रथेमनि) अपने कर्तृत्वसे थोछ स्थानोंमें रहनेवाले (आमुर्ति) शत्रुको मारनेवाले (उग्रं ओजिष्ठं) और ब म्हा बलिष्ठ (तरसे तरस्विनं) थोछ और क्षीप्रतासे सब काम करनेवाले इन्द्रकी सब स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ ९३१ ] (विप्राः अभि स्वे) ऋषियन कहान् स्वरसे स्तोत्र कहते हैं (मेघे मेमि वससा नमन्ति) शक्तिमान् व्यापक इन्द्रकी आगसे वेष्टकर हो पहले मयस्वर करते हैं । हे स्तुति करनेवालो ! (सु-वीतय अ-द्वहः) उत्तम तेनस्वी और रोह न करनेवाले (यः) तुम (अपि) ओ (तरस्विनः) क्षीप्रतासे (कर्णे) इन्द्रके कानोंतक पहुँचे ऐसे स्वरसे (अमृक्षमिः सं) ऋचाजिके द्वारा उसकी स्तुति करो ॥ २ ॥

[ ९३२ ] (रेमासाः) स्तुति करनेवाले ऋषियन (सोमस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिए (इन्द्रं उ सम-स्वाम्) इन्द्रकी ही उत्तम रीतिसे मिलकर स्तुति करते हैं (यत्) जब (स्वः पतिः) स्वर्गका पातक इन्द्र (वृधे) यज्ञमानकी महान् करनेकी इच्छा करता है, उस समय (घृत-प्रतो) घर्तोंका आचरण करनेवाला इन्द्र (ओजसा ऊतिमिः सं) अपने सामर्थ्यसे ब अपने संरक्षणके साधनेसे (सं) युक्त होता है ॥ ३ ॥

[ ९३३ ] (यः चर्षणीनां याता) ओ मनुष्योंका राजा है, (रथेमिः याता) धीरे रथसे जानेवाला है, (अभि-गुः) ओ याने जानेवाला है, (विश्वासां पृतनानां तरुता) जो सब शत्रुओंसे भक्तको पाद करनेवाला है, (यः वृधहा) ओ शत्रुका नाश करनेवाला है, उस (ज्येष्ठं गृधे) थोछ इन्द्रकी से स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

९३४ इन्द्रं ते शुग्मं पुष्टहन्मन् यस्य द्विवा विषवैरि ।

हस्तेन यजः प्रति धायि दध्मतो महां देवां न धर्षः

॥ २ ॥ १५ (चि) ॥

[ धा० १७ । उ० १ । ख० १ ] ( ऋ ८१००२ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

९३५ परि प्रिया दिवः कविर्दयाशसि नप्योहितः । स्वानेयांसि कविकृतुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९१९१ )

९३६ स सुनुमोहरा शुचिजातो जाते अराचयत् । महान्महो अतावुषा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९१९३ )

९३७ प्रम क्षपाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्षं पानिष्टये ॥ ३ ॥ १६ ( रि ) ॥

[ धा० १ । उ० नास्ति । ख० १ ] ( ऋ ९१९१२ )

९३८ त्वं ऋ३२६ दैव्यं पवमानं जनिमानि पुमत्तमम् । अमृतत्वाय चोपयत् ॥ १ ॥

( ऋ ९१०८१३ )

९३९ येना नवग्वा दृश्यदुपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।

देवानां सुप्ते अमृतस्य चारुणो येन धवाश्स्याश्व

॥ २ ॥ १७ ( पौ ) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । ख० नास्ति ] ( ऋ ९१०८१४ )

[ ९३४ ] ( पुष्टहन्मन् ) है अनेक हाथकी मारनेवाले इन्द्रके उपासक । ( अथस्ते ते इन्द्रं शुग्मं ) अपने सरलरूपके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ( यस्य विषवैरि ) जिसकी संरक्षण शक्तियें ( द्विवा ) दोनों प्रकारकी शक्तिमत्ता है, विनाश और रक्षा करनेकी दोनों प्रकारकी शक्तियें हैं, वह इन्द्र ( द्यौमः महान् यजः ) सर्वोत्तम और अहाय्य यज्ञकी ( देवः स्वर्गः स ) ऐश्वर्यी शक्ति समान ( हस्तेन प्रति धायि ) हाथमें धारण करता है ॥ २ ॥

॥ यहां पाँचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पष्ठः खण्डः ।

[ ९३५ ] ( कविः ) शानी ( कविकृतुः ) बुद्धिके कर्म करनेवाला ( नप्योः हितः ) पहले पर रखा गया, ( दिवः परिप्रिया ययांसि ) दुशोकसे अति शिव पक्षीकृष ययरोसि निकाला गया सोबरस ( स्वांसिः ) रस निकालनेवाले कण्ठधुंगीसि ( परि धायि ) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

[ ९३६ ] ( शुचि जातः ) शुद्ध हुआ हुआ ( महान् सः ) महान् वह सोम वायव ( सुनुः ) पुत्र ( महो अतावः ) बुढ़ा जाते मातरा ) महान् यतकी प्रकाशित करने-बडावनेवाले-प्रसिद्ध पाता लू और पुष्पोकी ( अरोचयत् ) प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

[ ९३७ ] है सोम ! ( प्र म क्षपाय ) तेरे निवासके लिए यत्न करनेवाले ( अद्रुहः ) क्रोध न करनेवाले और ( पन्यसे जनाय ) स्तुति करनेवाले अनुप्यके लिए ( थीति ) मलमलके ( जुष्टः ) उपयोगमें लाकर यज्ञा लू ( पानिष्टये सर्वं ) स्तुतिकी प्राप्त हो ॥ ३ ॥

[ ९३८ ] ( दैव्यं पवमानं ) दिव्य सोम । ( पुमत्तमम् त्वं हि ) वायव्य तेजस्वी ऐसा लू ( अद्रुः ) शीघ्र ( चोपयन् ) चोपयना करके ( जनिमानि ) अपने दिव्य जन्मकी सत्यमें रसकर ( अमृतत्वाय ) अमरपनकी प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ ९३९ ] ( नव-ग्वा दुश्यद् ) नौ वायविकी चोपय करनेवाला दुश्यद् श्ववि ( येन अपोर्णुते ) जिस सोमके द्वारा यतका द्वार सोमता है, ( विप्रासः येन आपिरे ) यज्ञ करनेवाले विश्वोने जिस सोमकी सहायतासे पायें प्राप्त कीं, ( देवानां सुप्ते ) देवोंके यतसे सुप्त प्राप्त होनेपर ( चारुणः अमृतस्य धवांसि ) श्रेष्ठ अमृतकी सहायतासे भिन्ननेवाले अमृतकी ( येन आशत ) जिस सोमकी सहायतासे अमृतान प्राप्त करते हैं, वह लू सोम देवोंकी प्राप्त हो ॥ २ ॥

९४० सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्कदत् ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।१०६।१० )

९४१ धौमिमृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्त्वमत्पविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०६।११ )

९४२ असजि कलशां अभि मीद्वान्त्सप्तिनं वाजयुः ।  
पुनानो वाचं जनयन्नसिप्यदत् ॥ ३ ॥ १८ ( फा ) ॥  
[ धा० १०।उ० २।स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०६।१२ )

९४३ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवा जनिता पुथिण्याः ।  
जनिताभ्रेजनिता स्येस्य जनितान्द्रस्य जनिता उ विष्णाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०६।१३ )

९४४ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामुपविशिष्याणां महिषो भूमाणाम् ।  
इयोनो ब्रूमाणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेमन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०६।१४ )

[ ९४० ] ( पुनानः सोमः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( ऊर्मिणा ) अपनी धारसे ( अर्धं वारं विधावति ) झेड़के बालोंकी छलनीसे मोचि पड़ता है । ( पवमानः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( वाचः अग्रे कनिक्कदत् ) स्तोन पाठके बाद शब्द करते हुए नीचेके बर्तनमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ९४१ ] ( वाजिनं ) बलवान् ( वने क्रीडन्तं ) जलमें मिलाया जानेवाला, ( अति अर्द्धि ) छलनीसे छाना जानेवाला सोम ( धौमिः मृज्जित ) स्तोत्रोंकी सहायतासे श्रुतियों द्वारा शुद्ध किया जाता है ( त्रिपृष्ठं ) सोम बर्तनोंमें रहनेवाले सोमरसकी ( मतयः अभि समस्वरन् ) स्तोन प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

[ ९४२ ] ( वाजयुः ) अग्रेसे युक्त होनेवाला ( मीद्वान् ) और जलमें मिलायेवाला सोम ( कलशान् अभि असजि ) कलशमें गिरता है । ( सप्तिनं ) सोम जैसे सप्तममें जाता है, उसी प्रकार ( पुनानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( वाचं जनयन् ) शब्द करते हुए ( असिप्यदत् ) बर्तनमें छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ९४३ ] ( मतीनां जनिता ) स्तुतियोंकी उत्पन्न करनेवाला ( दिवा जनिता ) धूलोककी प्रकट करनेवाला ( पुथिण्याः जनिता ) बुधिवीका जनक ( अग्रे जनिता ) अग्निका जनक ( स्येस्य जनिता ) सूर्यका जनक ( इन्द्रस्य जनिता ) इन्द्र और विष्णुका जनक ( सोमः पवते ) सोम शुद्ध किया जाता है ॥ १ ॥

इन देवोंकी सोम यज्ञसालामें उभरा है, इसलिए यह इनको उत्पन्न करता है ऐसा आत्मकारिक वर्णन इस सत्रमें किया है । सोमके होने पर ही ये देव यज्ञसालामें जाते हैं ।

[ ९४४ ] ( देवानां प्रह्ला ) देवोंमें अहम् ( कवीनां पदवीः ) कवियोंमें सम्बोधकी भोजना करनेवाला ( विमाणां कपिः ) विमोंमें ऋषि ( ब्रूमाणां महिषः ) वरुणोंमें भैरव ( भूमाणां इयेनः ) पत्थियोंमें माय ( घनानां स्वधितिः ) हितकोंमें घात्ररूप यह सोमरस ( रेमन् ) शब्द करता हुआ ( पवित्रं अति धाति ) छलनीसे कलशमें छाना जाता है ॥ २ ॥

९४५ प्राचीविपदाय ऊर्मि न सिन्धुगिरि स्तोमान्पवमानो मनीषाः ।

अन्तः पश्यन्तुलनेमावराण्या विष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ३ ॥ १९ (श्रु) ॥

[ पा० १०।४० २।स्व० ६ ] (क. ९।९।७)

॥ इति पठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

९४६ अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरुतमम् । अच्छा नष्टे सहस्रवते ॥ १ ॥

(क. ८।१०१।७)

९४७ अयं यथा न आशुषवष्टा रूपेण तद्वत् । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ २ ॥

(क. ८।१०२।८)

९४८ अयं विश्वा अग्निं अश्रियोऽग्निदेवेषु पश्यते । आ वर्जिरूपं नो यमत् ॥ ३ ॥ २० (डा) ॥

[ पा० ८।४० ३।स्व० २ ] (क. ८।१०२।९)

९४९ इममिन्द्रं सुते पिब ज्येष्ठममर्यं मदम् । शुक्रस्य त्वाम्यध्वरन्वारा अतस्य सादने ॥ १ ॥

(क. १।८४।४)

[ ९४५ ] (सिन्धुः पाथः ऊर्मि न) जिस प्रकार बहुनेवाली बचीकी सहर्षे शब्द कर्ता हुई चलती हैं, उसी प्रकार (पवमानः) गूढ़ होनेवाला सोम (मनीषाः गिरिः स्तोमान्) मनकी अच्छे लगनेवाले शर्वीकी (प्राचीविपत्) श्रेयसा देता है, (वृषभः) बलवान् ऐसा यह सोम (अन्तः पश्यन्) अपने अन्तर देखकर (गोषु जानन्) गायोंमें रूप है यह जानकर (अध्वराणि) कम न होनेवाले (इमा वृजना) इन बलोंको (आतिष्ठति) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ९४६ ] हे अश्विनो ! (यः) तुम (अध्वराणां नष्टे) बलवान्के नाती (सहस्रवते वृधामां) बलवन्की बढानेवाले (पुतमं अग्निं) श्रेष्ठ अग्निके (अच्छा) प्राप्त आते ॥ १ ॥

१ अश्वरः (अध्वरः) - जिसका नाश नहीं किया जा सकता ऐसा बलवान् ।

[ ९४७ ] (त्वष्टा तद्वत् रूपेण इव) जिस तरह बर्तन लकड़ीको ठीक करता है, उसी प्रकार (अयं) यह अग्नि (नः आशुषत्) हमें ठीक करता ॥ (अस्य क्रत्वा यशस्वतः) इसके कर्त्तव्य हम यशस्वी होते हैं ॥ २ ॥

[ ९४८ ] (देवेषु) देवोंमें (अयं अग्निः) यह अग्नि (विश्वाः अश्रियः) सब ऐश्वर्योंको (अग्निपत्यते) प्राप्त होता है, ऐसा यह अग्नि (नः) हमारे पास (वर्जः उपागमत्) अग्निके पास आये ॥ ३ ॥

[ ९४९ ] हे (इन्द्रः) इन्द्र ! (ज्येष्ठं मदं) श्रेष्ठ अमन्य देनेवाले (अमर्यं) विष्य ऐसे (सुते इमं पिब) इस सोमरसको पी । (अतस्य सादने) यन्त्रकी आलायमें (शुक्रस्य धाराः) बेंतेजस्वी सोमकी धारायें (त्वां अध्वरन्) तुमसे प्राप्त होनेके लिए नीचे गिरती हैं ॥ १ ॥



९५० न किष्ट्वद्रथीतरौ हरी यदिन्द्र यच्छसे । न किष्ट्वातु मज्जना न किः स्वथ आनये ॥२॥  
( ऋ. १।८४।६ )

९५१ इन्द्राय नूतमर्चवौकथानि च ब्रवीतन ।  
सुता अमत्सुरिन्दधौ न्येष्ठं नमस्वता सहः ॥ ३ ॥ २१ ( १ ) ॥  
[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।८४।९ )

९५२ इन्द्र जुपस्व प्र वहा याहि शूर हरिह । पिबा सुतस्य सतिर्न मघोश्चकानवा रुमदाय ॥ १ ॥

९५३ इन्द्र जठरं नय्य न पूणस्व मघोदिधौ न ।  
अस्य सुतस्य स्वादिनोष स्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ २ ॥

९५४ इन्द्रस्तुरापाग्मिन्त्रौ न जघान वृत्रं यतिर्न ।  
विमेद वलं भृगुर्न ससाहै वृत्रान्मदे सोमस्य ॥ ३ ॥ २२ ( ६ ) ॥  
[ धा० ११ । उ० ५ । स्व० १ ]

॥ इति सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

॥ इति ततोयप्रपाठोः प्रथमोऽर्चः ॥ १ ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ ९५० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ( यत् ) जिसके कारण तू ( हरी यच्छसे ) अपने पीछोंकी रममें जोड़ता है, उस कारण ( स्वथ ) तेरेसे बंधवार ( यथीतरः न किः ) थोष्ट पीर दूसरा कोई नहीं है, ( मज्जना ) बलमें ही ( स्वा, अनु नकिः ) तेरे समान दूसरा कोई नहीं है ( ह्य-अश्वः ) उत्तम घोड़े पालनेवाला भी ( न किः आनये ) दूसरा कोई नहीं है ॥ २ ॥

[ ९५१ ] हे ऋषिभक्तो ! ( नूनं इन्द्राय अर्चत ) निश्चयसे तुम इन्द्रकी ही पूजा करो, ( उपधानि च ब्रवीतन ) [ इन्द्रके लिष्ट हो ] स्तोम बोली । ( सुताः इन्द्र्यः अमत्सुरः ) छाना हुआ सोमरस इन्द्रको आगव देवे । ( न्येष्ठं सहः ) श्रेष्ठ वस्तुवान् इन्द्रको ( नमस्वत ) नमस्कार करते ॥ ३ ॥

[ ९५२ ] हे ( हरिह शूर इन्द्र ) घोड़े पासमें रखनेवाले शूरवीर इन्द्र ! ( आयाहि ) आ, ( प्र वहा ) हविष्वात्मकी स्वीकार कर, ( व्यादः प्रदाय ) उत्तम आनन्द प्राप्त हो इसलिये ( न चकानः ) इस समय इच्छा करते ॥ १ ॥ ( सुतस्य मघोः ) मयूर सोमरस ( सतिः ) अपनी वृष्णानुसार ( पिब ) पी ॥ १ ॥

[ ९५३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( दिवः न ) जैसे धूलोकेते ( सुवाचः मघः ) उत्तम वृष्टिका आगव ( स्वा उप अस्थुः ) तुझे प्राप्य होता है, भीर जैसे ( स्वः न ) उस स्वर्णीय आनन्दकी तू भोगता है, उसी प्रकार ( सुतस्य अस्य मघोः ) इस मयूर सोमरसके ( जठरं नय्यं न ) अपने पेटको ( स्वा पूणस्व ) भर ले ॥ २ ॥

[ ९५४ ] ( तुरापाद् इन्द्रः ) जल्दी ही शत्रुकी हृदयैवात्मा इन्द्र ( मिघः न ) जिसके समान ( वृत्रं जघान ) शत्रुको मारता है, ( यतिः न वलं विमेद ) जिस प्रकार संयमी बीर बल राक्षसको मारता है, तब ( सोमस्य मदे ) सोमके आनन्दमें ( भृगुर्न द्राघन् सासते ) भृगु जैसे धनुर्वाँको हराता है, उस प्रकार तू धनुर्वाँको हरा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥



## पञ्चम अध्याय

### इन्द्रके गुण

इस अध्यायमें इन्द्रके गुण इस प्रकार वर्णित हैं—

१ अ-प्रतिष्कृतः [ ११३ ]- जिसका कोई भी प्रतिष्कार नहीं कर सकता ।

२ चर्यपीना राजा [ १३३ ]- सब मनुष्योंका राजा, सबका दासक ।

३ रघेभिः पाता [ १३३ ]- रघते जानेवाला, जिसके साथ बहुतसे रघ होते हैं । जिसके साथ सरवारके रघ रहते हैं ।

४ अग्नि-गुः [ १३३ ]- आगे जानेवाला ।

५ ज्येष्ठः [ १३३ ]- श्रेष्ठ, सबसे बड़ा ।

६ तुरापाद [ १५४ ]- शीघ्रतासे घूमने लगे हुएनेवाला ।

७ हरिः [ १५२ ]- घोड़ोंको पासमें रखनेवाला, बुद्धोंका हृण करनेवाला ।

८ दारः [ १५२ ]- शूरवीर ।

९ तरस्यो [ १३१ ]- शीघ्रतासे सब कार्य करनेवाला ।

१० स्वः-पति [ १३२ ]- स्वर्गका स्वामी, आत्मनिबन्धी ।

११ धृत-प्रता [ १३२ ]- नियमोंका पालन करनेवाला ।

१२ युद्धन्मा [ १३४ ]- अनेक शत्रुओंको धारनेवाला ।

१३ ज्येष्ठं सहा [ १५१ ]- जिसके पास श्रेष्ठ सामर्थ्य है ।

१४ इन्द्रः दधीचः अश्वभिः भयती नय वृत्राणि जघान [ ११३ ]- इन्द्रने दधीचकी हृदियोंके अर्धसे ९९ पालत मारे ।

१५ विश्वासां धृतानां तद्धता वृत्रहा [ १३३ ]- सब शत्रुकी सेनाओंकी हृष्टानेवाला इन्द्र है ।

१६ इन्द्रः धृते जघान [ १५४ ]- इन्द्रने धृतेकी मारा ।

१७ इन्द्रः घले विमोद [ १५४ ]- इन्द्रने बलके मारा ।

१८ सोमस्य भदे शत्रून् सासहे [ १५४ ]- सोमके आनन्दमें सब शत्रुओंको इन्द्रने पराजित किया ।

१९ मममना स्वा अनु न किं [ १५० ]- बलमें मेरे समान कोई नहीं है ।

२० सु-अश्वः न किं [ १५० ]- उत्तम घोड़े पासनेवाला भी मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है ।

२१ मे इन्द्र ! यत् धरी हृच्छसे, त्वत् रथीतरः न किं [ १५० ]- हे इन्द्र ! तू घोड़े अपने रथमें छोड़ता है,

इसलिए तेरो अपेक्षा महान् रथमें बँधनेवाला भीरू इतरा कोई नहीं है ।

२२ ज्येष्ठं सहा नमस्यत [ १५१ ]- इन्द्रके श्रेष्ठ साहसपूर्ण कार्यको नमस्कार करो ।

२३ यस्य धिघर्तीरे द्विता [ १३४ ]- जिसकी पारक-शक्तियों को अधिकता है । एक कृपा करनेकी शक्ति और दूसरी बिनाश करनेकी शक्ति ।

२४ दधीतः मयान् वज्रः हस्तेन प्रतिपाद्यि [ १३४ ]- इन्द्रने धीमय बहुत बलकी वज्र हाथोंमें शत्रुको मारनेके लिए धारण करता है ।

२५ युक्-हन्-मन् । अथसे से इन्द्रं शुम्भ [ १५४ ]- हे बहुतते शत्रुओंको मारनेवाले भवत । अपने संरक्षणके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ।

२६ नूनं इन्द्राय अर्थत, उफयामि च दधीतन [ १५१ ]- निश्चयसे इन्द्रकी अर्चना करूँ, उसके स्तोत्र कहूँ ।

२७ रेभासः इन्द्रं समस्वरन् [ १३२ ]- स्तोता इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

२८ यत् स्व-पति धुधे, धृतप्रता भोजसा ऊतिभिः स्वे [ १३२ ]- जब स्वर्गका स्वामी सर्वपण करनेकी इच्छा करता है, तब यद् विश्वमायुवार मलनेवाला अपने सामर्थ्य और संरक्षणके साथपति सहायता करता है ।

२९ विष्ठाः अभिरदरे मेघे नेमि नमन्ति [ १३१ ]- शानी एक आवाजसे उस इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं ।

### अधिके गुण

अब इस अध्यायमें आए हुए अनेकके गुणोंको बोलें—

१ आयुषिः [ १०७ ]- आयुत रहनेवाला ।

२ सु-दक्षः [ १०७ ]- चतुर ।

३ जनस्व गोपा [ १०७ ]- मनुष्योंका रक्षक ।

४ शुचिः [ १०८ ]- शुद्ध, पवित्र, निर्मल ।

५ अगिरसः [ १०८ ]- बल-प्रश्रयमें जो अफासता है ।

६ यक्षस्य केतुः [ १०९ ]- पतनी पताका, विजय ।

७ सुधन्तुः [ १०९ ]- उत्तम कर्म करनेवाला ।

८ सप्तस्वाङ् [ १४६ ]- सामर्थ्यसे युक्त ।

९ सुधिताय अजनिह [ १०७ ]- लोगोंका कल्याण करनेके लिए उत्पन्न हुआ ।

१० तुमम् भाति [१०७]- तेजस्वी प्रकाशित होता है।

११ महतः सहः सः मध्यमानः जायसे [१०८]-  
महान् बलसे मयने पर वह प्रकट होता है।

१२ अस्व क्रत्या यदास्वन्ताः [१०९]- इसके कर्णसे  
हय यदास्वी होते हैं।

१३ देवेषु व्ययं अग्निः विश्वाः ध्रियः अभि पश्यते  
[ ११० ]- देवोंमें यह अग्नि सब-सोपानोंको स्थापित  
करता है।

१४ नः यज्ञैः उपागमत् [ १११ ]- हमारे पास यह  
अग्नि अन्न और बलके साथ आये।

१५ त्वा सहस्रः पुत्रं आहुः [ ११२ ]- तू बलसे उत्पन्न  
होता है ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार इस अग्निका वर्णन इस अन्वयमें हुआ है।

### मित्र और वरुण

मन्त्रमित्र और वरुण इनका वर्णन देखिए—

१ श्रुताधृषा मित्रायद्वयं [ ७९ ]- साथ अथवा  
यहको बडानेवाले मित्र और वरुण हैं।

२ राजानौ अनभिदुहे ध्रुवे उत्तमे सद्मस्त्रूणे  
सर्वतो आशाते [ ११३ ]- ये दोनों राजा हैं, वे परस्पर  
सज्जते नहीं और स्थिर तथा हृत्मान्वाली उत्तमूतनामें  
बैठते हैं।

३ सत्तारा घृतासुतो आदित्या दानुनः-पती  
अनघद्वरे सन्वते [ ११४ ]- वे दोनों सत्तार हैं, पौमिला  
हुना अन्न खाते हैं, आदित्यके पुत्र और उनके स्वामी हैं, वे  
कुटिल व्यवहार न करनेवालेकी सहायता करते हैं।

इस प्रकार मित्र और वरुणका वर्णन यहाँ किया है।

### इन्द्र और अग्नि

अब इन्द्र और अग्निके वर्णन देखिए—

१ हे इन्द्राग्नी ! इयं वां पूर्वस्तुतिः, अस्वअम्नः  
अग्नि [ ११५ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! यह तुम दोनोंकी  
अपूर्व स्तुति इन अन्न करनेवाले विद्वानेति उत्पन्न हुई है।

२ हे इन्द्राग्नी ! जरितुः हवंश्रुतं, गिरः वनतं,  
ईशाना पियः पिप्यतं [ ११६ ]- हे इन्द्र और अग्ने !  
स्तोत्र प्रार्थना करता है, उल्लेख तुम सुनो, वसकी स्तुति सुनो,  
तुम दोनों ही वसिष्ठाके हो, इतिहास उसके योग्य कर्मोंका  
उत्तम पक्ष हो, अथवा उसकी बुद्धिको परिपक्व करो।

३ हे नरा इन्द्राग्नी ! नः क्षपत्वाय रीरधम् [ ११७ ]  
- हे इन्द्र और अग्ने ! हमें पापमें प्रवृत्त मत करो।

४ अभिशास्तये मा, निदे नः मा [ ११८ ]- हिता  
करनेके कार्यमें प्रवृत्त मत करो, निन्दनीय कर्मोंमें भी मत  
लगाओ।

अर्थात् तुम हमारी प्रवृत्ति अण्डे कामोंकी ओर ही  
लगाओ, इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थना की गई है, कि  
हमारी प्रवृत्ति उत्तम कर्मोंकी ओर ही हो, अथवा कामोंकी  
ओर न हो। देवताओंके गुण इतिहास वर्णित हैं। देवोंके  
गुणोंको हम धारण करें, यही उत्तम प्रवृत्ति है, इसके विपरीत  
नहीं है, वह अतत्वात् बुरी प्रवृत्ति है। मनुष्य सत्प्रवृत्तिकी  
धारण करें और अतत्प्रवृत्तिकी अपनाने से दूर रहें।

यसमें सोमरस तैयार करते हैं, और उसे इन्द्रको अर्पित  
करते हैं। इस विषयमें वर्णन अब देखिए—

### इन्द्रको सोम

१ सुतः आ यियासन् इन्द्राय मधु सिक्तये [ १०२ ]  
- सोमरस निकालनेके बाद उसे उतारकर शुद्ध करनेके इन्द्रको  
बहु मोठा रस दिया जाता है। इसको मोठा करनेके लिए  
उसमें गायका रूप मिलाया जाता है।

२ इन्द्राय पातवे हारि इन्द्रं अदिभिः हिंसायित  
[ १०३ ]- इन्द्रको सोमरस पीनेकी देनके लिए हरे रंगका  
सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है।

३ धृषा इन्द्रः सुतं गमत्, ध्रुवे सवसि सीदतु  
[ १०४ ]- बलवान् इन्द्र सोमपायके स्थान पर जाता है और  
स्थिर वनजालामें जाकर बैठता है।

४ हे इन्द्र ! सोमे पिय, स्वा मद्रुत् [ १०५ ]- हे  
इन्द्र ! तू सोमरस पी, ये सोमरस तुझे आनन्द देवें।

५ हे हयंभ ! ते सोतोः चाधृभ्यां सुयतः अग्निः  
यत् सुपाव [ १०६ ]- हे उत्तम घोड़े रखनेवाले इन्द्र !  
रस निकालनेवालेके हाथोंके द्वारा पकड़े गए पत्थरोंसे यह  
रस निकला गया है।

६ हे इन्द्र ! व्येष्टे मद् अमर्त्यमं सुतं पिय [ १०७ ]  
- हे इन्द्र ! श्रेष्ठ अमर और दिव्य आनन्द देनेवाले इस  
सोमरसको पी।

७ अतस्त्व सादने शुक्रस्य धाराः त्वां अमरन्  
[ १०८ ]- यतसे स्थान पर इस वीर्यवान् सोमरसकी धारा  
तेरे लिए निकली है, तेरी तरफ बह रही है।

८ चारुः प्रदाय सुतस्य मधो मसिः पिब [ १५३ ]-  
उत्तम आनन्द प्राप्त होनेके लिए यह अक्षर सोमरस इच्छा-  
मुसार पी ।

९ हे इन्द्र ! सुतस्य मधोः मद् त्वा उष अस्युः  
जठरे पूणस्य [ १५३ ]- हे इन्द्र ! इस पीठे सोमरसका  
आनन्द तुझे मिले, अतः पेठ भर कर पी ।

इस प्रकार सोमरस इन्द्रको और अन्य देवताओंको दिया  
जाता था, वे सब यज्ञशालामें बैठकर पीते और उत्साहित  
होकर अपने-अपने उत्तम रीतिसे करते थे ।

### स्वर्गसे सोम

१ यः दिवस्पदि दधुयामा [ १०० ]- जो धूलोक पर  
रहता है, वह यह सोम है, हिमालयके शिखरपर ऊँचे ठिकाने  
सोम उगता है । वहाँसे प्राप्त करनेवाले यज्ञमान उसको साकर  
पत्रमें उसका उपयोग करते हैं ।

### सोमके गुण

१ पृथमानः [ ८८१ ]- शुद्ध, पवित्र, छाया जालेवाला ।  
० क्षुधि-पाणः [ ८८१ ]- क्षुधि घातमें जिसका उपयोग  
करते हैं ।

१ ध्रुवः [ ८८७ ]- स्वयं घेनेवाला ।

४ हरिः [ ८८७ ]- दुःखोंका हरण करनेवाला, हरे रसका ।

५ विश्वचक्षुः [ ८८८ ]- सब देखनेवाला, सबें ब्रह्मा ।

६ ब्रह्म [ ८८८ ]- स्वामी ।

७ विश्वस्य ध्रुवनस्य पतिः [ ८८८ ]- सम्पूर्ण भूवर्गोंका  
स्वामी ।

८ व्यानदी [ ८८८ ]- व्यापक, सब पर प्रभाव  
झालेवाला ।

९ दक्षः पुमान् रसः [ ८९१ ]- बलवान् और  
तेजस्वी रस ।

१० अ-तुक्लुप्तः [ ८९० ]- कुट्योंको प्राप्त न होनेवाला ।

११ सिधेयं स्वः ज्योतिः [ ८९१ ]- सब प्रकारसे  
तेजस्वी ज्योतिः ।

१२ विश्व-चर्याणि [ ८९६ ]- सब घेनेवाला ।

१३ शुद्धमतिः [ ८९८ ]- महान् बुद्धिवाला ।

१४ क्षधिः [ ९२० ]- क्षान्ते, हृत्पथी ।

१५ धृषा [ ९२० ]- बलवान् ।

१६ मित्रः [ ९२० ]- मित्र ।

१७ अ-दाश्रयः [ ९२० ]- न बहनेवाला, छोड़ भी  
जिते बड़ा नहीं ताकता, ऐसा लाभार्थवान् ।

१३ [ चाय. हिन्वी भा. २ ]

१८ देवैः सं क्षोमते [ ९२० ]- देवोंके साथ सुगोमित  
होता है ।

१९ कविक्रतुः [ ९३५ ]- उत्तम कर्म करनेवाला ।

२० शशीनां, दिव्यः, धृष्टिव्याः, अग्नेः, सूर्यस्य,  
इन्द्रस्य, विष्णोर्जलिता सोमः [ ९४३ ]- बुद्धि, दृढलोक,  
बुधवी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, विष्णु इनमें उत्साह पैदा करनेवाला ।

ये सोमके गुण हैं, सोमरस पीनेसे ये गुण उत्पन्न होनेके कारण  
बढ़ते हैं, इसलिए ये सोमके गुण हैं ऐसा कहा है ।

### शत्रुको हरानेवाला सोम

१ हे इन्द्रो ! तव सख्ये अहं त्रिवे द्विवे दारण [ हे  
यज्ञो ! पुरुषि मां अवचरन्ति, तान् परिधीन् मसि  
हृदि [ ९२२ ]- हे सोम ! तेरी मित्रतामें मैं रहूँ, ऐसी इच्छा  
में प्रतिविम्ब करता हूँ, क्योंकि हे 'सोम !' बहुतसे शत्रु भूमे  
बारबार कष्ट देते हैं, उन्हें तू हर कर ।

२ पुनामः चिचर्याणिः विश्वाः भूध भक्रमीष्ट  
[ ९२४ ]- छात्रा जानेवाला, चित्तपतानी, सोम सब शत्रुपर  
आक्रमण करते उन्हें हर करता है ।

३ हे हर्यश्च इन्द्र ! ते युग्यः स्वादः मन्त्रः यः अस्ति,  
येन पुधाधि हंसि [ ९२८ ]- हे काल रंगके पीठे वातमें  
रसनेवाले इन्द्र ! तेरे योग्य यह उत्तम आनन्द है, जिससे तू  
शत्रुओंको मारता है ।

इस प्रकार जोरोंमें ऐसा उल्लाह उत्पन्न करता है कि वे उसके  
कारण शत्रुके विचारके कार्योंके लिए योग्य होने हैं ।  
ऐसा इस सोमरसका प्रभाव है ।

### अंगुलिचोंका रस निकालना

सोमकी धेतकी धतुरके पाठ पर रसकर धतुरसे कूड़ा  
जाता है, और अंगुलिधेतसे दबाकर उत्तम रस निकाला जाता  
है । उसका वर्ण इस प्रकार है —

१ उखियाः, जामयः, खसिरः, महीधुयः, सूर  
पति महां इन्दुं दिव्यन्ति [ ९०४ ]- सब जागृत जानेवाली,  
अग्निने खपान एक यज्ञसे बन्ध करनेवाली ऐसी अंगुलिया,  
महान् कार्य करनेकी इच्छा करने, मोक्ष त्यागो महान् मोक्षको  
दबाकर उसका रस निकालती हैं ।

सोमका रस निकालना एक बड़ा काम है, क्योंकि उससे  
सोमयज्ञ सिद्ध होता है, और उससे सब देव शान्नुष्ट होते हैं ।

### सोम घन देता है

१ देवेभ्यः सुत विश्वा यक्षुनि आपिप्त [ १०५ ]-  
देवोंके लिए निकाला गया सोमरस हमारे लिए सब धनोंमें  
प्रविष्ट होने, अर्थात् सब धन हमें मिले।

२ हे इन्द्रो सोम ! अस्यभ्यं महा सहस्रिणं रयिं  
धिभवत आ पवस्य [ ११६ ]- हे तेजस्वी सोम ! तू  
हमें महान् और हजारों प्रकारके घन धारों ओरसे दे।

सोमभागमें सब लोग घन देते हैं, तब यह घन सोम ही  
देता है, ऐसा कहा जाता है।

### सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोम कूटकर उसका रस निकालते हैं, बादमें उसमें पानी  
मिलाते हैं, तत्पश्चात् उसे छाना जाता है, और छाने हुए  
सोमरसकी कलशमें भरकर रखते हैं। इस सम्बन्धमें वर्णन  
इस प्रकार है—

१ अः विचः पति रघुयामा, सः अयं पवित्रे अ  
सिधोः ऊर्मयि चि अक्षरव् [ १०० ]- जो सोम सुलोक  
पर होता है वह सोम छलनीसे छाना जाता है। वह नदीके  
सहूरमें टपकता है। नदीका पानी मिलाकर वह छाना  
जाता है।

२ वाजिनं यने नीडन्त अति अपि धीमिः मूजन्ति  
[ १४१ ]- बलवान् सोमको पत्थीमें मिलाकर भेड़के बालोंकी  
बनी छलनीसे स्तोत्र बोलकरके याजक छानते हैं।

३ घाजयुः मीक्षान् कलशान् अभि असजि [ १४२ ]  
- अन्न देनेवाला पानीमें मिलाया हुआ सोम कलशमें छाना  
जाता है।

इस प्रकार सोमरसको पानीमें मिलानेका वर्णन है। इसके  
बाद वह छाना जाता है, उसका वर्णन निम्न प्रकार है—

### सोमरसका छाना जाना

१ हे श्रपिपाण ! ये वेधसः स्वा मूजन्ति, ते अन्त-  
रिक्षाय स्वापिरीः अक्षरव् [ ८८६ ]- हे ऋषियोंके द्वारा  
निकाले गए सोम ! जो शरीर कुत्ते निकालते हैं, वे ऊपरके  
वर्तनसे एक पारसे नीचेके वर्तनमें गुप्त पड़ते हैं, छानते हैं।

२ यदि पवित्रे हति अधिमुष्यते सप्ता योनौ  
निषीदति [ ८८७ ]- जब छलनीसे हरे रवका सोम छाना  
जाता है, उस समय पवित्र रहनेकी इच्छा करनेवाला वह  
सोम कलशमें जाकर बैठता है।

३ हे राजन् पयमाल ! तत्र मदः अनुच्युतः रसः  
अयं चारं नि अर्पति [ ८९० ]- हे सोम ! तेरा आनन्द  
देनेवाला तथा बुरे और दुष्ट लोगोंको न मिलनेवाला रस  
भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छनकर नीचे जाता है।

४ ओजसा पवित्रे शिथिं आ एति [ १०१ ]- वेगसे  
छलनीके द्वारा शीघ्र छाना जाता है।

५ हे हरे ! वृक्षसाधनः मदः देवेभ्यः पीतये  
पवस्व [ ११९ ]- हे हरे रगके सोम ! बल बढ़ानेके साथ  
तेरे आनन्द देनेवाले रस देवोंके पीनेके लिए छानकर तैयार  
किये जाते हैं।

६ पुमानः सोमः ऊर्मिणा अयं चारं चि धावति  
[ १४० ]- छाना जानेवाला सोम पारसे भेड़के बालोंकी  
छलनीसे दीड़ता हुआ नीचेके वर्तनमें पड़ता है।

इस प्रकार सोम छाना जाता है और वह छलनी भेड़के  
बालोंकी बनी होती है।

### सोममें गायका दूध मिलाना

१ हे पयमाल ! ते आश्विनीः धेनुषः दिव्या, पयसा  
घरीमणि प्र असृप्रव् [ ८८६ ]- हे सोम ! तेरी वे  
देववान् गायें दिव्य हैं, वे अपने दूधसे कलशमें पड़वती हैं।  
कलशमें छने हुए सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है।

२ वृषभः अन्धः पश्यन्, गोषु जानन्, अवराणि  
इमा घृज्मा आ तिष्ठति [ १४५ ]- अन्धवान् सोमरस  
अपने अन्दर देखता है, और गायमें दूध है यह जानता है,  
कम न होनेवाले बल्लोंको वह गायके दूधसे प्राप्त करता है।

इस प्रकार आलंकारिक भावसे सोमरसमें गायका दूध  
मिलाया जाता है इसका वर्णन इन श्लोकोंमें किया है।

### सोमका अन्न देना

१ हे इन्द्रो सोम ! मही ह्य गोमव् आ पवस्य  
[ ८९५ ]- हे तेजस्वी सोम ! तू बड़े अन्न तथा गायोंके  
मुक्त धन हमें दे।

२ प्र प्र क्षयाय अद्भुतः पन्थसे जनाय धीति जुष्टः  
पनिष्टये अर्ध [ १३७ ]- हे सोम ! तेरे निवास करनेके लिए  
यत्न करनेवाले, द्रोह न करनेवाले और स्तुति करनेवाले  
मनुष्योंके खानेके लिए प्रयुक्त हुआ यह स्तुतिको प्राप्त हो।

### सोमका शुद्ध

सोमरसको छानने जानेसमय उसका शब्द होता है। उसका  
वर्णन इस प्रकार है—

१ धृष्टेः स्वनः इव परमानस्य श्रूयते [८९४]-  
सर्वाकी जैती आवाज होती है उसी प्रकार छाने जानेवाले  
सोमकी आवाज सुनी जाती है ।

२ धिया हितः फनिमदत् योनिं व्यभि आरुहः  
[ ९२१ ]- बुझिते यत्नमें रत्ना धिया सोम श्राव्य करता हुआ  
कलसेयें जाता है ।

३ पयमानः बाधः अग्नें फनिमदत् [ ९४० ]- छाना  
जाता हुआ सोम श्राव्य करता है ।

४ त्रिष्टुप् मतयः अभि खमस्वरत् [ ९४१ ]- तीन  
वर्तनमें स्तुतिके साथ-साथ सोम श्राव्य करते हुए जाता है ।

५ पुनान बाधं जलघन् अतिष्वदत् [ ९४२ ]-  
छाना जाता हुआ सोम श्राव्य करते हुए वर्तनमें पड़ता है ।

६ खोमे रेमन् पवित्र अति यति [ ९४४ ] सोम  
श्राव्य करते हुए छलनीमेंसे छनता जाता है ।

७ पयमानः मनीषाः गिरः स्तोमान् प्राचीविषत्  
[ ९४५ ]- शुद्ध होता हुआ सोम मनकी प्रिय लगनेवाले  
शर्वोंको प्रेरणा देता है ।

इस तरह सोमरस छाना जाता हुआ श्राव्य करते हुए  
छलनीमेंसे नीचेके वर्तनमें पड़ता है, उसका आलकारिक  
वर्णन ऊपरके शर्तोंमें किया है । किसी वर्तनमें पहले ही इव  
शर्दाय रत्ना हो और उस पर ऊपरके इव शर्दाय गिरना जाए  
तो श्राव्य तो होना ही हुआ । इसी प्रकारका यह शब्द है ।  
नीचेके वर्तनमें इव है और छलनीमें ऊपरसे सोमरस छलनीमेंसे  
गिरने लगा जाये, तो उसका श्राव्य तो होना ही । यह ही  
सोमका श्राव्य है ।

### सोमका तेज

सोमलता तेजस्वी है । उसका रस भी तेजस्वी है । इस  
तेजस्वितका वर्णन इस प्रकार है—

१ पयमानस्य ध्रुवस्य सतः केतयः उभयतः परि-  
यन्ति [८८७]- छाने जानेवाले स्पिर सोमकी किरणें दोनों  
ही ओर फैलती हैं ।

२ पयमानः बृहद् वैश्वानरं ज्योतिः अजीजनत्  
[ ८८९ ]- छाना जानेवाला सोम महान् व्यापक तेज उत्पन्न  
करता है ।

३ पयमानस्य ते दक्षः शुमान् रसः विराजति  
[ ८९१ ]- छाने जानेवाले सोमके बलवर्षक तेजस्वी रस  
शुशोभित होते हैं ।

॥

४ विश्वं स्वः ज्योतिः दक्षे [८९१]- सोमका अपन  
तेज बीजता है ।

५ शुषिष्यः विशुतः दिवि चरति [८९४]-  
बलवान् सोमकी किरणें सुसौकरमें फैलती हैं ।

६ मही रोदसी आ पूष [ ८९६ ]- विशाल प्रायः-  
पूषकी अपने तेजसे भर दे ।

७ सुतः त्रिषिं दधानाः विचक्षणाः विरोचयन्  
[ ९०१ ]- सोमरस तेज पारण करते हुए तेजस्वी होकर  
बलकने लगता है ।

८ कथा देवः पयमान [ ९०५ ]- तेजसे सोमदेव  
शुशोभित होता है ।

९ शुविः जातः महान् सः खन्तु मही कृतावृथा  
जाते मातरा अरोचयत् [ ९३३ ] शुद्ध हुआ हुआ सोम  
नामक पुत्र महान् पक्षको बढ़ानेवाली प्रसिद्ध माता द्वावा-  
पूषको प्रकाशित करता है ।

१० देव्यः पयमानः पुमस्रमः स्व [ ९३८ ]- हे  
प्रकाशमान् सोम ! तू तेजस्वी है ।

इस प्रकार सोम तेजस्वी है ।

### सुभाषित

१ ध्रुवस्य सतः केतयः उभयतः परियन्ति [८८७]-  
-स्फिर और उत्तम शर्व करनेवालोंका तेज दोनों ओर  
फैलता है ।

२ हे विश्वश्रव ! अग्ने सतः ते ध्रुवस्य केतयः  
विश्व्या धामानि परियन्ति [ ८८८ ]- हे सबके निरीक्षण  
करनेवाले विरोधक ! शासन करनेकी इच्छावाले तेरा महान्  
प्रकाश सब स्थानमें पहुंचता है ।

३ धर्मणा पचसे [ ८८८ ]- जपने पचते शुद्ध होता है ।

४ विश्वस्य भुवनस्य पति राजसि [ ८८८ ]- तू सब  
भुवनोंका स्वामी होकर पचता है ।

५ पयमानः बृहद् वेध्यान्वरं ज्योतिः दिव चित्र  
त-यन्तुं न अजीजनत् [ ८८९ ]- पवित्र हुआ सोम महान्  
तथा सब भवद्व्यंकि हित करनेवाले तेजको, धूलोकमें पचकने  
वाली बिजलीके समान, उत्पन्न करता है ।

६ हे राजन् ! तव मद्ः अ-दुच्छुन [ ८९० ]- हे  
राजन् ! तेरा जानन कुछ नहीं पा सकते ।

७ वेदक्षः शुमान् विराजति [ ८११ ]- तेरा तेजस्वी बल प्रकाशित होता है ।

८ विश्वं स्वः ज्योतिः दृष्टो [ ८११ ]- सब विषयमें आत्माकी ज्योति द्योतकी है ।

९ स्वेदाः अयासः प्र अक्षसुः [ ८१२ ]- तेजस्वी और पियासीस ही प्रगति करते हैं ।

१० अ-व्रतं दस्युं साध्याम् [ ८१३ ]- सत्कर्म न करनेवाले दानुकी हय परामित करें ।

११ शुष्मिणः विद्युतः दिवि चरति [ ८१४ ]- बलवाली बिजलीका प्रकाश धूलोर्ध्वमें फैलाता है ।

१२ घुष्टेः स्वतः श्रुते [ ८१५ ]- बुद्धिका शब्द सुनाई दे रहा है ।

१३ गोमत्, अभ्यवत्, हिरण्यवत्, धीरवत् महो ह्यं आ पयस्य [ ८१५ ]- गाय, घोड़े, सोना और धीर-पुत्रोंसे युक्त महान् भक्त हूँ मैं ।

१४ हे विश्व-अयेण ! मदी रोदसी आपुण [ ८१६ ]-हे सब लोगके हित करनेवाले धीर ! तू अपने तेजसे इस महान् धूलोकी और पृथ्वीलोकको भर दे ।

१५ सूर्यः रश्मिभिः उपाः न [ ८१६ ]- सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे उप-कालके बाद जगत्को भर देता है, वसी प्रकार तू भी अपने तेजसे जगत्को भर दे ।

१६ नः शर्मयन्त्या धारया विश्वतः परित्स्व [ ८१७ ]-हमें सुख देनेवाले अमरसकी धारासे चारों ओरसे घेर दे ।

१७ हे द्यूह-मते ! प्रियेण धाम्ना यशुः परि अर्य [ ८१८ ]- हे बुद्धिमान् ! अपने प्रिय जीवनसे युक्त होकर शीघ्र इपर आ ।

१८ अनिष्टृतं परिष्टुष्वन् जनाय इषः वातयन्, परित्स्व [ ८१९ ]- अतृप्तको पूर्णतृप्त करते हुए, लोगोंकी भय देते हुए चारों ओर भ्रमण कर ।

१९ दिवि पितृधानः, विश्वेक्षणः धिरोचयन्, ओजसाः शर्मि आ एति [ ९०१ ]- तेज धारण करके, सबको देखनेवाला, स्वयं प्रकाशमान् होनेवाला अपने सामर्थ्यसे शीघ्र प्रगति करता है ।

२० उक्षयः जामयः स्वसारः महीवृषः खरं पतिं दिव्यमिति [ ९०४ ]- तेजस्वी तथा एक जगह रहनेवाली बहिनं महान् कार्यमें स्वयंको लगाकर अपने तेजस्वी पतिको भी उत्तम कार्यमें प्रेरित करती है ।

२१ रुचा विश्वा वसुमि आ विशा [ ९०५ ]- अपने तेजसे सब धनमें शू प्रभित होकर रह ।

२२ जनस्य गोपा, जाशुयिः सुदक्षः शर्मि, नभ्यसे सुविताय अजनिष्ट [ ९०७ ]- मनुष्योंका संरक्षण करनेवाला, जायत और चतुर, आगे ले चलनेवाला, नभे मार्गसे सबका कल्याण करनेके लिए प्रकट हुआ है ।

२३ बृहता दिविस्पृशा शुचिः भरतेभ्यः शुमत् भाति [ ९०७ ]- महान् व्याकाशको स्पर्श करनेवाले तेजसे पवित्र हुआ हुआ वह धीर भारतदेशमें लोगोंके हितके लिए तेजस्वी होकर चमकता है ।

२४ सः महत् सहः [ ९०८ ]- वह दानुका पराभव करनेवाले महान् यत्ने युक्त है ।

२५ त्वां सहसः पुत्रं आहुः [ ९०८ ]- तुझे सामर्थ्य या बलका पुत्र कहते हैं ।

२६ राजानौ अनभिद्रुहौ ध्रुवे उत्तमे सहस्ररथणे सद्यस्वि आशाते [ ९११ ]- जो राजा आपसमें भिड़ते नहीं, वे स्थिर, उत्तम और हजार चर्मोंवाली सभामें बैठते हैं ।

२७ सप्रजा वायुनः पती अनयस्तरं तच्चेत [ ९१२ ]-वे सत्ताद् पनके स्वामी होकर बुद्धिलता रहित सामर्थ्यको सहायता करते हैं ।

२८ अ-प्रतिष्कृतः इन्द्रः दधीचः अस्यमिः नयती नय वृषाणि जघान [ ९१३ ]- जिसको कोई भी हथ नहीं सकता ऐंते इन्द्रने अद्वितीय शक्तिसे ९९ वर्षोंकी मारा, दानुको धारनेके लिए श्रमिने अपनी हठी राष्ट्रहितके लिए समर्पित की ।

२९ गोः चन्द्रमसः गुदे तंघुः अपीर्यं नाम इत्या अमन्वत् [ ९१५ ]- गवन करनेवाले चन्द्रमसके सपन पर सूर्यकी वृत्त किरणें इस प्रकार प्रकाशित होती हैं । सूर्यकी किरणें चन्द्र पर जाकर पड़ती हैं, वहासे उनका परावर्तन होकर रात्रिके समय पृथ्वीपर उस चन्द्रमसात् प्रकाश पड़ता है ।

३० ईशानाः धियः पिप्यते [ ९१७ ]- बुध दोनों ही स्वामी हो, इतलए हमारी बुद्धिको पूरी तरह विकसित करो ।

३१ हे नरा इन्द्राग्नी ! नः पापत्वाय मा, अभि-शस्तये मम, रीरपते [ ९१८ ]- हे नेता, हम्र और अग्निजी ! हमें पापके कायोंमें मत लगाओ, हिता करनेमें प्रयुक्त न करो, तथा बिगदाके कायोंमें भी मत युक्त करो ।

३२ युषा कविः मिथः अदाभ्यः संशोभते [ ९२० ]- बलवान् कवि, प्रिय, तथा न दबाया जानेवाला होता है, पर बुजोर्भित होता है ।

३३ धिया हितः धर्मणा आम्हः [ १२१ ]- बुद्धिसे जो हितकरक है, वह अपने गुण धर्मसे उन्नत होता है ।

३४ पुष्पिण मां नि अक्वचरन्ति तान् परिधीन् अति इदि [ १२२ ]- बहुतसे दुष्ट जन्तु मुझे कष्ट देते हैं, उन्हें दूर कर ।

३५ ते घृणा तपन्त्यं अति पतिम [ १२३ ]- तू अपने तेजसे चमकता है, ऐसा हम देखते हैं ।

३६ चिचर्षणिः विश्वाः सुधः अजग्धीत् [ १२४ ]- बिजोष निरोक्षण करनेवाला अपने सब शत्रुओंको हराता है ।

३७ धिमे धीतिभिः शुम्भन्ति [ १२५ ]- उस सानोको सब विद्वान् स्तुतिधोसे सुतोभित करते हैं ।

३८ धृया इन्द्रः ध्रुवे सर्वसि स्त्रीसि [ १२६ ]- बलवान् इन्द्र त्विर मन्त्रां बँधता है ।

३९ अस्मभ्यं महां सहस्रिणं रथि विश्वतः आ यवस्य [ १२७ ]- हमें महात्, हजारों प्रकारके पशु चारों ओरसे लाकर दे ।

४० ते शुभ्यः चावः मद् य अस्ति, येन धृप्रणि हंसि [ १२८ ]- तेरा शोध और उत्तम उत्तम है, उससे तू शत्रुको मारता है ।

४१ पित्र्याः पुतनाः अमिभूतर् इन्द्रं मरः सजुः ततधुः [ १२९ ]- सब शत्रुके संगिकोंको हरावाले इन्द्रको सब लोग मिल करके स्तुति करते हैं ।

४२ राजसे जज्जुः [ १३० ]- उसका तेज बढ़ाने है ।

४३ त्र्येधे चरे स्थेमनि, आमुर्णि उग्रं भोजस्विनं, तरसं तरस्विनं [ १३१ ]- अपने कार्यसे श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले, शत्रुको मारनेवाले, उग्र और महा बलवान्, श्रेष्ठ और शीघ्रतासे कार्य करनेवालेको स्तुति की जाती है ।

४४ धिमाः अभिस्तरे मेर्गे नेमि नमन्ति [ १३२ ]- सानो महान् स्वरसे अधिकमान् और व्यापक इन्द्रको नमस्कार करते हैं ।

४५ सु-द्वितयः अ-दुहः यः तरस्विनः कर्णे ऋचभिः सं [ १३३ ]- उत्तम तेजस्वी और ब्रह्म न करनेवाले सुत शीघ्रतासे इन्द्रके कार्मोत्तम गर्हचनेवाले स्वरसे द्राघ मन्त्रसे उसकी स्तुति करो ।

४६ यत् रयःपनि-पुषे, घृतवतः ओजसा ऊतिभिः सं [ १३४ ]- जब स्वर्गवा रवाधो इन्द्र अन्नका संवर्धन करना चाहता है, तब विषमोक्ष बलन करनेवाला इन्द्र अपने सामर्थ्यसे और संरक्षणसे शत्रुओंसे युक्त होता है ।

४७ चर्यणीनां राजा अभिमुः, विश्वासां पुतनानां तस्ता बुधहा ज्येष्ठं गृणे [ १३५ ]- अनुष्णोपा शासक, प्रपति करनेवाला, सब शत्रुकी सेनाओंसे पार करानेवाला इन्द्र है, उस श्रेष्ठ इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ।

४८ पुष्टहृन्-मनः । अवसे ते इन्द्रं शुम्भ [ १३६ ] - हे शत्रुके मारनेवाले इन्द्रके उत्तम ! अपने सरसङ्गके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ।

४९ यसा विचर्तरि दिता [ १३७ ]- जिसकी तरक्षण दानित्वे दोनों प्रकारकी दानित्वा है । एक शत्रुके विनाश करनेकी दानित और दूसरी भक्त पर दिया करनेकी दानित ।

५० महान् दर्शतः यजः हस्तेन प्रतिधायि [ १३८ ] - बहान् दर्शनीय वस्त्रको वह हाथसे धारण करता है ।

५१ शुचि जातः मही प्रतावुधा मानरा अरोच्यत् [ १३९ ]- युद्ध हुआ हुआ अपनी बड़ी, सफ बजानेवाली माताओंको प्रकाशित करता है ।

५२ शुभ्रचमः रवं अनिमानि अमृततयाय [ १४० ] - अत्यंत तेजस्वी तू अपने जन्ममें अमृत-रसकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न कर ।

५३ अस्य क्रत्या यशस्वन्तः [ १४१ ]- इसके पुत्रवायं प्रत्यक्ष से हम यशस्वी होते हैं ।

५४ अयं विश्वाः श्रियः भमि पत्यते, नः धावी उपा-गमत् [ १४२ ]- यह सब ऐश्वर्यसे युक्त है, वह हमारे पास लाने के साथ आये ।

५५ यत् हरी यच्छले स्वत् रथीतरः न किं [ १४३ ] - जिस कारण तू अपने शत्रुओं की घोड़े रथमें जोड़ता है, उस कारण तेरी अपेक्षा उत्तम रथी और और दूसरा कोई नहीं है ।

५६ मज्जना रथा मनु न किं [ १४४ ]- बलने तेरे सामान कोई दूसरा नहीं है ।

५७ सु अग्र्यः न किं आनरो [ १४५ ]- उत्तम घोड़े चालनेवाला कोई दूसरा नहीं है ।

५८ ज्येष्ठं सहः नमस्यत [ १४६ ]- शत्रुकी हराने-वाले बलकी धारण करनेवाले इन्द्रकी नमस्कार करो ।

५९ तुरापाद इन्द्रः वृजं जघान [ १४७ ]- शीघ्रतासे शत्रुकी हरानेवाला इन्द्र शत्रुको मारता है ।

६० यनिः न यल विधेभ्य [ १४८ ]- संघर्षी युद्धमें सयान बल नामक राजसूरी मारता है ।

६१ शुभुः न शत्रुन् सासते [ १४९ ]- मनुने सामान शत्रुकी हराता है ।



## उपमा

अथ इत अप्यायमे जितनी उपमायें हैं, उनको देखें—

१ दिवः चिधे त-पतुं न [ ८८९ ]- आकाशमें जित प्रकार बिजली चमकती है, उसी प्रकार ( पयमानः नृहव वैश्वानरं ज्योतिः ) सोमका महान् और विश्वका नेतृत्व करनेवाला तेज फैलता है।

२ गायः न [ ८८९ ]- गायके समान - गायके ब्रूषके समान ( भूर्गयः एषाः अप्यासः कृष्णं त्यक्षं अपश्यन्तः प्र अक्षमु. ) शीघ्रगामी तथा तेजस्वी सोमरस काली छालकी बूर करते हुए मोचके बर्तनमें गिरता है। गायका ब्रूष सोमरस में जब मिलाया जाता है, तब सोमका काला रंग बूर होता है और वह सोम मोचके रत्ने बर्तनमें पड़ता है।

३ वृष्टेः स्वनः इव [ ८९४ ]- वृष्टिका जैसा शब्द होता है, उसी प्रकार ( पयमानस्य श्रूयते ) सोमका शब्द सुनाई देता है।

४ सूर्यः रश्मिभिः उपा- न [ ८९६ ]- सूर्य अपनी किरणोंसे उषःकालके बाद बिस्वको जैसे व्याप्त करता है, वैसे ही ( चिचर्यणे । मही रोदसी आ धूष ) है समको फैलनेवाले सोम। तू इस महान् घावपुमिबीको [ अपने तेजसे ] भर दे।

५ धिष्टपं रसा इव [ ८९७ ]- इस भूलीककी जित प्रकार पानी व्याप्त करता है, उसी प्रकार ( हे सोम ! धारया विश्वतः परि सर ) है सोम ! तू अपनी रसकी धाराले चारों ओर व्याप्त हो।

६ अञ्जलं वृष्टिः इव [ ९१६ ]- मेघके जैसे वृष्टि होती है, उसी तरह ( इयं पूर्व्यस्तुतिः अहव प्रमनः अञ्जलि ) यह अग्रवर्ग स्तुति इस बिडम्बने हुई है।

७ ते पृथा तपन्ते परं सूर्ये दक्षुना इव अति पतिम [ ९२३ ]- अपने तेजसे चमकनेवाले दूरके सूर्यको जैसे पथी देखते हैं, उसी प्रकार ( मे चमकनेवाले सोमको देखता हूँ।

८ अर्वा न [ ९२७ ]- घोडा जैसे आनन्द देता है, उसी प्रकार ( अग्निः यत् सुपाय ) पशुवर जो सोमका रस निम्नलते हैं, वह तुझे आनन्द देता है।

९ देवः सूर्यः न [ ९३४ ]- सूर्य देव जैसा तेजस्वी है, उसी प्रकार ( दूर्वातः महान् वज्रः ) दूर्वातोष महान् ध्वज तेजस्वी है।

१० ससिः न [ ९४२ ]- जैसे घोडा मुदमें जाता है, उसी प्रकार ( पुमानः वार्यं जनयम् आसिप्यत् ) छात्र जानेवाला सोम शब्द करता हुआ कर्तसेमें जाता है।

११ सिन्धुः घावः ऊर्मि न [ ९४५ ]- जित प्रकार नदी चमक करती हुई बहती है, उसी प्रकार ( पयमानः स्तोमान् प्रावीयिषत् ) छात्रा जानेवाला सोम स्तुतिमेंकी प्रेरित करता है।

१२ एषा सक्ष्या कृपा इव [ ९४७ ]- जित प्रकार बछड़े साचनेसे लकड़ीको सुखर बनाता है, उसी प्रकार ( अयं नः आ मुयत् ) यह अग्नि हमें सुखर बनाती है।

१३ दिवः न [ ९५३ ]- धुलीकते जैसे प्रकाश पाता है, उसी प्रकार ( सुतस्य मयः ) सोमरससे आनन्द मिलता है।

१४ स्वाः न [ ९५३ ]- स्वर्गाय आनन्दके समान सोमका आनन्द है।

१५ नदयं न [ ९५३ ]- नवीन होमके समान ( जठरं पुण्ड्रव्य ) अपना घेठ भरकर सोमरस पी।

१६ मित्रः न [ ९५४ ]- मित्र जैसे सहायता करता है, उसी प्रकार ( इन्द्रः वृष्टं जघान ) इन्द्रने वृषको मारकर सहायता की।

१७ यतिः न [ ९५४ ]- संवसो घोर जैसे शत्रुको मारता है, उसी प्रकार इन्द्रने ( गलं विमेद् ) बल रालसको मारा।

१८ भुवः न [ ९५४ ]- भूय जैसे शत्रुका नाश करता है, उसी तरह इन्द्र ( शत्रुन् स्वासहे ) शत्रुका पराभव करता है।

इस प्रकार इस अप्यायमें उपमायें आई हैं।

## पञ्चमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
८८६	१।८१।४	अकृष्टा मायाः	पथमानः सोमः	जगती
८८७	१।८१।६	अकृष्टा मायाः	"	"
८८८	१।८१।५	अकृष्टा मायाः	"	"
८८९	१।६१।१६	अमहोयुरागिरसः	"	वायवी
८९०	१।६१।१८	अमहोयुरागिरसः	"	"
८९१	१।६१।१७	अमहोयुरागिरसः	"	"
८९२	१।४१।१	मेघ्यातिथिः काश्वः	"	"
८९३	१।४१।२	मेघ्यातिथिः काश्वः	"	"
८९४	१।४१।३	मेघ्यातिथिः काश्वः	"	"
८९५	१।४१।४	मेघ्यातिथिः काश्वः	"	"
८९६	१।४१।५	मेघ्यातिथिः काश्वः	"	"
८९७	१।४१।६	मेघ्यातिथिः काश्वः	"	"

( २ )				
८९८	१।३१।१	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
८९९	१।३१।२	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९००	१।३१।३	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९०१	१।३१।४	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९०२	१।३१।५	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९०३	१।३१।६	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
९०४	१।६५।१	भृगुर्वादिभिर्ममदन्विभिर्ममो वा	"	"
९०५	१।६५।२	भृगुर्वादिभिर्ममदन्विभिर्ममो वा	"	"
९०६	१।६५।३	भृगुर्वादिभिर्ममदन्विभिर्ममो वा	"	"

( ३ )				
९०७	५।११।१	सुतंभर आश्वेयः	अग्निः	अगती
९०८	५।११।२	सुतंभर आश्वेयः	"	"
९०९	५।११।३	सुतंभर आश्वेयः	"	"
९१०	२।४१।४	गृत्तमदः सोमः	मित्रावरुणौ	वायवी
९११	२।४१।५	गृत्तमदः सोमः	"	"
९१२	२।४१।६	गृत्तमदः सोमः	"	"
९१३	१।८४।१३	गोममो राहुगणः	इन्द्रः	"
९१४	१।८४।१४	गोममो राहुगणः	"	"
९१५	१।८४।१५	गोममो राहुगणः	"	"
९१६	७।९४।१	वसिष्ठो भृगोवरुणः	इन्द्राग्नी	"
९१७	७।९४।२	वसिष्ठो भृगोवरुणः	"	"
९१८	७।९४।३	वसिष्ठो भृगोवरुणः	"	"

( ४ )				
९१९	९।१५।१	दुश्श्वन् आगस्त्यः	वसवः सोमः	वायवी
९२०	९।१५।२	दुश्श्वन् आगस्त्यः	"	"
९२१	९।१५।३	दुश्श्वन् आगस्त्यः	"	"

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदवाचन	ऋचिः	देवता	छन्दः
पृष्ठ	२११०७२९	सप्तमर्थः	पद्मानः सोमः	प्रगाथः ( विपमा बृहती, समा सती बृहती )
७६३	५११०७१०	सप्तमर्थः	"	"
७६४	५११०७११	बृहन्मतिरागिरसः	"	गायत्री
७६५	५११०७१२	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
७६६	५११०७१३	बृहन्मतिरागिरसः	"	"
( ५ )				
७६७	७१२२११	वसिष्ठो भृगवावर्णिः	इन्द्रः	विराट्
७६८	७१२२१२	वसिष्ठो भृगवावर्णिः	"	"
७६९	७१२२१३	वसिष्ठो भृगवावर्णिः	"	"
७७०	८१३०११०	रेभः काश्यपः	"	अतिजगती
७७१	८१३०१११	रेभः काश्यपः	"	उपरिष्टाद्बृहती
७७२	८१३०११२	रेभः काश्यपः	"	"
७७३	८१३०११३	रेभः काश्यपः	"	"
७७४	८१३०११४	बृहन्मा आगिरसः	"	प्रगाथः ( विपमा बृहती, समा सती बृहती )
७७५	८१३०१२	बृहन्मा आगिरसः	"	"
( ६ )				
७७६	९१५११	असितः काश्यपो देवलो वा	पद्मानः सोमः	गायत्री
७७७	९१५१२	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
७७८	९१५१३	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
७७९	९१५०८१३	असितमसितः	"	काकुभः प्रगाथः ( विपमा ककुपु, समा सती बृहती )
७८०	९१५०८१४	ऊररागिरसः	"	"
७८१	९१५०८१५	अग्निःचाक्षुषः	"	उरिणः
७८२	९१५०८११६	अग्निरवाक्षुषः	"	"
७८३	९१५०८११७	अग्निःचाक्षुषः	"	"
७८४	९१५०८११८	अतर्द्वो देवोरासिः	"	त्रिष्टुप्
७८५	९१५०८११९	अतर्द्वो देवोरासिः	"	"
७८६	९१५०८१२०	अतर्द्वो देवोरासिः	"	"
( ७ )				
७८७	८११०२१७	प्रयोगो भार्यकः	अग्निः	गायत्री
७८८	८११०२१८	प्रयोगो भार्यकः	"	"
७८९	८११०२१९	प्रयोगो भार्यकः	"	"
७९०	८१८४१४	गोतमो राहुमणः	इन्द्रः	अद्भुद्
७९१	८१८४१५	गोतमो राहुमणः	"	"
७९२	८१८४१६	गोतमो राहुमणः	"	"
७९३	८१८४१७	गोतमो राहुमणः	"	"
७९४	८१८४१८	पावकोऽग्निर्बर्हिस्पत्यो वा, गृहपति- यविष्ठो सहस्रः पुत्रान्वतरो वा	"	गृध्रात्मकं सूतम्
७९५	८१८४१९	पावकोऽग्निर्बर्हिस्पत्यो वा, गृहपति- यविष्ठो सहस्रः पुत्रान्वतरो वा	"	"
७९६	८१८४२०	पावकोऽग्निर्बर्हिस्पत्यो वा, गृहपति- यविष्ठो सहस्रः पुत्रान्वतरो वा	"	"

## अथ पष्ठोऽध्यायः ।



अथ तृतीयमपाठके द्वितीयोऽर्घः ॥ ३ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ ( अष्टपदा वापावयः ) जयः नृपयः; २ वरयथो मारीचः; ३, ४, १३ अक्षितः काश्यपी देवलो वा;  
५ अमस्तारः काश्यपः; ६, १६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ अजयो वीतहृत्स्वः; ८ उदबक्रिरावैयः; ९ कुचमुतिः काश्यपः;  
१० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ११ प्रपुर्वीशभिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; १२ सप्तजयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ काश्यपी  
मारीचः, ३ गीतमो राहुगणः, ४ अश्विनो, ५ विश्वामित्रो वायिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वीतहृत्स्वो भृश-  
वदभिः ); १४, १५, २३ गीतमो राहुगणः; १७ ( १ ) उद्वत्तया आगिरसः, १७ ( २ ) कुतयया आगिरसः,  
१८ जित आरयः; १९ देवसूत काश्यपः; २० सप्तर्षिः; २१ वसुधुत आरयः; २२ गृध्रैश्च आनि-  
रतः ॥ १-६, ११-१३; १६-२० पवमानः सोमः; ७, २१ अग्निः; ८ मित्रावरुणौ; ९, १४-१५,  
२२-२३ इन्द्राः, १० इन्द्राग्नौ ॥ १, ७ जगती; २-६, ८-११, १३, १६ गायत्री; १२ मूहती,  
१४, १५, २१ ऋजुः; १७ काकुत्थः प्रगाथः ( विषमा ककुत्थः, समा सती मूहती );  
१८, २२ उज्जिह्वः; १९, २३ अनुष्टुप्; २० विष्टुप् ॥

९५५ गोविस्वस्व वसुविद्विरण्यवद्वेताधा इन्द्रो भुवनेष्वर्षितः ।  
रव्यं सुवीरो असि सोम विम्विचं त्वा नर उष गिरैश्च आसवे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८३।१९ )

९५६ नृचक्षा असि सोम विम्विचः पवमानः पृथग् तं वि षावसि ।  
स नः पवस्व वसुमद्विरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८१।२८ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ९५५ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! [ गो-विस्वः ] गायत्रीको पासर्वे रत्नवेवासा, ( वसु-विद् ) वनको पासर्वे रत्नवेवासा,  
( विरण्य-विद् ) सोनेको पासर्वे रत्नवेवासा ( वेतो-धाः ) धर्मं पारण करनेवाला ( भुवनेषु अर्षितः ) भुवनोंमें रहने-  
वाला ऐसा तू ( पवस्व ) उन्नता जा । हे ( सोम ) सोम ! तू ( सु-वीरः ) उत्तमवीर और ( विम्व-विद् ) सर्वं जानी  
( असि ) हँ, हे ( नरः ) नेता सोम ! ( तं त्वा ) उल्लेखिते ( इमे विद्य उपससते ) ये ऋत्विज स्तोत्रते उपससता  
करते हैं ॥ १ ॥

[ ९५६ ] हे ( पवमानः पृथग् सोम ) धृष्ट होनेवाले वल्लभक सोम ! ( रव्यं विम्विचः नृचक्षाः वासि ) तू सब  
प्रकारसे वसुधैव कुटुम्बकम् भागी है । ( तं वि षावसि ) जन्मे पास तू जाता है ( रव्यं नरः ) वह तू हमारे लिए ( पवस्व )  
उन्नता जा, उत्तमो महापताने ( चयं ) हल ( वसुमन् विरण्यवद् ) धन और भुवनेसे युवा होकर ( भुवनेषु जीवसे  
स्याम ) जीवनेमें जीवनेवाले हों ॥ २ ॥

१४ [ साम-हिन्दी भा-२ ]

९५७ ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्णः ।

तास्ते क्षन्तु मधुमधूतं पयस्त्व ब्रवे सोम तिष्ठन्तु कृष्यः ॥ ३ ॥ १ (खी) ॥

[ पा० ३१ । त० १ । स्व० ४ ] ( अ. ९।८६।१७ )

९५८ पवमानस विश्ववैश्व तै सर्गो असृषत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥ ( अ. ९।६४।७ )

९५९ केतु कृष्वे दिवस्पति विश्वा रूपाभ्यर्षति । समुद्रः सोम विन्यसे । ॥ २ ॥ ( अ. ९।६४।८ )

९६० जहानो धाचमिष्पति पवमान विश्वमणि । ऋन्दे देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ २ (पा) ॥

[ पा० १५ । त० १ । स्व० २ ] ( अ. ९।६४।९ )

९६१ प्र सोमासो अश्विपुः पवमानास इन्दवः । औणाना अप्सु युञ्जते ॥ १ ॥ ( अ. ९।१४।१ )

९६२ अमि गावो अश्विपुः पयता यतोः । पुनाना इन्द्रमाश्रत ॥ २ ॥ ( अ. ९।१४।२ )

९६३ प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृमिषतो वि नौर्यसे ॥ ३ ॥ ( अ. ९।१४।३ )

९६४ इन्दो यदग्निभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ( अ. ९।१४।४ )

[ ९५७ ] हे ( इन्दो ) सोम । ( ईशानः ) सत्रक स्वामी तू ( हरितः सुपर्णः युजानः ) हरे रणो भीम बलनेवाले धोर्धोको रयनें जोडकर ( इमा भुवनानि ) इन सब भुवनोंमें ( ईयसे ) जाता है । ( ताः ) वे ( ते ) तेरे रत ( मधुमत् धूतं पयः ) नीठे सीर जमकनेवाले जलोंमें ( क्षन्तु ) छाने आवें । हे ( सोम ) सोम । ( कृष्यः ) यज्ञ करनेवाले मनुष्य ( तय ब्रते तिष्ठन्तु ) तेरे बराकर्ममें सतन् रहें ॥ ३ ॥

[ ९५८ ] हे ( विश्ववैश्व ) सर्वत्र सोम । ( पवमानस्य ते सर्गः ) छनकर घुड़ होनेवाली तेरी पारखें ( सूर्यस्य रश्मयः इय ) सूर्यकी किरणें समान ( न प्रासृषत ) इस बलत मोषे फिर रही हैं ॥ १ ॥

[ ९५९ ] हे ( सोम ) सोम । ( समुद्रः ) पानीमें बिताया गया तू ( केतु कृष्वे ) तानका प्रसार करते हुए ( विश्वा रूपा ) सब कर्तते घुम होकर ( दिवः पति अभ्यर्षति ) अन्तर्लोक के पारंगते जाता है और हमें ( विन्यसे ) जनेक प्रकारके यम देता है ॥ २ ॥

[ ९६० ] हे ( पवमान ) घुड़ होनेवाले सोम । ( देवः सूर्यः न ) तेजस्वी सूर्यके तयान ( जहानः ) प्रकट होने-वाला तू ( धाचमिष्पति ) छननेसे ( ऋन्दे ) घन्य करते हुए ( धाचं इष्पति ) स्तुतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

[ ९६१ ] ( पवमानासः इन्दवः सोमासः ) छाने जानेवाले सोमरत ( माघमिषुः ) मोषके बर्तनमें गिरते हैं, ( औणानाः ) वे सोमरत हुए मिलकर ( अप्सु युञ्जते ) पानीमें पिछाये जाते हैं ॥ १ ॥

[ ९६२ ] ( गायः [ इन्दवः ] ) छाने जानेवाले सोमरत ( प्रयता यतोः ) नीठेने बर्तनमें आते हुए ( आपः न ) पानीसे समान ( नृमिषा अश्विपुः ) छननेसे नीठे छाने जाते हैं । ( पुनानाः ) छने हुए वे सोमरत ( इन्द्रं आश्रत ) इन्द्रको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

[ ९६३ ] हे ( पवमान सोम ) छाने जानेवाले सोम । ( इन्द्राय मादनः ) इन्द्रको प्रसाह देनेवाला तू ( अरमिषति ) छननेसे नीठे गिरता है, बारनें ( नृमिषः यतः ) अतिबलसे आरा ( विनीयसे ) सुयज्ञ स्थानके पास ले जाया जाता है ॥ ३ ॥

[ ९६४ ] हे ( इन्दो ) सोम । तू ( पयः अग्निभिः सुत ) जब पारखें आस बूटकर रत निजालनेके बाद ( पवित्रं परिदीयसे ) छननेसे बात ले जाया जाता है, तब ( इन्द्रस्य धाम्ने अरं ) इन्द्रने बैठमें जाने योग्य होता है ॥ ४ ॥

९६५ त्वं सोम नृमादनः पयस्व चर्षणीधृतिः । सस्त्रियो अनुमायः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२।४ )

९६६ पयस्व वृत्रहन्तम उक्थेमिरनुमायः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२।५ )

९६७ शुचिः पावक उक्थेत सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरयश्चखदा ॥ ७ ॥ २ ( हे ) ॥

[ घा० ४१ । त० नास्ति । ख० ८ ] ( ऋ. ९।२।७ )

॥ इति अथयः सप्तमः ॥ १ ॥

[ २ ]

९६८ मं कविदेववीतयेऽग्न्या मरिभिरग्न्यतः साह्यान्विषा अग्निं स्पृधः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२।१ )

९६९ स हि म्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्धति । पयमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२।२ )

९७० परि विभानि चेतसा मृज्यसे पयसे मयी । स नः सोम यत्रो विदः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२।३ )

९७१ अग्नये वृहदग्नौ मधवद्भ्यो ध्रुवश्चरयिम् । इषस्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२।४ )

९७२ त्वं राज्ञेय सुमतो गिरः सोमाविनेमिय । पुनानो वहे अद्भुत ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२।५ )

९७३ स बहिरागु दुष्टो मृज्यमानो गमस्तपोः । सोमश्चमूष सीदति ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२।६ )

[ ९६५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नृमादनः ) अनुष्ठांको ज्ञानम् देनेवाला ( चर्षणी-धृतिः ) अचिन्तिते द्वारा पालन किया गया ( त्वं पयस्व ) तु उज्जता जा, ( यः सस्त्रियः ) जो सोम शुद्ध और ( अनुमायः ) मर्गतवीर है ॥ ५ ॥

[ ९६६ ] हे सोम ! ( उक्थेमिः अनुमायः ) स्मरेति स्तुति करने योग्य ( अद्भुतः शुचिः पावकः ) अद्भुत, शुद्ध और पवित्र तु ( वृत्रहन्तमः पयस्व ) दायका नाम करनेवाला होकर पवित्र हो ॥ ६ ॥

[ ९६७ ] ( सुतः मधुमान् ) विभोका गया, मीठा ( शुचिः पावकः ) पवित्र, शुद्ध ( देवावीरः ) देवोंको दुष्ट करनेवाला और ( अय-शंस-दा सः ) यानी समुद्रोंका नाशक ऐसा वह सोम ( उक्थेत ) बणित होता है ॥ ७ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ९६८ ] ( कविः ) मानी सोम ( देव-वीतये ) देवोंके देनेके लिए ( अग्न्या मरिभः ) मेरेके बालोंकी छतनीके ( अग्न्यतः ) छाना जाता है । ( साह्यान् ) शत्रुको हारनेवाला सोम ( विभ्याः स्पृधः अग्निं ) सब दुष्टोंको हारता है ॥ १ ॥

[ ९६९ ] ( पयमानः ) पवित्र होनेवाला ( स हि रुम ) वह सोम ही ( जरितृभ्यः ) स्तुति करनेवालोंको ( गोमन्तं सहस्रिणं वाजं ) गायोंके युक्त हजारों प्रकारके अग्न ( आ इन्धनि ) देता है ॥ २ ॥

[ ९७० ] हे ( सोम ) सोम ! तु ( मयी ) हमारी स्तुतिके लिए ( मृज्यसे ) छाना जाता है, ( सः ) वह तु ( नः ) हमें ( चेतसा ) बुद्धिपूर्वक ( विभानि यत्रः विदः ) अनेक प्रकारके अर्थ वे ॥ ३ ॥

[ ९७१ ] हे सोम ! ( मधवद्भ्यः स्तोतृभ्यः ) पवनान् स्तोताओंके लिए ( वृहदग्नौ ) बहान् यगः ( ध्रुवश्चरयि ) हमारे धन ( अग्नये ) वे और ( इषं आ भर ) अग्नयी भरपूर वे ॥ ४ ॥

[ ९७२ ] हे ( चदे ) यत करनेवाले ( अद्भुत सोम ) अद्भुत सोम ! ( सुमतः पुनानः राजा इय ) उत्तम वर्ण करनेवाले पवित्र हृषयशले राजाके समान ( गिरः आ विनेमिय ) हमारी स्तुतिके तु स्वीकार करता है ॥ ५ ॥

[ ९७३ ] ( धर्मिः ) यत करनेवाला ( अग्न्य दुष्टोः ) जलमें मिलाना करनेवाला ( गमस्तपोः ) मृज्यमानः ( सीदति ) नाश किया जानेवाला ( सः सोमः ) वह सोम ( चमूष सीदति ) बर्तनमें नाशक रहता है ॥ ६ ॥

९७४ <sup>३ २ १ ३</sup> श्रीङ्ग<sup>२ २</sup>र्भ<sup>३ १</sup>खो न म<sup>३ १</sup>ध्व<sup>३ १</sup>ः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत्सोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ ४ ( को ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ १।२०।७ )

९७५ यवयवं नो अन्धसा पुष्टं पुष्टं परि स्रज । विश्वा च सोम सौमिमा ॥ १ ॥ ( ऋ १।५५।१ )

९७६ इन्द्रो यथा तव स्तवो यथा वे जातमन्वसः । नि वीहिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥ ( ऋ १।५५।२ )

९७७ उत नो गोविदश्चमित्पवस्व सोमान्वसा । मक्षुतमेभिरहमिः ॥ ३ ॥ ( ऋ १।५५।३ )

९७८ यो जिनाति न जीयते हन्ति स्रजुमगीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ ५ ( हि ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ १।५५।४ )

९७९ यास्ते घारा मधुध्रुवोऽमृगमिन्द ऊतये । तामिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥ ( ऋ १।५५।७ )

९८० सो अर्धेन्द्राय पीतये तिरौ वारण्यवया । सीदमृतस्य योनिमा ॥ २ ॥ ( ऋ १।५५।८ )

९८१ त्वं सोम परि स्रज रक्षादिष्टो अङ्गिरोम्यः । वरिवोविद्वत् पयः ॥ ३ ॥ ६ ( हि ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ १।५५।९ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ९७४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( श्रीङ्ग ) खेल करनेवाला ( मध्व-न ) यज्ञके समान ( मध्व-युग् ) बाण देनेकी इच्छा करनेवाला तू ( स्तोत्रे ) स्तुति करनेवालेको ( सुवीर्यं दधत् ) उसका बीरता देकर ( पवित्रं गच्छसि ) छलनी पर जाता है ॥ ७ ॥

[ ९७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नः ) हमारे लिए ( पुष्टं पुष्टं यव यवं ) अत्यधिक पीटिय रसको ( अन्धसा परिभ्रज ) अन्नकी धारसे बहुला रह ( च ) और ( विश्वा सीममा ) सब पेश्वर्य है ॥ १ ॥

[ ९७६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( ते अन्धस स्तव ) तेरे अन्नके स्तोत्र ( तव यथा जातं ) तैरे लिए जैसे बनये गए है, उसी श्रेयके साथ तू ( प्रिये वीहिषि निपद् ) प्रिय आशय पर बैठ ॥ २ ॥

[ ९७७ ] ( उत सोम ) और हे सोम ! ( न ) हर्षे तू ( मक्षुतमेभिः अहमि ) बहुत जरूरी ही ( गो-वित् ) गाय देनेवाला ( अयश्चित् ) घोड़े देनेवाला, ( अन्धसा पवस्व ) और अन्न देनेवाला ही ॥ ३ ॥

[ ९७८ ] हे ( सहस्रजित् ) हजारों शत्रुओंको जीतनेवाले सोम ! ( य जिनाति ) जो तू शत्रुओंकी जीतता है और ( शत्रुं अमीत्य हन्ति ) शत्रुपर आक्रमण करके उन्हें मारता है, पर ( स जीयते ) स्वयं शत्रुसे बननी जीता नहीं जाता ( स पवस्व ) ऐसा वह तू पारसे छनता जा ॥ ५ ॥

[ ९७९ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( ते ) तेरी ( मधुध्रुवः या घारा ) मोठी रसकी ओ घारायें हैं, वे ( ऊतये अमृगमन् ) सरसणके लिए हैं, ( तामिः पवित्रं मासद ) उन घाराओंके साथ तू छलनी पर चढ़ ॥ १ ॥

[ ९८० ] हे सोम ! ( सः ) वह तू ( अर्धया घारायि ) मेरेके बाओंकी बनने छलनीसे ( तिरः ) छनता है, ( मृतस्य योनिं मासीद्वत् ) यज्ञके स्थानपर बैठकर ( इन्द्राय पीतये अर्थ ) इन्द्रके पीनेके लिए तू तैय्यार हो, छन ॥ २ ॥

[ ९८१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( रक्षादिष्ट ) तू रक्षादिष्ट है, और ( वरिवो-वित् ) यन् देनेवाला है, इसलिए तू ( अंगिरोम्यः ) अंगिरादमियों के लिए ( घृतं पयः परिभ्रज ) तेजस्वी ब्रज दे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

- ९८२ तव श्रियो वर्धयेव विद्युतोऽग्नेश्चिक्त्र उपसाभिवातयः ।  
यदोषधीरभिसृष्टो यनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नासासनि ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।९।१५ )
- ९८३ यातोपजृत् हविता वशाः अनु वृष्टु वदन्वा वैविषदित्विष्टे  
आ ते यत्नन्ते रडवोरेयथा पृथक् शवाश्च्यप्रे अजरस्य धक्षतः ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।९।१७ )
- ९८४ मेघाकारं विदधस्य प्रसाधनमग्निहोतारं परिभूतं मतिम् ।  
स्वामभस्य हविषः समानमिच्छां महा वृणते नान्यं त्वत् ॥ ३ ॥ ७ ( यु ) ॥  
[ घा० १२ । उ० १ । २५७ ६ ] ( ऋ. १०।९।१८ )
- ९८५ पुरूरुणा विदधस्त्वयो नूनं वां वरुण । मित्रं वक्षसि वाऽस्तुमतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।७०।१ )
- ९८६ ता वाः सम्प्रमद्रुद्धाणिषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्वाम ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।७०।२ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ९८२ ] हे अग्ने ! ( यात् ) जब तू ( ओषधीः यनानि च ) ओषधी और बन ( अमित्राष्टः ) जलानेके लिए सेता है, ( स्वयं आसनि ) तब स्वयं अपने मंहमें ( अग्नें परिचिनुषे ) स्वयं और नयनकरपी नगलके अन्नको डालता है, उस समय ( तय श्रियः ) ऐसी किरणें ( वर्धयेव विद्युतः इव ) वर्षाकालमें बिजलीके समान ( उपसां ऊतयः ह्य ) अपनी उप-कालके प्रकाशके समान ( चिक्त्रिये ) चीलने लगती ह ॥ १ ॥

[ ९८३ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( यात् यातोपजृत् ) जब तू वायुके द्वारा कंसाया जाता है, तब ( वशान् अनु ) म्रिय बनस्पतियोंमें ( वृष्टु इत्यतः ) भीम मंदित होकर ( अघा येमिपत् ) अपने अघको घेरता है, और ( वितिष्टते ) वहीं पर रहता है, तब ( अजरस्य धक्षतः ते ) बुझापाहलित लवणके समान भस्म करनेकी इच्छावाले तेरे ( शवांसि ) तेज ( च्यप्रे ) घटा ( शवा ) रखकर घटे हुए चीरके समान ( पृथक् आधतन्ते ) पृथक् पृथक् बढते हुए बिनाई देते ह ॥ २ ॥

[ ९८४ ] ( मेघाकारं ) बुद्धिकी बजनेवाले ( विदधस्य प्रसाधनं ) यवके साधन ( होतारं ) देवोंकी बुलाकर लानेवाले ( परि-भू-तं ) शत्रुके पराजय करनेवाले ( मतिं ) बुद्धिके प्रेरक ( व्यग्रिं ) अग्निकी हम प्रार्थना करते ह ॥ हे अग्ने ! ( स्वां इत् ) तुझे हो ( अमभस्य हविषः ) योदेते हविष्यान्नको लानेके लिए ( स्वयं इन् महाः ) और तुझे हो बहुतसी हवि लानेके लिए ( स्वामां वृणते ) प्रयत्न होकर प्रार्थना करते ह, बुलाते ह, ( त्वत् अन्यं न ) तेरे निषाय भीर किसी देवता को नहीं बुलाते ॥ ३ ॥

[ ९८५ ] हे मित्र और वरुणो ! ( वां ) तुम दोनोंके ( पुरूरुणा अघः ) बहुतसे संरक्षणके साधन ( नूनं अस्ति ) निरक्षयते ह, वह ( दि ) प्रसिद्ध हो है, ( चिह् ) और ( वरुण मित्र ) हे मित्र और वरुण ! हमें ( वां तुममि वंसि ) तुम्हारी अनुज्ञा और उत्तम बुद्धि प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ ९८६ ] हम स्वता ( अ-द्रुद्धाणां ) डोह व करनेवाले ( ता वां ) तुम दोनोंकी ( स्वयम् ) अपनी तरह स्तुति करते ह । ( वयं ) हम ( वां मित्रा स्वाम ) तुम्हारे मित्र हों भीर ( इव ) अन्नको ( च धाम ) और स्थानको ( अश्याम ) प्राप्त करें ॥ २ ॥



९८७ पातं नो मित्रा पापुमिरुत प्रायेथाश्सुजात्रा । साक्षाम दस्युं तन्मिः ॥ ३ ॥ ८ ( य ) ॥  
[ पा० १२ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।७०।१२ )

९८८ उचिमुद्राजसा सह पीत्वा शिघ्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७६।१० )

९८९ अलु स्वा रोदसी उभे स्पर्धमान मदेताम् । इन्द्र यदस्युहामवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७६।११ )

९९० वाचमष्टापीदमहं नवस्रक्तिमृतावृषम् । इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥ ३ ॥ ९ ( ही ) ॥  
[ पा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।७६।१२ )

९९१ इन्द्राग्नी युषामिमेरेऽग्निं स्तोमां अनुषत । पिवत्तंश्चमूधवा सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१०।७ )

९९२ या वाक्षन्ति पुरुषपूहो नियुता दाजुषे नरा । इन्द्राग्नी तामिरा गतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।६०।८ )

९९३ तामिरा गच्छतं नरोपेदस्सवनस्सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ( हा ) ॥  
[ पा० ११ । उ० नास्ति० । स्व० १ ] ( ऋ. ६।६०।९ )

॥ इति सुतोषः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

९९४ अपो सोम घृमत्तमौऽग्निं द्रोणानि रोहवत् । सीदन्त्योनी वनेष्वा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६९।१९ )

[ ९८७ ] हे ( मित्रा ) मित्र और वरुणों । तुम ( नः ) हमारी ( पापुमिः पातं ) सरलपके साधनंति रक्षा करो, ( उत ) और ( सुजात्रा प्रायेथां ) उत्तम संरक्षण करनेवाले तुम हमारा पालन करो, हम भी ( तन्मिः ) अपने धार्तरिक सामर्थ्येति ( दस्युन् साक्षाम ) शत्रुता पराम्भ करो ॥ ३ ॥

[ ९८८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( चमू सुतं सोमं पीत्वा ) बर्तनमें रके हुए सोमरसको पीकर ( ओजसा सह उत्तिष्ठन् ) बल लगाकर उठकर ( शिघ्रे अवेपयः ) अपनी दुष्टोंको हिला ॥ १ ॥

[ ९८९ ] हे ( स्पर्धमान इन्द्र ) स्पर्धा करनेवाले इन्द्र ! ( स्वा अलु ) तेरे अनुकूल ( उभे रोदसी ) दोनों ही युक्तों और पृथ्वीलोक ( मदेतां ) आनन्दित होते हैं ( यत् ) जब तू ( वस्युहामवः ) शत्रुता प्राप्त करनेवाला होता है ॥ २ ॥

[ ९९० ] ( अष्टापीदं ) अष्ट वरणकी ( नव-स्रक्ति ) नई वरपवति युक्त ( मृता-वृषं ) सत्यको बडानेवाली ( तान्यं यावत् ) ठोटी ही स्तुति ( अहं गिरामे ) मैं करता हूँ ॥ ३ ॥

[ ९९१ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( युतां ) तुम दोनोंकी ( इमे स्तोमाः अभ्यनुषत ) मैं स्तुति करनेवाले स्तुति करते हैं, हे ( दा-सुवा ) तुम देनेवाले इन्द्र और अग्नि ! ( सुतं पिवत्तं ) सोमरसको पिरो ॥ १ ॥

[ ९९२ ] ( नरा इन्द्राग्नी ) हे नेता इन्द्र और अग्ने ! ( यां ) तुम दोनोंके ( पुष-स्युहः ) बहुरों द्वारा मर्त्ता करनेके योग्य ( दाजुषे ) दान देनेवालेकी सहायताके लिए ( तामिः नियुताः सन्ति ) जो घोषित हैं ( सोमिः आगतं ) अग्नी सहायताके यहाँ आओ ॥ २ ॥

[ ९९३ ] हे ( नरा इन्द्राग्नी ) नेता इन्द्र और अग्ने ! ( इदं सुतं स्वयं उय ) इस धृष्ट किए गए सोमरसके पाप ( सोम-पीतये ) सोम पीनेके लिए ( तामिः आगच्छन्तं ) उन घोषितोंके साथ आओ ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ९९४ ] ( सोम ) हे सोम ! ( घुमत्तमः ) वेगवती तू ( घनेषु योनी आसीदन् ) लज्जिते पात्रमें रहकर ( द्रोणानि अग्निं ) द्रोण बलवते ( रोदयत् अये ) दाम्य करते हुए जा ॥ १ ॥

९९५ अस्ता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्पन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।६९।२० )

९९६ इयं तौकाय नो दधदसाम्ब ॥ सोम विंशतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ ११ ( ला ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६९।२१ )

९९७ सोम उ ध्वाणः सोमभिरसि ष्युभिरवीनाम् ।

अभयेव हरिता याति भारया मन्द्रया याति धारया ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७०।८ )

९९८ अनूपे गोमान् गोभिरथाः सोमो दुग्धाभिरथाः ।

समुद्रं न संपरान्वागमन्मन्दी मदाय सोमवे ॥ २ ॥ १२ ( क ) ॥

[ धा० १५ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।७०।९ )

९९९ परसोम चित्रद्रव्यं दिव्यं पार्थिवं यजुः । तस्य पुनान आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७१।१ )

१००० द्रुपा पुनान आयुधं स्तनयमधि बहिधि । हारी सन्योनिमासदः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७१।२ )

१००१ पुबध्वि स्यः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना विप्यते धियः ॥ ३ ॥ १३ ( पु ) ॥

[ धा० १५ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ. ९।७१।२ )

॥ इति चतुर्थं सूक्तम् ॥ ५ ॥

[ ९९५ ] ( अस्ता ) पानीचे क्षाम मिले हुए ( सोमः ) सोमरस ( इन्द्राय वायवे ) इन्द्र, वायु ( वरुणाय मरुद्भ्यः ) वरुण, मरुत ( विष्णवे अर्पन्तु ) और विष्णुके लिए कलसेमें गावें ॥ २ ॥

[ ९९६ ] हे ( सोमः ) सोम ! ( तौकाय ) हमारे पुत्रोंके लिए ( दधदसाम्ब ) अन्न दे, ( सहस्रिणम् ) हजार प्रकारके वन ( विंशतः ) अस्त्रार्थों का शतक ( नो दधदसाम्ब ) भारों औरसे हमारे लिए लाल दे ॥ ३ ॥

[ ९९७ ] ( सोमभिरसि ) सोमरस तैयार करनेवाले ऋत्विगोंके द्वारा ( ध्वाणः सोमः ) निबोका गया सोमरस ( अष्योमि ष्युभिः ) भैंसे बालोंकी बनी छलनीसे ( अषि याति ) वेगसे छाया जाता है, यह रस ( उ ) निरूपणसे ( अभ्यया दध ) पीछेके समान ( हरिता धारया ) हरे रंगकी धारसे ( मन्द्रया धारया ) आनन्ददायक धारसे ( याति ) कलसेमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ९९८ ] ( गोमान् सोमः ) गावोंसे युक्त सोम ( अनूपे गोभिः अक्षः ) कलसेमें गावचे घृष्टके ताप दृढता है, ( सोमः दुग्धाभिः अक्षः ) सोम घृष्टके क्षाप दृढता है, ( समुद्रे न ) जिस प्रकार समुद्रमें गरिया गिरती है वही प्रकार ( संपरान्वागमन् ) सोमरसलक्ष्मी अन्न कलसेमें गिरता है, ( मन्दी मदाय सोदाते ) आनन्ददायक सोम आनन्द प्राप्तिके लिए कूटा जाता है ॥ २ ॥

[ ९९९ ] ( सोमः ) सोम ! ( यजुः ) जी ( विष उक्त्यर्थं दिव्य ) वित्तसम्पन्न, प्रज्जलवीर्य और दिव्य ( पार्थिवं यजुः ) ऐसा पृथ्वीके ऊपर वन है ( तत् ) वह वन ( पुनान न आभर ) घुड़ होनेवाला वृ हमें भरपूर दे ॥ १ ॥  
[ १००० ] ( आयुधं पुनानम् ) आयुधोंकी पवित्र करनेवाला ( द्रुपा स्तनयन् ) बलसे शक्ति करता हुआ हे सोम ! ( अधि बहिधि ) आगमन पर ( हरिः सन् ) हरे रंगका होता हुआ तू ( योनि मासदः ) अपने स्थान पर बैठ ॥ २ ॥

[ १००१ ] ( सोम च इन्द्रः ) हे सोम और इन्द्र ! ( युयु हि स्य पती स्य ) तुम दोनों निरूपणसे लक्षके स्वामी हो, ( गोपती ईशाना ) गोपालक और ऐन्द्रियोंके स्वामी ऐसे तुम ( धिय विप्यते ) हमारे बुद्धियोंके पुष्ट करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

- १००२ इन्द्रो मदाय वावृषे श्वसे वृजहा नृभिः ।  
तमिन्महत्स्वाभिजिपूतिमर्षं हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥ ( ऋ १।८।१।१ )
- १००३ असि हि वीर सैन्योऽसि भूरि पराददिः ।  
असि दभस्प चिदृषो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि वे वसु ॥ २ ॥ ( ऋ १।८।१।२ )
- १००४ यदुदीरत आजयोः धृष्णवे धीपते धनम् ।  
पुद्गृष्या मद्व्युता हरी कः हनः कः वसो दधोऽस्माँ इन्द्र वसो दधः ॥ ३ ॥ १४ ( सु ) ॥  
[ घा० २६ । उ० २ । २१० ५ ] ( ऋ १।८।१।३ )
- १००५ स्वादोरित्था विपुवतो मघोः पिबन्ति गौर्यः ।  
या इन्द्रेण सयावरीवृष्णा मदन्ति शोभया वस्तीरु सुवराज्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ १।८।४।१० )
- १००६ ता अस्य पृथनायुवः सोमश्चीनन्ति पुंश्रवः ।  
प्रिया इन्द्रस्य घेनवा यज्ञश्च हिन्वन्ति सायकं वस्तीरु सुवराज्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ १।८।४।११ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १००२ ] ( वृष-हा इन्द्रः ) समुनागाक इन्द्र ( मदाय दावले ) आनन्द तथा बलकी प्राप्तिके लिए ( सुभिः वावृषे ) याजकों द्वारा ही और अधिक महान् किया गया है, ( श्व इव ) उसके पाससेही ( महत्सु भाजिषु ) महान् सन्ध्यामें और ( अर्भे ) छोटे युद्धोंमें ( ऊर्ति हवामहे ) हम सरक्षण मागते हैं, ( स- वाजेषु ) वह युद्धमें ( नः प्राविषत् ) हमारा परक्षण करे ॥ १ ॥

[ १००३ ] हे ( वीर ) वीर इन्द्र ! ( सैन्य- असिः ) तू सैनिक है, इसलिए ( भूरि पराददिः असि ) शत्रुका बहुतसा धन हर्षण करनेवाला है, ( दभस्प चिदृषः ) छोटोंको तू महान् करनेवाला है । ( सुन्वते यजमानाय शिक्षसि ) गोमयाग करनेवाले यजमानोंको तू धन देता है, क्योंकि ( ते भूरि वसु ) तेरे पास बहुतसा धन है ॥ २ ॥

[ १००४ ] ( यत् आजयः उदीरते ) जब युद्ध चलप्र होते हैं तब ( धृष्णवे धेना धीपते ) बिजयी वीरकी धन मिलता है, हे इन्द्र ! युद्धके समय ( मद्व्युता हरी पुंश्रवः ) यह धूमनेवाले छोटे रथमें और । ( कः हनः ) किसको मारता है वीर ( कः वसो दधः ) जिसको धनमें स्थापित करना है यह निश्चित कर । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अस्मान् यमी दधः ) हमें धनोंमें स्थापित कर ॥ ३ ॥

[ १००५ ] ( स्वादो- ) मोठे ( इत्था विपुवत मघोः ) और इस प्रकार सब यज्ञमें व्यापनेवाले मोठे सोमरसको ( गौर्यः पिबन्ति ) सबके रसकी गार्थ पीती है ( याः इन्द्रेण शोभयाः ) जो इन्द्रके साथ रहकर सुशोभित होती हैं । ( वृष्णाः सयावरीः मदन्ति ) बलशाली इन्द्रके साथ जानेवाली गार्थ आनन्दित पीणती हैं ऐसी ( वस्तीरु सुवराज्यं मनु ) बृष देकर निवास करनेवाली गार्थ अपने राज्यमें रहती हैं ॥ १ ॥

[ १००६ ] ( ताः अम्य ) वे इस इन्द्रके ( पृथनायुवः पुंश्रवः ) रथोंकी इच्छा करनेवाली गार्थ ( सोमं रथिण्यन्ति ) अपना रूप शोभारथमें मिलती हैं । ( इन्द्रस्य प्रियाः घेनवाः ) इन्द्रकी प्रिय गार्थ ( सायकं यज्ञं हिन्वन्ति ) समुनागाक बखरी मरणा देती हैं । ( वस्तीरुः सुवराज्यं मनु ) अपना रूप देकर अपने राज्यमें रहती हैं ॥ २ ॥

१००७ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

प्रतान्मस्य सथिरे पुरुणि पूर्वचिचये चस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥ १५ ( व ) ॥

[ भा० १९ । उ० नास्ति । स्व १ । ( ऋ. १।८४।१२ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१००८ असाव्यः सुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । देवो न योनिमासदत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।४ )

१००९ शुभ्रमन्वो देवनातमप्सु धीर्त नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥

( ऋ. ९।६१।५ )

१०१० आदीमश्व न हेतारमशुभ्रमश्वमृताय । मघो रसः सधमादे ॥ ३ ॥ १६ ( जु ) ॥

[ भा० १९ । उ० १ । ख० ५ ] ( ऋ. ९।६१।६ )

१०११ नमि धुमं पृथपथ इषस्पते दिदीदि देव देवयुम् । वि कोशं मध्वमं युव ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०८।९ )

[ १००७ ] ( प्रचेतसः ताः ) विरोध दृष्टिवाती वे पावें ( अस्य सहः ) ॥ ३ ॥ इन्द्रके साहसको ( नमसा सपर्यन्ति ) अपने हृदयकी अमते पुजाती हैं, ( पूर्व-चिचये ) पूर्वके कामोंको समझानेके लिए ( अह्य पुरुणि प्रतानि ) इस इन्द्रके पहलेके बहुतसे कार्योंका ( सथिरे ) ध्यान मिलाती हैं, ( चस्वीः स्वराज्यं अनु ) रूप लेकर अपने राज्यमें इस इन्द्रके अनुगम होकर रहती हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाँचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १००८ ] [ गिरिष्ठाः अंशुः ] पंचत पर जगनेवाले सोलका ( मृदाय असावि ) आगवके लिए रस निकास हैं । ( अप्सु दक्षः ) बायें पानीमें धो मिलाया है, उसके बाद ( देवो न ) आज यतीके समान ( योनि मासदत् ) वह अपने स्थान पर बँधाता है ॥ १ ॥

[ १००९ ] ( देव-वातं शुभ्रं अश्वः ) देवीको बेलेंके लिए स्वका और सुधर का अर्पण ( नृभिः सुतं ) अतिवर्गके द्वारा तैयार किए गए ( अप्सु धीर्त ) पानीमें मिलाये गए सोबरसको ( गावः पयो ) पायें ( पयोभिः स्वदन्ति ) अपना रूप मिलाकर स्वादिष्ट बनाती हैं ॥ २ ॥

[ १०१० ] ( गाव् ) बायें ( हेतारं हं मघोः रसं ) स्फूर्ति देनेवाले इस सोबरसको ( सधमाने ) अमृताय अश्वशुभ्रम् ) पायें समस्त अश्व करनेके लिए अतिवर्ग ( अश्वं न ) धीरेके समान सुखोचित करते हैं ॥ ३ ॥

[ १०११ ] ( इषस्पते देव ) हे अमरके स्वामी सोमदेव ! ( देवयुं शुभ्रं गृह्णत यशः ) देव जिसको इच्छा करते हैं, ऐसे तेजस्वी और महान् अन्न ( नमि दिदीदि ) हर्ष के, ( मध्वमं कोशं विभुय ) गह्वरके वर्तनमें जानकर रह ॥ १ ॥

१०१२ आ वयस्व सुदक्ष चर्मोः सुतो विशो वद्धिर्न विवपतिः ।

वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्ट्यै धियः ॥ २ ॥ १७ ( डा ) ॥

[ घा० १८ । उ० ३ । २४० २ ] ( ऋ ९।१०८।१० )

१०१३ प्राणा शिशुमहीनाः हिन्वन्नुतस्य दीधितिम् ।

विश्वा परि मिया सुवदध द्विता ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१०९।१ )

१०१४ उप त्रितस्य पाण्योऽरमक यद्गुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

( ऋ ९।१०९।२ )

१०१५ त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ट्वैरपद्रयिम् ।

मिमौते अस्य योजनां वि सुकतुः ॥ ३ ॥ १८ ( री ) ॥

[ घा० ८ । उ० नास्ति । २४० ४ ] ( ऋ ९।१०९।३ )

१०१६ पवस्व याज्ञसातये पवित्रे धारया सुतः । इन्द्राय सोमं विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥ १ ॥

( ऋ ९।१००।६ )

१०१७ त्वाऽरिदन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्गुहः । वत्सं जातं न मातरः पवमानं विधर्मणि ॥ २ ॥

( ऋ ९।१००।७ )

[ १०१२ ] हे ( सु-वस्व ) उत्तम बलशाली सोम ! ( चर्मोः सुतोः ) कलसेमें रक्षा हुआ तू ( यद्धि-न ) सब प्रजाओंका बालक या नेता जैसे राजा होता है, उसी प्रकार ( त्रिषो विवपतिः ) तू प्रजाओंका बालक होकर ( आ यच्छस्य ) कलसेमें मां, ( गविष्ट्यै ) गाय पानेकी इच्छावाले बलवानकी ( धियः जिन्वन् ) पृष्टियोंकी प्रेरित करते हुए ( दिव्य ) अथः पृष्टिं रीति ) पृष्टीकृते भंते पानी गिरता है, उसी प्रकार ( पवस्व ) नीचेके वर्तनमें तू छनता जा ॥ २ ॥

[ १०१३ ] ( प्राणाः ) यज्ञका प्राण ( महीनां शिशु ) अलौक्य पुत्र सोम ( त्रितस्य दीधितिं हिन्वन् ) मत्तके प्रशासन करने रतकी प्रेरित करते हुए ( विश्वा मिया परिमुपत् ) तब ( त्रिध मिमौते ) जगत्की जगत्की भी अधिक महत्त्वका होता है, और ( धायां द्विता ) बारमें धारोंकी और पृष्ट्योकी दोनोंके बीचमें रहता है ॥ १ ॥

[ १०१४ ] ( त्रितस्य गुहा ) त्रित नामके ऋषिकी गुहामें ( पाण्योः पदं ) दो पदलोंके बीचके स्थानमें ( यत् उप अन्नपत ) जब उन सोमोंकी प्राप्ति किया, ( अथ ) तब ( यज्ञस्य सप्त धामभिः ) यज्ञके सात छत्रोंके ( प्रिय मणि ) प्रिय सोमकी श्रद्धावत् स्तुति करने स्मरे ॥ २ ॥

[ १०१५ ] हे सोम ! ( धारया ) अपने रतकी धारासे ( त्रितस्य त्रीणि ) त्रितके तीनों सबनोंमें ( पृष्टेषु रयि घेरयत् ) सामगानके घृष्ट होनेपर वह देनेवाले इन्द्रकी प्रेरित कर, क्योंकि ( सु-कतुः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला स्तोता ( सस्य योजना ) सब इन्द्रके स्तोत्रोंका ही ( वि मिमौते ) उज्ज्वारण करता है ॥ ३ ॥

[ १०१६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( सुतः ) सब संव्यार करनेके बाद तू ( इन्द्राय विष्णवे देवेभ्यः ) इन्द्र विष्णु और सब देवोंके लिए ( मधुमत्तरः ) अत्यन्त मीठा होकर ( याज्ञ-सातये ) यज्ञकी प्राप्तिके लिए / पवित्रे धारया पवस्व ) छलनीमेंसे धारासे टपक ॥ १ ॥

[ १०१७ ] हे ( पवमान ) घृष्ट होनेवाले सोम ! ( विधर्मणि ) यत्तमें ( अ-द्गुहः धीतयः ) दोह ॥ करनेवाली अगुत्तिका ( हरिं ) हरें देवोंके ( रयि पवित्रे रिदन्ति ) तुम कलसेमें उसी प्रकार दमगी है जिन प्रकार ( जात यत्सं मातरः न ) गये उत्पन्न हुए बछीके माँके माँकी है ॥ २ ॥

१०१८ त्वं वां च महिमत पूयिषीं चाति जग्निषे ।

अति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महिस्विना

॥ ३ ॥ १९ ( ता ) ॥

[ धा० २४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।१००।९ )

१०१९ इन्द्रुवाजी पवते गान्धोषा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

हन्ति रक्षा बाधते पथराति वरिष्कृण्वन्वजनस्य राजा

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।१० )

१०२० अध धारया मध्वा घृचानस्तिरो रोम पवते अत्रिदुग्धः ।

इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं क्षुपाणो देवा देवस्य मत्सरो मदाय

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।११ )

१०२१ अभि यतानि पवते पुनानो देवा देवान्स्वैन रसेन पृञ्चन् ।

इन्दुधर्मिण्यृतुषा वसानो दक्ष क्षिपो अज्यत सानो अन्ये

॥ ३ ॥ २० ( पी ) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।९७।१२ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१०२२ आ ते अग्न इपीमहि शुमन्त देवाज्जरम् ।

यद् रया तं पनीयसी समिदीदयति धवीपथं स्तोतुम्य आ सर ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।१४ )

[ १०१८ ] ( महिमत ) महत्त्व महान् कृत करनेवाले सोम ! ( त्वं ) तू ( वां च पूयिषीं च ) सुलीक और पूयिषी ( अति जग्निषे ) उत्तम रीतिसे पारण करता है, ( पवमान ) सुद होनेवाले सोम ! ( महिस्विना द्रापि ) तू अपने बहुतके योग्य कवचको ( अति अमुञ्चथाः ) धारण करता है ॥ २ ॥

[ १०१९ ] ( वाजी ) बलवान् ( गान्धोषा ) रस मिलिते बहुत है, ऐसा ( इन्द्रुः सोमः ) सोम ( इन्द्रे सहः इन्वन् ) इन्द्रमें सहित प्रत्यक्ष करके ( मदाय पवते ) आनन्द बढ़ानेके लिए छावा जाता है, ( घृचानस्य राजा ) बलका राजा ( धारिषः क्षुपान् ) रसीताम्रोंको पन देता है, ( अत्रिः हन्ति ) राक्षसोंका नाश करता है, और ( अ-चाति पति याचते ) शत्रुओंको कष्ट देता है ॥ १ ॥

[ १०२० ] ( अध ) उलके बार ( अत्रिदुग्धः ) वत्परीति रस निकाला गया सोम ( मध्वा धारया घृचानः ) मीठी धारासे देवोंकी तुष्ट करता हुआ ( रोम तिरः पवते ) रेबके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है, ( इन्द्रस्य सख्यं क्षुपाणः ) इन्द्रके साथ मित्रताकी इच्छा करते हुए ( देवः मत्सरो इन्द्रुः ) हम करनेवाला आनन्दपूर्ण सोम ( देवस्य मदाय पवते ) इन्द्रके जरातुकी बढ़ानेके लिए छावा जाता है ॥ २ ॥

[ १०२१ ] ( धर्मानि यतानि ) धार्मिक कर्तव्यों ( ऋतुषा वसानः ) ऋतुओंके अनुकूल करते हुए ( पुञ्चन्ः इन्द्रुः ) छावा नामेवाला सोम ( अभि पवते ) बलपूर्वक छाना जाता है, ( देवाः ) देवों ( रसेन पृञ्चन् ) अपने अपने देवोंको सत्वोंसे देता हुआ, ( दक्ष क्षिपः ) बल अंगुलियोंके द्वारा ( सानो अन्ये अज्यत ) अने स्वामन् अपने आप बालोंकी छलनीमें पहुँचाया जाता है ॥ ३ ॥

॥ यदां छटा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] खण्डः खण्डः ।

[ १०२२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( शुमन्तं अजरम् ) तेजस्य और अजरहित ऐसे ( ते ) तुमसे हूँ ( आ इपीमहि ) अधिक प्रशस्त करते हैं, ( यद् रया तं रया पनीयसी समिद् ) जब तेरी यह प्रशमनीय तमिस्रा ( पवि दीदयति ) क्षु-छोरमें प्रकाशमें लगती है, तब है धाने । तू ( स्तोतुम्यः इयं आभार ) स्तुति करनेवालोंको अन्न भक्षण ॥ १ ॥

- १०२३ आ ते अग्नं ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।  
सुधन्द्र दस्य विदपते हव्यवाट् तुभ्यं हव्यं इपं स्तोतुम्य आ मर ॥ २१ ॥ ( ऋ. १।६।९ )
- १०२४ ओभे सुधन्द्र विस्पते दवीं श्रीणीष आसनि ।  
उतो न उत्पुपूषा तन्धेषु श्वसस्पत इपं स्तोतुम्य आ मर ॥ ३ ॥ २१ ( रा ) ॥  
[ धा० २८ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।६।९ )
- १०२५ इन्द्राय सोमं गापत विमाय धृते बृहत् । अग्नकृते विपश्चिते पनस्यये ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।९।१ )
- १०२६ त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ अंसि ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।९।२ )
- १०२७ विभ्राजं ज्योतिषा स्वदेरगच्छो रोचने दिवः ।  
देवास्त इन्द्रं सरूपाय येमिरे । ॥ ३ ॥ २२ ( व ) ॥  
[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९।३ )
- १०२८ असावि सोमं इन्द्रं ते श्विष्ठ धृष्ण्या गहि ।  
आ त्वा पूणश्चिरवन्दिष्यं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१ )

[ १०२३ ] ( सुधन्द्र ) हे मेघ आनन्द देनेवाले ! ( दस्य ) अनुनासक ( विदपते ) प्रजापालक और ( हव्यवाट् ) हवि पहुँचानेवाले ( ज्योतिषस्पते ) आग्नेय प्रकाशमान होने ! ( शुक्रस्य ते ) प्रवीण हूँ तेरे आगर ( ऋचा हविः आ हव्यते ) मंत्र बोलकर हवि दी जाती है, ( स्तोतुम्यः इपं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर भज वे ॥ २ ॥

[ १०२४ ] हे ( दायसस्पते, विदपते सुधन्द्र ) बलके स्वामी, प्रजापालक और अति तेजस्वी होने ! ( ओभे दवीं ) दोनों ही बर्तन ( आसनि श्रीणीष ) तेरे भुलके पास पहुँचावे जाते हैं, ( उत उ ) और ( उत्पुपूषा नः उत्पुपूषाः ) स्तुति करनेके साथ हमें तू पूर्ण करता है, ( स्तोतुम्यः इपं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भज भरपूर वे ॥ ३ ॥

[ १०२५ ] हे उद्गाताओ ! ( विमाय धृते ) आगे खड़े ( अग्नकृते विपश्चिते ) शान्त फलानेवाले विद्वान् ( पनस्यये इन्द्राय ) और प्रज्ञाके बोध इन्द्रके लिए ( धृत् बृहत् सोमं गापत ) बृहत् नामके सामका गान करो ॥ १ ॥

[ १०२६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं अग्निम् अंसि ) तू सन्तुष्टोंकी हृदयवेत्ता है, ( त्वं सूर्यं अरोचयः ) तुझे सूर्यकी प्रकाशित किया, तू ( विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् अंसि ) सब कार्य करनेवाला, सब देवोंके समान महान् है ॥ २ ॥

[ १०२७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ज्योतिषा दिवः रोचने ) अपने तेजसे सूर्यका प्रकाशक तथा ( स्याः विभ्राजन् ) अपना प्रकाश फैलानेवाला तू ( आगच्छ ) आ, ( देवाः ते सरूपाय येमिरे ) सब देव तेरे साथ विद्यता करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥

[ १०२८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते सोमः असावि ) तेरे लिए सोम तैयार किया है, ( दायिष्ठ धृष्ण्या ) हे वरदान और धनको हारनेवाले इन्द्र ! ( आ गहि ) आ, ( सूर्यः रश्मिभिः रजः ॥ ) सूर्य किरणोंके जेगे अग्निराशरी भर देता है, उसी प्रकार ( त्वा इन्दिष्यं आ पूणस्तु ) तुझे सोमदानसे महान् शक्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

१०२९ आ तिष्ठ धृष्टद्वय युक्ता ते मक्षणा दरी ।

अर्वाचीनः सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वन्नुना

॥ २ ॥ ( ऋ. १।८४।२ )

१०३० इन्द्रमिदरी वहतोऽपतिष्ठुश्वसम् ।

अपीणाः सुष्टीरुप यज्ञे च मानुषाणाम्

॥ ३ ॥ २३ ( पा ) ॥

[ धा० १०।८०।१।२००२ ] ( ऋ १।८४।२ )

॥ इति सप्तम खण्ड ॥ ७ ॥

॥ इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ ३ ॥

॥ इति तृतीय प्रपाठकस्य समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ इति पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

[ १०२९ ] हे ( धृष्टद्वय ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( यद्ये आ तिष्ठ ) रखपर चड ( ते हरी मक्षणा युक्ता ) तेरे दोनों ही घोड़े हमने मनेसि जोड विपे हं, ( ग्रावा ) सोमको कुटनेवाला पत्थर ( वन्नुना ) मनकी शक्तिवित करनेवाले शक्ति ( ते मनः ) तेरा मन ( अर्वाचीनः सुष्टुणोतु ) हमारी ओर आकर्षित करे ॥ २ ॥

[ १०३० ] ( अ-प्रति-धृष्ट-श्वसं इन्द्रं हव् ) न हमारे माने मौम्य बलसे युक्त इन्द्रको ( अपीणां मानुषाणां ) क्षत्रि और क्षत्रिजनेके द्वारा ( सुष्टीः ) भी नहीं हतुतिवाके पास ( यज्ञे च ) और यज्ञके पास ( हरी ) घोड़े ( उप यवसः ) बहवाले हं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पष्ठोऽध्यायः ॥

## पष्ठ अध्याय

इत छठे अध्यायमें इन्द्र देवताके वर्णन इस प्रकार है—

इन्द्र

१ हे स्वर्चमान इन्द्र ! यत् इक्ष्वं वस्युहा भवः, उमे रोदसी मज्ज मनेताम् [ १८९ ]— हे स्वर्ण करनेवाले इन्द्र ! जब तू शत्रुका नाश करनेवाला होता है, तब दोनों ही ध्रुवीक और भ्रुवीक आनन्दसे तेरे अनुकूल होते हैं ।

२ यत् आजयः उदीरते, धृष्णवे धनं धीयते [ १००४ ]— जब मूढ मूढ होते हैं, तब विजयी नीरको धन मिलते हैं ।

३ धृषदा इन्द्रः मदाय शवसे नुभिः पापुषे [ १००२ ]— दूसरे नाश करनेवाले इन्द्रने अलन्ध व मनकी यशानेके लिए सोम छतका यश बढ़ाते हैं ।

४ तं महर्तु भाशिषु गर्भे जतिं हयामहे [ १००२ ]— उस इन्द्रको महे तथा छोटे पुत्रोंमें अपनी रक्षाके लिए हम बुझते हैं ।

५ स वाजेषु नः प्रायिवत् [ १००२ ]— वह पशुओं हमारी रक्षा करता है ।

६ हे इन्द्र ! त्व अग्निभूः अस्मि [ १०२४ ]— हे इन्द्र ! तू अग्निजनोंके जीतनेवाला है ।

७ हे शक्तिधृष्णो ! आगर्हि [ १०२८ ]— हे बलशाली और विजयी इन्द्र ! हमारी सहायताके लिए आ ।

८ अ-प्रति-धृष्टश्वस इन्द्रं अपीणां मानुषाणां सुष्टुतिः यज्ञे च हरी उपयवतः [ १०३० ]— जितके घोड़े और साहस वाली जन नहीं होते, उस इन्द्रको क्षत्रि और



सन्ध्योंकी स्तुतियोंके पास अर्थात् धनके पास उनके घोड़े ले जाते हैं।

९ हे इन्द्र ! सोम पीत्वा ओजसा सह उत्तिष्ठन् दिग्धे अवोपयः [ १८८ ]- हे इन्द्र ! सोम पीकर अपने सामर्थ्यसे उठ और अपनी ढोढीको कप, अपनी मुरवीरता दिला।

१० हे धीर ! सेन्य ! अस्ति, दध्नस्य चित् वृधः [ १००४ ] हे वीर इन्द्र ! तू सेनाके साथ रहता है, छोटोंको तू बड़ा बनाता है।

११ प्रचेतसः ताः गायः अस्य महः नमसा वर्ष-ययित [ १००७ ]- बुद्धियुक्त वे गायें हूँ इन्द्रके सामर्थ्यको अपने हुपसे बढ़ाती हूँ।

१२ पृथ्वीचिस्तये अस्य पुरुणि ज्ञतानि सध्वरे [ १००७ ]- पहलेके पराक्रमरही याद दिलानेके लिए इसके बहुतसे साहित्यिक कार्योंका वर्णन किया जाता है।

१३ ध्रुवहन् रथं आतिष्ठ [ १०२९ ]- हे वृत्रको धारने-वाले इन्द्र ! अपने रथपर बैठ।

१४ मध्वयुता हवी युंक्व, क हनः, कं वसो दधः, अस्मान् वसी दधः [ १००४ ]- महीमत्त योनोंको रथमें जोड़, और किसको धारना है और किसको धन देना है इसका विचार कर। हमें धन दे।

१५ सुगृधे यजमानाय शिशसि, से भूरियसु [ १००३ ]- सोमयज्ञ करनेवाले यजमानको तू धन देता है, तेरे पास बहुतसा धन है।

१६ अस्य ताः पृशनायुवः पृश्नयः सोमं धीणन्ति [ १००६ ]- उस इन्द्रकी उत्तम मायें अपनी बुध सोमरसमें दिलाती हैं।

१७ गात्रो सोम इन्द्रे सहः इन्वन् मदाय धयते [ १०१९ ]- मलवान् सोम इन्द्रका सामर्थ्य बढ़ाकर उत्तम आनन्द बढ़ाता है।

१८ हे इन्द्र ! त्वं सूर्यः अथोच्य, रवं विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् अस्ति [ १०२६ ]- हे इन्द्र ! तुने सूर्यको प्रकाशित किया, तू तब स्वयं करनेवाला है, तू सर्वोंका देव है और तू महान् है।

१९ यिम् वृहत् प्रमहन् विपदिचत् [ १०२५ ]- इन्द्र तानी, महान्, शानका प्रसार करनेवाला और विद्वान् है।

२० इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः देवः इन्द्रुः [ १०२० ]- इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाला यह देवतानी सोमरस है।

इस प्रकार इन्द्रके सुषोंका वर्णन इस अध्यायमें आया है। अब अग्निके सुष देते—

### अग्नि

इस अध्यायमें अग्निके सुषोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ अन्नर [ १८३ ]- जरारहित, सदा तरुण, बूढ़ावस्था जितके पास आती नहीं।

२ मेधाकारः [ १८४ ]- बुद्धिके कार्य करनेवाला, बुद्धि बढ़ानेवाला।

३ विदयस्य प्रसाधनः [ १८४ ]- मुझका औरयज्ञका साधन।

४ होता [ १८४ ]- देवोंको बुलाकर लानेवाला, हवन करनेवाला।

५ परिभूतः [ १८४ ]- शत्रुओंको हरानेवाला।

६ मतिः [ १८४ ]- बुद्धिमान्।

७ सुमान् [ १०२५ ]- तेजस्वी।

८ सुदचन्द्रः [ १०२३ ]- उत्तम तेजस्वी।

९ द्रुमः [ १०२३ ]- रक्षणीय, सुखर।

१० विश्वपतिः [ १०२३ ]- प्रजापालक।

११ ज्योतिषस्पतिः [ १०२३ ]- तेजस्वियोंका पालक।

१२ हव्यधाद् [ १०२३ ]- हवन किए गए पदार्थोंकी ठीक स्वाभूपर पहुँचानेवाला।

१३ शुक्रः [ १०२३ ]- शुद्ध, भीमवान्।

१४ शवसस्पतिः [ १०२४ ]- बलवान्, सामर्थ्यवान्।

१५ धक्षन् [ १०२३ ]- जलानेवाला, शत्रुओंको जलानेवाला।

१६ हविः आहयते [ १०२३ ]- अग्निके हविर्गंधोंका हवन होता है।

१७ उभे दूर्वा आसनि धीणीपे [ १०२४ ]- दोनों ही जगह आदि वर्तनीको अपने मुँहके पास ले जाते हो, आहुतिका हवन करनेके लिए पात्रको अग्निके पास पहुँचाते हैं।

१८ स्तोत्रभ्यः हव्यं आभर [ १०२२ ]- स्तुति करने-वालोंको अन्न भरपूर दे।

१९ त्वां इत् अयस्य हविषः, त्वां इत् मधः, समानं घृणते त्वत् स्वयं न [ १८४ ]- तुने ही सोमोमी और बहुतसी हवि देनेके लिए बुलाया जाता है, तेरे तिरवाय और किसी दूसरेको नहीं बुलाया जाता।

२० हे अग्ने ! त्वं ओषधिः धनानि च अभिरुद्र, स्वयं भासन्, अयं परिचिद्रुपे, तव धियः, वयस्य

विद्युतः इव, चिकिधे [ १८१ ]- जब तू ओषधी, घनरपति और वर्णोंको जलानेको इच्छा करता है, तब तेरे मुखमें अर पड़ता है और उस समय तेरी किरणें यथामंत्रिबलको सघन घनकने लगती हैं।

इस प्रकार इस अध्यायमें अभिनका वर्णन है।

### इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्नि की मिलीजुली स्तुति भी इस अध्यायमें है—

१ इन्द्राग्नी शंसुवा [ १९१ ]- इन्द्र और अग्नि के कल्याण करनेवाले हैं।

२ सोमपीतये आगवज्रने [ १९३ ]- सोमपात्र करनेके लिए आगो।

३ नरा इन्द्राग्नी। कां पुरुषसुता वाश्रुपे या नियुतः सन्ति, ताभिः आगतं [ १९२ ]- हे नैतृत्व करनेवाले इन्द्र और अग्निदेवो। तुम्हारे बहुतों द्वारा प्रयत्नके योग्य, तथा दानशीलोकी सहायता करनेवाले जो घोड़े हैं, उन्हें जोड़कर तुम आगो।

इस प्रकार इन्द्र और अग्नि के मिलेजुले वर्णन हैं। ये ईश सत्का कल्याण करते रहते हैं। सबका हित करना ही इनका स्वभाव है, इस कारण वे हमेशा नेतृत्व करते हैं। ये उदार धितवाले मनुष्योंकी सहायता करते हैं। इसलिए सब अश करनेवाले इनकी यज्ञमें बुलाते हैं।

### मित्र और वरुण

मित्र और वरुणकी भी समुक्त स्तुति इस अध्यायमें आई है। उनके वर्णन महा इम प्रकार हैं—

१ हे मित्रा ! नः पापुभिः पातं [ १८७ ]- हे मित्र और वरुणो ! तुम हमारे मित्र हो, इसलिये सरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करो।

२ सुत्रावा प्रापेथां [ १८७ ]- उत्तम संरक्षण करनेवाले तुम हमारी मज्जी तबह रक्षा करो।

३ तनुभिः दस्युन् साशाम [ १८७ ]- अपने शारीरिक सामर्थ्यसे हम शत्रुओंको हरावे।

४ अद्रुहाणा घां सम्यक् मित्रा स्याम [ १८९ ]- तुम दोनो आपसमें द्रोह न करनेवाले हो, अतः हम तुम्हारे मित्र होकर रहें।

५ इयं च धाम आश्यामः [ १८९ ]- जल और घर तुम्हारे द्वारा हमें प्राप्त हो।

६ वां पुरुषा अघ नूनं अस्ति [ १८५ ]- तुम दोनोंके बहुतसे संरक्षण हमें प्राप्त हों।

७ वां सुमर्तिं वंसि [ १८५ ]- तुम्हारी उत्तम और अनुकूल बुद्धि हमें प्राप्त हो।

इस प्रकार मित्र और वरुण इन दोनोंकी सहायताका वर्णन इस अध्यायमें आया है।

### सोमके गुण

अब इस अध्यायमें आये हुए सोमके गुणोंकी देखिए—

१ इन्द्रुः [ १५५ ]- तेजस्वी, चन्द्रके समान प्रकाशमान।

२ गोचिह् [ १५५ ]- गायते वृक्ष, गायका रूप जिनमें चिहाया जाता है।

३ वसुचिह् [ १५५ ]- वनसे वृक्ष, विवातक शक्तिते वृक्ष।

४ हिरण्यचिह् [ १५५ ]- सोनेसे युक्त।

५ रेतोधाः [ १५५ ]- वीर्य बढ़ानेवाला, वीर्यको धारण करनेवाला।

६ सु-धीरः [ १५५ ]- उत्तम वीर।

७ विभ्य-चिह् [ १५५ ]- सब जाननेवाला।

८ क्षमः [ १५५ ]- बलवान्।

९ पथमनः [ १५५ ]- शुद्ध होनेवाला।

१० विभ्यतः नृक्षसा [ १५५ ]- सब तरफसे मनुष्योंकी देखनेवाला।

११ ईशानः [ १५७ ]- स्वामी, शासक।

१२ नृमादः [ १५५ ]- मनुष्योंका आनन्द बढ़ानेवाला।

१३ चर्यणी-भृति [ १५५ ]- मनुष्योंकी धारण करनेवाला।

१४ सस्त्रिः [ १५५ ]- युद्ध, जीतनेवाला।

१५ अनुमाद्यः [ १५५ ]- प्रसन्ननीय।

१६ अद्रुतः [ १५५ ]- नष्टनृ, विलक्षण।

१७ पावकः [ १५५ ]- शुद्ध होनेवाला।

१८ धृत्रहस्तम् [ १५५ ]- शत्रुको मारनेवाला।

१९ भुवि [ १५५ ]- शुद्ध।

२० मधुमात्र [ १५७ ]- मीठा, मधुर।

२१ देवावीः [ १५७ ]- देवोंकी मित्रने घोष।

२२ अघ-धीम-हा [ १५७ ]- पापियोंका नाश करनेवाला।

२३ वधि- [ १५७ ]- शान्ति, फलस्पर्श, दूरस्था।

२४ साहाज् [ १६७ ]- मद्युको हरावेवासा ।

२५ श्रीदुः [ १७४ ]- सन्तनेम कुशल ।

२६ मंहयुः [ १७४ ]- महत्त्व युक्त, दान देनेवाला ।

२७ सुवीर्यं दधत् [ १७४ ]- उत्तम वीर्यसे युक्त, जातम दूर ।

२८ स्वादिष्टा [ १८१ ]- स्वादयुक्त, हृषिकर ।

२९ परिधोयित् [ १८१ ]- धनयुक्त, दान देनेवाला ।

३० सुमन्त्रम् [ १९४ ]- अति तेजस्वी ।

ये सोमके गुण इस अध्यायमें आए हैं । सोमरस पीनेके बाद उत्साह बढ़ता है । इसलिये ये गुण मानों सोमके ही हैं ऐसा कहा है ।

### स्वर्गमें सोम

सोमकी बेल स्वर्गमें उगती है । स्वर्ग हिमालयकी ऊंची चोटी पर है । वहाँ पर यह बेल उगती है । इसलिये सोम स्वर्गसे लाया जाता है, ऐसा वर्णन वेदोंमें है ।

१ हे सोम ! दिवस्पति पिब्या रूपो अश्वर्यसि [ १५९ ]- हे सोम ! तू स्वर्ग पर अनेक वय धारण करके रहता है ।

२ गिरिष्ठाः अंगुः मदाय असायि [ १००८ ]- पर्वत पर उभरनेवाले सोमके रसकी आगन्धके लिए निकालते हैं ।

३ ह्येनः न योनि आसद् [ १००८ ]- बाज पशुके सामान ( पर्वतसे आकर ) यहाँमें बैठता है ।

### सोमका पशुधरोसे कूटा जाना

सोम पशुरसि कूटा जाता है—

१ भद्रिभिः सुतः पयिर्धं परि वीर्यसे, इन्द्रस्य धास्ते अरं [ १६४ ]- पशुरसि कूटकर निकाले गए पशुकी छलनीसे छानते हैं, और तब बाजधरो इन्द्रको देने योग्य होता है ।

२ सोमः इन्द्रः च । यूयं इवप्री स्व । गोपती रजाना धियं पिप्पसं [ १००१ ]- सोम और इन्द्र ! तुम निश्चयसे सबके राजागो हो, तुम दोनों वामके पासन करनेवाले हो, तुम सब पर अधिकार करते हो, अतः तुम हमारी बुद्धि पुष्ट करो ।

सोमरस पीनेके बाद बुद्धिमें महान् उत्साह उत्पन्न होता है, और महान् महान् कार्य करनेका सामर्थ्य अन्दर पैदा होता है ।

### सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोमका रस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाया जाता है—

१ अम्यु दुष्टः यमस्योः मृश्यामानः समुपु खीदति [ १७३ ]- पानीमें मिलाया गया सोम हृद्यसि ताक किये जानेके बाद बर्तनमें गिरता है ।

२ अस्या सोमाः इन्द्राय पापये अर्यन्तु [ १९५ ]- पानीमें मिलाये जानेके बाद सोमरस इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है ।

३ ताः ते मधुमत् घृतं पयः क्षरन्तु [ १५७ ]- तेरे वे रस मोठे जल और दूधमें मिलाये जाते हैं ।

४ मधोः रसं सघमादे अमृताय मदाशुमन् [ १०१० ]- मोठे सोमके रस यज्ञमें पानीके साथ मिलकर होभा पाते हैं ।

इस प्रकार पानीमें सोमरस मिलाये जानेके बाद ये छाने जाते हैं ।

### सोमरसका छाना जाना

१ देववीत्ये अस्या घारेभिः अम्यत [ १६८ ]- देवोंको देनेके लिए भेड़के बालोंकी बनी हुई छलनीसे सोमरस छाना जाता है ।

२ हे सोम ! सु-वीर्यं दधत् पयिर्धं गच्छसि [ १७४ ]- हे सोम ! उसमें सामर्थ्य धारण करके तू छाननेके लिए छलनीसे बात जाता है ।

३ ते मधुघृतुतः धाराः अमृमन्, ताभिः पयिर्धं आ सद् [ १०९ ]- तेरी मोठी धारा निकलने लगी, उन धाराओंसे युक्त होकर तू छलनी पर जाकर बैठ गया है ।

४ सः अव्यया धाराणि तिरः इन्द्राय पातये अर्य [ १८० ]- वह तू भेड़के बालोंकी बनी हुई छलनीसे इन्द्रके पीनेके लिए छानता था ।

५ सुतः देवेभ्यः मधुमत्तरः पयिधे धारया पवश्य [ १०१६ ]- रस निकाले जानेके बाद देवोंको देनेके लिए अधिक मोटा होकर बार बनाकर छलनीसे छानता था ।

६ अ-द्रुहः घीतयः हरिं रयां पयिधे रिहन्ति [ १०१७ ]- द्रोह न करनेवाली अंगुलियाँ हरे रंगके तुम सोमरस छलनी पर रखकर बबलती हैं ।

७ भद्रिबुध्नः रोम तिरः पयने [ १०२० ]- पशुरसि रस निकालनेके बाद ये सोमरस बालोंकी छलनीसे छाने जाते हैं ।

८ देवः स्वेन रसेन देवान् पृथक् स मा अये  
अनयत् [ १०२१ ]- दिव्य सोम अपने रसते देवोंकी सन्तोष  
देते हुए ऊँचे स्थान पर रसे हुए भेड़के बालोंकी छलनीसे  
छाना जाता है ।

इसप्रकार सोमरसको निकालकर उसे पानीमें मिलाकर  
भेड़की बालोंकी छलनीसे यह छाना जाता है, बादमें यह  
पाचके रूपमें मिलाया जाता है ।

### सोमरसका पाचके दूधमें मिलाना

१ देवपातं शुभ्रं अन्धः सुभिः सुतैः, अप्सु घीतं,  
गायः पयोभिः स्वद्यन्ति [ १००९ ]- देवोंको देवोंके लिए  
स्वच्छ सुन्दर अन्न अतिजों द्वारा तैयार किए गए हैं, इस  
प्रकार तैयार किए गए तथा पानीमें मिलावे गए उन गौम-  
रसोंको गायें अपने दूधसे स्वादिष्ट बनाती हैं ।

२ धीणानः अप्सु घृज्यते [ १६१ ]- सोमरसपाचके  
दूधमें और पानीमें मिलाया जाता है ।

३ सोमः अनूपे गोभिः अक्षाः [ ११८ ]- सोमरस  
कलत्रमें गायके दूधके साथ टपकता है ।

४ क्षीमः दुग्धाभिः अक्षाः [ ११८ ]- सोमरस दूधके  
मिलाने जाने पर टपकता है ।

इसप्रकार सोमरसमें गायका दूध मिलानेसे यह स्वादिष्ट  
बनता है, ऐसी वर्णन अनेक मंत्रोंमें आए हैं ।

### सोमका घन देना

१ हे सोम ! नः विश्वा सोमगा, पुष्टं यथं परिक्षय  
[ १७५ ]- हे सोम ! हमें सब सोमाय और पुष्टिकारक  
अन्न दे ।

२ हे सोम ! क्षिप्रं उपकथं दिव्यं पार्थिवं वसुः नः  
आ मर [ ११९ ]- हे सोम ! बिलक्षण, प्रबलवीर्य, दिव्य  
और पार्थिव पद हमें भरपूर दे ।

### दीर्घजीवन प्राप्त होना

१ हे सोम ! भुवनेषु जीवसे स्थाय [ ११६ ]- हे  
सोम ! इस भुवनमें हम दीर्घजीवन प्राप्त कर सकें, ऐसा कर ।

### सोमका अन्न देना

१ सः गोमन्ते सहस्रिणं वाजं आ इन्वति [ १६९ ]-  
यह सोम हमें गायति युक्त अनेक प्रकारके अन्न देता है ।

२ नः विश्वाति अयः विदुः [ १७० ]- हमें सब  
प्रकारके अन्न दे ।

१६ [ तथ. हिन्दी भा. २ ]

३ हे सोम ! स्तोत्रभ्यः गृह्य यथाः भुवं रथि ह्यं  
आ मर [ १७१ ]- हे सोम स्तुति करनेवालोंको महान् पात्र,  
स्मिर पद और अन्न भरपूर दे ।

४ अस्माकं संक्षय ह्यं दधत् [ १९६ ]- हमारे पुत्र-  
पौत्रोंको अन्न दे ।

५ हे इक्षते देव ! शुक्रं गृह्य यथाः देयं भूमि  
निदीहि [ १०११ ]- हे वसुते सोमदेव ! तेजसे धृत  
निपुल अन्न, जो देवोंको दिया जाता है, हमें भी दे ।

इसप्रकार सोम भरपूर अन्न देता है ।

### सोमका शत्रुओंको दूर करना

१ साक्षान् विश्वाः स्फुर्यः [ १९८ ]- तब तपसा करने-  
वाले शत्रुओंको हरानेवाला सोम है ।

२ सहस्रजित्, यः जिनाति, न जीयते, दातुं अभीक्ष्य  
हन्ति [ १७८ ]- हमारे शत्रुओंको सोम जीतता है, पर कभी  
स्वयं पराजित नहीं होता। शत्रु पर आक्रमण करके उन्हें  
नाशसे मारता है ।

३ धृजन्त्य राजा धरियः कृण्वन्, रक्षः हन्ति,  
अरतिं परि घाच्ये [ १०१९ ]- यह सोम बलका राजा  
है, यह उपासकोंको धन देता है, राक्षसोंको मारता है, और  
शत्रुओंको दूर करता है ।

इसप्रकार इस अध्यायमें इन देवोंके गुणोंका वर्णन है ।  
प्रत्येक व्यक्ति इन गुणोंसे युक्त हो, यह आकांक्षक है ।

### सुभाषित

१ गोविन् वसुमिव हिरण्यविव रेतोधाः सुननेषु  
अर्पितः [ १५५ ]- गाय, धन, सोना और पराक्रमको  
अर्पित प्राप्त रखनेवाला वह भुवनेका कल्याण करनेके लिए  
समर्पित हुआ है ।

२ हे सोम ! सुवीर विश्वाविव अस्ति [ १५५ ]- हे  
सोम ! तु उत्तम वीर और सर्वज्ञ है ।

३ हे वृषभः ! विश्वतः नृचक्षुः अस्ति [ १५६ ]-  
हे बलवर्धक सोम ! तू सब प्रकारसे भवुष्योंका निरीक्षण  
करनेवाला है ।

४ ताः विद्यावस्ति [ १५६ ]- उन प्रज्ञाशक्ति प्राप्त तू  
जाता है ।

५ मनुष्यः हिस्त्वयत् भुषनेषु जीयते इत्याम [ १५६ ]- यः शीत शीतमेव ह्यः शीतः भुषनेषु शीतजीवन प्राप्तः कर्ताकाले ह्यः होतः ।

६ ईशानः हतिः सुगन्धः पुमानः इमा भुषनानि ईशने [ १५७ ]- भू (पुमान्) यत्ने इवम् उत्तम भुषनेषु योरे शीतकर इव भुषनेषु निरालः ।

७ मे मनुष्यः पुनः पयः शरत्तु [ १५८ ]- के तेरे निम्न पी शीत ह्यः होतः ।

८ वृद्धः ते मने तिष्ठन्तु [ १५९ ]- मनुष्य तेरे निवसन्तः ।

९ केतुं वृष्यन् रिपुः परि अमर्षयति [ १६० ]- प्रजापतिः कर्ते ह्यः मनुष्यः परः कर्ता ।

१० देवः सूर्यः न जामातः अमर्षयति [ १६१ ]- सूर्यदेवः तामा प्रवृत्तः शीतः शब्दः कर्ते ह्यः श्रुतिरिति प्राप्तः होता ।

११ गुमादना वर्यली-पुतिः मनुष्याः [ १६२ ]- मनुष्योर्लो मानवः ईशाना और मनुष्योर्लो वारणः कर्तेवाताः प्रसंगे वार्यः ।

१२ अमृतः गुच्छिः पायकः वृष्यन्तः मनुष्याः [ १६३ ]- मनुष्यः गुच्छः शीतः पयः कर्तेवाताः तथा मनुष्यः मानः कर्तेवाताः शीतः प्रसंगे वार्यः होता ।

१३ गुच्छिः पायकः देवाधीः अमर्षयति [ १६४ ]- निर्यः, पयः और ईशने प्राप्तः कर्तेवाताः शीतः शब्दः कर्तेवाताः होता ।

१४ वयिः देवर्षाण्ये विष्वाः स्तुषुः मनुष्याः [ १६५ ]- जामी ईशानः प्राप्तः कर्तेरे निम्न नवः कर्ता कर्तेवाताः मनुष्योर्लो ह्यः होता ।

१५ सः पयमानः जरीवृष्यः गोमन्तः महर्षिणः पाने आ इत्यति [ १६६ ]- वहः शीतः शीतार्थोको मायति वार्यः होतः कर्ता प्रजापतेः पयः होता ।

१६ सः नः चेतसा विष्वाणि श्रयः मिदः [ १६७ ]- यः मनुष्यः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः कर्ता ।

१७ स्तोत्र्यः वृद्धः यशः भुषः रविः अमर्षयति [ १६८ ]- आभरः [ १६९ ]- श्रुतिः कर्तेवाताः मनुष्यः पयः, शीतः पयः शीतः मनुष्यः ।

१८ रुद्रः पुतातनः राजा इव गिरः आधिपतिः [ १६९ ]- उत्तमः निवसन्ति कर्तेवाताः राजाः तामा ह्यः श्रुतिः पयः ।

१९ अमृतः कर्ते सूर्यः मनुष्यः [ १७० ]- शीतः ईशाना मनुष्यः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२० सः सूर्यः कर्ते अमर्षयति [ १७१ ]- सूर्यः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२१ न गोविन्दः अमर्षयति [ १७२ ]- सूर्यः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२२ हे महर्षिणः ! सः जिज्ञासि, न जीयते, श्रुतिः अमर्षयति [ १७३ ]- हे कर्ता श्रुतिः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२३ पार्ष्णीवृष्यः पुनः पयः पार्ष्णीवृष्यः [ १७४ ]- मनुष्यः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२४ अमर्षयति [ १७५ ]- कर्ता कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२५ मनुष्यः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः [ १७६ ]- कर्ता कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२६ पार्ष्णीवृष्यः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः [ १७७ ]- कर्ता कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२७ पार्ष्णीवृष्यः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः [ १७८ ]- कर्ता कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२८ अमर्षयति [ १७९ ]- कर्ता कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

२९ हे मित्रा ! पार्ष्णीवृष्यः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः [ १८० ]- कर्ता कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

३० हे रुद्र ! सोमः पीयः ओजसा सह उत्तिष्ठन् [ १८१ ]- हे रुद्र ! सोमः पीयः ओजसा सह उत्तिष्ठन् ।

३१ हे वर्यमान रुद्र ! यः वर्यमानः कर्तेवाताः कर्तेवाताः पयः ।

उभे रोदसी अनुमदेताम् [ १८९ ]- हे स्थायी करनेवाले इन्द्र ! जब तू दुष्टोंको मारनेवाला होता है, तब दोनों कुलोक और पृथ्वीलोक आनन्दते तेरे अनुकूल होने हैं ।

३२ अष्टापदी नय-सार्किक कृतायुधं तन्वं वाच अहं परिममे [ १९० ]- आठ पद मुख, नयी कल्पनाओंसे मुख तथा सत्यको यदानीवाली छोटी छोटी वार्ताओंको मैं बोलता हूँ ।

३३ इन्द्रादनी शं मुया [ १९१ ]- इन्द्र और अग्नि कल्याण करनेवाले हैं ।

३४ अस्माकं लोकस्य इधं दधत्, सहस्रिणं अम्मम्यं विभ्यतः आ पयस्य [ १९६ ]- हमारे लड़कोंके लिए अन्न दे और हमारा प्रकारके मन चारों ओरते हवें वे ।

३५ यत् चित्रं उन्ध्यं दिव्यं पार्थिवं यस्तुः पुनातः आ भर [ १९९ ]- जो विलक्षण, प्रसन्ननीय, दिव्य और पार्थिव धन है, उन धनोंको शुद्ध होकर भूमि दे ।

३६ आदौपि पुनातः स्तनयन्, हरिः सन् अधि यतिषि, योनिं आ सवः [ १००० ]- अपना जीवन पवित्र करते हुए, बलवान् होकर भावण करते हुए, लोगोंके दुःख दूर करते हुए अपने स्वाम पर आकर आसन पर बैठ ।

३७ मुवं सत्यती ईशाना गोपती धियं पिप्यते [ १००१ ]- उत्तम स्वामी, ऐश्वर्यके अधिकारी, भावने-पालन करनेवाले तुम बुद्धियोंको पुष्ट करो ।

३८ त महरस्तु भाजिषु, अर्मे ऊतिं हवामहे, सः धाजेषु नः प्राविशत् [ १००२ ]- उसे महान् सप्राप्तियोंमें उसी प्रकार छोटे बुद्धोंमें अपने सरलमनके लिए बुलाते हैं । वह बुद्धमें हमारा सत्करण करे ।

३९ हे धीर ! नेत्र्याः अस्ति, मूरि पराददि अस्ति [ १००३ ]- हे धीर ! तू कैनाते युक्ता है, शत्रुके बहुते धनको हरण करनेवाला है ।

४० दधस्व चित्तं धृष्टः [ १००४ ]- छोटोंको तू बड़ा करनेवाला है ।

४१ सुगते यजमानाय शिक्षसि [ १००५ ]- सोम प्राप्त करनेवालेको तू पन देता है ।

४२ ते मूरि यस्तु [ १००६ ]- मैं शत्रु बहुत धन है ।

४३ यत् आजगमः उदीर्यते, धृष्ण्ये घना धीवते [ १००७ ]- जब युद्ध होते हैं तब विजयी धीरोंको धन मिलता है ।

४४ मदभ्युता हरी युञ्ज [ १००८ ]- मद पुजानेवाले पीते रथमें जोड़ ।

४५ कं हन्य, कं चसौ दधः [ १००९ ]- किसी मारना है और किसीके धनमें स्थापित करना है, इसका विचार कर ।

४६ अस्मान् चसो दधः [ १००९ ]- हमें धनमें स्थापित कर ।

४७ अस्त्य धुरुणि मरानि सश्विरे [ १००७ ]- इनके बहुते काम स्मरणमें आते हैं ।

४८ हे इष्यते देव ! युञ्जं वृहद् यथा देवसु अग्नि दिदीहि [ १०११ ]- हे अघपते देव ! तेजस्वी महान् यथा अवया मम, जिसकी देवगण इच्छा करते हैं, हमें वे ।

४९ नृजनस्य राजा वरिवः कृष्णन्, रक्षः हन्ति, यरति परि दाषते [ १०१८ ]- बलका राजा धन देता है, रक्षकोंको मारता है और शत्रुओंको कष्ट देता है ।

५० नृमन्तं अजरं आ इधीमहि [ १०२२ ]- तेजस्वी और जराहित ऐसे तुम हम अधिक प्रदीप्त करते हैं ।

५१ रतोत्तम्यः इप आ भर [ १०२२ ]- क्षुति करने-वालोंको भरपूर अन्न दे ।

५२ सुदचन्द्र, दक्षः, विदपते, ज्योतिषपते, हृद्य-वाद् अग्ने ! इषं आ भर [ १०२३ ]- उत्तम आत्माके देनेवाले, शत्रुको मारनेवाले, प्रजापालक, तेजस्वी, हविको यथास्थान बहुदानेवाले अग्ने ! हमें भरपूर अन्न दे ।

५३ त्वे चिम्बस्मर्गं विभ्यदेवः महान् अस्ति [ १०२३ ]- तू सब कमलोंके करनेवाला, सबका देव और महान् है ।

५४ ज्योतिषः रोचनं ह्यः विभ्राजन् व्यागच्छ [ १०२४ ]- तू तेजस्वी सूर्यका प्रकाशक और कुल्लोंको प्रकाशित करनेवाला है, ऐसा तू यहां आ ।

५५ शशिविष्ट घृष्णोः ! आ गाह [ १०२८ ]- हे बलवान् और शत्रुको हरानेवाले धीर ! तू यह आ ।

५६ त्वं अग्निभूः अस्ति [ १०२६ ]- तू शत्रुको हराने-वाला है ।

५७ अग्रतिष्ठ-शर्यस् इन्द्रं क्षधीणां मातृप्राणां यशं हवी उप चरतः [ १०३० ]- जराहित धीर इन्द्रको श्रुति और मनुष्योंके यज्ञमें छोड़े रथमें बैठाकर लाते हैं ।

## उपमा

इत अग्रायणों को उपमायें हैं, जहाँ अन्न देना—

१ सूर्यस्य रथपथ- इव [ १५८ ]- धूर्तोंके चरकोसे समान ( ते सर्गाः प्रास्वस्त ) सोमकी धारायें फैली हैं ।

२ देवः सूर्यः न [ १६० ]- दिव्य सूर्यके समान सूर्योम  
( विधर्मणि ज्ञानानः ) यन्त्रमे प्रकट होता है ।

३ आपः [ १६२ ]- पानीके प्रवाहके समान ( इन्द्रयः  
अभि अधन्विषुः ) सोमरस छलनीते छनते है ।

४ सुव्रतः पुरातनः राजा इव [ १६२ ]- उत्तम  
नियमके पालन करनेवाले पुराने राजाके समान ( सोम ।  
गिरः आधिदेशिषः ) है सोम । तु स्तुतिको स्वीकार कर ।

५ मलयः न [ १७४ ]- पतके समान ( मंहयुः ) दान  
देनेको इच्छा करता है ।

६ वर्णस्य विद्युतः इव [ १८२ ]- वर्णाकालमें बिजलीके  
समान ( तव श्रियः चिकिषे ) तेरो किरणें चमकती है ।

७ उपसां ऊतयः इव [ १८२ ]- उब वालको किरणोंके  
समान तेरो किरणें चमकती है ।

८ रथ्यः यथा [ १८३ ]- रथी घोड़ेके समान ( ते  
शार्धोसि वृथक् आयतन्ते ) तेरे सामान्य बढते है ।

९ अश्वया इव [ १९० ]- घोड़ेके समान ( हरिता  
धारया याति ) हरे रङ्गकी धारासे भोग जाता है ।

१० समुद्रं न [ १९८ ]- समुद्रमें जैसे जलप्रवाह जाकर  
मिल जाते है, उसीप्रकार ( संहरणामि अगम्न् ) सोमरस-  
हमी जलप्रवाह कलशमें जाते है ।

११ इधेनः न [ १००८ ]- वाज जिसप्रकार अपने  
घोंसेमें जाता है, उसीप्रकार यह सोम ( योनि आसद्त् )  
अपने कलशमें जाता है ।

१२ अश्वं न [ १०१० ]- जैसे संधानमें जानेवाले  
घोड़ेको सजाते है, उसी प्रकार ( मघोः रत्नं सधमादि  
अशुशुम्न् ) भीड़े सोमरसकी यन्त्रमें सुशोभित करते है, रूप  
आदि भिन्नकर अच्छा बनाते है ।

१३ घृष्टिः न [ १०१२ ]- सब प्रजाओंका पालक जैसे  
तेजस्वी राजा होता है, उसीप्रकार है सोम सूर्य ! ( विश्वपतिः  
आ पृथ्वस्य ) प्रजाका पालक बनकर कलशमें जाता है ।

१४ गावः जातं वरलं न [ १०१७ ]- गाय जिस प्रकार-  
नये उत्पन्न हुए बछड़ेको चाटती है, उसीप्रकार ( धीतयः  
हरिं रिहन्ति ) अंगुक्षिया हरे रंगके सोमको दबाती है,  
बचाकर रस निकालती है ।

१५ सूर्यः रश्मिभिः रजः न [ १०२८ ]- सूर्य जिस-  
प्रकार किरणें भिन्नरङ्गको भर देता है, उसी प्रकार ( रथा  
इन्द्रियं आ पृथस्य ) तुमों सोमवानसे महती इन्द्रियवन्ति  
भर देती है ।

इसप्रकार इस अध्यायमें उपनायें है ।

## षष्ठाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

अंशतल्लया	ऋष्येदस्यानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
		( १ )		
१५५	१।८६।१९	[ अकृष्टा साधारणः ] ऋषयः	पवमानः सोम.	जगती
१५६	१।८६।३८	[ अकृष्टा साधारणः ] ऋषयः	"	"
१५७	१।८६।१७	[ अकृष्टा साधारणः ] ऋषयः	"	"
१५८	१।९४।७	कश्यपो मारीच.	"	वायवी
१५९	१।९४।८	कश्यपो मारीच.	"	"
१६०	१।९४।९	कश्यपो मारीचः	"	"
१६१	१।९४।१०	असित. काश्यपो देवलो वा	"	"
१६२	१।९४।११	असित. काश्यपो देवलो वा	"	"
१६३	१।९४।१२	असित. काश्यपो देवलो वा	"	"
१६४	१।९४।१३	असित. काश्यपो देवलो वा	"	"

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छान्दः
९६५	९।१४।४	असितः काश्यपो देवलो वा	प्रथमानः सोमः	शापत्री
९६६	९।१४।६	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९६७	९।१४।७	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"

( २ )

१६८	९।१०।१	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१६९	९।१०।१	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७०	९।१०।३	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७१	९।१०।४	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७२	९।१०।५	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७३	९।१०।६	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७४	९।१०।७	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
९७५	९।१५।१	अवत्सारः काश्यपः	"	"
९७६	९।१५।१	अवत्सारः काश्यपः	"	"
९७७	९।१५।३	अवत्सारः काश्यपः	"	"
९७८	९।१५।४	अवत्सारः काश्यपः	"	"
९७९	९।१५।७	अमदग्निर्मानवः	"	"
९८०	९।१५।८	अमदग्निर्मानवः	"	"
९८१	९।१५।९	अमदग्निर्मानवः	"	"

( ३ )

९८२	१०।११।५	अरयो वीतहव्यः	अग्निः	वगती
९८३	१०।११।७	अरयो वीतहव्यः	"	"
९८४	१०।११।८	अरयो वीतहव्यः	"	"
९८५	५।७०।१	उरुवकिराधेयः	मित्रावरुणी	शापत्री
९८६	५।७०।१	उरुवकिराधेयः	"	"
९८७	५।७०।३	उरुवकिराधेयः	"	"
९८८	८।७६।१०	कुरुमुतिः काश्वः	इन्द्र	"
९८९	८।७६।११	कुरुमुतिः काश्वः	"	"
९९०	८।७६।१२	कुरुमुतिः काश्वः	"	"
९९१	८।७६।१३	अरुद्राजो बार्हस्पत्यः	इन्द्राजो	"
९९२	६।६०।७	अरुद्राजो बार्हस्पत्यः	"	"
९९३	६।६०।८	अरुद्राजो बार्हस्पत्यः	"	"

( ४ )

९९४	९।६५।१९	भृगुर्वाहजिज्मदग्निर्मानवो वा	प्रथमानः सोम	"
९९५	९।६५।१०	भृगुर्वाहजिज्मदग्निर्मानवो वा	"	"
९९६	९।६५।११	भृगुर्वाहजिज्मदग्निर्मानवो वा	"	"
९९७	९।१०७।८	मन्त्रयथः	"	वृहती





## अथ सप्तमोऽध्यायः ।



अथ चतुर्थमपाठके प्रथमोऽर्थः ॥ ४ ॥

[ १ ]

( १-२४ ) १ ( अकृष्टमायावयः ) वयः; २, ११ कश्यपो भारीवः; ३ मेवातिविः कश्यः; ४ हिरण्यरूप मागिरतः;  
 ५ अयस्ताः कश्यपः; ६ अयवनिमर्गवः; ७, २१ कुत मागिरतः; ८ वसिष्ठो मेवावयवि, ९ त्रिशोकः कश्यः;  
 १० व्यावराव मावेवः; १२ सप्तवयः ( ॥ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो भारीवः; ३ पोतमो दाहृगयः,  
 ४ अत्रिर्ममः, ५ विश्वामित्रो वाचिमः, ६ अयवनिमर्गवः, ७ वसिष्ठो मेवावयविः ), १३ अयहीमुरागिरतः;  
 १४ वृजन्तोष आनीपतिः; १५ अयुष्टन्वा वेवामित्रः; १६ ( १, २, २-युर्वयः ) पाग्याता यौवनावः,  
 १६ ( २ उत्तरायः ) गोषा अयिका; १७ अतिः काश्यपो देवलो वा; १८ ( १ ) अयवयवो राजयि;  
 १८ ( २ ) अतिवर्तसिष्ठः; १९ यवैन्नारवो कश्यो; २० यवः सावरवः, २२ यवः सुवयुः  
 सुतवायुविश्वययुवः अयव गोपायना लीपायना वा; २३ यवव व्याप्यः सावलो वा भीवनः ॥  
 १-६, ११-१३, १७-२१ यवमानः सोमः; ७, २२ अयिः, ८ आदित्यः, ९, १४-१९  
 यवः; १० इन्द्राग्नी; २३ विष्णवे देवाः, २४ ॥ १, ७ जयती; २-६, ८-११, १३-१५,  
 १७ मायवी; १२ प्रायः - विपया बृहती, तया सतीबृहती ); १६ यवार्थिगः;  
 १८ ( १ ) यववप्या वाचमो, १८ ( २ ) सती बृहती; १९ उल्लिखः; २०  
 अयवयुः २१ सिष्टयुः २२ द्विपवा विराट्, २३ द्विपवा सिष्टयुः २४ ॥

१०३१ ज्योतिर्यज्ञस्य पयते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।

दधाति रत्नं स्वधपोरपीक्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रमः ॥ १ ॥ ( अ. १. ८६।१० )

१०३२ अभिक्लृन्कलशं वाज्यपति पतिदिवः शतघातो विचक्षणः ।

हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मज्ञानोऽविमिः सिन्धुभिर्दृषा ॥ २ ॥ ( अ. १. ८६।११ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १०३१ ] ( यज्ञस्य ज्योतिः ) यज्ञस्य प्रकाश करनेवाला सोम ( देवानां प्रिये मधु पयते ) देवोंको प्रिय लगने-  
 वाले मीठे रसको देता है । यह ( पिता ) पालन करनेवाला ( जनिता ) उत्पादक ( विभू-वसुः ) बहुत सारा धन अपने  
 पास रखनेवाला ( मदिन्तमः ) अत्यन्त आलस्य यदानेवाला ( मत्सरः ) उत्साह यदानेवाला ( इन्द्रियोः ) इन्द्रको प्रिय  
 लगनेवाला ( रत्नः ) सोमरस ( स्वधपोः ) चाबानुषिबीजे ( अपीक्यं रत्नं दधाति ) छिपे हुए धन यनमानको  
 देता है ॥ १ ॥

[ १०३२ ] ( द्विजः पतिः ) वृत्तिकार स्वामी ( शतघातः ) संकर्म पापमोक्ष छाना करनेवाला ( विचक्षणः )  
 जाजी ) बुद्धिमान् और यक्षमा ( हरिः ) हरे रंगका सोमरस ( अभिक्लृन्कलशं अपति ) शय्य करता हुआ कलशमें  
 जाता है । ( सिन्धुभिः ) वाज्ये विभिन्न होकर ( अविमिः मर्मज्ञानः ) बर्तनीकी बनी छलनीसे छाने होता हुआ यह  
 ( दृषा ) बलवान् सोम ( मित्रस्य सदनेषु सीदति ) मित्रके बलके पासमें जाकर रहता है ॥ २ ॥

१०३३ अग्रे भिन्धूनां पवमानो अर्पेस्यग्रे वाचां अग्निषो गोषु गच्छसि ।

अग्रे वाजस्य भजसे महद्भनः स्वायुषः सातुभिः सोम सूयसे ॥ ३ ॥ १ ( छु ) ॥  
[ धा० २९ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. २८६।१२ )

१०३४ असुक्ष्तं प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाश्वरः ॥ १ ॥ ( ऋ. २८६।४ )

१०३५ शुम्पमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गमस्तयोः । पञ्चने वारे अवपये ॥ २ ॥ ( ऋ. २८६।९ )

१०३६ ते विश्वा दागुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ३ ॥ २ ( बी ) ॥  
[ धा० २० । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. २८६।६ )

१०३७ पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रक्ष्वा । इन्द्रमिन्द्रो वृषा विश्व ॥ १ ॥ ( ऋ. २८७।१ )

१०३८ आ वक्ष्यस्व महि प्सरौ वृषेन्द्रो पुञ्जवचमः । आ योनिं वर्णसिः सद् ॥ २ ॥ ( ऋ. २८७।२ )

१०३९ अघुक्षत मियं यधु धारा सुतस्य वेपसः । अपो वसिष्ठ सुकहुः ॥ ३ ॥ ( ऋ. २८७।३ )

[ १०३३ ] हे सोम ! तू ( भिन्धूनां अग्रे ) जल मिलानेके पहले ( पवमानः अर्पेति ) दृष्ट होनेके लिए जाता है । ( वाचः ) मग्ने गच्छसि । स्मृतिके लिए पुत्र्य होकर जाता है । ( गोषु अग्निषो गच्छसि ) गायिके आगे आगे चलता है । ( वाजस्य स्वायुषः ) बलके लिए उत्तम शक्तेति युक्त होकर ( महद् घनं भजसे ) बड़े-बड़े धन प्राप्त करता है । ( सोम सोतुभिः सूयसे ) हे सोम ! तू ऋषिर्वा द्वारा निबोडा जाता है ॥ ३ ॥

[ १०३४ ] ( वाजिनः ) बलवान्, ( शुक्रासः ) आशय सोमासः । तेजस्वी और पतिमान् सोम ( गव्या, अश्वया, वीरया ) माय, घोड़े और पुत्र वज्रमानकी प्राप्त हों इसलिये ( प्र असुक्ष्तं ) अपना रस छोड़ते हैं ॥ २ ॥

[ १०३५ ] ( शुम्पमानाः ) यत् करनेवाले ऋषिर्वा द्वारा ( शुम्पमानाः ) मुषोभिः हुए और ( गमस्तयोः ) मृज्यमाना ) हाथसे दृष्ट किए जानेवाले सोमरस ( अवपये वारे ) बँडके बालोंकी छलनीसे ( पञ्चने ) दृष्ट किये जाते हैं ॥ २ ॥

[ १०३६ ] ( ते सोमाः ) वे सोमरस ( दागुषे ) दान देनेवाले वज्रमानकी ( दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पार्थिवा ) दृष्टीके, आन्तरिक्ष और पृथ्वीपरके ( विश्वा वसु ) सब धन ( आ पवन्तां ) देवें ॥ ३ ॥

[ १०३७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( देवयोः ) देवोंकी प्राप्त होनेकी इच्छा करनेवाला तू ( रंसा पवित्रं प्रति पपस्य ) वेगपूर्वक छलनीसे छनता जा । हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला तू ( इन्द्रं मिन्द्रा ) इन्द्रमें प्रविष्ट हो ॥ १ ॥

[ १०३८ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( वृषा पुञ्जवचमः ) वर्णसिः ) बलवान् तेजस्वी और सबका धारण करनेवाला तू ( महि प्सरः ) बहुत अन्न और जल ( आ वक्ष्यस्व ) हमें दे और ( योनिं आ सद् ) अपने स्थान पर बँड ॥ २ ॥

[ १०३९ ] ( सुतस्य वेपसः ) धारा ) रस निबोड़े गए सोमकी धारा ( मियं यधु अघुक्षत ) अच्छे लगनेवाले घोड़े रसकी वर्णनमें इच्छा करने हैं । ( सु-यधुः ) उत्तम यध करनेवाला सोम ( अपः वसिष्ठ ) जलमें मिलाया जाता है ॥ ३ ॥

१०४० महान्तं त्वा महीरन्वापां अर्पन्ति सिन्धवः । यद्रोभिर्वासिपिबसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।४ )

१०४१ समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो वरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१।५ )

१०४२ अचिक्रददृषा हरिमेष्टान्मित्रो न दशतः । सश्रूयेण दिव्युते ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।१।६ )

१०४३ गिरस्त इन्द्र ओजसा ममृज्यन्ते अपस्वयुः । यागिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।१।७ )

१०४४ ते त्वा मदाय धृष्यथ न लोककृत्तुमीमहे । तव प्रभुस्तये महं ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।१।८ )

१०४५ गोषा इन्द्रो नृषा अस्यधसा वाजसा उत । आस्मा यज्ञस्य पूर्यः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१।९ )

१०४६ अस्मद्विष्टमिन्द्रविन्द्रियं यषोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाश्रव ॥ १० ॥ ३ ( कै. ) ॥

[ धा० १।१।८०।१।१००।८ ] ( ऋ. १।१।९ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१०४७ सनां च सोमं जेपि च पवमानं माहं यवः । अथा नो वस्यसस्तुधि ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१० )

[ १०४० ] हे सोम ! ( वा. गोमिः घासविष्यसे ) अब तू बाक्ये कुपमें निरापय जाता है, तब ( महान्तं त्वा ) बहरते हुए पुनः तुमने ( सिन्धवः महीरन्वापाः ) नदीका बहुताया पानी भी ( अनु अर्पन्ति ) निरापय जाता है ॥ ४ ॥

[ १०४१ ] ( समुद्रः ) जलमय ( दिवः विष्टम्भः ) धूलोत्फो धारण करनेवाला और ( धरया ) आधार देनेवाला और ( अस्मयुः सोमः ) हमें चाहनेवाला सोम ( पवित्रे अप्सु मामृजे ) धर्मनके पानीमें बारबार घोसा जाता है ॥ ५ ॥

[ १०४२ ] ( वृषा महान् हरिः ) बलवर्धक, महान् और हरे रंगका तथै ( मित्रः न दशतः ) मित्रके लगान दासीय सोम ( अचिक्रदृषा ) शय्य करता है और ( सश्रूयेण दिव्युते ) सुबके सपना घमकता है ॥ ६ ॥

[ १०४३ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( ते ओजसा ) तेरे तावप्यन्ते ( अपस्वयुः गिरः ) कर्मकी इच्छा करनेवाले लोता, वृत्तिके नन, ( ममृज्यन्ते ) कहते हैं और ( यागिः मदाय शुम्भसे ) इन वृत्तियोंके अनन्त बढ़ानेके लिए तू जलहत किया जाता है ॥ ७ ॥

[ १०४४ ] हे सोम ! ( तव महं प्रदास्तये ) तेरी महान् वृत्तिके लिए ( लोककृत्तुमीमहे ) लोकोत्थन ( इष्टा करनेवाले इष्टावाते धृते ) धृष्ट्यये मदाय ) राज्ञा नाम करनेके लिए और आजन्म बढ़ानेके लिए ( इमहे ) हम प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

[ १०४५ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( यज्ञस्य पूर्यः ) यज्ञकी मुख्य आत्मा तू ( गोषा नृषा ) नाम देनेवाला, पुनः देनेवाला तथा ( अस्यधसा उत वाजसा ) घोड़े और भाल बेनेवाला ( वसिः ) है ॥ ९ ॥

[ १०४६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( वृष्टिमाश्रव पर्जन्य इव ) वर्षा करनेवाले येषके लगान ( अस्मभ्यं ) हमकी ( इन्द्रियं ) बलवर्धक लाभार्थ ( यषोः धारया पवस्य ) अपूर्व रसी पारते दे ॥ १० ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १०४७ ] ( मादिभयः पवमान सोम ) हे बहुत प्रशंसनीय पुनः होनेवाले सोम ! तू ( सन ) बेधोते प्राप्त हो तथा ( जेपि ) तू अनुभोको भीत ( यवः ) बाक्ये ( नः धरयाः वृधि ) हमें यतनो कर ॥ १ ॥

१७ [ साम. द्वितीया २ ]

१०४८ सना ज्योतिः सना स्वर्धिविधा च सोम सौमया । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥

( ऋ. ९।४।२ )

१०४९ सना दसक्षत ऋतुमप सोम मृषो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।४।३ )

१०५० पथीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातये । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।४।४ )

१०५१ र्वयं स्वयं न आ भज तव कृत्वा उवातिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।४।५ )

१०५२ तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योतिष्येभ्यः स्वयं । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।४।६ )

१०५३ अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विर्हस्यरयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।४।७ )

१०५४ अभ्यर्षेणानपच्युतो वाजिन्समस्तु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।४।८ )

१०५५ र्वा यक्षैरवीवृचन्पयमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।४।९ )

१०५६ रयि नवित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥ ४ ( चा ) ॥

[ चां २२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।४।१० )

[ १०४८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( ज्योतिः सना ) हमें तेज दे, ( सः च विधा सौमया सन ) तुल औरतन सौम्या दे, ( अथ ) बाह्य ( नः घस्यसः कृधि ) हमें कल्याणयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १०४९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( दसं ऋतुं सन ) बल और यज्ञ करनेवाले साधन्य दे, ( मृषोः अपजहि ) शत्रुओंको हरा, ( अथ नः घस्यसः कृधि ) और हमें कल्याणयुक्त कर ॥ ३ ॥

[ १०५० ] हे ( पथीतारः ) सोमरत सौम्यार करनेवाले आश्विनो ! ( इन्द्राय पातये ) इन्द्रके पीनेके लिए ( सोमं पुनीतन ) सोमरतको पवित्र करो, ( अथ नः घस्यसः कृधि ) हमें कल्याणयुक्त कर ॥ ४ ॥

[ १०५१ ] हे सोम ! ( र्वं ) तू ( तव क्रत्वा ) अपने कार्यके और ( तव उतिभिः ) अपने तरतापोंके ( नः स्वयं आ भज ) हमें स्वयंकी उपासनामें रचावित कर, ( अथ नः घस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ५ ॥

[ १०५२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( तव क्रत्वा ) तेरे द्वारा किए गए जानके ( तव उतिभिः ) तेरी रक्षामें रहकर हम ( ज्योतिः स्वयं पयमेभ्यः ) बहुत समस्तक सुयंकी बेलें, ( अथ नः घस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ६ ॥

[ १०५३ ] हे ( स्वायुध सोम ) उत्तम वातोंकी धारण करनेवाले सोम ! ( द्वि-वर्हसं रयिं अभ्यर्षं ) दोनो रथानोंके यज्ञ हमें दे, ( अथ नः घस्यसः कृधि ) और हमें सुखी कर ॥ ७ ॥

[ १०५४ ] हे ( वाजिन् ) बलवान् सोम ! ( समस्तु अनपच्युतः ) युद्धमें न हारनेवाला और ( सासहिः ) शत्रुकी हारनेवाला तू ( अभि अर्षं ) कलतेमें छनता जा ( अथ ) और ( नः घस्यसः कृधि ) हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ८ ॥

[ १०५५ ] हे ( पयमान ) बहुत होनेवाले सोम ! सोम ( विधर्मणि ) विविध कल देनेवाले यज्ञमें ( यक्षैः रया भवीवृचन् ) भूजनीय सौम्यके तेरे बहुस्वकी बताते हैं, ( अथ नः घस्यसः कृधि ) अतः हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ९ ॥

[ १०५६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( नः ) हमें ( नवित्रं अभिर्षं ) निवृत्त, घोड़ेके युक्त और ( विश्वायुं ) सब सौम्योका हित करनेवाले ( रयिं ) यज्ञको ( आभर ) भरपूर दे, ( अथ नः घस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ १० ॥

१०५७ तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्त्रान्वसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१८।१ )

१०५८ उक्षा वेद वक्ष्नां मर्त्यस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१८।२ )

१०५९ व्यसयोः पुरुषन्त्योरो सहस्राणि दधहे । तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१८।३ )

१०६० आ योस्त्रिंशत् तना सहस्राणि च दधहे । तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ५ ( हा ) ॥  
[ धा० ६ । उ० नास्ति । १७० २ ] ( ऋ. १।१८।४ )

१०६१ एते सोमा असृक्षत गुणानाः श्वसे महे । मदिन्त्वमस्य धारया ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१९।१ )

१०६२ अभि गव्यानि पीतये नृम्णा पुनानो अर्पसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१९।२ )

१०६३ उत नो गोमतीरिषो विस्वा अर्प परिष्टुमः । गुणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥ ६ ( वि ) ॥  
[ धा० १५ । उ० नास्ति । १७० ३ ] ( ऋ. १।१९।३ )

१०६४ इमं स्तोममहेतुं जातवेदसे रथमिष सं महेमा मनोपया ।  
मद्रा हि नः प्रमतिरस्य सत्सदयस्य सख्ये मा रिषामा वयं खव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२०।१ )

[ १०५७ ] ( मन्दी सः ) आनन्द देवैवात्मा बहु सोम ( तरत्स धावति ) शीघ्र ही छत्तीसे नीचे गिरता है, ( सुतस्त्रान्वसः धारा ) इस सोमरथस्थी जगती धारा ( धावति ) बौद्धी है । ( मन्दी सः तरत्स धावति ) आनन्द देवैवात्मा बहु सोम छत्ता हुआ बौद्धता है ॥ १ ॥

[ १०५८ ] ( उक्षां उक्षा ) यम देवैवात्मा ( देवी ) चपकवी हुई धारा ( मर्त्यस्य मयसः देव ) यममानकी रथाके प्रकारकी जागती है, ( स मन्दी तरत्स धावति ) वह आनन्द देवैवात्मा धारा शीघ्रतासे बहती है ॥ २ ॥

[ १०५९ ] ( व्यसयोः पुरुषन्त्योरो ) व्यस और पुरुषन्तिके ( सहस्राणि व्यादधहे ) हजारों प्रकारके धनोंको हम ग्रहण करते हैं । ( मन्दी सः ) आनन्द देवैवात्मा बहु सोम ( तरत्स धावति ) शीघ्रतासे बौद्धता है ॥ ३ ॥

[ १०६० ] ( ययोः ) जिस कारण अथ और पुरुषन्तिके ( त्रिंशत् सहस्राणि ) तीस ती और हजार ( तना व्यादधहे ) बलोंकी हम स्वीकार करते हैं, ( मन्दी सः तरत्स धावति ) आनन्द देवैवात्मा बहु सोम शीघ्र ही नीचेके बर्तनमें गिरता है ॥ ४ ॥

[ १०६१ ] ( मदिन्त्वमस्य पते सोमाः ) परम आनन्द देवैवात्मा सोमके ये रस ( गुणानाः ) स्तुतिके बार ( महे धावते ) हमें उत्तम वत् प्रदान करनेके लिए ( धारया असृक्षत ) एक धारसे कलसेमें विरते हैं ॥ १ ॥

[ १०६२ ] हे सोम ! तू ( पीतये ) बेबोले पीनेको देनेके लिए ( नृम्णा गव्यानि ) घनूयोंकी आनन्द देवैवात्मा हम पाविषोले ( पुनानः अर्पसि ) बलिष हुआ हुआ कलशमें जाता है । ( धाजः सनद्वा परिष्टुमः ) अथ देता हुआ तू कलशमें उतरता है ॥ २ ॥

[ १०६३ ] ( उत ओर हे सोम ! ) जमदग्निना गुणानः ) धमरन्तिके द्वारा प्रवर्तित हुआ हुआ तू ( नः ) हमें ( गोमतीः ) पाविषे वृक्ष ( परिष्टुमः ) प्रवर्तनीय ( विस्वाः इषः ) खव जल ( अर्प ) दे ॥ ३ ॥

[ १०६४ ] ( महेतुं जातवेदसे ) यज्मनीय अग्निके लिए ( मनोपया ) बुद्धिपूर्वक किए गए ( रमं स्तोमं ) इस स्तोत्रकी ( रथं ) रथके सामान ( रं महेमा ) हम यज्मनीय करते हैं । ( अस्य सत्सद्वि ) इसकी आराधनामें ( नः प्रमतिः ) हमारे बुद्धि ( मद्रा हि ) उत्तम वक्ता है । ( अरे ) अग्निके ! ( स्रव सख्ये ) तेरी मित्रतामें ( ययं मा रिषाम ) हम कुपोषा बौद्धि ग हों ॥ १ ॥

१०६५ भ०रामे०भं कृणवामा हवी०पि ते चित्तयन्तः पर्वणा०पर्वणा वषम् ।  
जीवा०तवे प्रत०रा० साधया धियो०ऽभे सख्ये मा रि०षामा वयं तव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९५।४ )

१०६६ शकेम त्वा समिध० साधया धियस्त्वे देवा हवि०रदन्त्या०द्रुतम् ।  
स्वमा०दि०रमा० आ वह तान्द्रा०ऽमस्यम सख्ये मा रि०षामा वयं तव ॥ ३ ॥ ७ ( छी ) ॥  
[ धा० ३७ । उ० २ । २।० १० ] ( ऋ. १।९५।३ )  
॥ इति द्वितीयः पञ्च ॥ २ ॥

[ ३ ]

१०६७ प्रति वा०सुरे उ०दिते मि०त्रे गृणीषे वरुणम् । अ०र्षेमण० रि०शाद०सम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।६६।० )

१०६८ रा०या हिर०ण्यया मा०तिरि०यमृ०काय श्रवसे । इ०यं वि०म्रा म०धसा०तये ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।६६।८ )

१०६९ ते स्याम देव वरुण ते मि०त्र य०रि०भिः सह । इ०प०स्वध धीमहि ॥ ३ ॥ ८ ( हा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० ना०ति० । २३० २ ] ( ऋ. ७।६६।९ )

१०७० मि०न्धि वि०षा अप द्वि०पः परि वा०धा जही सृ०षः । वसु र्पा०ह तदा भर ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१५।१० )

[ १०६५ ] हे ( अग्ने ) जनि०देव । ( इ०धम भ०राम ) हम तेरे लिए लमि०या एकत्रित करते हैं ( वयं ) हम ( पर्वणा पर्वणा ) प्रत्येक पर्वमें ( चित्तयन्तः ) तुम प्रवीण करते हू ( ते हवी०पि कृणवाम ) तेरे किए हवि लैग्या०र करते हैं । वह वृ ( जीवा०तवे ) हमारे वी०र्षजीवनके लिए ( धिय प्र०तरां साधया ) हमारे यत्नमंकी वृर्ण कर । हे ( अग्ने ) अनि०देव ! ( त०उ सख्ये ) तेरी मि०त्रतामें रहकर ( वय मा रि०षाम ) हम कभी कु०ली न हों ॥ २ ॥

[ १०६६ ] हे अग्ने ! ( त्वा समिधं शकेम ) तुम हम उत्तम री०तिते आ०वाते हैं । ( धिया साधया ) हमारे यत्ना०रि कर्म उत्तम री०तिते शि०द्ध कर । ( इये आ०द्रुत हविः ) तुममें आ०द्रुतिके द्वारा भी गई हवि०की ( दे०वाः अ०द्रुति ) दे०वण आ०वाते ह । ( स्व आ०द्रित्यान् आ वह ) वृ अ०द्रितिके वृर्णकी वृला०कर ला ( मा०व हि उ०मसि ) वही हम उनको इ०च्छा करते हैं ( अग्ने ) हे अग्ने ! ( सय सख्ये वय मा रि०षाम ) तेरी मि०त्रतामें हम सख न हों ॥ ३ ॥

॥ यहाँ द्रु०तरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्ड ।

[ १०६७ ] हे मि०त्र और वरुण बेबी ! ( सुरे उ०दिते ) वृ०र्षके उ०दय होवे पर ( वां मि०त्र वरुण ) तुम दोनों मि०त्र और वरुणकी तथा ( रि०शाद०सं अ०र्षेमण ) अनु०लम्बक अ०र्षेवा०की तथा ( प्रति ) प्रत्येक वे०वता०र्षीकी ( गृणी०षे ) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १०६८ ] हे ( रि०माः ) शानि०यो ! ( इ०य मति ) यह स्तुति ( हिर०ण्यया रा०या ) हितकारक और स्वमी०य धनके साथ ( अनु०काय श्रवसे ) क्रूरता०रहित वरुणकी शान्तिके लिए और ( मेघ०सा०तये ) वरुणकी सि०द्धिके लिए वृ०र्षों स्तो०तार हो ॥ २ ॥

[ १०६९ ] हे ( दे०व वरुण ) वरुणदेव । ( सुरि०भिः सह ) वि०द्वानेके साथ ( ते ) तेरी भी स्तुति करनेवाले हम वन०वान ( स्याम ) हों । हे ( मि०त्र ) मि०त्र ! तेरी भी स्तुति करनेवाले हम वन०वान हों तथा ( इ०यं च स्व धीमहि ) वय और स्वमी०य आ०कृष्य प्राप्त करनेवाले हों ॥ ३ ॥

[ १०७० ] हे इ०धम ! तू ( वि०श्वः ) द्वि०पः अप वि०न्धि ) सब शत्रु०शोक नाश कर ( वा०धः सृ०ष परि जहि ) वा०धा वरुणवाले शत्रु०शोक नाश कर । ( र्पा०ह तस् वसु आ०मर ) और आ०हने योग्य बन हूँ ॥ १ ॥

१०७१ यस्य ते विश्वमानुषभूरेदस्य वेदति । वसु स्वाहे तदाभर ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४९।४२ )

१०७२ पद्मीडाविन्द्र यत्स्थिरं यत्पशानि परामृतम् । वसु स्वाहे तदा भर ॥ ३ ॥ ९ ( पू. ) ॥  
[ धा० १२ । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. ८।४९।४१ )

१०७३ यमुस हि स्थ ऋत्विजा सस्वी वाजिषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधताम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।१८।१ )

१०७४ सोशासा रथयावाना वृषहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधताम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१८।२ )

१०७५ इदं वा मदिरं मन्त्रधुषन्निमिनरं । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥ १० ( डा. ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । २२० २ ] ( ऋ. ८।३८।१ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१०७६ इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वते पशुस्य मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।२२ )

१०७७ तं रवा मिश्रा बसोविदः परिष्कृषन्ति धनसिम् । तं रवा मृजन्त्याययः ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।६४।२१ )

[ १०७१ ] हे इन्द्र ! ( ते दत्तस्य ) तेरे द्वारा लिए गए ( भूरे-यस्य ) बहुतते जित बनकी ( विश्व आनुषङ्ग्ये ) सब मनुष्य क्रमते जानते है ( तत् स्वाहे वसु नः आभर ) उस चाहने योग्य बनको हमें भरपूर दे ॥ २ ॥

[ १०७२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् पद्मीडा ) जो मन मजबूत करनेमें रक्षा हुआ है, ( यत् स्थिरं ) और जो जमीनमें स्थिर स्थानपर रखा हुआ है ( यत् पशानि ) जो छन्दे के योग्य जगहमें रखा हुआ है; तथा जो ( परामृतं ) शत्रुसे छीनकर लाया गया मन है ( तत् स्वाहे वसु नः आभर ) वह चाहने योग्य बन हमें दे ॥ ३ ॥

[ १०७३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! तुम ही ( स्वी ) निरचरते ( यमुस्य ऋत्विजा स्व ) यमके ऋत्विज हो । ( वासेषु कर्मसु ) युद्धके समान कर्मोंमें भी तुम ( सस्वी ) युद्ध रहते हो इसलिए ( तस्य बोधताम् ) उस स्तुतिको तुम जानकर स्वीकार करो ॥ १ ॥

[ १०७४ ] हे ( सोशासा ) शत्रुको मारनेवाले ( रथ-यावाना ) रथसे जानेवाले ( वृष-हणा ) घेरनेवाले शत्रुओंके नाश करनेवाले ( अपराजिता ) पराजित न होनेवाले ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( तस्य बोधताम् ) उस मेरी स्तुतिको सुनकरके स्वीकार करो ॥ २ ॥

[ १०७५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( वां ) तुम्हारे लिए ( मदिरं ) ऋत्विजोंने ( मन्त्रभिः ) मन्त्रोंसे ( मदिरं मधु अनुक्षन् ) आनन्द देनेवाला मीठ मीठसर निकालकर तैयार किया गया है ( तस्य बोधते ) उस सम्मान्य मेरी स्तुति तुम जानो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १०७६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा ऐसा मू ( अर्कस्य योनिमासदं ) पूज्य यमके स्थानमें बँधनेके लिए तथा ( मरुत्वते इन्द्राय पशुस्य ) मरुतोंके साथ जानेवाले इन्द्रके लिए तू युद्ध हो ॥ १ ॥

[ १०७७ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( तं रवांसि रवां ) उस बारणासिजिते युक्त तुम ( बसोविदः मिश्राः ) बास्यरा अर्च जाननेवाले जानो ( परिष्कृषन्ति ) सुशोधित करते है । ( आययः ) ऋत्विजजनों ( रवा सं मृजन्ति ) तुम उतार मारकरके युद्ध करते हैं ॥ २ ॥



१०७८ रसं ते मित्रो अयमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥ ११ ( ल ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नारित । २३० १ ] ( ऋ. ९।६४।२४ )

१०७९ मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।  
रायि पिशङ्गे वहुलं पुरुस्पृहं पवमानाम्यर्पसि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।०७।११ )

१०८० पुनानो धारं पयमानो अरुणये वृषो अचिक्रददने ।  
देवानां सोम पवमान निष्कृष गोभिरज्जानो अर्पसि ॥ २ ॥ १२ ( ति ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । २३० २ ] ( ऋ. ९।०७।२२ )

१०८१ एतस्य त्वं दक्ष क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादिस्त्येभिरुत्थत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।७ )

१०८२ समिन्द्रणीत वायुना सुत एति पयित्र आ । सत् सूर्यस्य रश्मिमि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।८ )

१०८३ स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुमित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥ १३ ( टि ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । २३० ३ ] ( ऋ. ९।६१।९ )

॥ इति ऋषयः सप्तः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१०८४ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु सुविवाजाः । क्षुमन्वो यामिर्मदेव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२०।१३ )

[ १०७८ ] हे ( कवे ) कान्तवर्त्ता सोम । ( पवमानस्य ते रसं ) पयित्र होनेवाले तेरे रसको ( मित्रः वरुणः ) अयमा मरतः पिबन्तु । मित्र, वरुण, अयमा और मरत पौर्वे ॥ ३ ॥

[ १०७९ ] ( सु-हस्त्या ) सुन्दर अमुन्मिषीते ( मृज्यमानः ) मृद किया जानेवाला सोम ( समुद्रे वाचं इन्वसि ) कलकल शब्द करता हुआ गिरता है । हे ( पवमान ) मृद होनेवाले सोम । ( पिशङ्गे पुरुस्पृहं ) सोमके रंगके समान अनेकों द्वारा चाहने योग्य ( वहुलं रायि अभ्यर्पसि ) बहुत चरु देता है ॥ १ ॥

[ १०८० ] ( वृषः पुनानः ) बल बढ़ानेवाला, मृद होनेवाला ( अरुणये धारं पयमानः ) भँवके बालोंकी छलनीसे छननेवाला ( घने अचिक्रददत् ) पानीमें शब्द करते हुए गिरता है । हे ( पवमान ) मृद होनेवाले सोम । वृ ( वेवानां ) देवताओंके लिए ( गोभिर् अज्जान ) बायके दूधके माद मिलामा जाता है और ( सिष्कृते अर्पसि ) मृद किए हुए स्थानपर सू गता है ॥ २ ॥

[ १०८१ ] ( सिन्धु-मातरं त्वं वते ) सिन्धु जिसकी माता है ऐसे दस [सोमको ( द्यास्तिपः ) दस अंगुलियां ( मृजन्ति ) मृद करता है । वत सोम ( व्यादित्येभिः सप्तमस्यतः ) आदित्योंको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

[ १०८२ ] ( सुतः ) सोमरस ( पयित्रे ) कलकल ( इन्द्रेण त्वं एति ) इन्द्रको प्राप्त होता है । ( उत वायुना आ ) और वायुकी भी प्राप्त होता है तथा ( सूर्यस्य रश्मिमि सं ) सूर्यकी किरणोंके साथ मिलता है ॥ २ ॥

[ १०८३ ] हे सोम । ( मधुमान् चारुः सः ) मीठा और सुन्दर चरु ( सः ) हमारे वाच ( भगाय, वायवे, पूष्णे, मित्रे, वरुणे च पवस्व ) भग, वायु, पूषा, मित्र और वरुणके लिए पयित्र हो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमाः सप्तमः ।

[ १०८४ ] ( क्षुमन्तः ) जलके पास रहनेवाले हंस ( यामिः ) जिस वायोंके साथ रहकर ( मदेव ) आनन्दका उपभोग करते हैं, ( इन्द्रे सधमादे ) उस इन्द्रके साथ एक स्थानपर रहकर ( जः ) हमारी ने पापों ( रेवतीः ) इष और घी देनेवाली और ( सुविवाजाः सन्तु ) बलसे युक्त हों ॥ ४ ॥

१०८५ आ य त्वावान् त्वना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीथानः । ऋणोरथं न चकपोः ॥ २ ॥  
( ऋ. १३०।१४ )

१०८६ आ यद् दुषः श्रुतकत्वा कामं नस्तृणाम् । ऋणोरथं न शचीभिः ॥ ३ ॥ १४ ( ठी ) ॥  
[ धा० १८ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १३०।१५ )

१०८७ सुरूपकुतुमुयै सुदुषामिव गोदुहे । जुहमसि घविघवि ॥ १ ॥ ( ऋ. १४।१ )

१०८८ उप नः सयना गहि सोमस्य सोमयाः पिव । गोदा इद्रेनवा मदः ॥ २ ॥ ( ऋ. १४।२ )

१०८९ अथा ते अन्तमानां विधाम सुमचीनाम् । मा नो अवि ख्य आ गहि ॥ ३ ॥ १५ ( कौ ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. १४।३ )

१०९० उमे यदिन्द्र रोदसी आपम्रायोवा इव । महान्तं स्वा महीनां सम्राजं चर्यणीनाम् ।  
देवी जनित्र्यजीजनद्भ्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१३।१ )

१०९१ दीर्घैश्चोदुक्तै यथा शक्ति विमर्षि मन्तुमः । पूर्वैण मघवन्पदा वयामजा यथा यमः ।  
देवी जनित्र्यजीजनद्भ्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१३।२ )

[ १०८५ ] हे ( धृष्णोः ) पर्ववान् इन्द्र ! ( त्वावान् ) तेरे सत्त्वा ( त्वना युक्तः ) बुद्धिसे युक्त होकर ( इथानः ) प्रार्थना करनेके बाद ( स्तोतृभ्यः ) स्तोताओंके लिए इष्ट पदार्थ ( य आ चकपोः ) अन्नभक्ष है, ( चकपोः ) भक्ष न । जिस प्रकार दोनों चकौकी रथकी घुरा मिलाती है या सयुक्त करती है उसीप्रकार स्तोताओंको धनसे सम्पन्न कर ॥ २ ॥

[ १०८६ ] हे ( शत-क्रतो ) सैकड़ो कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( यद् दुष कामं ) उपासकोंको जो इच्छित धन है वह ( जस्तिमृणां आ ऋणो ) स्तुति करनेवालोंको दिला ( शचीभिः अर्क्ष न ) जिस प्रकार रथकी चलन अवस्थामें उसके हाथकी मो गति मिलती है, उसीप्रकार स्तुति करनेवालोंकी धन मिले ॥ ३ ॥

[ १०८७ ] ( सुरूपकुतुम् ) सुन्दर रूप करनेवाले इन्द्रकी ( कुतये ) अपने सत्सङ्गके लिए ( घवि घवि जुहमसि ) प्रतिदिन हम बुलाते हैं । ( गोदुहे सुदुषा इव ) दुष गृहनेके समय म्वाले जिस प्रकार दुषको मायोंको बुलाते हैं, उसी प्रकार हम इन्द्रकी बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ १०८८ ] हे ( सोमयाः ) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! सोमरस पीनेके लिए ( नः सयना उप मागहि ) हमारे बतोंके सवनोंमें आ । ( सोमस्य पिव ) सोम पी, और तु ( देवत-मदः गोदा इव ) वनवातोंको आनन्द और गावें बेनेवाला हो ॥ २ ॥

[ १०८९ ] ( अथ ) सोम पीनेके बाद ( ते अन्तमानां सुमचीनां विधाम ) तेरे पास रहनेवाणी उत्तम बुद्धिओंकी हम जानें, तू भी हमारे पास ( आ गहि ) आ । ( नः मा अति ख्यः ) हमें छोड़कर दूसरोंको उस शानकी मत बता ॥ ३ ॥

[ १०९० ] हे ( इन्द्र इव ) ( उमे रोदसी ) दोनों ही सुलोक और न्यूलोकके ( उपाः इव ) उपा जिस प्रकार अपने प्रकाशसे सब आत्माको भर देती है, उसीप्रकार तू भी ( यत् आपम्राथ ) जन भर देता है तब ( महीनां महान्तं ) महान्ते महान् ( चर्यणीनां सम्राजं स्वा ) अनुय्येके सम्राट् तुझे ( देवी जनित्रि ) देवमाता अविति ( अजीजनत् ) उत्पन्न करती है, ( भ्रा जनित्रि अजीजनत् ) कल्याण करनेवाणी माता उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

[ १०९१ ] हे ( मन्तुमः ) शानवान् इन्द्र ! ( दीर्घैश्चोदुक्तै यथा ) महान् शत्रुओंके मारण करनेके समान ( शक्ति विमर्षि ) तू दक्षितको धारण करता है, हे ( मघवन् ) इन्द्र ! ( यथा अजः पूर्वैण यत्र ) जैसे यकरा जारोंके पीछे ( यथा यमः ) शत्रुओंके विध्वंसित करता है उसीप्रकार तू शत्रुको निध्नित करता है, तुझे ( देवी जनित्रि अजीजनत् ) अविनिर्वाहीने जन विधा है, ( भ्रा जनित्रि अजीजनत् ) कल्याण करनेवाणी माताने तुझे प्रत्य किया है ॥ २ ॥

१०९२ अब स दूर्हेणापतो मर्त्यस्य तनुहि स्थिरम् । अधस्पदं तर्षीं कृषि यो असा५ अभिदासति ।

देवीं अनि३पजीजन३द्रुद्रा अनि३पजीजनत् ॥ ३ ॥ १६ ( यौ ) ॥

[ धा० ४२ । उ० नास्ति । स्व० १० ] ( ऋ. १०।१४।९ )

॥ इति षष्ठमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१०९३ परि स्थानो गिरिष्ठाः । पर्वत्रे सोमो अक्षरत् । मदेपु सर्वथा असि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८।१ )

१०९४ त्वं विप्रस्त्वं कविर्भेषु म जातमन्वसः । मदेपु सर्वथा असि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८।२ )

१०९५ त्वे विष्वे सजोपसो देवासः पीतिमाशत । मदेपु सर्वथा असि ॥ ३ ॥ १७ ( खा ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।८।२ )

१०९६ स सु३न्ये यो व३सूनां यो रा३यामा३नेता य इ३डाना३म् । सोमो यः सु३क्षितीना३म् ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।८।१३ )

१०९७ यस्य स इन्द्रः पिशादस्य मरुतो यस्य दार्यमणा भगः ।

आ येन मि३त्राव३रुणा क३राम३ह ए३न्द्रम३वसे म३ह ॥ २ ॥ १८ ( ली ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।८।१४ )

[ १०९२ ] ( दूर्हेणापतो मर्त्यस्य ) दुष्ट मनुके ( स्थिरं अथ तनुहि ) स्थायी बलको लीन कर, ( यः अस्मान् अभिदासति ) जो हर्षे बात बनाना चाहता है ( तं ई अधस्पदं कृषि ) उसे नीचे दबा डे । ( देयी अनि३षी अजी३जनत् ), अर्थात् माताने सुमे उत्पन्न किया है, ( भ३द्रा अनि३षी अजी३जनत् ) कल्याण करनेवाली माताने सुमे प्रकट किया है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाँचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १०९३ ] ( गिरिष्ठाः स्वानः सोम ) पर्वतपर रहनेवाला, रस निकाल सया सोम ( पर्वत्रे परि अक्षरत् ) छलनीसे टपकता है । हे सोम ! ( मदेपु सर्वथा असि ) आनन्ददायक पदार्थोंमें तू सबसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

[ १०९४ ] हे सोम ! ( त्वं विप्रः ) तू जानी है, ( त्वं कविः ) तू दूरदर्शी है, तू ( अन्वसः ) जाते मनु म अन्तरे उत्पन्न मधुर रसको धेता है । ( मदेपु सर्वथा असि ) आनन्द देनेवाले रसोंमें तू सबसे उत्तम है ॥ २ ॥

[ १०९५ ] हे सोम ! ( सजोपसः विष्वेदेवासः ) एक कर्षको जुटकर करनेवाले सप्त वंश ( त्वे पीति आशत ) सेटा रस पीनेकी इच्छा करते हैं । ( मदेपु सर्वथा असि ) आनन्द देनेवालोंमें सबको अपेक्षा तू ही अधिक श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

[ १०९६ ] ( यः सोम ) जो सोम ( वसूनां आ नेता ) घनोंको लानेवाला ( यः रायां ) ओगायोंको लानेवाला ( यः इडां ) जो यज्ञ लानेवाला, ( यः सुक्षितीनां ) जो उत्तम पुत्रोंको और नीकरोंको देनेवाला है, ( सः सुन्ये ) उस सोमके रसको निकाला जाता है ॥ १ ॥

[ १०९७ ] हे सोम ! ( यस्य ते इन्द्रः पिशात् ) जिस सेरे रसको इन्द्र पीता है, ( यस्य मरुतः ) जिसका रस मरुत पीते है ( याः ) अथवा ( यस्य जैर्यमणा भग ) जिसके रसको जैर्यमणके सप्त भग वंश पीते है, ( येन महे अधसे ) जिस सोमके द्वारा महान् संरक्षणके लिए ( मित्रावरुणा आ ) मित्र और वरुणकी बुलाया जाता है, उसीप्रकार ( इन्द्रः आ ) इन्द्रकी बुलाया है ॥ २ ॥

१०९८ ते वः सखाया मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्यद्वन्त गृतिभिः ॥ १ ॥  
( ऋ ९।१०।१ )

१०९९ सं वरस इव मातृभिरिन्दुहिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥  
( ऋ ९।१०।२ )

११०० अयं दक्षाय साधनोऽप्यघर्षाय वीतये ।  
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥ १९ ( पि ) ॥  
[ भा० १७ । उ० नास्ति । २० ३ ] ( ऋ. ९।१०।३ )

११०१ सोमाः पवन्त इन्दवाऽस्मभ्यं गानुविचमाः ।  
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाभ्यः स्वविदः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१० )

११०२ ते पुतासो विपश्चितः सोमासो दक्ष्याशिरः ।  
सुरासो न दर्शतासो जिगत्सवो ध्रुवा ध्रुवे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।११ )

११०३ मुष्याणासो व्यद्विभिश्चिताना गोरधि रघि ।  
ह्यमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ३ ॥ २० ( वा ) ॥  
[ भा० १० । उ० नास्ति । २० ३ ] ( ऋ. ९।१०।११ )

[ १०९८ ] हे ( सखाय ) ऋतिवन्तयो मित्रो ! ( वः मदाय ) तुम देवताओंको आनन्द देनेके लिए ( पुनानं ) मैं अभि गायत ) छाने जानेवाले उस सोमके स्तोत्रोंका गायन करो । ( शिशुं न ) जिसप्रकार बालाये बालकको सुगोमित करती है, उसीप्रकार सोमको ( हव्यैः गृतिभिः स्यद्वन्त ) हवि और स्तुतिपत्रों द्वारा और स्मारित्य बनखी ॥ १ ॥

[ १०९९ ] ( देवायीः मदः ) देवोंका रक्त और आनन्ददायक, ( मतिभिः परिष्कृतः ) स्तुतिपत्रों द्वारा किया गया और ( हिन्वानः इन्दुः ) पात्रोंकी शेरणा देनेवाला सोम ( सं अज्यते ) पानीसे मिलाया जाता है । ( मातृभिः धरसः इव ) माताके द्वारा बच्चा नितप्रकार नहलाया, पालाया जाता है, उसीप्रकार सोम पानीके द्वारा साफ किया जाता है ॥ २ ॥

[ ११०० ] ( अयं दक्षाय साधनः ) यह सोम बल बढ़ानेका साधन है, ( अयं घर्षाय ) यह सोमबल बढ़ानेके लिए और ( वीतये ) पीनेके लिए है, ( अयं सुतः ) इसका रक्त निकालनेके बाद ( देवेभ्यः मधुमत्तरः ) वह देवोंके लिए अधिक मीठा होता है ॥ ३ ॥

[ ११०१ ] ( मित्राः स्वानाः ) मित्रके समान हितकायक, निषोदे गए ( अरेपसः स्वाभ्यः ) मित्राय और उत्तम सन्ध के तो योग्य ( रघः विदः ) अत्यवसी ( गानु विचमा इन्धः सोमा ) प्रशस्तनीय, अथकनेवाले सोमरस ( अस्मभ्यं पयस्ते ) हमारे लिए कलत्रमें छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११०२ ] ( पुतासः विपश्चितः ) पवित्र और तानी ( दक्ष्याशिरः ) बहोके साथ मिले हुए ( ध्रुवे जिगत्सवः ) जलमें मिलाने जानेवाले ( ध्रुवाः ) ते सोमासः ) कलत्रमें रहनेवाले वे सोमरस ( सुरासः न ) धूपके सपान ( दर्शतासः ) दर्शनीय है ॥ २ ॥

[ ११०३ ] ( गो अधि रघि ) बलके अथर्वर ( चितानाः ) रहनेवाले ( वि व्यद्विभिः सुष्यानासः ) अनेक पात्रोंसे कूटे जानेवाले ( वसुविदः ) धन देनेवाले वे सोम ( अस्मभ्यं अभितः इव समस्वरन् ) हमें चारों ओरसे घन देते हैं ॥ ३ ॥

- ११०४ अया पवा पवस्वैना वसुनि माश्चत्वे इन्दो सरसि प्र धन्व ।  
 ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूर्ति पुरुमेधाश्चिकवे नरं धात् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९।७।११ )
- ११०५ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाद्यस्य तीर्थे ।  
 पटि२ सहस्रा नैगुतो वसुनि वृक्ष न पके धून्वद्रणाय ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।७।११ )
- ११०६ महोमि अस्य वृष नाम शूषे माश्चत्वे वा पृशने वा वधये  
 अस्वापयन्निगुतः स्नेहयन्वापामिश्रा२ अपाचितो अचेतः ॥ ३ ॥ २१ ( कि ) ॥  
 [ धा० १६।७० १।२५० ३ ] ( ऋ. १।९।७।५४ )  
 ॥ इति वण्डः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

- ११०७ अमे स्वे नो अस्तम उत प्राता शिवो सुबो वरुध्य ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९।४।१ )
- ११०८ वसुरभिर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि घुमचमो रयि दाः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।४।२ )

[ ११०४ ] हे सोम ! ( अया पवा ) इत पवित्र पारते ( एना वसुनि ) इन धनोंकी हमें ( पवस्य ) दे । हे ( इन्दो ) सोम ! ( माश्चत्वे ) सरसि प्रधान्य ) इस पूजाके योग्य पानीमें तु जाकर मिल जा, ( यस्य ) जिसके रसकी पीकर ( ब्रध्नः चित् ) सूर्य जी ( वातो न ) वायुके सत्तान ( जूर्ति ) बेबकी प्राप्त होता है, और ( पुरुमेधाः चित् ) भायपिक बुद्धिमान् इन्द्र ( तपये ) महान् ) सोम प्राप्त करनेवाले भूतो ( नरं धात् ) नेता होनेके योग्य पुत्रको देता है ॥ १ ॥

[ ११०५ ] हे सोम ! ( उत अध्यायस्य तीर्थे ) और स्तुतिके योग्य ऐसे तेरे स्वानवर ( नः श्रुते ) हमारे यज्ञमें ( एना पवया ) इत पवित्र पारते ( पव०य ) तु छगता जा । ( नैगुतः ) शत्रुभोंका नाश करनेवाला सोम ( पटि सहस्रा वसुनि ) साठ हजार धन ( रणाय ) शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिए ( धून्वद्र ) हवें देवे, ( पवधं वृक्षं न ) जैसे वृक्ष पके हुए फल देते हैं, उसीप्रकार हवें धन दे ॥ २ ॥

[ ११०६ ] ( महो वृष, नाम ) बहुत सारे बाघोंकी गारन। और शत्रुकी मुकाना ( इमे मस्य शूषे ) ये धर्मों ही सोमके कार्य सुलकारी हैं । ये काम ( माश्चत्वे ) योओंके साथ होनेवाले युद्धमें किए जाते हैं ( वा पृशने ) जबवा बाहुओंके युद्धमें ( वा वधये ) जबवा हाथोंके शत्रुओंके कत्ल करनेके समय किए जाते हैं, ( निगुतः अस्वापयन् ) जो शत्रुओंके तोते हुए अबवा ( स्नेहयत् ) शत्रुके भावते समय किए जाते हैं, हे सोम ! ( अमिश्रात् ) तब शत्रुओंको दूर कर ( इतः अपाचितः ) यहंसि शत्रुओंको तु दूर कर, ( अपाच्य ) उन्हें बहुत दूर कर ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ११०७ ] हे अग्ने ! ( वरुध्यः स्व्यं ) सेवा करनेके योग्य तू ( नः अस्तमः ) हमारे पास रह, ( उत ) और ( प्राता ) हमारा रसक हो, तथा हमारा ( शिवः भव ) कल्याण करनेवाला हो ॥ १ ॥

[ ११०८ ] ( वसुः वसुधवाः आग्निः ) विवातक और धनोंके सिद्ध प्रसिद्ध अग्नी ॥ ( अच्छा नक्षि ) तीर्थे हमारे पास जा, और ( घुमचमः रयि दाः ) तेराको होकर हमें धन दे ॥ २ ॥

११०९ तं त्वा शोचिष्ट दीदिवः सुभ्राय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ३ ॥ २२ ( वा ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ १।२४।३ )

१११० इमा जु क भुवना सीपधेमन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१५७।१ )

११११ यमं च नस्तन्व्यं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीपधातु ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१५७।२ )

१११२ आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजां कर्तु ॥ ३ ॥ २३ ( छा ) ॥

[ धा० १३ । उ० २ । छ० २ ] ( ऋ १०।१५७।३ )

१११३ म व हन्द्राय वृत्रहन्तमाय विधाय गार्थं गायता य जुजोषते ॥ १ ॥

१११४ अर्चन्मर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोमति भ्रुवो युवा स इन्द्र ॥ २ ॥

१११५ उप प्रक्षे मधुमति क्षिपन्तः पुष्येम रयि धीमहे त इन्द्र ॥ ३ ॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १ ]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

॥ इति अनुबोधप्रत्ययस्य प्रथमोऽर्थः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

[ ११०९ ] हे ( शोचिष्ट दीदिवः ) तेजस्वी और मरुतोंनेवाले मिलीयेन । ( सुभ्राय सखिभ्यः ) तुलके सिद्ध और मित्र तथा पुत्रादिकी प्राप्तेके लिए ( नूनं ईमहे ) निश्चयसे हम आर्चना करते हैं ॥ ३ ॥

[ १११० ] ( इमा भुवना ) ये भूधन ( जु क सीपधेम ) हमारे तुलके लायन कर्त्ते । ( इन्द्रः च विश्वेदेवाः ) छ ) इन्द्र और सब देव हमें सुख देवें ॥ १ ॥

[ ११११ ] ( आदित्यैः सह इन्द्रः ) आदित्यकी साथ इन्द्र ( नः प्रजा ) हमारे यशकी ( तन्व्यं च ) और हमारे शरीरकी ( प्रजां च ) और पुत्रपौत्रोंकी ( सीपधातु ) उत्तम सफल करे ॥ २ ॥

[ १११२ ] ( आदित्यैः मरुद्भिः ) आदित्य और मरुतोंकी तथा ( सगणः इन्द्रः ) पनोंकी साथ रहनेवाला इन्द्र ( अस्मभ्यं ) हमारे लिए ( भेषजां कर्तु ) भोजनमें सम्यक् करे, रोग दूर करे ॥ ३ ॥

[ १११३ ] हे मनुष्यो ! ( विधाय वृत्रहन्तमाय ) शानी और वृत्रकी मारनेवाले ( हन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( धः ) तुम ( गार्थं प्रगायत ) स्तोत्रोंका गान करो, ( य जुजोषते ) जिसे वह सुनता है ॥ १ ॥

[ १११४ ] ( अर्चन्मर्कः मरुतः ) उत्तम तेजस्वी मरुत ( अर्कं अर्चन्ति ) वृत्रवीर इन्द्रकी पूजा करते हैं । ( धुत युवा आ स्तोमति ) शानी युवा प्रशस्ति होता है, ( स्व इन्द्रः ) वही इन्द्र है ॥ २ ॥

[ १११५ ] हे ( इन्द्रः इन्द्रः ) ( ते मधुमति प्रक्षे ) तेरे उत्तम निरीक्षणमें ( उपक्षिपन्तः ) रहनेवाले हम ( पुष्येम ) पुष्ट हो और ( रयि धीमहे ) वनोंकी पारण करे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ सातवा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥



## सप्तम अध्याय

॥॥ तातर्धे अध्यायमे अथ वेवताओंका वर्णन करनेवाले कुछ ही मंत्र हैं। जब कि सोमके वर्णन करनेवाले बहुत प्रशस्त हैं। पहले हम अथ वेवोंका वर्णन देखेंगे, क्योंकि वेवोंने लिखे ही सोम हैं। प्रथम इन्द्रके वर्णन देखिए—

### इन्द्र

१ सुकपटत्वं ऊनये धायिपानि जुहुमसि [ १०८७ ]—सुन्दर रूप धनानेवाले इन्द्रको अपने सरसणके लिए हम प्रतिदिन बुलाते हैं। जगत्में जो सोम्य हैं, वह इन्द्रका ही बनाना हुआ है। ऐसे उस इन्द्रको अपने सरसणके लिए हम बुलाते हैं।

२ आगहि, नः मा अतिरथाः [ १०८९ ]—हमारे पास आ, हमें छोड़कर हमारी बात किसी दूसरेको न बता।

३ हे मनुजः। दीर्घं अंशुनां शक्ति विमर्षि [ १०९१ ]—महान् शक्तिने समान बलवाली शक्तिकी तु धारण करता है। इन शक्तिकी तु शक्तिने साथ लड़कर उतकी हरा।

४ हे सोमपाः। नः सयना आगहि, सोमस्य पिप, नयनः मद्गोदा [ १०८८ ]—हे सोम पीनेवाले इन्द्र। मू हमारे महाने आ, सोम पी। घनबालोंकी प्रसन्नता नाम वेवोंकी होनी है।

### इन्द्र ऋषुओंका दूर करता है

१ तुहं पापतः मर्त्यस्य क्षिप्रं अजतनुदि [ १०९२ ]—इन्द्र दूरके सिद्ध बलकी क्षीण कर।

२ यः अस्मान् अभिशासति तं अघस्पर्धं वृधि [ १०९२ ]—ओ हमें बात बताना चाहता है, उसे हरा दे।

इन्द्र ही वे कार्य हैं, इनके लिए चारों ओरने इन्द्रकी शक्ति होनी है।

### इन्द्रको सोम दिया जाना

१ इन्द्राय पातये सोम पुनर्जित [ १०५० ]—इन्द्रके पीनेके लिए पुनः सोम प्रदानकर सौन्दर्य करो।

२ हे इन्द्र। पिभ्याः पिबः यद्य पिबिषि [ १०५० ]—हे इन्द्र। हमारे साथ प्रकरके सन्मुखोंको मार दे। इन्द्र सोमरस पीता है और उमने उन्मादित होकर ऐसे सूरवीरताके काम करता है।

३ बाधः परिजहि, स्पर्धं त्व माभर [ १०७० ]—बाधा डालनेवाले सन्मुखोंको जीत और चाहने योग्य धर्मोंको हमें भरपूर दे। सोमपानके बाद इन्द्र यह काम करता है।

### इन्द्रका घन देना

१ हे इन्द्र। ते वत्सस्य भूरेः यस्य विश्व-मानुषः मानुषकं वेदति [ १००१ ]—हे इन्द्र। तेरे द्वारा लिए गए घनको सब मनुष्य एक साथ जानते हैं।

२ हे इन्द्र। यत् वीडो, यत् स्थिरं, यत् विपश्चाने, यत् पराभूतं तन् स्पर्धं बहु नः आभर [ १०७२ ]—हे इन्द्र। जो घन मन्त्रबुद्ध राजाने हैं, जो स्थिर जगहमें रखा हुआ है, न छुने योग्य जगहमें रखा हुआ है अथवा जो सन्मुखोंकी पराजित करने लाया गया है, उस चाहने योग्य धर्मोंको हमें भरपूर दे।

इस प्रकार इन्द्र धन देता है।

### अग्नि

अग्नि वेवताते तत्त्वधर्मं ववा बहा है, भव उन पर बिचार करते हैं—

१ हे अग्ने। ते मय्ये ययं मा रियाम [ १०६४ ]—हे अग्ने। तेरे साथ मित्रता होनेके बाद हमारा नाम होनेवाला नहीं है। तु हमारा मित्र हो गया है इसका मतलब ही यह है कि हमारी प्रकरसे रक्षा निस्त-देह होगी।

२ हे अग्ने। इधं भराम, ते हवीं वि एणयाम, जीयातये धियः प्रतरं रराध [ १०६५ ]—हे अग्ने। हम तेरे लिए सविद्या एकजिन करते हैं, तेरे लिए हवन साधवी एकजिन करते हैं, हमें दीर्घायु प्राप्त हो इसलिये हमारी बुद्धि खेद कर, हमारे बर्चोंके कारण साथ धूर्त कर।

३ त्वे मादित्यान् आ यद [ १०६९ ]—तू मादित्योंको यहां ले आ।

४ हे अग्ने। त्वे नः अन्तमः, प्राता शिषः मय [ ११०७ ] हे अग्ने। तू हमारे पाताका मित्र है, अतः तू हमारा रक्षण करनेवाला और सम्पन्न करनेवाला हो।

५ यदुः यमुधयां धीः पुमसतः रयिः दाः [ ११०८ ]—हे अग्ने। तू प्रत्यक्ष दान है, यन्त्रे निरुद्धि है, तू अथर्व तेजस्वी है, येमा तू हमें दान दे।

६ हे शोचिष्ठ दीक्षियः । त्वा सुम्नाय सखिभ्यः  
ईमहे [ ११०९ ]- हे तेजस्वी और प्रकाशित होनेवाले  
आग्निदेव । हमें तुम और पुत्रपौत्र मिले इततिष् हय तेरी  
आर्चना करते हैं ।

इत प्रकार अग्निके सम्बन्धमें इत अध्यायमें मन्त्र हैं । अथ  
इन्द्र और अग्निके मन्त्र देखिए—

### इन्द्र और अग्नि

१ तोडासा रथयाना वृत्रहणा अपराजिता इन्द्रास्मि ।  
तस्य योधता [ १०७४ ]- हे इन्द्र और अग्ने । तुम द्रुमुक्तो  
मारनेवाले वीर हो, तुम रथसे जाते हो, वृत्रादि असुरोंको मारते  
हो, तुम्हारी कमी भी पराजय नहीं होगी । हम तुम्हारे स्तुति  
करते हैं, उन्हें तुम जानो ।

२ वां अग्निभिः मदिदे मधु अयुक्षन् [ १०७५ ]-  
तुम्हारे लिए पावरोंके कूटकर यह आगग्वायक रस निकाला  
गया है-इत रसको स्वीकार करो ।

### मित्र, वरुण और अन्य देव

१ हे चित्राः । इयं अतिः हिरण्यया राया, अवृकाय  
मयसे मेघसातये [ १०६८ ]- हे मांजी मित्र और मरुतो ।  
हितकारक और रमणीय वनकी प्रातिके लिए, कूटारहित  
बलकी प्रातिके लिए और बुद्धिकी प्रातिके लिए हम तुम्हारी  
स्तुति करते हैं, उन्हें तुम स्वीकार करो ।

२ इयं च रुचः पीमहि [ १०६९ ]- हम अन्न और  
आनन्द प्राप्त करनेवाले होयें ।

३ आदित्यैः सार इन्द्रः नः यर्षी, तस्यै प्रजां च  
स्वीयधातु [ ११११ ]- बारह आदित्योंमें साय इन्द्र हमारे  
यत्नमें आये तथा हमारे शरीरको और हमारे पुत्रपौत्रोंकी  
उत्तम सहायता देवे ।

इत प्रकार मित्र, वरुण और अन्य देवोंका वर्णन आया है ।  
अब हम सोमका वर्णन, जिसका कि इम अध्यायमें विशेष  
महत्त्व है, देखते हैं ।

### देवोंके लिए सोम

१ [ सुतः ] आदित्यैभिः स्वसग्यन् [ १०८१ ]- सोम  
आदित्योंको प्राप्त होता है ।

२ इन्द्रे घायुता पूर्वैष्य रश्मिभिः स [ १०८२ ]-  
इन्द्र, वायु और सूर्य विरपोंकी भी प्राप्त होता है ।

३ हे सोम । यस्य ते हव्यः पिशात्, मरुतः, अर्य-  
मणा, भगः, मिनावरुणा [ १०९७ ]- हे सोम । तेरा  
रस इन्द्र पीता है, और मरुत, अर्यमा, भग, मित्र और वरुण  
भी पीते हैं ।

इत प्रकार यत्नमें सब देव सोमरस पीते हैं ।

### पर्वत पर सोम होता है

१ गिरिष्ठाः स्यातः सोमः पवित्रे परि अक्षरम्,  
मरेषु सर्पेषा अक्षि [ १०९३ ]- पर्वतपर होनेवाला सोम,  
रस निकालनेके बाद छलनीसे छाना जाता है । वह आनन्द  
बढ़ानेवाले पदार्थोंमें सबसे अधिक आनन्द बढ़ानेवाला है ।

### सोम वज्रकी आत्मा है

१ हे इन्द्रे । यस्य पूर्व्यः आत्मा [ १०५५ ]- हे  
सोम । तू यत्नसे पहलेसे ही आत्मा है ।

सोम न हो तो वज्र भी नहीं हो सकता । इततिष् इसको  
पत्थरी आत्मा कहा है ।

### सोमके गुण

१ यजस्य ज्योतिः [ १०३१ ]- यज्ञका तेज ।

२ यियं मधु [ १०३२ ]- यिय और नीला ।

३ पिता [ १०३१ ]- पिता, पातक ।

४ जनिता [ १०३१ ]- उत्पन्नकर्ता, माता प्रकारकी  
शक्ति उत्पन्न करनेवाला ।

५ धिमुः घसुः [ १०३१ ]- बहुतका धर्मवृत्तिके वास है ।

६ मदिन्तिमः [ १०३१ ]- अत्यन्त आनन्द देनेवाला ।

७ मत्सरा [ १०३१ ]- आनन्द देनेवाला ।

८ इन्द्रियः [ १०३१ ]- इन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ानेवाला,  
इन्द्रकी शक्ति बढ़ानेवाला ।

९ दिवः पतिः [ १०३२ ]- धूलोकका स्वामी, धूलोक  
पर रहनेवाला ।

१० विचक्षणा [ १०३२ ]- विवेक शाली ।

११ वाजी [ १०३२ ]- बलवान्, अप्रवान् ।

१२ हरितः [ १०३२ ]- हरे रंगका ।

१३ शुक्राक्षः [ १०३४ ]- स्वच्छ, बीजवान्, बल बढ़ाने-  
वाला, बलवान् ।

१४ आशुः [ १०३४ ]- जीवितताके काम करनेवाला ।

१५ सोमः [ १०३४ ]- सोम रस, सोमरस ।

१६ इन्द्रः [ १०३८ ]- तेजस्वी, समझनेवाला ।



१७ धृषा [ १०३८ ]- बलमान्नी, कामनाशोकी तृप्ति करनेवाला ।

१८ दुग्धनयसम [ १०३८ ]- बहुत चमकनेवाला ।

१९ धर्षतिः [ १०३८ ]- धारकप्रति बढानेवाला ।

२० स्वायुधः [ १०५३ ]- उत्तम दशवात्स्योत्ते युक्त ।

२१ मित्रः [ ११०१ ]- मित्रके समान हित करनेवाला ।

२२ अरेपाः [ ११०१ ]- निर्दोष, निष्कलक ।

२३ ह्यारथ्यः [ ११०१ ]- उत्तम निरीक्षण करनेवाला ।

२४ ह्यधिदः [ ११०१ ]- शर्वाको जानेवाला, अग्रमतानी ।

२५ वातुयित्तमः [ ११०१ ]- पक्षमार्ग जानेवाला ।

२६ पूतः [ ११०२ ]- पवित्र, धना हुआ ।

२७ विपदिषतः [ ११०२ ]- जानने ।

२८ दध्याशिरः [ ११०२ ]- बहो जितने मिलाया जाता है ।

१९ दूते जिगत्तुः [ ११०२ ]- पानीमें मिलनेकी इच्छा करनेवाला ।

३० ध्रुवः [ ११०२ ]- जितका परिणाम स्थिर रहता है ।

३१ दर्शतः [ ११०२ ]- दर्शनीय, गुम्बर, देखने योग्य ।

३२ दसुपिदं अस्मभ्यं ह्य स्वमस्वरन् [ ११०३ ]- पक्षकी घातमें लगनेवाला हमें उत्तम धन देवे ।

३३ हस्तः ह्यघयोः अर्धोच्य रत्न दधाति [ १०३१ ]- सोमरस इस दूतको शीर पुष्पीकोके उत्तम धर्माकी देता है ।

इस प्रकार इन सोमका वर्णन इस अध्यायमें है । सोमरस पीनेके बाद जो गृण गीतोंमें अथवा पीनेवालोंमें दिलाई देते हैं, वे सोमदे ही हैं ऐसा समझना चाहिए । उपासक अग्नेमें जो गृण बढाने योग्य हैं उन्हें बढावे ।

बैलके भ्रमदे पर कूटने है

१ गो. अधि त्यधि गिताना वि अग्निभिः सुध्यानासः [ ११०३ ]- गाव अर्धाद् बैलके चमड़ेपर अर्धाद् चमड़ेने फैलाकर उन पर सोमको बाधरोति बूटते हैं । चमड़ेपर लपटोरे पड़ते लपट पर उत्तम सोम बूटकर रस निशालते हैं ।

सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोमका रस निशालनेके बाद वह आगनेके चहुँके पानीमें मिलाया जाता है—

१ मिग्धुमिः मग्निभिः समृज्जान [ १०३२ ]- पशोषा पानी मिलाकर छलनीसे बहू रस छाना जाता है ।

२ सिन्धुनां अग्ने पवमानः अर्पति [ १०३३ ]- नदियोंके पानीके पास वह झुट होनेके लिए जाता है ।

३ सुहृदस्या मृत्यमान समुद्रे वाचं ह्वयति [ १०७९ ]- उत्तम हृद्योकी मृत्युमियोंसे शुद्ध किया जानेवाला सोमरस पानीके बर्तनम धाव करता हुआ जाता है ।

४ मांश्चत्व्ये सरसि प्रध्वय [ ११०४ ] इस उत्तम पानीमें मिल ।

५ धृषा मित्रस्य सद्नेषु सीदति [ १०३२ ]- यह बल बढानेवाला सोम मित्रको धामें जाकर बँठा है, अर्थात् पानीके बर्तनमें रखा जाता है ।

इस प्रकार सोमरसको पानीमें मिलाया जाता है ।

सोमका छाना जाना

सोमरस पानीमें मिलाकर उसे भँडके बालोंकी बनी छलनीसे छानते हैं ।

१ गभस्वयोः मृज्यमानः अग्ने घारे पयते [ १०३५ ]- हार्णति दृष्ट किया जानेवाला सोमरस भँडके बालोंकी बनी छलनीसे छाना जाता है ।

२ देवदीः रक्षा पवित्रं अति पयस्य [ १०३७ ]- देवोंके पास जानेवाला सोम बेचते छलनीसे छाना जाता है ।

३ वसुद्रः त्रिधः पिष्टम्ना घरुणाः सोमः पयिषे वाप्सु मामृजे [ १०४१ ]- जलमय दूतको पारण करनेवाला सोम छलनीसे छानकर पानीमें शुद्ध किया जाता है ।

४ आचय त्या सं सुजगति [ १०७७ ]- अग्निमित्रबुने उत्तम प्रकारसे शुद्ध करते हैं ।

५ धृषा पुनलः अग्नये घारे पवमानः घने अचि-  
वद्भू [ १०८० ]- बल बढानेवाला सोम भँडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता हुआ पानीमें धाव करता हुआ गिरता है ।

सोमका छन्द करके हुए छाना जाना

१ अमित्रन्दुः कलदी अर्पति [ १०३२ ]- क्षाम करता हुआ कलदाँ आगने ।

२ धृषा महान्, हरिः मित्रः न दर्शतः अचिबद्भू [ १०४२ ]- बल बढानेवाला, महान्, हुए दूर करनेवाला, मित्रके समान दर्शनीय, सोम दाव करता हुआ दर्शनमें गिरता है ।

शोधके बर्तनमें पानी रहता है, उत्तम उपरकी छलनीसे रस गिरनेसे दाव होगा है ।

### सोमरस चमकता है

१ सोमः स्यंघेण सं दिद्युते [ १०४२ ]- सोम भुविते सत्मानं चमता है ।

### सोमका गायके दूधमे मिलाया जाना

सोमको पानोमे मिलानेके बाद उसे दूधमें मिलाते हैं ।

१ गोषु अग्रं गच्छति [ १०३३ ]- गायके आगेके भागमें गिरता है । गायके दूधमें सोमरस मिलाया जाता है ।

२ यत् गोभिः घासयिगसे, महान्तं त्या सिन्धुः महीः अपः अनु अर्पयति [ १०४० ]- जिस समय वृषामें गायका दूध मिलाया जाता है, उससे पहले नदीका पानी अथवा दूसरा पानी लेकर मिलाया जाता है ।

३ धीतये नृग्णा गम्यानि पुनामः अर्पयति [ १०६२ ]- सोमरसको पीनेके पहले उसमें गायका दूध स्वच्छ सोममें मिलाया जाता है ।

### सोमरस पीना

१ सजोषसः सिन्धेदेवासः त्वे पीतिं आशस [ १०६५ ]- एक साथ कार्य करनेवाले सब देव सोमको पीनेकी इच्छा करते हैं ।

### सोम अन्न देता है

१ महि प्लरः आ च्यवस्य [ १०१८ ]- बहुत तारा भक्ष हवें है ।

२ नः सोमती चिन्धा इयः अर्प [ १०६३ ]- हमें गायेंति उपलब्ध होनेवाले तब प्रकारके धन है । सोमरसमें गायके दूध, इहो आदि पदार्थ मिलाये जाते हैं, इसलिये सोमरस पीनेसे गायेंति मिलनेवाले धन प्राप्त होते हैं, ऐसा होता है । इस प्रकार सोम अन्न देता है । वह भक्ष भी बढ़ता है—

### सोम बल बढ़ाता है

१ हे इन्द्रो ! [ अस्यक ] इन्द्रियं मघोः धारया पयस्य [ १०४६ ]- हे सोम ! हमारी इन्द्रियशक्ति अपनी मीठी धारासे बढ़ा ।

२ दक्षं क्रतुं सन [ १०४९ ]- बल और कर्माशक्ति बढ़ा ।

३ अयं दक्षाय, शर्धाय, धीतये साधनः [ ११०० ]- यह सोम बल, सामर्थ्य और व्योमका साधन है, अर्थात् वह बल और सामर्थ्य बढ़ानेवाला है ।

### सोम दीर्घायु देता है

१ तप क्रत्या, तव कृतिभिः ज्योक् स्यं पश्येम [ १०५२ ]- हे सोम ! तेरी कर्तुव्यकृत और तेरे सरक्षणसे हम निरकालतक धृक्को बेसते रहे । मर्णात् हम सोम आयु-वाले हो । सोम यदि ठीक रीतिसे पिबा जाए तो आयु बोध होता है ।

### सोम संरक्षण करता है

१ यसुनां उक्षा देवी मर्तस्य अपसः चेद [ १०५८ ]- धन देनेवाली, चमकनेवाली सोमकी धारा तरलण करनेके हर प्रकारकी जानती है ।

२ सोमाः महे अवसे धारया अचक्षत [ १०६१ ]- सोमरस महान् रक्षणके लिए धार बाधकर कलशमें गिरता है । इस प्रकार सोमरस अपने सरक्षणकी शक्ति बढाता है और बीरोंको अपनी रक्षा करनेमें सफल बनाता है ।

### सोम लोकसेवा करता है

१ ओक्कृतुं त्वा धृज्यवे मद्राय ईमहे [ १०४४ ]- लोकोक्त दिल करनेवाले तुम सोमको शत्रुके नाश करनेके लिए तथा आमय बढ़ानेके लिए हम स्वीकार करते हैं । सोम पीनेसे बीरोंके शरीरोंमें उत्साह बढ़ता है, उसके कारण लोक-सेवाके महान् महान् कार्य किये जा सकते हैं ।

### सोम शत्रुओंको दूर करता है

१ हे सोम ! दक्षं क्रतुं सन । मृधः अपजहि । नः यस्यस्य छुपि [ १०४९ ]- हे सोम ! हमें बल और कर्माशक्ति देनेके सामर्थ्य है । शत्रुओंको दूर कर और हमारा कल्याण कर ।

२ हे धाजिन् ! समस्तु अतपच्युतः सासहिः अभि अर्प [ १०४४ ]- हे बलवान् सोम ! तू युद्धमें न हारनेवाला तथा शत्रुओंका हरानेवाला होकर आगे जा ।

३ मही धूप-नाम इमे अय्य शपे [ ११०६ ]- बहुतसे नाशोंकी शत्रुपर वर्षा करना और शत्रुको मृकाना ये सोमके दो सामर्थ्य हैं ।

४ मांदवत्वे, पूषने, वधने, निगुतः अस्वापयन्, स्नेहयन्, अमिषयन्, अपचितः, इतः अपचितः [ ११०८ ]- घोड़ीके मुँहमें, बाइलीके मुँहमें, हाथोंके मुँहमें शत्रुकी सुखनेके समय अथवा शत्रुको भी भागनेके समय तू शत्रुओंको दूर कर और यहीसे भी शत्रुओंको दूर कर ।

इस प्रकार सोम शत्रुओंको दूर करता है । गोमरत पीनेसे  
कोरोंमें इस प्रकारसे युद्ध करनेकी क्षति उत्पन्न होती है ।

### सोम धन देता है

१ सोमाः दानुषे दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पाथिंयाः  
विभ्या यसु आ पयस्तां [ १०३६ ]- गोमरत यज्ञाको  
हवर्ग्य, अन्तरिक्षीय और पाथिव अर्थात् सभी प्रकारके  
धन देवे ।

२ हे सोम ! गोया, वृषा, अभ्यस्ता उत वाजस्ता  
अस्ति [ १०४५ ]- हे सोम ! तू गाय देनेवाला, पुत्र देने-  
वाला, घोड़े देनेवाला, और अन्न देनेवाला है ।

३ महिद्वयः सोम ! जेयि, नः यस्यसः कृधि  
[ १०४७ ]- हे प्रसन्नित सोम ! तू मित्रय प्राप्त करता है ।  
हमें यज्ञाको कर ।

४ ज्योतिः सन ! स्याः च विभ्या सौभगा सन  
[ १०४८ ]- हमें तेज दे । सुल तथा सब सोमाय दे ।

५ द्वियर्हसं रयि अभ्यर्षि [ १०५३ ]- दोनों ही स्थानों  
पर उपवीणी होनेवाले पल दे ।

६ तः चित्रं, अभिमं, विभ्यानुं रयिं आ भर [ १०५६ ]  
- हमें चित्रलघ, घोड़ोंसे युक्त, सब लोगोंका हित करनेवाले  
धन भरदूर दे ।

७ सहस्राणि आदृग्हे [ १०५९ ]- सहस्र प्रकारके  
धन हम प्राप्त करते हैं ।

८ शिदात्तं सहस्राणि तना आदृग्हे [ १०६० ]-  
सौप्तिकी और हजारों वस्त्रोंको हम लेते हैं ।

९ पिशंगं पुनस्पृष्टं वदुलं रयिं अभ्यर्षति [ १०७१ ]  
- मुनहरे रंगके बहुलते धन हमें दे ।

१० सोमः यस्तानां मानेता, रायां, इडां, सुक्षितानां  
[ १०९१ ]- सोम हमें धन, ऐश्वर्य, अन्न, तथा उत्तम पुत्रोंका  
देनेवाला है ।

११ अया पथा पला यस्मि पवस्य [ ११०४ ]- इन  
पराश्रितियों ही तू हमें धन दे ।

१२ नैयुतः पठिं सहस्रा यस्मि रणाय धूनयम्  
[ ११०५ ]- शत्रुओंका नाश करनेवाला सोम सहस्राज  
धन शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिए देवे ।

१३ यज्ञस्य स्वायुधः महत् धनं भजसे [ १०२३ ]-  
यज्ञ ब्रह्मदेके लिए उत्तम शस्त्रोंसे युक्त तू सोम ! महान् धन  
प्राप्त करता है ।

इस प्रकार यह सोम अनेक प्रकारके धन और ऐश्वर्यका  
देनेवाला है । सोम यदि शरीरमें बीरता लाता है, तो वह  
शत्रुओंको हराकर बहुलता धन दे सकता है, इसमें कोई शंका  
नहीं । इस प्रकार बिचार करनेसे यह आसानीसे समझमें आ  
सकता है कि सोमसे किस प्रकार धन प्राप्त होता है ।

### सुभाषित

१ यज्ञस्य ज्योतिः प्रियं मधु पयते [ १०३१ ]- यज्ञाको  
ज्योतिः प्रिय और मधुर भाव उत्पन्न करती है ।

२ विभूयसुः मदिन्तमः मरसरः अपीचयं रत्नं  
दधाति [ १०३१ ]- बहुलता धन प्राप्तमें रत्नैवाला और  
आनन्द ब्रह्मदेवाका गुप्त स्थानमें रख धारण करता है, गुप्त  
स्थानमें धन रक्ता है ।

३ वाजस्य स्वायुधः महत् धनं भजसे [ १०३३ ]-  
यज्ञके लिए उत्तम शस्त्रोंसे तैय्यार हुआ शत्रु वीर ही धन  
प्राप्त करता है ।

४ से दानुषे दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पाथिंया विभ्या  
यसु आ पयस्तां [ १०३६ ]- वह वाताको दिव्य, अन्त-  
रिक्षीय और पाथिव धन देता है ।

५ धृषा सुस्रथत्तमः धर्षतिः महिद्वरः आ यद्यस्य  
[ १०३८ ]- तू बलवान् तेजस्वी और शत्रुओंका धारण करने-  
वाला होकर बहुत अथ हमें दे ।

६ धृषा महान् हरिः, मित्रः नः दर्शताः [ १०४२ ]-  
बलवान्, बहादुर, दुःशोका हरण करनेवाला और मित्रके  
तमान दर्शनीय है ।

७ लोकछत्रान् त्वा भृष्याये मदाय ईमहे [ १०४४ ]-  
लोगोंका चर्याण करनेवाले, तुझे शत्रुओंका नाश करनेके  
लिए और आनन्द प्राप्त करनेके लिए हम प्राप्त करते हैं ।

८ जेयि, अथ नः यस्यसः कृधि [ १०४७ ]- तू मित्रय  
प्राप्त करता है, इसलिए हमें यज्ञाको कर ।

९ ज्योतिः सन, विभ्या सौभगा सन [ १०४८ ]-  
हमें तेजप्रिया दे और सब सोमाय-ऐश्वर्य-दे ।

१० दृष्टं म्रानुं मन [ १०४९ ]- बल और कर्मप्रति दे ।

११ मृषाः यप जधि [ १०४९ ]- शत्रुओंको हरा ।

१२ तप यज्या तप उतिभिः नः आ यत [ १०५१ ]

— अयने पुष्ट्याधत्ते कीर अयने संरक्षणके साधनोति हमारी साहायता कर ।

११ ज्योक् सूर्ये पश्येम [ १०५२ ]— बहुत बर्बोसक हम सूर्यको देखें । हमें दीर्घायु दे ।

१४ हे स्थायुषः द्विपर्वतां रायि अभ्यर्ष्य [ १०५३ ]— हे उत्तम शास्त्राध्य बलनेवाले कीर ! हमें दोनों ही जगहके धन दे ।

१५ हे पाजिन् ! समस्तु अनपच्युतः सासहिः अभि अर्य [ १०५४ ]— हे बलवान् कीर ! युद्धमें अपनी जानह पर स्थिर रहनेवाला तथा शत्रुओंको हरा देनेवाला होकर भागे जा ।

१६ नः चित्रं विश्वार्यु रायि आ भर [ १०५५ ]— हमें विलक्षण, कीर पूर्ण आयु देनेवाले धन भरपूर दे ।

१७ यस्तान् उक्ता देवीं मर्तस्य अवसुः येद् [ १०५८ ]— धन देनेवाली देवी मनुष्यके संरक्षणके लिये कायें जानती हैं ।

१८ नः गोमर्ताः विश्वाः ह्यः अर्य [ १०५९ ]— हमें पायेंसे उपम होनेवाले सब प्रकारके अन्न दे ।

१९ अस्त्य संसदि नः प्रमसाः भद्रा [ १०६४ ]— इत सामां हमारी बुद्धि उत्तम कल्याण करनेवाली हो ।

२० हे अग्ने ! तव सख्ये यय मा रिपाम [ १०६४ ]— हे अग्ने ! तेरी मित्रतामें शत्रुकर हम विश्ववते मष्ट होनेवाले नहीं ।

२१ जीवातये धियाः प्रतरां साधय [ १०६५ ]— दीर्घ-जीवन प्राप्त करनेके लिये हमारी बुद्धिकी पूर्णता कर ।

२२ इयं मतिः हिरण्यया राया, अनुकाय चायसे मेघसातये [ १०६८ ]— यह बुद्धि हितकारक और स्वर्णमय धन, कुत्तारहित बल, बुद्धि और वनवती प्राप्ति करने वाली हो ।

२३ इयं यस्वः प्रीमहि [ १०६९ ]— अन्न और स्वर्गोप प्राप्तक हमें प्राप्त हो ।

२४ विश्वाः द्विपः अपमिन्धि [ १०७० ]— सब शत्रुओंका नाश कर ।

२५ याया मृध परिजहि [ १०७० ]— बाधा करनेवाले कीर हिला करनेवाले शत्रुओंको दूर कर ।

२६ स्पर्हां तम् यस्तु आभर [ १०७० ]— चाहने योग्य धनको हमें दे ।

२७ ते यस्तस्य भूरेः विश्वमातुरः आनुयक्ष् वेरति तत् स्पर्हां यस्तु नः आभर [ १०७१ ]— तेरे द्वारा दिए गए

१९ [ साय. हिमी मा. २ ]

धनको सब मनुष्य एकत्र कर लेंगे । अतः चाहने योग्य धन हमें दे ।

२८ यत् धीदौ, यत् स्थिरे, यत् विपशनि पराभृतं तत् स्पर्हां यस्तु नः आभर [ १०७२ ]— जो धन मनवृत्त समानमें रखा हुआ है, जो स्थिर स्थानवर है तथा जो किसीसे न छुटने वाला योग्य स्थानमें रखा हुआ है तथा जो शत्रुओंसे छीनकर लाया गया है, वे चाहने योग्य धन हमें भरपूर दे ।

२९ सोशासा, स्थयावाना, वृत्रहणा, अपराजिता [ १०७४ ]— शत्रुओंको मारनेवाले, रथोंसे जानेवाले, शत्रुओंका नाश करनेवाले और पराजित न होनेवाले कीर हैं ।

३० विशंगं पुदस्यहं बहुलं रायि अभ्यर्षयति [ १०७९ ]— सुगहृत्, बहुलं द्वारा चाहने योग्य बहुत सारा धन हमें दे ।

३१ ऊनये सुकृपकृतं यविचयि जुह्मसि [ १०८४ ]— हमारे संरक्षणके लिये उत्तम रूप बगानेवाले इन्द्रको हम प्रति-विमं वृत्ताते हैं ।

३२ मा नः अति यय [ १०८९ ]— हमें दूर मत कर ।

३३ हे अमृतम् ! वीर्यं अंकुशं शक्तिं विभर्षि [ १०९१ ]— हे तावदान् कीर ! तू महान् शक्तिवाले अस्त्रोंको धारण करता है ।

३४ मनेषु रायैधा अति [ १०९४ ]— आनन्द देनेवालोंमें तू सबसे धेय है ।

३५ यस्तान्, रायां, इवां रुक्षितां नः आ नेता [ १०९६ ]— वह धन, वैश्वर्ष्य, अन्न और उत्तम पुत्रोंका देनेवाला है ।

३६ नेत्युः पदि खहसा यस्मि त्णाय धनवत् [ ११०५ ]— शत्रुका नाश करनेवाला कीर तादृहत्तर धन हमारे आनन्दके लिये देवे ।

३७ मही वृष नाम इमे अस्त्य भूरे [ ११०६ ]— बहुत सारे बाण मारकर शत्रुको धुका देनेवाला हो कीर ।

३८ मांदवत्से, वृशाने, यधये, निगुतः अस्वापयन्, स्नेहयत् [ ११०६ ]— यह कार्य घोड़ोंके युद्धमें, शत्रुओंके युद्धमें, हथौते युद्धमें, शत्रुओंकी तुलनाके समय अवकाश शत्रुओंको मगानेके समय ही किया जाता है ।

३९ अग्निमान् अपचितः इतः अपचितः [ ११०६ ]— शत्रुओंको दूर कर, शत्रुओंको पहाने मार ।

४० अग्ने ! नः अन्तमः श्राना दिव्यः मघ [ ११०७ ]— हे अग्ने ! तू हमारे पास रह और हमारा रक्षण और बरखाव कर ।

४१ दुमत्तमः रविं दाः [ ११०८ ]- तू तेजस्वी है, इतलिए हमें धन दे।

४२ शोचिष्ठः दीदिवः ! त्वा सुम्नाय सखिभ्यः ईमहे [ ११०९ ]- हे तेजस्वी और प्रकाशमान देव ! सुखके लिए और मित्र प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करते हैं।

४३ इमा भुवना कं सीपधेम [ १११० ]- ये भुवन सुखके साधन बनें।

४४ इन्द्रः त्वयं प्रजां च सीपघातु [ ११११ ]- इन्द्र हमारे शरीर और पुत्रोंको सुखी करे।

४५ इन्द्र असभ्यं भेषजां कर्तु [ १११२ ]- इन्द्र हमें औषधि प्रदान करे।

४६ यः उप अ अर्च [ १११३ ]- तुम इन्द्रकी पास्तसे उपासना करो।

## उपमा

इस सप्तमो अध्यायमें उपमायें निम्न प्रकार हैं—

१ मित्रः न [ १०४२ ]- मित्रके समान ( हृदि दर्शितः ) सोम देवने मोष्य है।

२ घृष्टिमान् पर्जन्यः इव [ १०४६ ]- वर्षा करनेवाले मेघके समान ( मरुतां इन्द्रियं मघोः धाराया पयस्य ) हमारा इन्द्रियसामर्थ्य भीड़े रसकी धारासे परिबद्ध हो। भेषजी धारा और सोमरसकी धाराकी समानता यहां दिखाई है।

३ रचं इव [ १०४४ ]- रच जिस प्रकार बनते हैं, उत्तीप्रकार ( इमं स्तोमं सं महेम ) इन स्तोत्रोंको हम कहते हैं, इन स्तोत्रोंकी महिमाका वर्णन करते हैं।

४ चंप्रयोः अर्क्षं न [ १०८५ ]- रचके दोनों ही चंद्रियोंको जिसप्रकार हाल मिलता है, या संयुक्त करता है, हे इन्द्र ! उत्तीप्रकार हमसे धनोंको संयुक्त कर।

५ दाचीभिः अर्क्षं न [ १०८६ ]- जिसप्रकार गायकों

गतिसे उसकी धाराको गति मिलती है, उत्तीप्रकार ( जरि-तुणां आ ऋणोः ) स्तोत्रोंकी प्रार्थनाके द्वारा तू उन्हें प्राप्त हो।

६ गो दुहे सुमुधां हव [ १०८७ ]- गाय बूढ़नेके समय जिसप्रकार सरलतासे ब्रूष देनेवाली गायोंको बुसाया जाता है, उत्तीप्रकार ( सुरूप रुन्ते ऊतये घवि घवि जुहूमसि ) उत्तम रूपवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम प्रतिदिन बुलाते हैं।

७ उया इव [ १०९० ]- उया जिसप्रकार अपने प्रकाशसे सब जगत्को भर देती है, उत्तीप्रकार ( हे इन्द्र ! उमे रोदसी या पमथा ) हे इन्द्र ! तू अपने प्रकाशसे घृ और पृथ्वी दोनों कोनोंको भर दे।

८ यथा दीर्घं अंकुशं [ १०९१ ]- जिसप्रकार कीर हाथोंमें प्रकर शस्त्रोंको धारण करते हैं, उत्तीप्रकार तू ( शक्तिं विमर्षि ) शक्तिको धारण करता है।

९ यथा अजः पूर्वेण पद्मा यथा यम [ १०९२ ]- जिस प्रकार बकरा अपने आपसे पैरोंसे हालांकी मुक्तता है, उत्ती-प्रकार तू वायुओंका नाश करता है अथवा ( देवीं जनित्री अजीजनत् ) अदितिदेवीने तुझे पहले उत्पन्न किया।

१० दिशुः न [ १०९८ ]- जिसप्रकार छोटे बालकको लगाते हैं, उत्तीप्रकार ( हृदयेः मूर्तिभिः इवद्यमस ) हृदि और स्तुतिपाँतों से इस सोमको भीर स्वादिष्ट बनाते हैं।

११ मादुभिः घस्सः इव [ १०९९ ]- जिसप्रकार माँ अपने बच्चेको पावनेसे साक करती है, उत्तीप्रकार ( इन्द्रुः सं अज्यते ) सोम पानीमें घोषा जाता है।

१२ सूर्यासः न [ ११०२ ]- सूर्यके समान ( ओमासः दर्शतासः ) सोमरस दर्शकीय है।

१३ घातः न [ ११०४ ]- बायुके समान ( अघ्नः जूर्ति ) सूर्य वेणका आशय लेता है।

१४ घृष्टं पक्वं न [ ११०५ ]- घृष्ट जिसप्रकार पके हुए कर्णोंको बेता है, उत्तीप्रकार ( मीयुतः घृत्नि धून-यत् ) सोम धन देता है।

## सप्तमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

संज्ञकस्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः ( १ )	देवता	छन्दः
१०११	९।८६।१०	[ अकृष्ट मावाद्यः ] त्रयः ऋषयः	पवमानः सोमः	जगती
१०१२	९।८६।११	[ अकृष्ट मावाद्यः ] त्रयः ऋषयः	"	"
१०१३	९।८६।१२	[ अकृष्ट मावाद्यः ] त्रयः ऋषयः	"	"
१०१४	९।६४।३	काश्यपो मारीचः	"	गायत्री
१०१५	९।६४।५	काश्यपो मारीचः	"	"
१०१६	९।६४।६	काश्यपो मारीचः	"	"
१०१७	९।१।१	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०१८	९।१।२	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०१९	९।१।३	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०२०	९।१।४	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०२१	९।१।५	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०२२	९।१।६	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०२३	९।१।७	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०२४	९।१।८	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०२५	९।१।९	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०२६	९।१।१०	मेघातिथिः काश्यः	"	"
१०२७	९।१।११	मेघातिथिः काश्यः	"	"
( २ )				
१०२८	९।४।१	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०२९	९।४।२	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३०	९।४।३	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३१	९।४।४	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३२	९।४।५	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३३	९।४।६	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३४	९।४।७	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३५	९।४।८	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३६	९।४।९	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३७	९।४।१०	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३८	९।४।११	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०३९	९।४।१२	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४०	९।४।१३	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४१	९।४।१४	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४२	९।४।१५	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४३	९।४।१६	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४४	९।४।१७	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४५	९।४।१८	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४६	९।४।१९	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४७	९।४।२०	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४८	९।४।२१	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०४९	९।४।२२	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५०	९।४।२३	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५१	९।४।२४	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५२	९।४।२५	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५३	९।४।२६	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५४	९।४।२७	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५५	९।४।२८	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५६	९।४।२९	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५७	९।४।३०	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५८	९।४।३१	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०५९	९।४।३२	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०६०	९।४।३३	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०६१	९।४।३४	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०६२	९।४।३५	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"
१०६३	९।४।३६	हिरण्यस्तूप आगिरसः	"	"

मंत्रसंख्या	श्रवणसंख्या	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१०६४	१।९४।१	कुत्स आंगिरसः	अग्निः	जगती
१०६५	१।९४।२	कुत्स आंगिरसः	"	"
१०६६	१।९४।३	कुत्स आंगिरसः	"	"

( ३ )

१०६७	७।६६।७	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	आदित्यः	माधवी
१०६८	७।६६।८	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
१०६९	७।६६।९	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"
१०७०	८।४५।४०	त्रिसोमः काण्वः	इन्द्रः	"
१०७१	८।४५।४१	त्रिसोमः काण्वः	"	"
१०७२	८।४५।४२	त्रिसोमः काण्वः	"	"
१०७३	८।४६।१	दयावाङ्म आत्रेयः	इन्द्राग्नी	"
१०७४	८।४६।२	दयावाङ्म आत्रेयः	"	"
१०७५	८।४६।३	दयावाङ्म आत्रेयः	"	"

( ४ )

१०७६	९।६४।१२	कश्यपो मारीचः	वयमाङ्गः सौर्यः	"
१०७७	९।६४।१३	कश्यपो मारीचः	"	"
१०७८	९।६४।१४	कश्यपो मारीचः	"	"
१०७९	९।१०७।११	सप्तर्षयः	"	प्रवाचः ( विष्मन् बृहती, सप्त सप्तो बृहती )
१०८०	९।१०७।१२	सप्तर्षयः	"	"
१०८१	९।६१।७	अमहीमुरागिरसः	"	माधवी
१०८२	९।६१।८	अमहीमुरागिरसः	"	"
१०८३	९।६१।९	अमहीमुरागिरसः	"	"

( ५ )

१०८४	१।३०।१३	शुनन्वीष आजीपतिः	इन्द्रः	"
१०८५	१।३०।१४	शुनन्वीष आजीपतिः	"	"
१०८६	१।३०।१५	शुनन्वीष आजीपतिः	"	"
१०८७	१।४।१	मधुच्छन्दा वेदवामित्रः	"	"
१०८८	१।४।२	मधुच्छन्दा वेदवामित्रः	"	"
१०८९	१।४।३	मधुच्छन्दा वेदवामित्रः	"	"
१०९०	१०।१३४।१	माम्याता योक्तादाङ्गः	"	महर्षिरुषः
१०९१	१०।१३४।२	माम्याता योक्तादाङ्गः ( पूर्वाभ्यां )	"	"
१०९२	१०।१३४।३	माम्याता योक्तादाङ्गः ( उत्तराभ्यां )	"	"
१०९३	१०।१३४।४	माम्याता योक्तादाङ्गः	"	"

( ६ )

१०९४	९।१८।१	अतितः वाङ्मयो देवसो वा	वयमाङ्गः सौर्यः	माधवी
------	--------	------------------------	-----------------	-------

मंत्रसंख्या	श्रुतेवर्यानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
१०९४	९११८१९	असितः काश्यपो देवलो वा	पथमानः सोमः	गायत्री
१०९५	९११८१९	असितः काश्यपो देवलो वा	"	"
१०९६	९११८०११३	अष्टवयसो राजर्षि-	"	पथमस्या गायत्री
१०९७	९११८०११४	अश्विनर्षिष्यः	"	सतो बृहती
१०९८	९११८०११९	पर्वतनारदो काष्ठी	"	उत्तिष्ठत्
१०९९	९११८०११९	पर्वतनारदो काष्ठी	"	"
११००	९११८०११९	पर्वतनारदो काष्ठी	"	"
११०१	९११८१११०	मनुः सावरणः	"	अनुष्टुप्
११०२	९११८१११२	मनुः सावरणः	"	"
११०३	९११८१११३	मनुः सावरणः	"	"
११०४	९११८१११९	कुत्स आगिरतः	"	त्रिष्टुप्
११०५	९११८१११९	कुत्स आगिरतः	"	"
११०६	९११८१११९	कुत्स आगिरतः	"	"

( ७ )

११०७	५११४१३	अथः सुवन्तः भुतवन्तुविप्रवन्तुः	अग्निः	विषवा विराट्
११०८	५११४१३	अथः सुवन्तः भुतवन्तुविप्रवन्तुः	"	"
११०९	५११४१३	अथः सुवन्तः भुतवन्तुविप्रवन्तुः	"	"
१११०	१०१५७१३	अथः सुवन्तः भुतवन्तुविप्रवन्तुः	"	"
११११	१०१५७१३	भुवन आप्यः साधनो वा भीवनः	विश्वेदेवाः	विषवा त्रिष्टुप्
१११२	१०१५७१३	भुवन आप्यः साधनो वा भीवनः	"	"
१११३	१०१५७१३	भुवन आप्यः साधनो वा भीवनः	"	"
१११४	—	—	—	—
१११५	—	—	—	—







१११९ प्र स्वानासो रथा इवार्थन्तो न श्रवस्यः । सोमासो राथे अक्रुधः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

११२० हिन्वानासो रथा इव दधन्निरे गभस्त्योः । ग्रासः कारिणामि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०।२ )

११२१ राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धावृभिः ॥ ६ ॥  
( ऋ. ९।१०।३ )

११२२ परि स्वानास इन्द्रवो मदाय वर्हणा मिरा । मधो अर्पन्ति धारया ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१०।४ )

११२३ आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उपसो भगम् । स्रा अर्पे वि तन्यते ॥ ८ ॥  
( ऋ. ९।१०।५ )

११२४ अप द्वारा मतीनां प्रत्ना अण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरत आपवः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१०।६ )

११२५ समीचीनास आशत होतरः सप्तजानवः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।१०।७ )

११२६ नामा नाभि न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे । कवेरपत्यमा दुहे ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।१०।८ )

【 १११९ 】 ( रथाः इव ) रथ और ( श्रवस्यः न ) घोड़े नितप्रकार ( श्रवस्यः ) यज्ञकी इच्छा करते हुए ( राथे अक्रुधः ) मन भाविके लिए बराबर करते हैं, उसीप्रकार ( स्वानासः सोमासः ) छाने जाते हुए सोम राज्य भववा बराबर करते हैं ॥ ४ ॥

【 ११२० 】 युद्धमें जानेवाले ( रथाः इव ) रथके समान ( हिन्वानासः ) गतिमान् सोमके ( ग्रासः कारिणो इव ) मार और धारणवाले मजदूरके हाथोंपर नितप्रकार बोज रखते हैं, उसीप्रकार लोग ( गभस्त्यो दधन्निरे ) हाथोंमें धारण करते हैं ॥ ५ ॥

【 ११२१ 】 ( सोमासः ) ये सोम ( प्रशस्तिभिः राजानः न ) स्तुतिवोद्वारा राजा तथा ( सप्तधावृभिः यज्ञः न ) सात ऋषिर्जनों द्वारा मज नितप्रकार गुणोन्मित होता है, उसीप्रकार ( गोभिः अञ्जते ) गायके घो भाविकोंसे गुणोन्मित किये जाते हैं ॥ ६ ॥

【 ११२२ 】 ( स्वानासः इन्द्रवः ) निचोड़े गए सोम ( वर्हणा मिरा ) महान् रतोन्ति प्रशस्ति होनेके बाद ( मधोः धारया ) नीचे रखकी धारसे ( मदाय ) आनन्द बढानेके लिए ( परि अर्पन्ति ) बलजमें मिरते हैं ॥ ७ ॥

【 ११२३ 】 ( विवस्वतः आपानासः ) इन्द्रके पीनेके लिए ( उपसः भगं जिन्वन्तः ) उपवास लेन बढाते हुए ( स्राः ) सोमरस ( अर्पे पितन्यते ) दाय्य करते हैं ॥ ८ ॥

【 ११२४ 】 ( मतीनां कारवः ) स्तुति करनेवाले ( प्रत्नाः ) श्रावण ( वृष्णः हरतः ) बलवान् सोमको सारनेवाले ( आपवः ) मनुष्य ऋषिज ( द्वारा अप अण्वन्ति ) यज्ञके बरपाने सोलते हैं ॥ ९ ॥

【 ११२५ 】 ( समीचीनासः ) श्रेष्ठ ( आशतः ) भाविके ( पदमेकस्य पदं पिप्रतः ) यज्ञके सोमके रथानको घूर्ण करते हुए ( सप्त आशतः ) सात होतृगण यज्ञ करनेके लिए बैठते हैं ॥ १० ॥

【 ११२६ 】 ( चक्षुषा सूर्यं दुहे ) भाविके सूर्यको देखनेके लिए ( नाभिः ) यज्ञकी नाभिकय सोमको ( नः नामा माददे ) अपनी नाभिके पास अर्पण देनेके समीप रखता हैं ( कवेः अपत्यम् ) इसप्रकार करनेसे सोमके पुत्ररूपी तेजको मे ( मा दुहे ) घूर्ण तेजस्वी करता हूँ ॥ ११ ॥

११२७ अग्निं प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥ १२ ॥ १ (सै) ॥  
[ पा० ५७।उ० ४ । त्व० ८ ] ( ऋ. १।१०९ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ २ ]

११२८ अमुग्रमिन्दवः पथा धर्मेन्नृतस्य सुभ्रियः । विद्वाना अस्य योजना ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७१ )  
११२९ म भारा मधो अग्निषो महीरपो वि गाहवे । हविर्हविःपु वन्द्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७२ )  
११३० म युजा वाचो अग्निषो वृषो अचिकददने । सपाभि सत्या अव्वरः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७३ )  
११३१ परि यत्काष्ठा कविनेष्ठा पुनानो अपति । स्वर्वाजी सिपासति ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।७४ )  
११३२ पवमानो अग्नि स्पृषा विशो राजेव सीदति । यदामृष्यन्ति वेधसः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।७५ )  
११३३ अग्न्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।७६ )

[ १२७ ] ( सूरः ) इन्द्र ( चक्षसा ) नेत्रेति ( विश्वः प्रिय पदं ) सुलोकं प्रिय और ( गुहाहितं ) हृदयमें रहने हुए सोमलो ( अग्नि पश्यति ) देखता है ॥ १२ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ११२८ ] ( अस्य योजनाः विद्वानाः ) इस यजमानके द्वारा बनाये गए देखता तन्वावी योजनार्थीको जानकर ( सुभ्रियः इन्द्रव ) उत्तम सुगोभित ॥ ५ ॥ हुए सोम ( धर्मन् ) धर्मके समान ( अतस्य पथा ) यशसे जापति ( अमुग्रं ) तैय्यार किए जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११२९ ] ( हविः पु वन्द्यः हविः ) हवियोंमें प्रसन्नगीम सोम ( महीः अथ विगाहवे ) बहुत सारे जलोंमें स्नान करता है । ( मधोः अग्निषः धाराः म ) नीचे रहती मधु धार कलशमें भरती है ॥ २ ॥

[ ११३० ] ( अग्निषः युजा वाचः म ) हवियोंमें मुख्य यह सोम स्त्रोत्रोंको प्रवृत्त करता है । ( वृषाः सत्या अध्वरः ) बलवान्, सत्यस्वरूप और हिता न करनेवाला सोम ( सपा अग्नि ) यत्काष्ठानमें ( वने अधिभक्षत् ) जलमें शब्द करता हुआ जाता है ॥ ३ ॥

[ ११३१ ] ( कवि नृष्ठा पुनानः ) वह बुरबर्षी सोम अपने बलसे मनुष्योंको शुद्ध करते ॥ ( वाऽप्या यत् परि अपति ) जब स्तुतिको प्राप्त होता है तब ( स्व वाजी सिपासति ) स्वर्गसे बलवान् इन्द्र यशसे जानेकी दृष्टा करता है ॥ ४ ॥

[ ११३२ ] ( पत् हं ) जब इस सोमलो ( वेधसः जप्यन्ति ) ऋत्विज्य प्रेरणा देते हैं तब ( पवमानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( स्पृषा अग्नि सीदति ) मनुष्योंको नष्ट करनेके लिए तैय्यार होता है ( विशः राजा इव ) प्रजामर्तिक मनुष्योंको दूर करनेके लिए जिसप्रकार राजा जाता है, उसीप्रकार यह सोम भी जाता है ॥ ५ ॥

[ ११३३ ] ( हरिः प्रियः ) हरे रक्ताग प्रिय सोम ( वनेषु ) वानोमें फैलाया जाकर जब ( अग्न्याः वारे परि-सीदति ) बलगी बनी छलनीसे छाना जाता है, तब ( रेभः मती वनुष्यते ) शब्द करते हुए स्तुतिको वह स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

११३४ त वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मणा ॥७॥ ( ऋ. १।७।७ )

११३५ आ मित्रे चरुणे भगे मयोः पवन्त उर्मयः । विद्वाना अस्य शक्मभिः ॥८॥ ( ऋ. १।७।८ )

११३६ अस्मस्पृश रोदसी रयिं मघ्नो वाजस्य सातये । श्रवो वसुनि सञ्जितम् ॥९॥ ( ऋ. १।७।९ )

११३७ आ ते दक्षे मयोभुवं वह्निमघा वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥ ( ऋ. १।६५।१८ )

११३८ आ मन्द्रमा घरेण्यमा विप्रमा मनोपिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥ ( ऋ. १।६५।२९ )

११३९ आ रयिमा सुचेतुनमा सुकृतो तनुम्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१२॥ २ ( क ) ॥

[ या० ३८ । उ० ५ । ख० ११ ] ( ऋ. १।६५।३० )

॥ इति द्वितीयः पञ्चः ॥ २ ॥

[ ११३४ ] ( यः अस्य धर्मणा रणा ) जो यमवान् इस योमके मित्रोहने आदि कार्योंमें व्यस्त रहता है, ( सः वायु इन्द्रं अश्विना ) तन्वा वायु, इन्द्र और अश्विनो देवोंके पास ( मदेन साकं गच्छति ) आनन्द देनेवाले सोमके साथ पहुँचता है ॥ ७ ॥

[ ११३५ ] जिन यमवालोंके ( मयोः उर्मयः ) भोटे सोमकी लहरें ( मित्रे चरुणे भगे पवन्ते ) मित्र, वयण और भगोके लिए बहती हैं, वे यमवान् ( अस्य [ सोमस्य ] विद्वानाः ) इस सोमके गहरवको जानकार ( शक्मभिः ) घुसने युक्त होते हैं ॥ ८ ॥

[ ११३६ ] हे ( रोदसी ) दूधोक्त गीर पृथिवी देवी ! तुम ( मघ्नः वाजस्य सातये ) इन मयूर सोमराक्षसी भद्रको प्राप्तिके लिए ( अस्माकं ) हमें ( रयिं श्रवो वसुनि ) धन, अन्न और सम्पत्ति ( सञ्जितं ) तथा जय प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

[ ११३७ ] हे सोम ! यह करनेवाले हम ( मयोभुवं ) तुम देनेवाले ( दक्षिं ) धन देनेवाले ( पान्तं ) सरलन करनेवाले ( पुरु-स्पृहं ) अनेकों द्वारा चढ़ने योग्य ( ते दक्षे अघा वृणीमहे ) तेरे बलको आज अपने पास चाहते हैं ॥ १० ॥

[ ११३८ ] हे सोम ! ( मन्द्रं वा ) आनन्द देनेवाले तेरी हम आराधना करते हैं । ( घरेण्यं वा ) झेठ ॥ चाहने योग्य तेरी हम सेवा करते हैं । ( विप्रं वा ) हलघुक्त शेरो हथ उपलब्ध करते हैं । ( मनोपिणं वा ) बुद्धिसे द्रव्य तेरी हम इष्टि करते हैं । ( पान्तं पुरुस्पृहं वा ) सरलन करनेवाले और अनेकों द्वारा स्तुति करने योग्य तेरी हम भक्ति करते हैं ॥ ११ ॥

[ ११३९ ] हे ( सुकृतो ) उत्तम यत्न करनेवाले सोम ! ( रयिं वा ) धनके लिए हम आर्चना करते हैं, ( सुचेतुनं वा ) उत्तम हलके लिए हम आर्चना करते हैं, ( तनुपु वा ) घुसपीत्रोंके लिए हम आर्चना करते हैं । ( पान्तं पुरुस्पृहं वा ) सरलन करनेवाले और अनेकों द्वारा आर्चनीय तेरी हम आराधना करते हैं ॥ १२ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

- ११४० मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमुत आ जातमग्निम् ।  
 कविश्सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।७।१ )
- ११४१ त्वां विधे अमृतं जायमानश्शिशुं न देवा अग्निं सं नवन्ते ।  
 तव क्रतुमिरमुतस्त्वभायन् वैश्वानर यत्पित्रोर्ददेः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।७।४ )
- ११४२ नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमग्निं सं नवन्त ।  
 वैश्वानरं रथयमध्वराणां यक्षस्य क्रतुं जनयन्त देवाः ॥ ३ ॥ ३ ( ऊ ) ॥  
 [ धा० १६ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ६।७।२ )
- ११४३ मं वो मित्राय मायत वरुणाय विषा गिरा । महिक्षन्नावृते बृहत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।८।१ )
- ११४४ सम्राजा वा घृतयोनी मित्रशोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।८।२ )
- ११४५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वा श्वश्रं देवेषु ॥ ३ ॥ ४ ( र ) ॥  
 [ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ६।८।३ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ११४० ] ( दिव्यः मूर्धानं ) पृथीकके मस्तक, ( पृथिव्याः अरतिं ) भूमिमें जानेवाले, ( वैश्वानरं ) सब मनुष्योंके हितकारक, ( अग्ने आ जानं ) यगके लिए उत्पन्न हुए हुए, ( कविः सम्राजं ) आगे और सम्राट्, ( जनानां अतिथिं ) लोगों द्वारा पूजनीय, और ( आसन्नः ) देवताओंके सुलक्षणी ( नः पात्रं अग्निं ) हमारे संरक्षक अग्निको ( देवाः आ जययन्त ) ऋषियज यज्ञमें अग्नियोगसे उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

[ ११४१ ] हे ( अमृत ) अमर आने ! ( विधे देवाः ) सब देव सब ऋषियज ( जायमानं त्वां ) प्रकट होते ही तुम ( शिशुं न कनि सं नवन्ते ) बालकके समान सम्मानित करते हैं । हे ( वैश्वानर ) दिव्यके नेता आने ! ( यत् पित्रोः अर्ददेः ) जब पासन करनेवाले पुत्री और पुष्पलीकके बीचमें तु प्रदीप्त हुआ, तब यजमान ( तव क्रतुभिः ) तेरे यगके कारण ( अमृतं त्वं आयन् ) देवत्वको प्राप्त हुए ॥ २ ॥

[ ११४२ ] ( यज्ञानां नाभिं ) यगकी नाभि ( रयीणां सदनं ) यगके अन्धार ( महामाहाव्यं ) जिसमें बड़ी बड़ी आहुतियें दी जाती हैं ऐसी अग्निकी ( अग्निं सं नवन्ते ) ऋषियजतीय स्तुति करते हैं । ( वैश्वानरं ) सब दिव्यके नेता ( यज्ञराणां रथं ) हितकारक यगके चालक ( यक्षस्य क्रतुं ) यगके स्वयं ऐसे अग्निको ( देवाः जययन्त ) ऋषियजोगे यग करते उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

[ ११४३ ] हे ऋषियज ! ( मं मित्राय घृणाय ) तुम मित्र और वरुणके लिए ( विषा गिरा मायत ) मोटी आवाजसे मायन करो ! ( महि-श्वश्रं ) महान् आग्नेयसे युक्त मित्र और वरुण ! ( बृहते बृहत् ) यगके स्थानपर बड़ी स्तुति सुननेके लिए आओ ॥ १ ॥

[ ११४४ ] ( मा मित्रः वरुणः च ) जो मित्र और वरुण ( उवा सम्राजा ) दोनों ही सम्राट् हैं, ( घृत-योनी देवा ) जल उत्पन्न करनेवाले तथा प्रजापमान् ( देवेषु प्रशस्ता ) देवोंमें प्रशस्तनीय हैं ॥ २ ॥

[ ११४५ ] ( ता ) ये मित्र और वरुण ( नः ) हमें ( दिव्यस्य, पार्थिवस्य ) पृथीकपरके और पृथीकपरके ( महः रायः शक्तं ) महान् यग देनेमें समर्थ हैं । हे देवी ! ( धां ) तुम दोनोंके ( महि श्वश्रं ) महान् साजबल ( देवेषु ) देवोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥

११४६ इन्द्रा याहि चित्रमानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥ ( ऋ. ॥३७४ )

११४७ इन्द्रा याहि धिययितो विश्वजुतः सुतावतः । उष ब्रह्माणि वाधतः ॥२॥ ( ऋ. ॥३७५ )

११४८ इन्द्रा याहि तूतुजान उष ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्वनः ॥३॥ ५ ( ही ) ॥

[ पा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ॥३७६ )

११४९ समीद्विष्य यो अर्चिषा यना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृष्णाति जिह्वा ॥ १ ॥

( ऋ. ६।६०।१० )

११५० य इह आविवासति सुसमिन्द्रस्य मर्यः । युस्त्राय सुतरा अपः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।६०।११ )

११५१ सा नो वाजवतीरिष आशून् पिपुठमर्यतः । इन्द्रमर्थि च वोढवे ॥ ३ ॥ ६ ( य ) ॥

[ पा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ६।६०।१२ )

॥ इति सुवीथः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

११५२ सो अयासीदिन्द्रुरिन्द्रस्य निष्कृतः सखा सख्युर्न प्र मिनाति सज्जिरम् ।

मर्य इव युपतिभिः समर्थति सोमः कलये श्वतयामना पथा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।१६ )

[ ११४६ ] हे ( चित्रमानो इन्द्र ) विजेय प्रजातमान इन्द्र ! ( यायाहि ) आ । ( अण्वीभिः सुताः ) अणुत्वितो विभोदे गय ( तना पूतासः ) उत्तम वृद्ध करके रले गय ( इमे ) मे सोमरस ( त्वायवः ) तेरे लिए हैं ॥ ५ ॥

[ ११४७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( धिया द्युपितः ) बुद्धिसे वेतित होकर ( विश्वजुतः ) अर्चिवर्गों द्वारा बुलाया गया तू ( सुतावतः पाधतः ) सोमरस तैय्यार करके स्तुति करनेवालोंके द्वारा बोले जानेवाले ( ब्रह्माणि ) लोभोंको धुननेके लिए ( उष आयाहि ) बतके पास आ ॥ २ ॥

[ ११४८ ] हे ( हरिवः ) घोड़े पालनेवाले इन्द्र ! तू ( तूतुजानः ) वीर्य ही ( ब्रह्माणि उष ) स्तोत्र धुननेके लिए पास आ और ( सुते नः यमः दधिष्व ) इस यममें हमारी हथियारोंसे ग्रहण कर ॥ ३ ॥

[ ११४९ ] ( यः अर्चिषा ) जो अपने तेजसे ( विश्वा यना ) सब वर्गोंको ( परिष्वजत् ) घेर लेता है, और ( जिह्वा कृष्णा कृष्णाति ) जबलाते सबको कला कर देता है । ( स ईद्विष्य ) उस अर्चिकी स्तुति कर ॥ २ ॥

[ ११५० ] ( यः मर्यः ) जो अर्चिवन ( इह ) प्रवीण हुई अर्चिव ( इन्द्रस्य सुतः ) इन्द्रको बुलायावक हथि ( आ यिवासति ) अर्पण करता है, उसके ( युस्त्राय ) तेजके लिए ( सुतराः अपः ) उत्तम और सरलतासे पार करने योग्य पानी इन्द्र देता है ॥ २ ॥

[ ११५१ ] हे इन्द्र और अर्चि ! ( सा ) वे युष ( इन्द्रं च अर्चिं आ वोढवे ) इन्द्र और अर्चिकी देवताओंकी ओर पधुनानेके लिए ( नः ) हमें ( वाजवतीः हयः ) कल यजनेवाले वज्र और ( आशून् मर्यतः ) वीर्य धरनेवाले घोड़े ( पिपुठं ) को ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थीः खण्डः ।

[ ११५२ ] ( इन्द्र ) सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतः ) इन्द्रके वेद्यमें ( सो अयासीत् ) गया । ( सखा ) मित्रवधो वह सोम ( सख्युः नः ) अपने मित्रवधो इन्द्रके । सं गिरं न प्रमिनाति ) वेद्यों कीई बन्ध नहीं देता, ( मर्यः ) युपतिभिः हय ) युपज जैसे तदण स्त्रियोंके मिलता है, जसोप्रकार ( सोमः समर्थति ) सोम पत्नीके साथ मिलताया जाता है, यारने वह सोम ( श्वतयामना पथा ) संकरी तरहसे जाने योग्य मार्गसे ( कन्दो ) कलशमें जाता है ॥ १ ॥

११५३ प्र ङा धिया मन्द्रपुषा विपन्पुवः पनस्पुवः संवरणेष्वक्रयुः ।

हरिं क्रीडन्तमभ्यनूय स्तुभोजमि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८६।७ )

११५४ आ नः सोम सयते पिप्युषीमिपमिन्दो पवस्य पवमान ऊर्मिणा ।

या नो दोहवे त्रिरहसश्शुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ७ ( ठि ) ॥

[ धा० २८।७० २।२७० ३।१ ( ऋ. १।८६।१८ ) ]

११५५ न किष्टं कर्मणा नशयश्चकार सदावृषम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृष्यसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।२ )

११५६ अवाडमुमं पृतनासु सासहि यस्मिन्महीरुक्रयः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥ २ ॥ ८ ( ही ) ॥

[ धा० १६।७० नास्ति । २७० ४ ] ऋ. ८।७०।४ )

॥ इति वज्रुर्वाः सप्तः ॥ ५ ॥

[ ११५३ ] हे सोम । ( यः धियाः ) तुम्हारी बुद्धिका ध्यान करनेवाले ( मन्द्रपुषः ) आनन्दवर्षक ( पनस्पुवः ) स्तुति करनेवाले इच्छा करनेवाले ( विपन्पुवः ) स्वीकृतन ( संवरणेषु प्राक्रयुः ) यत्नमग्नयमें यत्नकर्म करने लगते हैं, तप ( स्तुमः ) स्तुति करनेवाले ( हरिं क्रीडन्तं ) हरे रथके तथा खेलनेवाले तुम सीमली ( अभ्यनूयत ) स्तुति करते हैं, उस समय ( धेनवः ) गायें ( पयसा इत् अभिशिश्रयुः ) अपने दूधसे इस सोमकी सेवा करती हैं ॥ २ ॥

[ ११५४ ] ( पवमान इन्दो सोम ) हे शुद्ध होनेवाले तेजस्वी सोम ! ( या [ इद ] ) जो भस्म ( नः अहम् यिः ) अत्रहृषी ) हमारे एकदिकके तीनों सबकीमें गाय न वालते हुए ( क्षुमत् वाजयत् ) प्रसिद्ध बलवर्षक ( मधुमत् सुवीर्यं दोहवे ) उत्तमतासे युक्त उत्तम वीरयुव होता है । उस ( नः संयुतं पिप्युषी इय ) हमारे द्वारा लाये गए वीरक भस्मकी ( ऊर्मिणा पयस्य ) अपनी सहस्रसिं युद्ध कर ॥ ३ ॥

[ ११५५ ] ( यः ) जो यत्नकर्ता ( सदावृषं विश्वगूर्तं ) सदा बढ़ानेवाले, सबकी द्वारा स्तुति करनेके योग्य, ( मृष्यसं ) महान् ( ओजसा अघृष्टं ) अपनी शक्तिसे अपराभूत अर्थात् शत्रुते ॥ हारनेवाले ( धृष्णुं ) वर शत्रुओंकी हारनेवाले ( न इन्द्रं ) प्रशंसित इन्द्रका ( यज्ञैः चकार ) यज्ञसे सत्कार करता है, ( सं ) उसकी ( कर्मणा न किं नदात् ) अपने कर्मसे कोई मष्ट नहीं कर सकता ॥ १ ॥

[ ११५६ ] ( यस्मिन् जायमाने ) जिस इन्द्रके अकट होते ही ( महीः उरुक्रयः धनवः ) महान् वेगवान् गायें ( समनोनवुः ) उसे प्रणाम करती हैं, उसीप्रकार ( यायाः क्षामीः समनोनवुः ) दूधको और पृथ्वीलोक भी नितके आगे गुरुते हैं उस ( भपाष्टं उग्रं ) शत्रुको हारनेवाले, अघकर और ( पृतनासु सासहि ) युद्धमें सहस्र विलनेवाले इन्द्रकी में स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ ५ ]

- ११५७ सखाय आ नि पीदत पुनानाय प्रगायत । शिशु नः यज्ञे परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥  
( ऋ. १।१०४।१ )
- ११५८ समी वरत न मातृभिः सुजता गयसाधनम् । देवाभ्यंश्मदमग्निं द्विष्टव्रतम् ॥ २ ॥  
( ऋ. १।१०४।२ )
- ११५९ पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्षाय वीठये । यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥ ३ ॥ ९ (वि) ॥  
[ या० १९।३०।१।स्व० ३ ] ( ऋ. १।१०४।३ )
- ११६० प्र वाज्यसाः सहस्रचारितः पवित्रं हि वारमव्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०५।१६ )
- ११६१ स वाज्यसाः सहस्रेता अद्रिभूजानो गोभिः यीणानाः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१०५।१७ )
- ११६२ प्र सोम बाहीन्द्रस्य कुशा नृमिर्यमानो अद्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥ १० (पु) ॥  
[ या० १९।३०।१।२०० ५ ] ( ऋ. १।१०५।१८ )
- ११६३ ये सोमासः परावति ये अवागति सुन्धिर । ये वादः शर्मणावति ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०५।२२ )
- ११६४ ये आजीकेषु कृत्वसु ये मध्ये परत्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१०५।२३ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ११५७ ] हे ( सखाय ) ऋषिभो ! ( नम निपीदत ) बेटी, ( पुनानाय प्रगायत ) कुछ होनेवाले सोमके लिए गान करो, ( शिशु नः ) आत्मकी नितप्रकार पिता मातृवर्णिते सजाता है, उसीप्रकार ( यज्ञे श्रिये परिभूषत ) वर्तते इसकी सोभा बढ़ाओ ॥ १ ॥

[ ११५८ ] हे ऋषिभो ! ( गय-माधने ) घरके साधनरूप ( देवाभ्यंश्मदं ) वेदके रत्नक और जानन्य ब्रह्म-वाले ( द्वि-शायनं हि ) दोनों प्रकारके यज्ञ बढ़ानेवाले इस सोमकी ( अतृभिः परसं न ) माताओंके साथ नितप्रकार घरके मिलकर रहते हैं, उसीप्रकार ( अग्नि संवृजत ) जलके साथ मिलावो ॥ २ ॥

[ ११५९ ] ( शर्षाय ) वेगके लिए ( वीठये ) देवोंको बेनेके लिए ( मित्राय, वरुणाय ) मित्र और बरुणके लिए ( यथा शीतमं ) नितप्रकार अग्निके गुण ही उत्तमप्रकार ( दक्ष-साधन पुनाता ) यज्ञ बढ़ानेवाले सोमकी मृदु करो ॥ ३ ॥

[ ११६० ] ( घाजी सहस्रभारः ) यज्ञदान और अनेक धाराओंसे छाया जलनेवाला सोम ( अग्न्य धारं पवित्र तिरः प्रश्नाः ) बालोंकी घनी छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ११६१ ] हे ( सहस्र-येताः ) अनेक चलते युक्त ( अद्रिः सुजानः ) चलते घोषा जलनेवाला ( गोभिः यीणानः सः घाजी ) गायके दूधसे मिलाया जलनेवाला यह बलवान् सोम ( अद्राः ) छाया जाता है ॥ २ ॥

[ ११६२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नृभिः येमानः ) ऋषिओंके द्वारा नियममें रखा गया ( अद्रिभिः सुतः ) पारवर्तित कृत्कर निषोदा गया सु ( इन्द्रस्य कुशा ) इन्द्रके वेदमें ( प्र गाहि ) भर जा ॥ ३ ॥

[ ११६३ ] ( ये सोमासः ) जो सोम ( परावति ) बुरके देशमें तथा ( ये अवागति सुन्धिर ) जो पारके देशमें छाने जाते हैं, ( या ये शर्मः शर्मणावति ) अथवा जो इस शर्मणावत् नामक सरोवरके पास छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११६४ ] ( ये आजीकेषु ) जो घोष आजीक देशमें ( ये कृत्वसु ) जो कर्म करनेवालोंके देशमें ( परत्यानां मध्ये ) जो नतीके बिनादे ( या ये पंचसु जनेषु ) अथवा जो पंचमर्गिते क्षेत्रमें छाया जाता है, वह हमें पृथक् देवे ॥ २ ॥



११६५ ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुशीर्षम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥ ३ ॥ ११ (चि) ॥  
[ धा० ७ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।६९।१४ )

॥ इति पचम सण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

११६६ आ ते वत्सो मनो यमत्परमाचित्सधस्थात् । अग्ने त्वा कामये गिरा ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।११।७ )

११६७ पुरुषा हि सदङ्कुसि दिशो विद्या अनु प्रभुः । समस्तु त्वा इवामहे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।११।८ )

११६८ समस्तगमिषवसे वाजयन्तो इवामहे । वाजेषु चित्ररावसम् ॥ ३ ॥ ११ (ठा) ॥  
[ धा० १३ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।११।९ )

११६९ त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृमण्यं श्रवक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनांसहम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।९८।१० )

११७० त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता श्रवक्रवो वभूविथ । अथा वे सुममीमहे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।९८।११ )

११७१ त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तश्रुपे सदस्कृत । स नो राख सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ १३ (ल) ॥  
[ धा १४ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९८।१२ )

[ ११६५ ] ( स्वानाः देवासः इन्दवः ) निचोडे गए वे चमकनेवाले सोमरस ( नः दिवस्परि ) हमें फुलीकते ( वृष्टिं सुशीर्षं आ पवन्ताम् ) वृष्टि और उसमें पराक्रम युक्त अन्न देंगे ॥ ३ ॥

॥ यहां पाँचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ ११६६ ] हे ( अग्ने ) मने ! ( वत्सः ) बत्स ऋषि ( गिरा त्वां कामये ) तेरी स्तुति करने मांगता है, कि ( ते मनः ) तेरा मन ( परमात् चित् सधस्थात् ) बहुत ऊँचे स्थानके भी ( आ यमत् ) बढ़ा जाने ॥ १ ॥

[ ११६७ ] हे मने ! ( पुरुषा हि सदङ्कुसि ) सब जगह एक जैसी वृष्टि रहनेवाला है, इस कारण ( विद्या-दिशः अनु प्रभुः ) सब दिशाओंके अनूकूल प्रभु है, इसलिए ( समस्तु त्वा इवामहे ) सगाममें तुझे सहायताके लिए हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ ११६८ ] ( समस्तु वाजयन्तः ) सगाममें बलका उपयोग करनेवाले हम ( अवसे ) सूरक्षणके लिए ( वाजेषु ) सगाममें ( चित्र-रावसं ) बिलवाण वराक्रम करनेवाले ( चित्रा इवामहे ) ध्वनिकी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ११६९ ] ( श्रवक्रतो विचर्षणे इन्द्र ) हे सैकड़ों कर्म करनेवाले शिरोव तानी इन्द्र ! तू ( न नृमण्यं ओजः आ भर ) हमें शीघ्रयुक्त बल भरपूर दे, जैसीप्रकार ( पृतना-सहं वीरं आ ) युद्धमें चात्रको हरानेवाले वीरयुद्ध दे ॥ १ ॥

[ ११७० ] हे ( वसो दातक्रतो ) निवातक और सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं नः पिता वभूविथ ) ॥ हमारा पिता है । ( त्वं माता ) तू माता है । ( अथा वे सुममीमहे ) इसलिए तेरे पास हम सुख भोगते ॥ आते हैं ॥ २ ॥

[ ११७१ ] हे ( सदस्कृत ) बलके लिए प्रसिद्ध ( शुष्मिन् ) सामर्थ्यवान् और ( पुरुहूत ) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! ( वाजयन्तं त्वा उपयुधे ) बलवान् तेरी हम स्तुति करते हैं ( सः नः सुवीर्यं राख ) बहुत हमें उसमें शीर्ष दे ॥ ३ ॥

११७२ यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।

राघस्तजो विद्वत्स उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥ ( ऋ ५।३९।१ )

११७३ यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युष्टं तदा भर । विद्याम तस्य ते वयमङ्गुषारस्य दावनः ॥ २ ॥

( ऋ ५।३९।२ )

११७४ यत्ते दिक्षु प्रसार्य मनो अस्ति श्रुवं दृष्टम् ।

तेन दृढा चिदद्रिम् आ वाजं दर्पि सातये ॥ ३ ॥ १४ ( पी ) ॥

[ घा० २५ : उ० १ । २४० ४ ] ( ऋ. ५।३९।३ )

॥ इति खण्ड सप्त ॥ ६ ॥

॥ इति चतुर्थप्रपाठस्य द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥ चतुर्थप्रपाठस्य समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

[ ११७२ ] हे ( अद्रिघः चित्र इन्द्र ) वज्रधारी विलक्षण बलवान् इन्द्र ! ( स्वादातं यत् मे इह नास्ति ) तेरे द्वारा लिए गए जो वन वेदे प्राप्त यहाँ नहीं है, हे ( विद्वत्सो ) धनयुक्त इन्द्र ! जब धर्मालो ( तत् उभयाहस्त्या ) दोनों ही हाथों ( तः आभर ) हमें भरपूर दे ॥ १ ॥

[ ११७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् द्युष्टं घरेण्य मयसे ) जिसे तू तेजस्वी और धेनू मानता है ( तत् आभर ) तत् वन हमें भरपूर दे । ( ते वयं ) वे हम ( तस्य अङ्गुषारस्य ) उस उभय वनके ( दावनः ) वान सेनेवाले होंगे ॥ २ ॥

[ ११७४ ] हे ( अद्रिघः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( ते दिक्षु प्रसार्य ) तेरा माथा विचारोंमें प्रसारनीय ( धृत दृष्टम् यत् मनः अस्ति ) तथा सुप्रसिद्ध महान् जो मन है, ( तेन दृढा चित् ) इस मनसे दृढ़से दृढ़ बनके भी ( वाजं सातये आदर्पि ) बल बढ़ानेके लिए हमें दे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

## अष्टम अध्याय

देवीका राजा इन्द्र है । उसके गुण इस आठवें अध्यायमें ब्रह्मरूपकार हैं—

१ चित्र-भानु [ ११४६ ]—विलक्षण प्रकाश करनेवाला ।

२ सदा-बुध [ ११५५ ]—हमेशा बड़ते रहनेवाला ।

३ विश्व-मूर्ति [ ११५५ ]—सबके द्वारा स्तुति करने योग्य, प्रशंसनीय ।

४ मङ्गयसा [ ११५५ ]—महान्, बल ।

५ ओजसा अ-पूष्ट [ ११५५ ]—मनो विनोद दानिके कारण मनो भी हारनेवाला नहीं है, हमेशा विजयो ।

६ अघातः [ ११५६ ]—शत्रुको हारनेवाला, स्वर्द शत्रु व हारनेवाला ।

७ उग्र [ ११५६ ]—उपभोग, भूर ।

८ पुतनासु सासदि [ ११५६ ]—पुत्रों शत्रुओंको हारनेवाला, संशयमें विजयो ।

९. शतक्रतुः [ ११६९ ]- संकटों महान् बाधें उत्तम रीतिसे करनेवाला ।

१०. विचरिणीः [ ११६९ ]- विजोष जानी ।

११. बहूः [ ११६९ ]- धनवान्, विवास करनेवाला ।

१२. सहस्रकृतः [ ११७१ ]- बलके लिए प्रसिद्ध ।

१३. पुरहस्त [ ११७१ ]- बहुत तोष जिसे सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१४. वासयन् [ ११७१ ]- बलशाली, सामर्थ्यवान् ।

१५. अद्रियः [ ११७२ ]- बच्चा हाथोंमें धारण करनेवाला । पहावर किलेमें रहनेवाला ।

१६. चित्र [ ११७२ ]- बिलम्बन, बससाली ।

१७. विवदस्तुः [ ११७२ ]- धनयुक्त, धनका दान करनेवाला ।

१८. विघस्यन् [ ११७३ ]- विजोष तेजस्वी ।

ये गुण इत अघ्यायमें वर्णित हैं । ये गुण याँ उपपाक अपने सबर बढाते सो उनकी बाँटों और प्रसता होगी । मनुष्य इस रीतिसे जगत हों, इसीलिए ये वैश्वीक गुण यहाँ कहे हैं । अब इन्द्रके दूसरे वर्णन देखें—

१. धिया इति विमज्जतः सुतायताः पाघतः श्लाघाणि एव भाषादि [ ११७७ ]- हे इन्द्र ! बुद्धिपूर्वक प्रार्थना करते बुलाया गया, बाल्यकाले द्वारा नियमित, सोमरस मिलके लिए तैयार किया गया है, जिसकी स्तुति बलती है ऐसा तू स्तोत्रोंकी सुननेके लिए पहले पास आ ।

२. यः भर्त्यः इन्द्रे इन्द्रस्य सुमन् हविः आ धिया सति, पुम्माय सुतरा अपः [ ११५० ]- जो मनुष्य प्रदीप्त अग्निमें इन्द्रको प्रिय लगानेवाले हवि इन्द्रकी अर्पण करता है उसके तेजके लिए इन्द्र बुद्धि करके उत्तम सैरने योग्य पानी देता है ।

इन्द्र देवताके तेजके लिए कुछ विशेष हवनोप इच्छा है । अग्नि जलाकर उन इन्द्रको हवन करनेसे जलाकी बर्षा होगी है, और उससे बहुत पानी होता है । ये हवन इन्द्र कीनसे है उनकी खोज आवश्यक है ।

३. ओजसा अ-प्रभृष्ट इन्द्र यज्ञैः चकार, सं न किं फर्मणा नश्वत् [ ११५५ ]- अपने सामर्थ्यसे नित्य विजयी इन्द्रका यशोति जो सत्कार करता है, उसे अपने कमलि कोई ही मध्य नहीं कर पाता । इतना उस पक्षकर्त्ताका सामर्थ्य बढता है । यज्ञ करनेका अर्थ वैश्वक सत्कार करना हो नहीं है, अग्नि ( १ ) साकारके योग्य सज्जनोंका राष्ट्रमें साकार

हो, ( २ ) राष्ट्रमें सघटन हो, ( ३ ) सत्कारको दान देकर लोक कल्याण करें, ऐसे तीन प्रकारके कार्य प्राप्त करने होते हैं । ये कार्य राष्ट्रहितकी दृष्टिसे जो करता है उसका सामर्थ्य उसकी इस लोकसेवाके कारण बढता है, इसलिये उसका कोई नाश नहीं कर सकता ।

॥ हे इन्द्र ! सुमन् ओजः धृतनासदं वीरं नः आभर [ ११६९ ]- हे इन्द्र ! हमें पीछेपुछते बल दे, और युद्धमें सामुका वाता करनेवाला भुज भी दे ।

५. हे शुष्मिन् । त्वां उपयुये, नः सुधीर्यं रास्व [ ११७१ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरी में प्रार्थना करता हूँ । तू हमें सामर्थ्य दे ।

६. हे इन्द्र ! यत् पुञ्जं यरेयं भग्नसे तत् आ भर तस्य अफूपारस्य दाघनः विधाम [ ११७३ ]- तेरे विचारमें जो घन तेजस्वी और भेद्य है, ये घन हमें भरपूर दे । उस उत्तम और भेद्य घनके सेनेवाले हव हो ।

७. हे इन्द्र ! त्वा दातं यत् मे हव्यं नास्ति, तत् उभयाहस्ती नः आ भर [ ११७२ ]- किं हाप विद यत् जो घन मेरे पास नहीं है, उन्हीं तू हमें दोनों हाथसे भरपूर दे ।

८. हे वसो शतक्रतो ! श्वं न पिता, त्वं माता बभूविष । अथ ते सुजं ईमते [ ११७० ]- हे निवासक और संकटों कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाले इन्द्र ! तू हमारा पिता और तू ही हमारी माता है, इसलिये हमसे हम कुछ मागते हैं ।

९. हे अद्रिय ! ते दिक्षु प्रसाधे ध्रुतं दृष्टं यत् मन अस्ति, तेन वदर चित् पाजं सारथे आर्चयि [ ११७४ ]- हे बलवती इन्द्र ! तिरा सब दिशाओंमें प्रसन्ननीय जो निजाल मन है । उस अपने मनसे जो घन दृष्ट हो गए हैं उसको भी हमारे बल बढानेके लिए हमें दे ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अघ्यायमें आया है ।

### अग्नि

१. तथ क्रतुभिः अमृतत्वं आचन [ ११४१ ]- प्रजगत यज्ञोंके द्वारा अमृतत्वको प्राप्त होयगा ।

२. वैश्वानरं अघ्नराणां रथं यक्षस्य केतुं देवाः जनयन्त [ ११४२ ]- विश्वका नेता, हितारहित यक्षकर्त्ता सत्पालक, उसके रथसे ऐसे सुम अग्निको देवाने उत्पन्न किया ।

३. यः आर्चिणा धिया यना परिप्यजत्, जिह्वा

रूपाणा करोति तं इदिव [ ११४५ ]- जो अपनी क्वालाते सब जगनोंको जला साकता है, और अपनी क्वालासे सब काला करता है, उस अग्निकी स्तुति कर ।

अग्नि अपनी प्वालाते जलको भस्म कर देना है, और जिस मायसे वह बनको जला वेला है, वहाँ वहाँ काला कर देता है । ऐसा वह अग्निसेव स्तुति करनेके योग्य है ।

४ अत्रसे चित्र-राघवं अग्नि हवामहे [ ११६८ ]- अपने सरभ्रमके लिए विलक्षण पराक्रम करनेवाले अग्निको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

५ दिव मूर्धनं पृथिव्याः भरति वैभानरं कते आज्ञां, कपि सञ्जातं जनातां अतिथिं आसन्, नः पार्श्वं वेधाः आ जनपन्त [ ११४० ]- धूलोके मल्लके स्वानवर रहतेवाले, पृथ्वीपर किरनेवाले, विश्वके नेता, यहाँके लिए उत्पन्न हुए, तानी और सजाट, लोगोंको और अतिथिके रूपमें जानेवाले, देवोंके युल और हमारे सरलक ऐसे अग्निको देवोंने उत्पन्न किया ।

इस प्रकार अजिज्ज वर्णन इस अध्यायमें लाया है ।

### इन्द्र और अग्नि

१ इन्द्र अग्नि च आ घोडये नः राजपतीः इषा, आशूः अर्धतः पितृत् [ ११५१ ]- इन्द्र और अग्निको देवोंकी और पशुवानेके लिए हमें बल बढ़ानेवाले अन्न और वस्त्र घोडे दो ।

ऐसे बैसे अन्न हमें नहीं चाहिए, अपितु बल बढ़ानेवाले चाहिए । घोडे भी ऐसे बंते नहीं, अपितु तेन घोडनेवाले और अत्यन्त बलक चाहिए । ॥॥ सत्य योजना यहाँ बेलने योग्य है ।

### मित्र और वरुण

इस अध्यायमें मित्र और वरुणकी भी पौडीली स्तुति आई है, जो इसप्रकार है—

१ मित्राय यदणाय मित्र मिश्रा गायत । मिहि शर्थाः क्रतं बृहत् [ ११४३ ]- मित्र और वरुणके लिए शत्रुओंको बड़ी आभाजते गात्रो । महान् बलोंको धारण करनेवाले मित्रायणो । यकमें तुम्हारी बड़ी स्तुति हो रही है, उसे सुननेके लिए आओ ।

२ उमा सप्रजा पृतपोनी वेया देयेषु प्रशस्ता [ ११४४ ]- मित्र और वरुण से दोनों ही महान् सजाट हैं ।

२१ [ साम हिवी भा २ ]

ये बल उत्पन्न करनेवाले देव हैं इसलिए वे पाव देवोंमें मायविक प्रशस्ति हैं ।

३ तान् दिव्यस्य पार्थिवस्य महः राघः शपनं, यान् देवेषु महि क्षाम्य [ ११४५ ]- वे मित्र और वरुण धूलोके और पृथिवीपरके सब महान् पवन देनेमें समर्थ हैं । तुम दोनोंके महान् साम्रज्य देवोंमें भी प्रसिद्ध है ।

४ शर्षाय वीतये मित्राय यदणाय यथाशतमं वृक्षसाधनं पुनाता [ ११५५ ]- बल बढ़ानेके लिए और देवोंको देनेके लिए तथा मित्र और वरुणको जितप्रकार आगब हो, उसप्रकार बल बढ़ानेके साथसाथ तीनोंको सुट्ट करो ।

### देवोंके लिए सोमरस

सोमरस यद्यपे निषोडते है, वह देवोंको दिया जाता है, यद्यपे पान करनेवाले पीते हैं । इस विषयमें पौडाता वर्णन इस प्रकार है—

१ स वायु, इन्द्र, अधिना मवेत् साके गच्छति [ १११४ ]- यह सोमरस वायु, इन्द्र, अधिना आदि देवोंके पास अपने स्वाभाविक आनन्दके साथ पहुँचता है ।

२ मध्येऽर्द्धमः मित्रे यदणे भगे पदम्ये [ १११५ ]- इस सोमरसकी सहर्द मित्र, वरुण और भग आदि देवोंके पास पहुँचती है ।

३ हे सोम । नमि, येमानः अद्रिमिः सुगः इन्द्रस्य कुशा प्र यादि [ ११६२ ]- हे सोम । ऋषिर्षी द्वारा वात्वरति कृत्वर निषोडा यवा तु इन्द्रसे देवमें जाता है ।

### सोम स्वर्गमें रहता है

१ इन्द्राय नः दिवस्थार धृतिं सुवीर्यं आ पयसा [ १११५ ]- सोमरस हमारे लिए स्वर्गलोके धृति और उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति लाता है ।

### सोमके गुण

१ वेधः [ १११६ ]- समरनेवासा, स्वर्गमें रहनेवाला ।

२ अहिप्रतः [ १११६ ]- महान् पाय करनेवाला ।

३ शुचि-यन्तुः [ १११६ ]- सुद्ध बन्धुके समान ।

४ पायकः [ १११६ ]- सुद्ध, पवित्र करनेवाला ।

५ यराहः [ १११६ ]- बलवान्, शितावर सारदार भयंसे निर्भरे पडे हैं ।

६ इन्द्रुः [ ११५२ ]- तेजस्वी ।

७ सखा [ ११५२ ]-मित्र, मित्रके समान हित करनेवाला ।

८ गायसाधनः [ ११५८ ]- पयःखात्पका मुख्य साधन, प्रका मुख्य साधन ।

९ देवाद्यः [ ११५८ ]- देवोंके देवत्वकी रक्षा करनेवाला ।

१० द्वािषावम् [ ११५८ ]- दो प्रकारके बल जिसके पास हैं । दिव्य और दार्थिक बल जिसके पास हैं ।

इसप्रकार इस सोमके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं ।

### सोमका चमकना

१ तिग्मशृंगः परीणसं कृणुते, दिपा हरिः द्युदो, नक्तं मृज्ज [ १११८ ]- यह सोम सोषण किरणोंसे प्रकाश करता है, दिनमें हरा बोलता है और रातमें चमकता है ।

### सोमके बल

सोमरसमें सामर्थ्य बढ़ानेका गुण है । इसीलिए उस रसको देव पीते हैं, और राजाओंका सहार करते हैं । सोमके ये बल केवमश्रीमें अनेक प्रकारसे वर्णित हैं । उनमेंसे कुछ स प्रकार हैं—

१ ते मयोभुवं धर्मं पातं पुरुस्पृहं दक्षं अथ आपृणीमहे [ ११३७ ]- हे सोम ! तेरे सुखवासी, इच्छ-स्थानपर पहुँचानेवाले, संरक्षण करनेवाले, बहुनीं द्वारा प्रशस्ति ऐसे बलोंको आज हम प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ।

२ मन्द्रं घरेण्यं धिर्मं मनीषिणं पातं पुरुस्पृहं आ धृणीमहे [ ११३८ ]- आनन्द बढ़ानेवाले, भेष्ट ज्ञानपूर्ण, बुद्धिपूव, संरक्षण करनेवाले, बहुनीं द्वारा चक्षुने योग्य ऐसे जो तेरे बल हैं उन्हें हम पानेकी इच्छा करते हैं ।

३ हे सुकतो ! रयिं सुचेतुनं तनूषु पातं पुरुस्पृहं आ धृणीमहे [ ११३९ ]- हे उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! पयः, उत्तम शाप, उत्तम पुत्रपौत्र, उत्तम संरक्षण और प्रशस्तीय बल हम तुमसे प्राप्त करें ऐसी इच्छा करते हैं ।

सोमरसमें ये गुण हैं । ये गुण हमारे अन्दर आधेँ और हृष जन गुणोंसे युक्त हैं ऐसी हमारी इच्छा है । हर एक जगति करनेवालेकी ऐसी ही इच्छा करनी चाहिए ।

सोमकी परंपरोंसे कष्टकर उसका रस निकालते हैं । उस रसमें पानी मिलाकर छाते हैं । इस सम्बन्धो वर्णन इस प्रकार है—

### सोमका पानीमें मिलाया जाना

१ चन्द्रः हविः मक्षीः अपः विषादते [ ११२९ ]-

अत्यन्त बन्दनीय सोम बहुत सारे पानीमें स्नान करता है । अर्थात् बहुतेरे पानीमें वह मिलाया जाता है ।

२ नृषः सत्यः अध्वरः सध्वं अभि घने अग्निप्रदत्त [ ११३० ]- बलवान् सत्यस्वरूप, हितारहित सोम पयः-शालामें पानीमें अन्न करता हुआ मिलाया जाता है ।

३ हरिः प्रियः घनेषु अव्या घारे परिसीदति [ ११३३ ]- हरे रगका प्रिय सोमरस पानीमें मिलाये जानेंके बाद भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है ।

ऐसा यह सोम पानीमें मिलाकर छाना जाता हुआ गोबिंदके घर्तनमें गिरता है, तब उसका शब्द होता है ।

### छानते समय सोमका शब्द

१ रेभन् पदा अभ्येति [ १११६ ]- सोम शब्द करते हुए पाममें गिरता है ।

२ सूरः अघं चितम्बते [ ११२३ ]- सोमरस शब्द करते हैं ।

३ वाजी सहस्रधारः अघं चारं तिरः प्राश्नाः [ ११६० ]- बलवान् सोम हजारों धाराओंसे भेड़के बालोंकी छलनीसे बीधे गिरता है ।

एक कलशमें जलमिश्रित सोमरस भरा जाता है । इससे कलशमें गुद पानी रहता है । उस इससे कलशके मुहपर भेड़के बालोंकी छलनी रखी जाती है और उस पर जल मिश्रित सोमरस डाला जाता है । इस वर यह सोमरस छन-छनकर गोबिंदके घर्तनमें गिरता है । गिरते समय उसकी आवाज होती है, यह आलसकारित वर्णन है ।

### गायके दूधमें सोमरस मिलाना

छाने हुए सोमको गायके दूधमें मिलाया जाता है—

१ घेनवः पयसा इत् अभि शिध्वयुः हरिं प्रीडन्त अभ्यनूतत [ ११२३ ]- गायें अपने दूधका मिश्रण इस-सोमरसके साथ करती हैं । सोखनेवाले हरे रंगके सोमको ये सुखोहित करती हैं ।

२ सहस्ररेताः अग्निः मृजानः गोभिः श्रीजानाः अक्षाः [ ११६१ ]- हजारों प्रकारके बलसे युक्त सोमरसमें पहले पानी मिलाया जाता है, फिर गायका दूध मिलाया जाता है । फिर यह रस घर्तनमें छाना जाता है ।

३ सोमास्तः गोभिः ध्येजते [ ११२१ ]- सोमरस गायके दूधसे सुखोहित होते हैं ।

इन रचनाओंमें “ गायका दूध ” न कहकर केवल “ गाय ”

कहा है, यह वेदकी धार्मिक भाषा है। सोम वायके साथ मिलया जाता है इसका अर्थ है कि सोमरस वायके रूपके साथ मिलाया जाता है।

### सोमके लिए बाजे

सोमरस निकालनेके समय जैसे मंत्र बोले जाते हैं, जैसे सामका पान किया जाता है, उसीप्रकार बाजे भी बजाये जाते हैं—

१ सखायः दुर्मये पवमानं वाणं साकं प्रवदन्ति [ १११७ ] वे ऋषि मित्र द्युमन्त्रोंके लिए अथवा ऐसे शुद्ध होनेवाले सोमके लिए “वाण” नामक बाजे बजाते हैं। सामगानके समय ये बाजे बजाये जाते हैं। “वाण” सम्भवतः एक वर्मवाद्य था। और अनेक ऋषि उस वाद्यकी सोमरस तैयार करनेके समय बजाते थे, ऐसा प्रतीत होता है।

### जयके द्वारा सम्पत्तिकी प्राप्ति

१ हे रोदसी ! मध्यः पाजस्य सातये असाकं रयिं ध्रुवः वसुनि संजितं [ १११६ ]— हे पाजामुविधी ! सोम-रूपी असाकी प्राप्तिके लिए हमें धन, भय और ऐश्वर्य, विजयकी प्राप्तिके बाद मिले। अर्थात् पहले हमारी विजय हो उसके पान हमें ऐश्वर्य भी प्राप्त हो।

### सोम अन्न देता है

१ नः संतव्यं पिबुषीं इवे उर्मिणा पक्ष्व, या [ १६ ] ध्रुमस्, पाजयस्, मधुमन् सुवीर्यं दाहते [ ११५४ ]— हमारे द्वारा लाये गए वीर्यके अन्नको हे सोम ! तू अपनी सहृदयि श्रद्धा कर, जो अन्न प्रसिद्ध मत्स्यरूपके और मधुरतामयित उत्तम बल देता है। जिससे वीर पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसा यह सोम शत्रु हार करता है।

### सोम शत्रु दूर करता है

१ पयमानः स्पृधाः यमिस्त्रिवि विराः राजा इव [ ११३२ ]— यह सोम प्रतापके पालन करनेवाले राजाके समान शत्रुकी हारता है।

२ विम्बाः दिशः अनु प्रभुः सामस्तु तथा हवामादे [ ११६७ ]— हे सोम ! तू सब दिशाओंके अनुकूल रहनेवाला प्रभु है। इसलिये पुरुषों सहस्रवारोंके लिए हम तुझे बुलाते हैं। इस प्रकार सोमका वर्णन हम अत्यामय है।

## सुभाषित

१ काव्यं युवाणः देवः देवानां जनिमा विवसि [ १११६ ]— काव्योंका कहनेवाला सोमदेव अन्य देवोंके जन्मके दूतान्त कहता है।

२ सखायाः दुर्मये पवमानं वाणं साकं प्रवदन्ति [ १११७ ]— वे मित्र द्युमन्त्रोंकी अथवा तथा शुद्ध होनेवाले सोमके लिए वाण नामक बाजा बजाते हैं। अनेक लोग मिलकर बाजे बजाते हैं।

३ दिवा हरिः ददुसे, नक्तं क्षत्रः [ १११८ ]— सोम दिनमें हरे रंगका वीरता है और रातमें चमकता है।

४ रथाः इव, अर्यन्तः न श्रवश्यन्तः राये प्राक्नुः [ १११९ ]— रथ भीरु घोड़े यशस्वी इच्छा करते हुए घन प्राप्तिके लिए पराक्रम करते हैं।

५ प्रजस्तिभिः राजानः न गोभिः अज्जते [ ११२१ ]— स्तुतिवर्षोंके जितप्रकार राजावर्ण गोमित होते हैं, उसीप्रकार वायके रूपमें सोमरस सुखीभित होते हैं।

६ धर्मन् अतस्य पथा अयुधम् [ ११२८ ]— धर्मके समान सत्यके मार्गमें वे जाते हैं।

७ पयमानः स्पृधाः विराः राजा इव यमिस्त्रिवि [ ११३२ ]— सोमरस स्वर्ण करनेवाली प्रजापति राजाके समान शत्रुओंको मध्य करता है।

८ रोदसी अस्मभ्यं रयिं ध्रुव वसुनि संजितं [ ११३६ ]— पुत्रोंके और पृथ्वीके हमारे लिए धन, वन, ऐश्वर्य तथा जल प्राप्त करवें।

९ हे सोम ! ते मयोमुये पान्तं पुदस्पृहं दक्षं अद्य आयुषीमहे [ ११३७ ]— हे सोम ! तेरे मुखवाणी, संरक्षण करनेमें समर्थ तथा बहुतों द्वारा प्रशंसिते योग्य, बलकी हय इच्छा करते हैं।

१० हे सोम ! मय्यं वरेण्यं, विमं मनीषिणं पातं पुनस्पहे आ [ ११३८ ]— हे सोम ! आनन्द देनेवाले, धैर्य, जागी, मननशील, संरक्षक और बहुतों द्वारा चाहने योग्य ऐसे तेरी हय मर्षित करते हैं।

११ हे सुकतो ! रयिं सुचेतनं तनुषु पान्तं पुनः स्पृहं आ [ ११३९ ]— हे उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! धन, उत्तम हान, पुत्रवत् तथा संरक्षणकी प्राप्तिने लिए बहुतों द्वारा जिसकी स्तुति होगी है ऐसे इस सोमकी प्रार्थना हम करते हैं।

१२ यां देवेषु महि क्षत्र [ ११५५ ]- तुम्हारी देवों में महान् श्रेष्ठोत्तरता है।

१३ नः पाजयतीः इय आशन्न अर्पतः पिपुतं [ ११५६ ]- हमें तब जवानेवाले अथ और बचल घोड़े से।

१४ सखा सत्युः संमिदं न प्रमिनाति [ ११५७ ]- मित्र मित्रको कष्ट नहीं देता।

१५ मर्यः युयसिभिः [ ११५८ ]- पुण्य शिखों के साथ मानवसे रहता है।

१६ नः संयतं पिप्युपीं इपं ऊर्मिणा पवस्व [ ११५९ ]- हमें पोषक अन्न अपनी लहरों से दे। भरपूर दे।

१७ क्षुमन् पाञ्चमन् मधुमन् सुवीर्यं वोहते [ ११६० ]- मोम प्रतिष्ठ, बलवर्धक तथा मधुरतायुक्त धन देता है।

१८ सदाबुधं धिग्बुधं श्रग्भुलं भोजता जघृष्टं भृष्ट्य इन्द्रं कर्मणा तकिः नदात् [ ११६१ ]- तथा बड़ानेवाले, प्रसन्ननीय, बहान्, अपनी शक्तिसे न हारनेवाले पर शत्रुओंको हारानेवाले इन्द्रको अपने प्रयागसे कोई भी नहीं हरा सकता।

१९ अपाज्जं उर्मं पूतनासु सासाहिं इन्द्रं [ ११६२ ]- शत्रुको हरावेवाले, उपवीर और युद्ध में विजयी इन्द्रको से लुपि करता है।

२० सदाया मा निर्गदत, पुनानाय प्रमायत [ ११६३ ]- दे मित्रों। आसी, बीडी और दुष्ट होनेवालेकी प्रशंसा करो।

२१ विभवाः विशाः अनु प्रमुः समस्तु इवा हवा-महे [ ११६४ ]- तब विशाओंमें तू श्रेष्ठोत्तरता है, इतलिय मुझे युद्ध में सहायताके लिए हम बुलाते हैं।

२२ तमसु पाजयन्तः अपसे पाजेषु चित्रराघवं अहिं हवामहे [ ११६५ ]- युद्ध में बलका उपयोग करनेवाले हम सधाममें अपने संरक्षणके लिए बिलक्षण पराक्रम करनेवाले अजयोंकी सहायताके लिए बुलाते हैं।

२३ हे दातयतो विचर्यणे इन्द्र ! नः नृप्यं भोजः आभर, पुनतासहिं वीरं वा [ ११६६ ]- हे संजनों के करनेवाले शत्रु ! हमें पोषकयुक्त बल भरपूर दे और युद्ध में शत्रुको हरावेवाला पुत्र दे।

२४ हे यमो दातयतो ! त्वं नः पिना, त्वं माता पभृति। अथ ते सुमनं ईमहे [ ११६७ ]- हे निवाता इन्द्र ! तू हमारा पिता और तू हमें हमारी माता है, हमलियु तरे पाग पुत्र मांगने हैं।

२५ सहस्रस्त नृप्यिन् पुरुषतः वाजयन्तं त्वां उपबुधे । नः सुवीर्यं राख [ ११६८ ]- हे बलके लिये प्रतिष्ठ और सामर्थ्यवान् तथा सभीके द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! बलसे युक्त तेरी ह्मा स्तुति करते हैं, तू हमें उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य दे।

२६ हे विद्वत्सो ! हे अद्रियः शिख इन्द्र ! तत् जमया हस्ती नः आभर [ ११६९ ]- हे घनवान्, पक्षपारी, बिलक्षण और बलवान् इन्द्र ! वे घन दोनों ही हाथसे हमें भरपूर दे।

२७ हे इन्द्र ! यत् सुखं धरेष्य मयसे तत् आभर [ ११७० ]- हे इन्द्र ! जिसे तू क्षेपस्वी और बाहने पोष्य मानता है, उसे हमें भरपूर दे।

२८ ते वयं तस्य अकृपारस्य दायतः पिपाम [ ११७१ ]- वे हम उस उत्तम धनके दानको लेनेकी इच्छा करते हैं।

२९ हे अद्रियः ! ते दिक्षु प्रारथ्यं श्रुतं वृत्त मनः अस्ति, तेन वृद्धा धिक् पाजं सातये आदियं [ ११७२ ]- हे बलपारी इन्द्र ! तेरा माना विताओंमें जानेवाला प्रतिष्ठ और विनाश धन है। उस धनसे कठिनातसे मिलनेवाले धनोंकी भी बल बढ़ानेके लिए हमें दे।

## उपमा

अब इस अध्यायमें आयी हुई उपमाओंको देखिए—

१ उदना इय [ १११६ ]- उदना ऋषिसे समान ( काभ्यं भ्रुवाणाः ) कवि काव्योंको बोलता है।

२ रथाः इय अर्धगतः न [ १११७ ]- रथ और घोड़ोंसे समान ( अयस्य सासातः रोये प्राश्रमुः ) यद्यपि इच्छा करनेवाले लोगरस धन पानेके लिए प्रसन्न करते हैं।

३ रथा इय [ ११२० ]- युद्ध में जानेवाले रथके समान ( हिन्यानामः गमस्पोः द्यपिरे ) प्रेरित हुए हुए लोगरस हाथमें धारण किए जाते हैं। घोड़ेके लिए लोगरस हाथमें पकड़े जाते हैं।

४ अपाजः कारिणां इय [ ११२० ]- भार उठाकर से जानेवाले यन्त्रारोहों हाथीपर जितप्रकार बोत उठाकर दवा जाता है, उनीयकार लीमवाच लीम पीनेके लिए हाथीके उठावे जाते हैं।

५ प्रशस्तिभिः राजानः न [ ११२१ ]- स्तुतिपति  
 भंते राजा खुश होते हैं, उसीप्रकार सोमरत्न (गोमिः  
 अंजते ) गायके द्वयसे सुशोभित होते हैं ।

६ सात धादभिः यम न [ ११२१ ]- सात ऋत्विजों द्वारा जंते यम सिद्ध होता है, उसीप्रकार सोम गायत्रे दूधसे सिद्ध होता है।

७ दिनांक [ १९४१ ]- लइकेकी जैसे उसरी भासा देलभास करतो है, उत्तोमकर ( जायमान त्यां अग्नि ) नये जलाये गए उस अलिकी प्रत्येक देलभास करते हैं ।

८ शिशुन [११५७]- बालकको जैते पिता भाग्यवशो  
सजाता हैं, उसीप्रकार श्रुतिबन्ध ( धर्म, धर्म्ये परिभूषण )  
यशोते धर्मिकी शोभा बढ़ाते हैं ।

९. मर्यः युवतिभिः इव [११५२]—पुरुष जंते स्त्रियः  
साय आनन्दसे रहता है, उसीप्रकार (सोमः स्वमर्यति)  
सोम पानोके साथ रहता है।

१० प्रश्न न [ ११५५ ]- दशका जेंतें लोग (यहो: खकार) यतोति सकार करते हं, उतोप्रकार सोमका भी सकार यतोति करते हं ।

११ मार्च, जससे न [ ११५८ ]- माताओं के साथ जिस प्रकार सङ्घर्ष होता है, उसी प्रकार ( ई जमि सं-रक्षित ) इस सोमकी जलों के साथ मिलानो।

१२ विश्व राजा हय [ ११३२ ]-प्रजाशोका राजा  
जैसे प्रायः सभी दूर करता है, उसीप्रकार (पयमानः स्पृध-  
मभि स्वीदति) सीमा प्रायः शोका दूर करता है।

अष्टमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

નંબર	પ્રશ્ન	જવાબ	કેવળ	કુલ
		( ૧ )		
૧૧૧૬	૬૧૭૭૭	શુભગણી વાસિષ્ઠ	૧૧૭૭૭	૧૧૭૭૭
૧૧૧૭	૬૧૭૭૮	શુભગણી વાસિષ્ઠ	૧૧	૧૧
૧૧૧૮	૬૧૭૭૯	શુભગણી વાસિષ્ઠ	૧૧	૧૧
૧૧૧૯	૬૧૮૦૧	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧૧૯
૧૧૨૦	૬૧૮૦૨	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૨૧	૬૧૮૦૩	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૨૨	૬૧૮૦૪	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૨૩	૬૧૮૦૫	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૨૪	૬૧૮૦૬	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૨૫	૬૧૮૦૭	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૨૬	૬૧૮૦૮	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૨૭	૬૧૮૦૯	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
		( ૨ )		
૧૧૨૮	૬૧૮૧૦	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૨૯	૬૧૮૧૧	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૩૦	૬૧૮૧૨	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૩૧	૬૧૮૧૩	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૩૨	૬૧૮૧૪	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧
૧૧૩૩	૬૧૮૧૫	અસિત કાશ્યપો દેવભી વા	૧૧	૧૧



मन्त्रस्थान	आवेदस्थान	ऋषि	देवता	छन्द
११३३	९१७६	असित काश्यपो देवलो वा	ववमान सोम	गायत्री
११३४	९१७७	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११३५	९१७८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११३६	९१७९	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११३७	९१८०	भृगुर्वाचिर्जमदग्निर्वाग्वि वा	"	"
११३८	९१८१	भृगुर्वाचिर्जमदग्निर्वाग्वि वा	"	"
११३९	९१८२	भृगुर्वाचिर्जमदग्निर्वाग्वि वा	"	"

( ३ )

११४०	९१८३	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	असित	त्रिष्टुप्
११४१	९१८४	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
११४२	९१८५	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
११४३	९१८६	यजत आग्नेय	निशाचरणी	शायत्री
११४४	९१८७	यजत आग्नेय	"	"
११४५	९१८८	यजत आग्नेय	"	"
११४६	११८९	मधुचन्द्रा बंधवामित्र	दृग्	"
११४७	११९०	मधुचन्द्रा बंधवामित्र	"	"
११४८	११९१	मधुचन्द्रा बंधवामित्र	"	"
११४९	९१९२	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
११५०	९१९३	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"
११५१	९१९४	भरद्वाजो बार्हस्पत्य	"	"

( ४ )

११५२	९१९५	निषता निषाचरी	ववमान सोम	अगती
११५३	९१९६	निषता निषाचरी	"	"
११५४	९१९७	निषता निषाचरी	"	"
११५५	८१७०३	गुह्यमा आगिरत	दृग्	अगत्य = ( विपत्तं ब्रूही, सप्त सतो ब्रूही )
११५६	८१७०४	गुह्यमा आगिरत	"	"

( ५ )

११५७	९१९८	ववतनारदो वाग्वि, निषिष्टिमाय	ववमान सोम	उरिगङ्ग
११५८	९१९९	ववतनारदो वाग्वि, निषिष्टिमाय	"	"
११५९	९२००	ववतनारदो वाग्वि, निषिष्टिमाय	"	"
११६०	९२०१	अग्नेये विष्णो एदवरा	"	द्विपरा विराट्

संक्रांश्या	श्रावेदसंक्रा	श्रविः	वेवता	छन्दः
११६१	५१०५१७	अनये धिष्यो ऐऽवराः	पथमानः सोमः	द्विपरा विरःद्
११६२	५१०५१८	अनये धिष्यो ऐऽवराः	"	"
११६३	५१५११९	भुगुर्वांसिर्जमहन्निर्भाग्यो वा	"	गायत्री
११६४	५१५१२०	भुगुर्वांसिर्जमहन्निर्भाग्यो वा	"	"
११६५	५१५१२१	भुगुर्वांसिर्जमहन्निर्भाग्यो वा	"	"

( ६ )

११६६	८१११३	वसतः काण्वः	अतिवः	"
११६७	८१११४	वसतः काण्वः	"	"
११६८	८१११५	वसतः काण्वः	"	"
११६९	८१११६	नृमेघ आगिरसः	इन्द्रः	ककुप्
११७०	८१११७	नृमेघ आगिरसः	"	"
११७१	८१११८	नृमेघ आगिरसः	"	पुर उरितः
११७२	५१११९	अग्निर्धौमः	"	अनुष्टुप्
११७३	५११२०	अग्निर्धौमः	"	"
११७४	५११२१	अग्निर्धौमः	"	"



## अथ नक्षत्रमोऽध्यायः ।



अथ पञ्चममण्डके प्रथमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ प्रसर्वनो वैशोवातिः; २, ३, ४ अश्लिः काश्यपो देवलो वा; ५, ११ उषध्य आगिरसः; ६, ७ अमही-  
मुरागिरसः; ८, १५ निभूभिः काश्यपो; ९ अश्लिषो वैशोवातिः; १० सुकस आगिरसः; १२ कविर्गामिः; १३ वैशोवातिः  
काश्यः; १४ अश्लिः प्रागायः; १६ अमहीरो वार्यागिरः अश्लिषा भारद्वाजस्य; १७ अमहीरो विषया ऐश्वर्यः; १८ अमही-  
काश्यः; १९ नृमेघ आगिरसः; २० जेता माघुच्छन्दसः ॥ १-८, ११-१२, १५-१७ पवमानः सोमः; ९, १८  
अश्लिः; १०, १३, १४, १९-२० इन्द्रः ॥ १-९ विष्टुः; २-८, १०-११-१५, १८ माघनी; अगती १३,  
१४ प्रागाय = ( विषया बृहती, समा सतीबृहती ); १६-२० अनुष्टुप्; १७ छिपया विराट्; १९ उग्नित् ॥

११७५ शिष्टं ज्ञानं हर्षतः सृजन्ति क्षुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणनं ।  
कविर्गामिः काश्येना कविः सन्सोमः पवित्रमस्येति रमेन् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९६।१० )

११७६ आपिमना य अश्लिःस्थपोः महसनीयः पदवीः कवीनाम् ।  
सुरीयं धाम महिषः सिपासन्सोमो विराजमानु राजति स्तुप् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९६।१८ )

११७७ चमूपच्छयेनः छकुनो विभृन्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि विभ्रत् ।  
अपामूर्मिः सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ ३ ॥ १ ( छु ) ॥  
[ धा० १४ । उ० मालि । २४० ९ ] ( ऋ. १।९६।१९ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ११७५ ] ( ज्ञानं शिष्टं ) अभी अभी उत्तम होनेके कारण वास्तवके सधान रहनेवाले ( हर्षतः ) सबके द्वारा  
पूज्य इस सोमके ( अष्टतः सृजन्ति ) मरुत ब्रह्म करते हैं । ( क्षुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणनं ) सत्त संस्थाके इस ब्रह्मवर्चक सोमको  
मुनीभक्त करते हैं, उसके द्वारा ( कविः सोमः काश्येन ) यह जानी सोम स्तोत्रके काश्येति ( कविः गामिः ) जो हवति  
प्रारम्भ हुई है, उसे सुनते हुए ( रमेन् पवित्रमस्येति ) श्रद्धा करते हुए छलनीके छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ११७६ ] ( आपि-मना ) अश्लिने सभान भवनामा ( अश्लि-कृत ) अश्लिषोको, बनानेवाला ( पदवीः सचमान-  
नीयः ) सबका सेवन करनेवाला, हुआरों स्तुतिमेंलि प्राप्तिय ( कवीनां पदवीः ) कविओ क्षोण्यताको प्राप्त हुआ हुआ  
( धाः सोम ) जो सोम है वह ( महिषः ) अमल पूज्य ( तुरीयं धाम विषयाम् ) सोमके धाममें रहनेवाले और  
( स्तुप् ) स्तुत्य होकर ( विराजं अनु विराजति ) विशेष तेजस्वी बने हुए इन्द्रको और अधिक प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

[ ११७७ ] ( चमूपच्छयेनः ) बलशाली रहनेवाला अश्लिनीय ( छकुनः ) शक्तिमान् ( विभृन्वा ) मति करनेवाला  
( गो-विन्दुः ) गाय प्राप्त करनेवाला, गायके रूपमें मिलाया जानेवाला ( द्रप्सः ) बहनेवाला ( अपां ऊर्मिं समुद्रं  
प्रथमानः ) अपने लहरोंके समुद्रमें मिलाया जानेवाला ( आयुधानि विभ्रत् ) शस्त्रोंने धारण करनेवाला ( मतिः )  
यह बलवान् सोम ( तुरीयं धाम विषयित ) अनुर्थ पापमें रहता है, उसे स्थानमें विराजता है ॥ ३ ॥

- ११७८ एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममधुरन् । वर्षन्तो अस्य धीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८।१ )
- ११७९ पुनानासश्चमृषदो गच्छन्तो वायुमग्निना । ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८।२ )
- ११८० इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हादि चोदय । देवानां यानिमासदम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।८।३ )
- ११८१ मज्जन्ति स्वा दक्ष क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।८।४ )
- ११८२ देवेभ्यस्त्वा मदाय क२ सृजानमवि मेधयः । सं गोमिर्वासयामसि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।८।५ )
- ११८३ पुनानः कलशेषा यज्ञाभ्यवृषो हरिः । परि गन्धान्यव्ययत ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।८।६ )
- ११८४ मघोन आ पवस्व नो जाहि विश्वा अप द्विषः । इन्द्रो सत्तापमा विश ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।८।७ )
- ११८५ नृचक्षुर्से स्वा यमिन्द्रपीत२ स्वविदम् । मग्नीमहि प्रजामिपम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।८।८ )
- ११८६ वृष्टि दिवः परि सप्त धुमं पृथिव्या अभि । सहो नः सोम पूरुसु धाः ॥ ९ ॥ २ ( वि ) ॥
- [ भा० १९ । उ० १ । ख० १३ ] ( ऋ. ९।८।८ )

॥ इति प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

[ ११७८ ] ( एते सोमा ) ये सोमरस ( अस्य धीर्यं वर्षन्तः ) इत इन्द्रका सामर्थ्य बढाते हुए ( इन्द्रस्य कामं मिथं ) इन्द्रको प्रिय लगनेवाले रसको ( सं अभि आसुरन् ) बुद्धि करते हैं, रस पीनेके बलसे छपकर मिरता है ॥ १ ॥

[ ११७९ ] हे ( पुनानासः चमृषदः ) छने और बलसे रखे हुए सोमरसो ! ( वायु मग्निना गच्छन्तो ) वायु और अग्निबोको प्राप्त होकर ( ते ) वे तुम ( न सुवीर्यं धत्त ) हमें उत्तम बोरता दो ॥ २ ॥

[ ११८० ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनान ) छाया जाता हुआ तु ( इन्द्रस्य राधसे ) इन्द्रकी आराधनाके लिए ( हादि चोदय ) हृदयोंको प्रेरित कर । मैं ( देवानां यानि आ सदे ) देवोंके यज्ञरथानमें आकर बैठ गया ॥ ३ ॥

[ ११८१ ] हे सोम ! ( दक्ष क्षिपः मज्जन्ति ) तुमने वत अंशुलिपा मृद करती है । ( सप्तधीतयः हिन्वन्ति ) सात होतारण तुमने समुष्ट करते हैं, ( विप्राः अनु अमादिषु ) शानी तेरा अनुसरण करते तुमने प्रसभ करते हैं ॥ ४ ॥

[ ११८२ ] हे सोम ! ( मेधयः अति सृजानं ) बालोंकी छलनीसे छाया जानेवाले तुमने ( देवेभ्यः मदाय ) देवोंको जानबूझ के देनेके लिए ( गोमिः संवासयामासि ) गायके रूपमें मिलाते है ॥ ५ ॥

[ ११८३ ] ( पुनानः ) मृद होकर ( कलशेषा आ ) कलशमें आकर रहनेवाला ( अरुधः हरिः ) चमकनेवाला हरे रंगका सोम ( गन्धानि यज्ञाणि धरि अज्यत ) वायुके धस्त्रोंको पहनता है । अर्थात् वायुके रूपमें मिलाया जाता है ॥ ६ ॥

[ ११८४ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( मघोनः जः ) बनते हुए हमारे लिए ( आ पवस्व ) छपता जा । ( विश्वा द्विषः अप जाहि ) सप्त यज्ञबोको नष्ट कर ( सत्तापमा विश ) और अपने निज इन्द्रके पैदमें प्रविष्ट हो जा ॥ ७ ॥

[ ११८५ ] हे सोम ! ( नृ-चक्षुः ) मनुष्यका निरीक्षण करनेवाले ( इन्द्र-पीतः ) इन्द्रके द्वारा पिये जाने योग्य तथा ( स्वविदं स्वां ) सबकी जाननेवाले तुमने प्राप्त करके ( ययं प्रजां ह्यं मग्नीमहि ) सन्तान और अन्न प्राप्त करे ॥ ८ ॥

[ ११८६ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( दिवः पृष्टि परिरुष ) धूलोको बुद्धि कर । ( पृथिव्या अभि पुंरं ) पृथिवी पर अन्न उत्पन्न कर । ( धूमं नः सहो धाः ) सधाममें उपजोको होनेवाले सामर्थ्य हमें दे ॥ ९ ॥

॥ यथां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

- ११८७ सोमः पुनानो अपति सहस्रधारो अत्यविः । वायोऽरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥ ( ऋ. ९।१।१ )
- ११८८ पवमानपदस्त्वो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाण देववीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।२ )
- ११८९ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१।३ )
- ११९० उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । घुमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१।४ )
- ११९१ अत्या हियाना न हेतुभिरसुग्रे वाजसातये । वि वारमन्यमाश्रुवः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१।५ )
- ११९२ ते नः सस्त्रिण रयि पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१।६ )
- ११९३ वाश्वा अपन्तीन्दवोऽभि वरुत न मातरः । दधन्यरे गभस्तयोः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१।७ )
- ११९४ जुष्ट इन्द्राय भस्तरः पवमानः कनिमदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।१।८ )

[ २ ] द्वितीया खण्डः ।

[ ११८७ ] ( सहस्रधारः ) हजारों धारामें ( अति अतिः ) बालोंकी छलवीले ( पुनानः सोमः ) छापा जानेवाला सोम ( वायोः इन्द्रस्य ) बापु और इन्द्रके पीनेके लिए ( निष्कृते ऊर्जति ) बर्तनमें जाता है ॥ १ ॥

[ ११८८ ] हे ( अत्यव्ययः ) अपने शरणागतको इच्छा करनेवाले उद्याता आदि पाशकी । तुम ( पवमानं विप्रं ) श्रुत होनेवाले, शानी ( देववीतये सुष्वाण ) शैवीके पीनेके लिए छावे जानेवाले सोमके सिद्ध ( अभि ॥ गायत ) पत्रोंका गान करो ॥ २ ॥

[ ११८९ ] ( वाजसातये ) अन्नदान करनेके लिए ( गृणानाः ) प्रशंसित होनेवाले ( सहस्र-पाजसः सोमाः ) हजारों प्रकारके बल बढ़ानेवाले से सोमरस ( पवस्व ) श्रुत किए जाते हैं ॥ ३ ॥

[ ११९० ] हे ( इन्दो ) सोम । ( घुमत् सुवीर्यं पदस्य ) तेजस्वी और उत्तम शायक्य हमें दे । ( उत ) और ( वाजसातये ) अन्नदान करनेके लिए ( बृहतीः इयः ) बृहत्तमा अन्न हमें दे ॥ ४ ॥

[ ११९१ ] ( वाजसातये हियानाः ) शत्रुमर्कके सिद्ध प्रेरित हुए हुए सोमरस ( आश्रुवः नः ) शीघ्रगामी घोड़ेके सामान ( हेतुभिः ) शक्तिभक्तके द्वारा ( अत्या हियां पि अति अवसुग्रे ) बालोंकी बनी छलवीले छावे जाते हैं ॥ ५ ॥

[ ११९२ ] ( ते स्वानाः देवासः इन्दवः ) ये निम्नोच्च गए दिव्य सोमरस ( नः सस्त्रिण रयि सुवीर्यं भा पवन्ता ) हमें हजारों प्रकारके धन और उत्तम शायक्य देवें ॥ ६ ॥

[ ११९३ ] ( वाश्वाः इन्दवः ) शत्रु करनेवाले सोम ( मातरः दधन्यरे नः ) गायें जैसी बछड़ेके पाल जाती है, उसी प्रकार ( अभि अपन्ति ) कलत्रमें जाते हैं और ( गभस्तयो दधन्यरे ) हाथीने धारण किए जाते हैं ॥ ७ ॥

[ ११९४ ] सोम ( इन्द्राय जुष्टः ) इन्द्रकी विद्या जाना है, हे सोम । बहुत ( भस्तरः पवमानः ) मानव देने-वाला और छापा जानेवाला ( कनिमदत् ) शब्द बरते ॥ ( विश्वाः द्विषः अप जादि ) सब शत्रुओंको नष्ट कर ॥ ८ ॥

११९५ अपमन्तो अराग्णाः पवमानाः स्पर्द्धन्तः । योनान्वृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ ३ ( दृ ) ॥  
[ धा० ३९ । उ० ३ । २३० ६ ] ( ऋ. ९।११९ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

११९६ सोमा अमुप्रमिन्दवः सुता श्रवस धारया । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१२।१ )

११९७ अग्निं विभ्रा अमृषत गावां वरसं न धेनवः । इन्द्रश्च सोमस्य पीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१२।२ )

११९८ मदच्युस्त्रेवि सादने सिन्धोरूमां विपश्चित् । सोमो गीरी अवि श्रितः ॥ ३ ॥

( ऋ. ९।१२।३ )

११९९ दिवो नामा विचक्षणेऽग्न्या वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१२।४ )

१२०० यः सोमः कलशेषा अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि वस्त्रजे ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१२।५ )

१२०१ म वाचमिन्दुरिषति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुक्षुतम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१२।६ )

१२०२ नित्यस्तोमो वनस्पतिर्धेनामन्तः सपर्दुषाम् । हिन्वानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१२।७ )

[ ११९५ ] हे ( पवमानाः ) सोमो ! ( अ-च्युस्यः अपमन्तः ) वान न वैदेवति शत्रुवीर्य मास करति हृत्पथा ( स्वः-हृदयः ) अपने तेजसे चमकते ॥ सुम ( श्रुतस्य योमो सीदत ) वरसे ल्यावपर वंशो ॥ ९ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ११९६ ] ( श्रवस्य सुताः ) वरसे लिए तैय्यार किये गए ( मधुमत्तमाः इन्द्रायः ) बहुत पीठे गीर सेजवाही ( सोमाः ) सोमरस ( इन्द्राय धारया अमुप्रं ) इन्द्रके लिए पारते छनते आते हैं ॥ १ ॥

[ ११९७ ] हे ( विभ्राः ) श्रुतिनी ! ( सोमस्य पीतये ) सोम पीनेके लिए ( इन्द्रं अग्निं अमृषत ) इन्द्रकी सेवा करो । ( धेनवः गावाः वरसं न ) दुग्धाव गायें जितप्रकार अपने मछवैकी सेवा करती हैं, उसीप्रकार ॥ इन्द्रकी सेवा करो ॥ २ ॥

[ ११९८ ] ( मदच्युस्त्रेवि सादने ) आलग्न करनेवाला सोम ( स्वदने स्त्रेति ) वनस्पतियें गिरावा करता है, ( सिन्धोः ऊर्मो विपश्चित् ) वंशे महीके तरावोंमें यह आसी सोम रहता है, उसीप्रकार यह ( गीरी अपिश्रितः ) गाववासी भी रहता है । छलनीमें शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

[ ११९९ ] ( यः ) जो ( सुक्रतुः कविः विचक्षणाः ) उत्तम वत करनेवाला, बहुत ज्ञानी वह ( सोमः ) सोम है, वह ( दिवः नामा ) अन्तर्दिशिसे नामिने समान ( अदया वारे महीयते ) बालोंको छलनीके ऊपर मधुत्वगली होता है ॥ ४ ॥

[ १२०० ] ( यः सोमः ) जो सोम ( कलशेषा अन्तः ) कलशोंमें ( पवित्रे अग्न्यः आहितः ) छलनीके बीचमें रखा हुआ है, ( तं इन्दुः परिपश्यति ) उस सोमकी बल स्पर्श करे ॥ ५ ॥

[ १२०१ ] ( इन्द्रः ) सोम ( मधुक्षुतं कोशं जिन्वन् ) गीररस जिसमें टपकता है उस वरतनको घूरा भर देता है ॥ ( समुद्रस्य अधि विष्टपि ) जमके आसप स्नान पर ( यावत् म इत्यति ) जाकर करता हुआ आता है ॥ ६ ॥

[ १२०२ ] ( नित्यः स्तोमः वनस्पतिः ) नित्य जिसकी स्तुति की जाती है वंश वनस्पतियों सोम ( मानुषा युजा हिन्वानाः ) मनुष्योंकी संगठन करनेके लिए प्रेरित करता हुआ ( सपर्दुषाम् ) वरसे बोधे वधवा बोधनेवालेके ( आन्तः धेनो ) अन्त करणमें रहनेवाली स्तुतिसे स्वीकार करे ॥ ७ ॥

१२०३ आ पवमान भारया रमिः सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाधुवम् ॥८॥ ( ऋ. २।१।९ )

१२०४ अमि प्रिया दिवः कविनिप्रः स धारया सुतः । सोमो हिन्वे परावति ॥९॥ ४ ( मे ) ॥  
[ पा० ४० । उ० ४ । स्व० ७ ] ( ऋ. २।१।८ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१२०५ उत्तै शुपमास ईरतै सिन्धोरुर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥ ( ऋ. २।१०।१ )

१२०६ प्रसवै त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥ ( ऋ. २।१०।२ )

१२०७ अद्या वारैः परि प्रियः हरिः हिन्वन्त्यग्निभिः । पवमानं मधुस्तुवम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. २।१०।३ )

१२०८ आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. २।१०।४ )

१२०९ स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अकतुभिः । एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५ ॥ ५ ( का ) ॥  
[ पा० ३१ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. २।१०।५ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ १२०३ ] हे ( पवमान इन्दो ) पुत्र ह्रीनेवाले सोम ! ( सहस्रवर्चसं स्वाधुवम् ) सहस्र तीर्थांते युक्त अयना पर तथा ( रमि ) यत्न ( अस्मे धारय ) हर्षे है ॥ ८ ॥

[ १२०४ ] { कविः सुतः } तानी सोमरत्न ( परावति विप्रः सः ) अष्ट स्थानमें रहनेवाले तानीके समान ( धारया ) अथवा धारते ( दिवः प्रिया ) युक्तीकृते प्रिय स्थानकी ओर ( अमि हिन्वे ) प्रेरणा करता है ॥ ९ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १२०५ ] हे सोम ! ( सिन्धोः ऊर्मैः स्वनः इव ) समझकी सहस्रोंका धारके समान ( ते शुपमासः उत्त ईरते ) तेरे वेगसे बहनेकी आवाज निकलती है । ऐसा तू ( वाणस्य एषि चोदय ) वाण नामक दाबके समान धार कर ॥ १ ॥

[ १२०६ ] ( ते प्रसवे ) तेरी उत्पत्ति होनेके बाद ( मखस्युवः तिस्रः वाचः उत्त ईरते ) मत करनेवाले ऋषिब्रज ऋषिदः, यजुर्वेद और सामवेदके अंग बोलने लगते हैं । ( यत् सानवि अद्ये एषि ) तब तू ऊँचे स्थानपर रहे हुए बालोंकी बनी छत्रोमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२०७ ] { प्रियं हरिः } प्रिय और हरे रंगके ( अग्निभिः ) पाषाणों द्वारा कूटे गए ( मधुस्तुतं-पवमानं ) भीडे सोमरत्नको छाननेवाले ऋषिब्रज ( अद्याः वारैः परि हिन्वन्ति ) अष्टके बालोंकी बनी छत्रोमें छानते हैं ॥ ३ ॥

[ १२०८ ] ( मदिन्तम कवे ) हे परम हर्षे बढानेवाले सोम ! ( अर्कस्य योनिं आसदम् ) इन्द्रके देवमें जानेके लिए ( पवित्रं धारया आ पवस्व ) छत्रोमें धार बाँधकर छत्रता जा ॥ ४ ॥

[ १२०९ ] हे ( मदिन्तम ) मान्य होनेवाले सोम ! ( अकतुभिः गोभिः अञ्जानः ) तेराकी, गायके रूप भाँरे परावर्ति साव मिलकर ( पवस्व ) छत्रता जा और ( इन्द्रस्य जठरं आ विश ) इन्द्रके देवमें जा ॥ ५ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

१२१० अया, वीवी परि स्रव यस्त इन्दो मदेन्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१।१ )

१२११ पुरः सय इत्याधिषे दिवोदासाय शंवरम् । अथ त्वं सुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।१।२ )

१२१२ परि पो अथमसविहोमदिन्द्रो हिरण्यवत् । क्षरा सवसिपीरिषः ॥ ३ ॥ ६ ( हि ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । ६० ३ ] ( ऋ. १।६।१।३ )

१२१३ अपमन्यवत्ते सुषोऽप सोमो अराज्यः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१।२९ )

१२१४ महा नो राय आ भर पवमान जहो मृधः । रास्वेन्दो वीरयद्यशः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।१।२६ )

१२१५ न त्वा शतं च न हुषो रावो दिस्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मग्नस्वसे ॥ ३ ॥ ७ ( खा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।६।१।२७ )

१२१६ अया पवस्व धारया यया ध्वर्मरोचया । हिन्वानो मानुपीरयः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१।७ )

१२१७ अयुक्त एव एतश्च पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण याववे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।१।८ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १२१० ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( अया वीनि पारिषव ) इत रीरिते इन्द्रके सोमके लिए दू छनता जा । ( ते यः मधेयु ) तेरा यह रस सशामर्म ( स्रव-मयतीः अवाहन् ) निम्नानवे शम्भुओंकी मध्य करता है ॥ १ ॥

[ १२११ ] ( स्रवः पुरः ) उसी समय इन्द्रके गगनरोका नाम यह सोम करता है । ( इत्या ) इत प्रकार ( धिषे दिवोदासाय ) यत करनेवाले दिवोदासके लिए ( शंवरं ) सम्बरासुरको ( अथ त्वं सुर्वशं ) औरजमम सुर्वशको ( यदुम् ) और यदुको ( अवाहन् ) इन्द्रने भाग ॥ २ ॥

[ १२१२ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( अथयित् ) बोटे प्राप्त करनेवाला दू ( नः ) हमें ( गोमत् हिरण्यवत् अथं ) गाय और सोमनेसे युक्त बोटेकी ओर ( सवसिपीरिषः इयः ) अनेक प्रकारके अन्नको ( परि श्वर ) वे ॥ १ ॥

[ १२१३ ] ( सोमः मृधः अपेद्रन् ) सोम शम्भुको मारकर ( अराज्यः अप ) धान न देनेवाले दुष्टको क्रूर करने ( इन्द्रस्यः निष्कृतं गच्छन् ) इन्द्रके स्वामिके धाम जानेके लिए ( यवसे ) छाना जाता है ॥ १ ॥

[ १२१४ ] हे ( पवमान इन्द्रो ) छाने जानेवाले सोम ! ( न मद्ः रायः आ भर ) हमें बहुतसा धन भण्डार है । ( मृधः जहि ) शम्भुओंको मार और ( वीरयत् यदाः रास्व ) पुर्वसे युक्त धन वे ॥ २ ॥

[ १२१५ ] हे सोम ! ( यत् पुनानं ) जब छाना जानेवाला दू ( मग्नस्वसे ) यत करनेवालोंको घन देनेकी इच्छा करता है, तब ( त्वा धिस्सन्तं त्वा ) धन देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे ( शतं च न ह्युतः ) संख्यां शम्भु भी ( न आमिनन् ) रोक नहीं सकते ॥ ३ ॥

[ १२१६ ] हे सोम ! ( मानुपीरः अपः हिन्वानः ) मनुष्योंको हिन्वाकर जय देनेवाले तुवे ( यया धारया ध्वर्मं अरोचयः ) जिस धमधनेवालो धारसे ध्वर्मको प्रकाशित किया, ( अया पवस्वन् ) उसी धारामे छनता जा ॥ १ ॥

[ १२१७ ] ( पवमानः ) बृद्ध होनेवाला सोम ( मनावधि ) मनुष्योंको इष्ट ( अन्तरिक्षेण याववे ) अन्तरिक्षे मागने जानेके लिए ( गृहः घलदां अयुक्तः ) सुर्वसे एतस नामक बोटेकी उसने रचने जोड़ता है ॥ २ ॥



१२१८ उ॒त्त॒ त्वा इ॒रितो॑ रथे॒ द्यौः अ॒पुक्त॑ या॒तवे॑ । इ॒न्दुरि॒न्द्रि इति॑ भुवन् ॥ ३ ॥ ८ ( का ) ॥  
[ धा० ११। उ० १। स्वर० २ ] ( ऋ. ९।६।१२ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१२१९ अ॒ग्निं वो॑ दे॒वम॒ग्निभिः॑ स॒जोषा॑ यजि॒ह्वं दू॒तम॒ध्वरे॑ कृ॒णु॒ध्वम् ।  
यो म॒र्त्येषु॑ नि॒धुवि॒श्रिता॒वा स॒पु॒र्मूर्धा॑ दृ॒ता॒न्नः पा॒वकः॑ ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१।१ )

१२२० प्रो॒यद॒शो न॑ य॒वसे॑ऽवि॒ष्यन्त्य॒दा महः॑ स॒वर॒णाद्व्य॒स्थात् ।  
आ॒दस्य॑ द्या॒वो अ॒नु वा॒ति ओ॒चिर॑ स॒ ते व्र॒जनं॑ कृ॒ण्वम॑स्ति ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१।२ )

१२२१ उ॒द्यस्य॑ ते न॒वजा॑तस्य॒ वृ॒ष्णोऽथै॑ वर॒न्त्यज॑रा इ॒धाना॑ ।  
अ॒च्छा द्या॒मरु॑षो धूम॒ एषि॑ सं दू॒ता अ॒म ई॒षसे॑ हि दे॒वान् ॥ ३ ॥ ९ ( टी ) ॥  
[ धा० १८। उ० १। स्वर० ४ ] ( ऋ. ७।१।३ )

१२२२ त॒मिन्द्रं॑ पा॒जयाम॑सि म॒हे वृ॒षाय॑ ह॒न्तव्ये॑ । स॒ वृ॒षा वृ॒षमो॑ भू॒यत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९।७ )

[ १२१८ ] ( उ॒त्त इन्द्रः ) और लोम ( इन्द्रः इति श्रुत्वा ) इन्द्र इन्द्र कहला हुआ ( स्वा इरितः ) तेरे घोड़ोंकी ( स॒दा रथे ) दूतोंके रथमें ( या॒तवे अ॒पुक्त ) जलनेके लिए मोड़ता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाँचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] पष्ठः खण्डः ।

[ १२१९ ] हे देवो ! ( यः ) तुम ( यः म॒र्त्येषु नि॒धुविः ) जो पारबोधमें रहता है, जो ( दृ॒ता॒न्ना ) बल करनेवाला ( स॒पु॒र्मूर्धा ) तथा शत्रुओंकी कट्ट देनेवाला तेज है ( दृ॒ता॒न्नः ) धी ही जितका अंस है तथा ( पा॒वकः ) जो पवित्रता करनेवाला है, ऐसे ( अ॒ग्निभिः स॒जोषा ) अनेक अग्नियोंके साथ ( यजि॒ह्व इति॑ देवे ) परम पूज्य अग्निकी ( अ॒ध्वरे दू॒तं कृ॒णु॒ध्वं ) हितारहित बलमें दूत करो ॥ १ ॥

[ १२२० ] ( य॒वसे॑ अ॒वि॒ष्यन् ) घास खाते हुए ( प्रो॒यद॒श्वः न ) हिनहिबानेवाले घोड़ोंके समान ( महः॑ स॒वर॒णात् ) महान् वेगसे कलनेवाला दायजल ( य॒दा व्य॒स्थात् ) जब बृत्तोंके बीचमें पकड़ता है, तब ( आ॒द॒ अस्य॑ शोचिः ) इसकी उबालाये ( अ॒नुवा॒तः वा॒ति ) वायुके अनुकूल होकर चलती हैं, ( अ॒ध ) और हे बाने ! ( ते व्र॒जनं कृ॒ण्वं अ॑स्ति ) तेरा मार्ग काला है ॥ २ ॥

[ १२२१ ] हे ( अ॒ग्ने ) अग्ने ! ( न॒व॒जा॒तस्य॑ वृ॒ष्णः ) नये उत्पन्न हुए हुए और वृष्टि करनेवाले ( यस्य॑ ते ) जिस तेरी ( म॒जराः इ॒धानाः उ॒द्यर॑सि ) न मट्ट होनेवाली जलती हुई उबालाये ऊपर आती हैं, तब हे ( अ॒ग्ने ) अग्ने ! ( अ॒रुपः धू॒मः दू॒तः ) प्रकाश करनेवाला धुआँरूपी दूतवाला तू ( द्यां अ॒च्छा स॒मेषि॑ ) धूलोश्ममें जाता है, और वहाँ ( दे॒वान् हि ई॒षसे॑ ) देवोंकी प्राप्ति होता है ॥ ३ ॥

[ १२२२ ] ( म॒हे वृ॒षाय॑ ह॒न्तव्ये॑ ) महान् वृषको मारनेके लिए ( तं इन्द्रं॑ वा॒जयाम॑सि ) उस इन्द्रको हार बलवान् बनाते हैं । ( वृ॒षा द्याः वृ॒षमः भू॒यत् ) वह पहलेसे बलवान् होता हुआ भी और अधिक बलवान् होता है ॥ १ ॥

१२२२ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः । पुत्री श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

( ऋ. ८।२।८ )

१२२४ गिरा बज्रो न सम्भृतः सनतो अनपच्युतः । बध उग्रो अस्तुतः ॥ ३ ॥ १० ( छे ) ॥

[ धा० १७ । उ० २ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।११।९ )

॥ इति पठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१२२५ अश्वयो अग्निमिः सुत सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातये ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।५।१ )

१२२६ तव त्व इन्दो अश्वतो देवा मघोर्घ्यागृह । पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।५।२ )

१२२७ दिवः पीयूषमृत्तम सोममिन्द्राय बज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥ ११ ( छा ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।५।३ )

१२२८ ध्रुवो दिवः पवते कृत्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृमिः ।

हरिः सुजातो अत्यो न सत्वमिर्वृषा पाजासि कृशुषे नदीषा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७।१ )

[ १२२३ ] ( सः इन्द्रः दामने कृतः ) यह इन्द्र दाम देनेके लिए ही पैदा हुआ है ( स ओजिष्ठः बले हितः ) यह प्रभावशाली इन्द्र बल बढ़ानेके लिए और सोमके पीनेके लिए हुआ है ( पुत्रीः श्लोकी स सोम्यः ) ऐश्वर्यी प्रशंसित ऐसा वह इन्द्र सोम पीनेके योग्य है ॥ २ ॥

[ १२२४ ] ( गिरा संभृतः ) स्तुतिबो द्वारा प्रशंसित ( बज्रः न ) बज्रके समान ( सनतोः अनपच्युतः ) बलवान् इसीलिए दूतरेषि न हथियानेवाला ( उग्रः अ-स्तुतः ) उग्रवीर और अवरजित इन्द्र ( अश्वतो ) प्रभु होनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १२२५ ] हे ( अश्वयो ) अश्वर्षु । ( अग्निमिः सुते सोमं ) पत्नी द्वारा कूटकर निकाले गए सोमरसको ( पवित्र आनय ) छलनीमें लाकर रख और ( इन्द्राय पातये पुनाहि ) इन्द्रके पीनेके लिए पान ॥ १ ॥

[ १२२६ ] ( त्वे देवाः मरुतः ) वे देव और मरुत, हे ( इन्दो ) सोम । ( तव मघोः पवमानस्य मरुतः ) तेरे मधुर और पवित्र अमरवीर रसको ( वि आग्रत ) खाते हैं ॥ २ ॥

[ १२२७ ] हे ऋषिजी ( मधुमत्तमं दिवः पीयूषं ) बहुत पीठे दूधलेके अमृत ( उग्रमं सोम ) इस उत्तम सोमको ( पवित्रे इन्द्राय सुनोत ) बधकारी इन्द्रके लिए सम्भार करो ॥ ३ ॥

[ १२२८ ] ( कृत्यो रसः ) कर्तव्य करनेवाला यह रस ( देवानां दक्षः ) देवोंका बल बढ़ानेवाला ( नृमिः अनु माद्यः ) ऋषिर्भक्त द्वारा प्रशंसनीय ( ध्रुवो ) सबीको धारण करनेवाला ( दिवः पवते ) अन्तरिक्षमें रस छलनीसे छाना जाता है । ( हरिः ) यह हरे रंगवाला और ( सत्वमिः सृजानः ) बलवान् ऋषिर्भक्तों द्वारा छाना जानेवाला यह रस ( अत्यः न ) पीनेके समान ( नदीषु ) पानीमें ( कृश्या ) तरलभासे ही ( पाजासि कृशुषे ) अपने बर्तनोंमें प्रशस्त करता है ॥ १ ॥

- १२२९ <sup>१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> शूरी न धत्त आयुषा गमस्त्योः स्वदेः सिपासत्रयिरो गविष्टिषु ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्रस्य शुभ्रमीरयन्नपस्युभिरिन्दुहिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ २।७६।२ )
- १२३० <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्रस्य सोम पवमान ऊमिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र नः पिब विद्युदभ्रं रोदसी धिया नो वाजा उप माहि शश्वतः ॥ ३ ॥ १२ ( चा ) ॥  
 [ या० २७ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. २।७६।२ )
- १२३१ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यदिन्द्र प्रागपागुदङ्गयवा द्वयसे नृभिः ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सिमा पुरु नृपूतो अखानषेऽसि प्रघर्षे तुवधे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४।१ )
- १२३२ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यद्वा रुमे रुशमे श्यावकं कृष इन्द्र मादयसे सचा ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> कणासस्तथा स्तोमेभिर्भक्षवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥ १३ ( कि ) ॥  
 [ धा० ११ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।४।२ )
- १२३३ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उभय उपणवध न इन्द्रो अर्वागिदं पच ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सत्राच्या मयवान्सोमपीतये धिया शविष्ट आ गमत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१ )

[ १२२९ ] वह सोम । ( शूरः न ) शूरके समाज ( गमस्त्योः आयुषा धत्ते ) हाथोंमें हाथ धारण करता है । ( स्वः सिपासत्र ) यत्त करनेकी इच्छा करनेवाला ( रथिरः गविष्टिषु ) रथमें बैठनेवाले कीरकी गाथोंकी इच्छा करनेवाला ( इन्द्रस्य शुभ्रमीरयन्नपस्युभिरिन्दुहिन्वानो ) इन्द्रका बल बढ़ाते हुए यह ( इन्द्रः ) सोम ( अयस्सुभिः मनीषिभिः ) यत्त करनेवाले विद्वान् ऋषिजनोंके द्वारा ( हिन्वानः अज्यते ) प्रेरित हुआ हुआ गायके दूधमें मिलाया जाता है ॥ २ ॥

[ १२३० ] हे ( सोम पवमान ) शूद्र होनेवाले सोम । ( तविष्यमाणः ) बधाय जानेवाला तू ( इन्द्रस्य जठरेषु ) इन्द्रके पेटमें ( ऊमिणा आ विश ) धार बंधकर आ । ( विद्युत् अन्धा इव ) बिजली जिसप्रकार मेघोंको बरसाती है, उसीप्रकार ( नः रोदसी प्र पिब ) हमारे लिए घुसीक और भूलोकको फलपुष्ट कर । ( धिया नः ) रुमेके द्वारा हमारे लिए ( शश्वतः प्रागान् उप माहि ) शश्वत जवहीं करी बीम न होनेवाले अभ दे ॥ ३ ॥

[ १२३१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( यत् ) यक्षिषु ( प्राक्, अयक्, उदक् या स्यक् ) पूर्वं, पश्चिम, उत्तर और नीचेकी दिशामें ( नृभिः द्वयसे ) ऋषिजनोंके द्वारा सहोपवर्तन बलया जाता है, तो भी ( सिमा ) हे धैर्य इन्द्र । ( अनये ) अनुरागके लिए ( पुरु नृपूतोऽसि ) तेरी बहुत स्तुतिकी गई है । हे ( प्रघर्षे ) शत्रुको हारनेवाले इन्द्र । ( तुवधे ) तुर्बधेके लिए भी उसीप्रकार तेरी स्तुतिकी गई है ॥ १ ॥

[ १२३२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( यद् वा ) अथवा ( रुमे, रुशमे, श्यावके, कृषे ) चम, हसाम, श्यावक और कृषके लिए ( सचा मादयसे ) एक साथ प्रसन्न किया जाता है । उत्तमप्रकार ( ब्रह्म-याहवः ) स्तुति करनेवाले ( कणासः ) कण ( स्तोमेभिः ) स्तोत्रोंके तुझे यदायें करनेकी इच्छा करते हैं । इसलिये ( इन्द्र ) हे इन्द्र । ( आगहि ) आ ॥ २ ॥

[ १२३३ ] ( उभय इदं चयः ) दोनोंही प्रकारके स्तुतिके वचन ( नः अर्वागि ) हमारे सामने ( इन्द्रः ऋणघट् ) इन्द्र तुने । ( मयवान् शविष्टः ) यह मयवान् और बलवान् इन्द्र ( मन्त्राच्या धिया ) हमारे स्तुतिसे समुष्ट होकर ( सोमपीतये आगमत् ) सोमपान करनेके लिए हमारे यत्त आने ॥ १ ॥

- १२३४ त<sup>१४</sup> हि स्वराजं<sup>३३</sup> ध्रुवमं<sup>३३</sup> तमोजसा<sup>३३</sup> धिषणे<sup>१८</sup> निष्ठतस्तु<sup>३३</sup> ।  
उतोपमानां<sup>३३</sup> प्रथमो<sup>३३</sup> नि पीदसि<sup>३३</sup> सोमकाम<sup>३३</sup> हि ते मनः<sup>३३</sup> ॥ २ ॥ १४ ( ची ) ॥  
[ पा० १७ । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।६।१२ )  
॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥
- [ < ]
- १२३५ पवस्य<sup>११</sup> देव<sup>३३</sup> आयुषमिन्द्रं<sup>३३</sup> सच्छतु<sup>११</sup> ते मदः<sup>३३</sup> । वायुमा<sup>३३</sup> रोह<sup>३३</sup> धर्मणा<sup>३३</sup> ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६२।२२ )  
१२३६ पवमान<sup>११</sup> नि तोद्यसे<sup>३३</sup> रवि<sup>३३</sup> सोम<sup>३३</sup> अवाप्यम्<sup>३३</sup> । इन्द्रो<sup>३३</sup> समुद्रमा<sup>३३</sup> विश<sup>३३</sup> ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६३।२३ )  
१२३७ अपमन्यसे<sup>३३</sup> मृषः<sup>३३</sup> क्रतुविस्तोम<sup>३३</sup> मत्सरः<sup>३३</sup> । नुदस्वादिवयुं<sup>३३</sup> जनम्<sup>३३</sup> ॥ ३ ॥ १५ ( लि ) ॥  
[ पा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६३।२४ )
- १२३८ अभी<sup>३३</sup> नो<sup>३३</sup> वाजसातमं<sup>३३</sup> रयिमर्षं<sup>३३</sup> सवस्पृहम्<sup>३३</sup> ।  
इन्द्रो<sup>३३</sup> सहस्रमर्णसं<sup>३३</sup> तुविद्युम्नं<sup>३३</sup> विभासहम्<sup>३३</sup> ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६८।१ )
- १२३९ वयं<sup>३३</sup> ते अस्य<sup>३३</sup> राधसो<sup>३३</sup> वसावसो<sup>३३</sup> पुरुस्पृहः<sup>३३</sup> ।  
नि<sup>३३</sup> नोदिष्ठतमा<sup>३३</sup> इषः<sup>३३</sup> स्याम<sup>३३</sup> तुल्लं<sup>३३</sup> ते अधिगो<sup>३३</sup> ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६८।२ )

[ १२३४ ] ( धिषणे ) ध्रुवोक्तं लोकोत्तरं ध्रुवोक्तं ( स्वराजं ध्रुवमं त हि ) इत्येव प्रकाशयन् लोकोत्तरं बलवान् बल इत्यनेन ( तमोजसा निष्ठतस्तुः ) मयने मयने प्रकटं करते हैं । ( उत ) और है इन्द्र ! ( उपमानां प्रथमः ) उपमानां देवैरेकैः योषीर्षं प्रथमं तु ( निपीदसि ) अपनैः स्थानवरं बीडता है । ( हि ते मनः सोमकामे ) क्योंकि तेरा मन सोमको इच्छा करता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ सप्तमं खण्डं समाप्त हुआ ॥

[ < ] अष्टमः खण्डः ।

[ १२३५ ] हे सोम ! ( देवः पयस्य ) धनकनेवाला तू छमता जा । ( ते मदः आयुषक इन्द्रं सच्छतु ) तेरा आनन्दवाचक रत्न इन्द्रके पास जाये । ( धर्मणा वायुं आरोह ) अपनी शक्तिसे तू वायुको शोषित हो ॥ १ ॥

[ १२३६ ] हे ( पवमान इन्द्रो ) गुरु होनेवाले सोम ! तू ( अवाप्य रयिं नि तोद्यसे ) मयनेवाले धनके लिए धर्मको पीका देता है, ऐसा तू ( समुद्रं आविश ) कलशके पानीमें प्रवेश कर ॥ २ ॥

[ १२३७ ] हे सोम ! ( मत्सरः ) आनन्द देनेवाला तथा ( क्रतुविस्तु ) धन धर्मको आनन्दवाला तू ( पयसे ) गुरु होता है । गुरु हुआ हुआ तू ( मृषा अपमन्य ) धर्मको बुरा करके ( नुदस्वादिवयुं जनं नुदस्व ) नाशित मनुष्योंको बुरा कर ॥ ३ ॥

[ १२३८ ] हे ( इन्द्रो ) तेजस्वी सोम ! ( नः ) हमें ( वाजसातमं ) बल बढ़ानेवाले ( दातस्पृहं ) तैलकों लोगोंके द्वारा प्रशंसित ( सहस्रमर्णसं ) हजारों मनुष्योंका भरण पोषण करनेवाले ( तुविद्युम्नं ) अति तेजस्वी ( विभासहं ) विलेख प्रकाशमान ऐंते ( रयिं अधिगम्यं ) धन दे ॥ १ ॥

[ १२३९ ] हे ( वसो ) निवासक सोम ! ( पुरुस्पृहः वसोः ) अनेकों द्वारा प्रशंसित और सबको आनन्दनेवाले ( अस्य ते राधसः ) ऐसे हय तेरे धनके पास ( नोदिष्ठतमाः स्याम ) हम रहनेवाले हों । ( अधिगो-यो ) गायके पास रहनेवाले सोम ! ( ते इषः वसुन्ने ) तेरे द्वारा दिए गए अन्नके आनन्दने हम सुखी हों ॥ २ ॥

२३ [ ताम हिमो ना २ ]

- १२४० परि स्य स्वानो अधरादिन्दुरन्ये मदच्युतः ।  
 पारा य ऊर्ध्वो अप्वरे भ्राजा न याति गन्धयुः ॥ २ ॥ १६ ( ली ) ॥  
 [ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. २।१८।३ )
- १२४१ पवस्व सोम महान्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ १ ॥ ( ऋ. २।१०९।४ )
- १२४२ शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. २।१०९।५ )
- १२४३ दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सस्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥ ३ ॥ १७ ( हि ) ॥  
 [ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. २।१०९।६ )
- ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

[ ९ ]

- १२४४ प्रेष्ठ नो अतिथिस्तुपे मित्रमित्र प्रियम् । अमे रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८४।१ )
- १२४५ कविमिव प्रशस्त्यं ये देवास्त इति हिता । नि मर्त्येवाद्भुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८४।२ )
- १२४६ रथं वेष्टि दाक्षुर्न नृः पादि शृणुही गिरः । रथा लोकमुव रत्नान् ॥ ३ ॥ १८ ( यी ) ॥  
 [ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।८४।३ )

[ १२४० ] ( गन्धयुः ) गन्धके दूधकी इत्या करनेवाला ( ऊर्ध्वः यः ) थोका वह सोम ( भ्राजा न ) तेजसे जितप्रकार चमकता चाहिए उसप्रकार चमकता है और ( अप्वरे धारा याति ) अहिंसक यत्नसे धारासे पहुँचता है । ( स्वानः स्यः इन्दु ) छाया जानेवाला वह सोम ( मदच्युतः अन्ये परे अक्षरत् ) आनन्द बढ़ानेके लिए जालोंकी छलनीमेंसे टपकता है ॥ १ ॥

[ १२४१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( महान् समुद्रः ) बहान् रातेयुक्त ( पिता ) पालन करनेवाला तू ( देवानां विश्वा धाम ) देवोंके सब स्थान अपने रहते ( अभि पयस्व ) भर दे ॥ १ ॥

[ १२४२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( शुक्रः ) चमकनेवाला तू ( देवेभ्यः पवस्व ) देवोंके लिए छलता जा । ( पृथिव्यै पृथिव्यै ) धूलोककी, पृथ्वीलोककी तथा ( प्रजाभ्यः यी ) प्रजाओंकी मुक्त मिले ॥ २ ॥

[ १२४३ ] हे सोम ! तू ( शुक्रः पीयूषः ) तेजस्वी और पीनेके योग्य ( दिवः धर्ता ससि ) धूलोकका पालन करनेवाला है । ( पाजी ) बसवान् तू ( सस्ये ) यत्नसे ( विधर्मन् पयस्व ) विविध कर्म करनेके लिये छलता जा ॥ १ ॥

॥ यहाँ आठवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ १२४४ ] हे ( अमे ) जाने ! ( प्रेष्ठ अतिथि ) प्रिय अतिथिरूप ( मित्रं इव मित्रं ) मित्रके समान प्रिय ( रथं न वेद्यं ) रथके समान वन प्राप्तिरहा हेतु ( यास्तुपे ) तेरी चे स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १२४५ ] ( देवास्तः ) सब देवोंने ( कवि इव प्रशस्त्यं ) कविके समान प्रशस्तियों ( ये ) जित अलिको ( मर्त्येभ्यः इति ) मनुष्योंमें ( हिता ) गर्हपाप और आबहनीय इन दोनोंके रूपमें ( न्याद्भुः ) स्थापित किया ॥ २ ॥

[ १२४६ ] हे ( वेष्टि ) तू सब रहनेवाले इन्द्र ! ( रथं ) तू ( दक्षुः पादि ) बान करनेवाले मनुष्योंका रक्षण कर ( गिरः शृणुहि ) शृणु धुन । ( उत रत्नान् लोकं बहू ) और अपने प्रयाससे गुरुका रक्षण कर ॥ ३ ॥

१२४७ एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदमोह । गिरिर्नि विषतः पृथुः पतिर्दिवः ॥२॥ ( ऋ. ८।९।८।४ )

१२४८ अग्नि हि सत्य सोमया उमे बभूव रौदसी । इन्द्राग्निं सुन्वतो वृषः पतिर्दिवः ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।९।८।५ )

१२४९ त्वं हि शशतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोवृषः पतिर्दिवः ॥३॥ ( १९।के ) ॥  
[ धा० १० । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।९।८।६ )

१२५० पुरां भिन्दुर्युवा कविर्ममौजा अजायत ।  
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता यज्ञी पुरुन्दुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१।४ )

१२५१ त्वं घलस्य गोमतोऽपावरद्विषो विलम् । त्वां देवा अविम्बुपस्तुज्यमानासः आधिपुः ॥२॥  
( ऋ. १।१।१।५ )

१२५२ इन्द्रमीशानमोजसामि स्तोमैरनुवत ।  
सहसं यस्य रासव उत वा सन्ति भूपसीः ॥ ३ ॥ २० ( ही ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।१।१।८ )

॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

॥ इति पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽर्गः ॥ ५-१ ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

[ १२४७ ] हे ( प्रिय ) हित करनेवाले, ( सत्राजित् ) सब धनुर्भोंकी नीतनेवाले तथा ( अ-गौह ) किसी द्वारा न बचाये जानेवाले ( इन्द्र ) इन्द्र । ( गिरिः न ) पर्वतके समान ( विश्वतः पृथुः ) सब तरहसे बड़ा हूँ ( दिवः पतिः ) धूलोकका स्वामी ( नः आग्नि ) हमारे पास आ ॥ १ ॥

[ १२४८ ] ( सत्य सोमया इन्द्र ) हे सत्यके पालक और सोम पीनेवाले इन्द्र । तू ( उमे रौदसी ) दोनों धूलोक और पृथ्वीलोकको ( अग्निं समुय ) अपने प्रभावसे एक देता है । येवाहू ( सुन्वतः वृषः ) सोमयाग करनेवालेको बढानेवाला और ( दिवः पतिः अग्नि ) धूलोकका स्वामी है ॥ २ ॥

[ १२४९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( त्वं हि ) तू ( शशतीनां पुरां धर्ता ) धनुर्भोंके बहुतसे नगरोंकी तोड़नेवाला, ( हन्ता ) हन्ता । शत्रुका नाश करनेवाला ( मनोवृषः ) बल करनेवाला, धनुर्भोंके मनोको बढानेवाला और ( दिवः पतिः अग्नि ) धूलोकका स्वामी है ॥ ३ ॥

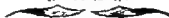
[ १२५० ] ( पुरां भिन्दुः ) शत्रुके नगरोंका नाश करनेवाला, ( युवा ) सवा तदन, ( कविः यमिनीजाः ) शत्रुकी और अवरहित पराक्रमवाला, ( विश्वस्य कर्मणो धर्ता ) सब धनुर्भोंका पोषण करनेवाला, ( यज्ञी पुरुन्दुतः ) बन्धुपारो और अहनों द्वारा प्रशंसित होता ( इन्द्रः अजायत ) इन्द्र प्रकट हुआ है ॥ १ ॥

[ १२५१ ] हे ( आधिपः ) बंधुपारो इन्द्र । ( त्वं ) तूने ( गोमतः घलस्य ) शत्रुकी घुराकर ले जानेवाले अगुरभी ( विलं अपाघः ) एकदो फोटा, सब ( तुज्यमानासः येवाहू ) हारे हुए देव ( अ-विम्बुपः ) न पबरले हुए ( त्वां आधिपुः ) तुमसे साकर मिले ॥ २ ॥

[ १२५२ ] स्तुति करनेवाले ( ओजसा ईशानं इन्द्रं ) सामग्र्यसे सबके स्वामी होनेवाले इन्द्रकी ( स्तोमैः अभ्यनुवत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे । ( यस्य रासवः सहस्रं ) जिसके शत्रुहारां हैं ( उत वा ) अथवा ( भूपसीः सन्ति ) बहुत स्वादा हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ नववां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥



## नवम अध्याय

इत अग्यायमें इन्द्रके गुण इतप्रकार हैं—

१ वृषा [ १२२२ ]- बलवान् ।

२ वृषभः [ १२२२ ]- सामर्थ्यवान् ।

३ ओजिष्ठ [ १२२३ ]- सामर्थ्यवान् ।

४ घले-हितः [ १२२३ ]- घलसे युक्त, घलोसे हित करनेवाला ।

५ स्वयलः [ १२२४ ]- बलवान् सामर्थ्ययुक्त ।

६ उग्रः [ १२२४ ]- उपवीर ।

७ अस्तुतः [ १२२४ ]- बराजित न होनेवाला, न हारनेवाला ।

८ अनपकुमुतः [ १२२४ ]- अन्यकिसीसे न बचनेवाला ।

९ वज्रः न [ १२२४ ]- वज्रके समान कठिन, बलशाली ।

१० वज्री [ १२५० ]- वज्रका उपयोग करनेवाला ।

११ प्रदार्ध [ १२३१ ]- शत्रुको हारनेवाला ।

१२ शविष्ठः [ १२३३ ]- सामर्थ्यवान् ।

१३ स्वपाद [ १२३४ ]- तेजाली, स्वयं राज्य करनेवाला ।

१४ सोम्यः [ १२३३ ]- उत्तम मनवाला ।

१५ इलोकी [ १२२३ ]- मित्रकी प्रशंसा होती है, प्रशस्तनीय ।

१६ उपमार्गः प्रथमः [ १२३४ ]- उपमा देनेके योग्यतम सर्व प्रथम ।

१७ म्रियः [ १२४७ ]- समकी म्रिय ।

१८ सथाजिन् [ १२४७ ]- अनेक शत्रुओंकी एकत्र मीतनेवाला ।

१९ अगोराः [ १२४७ ]- ओ छिपा नहीं रह सकता, अपने सामर्थ्यमें प्रतिष्ठ होनेवाला ।

२० विश्वतः पुष्टः [ १२४८ ]- सब प्रकारसे गहन ।

२१ दिवः पतिः [ १२४८ ]- धूलोरुका स्वामी ।

२२ दामने रुतः [ १२३३ ]- दान देनेके लिए प्रसिद्ध ।

२३ पुरां मिन्दुः [ १२५० ]- शत्रुके मगरोंकी तोड़नेवाला ।

२४ युषा [ १२५० ]- तपन, चाहे कितनी भी उग्र शस्त्री हो जाए फिर भी हमेशा तपन रहनेवाला ।

२५ पविः [ १२५० ]- शानी, क्रूरशस्त्री ।

२६ अमिनीजाः [ १२५० ]- बर्षारहित पवित्रसे युक्त ।

२७ विश्वस्य कर्मणः धर्ता [ १२५० ]- सब वेष्ट वर्णोंका करनेवाला ।

२८ पुष्टपुष्टः [ १२५० ]- अनेक मित्रकी वृद्धि करते हैं ।

२९ ओजसा ईशानः [ १२५२ ]- अपने सामर्थ्यसे शासक बननेवाला ।

३० महे वृषाय हन्तवे इन्द्रं याजयामसि [ १२२२ ]- महान् वृषको मारनेके लिए उस इन्द्रके बलका हम बर्षान करते हैं ।

३१ हे इन्द्र ! आहु, अपाहु, उदहु, न्यहु या नृभिः हुयसे [ १२३१ ]- हे इन्द्र ! तुझे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणसे वीर नेता सहायताके लिए बुलाते हैं ।

३२ त्वं द्युभ्यः मृन् पाहि [ १२४६ ]- तू द्युभ्यः सेनाको ब उतारे वृषवीर्योंकी रक्षा कर ।

३३ त्वना तोकं दक्ष [ १२४६ ]- अपने वृषवीर्योंकी रक्षा कर ।

३४ हे अद्रिवा ! त्व गोमत्तः घलस्य विलं अपायः [ १२५१ ]- हे इन्द्र ! तुने पाषाणों की चुराकर ले जानेवाले राक्षसकी युक्तकी तोडा ।

३५ तुज्यमानासः देवाः अविभ्युषः त्वां आविष्टुः [ १२५१ ]- हारे हुए सब देव न करते हुए तेरे आभयमें आ गए ।

३६ वस्य रातयः सहस्रं, उत वा भूपतीः सन्ति [ १२५२ ]- इन्द्रके दान हजारों अपवा उनसे भी अधिक हैं ।

३७ इन्द्रः उमे रोदसी अमि यभूय [ १२४८ ]- इन्द्रने दोनों ही लोक अपने तेजसे भर दिए ।

### इन्द्रको स्तौत्र देना

यत करनेवाले इस इन्द्रको स्तौत्रत निबोडकर दिवा करते हैं । इस विषयक बर्षान इस अग्यायमें इतप्रकार है—

१ अद्रिभिः सुतं सोमं पविषे आतप, इन्द्राय पातवे पुनाहि [ १२२५ ]- पत्नरति वृष्टकर निबोडे गए स्तौत्रत छलनीके पास सब वीर इन्द्रके धीनेके लिए छानकर तैयार कर ।

२ मधुमत्तमं दिवः पीयूषं सोमं इन्द्राय सुनोत [ १२२७ ]- आपत्त भीठे सुनोनेके ये अमृत अर्घ्या तोमरत इन्द्रके लिए तैयार करो ।

३ तथिध्यामणः इन्द्रस्य जटरेषु ऊर्मिणा आविष्टा [ १२३० ]- बडावा जानेवाला यह स्तौत्रत इन्द्रने देवमें सहुरीसे जाने । इन्द्रका पैठ उस रतसे ढकड़ी तरह भर सावे ।

४ ते मनः सोमकामं [ १२३४ ]-हे इन्द्र ! तेरा मन सोमरस पानेको इच्छा करता है ।

५ ते मदः आयुषक् इन्द्रं अञ्छन्तु [ १२३५ ]- हे सोम ! तेरा आनन्द बढ़ानेवाला रस इन्द्रके पास जाये ।

६ सखायं आ विद्या [ १२८४ ]- हे सोम ! मित्ररूपी इन्द्रमें ॥ प्रविष्ट हो ।

॥ इन्द्राय जुष्टः मत्स्वरः पयमानः [ १२९४ ]- इन्द्रको दिया जानेवाला आनन्दपूर्णक सोमरस शुद्ध किया जाता है ।

८ सुताः सोमाः इन्द्राय धारया ससृष्टं [ १२९६ ]- सोमरस इन्द्रको देनेके लिए धार बांधकर छाने पाते हैं ।

९ इन्द्रस्य जडरं आ विद्या [ १२०९ ]- हे सोम ! इन्द्रके घटमें भर जा ।

१० इन्द्रस्य निरुद्धं गच्छन् पयते [ १२१३ ]- इन्द्रके स्थानवर पट्टबनेके लिए सोमरस शुद्ध किया जाता है ।

इसप्रकार इन्द्रको सोमरस दिए जानेका वर्णन है ।

### देवोंके लिए सोमरस

निम्नप्रकार इन्द्रको सोमरस दिया जाता है, उसीप्रकार दूसरे देवोंको भी दिया जाता है ।

१ मह्यं ससृष्टः पिता देवानां पिम्बा धाम अग्नि पयस्व [ १२४१ ]- महान् ससृष्टके समान रसते भद्रा हुआ सोम, सभीके पालक देवोंके साथ स्वर्गात्मक जाता है । सब देवोंको यह प्राप्त होता है ।

२ शुक्रः देवेष्वयं पयस्व [ १२४२ ]- यक्षकनेवाला सोमरस देवोंके लिए छाना जाता है ।

३ दिवे पृथिव्यै प्रजापयः शं [ १२४३ ]- धूलोक, पृथ्वीलोक और प्रजाओंकी सुख धिते, इसलिए हे सोम । प्र शुद्ध हो ।

### सुलोकमें सोम

सोम स्वर्गमें अर्वात् हिमालयके ऊंचे शिखर पर पैठा होता है—

१ शुक्रः पीयूषः दिवः चर्षा अस्ति [ १२४३ ]- हे सोम ! प्र तेनर्षी और अमृतके समान तथा सुलोकमें रहनेवाला है ।

### सोमके गुण

१ पित्रः [ ११७५ ]- जानी ।

२ कविः [ ११७५ ]- दूरदर्शी ।

३ हृष्यतः [ ११७५ ]- पुन्य ।

४ अपिभवाः [ ११७६ ]- श्रुतिसे सज्जन शुद्ध मनसे युक्त ।

५ अपिभृक् [ ११७६ ]- श्रुति बनानेवाला ।

६ स्वर्गाः [ ११७६ ]- अथवा तत्त्व जाननेवाला ।

७ सहस्रनीधयः [ ११७६ ]- हजारों रासोंको जाननेवाला ।

८ महिषः [ ११७६ ]- बल बढ़ानेवाला ।

९ कर्वाणां पदवीः [ ११७६ ]- शाहीकी पदवी जिसे प्राप्त हो गई है ।

१० स्तुप् [ ११७६ ]- स्तुत्य ।

११ शिरादः [ ११७६ ]- विभेद तेजस्वी ।

१२ द्येयः [ ११७६ ]- प्रसन्नसीध गणके समान सुखीकर्म रहनेवाला ।

१३ शकुनः [ ११७६ ]- सज्जन बढ़ानेवाला ।

१४ गोविन्दुः [ ११७६ ]- सत्य प्राप्त करनेवाला ।

१५ द्रष्टाः [ ११७६ ]- दृष्टरूप ।

१६ नृचक्षुः [ ११८५ ]- साधकोंका निरीक्षण करनेवाला ।

१७ स्वयिदः [ ११८५ ]- स्वयंमें रहनेवाला, स्वयंको जाननेवाला ।

१८ सोमाः इन्द्रस्य धीर्यं यधेयः [ ११८८ ]- सोमरस इन्द्रका बल बढ़ाता है ।

सोमरसके ये गुण हैं । इनमेंसे कुछ गुण इन्द्रके गुणके समान ही हैं । येय सोमरस पीते हैं, उससे उनका ऊसाह बढ़ता है और इससे अनेक सहायके कार्य में करते हैं । यह देवोंका सामर्थ्य सोमरसके पीनेसे बढ़ता है, इसलिए ये गुण सोमके ही हैं, ऐसा वर्णन किया है ।

### सोम यज्ञ स्थानमें बैठठा है

यज्ञ करनेवाले हिमालयके शिखरपरसे सोम सारते हैं और सोमपाण करते हैं । उस समय सोमपल्लीको भी दशमगन्धमें रखते हैं, इसलिए कहा है—

१ स्वर्धनः श्रुतास्य योनौ स्वीदत [ ११९५ ]- स्वर्गमें रहनेवाले सोम यज्ञ स्थानमें आते हैं ।

२ मद्ध्युतः सोमः खरपते क्षेति, गोरी अधिध्रिताः [ ११९८ ]- आनन्द और उरसाह बढ़ानेवाला सोम, धन-धालामें रहता है । मान-सामगारोंके द्वारा यह शुद्ध होता है । उसे शुद्ध कते हुए सामका भाग्यन मृष होता है ।

३ घात्री सत्ये विधर्मन् पयस्व [ १२४३ ]- यज्ञ बढ़ानेवाला सोम यज्ञस्थानमें शुद्ध होता है ।

इसप्रकार सोमका यज्ञस्थानके साथ सम्बन्ध है ।



### सोम संगठन करनेवाला है

१ नित्य-स्तोत्र. धनस्पतिः मातृषा युजा हिन्यान-  
[ १२०१ ]- नित्य प्रशस्त होनेवाली सोमवल्ली मनुष्यों की  
संगठित करती है । मानवों को धनके कारण एकाग्रित करती है ।

### सोमरसका पानीमें मिलाया

सोमका रस निचोड़नेके बाद पानीमें मिलाया जाता है ।

१ अयः न मदीषु सृषा पात्रांसि कृणुते [ १२२८ ]  
- घोड़ेके समान यह सोम नदीमें अनायास हो अपने बलोंको  
प्रकट करता है । पोद्दार जिलमकर पानीमें अपना बल दिखाता  
है, उसीप्रकार सोम जलमें मिलकर उससाह बझानेकी अपनी  
शक्ति दिखाता है ।

२ हे सोम ! समुद्रं आ त्रिदा [ १२३६ ]- हे सोम !  
बलशाली रह्ये हुए पानीमें प्रवेश कर । पानीमें मिल ।

इसप्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है ।

### सोमके लिए सामगान

सोमरस छालनेके समय सामगान किया जाता है । इस  
विषयमें पर्याप्त इतिहास है—

१ हे अश्वस्य ! पयसान् निप्र देवधीतये सुजाणं  
अभि प्रगायत [ ११८८ ]- हे अपनी रक्षाकी इच्छा करने-  
वाले प्राज्ञको । बुढ़ होनेवाले, जानी, देवीके पीनेके लिए  
प्रितका रस निकाला गया है, ऐसे सोमकी स्तुति करने  
वेदमंत्रों-सामों-का गान करो ।

सोमरसके निकालने और छाने जाने तक सामवेदका गान  
यथामुद्रमें होता रहता था । एक तरह उद्गाता साम गान  
करते थे और दूसरी तरफ सोमरस छाना जाता था ।

### सोमका छाना जाना

सोमका रस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाकर वह  
छलनीसे छाना जाता था । इस विषयमें वर्णन इसप्रकार है—

१ कविः पवित्रं अत्येति [ ११७५ ]- जानी सोम  
छलनीसे छाना जाता है ।

२ स्वा ददाक्षिपः मृजन्ति [ ११८१ ]- हे सोम ! तुझे  
रस अंगुलियों से छुट करती है ।

३ सहस्रधारः अत्यनिः पुनानः सोमः [ ११८७ ]-  
हजारों धाराओंसे भेड़के बालोंकी छलनीसे सोम छाना  
जाता है ।

४ होतुमिः अयं यारं वि अति अष्टुर् [ ११९१ ]  
- ऋषिब्रह्मोंके द्वारा सोमरस भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना  
जाता है ।

५ सुक्रतुः कविः सोमः दिवः नामा अय्या घारे  
महीयते [ ११९९ ]- उत्तम यत करनेवाला जानी सोम  
स्वर्गके नाभिसंवाय अर्थात् ऊपरके कलशसे घालोंकी छलनी  
पर शोषित होता है अर्थात् छाना जाता है ।

६ सोमः पवित्रे अन्तः आहितः [ १२०० ]- सोम-  
रस छलनी पर रसा जाता है ।

७ इन्द्रः मधुदधुर्त कोशं जिग्यन् समुद्रस्य अधि  
विष्टिषि वाचं प्रेषति [ १२०१ ]- सोमरस रसनेके बर्तनमें  
गिरता है, सब जलके कलशमें बहुसंख्या करता हुआ गिरता है ।

८ मद्रिमिः प्रियं हरि मधुदधुर्त पयमानं अय्याः  
घारेः परि हि-धति [ १२०७ ]- पत्थरसे कूटकर निचोड़े  
गए प्रिय और हरे रंगके पीठे सोम रसको भेड़के बालोंकी  
छलनीसे छानते हैं ।

९ पवित्रं धारया आ पयस्व [ १२०८ ]- छलनीसे  
घार घाकर छनता आ ।

१० स्वाना इन्द्रुः अय्ये परि अक्षरत् [ १२४० ]-  
निकाला गया सोमरस भेड़के बालोंकी छलनीसे छनता  
जाता है ।

### सोमरसको गायके दूधमें मिलाया

सोमरस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाकर छानते  
हैं । बादमें उसमें गायका दूध मिलाते हैं—

१ मदिन्तम अक्सुभिः गोभिः अजानः पयस्य  
[ १२०९ ]- हे आश्वमेधके सोम ! तेजस्वी गायके दूधके  
साथ मिलकर बुढ़ हो ।

२ गव्यसुः ऊर्ध्वः यः भ्राना न भजरे धारा याति  
[ १२४० ]- गायके दूधसे मिलाया जानेवाला, भेड़ वह  
सोम तेजसे चमकता है और धतमें धारासे छनता है ।

३ मेप्यः अति रुजानं स्वा देवस्य मदाय गोभिः  
सं वासयामसि [ ११८२ ]- हे सोम ! भेड़के बालोंकी  
छलनीसे छाना जानेके बाद देवोंको आनंद देनेके लिए तुझे  
गायके दूधमें हथ मिलते हैं । प्रथम वह छाना जाता है,  
उसके बाद वह देवोंको अच्छा समझाईए उत्तम गायका  
दूध मिलते हैं ।

४ पुनानः कलशेषु आ, अक्षर हरिः गव्यानि  
वक्ष्याणि परि अव्यत [ ११८३ ]- सोमरसको छानकर

वत्तशमें भरनेके बाद वह हरे रसका चपवनेवाला सोम गायके दूधके बरत्रोंको पहनता है। गायके दूधमें मिलाया जाता है।

इसप्रकार सोमरसको गायके दूधमें मिलानेका वर्णन है। गायके बरत्रोंको सोम पहनता है यह आलंकारिक वर्णन है। सोममें गायके दूधको मिलानेका मतलब ही गायका घरम पहनता है। "गायके सत्य मिलता है" यह भाव भी कई मन्त्रोंमें साया है, उसका भी अर्थ गायके दूधमें मिलाना है। "अंसके लिए पूर्णका उपयोग" वैदिक आलंकारमें कई जगह दिखाई पड़ता है। "दूध" अन्न है और "गाय" पूर्ण है इसलिये दूधके लिए गायका प्रयोग किया है। यह वैदकी सीली है।

### सोमका शब्द

सोमरस छानकर कलशमें भर जाता है, तब उस वत्तशमें भरनेका उसका साथ होता है।

१ सिन्धोः स्वयन्। इत्येते शुष्मास्तः उर्वारिते [ १२०५ ] - जितप्रकार नदी सपका समुद्रकी लहरोंका साथ होता है उसीप्रकार सोमका शब्द जुता जाता है। सोमको वत्तशमें डालते समय उसका साथ होता है।

२ याणस्य पर्यि चोदय [ १२०५ ] - याण सामक भातेनर जैसा साथ होता है वैसा शब्द कर।

यह शब्द कलशमें डालते समय श्रवणार्थीक भेला होता है, वैसा होता है।

### सोम अन्न देता है

सोमरस एक प्रकारका बौद्धिक और बल बढ़ानेवाला भक्ष है।

१ सोम। स्वर्दिदं तयो, यय प्रजां इयं अक्षीमादि [ १२८५ ] - हे सोम ! त्वहंको भागनेवाले तुझे प्राप्त करने तथा सन्तति व अन्न प्राप्त करने हम आनन्दते रहें।

२ हे इन्द्रो ! वाजसातम ये गृह्णीत इयः पयस्य [ ११९० ] - हे सोम ! हम अन्न प्राप्त करें इसलिये बहुत सारा अन्न हमें दे।

३ नः गोमन्तु हिरण्यवन्तु अभ्यवित् सहाक्षिणी इयः परित्तर [ १२१२ ] - हे सोम ! हमें गाय, तोता, घोडा और हजारों शत्रुहर्ता अन्न दे।

४ धिया नः शम्भन्ता माजान् उपमाति [ १२३० ] - हमें करने हमें हमेशा रहनेवाले अन्नमय अन्न दे।

५ हे अक्षिणो ! ते इयः सुसे [ १२३९ ] - हे गायको आगे करनेवाले सोम ! तेरे अन्न मुख बढ़ानेवाले है। गायको आगे करनेवाला सोम अर्थात् गायका दूध जिसमें मिलाया जाता है वह सोम।

गोयका रस दूधमें मिलनेसे वह दूध उत्तम प्रकारका गन्त होता है।

### सोम बल बढ़ाता है

सोमरसको छानकर उसमें दूध मिलानेसे वह पुष्टिकारक अन्न होता है -

१ स्रष्टु-पाजसः सोमाः पवन्ते [ ११८९ ] - हजारों प्रकारकी शक्ति बढ़ानेवाले सोमरस छाने जाते हैं।

२ शुमन् सुषीर्यं पवस्व [ ११९० ] - तेनकी उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य हमें दे।

सोमरसचपी जी अन्न है उसमें वृत्ता विलक्षण सामर्थ्य है इसमें शत्रु नहीं।

### सोम घन और उत्तम बीर्य देता है

१ ते स्वमाः देवास्तः इन्द्र्यः नः सहस्रिणं रयिं सुषीर्यं आ पवन्ताम् [ ११९१ ] - वे निम्नोदे गए दिव्य सोम हमें हजारों प्रकारके उत्तम बीर्य और घन दें।

२ हे पयमान ! सहस्रत्रयसं स्वाभुष रयिं असे धारय [ १२०३ ] - हे इन्द्र होनेवाले सोम ! हजारों तेजोति युक्त ऐसे अपने स्वर्णके पर हमें दे।

३ हे इन्द्रो ! नः महः रायः आभरः वीर्यत् यथाः रास्य [ १२१४ ] - हे सोम ! हमें बड़े बड़े पर दे और पुत्र-वीर्यसि युक्त पक्ष दे।

४ अरस्यसे राधः विसम्त तथा शय चन हुतः नः आभिन्तु [ १२१५ ] - घन करनेवालोंको नृ वय वय देनेकी इच्छा करता है, तब लोककों कुटिल शत्रु भी तेरा प्रति वन्द्य नहीं कर सकते।

५ हे इन्द्रो ! नः वाजसातम शतसृष्टः, स्रष्टु-मर्षसं सुविमुक्तं विमासदे रयिं अभि जने [ १२३८ ] - हे सोम ! हमें बल देनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसित, हजारोंका भरणपोषण करनेवाले तेजस्वी, विशेष वीर्यवाले पन्न दे।

६ पुष्टरपुष्टः धसोः ते राधसः नेदिष्ठतमाः स्वाप् [ १२३९ ] - बहुत सारे सोम तेरे घनकी प्रशंसा करते हैं यत् उन धारों पात हम पशुओं।

### शत्रुको दूर कर

१ विभ्याः द्विपः अप जहि [ ११८४-११९४ ]- तव शत्रुओंको हरा ।

२ पृत्सु नः सहः धाः [ ११८६ ]- युद्धमें अपने शत्रु-ओंको जीतनेका सामर्थ्य हममें बढा ।

३ पचमान ! अराण्यः अपघ्नन्तः [ ११९४ ]- हे तोमरत ! तू शान न देनेवाले कज्जुओंको दूर करनेवाला है ।

४ ते यः मन्वेसु नक्तनपत्नीः अवाहन [ १२१० ]- तेरा यह रत सप्राप्तमें ९९ शत्रुओंको हराता है ।

५ स्वघः पुरः [ १२११ ]- उसी समय शत्रुके नगरोंका यह नाश करता है ।

६ दिवोवासाय शम्भरे तुर्वशं यदुं अवाहन [ १२१३ ]- दिवोवासेके कल्याण करनेके लिए शम्भर, तुर्वशा और यदु-ओंको इत्रने मारा ।

७ सोम मृधः अपघ्नन्, अराण्यः अप [ १२१३ ]- सोम शत्रुओंको मारता है और वान न देनेवालोंको भी दूर करता है ।

८ मृधः जहि [ १२१४ ]- शत्रुओंको हरा ।

९ दूरः न गमरयोः आयुधा घत्से [ १२२९ ]- दूरके समान यह सोम हाथोंमें शत्रुओंको धारण करता है ।

१० मारुतः क्रतुयिष्ट मृध अपघ्नन् [ १२३७ ]- यह आनन्द देनेवाला सोम कर्म करनेके सब जानकी जानता है और शत्रुओंको मारता है ।

११ हे इन्द्र ! त्वे दादधतीनां पुरां धर्त्ता, दस्योः हृता अस्ति [ १२४९ ]- हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको मारत गणतियोंका और दुष्टोंका नाश करनेवाला है ।

### सुभाषित

१ जहानं दह्यंत दिशुः मृजन्ति [ ११७५ ]- अभी अभी जलमें डूब उत प्रलय बालकरी शब्द करते हैं, साक करते हैं ।

२ गणेन यिन्नं नुम्नगति [ ११७५ ]- सब समूहमें मिलकर तावकी घुमा करते हैं । लक्ष्मण करते हैं ।

३ कपिः शीमिः पतिन्नं भस्येति [ ११७५ ]- ऊँच भावपके द्वारा पकिन्नपके बात प्रत्यक्ष गया है ।

■ अपिपना अपिपित्, सहस्रनीधः, कवीनां पववीः महिषा तृतीयं धाम सिपासन् विराजं अनु विपानति [ ११७६ ]- ऋषिके समान जिसका पवित्र मन है, जो ऋषियोंका निर्माण करता है, जो अनेक भागोंसे उत्तम कार्य करता है, जो शानीकी पववीको प्राप्त हुआ है, ऐसा जो महान् और शक्तिमान् होनेके कारण सर्वोच्च तृतीय स्थानमें रहता है वह विंशेय तैजस्य होनेके समान विराजमान् होता है ।

५ चमूपदं द्युक्नुः गौयिन्दुः महिषः तुरीयं धाम विपन्ति [ ११७७ ]- समूहमें सम्मानपूर्वक रहनेवाला, गाय पालनेवाला, क्षत्रिय स्थानमें अपूर्व सर्वोत्तम स्थानमें विराजता है ।

६ एने वस्य वीर्यं चर्धन्तः [ ११७८ ]- ये वीर इसका पराक्रम बढ़ाते हैं ।

७ पुनानासः चमूपदः ते नः सुधीयं घत्स [ ११७९ ]- ये पवित्र होनेवाले समूहमें सम्मानसे रहनेवाले तुम हमें उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य दो ।

८ पुनातः राघसे हार्दि चोदय, देवानां योनिं आसदं [ ११८० ]- शब्द होकर सिद्धि प्राप्त करनेके लिए लोगोंके हृदयमें शब्द प्रेरणा कर । देवोंके स्थानमें मैं बँठा हुआ हूँ ।

९ यिमाः स्या अनु अमाविपुः [ ११८१ ]- तानी तुम आनन्द देते है ।

१० विभ्याः द्विपः अप जहि [ ११८४ ]- सब द्वेप करनेवाले शत्रुओंको पराजित कर ।

११ सखायं आ विध [ ११८४ ]- मित्रके पास बैठ ।

१२ नृचक्षुस्तं रुचिर्विदं स्यां ययं प्रतां ह्यं भक्षीमहि [ ११८५ ]- मनुष्योंके निरीक्षण करनेवाले तुम आत्मज्ञानीको प्राप्त करके मुक्तज्ञान और अन्न प्राप्त करके आनन्दते रहें ।

१३ गृध्रिप्याः अपि शुक्रं [ ११८६ ]- पृथिवी पर तैजस्यी अन्न उत्पन्न कर ।

१४ पृत्सु नः सहः धाः [ ११८६ ]- संप्राप्तमें उपयोगी हों ऐसे शत्रुको हरावेवाले सामर्थ्य हमें दे ।

१५ अचस्यवः ! पयमानं यिन्नं देययीतये सुत्यार्णं अग्निं प्रगावयत [ ११९९ ]- अपनी रक्षाकी इच्छा करने-वालों ! दूध, जल, देवोंके पीनेके लिए निकोडे गए तोमरकी लज्ज करके स्त्रीयोंका गान करो ।

१६ दामस्य तुरीयं पयस्य [ ११९० ]- तैजस्यी उत्तम गायमें हर्षे है ।

१७ नः सहस्रिणं रयिं सुधीर्यं पथन्ताम् [ ११९२ ]  
- हमें हजारों प्रकारके धन और उत्तम वरायन करनेके काममें हो ।

१८ पयमानः कनिमद्रात् विभ्याः द्विपः अयं जहि [ ११९४ ]  
- तू नुन्र होके हुए तथा प्राद्व भरते हुए तथा शत्रुओंको हार कर ।

१९ वरायणः अपम्रतः रजर्हदाः कतरस्थ योनीं सीदत [ ११९५ ]- अनुदार शत्रुओंको मारकर, अपने तेजसे मृत होकर यज्ञके स्थान पर बैठे ।

२० सहस्रयज्येसं स्वाभुयं रयिं अस्मे रास्य [ १२०३ ]- हजारों प्रकारके तेजो युक्त धन और धन हमें है ।

२१ कविः विमः विपः प्रियाः अभि हिन्वे [ १२०४ ]  
- शत्रु, बुद्धिमान् युक्तोक्तो प्रिय स्थानको और प्रेरणा करता है ।

२२ ते मदेतु नय-नयसीः अथाहन् [ १२१० ]- तेरा जगत्तु युद्धमें विजयान्वे शत्रुओंको मारता है ।

२३ सदायं पुरः [ अथाहन् ] [ १२११ ]- उन्नी समय शत्रुओंके मारनेकी इत्तने तोडा ।

२४ नः गोमत् हिरण्यवत् अहवित्तं सदग्निनी-  
रयः परित्तर [ १२१२ ]- हमें गाव, सोना और धौंसि युक्त हजारों प्रकारके धन है ।

२५ सोमः मृधः अपम्रन् अराव्यं अयं [ १२१३ ]-  
है सोम ! हिमक और शान न हैनेकसे शत्रुओंका नाश कर ।

२६ नः महः रायः आ भर, मृधः जहि, कीरजत्  
पशः रास्य [ १२१४ ]- हमें बहुत सारा धन भरपूर दे ।  
शत्रुओंको मार और तुम्हीं साथ मिलनेवाले मश और मश है ।

२७ राधः वितस्तं रया शर्तं धनं हतः न आसि  
मन् [ १२१५ ]- धन बेनेके इच्छानाते तुमों सेकई शत्रु भी धन बेनेके नहीं रोक सकते ।

२८ सः घृषा वृषमः भुयत् [ १२१६ ]- यह बलवान्  
और अधिक बलवान् हो गया है ।

२९ स दामने छतः [ १२१७ ]- वह बेनेके लिए हो उत्पन्न हुआ है ।

३० स भोजिष्ठः चले हितः [ १२१८ ]- वह बल शाली और चले कावीर्य ही स्थापित किया गया है ।

३१ गिरा सम्भृतः सवस्तः अनपच्युतः उग्रः  
अस्तुतः यज्ये [ १२१९ ]- बाणसे प्रसन्नित, बलवान्  
२४ [ ताव हिन्वी भा. २ ]

होनेके कारण अपने कर्तव्यसे विमूक्त न होनेवाला, उपवीर और कभी न हारनेवाला ऐसा यह इन्द्र धन बेनेके इच्छा करता है ।

३२ शारः नः गमस्त्योः आमुधं धत्ते [ १२२१ ]-  
शूरके सामान यह शत्रुओंमें अल्प धारण करता है ।

३३ प्राक्, अपाक्, उदक् या न्यक् नृभिः हवसे [ १२३१ ]- पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशामें लोग तुम्हें सहायताके लिए बुलाते हैं ।

३४ उपमानां प्रथमः निवीदक्षि [ १२३४ ]- उपमा देने योग्य मनष्योंमें सबसे मुख्य होकर तू बैठता है ।

३५ अथाय्यं रयिं नितोदासे [ १२३६ ]- प्रजापतीय धनके लिए तू शत्रुओंको पीछा करता है ।

३६ पुरस्सूहस्य वक्षोः राधसः नेदिष्ठतमः स्वाय [ १२३७ ]- यहुतके द्वारा बाहने योग्य, सिद्धि देनेवाले धनके बहुत ही गाता रहनेवाले हव होके ।

३७ प्रजाभ्यः शं [ १२४२ ]- प्रजाओंका वक्षणा हो ।

३८ शुक्रः यासी सत्ये विधर्मन् [ १२४३ ]- तेजस्वी, बलवान् और सत्यवाचसे धनक काम करनेवाला तू है ।

३९ त्वं शत्रुये नृन् पाहि [ १२४६ ]- तू शत्रु बेने-  
वाले शत्रुओंकी रक्षा कर ।

४० रमनां लोकं रक्ष [ १२४६ ]- अपने प्रसन्नते अपनी सत्पत्नीको रक्षा कर ।

४१ सत्राजित् शगोहाः विधयता पृथु [ १२४७ ]-  
सब शत्रुओंको जीतनेवाला, किसीके साथ न दवनेवाला, सबसे बड़ा धीर तू है ।

४२ शश्वतीर्वा पुरां धर्ता, वृषोः हस्ता, मनोः  
भूधः अक्षि [ १२४९ ]- तू शत्रुओंकी शस्त्रत मगरियोंकी जीतनेवाला, शत्रुकी भारनेवाला और धनकी वलवान् करने-  
वाला तू है ।

४३ पुरां भि-दुः युधा करिः अमितोश विभ्यस्य  
कर्मणः धर्ता पक्षी पुनःपुनः अजायत [ १२५० ]-  
शत्रुके मारनेको तोड़नेवाला तवण, शत्रु, अशरित्त गति-  
वाली, सब कर्मोंकी कारण करनेवाला, वलपारी और बहुतके द्वारा स्तुति करनेके योग्य तू उत्पन्न हुआ है ।

४४ त्वं गोमत्तः पलस्य विलं अयावः [ १२५१ ]-  
तुने गावोंके घुटनेवाले घल राक्षसकी मुखाकी फोडा ।

४५ तुज्यमानासः वेगः अग्निभ्युः त्वा भाविषुः

[ १२५१ ]- हारे हुए देवीने फिर न घबराते हुए तेरा ही आश्रय लिया ।

४६ यस्य रातयः सहस्र, उत वा भूयसी सन्ति, तं ओजसा ईशाने इन्द्रं स्तोमैः अभ्यनूयत [ १२५२ ]- जिसके बान हजारों अथवा उससे भी अधिक हैं, उस सामन्त्यसे युक्त इन्द्रकी स्तोत्रोत्ति स्तुति करते हैं ।

### उपमा

१ जहानं दिशुं न [ ११७५ ]- नये-नये जगमे हुए बच्चेकी जिसप्रकार साफ रखते हैं, उसीप्रकार ( ह्यर्त्येतमदतः मृजगिति ) दूग्ध सोमकी बहुत साफ करते हैं ।

२ घाजसातये हियानाः आशयः न [ ११११ ]- मुड़के लिए तैयार हुए हुए बच्चों घोड़ेके समान ( हेतुभिः अयं पारं अति अक्षुर्मे ) ज्वलितोंके द्वारा सोमरस उत्तनीते छाना जाता है ।

३ मातरा घर्त्स न [ ११९३ ]- गावें जिसप्रकार अपने बछड़ेके पास जाती हैं, उसीप्रकार ( इन्द्र्य-अग्नि अर्पयन्ति ) सोमरस बलशर्मे जाते हैं ।

४ धेनवः गावः घर्त्स न [ ११९७ ]- बुधारे गावें अपने बछड़ेके पास जिसप्रकार जाती हैं, उसीप्रकार ( विप्राः इन्द्रं अग्नि अनूयत ) ज्वलित इन्द्रके पास जाते हैं ।

५ मध्वयुत् सोमः लादमे क्षेति [ ११९८ ]- आनद देनेवाला सोम जिसप्रकार बलशाली रहता है, उसीप्रकार ( मिन्धोः ऊर्मा विपदिचत् ) नदीके पानीमें सोम रहता है, और उसीप्रकार ( गौरी अधिधितः ) पानीके बोधमें सोम मुद होता है ।

६ सुप्रतुः यधिः निषक्षणः [ ११९९ ]- उत्तम बल करनेवाला जिसप्रकार शानी और महान् विद्वान् होता है, उसीप्रकार ( सोमः दियाः नामा ) सोम सुलोकमें अति स्थानपर रहता है ।

७ परावति कविः विपः [ १२०४ ]- जैसे भेड़ स्वानमें कवि और शानी रहता है, उसीप्रकार ( धारया दिवः प्रिया अग्नि हिन्वे ) पारते युक्त होकर सुलोकमें विप स्थानके पास सोम रहता है ।

८ सिन्धोः ऊर्मं स्वनः इव [ १२०५ ]- समुद्रकी लहरोंके शब्दके समान ( ते सुग्भासः उदीरते ) तेरी-सोमरसकी-तोषताके शब्द सुनाई देते हैं ।

९ प्रोयत् अश्वः न [ १२२० ]- हिमहिमनेवाले घोड़ेके समान ( सहः संवरणात् यदा व्यस्थात् ) महान् वेगसे जगलकी अग्नि फैलती है ।

१० वज्रः न [ १२२४ ]- बज्रके समान ( स्वसलः अत-पच्युतः ) बलवान् और न बबनेवाला इन्द्र है ।

११ भरया न [ १२२८ ]- घोड़ेके समान ( नवीधु वृथा पाजसि कृणुते ) नवीके पानीमें सोम अनावृत ही अपने बल दिखाता है । सोम पानीमें निताया जाता है ।

१२ शूरः न [ १२२९ ]- शूरके समान ( गभस्त्योः आयुधा धर्त्से ) सोम हाथोंमें शस्त्र धारण करता है ।

१३ विपत् अग्रा इय [ १२३० ]- जिसकी अंसे बावर्त्तित पानी बरताती है, उसीप्रकार ( दोवसी प्रपिन्ये ) छलोक और भूलोक कल देते हैं ।

१४ आजा न [ १२४० ]- तेजसे जैसे कोई समकता है, वैसे ही सोम ( अघर्धे धारा याति ) घनमें अपनी पारसे जाता है । जहां जाकर बचकता है ।

१५ प्रिय मिर्ध इव [ १२४४ ]- प्रिय मिर्धके समान ( प्रेष्ठ अतिथि स्तुये ) सर्व प्रिय अग्निकी स्तुति करता है ।

१६ रथं न पेयं [ १२४४ ]- रथके समान बल प्राप्त करनेवाले अतिथिकी में स्तुति करता है ।

१७ कवि इव प्रशस्त्य [ १२४५ ]- कविके समान प्रशस्तनीय ।

१८ गिरिः न [ १२४७ ]- पर्वतके समान ( विध्वस्तः पृथुः ) पारों ओरसे महान् ऐसा ( दिव्यः पाति ) सुलोकका दासक इन्द्र है ।



## नवमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋषिविष्णुवर्णन	ऋषि	देवता	छन्द
		( १ )	पद्मभाज सोमः	विष्णु
११७१	२।१६।१७	प्रतरंनो वैवोवाति	"	"
११७१	२।१६।१८	प्रतरंनो वैवोवाति	"	"
११७७	२।१६।१९	प्रतरंनो वैवोवाति	"	गायत्री
११७८	२।८।१	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११७९	२।८।२	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८०	२।८।३	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८१	२।८।४	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८२	२।८।५	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८३	२।८।६	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८४	२।८।७	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८५	२।८।८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८६	२।८।८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
		( २ )		
११८७	२।१३।१	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८८	२।१३।२	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११८९	२।१३।३	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९०	२।१३।४	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९१	२।१३।५	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९२	२।१३।६	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९३	२।१३।७	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९४	२।१३।८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९५	२।१३।९	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
		( ३ )		
११९६	२।१३।१०	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९७	२।१३।११	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९८	२।१३।१२	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
११९९	२।१३।१३	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२००	२।१३।१४	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२०१	२।१३।१५	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२०२	२।१३।१६	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२०३	२।१३।१७	असित काश्यपो देवलो वा	"	"
१२०४	२।१३।१८	असित काश्यपो देवलो वा	"	"

( १८८ )

## सामवेदका सुबोध अनुवादे

[ उत्तराचिकः ]

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदसंख्या	श्रुतिः	देवता	छन्दः
		( ४ )		
१५०५	१५१०१	उचम्य आगिरसः	ययमानः सोमः	गायत्री
१५०६	१५१०१	उचम्य आगिरसः	११	११
१५०७	१५१०१	उचम्य आगिरसः	११	११
१५०८	१५१०१	उचम्य आगिरसः	११	११
१५०९	१५१०१	उचम्य आगिरसः	११	११

( ५ )

१५१०	१५१११	अमहीयुरागिरसः	११	११
१५११	१५१११	अमहीयुरागिरसः	११	११
१५१२	१५१११	अमहीयुरागिरसः	११	११
१५१३	१५१११	अमहीयुरागिरसः	११	११
१५१४	१५१११	अमहीयुरागिरसः	११	११
१५१५	१५१११	अमहीयुरागिरसः	११	११
१५१६	१५१११	अमहीयुरागिरसः	११	११
१५१७	१५१११	अमहीयुरागिरसः	११	११
१५१८	१५१११	अमहीयुरागिरसः	११	११

( ६ )

१५१९	७१११	वसिष्ठो मन्त्रावरणिः	अग्निः	निष्टुप्
१५२०	७१११	वसिष्ठो मन्त्रावरणिः	११	११
१५२१	७१११	वसिष्ठो मन्त्रावरणिः	११	११
१५२२	८१११	मुकस आगिरसः	इन्द्रः	गायत्री
१५२३	८१११	मुकस आगिरसः	११	११
१५२४	८१११	मुकस आगिरसः	११	११

( ७ )

१५२५	१५१११	उचम्य आगिरसः	ययमानः सोमः	११
१५२६	१५१११	उचम्य आगिरसः	११	११
१५२७	१५१११	उचम्य आगिरसः	११	११
१५२८	१५१११	कविर्मर्षिः	११	अगती
१५२९	१५१११	कविर्मर्षिः	११	११
१५३०	१५१११	कविर्मर्षिः	११	११
१५३१	८१११	देवातिभिः कण्वः	इन्द्रः	अथावः- ( विषमा बृहती, तथा ततो बृहती )
१५३२	८१११	देवातिभिः कण्वः	११	११
१५३३	८१११	अगः प्रागायः	११	११
१५३४	८१११	अगः प्रागायः	११	११

संज्ञासंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषि	देवता	छन्द
		( ८ )		
१०३५	१५३५१५	निधुमि काश्यप	परमान सोम	गायत्री
१०३६	१५३५१६	निधुमि काश्यप	"	"
१०३७	१५३५१७	निधुमि काश्यप	"	"
१०३८	१५३५१८	अम्बरीषो वासगिरि ऋजिषा भारद्वाजश्च	"	अनुष्टुप
१०३९	१५३५१९	अम्बरीषो वासगिरि ऋजिषा भारद्वाजश्च	"	"
१०४०	१५३५२०	अम्बरीषो वासगिरि ऋजिषा भारद्वाजश्च	"	"
१०४१	१५३५२१	अनये पिप्प्या ऐश्वरा	"	द्विपदा विराट
१०४२	१५३५२२	अनये पिप्प्या ऐश्वरा	"	"
१०४३	१५३५२३	अनये पिप्प्या ऐश्वरा	"	"

( ९ )

१०४४	१५३५२४	उदना काश्य	अग्नि	गायत्री
१०४५	१५३५२५	उदना काश्य	"	"
१०४६	१५३५२६	उदना काश्य	"	"
१०४७	१५३५२७	नृमेघ आगिरस	इन्द्र	इन्द्रिण
१०४८	१५३५२८	नृमेघ आगिरस	"	"
१०४९	१५३५२९	नृमेघ आगिरस	"	"
१०५०	१५३५३०	जेता माधुच्छन्त	"	अनुष्टुप
१०५१	१५३५३१	जेता माधुच्छन्त	"	"
१०५२	१५३५३२	जेता माधुच्छन्त	"	"





## अथ दशमोऽध्यायः ।

॥ ७७

अथ पञ्चमपाठकस्य द्वितीयोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ परागारः शाक्यः; २ शुभ.शेष आजीवति. त देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः; ३ अतितः काययो देवलो वा;  
 ४, ७, राहूण आंगिरसः; ५ ( १-४ ), ५ ( प्रथम पाठः ) त्रिमेष आंगिरसः; ५ ( योरात्रयः पावाः ) ५ ( प्रथमः पावः )  
 १४ नृमेष आंगिरसः; ६ ( सोबात्रयः पावाः ) इन्मबाहो दार्ह्यवृत्तः; ८ पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा;  
 ९ वसिष्ठो मंत्रावहनिः; १० वासः कश्यपः; ११ दासं वंशानसः; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो  
 भारीषः; ३ गौतमो राहूणः, ४ अत्रिर्षोः; ५ विश्वामित्रो वायिनः, ६ जमदग्निर्भागवः; ७ वसिष्ठो  
 मैत्रावरुणिः ); १३ यमुभरिहाजः; १५ अयः प्रगाथाः; १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १७ मनुरात्मयः;  
 १८ अश्वत्थीषो वापिगिरः ऋत्रिश्वा भारद्वाजश्च; १९ वायव्यो विष्वा ऐश्वराः; २० अश्वहीमुरांगिरसः;  
 २१ त्रिषोः काव्यः; २२ गौतमो राहूणः; २३ मयुच्छन्दा मंत्राभिः ॥ १-७, ११-१३,  
 १६-२० पयनामः सोमः, ८ यवमानाप्येता, १०, १४-१५, २१ ( २-३ ), २२-२३ इतरः;  
 ९ अतितः, २१ ( १ ) अग्नीध्री ॥ १, ९ विष्टुषुः २-७, १०-११, १६, २०-२१ पायमी;  
 ८, १८, २३ मयुष्टुषुः १२ ( १-२ ), १४, १५ प्रगाथाः ( बृहती, सती बृहती );  
 १३ ( ३ ), १९ त्रिषवा विराट्; १३ जगती, १७, २२ उज्जिष् ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३  
 १२५३ अक्रान्तसमुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः ।  
 वृषा पवित्रे अभि सानो अग्रे बृहत्सोमो वापुषे स्वानो अग्निः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९.९.७४० )  
 १२५४ मस्ति वायुमिष्टये राघसे नो मस्ति मिश्रावरुणा पूयमानः ।  
 मस्ति शर्षो मारुतं मस्ति देवानमस्ति वावापृथिवी देव सोम ॥ २ ॥ ( ऋ. ९.९.७४१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १२५३ ] ( समुद्रः गो-पा ) पानी भरतानेवाला, रक्षक सोम ( प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् ) प्रवसे पहले  
 भुवनको शासन करनेवाले अन्तरिक्षमें ( प्रजाः जनयन् अभ्यद्रन् ) प्रजाओंको उत्पन्न करने-सबको भरेला भेष्ट हुआ । ( वृषा  
 रूपानः ) बलवर्धक सोमके रसको निकालनेके बाद ( अग्निः सोमः ) आवरणपीय वह सोम ( अधिस्थानो अग्रे पवित्र )  
 अधिकअग्रे रसे गए बालेकी छलनीमें ( बृहत् वापुषे ) अधिक बलता है ॥ १ ॥

[ १२५४ ] हे ( देव सोम ) विष्णु सोम ! ( नः इष्टये राघसे ) हमें अन्न और धन प्राप्त हो इसलिये ( वायुं  
 मस्ति ) वायुको प्रसन्न कर । ( पूयमानः ) जाना जानेवाला तू ( मिश्रावरुणा मस्ति ) मिश्र और वरुणको सन्तुष्ट कर ।  
 ( मारुतं शर्षः मस्ति ) मरुतोंके बलकी अन्नविकृत कर । ( देवात् मस्ति ) देवोंकी सन्तुष्ट कर ( वावापृथिवी  
 [ मस्ति ] ) सुलोक और पृथिवीको प्रसन्न कर ॥ २ ॥

१२५५ महत्तरसोमो महिषश्चकारामां यद्रमोऽवृणीत देवान् ।

अदधादिन्द्र पवमान ओजोऽजनपत्स्यै च्योतिरिन्दुः ॥ ३ ॥ १ (टे) ॥

१२५६ एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥ ( ऋ २।३।१ )

१२५७ एष विम्रेरमिष्टुतोऽयो देवो वि गाद्वते । दधद्रत्नानि दाशुपे ॥ २ ॥ ( ऋ २।३।६ )

१२५८ एष विश्वानि धार्यो शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषामसि ॥ ३ ॥ ( ऋ २।३।४ )

१२५९ एष देवो रथर्यति पवमानो दिव्यस्पति । आविष्कृणोति स्रग्नुम् ॥ ४ ॥ ( ऋ २।३।५ )

१२६० एष देवो विपन्मुभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥ ( ऋ २।३।२ )

१२६१ एष देवो विश्वो कृतोऽसि हरिर्वांसि वाधति । पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ( ऋ २।३।२ )

१२६२ एष दिवं वि वाधति विरो रत्नांसि धारया । पवमानः कनिकदत् ॥ ७ ॥ ( ऋ २।३।७ )

[ १२५५ ] ( महिषा सोमः ) महान् प्रथम सोम ( महत् तत्त्व स्वकार ) उस पहात कार्यको करता है । ( पम् ) को कार्य ( अर्थां गर्भः ) पानीके गर्भवाला यह सोम ( देवान् ज्ञानवृणीत ) देवोंकी सेवा करनेके लिए करता है । ( पवमानः ) छनकर इत सोमने ( इन्द्रे ओजः अदधात् ) इन्द्रमें जल बहाया, उत्तीव्रकार इत ( इन्दुः ) सोमने ( स्यै च्योतिः अदधात् ) सूर्यमें तेज स्थानित किया ॥ १ ॥

[ १२५६ ] ( एषः अमर्त्यः देवः ) यह अमर देव सोम ( द्रोणानि अभि आसद् ) शशमर्मे बँठनेके लिए ( पर्णवीः इव ) पत्तीके समान ( दीयते ) बेगले जाता है ॥ १ ॥

[ १२५७ ] ( विम्रेः अमिष्टुतः ) तानियोंके द्वारा प्रसूतित ( एषः देवः ) यह देव सोम ( दाशुपे रत्नानि दधत् ) रत्ताकी रत्न देता हुआ ( यषः विगद्वते ) जलोमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२५८ ] ( पवमानः एषः शूरः ) छात्रा जानेवाला यह शूर वीर सोम ( विश्वानि धार्यः ) सब धन ( स्रग्नुभिः वाधति ) अपने बलकी सहायतासे प्राप्त करते हुए ( सिषामसि ) हथें देनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

[ १२५९ ] ( एषः पयमज्ञः देवः ) यह छात्रा जानेवाला दिव्य सोम ( रथर्यति ) चरने जानेके लिए, रथकी इच्छा करता है । ( दिव्यस्पति ) और हथें दधत् पथार्थ देनेकी इच्छा करता है और ( स्रग्नुं आविष्कृणोति ) शस्त्र करता है ॥ ४ ॥

[ १२६० ] ( एषः पयमानः देवः ) यह छात्रा जानेवाला दिव्य सोम ( ऋतायुभिः विपन्मुभिः ) मत करनेवाले ऋतियोंके द्वारा, सोम ( हरिः ) घोड़ेकी सितप्रकार ( धाजाय मृज्यते ) सशमर्मे जानेके लिए सजाते हैं, उत्तीव्रकार शमया जाता है ॥ ५ ॥

[ १२६१ ] ( विषा कृतः ) संवृष्टियों द्वारा निबोडा गया, ( अ-दाभ्यः ) तथा न देवाया जानेवाला ( पवमानः देवः ) यह शूर होनेवाला दिव्य सोम ( हरिर्वांसि व्यति धारयति ) शशुओंकी कुचछता हुआ सत्ता है ॥ ६ ॥

[ १२६२ ] ( धारया पवमानः एषः ) सत्ते छात्रा जानेवाला यह सोम ( कनिकदत् ) शब्द करता हुआ ( रत्नांसि तिरः ) शत्रुके सोनोंकी तरफा हुआ धनस्थानते ( दिवं विधाधति ) स्वर्गलोचने जाता हुआ प्रतीत होता है ॥ ७ ॥

१२६३ एष दिव्यं व्यासरात्तिरो रज्ज्वास्थस्यस्तुतः । पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।३।८ )

१२६४ एष प्रमेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । इरिः पवित्रे अर्पति ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।३।९ )

१२६५ एष उ स्य पुरुषतो जज्ञानो जनयन्निपः । धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ २ ( दृ. ) ॥

[ पा० ३४ । उ० ३ । स्व० ६ ] ( ऋ. १।३।१० )

॥ इति प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१२६६ एष धिगा यात्यण्ड्या गूरो रथेमिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।५।१ )

१२६७ एष पुरू भियायते गृहते देवतातये । यन्नामृतास आशत ॥ २ ॥ ( ऋ. १।५।२ )

१२६८ एतं मृजन्ति मर्ज्यमुष द्रोणेऽप्यायवः । प्रषक्राणं गहीरिपः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।५।३ )

१२६९ एष हितो वि नीयतेऽन्वः शुन्ध्यावता पया । यदा मृजन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।५।४ )

१२७० एष रुक्मिभिरीयते वावो शुभ्रैरिन्द्राशुभिः । पतिः सिन्धुना मवन् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।५।५ )

[ १२६३ ] ( सु-ध्वरः पवमानः पयः ) उत्तम यत् करनेवाला तथा छाता जानेवाला यह सोम ( अस्तुतः ) अपराजित अर्थात् विजयी होकर ( रज्ज्वांश्च तिरः ) शत्रुके लोकोको गच्छ करके ( दिव्यं व्यासरात् ) स्वर्गको जाता हुआ प्रतीत होता है ॥ ८ ॥

[ १२६४ ] ( इरिः पयः देवः ) हरे रगका यह दिव्य सोम ( प्रमेन जन्मना ) प्राचीन जन्मसे ही ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंके लिए निष्कृत कर ( पवित्रे अर्पति ) छतनीसे छाया जाता है ॥ ९ ॥

[ १२६५ ] ( एष उ स्यः ) यही यह सोम ( पुरुषतो जज्ञानः ) बहुत कर्म करनेके लिए उत्पन्न हुआ हुआ और ( धारया जनयन् ) मग उत्पन्न करता हुआ ( सुतः धारया पवते ) रत्नकी धारसे छनता जाता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १२६६ ] ( शूरः ) शूरवीर तथा ( अण्ड्या ) अणुलिपिसे दवाकर निकाला गया ( पयः ) यह सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतम् ) इन्द्रके स्थानके पास ( आशुभिः रथेभिः ) शीघ्रवाणी रथोंसे ( गच्छन् ) जानेकी इच्छा करता हुआ ( धिया पाति ) बुद्धिपूर्वक जाता है ॥ १ ॥

[ १२६७ ] ( पयः ) यह सोम ( गृहते देवतातये ) यहाँ तक के लिए ( पुरू भियायते ) बहुतते कर्म करनेकी इच्छा करता है । ( यत्र ) जिस याममें ( यन्नामृतास आशत ) अमर देव बँठते हैं ॥ २ ॥

[ १२६८ ] ( आयय ) चरित्व ( मही ) गृह अन्वकार्यं बहुत मग उत्पन्न करनेवाले ( एतं मर्ज्यं ) इस गृह होनेके योग्य सोमको ( द्रोणेऽप्यायवः ) कतजमें छानकर रखते हैं ॥ ३ ॥

[ १२६९ ] ( हितः पयः ) हनिमोंमें रखा हुआ यह सोम ( विनीयते ) माहमनीय स्थानकी ओर लेजाया जाता है । ( अन्तः शुन्ध्यावता यथा ) यहाँ गृह होनेके पार्श्वसे ( यदि भूर्णयः ) धर्मयं यदि ( मृजन्ति ) उसे देवोंकी ओर ले जाते हैं ॥ ४ ॥

[ १२७० ] ( पात्री ) बलवान् और ( शुभ्रैः अंशुभिः ) सुध किरणोंसे युक्त ( पयः ) यह सोम ( सिन्धुना मवन् ) पतिः मध्यन् प्रवाहित होनेवाले रत्नको स्वामी होकर ( रुक्मिभिः ईयते ) यामकोंके साथ जाता है ॥ ५ ॥

१२७१ एष मृग्याणि दोधुमन्त्रिणीते युध्योऽ वृषा । नृम्या दधान ओजसा ॥६॥ ( ऋ. ९।१।५। )

१२७२ एष यद्यनि पिन्दनः पशुषा ययिवाऽ अति । अव श्रादेषु गच्छति ॥७॥ ( ऋ. ९।१।६ )

१२७३ एतस्मै त्वं दक्ष क्षिप्रौ हरिः हिन्वन्ति यातवे । स्त्रायुर्धं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ३ ( के ) ॥

[ धा० ३१ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।१।८ )

॥ इति द्वितीयः पण्ड. ॥ २ ॥

[ ३ ]

१२७४ एष उ स्य वृषा रथोऽन्या चरेमिरण्यत् । गच्छन्वाजऽ सहस्रिणम् ॥१॥ ( ऋ. ९।२।१ )

१२७५ एतं त्रितस्य योषणो हरिः हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥ ( ऋ. ९।२।२ )

१२७६ एष स्य मासुपीषा इषेनो न विक्षु सीदति । गच्छं जारो न योषितम् ॥३॥ ( ऋ. ९।२।४ )

१२७७ एष स्य यद्यो रसोऽय चष्टे दिवाः क्षिप्रः । य इन्दुवारमाविशत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२।५ )

[ १२७१ ] ( ओजसा मृम्या दधानः ) अपने सामर्थ्यसे धनोक्ते पारय करते हुए ( एषः ) यह सोमरत्न ( युध्यः वृषा विशीते ) जिसप्रकार मृगमें बिल अपने सोमोक्ते हिलाता है, उसीप्रकार ( मृम्याणि दोधुयत् ) अपनी किरनोक्ते हिलाता है ॥ ६ ॥

[ १२७२ ] ( यद्यनि पिन्दनः ) बंदनेवाले रासलोंकी पीषा देनेवाला ( एषः ) यह सोम ( परया अति ययिवाः ) अपनी यात्रिते शत्रुपर आक्रमण करता है, और ( श्रादेषु अव गच्छति ) पारने योग्य रासलोंकी कुशलता हुआ चला जाता है ॥ ७ ॥

[ १२७३ ] ( सु-स्त्रायुर्धं ) उसमें तत्त्वोंका उपयोग करनेवाले तथा ( मदिन्तमं ) जायमान आगवरायक ( त्वं हरिः एतं उ ) उस हरे रत्नके सोमकी ( यातवे ) वेनोंके पास ले जानेके लिए ( दक्ष क्षिप्रः हिन्वन्ति ) बलों अगुनियाँ बचाकर रत्न निकालती हैं ॥ ८ ॥

॥ यहाँ दूसरा पण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः पण्डः ।

[ १२७४ ] ( एषः ) यह ( रथः ) रत्नके समान वेगवान् तथा ( वृषा रथः ) बलवान् सोम ( सहस्रिणा राज्ञे ) हजारों प्रकारके शत्रु देनेके लिए ( गच्छन् ) कलकमें जाते ॥१॥ ( अन्या चरेमिः ) शत्रुओंको छलनीके द्वारा ( शन्यत् ) छला जाता है ॥ १ ॥

[ १२७५ ] ( त्रितस्य योषणः ) त्रितकी अगुनियाँ ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रकी पीनेके वास्ते देनेके लिए ( एतं हरिः इन्दुं ) इस हरे रत्नके सोमकी ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पारनेके लिये ॥ २ ॥

[ १२७६ ] ( स्यः एषः ) यह यह सोम ( मासुपीषु विक्षु ) अगुण्यकी प्रजाओंमें ( इषेनः न ) स्पष्ट पक्षोंके समान तथा ( योषितं गच्छन् जारः न ) स्त्रीके पास जाते ॥३॥ जारने समान ( या सीदति ) जाकर बैठता है ॥ ३ ॥

[ १२७७ ] ( दिवा विशुः ) सूर्योपका यह पुत्र ( यः इन्दुः ) सोमो है वह ( यारं या विशत् ) उसमें प्रवेश करता है, ( एषः रथः ) यह यह ( मघ रसः अय चष्टे ) जायद यज्ञनेवाला सोमरत्न अपनी देवता है ॥ ४ ॥

२५ [ साम हिन्दी भा २ ]

१२७८ एष स्य पीतये सुतो हरिरर्पति धर्षसि । क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।२।८।६ )

१२७९ एषं त्यक् हरितो दक्ष मर्मज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥ ४ ( धी ) ॥  
[ धा० २९ । उ० ८ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।२।८।७ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१२८० एष याजो हितो नृभिर्विभविन्मनसस्पतिः । अयं वार वि धावति ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२।८।१ )

१२८१ एष पयित्रे अक्षरस्तोमो देवेभ्यः सुतः । यिम्ना धामान्याविशन् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२।८।२ )

१२८२ एष देवः शुभायतेऽधि योनायसर्षः । वृत्रहा देववीर्यमः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।२।८।३ )

१२८३ एष वृषा कनिकदक्षभिर्जाभिभिर्यतः । अमि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२।८।४ )

१२८४ एष सूर्यमरोचयस्पधमानो अधि धवि । पयित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

( ऋ. १।२।८।५ [ प्रथम पादः ], ऋ. १।२।७।४ [ त्रयः पादाः ] )

[ १२७८ ] ( पीतये सुतः ) देवोंको पीनेके लिए निबोधा गया ( हरि धर्षसि ) हरे रमका और सबको पारण करनेवाला ( स्यः एषः ) यह यह सोम ( प्रियं योनिं ) अपने प्रिय स्थान बलदानमें ( क्रन्दन् अपि अर्पति ) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ५ ॥

[ १२७९ ] ( त्यं पतत् ) उस इस सोमको ( दक्षः हरितः ) बतों अंगुलिया ( अपस्युवः मर्मज्यन्ते ) पत करलती इच्छा करती हुई लाप करती है । ( याभिः ) मिन अंगुलिपीते ( मदाय शुम्भते ) शत्रुता जानक बसानेके लिए सोम छाना जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १२८० ] ( याजो ) बलवान् सोम ( नृभिः हितः ) यात्रकोंके द्वारा बलदानमें रखा गया है । ( विभविन् मनसः पतिः ) सर्वत्र और मनका स्वामी ( एषः ) यह सोम ( अयं वार वि धावति ) बालोंको छलनीकी ओर शोझता है ॥ १ ॥

[ १२८१ ] ( देवेभ्यः सुतः एषः ) देवोंको देनेके लिए निबोधा गया यह सोम ( पयित्रे अक्षरत् ) छलनीकी छाना जाता है । ( यिम्ना धामानि आधिदात् ) वह सब धामोंमें-देवोंके घरोंमें-प्रवेश करता है ॥ २ ॥

[ १२८२ ] ( ममार्थः वृत्र-हा ) अमर और दानुर्गोत्रा मांस करनेवाला ( देव-धी-तमः देवः एषः ) देवोंको बहुत अच्छा लगनेवाला यह विभ सोम ( अधि योनां शुभायते ) अपने बलदानमें सुखोपनि होता है ॥ ३ ॥

[ १२८३ ] ( वृषा एषः ) बल बसानेवाला यह सोम ( कनिकदक्षः ) शत्रु करते ॥ ( द्रोणभिः जाभिभिः यतः ) बतों अंगुलिपीते द्वारा बसानेके बाद ( द्रोणानि अमि धावति ) बलदानमें शोझता हुआ पहुँचता है ॥ ४ ॥

[ १२८४ ] ( पयित्रे ) छलनीमें रहनेवाला ( मत्सरो मदः ) आनन्द बसानेवाला सोम प्रलापना देनेवाला ( एष पयमानः ) यह पुत्र किया जानेवाला सोमरस ( अयि सूर्यं अधि मरोचयत् ) सूर्योपनि प्रदान करता है ॥ ५ ॥

१२८५ एष सुषेण हासते संवत्मानो विवस्वता । पतिवोचो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ५ ( के ) ॥  
[ धा० २६ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ २।२।२ [ प्रथमः पादः ] ऋ २।२।१४ [ त्रयः पादाः ] )  
॥ इति वसुधेः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ५ ]

१२८६ एष कथिरमिस्तुतः पयित्रे अधि सोशते । पुनानो मक्षपे द्विषः ॥ १ ॥ ( ऋ २।२।१ )  
१२८७ एष इन्द्राय वायवे स्वजित्पतिरि विच्यते । पयित्रे दक्षमाधनः ॥ २ ॥ ( ऋ २।२।२ )  
१२८८ एष नृमिर्नि नीपते दिवो मूर्ध्ना वृषा सुतः । सोमा वनेषु विषयित् ॥ ३ ॥ ( ऋ २।२।३ )  
१२८९ एष गन्धुसिचिदरपवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः पश्चाजिदस्तुतः ॥ ४ ॥ ( ऋ २।२।४ )  
१२९० एष शुष्मसिच्यदन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रसा ॥ ५ ॥ ( ऋ २।२।५ )  
१२९१ एष शुष्मदाभ्यः सोमा पुनानो अर्पति । देवावीरघश्च सदा ॥ ६ ॥ ६ ( शु ) ॥  
[ धा० ३१ । उ० ३ । स्व० ९ ] ( ऋ २।२।६ )

॥ इति वसुधेः खण्डः ॥ ५ ॥

[ १२८५ ] ( वाचः पतिः ) स्तुतिषा स्वामी ( अदाभ्यः एषः ) और न बढावा जानेवाला यह सोम ( सँ बलान्तः ) जलाविषोमें मिलावे जानेके लिए ( विच्यत्यता सूर्येण ) प्रकाशमान सूर्यके द्वारा ( हासते ) छीन्ना जाता है ।  
धर्तृमें छाया जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ लीधा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १२८६ ] ( कथिः अमिस्तुतः ) कथिर्-जानिर्-के द्वारा प्रशंसित होनेवाला ( पुनानः ) छाया जानेवाला ( द्विषः अपघनन् ) शत्रुओंको मारनेवाला ( एषः ) यह सोम ( अधि सोशते ) काले हिरण्यके समदेवर कूटा जाता है ॥ १ ॥

[ १२८७ ] ( दक्ष-साधनः स्वजित् एषः ) बल बढ़ानेके साधनोंको और स्वयं-सुख-को जीतनेवाला यह सोम ( इन्द्राय वायवे ) इन्द्र और वायुके लिए ( पयित्रे पतिरि विच्यते ) छाननेसे बचकरा हुआ नीचेके कलशमें मिरता है ॥ २ ॥

[ १२८८ ] ( दिवः मूर्ध्ना ) एनोक्का तिर ( वृषा सुतः ) बलवान् और रतक्ष ( विषयित् एषः सोमः ) सर्वत सोम ( वनेषु नृमिः नीपते ) लकड़ीके धर्तृमें मृत्तिकाओं द्वारा ले जाया जाता है ॥ ३ ॥

[ १२८९ ] ( गन्धुः हिरण्ययुः ) गी इवमें मिलाया जानेवाला, सोनेका स्वर्ण जिसमें होता है ऐसा ( इन्दुः पश्चाजित् ) चमकनेवाला और जीतनेवाला ( अस्तुतः ) अपराजित ( एषः पवमानः ) यह शुद्ध होनेवाला सोम ( अधि-प्रदत् ) दान्य करता हुआ व्यक्तता है ॥ ४ ॥

[ १२९० ] ( वृषा हरिः ) बल बढ़ानेवाला हरे रंगवा ( पुनानः इन्दुः ) पवित्र होनेवाला और चमकनेवाला ( शुष्मी पयः ) सामर्प्यवान् यह सोम ( अन्तरिक्षे आसिच्यदत् ) छाननेसे व्यक्तता है और ( इन्द्रं आ ) इन्द्रके पास पहुँचता है ॥ ५ ॥

[ १२९१ ] ( देवामी-अघशंसदा ) देवोंका रक्षक और सभी वस्तुओंका दाता करनेवाला, ( अ-दाभ्यः पुनानः ) न बढनेवाला और शुद्ध होनेवाला ( शुष्मी एषः अर्पति ) बलवान् यह सोम कलशमें जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ पञ्चवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

१२९२ स सुतः पीतये घृषा सोमः पावित्रे अर्पति । विम्रन्नृषांसि देवयुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।१ )

१२९३ ता पावित्रे विचक्षणो हरिरर्पति घर्णांसि । अभि योनिं कनिकदत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३।२ )

१२९४ स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति । रसाहा वारमन्ययम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।३।३ )

१२९५ स त्रितस्याभि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः क्षुर्यश्सह ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।३।४ )

१२९६ स घृषहा घृषा सुतो परिधाविद्दाम्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।३।५ )

१२९७ स देवः कविनेपिता३३भि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मध्वयन् ॥ ६ ॥ ७ ( खे ) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ७ ] ऋ. ९।३।६ )

॥ इति उच्छः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१२९८ यः पावमानोऽर्प्यत्पृषिभिः संभृतश्चसम् ।

सर्वैश्च पूतमश्राति स्वदितं मातरिभ्यना

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।११ )

[ १ ] पद्यः खण्डः ।

[ १२९२ ] ( देवयुः ) देवोको प्राप्त होनेवाला ( पीतये सुतः ) इत्यादि देवोंकी बीतेके लिए तैयार किया गया तथा ( घृषा ) बल बढ़ानेवाला ( सः सोमः ) वह सोम ( रक्षांसि निरनन् ) राक्षसोंका नाश करता हुआ ( पावित्रे अर्पति ) छलनीमें गोचे उतरता है ॥ १ ॥

[ १२९३ ] ( विचक्षण हरिः ) सबोंकी देखनेवाला, हरे रंगका ( घर्णांसि सः ) सबोंकी धारण करनेवाला वह सोम ( पावित्रे ) छलनीमें ( कनिकदत् योनिं अभि अर्पति ) सम्भ्र करता हुआ कलशमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२९४ ] ( वाजी दिवः रोचनं ) बलवान्, पुलोकमें लयकनेवाला ( रसाहा पवमानः सः ) राक्षसोंका नाश करनेवाला, बृद्ध होनेवाला वह सोम ( अर्थय वारं विधावति ) बालोंकी छलनीमें छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ १२९५ ] ( सः ) वह सोम ( त्रितस्य अभि सानवि ) त्रितके महान् यज्ञमें ( पवमानः ) छाना- जाता हुआ ( जामिभिः सह ) महान् तेजोंके ( क्षुर्यं अरोचयत् ) क्षुर्यकी प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

[ १२९६ ] ( घृषहा घृषा ) अनुको मारनेवाला बलवान् ( सुतो ) रस विभोदनेके बाद ( परिधाविद् ) धन देनेवाला ( अदाम्य सः सोमः ) न दबनेवाला वह सोम ( वाजं इव असरत् ) घोड़ेके समान कलशमें जाता है ॥ ५ ॥

[ १२९७ ] ( देवः इन्दुः सः ) [ पुलोकमें ] प्रकाशित होनेवाला वह सोम ( कविना इयित् ) अश्वयुके द्वारा रोपित ( इन्द्राय मध्वयन् ) इन्द्रको महानता देकर ( द्रोणानि अभि धावति ) कलशमें जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ छंदा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १२९८ ] ( यः ) जो ( कृषिभिः सम्भृतं सर्वं ) श्रुतिविकों द्वारा एकत्रित किए गए रसका तथा ( पावमानीः ) पवमानने मनीना ( व्यप्येत ) व्यपयन करता है । ( सः ) वह ( मातरिभ्यना स्वदितं सर्वं ) वायुके द्वारा लगे हुए सारे ( पूतं अश्राति ) रसिच मशरा नष्टन करता है ॥ १ ॥

१२९९ पावमानो<sup>१</sup>यो<sup>२</sup> अ<sup>३</sup>प्ये<sup>४</sup>त्पृ<sup>५</sup>थि<sup>६</sup>भिः<sup>७</sup> संभृ<sup>८</sup>त<sup>९</sup>स्वर<sup>१०</sup>सम् ।

तस्मै<sup>१</sup> सरस्वती<sup>२</sup> दुहे<sup>३</sup> क्षीर<sup>४</sup>स्त्वर्षि<sup>५</sup>मेषू<sup>६</sup>दकम्<sup>७</sup>

॥ ३ ॥ ( अ. १।६।१२ )

१३०० पवमानो<sup>१</sup> स्वस्त्वयनी<sup>२</sup> सुदु<sup>३</sup>घा<sup>४</sup> हि<sup>५</sup> धृत<sup>६</sup>ञ्जुतः<sup>७</sup> ।

ऋषिभिः<sup>१</sup> संभृ<sup>२</sup>तो<sup>३</sup> रसो<sup>४</sup> ब्राह्मण<sup>५</sup>संभृ<sup>६</sup>त<sup>७</sup>हितम्<sup>८</sup>

॥ ३ ॥

१३०१ पावमानो<sup>१</sup>र्दधन्तु<sup>२</sup> न<sup>३</sup> इमं<sup>४</sup> लोक<sup>५</sup>मथो<sup>६</sup> अमु<sup>७</sup>म् ।

कामान्समर्चयन्तु<sup>१</sup> नो<sup>२</sup> देवो<sup>३</sup>र्दिवैः<sup>४</sup> समा<sup>५</sup>हृताः<sup>६</sup>

॥ ४ ॥

१३०२ येन<sup>१</sup> देवाः<sup>२</sup> पवित्रेणात्मानं<sup>३</sup> पुनते<sup>४</sup> सदा<sup>५</sup> । तेन<sup>६</sup> सहस्रधारेण<sup>७</sup> पावमानो<sup>८</sup> पुनन्तु<sup>९</sup> नः<sup>१०</sup> ॥ ५ ॥

१३०३ पावमानो<sup>१</sup> स्वस्त्वयनी<sup>२</sup>स्ताभिर्गच्छति<sup>३</sup> नान्दनम्<sup>४</sup> ।

पुण्या<sup>१</sup>श्च<sup>२</sup> भक्षान्भक्षयत्यमु<sup>३</sup>त्तत्त्वं<sup>४</sup> च<sup>५</sup> गच्छति<sup>६</sup>

॥ ६ ॥ ८ ( ती ) ॥

[ भा० ४४ । उ० १ । १२० ४ ]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

[ १२९९ ] ( यः ऋषिभिः संभृतं रसम् ) जो ऋषियों द्वारा एकत्र किए गए सारस्वती ( पावमानोः अर्धयेति ) शुद्ध करनेवाले यज्ञोपाध्याय करता है, ( तस्मै सरस्वती ) उसे विद्यारथी ( क्षीरं त्वर्षिः अमु उदकं दुहे ) हूय, पी, सहस्र क्षीर पानी देती है ॥ २ ॥

[ १३०० ] ( पावमानो ) शुद्ध करनेवाले ( स्वस्त्वयनी ) कल्याण करनेवाले ( सु-दुघा ) वरस कल देनेवाले ( धृतञ्जुतः ) पीली बूटि करनेवाले से मय ( हि ऋषिभिः संभृतः रसः ) ऋषियोंके द्वारा एकत्र किए गये सारस्वत है । ( ब्राह्मणोऽमु अन्तुं हितं ) वेदवाणी ब्राह्मणोंमें मानों यह अन्त ही रस दिया है ॥ ३ ॥

[ १३०१ ] ( देवैः समाहृताः पावमानोः देवीः ) देवी द्वारा संपार की गई पवित्रता करनेवाली यह वैवताक्षी ऋषा ( नः ) हमें ( इमं अथो अमुं लोकं ) इस और उस लोक ( दधन्तु ) देवें । और उस लोक में ( नः ) कामान् समर्चयन्तु ) हमारा मनोरथ सफल करें ॥ ४ ॥

[ १३०२ ] ( देवाः ) देव ( येन पवित्रेण ) जिस पवित्र साधनेसे ( सदा आत्मानं पुनते ) हमेशा अपनेको पवित्र करते हैं । ( तेन सहस्रधारेण ) उन हजारों तरङ्गों साधनेसे ( पावमानो न पुनन्तु ) पवित्र करनेवाली यह ऋषावे हमें पवित्र करें ॥ ५ ॥

[ १३०३ ] ( पावमानोः ) पवित्र करनेवाली और ( स्वस्त्वयनी ) कल्याण करनेवाली ओ ऋषावे हैं ( तानिः नान्दनं गच्छति ) उनके सहयोगसे मनुष्यको ज्ञानन्युषं स्थान प्राप्त होता है । वह ( पुण्या भक्षान् च भक्षयति ) पवित्र भक्षण करता है ( अमुत्तत्त्वं गच्छति ) और अमरत्वको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ सप्तवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[4]

१३०४ अगन्म महा नमसा यन्निष्ठ यो दीदाय समिद्धः स्व दुरोणे ।

चित्रमानु० रोदसी अन्तरुनी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१।१ )

१३०५ स महा विश्वा दुरितानि साह्वानभिः एवं दम आ जातवेदाः ।

स नो रक्षिषद्दृष्टादवद्यादस्मान्पृणत उत नो मथोनः ॥ २ ॥ ( ऋ ७।१।१ )

१३०६ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।

स्वे वसु सुषणनानि सन्तु पुत्र्यं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ९ ( ही ) ॥

[ धा० २१ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।१२।१ )

१३०७ महा-इन्द्रो य ओजसा परम्यो पृथिमाश्चिव । स्तोमैर्वसस्य वानुजे ॥ १ ॥ ( ऋ ८।६।१ )

१३०८ कण्वा इन्द्रं पदक्रतु स्तोमिपयस्य साधनम् । जामि भवत आयुधा ॥ २ ॥ ( ऋ ८।६।३ )

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १३०४ ] (यः इहे दुरोणे) जो अपने यत्नस्वान्वये (समिद्ध दीर्घ) अतिनी उत्तम रीतिसे प्रवीण करता है। उस (यष्टि) तथा (ऊनी रोन्दी अन्तः चित्रमातुं) इस विद्याल छात्राभ्युपवीये बीचमें विशेष प्रशानाम् (स्वाहृत) उत्तम रीतिसे आहुति दिये गये (विश्रुतः प्रत्यर्थ) सर्वत्र सम्यक् करनेवाले अग्निके पास (महा नमस्त) भगवन्) हय महान् समस्कार करते हुए जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११०५ ] ( मद्रा ) अन्धे महान् प्रभाववै ( विध्या ) दुरितानि स्वाद्यान् । तस्य पाषाणै हूत वरतेवास ( आत-  
पेदाः सः क्षीर ) शयना प्रसार करनेवाला अग्नि ( दूधे आ स्तये ) वायुनात्मने प्रसारित होता है, ( सः दूषणः सः )  
बह स्तुति करनेवाले हमें ( दुरितेताम् अयद्यात् रक्षिष्यन् ) पाषाणों और विभिन्न वस्तुओं से सुरक्षित रखता है, ( उत मघोनः  
ब्रह्मन् ) और हरिको पाषाणों रखनेवाले हमारा रक्षण करता है ॥ ३ ॥

[ ११०६ ] हे ( अग्ने ) ज्ञाने ! ( त्वं यदुक्तं ) उक्त मित्रः । तू ब्रह्म और मित्र है । ( यमिष्टाः स्यां मतिमि  
 धरंति ) जितेष्टिम ज्वि ॥१॥ बुद्धिबल जो मैं स्तुतिबोति संनवित करोते हूँ, ( त्वे यस्तु ) तेरे पास जो पान है  
 ( सुव्रतानि सन्तु ) हमारे द्वारा स्वीकारने योग्य हों । ( यूयं ) तुम ( व ) हमें ( अक्षरं स्वस्त्यभिः पात ) हमें  
 ब्रह्मपान करनेवाले साथियों मरहित करो ॥ ३ ॥

[ १३०३ ] ( या इन्द्रः ) जो इन्द्र ( युष्टिमान् पर्जन्या इव ) वृष्टि करनेवाले मेघों के समान ( तेजसा महान् ) करने तेजसे महान् है, वह इन्द्र ( धर्मस्थ स्थोमेः यावृधे ) बलके स्तोत्रों की वज्रता है, इन्द्रवा बन बजता है ॥ १ ॥

[ १३०८ ] ( यत् ) जह ( वपया ) वषावे ( इन्द्र ) इन्द्रो ( स्तोमैः ) यज्ञस्य ग्राधर्नं अत्रत ) स्तोत्रे  
द्वारा यज्ञा साधन बनाया, तत्र ( आयुषा ) जामि अथवा आयुष-यज्ञ-वा कोई वायस क्या नहीं ऐसा लोग कहते ह्ये ॥२॥

१३०९ प्रजाभूतस्य विश्वतः ॥ यद्वन्त वक्ष्यः । विश्वा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥ १० ( टि ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । १३० ३ ] ( ऋ. ८।६।२ )  
॥ इत्यष्टमः सूक्तः ॥ ८ ॥

[ ९ ]

१३१० पवमानस्य जिघ्रता हरश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६६।१९ )  
१३११ पवमानो रयीसमः शुभेभिः शुभश्चस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्वजः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६६।२० )  
१३१२ पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः । दधरस्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ११ ( ह ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । १३० १ ] ( ऋ. ९।६६।२० )  
१३१३ पयोता विश्वता सुतश्च सोमो य उत्तमश्च हविः ।  
दधन्वाश्च यो नयो अप्सवेन्तरा सुपाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )  
१३१४ नूनं पुनानोऽद्रिभिः परि सवादृषः सुरभितरः ।  
सुते चिरवाप्सु मदासो अधसा श्रीणन्तो गोभिश्चरम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।२ )

[ १३०९ ] ( यत् ) अथ ( जिघ्रताः वक्ष्यः ) आकाशको अपने वेगसे भरनेवाले बाह्यकयी धौडे, ( ऋतस्य प्रजा ) यत्नमें जानेके लिए तैयार हुए हुए इन्द्रको ( प्र भरन्त ) वेगसे लेकर जाते हैं, तब ( विश्वाः ) ऋषिबल (ऋतस्य वाहसा) यत्नको प्रेरणा देनेवाले स्तोत्राति उसकी स्तुति करने लगेते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ १३१० ] ( जिघ्रताः ) धनुका नाद करनेवाले ( हरेः अजिरशोचिषः ) हरे रगके जीर तब जाहू कपना तेज फैलानेवाले ( पवमानस्य ) छाने जानेवाले सोमकी ( चन्द्रा जीराः असृक्षत ) तेजस्वी धारा बहने लगी हैं ॥ १ ॥

[ १३११ ] ( रयीसमः ) उत्तम रथमें बैठनेवाला, ( शुभेभिः शुभश्चस्तमः ) अपने तेजसे अधिक तेजस्वी ( हरिः चन्द्रः ) हरे रगके सैन्धवपत्त ( मरुद्वजः पवमानः ) बरखोकी मरुद्वज पत्त करनेवाला, तब छाने वाले पवमान, यह सोम हैं ॥ २ ॥

[ १३१२ ] हे ( पवमान ) शूद्र होनेवाले सोम ! ( वाजसातमः ) बहुत अन्न और घस देनेवाला तू ( स्तोत्रे सुवीर्यं दधत् ) स्तुति करनेवालेको उत्तम वीरपुत्र भवना उत्तम पराक्रम करनेका तात्पर्य होता है ॥ ३ ॥

[ १३१३ ] ( यः सोमः ) जो सोम ( उत्तमं हविः ) उत्तम हविरूप हैं और ( य नर्यः आ ) जो मानवोका हित करनेवाला हैं यह ( अप्सु अन्तः वक्षन्वान् ) यत्नमें पिखाया जाता है । ( सोमः अद्रिभिः सुपाव ) उस सोमको अप्सुर्गोत्रि पत्तरेसे कूटकर उसका रस निकाला है । उस ( सुते ) सोबरखी ( दधतः परि पिबन्त ) यहाँसे कपूर साकर सोचो ॥ १ ॥

[ १३१४ ] हे सोम ! ( अ-दृषः ) न बहनेवाला ( सुरभितरः ) अत्यन्त सुगन्धित ( नूनं पुनान् ) अब शूद्र होता हुआ ( नद्रिभिः परिक्षय ) ॥ गालीची छलनीसे छनता जा । ( सुते चित् ) छननेके बाद ( मन्धरा गोभिः श्रीणन्त ) अन्न और गीबुधले मिलाकर ( जप्त्वा अप्सु त्वा म्पातः ) फिर तुम धानीमें मिलाकर प्रसाद करते हैं ॥ २ ॥

१३१५ परि स्वानश्रद्धमे देवमादगः ऋतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥ १२ ( रा ) ॥  
[ धा० १६ । उ० २ । स्व ७ ] ( ऋ १।१०।१ )

१३१६ अमावि सोमो अरुधा वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।  
पुनानो वारमत्येष्यन्त्येष्यन्त्येष्यन् न योनि घृतवन्तमासदत् ॥ १ ॥ ( ऋ १।८१।१ )

१३१७ पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नामा पृथिव्या गिरिषु क्षर्य दधे ।  
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्तस्त्रावभिर्ममते वीति अश्वरे ॥ २ ॥ ( ऋ १।८१।१ )

१३१८ कतिर्वैधस्या ययैवि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाज्रमर्पसि ।  
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृष्ट घृता वसानः परि यासि निर्णिजेष ॥ ३ ॥ १३ ( गू ) ॥  
[ धा० १६ । उ० ३ । स्व ६ ] ( ऋ १।८१।२ )  
॥ इति त्रयम. खण्डः ॥ १ ॥  
[ १० ]

१३१९ श्रापन्त इव क्षर्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।  
वयुनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भार्ग न दीधिमः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।९९।३ )

[ १३१५ ] ( देवमादगः ऋतुः ) देवीको आगन्व देनेवाले पतेना साधन ( इन्द्रः विचक्षणः ) तेनस्वो और  
शमी ( स्वानः ) सोम ( चक्षुसे परि ) सबका निरीक्षण करनेके लिए कलत्रमें उतरे ॥ ३ ॥

[ १३१६ ] ( अरुधः वृषा ) तेजस्वी और बल बढ़ानेवाला ( हरिः सोमः अरुधावि ) हरे रगका सोम गूढ़  
किया है, यह ( राजा इव दस्मः ) राजाके समान वर्जनीय है । ( गाः अभि अचिक्रदत् ) पार्योंको बैलकर शब्द करने  
लगना है, गावके रूपमें मिलनेके बाध धाव करता है तथा ( पुनानः अन्त्येष्यन्त्येष्यन्त्येष्यन् न योनि ) पवित्र होनेवाला यह सोम भेदके  
बालोंकी छजनीसे छाना जाता है । ( दयेनः न ) वाज वधोके सबान ( घृतवन्त योनि आसदत् ) पानीसे भरे हुए  
कलत्रमें जाकर पहुँचता है ॥ १ ॥

[ १३१७ ] ( महिषस्य पर्णिनः पर्जन्यः पिता ) बड़े बड़े पतेवाले सोमका उत्पन्न करनेवाला पर्जन्य-मेघ है ।  
यह ( पृथिव्याः नामा गिरिषु क्षर्य दधे ) पृथिवीके नामभस्मानमें रहनेवाले पर्वतोंमें बिबाहस्थान बनाता है । ( स्वसारः  
आपो गाः ) अंगुलियाँ, बल और गर्म ( अभि उदासरन् ) उसके सामने आती हैं, ( वीति अश्वरे ) श्रेष्ठ यनोंमें  
( प्रायमिः सं घमते ) पापोंके साथ वह मिलकर रहता है ॥ २ ॥

[ १३१८ ] है। सोम । सोम । ( कतिः ) वह जानी सोम ( वैधस्या माहिने ययैवि ) यत् करनेकी इच्छासे छजनी  
पर जाता है ( मृष्टः ) मृष्ट करनेके बाद ( अत्यः न ) वीरके समान ( याजं अम्यमर्पसि ) सधाममें जाता है । हे सोम ।  
( दुरिता भपसेधन् ) पार्योंको दूर करते हुए ( नः मृष्ट ) हमें सुखी कर । ( घृता वसानः निर्णिजे परि यासि ) पू  
जनमें मिलनेके बाद छजनीमें जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ नौवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] द्वायम खण्डः ।

[ १३१९ ] हे पुरुषो ! ( आश्रमः श्रय इव ) तुमके आश्रममें रहनेवाली चित्तमें शिथिलकार पुरुषा आमार तेसो  
है, जगत्कार ( विश्वा इन्द्र इन्द्रस्य मद्रम ) सब धन इन्द्रके आश्रममें रहते हैं । ( जातः ) प्रसन्न हुआ हुआ हय  
( वयुनि भोजनमा जनिमानि ) जिन धनोंको करने नामध्योंके प्रसन्न करना है उन धनोंके ( भार्ग न प्रति दीधिमः )  
भाग्यो हम पिताने प्राप्त होनेके समय धारण करते हैं ॥ १ ॥

१३२० अलंपिराति वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य राख्यः ।  
 यो अस्य कामे विषतो न रोपति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥ १४ ( छ ) ॥  
 [ धा १२ । उ० नास्ति । ए० ६ ] ( ऋ ८।९९।४ )

१३२१ यत इन्द्र भवामहे ततो नो अमयं कृषि ।  
 मघयन् छिन्धि तव तन्न ऊनये वि द्विषो वि मृषो जहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।१९ )

१३२२ त्वं हि राक्षसस्पते राक्षसो महः क्षयस्पासि विषर्ता ।  
 तं त्वा वषे मघयन्तिन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ २ ॥ १५ ( धा ) ॥  
 [ घा० २० । उ० २ । ए० २ ] ( ऋ. ८।६१।१४ )  
 ॥ इति वसन्त-सप्तमः ॥ १० ॥

[ ११ ]

१३२३ त्वं सोमासि पारयुमेन्द्र ओजिष्ठो अश्वरे । पवस्व सचहवद्रयिः ॥ १ ॥ ( ऋ ९।७०।१ )

१३२४ त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः । इन्दुः सत्राजिदस्तुतः ॥ २ ॥ ( ऋ ९।७०।२ )

[ १३२० ] ( अलंपिराति वसुदामुप स्तुहि ) निष्ठाप पुराणीको वीर-चरणोंके धन देनेवाले इन्द्रको स्तुति कर ।  
 क्योंकि ( इन्द्रस्य राख्यः भद्राः ) इन्द्रके बान कल्याणकारी होते हैं । ( यः प्रम-दानाय चोदयन् ) जो इन्द्र अपने  
 मनकी वान देनेके लिए प्रेरित करता है ( विषतः अस्य कामे न रोपति ) वह अपनाता करनेवाले इस प्रसन्नानको इच्छा  
 मष्ट नहीं करता ॥ २ ॥

[ १३२१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यतः भवामहे ) जिन दुष्टोंसे हम करते हैं ( ततः नः अमयं कृषि ) उनसे  
 हमें निर्मय कर । हे ( मघयन् ) मनवान् इन्द्र ! ( नः तन्न तव ऊनये विषयि ) हमें तव अपने रक्षणसे सुरक्षित करनेके  
 लिए तू समर्थ हो । ( छिन्धि : विजहि ) ह्वेय करनेवालोंका वधनय कर तथा ( मृषः वि ) हमारे शत्रुओंको हरा ॥ १ ॥

[ १३२२ ] हे ( राक्षसस्पते ) मनपते इन्द्र ! ( त्वं हि ) तू ही ( महः राक्षसः क्षयस्व ) महान् शत्रुके लयनकर  
 ( विषर्ता असि ) निघ्नो अस्ति निघ्नो रीतिसे धारण करनेवाला है । हे ( गिर्वणः ) स्तुत्य और ( मघयन् इन्द्र ) मनवान् इन्द्र !  
 ( तं त्वा ) उस दुष्ट ( सुतावन्तः वषे हवामहे ) सोमयज्ञ करनेवाले हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ दसर्था खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] यथादेशः खण्डः ।

[ १३२३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अन्द्रः ओजिष्ठः ) आनन्द धरानेवाला और बहुत सानमयवाला तू ( अश्वरे  
 धारयुः असि ) हिसारहित यज्ञमें सोमरक्षकी धारसे युक्त होकर रहता है । इसलिये ( संहवय् रायिः त्वं पवस्व ) पव  
 देनेवाला तू युद्ध हो ॥ १ ॥

[ १३२४ ] हे सोम ! ( सुतः ) निघ्नो गया ( त्वं मदिन्तम ) तू अत्यन्त आनन्द धरानेवाला ( दधन्वान् )  
 यज्ञकी धारण करनेवाला ( मत्सरिन्तमः इन्दुः ) परम उत्साह धरानेवाला और धनयज्ञकी ( सत्राजिदस्तुतः )  
 तव शत्रुओंको नीतनेपाला और पराजित न होनेवाला है ॥ २ ॥

२६ [ साम द्वितीय भा. २ ]

१३२५ त्वं सुखाणो अद्रिभिरभ्यर्ष्य कनिकदत् । वृमन्तं शुभ्रमा मर ॥ ३ ॥ १६ (ली) ॥

[ पा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( अ. १५७३ )

१३२६ पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोत्सा । आ फलशं मधुमान्सोम नः सदः ॥ १ ॥  
(क. १।१०६।७)

( १५. ११. १९५७ )

१३२७ तव द्रष्टा उदग्रत इन्द्रं मदाय बावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पयः ॥ २ ॥  
( अ. १।७६।८ )

( १३. १०६५८ )

१३२८ आ नः सुतास इन्दवः पुनानां धावता रयिम् ।  
वष्टिषावो रीत्यापः स्वविदः ॥ ३ ॥ १७ ( चौ ) ॥

वष्टिघावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ३ ॥ १७ ( वौ ) ॥

[ घा० १५ । उ० नारित । ख० नास्ति ] ( ऋ ९।१०६।९ )

१३२९ परि त्य० ह्यतश्चरिं वञ्च पुनन्ति वारेण ।  
यो दद्यान्विश्व० ह्यपरि भेदेन सह गच्छति ॥ १ ॥ ( ऋ ११, १७ )

यो दद्यान्विश्वामित्र इत्यपि मदेन सह गच्छति ॥ १ ॥ ( ऋ ९/९८/७ )

१३३. द्वियं पञ्च स्वयञ्जस-सखायो अद्रिस-हृतम् ।  
 त्रियमिन्द्रस्य काश्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥ ३ ॥ (ऋ. ९।१८।६)

प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।६ )

[ १३२५ ] हे सोम ! ( अद्रिभिः सुप्यायः त्वं ) क्षणरति कृकर रत्न निकाला गपात् ( कनिष्ठाद् अ० प० )  
 शब्द करता हुआ बलशायी वा । ( घमस्तं क्षुप्त्वा आभर ) तेजस्वी सामर्थ्य हुमें दे ॥ १ ॥

[ १३२६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( देषयीतये ) देवीकी शैतके लिए ( भोजसा धारामिः पयस्य ) वेगते पार  
बनकर छनता जा । हे ( सोम ) सोम ! ( अग्रमान् ) भीठा वृ ( नः कलशं आ सद् ) हमारे कलशमें आकर रह ॥१॥

[ ११२७ ] (उद्ग्रुहः स्य द्विष्टः) पानीके साथ मिलनेवाले तेरे दस (भद्राय इहम् पावृधुः) आगारके लिए राखने दस बडाते है । बायें (देयासः कै र्वा अमृताय पपुः) देवगण सुखस्वच पुसे अनर होयके लिए पीते है ॥ २ ॥

[ १३२८ ] { पृष्ठि-धायः } सुकोरते ब्रुति बरनेवाले ( रुन-विदुः ) स्वर्परो भाननेवाले ( रीर्यायः सुतासः ) पयोवर पातोडी ब्रुति बरनेवाले ये सोमरस ( पुनाताः इन्द्र्यः ) स्वण्ड होनेवाले और तेजावी हैं । हे सोमरतो ! ॥ ( न. रयि आ धायत ) हर्षे धन प्राप्य हो ऐसा करो ॥ ३ ॥

[ १३२९ ] ( दयति हति ) गुण्य मोर साय दृढ करिवाले ( बाधु स्यं ) उत मूरे रंभे मोमको ( धारेण परि पुनरिति ) छलनीये छानकर मुष्ट करते हैं । ( यः धियमान् देयान् ) जो सब देवसिपास ( भवेन सह इत् ) आनन्दवारण गुणसि साय ( परि गच्छति ) जाता है ॥ १ ॥

[ १३३० ] ( दिःपंच साक्षात् ) इति अनुमितिः । स्वयंशरत्नं अग्निमेतत् । स्वयंशरत्नो भोर पापरोति इति गा । ( इत्यस्य त्रिंशत्कार्यं यं ) इत्यनेन त्रिंशत्कार्यं त्रिंशत्कार्योः ( ऊर्ध्वः ) इत्यनेन इत्यनेन ( प्रस्तापयते ) इत्यनेन इत्यनेन ।

१३३१ इन्द्राय सोमं पातये धृत्रमे परि पिच्यसे ।

नरे च दक्षिणावते वीराय सदानासदे

॥ ३ ॥ १८ ( जी ) ॥

[ भा० २२ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. २।१८।१० )

१३३२ पवस्व सोम मदे दक्षायसो न निको बाजी भनाय

॥ १ ॥ ( ऋ. २।१०२।१० )

१३३३ प्र ते सोतारो रसे मदाय पुनन्ति सोमं महे युन्नाय

॥ २ ॥ ( ऋ. २।१०१।११ )

१३३४ शिशुं जज्ञानं हरिं भृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्द्रम्

॥ ३ ॥ १९ ( का ) ॥

[ भा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. २।१०१।१९ )

१३३५ उपो पु जातमन्तरं गोभिर्मैत्रं परिष्कृतम् । इन्द्रं देवा अयासिपुः ॥ १ ॥ ( ऋ. २।११।२३ )

१३३६ तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं रसं रक्षिष्यीरिव । य इन्द्रस्य हृदयं सनिः ॥ २ ॥

( ऋ. २।११।१४ )

१३३७ अपो नः सोमं यं गवे धुषस्व पिप्पुषीमियम् । यषां समुद्रमुक्थ ॥ ३ ॥ २० ( वी ) ॥

[ भा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. २।११।१५ )

॥ इति पुनर्वसुः खण्ड ॥ ११ ॥

[ १३३१ ] हे ( सोम ) सोम । ( धृत्रमे इन्द्राय पातये ) धृत्रको वारनेवाले इन्द्रको बेनेके लिए ( दक्षिणा-  
घते वीराय ) पत्तनं बलिगा देनेवाले वीरके लिए गीर ( सदाना-सदे नरे ) यत्तनं बँडनेवाले यजमानके लिए ( परि-  
पिच्यसे ) तू कलशमें टपकता है ॥ ३ ॥

[ १३३२ ] हे ( सोम ) सोम । ( बाध्या न ) पीनेके सवान ( निको ) पीकर शुद्ध किया गया ( बाजी )  
बैरवान् तू ( महे दक्षाय भनाय पवस्व ) शत्रुको हरा देनेवाली शक्ति, बल और धनके लिए शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १३३३ ] हे सोम । ( सोतारः ) रस निकालनेवाले ऋषियज ( ते रसं ) तेरे रसके ( मदाय पुनन्ति ) भाग्य  
प्राप्तिके लिए शुद्ध करते हैं, तथा ( महे युन्नाय सोमं ) वहान् तेमसी सोमरसोंको छानते हैं ॥ २ ॥

[ १३३४ ] ( शिशुं जज्ञानं ) नये यँदा हुए बच्चेको मँते शुद्ध करते हैं उसीप्रकार ऋषियज ( देवेभ्यः ) देवोंको  
बेनेके लिए ( हरिं इन्द्र सोमं ) हरे रसके चमकनेवाले सोमकी ( पवित्रे भृजन्ति ) छाननेसे शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

[ १३३५ ] ( जातं मन्तरं ) तैयार हुए हृदय तथा पानीमें मिलाये गए ( यषां ) धातुकन वास करनेवाले ( गोभिः  
परिष्कृतं ) गावके दूधमें मिलाने गए ( इन्द्रं देवाः ) उप अयासिपुः । सोमरसको देव प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

[ १३३६ ] ( यः इन्द्रस्य हृदयं सनिः ) जो इन्द्रके हृदयका अंश लेनक है ( यं हृदयं नः गिरो रसं चर्षन्तु ) ऐसे  
उस सोमका वर्णन हमारी बाणी जतना रोसिते करे । ( यत्सं शिष्यरी- इव ) निगमकार वासकको उसकी माता बडाती  
है, उसीप्रकार हमारी बाणी सोमके यज्ञको बडावे ॥ २ ॥

[ १३३७ ] हे सोम । ( नः गवे वा अर्यं ) हमारी गावोंके सुलके लिए ॥ बलशर्मे वा । ( पिप्पुषी इय धुस्-  
स्व ) पीठिक अन्न हमें समुद्र दे । हे ( उक्थ्य ) सुल्य सोम । ( समुद्रं यषां ) कलशमें पानीको बडा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ न्यारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १२ ]

१३३८ आ पा ये अमिमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिःरानुपक् । येपामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

( ऋ. ८।४९।१ )

१३३९ घृदन्निदिष्म एषां भूरि श्रुतं पृथुः स्वरुः । येपामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४९।२ )

१३४० अयुद्धं ह्युवा वृत्तं शूर आजति सत्वभिः । येपामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥ २१ ( ठ ) ॥

[ घा० १ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४९।३ )

१३४१ य एक इदिदपते वसु मर्ताय दाक्षुपे । इतानो अमतिष्कृत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥

( ऋ. १।८४।७ )

१३४२ यद्विदि त्वा वदुम्य आ सुतावाऽमाविवासति । उमं उत्पत्यै श्रव इन्द्रो अङ्ग ॥ २ ॥

( ऋ. १।८४।९ )

१३४३ कदा मर्वमराघसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

कदा नः शुभ्रवर्द्धिर इन्द्रो अङ्ग

॥ ३ ॥ २२ ( कि ) ॥

[ घा० ११ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. १।८४।८ )

[ १२ ] द्वादशः श्लोकः ।

[ १३३८ ] ( ये ) को ऋषि ( आ पा ) सामने बैठकर ( अमिमिन्धते ) अमिषी प्रवीण करते हैं । ( युवा इन्द्र ) येषां सखा ) तदन इन्द्र जिसका मित्र है, वे ( रानुपक् ) बर्हिः, स्तृणन्ति ) कमते वेबोके किष्ट आसन फोलाते हैं ॥ १ ॥

[ १३३९ ] ( युवा इन्द्रः ) येषां सखा ) तदन इन्द्र जिसका मित्र है, वेते ( एषां इक्ष्मः घृदत् इत् ) इन ऋषिपौत्री समिया बहुत हैं । ( श्रुतं भूरि ) श्रुति भी बहुत है ( स्वरुः पृथुः ) शस्त्र भी बड़े-बड़े हैं ॥ २ ॥

[ १३४० ] ( युवा इन्द्रः ) येषां सखा ) तदन इन्द्र जिसका मित्र है, वह ( अयुद्धः इत् ) युद्ध करनेवाले इन्द्रा न रक्षते इत् भी ( युवा वृत्तं ) योद्धामिति युद्ध वस्तुको ( सत्वभिः शूराः ) अरनेबलही सहायतासे शूरवीर होने हुए ( आजति ) हरा देता है ॥ ३ ॥

[ १३४१ ] ( यः एक इत् ) को अनेका ही इन्द्र ( दानुपे मर्ताय वसु विदपते ) वान देनेवाले याज्ञिकों पत्र देता है, वह ( अमतिष्कृतः इन्द्रः ) पराजित न होनेवाला इन्द्र ( उमं इन्द्रानां ) उत्तीर्णभव इत सब आत्मा रक्षणी होता है ॥ १ ॥

[ १३४२ ] ( वदुम्यः यः विद्विदि ) बहुत अनुष्ममिने को यज्ञमान ( सुतावान् ) लोचयान करने ( रवा ) तेरी ( आ विवागति ) आराधना करता है, ( त्वा ) उसको ( इन्द्रः ) इन्द्र ( उमं दायाः ) उम बल ( अंग आपारयते ) बहुत अरने देता है ॥ २ ॥

[ १३४३ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( कदा ) कब ( क्षुम्पमिव मर्व ) बल न देनेवाले मनुष्यों ( पदा शुभ्रं इत् ) पैरों के निग्नद्वार चमकी हुई होती हैं, उत्तीर्णकार ( स्फुरत् ) मल्ट करेगा ? हे ( अंग ) मित्र । ( नः, गिरा ) वदा शुभ्रवत् ) वह हमारी स्फूर्ति बल मुनेता ॥ ३ ॥

१३४४ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

ब्रह्माणस्त्वा श्रुतकृत उद्धृष्टमिव येभिरे

॥ १ ॥ ( ऋ १।१०१ )

१३४५ यस्तानोः सान्नाह्णो भूर्धृस्पष्ट कर्त्तव्यम् ।

तदिन्द्रो अर्थं चेति युयेन वृष्णिरेजति

॥ २ ॥ ( ऋ १।१०२ )

१३४६ शुक्ष्मा हि केक्षिना हरी वृषणा कक्ष्यमा ।

अथा न इन्द्र सोमपा गिराद्युपभृति चर

॥ ३ ॥ २३ ( ऋ ) ॥

[ भा० २१।३० २।२३० ४ ] ( ऋ १।१०३ )

॥ इति द्वावपि सप्त ॥ १२ ॥

॥ इति पञ्चमप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥ पञ्चमप्रपाठकस्य समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

[ १३४४ ] हे ( शतक्रतो ) सैकसों कर्न करनेवाले इन्द्र ! ( गायत्रिणं त्वा गायन्ति ) उद्गाता तेरी स्तुतिक गान करते हैं । ( अर्किणः अर्कं अर्चन्ति ) अर्चना करनेवाले वृक्षनीय इन्द्रकी अर्चना करते हैं । ( ब्रह्माणः त्वा ) अग्न्य ऋषिश्च भी तेरी महिमा गाते हैं । ऋण ( यथा इय ) जिसप्रकार बांसकी ऊपर उठते हैं, उसीप्रकार तेरा महत्त्व वर्णन करके तुम ( उत्तु येभिरे ) उठते हैं ॥ १ ॥

[ १३४५ ] ( यत् ) जब भजमान ( सानोः सानु आह्वः ) समिपा बादि सानेकेलिये वृहाडकी छोटीवर चढ़ता है, तब वह ( भूरि कर्त्तव्य अस्पष्ट ) बहुत प्रयत्न करता है । ( तत् इन्द्र ) उस तबव इन्द्र ( अर्थं चेति ) यत्नबानका उद्देश्य प्राप्तता है जोर ( वृष्णिं यूयेन ) मनोरमकी वृष्टि करनेवाला वह इन्द्र यहाँके साथ यद्यभूमिसे ( यजति ) आता है ॥ २ ॥

[ १३४६ ] ( सोमपा ) सोम पीनेवाला इन्द्र ( केक्षिना वृषणा ) जलमअबालवाले, बलवान् ( कक्ष्यमाः हरी ) युद्ध करीरवाले अपने घोड़ोंको ( शुक्ष्मा हि ) अवजय कीयता है । ( अथा ) बावमें है ( इन्द्र ) इन्द्र । ( नः गिरा उपभृति चर ) हमारी स्तुति धुननेके लिये पासमें आ ॥ ३ ॥

॥ यहाँ बारहवां सप्तक समाप्त हुआ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥



## दशम अध्याय

इन्द्र

इस दशम अध्यायमें सोमका वर्णन, वितेव रूपते है । पर उसके साथ अन्य देवोंकी भी वर्णन है । जनमेंते इन्द्र देवताका वर्णन प्रथम देखिए—

१ इन्द्रः कदा न-राधसं मर्त, पदा क्षुम्प इव,

स्फुरत् [ १३४३ ]- इन्द्र कब, पचोति भूतोंको रोहनेके सधान, कभूस दान त केनेवाले मनुष्यको, रोदिता ?

उत्तर मनुष्य तो गायानमें रहें । मनुष्य मनुष्य समाजको परेजान करता है । यह भाव यहाँ है ।

२ इन्द्रः उग्रो शतः मापत्यते [ १३४२ ]- इन्द्र उग्र



बल होता है। वह इन्द्र अपने उपासकों को बलवान् बनाता है।

३ इन्द्र ओजसा महान् [ १३०७ ]- इन्द्र अपने तेजसे महान् है।

४ विश्वा इन् इन्द्रस्य भद्रत [ १३१९ ]- सय प्रचारके धन निषचयने इन्द्रके आधयते रहते हैं।

५ जात ओजसा धम्सि जनिमानि [ १३१९ ]- इन्द्र उत्पन्न होने ही अपनी शक्तिसे सय धन उत्पन्न करता है।

६ अलपिरासि यमुदां उप स्तुहि । इन्द्रस्य रातयः भद्राः [ १३२० ]- पाप रहित तथा दान करनेवाले पुरुषों को धन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति करो। इन्द्रके दान बरपाय करनेवाले हैं।

७ य मनः दानाय धोदयन्, धिषत् अस्व कामं न रोपति [ १३२० ]- जो इन्द्र अपने मनको दान देनेके लिए प्रेरित करता है तथा जो दान देनेवालेकी इच्छाका मन्त्र नहीं करता।

८ हे इन्द्र । यत् भयाग्ने तत् न भयस्य पृथि [ १३२१ ]- हे इन्द्र । जहाँ हमें भय हो वहाँ हमें निर्भय कर।

९ ना तप्त तत् ऊतये क्षाधि । क्षिप धि जहि । मृधा वि [ १३२१ ]- नष्ट अपने संप्रदायों में सुरक्षित करनेमें समर्थ है। देव करनेवालोंकी हारा और हितक प्रयुक्तोंकी हार कर।

१० यत् वज्राः इन्द्रं तोमः यमस्य साधन भवत । आयुधा जामि ध्रुवत [ १३०८ ]- जब वज्रोंसे इन्द्रको लोभने द्वारा पतन साधन बनाया, तब क्षत्रियों उपयोग करनेवाले कोई कारण नहीं बचा, ऐसा लोग वहाँ लगे। इसी शक्ति स्थापित हो गई कि क्षत्रियों तकनेवा कोई कारण ही नहीं बचा ऐसा लोगोंकी प्रतीति हुआ।

११ हे राघव । धने । त्व मादः राघवः क्षयस्य विषर्षा असि [ १३२२ ]- हे पतने इन्द्र । निषचयने धूम्रमान् पर्वतों की मोर मरुत् पर्वतों पर स्वामी है। इन्द्रके पास बहुत तांदे धन भी है मोर बहुतने घर भी।

१२ येनां युधा इन्द्रः कथाः नृजः धयुदः इत् युधा भुतं साधमिः आजनि [ १३४० ]- निजका मित तरंग इन्द्र है, वे गुरु पुरुषों इन्द्र का होने का भी योग्यता निरूपण साधने करने सामर्थ्य है।

१३ य एषः इन् दानुने मर्तोष यमु धिदयो । भद्रनिष्पुतः इन्द्रः ईमान [ १३४१ ]- जो अनेकाली इन्द्र दान देनेवाले धनुषको धन देता है ऐसा न करनेवाला इन्द्र निषचयने महान् ईश्वर है।

१४ यमस्यो इन्द्रो मे न विनेहं सिद्ध्यति या या ए—

## इन्द्रका सोम पीना

१ दूरः पयः अण्ड्या इन्द्रस्य निष्कृतं आनुभिः रथेभिः धिया याति [ १२९६ ]- यह दूर सोम अगुलियोंसे बनाकर निकालनेके बाद इन्द्रके स्थानके पास गोध्र जानेवाले रथसे बुद्धिपूर्वक जाता है।

पहले सोमको कूटते हैं, बादमें अगुलियोंसे बनाकर उसका रस निकालते हैं, फिर उसे इन्द्रके रहनेके स्थानपर जाते हैं। उसका रससे जाना आसन्निक है।

२ इन्द्राय पातये त्रितस्य योपणः हरि इन्दुं अग्निः मिः हिंस्यति [ १२७५ ]- इन्द्रको तोमरसे देनेके लिए त्रित ऋषिरी अगुलियां इस हरे रगने सोमकी पाथरीसे कूटती हैं।

३ पुष्या हरिः पुनात् इन्दुः क्षुप्ति पयः अन्तरिक्षे इन्द्रं या असिप्यद्व [ १२९० ]- बल बढ़ानेवाला, हरे रगका मुद्र होनेवाला और धन करनेवाला वह तोम छलनोंसे होकर इन्द्रके पास पहुँचता है।

४ देव्यः इन्दुः, पयिना इयितः, इन्द्राय मंदयन्, द्रोणानि अभि धायति [ १२९७ ]- ( सुलोचने ) प्रकाशित होनेवाला वह तोम जबिके द्वारा प्रेरित होनेके बाद इन्द्रकी मरुत् सेकर बलमान जाता है।

५ उदुष्टुन सध द्रप्स्य मदाय इन्द्रं पावृषुः [ १३२७ ]- पानीके साथ मिलनेवाले तेरे रस आनन्दके लिए इन्द्रका पय बढ़ाते हैं।

६ देवांसः क रयां अयुताय पयु [ १३२७ ]- देव-गण आनन्द देनेवाले तुम तोमरसको अमरता प्राप्त करनेके लिए पीते हैं।

७ पुष्येक्षे क्षिप्वायने इन्द्राय पानये सद्नासदे नरे पमिषिष्यते [ १३११ ]- वज्रकी भारनेवाले तथा दान देनेवाले इन्द्रके पीनेके लिए क्षीरपशु - मन्त्रधर्म बँधे हुए यजमानके लिए यह सोमदा छाना जाता है।

इस प्रकार इन्द्रकी पीनेके लिए सोमदा देनेका वर्णन है।

## अग्नि

अग्नि विषयक मंत्र भी बोधने इन अध्यायमें हैं—

१ ऋते दूतोये यः समिधः दीदाय, पथिष्ठं उर्या गेदुर्गा अगतः विप्रमानुं व्यादुर्गं विप्रतः प्रपंचं महा नमसा अगन्त [ १६०४ ]- अग्नि वह स्थानमें अग्निकी उत्तम रीतिसे प्रतीत किया जाता है, उस तरफ, दिशा

एतत्क ओर पृथोक्तके बीचमें विशेष प्रकाशमान, उत्तम रीतिसे दी गई आहुतिके कारण सर्वत्र प्रकाशमान अग्नि के पास हव्य मयस्कार करते हुए जाते हैं ।

२ मद्रा विभ्या दुरितानि साहान् जानवेदाः अग्निः दमे आ स्तये । सः गृणतः नः दुरितात् अयध्यात् रक्षिषत् । उत मघोनः अस्मान् रक्षिषत् [ १३०५ ]- अपने महान् प्रभावसे सब पापोंको दूर करनेवाला, आनका प्रसारक अग्नि धमाशालमें प्रशंसित होता है । वह स्तुति करनेवाले हव्ये परोक्षित न मिश्रित कमीसे दूर करता है और हविको प्राप्तमें रखनेवाले हमारो रक्षा करता है ।

३ हे अग्ने ! त्वे यस्य सुपणनानि सन्तु [ १३०६ ]- हे अग्ने ! त्वे धन हमारे द्वारा स्वीकार करने योग्य हों ।

यहां धमाशालमें अग्नि प्रसीत बिचा जाता है, उत्तकी स्तुति की जाती है, उत्तम हव्यनीय पशुधोभा उत्तम हवन किया जाता है, इसप्रकार प्रसीत हुई हुई अग्नि अनेक प्रकारसे लोगोंकी रक्षा करती है, इत्यादि वर्णन यहां आये हैं ।

### देवोंको सोमरस

इन्द्रको सोमरस देनेका वर्णन पीछे आया है । अब देवोंको सोमरस देने जानेका वर्णन चलते हैं—

१ हे सोम ! नः इष्टये राक्षसे पायुं मित्रावरणा मारुतं शार्घं । देवान् ध्यापयिषी मरिस [ १२५४ ]- हे सोम ! हमें अत और धन प्राप्त हो इसलिए वायु, मित्र, वज्र, मरुत, सद्यदेवों तथा सुलोकि और पुमिवीको सन्तुष्ट कर ।

२ ययमानः सोमः इन्द्रे ओजः, सूर्ये ज्योतिः, अर्षा गर्भैः देवान् आहृणीत [ १२५५ ]- छने हुए सोमने इन्द्रमें सामर्थ्य तथा सूर्यमें तेज बढ़ाकर और पानीमें मिलकर देवोंको सेवा की ।

३ देवेभ्यः सुतः पवित्रे अक्षरसु विभ्या धामहति आविशान् [ १२८१ ]- देवोंको देनेके लिए यह सोमरस छानीसे छाना जाता है । यह देवोंके सब स्थानमें पहुंचता है ।

४ दक्षसाधनः स्वर्जित् पणः इन्द्राय वायवे पवित्रे परि विच्यते [ १२८७ ]- बल बढ़ानेवाला साधन तथा स्वर्गको जीतनेवाला यह सोम इन्द्र और वायुको देवोंके लिए छानीसे छाना जाता है ।

५ देवायीः अघशंसह्य अदाम्यः पुनानः क्षुष्पी एषः गर्गति [ १२९१ ]- देवोंके देनेके लिए वायुवीकी

मष्ट करनेवाला तथा न घबनेवाला यह सोम छाना जाता है । छनकर वर्णनमें गिरता है ।

६ देवयुः पीतये सुतः वृषा रक्षांसि विधनन् पवित्रे अर्पति [ १२९२ ]- देवोंके देनेके लिए निषोढा गया यह बल बढ़ानेवाला सोमरस राक्षसोंको मारकर छतनीसे छाना जाता है ।

७ यः विभ्यान् देवान् मर्दन सह इन् परि गच्छति [ १३२९ ]- यह सोमरस सब देवोंको आमन्द देनेको इच्छासे देवोंके पास जाता है ।

८ जातं अच्युतं भंगं गोभिः सुपरिष्कृतं इन् देवाः उप अयासिषुः [ १३३५ ]- संसार किए गए, पानीमें मिलाये गए अच्युत नाश करनेवाले तथा मायके रूपमें मिश्रित सोमके पास वेच जाते हैं ।

९ इन्द्रस्य इदं सभिः सं नः गिरः सर्वधन्तु [ १३३६ ]- इन्द्रके हृदयको आनन्द देनेवाला यह सोम है, हमारे बाली उसको स्तुति करनेके उत्तरे पशुको बढ़ावे ।

यह सोमरस तैय्यार करने के लिये प्रथम देवोंको समर्पित किया जाता है । बलमें उसे श्रुतिमान् पीते हैं, ऐसा यह सोम पर्यंतपर-हिमालयके ऊँचे शिखरपर मिलता है ।

### पर्यंतपर सोम

यह सोम हिमालय पर्यंतकी ऊँची पठार पर उगता है । इस विषयमें मंत्रोंमें वर्णन इस प्रकार है—

१ गिरिपु शयं दधे [ १३१७ ]- पर्यंतपर यह सोम जका धर बनाता है ।

२ दिवः शिङ्गाः इन्धुः [ १३७७ ]- सुलोक्तों जम्मा हुआ यह सोम है । सुलोक्तका अर्थ है हिमालयकी ऊँची पठार ।

३ दिवः सूर्या वृषा [ १२८८ ]- सुलोक्तों ऊँचे स्थानपर यह बल बढ़ानेवाला सोम रहता है ।

४ पुष्टिवायः स्वर्जित् सुतासः इन्द्रः [ १३२८ ]- स्वर्गलोके युष्टि करनेवाले, स्वर्गतो जाननेवाले ये सोमरस हैं । सोम पर्यंतपर ऊँचे स्थानपर रहता है । वहाँसे युष्टि होती है । यह सोम स्वर्गमें रहता है, इसलिए यह स्वर्गको जानता है । ये वर्णन सोमरस हिमालयके ऊँचे शिखरपर उगता है यह बात बताते हैं ।

### सोमका पत्थरोंमें कूटा जाना

१ नीते अघरे प्रावभिः सं वसते [ १३१७ ]-

यज्ञमें सोम पायतेति बूटा जाना है और बादमें उसका रस भृगुतिथीति बहाकर निकाला जाता है।

### रस अंगुलियां

अग्निमैत्रो बभूव अंगुलियां उवा कूटं हृष्ट सोमको बहाकर रस निकालती है। इस विषयमें वर्णन इस प्रकार है—

१ त्वं वृषा हरितः मर्मज्यन्ते [ १२७९ ]—उस सोमको बहा अंगुलियां घुड़ करती है।

२ एष वृषा कनिमदत् ब्रुवामिः जामिमिः यनः प्रोणानि अग्निं धावति [ १२८३ ]—यह बल बड़ानेवाला सोम शब्द करता है और उस बहियों अर्थात् अंगुलियोंके द्वारा शब्दकर बलामें जाता है।

३ द्विः पंच सखाय रघयदासं अद्रिस्तंहतं हन्द्रदय श्रियं काम्यं ऊर्मय प्रस्तापयन्ति [ १३१० ]—दोनों अंगुलियां स्वयं घातकी तथा पश्यन्ति कूटे हृष्ट तथा हन्द्रको विष और दण्ड लगनेवाते सोमको पानोते गृह्णन्ती है।

४ द्यायुषं मविन्तमं हरिं खातये वक्षक्षिपुः क्षिपन्ति [ १३७३ ]—उसम हाथीका उपयोग करनेवाले, आनन्द-बाणक और हरे रंगके सोमको वेचोके बास लेजानेके लिए दोनों अंगुलियां रस निकालती है।

इस प्रकार दोनों अंगुलियों द्वारा बहाकर रस निकालनेका वर्णन इस अभ्यासमें है। ऐसा यह सोमरस मेढके बागोंकी छलनीसे छाना जाता है, उस विषयका वर्णन अब देखिए—

### सोम छाना जाता है

१ अग्निं सानीं अग्रे पथिरे युहत् यायुषे [ १२५३ ]—अग्नि कर्माईपर रने हुए बागोंकी छलनीमें सोमरस अधिक बहता है, छाना जाता है।

२ हरिः पथः देय देयेभ्यः सुनः पथिरे अर्पति [ १२५४ ]—यह हरे रंगका बलनेवाला देवोके लिए निबोधा गया सोमरस छलनीमें छाना जाता है।

३ एषः अग्रेया यारेमि अग्रयत् [ १२७४ ]—यह सोमरस मेढके बागोंकी छलनीमें छाना जाता है।

४ यार्जी नृमिः हितः अग्रे यारे पिधावति [ १२८० ]—यह बल बड़ानेवाला तथा दाज्यों द्वारा रसा मया सोमरस मेढके बागोंकी छलनीमें नीचेके बर्तनमें गिरता है।

५ यार्जी वरसोहा सः पयमानः अययं यारं पिधा यनि [ १२९४ ]—यह बलवान् और रासनीकी कारनेवाला, छाना जानेवाला सोमरस मेढके बागोंकी छलनीमें छाना जाता है।

६ हर्षत हरिं यारेण परे पुनरिति [ १३२९ ]—पवित्र और हरे रंगका सोम छलनीसे छाना जाता है।

७ शिन्तुं जसामं हव, देयेभ्यः हरिं इन्दुं सोमं पथिरे मृजन्ति [ १३३४ ]—नये जने हुए बच्चोंको मित्र-प्रकार स्नान करते हैं, उसीप्रकार देवोंको देनेके लिए निबोधा गया हरा सोमरस पवित्र करनेवाली छलनीसे घुड़ किया जाता है।

इसप्रकार सोमरस छाननेके वर्णन अनेक मन्त्रोंमें हैं। मेढके बागोंकी छलनी बनती है। उस छलनीको एक कलशमें घुड़ कर रखते हैं और उस पर दूसरे कलशसे सोमरस छँला जाता है, सब यह छनकर नीचेके कलशमें टपकता है। उसके टपकनेका शब्द होता है। उसके शब्द होनेका वर्णन इस प्रकार है—

### सोम ध्वन्द करता है

१ ययनु साधिपृणोति [ १२५९ ]—सोम शब्द प्रकट करता है।

२ एषः पयमानः धारया कनिमदत् [ १२६२ ]—यह छाना जानेवाला सोमरस धारसे शब्द करता है।

३ हरिः सः पथिरे कनिमदत् योनिं अग्निं अर्पति [ १२९३ ]—यह हरे रंगका सोमरस छलनीसे शब्द करता हुआ नीचेके बर्तनमें जाता है।

४ अद्रिमिः सुप्यायः यं कनिमदत् सन्धयं [ १३२५ ]—पावरसे दृढ़कर निकाला गया घृ शब्द करता हुआ नीचेके बर्तनमें आ।

५ पीतये सुनः हरिः एषः अग्रद्वं योनिं अग्निं अर्पति [ १३७८ ]—पीतके लिए निबोधा गया यह सोमरस अपने मित्र बलामें शब्द करता हुआ जाता है।

६ इन्दुः एषः पयमानः अधिपदत् [ १२८९ ]—बलनेवाला यह घुड़ होता हुआ संभरत शब्द करता हुआ छाना जाता है।

इस प्रकार सोमरस छाना जाता है और शब्द करता है। ऊपरके वर्तनों नीचेके बर्तनमें यदि कोई द्रव पड़ा गिराया जाए तो उसका शब्द शब्द तो होगा ही। बही यह शब्द है। उगारा आनकारिक वर्णन इसमें है।

### गोमूत्रा चमकना

सोमरस अग्रेकी अवस्थामें चमकना है। चमकनेका गुण सोमरसमें और सोमरसमें है। वर्णनकर अह। उगरी है,

यहाँ पर भी यह धनवती है, पर रत अधिक धनवता है ।  
इसका वर्णन वेदमें इस प्रकार है—

१ देव सोम [ १२५४ ]— धनकनेवाला सोम ।

२ हरे अजिरशोचिष पयमानस्य चन्द्राः जीराः  
अष्टशत [ १३१० ]— हरे रणके, सर्वत्र तेज फैलानेवाले,  
शुद्ध होनेवाले सोमरसकी तेजस्वी पात्रा बहती हैं ।

३ पयमानः हरे चन्द्राः [ १३११ ]— शुद्ध होनेवाला  
सोमरस हरे रणका तेज फैलाता है ।

४ हे पयमान ! रश्मिभि रश्मिस्तुहि [ १३१२ ]— हे  
सोमरस ! तू जपनी किरणोंमें व्याप्त हो ।

५ अस्यः वृषा [ १३१६ ]— यह यलवान् सोम  
तेजस्वी है ।

इसप्रकार सोमरस धनवता है । सोमलताकी कूटकर  
उसका रस निकालते हैं । उसमें पानी मिलाकर छानते हैं,  
बादमें उसमें गायका दूध मिलाया जाता है। इस विधयमें  
निल वर्णन है—

### गायके दूधमें मिलाना

१ गोपा. [ १२५३ ]— सोम गायें पालता है । गायके  
दूधमें वह मिलाया जाता है ।

१ गाः अभि अचिक्रद्व [ १३१६ ]— गायके पास  
गाय करता हुआ जाता है ।

३ वृषारः गाप, गा अभि उदासरत् [ १३१७ ]  
— अंगुली, धानी और गाय सोमके पास जाती हैं । मनुष्यिया  
बचाकर रस निकालती हैं, फिर उसमें पानी और गायका  
दूध मिलाया जाता है ।

इसप्रकार सोममें गायका दूध मिलाया जाता है । पानी  
और गायें उसके सामने जाती हैं, इसका अर्थ है कि उसमें  
पानी और गायका दूध मिलाया जाता है । अन्धके लिए  
पूर्णका उपयोग, दूधके लिए गायका प्रयोग यह वेदोंकी  
प्रवृत्ति ही है ।

### सोम शुद्धमें जाता है

१२२ भावि देव सोमरस पीते हैं । इसकारण धनकनेवाला  
बढ़ता है । बादमें वे शुद्धमें आकर धनुकी खाते हैं । यह  
सोमरसका कार्य है, ऐसा वर्णन वेद करता है—

१ पयमान देवः अदाभ्याः हरांसि अति धावति  
[ १२६१ ]— यह शुद्ध होनेवाला, न बढ़ाया जानेवाला सोम  
शत्रुओंकी कुचलता जाता है ।

२७ [ साम हिचो मा २ ]

२ पयमानः एषः रजोसि तिर., दिवं विधायति  
[ १२६२ ]— शुद्ध होनेवाला 'यह सोमरस शत्रुओंको दूर  
करते हुए धनुकेमें मारने की शक्ति लाता है ।

३ पयः पयमानः अस्तुत. रजोसि तिर, दिवं  
व्यासरत् [ १२६३ ]— यह शुद्ध होनेवाला मरणाजित सोम  
शत्रुओंको दूर करता हुआ स्वर्गमें ओर जाता है ।

४ एष धुनातः द्विषः अपध्मन् पावित्रे अधितो-  
नये [ १२८६ ]— यह पवित्र होनेवाला सोम शत्रुओंको दूर  
करते हुए पवित्र स्थानपर कूटा जाता है ।

शत्रुओंको दूर करनेका अर्थ है, शुद्धमें जाना और शत्रुओंके  
साथ लड़ना । यह बीरोंका कार्य है । बीर सोम पीते हैं उस  
कारण वे उत्साहित होकर शत्रुओंको दूर करते हैं । यह  
सोमके उद्देश्य हीका है, इसीलिए सोम ही यह सब करता  
है ऐसा वर्णन यहाँ किया है ।

### सोमको पानीमें मिलाना

१ एषः देवः अप विधायते [ १२५७ ]— यह द्विष  
सोम पानीमें मिलाया जाता है ।

२ पाजो सिन्धूना पति भञ्ज [ १२७० ]— यह  
बलवान् सोम नदीका स्वामी हो गया है । पानीमें मिलाया  
गया है ।

३ घृता घसान निर्जिज परिपासि [ १३१८ ]—  
पानीमें मिलाये जानेके बाद छछनीमें जाता है ।

इसप्रकार सोमरसकी पानीमें मिलाया जाता है ।

### सोम धन देता है

१ एषः देव दाशुषे रत्नानि वधत् [ १२५७ ]—  
यह सोम शत्रुओंमें शत्रु देता है ।

२ एषः धूरः विभ्यानि वार्यां सिपासति [ १२५८ ]  
— यह धूर सोम सबके द्वारों को धारण करने योग्य बन देता है ।

३ एषः ओजसा मृष्या दधानः [ १२७१ ]— यह  
सोम अपने सामर्थ्यमें धन देता है ।

४ न रयिं आघातत [ १३२८ ]— हे सोमरस !  
हमें धनके पात्र पटुका ।

### सोम उत्तम वीर्य देता है

१ वाजसात्म स्तोत्रे छुवीर्यं दधत् [ १३१२ ]—  
यस मदानेवाला यह सोम स्तुति करनेवालेको उत्तम वीर्य

देता है। सोमरस पीनेसे शरीर उत्तम बलपुत्र होता है, इस कारण उत्तम हन्तानें होती हैं।

### पवित्र करनेवाली वेदवाणी

वेदमंत्रोंमें पवमानसूक्तका महत्त्व इसप्रकार वर्णित है—

१ यः ऋषिभिः संभृते रसं पायमानाः अभ्येति, नः सर्वं पूर्तं अग्राप्ति [ १२९८ ]— जो ऋषियों द्वारा एकत्रित किए गए पविमानो मन्त्रसंग्रहस्वी ज्ञान - रसका अभ्ययन करता है, वह सब प्रकारसे पवित्र जगत् जाता है।

२ तस्मै सरस्वती क्षीरं सर्पिः मधु उदकं हुदे [ १२९९ ]— जो पायमानो मन्त्रका अभ्ययन करता है, उसे सरस्वती दूध, घी, सह्य और जल देती है।

३ पायमानाः स्वस्त्वयनी सुदुधा [ १३०० ]— पवमानसूक्त कल्याण करनेवाले और उत्तम अन्न देनेवाले हैं।

४ देवैः समाहृताः पायमानाः देधीः नः इमे अयो भन्तु लोकं दधन्तु, नः कामान् समर्पयन्तु [ १३०१ ]— देवों द्वारा एकत्रित की गई पायमानो देवी हूँ इस लोकमें और उत लोकमें उत्तम स्थान देवे, और हमारी सब इच्छा पूर्ण करे।

५ देवाः येन पविषेण सदा आत्मानं पुनते, सोम पायमानाः नः पुनन्तु [ १३०२ ]— देव जिस पवित्रता करनेके साधनोंसे अपनी पवित्रता करते हैं, उन साधनोंसे ही पवमानसूक्त हमारी पवित्रता करे।

६ पायमानाः स्वस्त्वयनी ताभिः नान्वनं मच्छति पुष्यान् भक्षान् भक्षयति, अमृतत्वं च मच्छति [ १३०३ ]— वे पवमान सूक्त कल्याण करनेवाले हैं, इनकी महापताके आनन्द मिलता है, पुष्यकाष्ठ अन्न खानेके लिए मिलते हैं और अमरता प्राप्त होनी है।

वेदमंत्रोंके विशेषकर षड्भाग क्षुरर्षिके अभ्ययनसे अनुष्यवकी उत्तम उत्पत्ति होती है। सोमके गुण बड़ मनुष्य अपने मन्त्र ब्रह्मसे तो मनुष्यही उत्पत्ति होगी। इसकारण पाठक इस पर स्थान दें।

### सुभाषित

१ गोपाः प्रथमे भुजमस्य पिपर्मन् प्रजाः जनयन् भद्रान् [ १२५१ ]— गोप और इन्द्रियोंका पालन करने-वाला, भुजमका विशेष चर्चसे पालन करने, समान उपपन्न

करके अर्थात् गृहस्थधर्मका विशेष रीतिसे पालन करके सबसे श्रेष्ठ होता है।

२ धृषा अद्रिः अधितानो पवित्रे गृहन् वायुधे [ १२५३ ]— बलवान् वह पर्वतके समान विशाल होकर, ऊँचे स्थान पर रहकर, पवित्र होकर अधिक श्रेष्ठ होता है।

३ हे देव । नः इष्टये राधसे मरिसि [ १२५४ ]— हे देव ! हमारी इष्टसिद्धि और धनकी प्राप्तिके लिए आग्रहसे सहस्रता कर।

४ माहिपः तत् महत् चक्रर [ १२५५ ]— उस महा बलवान्ने उस महान् कार्यको किया है।

५ पवमानः इन्द्रे ओजः अद्धात् [ १२५६ ]— सोमके कारण इन्द्रमें सामर्थ्य बढ़ा।

६ इन्दुः सूर्यं ययोतिः अजनयत् [ १२५७ ]— सोमने सूर्यमें प्रकाश स्थापित किया।

७ यिमेः अभिगन्तुवः एषः देधः दाधुपे ररनानि वृषत् [ १२५८ ]— बाह्याणी द्वारा प्रशस्ति यह देव दान-शीलको रत्न देता है।

८ एषः दूरः सिंघानि वार्यां सत्वभिः यन् इव सिपासति [ १२५९ ]— यह दूर सब वनोंको अपने सामर्थ्यसे प्राप्त करके उत्तमा उपभोग करता है।

९ एषः देवः रधयति, विशास्यति, यद्यन्तु माविष्ट-योति [ १२६० ]— यह विद्वान् देव स्वयं बैठनेकी इच्छा करता है, लोगोंको उपलब्धता सागं दिलाता और उत्तम उप-देवके शब्दोंका व्याख्यान करता है।

१० वरः देधः हरिः श्रुतायुभिः पिपन्त्युभिः वाजाय मृउयते [ १२६० ]— यह दुर्गोका हरण करनेवाला जानी और सत्यके लिए अपनी सत्यता आयुषी लवानेवाले तथा हितकारक बर्न करनेवालोंसे द्वारा, युद्धमें विजय प्राप्तिसे लिए तैयार किया जाता है।

श्रुतायुः ( श्रुत आयुः )— सत्यके लिए, श्रेष्ठ बर्नके लिए श्रुतोंका आयु सत्य होता है। पिपन्त्युः ( पि-पन्त्युः )— विशेष हितकारी बर्न करनेवाला। हरिः— दुर्गोका हरण करनेवाला। देयः— प्रजापत्यन्, कोर, बिनयनी इच्छा करनेवाला। मृउयते— मृउ किया जाता है, निर्वाण बनाया जाता है।

११ अद्वाप्यः दुरांसि अति धायति [ १२६१ ]— न ब्रह्मा ब्रह्मेवाय और सन्तु पर आग्रह करने जाता है।

१२ पवमान रजांसि निग्नः, दिधं दिधायति

[ १२६२ ]- गृह होनेवाला मनुष्य रजोगुणको दूर करके स्वर्गको जानेके मार्ग पर जाता है ।

१३ स्वध्वरः, अस्तुतः रजोसि तिरः दिवं व्यास-  
रन् [ १२६३ ]- उत्तम हितारहित कार्य करनेवाला, पराजित न होनेवाला, रजोगुणोंको दूर करने स्वर्गसे रास्तेसे आगे जाता है ।

१४ एषः हरिः शस्त्रेण जन्मना देवेभ्यः सुतः पयित्रे  
अर्पति [ १२६४ ]- यह तुल्य दूर करनेको इच्छा करनेवाला जन्मने ही देवोंके लिए निर्मित हुआ है, इसप्रकार पवित्रताके मार्ग पर जाता है ।

१५ एषः शूरः भानुभिः रोभिः गच्छन्, धिया  
याति [ १२६५ ]- यह शूर वृषभ क्षीरपायो रजोति जाकर भुविदुर्गक उन्नतिके मार्गसे आगे जाता है ।

१६ अमृतायः आशान्, वृहते देवतातपे, पुनः  
धियापते [ १२६६ ]- जहा समरदेव रहते हैं, उस महान् यज्ञमें यह बहुतसे काम करनेकी इच्छा करता है ।

१७ एषः हितः अन्तः शुक्र्यायता पथा धिनीयते  
[ १२६७ ]- इस हितकारक सायकको अन्तर्धानसे गृह होनेके मार्गसे आगे ले जाता जा ११ है ।

१८ औजसा नृणां दुधानः एषः शुभाभि दोषुपन्  
[ १२६८ ]- अपने शान्त्यर्थी धर्मोंको धारण करनेवाला यह अपने सींग दिखाता है ।

१९ वन्मि पिबन्तः एषः परया अति ययिग्रन्,  
श्राद्धेषु अव गच्छति [ १२६९ ]- निवात करके रहने वाले दुष्टोंके कष्ट होता हुआ अपनी दक्षिणसे उसके आगे जाकर, मारनेके योग्य उस दुष्टको कुचलता हुआ चला जाता है ।

२० एषः सहस्रिण वाजं गच्छन् [ १२७० ]- वह हजारों प्रकारके अन्न देनेके लिए जाता है ।

२१ एषः मातृपुत्रो विष्टु इयेनः न आ सीदति  
[ १२७१ ]- यह मातृपुत्र प्रजापति, अपने यज्ञोंके समान, ऊँचे स्थान पर जाकर बैठता है ।

२२ वाजी विश्वविन् मनसः पतिः नृभिः हित  
[ १२७२ ]- मनवन् यह सर्वत्र और मनका स्वामी होकर मनुष्यों द्वारा सम्मानके योग्य स्पर्धार्थी रहा जाता है ।

२३ अमर्त्यः सुवहा देववीतमः देवः अयि यानौ  
शुभायते [ १२७३ ]- अमर, शत्रुओंको मारनेवाला और देवोंको बहुत मान्य देनेवाला ऐसा यह देव अपने स्थानसे सुशोभित होता है ।

२४ एषः धावि सूर्य अरोचयन् [ १२७४ ]- यह ध्रुवको घुमको प्रकाशित करता है ।

२५ दक्षसाधनः एषः स्वर्जित् [ १२७५ ]- धन बढ़ानेका साधनरूप यह सुशोको नीतरकर प्राप्त करनेवाला है ।

२६ गन्तुं हिरण्ययुः सत्राजित् अस्तुतः अचि-  
कृदत् [ १२७६ ]- गाय धारनेवाला, सोना प्राप्तमें रतने-  
वाला, एकदम सब धर्मोंको ओतनेवाला, अवरजित और शान्त करता है ।

२७ देवावीः अन्नशंसहा अदाभ्यः शुष्पी एषः  
अर्पति [ १२७७ ]- देवोंका रसक, वारिधियोंका तहानक, न बचाया जानेवाला यह बलवान् आगे जाता है ।

२८ वृषा रदांसि विघ्नन् अर्पति [ १२७८ ]- बल-  
वाला यह रादांसोंको मारता हुआ आगे जाता है ।

२९ वृषहा वृषा ययिपोयित् अ-दाभ्यः, वाजं इय,  
असरत् [ १२७९ ]- शत्रुको मारनेवाला बलवान् और, धन देनेवाला तथा किसीसे न हबनेवाला शेरकर घोड़ेके समान आगे जाता है ।

३० यः क्षयिभिः संभुतं रसं अध्येति, सरस्वती  
तस्य स्त्रीरः स्त्रीरः प्रभु उदकं हवे [ १२८० ]- जो क्षयियों द्वारा इच्छते लिए शान्तका अध्ययन करता है उसे सरस्वती रूप, धी, दृढ़ और जल देती है ।

३१ क्षयिभिः संभुतः रसः ब्राह्मणेषु अमृतं हिते  
[ १२८१ ]- क्षयियों द्वारा इच्छता किया गया यह तानरस ब्राह्मणोंमें अमृतके रूपमें निहित है ।

३२ देवैः समाहताः पादमानी, देवीः नः इमं अथो  
अमुं लोकं वषन्तु, नः वषाम् समर्पयन्तु [ १२८२ ]- देवींके द्वारा सम्पादित, ये पवित्रता करनेवाली देवियाँ हमें इस और उस लोकमें सुख देवें और हमारी कामनायें पूर्ण करें ।

३३ देवाः येन पयित्रेण आत्मानं पुनते, तेन नः  
पुनन्तु [ १२८३ ]- देवगण जिस पयित्र करनेके तापनसे अपनेको पवित्र करते हैं, उन साधनोंसे वे हमें पवित्र करें ।

३४ पावमानीः स्वस्वधनोः, ताभिः नान्दन्  
गच्छति, पुण्यान् महात् अभयति, मष्टुत्वं गच्छति  
[ १२८४ ]- पवित्रता करनेवाली और कल्याण करनेवाली ये श्रेष्ठार्थ हैं । इनसे अलग्ग प्राप्त होता है, पयित्र अन्न पानेको मिलता है तथा अमृतको प्राप्ति होती है ।

३५ स्वाहुतं चित्रमानं समसा अगम्य [ १२८५ ]-

जितमें उतार हवन किया गया है, उस प्रकाशसे युक्त अग्निसे पास नमस्कार करते हुए हम जावे ।

३६ मेन्हा धिर्वा दुरितानि साहान् अग्निः दमे वास्त [ १३०५ ]- अपने महान् प्रभावसे सब पापोंको दूर करनेवाले अग्निकी यहशालामें स्तुति की जाती है ।

३७ सः नः दुरितात् अघचात रक्षिषत् [ १३०५ ]- वह हमारी पापोंसे और निन्दित कर्मोंसे रक्षा करता है ।

३८ हे अग्ने ! त्वे यसु सुपणवानि सन्तु [ १३०६ ]- हे अग्ने ! तेरे पातके घन हमारे द्वारा स्वीकार करने योग्य हों ।

३९ नः स्वस्तिभि पात [ १३०६ ]- हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित कर ।

४० इन्द्रः भोजसा महान् [ १३०७ ]- इन्द्र अपने तेजसे महान् है ।

४१ सायुधा जामि मुनय [ १३०८ ]- शस्त्र सब निरवयवीही हैं गन्, ऐसा लोग कहते लगे ।

४२ पाजसातमः सुपीर्य वधून् रक्षिषभिः प्वदनु-  
हि [ १३१२ ]- बल बढ़ानेवाला तू उत्तम वीर्य धारण करके अपने तेजसे सब जगहों व्याप्त कर दे ।

४३ याः नयः [ १३१३ ]- जो सब मनुष्योंका हित करनेवाला है ।

४४ पुषः हरिः, राश इय, वस्म [ १३१६ ]- यह बल बढ़ानेवाला तथा सुवीर्य धरण करनेवाला, राशके समान, वसीतीय है ।

४५ दुरितान् अपसेधन् नः मृड [ १३१८ ]- पापोंको दूर करने हमें सुखी कर ।

४६ यस्मिन् ओजसाजनिभानि भागं प्रति दीधिमः [ १३१९ ]- घन अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न करके उसका डीक भाग हमें देते हैं ।

४७ इन्द्रस्य रातेव भद्राः [ १३२० ]- इन्द्रके साथ कल्याणकारी हैं ।

४८ याः मनः चोदयत् [ १३२० ]- जो मनोको उत्पन्न प्रेरणा देता है ।

४९ विघ्नः कामं न रोधति [ १३२० ]- उपासकही इच्छा बहु नष्ट नहीं करता ।

५० हे इन्द्र ! यतः भयामहे ततः नः अभयं दधि [ १३२१ ]- हे इन्द्र ! जहाँसे हमें भय उत्पन्न हो, वहाँसे हमें भयार्हित कर ।

५१ हे मधवन् ! नः तव ऊतये शग्धि, द्विषः जाहि, मृधः वि [ १३२१ ]- हे धनवान् इन्द्र ! हमें अपने रक्षणसे सुरक्षित कर, द्वेष करनेवालोंका पराभव कर, शत्रुओंको दूर कर ।

५२ हे राघसः पते ! त्व महः राघस्य धिघर्ता अस्ति [ १३२२ ]- हे धनपते ! तू महान् धनोके स्वानोंकी चारण करनेवाला है ।

५३ त्वं मदिस्तमः सत्राजिन् अस्तुतः [ १३२४ ]- तू आनन्द देनेवाला सब शत्रुओंको एक साथ भीतनेवाला और अपराजित है ।

५४ पुमन्तं शुभ्रं आमर [ १३२५ ]- तेजस्वी सब हमें भरपूर दे ।

५५ महे दक्षाय घनाय पचस्य [ १३२२ ]- शत्रुको हरानेवाले बलके लिए और धनके लिए युद्ध हो ।

५६ नः गये शौ [ १३३७ ]- हमारी गाँवोंका कल्याण होवे ।

५७ विष्णुर्वी इव धुस्तस्य [ १३३७ ]- दोषण करने-वाले अप दे ।

५८ युवा इन्द्रः वेपा स्वता, भयुजः इव युवा वृत्तं स्वस्वभिः शूरत आजति [ १३४० ]- तवण इन्द्र भित्तका भित्त है, वे वीर युवकों इच्छा न होते हुए भी अनेक वीर्याओंसे युक्त शत्रुको अपने कर्तोंसे शूरवीर हीकर दूर करते हैं ।

५९ वायुपे मतीय यसु विन्दते [ १३४१ ]- हान देनेवाले मनुष्योंको वह इन्द्र धन देता है ।

६० अ-प्रतिष्कृताः इन्द्रः ईशानः [ १३४१ ] भित्तका पराभव नहीं होता ऐसा इन्द्र सबका ईश्वर है ।

६१ यः आविधासति, तत् उमं शायः इन्द्रः आ वस्यते [ १३४२ ]- जो उपासता करता है, इन्द्र उसे उप बल देता है ।

६२ इन्द्रः अराधरं मर्ते, वदा भुङ्गं इ३, स्तुरत् [ १३४३ ]- इन्द्र दान ॥ देनेवाले मनुष्योंको, अर्तें पैसे पूतरी कुछकते हैं, उसीप्रकार नष्ट कर देता है ।

## उपमा

१ पृथ्वी इय [ १२५६ ]- पत्नीसे समान ( एवः देयः श्रोणानि अभि आसदम् ) यह सोच मतमें वेगसे गिरता है ।

२ हरिः याज्ञाय सृज्यते [ १२६० ]- जितप्रकार घोड़ेको युद्धमें जानेके लिए सजाते हैं, उसीप्रकार ( एषः पयमानः पिपन्मुभिः सृज्यते ) यह सोम पश करनेवालोंके द्वारा मुद्र किया जाता है ।

३ यूयः वृषा शिशति [ १२७१ ]- जितप्रकार भूगर्भमें बंस अपने सींग हिलाता है, उसीप्रकार ( एषः शृंगानि बोधुवत् ) यह सोम अपने सींग हिलाता है ।

४ ह्येनः न [ १२७६ ]- बाजके समान यह सोम ( अश्वीक्षति ) शकर भंडता है ।

५ योपितं गच्छन् जारः न [ १२७६ ]- हज़ीके पास जैसे उसका जार जाता है, उसीप्रकार ( एषः मानुषीपुषिभु ) यह सोम मनुष्योंमें जाकर बंटता है ।

६ घाज इव [ १२९६ ]- घोड़ेके समान ( सः सोमः ) यह सोम कलशमें बैसके जाता है ।

७ वृष्टिमान् पर्जन्य इव [ १३०७ ]- वृष्टि करनेवाले मेघके समान ( तेजसा अहान् ) यह सोम तेजसे अहान् बीजता है ।

८ राजा इव वरुणः [ १३१६ ]- राजाके समान हेमन्-बाला यह ( सोमः ) सोम है ।

९ ह्येनः न [ १३१६ ]- बाजवलीके समान ( पृत-मत्तं योनिं आसद्वत् ) मनीके कलशमें जाता है ।

१० अत्यः न [ १३१८ ]- घोड़ेके समान ( घाजं अन्वपति ) युद्धमें जाता है ।

११ थायतः सूर्य इव [ १३१९ ]- किरने जित-प्रकार सूर्यके मध्यगते रहती है, उसीप्रकार ( विश्वा इव इन्द्रस्य अक्षत ) सब धन इन्द्रके भागपते रहते हैं ।

१२ मायं न प्रतिदीधिः [ १३१९ ]- पितृके वनका भाग जितप्रकार माईके बाटमेंसे मिलता है, उसीप्रकार हमें पशका भाग मिले ।

१३ अद्यः न [ १३३२ ]- घोड़ेके समान ( निकतः पाली ) धीकर मुद्र किया गया यह घलघान् सोम है ।

१४ शिशुं ज्ञानं [ १३३४ ]- गधे बच्चेको जैसे लाक करते हैं, उसीप्रकार ( सोमं पश्चिमे सृजति ) सोमको छलनीपर मुद्र करते हैं ।

१५ वसंश्च शिष्यरीः इव [ १३३६ ]- बच्चेको जित-प्रकार माता बटाती है, उसीप्रकार ( तं नः गिरः सं-वर्धन्तु ) उस सोमका वर्धन हमारी स्तुति करती है ।

१६ पदा ध्रुव इव [ १३४३ ]- राक्षसे जैसे कुलकी दीवते हैं, उसीप्रकार ( अ-राधसं मयि स्फुरत् ) धान न देनेवाले मनुष्यका इन्द्र बाध करता है ।

१७ यंश इव [ १३४४ ]- बंसको जैसे ऊपर करते हैं, उसीप्रकार ( अह्नाणः स्वा उपोमिरे ) बाण्डन हुन इन्द्रको धेध कहकर उपरत करते हैं, तैरा घस बडाते हैं ।



## दशमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रतत्त्वा	ऋग्वेदस्थान	ऋषिः	देवता	छन्दः
		( १ )		
१३५३	९।९।७।७०	वरुणादः साकत्यः	ववपानः सीमः	विष्टुप्
१३५४	९।९।७।७१	वरुणादः साकत्यः	"	"
१३५५	९।९।७।७१	वरुणादः साकत्यः	"	"
१३५६	९।९।१	धुन-वीर आसीनतिः सा देवरातः		
		ऋषिभ्यो यैश्वर्यमित्रः	"	गायत्री
१३५७	९।९।६	धुन-वीर आसीनतिः सा देवरातः		
		ऋषिभ्यो यैश्वर्यमित्रः	"	"
१३५८	९।९।७	धुन-वीर आसीनतिः सा देवरातः		
		ऋषिभ्यो यैश्वर्यमित्रः	"	"







मंत्रसंख्या	अथर्ववेदस्थान	अर्थः	देवता	छन्दः
१३१५	१।१८७।३	सप्तर्षयः	पवमानः सोमः	द्विपदा विराट्
१३१६	१।८२१।२	समुभरिह्वानः	"	अगती
१३१७	१।८२१।३	समुभरिह्वानः	"	"
१३१८	१।८२१।४	समुभरिह्वानः	"	"
( १७ )				
१३१९	८।१९१।३	नृमेव आगिरसः	इन्द्रः	प्रागाधः ( मृहती सतो मृहती ) ,
१३२०	८।१९१।४	नृमेव आगिरसः	"	"
१३२१	८।१९१।५	भर्गे प्रागाधः	"	"
१३२२	८।१९१।६	भर्गे प्रागाधः	"	"
( १८ )				
१३२३	१।६७।१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	पवमानः सोमः	वायव्यो
१३२४	१।६७।२	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१३२५	१।६७।३	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१३२६	१।१०६।७	मनुरात्मन्	"	उत्थिगन्
१३२७	१।१०६।८	मनुरात्मन्	"	"
१३२८	१।१०६।९	मनुरात्मन्	"	"
१३२९	१।१०६।१०	अम्बरीषो वार्यागिरः अजिषवा भारद्वाजस्य	"	अनुष्टुप्
१३३०	१।१०६।११	अम्बरीषो वार्यागिरः अजिषवा भारद्वाजस्य	"	"
१३३१	१।१०६।१२	अम्बरीषो वार्यागिरः अजिषवा भारद्वाजस्य	"	"
१३३२	१।१०६।१३	अम्बरीषो वार्यागिरः अजिषवा भारद्वाजस्य	"	"
१३३३	१।१०६।१४	अम्बरीषो वार्यागिरः अजिषवा भारद्वाजस्य	"	"
१३३४	१।१०६।१५	अम्बरीषो वार्यागिरः अजिषवा भारद्वाजस्य	"	"
१३३५	१।१०६।१६	अम्बरीषो वार्यागिरः अजिषवा भारद्वाजस्य	"	"
१३३६	१।१०६।१७	अम्बरीषो वार्यागिरः अजिषवा भारद्वाजस्य	"	"
१३३७	१।१०६।१८	अम्बरीषो वार्यागिरः अजिषवा भारद्वाजस्य	"	"
( १९ )				
१३३८	८।६५।१	मिषोक्तः काण्वः	अग्नीमिषी	"
१३३९	८।६५।२	मिषोक्तः काण्वः	इन्द्रः	"
१३४०	८।६५।३	मिषोक्तः काण्वः	"	"
१३४१	१।८७।३	गोतमो राहूषणः	"	"
१३४२	१।८७।४	गोतमो राहूषणः	"	उत्थिगन्
१३४३	१।८७।५	गोतमो राहूषणः	"	"
१३४४	१।१०६।१	मयुष्यन्ता वेदवायिनः	"	अनुष्टुप्
१३४५	१।१०६।२	मयुष्यन्ता वेदवायिनः	"	"
१३४६	१।१०६।३	मयुष्यन्ता वेदवायिनः	"	"



## अथ एकादशोऽध्यायः ।

अथ षष्ठ्यपादके प्रथमोऽर्घ्यः ॥ ६ ॥

[ १ ]

( १-११ ) विपातिभिः काण्वः, २, १० मसिप्यो मन्त्रायदग्निः; ३ प्रपायः काण्वः; ४ वराजः काण्वः; ५ प्रगायो वीरः काण्वः; ६ नेप्यातिभिः काण्वः; ७ अयवन्त्रेयः, अयवन्त्रेयः पौकृत्यः; ८ अजयो विप्या वृषराः; ९ हिरण्यस्तूप आगिरसः; १० सारंगजी ॥ १ अग्नोमूर्त्तः—( १ इन्द्र. सपिदोऽग्निवो, २ सन्वधान्, ३ वराजस्त, ४ इन्द्रः ); २ आदित्यः; ३, ५-६ इन्द्रः, ४, ७-९ वयवानः सोमः; १० सन्निः; ११ माता, सुर्वो वा । १-३, ११ पायजी; ४ मिष्टु, ५-६ प्रपायः—( विप्या बृहती, सवा सतोवृत्तौ ); विपीलिकयन्ता अनुवृत्तः; ८ द्विप्या विराट्; ९ जयती; १० विराट् ॥

१३४७ सुमिदो न आ वह देवाः अग्रे हविष्मते । होतः पाथकं यक्षि च ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।१ )  
 १३४८ मधुमन्तं सन्वधानाघ्नं देवेषु नः कवे । अद्या कृशुहपूतये ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।२ )  
 १३४९ नराद्यस्तमिह प्रियमस्मिन्मय्य उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१।३ )  
 १३५० अग्रे सुखतमे रथे देवाः इक्षित आ वह । अस्ति होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥ १ ( रा. ) ॥  
 [ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।१।४ )

[ १ ] प्रथमा खण्डः ।

[ १३४७ ] हे माने ! ( सु समिदः ) अच्छी तरह प्रज्वलित होकर ( नः हविष्मते ) हमारी हविको अपने पास रखनेवाले यजमानके लिए ( देवान् आ वह ) देवीको बुलाकर ला । हे ( होतः पाथक ) हवन करनेवाले तथा पवित्रता करनेवाले अग्ने ! ( यक्षि च ) उन देवताओंकी सवय करके यज्ञ कर ॥ १ ॥

[ १३४८ ] हे ( कवे ) ब्रह्मर्षी अग्ने ! ( मधु-मन्-पात् ) शरीरकी ग गिरायेवाला तू ( अद्या ) आज ( कृतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( नः मधुमन्मं यज्ञं ) हमारी आज्ञाके पीछे हविको ( देवेषु कृशुह् ) देवीको ओर वृद्धवा ॥ २ ॥

[ १३४९ ] ( इह अस्मिन् मय्ये ) यहाँ इस यजमें ( प्रिये मधु-जिह्वे ) प्रिय और पीछा पीछेनेवाले ( हविष्कृतं नराद्यस्तं ) हविको देवीकी ओर पहुँचावेवाले और मनुष्य जिसकी स्तुति करते हैं, ऐसे उस अदिको ( उप ह्वये ) बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

१ मधुजिह्वः— पीछा भाषण करनेवाला ।

२ प्रियः— प्रिय आचरण करनेवाला ।

३ नराद्यस्तः— मनुष्य जिसकी प्रशंसा करते हैं ।

४ हविष्कृतम्— हवि हव्यार करके यजन करनेवाला ।

[ १३५० ] हे ( अग्रे ) अग्ने ! ( इक्षितः ) प्रशंसित हुआ हुआ तू ( सुखतमे रथे ) अत्यन्त सुख देनेवाले रथके ( देवान् आ वह ) देवीकी लेकर आ । ( मनुः-हितः ) मनुष्यों-यजमानों-द्वारा स्थापित किया गया ( होता अस्ति ) तू देवीकी बुलाकर आनेवाला हूँ ॥ ४ ॥

१ सुख-तमः रथः— अत्यन्त सुख देनेवाला रथ ।

२८ । साम सिन्धो वा. २ ।

१३५१ पदय छर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।६।४ )

१३५२ सुप्रावीरस्तु स शयः प्र जु यामन्तुदानवः । ये नो अश्वाऽतिपिप्रति ॥ २ ॥  
( ऋ. ७।६।५ )

१३५३ उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईश्वरे ॥ ३ ॥ २ ( खि ) ॥  
[ धा० ११ । उ० २ । १५० ३ ] ( ऋ. ७।६।६ )

१३५४ उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राघो अद्रिषः । अब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६४।१ )

१३५५ पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाऽअसि । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।६४।२ )

१३५६ त्वसीक्षिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥ ३ ( डि ) ॥  
[ धा० १३ । उ० २ । १५० ३ ] ( ऋ. ८।६४।३ )

॥ इति प्रथम अष्टक ॥ १ ॥

[ १३५१ ] ( यत् ) उन धनोंको ( अना सुरे उदिते ) आज सुबोके उदय होनेके बाद सवेरे ( अनागा ) निष्काश ( मित्रः अर्यमा भगः सविता ) मित्र, अर्यमा, भग और सविता देव ( सुवाति ) हमारी ओर प्रेरित करें ॥ १ ॥

१ मित्रः— मित्रके समान आचरण करनेवाला ।

२ अर्य-मा— भेद पुण्यका निर्णय करनेवाला ।

३ भगः— भाग्यवान् ।

४ सविता— सूर्यस्य प्रसविता । सब जगत्को उत्पन्न करनेवाला-सूर्य ।

[ १३५२ ] ( सु-यामन् ) हे उत्तम बान देनेवाले देवो ! ( प्र जु यामन् ) तुम्हारे आगमनके बाद ( सः शयः ) तुम्हारा पवन होनेवाला निवास ( सु-अ-अवीः अस्तु ) हमारा अच्छी तरह रखन करनेवाला होवे । ( ये नः अश्वाः अति पिप्रति ) जो तुम हमें पावसे दूर करते हो ॥ २ ॥

[ १३५३ ] ( उत ये ) और जो देव तथा ( अदितिः ) देवोंकी माता अदिति हैं, ये सब ( अ-दब्धस्य व्रतस्य स्वराजः ) न बचाये जानेवाले व्रतके राजा हैं, वे ( महो राजानः ) वे महान् राजा हैं, और ( ईश्वरे ) सब पर शासन करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

[ १३५४ ] हे इन्द्र ! ( सोमाः त्वा ) सोमरस तुम ( उद् मदन्तु ) उत्तम आनन्द देवे । हे ( अद्रि-षः ) ब्रह्म-धारी इन्द्र ! ( राघ कृणुष्व ) हमें ऐश्वर्य देने और ( ब्रह्म-द्विषः अब्रह्मद्वि ) शानसे द्वेष करनेवालोंको हरा ॥ १ ॥

[ १३५५ ] हे इन्द्र ! तू ( महान् असि ) बड़ा है । ( त्वा प्रति कश्चन न हि ) तेरे समान ब्रह्मरा कोई भी नहीं है, ( अ-राघस्य पणीन् ) शान भ देनेवाले सोमो लोगोंको तू ( पदा नि बाधस्व ) पंरोंसे कुचल बाध ॥ २ ॥

[ १३५६ ] हे इन्द्र ! इन्द्र ! ( त्व सुतानां ) तू रस निकाले भए और ( त्वं असुतानां ) रस न निकाले गए सोमोंका ( ईक्षिष्ये ) स्वाधी हो । ( त्वं जनानां राजा ) तू लोगोंका भी राजा है ॥ ३ ॥

## [ २ ]

१३५७ आ जागृविविश्र ऋतं मतीनाः सोमः पुनानो असदधमूष ।

सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अश्वयैवो रथिरासः सुहताः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१७।३७ )

१३५८ स पुनान उप धरे दधान ओमे अपा रोदसी वी य आवः ।

मिषा चियस्य मिषसास ऊती सर्वो धनं कारिषे न प्र यक्षसत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१७।१८ )

१३५९ स रथिता वधेनः पूमानः सोमो मीद्वाः अभि नो ज्योतिषावित् ।

यत्र नः पूर्वं पितरः पदध्याः स्वविदो अभि गा अद्रिमिष्यन् ॥ ३ ॥ ४ ( तै. ) ॥

[ धा. १९। उ० १। स्व० ८ ] ( ऋ. ९।१७।१९ )

१३६० मा चिदन्यद्वि श्वसत सत्यापो मा रिपण्यत ।

इन्द्रमिस्त्तोता वृणणः सत्या सुते मुहुःकथा च श्वसत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

## [ ३ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १३५७ ] ( जागृतिः ) जाग्रत रहनेवाला ( ऋतं मतीनां विप्रः ) सबबी स्तुतिर्षोका काता ( सोमः ) सोम ( पुनानः ) छनकर ( चमूष आसवत् ) कलझने बैठता है । ( मिथुनासः ) एकत्र रहनेवाले ( निकामाः ) इष्ट-  
कामना करनेवाले ( रथिरासः सुहताः ) बस करनेवाले और उत्तम हाथवाले ( अश्वयैवः ) अश्वयुद्ध ( यं सपन्ति )  
जिसे स्वर्त करतें हैं, ऐसा यह सोम है ॥ १ ॥

[ १३५८ ] ( पुनानः दधानः सः ) पवित्र होनेवाला, यज्ञकर्मांको सिद्ध करनेवाला यह सोम ( सूरे उप  
[ गच्छति ] ) इन्द्रके पास जाता है । ( उमे रोदसी ) दोनों ही बु और पृथिवीको ( आ अप्राः ) यह भर देता है ।  
[ ( सोमः ) आवः ] यह सोम तेजसे हमें आपछावित करता है । ( मिषाः ) मिष पशुपं देनेवालो ( पश्य सतः ) जिसके  
पक्षी ( मिषसालः ) अत्यन्त मिष याप ( ऊती ) हमारा सरक्षण करती है और ( कारिषे न ) दान करनेवालेको  
अभि दान मिलता है, उत्तीप्रकार ( धानं प्र यक्षसत् ) धन हमें बेनो है ॥ २ ॥

[ १३५९ ] ( रथिता ) सबधन करनेवाला ( वधेनः ) तथा स्वर्ध भी वधनेवाला ( पूमानः ) छाता जानेवाला  
और ( मीद्वाः ) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ( सः सोमः ) यह सोम ( नः ज्योतिषा अभि आवित् ) अपने तेजसे  
हमारी रक्षा करे । ( पदध्याः स्वविदः ) पदोंका अर्थ जाननेवाले, अज्ञमानो ( नः पूर्वं पितरः ) हमारे पूर्वजालके  
पितर ( गाः ) गायोंको ( यत्र अद्रि अभि इष्यन् ) पर्वतके पास ले जानेको इच्छा करते थे ॥ ३ ॥

जहाँ सोमलता होती थी, वहाँ ये गायें ले जाते थे ।

[ १३६० ] हे ( सत्यापः ) मित्रो ! ( ज्योतः मा चित् वि शंसत ) इन्द्रके स्तोत्रके सिक्कप इतरे स्तोत्र मत  
मोलो और ( मा रिपण्यत ) इन्द्रके स्तोत्र मोलकर स्वयं ही अपनी उन्नति क्यों मत करो । ( सुते ) सोमरस निकालनेके  
बार ( वृणन् इन्द्रं हत् ) बलवान् इन्द्रकी ही ( सत्या स्तोत ) एक जगह बैठकर स्तुति करो । ( उपधा च मुहुः शंसत )  
इन्द्रके स्तोत्र बारबार करो ॥ १ ॥

१३६१ अवक्रक्षिणं वृषमं यथा जुषं गां न वर्षणीसहम् ।

विद्वेषणं संवननमुमगच्छरं मंहिष्ठमुमगाविनम्

॥ २ ॥ ५ (यी) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ ८।१।९ )

१३६२ उदु रये मधुमघमा गिरः स्तोमास ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितोऽतयो बाजयन्तो रथा इव

॥ १ ॥ ( ऋ ८।१।५ )

१३६३ कण्या इव भृगवः स्वर्षा इव विश्वमिद्धीतमाश्रुत ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आश्रवः प्रियमेघासो अस्वरन्

॥ २ ॥ ६ (ला) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ ८।१।६ )

१३६४ पर्यु पु प्र धन्व वाजसातये परि घृत्राणि सक्षणिः । द्विपस्तरध्या क्रणया न ईरसे ॥१॥

( ऋ. ९।१।०।१ )

१३६५ अजीजनो हि पवमानो स्वर्षे विधारे श्रकमना पयः । गोजीरया रंहमाणः पुरंधया ॥२॥

( ऋ ९।१।०।२ )

[ १३६१ ] ( वृषमं यथा अवक्रक्षिणं ) बैलके समान शत्रुओंसे दबकर केनेवाले ( गां न जुषं ) बैलके समान बीमता करके ( स्वर्षणीसहं ) शत्रुओंको हारनेवाले ( विद्वेषणं ) शत्रुओंसे द्वेष करनेवाले ( संवननम् ) उपासकोंके द्वारा सेवा करने योग्य ( अभय-करं मंहिष्ठं ) निर्भय करनेवाले, बहान् तथा ( उभयाविर्षं ) दोनों प्रकारके ऐश्वर्य केनेवाले इन्द्रको स्तुति करो ॥ २ ॥

[ १३६२ ] ( रये मधुमघमा ) वे अत्यन्त मीठे ( गिरः स्तोमास ) धापीके शीघ्र ( उदु ईरते ) कहे जाते हैं । ( सत्राजितः ) बहुतेके शत्रुओंकी एक साथ जीतनेवाले ( धनसा ) धन देनेवाले ( अ-क्षित-उतयः ) न गल्ट होनेवाले रथोंके साधनेसे युक्त वे स्तोत्र ( बाजयन्त रथाः इव ) युद्धमें जानेवाले रथके समान, कहे जाते हैं ॥ १ ॥

[ १३६३ ] ( कण्या इव ) कण्वके समान ( भृगवः ) भृगुओंने ( घीतं विश्वं इत् ) ध्यान किए गए और सर्वत्र रहनेवाले इन्द्रकी ( आश्रतः ) प्राप्त किया । ( स्वर्षा इव ) स्वर्षं जैते प्रकारसे ध्यापता है, उसीप्रकार उतने उन्हें देता । ( प्रियमेघासः आश्रवः ) प्रेमसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके समान ( इन्द्रं महयन्त ) इन्द्रका महात्वं प्रकट करते हुए ( स्तोमेभिः स्वस्वरन् ) वे स्तोमपाठ करने लगे ॥ २ ॥

[ १३६४ ] हे तोम ! ( सु वाजसातये ) उत्तम प्रकारसे मग्न होनेके लिए ( प्र धन्व ) तु आगे जा । ( सक्षणिः घृत्राणि परि ) साहस करनेवाला घीर जिसप्रकार घृत्र जैते बलशाली शत्रुओं पर चढ़ता चला जाता है, वैसे ही तू शत्रुओं पर आक्रमण कर । ( नः क्रणया ) हमारे ऋज दूर करनेवाला तू ( द्विप तरध्वे ) शत्रुओंको मारनेके लिए ( ईरसे ) आगे जाता है ॥ १ ॥

[ १३६५ ] हे ( पवमानः ) तोम ! ( पयः विधारे हि ) जल चारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ( श्रकमना स्वर्षे ) अजीजनः । अपनी शक्तिसे तुने स्वर्षके उत्पन्न किया । ( गो-जीरया पुरंधया ) स्तुति करनेवालोंको पाप देनेकी मुद्रिसे ( रंहमाणः ) तू मर्यादितता हुआ है ॥ २ ॥

१३६६ अनु हि त्वा सुतः सोम मदाभसि महे समर्षराज्ये ।

वाजाः अभि पवमान प्र मादसे

॥ ३ ॥ ७ ( ल ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ । ( ऋ. ९।१०।१ )

१३६७ परि प्र घन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्ये भगवाय

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

१३६८ एवामुताय महे क्षयाय स शुक्रो अप दिव्यः पौर्युषः

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

१३६९ इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयास्क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः

॥ ३ ॥ ८ ( ल ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०।१ )

॥ इति त्रितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१३७० सूर्यस्यैव रश्मयो द्रावयितृनो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।

तन्तुं ततं परि सर्गास आम्रवो नेन्द्रादृते पवते घाम किंचन ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।६ )

१३७१ उपो मतिः पूष्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।

पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रष्टः परि वारमर्षति ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।२ )

[ १३६६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( महे अर्षराज्ये ) महत् आर्ष राज्यम् ( त्वा सुतं अनु ) तेरे अनुकूल होकर ही ( स मदाभसि ) हम आनेवाले रहते हैं । हे ( पवमान ) सोम ! ( वाजान् अभि प्र मादसे ) तू बलसे होनेवाले पार्वर्ष जाता है ॥ १ ॥

[ १३६७ ] हे सोम ! तू ( स्वादुः ) मधुर होकर ( मित्राय पूष्ये भगवाय इन्द्राय ) मित्र, पूषा, भग और इन्द्रकी ओर जानेके लिए ( प्र घाव्य ) आगे जा ॥ १ ॥

[ १३६८ ] हे सोम ! ( शुक्रः दिव्यः ) तेजस्वी और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ ( पौर्युषः स्वः ) पीनेके योग्य वृ ( एवामुताय ) अगर होनेके लिए ( महे क्षयाय यव ) महान् स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छासे ( अर्षे ) आगे जा ॥ २ ॥

[ १३६९ ] हे सोम ! ( क्रत्वे दक्षाय ) तान और बल प्राप्त करनेके लिए ( सुतस्य ते ) तेरा रस ( इन्द्रः पेयात् ) इन्द्र निये और ( विश्वे च देवाः ) सब देव भी पियें ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३७० ] ( सूर्यस्य रश्मयः इवः ) सूर्यकी किरणोंके समान ( द्रावयितृनः मत्सरासः ) प्रेरणा करनेवाले और आनन्द देनेवाले, ( प्रसुतः सर्गासः सर्गासः ) मुष्ट किए गए, पार्वर्ष रहनेवाले सोमरस ( घाते तन्तुं सर्गाके परि ईरते ) फंसी हुई छलनीमेंसे एकदम नीचे बिरते हैं । वे ( इन्द्रात् अते ) इन्द्रके सिपाय ( किंचन घाम ) और किसी स्थानकी ( न पवते ) पसन्द नहीं करते ॥ १ ॥

[ १३७१ ] इन्द्रकी ( मतिः पूष्यते ) स्तुति की जाती है ( मधु सिच्यते ) मधुर सोमरस इन्द्रको दिया जाता है । ( मन्द्रा-जनी आसनि अन्तः उप चोदते ) आनन्द देनेवाली रसकी पारा इन्द्रके गृहमें छोड़ी जाती है । ( सन्तनिः ) हमारा ( सुन्वतां ) सोमरसको निकालनेवाले पवमानोंका ( पवमानः मधुमान् द्रष्टः ) मुष्ट किया जानेवाला मोठा सोमरस ( चारं परि अर्षति ) छलनीसे नीचे पड़ता है ॥ २ ॥



१३७२ उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य दवीरूप यन्ति निष्कृतम् ।

अत्यक्रमीदञ्जुनं वारमव्ययमत्कं न निकं परि सोमो अव्यय ॥ ३ ॥ ९ ( ग ) ॥

[ धा० २६ । उ० ३ । स्व० १ ] ( ऋ. २६९।४ )

१३७३ अग्निं नरो दीधितिभिरण्योर्हस्तच्युतं जनयत् प्रशस्तम् ।

दूरेदशं गृहपतिमव्ययम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१।१ )

१३७४ तममिमेस्ते वसवो न्युषन्त्सुप्रतिषधमयस् कुतश्चित् ।

दक्षाभ्यां यो दम आस नित्यः

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१।२ )

१३७५ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्यां यविष्ठ ।

त्वांश् शश्वन्त उप यन्ति वाजाः

॥ ३ ॥ १० ( छी ) ॥

[ धा० २८ । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।१।३ )

१३७६ आर्यं गौः पृश्निरक्रीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्स्वः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१८९।१ )

१३७७ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यरूपन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१८९।२ )

[ १३७२ ] ( उक्षा मिमेति ) सोमरस अयं करता है । ( धेनवः प्रति यन्ति ) गायें उसके पीछे जाती हैं ( देवस्य निष्कृतं दवीः उप यन्ति ) चमकनेवाले सोमको दिव्य स्तुतिया प्राप्त होती हैं । ( अञ्जुनं अव्ययं पारं अत्यक्रमीत् ) सर्वत्र रणके शालीकी छलनीसे छनकर सोमरस भीचे उतरता है । ( अत्कं न ) कबकके समान ( निकं सोमः परि अव्यय ) हाक पधार्यो वह सोम अपने ऊपर लीकता है ॥ ३ ॥

[ १३७३ ] हे ( नरः ) ऋक्विः । तुम ( प्रशस्ते दूरेदशं ) प्रशंसित और दूरसे दीकनेवाले ( गृह-पतिं अव्ययम् ) गृहके रसक और अगम्य ( अस्तच्युतं ) हाथोंके द्वारा जलाये जानेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( अरण्योः ) अरणिमिति ( दीधितिभिः ) जलयागः । अगुलियों द्वारा उत्पन्न करो ॥ १ ॥

[ १३७४ ] ( याः दमे ) जो घरमें ( दक्षाभ्यां ) हविषों द्वारा प्रशंसित करने योग्य हैं, ऐसे ( नित्यः आस ) हमेशा रहनेवाले ( त ) उत । ( सु प्रतिचक्षे अग्निं ) दशनीय अग्निको । कुतः चित् ) कछीसे जो लाया ( अव्यसे ) अपने रक्षणके लिए ( वसवः ) स्तुति करनेवालोंने ( अस्ते नि ऋष्यन् ) यज्ञज्ञातान् स्थापित किया ॥ २ ॥

[ १३७५ ] हे ( यविष्ठ अग्ने ) हे बलवान् अग्ने । ( प्रेद्धः ) पूर्ण रीतिसे प्रशंसित हुआ हुआ तू ( अजस्रया सूर्यां ) बर्धन-बडी ज्वालायामिति । ( नः ) हमारे लिए ( पुरः दीदिहि ) हमारे आगे - जाह्नवनीय स्थानमें प्रदीप्त हो, अण्ठी तरह जल, ( शश्वन्तः वाजाः ) बहुतसी हविषा ( त्वां उप यन्ति ) तेरे पास जाती हैं ।

[ १३७६ ] ( आर्यं गौः पृश्निः ) अक्रीदन् । यह सूर्य नित्य यतिवासा होकर अपने व्यापक तेजसे उदयावत पर जाता है । बादमें वह ( पुरः मातरं अवसदन् ) पूर्व दिशामें भूमिपताके ऊपर आकर ( च पितरं स्वः प्रयन् ) अपने धूलोकद्वीप पितारो कीप्रा प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ १३७७ ] ( अमृतः ) धूलोक और पृथ्वीके बीचमें ( अस्य रोचना ) इसका प्रकाश ( प्राणात् अपानती ) उरसने वार अलको ( चरति ) प्राप्त होता है ( महिषः ) ऐसा वह महान् सूर्य ( दिवं व्यरूपन् ) धूलोकको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

१३७८ त्रिंशद्दाम वि राजवि वाक्पठेद्दाम धीयते । प्रति वस्वोरहं घुमिः ॥ ३ ॥ ११ ( छि ) ॥  
[ पा० १७ । उ० २ । स्थ० ३ ] ( ऋ. १०।१८९।१ )

॥ इति सुनीय एवम् ॥ ३ ॥

॥ इति पठ्यमाना एवमर्थः ॥ ६-१ ॥

॥ एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

[ १३७८ ] ( एस्तोः त्रिंशद्दाम अहं ) विनये तोमषो तव गृहं नृषं ( घुमिः विराजति ) किलानि विनोषं  
मुशोमित होता है । उस समय ( घाङ् ) बेरवाणी ( एतमाय ) इन नृषों ( प्रति धीयते ) स्तुति करती है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ सीखरा एवम् समाप्त हुआ ॥

॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥

## एकादश अध्याय

इत एवाहरे अध्यायमें कुछ देवताओंके बाद तोमष  
गुण गाते हैं । इसतिष्ठ प्रथम हव अय्य केओला वर्णन देती है ।  
सर्व प्रथम इन्द्रका स्तुति है—

इन्द्र

१ आद्रि-घ. [ १३५४ ]- बरदापारी, बहावी किलेमें  
रहनेवाला ।

२ महान् [ १३५५ ]- लक्ष्मी अपेक्षा बड़ा ।

३ अनाना राजा [ १३५६ ]- लोहाका शासक, लोहोंका  
राज बननेवाला ।

४ वृषा [ १३६० ]- बलवान्, सामर्थ्ययुक्त ।

५ चरणीसह. [ १३६१ ]- शत्रु सैन्यको हरा देनेवाला ।

६ विद्वेपी [ १३६१ ]- शत्रुओंसे द्वेष करनेवाला ।

७ सवदन. [ १३६१ ]- सेवा करनेके योग्य ।

८ अमयकरः [ १३६१ ]- लोगोंको निर्भय करनेवाला ।

९ महिष्ठ [ १३६१ ]- महान्, बड़ा ।

१० उमयायी [ १३६१ ]- योंमें प्रचारके ऐश्वर्य देने-  
वाला, शक्ति और आध्यात्मिक ऐश्वर्य देनेवाला ।

११ अय्यदरी [ १३६१ ]- शत्रुओंको दमकर देनेवाला ।

इत प्रकार इन्द्रके गुण इत अव्याप्य हैं । अब उसके किए  
और भी जो कुछ कहा है, उसे देखें—

१ सोमा. एवा मयन्तु [ १३५४ ]- हे इन्द्र ! तोमष  
गुने आनन्द देवें ।

२ हे अद्रिय ! राक्ष घृणुष्व [ १३५४ ]- हे बर-  
दापारी ! हमें धन दे ।

३ ब्रह्मद्रिय अवजति [ १३५४ ]- मानसे द्वेष करने-  
वालोंका नाश कर ।

४ हे इन्द्र ! महान् अस्ति, एवा प्रति कक्षन महि  
[ १३५५ ]- हे बड़ा ! तू बहान् है । तेरे समान दूसरा कोई  
नहीं है ।

५ अराधस. एषान् पदा नि वाघद्वय [ १३५५ ]-  
हवन न देनेवाले लोगोंको परीने कुछन डाल । उन्हें कष्ट  
पहुँचा ।

६ हे इन्द्र ! त्वं सुतानां अनुतानां रंशिषे [ १३५६ ]  
- हे बड़ा ! तू सर निकाले गढ़ और न निकाले गढ़ सोमोला  
रवाणी है ।

७ हे सदाय ! अय्यत् धिम् मा विशसत [ १३६० ]  
- हे भवो ! तुम और कुछ न करो ।

८ मा शिषयत [ १३६० ]- व्यर्थ हो दूसरे काभीसे  
अपनी शक्ति खर्च मत करो ।

९ तुने वृषण इत् सखा स्तोत उक्था च सुहु

शंसन [ १३६० ]- सोमभागमें बलवान् उस इन्द्रके हो स्तोत्र कहे, और बारबार उसके स्तोत्र कहे।

१० वृषभं यथा अयमक्षिणं [ १३६१ ]- दक्षक बारनेवाले बैलके समान सामर्थ्यवाली इन्द्रकी स्तुति करो।

११ कण्वाः भृगवः धीते चिम्बे इत् आशत [ १३६३ ] - कण्व और भृगुने ध्यान द्वारा उस सर्वव्यापक इन्द्रकी उपासना की।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें है।

### अग्नि

१ अग्निः [ १३४७ ]- अग्नी, आगे से जानेवाला, नेता।

२ पायकः [ १३४७ ]- पवित्रता करनेवाला, सुद्धता करनेवाला।

३ होता [ १३४७ ]- हवन करनेवाला।

४ कयिः [ १३४८ ]- क्षामी, दूरदर्शी, अतोन्निद्रयाचंक्षी।

५ तन्-न-पात् [ १३४८ ]- शरीरका पतन न होने देनेवाला।

६ मधुजिह्वः [ १३४९ ]- मधुर भाषण करनेवाला।

७ मिथः [ १३४९ ]- सर्वोंको मिथ।

८ नराशंसः [ १३४९ ]- मनुष्यों द्वारा प्रशंसित।

९ मनुर्हिता [ १३५० ]- मनुष्यका हित करनेवाला, मनुष्योंके द्वारा स्थापित।

१० होता [ १३५० ]- हवन करनेवाला, बुलानेवाला।

११ प्रशस्तः [ १३७३ ]- प्रशंसित, स्तुत्य।

१२ दुरेदक् [ १३७३ ]- दूरसे दीखनेवाला।

१३ गृहपतिः [ १३७३ ]- गृहस्थ, घरका स्वामी।

१४ अग्न्युः [ १३७३ ]- घबलितशील, गति करनेवाला।

१५ सुप्रतिचक्षः [ १३७४ ]- अत्यन्त दृशी।

१६ ययिष्ठः [ १३७४ ]- तपन, नीजवान।

इन गुणवर्णनोंके अलावा और भी वर्णन इस अध्यायमें है—

१ हे अग्ने ! देवान् आ यह [ १३४७ ]- हे अग्ने ! देवोंकी बुलाकर ला।

२ यक्षि [ १३४७ ]- यजन कर।

३ सुखतमे रगे देवान् आ यह [ १३५० ]- उत्तम सुखदायक रूपमें देवोंको यहां बुलाकर ला। शरीर ही सुखदायक रूप है। जितने देव विप्रमें हैं, वे सभी देव अंगरूपमें इस देहमें हैं। अग्नि अर्थात् उष्णताके दहनैक सब देवोंका

निवास इस शरीरमें होता है। देहके ठण्डे होनेपर सब देव शरीर छोड़ जाते हैं। तब “ अत्यन्त सुखदायक रूपमें देवोंको यहां ला ” इसका अर्थ है कि “ शरीररूपी रथमें ला ”।

४ यः दमे दक्षाय्यः नित्यः आस [ १३७४ ]- यह अग्नि अनेक स्थानमें नल बढानेवाला होकर हमेशा रहता है। ( दक्षाय्यः- बल बढानेवाला )

५ अयसे यक्षचः अस्ते गृध्रयन् [ १३७४ ]- संरक्षणके लिए इसे बहुदेव अनेक स्थानमें रखते हैं। अग्निके रहने तक ही देहमें देवोंका निवास रहता है। यह सभीके अनुभवंमें आ सकता है।

### देवोंका दर्शन

अनेक देवोंके नाम इस अध्यायमें आए हैं—

१ सत् मित्रः अर्यमा भगः सविता सुवाति [ १३५१ ] - उन धर्मोंके मित्र अर्यमा, भव और सविता हमारी ओर प्रेरित करें।

२ सु दानयः। प्र तु यामन् सः क्षयः सु-प्राधीः अस्तु [ १३५२ ]- हे उत्तम नाम देनेवाले देवो ! तुम्हारा आगमन होने पर तुम्हारा यज्ञमें निवास हमारा उत्तम संरक्षण करनेवाला होवे।

३ ये नः अंहः अति पिमति [ १३५२ ]- जो तुम हमें शरीरोंसे दूर करते हो।

४ उत ये आदेतिः अ-दृष्यस्य प्रतस्य क्यराजः महः राजानः ईशते [ १३५३ ]- और वे देव तथा देव-वाता अतिशय सब मिलकर न बचाये जानेवाले व्रतके समाद हैं। वे महान् राजा और सबके ईश्वर हैं।

५ हे सोम ! स्वादुः मित्राय, अगाय, पूषणे इन्द्राय प्र धम्य [ १३६७ ]- हे सोम ! तू मीठा होकर मित्र, भग, पूषा और इन्द्रकी ओर आ।

इसप्रकार अनेक देवोंके नाम इस अध्यायमें हैं। कितने ही देव धन देते हैं। कितने ही संरक्षण करते हैं। कितने ही देव साधकोंको धारणसे दूर करते हैं। कितने ही सब संसार पर शासन करते हैं। यज्ञमें सब देवोंको सोमरस दिया जाता है।

### सोम

१ जागृविः अतः मतीनां विमः सोमः पुनातः जमूयु आसदय [ १३५७ ]- जाग्रत रहनेवाला, तत्त्व स्तुतिपूर्णका हाता यह सोम छाननेके ब्रह्म कलशमें जाता है।

मलशर्म तोम भरकर रखते हैं। यह तोम ( जायृयिः ) जागता रहता है, अर्थात् इसके पीनेके बाद इतना उत्साह बढता है कि उसके पीनेवालेको आलस्य नहीं आता।

२ पाजसातये प्र घन्त् [ १३६४ ]- अन्न बान करनेके लिए भू आगे हो। सोमरस एक अन्न है। उसे पीनेके लिए देना एक प्रकारसे अन्न बान हो है।

३ स्वश्रणि घृत्राणि यरि [ १३६४ ]- साहस करने-वाला और शत्रुओं पर चढ़ता जाता है, उसीप्रकार "दिवा तरये ईरसे" देव करते रहनेवाले राजाओंको मारनेके लिए आगे जाता है। सोमरस पीकर उत्साहित हुए हुए धीरे शत्रुओं पर चढ़ते बसे बसे होते हैं।

४ हे सोम। मदे अये-राज्ये खंसदामसि [ १३६६ ]- हे सोम। महान् कार्यें राज्योंमें हम सगठितरूपसे मानवित होकर रहें।

५ हे सोम। शुक्रा द्विष्णः पीयूषः सः अमृताय मदे क्षायय पय अये [ १३६८ ]- हे सोम। तू तेजस्वी, बलवान् और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ अमृतस्वी रख है। ऐसा तू ममर होनेके लिए तथा बड़े बड़े विनाश स्थान प्राप्ता करनेके लिए आगे होकर प्रगति कर।

६ हे सोम। कने दक्षाय सुतस्यसे इन्द्रः पेयात्, विश्वे च देवाः [ १३६९ ]- हे सोम। कर्षद्विज और यशःप्राप्त करनेके लिए तेरा रस इन्द्र और सब देवोंके देव पीयें।

७ सूर्यस्य रश्मयः इयः प्रायपितृणः मत्सरासः प्रसुत आशयः सर्गासः तयं तन्तुं सार्क ईरते, इन्द्रात् क्षते किंचन धाम न पयते [ १३७० ]- सूर्यके किरणोंके समान संतनैवाले और मानव ईर्ष्यावाले सोमरस कँडी छलनीसे नीचे गिरते हैं। ये इन्द्रके सिवाय और कोई स्वाम पकड़ नहीं करते।

इसप्रकार सोमरस इस अध्यायमें वर्णित है। यह सोम उत्साह बढ़ानेवाला, आलस्य कम करनेवाला, अशक्त समान उपयोगमें आनेवाला, शत्रुओंको बुर करनेवाला, महान् कार्यमें संगठित होकर रहनेकी व्यवस्था करनेवाला, कर्मशक्ति और बल बढ़ानेवाला है।

### सोम रक्षण करता है

१ सोमः आयः [ १३५८ ]- सोम हृष्टा रक्षण करता है। सोमते ओ उत्साह बढता है, उससे बीरता बढती है, फिर बीरतासे रक्षा होती है।

२९ [ ताम द्विषो - - ]

२ प्रियसासः ऊती [ १३५८ ]- प्रिय लगनेवाले से शोकके रस हमारी रक्षा करनेवाले हैं।

३ धर्षिता चर्षनः मीद्वान् सोमः मः ज्योतिषा अग्नि आविश [ १३५९ ]- स्वर्षन करनेवाला, बढ़ानेवाला, कामनाओंकी तृप्ति करनेवाला यह सोम अपने तेजसे हमारी रक्षा करे। बल बढ़ानेकी शक्ति जिसके पास है, वह संरक्षण कर सकता है।

### सोम धन देता है

१ खीमः कारिणे न, धर्मं प्र यंसत् [ १३५८ ]- कारीरपत्नी, यत् करनेवालोंकी अंते धन दिया जाता है, उसी प्रकार यह सोम स्त्रीयों बढानेवाला होने के कारण पीनेसे स्त्रीयों बढता है, इस कारण बहुत सारा काम करने धन प्राप्ति किया जा सकता है।

### वैदिक-स्तोत्र

वैदिक स्तोत्रोंका महत्त्व इस अध्यायमें विष्णु है। वह व्यान-पूर्वक देखने योग्य है—

१ ते मधुमत्तमाः गिरा स्तोमासः उर्वारते, सत्रा-जितः धनसा अक्षितोत्पः पाजयन्तः रथाः इय [ १३६९ ]- उन अत्यन्त मीठे स्तोत्रोंका उच्चारण किया जाता है। ये स्तोत्र शत्रुओंकी एक ताप भीतनेवाले, धन देनेवाले, अनाय सरलत्व करनेवाले, युद्धमें जानेवाले रथके समान विजय देनेवाले हैं।

वैदिक स्तोत्रोंका यह वर्णन बिलकुल ठीक है। इन्द्र और सोमके स्तोत्र शीघ्र और वराक्रम बढ़ानेकी शक्ति-वाले हैं। अजितके स्तोत्र सान बढ़ानेवाले हैं। अग्नि देवोंके द्वारा ही इसीप्रकार विजयका मार्ग दिखाते हैं। मन्त्रों वर्णित देवताओंके पुण उपासकोंको अपने मन्दर लाने चाहिए। यह बिलम्बा निश्चित मार्ग है।

### सुभाषित

१ सुसमिदा हनिष्यते देवान् आ घट [ १३५० ]- प्रदीप्त होकर पक करनेवाले देवोंको ले आ।

२ हे पावक। यक्षि [ १३५० ]- हे पवित्र करनेवाले देवों। यत् करे।

३ हे कये। तन्म-न-पात् [ १३५८ ]- हे तानो

अने । तू शरीरका पतन नहीं होने देता । शरीरमें जबतक  
धर्म रहती है, तबतक मृत्यु नहीं होती ।

४ अथ नः ऊतये भुभुमन्तं यथा देवेषु कृणुहि  
[ १३४८ ]- आज हमारे सरक्षणके लिए हमारे मधुर  
हवनसे होनेवाले यज्ञकी बेशकी ओर पहुँचा ।

५ प्रियं मधुभिर्जिह्वं मरशंसं उपह्वये [ १३४९ ]-  
प्रिय, मधुरभायी लोणों द्वारा प्रशंसित उस अमिको मैं अपने  
पास बुलाता हूँ ।

६ ईदितः सुखतमे रये वेद्यान् आयह [ १३५० ]-  
शुद्धिके बाद अत्यन्त सुख देनेवाले रथसे वेद्योंको ॥ आ ।

७ मनु-हितः असि [ १३५० ]- तू मनुष्योंका हित  
करनेवाला है ।

८ हे सुदामावः । सक्षयः सु-प्राचीः अस्तु [ १३५१ ]-  
हे उत्तम काम देनेवाले देवो ! तुम्हारा यशका निवास  
हमारा उत्तम रक्षण करनेवाला होवे ।

९ नः अंहः अति पिप्रति [ १३५२ ]- हे देवो ! हमें  
पापसे दूर करो ।

१० ये अक्षध्वस्य व्रतस्य स्वराजः महः राजानः  
ईदते [ १३५३ ]- जो न ब्रह्मणसे व्रतके राजा और  
स्वयं महान् शासक हैं, वे देव सभीपर आसन करते हैं ।

११ हे अद्रिघः । राधः कृणुष्व [ १३५४ ]- हे बज्रधारी  
इन्द्र ! हमें ऐश्वर्य दे ।

१२ ब्रह्मद्विपः अजजहि [ १३५४ ]- ज्ञानसे देव  
धारनेवालों की मार ।

१३ हे इन्द्र ! महान् असि, त्वा प्रति कदचन नहि  
[ १३५५ ]- हे इन्द्र ! तू महान् है, तेरे समान दूसरा कोई  
भी नहीं है ।

१४ अ-राघवः पणीन् पदा नि धाघस्व [ १३५५ ]-  
बान न देनेवाले कालघियोंकी चरसे कुचस डाल ।

१५ हे इन्द्र ! त्वं जलानां राजा [ १३५६ ]- हे  
इन्द्र ! तू मनुष्योंका राजा है ।

१६ जायुभिः कर्तं मतीनां विप्रः सोमः पुनानः  
[ १३५७ ]- तारा आपत रहनेवाला, यज्ञमें श्रुतिसे  
प्रशंसित यह जानी सोम पानता जाता है ।

१७ पुनानः उमे रोदसी या अग्नाः [ १३५८ ]-  
मुद होनेवाला सोम सुखी और मूलीकः दोनोंकी ही अपने  
तेजसे भर देता है ।

१८ सोमः आवः [ १३५८ ]- सोम हमारा रक्षण  
करता है ।

१९ कारिणे न, धनं ॥ यंसत् [ १३५८ ]- यह  
करनेवालोंको जैसे धन विलता है, वैसे ही हमें भी दे ।

२० वर्धिता वर्धनः पूषमानः मीद्वान् सोमः नः  
ज्योतिषा अग्नि आवित् [ १३५९ ]- बृशरोको बढ़ानेवाला,  
स्वयं भी बढ़नेवाला, स्वच्छ होनेवाला, कामनाओंको पूर्ण  
करनेवाला सोम अपने सेजसे हमारी रक्षा करे ।

२१ यथ पदज्ञाः स्वर्गिन् नः पूर्वे पितरा गा अग्नि  
हृणन् [ १३५९ ]- जित सोमके स्थानके पास पदोंका  
अर्थ जाननेवाले, व्यामज्ञानी हमारे पूर्वज अपनी गाँवें लेजाते  
थे । मार्ग चरानेके लिए बहुत ले आते थे जहः सोमवल्ली  
उपती थी ।

२२ हे तत्सायः । अन्वत् मा शिव् दिरास्तत,  
मा रियण्यत, सुते वृषणं इन्द्रं सत्ता स्तोत, उपधा  
च मुहुः क्षंसत् [ १३६० ]- हे मित्रो ! इन्द्रकी छोड़कर  
और किसीकी श्रुति मत करो । निरयंक अपनी शक्ति  
सबसे मत करो । सोमपक्षमें एक जगह बैठकर बलवान्  
इन्द्रकी ही श्रुति करो । इन्द्रके स्तोत्र बारबार कहो ।

२३ वृषर्षे यथा अयक्रोक्षिणं, गां न जुवं, चर्षणी-  
सहं, विद्विषिणं, स्वचननं अभयकरीं मंहिषिं उभयाधिर्न  
मुहुः क्षंसत् [ १३६१ ]- बैलके समान वाकृको टक्कर  
देनेवाले, बंसके समान क्षीप्रता करने वालोंको हरानेवाले,  
जनुषे होय करनेवाले, उपासकीति द्वारा सेवा करने योग्य,  
निर्भय करनेवाले, बहान् और सोमों सरहके ऐश्वर्य देनेवाले  
इन्द्रकी बारबार श्रुति करो ।

२४ सज्जाजितः धनसा, अक्षितोतयः, वाजयन्तः  
रथाः इव मिरः उदीरवे [ १३६२ ]- एक साथ  
शत्रुओंको जीतनेवाले, पन देनेवाले, रक्षण करनेवाले, युद्धमें  
जानेवाले रथके समान स्तोत्र कहे जाते हैं ।

२५ कषयाः श्रुमवाः धीत विष्वं इत् इन्द्रं भादात  
[ १३६३ ]- कषय और श्रुम प्यानके द्वारा सर्वव्यापक इन्द्रकी  
प्राप्ति हुए ।

२६ आयवः महयन्तः स्तोमेभिः अस्वरन् [ १३६३ ]-  
उपसक्त इन्द्रके गहवः पाले हान् स्तोत्र बोलने लगे ।

२७ सु वाजससव्ये प्रधन्व [ १३६४ ]- उत्तम रीतिसे  
मग्नवान् करनेके लिए तू आगे हो ।

२८ सक्षणिः सुभाण्य परि [ १३६४ ]- साहस करने-  
वाला और शत्रुपर जैसा आक्रमण करता है, वंसा ही तू कर ।

२९ द्विष तरुणै रुरसे [ ११६४ ]- धनुर्बोको मार मके लिए आते जाता है ।

३० न मृणया [ ११६४ ]- हमारे श्रेष्ठ उतारनवाला दू है ।

३१ महे अर्यराज्ये स मदामसि [ ११६६ ]- महान् भाय राज्यमें रहकर हम आनखित होते हैं ।

३२ स्वाहु प्र घन्य [ ११६७ ]- तू मोठा बनकर भागे बल ।

३३ शुभ दिश्य पीयूष स अमृताय महे क्षयाय मर्ये [ ११६८ ]- तेजस्वी स्वयमें उत्पन्न हुआ हुआ अमृतके समान वह सोम प्रसर होनके लिए और महान् स्थान प्राप्त करनेके लिए उभरता है ।

३४ सूर्यस्य रश्मय इव द्राघयित्तय अत्सराल प्रसृत आशय समसि तत तन्तु साक ईरते, इन्द्रात् शाने किञ्चन धाम स पवत [ ११७० ]- सूर्यकी किरणोंके समान प्रस्था करनेवाले और आनन्द देनेवाले शुद्ध किए गए और बतनमें रस गए सोमरस फली हुई छलनीमेंसे एक बल नीचे रस हुए बतनमें गिरते हैं । वे इन्द्रके सिपाय और कोई स्थान पतन नहीं करते ।

३५ भय गो पुदिन। अक्रीम [ ११७६ ]- यह सूर्य अपन तेजसे आकाशमें उड़न हो गया ।

३६ मदिष्य दिव्य क्षयस्यत् [ ११७७ ]- यह महान् सूर्य सुलोकोमें प्रकाशित करता है ।

३७ वस्तो विशात् धाम शुभि विराजति [ ११७८ ]- विनकी तीस घडोक्त यह विनये प्रकाशित होता है ।

### उपमा

१ कारिजे न [ ११५८ ]- कारीगर, कवि स्तोता इत्यादिकोंको जैसे वह मिलता है, उसीप्रकार ( घन प्र यस्य ) घन हवें मिले ।

२ वाजयन्त रथा इव [ ११६२ ]- युद्धमें जानवाले रथके समान विजय देनेवाले ( स्तोमास सत्राजित ) स्तोत्र अनुवाचोंकी जीतनवाले हैं ।

३ कण्वा इव [ ११६३ ]- कर्कों समान ( भृगवः पिथ इत् इन्द्र आशत ) भृगु सभ्यापक ईश्वरकी प्राप्ति करते हैं ।

४ सूर्या इव [ ११६३ ]- सूर्यके समान वह ईश्वर उन्हें सिखाई दिया ।

५ सूर्यस्य रश्मय इव [ ११७० ]- सूर्यकी किरणोंके समान ( अत्सराल परि हरते ) सोमरस नीचे आता है ।

६ अत्क न [ ११७२ ]- कवचके समान ( निष्क परि अव्यत ) वृषका आवरण - मिथुन सोम पर पड़ गया है । इस प्रकार इस अभ्यासमें उपमायें आई हैं ।

### एकादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसंख्या	ऋषिदेवता	ऋषि	देवता	छन्द
१३४७	१११११	वेधातिथि काण्व	आग्नी-सुषन- [ १ ] इन्द्र समिध- अग्निर्वा, [ २ ] तनुनपत [ ३ ] नरासत [ ४ ] इन्द्रा	गायत्री
१३४८	१११३१	वेधातिथि काण्व	'	'
१३४९	१११३१	वेधातिथि काण्व	'	'
१३५०	११३३३	वेधातिथि काण्व	'	'
१३५१	७३५१३	वसिष्ठो नराधक	आदित्य	"
१३५२	७३५१३	वसिष्ठो नराधक	'	"

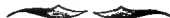
संज्ञसंख्या	ऋग्वेदस्यां	ऋषिः	देवता	छन्दः
१३५३	७।६।६	वसिष्ठो मंत्रावहनिः <sup>१</sup>	"	"
१३५४	८।६।१	प्रभायः काण्वः	इन्द्रः	"
१३५५	८।६।१	प्रभायः काण्वः	"	"
१३५६	८।६।१	प्रभायः काण्वः	"	"

( २ )

१३५७	९।९।१७	पराशरः शाकल्यः	पवमानः सोमः	मिष्ट्यु
१३५८	९।९।१८	पराशरः शाकल्यः	"	"
१३५९	९।९।१९	पराशरः शाकल्यः	"	"
१३६०	८।१।१	प्रभायः धीरः काण्वः	इन्द्रः	प्रगायः=( विवमा बृहती, समा सती बृहती )
१३६१	८।१।१	प्रभायः धीरः काण्वः	"	"
१३६२	८।१।१	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१३६३	८।१।१	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१३६४	९।११०।१	अ्यवणस्त्रैबृणः असवस्युः धीरकुस्यः	पवमानः सोमः	पिपीसिका मध्या अनुष्टुप्
१३६५	९।११०।१	अ्यवणस्त्रैबृणः असवस्युः धीरकुस्यः	"	"
१३६६	९।११०।१	अ्यवणस्त्रैबृणः असवस्युः धीरकुस्यः	"	"
१३६७	९।११०।१	अनयो मिष्या ऐश्वराः	"	त्रिपदा विराट्
१३६८	९।११०।१	अनयो मिष्या ऐश्वराः	"	"
१३६९	९।११०।१	अनयो मिष्या ऐश्वराः	"	"

( ३ )

१३७०	९।६।१	हिरण्यस्तुप आगिरसः	"	अगती
१३७१	९।६।१	हिरण्यस्तुप आगिरसः	"	"
१३७२	९।६।१	हिरण्यस्तुप आगिरसः	"	"
१३७३	७।१।१	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	अग्निः	विराट्
१३७४	७।१।१	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
१३७५	७।१।१	वसिष्ठो मंत्रावहनिः	"	"
१३७६	१०।१८९।१	सार्परातो	आसमा सूर्यो वा	गद्यत्री
१३७७	१०।१८९।१	सार्परातो	"	"
१३७८	१०।१८९।१	सार्परातो	"	"



## अथ द्वादशोऽध्यायः ।



अथ पष्ठमपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ १-२ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ ( १-२ ) गौतमो राहुगण, १ ( ३ ), ८, ११ बसिष्ठो वैशम्पयनि, २, ७ भरद्वाजो बार्हस्पति, ३ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा, ४, १३ सोमं विष्णुं, ५ वेधातिथि-मेघ्यातिथी काण्वी, ६ ( १ ) ऋतिश्रमा भारद्वाज, ६ ( २ ) ऊर्ध्ववेषा आगिरस, १ तिर्यग्वीरागिरस, १० भुतभर आत्रेय, १२, १९ नृमेघ-पुरुमेयावागिरसी, १४ भुतशेष आजीगति, १५ गोषा गौतम, १६ मेघ्यातिथि काण्व, १७ देवर्ष्यवामिन, १८ कुरस आगिरस, २० आत्स्यो मन्त्रावधन ॥ १ २, ७, १०, ११-१४ अग्नि, ३, ६, ८, ११, १५, १७-१८ पवमान सोम, ४, ५, ९, १२, १६, १९, २० इत्यादि ॥ १-२०, ७, १०, १४, यावन्ती, ३, ९ १९ ( १-२ ) २० ( २-३ ) अश्वत्थ, ४, ६-११ काकुत्स्थ प्रणय = ( विषमा कपुप तथा सतोबृहती ), ५, १९ ( ३ ) बृहती, ८, ११, १५, १८ निष्ट्य, १२ १६ प्रणय = ( विषमा बृहती तथा सतोबृहती ), १७ जगती, २० ( १ ) इत्युपोषो बृहती ॥

१३७९ उपप्रयन्तो अक्षर मन्त्र वोचेमाप्रये । आरि अस्मे च भूषन्ते ॥ १ ॥ ( ऋ १७४११ )

१३८० यः स्त्रीद्विषु पूर्वैः संजग्मानास्तु कृष्टिषु । अश्वदाशुषे गयम् ॥ २ ॥ ( ऋ १७४१२ )

१३८१ स नो वेदो जमात्यमयी रक्षतु दुन्तमः । उनास्यान्पात्यहमः ॥ ३ ॥ ( ऋ ७१५१२ )

१३८२ उत भुवन्तु जन्तव उदमिर्वृद्धाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥ ४ ॥ १ ( वि ) ॥

[ धा० १५ उ० १ । ए० ३ ] ( अ १७४१३ )

॥ इति प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

[ १ ] प्रथम खण्डः ।

[ १३७९ ] ( अक्षर उप प्रय-त ) हियारहित यह करनेवाले हय ( आरि सब अस्ते भूषन्ते ) हूत होते ही हनारी स्तुतिपौकी पुननेवाले ( अश्वये ) अग्निके लिए ( मन्त्र वोचेम ) भव नोलते हैं ॥ १ ॥

[ १३८० ] ( य पूर्व्य ) जो पहलेसे ही जायत है, वह कागि ( स्त्रीद्विषु कृष्टिषु सजग्मानास्तु ) हितक नम्रजनि एकत्रित होने पर भी ( दशुषे ) रातके लिए ( गय अरक्षत् ) घरकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

[ १३८१ ] ( शान्तम स अग्नि ) अत्यन्त गुप्त देनेवाला वह अग्नि ( न वेद ) हनारे भव ( जमा-त्य रक्षतु ) पारमे सुरक्षित रख, ( उक्त अस्यान् ) और हर्ष ( अहस पातु ) पापति सुरक्षित रख ॥ ३ ॥

[ १३८२ ] ( वृद्ध-ह्य ) शत्रुको मारनेवाला ( रणे रणे धनञ्जय ) प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंको हराकर धन जीतने-वाला ( अग्नि उदजनि ) अग्नि प्रकट हुआ है, ( उत ) और अब ( जन्तव भुवन्तु ) ऋविज उसकी स्तुति करें ॥ ४ ॥

॥ यथा पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

१३८३ अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याश्रयः ॥ १ ॥ ( ऋ ६।१६।४२ )

१३८४ अच्छा नो याज्ञा वदामि प्रयाश्सि वीतये । आ देवान्सोमपीतये ॥ २ ॥ ( ऋ ६।१६।४४ )

१३८५ उदमे भारत धुमदजसेन दधिद्युतत् । शोचा वि भाद्यजर ॥ ३ ॥ २ ( यी ) ॥

[ पा० १७। उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ ६।१६।४५ )

१३८६ प्र सुग्रानायान्धसो मर्वा न वष्ट तद्वचः ।

अप श्वानमराधसश् हता मखं न भृयवः ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१०।१।२ )

१३८७ आ जामिरक्ते अयत भुजे न पुत्र ओषयोः ।

सरज्जरो न योपर्णा वरो न योनिमासदम् ॥ २ ॥ ( ऋ ९।१०।१।४ )

१३८८ स पीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्त्वभ्म रोदसी ।

हरिः पवित्रे अयत वैधा न योनिमासदम् ॥ ३ ॥ ३ ( खै ) ॥

[ पा० २१। उ० २। स्व० ८ ] ( ऋ ९।१०।१।९ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १३८३ ] हे ( अग्ने देव ) अग्निरेव । ( ये तव साधवः अश्वासः ) जो तेरे उत्तम और सुगील घोड़े ( आश्रयः अरं वहन्ति ) जीवताते तुझे पहुंचाते हैं, उनके ( युक्ष्व हि ) तू अपने रथमें जोड़ ॥ १ ॥

[ १३८४ ] हे अग्ने ! ( नः अच्छा याहि ) हमारे पास तू सीधे आ ( वीतये सोमपीतये ) अप्र भक्षणके बाद सोम पीनेके लिए ( प्रयाश्सि अग्नि ) हविष्य अग्नेके पास ( देवान् आ यद् ) देवोंको ले जा ॥ २ ॥

[ १३८५ ] हे ( भारत अग्ने ) पीपण करनेवाले अग्ने ! ( उत शोचा तू प्रव्यलित हो । हे ( अ-जर ) जराग्रहित ( दधिद्युतत् ) तेजस्वी और ( धुमत् ) प्रकाशमान अग्ने ! ( अ-जलेष्व यिमाहि ) कम न होनेवाले तेमैं प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

[ १३८६ ] ( सुग्रानाय अन्धसः ) रथ निकाले गए सोमके विषयमें ( तत् वचः ) उन प्रसिद्ध शब्दोंकी ( मर्वा न वष्ट ) नीच मनुष्य न तुने । हे स्तुति करनेवालों । ( अप श्वानसं श्वानं अप हत ) विषय करनेवाले कुत्तोंको मारी, ( भृयव मखं न ) नितप्रकार भृयुने कुछ मखकी मारा ॥ १ ॥

[ १३८७ ] ( जामि ) जामिके समान सोम ( अक्ते आ अयत ) छलनीसे छाना जाता है । ( ओषयो भुजे पुत्र न ) रथग करनेवाले याज्ञा पिताको यज्ञाओंमें जैसे पुत्र रहता है, उसीप्रकार यह ( योनि आसदम् ) अपने कलशमें जानेके लिए ( सरत् ) नीचे बिरता है ( जरः योपर्णा न ) नितप्रकार जार लीकी ओर जाता है, अथवा ( यरः न ) घर-पति-कन्याकी ओर जाता है उसीप्रकार सोमरस कलशकी ओर जाता है ॥ २ ॥

[ १३८८ ] ( दक्ष-साधनः सः वीरः ) बल बढ़ानेके साधनसे युक्त वह वीर सोम ( यः रोदसी वितस्तभ ) नितने धुलोक और पृथ्वीको अपने तेजसे भर दिया है । ( वैधा न ) नितप्रकार यज्ञमान अपने घर जाता है, उसीप्रकार यह सोम ( हरिः योनिं आसदम् ) हरे रथवाला होकर कलशमें आया है, वह ( पवित्रे अयत ) छलनीमेंसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

१३८९ अ॒भ्रातृ॒णो अ॒ना स्व॒मना॑पि॒रिन्द्र॑ ज॒नुषा॑ स॒नाद॑सि । यु॒धेदा॑पि॒त्वामि॑च्छ॒से ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१।१३ )

१३९० न की॑ रेव॒न्तः स॒रुधाय॑ वि॒न्दसे॑ पी॒यन्ति॑ ते सु॒राभ्यः॑ ।

यदा॑ कृ॒णापि॑ नद॒नुः स॒मूह॑स्यादि॒त्पित॑ये ह॒यसे ॥ २ ॥ ४ ( पि )

[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।१।१४ )

१३९१ आ त्वा॑ स॒हस्र॑मा श्र॒तं यु॒क्ता रथे॑ हि॒रण्य॑ये ।

अ॒स्य॒युजा॑ हर॒य इन्द्र॑ के॒शिनो॑ ब॒हन्तु॑ सोम॒पीत॑ये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१४ )

१३९२ आ त्वा॑ रथे॑ हि॒रण्य॑ये ह॒री म॒यूर॑द्यो॒प्या ।

यि॒ति॒पु॒ष्टा ब॒हता॑ म॒ध्वो अ॒न्धसो॑ वि॒वक्ष॑ण॒स्य पी॑तये ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।१५ )

१३९३ पि॒या र॒व॒रे॒स्य गि॑र्वि॒णः सु॒तस्य॑ पू॒र्वपा॑ इव ।

प॒रि॒कृत॑स्य र॒सिन् इ॒यमा॑सु॒विश्वार्मु॑दाम॒ पत्प॑से ॥ ३ ॥ ५ ( प ) ॥

[ धा० १० । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१।१६ )

[ १३८९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं ) अनुषा अ-भ्रातृभ्यः । तू जन्मने हो अग्ररहित है । ( सनाद अ-ना ) हमेशासे नेतारहित भोर ( अनापिः असि ) भारिरहित है । जब ( आपित्वं इच्छसे ) तू भाईकी इच्छा करता है, तब ( युधा इत् ) युद्धसे हो यह चाहता है ॥ १ ॥

१ अ-भ्रातृभ्यः— भारिरहित, अग्ररहित ।

२ अ-ना— जिसपर निर्वन्धन रहनेवाला कोई नहीं ।

३ युधा इत्— युद्ध करके हो-अनुजोंको दूर करके हो जवातकोंको अपना मित्र बनाता है ।

[ १३९० ] ( रेवन्तं ) केवल धन उसके पास है, इवीन्द्रि क्विन् अनुषको (स्वधायाय न किः विन्दसे) तू अपना मित्र नहीं बनाता । ( सुराभ्यः ते पीयन्ति ) गरज पीनेवाले नस्तिरः तुमसे कुछ देने हैं । ( यदा नदन्तु कृणापि ) जब ज्ञान प्राप्त करनेवालेकी तू अपना मित्र बनाता है, तब ( समूहसि ) उसे उल्लस मार्ग पर चलता है । ( आपित्वं ) तब ( पिता इव ह्यसे ) पिताके समान तू उनके द्वारा पुकारा जाता है ॥ २ ॥

[ १३९१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अ॒स्य-युजाः के॒शिनः ) हमारेथे रथमें जुड़ जानेवाले, सुगंध अयासवाले, ( हि॒रण्य॑ये रथे यु॒क्ताः ) सोनेके रथमें जोड़े गए ( स॒हस्रं शतं हर॑यः ) हजारों बघैकड़ों घोड़े ( सोम॒पीत॑ये रथा॒मा॒ ह्यन्तु॑ ) सोम पीनेके लिए तुम यतके स्वागपर ले जावें ॥ १ ॥

[ १३९२ ] हे इन्द्र ! ( म॒ध्वः वि॒वक्ष॑ण॒स्य अ॒न्धस्यः पी॑तये ) सोने रथसे युक्त तथा स्तुत्य सोनेके पोनेके लिए ( हि॒रण्य॑ये रथे ) हुनहरे रथमें ( म॒यूर-द्यो॒प्या शि॒ति॒पु॒ष्टा ह॒री ) भोरके तलवार रंगवाले, सफेद पीठवाले हो घोड़े ( त्वा॒ आ॒य॒हता॑ ) तुम यतमें बहूँबावें ॥ २ ॥

[ १३९३ ] हे ( गि॒र्वि॒णः ) अर्धातवीय इन्द्र ! ( प॒रि॒कृत॑स्य र॒सिन्ः अ॒स्य सु॒तस्य॑ ) स्वच्छ किए गए रस युक्त इस सोमरसका ( पि॒य ) तू निःसंशय पान कर । तू ( पू॒र्व-पाः इ॒व ) प्रथम पीनेवाला है । ( या॒ना इ॒यं आ॒सुतिः॑ ) सुगंध यह सोमरस ( म॒द्याय॑ वा॒यते॑ ) आनन्द देनेके योग्य है ॥ ३ ॥

१३९४ आ सोता परि पिञ्चतार्थं न सोममप्सुरध्वजस्तुरम् । वनमधुमुदग्रुतम् ॥ १ ॥

( ऋ २।१०८।७ )

१३९५ सहस्रधारं सुपभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।

अतन य अतजातो विवावृधे राजा देव अतं बृहत ॥ २ ॥ ६ ( या ) ॥

[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. २।१०८।८ )

॥ इति द्वितीय खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१३९६ अमिश्राणि जहन्ध्रविणस्पुर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥ ( ऋ ६।६।१४ )

१३९७ गर्भे मातुः पितुः पिता विदिद्युतानो अश्वरे । सोदिन्मृत्स्व योनिमा ॥ २ ॥ ( ऋ ६।६।१५ )

१३९८ नमः प्रजानदा भर जातवेदा विचर्यणे । अग्ने यदीदयद्वि ॥ ३ ॥ ७ ( य ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ३।६।१६ )

१३९९ अर्य प्रेषा हेमना पुष्यमानो देवो देवेभिः समपूक्त रसम् ।

सुतः पविर्ग पयैति रेमन्मिषे सद्य पशुमन्वि हावा ॥ १ ॥ ( ऋ ९।९७।१ )

[ १३९४ ] हे ऋत्विजो ! ( अश्व ज ) घोड़े के समान ( अप्सुर स्तोम ) जलोंकी वेगले बहानेवाले प्रशमनीय ( रजस्तुर धनमस्त ) तेजकी तेजीसे फैलनेवाले और पानीके समान पति करनेवाले ( उद्ग्रुत आसुत ) पानीमें तरनेवाले सोमका रस दिवाली गौर ( परि पिञ्चत ) उसे पानीमें मिलाओ ॥ १ ॥

[ १३९५ ] ( सहस्र-धारं सुपभं ) हजारों धाराओंसे छाना जानेवाला, बलवर्धक ( पयो-दुहं प्रियं ) धूममें मिलाये गए प्रिय सोमकी ( देवाय जन्मने ) देवोंको देनेके लिए शुद्ध करो । ( देवः अतं ) दिव्य और महत्त्व ( अतजातोः ) महान् और यकमें काया गया ( याः राजा ) ओ राजा सोम है, वह ( अतन वि वावृधे ) जलसे बढाया जाता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३९६ ] ( समिद्धः शुक्र ) प्रज्जलित और तेजस्वी ( आहुतः विपन्यया ) आहुति दिया गया और तपुति किया गया ऐसा वह ( अविणस्पुः अग्निः ) वन देनेवाला अग्नि ( शुक्राणि जघनत् ) शत्रुओंको मारता है ॥ १ ॥

[ १३९७ ] ( मातुः गर्भे ) मातृगर्भमें ( अ-श्वरे ) अविवासी यज्ञवेदीके स्थान पर ( विदिद्युतानः ) बिजोय प्रदीप्त हुआ हुआ ( पितुः पिता ) धनीकका रसकअग्नि ( योनिमा योनि ) यतकी बेसीमें ( आसीद् ) बैठा हुआ है ॥ २ ॥

[ १३९८ ] हे ( जातवेदः विचर्यणे ) सवज्ञ, विशेष इच्छा करने । ( प्रजान्वादा भर आ भर ) पुत्रपोषिति पूजित बना हमें दे । ( यदीदयि दीदयत् ) जो धूलोकमें देवताओंकी दिवा करता है ॥ ३ ॥

[ १३९९ ] ( अर्य प्रेषा ) दस सोमका प्रेरणा देनेवाला और ( हेमनापुष्यमानो देव ) सोनेले पवित्र होनेवाला तेजस्वी ( रस देवेभिः समपूक्त ) रस देवोंसे मिलाता है । ( सुतः रेमन् पविर्ग पयैति ) सोमरस शब्द करता हुआ छल्लो द्वारा छल्लाता है । ( हावा मिला पशुमन्मिष सद्य इव ) जिसप्रकार हवन करनेवाला यज्ञमान स्वयंके द्वारा बनाने गए पशुपक्षा घरोंमें जाता है, उसीप्रकार सोम बलवर्धक जाता है ॥ १ ॥

- १४०० मद्रा यस्मा समन्याः वसानो मदान्कविनिवचनानि श्रुत्सन् ।  
आ वच्यस्य चम्याः पूषमानो विचक्ष्णो जागृविदैवयोतो ॥ २ ॥ ( अ. १९७१२ )
- १४०१ समु प्रियो वृष्यते सानो अप्ये यशस्वरो यशसा श्रुतो अस्मे ।  
अभि स्वर घन्वा पूषमानो पूष पाठ स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ८ ( रि ) ॥  
[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( अ. १९७१३ )
- १४०२ एषो न्यिन्द्रस्तवाम शुद्धश्चुद्धेन सामा ।  
शुद्धैरुष्यैवावृष्वाःस्तश्चुद्धैराशीर्वाग्ममसु ॥ १ ॥ ( अ. ८१९७७ )
- १४०३ इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरुतिभिः ।  
शुद्धो रयि नि धारय शुद्धो ममदि सोम्य ॥ २ ॥ ( अ. ८१९७८ )
- १४०४ इन्द्र शुद्धो हि ना रयिः शुद्धो रत्नानि दाशुपे ।  
शुद्धो वृत्राणि जिघ्रसे शुद्धो वाजः सिपासि ॥ ३ ॥ ९ ( पी ) ॥  
[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( अ. ८१९७९ )  
॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ १४०० ] ( मद्रा समन्या यस्मा वसानः ) कल्याणकारक युद्धके बोध्य एते वरतर्को - तैत्तिरीकी धारय करनेवाला ( महान् कथिः ) महान् शानी ( नि यचनानि दांसन् ) स्तुति और स्तोत्रोंका कहनेवाला ( विचक्ष्णः जागृयिः ) शानी और जाग्रत रहनेवाला यह लोक है, हे लोक ! वह तू ( पूषमानः ) वचित्र होकर ( यैवयोतो ) बताने ( धाम्नोः वा वच्यस्य ) बताने प्रविष्ट हो ॥ २ ॥

[ १४०१ ] ( यशसा यशस्वरः ) यशसी होनेवालोंमें श्रेष्ठ यशस्वी ( श्रुतः प्रियः ) भूमिपर उत्पन्न होकर सबको प्यारा लगनेवाला ( सानो ध्व्ये ) बालोंकी श्रेष्ठ छलनीमें ( अलो सं सुज्यते ) हमारे लिए शरीरजोति द्वारा जाना जाता है । ( पूषमानः ) वचित्र होरहामा तू नी ( घन्वा अभि स्वरः ) शानी बताने वाला करते हुए ना । ( पूष नः स्वस्तिभिः सदा पाठ ) तुम कल्याण करनेवाले साथमेंते हमारे हीरादा रसता करो ॥ ३ ॥

[ १४०२ ] ( शु पठ ८ ) तुम गीत भाजो । ( शुद्धेन स्वाम्ना ) हम युद्ध ताकतावले और ( शुद्धैः उक्थैः ) युद्ध संज्ञित ( शुद्धे इन्द्रस्तवामः ) युद्ध इच्छाकी स्तुति करते हैं । ( धावृष्यैः ) साथमेंते वृद्धोंका प्राण होनेवाले इच्छा ( शुद्धैः आशीर्वाग्मः ) युद्ध और प्राणके रूपके साथ मिलता हुआ कोष ( ममसु ) प्रसन्न करो ॥ १ ॥

[ १४०३ ] हे इन्द्र ! तू ( शुद्धः नः आगहि ) युद्ध रहनेवाले हमारे पास आ ( शुद्धाभिः उतिभिः शुद्धः ) युद्ध रक्षणके साथमेंते युक्त, युद्ध वचित्र तू ( शुद्धः रयि नि धारय ) युद्ध रहकर हमें यज्ञ दे । हे ( सोम्य ) लोक पाने-पाते इन्द्र ! ( शुद्धः ममदि ) तू युद्ध होकर हमें आनन्द प्राप्त करा ॥ २ ॥

[ १४०४ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( शुद्धः हि नः रयि ) तू युद्ध है इसलिए तू हमें यज्ञ दे । ( शुद्धः वाशुपे रत्नानि ) तू युद्ध रहकर बालोंको रत्न दे । ( शुद्धः वृत्राणि जिघ्रसे ) तू युद्ध रहकर वानुशोकों मारता है । ( शुद्धः वाजं सिपासि ) तू युद्ध रहकर अन्न देता है ॥ ३ ॥

॥ यदा तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

१४०५ अग्ने स्तोमं मनामहे सिद्धमग्नं दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यः ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१।१२ )

१४०६ अग्निर्जुपत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षदेव्यं जनम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१।१२ )

१४०७ त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि सन्वते ॥ ३ ॥ १० ( रि ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ५।१।१४ )

१४०८ अभि त्रिपृष्ठं पूर्णं वयोधामङ्गाणिमवावर्तत शशीः ।

बना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नभा दधते वार्याणि ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१०।१२ )

१४०९ शूद्रग्रामः सर्वधीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता वनानि ।

तिग्मायुधः क्षिप्रघन्वा समरस्वपाढः साह्यान्पृतनासु धनून् ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१०।१२ )

१४१० उरुगन्धर्वतिरभयानि कृष्णन्तस्मीचीनि आ पवस्वा पुरन्धी ।

अपः सिपासन्नुपसः स्वडर्गाः सं चिक्रदो महो असम्यं बाजान् ॥ ३ ॥ ११ ( ५ ) ॥

[ धा० ३० । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. ५।१०।१४ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४०५ ] ( द्रविणस्यः ) वनकी इच्छा करनेवाले हम ( दिवि-स्पृशः ) देवस्य अग्नेः ) आकाशमें व्याप्त होनेवाले तेजस्वी अग्निके ( सिद्धं स्तोमं ) सिद्धि देनेवाले स्तोत्रको ( अग्न ) आन ( मनामहे ) करते हैं ॥ १ ॥

[ १४०६ ] ( होता यः अग्निः ) हुवन करनेवाला जो अग्नि ( मानुषेषु आ ) मनुष्योंके घरोंमें रहता है । ( सः नः गिरः जुपत ) वह हमारी स्तुतिवाँकी सुने, और ( देव्यं जनं यक्षत् ) विष्य जनोको प्रुष्य करे ॥ २ ॥

[ १४०७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( जुष्टः वरेण्यः होता त्वे ) प्रसन्न, श्रेष्ठ और हुवन करनेवाला तू ( स-प्रथाः असि ) सचते श्रेष्ठ है। तब वनमान ( त्वया ) तेरे द्वारा ही ( यज्ञं वितन्वते ) वस्तुव अनुष्ठान करते हैं ॥ ३ ॥

[ १४०८ ] ( त्रिपृष्ठं पूर्णं ) तीनों सबमेंमें रहनेवाले ब्रह्मान् ( वयोधां ) अन्न देनेवाले क्षीर ( अङ्गोर्विणं ) ताम्र करनेवाले सोमको ( धाण्याः ) अग्न्यवावदाश्व ) हमारी वाग्विप्री स्तुति करती हैं ( वरुणः न ) वरुणके समान ( वना वसानः ) शकमें मिला हुआ ( सिन्धुः रत्नधाः ) गमनशील और रत्न देनेवाला सोम ( वार्याणि दधते ) श्वोकार करने योग्य पान स्तुति करनेवालोंको देता है ॥ १ ॥

[ १४०९ ] हे सोम ! ( शूद्रग्रामः सर्वधीरः ) गुरोंके समूह और अनेक वीरोंमें युवत ( सहावान् जेता ) ताम्रदेवान् और विजयी ( घनानि सनिता ) यव देनेवाला ( तिग्मायुधः क्षिप्रघन्वा ) तीक्ष्ण शस्त्र पासमें रखनेवाला और शीघ्रतासे धनुष चलानेवाला ( समरसु अशब्दः ) संधायमें असह्य ( पृतनासु धनून् साह्यान् ) युद्धमें शत्रुको हरानेवाला तू सोम ( पवस्व ) कलशमें घनता ला ॥ २ ॥

[ १४१० ] हे सोम ! ( उद-गन्धूतिः ) विस्तीर्ण मार्गवाला ( अभयानि कृष्णन् ) निर्भय करनेवाला ( पुरन्धी समीचीने कुर्वन् ) चापार्णविकी जोड़नेवाला ( आ पवस्व ) तुलना जाओर ( अपः उपसः स्वः याः सिपासन् ) क्षम, उपा सूत्रं, किरणें और गर्मीका अपनी पुष्टिके लिए सेवन करता हुआ ( सं चिक्रदः ) तथा शय्य करता हुआ ( महः बाजान् ) बहुत शक्ति ( असम्यं ) हमें दे ॥ ३ ॥

१४११ स्वभिन्द्र यज्ञा अस्पृजीषी अयसस्पतिः ।

स्वं वृषाणि हृत्स्पप्रतीन्येक इत्पुर्वनुचमर्षणीधृतिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।१ )

१४१२ तस्य त्वा नूनमसुर प्रचेतसः राघो भागमिवमेह ।

महीच कृत्तिः शरणा त इन्द्र म ते सुम्ना नो अवनवन् ॥ २ ॥ १२ ( त ) ॥

[ घा० १४ । उ० १ । २०० १ ] ( ऋ. ८।१०।६ )

१४१३ यजिष्ठं त्वा वपुमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुकतुम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।११।१ )

१४१४ अपां नपातः सुभगः सुदीदितिममिमु श्रेष्ठोचिषम् ।

स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अषामा सुभं पशवे दिवि ॥ २ ॥ १३ ( वा ) ॥

[ घा० १४ । उ० १ । २०० २ ] ( ऋ. ८।११।४ )

॥ इति अनुर्व. सप्तः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१४१५ यमने पृस्तु मर्यमवा वाजेषु यं शुनाः । स यन्ता शश्वदीरियः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१७।० )

१४१६ न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्वोदयः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१७।८ )

[ १४११ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( शयस. पतिः ऋजीषी ) बलका त्वासी और तौमकी इषाज करने-वाला तथा ( यज्ञाः अस्ति ) यज्ञस्त्री है । ( अनुत्त. स्वर्षणी-धृतिः त्वं ) अपराजित और सब मनुष्योंका आपार हु ( एक इत् ) अकेला ही ( अमर्तीनि वृषाणि ) बलवान् शत्रुओंको ( पुष्ट इति ) बहुत शक्त्यासे मारता है ॥ १ ॥

[ १४१२ ] हे ( असुर इन्द्र ) बलवान् इन्द्र ! ( तं मनेनस्वं त्वा व ) उस आनेसे युक्त तेरे पाससे ( भागं इव ) वितासे मित्रप्रकार पनका भाग मागते हैं, उत्तीप्रकार ( राघः नूनं ईमहे ) हय पन मागते हैं । ( कृत्तिः इय ) बड़े शोभने लमान ( ते मही शरणा ) तेरे विस्तृत स्थान हमें आश्रय देनेवाले हैं, ( ते सुम्ना ) तेरे उत्तम मन बढानेवाले बुल ( नः प्राश्नुषम् ) हमें प्राप्त हों ॥ २ ॥

[ १४१३ ] हे आने ! ( देवत्रा देवं ) वेजोंमें जगित दिव्य ( होतारं अमर्त्यं ) हवन करनेवाले, अमर ( अस्य यज्ञस्य सुकतुम् ) इस यज्ञकी कृतन पीलिते करनेवाले ( यजिष्ठं त्वा वपुमहे ) यज्ञके कर्ता तेरी हय भक्ति करते हैं ॥ १ ॥

[ १४१४ ] ( अपां-न-पात ) अर्जोंको न गिरानेवाले ( सुभग सु-दीदिति ) उत्तम माल्यवान् और उत्तम तेजसे तेजस्वी ( श्रेष्ठ-ओचिष अग्निः ) तथा श्रेष्ठ ज्वालाओंसे युक्त अग्निकी हय प्रार्थना करते हैं । ( सः नः ) वह हमें ( दिवि मित्रस्य वरुणस्य ) यज्ञस्थानमें रहनेवाले मित्र और वरुणके द्वारा मिलनेवाले ( सुभं यशस्ते ) बुल देवे, ( सः भागं ) वह हमें अलौकिक मिलनेवाले भुक्त देवे ॥ २ ॥

॥ यदां जीया खण्ड समस्त हुयः ॥

[ ५ ] पञ्चम. खण्डः ।

[ १४१५ ] हे ( अग्ने ) आने ! ( पृस्तु यं मर्यं अवा ) संग्राममें जिस मनुष्यकी तू रक्षा करता है, ( वाजेषु यं शुनाः ) स्वर्गमें जिस पुरुषकी तू श्रेष्ठा बना है ( सः ) वह ( शश्वतीः इषाः यन्ता ) हवेका अथ प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ १४१६ ] हे ( सहन्त्य ) अनुजोंको हथनेवाले अग्ने ! ( अस्य कयस्य पर्येता न कि चित् ) इस तेरे भक्तका पराजय करनेवाला कोई भी नहीं, शर्षीक इसका ( अषाम्पा. वाजः अस्ति ) यज्ञस्त्री बल प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

१४१७ स वाजं विश्वर्षाभिरर्विहिरस्तु वरुणा । विप्रैभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥ १४ ( डा ) ॥  
[ धा० १८ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. १।२७।९ )

१४१८ साकमुधो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।  
हरिः पर्यद्रवजाः धर्मस्य द्रोणं ननये अत्यो न वाजी ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२१।१ )

१४१९ सं मातुभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अङ्गिः ।  
मयो न योषामभिः निष्कृतं यन्तं गच्छते कलश उल्लियाभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२१।२ )

१४२० उत प्र पिप्प ऊषरध्व्याषा इन्दुर्धाराभिः सचते समेधाः ।  
मृषानं गावः पयसा चमूषभि औणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥ १५ ( वृ ) ॥  
[ धा ३० । उ० नास्ति । स्व० ६ ] ( ऋ. १।२१।३ )

१४२१ पिमा सुतस्य रसिनो मरस्वा न इन्द्र गोमयः ।  
आदिनो पोधि सधमाधे धृषेइ उषाध अवन्तु ते बिबः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।११।१ )

[ १४१७ ] ( विश्व-जर्षभिः सः ) सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला यह अग्नि ( अर्षिभिः वाजं वरुणा अस्तु ) धोकेके द्वारा पुत्रों जय प्राप्त करनेवाला होके, ( विप्रैभिः सनिता अस्तु ) तथा क्षत्रियों द्वारा प्रसन्न किया गया यह अग्नि हमें फल देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ १४१८ ] ( साके उक्तः स्वसारः ) एक साथ कार्य करनेवाली ये अंगुलियाँ ( मर्जयन्त ) सोमरसको गूढ़ करती हैं । ( दश धीतयः ) ये दसों अंगुलियाँ ( धीरस्य धनुत्रीः ) इस धैर्यधारी सोममें हलचल सेवा करती हैं । बादमें ( हरिः स्वर्ग्य आ-पर्यद्रवत् ) यह हरे रंगका सोम सूर्यको दिखाते छाया जाता है । ( वाजी न अत्यः ) धोकेके समान यह बघल सोम ( द्रोणं ननये ) कलशमें जाता है ॥ १ ॥

[ १४१९ ] ( यापशानः ) देवता जिसकी इच्छा करते हैं ( पुरुवारः ) अनेक गति प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ऐसा यह ( वृषा ) बलवान् सोम ( अङ्गिः तं दधन्वे ) धारिके साथ मिलाना जाता है । ( मातुभिः शिशुः न ) मातासे जैसे पुत्र मिलाना जाता है, अथवा ( मयो योषां न ) पुत्र अथवा स्त्रीसे जैसे मिलता है उसीप्रकार सोम पत्नीमें मिलाना जाता है । ( निष्कृतं अभियन्त ) अपने संस्कार किये जानेवाले स्थान पर जानेके लिए ( कलशे ) कलशमें ( उल्लियाभिः तं गच्छते ) गमके रूपके सोम सोमरस मिलाना जाता है ॥ २ ॥

[ १४२० ] ( उत अध्व्याषाः ऊषः प्रपिप्पे ) और गमके कुण्ठाशयको यह सोम अधिक पूर्ण करता है । ( सु-मेधाः इन्द्रः ) उत्तम बुद्धिमान् यह सोम ( धाराभिः सचते ) धारागति मिलाना जाता है । ( गायः चमूषु मृषानं ) गायें ब्रतनमें रहनेवाले भेड़ सोमको ( निक्तैः वसुभिः न ) निस्संप्रसार सोम स्वच्छ नपड़ेंति अपनेआपको आच्छादित करते हैं, उसीप्रकार ( पयसा अग्निं धूमिणन्ति ) अपने हुएसे आच्छादित करती हैं ॥ ३ ॥

[ १४२१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( गोमयः नः रसिनः सुतस्य ) गमके रूपसे पुत्र, हमारे द्वारा निजके एवं सोमरसको ( पिप, मरस्व ) धी धीर आनन्दित हो । ( सधमाधेः अग्निः नः धृषे पोधि ) एक जगह बँधकर धोनेके समय आगेके समान हमें भजना है, वृ यह जान । ( ते पिपः अहमान् अजन्तु ) तेरी बुद्धिवाँ हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

१४२२ भूयाम ते सुमती वाजिनो वयं मा न स्तरमिमावये ।

असौ चित्राभिरवतादभिष्टिमिरा नः सुमेधु यामय ॥ २ ॥ १६ ( ल ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स० १ ] ( ऋ. ८।३।२ )

१४२३ प्रिरस्मे सप्त घेनवो दुदुहिरि सत्यामाजिरं परमे व्योमनि ।

चत्वार्यन्या भुवनानि निर्भिजि चारुणि चक्रे पदवैरवर्षत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७०।१ )

१४२४ स मरुमाणो अमृतस्य चारुण उमे द्यावा काश्येना वि श्रथये ।

तेजिष्ठा अपो मरुदना परि पय पदो देवस्य भवता सदा विदुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७०।१ )

१४२५ ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो अनुपी उमे अनु ।

येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनर आदिद्राजानं मनना अगृम्यत ॥ ३ ॥ १७ ( वे ) ॥

[ धा० १९ । व० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।७०।१ )

॥ इति पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

[ १४२२ ] हे इन्द्र ! ( वयं ते सुमती ) हम तेरे अनुकूल उत्तम बुद्धिर्बे रहकर ( वाजिनः भूयाम ) बलवान् होंगे । ( अभिमातये ) शत्रुओंके लिए ( नः मा स्तः ) हमारा नाश न करे । अस्तु ( अभिष्टिमिः चित्राभिः [ अतिभिः ] ) इच्छित और सामर्थ्य युक्त (रक्षक)ोंके ( अस्मान् अयतात् ) हमारा तरक्षण कर और ( सुमेधु नः आयामय ) तुझ समुद्धरणोंमें हमें बढा ॥ २ ॥

[ १४२३ ] ( परमे व्योमनि असौ ) अन्तरिक्षमें रहनेवाले इस सोमकी । ( शिः सप्त घेनवः ) इक्कीस गावें ( सत्यां आजिरं दुदुहिरि ) उत्तम दूध देती हैं । और यह सोम ( पत् ) पय ( अर्थात् अवर्षत ) पड़ोसे बढाया जाता है, तब ( अन्या चत्वारि भुवनानि ) अन्य चार प्रकारके पानीकी ( निर्भिजि चारुणि चक्रे ) छाननेमें सहस्रपक्ष होता है ॥ १ ॥

[ १४२४ ] ( चारुणः अमृतस्य ) उत्तम अमृत ( अमृतमाणः सः ) इच्छा करनेवाला यह सोम ( उमे द्यावा ) दोनों धु और पृथ्वीकी ( काश्येन विश्रथये ) स्तुतिस्तोत्रकी द्वारा जलसे परिपूर्ण करता है । ( तेजिष्ठा अपः ) तेजस्वी पानीकी ( मरुदना परिपयत ) अपने महत्त्वसे ढक देता है ( यदि ) इस तथ्य अतिरक्त ( देवस्य सदा ) इस विषय सोमके स्थायी ( भवता विदुः ) यत्के लिए हविते युक्त करते हैं ॥ २ ॥

[ १४२५ ] ( अमृत्यवः अदाभ्यासः ) समरऔर न इनमें जानेवाली ( अस्य ते केतवः ) इस सोमकी वे किरणें ( उमे अनुपी यन्तु सन्तु ) दोनों प्राणिमोको सुरक्षित रखती हैं । ( येभिः ) जिन किरणोंसे सोम ( नृम्णा च देव्या च ) अपने सामर्थ्योंकी और देवीकी देन योग्य अश्वोंकी ( पुनरे ) देवीकी ओर प्रेरित करता है । ( आत् इत् ) आरम्भ ( राजानं ) सोम राजाकी ( मनना अगृम्यत ) स्तुतिप्राप्त प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाचवां सर्ग समाप्त हुआ ॥



[ ६ ]

- १४२६ अमि वायु वीत्यर्षा गृणानोदेअमि मित्रावरुणा पूयमानः ।  
अभी नरं धीजवनं रथेष्टामसौन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९।७।९ )
- १४२७ अमि वस्त्रा सुवसनान्यर्षामि येनः सुदुषाः पूयमानः ।  
अमि चन्द्रा मर्षे नो हिरण्याभ्यश्चाद्रयिनो देव सोम ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।७।९० )
- १४२८ अभी नो अर्षे दिव्या वसुन्यमि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।  
अमि येन द्रविणमश्रवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवज्रः ॥ ३ ॥ १८ ( खे ) ॥  
[ धा० २१ । उ० २ । स्व० ७ ] ( ऋ. १।९।७।९१ )
- १४२९ यज्जायथा अपूर्व्यं मयवन्वृषहस्ताय ।  
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तम्ना उतो दिवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८९।९ )
- १४३० तत्ते यक्षो अजायत तदकं उत हस्तुतिः ।  
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यथ जन्वम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८९।६ )

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ १४२६ ] हे सोम ! ( गृणानः ) स्तुति किए जानेके बाद तू ( चीति वायुं अभि अर्षे ) पीनेके लिए वायुके पास जा । ( पूयमानः मित्रावरुणौ अमि ) साफ होनेके बाद मित्र और वरुणके पास जा । ( नरं-धी-जवनं ) सर्वोंके नेता और बुद्धिको देनेवाले ( रथेष्टां अमि ) रथमें बड़े हुए अभिनीकुमारोंके पास जा, तथा ( वृषणं वज्र-बाहुं इन्द्रं अमि ) बलवान्, बन्दरे समान जिसको भुजामें है, ऐसे इन्द्रके पास भी जा ॥ १ ॥

[ १४२७ ] हे ( देव सोम ) विश्व सोम ! तू हमें ( सु वसनानि वस्त्रा अभ्यर्षे ) उत्तम पहननेके योग्य वस्त्र दे । ( पूयमानः ) साफ होनेवाला तू ( सुदुषाः येनः अमि ) उत्तम वृष देनेवालो पाय दे । ( भर्तये ) भरण पोषणके लिए ( नः चन्द्रा हिरण्या अमि ) हमें तेजस्वी सोना दे और ( रयिनः अभ्यान् अमि ) रथके साथ छोड़े दे ॥ २ ॥

[ १४२८ ] हे सोम ! ( पूयमानः ) छाना जानेवाला तू ( नः दिव्या वसुनि अभ्यर्षे ) हमें विश्व धन दे । ( पार्थिवा विश्वा अमि ) पृथ्वी परके सब ऐश्वर्य दे । ( येन द्रविणं अमृताद्यम् अमि ) जिससे हमें धन मिले वह सामर्थ्य हमें दे । ( जमदग्निवत् आर्षेयं नः ) जमदग्निके समान ऋषियोंके धन भी हमें दे ॥ ३ ॥

[ १४२९ ] ( अपूर्व्यं मयवन् ) हे अपूर्व इन्द्र ! ( वृषहस्ताय यत् जायथा ) समुर्भाव नाश करनेके लिए जब तू प्रकट होता है, तब ( तत् पृथिवीं अ प्रथय ) तूने पृथ्वीको बूझ लिया ( उत तत् दिवं अस्तम्नाः ) और समुन्नील को ऊपर तथ्य किया ॥ १ ॥

[ १४३० ] हे इन्द्र ! ( तत् ते यक्षः अजायत ) उस समय [॥] किए गए [॥] ( उत तत् हस्तुति अकं ) तब तिनको बतानेवाला तूय उत्पन्न हुआ । ( यत् आतं यत् जन्व्यं ) जो हुआ हुआ और होनेवाला है ( तत् विश्वं अभिमृः अति ) उन सर्वोंको तू हृदयनेवाला है ॥ २ ॥

१४३१ आमासु पक्मैरय आ धर्मं रोहयो दिवि ।

धर्मं न सामं तपता सुवृक्तिमिजुष्टं गिर्वणसे बृहत्

॥ ३ ॥ १९ (ये) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।८९।७ )

१४३२ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।

वृषा ते वृष्ण इन्दुवाजी सहस्रसातमः

॥ १ ॥ ( ऋ १।७९।१ )

१४३३ आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो घरेण्यः ।

सहावांश्च इन्द्र सानसिः पृतनापादमर्त्यः

॥ २ ॥ ( ऋ १।७९।२ )

१४३४ र्वं हि द्युरः सनिता चोदयो मनुषो रयम् ।

सहाबान्दस्युमम्रतमोयः पात्रं न शोचिषा

॥ ३ ॥ २० (यि) ॥

[ धा० २९ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ १।७९।३ )

॥ इति पञ्च पञ्च ॥ ६ ॥

॥ इति पञ्चप्रपाठके द्वितीयोऽर्ध ॥ ९-२ ॥

॥ द्वावशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

[ १४३१ ] हे इन्द्र ! ( आमासु पक्मैरय ) अथवा भावोंमें परिपक्व रूपको जूने उत्पन्न किया । ( दिवि सूर्यो अरोहयः ) ध्रुवकी सुपरी चलाया । ( धर्मं सामं न ) निरुपकार प्रवर्ध-पक्षकी जलाते हैं, उत्तीव्रकार ( सु वृक्तिभिः तपता ) उत्तम स्तुतिमयि इन्द्रकी तपाम्नी, उत्साहित करी । ( गिर्वणसे जुष्टं बृहत् ) स्तुत्य इन्द्रकी आनन्द देनेके लिए बृहत् सायका मान करी ॥ ३ ॥

[ १४३२ ] हे (हरिवः) घोड़े वासमें रहनेवाले इन्द्र ! ( महः पात्रस्य इव ते ) बड़े वर्तनके समान घू महान् है । ( वृष्णः ते ) बलवृत्त तेरे लिए ( मत्सरो मदः वृषा ) आनन्दवायव्य, हर्षवर्धक, बल बढ़ानेवाला ( वाजी सहस्र-सातमः इन्द्र ) बलवान् और हजारों बाज देनेवाला ओ सोमरत है, उसे ( अथवा ये मर्त्यः ) पी और आनन्दित हो ॥ १ ॥

[ १४३३ ] हे (इन्द्रः) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए तैयार किया गया यह ( वृषा मदः ) बलवर्धक, आनन्ददायक ( घरेण्यः सहायान् ) अथ, सामर्थ्यवान् ( सानसिः पृतनापादः ) पीने योग्य, शत्रुओंको हारनेवाला ( अमर्त्यः मत्सरो-आमन्तु ) ममर और आनन्द देनेवाला सोमरत तुझे प्राप्त होवे ॥ २ ॥

[ १४३४ ] हे इन्द्र ! ( र्वं हि द्युरः सनिता ) द्युर और बालका देनेवाला है, ( मनुषः रयं चोदय ) मनुष्यके मनोरथोंको उत्तम प्रकारसे प्रेरित कर । ( सहायान् ) सहायता करनेवाला हीकर ( [ अग्निः ] शोचिषा पात्रं न ) श्रित प्रकार अग्नि अपनी प्याससे वर्तन जला डालता है, उत्तीव्रकार ( दस्यु अमर्त्य ओय ) दुष्ट और बल पालन न करनेवालेको जला डाल ॥ ३ ॥

॥ इति द्वावशोऽध्यायः ॥



## द्वादश अध्याय

इत आम्पायमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

१ हे इन्द्र ! त्वं जनुया अ-आतृव्यः [ १३८९ ]- हे इन्द्र ! तू जन्मसे दाम्बुहित है। तेरा कोई शत्रु नहीं। यहा "आतृव्य" शब्द भाईदम्पत्युक्त भाव विखाता है। भाई-भाईमें बंध हुआ स्वाभाविक है, ऐसा प्रतीत होता है। वैविककालमें भी "आतृव्य" पर बंधवाक्य प्रोक्त था। जन्मसे ही इन्द्रका कोई भाई नहीं, जिससे द्वेष हो सके।

२ सनात् अ-ना [ १३८९ ]- तुम पर नैवृद्ध करने-वाला कोई नहीं।

३ अनापिः असि [ १३८९ ]- तू भाईरहित है। तेरा कोई भाई नहीं, तेरा सहायक कोई नहीं।

४ आपित्वे इच्छसे युधा इत् [ १३८९ ]- तू जब भाई बाराता है, तब युद्ध करते तू शत्रुओंको दूर करता है और लोगोंको अपना मित्र बनाता है।

इन्द्रका भाई नहीं, नेता नहीं, मित्र नहीं, ऐसा यह इन्द्र अकेला ही है। पर वह अपनी अपार शक्तिते सबसे अधिक सामर्थ्यवान् है। और अकेला ही को कुछ करना होता है करके दिखाता है। जिसका नेता, भाई, मित्र कोई दूसरा नहीं, फिर भी वह सब कुछ करता है। इससे उसकी अपार शक्तिका ज्ञान होता है। वह अकेला ही सबसे अधिक शक्तिशाली है, इसलिए वह अकेला ही सब कुछ करता है।

५ देयते सय्याय न किः पिन्दसे [ १३९० ]- केवल कोई पनवान् है, इसलिए तू उसे अपना मित्र नहीं बनाता। वसने कीजते वपते गुण हैं, यह तू देखाता है और जो मुचवान् है उसे ही तू अपना मित्र बनाता है।

६ यदा नदतुं छणोपि, समुहसि, आदित् पिता इय ह्यसे [ १३९० ]- जब तू ज्ञान प्राप्त करनेवालेको मित्र बनाता है, तब उसे समानोंसे घसाकर समृद्ध बनाता है। तब लोग तेरी पितासे समान स्तुति करते हैं। क्योंकि पिता अपने बच्चोंको उत्तम मार्ग पर बसाता है, और उनकी उपरति करता है।

७ हे इन्द्र ! त्वं शयसः पतिः यशाः असि [ १४११ ]- हे इन्द्र ! तू बलवान् है और जगत्कारण यशाकी भी है।

८ अनुत्तः चर्यणीपुतिः त्वं यकः इत् अमर्तनि, पुद पुत्राणि दंसि [ १४११ ]- पराजित न होनेवाला और

सब मनुष्योंका धारण करनेवाला अकेला ही तू बहुत बलवान् शत्रुओंकी हारता है।

९ ते धियः अस्मान् अवन्तु [ १४२१ ]- तेरी बुद्धिप्राप्ति हमारी रक्षा करें।

१० धयं से सुमर्तौ वाजिनः भूयाम [ १४२१ ]- हम तेरी अनुकूलतासे बलवान् हों।

११ नः मा स्ताः [ १४२१ ]- हमारा नाश मत कर।

१२ अभिष्टिभिः चित्राभिः [ जतिभिः ] अस्मान् अवधात् [ १४२२ ]- इष्ट और सामर्थ्यवान् तथा बिलक्षण लक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर।

१३ सुसेषु नः आयामय [ १४२२ ]- तुम समूहमें हमें बढा।

१४ हे इन्द्र ! शुद्धः नः रयिः शुद्धः दाशुपे रत्नानि [ १४०४ ]- हे इन्द्र ! शुद्ध और पवित्र तू हमें धन दे, शुद्ध तू शत्रुओंको दल दे।

१५ शुद्धः पुत्राणि जिग्रसे [ १४०४ ]- शुद्ध तू शत्रुओंको मारता है।

१६ शुद्धः धार्जं सियाससि [ १४०४ ]- शुद्ध तू अन्न देता है।

१७ सत् ज्ञातं यत् जन्तुं तत् विभ्यं अभिभूः असि [ १४३० ]- जो उत्पन्न हुआ था होनेवाले हैं उन सबको तू हरानेवाला है।

१८ हे अपूर्व ! मघबन् ! यत् पुत्रहत्याय त्वं जायधाम, तत् पुष्टिर्धो अमघयाम, उत दिवं अस्ताम्नाः [ १४२९ ]- हे अपूर्व इन्द्र ! शत्रुका नाश करनेके लिए जब तू तैय्यार हुआ, तब तुने पुष्टीके इष्ट किया और दुनोको ऊपर लक्षण किया।

१९ हे इन्द्र ! त्वं शूरः ससिता [ १४३४ ]- हे इन्द्र ! तू दूर है और बहा है।

२० अनुत्तः त्वं चोदय [ १४३४ ]- शत्रुओंका मनोरथ सिद्ध हो ऐसा प्रेरणा कर।

२१ सहायान् अमर्तं दस्युं भोजः [ १४३४ ]- तू सामर्थ्यवान् होकर नियम न पातन करनेवाले दुष्टोंकी नष्ट कर दे।

२२ हे असुर इन्द्र ! अचेतसं तया भागं इय राधा नूनं ईमदे [ १४३२ ]- हे बलवान् इन्द्र ! भागवान् ऐसे

तेरे पास हम धनका भाग मांगते हैं । अपने पितासे जैसे मांगते हैं, वैसे ही धनका भाग हम मांगते हैं ।

२३ ते महो दारणा । [ १४१२ ]- तेरा महान् स्थान भाग्य देने योग्य है ।

२४ ते सुभान नः प्राश्नुवन् । [ १४१२ ]- तुमसे उत्तम भग्न मांगते हैं ।

२५ आमासु पर्वयै ऐरत्यः । [ १४१३ ]- तु गापोंमें पका हूय उत्पन्न करता है ।

२६ दिवि सूर्यो अरोहयः । [ १४१३ ]- आकाशमें सूर्यको ऊपर धवाया ।

२७ तत् ते यज्ञः अजायत । [ १४२० ]- तब तेरे लिए मत भूय हुए । तू महान् प्रतापी होनेके कारण यज्ञके द्वारा तेरा जन्मान् सीग करते हैं ।

२८ गिर्यणसे जुष्टं बृहत् । [ १४२१ ]- अग्रंतगीय इन्द्रको आनन्द देनेके लिए बृहत् सागका गावन दिया जाता है ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन मंत्रों द्वारा किया गया है । इस इन्द्रके लिए मत करते हैं और जन्ममें उत्तमी योगीके लिए सोमरस देते हैं ।

### इन्द्रको सोम

१ याजी सहस्रसातमः अपायि मासि । [ १४३२ ]- बलवान् और हजारों प्रकारके बान् देनेवाला इन्द्र सोमरस पीता है और आनन्दित होता है ।

२ हे इन्द्र ! ते युषामदः घरेण्यः सहस्रान् सानसिः पूतनायादः अमर्त्यः मक्षरः शन्तु । [ १४३३ ]- हे इन्द्र ! तेरे लिए सैन्धार किया गया यह यजमान् और आनन्द देनेवाला, भेड़ और सातवीं युक्त, तेजस करनेके योग्य, शत्रुओं-ही हरा देनेवाला, अमर अर्हत्सोमरस सोमरस भूते प्राप्त हो ।

३ इयं पूर्वपाः अस्ति । इयं ध्यावः आमुक्तिः मदाय पश्यते । [ १४३३ ]- तू प्रथम पीनेवाला है । यह सुन्दर सोमरस भूते आनन्द देने योग्य है ।

४ शुद्धेन साम्ना, शुद्धैः उक्चैः, शुद्धं इन्द्रं स्तवामः । पायुध्यांसं शुद्धः आशीर्षान् ममन्तु । [ १४०२ ]- शुद्ध सामगायने, शुद्ध स्तोत्रोंसे, शुद्ध इन्द्रकी हय स्तुति करते हैं । आत्म-सामग्र्यसे बनेवाले इन्द्रको शुद्ध गायके रूपसे निष्कर सोमरस प्रसन्न करे ।

५ हे इन्द्र ! शुद्धः नः आगदि । शुद्धाग्निः ऊतिभिः शुद्धः रथि नि धारय । शुद्धः ममस्ति । [ १४०२ ]- हे, ३१ । साम. हिन्दी भा. १ ]

इन्द्र ! तू शुद्ध ही कर हमारे पास आ । शुद्ध तराशगने साथसेते दूध होकर हमें धन दे और शुद्ध होकर सोम पीकर आनन्दित हो ।

६ हे इन्द्र ! नः रसिनः गोमतः सुतस्य पित्र, मत्स्यः सधमाये आधिः न भूधे वोधि । [ १४२१ ]- हे इन्द्र ! गायके रूपसे मिश्रित तथा हमारे द्वारा निचोड़े गए सोमरस को और आनन्दित हो । एकत्र बैठकर पीनेकी जगह-यात्रायात्र-में निम्नसे समाज हमारा सवर्धन करना है, यह जान ।

७ हे इन्द्र ! मक्षमुजः केशिनः हिरण्यये रथे युपताः सहस्रं शतं हरयः सोम-पीतये स्वा यष्टन्तु । [ १३९१ ]- हे इन्द्र ! सार्वकिक द्वारासे जुड जानेवाले, उत्तम अवालयसे, सोनेके रथमें जुड़े हुए हमारे और संकर्षों छोड़े सोम पीनेके लिए तुझे दो कर ले जाते हैं ।

८ मभ्यः विशक्षणस्य अन्धसः पीतये हिरण्यये रथे मयूर-गोप्या शितिवृष्टा हरी स्वा या यष्टन्तु । [ १३९२ ]- मयूर रथ युक्त, अश्वसनीय सोमरस पीनेके लिए सोनेके रथसे सोमरसके समान सुन्दर रथके अवालयसे तथा सार्वकिक पीतये दोनों पीने भूते पड़वायें ।

इस प्रकार इन्द्रके सोम पीनेके लिए पत्रमें जायेका वर्णन है ।

### अग्नि

अग्निदेवका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार आया है ।

१ आरे असे शृष्यते अग्रये मंधं वोचेम । [ १३७९ ]- अरु रहकर भी हमारी प्रार्थनाओंकी सुननेवाले अग्निके लिए हम मन्त्र बोलते हैं । यज्ञोंके द्वारा उत्तमी स्तुति करते हैं ।

२ पूर्व्यः स्वादितियु कष्टिषु संजग्मनासु दाशुये गयं अरक्षत् । [ १३८० ]- पहलेसे ही तिलक शत्रु सेम्यके इकट्ठे होनेपर भी बली मनुष्यके घरकी गई अग्नि रक्षा करता है ।

३ दातमः सः मग्निः नः येदः भग्ना-त्यं रक्षतु उत अस्मान् बंधतः पातु । [ १३८१ ]- अग्नि तू प्रथम अग्नि देनेवाला यह अग्नि हमारे घर अथवा जो कुछ हमारे पास है उस सबकी सुरक्षित रखे, तथा हमें पापोंसे बचाये ।

४ वृषहा रणे धनंजयः अग्निः उदजनि । [ १३८२ ]- शत्रुका नाश करनेवाला और प्रत्येक युद्धमें धन देनेवाला अग्नि प्रसन्न हो गया है ।

५ हे मरुत अग्ने ! उक् शोच । हे अजर ! द्दि-पतत्तं द्युमन् अजस्त्रेण वि मादि । [ १३८५ ]- हे भगवोपग

करनेवाले आने । तु प्रशंसित हो । हे अरारहित । तेजस्वी और प्रकाशमान जने । कम न होनेवाले तेजसे तु प्रकाशित हो ।

६ समिद्धः शुक्रः आहुतः द्रविणस्युः आग्निः  
चुषाणि जंयन्त [ १३९६ ]- प्रशंसित, तेजस्वी, आहुतिसे युक्त, धन देनेवाला अग्नि शत्रुओंको मारता है ।

७ हे अग्ने ! पृत्सु ये अग्ने अथाः, चाजेषु ये जुनाः,  
सः द्याव्यतीः इपः यन्ता [ १४१५ ]- हे अग्ने ! तु सभामर्षे जिसकी रक्षा करता है, स्पर्धामें जिसको तु जेरणा देता है, वह सब सभ प्राप्त करता है ।

८ हे सहज्य ! अस्य कयस्य पर्येता भक्तिः ।  
ध्याम्यः धाजः अस्ति [ १४१६ ]- हे शत्रुओंको हरा-  
नेवाले जने ! इस तेरे भक्तकी कोई भी नहीं हरा सकता ।  
इसका यशस्वी बल प्रसिद्ध है ।

९ सः धिग्धर्षणिः अर्थेभिः धाजं तवता अस्तु,  
धिरेभिः स्मिता अस्तु [ १४१७ ]- यह सब अनुष्योक्त  
कर्मणा करनेवाला अग्नि धीर्बलके युद्धमें विजय प्राप्त कराने-  
वाला और शानियों द्वारा प्रसन्न किया गया है ।

१० हे अग्ने ! प्रजापत्यं मया मा मर [ १४१८ ]- हे  
अग्ने ! पुत्रपौत्रोंके साथ होनेवाले मम हर्षमें भरपूर है ।

११ होता आग्निः मानुषेभ्य आः सः नः गिरः जुषतः ।  
दैव्यं जनें यक्षन् [ १४०६ ]- हवन निष्कर्म होता है ऐसा  
अग्नि मानवोंके घरमें रहता है । वह हमारी स्तुति सुने और  
दिव्य जनकी भक्ति पवित्र करे ।

१२ जपां मयातं सुभगं सुदीदिति श्रेष्ठशोचिषं  
अग्निं [ १४१४ ]- कर्मोंका पालन करनेवाला, उत्तम आभ्यासान्  
तेजस्वी, प्रकाशमान अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं ।

१३ सः नः पुम्यं यक्षते [ १४१४ ]- वह हमें सुख देवे ।

१४ हे अग्ने ! जुष्टः वरेण्यः होता त्वं सप्रया  
असि, त्वया यशं यितन्यते [ १४०७ ]- हे अग्ने ! प्रसन्न,  
भेद्य और हवन करनेवाला तू सबसे महान् है । तेरी सहस्रतासे  
यशका अनुष्ठान होता है ।

१५ हे अग्ने ! ये तप साधयः मयाश्वः अभ्यासः  
मरं यद्विष्टि, युंक्ष्य हि । [ १४८३ ]- हे अग्ने ! जो तेरे  
पशम सुगन्धित शीघ्रप्रापी घोड़े सीधतासे घुमे ते जाते हैं,  
उन्हें अपने रथमें जोड़ ।

१६ हे अग्ने ! देवांसि प्रधांसि अभि आयाह [ १३८४ ]  
- हे अग्ने ! देवोंको यशमें बुला ला ।

इस प्रकार अग्निजा कर्मान् इस अध्यायमें हैं ।

## देवोंके लिए सोम

१ शुभानः धीर्वि वायुं अभि अर्प [ १४२६ ]- हे सोम !  
स्तुतिके वायु पीनेके लिए वायुके पास जा ।

२ पूयमानः मित्रावरुणौ अभि अर्प [ १४२६ ]-  
स्वच्छ किए जानेके बाद मित्र और वरुणके पास जा ।

३ नरं धीजवनं रथेष्टां अभि अर्प [ १४२६ ]- नेताही  
मुष्टिके गति देनेवाले और रथमें बैठनेवाले अश्विगणोंकी  
ओर जा ।

४ वृषणं वज्रयाहुं इन्द्रं अभि अर्प [ १४२६ ]-  
बलवान् और वज्रके समान शत्रुओंवाले इन्द्रके पास जा ।

इस प्रकार देवोंको सोमरस देने आनेके सम्बन्धमें  
अर्पण है ।

## सोम

१ दक्षसाधनः सः धीरः रोदसी यि सत्तन्म  
[ १३८८ ]- इस अदानिका साधन वह धूर सोम अपने तेजसे  
आवागुपियोंको भर देता है ।

२ हरिः योनिं आसदम् [ १३८८ ]- हरे रागका सोम  
कलशमें जाता है ।

३ पयिषे अद्यत [ १३८८ ]- सोम छसनीते छाना  
जाता है ।

४ अप्नुरं स्तोमं रजस्तुरं यमप्रक्षं ज्वमुतं भासोत,  
परि पिञ्चत [ १३९४ ]- पानीमें पीप्रतासे मिलनेकी इच्छा  
करनेवाले तेजस्वी तथा पशुमें रहनेवाले सोमरसकी निकाल  
कर उठने वाली विसृताओ ।

५ स्रक्ष्वापारे वृषभं पयोदुह म्रियं देवाय जन्मने  
[ १३९५ ]- हजारों धाराओंसे पानेजानेवाले असवर्धक वृषभमें  
मित्राये हुए प्रिय सोमकी देवोंकी देवोंके लिए बुद्ध कर ।

६ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानः देवः रसं देधेभिः  
समष्टकः । सुतः रेमन् पवित्रं पर्येति [ १३९९ ]- इस  
सोमका प्रेरणा देनेवाला और सोनेसे पवित्र होनेवाला तेजस्वी  
रस देवोंसे विसृता है । यह सोमरस दाघ करता हुआ  
छसनीसे छाना जाता है ।

सोम छाननेवाले अश्विज हाथोंमें सोनेकी अंगूठी पहनते  
ये । सोमरससे उस सोनेका स्पर्श होनेपर सोमरस शुद्ध होता  
या 'हेमना पूयमानः' शब्दों प्रतीत होता है ।  
अथवा और किसी प्रकारके भी सोमरसके साथ सोनेका  
सम्बन्ध होता होगा । पर सोमरसके लिए सोनेका स्पर्श  
आवश्यक समझा जाता था, यह बात निश्चित है ।

७ भद्रा समन्या यस्मा यसान् महान् कृतिः नि  
पचनानि वांसन् धिचक्षयः जागृविः पूषमानः देव-  
धीती पश्योः आ चक्षयस् [ १४०० ]- कस्यापकारक,  
मुद्रके योग्य दत्तार्थको-तेजोको-धारय करनेवाला, महान्  
शानी, स्तुति श्रोत्र कहते हुए मानो होकर अग्रत रहनेवाला  
सोम पवित्र होकर-छाया जाकर-यस स्थान पर रखे हुए  
कलशमें छननेके बाद दिलाता है ।

८ मिष्टं कृपणं ययोधं भंगोपिणं वाणं अभि  
मवायशन्त [ १४०८ ]- सोम भवनोंमें रहनेवाले, बलवान्  
और अभ वेनेवाले और धात्र करनेवाले सोमकी हमारी वाणी  
स्तुति करती है ।

९ यना वसाल सिग्धुः रत्नप्राः वार्याणि द्यते  
[ १४०८ ]- जलमें मिलाया गया, प्रयतिशील और रत्न  
वेनेवाला सोम स्वीकार करने योग्य बन जाता है ।

१० शूरमाम, सधर्षीरः, सह्रावन्, जेत, घनानि  
समिता, सिग्मायुध' क्षिप्र-घन्या, समस्तु अपाद्धः,  
पुननास्तु शत्रुन् साहान् पयस [ १४०९ ]- पूर्ण  
समृद्धको प्राप्त रहनेवाला, अनेक वीरोंसे युक्त, सामर्थ्यवन्त  
और विजयी, यन वेनेवाला, तीक्ष्ण दाहम प्राप्त रहनेवाला,  
शीघ्र घनपु चलावेवाला, सपाममें क्षत्रजोंकी असाह्य, मुद्रमें  
शत्रुओंको हरावेवाला सोम छाया जाता है । सय देव और  
वीर सोम वीकर असाह्य पर जाती है और वीरताके काम  
करते हैं, इसलिए वीरताके नाम सोम ही करता है, यह  
आलंकारिक वर्णन यहां किया गया है ।

११ धावधानः कृपा सुवार्तः अग्नि सन्ध्रम्वे  
[ १४१९ ]- देव जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसा यह बलवान्  
सोम बहुतों द्वारा बाहुने योग्य है और पानीके साथ मिलाया  
जाता है ।

१२ निवृत्ते अभियन् कलशो जसिवाभिः सं  
गच्छते [ १४१९ ]- अपने संस्कार करनेके स्थान पर जानेके  
लिए कलशमें गायके दूधके साथ मिलाकर रहता है ।

१३ अघ्नयाया ऊचाः प्रपिप्ये [ १४२० ]- गायके  
दुग्धालयकी यह सोम अधिक पूर्ण करता है ।

१४ सुमेधाः इन्द्रः धाराभिः स्वसते [ १४२० ]-  
उत्तम बुद्धिमान् यह सोम धाराओंसे मिलाया जाता है ।

१५ गाय चमपु सूर्धान पयसा अभि धीगन्ति  
[ १४२० ]-गायें वर्तनेमें इस अर्द्ध सोमकी दूधसे ढकती है ।  
सोमरसमें दूध मिलाया जाता है ।

१६ परमे व्योमनि अस्मे पि सप्त धेनुवः सत्यां  
आगिरं सुदुहिरे [ १४२३ ]- अन्तरिक्षमें-पर्वतपर ऊंचे  
स्थान पर रहनेवाले इस सोमके लिए इनकी गायें उत्तम दूध  
मिलानेमें लिए देती हैं ।

१७ चारुणः अमृतस्य मग्धाणः सः उभे धावा  
काव्येन वि शाश्वये [ १४२४ ]- उत्तम जलकी इच्छा  
करनेवाला यह सोम दोनों ही धामामुषिकों अपनी स्तुतिसे  
परिपूर्ण करता है ।

१८ तेजिष्ठाः अपः मंहुना परिव्यत [ १४२४ ]-  
तेजस्वी पानीकी अपने महत्त्वसे ढक देता है । पानीमें सोम-  
रस मिलाया जाता है ।

१९ हे सोम देव ! सु वसमानि यन्ना अभ्यर्  
[ १४२७ ]- हे सोम देव ! उत्तम रहनेके योग्य बन दे ।

२० पूषमानः सुदुधाः धेनुः अभि अर्प [ १४२७ ]-  
स्वच्छ होनेके बाद उत्तम दूध देनेवाली गायोंको प्राप्त हो ।  
गायके दूधमें मिला जा ।

२१ नः चन्द्रा हिरण्या अभि [ १४२७ ]- हमें चमकने  
वाले सोमके सिक्के दे ।

२२ रथिनः अश्वान् अभि [ १४२७ ]- रथमें जोड़ने  
योग्य घोड़े दे ।

२३ पूषमानः नः दिवधा वसुनि अभ्यर्प [ १४२८ ]  
-छाने जानेके बाद हमें विष्णु भन दे ।

२४ धार्याया विश्वा अग्नि [ १४२८ ]- तब धार्य  
बन दे ।

२५ येन वयं द्रविणं अभि अहनुषाम [ १४२८ ]-  
जिसकी सहायतासे हमें यन मिले ऐसा सामर्थ्य हमें दे ।

२६ आर्येय आः [ १४२८ ]- आर्यियोंके पास होनेवाले  
यन हमें दे ।

२७ यशसां यशस्तरः क्षैतः प्रियः सानो अन्ये सं  
मृज्यते [ १४०१ ]- यशस्वी होनेवालोंमें प्रिय हुआ हुआ  
सोम वालोंकी छलनीसे छाना जाता है ।

इस प्रकार सोमरसको छानने और उसे पीनेका वर्णन इस  
अध्यायमें है । इसमें अर्द्धके स्थान पर आलंकारिक वर्णन है ।

जैसे " सोमरस गायोंके साथ वर्तनमें जाता है " इसका अर्थ  
है कि सोमरस गायके दूधमें मिलाकर कलशमें रखा जाता  
है । ऐसे अनेक अलंकार इस अध्यायमें हैं ।

## सुभाषित

१ आरे च मस्येऽष्टण्यते यज्ञयेर्मन्त्रयोचेम [ १३७९ ]  
-रुर रक्षन् भो हमारो प्रायन्वाश्रींको तुमनेवाते अग्निर्की  
हम स्तुति करते हैं ।

२ यः पूर्णः स्तोत्रितोपुष्टिपुस्तंजगमानासु दाशुये  
गर्ग्यं धारयन् [ १३८० ]- जो पूर्णसे हितक दाशुअंति एव-  
मित होनेपर भी दाताके घरकी रक्षा करता है ।

३ शान्तमः सः अग्निः नः अग्ना-र्यं वेदः रक्षन्तु  
[ १३८१ ]- शान्तनु सुत देनेवाला बहु अग्नि हमारे पातके  
पक्षकी सुरक्षित रखे ।

४ उत अस्मान् अंहसः पातु [ १३८२ ]- और बहु  
हमारी पक्षों की रक्षा करे ।

५ धूमहाराणे एणे धन्तंजयः अग्निः उद्गजनि [ १३८३ ]  
-समुझों की भारनेवाला, प्रायेण धूममें समुझों की हारनेवाला  
तथा धन शीतनेवाला अग्नि प्रबल हो गया है ।

६ हे अग्ने देव ! ये तव साधयः आशयः अभ्यास्त  
अर्धं यदग्निं युंक्ष्यति [ १३८४ ]- हे अग्निदेव ! जो तेरे  
उत्तम तथा वेपवान् घोड़े हैं उन्हें अपने रथमें जोड़ ।

७ न मच्छत धीतये आयादि [ १३८५ ]- हमारे पास  
अन्न खाकर सोम पीनेके लिए था ।

८ प्रयांसि अग्निं देवान् आ यद् [ १३८६ ]- जनोंके  
पात देवोंकी लेबर था ।

९ हे भारत अग्ने ! उत्सु दांच [ १३८७ ]- हे मरण  
योग्य बननेवाले अग्ने ! तू जल ।

१० हे अजर ! दग्निस्तु एमन् अजद्येण  
यिमादि [ १३८८ ]- हे अजरहित ! तेजस्वी और प्रबल  
मान् तू वयं न होनेवाले तेजसे प्रभावित हो ।

११ सुपातानां मग्गस्य सत्तु पय मर्तं न यद्  
[ १३८९ ]- रत निकाले गए सोमकी स्तुति मोक्ष मनुष्य  
न लूने ।

१२ अराधयं भवान् मयदहत [ १३९० ]- विनष्ट करने-  
वाले कुत्तों की हार करो ।

१३ हे इन्द्र ! त्वं अनुपा अध्यातव्यः [ १३९१ ]-  
हे इन्द्र ! तू जानकी ही समुद्रहिन है ।

१४ सनातन मना, मनापिः अस्ति [ १३९२ ]-  
जोई हमारा तेरा नेता नहीं और जोई सहायक भाई भी  
नहीं । तूा पर निर्भरम करनेवाला हमारा कोई नहीं । तू  
मरेगा ही सब कुछ करता है ।

१५ युधा इत् आपित्वं इच्छसे [ १३९३ ]- जब तू  
भाईकी इच्छा करता है, तब दाशुओंकी मारकर जपामर्शोंके  
मित्र बनाता है ।

१६ रेवन्तं सख्याय न किं विन्दसे [ १३९४ ]-  
केवल धनवान्की अपना मित्र नहीं बनाता ।

१७ सुराध्वः से पीयन्ति [ १३९५ ]- शराब पीनेवाले  
नास्तिक तुमसे कुछ सेते हैं ।

१८ यद्वा नयन्तुं क्षुणोपि, समूहसि, आदिम् पिता  
इय ह्यसे [ १३९६ ]- जब स्तुति करनेवालोंके तू अपना  
मित्र बनाता है, तब तू उन्हें धन देता है, उस समय वे अपने  
पिताके समान तेरी स्तुति करते हैं ।

१९ हे इन्द्र ! ग्रहयुज केरिना, हिरण्यये रथे  
युपताः, सहस्र द्यौर् हारयः सोमपीतये त्वा मग्नु  
[ १३९७ ]- हे इन्द्र ! राक्षसे इमारसे बूढ़ जानेवाले, उत्तम  
अयालवाले, तेरे सोमके रथमें बूढ़ हुए हजारों अथवा सैंकों  
घोड़े सोम पीनेके लिए तुमसे यज्ञमें पहुंचाते हैं । यहाँ (सहस्र  
द्यौर् हारयः) हजार अथवा सौ घोड़े ये दास्तबिष घोड़े न  
होकर आलकाटिक हैं । रथके घोड़े भी अथवा चार ही होते  
हैं । यहाँ हजार बनाये हैं ये विरहण हैं । क्योंकि फिर वे हजारों  
ही सन्तती हैं । रथके हजारों घोड़े नहीं हो सकते । रथमें दो  
घोड़ोंके जोड़नेवा भी सर्वत्र कई स्थलोंपर आया है । आयेसे  
मय देखए—

२० हिरण्यये रथे मयूर-कोष्पा शितिपृष्ठा हरी त्वा  
आ वहतां [ १३९८ ]- सोनेके रथमें मोरने बलके समान  
रथवाले तथा लक्ष्मण पीठवाले दो घोड़े तुमसे जोड़ने आते हैं ।

२१ राजा क्षीरान् धियावृषे [ १३९९ ]- राजा क्षीरमें  
विशेष बनाता है ।

२२ द्रविण्यस्युः अग्निः धृत्राणि जंघनम् [ १४०० ]  
- धन देनेवाला अग्नि दाशुओंकी मारता है ।

२३ प्रज्जापय घय आ भर [ १४०१ ]- पुत्रप्राप्ति  
साध होनेवाले अन्न अथवा आन हमें भरपूर से ।

२४ यदामां यदास्तुरः [ १४०२ ]- यथासौम्ये सबसे  
अधिक घातकी हो ।

२५ शुद्ध इन्द्रं स्वयाम् [ १४०३ ]- शुद्ध इन्द्रही हम  
स्तुति करते हैं ।

२६ हे इन्द्र ! शुद्ध नः भागति [ १४०४ ]- शुद्ध  
होनेवाला तू हमारे पास था ।

२७ मुजग्भिः ऊतिभिः मुजः [ १४०५ ]- रक्षणके  
शुद्ध तापकी श्रद्धा देगा तू है ।

२८ शुद्धः रयिं नि धारय [ १४०३ ]- तू शुद्ध होकर हमें पन दे ।

२९ शुद्धः ममसि [ १४०३ ]- तू शुद्ध होकर मानव प्राप्त कर ।

३० शुद्धः नः रयिं [ १४०४ ]- शुद्ध होकर तू हमें पन दे ।

३१ शुद्धः दाशुवे रत्नानि [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर हाताओंको पन दे ।

३२ शुद्धः वृत्राणि निग्रसे [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर शत्रुओंको मारता है ।

३३ शुद्धः नाजं सिपाससि [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर मग्न होता है ।

३४ दिव्यं जनें यक्षत [ १४०५ ]- दिव्यजनोंको प्रणय कर ।

३५ शुद्धः घरेषुमा होता समया एवं असि [ १४०७ ]- प्रसन्न, श्रेष्ठ और हृदय करनेवाला तू सबके श्रेष्ठ है ।

३६ रत्नपा धार्याणि द्यते [ १४०८ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला पन देता है ।

३७ शूरप्रामः सार्वधीरः सहावान् जेता, घनानि सनिता, तिम्मापुष क्षिप्र-घन्वा, सभ्रान्तु अपाब्धः, वृत्तान्तु शत्रून् स्वाह्वा [ १४०९ ]- मूर्तोंके समूहमें तथा मनेक बौरसि युक्त, सामर्थ्यसंपन्न और विजयी, पन देनेवाला, तीक्ष्ण शस्त्र रखनेवाला, धनुष धीमन् चलानेवाला, सघनानि शत्रुओंको अतहत, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला ( चीन ) है ।

३८ उरु-गव्युतिः अभयानि रुधम् [ १४१० ]- जितका मार्ग विलोभ है, यह हमें निर्भय करता है ।

३९ हे इन्द्र ! शयसः पतिः अनुताः चरणी-धृतिः एकः इव, अमरतांति पुत्राणि पुरु दसि [ १४११ ]- हे इन्द्र ! तु बलका स्थानी, प्रजाओंका धारण वीर्यवान् करनेवाला, अकेला ही बलवान् शत्रुओंको बहुत बड़ी संख्यामें मारता है ।

४० हे असुर इन्द्र ! प्रवेतसं त्वा मार्गं इव राघः इमो [ १४१२ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरे लगन मार्गोंमें पातले घनका भाग हमें भागते है ।

४१ ते मही शरणा [ १४१२ ]- तेरा महान् स्थान शरणके योग्य है ।

४२ ते सुता नः शान्तुयन् [ १४१२ ]- तुमसे हमें उत्तम पुत्र मिलें ।

४३ देवं अमार्चं पक्षस्य सुकृत्तं यजिष्ठं त्वा वपुमादे

[ १४१३ ]- देवोंमें श्रेष्ठ अमर देव, यत् उत्तम रीतिसे करने-वर्ति, श्रेष्ठ ऐसे तुमसे हम उपास्य मानकर स्वीकार करते हैं ।

४४ अपां-न-पातं सुमर्गं सुदीदितं श्रेष्ठवोचिषं वसि [ १४१४ ]- कर्मोंकी न गिरानेवाला, उत्तम भाग्यवान्, उत्तम तेजस्वी और श्रेष्ठ प्रकाशसे युक्त अग्निही हमें स्तुति करते हैं ।

४५ सः नः दुस्ते यक्षते [ १४१४ ]- वह हमें तुल देवे ।

४६ हे अग्ने ! पृथु एवं मर्त्यं अयाः, पात्रेषु यं हनाः, सः शयसोः इव, यन्ता [ १४१५ ]- हे अग्ने ! युद्धमें जित मनुष्योंके तु रक्षा करता है, स्पर्धामें जिते तू उत्तम प्रेरणा देता है, उरी हेतुका मग्न प्राप्त होता है ।

४७ सहास्य ! अस्य कयस्य पर्येता न किः, अध्यान्वा पाजः अस्ति [ १४१६ ]- हे शत्रुको हरानेवाले ! इस तेरे भक्तको हरानेवाला कोई भी नहीं है, क्योंकि उसका पराजयी बल प्रसिद्ध है ।

४८ विश्ववर्षणि सः अर्षेन्द्रिः पाजं तरता अस्तु, विप्रेमिः सनिता अस्तु [ १४१७ ]- सब लोगोंका कल्याण करनेवाला वह पृथिवीवाले युद्धमें विजय प्राप्त करावे तथा शान्तिवर्षि द्वारा वह प्रसन्न किया जावे ।

४९ ने धियः अस्मान् अपगन्तु [ १४२१ ]- तेरी बुद्धिमा हमारा रक्षण करे ।

५० स्वधमापे आधिः नः बुधे वोधि [ १४२१ ]- एक जगह बैठकर आत्म्य प्राप्त करनेके समय भिक्षके समान हमारा सवर्षन करना है, यह तू जान ।

५१ यवं ते सुमती पाजितः भूयाम [ १४२२ ]- हम तेरे अनुकूल उत्तम विचारसे युक्त होकर यशवान् हों ।

५२ अभिमातये नः मा स्त [ १४२२ ]- शत्रुके हितके लिए हमारा मातृ वत कर ।

५३ अमिष्टिभिः विश्रामिः उतिभिः अस्मान् अब-तात् [ १४२२ ]- इष्ट सामर्थ्यसे युक्त संरक्षकसे हमारी रक्षा कर ।

५४ सुस्नेपु नः आद्यामय [ १४२२ ]- सुप्त समूहमें हमें बड़ा ।

५५ अमृत्यवः अदाध्यासः अस्य केतवः उमे जनुपी मनु सन्तु [ १४२५ ]- अमर और न बरनेवाली इसरी किरणें शेषों ही प्रकाशसे शान्तिवर्षोंकी मुरलित रखती हैं ।

५६ राजानं मननाः अष्टुभ्यत [ १४२५ ]- राजाको स्तुतिवर्षी प्राप्त होती है ।



५७ नः दिव्या यस्मिन् अग्न्यर्पे [ १४२८ ]- हमें दिव्य धन दे।

५८ पार्थिवा विश्वा अग्नि अर्पे [ १४२९ ]-हमें पार्थिव धन दे।

५९ येन यथे द्रविणि अभि अशुवाम [ १४३० ]- जिससे हमें धन प्राप्त हो सके ऐसा सामर्थ्य हमें दे।

६० आर्वेय नः [ १४३१ ]- ऋषिके समान धन हमें मिले।

६१ हे मघवन्! वृत्रहत्याय यत् जायथाः सत् पृथिवी अग्रथय। उत दिवे अस्तग्नाः [ १४३२ ]- हे इन्द्र! तू वृत्रका वध करनेके लिए जब गया, तब तूने पृथ्वीको सुवृद्ध किया और धुकोत्तकी स्तम्भ किया।

६२ यत् जातं यत् जन्मं तत् पिब्य अभिभूः असि [ १४३३ ]-जो ही गये और जो होनेवाले हैं उन सबको तू हरातेवाला है।

६३ आमास्तु पथर्षे येरयः [ १४३४ ]- गाथमें वके रूपकी तुने रखा है।

६४ दिवि स्ये अरोहयः [ १४३५ ]- द्युभोकमें सूर्यको चढाया।

६५ गिर्यंसे जुष्टे वृहत् [ १४३६ ]- रघुव्य दारके लिए बृहत् सामना मान करी।

६६ हे इन्द्र! ते घरेण्यः सहावान् पृतनपाद भ्रमर्यः मास्तरः गन्तु [ १४३७ ]- हे इन्द्र! तुझे यह श्रेष्ठ सामर्थ्यवान्, शत्रुओंकी हरातेवाला अमर और आनन्द देनेवाला तोम प्राप्त हो।

६७ हे इन्द्र! सौ शूरः सनिमा मनुष्यः रथी षोदय [ १४३८ ]- हे इन्द्र! तू शूर और बलवान् है। मनुष्योंके शत्रुत्वोंकी उत्तम रीतिसे प्रशिक्ष कर।

६८ सहावान् दस्तु अ-मर्तं योगः [ १४३९ ]- तू सामर्थ्यवान् है, इसलिये मर्तोंका पालन न करनेवाले दुष्टोंका नाश कर।

### उपमा

१ भृगवः मर्यं न [ १४८६ ]- भृगुभिनि जितप्रकार मन्त्री बृहदिवा, उत्तीप्रकार (अ-साधसंभ्यानि अपहृत) विजयकारी कुशीकी मारी।

२ भोग्योः भुजे पुत्रः न [ १४८७ ]- माता पिताके

हाथमें जैसे पुत्र रहता है, उत्तीप्रकार ( जामिः अत्के वा अद्यत् ) तोमरस छत्तनीमें शृद्ध होता है।

३ जारः योषणां न [ १४८७ ]- जितप्रकार जार स्त्रीके पास जाता है, उत्तीप्रकार तोम ( योनि आसदम् ) कलशमें जाता है।

४ वरः न [ १४८७ ]- जितप्रकार पति पत्नीके पास जाता है, उत्तीप्रकार तोम कलशमें जाता है।

५ वेधाः न [ १४८८ ]- ज्ञानी जितप्रकार अपने घर जाता है, उत्तीप्रकार ( हरिः योनि आसदम् ) हरे रंगका तोम कलशमें जाता है।

६ पिता इय ह्यसे [ १४९० ]- जैसे पिताकी प्रार्थना करते हैं वैसे ही लोग तेरी - इन्द्रकी - प्रार्थना करते हैं।

७ अश्वं न [ १४९४ ]- घोड़ेके समान ( अश्वं सोमं परि पिचत ) - पत्नीमें बिलावे जानेवाले तोमको मिलाओ। योद्धा जितप्रकार पानीमें स्नान करता है, उत्तीप्रकार तोमरस पानीमें मिलता है।

८ होता वशुमन्ति सद्य इय [ १४९९ ]- हवन करने-वाला जैसे गाथोंसे पुस्तक धरमें जाता है, उत्तीप्रकार ( सुताः रेभन् पथिषं पयंति ) तोमरस शब्द करता हुआ छत्तनीमें जाता है।

९ वरुणः न [ १५०८ ]- बदलने समान ( धना यसानः ) तोम जलमें रहता है।

१० भागं हव [ १५१२ ]- पिताके पास अपने धनका हिस्सा जिस प्रकार मावते हैं, उत्तीप्रकार इन्द्रसे ( राधः ईमहे ) हम धन मावते हैं।

११ छत्तिः इय [ १५१२ ]- बड़े घोड़ेके समान ( ते मही शरणा ) तेरा विनाश आश्रय स्थान हमारे योग्य है।

१२ घाती अत्यः न [ १५१८ ]- दीर्घ भागतेवाले घोड़ेके समान तोम ( द्रोणं नमस्ते ) धर्ममें योग्य जाता है।

१३ मावमिः शिनुः न [ १५१९ ]- मातासे जैसे पुत्र मिलकर रहता है, उत्तीप्रकार तोम ( अग्निः सं दयग्ये ) पानीसे मिलकर रहता है।

१४ मर्यः योषां न [ १५१९ ]- जितप्रकार पृथ्व स्त्रीकी ओर जाता है, उत्तीप्रकार तोम पानीकी तरफ जाता है।

१५ निकिः वशुमिः न [ १५२० ]- जैसे तारेन्द्र वर्यमि घरीरकी वस्त्रों हैं, उत्तीप्रकार ( गावः पयसा यशुमु मूर्धनि अग्नि धीणन्ति ) गावें अपने हृत्से धर्ममें रहने-

माले श्रेष्ठ सोमको आच्छादित करती है । सोमरसमें गायका रूप मिलाया जाता है ।

१६ जमदग्निमत् आर्येयं नः [ १४२८ ]- जमदग्निरे समान ऋषिरे योग्य दान हमें दे ।

१७ घर्मं स्यामं न [ १४३१ ]- जितप्रवर अर्घ्यं नामक वस्तुको प्रशस्ति करत है, उसीप्रकार ( सुवृत्तिकमिः तपत ) नाम कर ।

उत्तम वस्तुतियेहि इन्द्रको उत्साहित करो ।

१८ महः पात्रस्य इव [ १४३२ ]- महान् बर्तनके ताम्रव तू ( घृष्यः ते ) महान् बलवान् है ।

१८ [ अग्निः ] सोमियापात्रं न [ १४३४ ]- जैसे अग्नि अपने वज्रलासे बर्तनको धत्ता देती है, उसीप्रकार ( वस्तुं ) अर्घ्यत ओषध ( हे इन्द्र ! तू नियम न पालनेवाले दुष्टोंका नाश कर ।

## द्वादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋषि-वत्स्यार्थ	ऋषि.	( १ )	देवता	छन्दः
१३७७	१।७४।१	गोतमो राष्ट्रगणः	अग्निः	गायत्री	
१३८०	१।७४।२	गोतमो राष्ट्रगणः	"	"	"
१३८१	७।१५।३	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"	"
१३८१	१।७४।३	गोतमो राष्ट्रगणः	"	"	"
( २ )					
१३८३	६।१६।४३	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"	"
१३८४	६।१६।४४	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"	"
१३८५	६।१६।४५	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"	"
१३८६	७।१०।१।१३	प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वास्यो वा	वसवानः सोमः	अनुष्टुप्	
१३८७	७।१०।१।१४	प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वास्यो वा	"	"	"
१३८८	७।१०।१।१५	प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वास्यो वा	"	"	"
१३८८	८।११।१३	सोमदिः काण्वः	इन्द्रः	काकुत्स्थः प्रगाथ = ( विवमा ककुत्स्थः सत्तो बृहती )	
१३८९	८।११।१४	मेधातिथिः - मेघ्यातिथी काण्वी	"	"	"
१३९०	८।११।१५	मेधातिथिः - मेघ्यातिथी काण्वी	"	"	"
१३९१	८।११।१६	मेधातिथिः - मेघ्यातिथी काण्वी	"	"	"
१३९२	८।११।१७	मेधातिथिः - मेघ्यातिथी काण्वी	"	"	"
१३९३	९।१०।१३	ऋजिन्वा भारद्वाजः	वसवानः सोमः	काकुत्स्थः प्रगाथ = ( विवमा ककुत्स्थः सत्तो बृहती )	
१३९४	९।१०।१४	अर्चसपा आश्विनसः	"	"	"
( ३ )					
१३९५	६।१६।१४	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	अग्निः	गायत्री	
१३९६	६।१६।१५	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"	"
१३९७	६।१६।१६	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"	"
१३९८	७।१०।१३	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	वसवानः सोमः	त्रिष्टुप्	
१३९९	७।१०।१४	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"	"
१४००	७।१०।१५	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"	"
१४०१	७।१०।१६	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	"	"	"

मन्त्रसंख्या	श्रव्येवस्थानं	श्रुतिः	वेद्यता	छन्दः
१४०२	८१५५७	तिरश्चोरागिरसः	इन्द्रः	अनुष्टुप्
१४०३	९१३५८	तिरश्चोरागिरसः	"	"
१४०४	९१५५९	तिरश्चोरागिरसः	"	"
( ४ )				
१४०५	५११३१२	सुतंभर आमेयः	अग्निः	वायत्री
१४०६	५११३१३	सुतंभर आमेयः	"	"
१४०७	५११३१४	सुतंभर आमेयः	"	"
१४०८	९१९०१२	वसिष्ठो मेजावरणः	वसवामः सोमः	त्रिष्टुप्
१४०९	९१९०१३	वसिष्ठो मेजावरणः	"	"
१४१०	९१९०१४	वसिष्ठो मेजावरणः	"	"
१४११	८११०१५	मृमेय-पुरुमेयावागिरसी	इन्द्रः	प्रपापः= ( विपमा बृहती, समा सतोबृहती )
१४१२	८१२०१६	मृमेय-पुरुमेयावागिरसी	"	"
१४१३	८११२१७	सोमविः काण्वः	अग्निः	काकुभः प्रपापः= ( विपमा ककुप् समा सतोबृहती )
१४१४	८११२१८	सोमविः काण्वः	"	"
( ५ )				
१४१५	१११७३७	शुनःजेप आमीगतिः	"	वायत्री
१४१६	१११७३८	शुनःजेप आमीगतिः	"	"
१४१७	१११७३९	शुनःजेप आमीगतिः	"	"
१४१८	९११३११	मोया मीतमः	वसवामः सोमः	त्रिष्टुप्
१४१९	९११३१२	मोया मीतमः	"	"
१४२०	९११३१३	मोया मीतमः	"	"
१४२१	८११३१४	मेव्यातिभिः काण्वः	इन्द्रः	प्रपापः= ( विपमा बृहती, समा सतोबृहती )
१४२२	८११३१५	मेव्यातिभिः काण्वः	"	"
१४२३	९१७०१६	रेणुर्वेदवाग्निः	वसवामः सोमः	अगनी
१४२४	९१७०१७	रेणुर्वेदवाग्निः	"	"
१४२५	९१७०१८	रेणुर्वेदवाग्निः	"	"
( ६ )				
१४२६	९१७०१९	कुरात आगिरसः	"	त्रिष्टुप्
१४२७	९१७०२०	कुरात आगिरसः	"	"
१४२८	९१७०२१	कुरात आगिरसः	"	"
१४२९	८१८११२	मृमेय-पुरुमेयावागिरसी	इन्द्रः	अनुष्टुप्
१४३०	८१८११३	मृमेय-पुरुमेयावागिरसी	"	"
१४३१	८१८११४	मृमेय-पुरुमेयावागिरसी	"	"
१४३२	१११७५१	अगस्त्यो मेजावरणः	"	बृहती
१४३३	१११७५२	अगस्त्यो मेजावरणः	"	एकषोडशो बृहती
१४३४	१११७५३	अगस्त्यो मेजावरणः	"	अनुष्टुप्



## अथ अष्टोदशोऽध्यायः ।

अथ पद्यप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ६-३ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ कविर्भाविनः; २, ९, १६ अष्टाजी बाह्यस्थः; ३ अतितः काश्यपो देवलो वा; ४ सुकल आगिरसः;  
 ५ विश्रद्ध सौर्यः; ६, ८ वसिष्ठो मेघावधनिः; ७ नर्यं प्रायस्य, १०, १७ विरयामित्रो वाधिनः; ११ मेधातिथिः  
 काव्यः; १२ शतं वीरानसाः; १३ यजत मायेयः; १४ ययुषन्ता वीर्यामित्रः; १५ ज्ञाना काश्यः; १६ हव्यतः प्रागायः;  
 १९ बृहद्विष आयवेषः, २० मृत्तमयः शीतलः ॥ १, ३, १५ पवमानः सीमः; २, ४, ६, ७, १४, १९, २०  
 इन्द्रः; ८ सारस्वाम्; ९ सारस्वती; १० सविता; ११ बह्मणस्पतिः; १२ अग्निः पवमानः; १३ मित्रावरुणौ;  
 १६-१८ अग्निः; १८ हवींषि वा; ५ सूर्यो ॥ १, ३-४, ८-१४, १६ ( २-३ ) १७, १८ यामयोः २ ( १ ३ )  
 अनुवृत्तः २ ( ४ ) बृहती; ६, ७ प्रगायः = ( विरया बृहती, सभा सतीबृहती ); १९ ( १ ) अयमाना;  
 १५ १९ विश्वपुः २० ( १ ) अग्निः; २० ( २-३ ) अतिशयवरी, ५ यजती ॥

१४३५ पवस्व बृहतिमा सु नोऽयामूर्ति दिवस्परि । अयस्मा बृहतीरियः ॥ १ ॥ ( ऋ ९।४९।१ )  
 १४३६ तया पवस्व चारया यया माय इहागमन् । जन्यास उप नो बृहद् ॥ २ ॥ ( ऋ ९।४९।२ )  
 १४३७ घृतं पवस्व चारया यक्षेष्ण देववीरमः । अस्मभ्यं बृहतिमा यव ॥ ३ ॥ ( ऋ ९।४९।३ )  
 १४३८ स न ऊर्जे व्यश्छेद्यं पवित्रं धाव चारया । देवांसः मृण्वन् हि कम् ॥ ४ ॥ ( ऋ ९।४९।४ )  
 १४३९ सवमानो असिष्यदद्रोऽस्वपजहन्त । प्रत्ययद्रोऽवधुचुः ॥ ५ ॥ १ ( घी ) ॥  
 [ धा० १२ । उ० १ । २२० ४ ] ( ऋ ९।४९।५ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १४३५ ] हे सोम ! तू ( विद्यः बृष्टिः ) चुकोकते, बृष्टिको ( ज्ञः ) सु आ पवस्व । हमारे लिए उत्तम रीतिसे मोचे ला । ( अर्वा ऊर्जि परि ) पानीको सहर्ष उछोके, तथा ( अ-यहमा बृहतीः इयः ) रोचयित्त बहुत सारा मत्त हवें ॥ १ ॥

[ १४३६ ] हे सीम ! तू ( तया धारया पयस्व ) उस धारासे यहाँ पवित्र हो ( यया जन्यासः मायः ) जिसकी सहानतासे इयाव मायें ( इह नः गृहं उप मायमन् ) यहाँ हमारे घर मायें ॥ २ ॥

[ १४३७ ] हे सोम ! ( यक्षेष्ण देव-पीतमः ) यज्ञमें देवों द्वारा खाहा गया तू ( अस्मभ्यं घृतं धारया यवम् ) हमें धारारूप-धृष्टिरूपसे पानी के अर्वात् ( घृष्टिं आ यव ) बरसता चिरा ॥ ३ ॥

[ १४३८ ] हे सोम ! ( सोम ) यह तू ( नः ऊर्जे ) हमारे अन्नके लिए ( अयवयं पवित्रं धारया वि धाव ) अन्नको छतनीसे पारके रूपमें नीचेके बर्तनमें बिट । ( देवांसः हि कं मृण्वन् ) देव तेरा यह सम्म सुनें ॥ ४ ॥

[ १४३९ ] ( रक्षांसि अप जंघनम् ) रक्षसोंका नाश करते हुए ( रुचः प्रत्ययद् रोचयन् ) सपने से रक्तो पहनेके भग्न ही प्रकाशित करते हुए ( पयमानः असिष्यद् ) ज्ञान ज्ञानेवाला सीम नीचेके कलशमें टपकता है ॥ ५ ॥

३२ [ साय. हिंरी भा १ ]

[ ३ ]

- १४५३ विभ्राद् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधवज्जपतावविद्वतम् ।  
वातजृता यो अमिरक्षति त्मना प्रजाः पिपति बहुधा वि राजति ॥ १ ॥ ( ऋ १०।१७०।१ )
- १४५४ विभ्राद् बृहत्पिबतुं वाजसातमं धर्मं दिवो घरणे सत्यमर्पितम् ।  
अमित्रहा वृग्रहा दध्नुहन्तमं ज्योतिर्वज्रे असुरहा सपन्नहा ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१७०।२ )
- १४५५ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्वनं विदुष्यते बृहत् ।  
विश्वभ्राद् भ्राता माहे सूर्यो द्यौ उरु पश्ये सह औजो अच्युतम् ॥ ३ ॥ ५ ( जि ) ॥  
[ धा० २७ । उ० ३ । २५० ३ ] ( ऋ १०।१७०।३ )
- १४५६ इन्द्रं कृतं न आ मर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।  
शिक्षां णो अस्मिन्पुरुहूतं यामनि जीवा ज्योतिरश्विमहि ॥ १ ॥ ' ऋ ७।३१।२६ )
- १४५७ मा नो अन्तात्ता वृजना दुराच्योश्च माशिवोसोऽव क्रपुः ।  
रमया ययं प्रवतः क्षम्यतीरपोऽति क्षूर तरामसि ॥ २ ॥ ६ ( ल ) ॥  
[ धा० ९ । उ० नास्ति । २५० १ ] ( ऋ ७।३१।२७ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १४५३ ] ( विभ्राद् ) विभेव प्रकाशनेवाला सूर्य ( यज्ञपती ) यत् करनेवालेकी ( अ-धि-हुतं आयुः दधद् ) आरोग्यपूर्ण दीर्घायु देता है । ( यः वातजृतः ) जो वायुकी गति देनेवाला ( त्मना अभि रक्षति ) स्वयं सबका रक्षण करता है, ( प्रजाः पिपति ) प्रजाओंका अच्छी तरह चालन करता है और ( बहुधा वि राजति ) अनेक प्रकारोंसे सुखी-भित होता है, ऐसा वह इन्द्र ( पुरुष सोम्य अधु पिबतु ) बहुत सीधरसम्पत्ती पीछा येन विनये ॥ १ ॥

[ १४५४ ] ( विभ्राद् बृहत् ) विशीव प्रकाशमान और महान्, ( शुश्रूतं वाजसातमे ) उत्तम पोषण करनेवाला तथा सब देनेवाला, ( धर्मं दिवः घरणे अर्पितं ) अपने धर्मसे क्षुलोकको धारण करनेके लिए निमुक्त किया गया, ( सत्यं अ-मित्र-हा ) विश्वपते अन्तर्जोका नाश करनेवाला, ( वृग्र-हा ) वृत्रको मारनेवाला, ( दध्नु-हन्तमे ) दुष्टोंको मारनेवाला ( असुर-हा ) राक्षसोंका विनाशक, ( सपन्न-हा ) अशुको मारनेवाला सूर्य ( ज्योतिः वज्रे ) अपना प्रकाश फैलाता है इत्यादि ।

[ १४५५ ] ( इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिः ) यह सूर्यका तेज अनेक तेजोकर प्रकाशक ( उत्तमं विश्वजित् ) उत्तम विश्वविजयी ( यानजित् पुरुष उच्यते ) यनोंकी नीलनेवाला तथा महान् कहा जाता है, ( विश्वभ्राद् भ्राता ) विश्वको प्रकाशित करनेवाला और स्वयं प्रकाशमय ( माहि सूर्यः ) यह महान् सूर्य ( द्यौ उरु सह ) शीतनें महान् सामर्थ्यवान् ( अच्युतं औजः पश्ये ) अविनाशी तेजस्वी बलको प्रसारित करता है ॥ ३ ॥

[ १४५६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( मा प्रतुं धामर ) हमारा यत् पूर्ण कर । ( यथा पिता पुत्रेभ्यः ) जंते पिता पुत्रोंको पन देता है, उत्तीप्रकार ( माः शिक्ष ) हमें वे । हे ( पुरुहुत ) अनेकों द्वारा सहायताके लिए हमारे साथ इन्द्र । ( यामनि ) यामने हृष ( जीताः ) मनुष्य ( ज्योतिः अमयीमहि ) तेज प्राप्त करें ॥ १ ॥

[ १४५७ ] हे इन्द्र ! ( अ-न्तात्ताः ) अन्तात् ( वृजना- अ-शियासः दुराच्यः ) दुष्टिल पापी और अर्थमय पादु ( मा मा अयमसुः ) हम पर आक्रमण न करें । हे ( सूर ) सूर ! ( स्यया ययं प्रवतः ) तेरे कारण मुरासित हुए हुए हम ( दादयताः सपः ) आति तरामसि ) बहुतसे लक्षकों प्रवाहोंमें पार हों ॥ २ ॥

१४५८ अद्याद्या श्वःश्च इन्द्रास्व परे च नः ।

विश्वं च नो जस्तिन्त्सरपते अहो दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।६।१।७ )

१४५९ प्रमङ्गी ज्ञो मधवा तुयीमघः सम्मिश्रो वीर्याय कम् ।

उमा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि वा वज्रं मिमिक्षतुः ॥ २ ॥ ७ ( धी ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ ८।६।१।८ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१४६० जनीयन्तो न्यग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानयः । सरस्वन्तश्चवामहे ॥ १ ॥ ८ ( री ) ॥

[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ ७।९।४ )

१४६१ उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्वोम्बा भूत् ॥ १ ॥ ९ ( हौ )

[ धा० १ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति । ( ऋ ७।६।१।० )

१४६२ तस्त्वितुर्धरेण्यं यगो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ( ऋ ३।६।१० )

१४६३ सोमार्नं स्वरणं कणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औद्दिशः ॥ २ ॥ ( ऋ १।१।८।१ )

[ १४५८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अद्य अद्य ) आज ( श्वः श्वः ) कल ( परे च नः ) और परसों वर्षातू हमेसा हमारी ( ज्ञास्व ) रक्षा कर । हे ( सप्तपते ) सप्तर्षीके पालक इन्द्र ! ( विश्वा च अहो ) तब विन ( नः जस्तिन् ) हम स्तुति करनेवालोंकी ( दिवा नक्तं च रक्षिषः ) दिन और रात रक्षा कर ॥ १ ॥

[ १४५९ ] ( [ अयं ] मधवा ) यह इन्द्र ( वीर्याय कं ) तुमसे पराक्रम करनेके लिए ( प्र-मङ्गी शूरः ) शत्रुओंको तोड़नेवाला, शूर ( तुयी-मघः सम्मिश्रः ) बहुत घनवान् और सबसे मिलकर रहनेवाला है । हे ( दातृक्रतो ) संकष्टों को करनेवाले इन्द्र ! ( या वज्रं नि मिमिक्षतुः ) ओ वज्रकी धारण करती है, ऐसी ( ते उमा बाहू वृषणा ) तैरी दो दोनों भुजायें बहुत बलवान् हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४६० ] ( जनीयन्तः ) स्त्रीबाले ( पुत्रीयन्तः ) पुत्रबाले ( सुदानयः ) उत्तम धन देनेवाले और धाने रहनेवाले हम ( सरस्वन्तश्चवामहे ) सरस्वतीकी सहपात्राके लिए ब्रह्मते हैं ॥ १ ॥

[ १४६१ ] ( उत नः प्रियासु प्रिया ) और हमें प्रिय वस्तुमें कल्पित प्रिय ( सप्तस्वसा ) सप्त तपोस्त्री बहिनें जिससे मिलती हैं, ऐसी ( सुजुष्टा सरस्वती ) अच्छी तरहसे सेवित सरस्वती मयी ( स्वोम्बा भूत् ) श्रुति करनेके योग्य हो गई हैं ॥ १ ॥

[ १४६२ ] ( यः मयिता देवः ) ओ सविता देव ( नः धियो प्रचोदयात् ) हमारे बुद्धिबलों में प्रेरित करता है, उत्तम ( देवस्य सप्तपते ) सविता देवने ( या वज्रं नि मिमिक्षतुः ) हम ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

[ १४६३ ] हे ( ब्रह्मणः पते ) मानवते ! ( सोमार्नं ) गोप अर्थात् सासने प्राप्त घोष शापनके अनुमते ( कक्षी-घन्तं ) छातीमें रहनेवाले प्राणको ( स्वरणं-सु-जरणं ) उत्तम प्रकारसे अग्नि जानेवाला ( कणुहि ) कर तथा ( यः औद्दिशः ) ओ प्राण वज्रसे शा किया है, उसे मैं बलवान् कर ॥ २ ॥

- १४६४ अय आधूँषि षवस आ सुवोर्लोमिषं च नः । अरे बाधस्व दुन्धुनाम् ॥३॥ १० (य) ॥  
[ धा० १ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।६६।१ )
- १४६५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रामो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥१॥ ( ऋ. १।६८।१ )
- १४६६ श्रुतमृतेन सपन्तोषिरे दसमाश्रते । अद्रुहा देवो वर्धते ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६८।४ )
- १४६७ वृष्टिधावा रीत्यापेपस्षवी दानुमस्याः । गृह्णन् गर्तमाश्रते ॥ ३ ॥ ११ (पा) ॥  
[ धा० १ । उ० १ । ख० २ ] ( ऋ. १।६८।९ )
- १४६८ युञ्जन्ति भ्रमररुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचनां दिवि ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१ )
- १४६९ युञ्जन्त्यरयं काम्या हरी विपक्षता रये । क्षोणां घृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।२ )
- १४७० केतुं कृण्वन्नकतये षोऽो मर्या अपेक्षते । सधुपन्निरजायथाः ॥ ३ ॥ १२ (य) ॥  
[ धा० ७ । उ० नास्ति । ख० १ ] ( ऋ. १।६।९ )
- ॥ इति ऋषिर्षः पञ्च ॥ ४ ॥

[ १४६४ ] हे (अरे) प्रकाशमन्त्र ! ( नः आधूँषि पयले ) हमें शीर्षांगु ३ । ( यः ऊर्जे ) हमें बल और ( हवे ) मग ३, ( दुन्धुनां आरे बाधस्व ) दुन्धुनों को डूर कर ॥ ३ ॥

[ १४६५ ] ( ता ) वे मित्र और वरुण देव ( नः ) हमें ( पार्थिवस्य दिव्यस्य ) पृथ्वीपरके और धुलोके (महः रायः शक्तं ) महान् वन वेनेके लिए तमर्ष हीं । हे मित्रावधय ! ( धो महि क्षत्रं ) तुम्हारा महान् शास्त्रफल ( देवेषु ) देवोंमें प्राप्त है ॥ १ ॥

[ १४६६ ] ( श्रुतेन श्रुते सपन्ता ) वसते यत पूर्ण करते हुए ( अविरे दर्श आश्रते ) बाहने योग्य वस्तुको प्राप्त करते हैं । ऐसे ( अ-द्रुहा देवो वर्धते ) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण अपने सामर्थ्यसे बढ़ते हैं ॥ २ ॥

[ १४६७ ] ( वृष्टि-धावा ) घुमटिके लिए नितकी स्तुति होती है, ( रीत्यावा ) योग्य रीतिते निते वस्तुमें प्राप्त होती है, ऐसे ( दानुमस्याः द्यः पथी ) बाल बेनेके योग्य अन्नके त्वाभी वे मित्र और वरुण ( गृह्णन् गर्ते आश्रते ) महान् रथपर बैठते हैं ॥ ३ ॥

[ १४६८ ] लीग ( घटन्ते ) आश्रितके रूपमें रहनेवाले, ( अरयं ) तेजस्वी अन्निके रूपवाले ( चरन्ते ) चलते हुएके समान रोचनेवाले पर ( परि तस्थुषः ) स्थिर रहनेवाले सूर्यका ( युञ्जन्ति ) उजालाके लिए उजवोग करते हैं । उस इन्द्रकी ( रोचनां दिवि रोचन्ते ) प्रकाशकी किरणें धुलोकमें प्रकाशित होती हैं ॥ १ ॥

[ १४६९ ] ( अरय रये ) इस इन्द्रके रथमें ( काम्या विपक्षता ) मुखर और धोनों तरफ बूरे हुए ( क्षोणां घृष्णू ) लाल रंगके और पशुधोनी हृषनेवाला तथा ( नृवाहसा हरी ) इन्द्रकी ओकर तेजानेवाले घोरे ( युञ्जन्ति ) जोड़े जाते हैं ॥ २ ॥

[ १४७० ] हे (मर्या) मनुष्यो ! ( अ-वेतये ) लज्जाभीको ( केतुं कृण्वन् ) भाव बेते हुए और ( अपेक्षते पेदाः ) रूप रक्षितोके रूप ॥३॥ हुए ( उपन्निरः स्रज्जायथाः ) उज्ज्वालके बाह सुवर्ण उजब होता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ थीया क्षण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

१४७१ अयस्सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।

त्वद् यं चक्षुषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१७ )

१४७२ स ईश्वरो न सुरिषाडयोऽपि महः पुरुणि सातये यच्चनि ।

आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्पाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।१२ )

१४७३ सुष्मो शर्धो न मारुते पवस्वानमिशस्ता दिव्या यथा विट् ।

आपो न मधु सुमतिर्मेवा नः सहस्राप्साः पृतनापाण्य यज्ञः ॥ ३ ॥ १३ ( घी ) ॥  
[ पा० २६ । उ० ४ । ख० ४ ] ( ऋ. १।८।१३ )

१४७४ त्वममे यज्ञानां होता विधेयां दितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९।१ )

१४७५ स नो मन्द्राभिरश्वरे जिह्वामिषंजा महः । आ देवान्वायि ययि च ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१।१ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १४७१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे ) यह सोमकर तेरे लिए निजाता जाता है, ( तुभ्यं पवते ) तेरे लिए ही छाया जाता है, ( त्वं मस्य पाहि ) तू इसका पालन कर, ( त्वं यं चक्षुषे ) तूने ही इसे बनाया है, ( इन्दुं सोमं ) इस चमकनेवाले सोमको ( मदाय युज्याय ) भगवान्के लिए और सहायताके लिए ( त्वं ववृषे ) तू स्वीकार करता है ॥ १ ॥

[ १४७२ ] ( सः ईश्वरः ) यह ईश्वर गहन है । ( सुरिषाडयोऽपि नः ) बहुतसा शत्रु ॥ जानेवाले पक्षके समान ( पुरुणि यच्चनि सातये ) बहुत सारा पक्ष केनेके लिए ( अयोऽपि ) यज्ञमें इसकी नियुक्ति की गई है, ( माट् ई ) इसके बाद ( विश्वा नहुष्याणि जाता ) सब अनुष्योंका विरोध करनेवाले वस्तु उत्पन्न हो गए हैं, ये ( ऊर्ध्वा ) ऊपर मुल करके ( वने स्वर्पाता नयन्त ) वनमें होनेवाले पुटमें जाते और वहाँ लपट हो जाते हैं ॥ २ ॥

[ १४७३ ] हे सोम ! ( सुष्मो ) तू बलवान् है । ( मारुते शर्धो नः ) मारुते बलके समान बलशाली होनेके लिए ( पवस्व ) द्रव्य हो । ( यथा दिव्या विट् ) जितनाकर दिव्य भगवान् ( अमिशस्ता ) अनिर्मित रूपके प्रजाता होते हैं, जतीप्रकार ( आपः नः ) पानीके समान पवित्र होकर ( मधु नः सुमतिः मयः ) जसी समय हमारे लिए उत्पन्न वृद्धि देनेवाला हो । ( सहस्राप्साः ) अनेक रथोंमें चढ़नेवाला तथा ( पृतनापाय् ) शत्रुओं हारनेवाला वृ ( यज्ञः नः ) पक्षके समान पुत्रनीय है ॥ ३ ॥

[ १४७४ ] हे ( अमे ) मने ! ( त्वं विधेयां यज्ञानां होता ) तू सब यज्ञोंमें हवन करनेवाला है, और ( देवेभिः मानुषे जने दितः ) देवोंके द्वारा मानवी प्रजाओंमें तू स्थापित किया गया है ॥ १ ॥

[ १४७५ ] हे मने ! ( सः यज अश्वरे ) यह तू हमारे यज्ञमें ( मन्द्राभिः जिह्वामिः ) भगवान् बहानेवाली पञ्चाभाषिके द्वारा ( मधु यज्ञः ) देवोंका यजन कर । ( देवान् वा ययि ) देवोंकी कुलाकर सा ( ययि च ) और उन्हें हवि अर्पण कर ॥ २ ॥



१४७६ वे॒रथा॑ हि॒ वेधौ॑ अ॒ध्वनः॑ पथ॒थ दे॒वाञ्ज॒सा । अ॒ग्ने य॒ज्ञेषु॑ सु॒कृत्वो ॥ ३ ॥ १४ (हौ)  
 [ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।१६।१ )  
 १४७७ हो॒वा दे॒वो अ॒मर्त्यः॑ पु॒रस्ता॑दे॒ति मा॒यया॑ । वि॒द्यानि॑ प्र॒चोद॑यन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।२७।७ )  
 १४७८ बा॒जी बा॒जेषु॑ धी॒यतेऽध्व॑रेषु प्र॒णीय॑ते । वि॒प्रो य॒ज्ञस्य॑ सा॒धनः॑ ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।२७।८ )  
 १४७९ धि॒या च॒क्रे वरे॑ण्यो भू॒तानां॑ गर्भ॒मा दधे॑ । द॒क्षस्य॑ पि॒तरं॑ त॒ना ॥ ३ ॥ १५ (रा) ॥  
 [ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ऋ. ३।२७।९ )  
 ॥ इति पञ्चम खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१४८० आ सु॒ते सि॒ञ्चत॑ श्रि॒यः रो॒दस्यो॑र॒मिश्रि॑यम् । र॒सा दधी॑त वृ॒षभ॑म् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७२।१ )  
 १४८१ ते॒ जान॑त स्व॒मोक्षं॑ स॒ वत्सा॑सो न मा॒तृभिः॑ । मि॒थो न॑सन्त॒ आभि॑भिः ॥ २ ॥  
 ( ऋ. ८।७२।४ )  
 १४८२ उप॒ लक्षे॑षु वृ॒षतः॑ कृ॒ण्वेत् ध॑रुणं दि॒धि । इ॒न्द्रे अ॒ग्ना नमः॑ स्यः ॥ ३ ॥ १६ (च) ॥  
 [ धा० १२ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।७२।५ )

[ १४७६ ] ( वेधः स्रुप्तो देव अग्ने ) हे विष्णवा, उत्तम कर्त्तृ करनेवाले देव अग्ने । तू ( यज्ञेषु ) यत्नमें ( अध्वन पथ. भजसा च वेथ ) यत्नके वास्तके और दूरक मार्गें तू जानता है, इसलिये यत्नमानको मार्गें दिता ॥ ३ ॥

[ १४७७ ] ( होवा अमर्त्य देव. ) हवन करनेवाला अमर देव अग्नि ( विद्यानि प्रचोदयन् ) कर्मोंको प्रेरित करता हुआ ( मायया ) कुशलतासे ( पुरस्तादेति पति ) आगे जाता है ॥ १ ॥

[ १४७८ ] ( बाजी बानेषु धीयते ) बलवान् अग्नि मुझमें सम्बुद्धा भाग करनेके लिए स्थापित किया जाता है, ( मध्यरेषु प्रणीयते ) यत्नमें वह नि आया जाता है, इसलिये ( विप्रः ) यह जानी अग्नि ( यज्ञस्य साधन ) यत्नका साधन है ॥ २ ॥

[ १४७९ ] अग्नि ( धिया चक्रे ) कर्मोंमें प्रवर्धित किया गया है, इसलिये वह ( वरेण्यः ) श्रेष्ठ है और वह ( भूतानां गर्भमाददे ) सब प्राणियोंमें व्याप्त है । ( पितर दक्षस्य तना ) जगतके पालक अग्निको बलकी बेबीरूपी यह सुवी पारण करती है ॥ ३ ॥

॥ यथा पाञ्चवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १४८० ] हे अमर्त्यजो ! ( सुते ) सोबरसमें ( रोदस्यो- अमिश्रिय ) सुलोक और वृषभोक्तमें शोभा बढ़ाने वाले ( श्रियः शान्तिचत ) वृषको मिलाने । बाबमें ( रसा वृषभ दधीत ) के वृष बलवान् सोमको अपने अन्दर धारण करते हैं ॥ १ ॥

[ १४८१ ] ( ते स्य ओक्ष्य ) के गायें अपने स्वामको ( जानत ) जानती हैं, ( वत्सासः, मातृभिः न ) बड़ों जितप्रकार अपनी मातामहि पास जाते हैं उत्तीमकार के गायें ( आभिभिः मिथ नसन्त ) अपने बापधोके साथ मिलती हैं ॥ २ ॥

गायें वृषके स्थान [ चर ] सोमके वर्णन हैं, यह उन्हें मालूम है ।

[ १४८२ ] ( उप लक्षेषु यत्नतः ) व्यापारमणि अध्वन करनेवाले अग्निके ( इन्द्रे ) अन्नकृष गो वृषके ( धारणी ) पारण करनेवालेकी ( दिधि उप कृण्वते ) जगत्प्रसारने स्थापित करते हैं । बाबमें ( इन्द्रे अग्ना नमः ) इन्द्र और अग्निको सब वृष देने हैं ॥ ३ ॥

- १४८३ तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ सप्रस्त्वेनृम्णः ।  
 सद्यो जज्ञानो नि रिणाति श्रुनन्तु मे विश्वे मदन्त्युमाः ॥ १ ॥ ( अ. १०।१०।१ )
- १४८४ पापुधानः श्वसा भूर्योजाः श्रुदोसाप भिषसं दधाति ।  
 अयनश्च व्यनश्च सस्मि स ते नवन्त ममृता मदेषु ॥ २ ॥ ( अ. १०।१०।२ )
- १४८५ त्वे क्रतुमपि वृजन्ति विश्वे द्विर्वदेते त्रिर्भवन्त्युमाः ।  
 स्वादाः स्वादाषः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनामि योधीः ॥ ३ ॥ १७ ( जी ) ॥  
 [ भा० १३ । उ० ५ । स्व० ४ ] ( अ. १०।१०।३ )
- १४८६ त्रिकटुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मसृग्मम्  
 सोममपिषाद्विष्णुना सुवं यथापशम् ।  
 स महि ममाद महि कर्म कर्तये महामुरुः सैनश्च  
 सश्वेदो देवश्च सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥ ( अ. १।१२।१ )

[ १४८३ ] ( तत् ज्येष्ठं इत् ) यह ज्येष्ठ महा ही ( भुवनेषु भास ) सब भुवनोंमें व्याप्त होता है, ( यतः ) जिससे ( उद्गः त्वेयनृम्णः जज्ञे ) उस और तेजस्वी बलसे युक्त सूर्य प्रकट हुआ । ( जज्ञानः सद्यः श्रुनन्ति निरिणाति ) जलस होते ही चलने वाली सम्राज सब समुदायी गन्ध किया । ( मे विश्वे क्रमाः अनुमदन्ति ) जिते वैश्वर सब प्राणी मत्स्य होते हैं ॥ १ ॥

[ १४८४ ] ( श्वसा पापुधानः ) बलके कारण बड़नेवाला तथा ( भूर्योजाः श्रुदुः ) अनन्तगणित पुनः पुनः का वायु इष्ट ( दासाप भिषसं दधाति ) वायुके अन्तःकरणमें भय उत्पन्न करता है, ( अयनश्च व्यनश्च सस्मि ) प्राण लेनेवाले और प्राण न लेनेवाले दोनोंका हित करता है, हे इन्द्र ! ( ते मधेषु ) तेरे आनन्दमें ( मधुना स नवन्त ) बड़े हुए सब लोग तेरी भक्ति करनेके लिए एकत्रित होखे हे भ २ ॥

[ १४८५ ] हे इन्द्र ! ( विश्वे अपि देवे क्रतुं वृजन्ति ) सब यक्षमान तेरे लिए ही यत्न करते हैं, ( यत् पते जज्ञाः ) जिस समय ॥ यत् करनेवाले यक्षमान ( द्वि त्रिः श्रवन्ति ) शायी करके शी अपवा पुत्र होनेके बाद सोन होते हैं, उस समय हे इन्द्र ! ( स्वादाः स्वादाषः ) भियसे भी शिव लयनेवाले [ सन्तान ] को ( स्वादुना संरुज ) मित्र [ लगन वाले भाता पिता ] से संयुक्त कर । ( मधुः मधु ) शक्तीमें इस मित्र सम्मानको ( मधुना ॥ अभि योधीः ) चीरकृती मधुरतासे युक्त कर ॥ २ ॥

[ १४८६ ] ( महिषः तुविशुष्मः ) महान् और अधिक तापस्पर्शवान् ( सृग्मम् ) मूल हुआ हुआ इष्ट ( त्रि-कटुकेषु सुतं ) तीन बतनमें निचाड़े गए ( यवाशिरं सोमं ) तलुके आयेने निम्न ओपरकरने ( विष्णुना यथापशं अपिषत् ) विष्णुके साथ प्रपञ्चकार पोता है । ( सः ) यह सोपरस । अर्थात् ऊर्ध्व ईं महान् बिलुत तेजस्वी इत इन्द्रको ( महि कर्म कर्तये ) महान् कर्म करनेके लिए ( ममाद ) आमन्त्रित करता है । ( सत्यः इन्दुः ) तापस्पर्श और चमकनेवाला ( देवः सः ) विष्णुगुण युक्त यह सोम ( सत्यं देवं ) जनिताली तथा तेजस्वी ( यत्न इन्द्रं सद्यः ) इस इन्द्रको प्राप्ति होता है ॥ १ ॥

१४८७ साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ  
 साकं वृद्धा धीर्यैः सासहिर्मृषो विचर्षणिः ।  
 दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं  
 सश्वद्वौ देवः सत्य इन्द्रुः सत्यमिन्द्रम्

॥ २ ॥ ( ऋ १।१।१२ )

१४८८ अध स्विपीमाऽअभ्योजसा कृषिं युधामवदा  
 रोदसी आपणदरूप मजमना प्र वावृषे ।  
 अधत्तान्यं जठरे प्रमरिष्यते प्र चेतय सैनं  
 सश्वद्वौ देवः सत्य इन्द्रुः सत्यमिन्द्रम्

॥ ३ ॥ १८ ( यि ) ॥

[ पा० १४।३० १।२७० १३ ] ( ऋ. १।११।२ )

॥ इति वल्ल लण्ड ॥ ६ ॥

॥ इति वल्लप्रपाठके तृतीयोऽर्चः ॥ ३ ॥ वल्ल प्रपाठकरण समाप्त ॥ ६ ॥

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

[ १४८७ ] हे इन्द्र ! तू ( क्रतुना साकं जातः ) धर्मके साथ प्रकट हुआ है, ( ओजसा साकं ववक्षिथ ) अपने सामर्थ्यसे विश्वका भार उठानेकी तू इच्छा करता है । हे ( प्रचेतन ) अच्छे सानी इन्द्र ! ( धीर्यैः साकं वृद्धा ) अपने पराक्रमसे तू महान् हुमा है, ( मृषा सासहिः ) सप्राप्तमें झगड़ानेकी तू हाराता है । ( विचर्षणिः स्तुवते ) विशेष सानी तू स्तुति करनेवालोंकी ( राधः काम्यं वसु दाता ) धन और इष्ट ऐश्वर्य देता है । ( सत्य इन्द्रुः ) साथ तोमरसे ( देवः सः ) धमकते हुए ( सत्य देवः ) सत्य देव ( एवं इन्द्रुः सश्वत् ) इस इन्द्रकी प्राप्ति होता है ॥ २ ॥

[ १४८८ ] हे इन्द्र ! ( अधः ) धर्ममें ( स्विपीमान् ) तेजस्वी तुने ( ओजसा कृषिं युधा अभ्यमवदन् ) अपने सामर्थ्यसे युद्धमें कृषिकी बीजा और ( रोदसी आ वृषात् ) बाबापृष्णीकी अपने तेजसे भर दिया । ( अस्य मजमना प्र वावृषे ) इस सोमके बलसे तू और अधिक बड़ा हुआ है, उस इन्द्रने ( अमर्यं जठरे अपचत् ) सोमरसका एक भाग अपने पेटमें और दूसरा भाग ( हिं प्रारिच्यते ) देवोंके लिये रख दिया है । हे इन्द्र ! तू दूसरे देवोंकी ( प्र चेतयः ) सोम पानेके लिये प्रेरित कर । ( सत्य इन्द्रुः ) सत्य तथा ( देवः सः ) विश्व गुणोंवाला यह सोम ( सत्य देवः एवं इन्द्रं सश्वत् ) तप ईश इस इन्द्रकी प्राप्ति होता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ लडा लण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥



## त्रयोदश अध्याय

### इन्द्र देवता

इस अध्यायमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

१ यः नय नयति पुरः वाहोजला विभेद । वृत्रहा  
महिं अवधीत [ १४५१ ]- इन्द्रने अपने वाहु बलसे शत्रुके  
१९ सगर्भकी तोडा और इस वृत्रकी मारनेवाले इन्द्रने महिंकी  
मारा ।

२ समस्र जेग्यस्य शर्घतः क्षमिशस्तेः कुधिव  
अवसरत् [ १४५२ ]- सब जीतने योग्य तथा रक्षार्थ करने-  
वाले सब शत्रुओंको नष्ट करके वह इन्द्र तुम्हारा अधिक  
संरक्षण करेगा ।

३ शयसा वावृषाजः भूर्वाजा शक्रः दासाय  
भियसं दधाति [ १४५४ ]- अपने बलसे धरनेवाला,  
अनगत सामर्थ्यसे युक्त, कुधियोंका शत्रु इन्द्र शत्रुके दिलमें भय  
उत्पन्न करता है ।

४ ऋतुना साकं जातः । ओजसा साकं पयक्षिथ ।  
धीर्दे साकं वृद्धः । सृष्टः सासहि [ १४५७ ]- कर्ष  
करनेके लिए यह प्रसिद्ध है । अपने सामर्थ्यसे वह सब  
कार्योंका भार उठाता है । अपने पराक्रमसे वह बहुत बड़ा  
है । वह सब शत्रुओंको हराता है ।

५ अद्याताः घृजनाः अदिमासः दुराध्याः नः मा  
भक्तक्रुः [ १४५७ ]- अज्ञान, कुटिल, दारपी और अवल  
शत्रु हम पर हमला न करें ।

६ हे वृह ! त्वदा वयं प्रयतः शम्भवीः अपः अति  
तरामति [ १४५७ ]- हे बृह इन्द्र ! तेरी सहपुत्राले बुर-  
खित ऋषि ऋषि हम बहुत सकटोंके प्रवाहसे पार हों ।

७ हे इन्द्र ! अद्य इन्द्र गये च नः ब्राह्म [ १४५८ ]-  
आज, बल और पराजित सर्वात हमें आज हमारा तु सारक्षण कर ।

८ विभ्वा च अद्या नः दिवा नक्तं च रक्षेथाः [ १४५८ ]  
- सब दिन और रातिमें हमारा संरक्षण कर ।

९ अयं मघजा धीर्वायं कः प्रमंसी शूरः, तुर्धामघः  
संमिद्वः । हे इन्द्र दातृकतो ! ते उभा वाहू नृपण्या या  
यजं नि मिमिश्रतुः [ १४५९ ]- वह इन्द्र तुम्हारे पराक्रम  
करनेवाला, शत्रुका मारा करनेवाला शूर, बहुत वनवान् और  
सबसे मिल मित्रावर रहनेवाला है । हे देवदों कार्य करने-

वाले इन्द्र ! वयंको पारण करनेवाली तेरी दोनों भुजायें  
बलवान् हैं ।

१० स ई महः, भूरियाद् रथ इव, पुरुणि वसन्ति  
स्वातये अयोजि । आत् ई विश्वा नहुप्याणि जाता,  
ऊर्ध्वा बने स्वर्पाजः नवन्त [ १४७२ ]- वह निःशङ्क  
बहुल इन्द्र है । बहुत सारा वनन डीकर ले जानेवाले रथके  
समान बहुत सारा धन देनेके लिए उस रथमें उलने घोडना  
की है । हे इन्द्र ! सब मनुष्योंका विरोध करनेवाले शत्रुओंके  
उत्पन्न होनेपर उनका नाश वनमें होनेवाले युद्धमें ही, और  
शुद्ध ऊपर करके वे घट हो जाएं ।

११ त्विषीमान् ओजसा कृषिं युधा अयमघत् ।  
अस्र मज्जता प्र चावृधे [ १४८८ ]- वह तेजस्वी इन्द्रने  
अपने सामर्थ्यसे शत्रुको युद्धमें जीत लिया है । वह अपने  
बलसे बहुत बड़ा हो गया है ।

इस प्रकार इन्द्रके सामर्थ्यका वर्णन है । अब उसके विषयमें  
बृहदे वर्णन देखिए—

१२ सुतेभिः इन्नुभिः सोमेभिः यदि प्रतिभूयथ,  
मेधिरः विश्वस्य वेदः, धृयत् इत् एयते [ १४४२ ]-  
तोषरतके साथ यदि तुम इन्द्रके पास गए, तो वह दुर्दिमान्  
इन्द्र तुम्हारे सब वनोरप जानेवा और तुम्हारी सब कामना-  
ओंकी पूर्ण करेगा ।

१३ असा इत् अयसः सुर्वं प्र भर [ १४४३ ]- उस  
इन्द्रकी तीमरत भरपूर हो ।

१४ सः शिवा इन्द्रः नः सखा, सभ्वायत् गोमत्  
यवाम् उद घारा इव दोहते [ १४५३ ]- वह कस्याप  
रहनेवाला इन्द्र हमारा मित्र है । वह हमें गहनता रूप देने-  
वाली घायके समान, पीछे, पाप और पाप्य बहुत देता है ।

१५ हे इन्द्र ! नः क्रतु या पर । पथा पुनेम्यः  
पिता, नः शिक्षः हे पुहृत् । यामानि जीवाः ज्योतिः  
अग्नीमहि [ १४५९ ]- हे इन्द्र ! हमारा सत पूर्ण कर ।  
जैसे पिता अपने पुत्रोंको पाल देता है, उसीप्रकार तू हमें पाल  
दे । हे प्रभवंतीय इन्द्र ! यममें हम मनुष्य तेजस्वी बनें ।

१६ हे इन्द्र ! अयं सोमः तुभ्यं सुपे । तुभ्यं पयते ।  
त्वं अस्य पाहि [ १४७१ ]- हे इन्द्र ! यह पीमरता तेरे  
लिए निबोधा गया है । तेरे लिए खाना खाता है तू उसे दी ।

१७ विचर्याणिः स्तुवते राघः काम्यं वसु दाता  
[ १४८७ ]- विचर्ये तानीं तु स्तुति करनेवालेको वन और  
घाहे हुए ऐश्वर्य देता है ।

१८ अयनम् च वननम् च सरिन् [ १४८४ ]-  
इवातोच्छवास करनेवाले और न करनेवाले दोनोंका हित  
करनेवाला है ।

१९ विधेये त्वे फन्तुं युञ्जन्ति [ १४८५ ]- सब यज्ञ-  
कर्ता तेरे लिए ही यत्न करते हैं ।

२० महिषः सुविश्रुतः सृष्टम् यथाशिरं सोमं  
विष्णुना यथादधं अविधत् । सः महो जयं ह महि कर्म  
कर्तये ममाद् [ १४८६ ]- महान् और अत्यधिक सामर्थ्य-  
वान् सृष्ट हुआ हुआ इन्द्र सत्सुते मिले हुए सोमको विष्णुके  
पाप इच्छानुसार पीता है । वह सोमरस उस महान् इन्द्रको  
महान् भाग्य करनेके लिए हाँपत करता है ।

२१ अथ रये काम्या विपक्षला शोणा, धृष्णु  
मृदाहस्ता हरी युञ्जन्ति [ १४६९ ]- इस इन्द्रके रथमें  
सुरद, दोनो तरफ जोड़े जानेवाले, झाल रंगके, सन्तुभीको  
हरानेवाले, इन्द्रकी डोकर ले जानेवाले की घोड़े जोड़े जाते हैं ।

इस प्रकार इन्द्र और इन्द्रके रथका वर्णन है ।

### धर्म इन्द्र

धर्मके रूपमें इन्द्र और सूर्यका भी वर्णन इस अध्यायमें  
आया है—

१ हे सूर्य ! छुतामर्षं नृपमं नर्यापक्षं अस्तारं  
अभि उदेयि [ १४५० ]- हे सूर्य ! प्रसिद्ध यशवान्, बलवान्,  
मनुष्योंका हित करनेवाले वाताके सामने तू उदय होता है ।

२ विश्वाद् यज्ञपतो अभि-वृत्तं मायु वधत् [ १४५३ ]-  
विश्वीय प्रकाश करनेवाला सूर्य यज्ञ करनेवालेको आरोग्य  
पूर्ण दीर्घायु देता है ।

३ रमना अभिरक्षति [ १४५३ ]- वह स्वर्णका संरक्षण  
करता है ।

॥ विश्वाद् मृहत् सुभृतं वाजसातमं, धर्मन् दिवः  
धरणे अर्पितं, सत्यं अग्निश्च-हा, वसुहन्तमं असुर-  
हा सपत्न-हा ज्योतिः अग्ने [ १४५४ ]- विश्वेय प्रकाशमान्  
और महान्, उत्तम भरणपोषण करनेवाला और अग्नि देनेवाला,  
अपनी क्षतिसे घुलनेकी धारण करनेके लिए निवृत्त किया  
गया, निरधरसे शत्रुओंका नाश करनेवाला, सूर्यकी सारने-  
वाला, और राक्षसोंका विनाशक, सत्त्वोंकी सारनेवाला सूर्य  
अपना प्रकाश फैलाता है ।

५ इदं अष्टं ज्योतिषां उत्तमं ज्योतिः, विश्वजित्,  
घनजित् मृहत् उच्यते । विश्वभ्राद् भ्राजः महि सूर्यः  
हयो, उरु सहः अच्युतं योजः पथये [ १४५५ ]- यह  
अष्ट और उत्तम सूर्यका तेज अनेक तेजोंका प्रकाशक है । यह  
तेज उत्तम विजयविजयी, यत्न जीतनेवाला और बहुत महान्  
है ऐसा कहते हैं । विश्वकी प्रकाशित करनेवाला, स्वयं  
प्रकाशी यह महान् सूर्य दिनमें महान् सामर्थ्यवान् अविनाशी  
और तेजस्वी बलको प्रकाशित करता है ।

६ मर्षं अरुणं चरुं परि तस्थुः युञ्जति ।  
रोचना दिवि रोचन्ते [ १४६८ ]- आश्रित्यकी तेजस्वी,  
चलनेके समान दिखाई देनेवाले, पर स्थिर रहनेवाले सूर्यका  
उपयोग क्षापक उपासनमें करते हैं । उसकी प्रशंसा निरर्थक  
भाक्यार्थ प्रकाशित होती है ।

७ तत् उपेयं भुवनेषु आस, यतः उग्रः शेषेनृभ्याः  
जघे । अजानः सद्यः शत्रून् निरिणाति । वै विश्वे ऊनाः  
अनुमदन्ति [ १४८३ ]- वह ज्येष्ठ ब्रह्म सब भुवनोंमें  
व्याप्त है, जिससे बहुत तेजस्वी सूर्य उत्पन्न हुआ । उत्पन्न  
होते ही उसने उसी समय सब सन्तुओंको मर्ष किया, उसे  
वेत्तकर सब प्राणी प्रसन्न होते हैं ।

८ मर्या ! अनेतये केतुं कृषवत्, अपेक्षसे पेदा,  
उपद्रिः समजायथाः [ १४७० ]- हे मनुष्यो ! सत्ता-  
निर्धोको ज्ञान देने हुए, ऊपरक्षितोको रूप देते हुए उब फालके  
बाद यह सूर्य उत्पन्न होता है ।

९ सवितुः देवस्य सत् वरेण्यं भगोः धीमहि, यः नः  
धियः प्रचोदयात् [ १४६९ ]- सविता देवके उस अष्ट  
तेजका हम ध्यान करते हैं, जो सविता-सूर्य-हमारी बुद्धिमेंकी  
उत्तम मेरणा है ।

इस प्रकार सूर्यका वर्णन इस अध्यायमें है । अन्तका सब  
पादभी यथ है, और वह प्रसिद्ध होनेके कारण सबको पता  
है । अब अग्निका वर्णन देखें—

### अग्नि

१ हे अग्ने ! नः आभूयि जं ह्यं च पथसे [ १४६४ ]-  
हे अग्ने ! हमें दीर्घायु बल और अन्न दे ।

२ दुच्छुनां आरे वाचस्य [ १४६४ ]- दुष्टोंकी दूर कर ।

३ हे अग्ने ! त्वं विश्वेषां यजमानां होता, देवेभिः  
मातुषे जने हितः [ १४७४ ]- हे अग्ने ! सूर्यय यज्ञोंका  
होता, देवों द्वारा मनुष्योंमें स्थापित किया गया है ।

४ सः नः आचरे अग्नाभिः सिद्धाभिः मद् यज्ञः,

देवान् वा वक्षि यक्षि च [ १४७५ ]- बहुसू हमारं यतमे  
आनय यदानेके त्तिष्ठ उवासाग्रसि प्रसीता ही, और देवोंके  
लिए यजन कर । देवोंकी बुलाकर तब और उनके त्तिष्ठ  
यत कर ।

५ वेद्यः सुकतो देव अग्रे । यद्येधु अव्यतः पयः  
अंजसा पेरथ [ १४७६ ]- हे पिपाता और उत्तम कर्म  
करनेवाले अग्नि वेद्य ! तू यतके पासके धीर दूरके मार्गोंकी  
जानता है, इसलिए तू उत्तम मार्ग दिखा ।

६ होता अमर्यः देयः विद्यथानि प्रबोद्धन् प्रायथा  
पुरस्तात् पति [ १४७७ ]- होता अवर वेद्य कर्मोंकी  
श्रेया करते हुए कुशलतासे आगे जाता है ।

७ अग्नी वाजेधु वीर्यते । अव्यरेधु मणीर्यतेः विद्वः  
पशव्य साधनः [ १४७८ ]- यलवान् अग्नि युद्धमें स्थापित  
किया जाता है । दोनों पक्षोंमें जब अग्निके समान द्वेष  
प्रबलित होता है, तभी युद्ध होता है । यतमें अग्नि ले जाया  
जाता है । यह तानी अग्नि यत्नका साधन है ।

अग्निके वर्गनमें यत करना ही अग्निका मुख्य काम है ।  
आरोग्यसाधन और शौर्यम् इत बलके कण हैं । अग्निमें  
अग्निकी उष्णताके रहनेके कारण शरीरका यत्नशाली सुपादि  
देवोंके अंग रहते हैं । और उष्णताके मध्य होते ही सब देव  
निकल जाते हैं, यह अनुभव सबको है । ऊपरके अंगोंके वर्गन  
आनन्दशरीरमें होनेवाले अतिसमस्तरीय यतमें वेवें । उससे  
संभवी आध्यात्मिक भाषा स्पष्ट रूपसे समझमें आ जायेगी  
और सब मंत्रोंका अर्थ स्पष्ट हो जायगा ।

### मित्र और वरुण

१ ताः नः पाधिष्यद्य दिग्ध्यद्य मद्रः रायः राक्षतं,  
वेपेधु पां मादि क्षयं [ १४७९ ]- वे दो मित्र और वरुण वेव  
पाधिष और विष्य ऐसे दोनों प्रकारके धन देनेमें समर्थ हैं ।  
सब देवोंमें इनका महान् बल प्रसिद्ध है ।

२ अतेन जते सपत्न्य इतिरे दक्षं आवाते, अनुहा  
देवी यधेते [ १४८० ]- यतसे यम पुत्र करते हुए पाहने  
योग्य बल प्राप्त करते हैं । अनेक करनेवाले मित्र और वरुण  
कोनों वेव अपने सामर्थ्यसे अते हैं ।

३ पृष्टिपापा रीत्यापा वानुमत्या इपः पती, गृह्यन्तं  
गते आवाते [ १४८१ ]- पृष्टिके त्तिष्ठ मित्रकी रक्षति  
होती है, मगतिरे त्तिष्ठ शो कर्म करते हैं, बान देनेकी और  
मित्रकी वृद्धि जानी है ऐसे अनेके स्वामी वे मित्र और वरुण  
महान् रूपमें अते हैं ।

इन मंत्रोंमें मित्र और वरुण बोधता हैं । पाधिष और विष्य  
ऐश्वर्यमें अते हैं । क्षात्रकर्ममें कुशल होनेके कारण वे शत्रुओंको  
हटाकर दूर करते हैं । वे मलयन् हैं । एक काम समाप्त हुआ  
कि दूसरा शुरू कर देते हैं । आलस्यमें समय मध्य नहीं करते ।  
माघसमें अग्रजते नहीं । मगति करनेके सब कार्य करते हैं ।  
वे इनके अनेके गुण प्रहस्य करने योग्य हैं ।

### सरस्वती

सरस्वती देवीके सम्बन्धमें भी इस अध्यायमें वर्णन है—

१ उत नः प्रियाद्यु प्रिया, सप्त-व्यसा सुसुधा  
सरस्वती स्तोम्या भूरु [ १४८२ ]- हमें प्रिय वस्तुओंमें  
प्रिय, सात अहिनो द्वारा सेवित सरस्वती स्तुतिके योग्य हो  
गई है ।

सरस्वती विद्या और सङ्कलितकी देवी है । अपने देवोंकी  
सङ्कलित सबको प्रिय होनी चाहिये । यह सङ्कलित समस्त अधिका  
प्रिय है सब प्रसन्नताओंमें यह सर्वाधिक प्रसन्नताय है । इतकी  
सात अहिनो हैं । धर्म भाषना, भाषा, सन्ध्या, सत्कर्म  
कारणकी इच्छा, अग्नि, संस्कृति और मातृभूमि में  
सरस्वतीकी सात अहिनो हैं । इनकी सेवा प्रत्येकको करनी  
चाहिये ।

२ अनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानयः अग्रयः सरस्वतं  
ह्रस्वामहे [ १४८३ ]- स्त्रीवाले गृहस्त्री, पुत्रवाले, उत्तम  
दाय देनेवाले, सबके आने रहनेवाले, ऐसे हम सब सरस्वतीकी  
सहायताके लिए आर्चना करते हैं ।

सब प्रकारके लोगोंकी इस विद्यादेवीकी उपासना करनी  
चाहिये । सब प्रकारकी प्रगतिरे लिए विद्याका उपयोग होता  
है । विद्यामें आने रहनेवाला ही सबमें आगे रहता है ।

### प्राणकी उपासना

शीर्षाध्व्य प्राप्त करनेके लिए प्राणकी उपासना आवश्यक  
आवश्यक है—

१ ह्र प्रथारूपते । सोमानां कर्तृर्यन्तं स्वरर्षं  
कृणुहि, यां मीशियः [ १४८४ ]- हे शानके स्वामी ! हे  
जानने ! ( ह-उग्रमर्ष ) कृणुहि यां उपा है, हम प्रथ-  
विद्यासे मुक्त ब्रह्मज्ञानी हो योग्य हैं । उन जानियोंमें योग्य  
साधनके अनुभवसे जिन प्राणोंका ज्ञान होता है, उन ज्ञानीमें  
रहनेवाले प्राणोंकी ( स्वरर्ष सु-भरण ) उत्तम प्रकार और  
देव-उत्तम ज्ञाने जाने-दाता करो । वह ज्ञान अपने ज्ञानमें  
होना, ही ज्ञान्ति सिद्धि मिलेगी ।

शान प्राप्त करें, फिर प्राणोंको बशमें करें। पूरक और रेचक इनका अभ्यास करें। इस छातीमें रहनेवाला प्राण यदि बशमें हो गया तो दीर्घजीवन प्राप्त हो जायगा। निरोगी रहा था सकेगा। स्वास्थ्य तुल्य मिलेगा।

इस प्रकार इस अभ्यासमें ही मृत्युको साधना यताई है। जो इसका अनुष्ठान करेगा, उसको स्वास्थ्य, आरोग्य और दीर्घजीवनका सुख प्राप्त होगा।

### सोम

अथ इस अध्यायमें सोमका वर्णन इस प्रकार है—

१ सञ्जुः [ १४४४ ]- भूरे रंगका।

२ रुचतयाः [ १४४४ ]- अपनी शक्तिसे बढ़नेवाला।

३ अक्षयः [ १४४४ ]- क्षयकनेवाला।

४ दिविक्षुक् [ १४४४ ]- स्वर्गमें रहनेवाला, हिमालयकी ऊँची चोटी पर उबनेवाला।

५ मनस पति [ १४४८ ]- मनका स्वामी, मनका उस्ताह बढ़ानेवाला।

६ शुष्मी [ १४४९ ]- सामर्थ्यवान्, प्रबलवान्।

७ सुमतिः [ १४७३ ]- उत्तम बुद्धि देनेवाला, मनुष्यो उत्तेजित करनेवाला।

८ दिवा पृष्टि नः आ पवस्व, अपां ऊर्मि परि, अयक्ष्मः सृहतीः इव [ १४३५ ]- पृथोक्ते बुद्धि कर ताकि पानीकी लहरें उछलें और रोगरहित अन्न मिले।

९ तया धारया पवस्व, यया जग्यासः गावः इह नः गृहं उप आगमन् [ १४३६ ]- उस धारासे छनता जा, जिसके कारण कुपादमीर मछड़े सहित गर्भें हमारे पास भायें और उनका दूध सोमरसमें मिलाया जावे।

१० नः ऊर्जे अयस्यं पविर्धं धारया विधाव [ १४३८ ]- हमारे बल बढ़ानेके लिए भेड़के बालोंको छलनीमेंसे धार बनाकर नीचे बतनमें गली जा।

११ रक्षांसि अपज्जेनन्तु, रुचः प्रलवन्तु रोचयन् पयमानः असिप्यन्तु [ १४३९ ]- राक्षसोंको मारकर पृथक्के समान तेजकी किरणोंको प्रभावित करते हुए छनकर बतनमें जा।

१२ मिथ्यानि विपुपे अरंगमाय जम्भये अपृथाद् वापने पिपीयते अक्षीं प्रति श्वर [ १४४० ]- सबको जाननेवाले, बहुत प्रगति करनेवाले यज्ञमें जानेवाले, आगे रहनेवाले, सोम पीनेकी इच्छा करनेवाले इस इन्द्रके लिए सोमरस दो।

१३ हे सोम। अ-मित्र-हा विश्वचर्षणिः देयेऽयः अनुकामकृत् त्वे शो पवस्व [ १४४७ ]- हे सोम। तू धातुओंको भारनेवाला, सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला, देवोंके लिए अनुकूल कर्म करनेवाला तू गांधीके कल्याण करनेके लिए शुद्ध हो। गांधीका दूध सोममें मिलाया जाता है, इस कारण गांधीको मान्य होता है।

१४ हे सोम। इन्द्राय पातये मदाय परिपिच्यते [ १४४८ ]- हे सोम। इन्द्रके पीनेके लिए और उसे आनन्द देनेके लिए तू सर्वतम गिरता है। छाना जाता है।

१५ हे इन्द्रो पयमान। सुवीर्यं रथि नः युजा इन्द्रेण नः रिरीहि [ १४४९ ]- हे मृद होनेवाले सोम। उत्तम बीरसे युधत्त घन हमारी सहयता करनेके लिए इन्द्रसे लेकर हमें दे।

१६ यथा दिव्या विद् अनमिदास्ता [ १४७३ ]- जिस रीतिसे दिव्य प्रजायें आनन्दित रहें ऐसा कर।

१७ सः मधु सुपतिः अथ। स ह्यज्ञात्वाः धृततां पाद् [ १४७३ ]- हमारी बुद्धि, शीघ्र हो उत्तम हो ऐसा कर। अनेक कर्म करनेवाला और धनुषनेताको हरातेवाला हो।

१८ सुवे धियं आसिचत्। रक्षा घृषमं वृषीत् [ १४८० ]- सुमरसमें दूध मिलाओ, ताकि उस दूधसे सबका सोमका पारण हो।

१९ ते त्वं ओक्यं जावत, धरमासः मादुभिः न, जामिभिः मिथः ससम्भ [ १४८१ ]- वे गाँयें अपना घर जानें। जिसप्रकार मछड़े अपनी माताओंसे मिलकर रहते हैं उसीप्रकार अपने बन्धुओंसे वे मिलकर रहें।

गाँयोंका घर सोम है इसका अर्थ है कि सोममें गाँयका दूध मिलाया जाता है। गाँयका दूध अपने घर जाता है अर्थात् सोममें दूध मिलाया जाता है। यह आत्मारिक वर्णन है।

### सोममें दूध

१ हस्तच्युतेभिः अदिभिः सुतं सोमं पुनीतन, मधौ मधु आधावत् [ १४८५ ]- हाथोंसे कूटे जानेवाले श्वरोंके द्वारा कूटकर निकोदा गया सोमरस शुद्ध करो और इस सघुर सोमरसमें दूध मिलाओ।

२ नमसा उपसीदत्, दध्ना अमिध्रीणीत्, इन्द्रे हन्तुं दधातन [ १४८६ ]- नमस्कार करते हुए सोममें पास जा बैठो और उस सोमरसमें बहो या दूध मिलाओ और बहुत सोमरस इन्द्रको दो।

इस प्रकार सोममें इन्द्रके लिए देनेका वर्णन है। अथ देवोंको भी इतप्रकार सोमरस देनेके लिए दिया जाता है।

## सुभाषित

१ दिवः पृष्टि नः सु आ पवस्व, अयक्ष्मः बृहतीः  
द्वयः [ १४३५ ]- आकाशसे वर्षा अच्छी तरह गिरा और  
रोगग्रहित बहुत सारा मनुज हमें दे ।

२ तथा धारया पयस्व, यथा ज्ञान्यासः साधः इह  
नः गृहं उपागमन् [ १४३६ ]- तू धूलसाधार बरसात  
गिरा, जिसके कारण दूध देनेवाली गायें यहाँ हमारे घर आयें ।

३ देवास्तः कं भृगयन् [ १४३८ ]- देव ज्ञानन्ते  
साध सुर्ग ।

४ रक्षांसि अपजघनन्, रक्षः प्रक्षयत् रोचयन्  
[ १४३९ ]- राक्षसोंको मारकर, पहलेके समान अपने तेजसे  
तेजस्वी हो ।

५ विश्वानि निजुये, अरंगमाय जग्मये, अपद्व्यात्  
अभ्यने मतिभर [ १४४० ]- सब जाननेवाले, बहुत प्रगति  
करनेवाले, सबसे आगे रहनेवालोंको भरपूर भरण दे ।

६ मेधिरः विश्वस्य वेदः, धूपस्व, तं इत् एषते  
[ १४४१ ]- बुद्धिमान् इन्द्र तुम्हारे सारे मनोरथोंको जानता  
है, वह धूपगंधोंको दूँता है, और तुम्हारी सब कामनाओंको  
पूरा करता है ।

७ स्वमस्य योग्यस्य क्षाप्रतः अमिश्रस्तेः कुविन्  
अपस्वरात् [ १४४३ ]- तब नीतले योग्य और स्वर्ण  
करनेवालोंका नाश करके वह इन्द्र तुम्हारा नि शत्रुय मरक्षण  
करेगा ।

८ अमिश्रहा विश्वचर्षणिः देवेभ्यः अनुकामठत्  
[ १४४४ ]- तू धातुग्रीका नाम करनेवाला, सब अनुष्मोंका  
मरक्षण करनेवाला और देवोंके अनुकूल कार्य करनेवाला है ।

९ गये दौं पयस्व [ १४४५ ]- गायोंको मुक्त है ।

१० मनः पितृ मनसा एतिः [ १४४८ ]- मनकी  
शक्तिको आगे और मन पर शासन करें ।

११ सुर्गार्थं यमि नः रिरीधि [ १४४५ ]- उत्तम वराक्रम  
करनेके सामर्थ्यसे मुक्त बन हमें दे ।

१२ धृतार्थं धूपमं सर्पापस अस्तारं अमि उदेयि  
[ १४५० ]- प्रसिद्ध धनवाजों, बलवानों तथा धनुष्योंके  
हित करनेवालोंके तथा दान देनेवालोंके सामने तू प्रकट  
होता है ।

१३ यः नय नयति पुरः यादोऽज्ञसा विमेद् [ १४५१ ]  
- जिसा इन्द्रने शत्रुगैरकी निम्नाने नगरियोंकी अपने बाहु-  
बलसे तोड़ डाला ।

१४ वृत्र-हा आहि अवधीत् [ १४५१ ]- वृत्रको  
मारनेवाले इन्द्रने बहिर्को मार दिया ।

१५ स्वः शिवः इन्द्रा नः मखा, अभ्रावत्, गोमन्  
यमन् उरघारा इव दौदते [ १४५२ ]- वह कल्याण  
करनेवाला इन्द्र हमारा मित्र है, वह घोड़े, गाय और भे  
इन्के साथ मिलनेवाला मनुज, बहुत दूध देनेवाली गायोंके  
समान, हमें देता है ।

१६ विश्वाद् यमपतो अ-विष्णुतं वायुः वृषत्  
[ १४५३ ]- सर्वथम करनेवालोंको भारोग्रमण दोषार्थ देता है ।

१७ गृहत् सोम्यं मधु पिबत् [ १४५३ ]- बहुते  
सोमरसके मोठे शेष वह पीये ।

१८ यतजृत्ः तमना अमि रक्षन्ति [ १४५३ ]- वायुने  
प्रेरित किए गए स्वयंकी हार तरहसे रक्षा करता है ।

१९ अजाः विपतिं [ १४५३ ]- प्रजाभोला उत्तम शोषण  
करता है ।

२० वहुधा विराजति [ १४५३ ]- अनेक रीतियोंसे  
वह शिरोप तेजस्वी होता है ।

२१ विश्वाद् गृहत् स्वयं अमिश्रहा दस्तुहन्ताम  
असुरहा स्वपत्नहा, अयोतिः जमे [ १४५४ ]- विनेय  
तेजस्वी और विद्याल, निरभयते शत्रुभोंका नाशक, धूर्तोंको  
मारनेवाला, असुरोंको मारनेवाला, सपनों [ शत्रुओं ] को  
मारनेवाला तेजस्वी और उत्तम हुन्ना है ।

२२ इत् भ्रेष्ठ ज्योतिषां उत्तमं ज्योति मिश्रयित्,  
धनजित् बृहत् उच्यते [ १४५५ ]- ये तेजस्वी यशस्वी  
उत्तम तेजस्वी, सब अपहृ विजय करनेवाले, धन जीतनेवाले  
बहुन् और प्रसिद्ध तेज हैं ।

२३ विश्वभ्राद्, अजाः महि स्वयं एदो उर सह  
अक्युतं ओजः पप्रथे [ १४५५ ]- सबको प्रशंसित करने-  
वाला, स्वयं प्रकाशमान् यह महान् सूर्य वेदमें बड़ा सामर्थ्य-  
वान्, अविनाशी और तेजस्वी सामर्थ्यको फैलाता है ।

२४ वन्तु आ मर [ १४५६ ]- धत उत्तम रीतिसे  
समाप्त कर ।

२५ यथा पुत्रेभ्य पितरः नः शिशू [ १४५६ ]- जैसे  
अपने पुत्रोंको पिता बन देता है, उत्तमप्रकार तू हमें दे ।

२६ यामानि जीवाः ज्योतिः अश्रीमहि [ १४५६ ]-  
यसमें हम धनुष्य प्रजा प्राप्त करें ।

२७ अजाताः वृजनाः अशिषासः पुराध्याः नः मा  
अयमनुः [ १४५७ ]- अज्ञान, कुटिल, पारो और समयम  
शत्रु हमपर आक्रमण न करें ।



२८ हे भूर ! त्वया चयं प्रवतः शम्भ्वतीः अपः  
वाति तरामसि [ १४५७ ]- हे भूर ! तेरी सहायतासे तुर-  
न्तित हुण्ड हय बहुतेसे सकटोंके प्रवाहते पार हों ।

२९ अद्य द्यः परे च नः आस्व [ १४५८ ]- आज,  
कल और परसे अर्थात् हमेशा हमसे रक्षा कर ।

३० हे सरपते ! विभ्या च अहा नः दिवा नक्तं च  
रक्षिष्यः [ १४५९ ]- हे तृणचर्वीके सरसक ! हमेशा हमें  
दिन और रात्रीमें सुरक्षित कर ।

३१ अयं प्रघया धीर्यपि कं प्रमंणी शूरः तुयी-मघः  
संमिश्रः [ १४५९ ]- यह घनवान् इन्द्र सुते पराक्रम  
करनेके लिए शत्रुकी मध्य करनेवाला, धूर, अव्ययिक ऐश्वर्य-  
वान् और मिलमिलाकर रहनेवाला है ।

३२ या चर्ज नि मिमिक्षतुः ते उभा याहू वृषणा  
[ १४५९ ]- जो बखरी घारण करते हैं वे तेरे दोनों माहू  
बलवान् हैं ।

३३ जनीयन्तः पुनीयन्तः सुदानवः अमघः सख-  
स्मन्तं हयामहे [ १४६० ]- एनीके साम रहनेवाले अर्थात्  
विवाहित, पुत्रवाले, उत्तम दान देनेवाले, आगे रहनेवाले हम  
विचारोंकी सहायताके लिए युक्त हैं ।

सरस्वान्- विद्याका उपासक, विद्वान्, सानी ।

३४ सरस्वती स्तोम्य भूम् [ १४६१ ]- विद्यादेवी  
स्तुतिके योग्य है ।

३५ सधितुः देवस्य तत् पर्येष्य भगं धीमहि, य  
न धिया प्रचोदयाम् [ १४६२ ]- सधिता देवके उस भेद्य  
तैजसा हम प्रयत्न करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा  
देता है ।

३६ हे द्रक्ष्मणस्पते ! सोमनां कक्षीयन्तं स्वराज  
ह्यपुदि [ १४६३ ]- हे मानपते ! सामने और योगसे छातीमें  
रहनेवाले प्राणकी मध्यस्थ रहते आने और जानेवाला कर ।  
प्राणायामका अभ्यास कर ।

३७ नः आर्यपि पवसे, न ऊर्जं र्यं च [ १४६४ ]-  
हमें दीर्घायु दे तथा हमें बल और अन्न भी दे ।

३८ हुष्कुनुर्तां अरे वाद्यस्व [ १४६४ ]- हुष्कुनों  
दूर कर ।

३९ ता नः दिव्यस्य पार्थिवस्य महः रायः शपतं,  
पां पेषेपु मादि शपं [ १४६५ ]- वे तुम हमें धुलोकर और  
पुष्पोंपरसे चट्टान् ऐश्वर्यकी दो, बर्तोंके तुम्हारा केशोंमें महान्  
दण्ड प्रतिष्ठित है ।

४० ज्ञेतेन कृतं स्वपन्ता इपिरं दक्षं आशते,  
अनुहं देवो चर्वते [ १४६६ ]- सत्यसे सत्यका पालन  
करते हुण्ड चाहनेके योग्य बल प्राप्त करते हैं, ये आपसमें श्रेष्ठ  
न करनेवाले दोनों देव मदते हैं ।

४१ दातुमस्या इष्टस्पती युहुन्तं गर्तं आशते  
[ १४६७ ]- दान देनेवाले अपने स्वामी महान् रथमें बैठते हैं ।

४२ अर्यं अरुणं चरमन्तं परि तस्थुप-युञ्जति [ १४६८ ]  
- ध्यान करनेवाले उपासक सूर्यके तेजस्वी और चक्षुष्यमान्  
स्वका उपासनाके लिए उपयोग करते हैं ।

४३ रोचना दिवि रोचन्ते [ १४६८ ]- उसकी किरणें  
आकाशमें प्रकाशित होती हैं ।

४४ अस्य रथे काम्या विषक्षसा शोणा ध्रुष्ण  
नृवाहसा हरी युञ्जति [ १४६९ ]- इसके रथमें सुन्दर,  
बोनी तरप जोड़े जानेंवाले, लाल रक्ते, शत्रुओंकी हारनेवाले  
तथा वीरोंकी ओकर से जलनेवाले दो घोड़े जोड़े जाते हैं ।

४५ अनेतये केतुं रुष्यन्, अपेशसे पेशः, उपदि-  
क्षमजायथाः [ १४७० ]- अस्त्राणीको ज्ञात देनेवाले, रुष-  
रहितको सुन्दर रूप देनेवाले सूर्यका जयाके आनेके बाद उदय  
होता है ।

४६ सः महः पुरुषि वसूनि सातये अयोजि [ १४७२ ]  
- इस महान् इन्द्रमें बहुत सारा धन देनेकी योजना बनाई है ।

४७ विभ्या नहुप्याणि जाता, ऊर्णां चमे स्वर्पाता  
नयन्त [ १४७२ ]- सबका विरोध करनेवाले शत्रु उत्तर  
हो गये हैं, वे ऊपर सिर करके बचने होनेवाले युद्धमें नष्ट हों ।

४८ सहस्राप्ताः पृतसायद् [ १४७३ ]- अनेक रूपोंसे  
शत्रुतेजोंकी हारनेवाला बहु वीर है ।

४९ अमर्यः देवः विदधामि प्रचोदयन् मादया  
पुरस्तात् पति [ १४७४ ]- अमर देव सब उत्तम कर्मोंकी  
प्रोत्साहन देता हुआ तुमसमक्षमें आये जाता है ।

५० पाञ्ची पाजेपु धीयते [ १४७८ ]- बलवान् वीर  
युद्धमें जाता है ।

५१ विप्रः पक्षस्य साधनः [ १४७८ ]- सानी वधकी  
तिष्ठ करता है ।

५२ ते स्व ओषर्थं जानत [ १४८१ ]- वे अपने घर  
जाते हैं ।

५३ वत्सलाः मातुभिः [ १४८१ ]- लकड़े पातके  
साम जाते हैं ।

५४ जातिभिः मिथ नलन्व [ १४८१ ]- अपने  
आर्थिक साम के मिलकर रहते हैं ।

५५ तत् ज्येष्ठ इत् सुवनेषु आस [ १४८३ ]- वह  
श्रेष्ठ इष्ट निदयसे भुवनोर्नि ध्याप्त रहता है ।

५६ यतः उग्रः त्वेय-सूनुषः जज्ञे [ १४८३ ]- जिससे  
उग्र तेजस्वी सूर्य प्रगट हुआ है ।

५७ जज्ञानः सद्यः शत्रून् निरिणाति [ १४८३ ]-  
उत्पन्न होते ही वह शत्रुओंको नष्ट करता है ।

५८ यं विध्वे ऊमाः धनु मवन्ति [ १४८३ ]- जिसे  
हैलकर सब प्राणी मानवित होते हैं ।

५९ शयसा थावुधानः भूयोऽज्ञाः शत्रुः दासाय  
भियस्तं दधाति [ १४८४ ]- सामर्थ्यसे बड़नेवाला तथा  
मदकत क्षतिपूर्ति युक्त ऐसा वह दुष्टोंका शत्रु इन्द्र शत्रुके  
दिलमें भय उत्पन्न करता है ।

६० धव्यनत् च ध्यमत् च सस्नि [ १४८४ ]-  
इवासीवद्वत्वात् करनेवाले और न करनेवाले दोनोंका हित  
करता है ।

६१ ते मदेसु प्रभुता स्वं नमन्त [ १४८४ ]- तेरे  
मानन्दमें बड़े हुए सब लोग तेरो भजित करनेके लिए एक  
पगह इकट्ठे होते हैं ।

६२ महां उरं हूं मादि कर्म कर्तये ममाद् [ १४८५ ]-  
महान्, अधिक और सामर्थ्यवान् वीरको महान् कर्म करनेके  
लिए उत्साहित कर ।

६३ कानुना साकं जातः [ १४८५ ]- कार्य करनेकी  
क्षतिके साथ ही उत्पन्न हुआ है ।

६४ भोजसा साकं धयस्त्रिष [ १४८५ ]- अपने  
सामर्थ्यसे काम करनेकी तेरी इच्छा है ।

६५ हे प्रचेतन ! धीर्य ! साकं युद्धः [ १४८५ ]- हे  
जताही वीर ! अपने वराक्रमसे धु महान् हुआ है ।

६६ मृधः सासहिः [ १४८७ ] शत्रुको हरा ।

६७ विचर्षणिः स्तुवते राघः काम्यं यक्षु दाता  
[ १४८७ ]- विशेष जानी तु स्तुति करनेवालेको धन और  
चाहे हुए ऐश्वर्यको देता है ।

६८ त्विधीमान् भोजसा कृषिं युधा अभि अभयत्  
[ १४८८ ]- तेजस्वी तुने अपने सामर्थ्यसे हितक शत्रुको  
युद्धमें जीत दिया है ।

६९ रोदसी आ वृणात् [ १४८८ ]- पावापुविपीने  
तेजसे भर दिया ।

७० लव्य ममना प्र थावुषे [ १४८८ ]- इससे  
सामर्थ्यसे तु बड़ा ।

७१ प्र चैतय [ १४८८ ]- वृत्तोंकी उत्तम प्रेरणा दे ।

## उपमा

१ उरुधारा इय [ १४५९ ]- बहुतेसा दूध देनेवाली  
पार्थिके समान ( सः इन्द्रः बोधते ) वह इन्द्र धन देता है ।

२ यथा पिता पुत्रेभ्यः, नः शिक्ष [ १४५९ ]- जैसे  
पिता पुत्रोंको धन देता है, उसीप्रकार हे इन्द्र ! तू हमें धन दे ।

३ यथा दिव्या विद् गानभिदासा [ १४७३ ]- जिस-  
प्रकार दिव्य प्रजाजन्त भावयते पवित्र रहते हैं, उसीप्रकार  
सोम पवित्र रहता है ।

४ आपा न [ १४७३ ]- पानीको समान हुए बुद्धि  
हमें दे ।

५ यज्ञः न [ १४७३ ]- यज्ञके समान तू प्रिय है ।

६ धत्सासः मातृभि न [ १४८१ ]- जिसप्रकार  
बछड़े माताके पास जाते हैं, उसीप्रकार भयने बाग्यवर्षे साथ  
वे सोमरस जाते हैं । सोमरस वर्तनमें गिरता है ।

## त्रयोदशाध्यायान्तर्गत ऋग्वेदवता-छन्द सूची

वर्तारस्या	ऋग्वेदवतानं	ऋविः	छन्दः
		( १ )	
१४१५	१।७९।१	कविर्भार्यः	वचमलः सोमः
१४१६	१।७९।१	कविर्भार्यः	" "
१४१७	१।७९।१	कविर्भार्यः	" "

३४ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

मंत्रतल्या	ऋग्वेदपर्याय	ऋषिः	देवता	छन्दः
१४३८	५।४९।४	कविर्भार्यवः	पद्मानः सोमः	गायत्री
१४३९	५।४९।५	कविर्भार्यवः	"	"
१४४०	६।४९।१	मरुदाजो बार्हस्पत्यः	इन्द्रः	अनुष्टुप्
१४४१	६।४९।२	मरुदाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१४४२	६।४९।३	मरुदाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१४४३	६।४९।४	मरुदाजो बार्हस्पत्यः	"	बृहती

## ( २ )

१४४४	५।११।४	असितः काम्यपो देवतो वा	पद्मानः सोमः	गायत्री
१४४५	५।११।५	असितः काम्यपो देवतो वा	"	"
१४४६	५।११।६	असितः काम्यपो देवतो वा	"	"
१४४७	५।११।७	असितः काम्यपो देवतो वा	"	"
१४४८	५।११।८	असितः काम्यपो देवतो वा	"	"
१४४९	५।११।९	असितः काम्यपो देवतो वा	"	"
१४५०	८।९३।१	मुक्ता अगिरसः	इन्द्रः	"
१४५१	८।९३।२	मुक्ता अगिरसः	"	"
१४५२	८।९३।३	मुक्ता अगिरसः	"	"

## ( ३ )

१४५३	१०।१७०।१	विभ्राद् सीर्यः	सूर्यः	अगती
१४५४	१०।१७०।२	विभ्राद् सीर्यः	"	"
१४५५	१०।१७०।३	विभ्राद् सीर्यः	"	"
१४५६	७।३१।२६	वसिष्ठो वैश्रावणिः	इन्द्रः	प्रणामः ( विषमा बृहती रामा रतौबृहती )
१४५७	७।३१।२७	वसिष्ठो वैश्रावणिः	"	"
१४५८	८।६१।१७	भर्गः प्राणायः	"	"
१४५९	८।६१।१८	भर्गः प्राणायः	"	"

## ( ४ )

१४६०	७।१६।४	कसिष्ठो वैश्रावणिः	मरुदाजो बार्हस्पत्यः	गायत्री
१४६१	६।६१।१०	मरुदाजो बार्हस्पत्यः	सरस्वती	"
१४६२	३।३२।१०	विश्वामित्रो गायमिन्	वसिष्ठा	"
१४६३	१।१८।१	मेधातिथिः काश्वः	ब्रह्मणस्पतिः	"
१४६४	९।६६।१९	धार्त वसिष्ठा	अग्निः पद्मानः	"
१४६५	५।१८।३	यजत आग्नेवः	विश्वामित्रो	"
१४६६	५।१८।४	यजत आग्नेवः	"	"
१४६७	५।१८।५	यजत आग्नेवः	"	"
१४६८	१।१।१	मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	इन्द्रः	"
१४६९	१।१।२	मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	"	"
१४७०	१।१।३	मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	"	"

संक्रमंत्वा	आवेदस्थानं	श्रुतिः	देवता	छन्दः
( ५ )				
१४८१	११८८१	उपाना काव्यः	पवमानः सोमः	त्रिष्टुप्
१४८२	११८८१	उपाना काव्यः	"	"
१४८३	११८८३	उपाना काव्यः	"	"
१४८४	११८९१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	अग्निः	वर्धमाना
१४८५	११८९१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	गायत्री
१४८६	११८९३	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१४८७	११९०३	विश्वामित्रो गायनिः	"	"
१४८८	११९०८	विश्वामित्रो गायनिः	"	"
१४८९	११९०९	विश्वामित्रो गायनिः	"	"

( ६ )

१४८०	८१७११३	हर्मतः प्रागायः	अग्निः, हवोवि वा	"
१४८१	८१७११४	हर्मतः प्रागायः	"	"
१४८२	८१७११५	हर्मतः प्रागायः	"	"
१४८३	१०११२०१	बृहद्विष आपर्वणः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१४८४	१०११२०१	बृहद्विष आपर्वणः	"	"
१४८५	१०११२०३	बृहद्विष आपर्वणः	"	"
१४८६	१११२११	गुत्समवः द्यौवकः	"	अग्निः
१४८७	१११२१३	गुत्समवः द्यौवकः	"	वसिष्ठायत्री
१४८८	१११२१९	गुत्समवः द्यौवकः	"	"



## अथ कर्तुर्दशोऽध्यायः ।



अथ सप्तमपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ७-१ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १, ९ त्रियमेध आगिरसः; २ नृपेध-युधमेधावागिरसी; ३, ७ अयदणस्त्रैवृणा, असवस्युः वीरुहातः; ४ शुनःशेष आशीर्वातः; ५ यस्तः काण्वः; ६ अमिस्तापस्तः; ८ विप्रवमवा येयवः; १० वसिष्ठो मंत्रावरणिः; ११ तीभरिः काण्वः; १२ वातं येसावताः; १३ बभ्रुपय गात्रेयः; १४ गोतमो यतृवणः; १५ केतुराग्नेयः; १६ विक्रय आगिरसः ॥  
१-२, ५, ८-९ इन्द्रः; ३, ७ यममानः सोमः; ४, १०-११, १३-१६ अग्निः; ६ विश्वे देवाः, १९ अग्निः यममानः ॥ १, ४-५, १९-१९ वायवी; २, १० प्रवायः= ( त्रियवा बृहती, तमा सतीबृहती ); ३, ७ अन्वा बृहती; ६ अनुष्टुप्, ८-९ उज्जिह्वः; ११ बृहती ॥

१४८९ अग्निं प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्चं यथा विदे । सन्तु सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६९।४ )

१४९० आ हरयः समृजिरेऽरुणीरणिं वहिषि । यत्राग्निं सैनवामहे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६९।५ )

१४९१ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुहे वणिणं मधु । यस्वीमृषहरे विदत् ॥ ३ ॥ १ ( हा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।६९।६ )

१४९२ आ नो विशासु हव्यमिन्द्रं समस्तु भूषत ।  
उप प्रस्थाणि सयनानि वृषदन्परमण्याः ऋचीपम ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९०।१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १४८९ ] हे स्तुति करनेवालो ! ( सत्यस्य सन्तु ) सत्य यज्ञके पातक ( सत्पतिं गोपतिं ) सशत्रुनेके रक्षक और गार्थके पातक इस ( इन्द्रं ) इन्द्रके ( विदे यथा विद ) जितप्रकार सुख जानते हो, उत्तमप्रकार स्तुतिते ( अग्निं प्र गोपतिं ) उत्तम स्तुति करो ॥ १ ॥

[ १४९० ] ( हरयः ) इन्द्रके गोत्रे ( अरुणीः ) यमकनेवाले ( अग्निं वहिषि ) आसन पर उठे ( आ समृजिरे ) साथें । ( यत्र अग्निं सैनवामहे ) जित स्थानपर बैठे हुए इन्द्रको हव्य स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९१ ] ( यत् ) जब इन्द्र ( उपहरे ) पात हो ( मधु र्वा विदत् ) मोक्ष रख पीता है तब ( गावः ) गायें ( वणिणं इन्द्राय ) यज्यवारी इन्द्रके लिए ( दुदुहे आशिरं दुदुहे ) मोक्ष रूप देती हैं ॥ ३ ॥

[ १४९२ ] हे ऋचीको ! ( विशासु समस्तु ) सब यज्ञीनें ( हव्यं इन्द्रं ) सहस्रयज्ञके लिए भुलाये जाने योग्य इन्द्रको मजबूत करने गायें गए ( नः प्रस्थाणि सयनानि उप याभूषत ) हमारे रतोज तथा यज्ञ उत्तरीय सोमा बजाते हैं । ( वृषदन् परमण्याः ऋचीपम ) हे वृषको भारनेवाले, उत्तम ओरीते मुनय धनुषवाले तथा वरातनीय इन्द्र ! हमें इजिह्व यज्ञ दे ॥ १ ॥

१४९३ त्वं दाता प्रथमो गधसामस्यसि सस्य ईशानकृत् ।

तुविद्युन्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य श्वसो महः ॥ २ ॥ २ (पा) ॥

[ पा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ ८।९०।२ )

१४९४ प्रत्नं पीप्यं पून्यं यदुक्थ्यं महो गाहादिव आ निरधुक्षत ।

इन्द्रमग्निं जायमानं समस्वरन् ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१।०।८ )

१४९५ आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अम्यनूयत ।

दिवो न वारं संविता व्यूर्णुते ॥ २ ॥ ( ऋ ९।१।०।६ )

१४९६ अथ यदिमे पयमान रोदसी इमा च मिथा सुवनाग्निं मज्जना ।

यूथं न निष्ठा वृषमो वि राजसि ॥ ३ ॥ ३ (ख) ॥

[ पा० १६ । उ० २ । स्व० ६ ] ( ऋ ९।१।०।९ )

१४९७ इमम् पु त्वमस्माकं सनि गायमं नव्यां सव् । अग्रे देवेषु न बोधः ॥ १ ॥

( ऋ. १।९७।४ )

१४९८ विमक्तासि चित्रमानो सिन्धोरुर्मा उपाक आ । सद्यो दाक्षुषे क्षरसि ॥ २ ॥ ( ऋ १।२७।६ )

[ १४९३ ] हे इन्द्र ! ( प्रथमः त्वं दातासं दाता असि ) तवमे प्रथम तु यवता बतता है, ( ईशानकृत् सत्यः असि ) देवदेवदत्त करनेवाला तू सत्य है, ( तुविद्युन्नस्य श्वसः पुत्रस्य महः ) बहुत तेजस्वी बनने के पुत्रसे समाप्त तुझे ( युज्या वृणीमहे ) यवकी प्रार्थना हम करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९४ ] ( यत् प्रत्नं ) जो पहलेसे मिलता आ रहा है, वह ( पीप्यं उक्थ्यं ) समूत प्रशस्तनीय है, वह ( पून्यं ) पहलेसे मिलनेवाला धन्य ( महः गाहादिव दिवः ) बहाम् और अपाव धूलोके ( आ निरधुक्षत ) विकला गया है । उसके बाद ( इन्द्रं अग्निं ) इन्द्रके आगे ( जायमान ) उत्पन्न हुए हुए सोमकी ( समस्वरन् ) यतकता स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १४९५ ] ( आत् ) काममें ( पश्यमानासः दिव्या वसुरुचः ) इसकी देखनेवाले दिव्य वसुरुच, जबतक ( दिवः संविता ) धूलोके सूर्य ( चार न व्यूर्णुते ) समको बहनेवाले अन्धकारको दूर नहीं करता, तबतक ( आप्यं ह्यं अम्यनूयत ) आईके समान इस सोमकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९६ ] हे ( पयमान ) सोम ! ( अथ ) नममें ( यत् इमे रोदसी ) अब इस धु और पृथिवी ( इमा दिव्या सुवना च ) और इन सभी प्राणिमैंमें ( मज्जना यूथे निष्ठा वृषमं न ) अपने बलसे पार्थकी भृष्टके बीचमें रहनेवाले बँसके समान ( विराजसि ) तू विराजमान होता है ॥ ३ ॥

[ १४९७ ] हे ( अग्रे ) आगे ! ( त्वं अस्माकं ) तू हमारे द्वारा ( इम ऊं ह्य ) जोसे बाणेंवाले इन ( सनि ) हवन युक्त ( नरपासं गायत्रं ) भवौन स्तुतिके भर्त्सकी ( देवेषु प्रबोधः ) देवोंके पास जाकर उन्हें बता ॥ १ ॥

[ १४९८ ] हे ( चित्रमानो ) चित्ररूप तेजस्वी यन्मे ! तू ( विमक्ता असि ) यन देनेवाला है । ( सिन्धोः उपाके उर्मा आ ) शितप्रकार नदीके पास यानीनी सहर्दे जाती है उसीप्रकार ( दाक्षुषे सद्य क्षरसि ) बतानी उसी समय कर्षीका पत्र तू बैठा है ॥ ३ ॥

१४९९ आ नो मज परमेष्वा बाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥ ४ ( टा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।२।७६ )

१५०० अहमिद्धि पितृप्परि मेघामृतस्य जग्रह । अहं स्वर्ग इवाजनि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१० )

१५०१ अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्वयत् । येनेन्द्रः शुम्भमिहधे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।११ )

१५०२ ये स्वामिन्द्र न सुष्टुवृक्षयो ये न सुष्टुतुः । ममेदर्वस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ ५ ( धु ) ॥  
[ धा० १४ । उ० २ । स्व० ५ ] ( ऋ. ८।६।१२ )

॥ इति प्रथम खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१५०३ अमे विश्वेमिरमिभिर्जापि म्रक्ष सहस्कृत । ये देवता य आपुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥ १ ॥

१५०४ प्र स विश्वेमिरमिराभिः स यस्य बाजिनः ।

तनये तौके अस्मदा सम्पद्वायः परीवृतः ॥ २ ॥

१५०५ त्वं नो अमे अग्निभिर्म्रक्ष यत्नं च वर्षय ।

त्वं नो देवतातये शायो दानाय चोदय ॥ ३ ॥ ६ ( डि ) ॥

[ धा० १८ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१४।१६ )

[ १४९९ ] हे अग्ने ! ( नः ) हवें ( परमेषु धाजेषु ) श्रेष्ठ भोगोंमें ( या मज ) बहुत, तथा ( मध्यमेषु वा ) मध्यम भोगोंमें हवें बहुत मीर ( अन्तमस्य घटः शिक्षा ) कनिष्ठ यन भी हवें वे ॥ ३ ॥

[ १५०० ] ( पितुः धृतस्य मेघां ) पालक तथा अमर इन्द्रकी अनुकूल बुद्धिकी ( अहं इत् परि जग्रह ) मैंने प्राप्त किया है, इस कारण ( अहं स्वर्गः इव अजनि ) मैं स्वर्गके समान हो गया हूँ ॥ १ ॥

[ १५०१ ] ( कण्वयत् अहं ) वर्षवै तमान ( प्रत्नेन जन्मना ) प्राचीन बालीसे ( गिरः शुम्भामि ) स्तोत्र कहकर मैं इन्द्रको सुगोभित करता हूँ, ( येन इन्द्रः शुम्भं दधे इत् ) जिसकी सहायतासे इन्द्र बलकी धारण करता है ॥ २ ॥

[ १५०२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ये त्वां न सुष्टुतुः ) जिनोंने तेरी स्तुति नहीं की, तथा ( ये नृपयः च सुष्टुतुः ) जिन ऋषियोंने स्तुति की, उनमेंसे ( मम इत् ) मेरे स्तोत्रमें ही ( सुष्टुतः धर्मस्य ) उत्तमतासे प्रशंसित होनेके कारण वर्णित हों ॥ ३ ॥

॥ यद्यो पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५०३ ] हे ( सहस्कृत अग्ने ) बल प्रकट करनेवाले अग्ने ! ( विश्वेमि अग्निभिः ) तब अग्नियोंके साथ - साथ तू भी ( म्रक्ष जोषि ) हमारे स्तोत्र सुन । ( ये देवता ) जो अग्निवां देवोंमें हैं, और ( ये आपुषु ) जो मनव्योंमें हैं, ( तेभिः नः गिरः म्रक्ष ) उनके द्वारा हमारी स्तुतियोंमें बहुतवरी वधा ॥ १ ॥

[ १५०४ ] ( यस्य बाजिनः ) जिस बलमान अग्निमें हवन करनेवाले बहुत हैं, ( सः अग्निः ) वह अग्नि ( विश्वेमि अग्निभिः ) तब तुमारी अग्नियोंके साथ ( धाजिः परीवृत ) हविष्याभसे घिरा हुआ ( सम्पद् अस्मात् प्र सा ) जगत् रीतिसे हमारे पास आवे, तथा ( तनये तौके ) गद्द हमारे पुत्र, पीछेकी तरफ भी जावे ॥ २ ॥

[ १५०५ ] हे ( अमे ) अग्ने ! ( त्वं अग्निभिः ) तू तब अग्नियोंके साथ ( नः प्राप्त यत्नं च वर्षय ) हमारे स्तोत्र और यह वधा । ( त्वं नः ) तू हवें ( त्वयः दानाय ) यन देनेके लिए ( देवतातये ) देवोंको ( चोदय ) प्रेरित कर ॥ ३ ॥

१५०६ स्वे सोम प्रथमा वृक्कवाहिपो महे वाजाय यवसे धियं दधुः ।

स स्वे नो वीर वीर्याय चोदय ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१।०७ )

१५०७ अयमा हि श्रवसा तदादियोस्ते न के चिजनपानमशितम् ।

शर्याभिर्ने भरमापो गमस्त्योः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।०९ )

१५०८ अजीजनो अमृत मर्त्याप कष्टस्य धर्मममृतस्य चारुणः ।

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ३ ॥ ७ ( ले ) ॥

[ पा० १०।३० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।१।०४ )

१५०९ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिवाति सोम्यं मधु । प्र राधांसि चोदयते माहित्वना ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१४।१३ )

१५१० उपो हरीणां पति राधः पूञ्जन्तममवम् । नूनं शुभि स्तुवतो अवश्यस्य ॥ २ ॥

( ऋ. ८।१४।१४ )

१५११ न ह्यश्वेन पुरा च न जज्ञे वीरसरस्वत् । न की राधा नैवया न भन्दना ॥ ३ ॥ ८ ( चा ) ॥

[ पा० १०।३० १।२३० १ ] ( ऋ. ८।१४।१५ )

[ १५०६ ] ( सोम ) हे सोम ! ( प्रथमाः वृक्क-वाहिपः ) सकृते प्रथममासन फलानेवाले यजमान ( महे वाजाय यवसे ) शिरोप हल और यज्ञके लिए ( स्वे धियं दधुः ) तेरे शिवयर्षे उत्तम विचार रखते हैं । ( सार्व ) वह दू. ( वीर ) हे वीर सोम ! ( नः वीर्याय चोदय ) हमें वीर होनेके लिए प्रेरित कर ॥ १ ॥

[ १५०७ ] हे सोम ! ( श्रवसा ) अमृत वृक्ष होकर ( अमि-अमि तदाविध ) दू छलनीके मोटे गिरता है, ( न ) जिसप्रकार ( जलपान ) अनुष्मिके पीनेके लिए ( गमस्त्योः शर्याभिः ) हाथोंकी अंगुलियोंने ( के चित् अ-शितं उरस्ते ) किसी न चूनेवाले हीनको ( भरमाणः ) बानीते भरते हैं, उसीप्रकार दू कमजबे भरता है ॥ २ ॥

[ १५०८ ] हे ( अमृत ) अमृतस्वी सोम ! तुने ( अमृतस्य चारुणः अमृतस्य ) शय और मयलकारकङ्गाकी चारुण करनेवाले अमृतशर्भ ( के मर्त्याप अजीजनः ) हाथोंकी अनुष्मिके लिए उत्तम किया, ( सनिष्यदत् ) रेवनों तथा की । ( वाजं मच्छा ) दू मुठके लिए सीमे ही ( सदा असरः ) हमेशा जाता है ॥ ३ ॥

[ १५०९ ] ( इन्दुं ) सीमरस ( इन्द्राय वा सिञ्चत ) दण्डकी रो । वह दण्ड ( सोम्यं मधु पिवाति ) सोमका मोठा रस पीता है और ( महित्वना राधांसि प्रचोदयते ) अपने महत्वके फलकी प्रेरित करता है ॥ १ ॥

[ १५१० ] ( हरीणां पति ) मोहके स्वामी और ( राधः पूञ्जन्तं ) मकनोंकी पन देनेवाले दण्डकी ( उप ममवम् ) नं स्तुति करता हैं । ( अवश्यस्य स्तुवतोः नूनं शुभि ) अवश्य अथि स्तुति करता है, उस स्तुतिको हे दण्ड ! दू अवश्य पुन ॥ २ ॥

[ १५११ ] हे दण्ड ! ( रजस् पुरा न जज्ञे ) तुझसे पहले तेरे समान कोई भी नहीं हुआ, हे ( अंश ) सामान्यवान् दण्ड ! ( वीरसरः न हि ) तुझसे बड़कर वीर की कोई दूसरा नहीं हुआ, ( राधा नकि ) पन देनेवाला भी कोई दूसरा नहीं हुआ ( ययया न ) मुझसे दण्डकी कुशलनेवाला भी दूसरा कोई नहीं हुआ तथा ( भन्दना न ) स्तुतिके शायर भी दूसरा कोई नहीं हुआ ॥ ३ ॥



१५१२ नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।

पतिं यो अघ्न्यानां धेनूनामिषुष्यमि

॥ १ ॥ ९ ( व ) ॥

[ या० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ ८।६१।१ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१५१३ देवो यो द्रविणोदाः पूर्णा विनष्टासिचम् ।

उद्वा सिञ्चिष्यस्य वा पुणश्चवादिद्रो देव ओदते

॥ १ ॥ ( ऋ ७।६।११ )

१५१४ वधोत्तारमध्यरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।

दधाति रत्नं विधत्ते सुवीर्यमापिर्जनाय दाशुपे

॥ २ ॥ १० ( लि ) ॥

[ या० १४ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ ७।६।१२ )

१५१५ अदधिं गातुविषमो यस्मिन्प्रतान्यादधुः ।

उपो पु जातमार्यस्य वर्षेनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः

॥ १ ॥ ( ऋ ८।१०।११ )

१५१६ यस्माद्रजन्त कृष्टयध्वरूपानि कृण्वतः ।

सहस्रसां मेघसात्ताविन रत्नानि धीमिर्नमस्यत

॥ २ ॥ ( ऋ ८।१०।१२ )

[ १५१२ ] हे वनमानो ! ( वा ) तुम्हारे लिए ( ओदतीनां नदं ) उबानीको उत्पन्न करनेवाले आदित्यरूपी इन्द्रको हम बुलाते हैं । ( योयुवतीनां नदं ) यज्ञ किरणोंको उत्पन्न करनेवाले इन्द्रको हम तुम्हारे हितके लिए बुलाते हैं, ( अघ्न्यानां पतिं यः ) गायक वालन करनेवाले इन्द्रको हम तुम्हारे लिए बुलाते हैं, ( धेनूनां अपुष्यमि ) हे वनमान ! तू तायक ब्रूषका अन्नके रूपमें उपयोग करनेको इच्छा करता है ॥ १ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५१३ ] ( द्रविणोदाः देवः ) वन देनेवाला अग्निदेव ( वः पूर्णा आसिचं पिबिषु ) तुम्हारी पीते भरी हुई चम्मचोंको इच्छा करे । और तुम ( उदं सिञ्चिष्यं वा ) तोमके बर्तन भरो, ( पुणश्च वा ) बर्तनोंको हमने पूरी तरह भरो, ( गान् वधुं देवः यः ओदते ) वानमें अग्नि देव तुम्हारा पोषण करेंगे ॥ २ ॥

[ १५१४ ] ( देवाः ) देवोंने ( प्रचेतसं ) घेष्ट बुद्धिमान् ( अध्वरस्य वह्निं होतारं तं ) अध्वरपूजक महकें वहाँ, हमको बोनेवाले और हमन करनेवाले उस अग्निको ( अकृण्वत ) अपना ग्राह्यक बनाया है, वह ( अग्निः ) अग्नि ( विधत्ते दाशुपे जनाय ) मत्त करनेवाले तथा दान देनेवाले मनुष्योंको ( सु-वीर्यं रत्नं दधाति ) उत्तम धोरता बढानेवाले वन देता है ॥ २ ॥

[ १५१५ ] ( यस्मिन् प्रतानि आदधुः ) वहाँ अग्नि अग्निमें बसवान मत्तकर्म करते हैं, वहाँ ( गातुविषमः अदधिं ) आगबज्रोंको तब घेष्ट वह अग्नि उत्पन्न होता है । ( सुजातं मार्यस्य वर्षेनं ) उत्तम रीतिसे प्रसीत हुए हुए और आशीर्वा बढानेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( नः गिरः उपो नक्षन्तु ) हमारी स्तुतिपां भस्म हों ॥ १ ॥

[ १५१६ ] ( यस्मात् कृष्टयध्वानि कृण्वतः ) जिस तायक बर्तव्य करनेवाले मनुष्योंको ( कृष्टयः रेजान्ते ) तानुके मनुष्य रूपानेका प्रयान करते हैं, जग तत्रय है मनुष्यों ! ( सहस्रस्यं अर्द्धं ) हजारों प्रकारके वन देनेवाले अग्निको ( मेघसाती ) महर्षे ( पीभिः रत्नानां ममस्यत ) बुद्धिपूर्वक स्वयं प्रत्याप करते ॥ २ ॥

१५१७ प्र देवोदासो अग्निदेव इन्द्रो न मज्जन्वा ।

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ३ ॥ ११ ( हा ) ॥

[ पा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ ८।१०३१२ )

१५१८ अग्र आयुषि पवस आ सुनोर्जमिषं च नः । आरे वापस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥

( ऋ ९।६६।१९ )

१५१९ अग्निश्श्रुषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागपम् ॥ २ ॥ ( ऋ ९।६६।१० )

१५२० अग्र पवस्व स्वषा असे वचः सुवीर्यम् । दधद्रयि मयि पोषम् ॥ ३ ॥ १२ ( फ ) ॥

[ पा० १० । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ ९।६६।२१ )

१५२१ अमे पावक शोचिषा मन्द्रया देव जिह्वा । आ देवान्वसि यक्षि च ॥ १ ॥ ( ऋ ९।२६।१ )

१५२२ तं स्वा घृतस्नवीमहे विश्रमानो स्वर्द्यम् । देवाय आ वीतये वह ॥ २ ॥ ( ऋ ९।२६।२ )

१५२३ पीतिहोत्रं त्वा कमे घुमन्तं समिधीमहि । अमे घृहन्तमधरे ॥ ३ ॥ १३ ( टौ ) ॥

[ पा० १८ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ ९।२६।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ १५१७ ] ( देवोदासः अग्निः देवः ) शुलोक्ते पुरोवाता अग्निदेव ( इन्द्रः नः ) इन्द्रो तस्मान् ( मज्जन्वा ) बलपूर्वक ( मातरं पृथिवीं अनु ) वानुभूमि पर ( प्र वि वावृते ) अनेक प्रकारके कार्य करता है, और ( नाकस्य शर्मणि ) अंतरिक्षके आनयते रहता है ॥ ३ ॥

[ १५१८ ] हे ( अग्ने ) लम्बे ! ( नः आयुषि पवसे ) हमें लम्बी आयु प्रदान कर । ( नः ऊर्जे इपं च आ सुय ) हमें बल और अन्न दे । ( दुच्छुनाम् ) दुर्दौर्भाग्य ( आरे वापस्व ) दूर करके उन्हें बौद्धि कर ॥ १ ॥

[ १५१९ ] ( पाञ्चजन्यः अग्निः ) पवजनोंका हित करनेवाला और सब देवसेवाला ( पवमानः अग्निः ) शुद्ध अग्नि ( पुरोहितः ) आगे स्थापित किया गया है । ( तं महागपये ईमहे ) उस महान् पञ्चशालामें रहनेवाले अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५२० ] हे अग्ने ! तू ( स्वषा ) उत्तम कर्म करनेवाला है, ( असे यवः सुवीर्यं पवस्य ) हमें तेज तथा पराक्रम करनेकी शक्ति दे और ( मयि रयि पोषं दधस्व ) मुझे अन्न और पोषण दे ॥ ३ ॥

[ १५२१ ] ( पावक अग्ने देव ) हे पवित्र करनेवाले अग्निदेव । ( शोचिषा मन्द्रया जिह्वा ) अपने तेजसे और आनन्द देनेवाली ज्वालासे ( देवाय आ वक्षि यक्षि च ) देवोंकी मुला और उनके लिए बत कर ॥ १ ॥

[ १५२२ ] हे ( घृत-स्नो विश्र-मानो ) पीते उत्पन्न होनेवाले तथा विलक्षण तेजस्वी अग्ने ! ( स्वर्द्यं तं त्वा ईमहे ) तबकी देवसेवासे तेरी हम प्रार्थना करते हैं । वह प्रार्थना यह है कि ( वीतये देवान् आ वह ) हवि अन्न करनेके लिए देवोंकी वहां मुलाकर ला ॥ २ ॥

[ १५२३ ] हे ( कमे अग्ने ) आका अग्ने ! ( पीति-होत्रं घुमन्तं ) त्वन् पर प्रेम करनेवाले, तेजस्वी तथा ( घृहन्तं त्वा ) महान् मुझे ( अघ्नये समिधीमहि ) बतमें हम प्रबलित करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यदां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

१५२४ अवा नो अग्र ऊतिभिर्गोपयस्व प्रमर्मणि । विश्वासु धीषु वन्य ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७९।७ )

१५२५ आ नो अग्रे रयि मर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पुत्स दुष्टरम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७९।८ )

१५२६ आ नो अग्रे सुचेतुना रयि विश्वायुषोषसम् । मार्षीकं वेदि जीवसे ॥ ३ ॥ १४ ( वी ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. १।७९।९ )

१५२७ अग्निं हिन्वन्तु ना धियः सतिमाशुभिर्वाजिषु । तेन जेष्म धनं धनम् ॥ १ ॥

( ऋ. १०।१५६।१ )

१५२८ यया गा आकरामहै सेनयामै वयोत्या । तां नो हिन्व मघस्ये ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१५६।२ )

१५२९ अग्ने स्फुरं रयि मर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्गि खं वर्तया पविम् ॥ ३ ॥

( ऋ. १०।१५६।३ )

१५३० अग्ने नक्षत्रमजरमा धृषं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।१५६।४ )

१५३१ अग्ने कतुर्विधामसि प्रेष्टः अष्ट उपत्यसत् । योधा स्तत्रि ययौ दधत् ॥ ५ ॥ १५ ( पा ) ॥

[ धा० १५ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. १०।१५६।५ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १५२४ ] हे ( विश्वासु धीषु वन्य अग्ने ) तव यज्ञोत्तमं वननीय अग्ने ! ( गोपयस्व प्रमर्मणि ) गोपयणी छत्र-  
वाले सामगामोत्तमं द्युक् होनेपर ( ऊतिभिः नः अग्र ) संरक्षणके साधयसि हवायी रसा कर ॥ १ ॥

[ १५२५ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( सत्रा-साहं ) तव दानुर्गोको हुरानेवले ( वरेण्यं ) अष्ट ( विश्वासु पुष्ट-  
दुष्टरं ) तव युद्धोत्तमं दुष्टर ( रयि नः आमर ) वन हवै ॥ २ ॥

[ १५२६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः जीवसे ) हवाये दीर्घजीवनके दिव् ( सु-चेतुना ) उत्तम मानसे द्युक्  
( विश्व-मायु-पोषसं ) तव आयु तव पोषण करनेवले ( मार्षीकं रयि ) गुणसायक वन ( नः वेदि ) हवै ॥ ३ ॥

[ १५२७ ] ( वाजिषु माशुं सति द्युक् ) वितप्रवर युद्धके वीर्य बलनेवाले योद्धाके प्रेरित करते हैं, उत्तीव्रवार  
( नः धियः ) हमारी बुद्धि ( अङ्गि हिन्वन्तु ) अङ्गिको प्रेरित करें । ( तेन धनं धनं जेष्म ) उत्तम ह्रस्व प्रवेक युद्ध  
जीव ॥ १ ॥

[ १५२८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( यया सेनया ) जिस सेनातो तया ( तय ऊत्या ) जिस तेरे संरक्षणके ( गाः  
आकरामहै ) गावें हवै मिलें ( तां ) उता संरक्षणको सन्निही ( नः मघस्ये दिग्ज ) हमारे यगणी प्रातिके दिग्  
प्रेरित कर ॥ २ ॥

[ १५२९ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( स्फुरं पृथुं ) बहुत महान् तथा ( गोमन्तं अश्विनं रयि ) गोप और घोड़े  
गुण वन ( ना मर ) हवै भरपूर ॥ ( रयं अङ्गिध ) आगतामं अग्ने तेन वंता और ( पविं घातय ) दानुके दातृ हवै  
हूर कर ॥ ३ ॥

[ १५३० ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( जनेभ्यः ज्योतिः दधत् ) लोगोके दिव् प्रकार करते हूँ ( अजरं नक्षत्रं  
रयि दिवि ) अजरान्तर और निरन्तर गतिमान् धृषंरो धनोर्ध्व ( आरोहयाः ) नू चडा ॥ ४ ॥

[ १५३१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( विद्यां केतुः प्रेष्टः योधाः ) नू प्रमाणीनी ज्ञान देनेवाला, त्रिव और अष्ट  
( अङ्गि ) हैं, ( उप-त्य सत् ) यज्ञपालावें रहनेवाला नू ( रनोभे ययाः दधन् ) स्तुति करनेवालेको अग्र देने हूँ  
( पविं ) जमनी स्तुति जग ॥ ५ ॥

१५३२ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अपम् । अथा२ रेता३त्सि जिन्वति ॥ १ ॥

( ऋ. ८।४४।१६ )

१५३३ ईशिपे वार्यस्य हि दाप्रस्पानने स्वः पतिः । स्तोता स्या३ं तव शर्मणि ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४४।१८ )

१५३४ उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा आजन्त ईरते । तव ज्योती३श्चर्ययः ॥ ३ ॥ १६ ( ली ) ॥  
[ पा० ४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।४४।१७ )

॥ इति चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

॥ इति सामवेदप्रपाठके प्रथमोऽर्थः ॥ ७-१ ॥

॥ इति चतुर्दशीऽध्यायः ॥ १४ ॥

[ १५३२ ] ( मूर्धा ) सबसँ धेव ( दिवः ककुत् ) सुलोकमें अग्नि स्थान पर रहनेवाला ( पृथिव्याः पतिः अयं मतिः ) पृथ्वीका पालक यह अग्नि ( अथा२ रेता३त्सि जिन्वति ) जलेंका सार तब अपनेमें रक्ता है ॥ १ ॥

[ १५३३ ] हे ( अग्ने ) जाने ! ( स्वः पतिः ) स्वयंका स्वामी तू ( वार्यस्य दाप्रस्व ईशिपे ) स्वीकार करने योग्य और दाज देने योग्य बनका स्वामी है । ( तव शर्मणि ) तेरे द्वारा दिए गए सुखमें पहुँचकर ( स्तोता स्याम् ) मैं तेरी स्तुति करनेवाला होऊँ ॥ २ ॥

[ १५३४ ] हे जाने ! मेरी ( शुचयः शुक्राः ) गूद, स्वच्छ और ( आजन्तः अर्चयः ) देवीयमान ज्वालाएँ ( तव ज्योती३नि ) तेरे तेजोंकी ( उदिरते ) घेरना होती है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥



## चतुर्दश अध्याय

इस चौदहवें अध्यायमें दण्ड, अग्नि और लोग देवताओंका वर्णन है । उनमें दण्ड देवताका वर्णन इस प्रकार है —

इन्द्र

१ सत्यस्य सनुं सत्यंति गोपति इन्द्रः यथा विदे, गिरा अग्नि प्र अर्थ [ १४८९ ]— सत्यके प्रसारक, सत्यके पालक और नामोंके पालक इन्द्रकी अपने ज्ञानके अनुसार स्तुति करो ।

२ विश्वास्तु समस्तु द्वयं नः प्रह्लाषि सयनाग्नि उप शामूयत [ १४९२ ]— सब धूर्तोंमें सहजताके लिए सुनाने योग्य इन्द्रकी हमारे स्तोत्र धोमा बढाते हैं । इन्द्र ऐसा

शूरवीर है कि उसे सब प्रकारके दुर्गोंमें अपने वीरताके लिए लोग बुलते हैं ।

३ वृषहन् परमज्याः आचीपम [ १४९२ ]— हे शत्रुकी कारनेवाले और वनुषकी उत्तम बोरीवाले इन्द्र ! हमें इच्छित बन दे ।

४ त्वत्पुत्रा न जग्नेः घीरतरा न किः राया न किः पशव्या न । सन्ध्या न [ १५११ ]— तुमारे पहले तेरे समान कोई नहीं हुआ । तेरी अपेक्षा अधिक भेद और कोई भी उत्पन्न नहीं हुआ । धनते भी तुमारे अधिक सामर्थ्यवान् कोई नहीं है । युद्धमें शत्रुओंकी कुचलनेवाला भी तेरे समान दूसरा कोई नहीं है । इसलिये तेरे समान प्रबलवीर भी कोई नहीं है ।

५ अघ्न्यानां पतिं नः [ १५१२ ]- अघ्न्य गावेंके पालन करनेवालेको तुम्हारे लिए मैं ब्रह्मा हूँ ।

६ त्वं प्रथमः राधसां दाता अस्मि, ईशानकृत् सख्यः अस्मि, तुवियुम्नस्य शयमः पुत्रस्य मूहः पुत्र्या नृणी-महे [ १५१३ ]- तू तबोंते प्रथम धन देनेवाला है । तू हमें निश्चयसे ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला है । बहुत तेजस्वी बलके लिए प्रसिद्ध तुझसे हम धन पानेकी इच्छा करते हैं ।

७ पितुः सत्यस्य मेघां अहं परि जग्रह, अहं खर्यः ह्य भजनि [ १५०० ]- सत्यके पालक, सत्यके पिता और पूज्य इन्द्रकी बुद्धिको मेने अपने अनुकूल बना लिया है । इस कारण मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ।

८ हे इन्द्र ! ये तर्वा न तुष्टुषु, ये च तुष्टुषु, मम इत् सुष्टुतः वर्धस्य [ १५०२ ]- हे इन्द्र जो तेरी स्तुति नहीं करते और जो तेरी स्तुति करते हैं, उनमें मेरी ही स्तुतिसे तू अच्छी तरह बढ़ ।

९ हवीणां पति, राधः पूज्यते, उप अग्रधं, अद्वयस्य स्तुवतः नूनं भुधि [ १५१० ]- धीरोंके स्वामी और धन देनेवाले इन्द्रकी ही स्तुति करता हूँ । अद्वयत्वकी इस स्तुतिको तू धन ।

१० ह्यदः अरवीः अग्निं परिधि आ सन्धिरे [ १५१० ]- इन्द्रके घोड़े घनकनेवाले आसन पर उठे लावें । इन्द्र पशुशालामें आकर बैठे ।

११ गायः पश्चिमे इन्द्राय मधु आशिरे दुदुहे, उपद्वरे स्त्री मधु विद्वत् [ १५११ ]- गावें पशुधारी इन्द्रके लिए बीठा दूध देती हैं । वह इन्द्र पात ही बँटकर मधुर सोमरस पीता है । सोमरसमें गायका दूध बिलाकर इन्द्र पीता है ।

१२ इन्द्राय इन्द्रो आसिचत । सोम्यं मधु पिवाति । महिःपना राधांसि प्रचोदयते [ १५१२ ]- इन्द्रके सोमरस में, इन्द्र पीला सोमरस पीला है, और अपने अहंस्ते वह धन देता है ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें आया है । इसमें इन्द्रकी शूरा, धीरा, उपासा, धनके दान करनेकी प्रवृत्ति और सोमरस पीनेकी प्रवृत्ति दिखाई गई है । इन्द्रके घोड़ोंका भी यहाँ वर्णन है ।

### अग्नि

१ ११ अस्ताक सध्यांसं गायत्रं देवेषु प्रयोचः [ १५१७ ]- हे अग्ने ! तू हमारे अधूर्ण गायत्री मंत्रके स्तोत्र देवोंमें पात जाकर रह ।

२ हे चित्रमानो ! विमक्ता अस्मि, दाशुपे सद्यः क्षरसि [ १५१८ ]- हे विलक्षण प्रकाशमान अग्ने ! तू धन देनेवाला है । दाताको उसने कामका फल तत्काल दू देता है ।

३ नः परमेसु वज्रेषु, मधमेसु आ भज । अन्तमस्य वखः सिद्ध [ १५१९ ]- हमें श्रेष्ठ भोगोंमें और ममम भोगोंमें स्थापित कर । तथा निकृष्ट धन भी दे ।

४ मङ्गस्सुत अग्ने ! ब्रह्म जुषस्य, ये देवना, ये आयुषु, तेभिः नः गिरः मह्य [ १५०१ ]- हे बल प्रकट करनेवाले अग्ने ! ये स्तोत्र मुन, जो देवोंमें और जो मनुष्योंमें है वह है, उनकी सहायतासे हमारी स्तुतिके महत्वकी, पढ़ा ।

५ अग्ने ! त्वं अग्निभिः नः ब्रह्म यक्षं च वर्धय । श्वं नः राधः दानाय देवतातये चोदय [ १५०५ ] हे अग्ने ! तू अघ्न्य अग्निवीरोंकी सहायतासे हमारा धान और पशुधर्म बढ़ा । तू हमें धन देनेके लिए देवोंको प्रेरित कर । यज्ञमें अनेक अनियां रहती हैं, ये पशुका अनुष्ठान बघाती हैं ।

६ देवाः प्रचेतसं तं अघ्नरस्य वर्णिह होतासं अङ्ग-पथत । विघते दाशुपे अनाय सुवीर्यं रत्नं वधाति [ १५१४ ]- देवोंमें मायी, हितारहित पक्षके कर्त्ता और हिको धनुषानेवाले अग्निके उत्पन्न किया । पक्ष करनेवाले दाता मनुष्यको उसमें बीरता बढ़ानेवाले धन बहु देता है ।

७ यस्मिन् प्रवतसि आदधुः गातुपित्तमः अद्विं, सु-जातं आर्यस्य वर्धनं अग्नि नः गिरः उपो नक्षन्तु [ १५१५ ]- जिस अग्निके पजमान रस करते हैं, वहाँ सम्पूर्ण दिखानेवाला अग्नि प्रकट होता है । उत्तम रीतिसे प्रकट हुए हुए और आर्योंका संबंधन करनेवाले अग्निको हमारी स्तुति प्राय हो ।

८ यस्मात् चर्कृत्यानि कृष्यनः कृष्यः रेजगते सहस्रसं मेघपातो पीभिः तस्मा नमस्यत [ १५१६ ]- जिस समय कर्तव्य करनेवाले मनुष्योंको आशुके मनुष्य कषानेका प्रयत्न करते हैं, उस समय हे मनुष्यो ! हमारी प्रशंशके धन देनेवाले अग्निको यज्ञमें बुद्धिपूर्वक स्वयं प्रमाण करो । वह तुम्हारा धन दूर करेगा ।

९ वैचोदासो अग्निः, इन्द्रः न, मग्मना मातरे पृथिवीं अनु ॥ विद्यापृते [ १५१७ ]- धनोक्तमें रहनेवाला अग्नि इन्द्रके सहाय बलपूर्वक आनुभूति पर अपने-प्रकारकी प्रवृत्ति करता है । अग्निकी सहायतासे अनेक पक्ष किए जाते हैं ।

१० हे अग्ने ! नः माधुधि, नः ऊर्जं इयं च पयसे । दुचतुर्नां अग्निं यापस्व [ १५१८ ]- हे अग्ने ! हमें आयुष्य बल और अज दे । बुद्धीको दूर कर ।

११ पांचजन्यः क्षपिः पक्मानः अग्निः पुरोहितः । तं महापायं ईमहे [ १५१९ ]- पंचजनोंका हित करनेवाला शानो मुद्ग अग्नि आगे स्थापित किया गया है । उस महान् यज्ञशालामें रहनेवाली अग्निकी हवा प्राणना करती है ।

१२ अग्ने ! स्वपा अस्मे यज्वः पवस्य, गवि रवि पोषे वषत् [ १५२० ]- हे अग्ने ! तू उसका पन करनेवाला है, हमें तेज दे, तथा घन और बोधन दे ।

१३ हे पायक अग्ने देव ! शोषिषा अन्त्रया जिन्वया देवान् आयसि पश्वि च [ १५२१ ]- हे पशु करनेवाले अग्निदेव ! अपने तेजसे और आन्त्र देनेवाली उवासासे देवोंको कुसा और उनके लिए यज्ञ कर ।

१४ हे छतकनो चित्रमानो ! कर्षदृशं त्या ईमहे । यीतये देवान् आ वह [ १५२२ ]- हे यौते उत्तम हुए हुए और बिलसण तेजस्वी अग्ने ! सर्वोंको देनेवाले तुमसे हम प्राणना करते हैं । वह प्राणना यह है कि हवि मत्स्य करनेमें लिए देवोंको यहाँ कुसाकर ला ।

१५ हे कथे अग्ने ! धीतिहोत्रं धूमन्तं धृष्टतं त्वा अघदे समिधीमहि [ १५२३ ]- हे तानी आने ! हव्यवर प्रेम करनेवाले तेजस्वी और महान् तुमसे प्रमानें हम अलते हैं ।

१६ हे अग्ने ! सप्रसार्द्ध घरेण्यं विश्वास्तु पुरतु दुष्टरं रवि नः आमर [ १५२४ ]- हे अग्ने ! सब अनुजोंको एक साथ हरानेवाले, अंध और सब दुर्जोंमें अज्ञकी कुत्तर ऐसे घन हमें भरपूर दे ।

१७ हे अग्ने ! नः जीयसे सुबेत्तुना विश्वमनुपायसं माधीर्न रवि नः पेशि [ १५२५ ]- हे अग्ने ! हमारे रीति-जीवनके लिए उत्तम तावते युक्त, सम्पूर्ण आयु तक मत्स्य बोधन करनेमें तत्पन और सुसहायक धन दे ।

१८ नः विश्वः अग्निं दिव्यन्तु, अग्निषु आनु सति हव, तेन धनं धनं जेष [ १५२७ ]- हमारी मुक्ति अग्निकी हमारे अनुकूल करे । जिताप्रकार युद्धमें धोरेकी शीघ्र जीयते है, जतीप्रकार शीघ्र जाकर हम प्रत्येक युद्धमें विजय प्राप्त करें ।

१९ हे अग्ने ! यया सेनया तव ऊत्या गमः आकपा-महे, तां नः मघस्ये हिन्व [ १५२८ ]- हे अग्ने ! जिस सेनासे तथा जिस तेरे सरसगते हमें गम्यं प्राप्त हो, उस संरक्षणवाशियको, हमारा महत्व अब तथा है हमारे अनुकूल हो, इसलिये प्रेरित कर ।

२० हे अग्ने ! रूर्ध्वं पूषं शोमन्तं आश्विनं रविं आ भर । उं नग्निं पतिं पतय [ १५२९ ]- हे अग्ने ! बहुत

बड़ी गायों और घोडोंसे युक्त पन हमें भरपूर दे । अश्वगामें अपने तेज फेंका और अनुजोंके धाम हमसे दूर कर ।

२१ हे अग्ने ! जनेभ्यः म्योतिः दधत्, भजर् नक्षत्रं सूर्यं दिवि आरोहय [ १५३० ]- हे अग्ने ! तू लोगोंके लिए प्रकाश देता है और तुने शीघ्र त होनेवाले प्रकाशमान सूर्यको आकाशमें धडपाया ।

२२ हे अग्ने ! विद्यां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः अति, उपत्य-खन स्तोत्रे ययः दधत्, योच [ १५३१ ]- हे अग्ने ! तू प्रजाओंको ज्ञान देनेवाला त्रिय और श्रेष्ठ है । पत शालामें रहनेवाला तू स्तुति करनेवालेको अन्न देता है और स्तुति जानता है ।

२३ मूर्धा दिवः ककुत् पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः अपां रेतोधि जिन्वति [ १५३२ ]- सबमें श्रेष्ठ और सुलोकमें श्रेष्ठ स्थान पर रहनेवाला पृथ्वीका पालक अग्नि अन्के तप्यको अपनेमें धारण करता है ।

२४ हे अग्ने ! स्या पति वार्यस्य दाशस्य ईक्षिपे, तय शर्मणि स्तोता स्याम् [ १५३३ ]- हे अग्ने ! तू स्वर्णका स्वामी, स्त्रीकार करनेवाला और बल देने वाला ऐसे धर्मोंका भी स्वामी है । तेरे द्वारा दिए गए युद्धमें रहकर मे तेरी स्तुति करनेवाला होऊँ ।

२५ हे अग्ने ! शुचयः शुक्राः भ्राजन्तः अर्चयः तय ज्योतिष्यं उर्वरते [ १५३४ ]- हे अग्ने ! बृद्ध, स्वच्छ और देवीयमान उवासामें तेरे तेजको प्रेरणा देती है ।

इत प्रकार अग्निका वर्णन इस अध्यायमें है । अग्नि यज्ञमें प्रवीण होता है । अस्तित्व उसकी स्तुति करते हैं । यज्ञमें सब देवोंको वह कुसाकर लाता है । उन देवोंकी सोमरत दिया जाता है । वह सब अग्निके वर्णनमें हमें मिलता है । अथ सोमका वर्णन देखिए—

### सोम

१ घग्नात्तं पीयूषं पूष्यं उपचयं मद्गः माहात् दिवः आ निरुक्षुस्त [ १५९४ ]- बहुते मिलनेवाला अमृत प्रशस्नीय है । महान् अगाध धूलोमते वह निकाला गया है । हिमालयके ऊँचे शिखर पर वह सोम उगता है और वहीमे वह बनेके लिए लाया जाता है ।

२ पश्यमानसः दिव्याः वसुरचः आर्ये ईं अश्व-नूपत [ १५९५ ]- इस सोमको देखनेवाले दिव्य वसुधत आदिके सफल इस सोमकी स्तुति करते हैं ।

३ हे पक्मान ! यत् हमे रोदसी हमी विश्वमनुपाय च विराजसि [ १५९६ ]- हे सोम ! इस सू और पृथ्वी पर और इस सब युद्धों पर तू विराजमान होता है ।

४ प्रथमः वृत्त-धीर्यः महे वाजाय श्रस्ते ते धियं द्युः । सः त्वं नः धीर्याय चोदय [ १५०६ ]- तु सबसे मुख्य है, आगत कंसानेवाले यजमान, विशेष बल और अश्र प्राप्त हो, इसलिद तेरे विषयमें उसमें वादर बुद्धि धारण करते हैं। वह तू हे सोम ! हम और हों ऐसी हमें प्रेरणा दे।

५ अथस्ता अभ्यभि ततार्दिथ [ १५०७ ]- अन्तसे युक्त होकर वह सोम छलनीसे नीचे चलनेमें छाना जाता है।

६ हे अमृत ! अतस्य आरुणः अमृतस्य कं मर्त्याय मजीजनः समिषवत् पाज अचक्ष सदा अस्तर [ १५०८ ]- हे अमृतवर्णी सोम ! हाथ और मगल करनेवाले, पानीको धारण करनेवाले आकाशमें सूर्यको सूनं यन्व्योके हितके लिए धारण किया। सूनं बेबोंकी सेवा की। तू हमेशा युद्धमें सौधा जाता है।

इस प्रकार इस अभ्यासमें सोमका वर्णन है। सोम ऊँचे पर्वत शिखर पर उत्पन्न होता है। वहाले वह यज्ञके लिए लाया जाता है। कृदकर उनका रस निकाला जाता है। उसमें पानी मिलाकर वह छाना जाता है। उसमें गायका दूध मिलाते हैं। वह इन्द्रादि देवोंकी विद्या जाता है, वाद्यमें उसे सब पीते हैं।

यह सब आलंकारिक भाषाओं वर्णित है।

## सुभाषित

१ नवत्यस्य सूर्यु गोपति संपति मभि प्र अर्च [ १४८९ ]- सत्यके प्रचार करनेवाले, मार्गोंके रक्षक और सत्यके रक्षकका साकार करी।

२ गायः यज्ञिणे इन्द्राय मधु आशिरे तु दुहे [ १४९१ ]- गायें यज्ञधारी इन्द्रकी मीठा दूध देती हैं। शीतोंकी गायका दूध पीना चाहिये।

३ विश्वायु सम्मरु हव्यं नः ग्रहाण्य सयनानि उप आभूवत [ १४९२ ] सब युद्धोंने ब्रह्मने गोप्य शीतोंकी गोमा हमारे स्तोत्र ब्रशते हैं।

४ पुत्रहन् परमज्वा आधीयस ! [ १४९२ ]- हे शत्रुको मारनेवाले और महान् यजुवर्णी शीतोंवाले शीत ! हम तेरी स्तुति करते हैं।

५ एवं राघवसं प्रमथः दाता अस्ति [ १४९३ ]- तू यनोंवा सबने पट्टिया दाता है।

६ ईशानकृत सत्य अग्नि [ १४९३ ]- तू ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला और सत्य है।

७ तुविद्युमनस्य शयसः पुत्रस्य महः युज्या वृणी-महे [ १४९३ ]- बहुत तेजस्वी, बलवान्के पुत्रके समान तुमसे बहुत सारा धन प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं। जो बलवान् होता है, उसे बहुतसा धन मिलता है और वह बहुतसा धन देता भी है। उसी तरह बहुतसा धन प्राप्त करें और बें।

८ दिव्याः पश्यमानासः आर्यं अभ्यनूयत [ १४९५ ]- दिव्य दृष्टिवाले उत्तम भाईकी स्तुति करते हैं।

९ विषः सयिता वारं न व्युर्णुते [ १४९५ ]- सुलोकोसे सूर्य जब तक मध्यकार दूर नहीं करता तब तक उसकी स्तुति बौद्ध नहीं करता, १ वह मध्यकार दूर करने, मध्य कि उमकी स्तुति शुरू ही जाती है।

१० इमे शेवसी, इमा विश्वाभुयना, मज्जना विराजसि [ १४९६ ]- इस ध्रुव युष्मोमें और इन सब भुवनोंमें अपने साथध्वसे तु प्रज्जोषित होता है।

११ हे चित्रभानो ! विषका वसि [ १४९८ ]- हे तेजस्वी देव ! तू धन देनेवाला है।

१२ वामुपे सद्यः क्षरसि [ १४९८ ]- दाताको कर्मके कल लकाल देता है।

१३ नः परमेयु मध्यमेयु धाजेयु आभज [ १४९९ ]- हमें श्रेष्ठ और मध्यम भोगोंमें पहुँचा।

१४ अन्तमस्य वसतः शिक्ष [ १४९९ ]- हमें निष्पद भोग भी मिले।

१५ पितुः अमृतस्य मेघां अहं इत् परि जग्रह [ १५०० ]- वालर करनेवालेकी सत्ययुद्धि मैंने प्राप्त की है।

१६ आर्धं सूर्यः इय अजनि [ १५०० ]- सें सूर्यके समान तेजस्वी हो गया है।

१७ येन इन्द्रः शुष्मं दधे [ १५०१ ]- जितने इन्द्र यज्ञकी धारण करता है।

१८ त्वं नः राघवः दानाय देयतातये चोदय [ १५०५ ]- तू हमें धन देनेके लिए देवोंकी प्रेरित कर।

१९ प्रथमः महे वाजाय अयस्ते धियं द्युः [ १५०६ ]- मुख्य होकर वे महान् धन और धन प्राप्त करनेकी वधि धारण करते हैं।

२० सः एवं नः धीर्याय चोदय [ १५०६ ]- यह तू हमें और होनेके लिए प्रेरित कर।

२१ याज्ञं अच्छ सदा भसरः [ १५०८ ]- यज्ञके लिए अतो हो ।

२२ महित्वना राधांसि प्रचोदयते [ १५०९ ]- अपनी महानतासे वह धनोंको प्रेरित करता है ।

२३ त्वत् पुरा वीरतरः न जज्ञे [ १५११ ]- तुमसे पहले तुमसे बढकर महान् वीर और कोई नहीं हुआ ।

२४ राया न कि, एवया न, मध्वना न [ १५११ ]- धनसे भी तुमसे धरकर कोई नहीं हुआ, अनुभूतिको कुशलने-वाला भी कोई नहीं हुआ और स्तुतिके योग्य भी दूसरा कोई नहीं हुआ ।

२५ धिघते दाशुपे जनाय सुधीर्यं रत्नं दद्याति [ १५१४ ]- धन करनेवाले, दाता अनुभूतिको उत्तम वीरता बडावनेवाले धन देता है ।

२६ साधुयिस्त्रमः अर्धसि [ १५१५ ]- वह उत्तम साधुवर्तिक प्रतीत होता है ।

२७ लुजाते आर्यस्य धर्षणं नः गिराः उपो नस्तन्तु [ १५१५ ]- उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए तथा आयोके सवर्ण करनेवालेकी हमारी बागिया क्षुति करती है ।

२८ यसात् चर्हृत्पानि कृण्वतः कृण्वः रेजन्ते, सहस्रां मेघसाती धीमि त्मना नमस्यत [ १५१६ ]- जब कम करनेवाले मनुष्यको क्षाम् कपाते हैं, तब हमारी प्रकासे सहस्रापता करनेवाले जिनको हे मनुष्यो ! बुद्धिपूर्वक तुम स्वयं प्रणाम करो ।

२९ नः आयुषि ऊर्ज इयं च धवसे [ १५१८ ]- हमें वीर्याम्, बल और मज्ज दे ।

३० पुच्छन्तां भोट वाधस्य [ १५१८ ]- कुर्वोंको हार करके उन्हें कट दे ।

३१ पान्त्रज्यः क्षाप्रिः पुरोहितः [ १५१९ ]- वन-जनोंका हित करनेवाला श्रुति आगे रहकर कार्य करता है ।

३२ तं महागम्य ईमदे [ १५१९ ]- उसकी सहामतासे हम बडे धरमें रहनेकी इच्छा करते हैं ।

३३ स्वपाः असे घर्षः पयस्य, मयि रयि पोषं दधन् [ १५२० ]- उत्तम कार्य करनेवाला तू हमें तेज दे और हमें धन और पोषण भी दे ।

३४ उतिभिः नः भव [ १५२४ ]- सरक्षणके साधनेसे हमारा सरक्षण कर ।

३५ सत्रासाहं धरेण्यं विध्वास्तु पृस्तु सुष्टरं रयि

नः आ भर [ १५२१ ]- तब शत्रुओंको हरानेवाले, धेठ और युद्धमें अनुभूतिके लिए दुस्तर बन हमें दे ।

३६ नः अंश्वसे सुच्येतुना विध्वायुपोषतं माहोर्कं रयि नः धेहि [ १५२६ ]- हमारे दोषों कोवनके लिए उत्तम जानने युक्त, तब आयु पर्वत गोपण करनेवाले सुप्रदायक बन हमें दे ।

३७ तेन धर्षं घर्षं जेष्य [ १५२७ ]- उस सामर्थ्यसे हम प्रत्येक युद्ध जीते ।

३८ यया खेनया तय ऊत्वा गाः आचरामहे, तां नः मघस्ये हिन्व [ १५२८ ]- जिस संघसे और जिस तेरे सरक्षणसे हमें पाप मिले उस सरक्षणशक्तिको हमें धन मिले इसलिए प्रेरित कर ।

३९ स्फूरं पृथुं गोमस्त अश्विनं रयि आ भर [ १५२९ ]- बहुत महान् गाध और घोड़ेके युक्त धन हमें दे ।

४० खं अंगिध, पयि वर्येय [ १५२९ ]- आकाशमें अपने तेज फैला और सारोंको हार कर ।

४१ अजेभ्यः ज्योतिः दधत् [ १५३० ]- लोगोंने लिए प्रकाश दे ।

४२ त्वं विशां केतुः प्रेषुः श्रेष्ठः श्रेष्ठः [ १५३१ ]- तू प्रजाओंको ताम देनेवाला जिय और वेष्ट है ।

४३ स्वपति वार्यस्य वामस्य दीशिपे [ १५३३ ]- तू स्वाधी है । स्वोकार करने योग्य और दान देने योग्य धनका स्वामी है ।

४४ शुचयः शुक्राः धाजन्त अर्यय तय ज्योतीं वि उर्दरसे [ १५३४ ]- शुद्ध, स्वच्छ, तेजस्वी और प्रकाशवान् तेरी प्रकाशकी किरने वातां और फैलती हैं ।

## उपमा

१ मज्जना यूयं निष्ठा खयः न [ १४११ ]- अपनी शक्तिते मज्जमें जैसे बँध रहता है, उत्तमप्रकार हे ताम । तू ( विराजसि ) यहाँ विराजमान होता है ।

२ सिन्धोः उपाके ऊर्मा आ [ १४१८ ]- जैसे ताम्रधने पानीसे सहर्षं जलती है, ज्योत्स्नप्रकार ( दाशुपे सद्यः क्षरसि ) दाताकी तू धन देता है ।

३ अहं सूर्यः हय अजनि [ १५०० ]- मैं सूर्यके समान तेजस्वी ही भया हूँ ।



४ प्रथमः वृत्त-परिचयः महे वाजाय श्रसे ते धिय दधु । सः त्व नः वीर्याय चोदय [ १५०६ ]- तू सबसे मृष्य है, आसन कमानेवाले यजमान, विशेष बल और अन्न प्राप्त हो, इसलिङ्ग तेरे विषयमें उत्तम आबरु बुद्धि पारण करते हैं । वह तू हे सोम ! हम वीर हों ऐसी हमें प्रेरणा दे ।

५ अथसा अभ्यमि ततार्दय [ १५०७ ]- अन्तरे युक्त होकर यह सोम छतनीले नीचे बर्तनमें छाना जाता है ।

६ हे अमृत ! ऋतस्य चाकण-अमृतस्य कं मर्त्याय अजीजन। सन्निधद्वयाज अच्छ सदा अस्तर [ १५०८ ]- हे अमृतस्वी सोम ! तब और मयल करनेवाले, पानीको पारण करनेवाले अन्तःशरीरें सुबोके तूने भव्योके हितके सिद्ध पारण किया । तूने देवोंको सेवा की । तू हमेशा युद्धमें सौधा जाता है ।

इस प्रकार इस अध्यायमें सोमका वर्णन है । सोम ऊँचे पर्वत शिखर पर उत्पन्न होता है । वहाँसे यह पत्थरके सिद्ध साया जाता है । बूटकर उनका रस निकाला जाता है । उसमें पानी मिलाकर यह छाना जाता है । उसमें गावका दूध मिलाते हैं । यह इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है, आद्यमें उसे सब पीते हैं ।

यह सब आलक्षारिक भाषामें वर्णित है ।

### सुभाषित

१ सत्यस्य गुरुं गोपति सःपति ममि प्र अर्च [ १४८९ ]- सत्यके प्रचार करनेवाले, गोपति रक्षक और गोपके रक्षक का स्तवन करो ।

२ गावःपन्निये इन्द्राय मधु बाशिर दुद्रुहे [ १४९१ ]- गोवें बचानेवाले इन्द्रजी सोडा दूध देनी हैं । बीरोंको गोपना दूध पीना चाहिए ।

३ विश्वांसु सप्तसु हायं नः अद्याणि सपनानि उप भामूवत [ १४९२ ] तब पृथ्वीमें बलाने योग्य बीरोंकी गोभा हमारे स्तोन ब्रजते हैं ।

४ पुत्रहन् परमया अचीवमः । [ १४९२ ]- हे प्राप्ति को मारनेवाले और आत्मा भन्वन्त्री होरीवाले बीर ! हम तेरी स्तुति करते हैं ।

५ त्वं गायत्रीं प्रथमं वाता अग्नि [ १४९३ ]- तू बर्तनीका सबसे पहिला वृत्त है ।

६ ईशानवृत् सत्य अग्नि [ १४९३ ]- तू ऐश्वर्यवृत्त करनेवाला और सत्य है ।

७ तुविद्युमस्य शवसः पुत्रस्य महः युज्या वृणी-महे । [ १४९३ ]- बहुत तेजस्वी, बलवान्के पुत्रके समान तुमसे बहुत सारा धन प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं । जो बलवान् होता है, उसे बहुतसा धन मिलता है और वह बहुतसा धन देता भी है । उसी तरह बहुतसा धन प्राप्त करें और बँटें ।

८ दिव्याः पश्यमानाः आभ्य अभ्यनूत [ १४९५ ]- दिव्य दृष्टिवाले उत्तम भाईको स्तुति करते हैं ।

९ दिवः सविता वारं न द्युर्णुते [ १४९५ ]- दुलोकते सूर्य जब तक अन्धकार दूर नहीं करता तब तक उसकी स्तुति कोई नहीं करता । वह अन्धकार दूर करने लगा कि उसकी स्तुति शुरु हो जाती है ।

१० इमे रोदसी, इमा विश्वाभुयना, अममना पिरा-जसि [ १४९६ ]- इस ध्रुव पृथ्वीमें और इन सब भुवर्गमें अपने तात्पर्यसे तु गुरुभोजित होता है ।

११ हे विश्वधानो ! विभक्ता व्यसि [ १४९८ ]- हे तेजस्वी देव ! तू धन देनेवाला है ।

१२ सानुरे सद्यः शरसि [ १४९८ ]- वातातों कमंडे पत्त तज्जाल देता है ।

१३ नः शरमेसु मध्यमेसु वाजेसु आयज [ १४९९ ]- हमें श्रेष्ठ और मध्यम भोगोंमें पहुँचा ।

१४ अन्तमसा वसतः शिशु [ १४९९ ]- हमें निहृष्ट भोग मिले ।

१५ पितुः अमृतस्य मेघां अहं इत् पारि जग्रह [ १५०० ]- वालन करीबालेकी सत्यबुद्धि मैंने प्राप्त की है ।

१६ अहं सूर्यं इय अजनि [ १५०० ]- मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ।

१७ येन इन्द्रः दुष्पं दूषे [ १५०१ ]- त्रिमते इन्द्र बलको पारण करता है ।

१८ त्वं नः रायः दानाय देयतातये चोदय [ १५०५ ]- तू हमें धन देनेके लिए देवोंको प्रेरित कर ।

१९ प्रथम महे वाजाय श्रसे ते धिय दधु [ १५०६ ]- मृष्य होकर वे मरतु बल और धन प्राप्त करनेकी बड़ पारण करते हैं ।

२० नः रवे नः वीर्याय चोदय [ १५०६ ]- वह तू हमें बीर होनेके लिए प्रेरित कर ।

२१ याजं अच्छ सदा असरः [ १५०८ ]- युद्धके लिए आगे हो ।

२२ महित्यना राधांसि प्रचादयते [ १५०९ ]- अपनी महानतासे वह पनोंको प्रेरित करता है ।

२३ त्वत् पुरा वीरतरः न जसे [ १५११ ]- तुझसे पहले तुझसे बढकर महान् वीर और कोई नहीं हुआ ।

२४ यया न कि, पधया न, भन्दता न [ १५११ ]- धनसे भी तुझसे बढकर कोई नहीं हुआ, धनुओंके कुशलने-वाला भी कोई नहीं हुआ और स्तुतिके योग्य भी दूसरा कोई नहीं हुआ ।

२५ यिधते दानुपे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति [ १५१४ ]- यत करनेवाले, दाता मनुष्यको उत्तम कोरता बढानेवाले धन देता है ।

२६ गानुपिस्मः अदर्शि [ १५१५ ]- वह उत्तम मार्गदर्शक प्रतीत होता है ।

२७ सुजालं भार्यस्य धर्धनं नः गिरः उपो नक्षन्तु [ १५१५ ]- उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए तथा आगेके संबंध बनानेवालेकी हमारी बाणियाँ स्तुति करती हैं ।

२८ यस्मात् चर्यत्यानि कुण्वतः कुण्वतः रेजन्ते, सहस्राक्षं मेधसाली धीमिः श्रमा नमस्यत [ १५१६ ]- जब धर्म करनेवाले मनुष्यको शत्रु कंपते हैं, तब हजारों प्रकारसे सहायता करनेवाले अभिनी हैं मनुष्यो ! युधिपूर्वक तुम स्वयं प्रणाम करो ।

२९ नः आर्युषि ऊर्जं ह्वे च पवसे [ १५१८ ]- हमें वीर्याव, बल और अन्न दे ।

३० कुक्षुर्मा ओर पाधस्य [ १५१८ ]- कुष्ठोंको दूर करके उन्हें कब्ध दे ।

३१ पांचजन्यः क्रयिः धुरोदितः [ १५१९ ]- ध्वज-जनीका हित करनेवाला श्रयि आगे रहकर कार्य करता है ।

३२ तं महागव्यं ईमहे [ १५१९ ]- उसकी सहस्रतासे हम सब ईश्वर ईश्वरकी इच्छा करते हैं ।

३३ इषपाः असो रच्यः पवस्वा, मयि रयिपोषं दधत् [ १५२० ]- उत्तम कार्य करनेवाला तू हमें तेज दे और हमें धन और पोषण भी दे ।

३४ ऊतिमिः नः अय [ १५२४ ]- संरक्षणके साधनसि हमारा संरक्षण कर ।

३५ सयासाहं यरेण्यं विश्वास्तु पृस्तु दुष्टं रयि

नः आ भर [ १५२५ ]- सब शत्रुओंको हरा देनेवाले, श्रेष्ठ और युद्धमें शत्रुओंके लिए दुस्तर धन हमें दे ।

३६ नः जीवसे सुचेतुना विश्वासुपोषं मार्दिकं रयि नः घेहि [ १५२६ ]- हमारे वीर्य जीवनके लिए उत्तम आगनेसे युक्त, सब शत्रु पर्यन्त पोषण करनेवाले सुजहायक धन हमें दे ।

३७ तेन धनं धनं जेष्य [ १५२७ ]- उस सामर्थ्यसे हम मत्स्यक युद्ध जीतें ।

३८ यया सेनया तव ऊरया गाः आकरामहे, तां नः मघस्ये हिम्य [ १५२८ ]- जिस संपत्ति और जिस तेरे संरक्षणसे हमें गाप मिलें उस संरक्षणशक्तिको हमें धन मिले इसलिये प्रेरित कर ।

३९ सूर्यं पृथुं मोमस्तं अश्विनं रयि आ भर [ १५२९ ]- बहुत महान् गाप और घोडेंसे युक्त धन हमें दे ।

४० खं वरिध, पवि धर्तय [ १५३१ ]- साक्षात्मान सपने तेज फैला और शस्त्रोंको दूर कर ।

४१ जनेभ्यः ज्योतिः दधत् [ १५३० ]- लोगोंके लिए प्रकाश दे ।

४२ रयं विश्वां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः [ १५३१ ]- तू प्रजाजनोंके शान देनेवाला प्रिय और श्रेष्ठ है ।

४३ स्वपतिः कार्यस्य दात्रस्य ईशिषे [ १५३३ ]- तू स्वामी है । स्वोत्तर करने योग्य और शान देने योग्य धनका स्वाभी है ।

४४ नुचयः शुक्राः आजन्तः अर्चयः तप ज्योतीरपि उदीरते [ १५३४ ]- युद्ध, स्वच्छ, तेजस्वी और प्रकाशमान तेरी प्रकाशकी किरणे बारीं और फैलती हैं ।

## उपमा

१ अजमना यूये चिष्टा धूपमः न [ १४९९ ]- धपनी पत्तिसे कुण्डमें जैसे बत्त रहता है, उसीप्रकार है तोम । नू ( गिराजसि ) यहां गिराजमान होता है ।

२ सिम्बोः उपाके ऊर्मा आ [ १४९८ ]- जैसे समुद्रमें पानीकी लहरें आती हैं, उसीप्रकार ( दानुपे सधः क्षरसि ) वाताकी तू धन देता है ।

३ अहं सूर्या इव अजनि [ १५०० ]- मेघपुंके समान तेजस्वी हो गया हूँ ।

४ कण्ववत् अह प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि [ १५०१ ] कण्वके समान में प्राचीन वाणीसे इन्द्रकी स्तुति करके उसे सुशोभित करता हूँ ।

५ न कंचित् जनपाने आक्षिप्तं उत्तर [ १५०७ ]—मनुष्यको पानी पीनेके लिए खेते होना भरा जाता है, उसी प्रकार हे सोम ! ( अक्षयिमतर्दिथ ) छाया जाकर तु जलनमें भरा जाता है ।

६ भरमाण. न [ १५०७ ]— जिसप्रकार हौन भरते

हैं, उसीप्रकार ( गमस्त्योः शर्याभिः ) हाथकी अंगुलियोंसे सोबरस यतनमें भरा जाता है ।

७ इन्द्रः न [ १५१७ ]— इन्द्रके समान ( अग्निः मातरं ध्रुयिर्वो अनु प्र वि वाधृते ) अग्नि मातृभूमिपर अनेक प्रवृत्ति करता है ।

८ आजिषु आहुं सर्षि इव [ १५२७ ]— घृहमें वेगवान् घोड़ेकी जिसप्रकार बौझते हैं, उसीप्रकार ( नः धियः भार्षि हिन्धन्तु ) हमारी बुद्धियाँ अग्निको प्रेरित करें ।

## चतुर्दशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रांख्या	ऋषिदेवता	ऋषि.	देवता	छन्दः
( १ )				
१४८९	८१६९७४	प्रियमेध आगिरसः	इन्द्रः	गायत्री
१४९०	८१६९७५	प्रियमेध आगिरसः	"	"
१४९१	८१६९७६	प्रियमेध आगिरसः	"	"
१४९२	८१९००१	मृमेध-मुदमेधावागिरसी	"	प्रगाथ = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती )
१४९३	८१९००२	मृमेध-मुदमेधावागिरसी	"	"
१४९४	९१११०८	अयदनाभैवृणः, असदस्युः पौदकुस्तः	पयसाय-सोमः	ऊर्ध्वा बृहती
१४९५	९१११०९	अयदनाभैवृणः, असदस्युः पौदकुस्तः	"	"
१४९६	९१११०९	अयदनाभैवृणः, असदस्युः पौदकुस्तः	"	"
१४९७	१११७३४	शुन-सोप आग्नीमतिः	अग्नि.	गायत्री
१४९८	१११७३५	शुन-सोप आग्नीमतिः	"	"
१४९९	१११७३५	शुन-सोप आग्नीमतिः	"	"
१५००	८१६११०	वातः वायवः	इन्द्रः	"
१५०१	८१६१११	वातः कायवः	"	"
१५०२	८१६११२	वातः वायवः	"	"
( २ )				
१५०३	—	अग्निस्तापसः	विश्वेदेवाः	अनुष्टुप्
१५०४	—	अग्निस्तापसः	"	"
१५०५	१०११४११६	अग्निस्तापसः	"	"
१५०६	९१११०१०	अयदनाभैवृणः, असदस्युः पौदकुस्तः	पयसाय-सोमः	ऊर्ध्वा बृहती
१५०७	९१११०१५	अयदनाभैवृणः, असदस्युः पौदकुस्तः	"	"

चतुर्विंश अध्यायः ]

### सामवेदका सुयोध अनुवाद

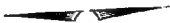
अं प्रसंख्या	आवेदनकर्ता	आदि:	वैयता	कर्म:
१५०८	१११०१३	प्रवक्तापत्रवृत्तः, जलवायु: पीपुलुसः	पवमानः सोमः	अर्था मुहूर्ती
१५०९	८११११३	विद्यमाना वैयव्यः	कर्म:	उत्पिण्क
१५१०	८११६१३	विद्यमाना वैयव्यः	"	"
१५११	८११७१३	विद्यमाना वैयव्यः	"	"
१५१२	८११८१३	विद्यमाना वैयव्यः	"	"
१५१३	८११९१३	विद्यमाना वैयव्यः	"	"

(3)

१५१३	७१६१११	वसिष्ठो मंत्रावलिः	अग्निः	प्रपाद्यः ( विद्यया बृहती ) तथा सती बृहती )
१५१४	७१६११२	वसिष्ठो मंत्रावलिः	२१	२१
१५१५	७१६०३११	सोमरिः काण्वः	१६	बृहती
१५१६	७१६०३१२	सोमरिः काण्वः	०१	२१
१५१७	७१६०३१३	सोमरिः काण्वः	०१	२१
१५१८	७१६०३१४	शतं वैश्वानसः	अग्निः वायवानः	वायवो
१५१९	७१६०३१५	शतं वैश्वानसः	१६	१७
१५२०	७१६०३१६	शतं वैश्वानसः	२१	२०
१५२१	७१६०३१७	वसुधाय आग्नेयः	अग्निः	१७
१५२२	७१६०३१८	वसुधाय आग्नेयः	२१	१८
१५२३	७१६०३१९	वसुधाय आग्नेयः	२१	१९

( ୪ )

१५१३	११७५७	गौतमी दाम्बणः	३१	११
१५१४	११७५८	गौतमी दाम्बणः	३१	११
१५१५	११७५९	गौतमी दाम्बणः	३१	११
१५१६	११७६०	केतुरामेयः	३१	११
१५१७	११७६१	केतुरामेयः	३१	११
१५१८	११७६२	केतुरामेयः	३१	११
१५१९	११७६३	केतुरामेयः	३१	११
१५२०	११७६४	केतुरामेयः	३१	११
१५२१	११७६५	केतुरामेयः	३१	११
१५२२	११७६६	विक्रम आगिरतः	३१	११
१५२३	११७६७	विक्रम आगिरतः	३१	११
१५२४	११७६८	विक्रम आगिरतः	३१	११
१५२५	११७६९	विक्रम आगिरतः	३१	११



## अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथ सप्तमप्रपादके द्वितीयोऽध्यायः ॥ ७-२ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १, ११ गेतमो राहुवजः; २, ९ विष्वामित्रो जाविमः; ३ विलय आगिरसः; ४, ७ भर्गः प्रागायः; ५ त्रित भाव्यः; ६ जसना काव्यः; ८ सुवीति- बुधवीद्वहावागिरसो १० सोमरिः काव्यः; १२ शोषवन आनेयः; १३ भर-  
हानो बाहुस्वयो, वीतहव्य आगिरसो वा; १४ प्रयोमो भार्वचः; पावकोऽनिर्वाहस्वयो वा, गृहपति-यविष्ठी  
सहस्र युवादायस्वरो वा ॥ अग्निः ॥ १-३, ६, ९, १४ पावमो; ४, ७, ८ प्रगायः= ( विषया बृहती, सप्ता  
सतीबृहती, ); ५ त्रिवृत् १० काकुनः प्रगायः= ( विषया ककुपु, सप्ता सतीबृहती ); ११ उगिरः; १२  
अनुष्टुप्सः प्रगायः= ( अनुष्टुप् + गायत्री ); १३ जगती ॥

१५३५ कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाधध्वरः । को ह कसिस्ससि शिवः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७५।१ )

१५३६ एवं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईक्ष्य ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७५।४ )

१५३७ यज्ञा नो मिषावरुणा यज्ञा देवाश्च श्रूतं यक्षि स्वं दमम् ॥३॥ १ ( रु ) ॥

[ पा० ८ । उ० नासि । ख० ९ ] ऋ. १।७५।९ )

१५३८ ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमाशंसि दधेते । सममिरीष्यते वृषा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७५।११ )

१५३९ वृषो अग्निः समिष्यतेऽग्नौ न देवाह्नयः । तश्च हविष्मन्त ईडते ॥२॥ ( ऋ. १।७५।१४ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १५३५ ] हे मन्त्रे ! ( जनानां ते जामिः काः ) मनुष्यानि तेरा भाई कौन हैं ? ( वानु-अप्यराः फाः ) हानते तेरा यम करनेवाला कौन है ? ( काः ह ) तू कौता है यह कौन आवता है ? ( कस्मिन् धितः असि ) तू कहाँ जाय्य लेकर रहता है ? ॥ १ ॥

[ १५३६ ] हे मन्त्रे ! ( एवं जनानां जामिः प्रियः मित्रः असि ) तू मनुष्योंव भाई और प्रिय मित्र है । ( ईडेयः स्तमिष्यः सखा ) तू वृष्य और ऋषिबन्धुओं मित्रोंका मित्र है ॥ २ ॥

[ १५३७ ] हे मन्त्रे ! ( नः ) हमारे लिए ( मिषावरुणा यज्ञ ) निम और बध्मना यजन कर । ( देवान् यज्ञ ) देवोंका यजन कर । ( श्रूतं गृह्यत् स्वं दमं यक्षि ) यम कर और मनुज यज्ञालाभे पूज्य होकर रह ॥ ३ ॥

[ १५३८ ] ( ईडेन्यः ) वृष्य और वषाकार करने योग्य ( तमांसि तिरः ) अप्यराएकी बुर करनेवाला ( वृदांसि वृषा अग्निः ) वर्जनीय और बलवान् जनि ( एवं हविष्यते ) आहुतिके द्वारा जलमताने प्रयोज्य किया जाता है ॥ १ ॥

[ १५३९ ] ( वृषा उ ) बलवान् ( अग्नयः न देवयाहनः ) योहान् जैसे राजाएँ योहर के जात हैं उसीप्रकार अग्नि देवोंके पाम हरि ॥ जाता है, ऐसा वह ( अग्निः समिष्यते ) अग्नि आहुतिके द्वारा प्रयोज्य किया जाता है । ( तं हविष्मन्तः ईडते ) हवन करनेवाले यज्ञयाग जल अग्निकी वृत्ति करते हैं ॥ २ ॥

१५४० वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यते बृहत् ॥ ३ ॥ २ ( लि ) ॥  
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ३।२७।५ )

१५४१ उचे बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४४।४ )

१५४२ उप त्वा जुह्वेरे मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुपस्व नः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४४।५ )

१५४३ मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रमातुं विभावसुम् । अमिधीडे स उ भवत् ॥ ३ ॥ ३ ( व ) ॥  
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४४।६ )

१५४४ पाहि नो अग्र एकया पासुदेव द्वितीयया ।  
पाहि गीर्मिस्तिसुमिरूजां पते पाहि चतसुमिर्वसो ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६०।९ )

१५४५ पाहि विश्वसाद्रक्षसां अराव्याः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।  
त्वामिद्वि नेदिष्ठं देवतातय आपि नक्षामहे वृषे ॥ २ ॥ ४ ( पि ) ॥  
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।६०।१० )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ १५४० ] हे ( वृषण् अग्ने ) बलवान् अग्ने ! ( वृषण् वयं ) आहुति देनेवाले हम ( वृषणं दीद्यते बृहत् ) बलवान्, तेजस्वी और बहान् तुम अग्निको ( समिधीमहि ) प्रशस्तित करते हैं ॥ ३ ॥

[ १५४१ ] हे ( दीदिवः ) तेजस्वी अग्ने ! ( समिधानस्य ते ) प्रवीण होनेवाले तेरी ( बृहन्तः शुक्रासः ) महान् शुद्ध ( अर्चयः ) व्यासायें ( उदीरते ) निकलती हैं ॥ १ ॥

[ १५४२ ] हे ( हर्यत अग्ने ) प्रशम अग्ने ! ( मम घृताचीः जुह्वः ) मेरे पीले घृत में मेरे ॥ १ ॥ पयवे ( त्वा उप-यन्तु ) तेरे पास आये, ( नः ) हव्या जुपस्व ) हमारी हविका तु सेवन कर ॥ २ ॥

[ १५४३ ] ( मन्द्रं होतारं ) आग्रह देनेवाले, देवोंको बुलाकर सनेवाले ( अमिधीडे चित्रमातुं ) शत्रुके अनुसार यह करनेवाले तेजस्वी ( विभावसुम् अग्नि ईदे ) प्रकाशमान अग्निको मैं स्तुति करता हूँ । ( सः भवत् ३ ) वह उने चुले ॥ ३ ॥

[ १५४४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः एकया पाहि ) तु हमारा एक ऋचाते रक्षण कर । ( उत द्वितीयया पाहि ) और दूसरी ऋचाते रक्षा कर । हे ( गीर्जां पते ) बलके पासक ! ( तिसुमिः गीर्मिः पतसे ) तीन भंजोने हमारा संरक्षण कर । हे ( चतसुमिः पाहि ) चार भंजोने रक्षण कर ॥ १ ॥

[ १५४५ ] हे अग्ने ! ( विश्वसाद्रक्षसां अ-राव्याः ) सब राजाओं और राज न देनेवाले शत्रुओंके ( नः पाहि ) हमारी रक्षा कर । तथा ( वाजेषु प्राध स्म ) यज्ञमें हमारी रक्षा कर । ( हि ) क्योंकि ( नेदिष्ठं आपि त्वां हव् दि ) हमारा पासक आये तू ही है । ( देवतातये वृषे नक्षामहे ) यज्ञको निदिष्ठे लिए और अपने संवर्धनके लिए तेरी शरणमें आते हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

१५४६ इ० राजभरतिः समिद्धो रौद्रो दद्यात् सुपुमा५ अदर्शि ।

चिकिद्भि माति मासा बृहतासिक्तीमिति कश्यपीमपाजन् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।३।१ )

१५४७ कृष्णां यदेतीमभि वर्षसाभूजनयन्योपां बृहताः पितृजांम् ।

ऊर्ष्व मातु५ ऊर्षस्य स्तभापन् दिवो वसुभिररतिर्वि माति ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।३।२ )

१५४८ भद्रो भद्रपा सचमान आयात्स्वसारं जारो अभ्येति पथात् ।

सुप्रकेतैर्धुमिरद्विवितिष्ठन्नृशङ्खिवर्णैरभि राममस्मात् ॥ ३ ॥ ५ ( पो ) ॥

[ धा० १०। उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ १०।३।३ )

१५४९ कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥ ( ऋ ८।८।४ )

१५५० दाद्येम कस्य मनसा यक्षस्य सहसो यक्षो । कदु वोच इदं नमः ॥ २ ॥ ( ऋ ८।८।५ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५४६ ] हे अग्ने ! तू ( इमः ) तवका स्वामी है, ( भरतिः ) देवकी पात जानेवाला ( समिद्धः ) प्रज्वलित किया गया ( रौद्रः ) शत्रुओंकी भय दितानेवाला ( सुपुमान् ) उपासकोंकी इष्ट वराय देनेवाला ( दद्यात् अदर्शि ) तू बल बढानेवाला है यह देल लिया है । ( चिकिद् विभाति ) सर्वत्र तू प्रदीप्त होता है । ( दशती अपाजन् ) तेनस्वी पचालाओंकी फैलाते हुए ( बृहता मासा ) महान् तेजसे ( असिपर्ती एति ) रात्रियों जाता है ॥ १ ॥

[ १५४७ ] यह अग्नि ( यत् ) जब ( बृहताः पितुः जां योपां ) महान् पितरसे उत्पन्न हुई हुई स्वीकृती उपासी ( जनयन् ) प्रकट करके ( कृष्णां पर्णी वर्षसा अग्निभूत् ) काली रात्रियोंकी अपनी पचालाओंति हराता है । तब ( भरतिः ) यह गतिमान् अग्नि ( दियः वसुभिः ) धूलोकमें अपने तेजसे ( सूर्यस्य आनुं ) सूर्यके तेजकी ( ऊर्ष्व स्तभापन् ) ऊपर ही धावकर ( विभाति ) स्वयं प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ १५४८ ] ( भद्रः ) कल्याण करनेवाला अग्नि ( भद्रया सचमानः आयात् ) कल्याण करनेवाली उपाकेद्वारा सेवित होता हुआ प्रज्वलित होता है । ( पथात् जार-स्वसारं अभ्येति ) तब धनुका नाश करनेवाला अग्नि अपनी बहिन उपाकी प्राप्त होता है । ( सुप्रकेतैः धुमिर् विविष्टिन् ) अपने तेजोंति सर्वत्र रहनेवाला यह ( अग्निः ) अग्नि ( उदाग्निः वर्णः ) तेनस्वी रात्रोंकी पचालाओंति ( रामं अभ्यस्थात् ) रात्रोंके अन्धकारको हटाकर स्थिर रहता है ॥ ३ ॥

[ १५४९ ] हे ( अग्निरः ) अग्निके प्रकाशक और ( ऊर्जः न-पात् ) बल कम न करनेवाले ( देव अग्ने ) अग्नि देव ! ( वराय ) सर्वके द्वारा स्वीकरणीय और ( मन्यवे ते ) सम्-पर कृप करनेवाले तेरे लिए ( कया उपस्तुतिं ) कीनसी रीतिसे मैं स्तुति करूँ ? ॥ १ ॥

[ १५५० ] ( सहसो यक्षो ) हे बससे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! ( कस्य यक्षस्य मनसा दाद्येम ) कित वज्र करनेवालेके मनके सामान हम हथि अर्पण करें ? ( इदं नमः कानु वोचे उ ) मैं हथि अर्पण यह नमस्कार तुमो प्राप्त हों, यह हम जब कहें ? ॥ २ ॥

१५५१ अथा त्वं हि नस्फरी विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥२॥ ६ (ठ) ॥  
[ धा० १८।३० १। स्त० १ ] ( ऋ. ८।८४।६ )

१५५२ अथ आ यादायिभिर्होतारं त्वा घृणीमहे ।  
आ त्वामिनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं वहिरासदे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६०।१ )

१५५३ अच्छा हि स्वा सहसः सुनो अग्निरः सुचक्षरन्त्यध्वरे ।  
ऊनो नपातं घृतेक्षमीमहेऽग्निं यजेषु पूर्यम् ॥ २ ॥ ७ ( या ) ॥  
( धा० १०।४० नारित । स्त० १ ) ( ऋ. ८।६०।१ )

१५५४ अच्छा नः शीरशोचिर्प गिरो यन्तु दर्शयम् ।  
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरुवसुं पुरुप्रशस्तमृतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।१० )

१५५५ अग्निं च सुनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।  
द्विता यो भूदमृता मर्येषा होता मन्द्रवमो विशि ॥ २ ॥ ८ ( डा ) ॥  
[ धा० ८।४० १। स्त० २ ] ( ऋ. ८।१०।११ )  
॥ इति त्रितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ १५५१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अथ ) इसके बाद ( त्वं हि अस्मभ्यं करः ) तु ही हमारे लिए ऐसा बर कि ( नः विश्वाः गिरः ) हमारी सब स्तुतियां ( सु-क्षितीः ) हमें सब खेळ स्थानोंके स्वामी और ( वाजद्रविणसः ) अथ अथवा घमसे युक्त करें ॥ १ ॥

[ १५५२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( रज होतारं घृणीमहे ) तु देवोंकी बुझानेवाला है । ऐसा समझकर तेरी प्रार्थना हम करते हैं । तु ( अग्निभिः आयाहि ) अग्नियोंके नाथ बहो आ । ( यजिष्ठं स्वां ) प्रथमीय तुषे ( प्रयता हविष्मती ) तेव्हार हविषुक्त आहुति ( वहिः आसदे ) आत्मन पर बैठनेके बाद ( अमनक्तु ) प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १५५३ ] हे ( सहसः सुनो अग्निरः ) बसके पुत्र और सब अथवा गमन करनेवाले अग्ने । ( स्वा अश्वरे अच्छा ) तुमें यतमें प्राप्त करनेके लिए ( सुचक्षः अग्निरः ) बनके हलजल करते हैं । ( ऊनो नपातं घृतक्षमीमहे ) बल कम न करनेवाले और प्रभवर बवालमें युक्त ( पूर्यम् अग्निं ) मनोरम पूर्ण करनेवाले अग्निको हम ( यजेषु इमहे ) यतमें स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १५५४ ] ( नः गिरः ) हमारी स्तुतियां ( शीरशोचिर्प दर्शयं ) प्रदर्शित ब्यापामोंसे युक्त और दर्शनीय अग्निके पास ( अच्छा यन्तु ) तीक्ष्ण करें । ( ऊतये ) हमारे रसाये लिए ( नमसा यज्ञासः ) योगे युक्त होनेवाले हमारे पास ( पुरु-वसुं पुरु-प्रशस्तं अच्छा ) बहुत बनने युक्त और बहुत प्रशस्तयोग अग्निको प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १५५५ ] ( मर्येषु ) मनुष्योंमें ( यः अमृतः ) जो अमृत है, ( द्विता अमृतम् ) वह देवोंमें भी अमृत है, अर्थात् दोनों स्थानोंमें वह अमृत है, ( विशि होता मन्द्रवमः ) वह मनुष्योंमें हवन करनेवाला और अमृत देनेवाला है । ( सहसः सुनुं ) बलमें उत्पन्न होनेवाले ( जान-येदमं अग्निं ) नभं जानो अग्निको ( वार्याणां दानाय ) उनके दानके लिए हम प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

॥ यदा दृष्ट्वा खण्ड समाप्त इति ॥



[ ३ ]

१५५ अ<sup>१२</sup>दाभ्यः पु<sup>३२</sup>र<sup>३२</sup>ए<sup>३३</sup>ता वि<sup>२६</sup>ज्ञा<sup>२७</sup>म<sup>२८</sup>यि<sup>२९</sup>र्मा<sup>३०</sup>नुषी<sup>३१</sup>णाम् । तू<sup>२३</sup>र्णो<sup>२४</sup> रथः स<sup>२५</sup>दा न<sup>२६</sup>वः ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१।५ )

१५५७ अमि प्रयासंति वाहसा दासाश्चश्रोति मर्त्यः । ध्रुवं पावकगोचिपः ॥२॥ ( ऋ. १।१।७ )

१५५८ साह्यान्विथा अमिधुजः क्रतुदेवानाममृक्तः । अमिस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥ ९ (वि) ॥

[ घा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ । ( ऋ. ३।१।५ )

१५५९ भद्रो नो अभिराहुतो भद्रा रातिः सुमग भद्रो अश्वरः । भद्रा उव प्रघस्तयः ॥ १ ॥

(क. ८१५/१९)

१५६० भद्रं मनः कृष्णं वृषतूर्यं येना समत्सु सासहिः ।

अव स्थिरा तनुहि भरि वर्षतां वनेमा ते अभिष्टये ॥ ३ ॥ १० (लि) )

[ धा० ४ । ख० नास्ति । स्व० ३ । ( ऋ ८।१।२० )

१५६१ अग्ने वाजस्य गोमते इज्जानः सहस्रो यदो । अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ १ ॥

( ४५ १७९१४ )

[ ३ ] तृतीयः श्लोकः ।

【 १५५६ 】 (मानुषीणां विद्यां पुर-एता) साधवी प्रजापतौं आये रहवेवालां (सूचीं)। शीप्रताये कार्य करने-वाला (रदा)। रयेके समान प्रवर्तिणील (रदा नचः अग्निः) सदा सवीर यह अग्नि (अ-वृ-भ-यः) किसीके द्वारा न बढाये जानेवाला है ॥ १ ॥

[ १५५७ ] ( दाम्भ्यान् मर्त्यः ) वाता ननुष्य ( दाहसा ) हविर्पर्वणानेवासे अग्निसे ( प्रयांति अग्निं भक्षन्तीति )  
 भक्षन्ती प्राप्तिं करता है, तथा ( पायकशोचिषः ) पवित्र प्रकाशवासे अग्निसे ( क्षुध्यं ) निवास योग्य घर प्राप्त करता है ॥ २॥

[ १५५८ ] ( अभियुजः विश्वाः साद्धान् ) चढाई करनेवाले सब शत्रुकी सेवाओंको हरानेवाला ( देवानां क्रतुः ) देवोंका यत्न करनेवाला भनि ( तथि-अयस्समः ) बहुतसा यत्न करनेवाला है ॥ ३ ॥

[ १५५९ ] (आहुतः) अग्नि नमः भद्रः ) आहुतियोसि त्वत् हुआ हुआ अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला हो । हे  
 (सु-भग) उत्तम भाग्यवान् अपने ! (भद्रा रातिः) तेरे कल्याण करनेवाले वान हमें प्राप्त हों । (अध्वरः भद्रः)  
 हमारा यज्ञ कल्याण करनेवाला हो । (उत्तः प्रशस्तयः भद्रः) और हमारे द्वारा की गई स्तुतियाँ हमारा कल्याण करने-  
 वाली हों ॥ १ ॥

[ १५६० ] हे आने । ( वृत्र-नृपैः मनः भद्रं वृणुष्य ) युद्धम् हमारे मनकी कल्याणमय विचार करनेवाला करे । ( येन समन्तु सासहिः ) जिससे युद्धमें शत्रुका पराभव तु करता है । ( दार्घ्यात् भूरि स्थिरा अयतनुदि ) युद्ध करने-वाले शत्रुकी सब सेनाका भी तु पराभव कर, ( दमिष्ठये हे वनेमन ) हम अपने कल्याणके लिए तेरी आराधना करते हैं ॥१५

[ १५६१ ] हे (सहस्रः यद्वा) बलके पुत्र अग्रे ! (योमतः राज्ञस्य ईशानः) शायमे साय होनेवाले अश्वका नृत्वासी है । हे (जातप्रेदः) सर्वज्ञ ! (अस्मे मदि शयः देहि) हमें बहुत सारा अन्न दे ॥ १ ॥

१५६२ स इधानो वसुध्विराग्निरादिनो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥

( ऋ. १।७२।५ )

१५६३ क्षपो राजन्तु त्मनामि वस्तोरुतोषसः । स विमज्जम् रक्षसो दह प्रति ॥ ३ ॥ ११ (टा) ॥  
[ पा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।७२।६ )

॥ इति ततोयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१५६४ विशोविशो वो अतिरिषि वाजयन्तः पुरुमिषम् ।

अग्निं वो दुर्य यचः स्तुपे शूचस्य मन्मसिः ॥ १ ॥ ऋ. ८।७४।१ )

१५६५ ये जनासो हविष्मन्नो मित्रे न सविदामुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

( ऋ. ८।७४।२ )

१५६६ पर्वात्सं जातवेदसं वो देवतास्तुयता । हव्यान्वेरपादेवि ॥ ३ ॥ १२ (टा) ॥

[ पा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।७४।३ )

१५६७ समिद्धमग्निं समिधा गिरा शृणु श्रुतिं पावकं पुरां अश्वरे ध्रुवम् ।

विप्रश् होतारं पुरुषारमद्रुहं कथिश् सुम्रीमहे जातवेदसम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१५।७ )

[ १५६२ ] ( सः अग्निः ) वह अग्निः ( इधानः वसुः ) प्रवीण हुआ हुआ और विवास करनेवाला ( कथिः ) जानने ( गिरा इडेयः ) वाणीके द्वारा स्तुति करने योग्य है । हे ( पुरु-अलौकिक ) अनेक बवाला मुखर जाने ! ( अस्मभ्यं देवत् दीदिहि ) हमें समकनेवाले धन दे ॥ २ ॥

[ १५६३ ] ( राजन् अग्ने ) हे प्रकाशमान्-अग्ने ! ( वस्तो उत उपसः ) तब बिन और राज्यों ( क्षपः ) राजजोंका नाश कर । ( उत त्मना ) और स्वयं तू हे ( विमज्जम् ) तीक्ष्ण मुखवाले अग्ने ! ( रक्षस्य प्रति दह ) राजतोंकी जला दे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १५६४ ] हे मानकी ! ( याजयन्तः यः ) अन्न न बलकी इच्छा करनेवाले बुद्ध ( विशः विशः अतिरिषि ) प्रत्येक प्रजाजनोंके परम अतिरिषि समस्त पुजनीय और ( पुरुमिषं अग्निं ) बहुतेको मित्र समनेवाले अग्निको हवि अर्पित करो । ( यः शूचस्य मन्मसिः ) गुह्यारे अन्न भक्षणवाले स्तोत्रोंके द्वारा ( दुर्य यचः स्तुपे ) स्थापितकर रहनेवाले अग्निको हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १५६५ ] ( यं ) जिसकी ( हविष्मन्तः जनासः ) हवि रखनेवाले लोग ( मित्रे न ) बिचकें समान ( सवि-दामुतिम् ) योगे हवनके साथ ( प्रशस्तिभिः प्रशंसन्ति ) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६६ ] ( पर्वात्सं जातवेदसं ) अत्यन्त स्तुतिके योग्य तर्बतानी अग्निकी हम स्तुति करते हैं, ( यः ) वो ( देवतासि ) देव यममें ( उद्यता हव्यानि ) बिष्ट जानेवाले हविर्द्रव्य ( दिवि येरयत् ) धूमोकेमें पहुँचाता है ॥ ३ ॥

[ १५६७ ] ( समिधा समिद्धं अग्निं ) समिधाजोति प्रज्वलित हुए हुए अग्निजो मं ( गिरा शृणु ) वाणीसे स्तुति करता है । ( श्रुतिं भुयं पावकं अश्वरे पुरा ) बुद्ध, स्थिर और धैर्य करनेवाले अग्निको यज्ञमें मे आगे स्थापित करता है । ( विप्रं होतारं ) जानने तथा हवन करनेवाले ( पुरुषारं मद्रुहं ) अनेकों द्वारा स्वीकार करने योग्य, मोह न करनेवाले ( कथि जातवेदसं ) जानने और तर्बतानी अग्निजो ( सुम्रीमहे इमं ) धनके लिए हम प्रार्थना करने हैं ॥ १ ॥

१५६८ त्वां दूतमग्ने अमृतं युग्मयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीक्ष्यम् ।

देवासश्च मर्तासश्च जागृवि विश्वं विश्वपतिं नमसा नि पेदिरे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१।८ )

१५६९ विभूपन्नम् उभयां अनु त्रवा दूतो देवानां रजसी समीपसे ।

यत्ते भीतिं सुमतिमावृणीमहेऽप स्म नस्त्रिवरुथः शिवो भव ॥ ३ ॥ १३ ( या ) ॥

[ धा० २२ । उ० नास्ति । ख० २ ] ( ऋ. ६।१।९ )

१५७० उप त्वा जामया गिरौ देदिद्यावीर्हविष्कृतः । वायारनीके अस्थिरन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।१३ )

१५७१ यस्य विश्वास्ववृते पौर्हस्वस्थावसन्दिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०।१४ )

१५७२ पदं देवस्य मीढुषोऽनाघृष्टामिरुतिभिः । भद्रा स्ये इवोपदक् ॥ ३ ॥ १४ ( हु ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । ख० ९ ] ( ऋ. ८।१०।१५ )

॥ इति चतुर्थः तन्मः ॥ ४ ॥

॥ इति तप्तव्रषाढके द्वितीयोऽध्यायः ॥ ७-२ ॥

॥ इति पञ्चमबर्षोऽध्यायः ॥ १५ ॥

[ १५६८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( देवासः च मर्तासः च ) देव और मनुष्य ( अमृतं युगे युगे हव्यवाहं ) भस्म और प्रत्येक यत्नमें हविकी शेषोंकी और पशुधानेवाले ( पायुं ईक्ष्यं त्वां ) रसक और स्तुतिके योग्य तुझे ( दूतं दधिरे ) दूत बनाते हैं, तथा ( जागृवि विश्वं विश्वपतिं ) जागृत, व्यापक और प्रताके रसक मन्त्रिकी ( नमसा निपेदिरे ) मनन करते हुए उपासना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६९ ] हे अग्ने ! ( उभयान् विभूपन् ) देव और मनुष्य इन दोनोंको सुखोचित करनेवाला तू ( अनुप्रता देवानां दूतः ) अनुकूल नियमके समान चलनेवाले देवोंका दूत होकर ( रजसी समीपसे ) पृथीक व इत लोकमें हवि पशुधानेके लिए जाता है । ( यत् ते ) इसलिये तेरी तरफ ( यत्तिं सुमतिं आवृणीमहे ) उत्तम कर्ममें भी मैं स्तुति भेजते हैं, ( अथ ) इसके बाद ( त्रिवरुथः ) तीन स्थानोंमें रहनेवाला तू ( अस्मिन् शिवः भव ) हमें तुझ सेनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ १५७० ] हे अग्ने ! ( हविष्कृतः ) यज्ञ करनेवालेके लिए ( गिरः जामयः ) स्तुतिवा बहिनके समान ( देदि-द्यावीः ) तेरा गुणमान करती हुई ( वायोः अनीके ) वायुके पास ( त्वां उपास्थिरन् ) तुझे प्रसीत करने स्थापित करती हैं ॥ १ ॥

[ १५७१ ] ( यस्य ) जिस अग्निने ( विश्वास्तु अस्तुते ) तीन पर्वोंवाले, कुले ॥ ( अथर्चं दिनं यद्धिः तस्यै ) और न बंधे ॥ वास्तु रते हुए हैं । उस अग्निमें ( आपः चित् ) जल भी ( पदं निदधा ) अपना स्थान रखता है ॥ २ ॥

जलका स्थान अन्तरिक्ष है । यहाँ अग्नि भी विद्युत् रूपमें है ।

[ १५७२ ] ( मीढुषः देवस्य पदं ) स्तुत्य और तेजस्वी अग्नि देवके स्थान ( अनाघृष्टाभिः उतिभिः ) शत्रु-शक्ति द्वारा बाधा न पशुधानेवाले संरक्षणसे युक्त हैं, उसकी ( उपदक् ) दूतिकी भी ( स्येः इव भद्रा ) सूर्यके समान कल्याण करनेवाली है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पञ्चमबर्षोऽध्यायः ॥



## पञ्चदश अध्याय

### अग्नि देवता

अग्नि देवता उपलब्ध हवन्ते होनी है । इस सम्बन्धमें कहा है—

१ धृपः अभ्यः न, देवयाहनाः अग्निः समिध्यते, तं हविषमस्तः ईडते [ १५३९ ]— वसवान् घोटा जिसप्रकार राजाको डोकर ले जाता है, उसीप्रकार अग्नि मातृतेके द्वारा प्रगलित किया जाता है । उस अग्निकी स्तुति हवन करनेवाले करते हैं ।

अग्नि देवताको अपने रथसे यज्ञकी जगह पर डोकर लाता है और हवि अर्पण करनेवाले यज्ञका उसकी स्तुति करते हैं ।

२ धृपणः यय धृपणं दीपतं बृहत् समिधीमहि [ १५४० ]— मातृति देनेवाले हम वसवान् और तेजस्वी अग्निकी समिधाभेति प्रवर्तित करते हैं ।

३ समिधानस्य ते बृहत् शुक्रासः अर्धयाः उर्दारते [ १५४१ ]— हे जाने ! प्ररोह होनेवाली तेरी बड़ी-बड़ी सड़ेज ब्राह्मणों निरस्त होती है ।

४ हविषमस्तः जनासः धिमं न सर्विरामुतिं प्रशस्तिभिः प्रदीतयेत् [ १५४५ ]— हविषों प्राप्तमें रहनेवाले यज्ञमान भिन्नके समान धीके हवनके साथ अग्निकी स्तुति करते हैं ।

५ पश्यांसं जातवेदसं यः देयताति उपतां हव्यानि द्विषि वेदयत् [ १५४६ ]— आपत्त स्तुति करने योग्य सर्वत्र अग्निकी हम स्तुति करते हैं, यह पश्यांसं खते जानेवाले हविर्हव्यान्ते दुष्टोक्तने देवोंके पास पहुंचाना है ।

६ विशः विशः अतिथिं पुरु-मित्रं अग्निं, य दृष-रूप मन्मथिः दुर्वै ययः स्तुपे [ १५४७ ]— प्रत्येक प्रजाजनके घरमें अतिथिके समान पुजनीय और बहुवते लोगोंको मित्र लगनेवाले अग्निकी हवि अर्पित करते । बुद्धारे यज्ञ उठानेवाले स्तोत्रति कुष्ठमें रखे गए अग्निकी हम स्तुति करते हैं ।

प्रत्येक घरमें अग्नि स्थापित की हुई होती है और उसमें हवन होता है ।

७ समिधा समिधं अग्निं विशा मुणे [ १५६० ]—

३७ [ साम हिणो भा. २ ]

समिधाभेति प्रबोधा हुई हुई अग्निकी में अपनी वाणीसे स्तुति करता है ।

इसमें समिधा उल्लेख अग्नि प्रगलित किया जाता है, यह कहा है ।

८ शुक्रिं धर्मं पायनं अग्नेरुः [ १५६७ ]— घुड़, स्थिर और पवित्र करनेवाले अग्निकी यज्ञमें आगे स्थापित किया जाता है ।

९ होतांरं पुन्यारं अनुहं कविं जातवेदसं सुमः ईमहे [ १५६७ ]— हवन करनेवाले, पशुओं द्वारा स्वीकार करने योग्य, बौद्ध व करनेवाले, शायी और सर्वत्र अग्निकी उत्तम बनेसे हम स्तुति करते हैं ।

१० देवासः अर्चांसः च अमृतं युगे युगे हव्यधाहं पायुं ईडयं स्वां जायुर्वि धिमुं विदपति नमसा निपे-दिरे [ १५६८ ]— देव और मनुष्य अमर, प्रत्येक यज्ञमें बाले गए हवनोय इन्द्रोंकी देवोंके पास पहुंचानेवाले, सरास और स्तुत्य, जायुत, व्यापक और प्रजापक पति अग्निकी नमस्कार पूर्वक उपासना करते हैं ।

११ अग्ने ! उभयान् विभूषय अनुमता देवानां वृतः रजस्वी रस्मीपसे [ १५६९ ]— हे जाने ! देव और मनुष्य इन दोनोंकी ही सुशोभित करनेवाला ॥ नियमानुसार चलनेवाले देवोंके वृत होकर यज्ञोक्तमें और इस लोकमें हवि पहुंचानेके लिए जाता है ।

१२ यत् ते धीर्तिं सुमतिं आरुणीमहे [ १५६९ ]— इसमिए तेरी ओर उत्तम यज्ञकर्मों की गई स्तुति भेजते हैं ।

१३ त्रिवरूयः अस्यान् शिव भव [ १५६९ ]— तीन स्वार्थोंमें रहनेवाला तू हमें सुख देनेवाला हो ।

१४ रवं अमानां जातिं मित्रः प्रियः ईश्वरः सखिः प्रयः सखा अखिः [ १५७६ ]— तू लोगोंका भाई, स्तुत्य, मित्रमें प्रिय मित्र है ।

१५ देवान् यज्ञः श्रुतं बृहत् स्वं दमं यक्षि [ १५७७ ]— तू देवोंके लिए यज्ञ कर । यज्ञके लिए महान् यज्ञशाला में प्रस्थ होकर तू यह ।

१६ तर्मांसि तिरः दधीतः वृषा अग्निः इरयते

[ १५३८ ]- अन्वकार दूर करनेवाला, वर्षाणीय और अलवान् अग्नि आहुति देकर प्रदीप्त किया जाता है ।

१७ मन्द्रं होतारं ऋत्विजं चित्रमानु विभावसुं अग्निं ईडे [ १५४३ ]- आनन्द देनेवाले, देवोंकी बुलाकर सानेवाले, ऋत्विजोंके अनुसार यज्ञ करनेवाले, विशेष तेजस्वी प्रकाशमान् अग्निकी हस्त स्तुति करते हैं ।

१८ विश्वस्मान् अराव्याः रक्षसः नः पाहि [ १५४५ ]- सब कजूस राक्षसोंसे हमारी रक्षा कर । अग्नि रोगबीजोंका नाश करता है । रोगबीज, रोगजन्तु राक्षस हैं । क्योंकि वे प्राणियोंका नाश करते हैं ।

१९ इतः अघतिः समिद्धः रौद्रः सुषुमान्, दक्षाय शवांश्चि [ १५४६ ]- अग्नि सर्वोंका स्वाधी, देवोंके पास जाने-वाला, प्रदीप्त, शत्रुओंको मर दिखानेवाला, उपसर्गोंको इष्ट परार्थ देनेवाला और सब बढ़ानेवाला है, ऐसा विलाई दिया है ।

२० चिकित् विमाति [ १५४६ ]-- वह ज्ञान बढ़ाते हुए प्रकाशता है ।

२१ रक्षातां अपाजन् धृता भाषा असिक्नीं पति [ १५४८ ]- तेजस्वी पत्नीओंकी बाहर कैंते हुए पहलू प्रकाशते रातमें यह प्रकाशता है । प्रकाशित होकर आगे जाता है ।

२२ भद्रः भद्रयाः सच्चमानः पश्वात् जायः स्वसारं अध्वेति [ १५४८ ]- कल्याण करनेवाला अग्नि उसके द्वारा सेवित होता है । बादमें शत्रुओंका नाश करनेवाला यह अग्नि अपनी बहिन उसके पास जाता है ।

यज्ञशालामें उप शालमें अग्नि जलाई जाती है । घोड़ी देरके बाद दिन हो जाता है और उपाका नाश होता है । अग्नि ही उपाका नाश करता है । क्योंकि अग्निके प्रदीप्त होनेसे घोड़ी देरके बाद ही उप काश समाप्त हो जाता है । उपा बहिन और अग्नि उपाका भाई है । घर यह अग्नि ही उपाका जाय अर्थात् नाश करनेवाला है ।

२३ नः विश्वाः गिरः सुस्तितीः वाजद्रविणसः [ १५५१ ]- हमारी सभी स्तुतिमें हमें उत्तम घरका स्वाधी बनाकर जल और पनसे युक्त करे ।

२४ ऊतये यज्ञासः पुरुवसुं पुरुप्रदास्तं अचछ [ १५५४ ]- हमारे सज्जनोंके लिए मे यज्ञ बहुत साध पन रखनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसनीय अग्निके पास पहुँचायें । अग्निमें यज्ञ करनेके कारण हमारा सरलण हो ।

२५ अमृत-मर्षेषु, विशि होता मन्द्रतमः [ १५५५ ]

प्रजाओंमें यह अग्नि अमर है, यह प्रजाओंमें हवन करनेवाला और आनन्द बढ़ानेवाला है । हवनसे रोगोंके दूर होनेके कारण लोगोंका आनन्द बढ़ता है ।

२६ मानुरीणां विशां धुर-पता तूर्णाः रथः सदा जवः अग्निः अदाभ्यः [ १५५६ ]- मानवी प्रजाओंका यह नेता, धीप्रतासे सब कार्य करनेवाला, रथके समान प्रगतिशील, हमेशा तत्त्वोंके समान कार्य करनेवाला अग्नि किसीके द्वारा दबाया नहीं जा सकता ।

२७ वाध्वान् मर्यः वाहसः प्रयासि अग्निं अश्नेति, पायकतोचिपः क्षयं [ १५५७ ]- राता मनुष्य अग्निसे बहुत अन्न और उत्तम घर पानेकी इच्छा करता है ।

२८ अग्निभुजः विश्वाः साङ्गान् अमृकः देवानां क्रतुः अग्निः तुविश्वस्तमः [ १५५८ ]- चढाई करनेवाले शत्रुओंकी हरानेवाला, किसीसे भी न हारनेवाला, देवोंके सिद्ध यज्ञ करनेवाला अग्नि बहुत तारा अन्न देनेवाला है ।

२९ बाहुलः अग्निः भद्रः । पतिः मद्रः । अश्वरः मद्रः । प्रशस्तयः भद्रः [ १५५९ ]- आहुति दिया गया अग्नि कल्याण करनेवाला है । तेरे दान कल्याण करनेवाले हैं । यज्ञ कल्याण करनेवाला है । स्तुतिप्राप्त कल्याण करनेवाली है ।

३० वृजत्यूँ मनः भद्रं कृणुष्व, येन सप्तस्तु सासहिः [ १५६० ]- शत्रुके साथ युद्ध करनेके समय मनको कल्याणकारक विचारते भरपूर कर, जिससे युद्धमें विजय मिल सके ।

३१ शार्पता भूति स्थिरा अथ तनुदि [ १५६० ]- स्वर्षा करनेवाले शत्रुके महान् और लुब्ध सेनाका तू पराभव कर ।

३२ गोमतः वाजस्यः ईशानः [ १५६१ ]- गायके बृषके साथ होनेवाले अजक वृ स्वामी है ।

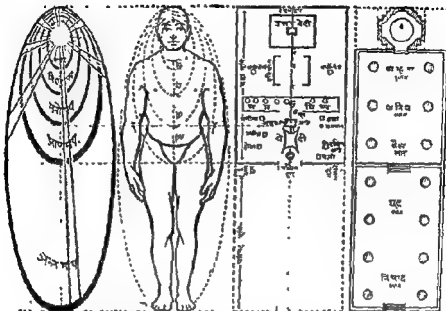
३३ हे जातयेदः ! अस्मे मदि अथः देहि [ १५६१ ] हे सर्वत ! हमें बहुत अन्न दे ।

३४ वसुः कविः गिरा ईडेन्यः, अस्तम्यं रेवत् वीदिहि [ १५६२ ]- निवास करानेवाला, शानी और पानीसे स्तुत्य तु चमकनेवाले वन हमें दे ।

३५ हे राजन् अग्ने ! वस्तो उपसः क्षपः [ १५६३ ]- हे अग्नि राजन् ! तू दिन रात शत्रुओंका नाश कर ।

३६ हे सिन्धुजम्भ ! रक्षसः पति दह [ १५६३ ]- हे तीव्र प्रकाशयुक्त अग्ने ! राक्षसोंको जला डाल ।

यज्ञशालाका चित्र



इस प्रकार इस अग्निका वर्णन इस अध्यायमें आया है । दूसरे किशोका वर्णन यहाँ नहीं है । सिर्फ अकेले अग्निका ही वर्णन है ।

अग्नि समिधाओसे और धोको आहुतिओसे प्रदीप्त किया जाता है । यह धी गायका ही होना चाहिए । गायके धोका कोयला हवाके अन्दर रहनेवाले बिचको सोल सेता है और हवा झुड़ करता है । अग्नि आहुतिमें डाले गए हुविर्दग्धोंकी जहाँ पहुँचना चाहिए वहाँ पहुँचा देता है । समिधाओसे प्रज्वलित यह अग्नि हुविर्दग्धोंको अतिवृक्ष करके हवामें धारों ओर फैला देता है । उसके कारण धातु झुड़ होती है और मनुष्योंकी निरीग और शीर्षजीवी बनती है ।

अग्नि हवनके लिए घर परमें प्रदीप्त किया जाता है । उसमें श्वेतके अनुसार हविर्दग्ध डालनेसे यह मनुष्योंका बल बढ़ता है और उन्हें शीर्षीय करता है । यह अग्नि शोध दूर करनेवाला और पवित्रता करनेवाला है । उसकी उपासना दिन रात हवनीय पत्राण देकर करनी चाहिए ।

यह अग्नि मनुष्योंकी और धातु आदि देवोंकी पवित्रता करनेवाला है, इसलिए वह प्रिय मित्र है । यह मनुष्योंका सखा है । वह उसमें रीतिसे पूजित होने पर सबका कल्याण करता है । कभी भी अकल्याण नहीं करता ।

सब राखवाँला, जो रोग फैलते हैं, यह नाश करता है । यह सब प्राणीसाम्राज्य कल्याण करता है । यह प्रज्वलित होने पर बहुत सर्वकर दिखाई देता है । पर यह आरोग्यके शत्रु-भौंकर ही नाश करता है और मनुष्योंका बल बढ़ाता है ।

मनुष्योंकी देहमें सब रोग अग्निके साथ ही जागर रहते हैं । मनुष्य शरीर एक दिव्य यज्ञशाला है । सब रोग अग्निके आकर इस यज्ञशालामें शतशतवारिक प्रत करते हैं । शरीरमें पूर्वा सत्य हुई कि सब अग्न्य रोग भी यहाँसे निकल जाते हैं । शरीरकी घर एवं प्राप्त हो, ऐसी इच्छा जो करते हैं, उन्हें इस शरीररूपी यज्ञशालामें अग्नि आप्त रक्षनी चाहिए ।

मर्त्य शरीरमें यह अग्न्य अग्नि रहता है और उसके साथ सब रोग यह जोवन यज्ञ चलाते हैं ।

इसलिए यथाग्नि उत्तम व्यवहारमें रहे, ऐसा प्रयत्न प्रत्येक-को करना चाहिए । शरीरमें यज्ञ किताप्रकार चल रहा है, उसे यज्ञकी प्रकियासे दिखाया है । यह अग्न्यात्मक यज्ञ-वर्णनसे यहाँ बताया है । उसे पादक सपनों और इस भान-कारिक वर्णनका ठीक अर्थ समझकर उसे अपने नियममें ले लें ।

## सुभाषित

१ जनानां ते कः जायिः [ १५३५ ]- लोगोंमेंसे तेरा भाई कौन है ?

२ दाशु अपहरः कः [ १५३५ ]- कौन चला सुखे लेकर यत करनेकी इच्छा करता है।

३ कस्मिन् धितः अस्ति [ १५३५ ]- तू किसके आश्रयों रहता है ?

४ हे अग्ने ! त्वं जनानां जायिः मित्रः प्रियः अस्ति [ १५३६ ]- हे आग्ने ! तू मनुष्योंका भाई और प्रिय मित्र है। मनुष्योंके शत्रुके अन्धर उज्यता रूपसे रहता है।

५ ईक्ष्वा सुस्त्रिभ्यः सखा [ १५३६ ]- तू प्रशसनीय और मित्रोंका मित्र है।

६ ईक्षेभ्यः नमस्यः तस्मांसि तिर दर्शतः घृषा सं दृश्यते [ १५३८ ]- जो प्रशसनीय, नमस्कारकरनेके योग्य, शपकार धूर करनेवाला, दर्शनीय और बलवान् है उसका तेज बढ़ता है।

७ घृषाः वयं घृषणं दृष्टव्यं दृष्ट्वै समिधीमहि [ १५४० ]- बलवान् हम घलवान् तेजस्वी महान् अग्नि को प्रबलित करते हैं।

८ समिधानस्य ते बृहन्तः शुक्रासः अर्चय उदीरते [ १५४१ ]- प्रदीप्त होनेवाले तेरी बड़ी और सफेद उवालावें निकलती हैं।

९ विश्वस्मात् अराण्यं रक्षस नः पाहि [ १५४५ ]- सब अनुवार रातमेंसे हमारी रक्षा कर।

१० यालेयु प्राय रभ [ १५४५ ]- मुढोंमें हमारी रक्षा कर।

११ नेदिष्ठं आपि त्वां इत् दि [ १५४५ ]- हमारे समीपका भाई तू ही है।

१२ देवतातये धृषे नक्षामहे [ १५४५ ]- वक्ता की सिद्धि और हमारे संबंधके लिए हम तेरा सहाय लेते हैं।

१३ इतः अरतिः समिद्धः रौद्र दृष्टाय मद्दर्शि [ १५४६ ]- तू स्वामी, प्रगतिशील, प्रदीप्त, शत्रुओंको अग्निसमानवान् और बल अमानेवाला दिशाई देता है।

१४ चिन्ति धिमाति [ १५४६ ]- शान्तवृत्त तू प्रदीप्त होता है।

१५ दशार्तिं नपाजन्, ब्रह्मता मासा अक्षिफर्ना धति [ १५४६ ]- तेजस्वी प्रकृष्य गिराते हुए अपने महान् तेजसे रात्रीमें बह भागे जाता है।

१६ नः गिरः सुक्षिती चाजत्रविणसः [ १५५१ ]- हमारी स्तुति हमें उत्तम धरका स्वामी तथा अथ व धनसे युक्त करे।

१७ नः गिरः क्षीरशोचिपं दर्शतं मच्छ यन्तु [ १५५४ ]- हमारी स्तुतियां प्रबलित और दर्शनीय अग्नि को प्रहृषे।

१८ जातवेदसं अग्निं पार्याणां दानाय [ १५५५ ]- शान्तिते उत्पन्न हुआ है, ऐसे अग्नि की धनके दानके लिए हम प्रार्थना करते हैं।

१९ मातृपीषां पिशां पुर-यता, तूर्णाः रधः सदा नयः अवाभ्यः [ १५५६ ]- मातृकी प्रजाओंमें भ्रमणारी, क्षीघ्रगतिसे काय करनेवाला, रथके समान भागे जानेवाला, सदा नया होकर कब बरनेवाला अग्नि कभी हराया नहीं जा सकता।

२० दाश्यान् मर्यः दाहसा प्रियांसि अग्निं अश्वनोति [ १५५८ ]- दत्ता मनुष्य अग्निसे प्रिय मत्त प्राप्त करता है।

२१ पायक-शोचिपः क्षयं [ १५५७ ]- पवित्र प्रकाश-बालोंसे धर प्राप्त करता है।

२२ अग्निमुजः विश्वाः साह्यान् अमृकः देवानां कतुः अग्निः तुविभ्रवस्तम [ १५५८ ]- पवार्ह करनेवाले शत्रुकी सब सेनाओंको हरानेवाला, किसीसे न हारनेवाला, देवोंका यत्न करनेवाला अग्नि बहुत अन्न देनेवाला है।

२३ आहुत अग्नि नः भद्रः [ १५५९ ]- आहुतिगोति तुप्त हुआ हुआ अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला है।

२४ रातिः भद्रा [ १५५९ ]- शान्त कल्याण करने-वाले हो।

२५ अध्वरः भद्रः [ १५५९ ]- यत्न कल्याण करने-वाला हो।

२६ प्रशस्तयः भद्राः [ १५५९ ]- स्तुतिमां कल्याण करनेवाली हों।

२७ वृजत्वं मनः भद्रं रुणुष्य [ १५६० ]- मुढवें मनको कल्याणमय विचार करनेवाला कर।

२८ समस्तु सासहिः [ १५६० ]- मुढमें शत्रुका परा-भव करनेवाला हो।

२९ शर्धतां गृरि स्थिप अवतमुहि [ १५६० ]- मुढ करनेवाले मुढ शत्रुसेनाको तू हरानेवाला हो।

३० अग्निष्टये ते घनेम [ १५६० ]- कल्याणके लिए तेरी पवित्र करने हैं।

३१ गोमतः पाजस्य ईशानः असौ महि धयः वेदि  
[ १५६१ ] गायत्रीं ताम मितनेवासे अत्रका तू स्वामी है ।  
हमें यहल अत्र रे ।

२२ अस्मभ्य रेवत् दीदिति [१५६२]- हमें चमकने-  
वाले धन थे ।

३३ हे राजन् । यस्तो. उत उपस क्षपः, रक्षसः  
प्रति दह [१५६३]- हे राजन् । शत्रो मोर दिनमें दानुर्भोषा  
नाम बर, दासताही जला है।

३४ शुचि धूप पावक अमरपूर पुर्ववार, अहमद  
नाथ जातपेक्ष सुम्ने: ईमारे [ १९९७ ]- बुद्ध, विष्णु,  
पवित्र करनेवाला, हितरहित धर्म भाने स्थापित बिजे  
गये, अनेकों द्वारा स्वीकार करने योग्य, होह न करनेवाले,  
मागी सर्वत अविगनी धर्मके लिए स्तोत्रों प्राप्ति करते हैं।

३५ वेपथस्तः महर्षिः भस्मृतः पापुः, ईज्यत्वा दूत  
दधिरे, जाप्रायिषिषु विप्रयति नमसा निवेदिरे [३५६३]  
—देव और मनुष्य भय, शक्त और स्तुति के योग्य ऐसे तुल्य  
मानिकों हृदिको बेबीँयी और पहुँचानेवाले दूत के चयन में स्वीकार  
करने की है तथा अगुत, ध्यापक और प्रचारकक अभिनी  
मनस्वार करण उपरांत करती हैं।

३६ अस्मान् शिवः मघ [१५६९]- हमार कल्याण  
करनेवाला हो ।

२७ मांदुपः देवस्य पदं जनाधृष्टाभिः ऊतिभिः  
[ १५७२ ] - स्तुत्य और दिव्य अभिजा स्थान शत्रुओं द्वारा  
बाधा न पहुँचाने के योग्य परीक्षण के साधनों से युक्त रहता है।

१८ उपद्वयः सूर्यः इव भद्रा [१५७२]— उत्तरी  
दृष्टि सूर्ये समान कल्याण वरनेवाली हं।

## उपमा

१ अभ्यः न देयसाहन [ १५३१ ]- मोक्षे तमाग  
इवोवा साहन यह शक्ति है ।

२ मानुष्याणां विशा पुर यता तूर्णां रथ जग्निः ।  
[ १५५६ ]- ब्रह्मणो प्रजापतेः मता सदा वीक्ष्यते ब्रह्म-  
णो रथे समानं यद् जग्निः ॥

३ मित्र न [ १५६५ ]— मित्रवे सत्तम इव भवति  
( प्रशस्त्यन्ति ) प्रशंसा करते हैं ।

४ जामयः देविशर्वाः [ १५७० ]- बहिने जितप्रकार  
स्तुति करती हं, उसीप्रकार ( गिरः ) हमारी वाणियाँ तेरी  
स्तुति करती हं ।

५ सूर्य। इव भद्रा उपहृक् [१५७२]- सूर्यके समान  
वर्तमान करनेवाली यस्तभी दृष्टि है।

पञ्चदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

क्र.सं.अंक	अवधि	विवरण	प्रकार	प्रमाण
१५३५	१९७१	गोतमो राजगुरु	अवि	पावनी
१५३६	१९७१	गोतमो राजगुरु	३३	१३
१५३७	१९७१	गोतमो राजगुरु	३३	१३
१५३८	१९७१	विश्वामित्रो गायत्री	३३	१३
१५३९	१९७१	विश्वामित्रो गायत्री	३३	१३
१५४०	१९७१	विश्वामित्रो गायत्री	३३	१३
१५४१	१९७१	विश्वामित्रो गायत्री	३३	१३
१५४२	१९७१	विश्वामित्रो गायत्री	३३	१३
१५४३	१९७१	विश्वामित्रो गायत्री	३३	१३
१५४४	१९७१	विश्वामित्रो गायत्री	३३	१३
१५४५	१९७१	विश्वामित्रो गायत्री	३३	१३



मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदसंख्या	ऋषिः	देवता	छन्दः
( २ )				
१५४६	१०११।१	जित आष्य	अग्निः	विष्टुप्
१५४७	१०११।२	जित आष्यः	"	"
१५४८	१०११।३	जित आष्यः	"	"
१५४९	८।८४।४	उजाना काव्यः	"	गायत्री
१५५०	८।८४।५	उजाना काव्यः	"	"
१५५१	८।८४।६	उजाना काव्यः	"	"
१५५२	८।६०।१	भर्गः प्रागायः	"	प्रगायः = ( विषमा बृहती समा सतीबृहती )
१५५३	८।६०।२	भर्गः प्रागायः	"	"
१५५४	८।७१।१०	सुरीति - पुष्पनीबृहत्याग्निरसौ	"	"
१५५५	८।७१।११	सुरीति - पुष्पनीबृहत्याग्निरसौ	"	"
( ३ )				
१५५६	३।११।५	विश्वामित्रो गाथिनः	"	गायत्री
१५५७	३।११।६	विश्वामित्रो गाथिनः	"	"
१५५८	३।११।७	विश्वामित्रो गाथिनः	"	"
१५५९	८।१९।१९	सोमसिः काव्यः	"	काण्डुपः प्रगायः = ( विषमा ककुप्, समा सतीबृहती )
१५६०	८।१९।२०	सोमसिः काव्यः	"	"
१५६१	१।७३।४	गोतमो राहुगणः	"	उष्टिक्
१५६२	१।७३।५	गोतमो राहुगणः	"	"
१५६३	१।७३।६	गोतमो राहुगणः	"	"
( ४ )				
१५६४	८।७४।१	गोषवन् आत्रेयः	"	अनुष्टुप् प्रगायः = ( अनुष्टुप् + गायत्री )
१५६५	८।७४।२	गोषवन् आत्रेयः	"	"
१५६६	८।७४।३	गोषवन् आत्रेयः	"	"
१५६७	६।१५।७	भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, गीतहव्य आग्निरसौ वा	"	जयती
१५६८	६।१५।८	भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, गीतहव्य आग्निरसौ वा	"	"
१५६९	६।१५।९	भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, गीतहव्य आग्निरसौ वा	"	"
१५७०	८।१०७।१३	प्रयोगो भार्गवः, पावस्वोनिर्बाहृस्पत्यो वा, गृहपतिवशिष्टो सहस्रः पुत्रो वाग्यतरो वा	"	गायत्री
१५७१	८।१०७।१४	प्रयोगो भार्गवः, पावस्वोनिर्बाहृस्पत्यो वा, गृहपतिवशिष्टो सहस्रः पुत्रो वाग्यतरो वा	"	"
१५७२	८।१०७।१५	प्रयोगो भार्गवः, पावस्वोनिर्बाहृस्पत्यो वा, गृहपतिवशिष्टो सहस्रः पुत्रो वाग्यतरो वा	"	"

## अथ षोडशोऽध्यायः ।



अथ सप्तमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ७-३ ॥

[ १ ]

( १-२१ ) १, ८, १८, विष्वातिभिः काण्वः; २ विदवाभिः वापिना; ३-४ अयः प्रागायः; ५ स्तोमभिः काण्वः; ६, १५ शुभ.तोष आशोभिः; ७ सुकश आभिस्तः; ८ विश्वकर्मा भीवनः; ९ अनावतः पाद्वत्तेभिः; ११ भरद्वाजो बाह्वत्स्यः; १२ गेतामो रत्यूयः; १३ अजिन्वा भरद्वाजः; १४ वामदेवो गेतामः; १५ हव्यतः प्रागायः; १७ देवातिभिः काण्वः १९ वासतिभिः ( धृष्टिपुः काण्वः ); २० यवतवारदीः २१ अजिमीध. ॥ १, ३-४, ७-८, १५ १७-१९ इत्यः; २ इन्द्राग्नीः ५ अग्निः ६ वरुणः; ७ विश्वकर्मा; १०, २०, २१ यवमायः सोमा; ११ प्रयाः १२ मरुताः ॥३ विश्वे देवाः १४ आश्विपुत्रिभिः १६ अग्निः हव्यदि वा ॥ १, ३-४, ८, १७-१९ प्रागायः ( विद्यमा बृहती, सप्ता सप्तोबृहती ); २, ९-७, ११-१६ गायत्री; ९ विन्दुपु; १० मायिभिः; २० उजिह्वः; २१ अग्नी ॥

१५७३ अभि त्या पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमभिरायवः ।  
समीचीनास क्रमवः समस्वरद्वारा गृणन्त पूर्वेषु ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।७ )  
१५७४ असदिन्द्रो वामुषे वृण्ययश्चो मदे सुतस्य विष्णावि ।  
अद्या तमस महिमानमायवोऽड्डु शुबन्ति पूर्वेषा ॥ २ ॥ १ ( रि ) ॥

[ या० १८ । उ० नासि । स्व २ ] ( ऋ. ८।१।८ )

१५७५ प्र वामर्चनरुक्मिणो नीधाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृषे ॥१॥ ( ऋ. ३।१।९ )  
१५७६ इन्द्राग्नी नयति पुरा दासपत्नीरधुनुवम् । साकमेकेन कमेणा ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।६ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १५७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आयवः ) उपासक वनुव्य ( पूर्वपीतये ) अथय रत्नवान करनेके लिए ( स्वा स्तोमेभिः अभि ) तेरी स्तोमोति स्तुति करते हैं । ( समीचीनासः क्रमवः ) ओष वृद्धिकरते अथ ( समस्वरम् ) तेरी स्तुति करते हैं, ( द्वाः पूर्वं गृणन्तः ) वह गृहण मुख्य ऐसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

मासिक लोग, अथ और वह ये सब इन्द्रके ही गुण गाते हैं ।

[ १५७४ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( सुतस्य विष्णावि अथे ) सोमका व्यापक जानक्य प्राप्त होनेपर ( अस्य इत् वृण्यय शवः ) इस यजमानके योग और बलको बढ़ावा है । इसलिये ( आयवः अद्य ) वनुव्य मान जो ( पूर्वेषा ) पहलेके समान ॥ ( अस्य मां महिमानं अनुधुवन्ति ) इस इन्द्रको वस महिमाका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

[ १५७५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! ( उजिह्वन्तः वां प्रार्चन्ति ) वेवपायी तुम्हारे भर्चना करते हैं, ( नीधाविदः जरितारः ) सामागमक तेरी स्तुति करते हैं, ( इषः आ वृषे ) अथके सिद्ध मां तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ॥१॥

[ १५७६ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! तुम ( दासपत्नीः नयति पुरा ) वामुषीको मन्त्रे नगरिवाँको ( यक्षेन कर्मणा साकं ) एक ही प्रयत्नसे एक ही समय ( अधुनुवम् ) हिला लेते हो ॥ २ ॥

१५७७ इन्द्राग्नी अपसस्पथुष प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्यादे अनु ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१२।७ )

१५७८ इन्द्राग्नी तविषाणि वात्सपस्थानि प्रयाक्षसि च । युवोरप्सुर्वथहितम् ॥ ॥ २ ( टा ) ॥  
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।१२।८ )

१५७९ अग्ध्युदे पु शचीपत इन्द्र विश्वामिरुविमिः ।  
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु नूर चरामसि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।९ )

१५८० पौरौ अश्वस्य पुरुकृद्रवामस्युत्सौ देव हिरण्ययः ।  
न किं हि दानं परि मधिपस्व यद्यद्यामि तदा मर ॥ २ ॥ ३ ( जु ) ॥  
[ धा० १७ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ८।६१।१० )

१५८१ त्वंक्षिहि चेरवे विदाः भगं वसुचये ।  
उद्रावपस्व मधवन्मविष्टये उदिन्द्राशमिष्टये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।१० )

१५८२ त्वं पुरु सहस्राणि श्रुतानि च यूया दानाय मध्वमे  
आ पुरंदरं वक्रुम विप्रवचस इन्द्रं मायन्तोऽवसे ॥ २ ॥ ४ ( फौ ) ॥  
[ धा० १५ । उ० २ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ८।६१।८ )

[ १५७७ ] ( इन्द्राग्नी ) हे इन्द्र और अग्ने । ( धीतयः ) होता याहि ऋत्विज ( ऋतस्य पथ्या अनु ) धर्मके भागते ( अपस परि ) हमारे यज्ञमें ( उप प्रयन्ति ) आकर बैठते हैं ॥ ३ ॥

[ १५७८ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने । ( वां तविषाणि प्रयाक्षसि वात्सपस्थानि ) तुम्हारे बल और मज्ज एकत्र ही रहते हैं । ( युवो हितं ) तुम्हारे बल ( अप्सुर्वथ ) धूम कर्मोंकी श्रेयशा देनेवाले हैं ॥ ४ ॥

[ १५७९ ] हे ( शचीपते इन्द्र ) शक्तिमान् इन्द्र । ( विश्वामिः ऊनिमिः ) सब प्रकारकी सरसणकी शक्तिवाले ( उ जु शग्धि ) तू उत्तम रीतिसे तमर्च है । हे ( शूर ) नूर इन्द्र । ( वसुचिर्दं ) धन सम्पन्न ( यशसं ) यशस्वी ( भगं ) भागवान्के समान ( त्वा हि अमुचरामसि ) तेरे अनुकूल होकर हय चलते हैं ॥ १ ॥

[ १५८० ] हे इन्द्र । तू ( अश्वस्य पौरः ) घोड़ोंकी पुष्ट करनेवाला और ( यूयां पुणकृत् अस्ति ) बाघोंका पीवण करनेवाला है । हे ( देव ) देव । ( हिरण्ययः उत्सः ) सोनेके समान जलका होज जंसे होता है, वैसा ही तू तृप्ति करनेवाला है । हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( स्वे दानं ) तेरे बल ( न किं हि परमधिपत् ) कोई भी मर्द नहीं कर सकता, ( यत् यत् यामि ) जो जो मैं माँगता हूँ, ( तत् आ मर ) यह धर्म भरपूर दे ॥ २ ॥

[ १५८१ ] ( त्वं वसुचये हि यद्दि ) तू धन देनेके लिए अवश्य जा, ( चेरवे भगं विदाः ) सदाशरण करनेवालेको भाग दे । हे ( मधवन् ) धनवान् इन्द्र । ( शमिष्टये उत्तं वावुषस्व ) भाग्योंकी इच्छा करनेवाले वृद्धोंको दे, तथा हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( अश्वं हृष्टये ) घोड़ोंकी इच्छा करनेवाले मुझे ( उत्तं ) घोड़े दे ॥ १ ॥

[ १५८२ ] हे इन्द्र । ( त्वं ) तू ( पुरु सहस्राणि श्रुतानि च ) बहुत हजार अपना संकर्मों ( यूया दानाय मध्वमे ) भाग्योंके सुख बाल देनेवालेको देता है । ( पुरंदरं इन्द्रं ) धर्मके नगरोंको तोड़नेवाले इन्द्रको ( अवसे ) अपने रक्षणके लिए ( मायन्तोऽवसे ) शासन करनेवाले शासकका शास करनेवाले हय ( आ यष्टस्य ) बलाते हैं ॥ २ ॥

१५८३ या विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।

मघोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्रये

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।३।६ )

१५८४ अथ न गीर्मा रथ्यश्शुदानवो मर्मुज्यन्ते देवयवः ।

उभे तौके तनये दस्म विश्वते पवि राघो मघोनाम्

॥ २ ॥ ५ ( पु ) ॥

[ धा० १५ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ. ८।१०।३।७ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१५८५ इमं मे वरुण भूधौ हवमघा च मुहय । त्वामवस्युरा चके

॥ १ ॥ ६ ( य ) ॥

[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।११।१९ )

१५८६ कया एवं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ७ ( य ) ॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।११।१९ )

१५८७ इन्द्रमिद्वतातय इन्द्रं प्रयत्यधरे ।

इन्द्रश्समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।५ )

[ १५८३ ] ( होना मन्द्रः यः ) यमर्ने देवीकी बुलानेवाला और आत्मन् देनेवाला जो अग्नि है, वह ( विश्वा वसु ) सब प्रजापते के धन ( जनानां दयते ) लोगोंको देता है । ( अस्मै आनये ) इस अग्निको ( अघोः न ) सीमरतके ( प्रथमानि पात्रा ) मुख्य पात्र और ( स्तोमाः प्रयन्तु ) स्तोत्र प्राप्त हों ॥ १ ॥

[ १५८४ ] ( दस्म विद्वते ) हे वृषन् और प्रजापालक अग्ने ! तेरी ( शुदानवः देवयवः ) उत्तम वाण देनेवाले और वैश्व प्राप्त करनेवाले यज्ञमान ( रथ्यश्शुदानवः ) यमर्ने जोड़े जानेवाले घोड़ेके समान ( गीर्माः मर्मुज्यन्ते ) अपनी बाणसे स्तुति करते हैं । ऐसा तु यज्ञ करनेवालोंके ( तनये तौके उभे ) पुत्र और धौत्र इन दोनोंको भी ( मघोर्ना रथ्यः पवि ) यमवानोंके धन दें ॥ २ ॥

यमर्ने जोड़े जानेवाले घोड़ोंका उस्ताह् बढ़ानेके लिए रथकी हाँकनेवाले उनकी स्तुति करते हैं, उसीप्रकार धन करनेवाले लोग अग्निकी स्तुति करते हैं ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५८५ ] हे ( वरुण ) वरुण ! मे इमं हवे भुधौ मेरी यह प्रार्थना सुन ( अथ मुहय च ) और भान हमें सुखी कर । ( अवस्युरा चके ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं । १ ॥

[ १५८६ ] हे ( वृषन् ) दृष्ट कल देनेवाले इन्द्र ! ( कया ऊत्याभि ) कौमतेरक्षणसामर्थ्यसे ( त्वं नः अभि प्रमन्दसे ) तू हमें अधिक आनन्द देता है ? ( कया स्तोतृभ्यः आभर ) कौनसी रखवाणियोंसे तू स्तोत्रार्थको भरपूर भरण देता है ? ॥ १ ॥

[ १५८७ ] ( देवतातये ) यमर्ने के लिए ( इन्द्रं हव हवामहे ) इनको ही हम बुलाते हैं ( अरधरे प्रयति इन्द्रे ) अहितामय यमर्ने वृष होते ही हम इन्द्रको बुलाते हैं । ( समीके वनिनः ) यमर्ने भवतलों ( इन्द्रं ) इन्द्रको ही बुलाते हैं और ( धनस्य सातये ) यमर्ने धन करनेके समान ( इन्द्रं ) इन्द्रको ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

३८ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

- १५८८ इन्द्रो मद्गा रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।  
 इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे स्वानास इन्द्रवः ॥ २ ॥ ८ ( वा ) ॥  
 [ घा० १५ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१।६ )
- १५८९ विश्वकर्मन्हविषा नावृषानः स्वर्गं यजस्व तन्व३५ स्वा हि तै ।  
 मुदांस्त्वन्पे अभितो जनास इहासाक मघया सूरिस्तु ॥ १ ॥ ९ ( ला ) ॥  
 [ घा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १०।८।६ )
- १५९० अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेपाशसि तरति सयुग्मभिः सूरौ न सयुग्मभिः ।  
 धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।  
 पिश्या यद्रूपा परिपास्युक्रमिः सप्तास्येभिर्भ्रकभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।१ )
- १५९१ प्राचीमनु प्रदिशं याति चैकितस्तस्य रश्मिभिर्वसते दक्षतो रथो दैव्यो दक्षतो रथः ।  
 अरभन्नुक्तानि पौ३५स्पेन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।  
 वज्रस्य यद्रूपयो अनपच्युता समस्वनपच्युता ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।१२ )

[ १५८८ ] ( इन्द्रः शय मद्गा ) इन्द्रने अपनी शक्तिकी महिवाते ( रोदसी पप्रथस्व ) पुलक और पुषिवीना विस्तार किया । ( इन्द्रः सूर्यं अरोचयत् ) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया, ( इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि ) इन्द्रमें ही तारे भुवन ( येमिरे ) रहते हैं । ( स्वानासः इन्द्रवः इन्द्रे ) छाने हुए सोमरस इन्द्रको दिए गये हैं ॥ २ ॥

[ १५८९ ] हे ( विश्वकर्मन् ) सब कर्म करनेवाले ईश्वर ! ( हविषा नावृषानः ) हविसे बढनेवाला ( स्वर्गं ) स्वर्ग तु ही ( तन्व्यं स्वा हि ते यजस्व ) अपने शरीरको स्वर्ग द्वारा किए जानेवाले विश्वरूपी यज्ञमें अर्पण कर । ( अन्द्रे जनासः अभितः मुदास्तु ) अन्ध यज्ञ करनेवाले जन धारों दिशाओंमें भूल्लित होकर गिर जाएं । ( इह ) यहाँ बह ( मघया ) पनवान् इन्द्र ( सूरिः अस्माकं अस्तु ) तथा सब जानी हुयारे होकर रहें ॥ १ ॥

[ १५९० ] ( पुनानः ) छाने जानेवाला सोम ( हरिण्या अया रुचा ) हरे रसके तेजसे ( सूरः सयुग्मभिः न ) जिसप्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे अन्यकारका नाश करता है, उसीप्रकार ( पिश्या द्वेपाशसि तरति ) सब वायुओंका नाश करता है, ( पुनानः हरिः अरुष ) पवित्र होनेवाला हरे रसका सोम चमकता है तथा ( पृष्ठस्य धारा रोचते ) छलनीकी पीठपर इसकी धारा भी चमकती है हे सोम ! तू ( सप्तास्येभिः ) सात मूलसि-तेजोसि ( अक्षजभिः ) और किरणोंसि ( पिश्या रूपा परिपासि ) सब तेजस्वी पदार्थोंको अपेक्षा श्रेष्ठ होकर जाता है ॥ १ ॥

[ १५९१ ] ( चैकितस्तु प्राचीं प्रदिशं अनुयाति ) सर्वज्ञानो सोम पूर्ण विद्याकी जाता है, तब ( दैव्य- दक्षतः रथः रश्मिभिः स्वं यतते ) दिव्य, और सुन्दर ऐसा तेरा रथ किरणोंके कारण तेजस्वी चलता है । ( पौ३५ उक्तानि यामन् ) पौषधका वर्णन करनेवाले स्तोत्र इन्द्रकी प्राप्त होते हैं । स्तोत्रा उनसे ( जैत्राय इन्द्रं हर्षयन् ) विजयके लिए इन्द्रकी प्राप्त करते हैं ( घन्तः च ) पथ भी इन्द्रकी प्राप्त होता है, हे सोम और इन्द्र ! ( यत् समस्त अनपच्युता मघयाः ) तब तुम दोनों युद्धमें नहीं हारते ॥ २ ॥

१५९२ त्व२६ त्वरपणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिमिदं ।

परावतो न साम तद्यन्त्रा रणन्ति धीतयः ।

त्रिधातुभिररुपीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ ३ ॥ १० (छे) ॥

[ धा० ४१ । उ० ५ । स्व० ७ ] ( ऋ १।११।१२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ १ ]

१५९३ उत नो योषणि धियमभ्यसां वाजसांश्वत । नृवक्त्रुणुवये ॥ १ ॥ ११ (यो) ॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।५१।१० )

१५९४ ऋक्षमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यदावसः । विद्वा कामस्य चेतसः ॥ १ ॥ १२ (य) ॥

[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।८५।८ )

१५९५ उप नः घनवो गिरः गृध्वन्त्रमृतस्य ये । सुमुडीका भवन्तु नः ॥ १ ॥ १३ (री) ॥

[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।५१।९ )

१५९६ प्र वां माहि घयी अभ्युपस्तुतिं भ्रामहे । नृची उप प्रक्षतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।५६।५ )

१५९७ पुनाने तन्या मियः स्पेम दक्षेण राजयः । उद्याये सनाटवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।५६।६ )

[ १५९२ ] हे सोम ! ( त्वं ह ) तूने ( पणीनां त्वत् घसु ) जग्मिषि उत धमने ( विदः ) ज्ञाना किया । ( ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः ) यत्ने आधार भूत जग्मिषि ( स्वे दधे सं मर्जयसि ) अपने यत्ने स्वात्मने उत्तम प्रकारसे हृष्ट होता है । ( परावतो न साम तत् ) इतने वह सामपाल मुननेमें जाता है ( यत्र धीतयः रणन्ति ) जहाँ यत्न करनेवाले द्रव्यमान आवणित हुए हुए बोलते हैं, ( त्रिधातुभिः अरुपीभिः ) तीन स्थान पर प्रकाशनेवाले तेजोंसे ( रोचमानः ) भगवन्नेवाला सोम ( ययः दधे ययः दधे ) भग्न होता है, निरचयसे भग्न होता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५९३ ] हे प्रया वेध ! ( उत ) और ( यो-षणि अभ्य-सां वाजसां ) पाय, घोड़े और भग्न वेनेवाली तया ( नृवत् ) पुत्र भयवा सेवक देनेवाली ( धियं ) बुद्धि को ( भः ऊतये कृणुहि ) हमारे सरलपने लिए उपयोगी बना ॥ १ ॥

[ १५९४ ] हे ( सत्य-दावसः नरः ) तत्त्व बलसे युक्त और मरते । ( शशमानस्य स्वेदस्य ) तुम्हारी स्तुति करनेके कारण पशोमने तर - ब - तर और ( चेतसः ) फलकी इच्छा करनेवालोंको ( कामस्य विदुः ) इष्ट फल दे ॥ १ ॥

[ १५९५ ] ( ये अभ्युपस्तुत्य स्तुतयः ) जो अगर प्रजापतिके पुत्र हों, वे ( नः गिरः उप गृध्वन्तु ) हमारी स्तुति मुझे और ( नः सुमुडीकाः भवन्तु ) हमें उत्तम सुप्त देनेवाले हों ॥ १ ॥

[ १५९६ ] हे ( नृची ) पवित्र द्वाधवुषिबियो ! ( प्रक्षतये उप ) स्तुति करनेके लिए तुम्हारे पास गाकर ( घयी वां ) सेतली तुम घोरोंको ( उपस्तुतिं माहि अभि भ्रामहे ) स्तुति और स्तोत्र यत्ने प्रजापतिमें भवित करते हैं ॥ १ ॥

[ १५९७ ] हे शेषिके ! ( तन्या दक्षेण ) अपने शरीरसे और बलसे तुम ( मियः पुनाने ) मत और यनमान इन दोनोंको मुष्ट करते हुए ( राजयः ) प्रजापति होते हो और ( सनाटवम् उद्याये ) हमें दान बत करते हो ॥ १ ॥

- १५९८ मही मित्रस्य साधयस्तन्वी पित्रती ऋतम् । परि यज्ञं निषेदधुः ॥ ३ ॥ १४ ( का ) ॥  
[ धा० ६ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ४।१६।७ )
- १५९९ अयमु वे समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वक्षस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३०।४ )
- १६०० स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य वे । विभूतिरस्तु स्रुता ॥ २ ॥ ( ऋ. १।३०।९ )
- १६०१ उर्व्वेतिष्ठ न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रवो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ १५ ( ह ) ॥  
[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।३०।६ )
- १६०२ गाव उप वदावट मही यक्षस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७२।१२ )
- १६०३ अन्धारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करं मधु । अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७२।११ )
- १६०४ सिञ्चन्ति नमसावटमुद्याचक्रं परिज्मानम् । नीचीनयारमक्षितम् ॥ ३ ॥ १६ ( रा ) ॥  
[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।७२।१० )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ १५९८ ] ( मही ) हे बड़ी घाघापुषिबो ! तू ( मित्रस्य साधयः ) अपने मित्रों, जो तुम्हारी स्तुति करती है, अभिलषित फल देती हो । ( कर्तं तरन्ती ) यज्ञका रक्षण करती हुई और ( पित्रती ) यज्ञको पूर्ण करती हुई ( यज्ञं परि निषेदधुः ) यज्ञको आभय देती हो ॥ ३ ॥

[ १५९९ ] हे इन्द्र ! ( अयं कपोतः ) यह कम्बूतर जिसप्रकार ( गर्भधि इव ) अपनी कद्दूतरीके पास जाता है, उसीप्रकार ( ते समतसि ) यह तेरे पास आता है, इसलिये ( नः तसु बन्धः ) हमारी यह शरणा ( ओहसे ) दू विचार-पूर्वक लुप्त हो ॥ १ ॥

[ १६०० ] हे ( राधानां पते ) फनेके स्वामी और ( गिर्वाहः ) स्तुतिके बोध ( वीर ) गूर इन्द्र ! ( यस्य ते स्तोत्रं ) जिस ( वे ) स्तोत्र है, उस तेरी ( विभूतिः ) स्रुता अस्तु । वैभक्तस्पर्श और संयत्स्वहय वाणी तस्य हो ॥ २ ॥

[ १६०१ ] हे ( शतक्रवो ) शक्यों कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( अस्मिन् वाजे ) इस युद्धमें ( नः ऊतये ) हमारे सरलणके लिए दू ( ऊर्व्वेऽस्मिन् ) सँघार रह । हय सुभसे ( अन्येषु ) अन्य कार्योंके विषयमें ( सँ ब्रवावहै ) मिलकर विचार करें ॥ ३ ॥

[ १६०२ ] हे ( गावः ) बायो ! ( अवटे उप वद ) यज्ञके स्थान पर आओ और अपना शस्त्र करो, तुम ( मही यक्षस्य रप्सुदा ) महापु यज्ञके फल देनेवाली हो । ( उभा कर्णा हिरण्यया ) तुम्हारे दोनों कान सोनेके आभूषणसे अलङ्कृत हैं ॥ १ ॥

[ १६०३ ] ( अन्ध्रयः ) आधरणीय अण्डयुं ( अन्धारमिद् ) यज्ञके पास आ गए हैं । ( निषिक्तं मधु ) घबे हुए इस भीष्टे सोधरतणो ( अवटस्य विसर्जने ) महावीरके विसर्जन करनेके समय ( पुष्करं ) कलशमें रखा जाता है ॥ २ ॥

[ १६०४ ] ( उद्या-चक्रं ) जिसके ऊपरके भागमें चक्र है ( परिज्मानं नीचीनयारमक्षितम् ) और चारों ओरसे नीचे झुके हुए नीचेके डारके पास जो शीश गहों हुआ है, ऐसे ( अवटे नमसा सिञ्चन्ति ) महाधोरको नमस्कार करके यज्ञ करनेवाले हवन करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

- १६०५ मा मेम मा अमिचमोत्रस्य सख्ये तव ।  
महचे नृथ्यो अमिचक्ष्यं कृतं पदयेम तुर्वशं यदुम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।७ )
- १६०६ सन्ध्यामनु स्निग्धं वाक्से वृषा न दानो अस्य रोषति ।  
सध्वा संपृक्ताः सारथेण धेनवस्तुषमेहि द्रवा पिब ॥ २ ॥ १७ ( वी ) ॥  
[ धा० १० । उ० नास्ति । २७० ४ ] ( ऋ. ८।१।८ )
- १६०७ इमां उ त्वा पुरुवसौ गिरो वर्धन्तु यां सम ।  
पावकवर्णाः शुचयो विपथितोऽभि स्तोमैरनूयत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।९ )
- १६०८ अयं सहस्रमूर्धामिः सहस्रकृतः समुद्र इव पप्रये ।  
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे श्रवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥ १८ ( रि ) ॥  
[ धा० १८ । उ० नास्ति । २७० २ ] ( ऋ. ८।१।१० )
- १६०९ यस्पायं विश्वं आर्यो दासः क्षेत्रधियां अरिः ।  
तिरिदिधै रुक्षमे पथीरभि तुभ्येस्तो अज्यते रथिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।११ )

[ ४ ] अनुषो खण्डः ।

[ १६०५ ] हे इन्द्र ! ( उग्रस्य तव सख्ये मा मेम ) महान् वीर ऐसे तेरी मित्रतामें बहुरह हूय द्वितीयेन बने । ( मा अमिचम ) हूय न थके । ( नृथ्यः ते ) उपासकीकी कामनातृप्त करनेवाले तेरे ( महत् कृतं अमि चक्ष्यं ) महान् कार्यं वर्णनीय हो गए हैं । ( तुर्वशं यदु पदयेम ) हूय तुर्वश और यदुकी आनयित अवस्थामें रहें ॥ १ ॥

[ १६०६ ] ( वृषा ) यज्ञवान् इन्द्र ! तू ( सध्वां स्निग्धं यजु ) अपने भावों हावने भागते ( पावसे ) सध्वों के आधार बैठा है । ( दातः अस्य न रोषति ) कान्तेनशला द्विस्तु शत्रु इति कथं नहीं वे सज्जता । ( सारथेण संपृक्ताः धेनवः ) हाथकी सखीके महत्के समान सीधे दूधले वृक्ष पायेकि सभाय आनन्दवाक्य कीय ! ( नूय मेहि ) तू यह ! सीध आ । ( द्रवा ) यज्ञमें सीध बहुत और हे इन्द्र ! ( पिब ) सीध पी ॥ २ ॥

[ १६०७ ] हे ( पुरुव-यसो ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( सम याः इमाः गिरः ) गैरी जो वे क्षुतिमां हैं, वे ( त्वा यर्य-तु ) तुझे बढ़ावें । ( पावक-वर्णाः शुचयः विपथितयः ) अग्निने समान तेजस्वी और शुद्ध शान्ति ( स्तोमैः अभ्य-नूयत ) स्तोत्रोंसे तेरी क्षुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १६०८ ] ( अयं ) यह इन्द्र ( सहस्रं कपिभिः सहस्रकृतः ) हजारों अप्सिपों द्वारा सलवान्ने कपयें प्रतिष्ठ किया गया है । वह ( समुद्रः इव पप्रये ) समुद्रके समान विस्तृत है । ( अस्य सत्यः ॥ महिमा श्रवः ) इस इन्द्रकी बहु सत्य महिमा और यह बल प्रतिष्ठ है, ( यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे ) यज्ञों और ब्राह्मणों के राज्यमें उसकी क्षुति होती है ॥ २ ॥

[ १६०९ ] ( विश्वः अरिः आर्यो अयं ) सब लोकोंका स्वामी तथा श्रेष्ठ यह इन्द्र भी ( दासः अस्य दोष धिया ) दासके समान जिस यज्ञके लक्ष्मणोंके रत्ना करता है, ( स. ) यह यज्ञ ( अयं दशमे पथीरभि तिरः चित् ) अयं, दशम और पथि इनमें गुप्त रहकर भी ( तुभ्या इत् अज्यते ) तुझे ही हवि प्रदान करता है ॥ १ ॥



१६१० <sup>३ १ ३ १ २</sup> तुरण्ययो मधुमन्तं <sup>३ २ ३ १ २</sup> घृतश्चुतं <sup>३ १ २</sup> विप्रासो अर्कमावृचुः ।

<sup>३ १ ३ १ २</sup> अस्मे रयिः पमये वृण्यन् <sup>३ १ ३ १ २</sup> श्रवोऽस्मे स्वानास इन्द्रवः ॥ २ ॥ १९ ( व ) ॥

[ घा० १४ । उ० १ । २२० १ ] ( ऋ. ८।९।१० )

१६११ <sup>१ २</sup> गोमन्त इन्दो <sup>३ १ ३ ३ १ २</sup> अयवत्सुतः सुदक्ष धनिव । <sup>१ २ ३ १ ३ १ २</sup> शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०९।४ )

१६१२ स नो हरीणां पते इन्दो देव प्सरस्तमः । सखेव सख्ये नयो रुचे भव ॥ २ ॥

( ऋ. ९।१०९।९ )

१६१३ सनेमि त्वमस्मदा अदेव कं चिद्विप्रिणम् ।

<sup>३ १ ३ १ ३ १ ३ १</sup> साह्यान् इन्दो परि बाधा अप द्रयुम् ॥ ३ ॥ २० ( ल ) ॥

[ घा० ९ । उ० नास्ति । २२० १४ ] ( ऋ. ९।१०९।६ )

१६१४ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते ऋतुं रिहन्ति मध्याभ्यञ्जते ।

<sup>३ १ ३ १ ३ १ ३ १</sup> सिन्धोर्कल्हासे पतयन्तमुक्ष्णन् <sup>३ १ ३ १ ३ १</sup> हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।४१ )

[ १६१० ] ( तुरण्ययो विप्रासः ) यत् करनेमें शीघ्रता करनेवाले बानी ( मधुमन्तं घृतश्चुतं ) नम्र द्रव्यभीर घीही अकृति मिलके लिए भी जाती है, ऐसे ( अर्कं मावृचुः ) द्रव्य इन्द्रकी अर्चना करते हैं । ( अस्मे रयिः पमये ) हमारा हविषयी पन प्रसिद्ध हो । ( वृण्यन् श्रावोऽस्मे ) सोम देनेवाले बल प्रसिद्ध हों और ( अस्मे स्वानासः इन्द्रवः ) हमारे द्वारा बुद्ध किए गए सोमरस प्रसिद्ध हों ॥ २ ॥

[ १६११ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( नः गोमन्तं अभ्ययत् ) हमें बाध और घोटनेसे युक्त घन ( धनिव ) है । हे ( सु-दक्ष ) उत्तम बल सम्पन्न सोम ! ( सुसन् ) रस निकालनेके साथ ( गोषु शुचिं वर्णं च धारय ) गायके रूपसे युद्ध वर्णकी धारण कर ॥ १ ॥

पायका द्रव्य सोममें मिला ।

[ १६१२ ] ( हरीणां पते देव इन्दो ) हे हरे स्वके अनस्यतिके स्वामी सोम देव ! ( प्सरस्तमः नयोः सः ) सज्जन तेजस्वी और मानवोंका हित करनेवाला यह तू ( नः ख्ये अप ) हमारा तेज बढ़ानेवाला हो । ( सख्ये सख्ये ) जिसप्रकार एक विश्व दूसरे मित्रकी सहायता करता है, उसीप्रकार तू हमारी सहायता कर ॥ २ ॥

[ १६१३ ] हे सोम ! ( त्वं सनेमि क अस्वत् आ ) तू प्राचीनकालके चले आनेवाले युष्मकी हमसे प्रशङ्क कर, हे ( साह्यान् इन्दो ) शत्रुकी हरानेवाले सोम ! ( बाधः परि ) बाधा डालनेवाले शत्रुओंका नाश कर, तथा ( द्रयुं अप ) दुष्टरा ब्रह्महार करनेवाले शत्रुको मार तथा ( अ-देव व्यत्रिणं चित् ) विष्यपूर्णसे रहित और लाज शत्रुको भी मार ॥ ३ ॥

[ १६१४ ] सोमको ऋतियज्ञयोग ( अञ्जते ) बाधके द्रव्यके साथ मिलाते हैं, ( व्यञ्जते ) अनेक रीतिले मिलाते हैं, ( समञ्जते ) उत्तम रीतिले मिलाते हैं ( ऋतुं रिहन्ति ) फिर इस भीते सोमका स्वाध सेते हैं, ( मध्याभ्यञ्जते ) भीते द्रव्यके साथ मिलाते हैं ( सिन्धोः उच्छ्वासे ) पानीके अने भागसे ( पतयन्तं उक्ष्णन् ) गिरनेवाले सोमको दब ( पशुं ) सबको वेकनेवाले सोमको ( हिरण्यपावाः अप्सु गृभ्णते ) सोनेसे बानीमें पवित्र करके फिर पानीमें मिलाते हैं ॥ १ ॥

१६१५ <sup>३ १ ३ १४</sup> विपाश्चिते पयमानाय गाथत मही न चारात्पन्भो अर्पति ।  
<sup>१ ३ ३ ३ १ १ २ ३ ३ १ १ २ ३ ३ १ ३</sup> अहिर्न जूणांमति सपति त्वचमत्या न कीडयसरहुषा हरिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।४४ )

१६१६ <sup>३ १ ३ १ २ ३ ३ १ ३ १ ३ ३ १ ३</sup> अग्नेगो राजाप्यस्तविष्पते विमानो अह्ना भुवनेष्वापितः ।  
<sup>१ ३ ३ १ २ ३ ३ १ ३ ३ १ ३ ३ १ ३</sup> हरिशृत्वन्तुः सुदशीको अणयो ज्योतीरथः यवते राय ओक्थः ॥ ३ ॥ २१ ( ले ) ॥  
 [ पा० ३९ । उ० नास्ति । स्व ७ ] ( ऋ. ९।८६।४५ )

॥ इति चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठस्य सुतीर्थोऽर्थः ॥ ५ ॥ सप्तमः प्रपाठश्च समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

[ १६।५ ] हे ऋषिभो ! ( विपश्चिते पयमानाय गाथत ) जानी और छानेजानेवाले सोमकी स्तुतिका गाथ करो । ( मही धारा न अन्धः अत्यर्पति ) वह सोम बड़ी पारके समान प्रवाहते अन्न देता है । ( अहिः न ) साँपके समान ( जूणां त्वच्ये अति सर्पति ) गली हुई खमकीकी यह छोड़ता है । ( युषा हरिः ) बलबल और हरे रंगका वह सोमरत्न ( अत्यः न ) थोड़ेके समान ( श्रीडन् अस्वरत् ) क्रीडा करता हुआ कलकलमें गिरता है ॥ २ ॥

[ १६।६ ] ( अग्नेगः राजा ) प्रगति करनेवाला राजा सोम ( गाप्यस्तविष्पते ) जलमें मिलाया जाता हुआ प्रगलित होता है । ( अह्नां विमानः ) विष्णुको भापनेवाला सोम ( भुवनेषु अर्पितः ) जलमें दखा हुआ है । ( हरिः भुतस्तु ) हरे रंगका और पानीमें मिलाया गया ( सु-दशीकः अणवः ) सुन्दर बनावीय और पानीमें रहनेवाला ( ज्योतिरथः ) तेजस्वी रथ जिसका है, ऐसा ( रायः ओक्थः ) वह सोम धनके घरको रत्ननेवाला है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥



## षोडश अध्याय

### इन्द्र-देवता

- इति सोमस्य अध्यायमें अनेक देवताओंकी स्तुति है । उनमें इन्द्र देवताकी बड़ी स्तुति है । वह इक्ष्वाकु है—

१ इन्द्रः सुतस्य विष्णवि मदे अस्य घृण्यं श्रवः  
 घाघृष्टे [ १५७४ ]- इन्द्र सोमरत्न पीनेकी बाट विशेष मानव्य प्राप्त करने इत पत्रमानका योग्य और बल बढ़ाता है ।

२ आपयः अघा पूर्वया अस्य तं अहिर्मानं अनुपु-  
 दन्ति [ १५७४ ]- मानव्य आज कहलेंके समान इस इन्द्रकी महिमाका वर्णन करते हैं ।

३ हे शचीपते इन्द्र ! विश्वामि ऊतिभिः सुशग्निष  
 [ १५७९ ]- हे शशितमन् इन्द्र ! सब तारासमके साधनेसु समर्थ हुआ है ।

४ हे शूर ! यस्तुभिं यशसं, भगं न, त्या अनु  
 चरामसि [ १५७९ ]- हे शूर इन्द्र ! वनते पुत्र, यशसो और भाष्यवान्के समान रहनेवाले तेरे अनुकूल होकर ही हम व्यापण करें ।

५ अश्वस्य गौरा गवां पुराहन् मसि [ १५८० ]- इन्द्र  
 घोड़ोंको पुष्ट करनेवाला और पापोंका पोषण करनेवाला है ।

६ हे इन्द्र ! त्वे दानं नकिः परमर्धियम् । यत् यामि

तत् आभर [ १५८० ]- हे इन्द्र ! तेरे बान कोई भी नष्ट नहीं कर सकता । जो भी मागता है, वह मुझे भरपूर दे ।

७ हे देव ! हिरण्ययः उत्सः [ १५८० ]- हे इन्द्र देव ! जैसे सोनेसे हीरा भरा हुआ हो, वैसे हो तू सम्पत्तिसे भरा हुआ है ।

८ वसुन्तये एहि [ १५८० ]- वसु देनेके लिए तू आ ।  
९ चेरवे भर्गो चिदाः [ १५८० ]- उत्तम आचरण करनेवालेको भाग्य दे ।

१० हे प्रघघन् ! गघिष्टये वासुपस्थ [ १५८० ]- हे भगवान् इन्द्र ! गायत्री इच्छा करनेवाले मुझे वास्य दे ।

११ अश्वं इष्टये उत्तु [ १५८० ]- घोड़ेको इच्छा करनेवालेको घोड़े दे ।

१२ त्वं पुरु सहस्राणि शतानि च यूया दानाय मंसू [ १५८९ ]- तू अनेक अर्थात् हजारों और सैकड़ों गायोंके शृङ्ग बान करनेके लिए प्राप्तमें रहता है ।

१३ हे धृष्टम् ! कया उत्था त्वं नः अभि प्रमन्दसे [ १५८९ ]- हे इन्द्र ! तू कीजते, सरलण सामर्थ्यसे हमें अधिक भाग्य देता है ।

१४ इन्द्र ! मन्त्रा रोदसी प्रपयत् [ १५८८ ]- इन्द्रने अपनी शक्तिसे धुलोक और पृथ्वीलोककी विलुप्त किया ।

१५ इन्द्र ! स्यं अरोचयत् [ १५८८ ]- इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया ।

१६ इन्द्र ! यिभ्या भुयनाभि खेमिरे [ १५८८ ]- इन्द्रने सब भुवन रहते हैं ।

१७ हे राघामां पते ! गिर्वजः वीर ! वस्य ते स्तोत्रे विभूतिः स्रुता मस्तु [ १६०० ]- हे वनके अभिषेते ! हे सुलभ वीर इन्द्र ! जो तेरे वं स्तौत्र हज गाते हैं, वह तेरीबहु विभूति दाय हो ।

१८ हे शतक्रतो ! अस्मिन्वाजे नः उत्तये ऊर्ध्वः तिष्ठ [ १६०१ ]- हे संक्रतो कर्म करनेवाले इन्द्र ! इस पुष्टमें हमारी रक्षा करनेके लिए तू उठकर सँभार हो और स्थिर रह ।

१९ अग्रस्य तव सख्ये माभेम, माश्रमिष्वा [ १६०५ ]- तेरे ममान शूरवी मित्रतामें हम न दें और न चके ।

२० धृष्ट्याः ते महत् हस्ते अमिषस्य [ १६०५ ]- बल मुक्त होने महान् प्रशस्तयोग्य कार्य किए हैं ।

२१ दानः अस्मि न रोहति [ १६०६ ]- कष्टनेवाला शत्रु इसे कष्ट नहीं दे सकता ।

२२ पावकवर्णाः मुनयः विपदिबतः स्तोमैः अभ्य-  
नूयत [ १६०७ ]- अनेकके समान तेजस्वी ऐसे शूद्र शानी स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं ।

२३ अयं सहस्रं श्रपिभिः सहस्रैः समुद्रः इय  
प्रपये [ १६०८ ]- यह हजारों श्रमियों द्वारा बलवान्के रूपमें प्रशंसित किया गया इन्द्र समुद्रके समान विस्तृत है ।

२४ नुरण्ययो विप्रासः अकं आनुतुः [ १६१० ]-  
ग्रीष्मता करनेवाले शानी इन्द्रकी अर्चना करते हैं ।

इसप्रकार इन्द्रका वर्णन यहाँ किया गया है । इन्द्र बल-  
वान् है, उसकी शक्ति शानी विद्वान् वर्णन करते हैं । सब सरलणके साथन उसके पत्त सँभार रहते हैं । वह इन्द्र सब प्रकारके वन अपने पास रहता है । वह पशुओं और भाय-  
वान् है । घोड़े और गायोंका वह उत्तम पालन करता है । जैसे हीरा सोनेसे भरा हुआ हो, वैसे ही वह इन्द्र पनसे भरपूर है । सदाशरी मनुष्योंको वह बल देता है । उसके पास देवोंके लिए हजारों गायें और घोड़े हैं । उसके शीर्ष इस धुलोक और भूलोकमें चारों ओर फँसे हुए हैं । उसने पृथ्वीके तेजस्वी वना-  
कर आकाशमें स्थापित किया । भूमि भी उसीके आचार पर है । वह सब पुष्टोंमें हमारी रक्षाके लिए सँभार और स्थिर रहें और चारों ओरसे हमारी रक्षा करे । इसके सरलणमें यदि हम रहें तो हमें किसीभी भी डर नहीं रहेगा । ऐसा यह इन्द्र है ।

### इन्द्र और अधि

इन्द्र और अजिनाका वर्णन इसप्रकार है—

१ इन्द्रासी दासपत्नीः नवति पुरः एकेन कर्मणा  
साकं अधनुत [ १५७६ ]- इन्द्र और अजिने दासकेमारे  
नगरोंको एक भाकमणसे हिला दिया ।

२ इन्द्रासी ! चां तविपाणि प्रयोसि सधस्वानि  
[ १५७८ ]- हे इन्द्र और अजि ! कुम्हारे बल और श्रम  
एकत्र हैं, अर्थात् तुम मिलकर जो करता होता है, करते हो ।

३ अपूर्व्यं सुयोः दितम् [ १५७८ ]- उत्तम कर्मोंको  
प्रेरणा देनेवाले तुम्हारे बल तुममें ही है ।

बासलोयोंकी नव्ये नगरियोंकी एक ही भाकमणसे हिला  
बासा, ऐसा शूद्र-कीर्त्य इनका है ।

### अधि

अजिनाका वर्णन इस अर्थात्में इस प्रकार है—

१ होता मन्द्रः यः विभवा यस्तु जनानां ध्यते

[ १५८३ ]- देवीको बुझाकर लानेवाला और आनन्द बढाने-  
वाला जो अग्नि है, यह हृष्यकारके धन लोगोंको देता है ।

२ दसम विदपते । सुदानवः देवयुवः गर्भिः मर्त्य-  
ज्यन्ते, तनये तोके च मघोषां राष्ट्रः पर्वि [ १५८४ ]-  
हे सुवद प्रजापालक अग्ने ! उत्तम दान देनेवाले और वेत्तव्य  
प्राप्त करनेवाले अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करते हैं । ऐसा  
तू पुत्रपौत्रोंको धनवानेके पास रहनेवाला धन दे । अर्थात्  
स्तुति करनेवालोंको धन मिलता है और वह धन उन्हें अग्नि  
देता है ।

### सोम और इन्द्र

१ समस्तु अतपकुत्ता भयधः [ १५९१ ]- तुम  
बोगों मृदने नहीं हारते, ऐसे वे बोगों धूरको हैं ।

### पूषा

१ गोपणिं अभ्यसांवाञ्सां नृपत् पियं नः ऊतये  
छगुहि [ १५९३ ]- गाव देनेवाली, घोड़े देनेवाली, जल  
देनेवाली और पुत्र देनेवाली छुट्टीको हमारे संरक्षणके लिए  
उपयोगी बना ।

### वृष्ण

१ हे वरुण । मे इमं हव्यं क्षुधि । अद्य मृडय ।  
अयस्तुः स्यां मा चजे [ १५८५ ]- हे वरुण ! यह मेरी  
स्तुति सुन । आज मुझे मुक्ति कर । अपने संरक्षणकी इच्छा  
करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं ।

वरुण लोगोंको मुक्ति और सुरक्षित करता है ।

### मरुत

१ हे सत्यशयसः नराः शाश्वतान्स्व स्येद्रस्य वेनतः  
कामस्य विद् [ १५९४ ]- हे उत्तम धनसे युक्त मरुतो !  
तैनीको । तुम्हारी स्तुति करनेके कारण पत्नीसे नहाने हुए  
सत्य फलकी इच्छा करनेवाले स्रोतामोंको इष्ट फल दो ।

२ अमृतस्य यतयः नः गिरः उपगृह्णन्तु, नः  
सुमुह्यीषाः भयन्तु [ १५९५ ]- वे जगर प्रजापतिके  
पुत्र मरुत और हमारी स्तुति सुनें और हमें सुख देनेवाले हों ।

मरुत घोर संक्रान्त हैं, वे सबकी रक्षा मनुष्योंको नष्ट करने  
करते हैं ।

### द्यावापृथिवी

१ हे नुथी ! प्रजास्ये उप, धवी धां, उपस्तुर्नि  
३९ [ साम. हिन्दो भा. २ ]

महि, अग्नि भस्ममे [ १५९६ ]- हे पवित्र द्यावापृथिवी !  
तुम्हारी स्तुति करनेके लिए तुम्हारे पास आकर, तेज युक्त  
तुम दोनोंको स्तुति स्तोत्र मंडे प्रमाणमें अर्पण करते हैं ।

यहां तू और पृथिवी देवता " नुनी " मृद है और " धवी " तेजस्वी है, ऐसा कहा है ।

२ तन्वां दक्षेण मिथः पुनाने राजया । सनात् कर्त  
ऊग्राये [ १५९७ ]- तुम अपने शरीरसे और अपने सामर्थ्यमें  
बोगों वृत्तिक और पृथ्वीलोककी सुदृढ़ करके प्रकाशित होते  
हो और हमें सा सत्य-यत्न की सिद्ध करते हो ।

३ मही । मित्रस्य साधयः, श्रतं तच्छन्ती, पिप्रती,  
यमं परि सिपेद्वसुः [ १५९८ ]- हे महान् द्यावापृथिवी !  
तुम अपने मित्रका कार्य भरती हो, सत्यका संरक्षण करती  
हो, कार्य पूर्ण करती हो और उसको सिद्ध करती हो ।

तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करनेवालोंका तुम सन्धन करती  
हो । सत्यका तारण करने के उपाय बोधन करती हो, शीर  
विध्वंस पूर्ण करती हो । मित्रमें युक्त प्रकारका महापत आता  
है । उसे मयावीय रीतिसे वे भीर पृथिवी भरती हैं ।  
इस यत्नसे सर्वोप कल्याण होता है ।

### गौ

१ हे गायः ! अद्य उपवदः मही यत्तस्य वस्तुना ।  
जमा कर्णा हिरण्यया [ १६०२ ]- हे गायो ! यत्नसे  
स्नानपर जानो और शरद करो । तुम भग्न यत्नके कार्य  
करनेवाली हो । तुम्हारे बोगों कानोंमें धीनेके भणकार हैं ।  
यत्न जिस जगह होता है, वहाँ गायें हों और उनका रक्षण  
सुगई वे । गायें अपने ब्रूय व धीने वस्तुओं उत्तम रीतिसे सिद्ध  
करती हैं । गायने ब्रूय भीर धीने अग्रावमें यत्न सिद्ध होनेवाला  
ही नहीं है ।

२ सारधेय संयुक्ताः घेनयः [ १६०६ ]- सहनसे  
समान गीता ब्रूय गायें भरपूर देती हैं । उनसे उत्तम धो  
मिलता है । ( हृष्ययपीने धृतं ) कल्पे इत्येते आज संत्याह  
विने गवे पुतका ह्यनने आहुति देनेके लिए उपयोग करना  
चाहिए ।

### सोम

१ पुनानः हरिण्या अया रत्ना, सूरः ससुरग्निः नः,  
विभ्या देवांसि वरति [ १५९० ]- मृद होनेवाला सोमरस  
अग्ने हरे रणके तेजसे, सूर्य जैसे अपनी विजयीय अणकारका  
नाम करता है, जसीप्रकार सभ द्वेय करनेवाले मनुष्योंका नाम  
करता है ।

२ पुनानः हरिः अरयः [ १५९० ]- स्वच्छ होनेवाला सोम धमकता है ।

३ पथीनां यत्तु विदः [ १५९२ ]- पथि-व्यापारियों-से धमकी देने प्राप्त किया ।

॥ अतस्य धीतिभिः मातृभिः क्वे, दमे संभर्जयसि [ १५९५ ]- यशस्वी आधार देनेवाले पानीसे तू अपने स्थान पर छाया जाता है ।

सोमरसने पानी मिलाकर उसे छायाकर शुद्ध किया जाता है ।

५ परावतः साम सत् [ १५९२ ]- यशमें दूरसे ही सामगायन सुननेमें आता है । उसी कारण वहाँ घस घाल है, और सोमरस छाया जाता है, यह जाना जा सकता है ।

६ ठे इन्दो ! तः सोमत् अथ्यसत् धमिव [ १६११ ]- हे सोम ! हमें गावों और घोडोंसे युक्त धन दे ।

७ हे सुदक्ष ! सुतः गोषु सुविं धर्णे धारय [ १६११ ]- हे उत्तम दक्ष यज्ञानेवाले सोम ! रस बिछोड़े जानैके धार गौशुष्यके उत्तम रगको धारण कर । गावके दूधमें बिछ जा ।

८ हे हरीणां पते देव इन्दो ! स्तरस्तमः नयः नः रुखे मय [ १६१२ ]- हे हरे रंगके वनस्पतिके स्वामी सोमदेव ! अत्यन्त तेजस्वी और मनुष्योंका हित करनेवाला तू हमारे तेज बढ़ा ।

९ साक्षात् पाद्यः परि, ययुं अय [ १६१३ ]- हे तनूकी हरनेवाले सोम ! पाया करनेवाले तनूओका भाग कर और कुहरा व्यवहार करनेवाले बुद्धोका भाग कर ।

१० अहिः न, और्णां त्यर्णं व्यति सर्षति [ १६१५ ]- साप जैसे अपनी केचली उतार देता है, उसीप्रकार सोम अपनी तेजोंका दूर करता है । सोम कूटनेके बाद उसकी छाया भला ही जाती है ।

११ अग्नेः राज्ञ आप्यः स्तोत्रेप्यते [ १६१६ ]- प्रगति करनेवाला, राजा कर्त्तव्य करनेवालेके द्वारा प्रशंसित होता है । राजा सोम पानीमें बिखले समय प्रशंसित होता है ।

१२ द्रविः घृतस्तुः सुदशीकः अर्णवः ज्योतीरयः रायः ओक्वयः [ १६१६ ]- हरे रगका पानीमें मिलाया गया मुन्दर बर्षनीय और तेजस्वी रस जिसका है, ऐसा यह सोम मार्गों तेजोंका घर ही है ऐसा बिछाई देता है ।

सोमका रस निकालनेके बम उसमें पानी मिलाया जाता है और उसे छाया जाता है । तब वह सोम घसकने लगता है ।

सूय जैसे अपनी किरणोंसे धमकता है, उसीप्रकार यह सोम-रस धमकता है, उस समय वह छाया जाता है, उस समय सामगायन शुरू होता है । वह सामगायन घड़ी गाथाजते किए जानेके कारण दूरसे ही सुनाई देता है ।

बारम्बार उसमें गावका दूध मिलाकर उसका हवन करते हैं, फिर उसे पिया जाता है । इसप्रकार सोमका वर्णन है ।

इस वेदसाधोंका इस अव्याप्यमें वर्णन है ।

## सुभाषित

१ आययः अस्य महिमानं अनुष्टुभति [ १५७४ ]- मनुष्य इस इन्द्रकी महिमाका वर्णन करते हैं ।

२ इयः आयुषो [ १५७५ ]- अन्न प्राप्तिके लिए मैं प्रायणा करता हूँ ।

३ हे इन्द्राग्नी ! दासपत्नीः नधति पुरः एकेन कर्मणा साकं अधूतम् [ १५७५ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम तनूकी नमो गारियोंको एक ही प्रयत्न-आक्रमण-से हिला डालते हो ।

४ धीतयः अतस्य पथ्या अनु अपसः परि उप प्रयन्ति [ १५७७ ]- बुद्धिवान् प्राक्तिक सत्यके मार्गसे यशसे पस्त आकर बैठते हैं ।

५ यां तविष्यति प्रयांसि सद्यस्यामि, अय्यं शुषोः हितम् [ १५७८ ]- तुम्हारे बल और अर एक जगह रहते हैं । तुम्हारे बल धुम कर्मोंको प्रेरणा देनेवाले हैं ।

६ हे शचीपते इन्द्र ! विश्वाभिः ऊतिभिः सुशन्धि [ १५७९ ]- हे अदिमान् इन्द्र ! सब सरसजकी सक्तिवर्ति युक्त होनेके कारण तू रामर्ष्यवान् है ।

७ वसुविदं यशसं अगं न त्वा अनु वरामसि [ १५७९ ]- यशवान् और यशस्वी तेरे, वित्तप्रकार भागवान्के पीछे सब चलते हैं, उसीप्रकार हम अनुकूल हों ऐसा आचरण करते हैं ।

८ अथस्य धारः गवां पुरुषान् असि [ १५८० ]- घोडोंको पुष्ट करनेवाला और गावोंका पोषण करनेवाला है ।

९ हिरण्ययः उत्सः [ १५८० ]- तू सोनेका स्रोत है ।

१० त्वे दानं न किः धर्मिर्धिपत् [ १५८१ ]- तेरे दान कोई भी नष्ट नहीं करता ।

११ यत् यत् यामि तत् अम्भर [ १५८१ ]- मं जो जो मायता हूँ यह वह मुझे दे ।

१२ स्वं यमुत्तयं पटि [ १५८२ ]- तू पन देनेके लिए आ ।

१३ सेम्ये भगं विदा [ १५८३ ]- सवावरण करने-वालेको भाव्य दे ।

१४ हे मघयन् ! गविष्टये उत् वापुषस्य [ १५८४ ] - गायको इच्छा करनेवालेको पाये दे ।

१५ हे इन्द्र ! अश्व इष्टये उत् [ १५८५ ]- हे इन्द्र ! घोड़ेकी इच्छा करनेवालेको पोदे दे ।

१६ त्वं पुरु सप्तस्य दत्तामि च यूया दानाय मंयसे [ १५८६ ]- तू बहुतसे हमारे और संकर्मों मायोंके मुख्य दानके लिए देता है ।

१७ पुर इन्द्रं अयसे गायन्ता विप्रपथस्य आचपुस्य [ १५८७ ]- समूहके मयोंको सो करनेवाले इन्द्रको अपने रक्षण करनेके लिए सामयुक्त भाषण करनेवाले हम मुक्तते हैं ।

१८ होता मन्द्रः यः विश्वा धतु जनानां द्यते [ १५८८ ]- देवोंकी बुलानेवाला और आनन्द देनेवाला अणि सव पन लोगोंको देता है ।

१९ दस्य विदपने ! सुदानवः देवयन्त रथ्यं अश्व नः गीर्भिः मर्त्यज्यगते [ १५८९ ]- हे वर्तनीय प्रजापालक ! उत्तम शान देनेवाले और देवत्व प्राप्त करनेवाले राजक, रथमें जुड़े हुए घोड़े सज्जन, अपनी बाणोंसे तेरी स्तुति करते हैं ।

२० तनये लोके उमे मघोनां राघः पृषि [ १५९० ]- पुत्र और वीर दोनों पनवाले पितृ पदोंवाले जन दे ।

२१ अयस्युः रथां आ अके । हे यरण ! मे इमे हयं धुभिः शस्य मृडय च [ १५९१ ]- अपना सरक्षण हो ऐसी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं ।

२२ हे धृपन् ! कया ऊत्ता त्वं नः अग्नि प्रमन्दसे [ १५९२ ]- हे धतवायु इन्द्र ! नीलसे सरसजक सामय्यते तू हमें अग्नि आवृत्तित करता है ?

२३ कया स्तो(वृत्र)यः मा अर [ १५९३ ]- कीनगी सरसजको प्राणितो तू तोलाजारी भरपूर अश्व देता है ?

२४ इन्द्रः शस्य मद्रा रोदसी पमथत् [ १५९४ ]- इन्द्र अपनी क्षमिता सुभीक और धृष्टीकी शक्ति पर देता है ।

२५ इन्द्रः मृत्यं अरोचयत् [ १५९५ ]- इन्द्रने पुरुषों तेजसो बनाया ।

२६ इन्द्रे ॥ विश्वा भुवनानि येमिरे [ १५९६ ]- इन्द्रमें ही सब भुवन रहते हैं ।

२७ विश्वकर्मन् ! हविषा वावृधानः स्वयं तन्वं स्वा दि ते यजस्व [ १५९७ ]- हे तब कर्म करनेवाले इन्द्र ! हविषे यजनेवाला तू स्वयं करनेवाले विश्वकर्मों यज्ञके लिए स्वयंको अर्पित कर ।

२८ अन्ये जनासः अमिताः मुह्यन्तु [ १५९८ ]- अन्य यज्ञ न करनेवाले तीय चारों मीरसे भूभिन्न होकर गिर जायें ।

२९ इह मघया सूरिः अस्तु [ १५९९ ]- यहा इन्द्र तब जाननेवाला हो ।

३० पुनान विश्वा हेपांति तरति [ १५९० ]- वज्रि चौर जनुर्मोका नाश करता है ।

३१ सूरः सयुग्मभिः [ १५९१ ]- सूर्य अपनी किरणोंके अन्वकारण नाश करता है ।

३२ देव्यः द्यौत रथ्यः रथिभिः संयसते [ १५९२ ]- दिव्य और वर्तनीय ऐसा यह रथ किरणोंसे तेजस्वी हुमा हुमा बीकता है ।

३३ जैत्राय इन्द्रं हर्षयन् [ १५९३ ]- विजयने लिए इन्द्रको प्रसन्न करते हैं ।

३४ सप्तसु अतप्युता अयधः [ १५९४ ]- पुरुषोंमें तुम दोनों नहीं हारते ।

३५ गोपणि अश्वसां याजसां नृषत् पियं नः ऊतये कृणुहि [ १५९६ ]- गाय, घोड़े, अश्व और पुत्र देनेवाली बुद्धिही हमारे संरक्षणके लिए उपयोगी बना ।

३६ तन्वा दूमेण मिथः पुनाने राजया [ १५९७ ]- तारेर और बलसे तुम दोनों परस्परको मुक्त करते ॥ तेजस्वी होते हो ।

३७ मित्रस्य साधधः [ १५९८ ]- तुम दोनों मित्रकी सहायता करते हो ।

३८ वृत्तं तरन्ती पिप्रती [ १५९९ ]- यतरी पुनं करते और बलसे पुनं कराते हो ।

३९ नः तत् यचः ओहसे [ १५९९ ]- हमारी शायना प्यार देकर तू मुनता है ।

४० राघातां पते गिर्बाहिः वीरः । ते स्तोत्रं विभृतिः मनुता अस्तु [ १६०० ]- हे पनाने स्वामी लुण्य वीर ! तेरे स्तोत्र केअव विष्णुनेवाले और सत्य हों ।

४१ हे शतवतो ! असिन् या मे नः ऊतये ऊर्ध्वं तिष्ठ [ १६०१ ]- हे संकर्मों कर्ण करनेवाले इन्द्र ! इत मुझमें हमारे रक्षणके लिए तैयार होकर तैयार रह ।

४२ उग्रस्य तव सरये मा भेम [१६०५]- उग्रवीर  
ऐसे तेरी निग्रहाने हमें कोई भय नहीं हो।

४३ मा भ्रमिष्व [ १६०५ ]- हम भय न करें।

४४ पृथ्वाः ते मद्वृष्टं अभिचक्ष्ये [ १६०५ ]-  
भस्मकी क्षत्रा तुला करनेवाले हैं मैं महान् वर्षनके बोझ  
हृष्य हुए हैं।

४५ युवा स्वर्वा रिफग्यं अनु चायते [ १६०६ ]-  
युवाणु इन्द्र अपने बायें हाथसे सबको आधार बैठा है।

४६ दानः अस्व न रोपति [ १६०६ ]- काटनेवाला  
सन्नु इसे कट नहीं दे सकता। ( दानः- 'दा'- काटना,  
'दानः'- काटनेवाला )

४७ सारथेण संयुक्ताः धेनवः [ १६०६ ]- मधुर  
हृषसे युक्त ये गावें हैं।

४८ पाशकवर्णाः शुचयः विपदिचतः स्तोमैः मध्य-  
नृपते [ १६०७ ]- आनिके समान तेजस्वी युद्ध विद्वान्  
स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं।

४९ अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्रकृतः समुद्रः इव  
पप्रथे [ १६०८ ]- यह इन्द्र हजारों ऋषियोंके द्वारा बलवान्के  
रूपमें प्रसिद्ध किया गया है। वह समुद्रके समान महान् हो  
गया है।

५० अस्व सत्यः महिमा दायः यसेषु विप्राज्ये  
धृणे [ १६०८ ]- इसकी बहु सत्य महिमा और सत्यार्थ  
शास्त्रोंके यज्ञके राज्यमें प्रकाशित होता है।

५१ अयं अस्व विश्वः आर्यैः श्रेयधिपा अरिः [ १६०९ ]  
- यह इस यज्ञका और सत्य आविष्कार निधि रक्षक है।

५२ देवः सोमः रसरत्नमः नर्यः सः नः रचे अथ  
[ १६११ ]- हे सोमदेव ! अत्यन्त तेजस्वी और मनुष्योंका  
हित करनेवाला तू हमारे तेज बढ़ानेवाला हो।

५३ इक्षोः साक्षात् ! याघः परि, त्र्युं अप [ १६१३ ]  
- हे सन्नुके हारनेवासे सोय ! याघा आत्मेनाले और इन्द्र  
स्वयं हार करनेवाले धनुषोंको बुर कर।

५४ अहिः न, जीर्णं त्यजे अति सर्षति [ १६१५ ]-  
सापके समान वह गन्धी हुई चमड़ीको निजाल फेंकता है।

## उपमा

१ भगं न [ १५७९ ]- भाग्यके समान तेरे ( अनु-  
चर(मासि) अनुकूल हम चलते हैं। जंते भाग्य अनुकूल होता  
है, उसीप्रकार तेरे अनुकूल हम स्वयं हार करते हैं।

२ हिरण्यः उत्सः [ १५८० ]- त्रितप्रकार सोनेसे  
भरा हुआ होना है, उसीप्रकार तू पतने भरा हुआ है।

३ मघोः न प्रथमानि पात्रा [ १५८१ ]- मोठे सोम-  
रत्नके मुख्य पात्रके समान इस भग्निकी ( स्तोमाः प्रपन्तु )  
स्तुतिर्वा प्राप्त हो।

४ रथ्यं अथं न [ १५८४ ]- रथमें जुड़े हुए पीरोंके  
समान ( भीमिः मर्तुज्यस्ते ) अपनी बाणीसे भग्निकी स्तुति  
करते हैं।

५ सूरः सयुग्धभिः न [ १५९० ]- सूर्य अपनी किरणोंसे  
जैसे मग्नका बुर करता है, उसीप्रकार ( पुनातः रक्षा  
विश्या देवांसि तरति ) स्वच्छ होनेवाला सोम अपने  
प्रकाशसे सब शत्रुओंको बुर करता है।

६ परावतः तस्व साम न [ १५९२ ]- दूरसे जितप्रकार  
वह साममान सुनाई देता है ( यज्ञ धीतयः रणान्ति ) जहाँ  
ऋत्विज गाते हैं। यज्ञसाक्षमें ऋत्विज साममान करते हैं,  
वह दूरसे ही सुनाई देता है, और उससे वहाँ यज्ञ चल रहा  
है, ऐसा भास होता है।

७ कपोतः यर्मथं इव [ १५९९ ]- कबूतर जितप्रकार  
अपनी कन्तरीको तरफ जाता है, उसीप्रकार ( ते समतसि )  
वह तेरे पास आता है।

८ समुद्रः इव पप्रथे [ १६०८ ]- समुद्रके समान वह  
इन्द्र महान् है।

९ सखा स्वये इव [ १६१२ ]- मित्र जिततरह  
अपने मित्रकी सहस्यता करता है, उसीतरह ( सः नः रुच्ये  
अथ ) तू हमारा तेज बढ़ानेवाला हो।

१० सिन्धोः उच्छ्रयासे पतयन्ते उक्ष्णं [ १६१४ ]-  
नदीके पानीमें जितप्रकार बेल डुबाने लगाता है, उसीतरह  
पानीमें सोमरत्न मिलकर जाता है।

११ महि धारा न अन्धः अत्यर्षति [ १६१५ ]- मोठो  
पारसे लक्ष जैसे छाया जाता है, उसीप्रकार अन्धकी सोम  
पारसे छाया जाता है।

१२ अग्नेयः राजा [ १६१६ ]- प्रगति करनेवाला राजा  
जितप्रकार प्रशंसित होता है, उसीप्रकार ( भाग्यः स्तविष्यते )  
जलमें मिलाया जानेवाला सोम प्रशंसित होता है।

## पोडशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदमन्त्रां	ऋषिः	देवता	छन्दः
		( १ )		
१५७३	८११७	मेष्वातिभिः काण्वः	इन्द्रः	प्रवापः = ( विषमा बृहती, तमा ततोबृहती )
१५७४	८११८	मेष्वातिभिः काण्वः	"	"
१५७५	३११२१	विश्वामित्रो गाविनः	इन्द्राग्नी	वायवी
१५७६	३११२१	विश्वामित्रो गाविनः	"	"
१५७७	३११२१	विश्वामित्रो गाविनः	"	"
१५७८	३११२१	विश्वामित्रो गाविनः	"	"
१५७९	८१११९	भग्नः प्रवापः	इन्द्रः	प्रवापः = ( विषमा बृहती, तमा ततोबृहती )
१५८०	८१११९	भग्नः प्रवापः	"	"
१५८१	८१११९	भग्नः प्रवापः	"	"
१५८२	८१११९	भग्नः प्रवापः	अग्निः	"
१५८३	८११०३	मोमरिः काण्वः	"	"
१५८४	८११०३	मोमरिः काण्वः	"	"
		( २ )		
१५८५	११२५११९	धुमन्तोष आग्नीमितिः	वदणः	गायत्री
१५८६	८११११९	मुक्क आग्निमितिः	इन्द्रः	"
१५८७	८१११९	मेष्वातिभिः काण्वः	"	प्रवापः = ( विषमा बृहती, तमा ततोबृहती )
१५८८	८१११९	मेष्वातिभिः काण्वः	"	"
१५८९	१०१८११९	विश्वकर्मा भीषनः	विराट्	मिन्द्रः
१५९०	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	वसमानः शीम	अप्यष्टिः
१५९१	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	"	"
१५९२	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	"	"
		( ३ )		
१५९३	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	धुमन्तोष	वायवी
१५९४	१०१८११९	पोतमो रातृगन्धः	वदणः	"
१५९५	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	विराट्	"
१५९६	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	वायव्यपिबि	"
१५९७	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	"	"
१५९८	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	"	"
१५९९	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	इन्द्रः	"
१६००	१०१८११९	अनान्तः पारुष्येभिः	"	"



( ३०८ )  
( ५०८ )

सामवेदका सुषोष अनुवाद

उत्तरार्चिक

	खेदम्पान	श्रुति	देवता	छन्दः
	११३०३	शुन गेष आजोवति	इन्द्र	गायत्री
	८७०१६२	ह्यत प्रागाय	अग्नि हवीषि वा	"
	१७२१११	ह्यत प्रागाय	"	"
१६०८	८१७११०	ह्यत प्रागाय	"	"

( ४ )

१६०५	८१७१७	देवातिषि काण्व	इन्द्र	प्रवायः= ( विषमा बृहती, तमा सतोबृहती )
१६०६	८१७१८	देवातिषि काण्व	"	"
१६०७	८१७१९	मेघ्यातिषि काण्व	"	"
१६०८	८१७२०	मेघ्यातिषि काण्व	"	"
१६०९	८१७२१	वात्सलित्य ( धृष्टिगु काण्व )	"	"
१६१०	८१७२२	वात्सलित्य ( धृष्टिगु काण्व )	"	"
१६११	९१७०५४	पवतनारवौ	पवमान सोम	उत्तरार्चिक
१६१२	९१७०५५	पवतनारवौ	"	"
१६१३	९१७०५६	पवतनारवौ	"	"
१६१४	९१८६१४३	अत्रिर्भोम	"	अपती
१६१५	९१८६१४४	अत्रिर्भोम	"	"
१६१६	९१८६१४५	अत्रिर्भोम	"	"



## अथ सप्तदशोऽध्यायः ।



अथाष्टमप्रपादके प्रथमोऽर्घः ॥ ८-१ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १, ७, १४ शुन सोम आशोमसि, २ मयुवल्वा संस्वामिन, ३ सवुर्वाहंस्तथ, ( तुवनाणि ) ४ यतिष्ठो मंत्रा-  
वर्णि, ५ वागवेवो योमस, ६ ऐमयुव कल्पयो, ८ युमेध आगिरस, ९, ११ गोवृक्षस्यधमुक्तनो कान्वायनो, १०  
युतकस मुक्तो वा आगिरस, १२ विरुष आगिरस, १३ वास वाय्व ॥ १, ३, ७, १२ अग्नि, ५, ८-११,  
१३, १४ इन्द्रा, ४ विष्णु, ५ ( १ ) वायु, ५ ( २-३ ) इन्द्रवायू, ६ यवमान सोम ॥ १-२, ७, ९, १०, १२, १३,  
१४ गायत्री, ३, ८ प्रवाय= ( विवमा बृहती, समा सतोबृहती ), ४ त्रिष्टुप्, ५, ६ अनुष्टुप्, ११ उगित् ।

१६१७ विश्वेभिरमे अग्निभिरिमं यज्ञमिदं यवः । चनो धाः सहसो यदो ॥ १ ॥ ( ऋ १।२६।१० )

१६१८ यक्षिदि ध्रुवता तना देवदेव्यं यजामहे । स्वे इन्द्रयते हविः ॥ २ ॥ ( ऋ १।२६।६ )

१६१९ प्रियो नो अस्तु विरपतिर्होता मन्त्रो वरेण्यः । शिवाः स्वपयो वयम् ॥ ३ ॥ १ ( ही ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । १०० ४ ] ( ऋ १।२६।७ )

१६२० इन्द्रं वो विश्वतरपरि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥ ( ऋ १।७।१० )

१६२१ स नो वृषंश्चै चरुं सत्रादावश्रवा शुचि । अस्मभ्यश्चतिष्ठुतः ॥ २ ॥ ( ऋ १।७।६ )

[ १ ] प्रथम खण्डः ।

[ १६१७ ] हे ( सहस्रः यदो ) बलके पुत्र ! ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब अग्निभ्योके तव भू ( इम यद ) ॥ यत्सं वा ओर ( इद यद्यः ) यद् स्तुति शुन ओर ( चनः धा ) हवै यद्य हे ॥ १ ॥

[ १६१८ ] ! पत् चित् दि ) यक्षि ( श्रध्वता तना ) श्रिध और विस्तृत हवि अश्व करते ( द्वेष द्वेय यजा-  
महे ) प्रत्येक देवताके लिए ह्वा यजन करते ह, सो वो ( हविः रवे इत् इत्यते ) हवि सुगम हो वो जाओ हे ॥ २ ॥

[ १६१९ ] ( विरपतिः होता ) प्रजापतिका धारण करनेवाला ( मन्त्रं वरेण्य ) मानद यज्ञानेवाला अष्ट  
अग्नि ( नः प्रिय अस्तु ) हवै प्रिय हो, तथा ( स्वप्रायः वय प्रिया ) उत्तम रीतिसे अग्निबो रखनेवाले हव उय अग्निके  
प्रिय हों ॥ ३ ॥

[ १६२० ] हे श्रवित्रो ! ( विश्वत जनेभ्य परि ) सब लोकोंमें ओष्ठ ऐसे ( इन्द्रं य हवामहे ) इन्द्रको तुम  
समके हितके लिए हम बुलाते हैं, यह इन्द्र ( अस्माकं केवल अस्तु ) तर्क हम ही को अधिक लाभ देनेवाला होवे ॥ १ ॥

[ १६२१ ] हे ( सत्रा-दायन् वृषन् ) एकदम सब कस देनेवाले और बलवान् इन्द्र ! ( स ) यह वृ ( न अनु-  
चरं अपावृषि ) हवादे लिए बल साक मन्त्रको स्वीकार कर और ( अस्मभ्य अग्रतिष्ठुत ) हवादा प्रतीकार करनेवाला  
मत हो ॥ २ ॥

- १६२२ वृषा यूथेय व<सगः कृष्टीरियर्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कृतः ॥ ३ ॥ २ (१) ॥  
[ धा० ८ । उ० नास्ति । २० १ ] ( ऋ १।०।८ )
- १६२३ त्व नभिन्न ऊन्या वमा राधा<सि चोदय ।  
अस्य रायस्त्वमग्रे रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ १ ॥ ( ऋ ६।४।९ )
- १६२४ पर्षि लोक तनय पनुमिष्टमदधैरप्रयुत्सभिः ।  
अम हडा<सि देव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरा<मि च ॥ २ ॥ ३ ( की ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । २० ४ ] ( ऋ ६।४।१० )
- १६२५ किमिच्छे विष्णो परिचाक्षे नाम प्र यद्वक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।  
मा वर्षो अस्मदप गृह एतद्यदन्यरूपः समिधे वभूय ॥ १ ॥ ( ऋ ७।१०।६ )
- १६२६ प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हृष्यमयः श्रुतामि वयुनानि विद्वान् ।  
त त्वा गृणामि त्वत्समतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ २ ॥ ( ऋ ७।१०।९ )

[ १६२२ ] ( ईशान अप्रतिष्कृत ) सबका ईश्वर और हमार नियम न करनेवाला तथा ( वृषा ) बलवान् इ-इ ( ओजसा कृष्टी इयति ) अपने बलसे अनुग्रह करनेके लिए मनुष्योंके पास जाता है ( वसग यूथा इय ) जैसे बल गांधीके सुधर्म लाता है ॥ १ ॥

[ १६२३ ] हे ( वसो ) निभासक अग्न ! ( चित्र त्व ) सुन्दर वस्त्रोप एता तू ( ऊन्या राधासि न चोदय ) रक्षणसे मुक्त बन हमें दे । हे ( अग्रे ) अग्न ! ( त्व अस्य राय रथी असि ) तू इन धर्मोंको रक्षते के जानेवाला है । ( न तुचे गाध श्रु विद ) हमारे युद्धोंके प्रतिष्ठाका स्थापन प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १६२४ ] हे ( अग्रे ) अग्न ! ( त्व ) तू ( अ प्रयुत्सभि ) अविरोधी भावनाओंसे युक्त और ( अ वृध्य ) किसीके द्वारा न इनामे जानना ( पर्शुमि ) संरक्षणके साधनोंके द्वारा ( लोक तनय पर्षि ) हमारे पुत्र और पौत्रोंका पालन कर । ( देव्या हेडाक्षि न युयोधि ) देवोंके क्रोधको हथते दूर कर । ( अ देवानि ह्वरासि च ) मनुष्यों और राक्षसोंके क्रोधको भी हमसे दूर रख ।

[ १६२५ ] हे ( विष्णो ) व्यापक देव ! ( ते तत् नाम ) वह तेरा नाम ( किं परिचाक्षि ) क्या प्रसिद्ध होने योग्य है ? ( यन् नाम ) जो नाम ( शिपि-विष्ट अस्मि इति प्र चवक्षे ) फिरणसे व्याप्त मैं हूँ ऐसा अर्थ दिखाता है । इसलिए ( एतद् ययं अस्मद् मा अपगृह ) यह रूप हमसे दूर मत कर ( यत् ) क्योंकि ( समिधे ) संग्राममें ( अन्यरूप इत् ) दूसरा रूप धारण करके ही तू हमारा सहायक ( वभूत् ) होता है ॥ १ ॥

[ १६२६ ] हे ( शिपि-विष्ट ) फिरणसे व्याप्त हुए विष्णु ! ( ते हृद्य तत् ) तेरे उस पूजनीय नामको ( अर्थ वयुनानि विद्वान् ) अग्न और सब कर्मोंको जाननावा विद्वान् य ( अद्य प्रश्रुतामि ) आज प्रसन्न करता हूँ । ( त त्वस ) उस बलवान् तथा ( अस्य रजसः पराके क्षयन्त ) इस रजोभोकेसे दूर रहनेवाले ( स्वा ) तेरा ( अ-तव्यान् ) छोटा भाई य ( गृणामि ) तेरी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

१६२७ वषट् ते विष्णवांस आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट इव्यम् ।

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो विरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ४ (ते) ॥

[ पा० ४४ । उ० १ । २४० ७ ] ( ऋ. ७।१००।७ )

४ इति प्रथमः सन्धः ॥ १ ॥

[ २ ]

१६२८ वायो शुक्रो अयामि त मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।

आ याहि सोमपीतये स्वाहो देव नियुस्वता ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।४।५१ )

१६२९ इन्द्रश्च वायवेष्टा सोमार्ना पीतिवर्धयः ।

युवाश्हि यन्तीन्दवो निश्रमायो न सध्वक् ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।४।७१ )

१६३० वायविन्द्रश्च शुग्मिणा सरथश्चक्षसस्पती ।

नियुस्वन्ता न ऊतये आ यातश्सोमपीतये ॥ ३ ॥ ५ ( वा ) ॥

[ पा० १९ । उ० १ । २४० २ ] ( ऋ. ४।४।७३ )

[ १६२७ ] हे ( विष्णो ) विष्णुदेव ! ( ते आसः आ ) तेरे मुहके पास आकर ( वषट् कृणोमि ) वषट्कार-पूर्वक हृष्य वषट्कारों का मैं हवन करता हूँ । हे ( शिपिविष्ट ) किरणोंसे व्याप्त हुए हुए देव ! ( त्वा मे हव्यं जुषस्व ) तू मेरी उक्त हविषों स्वीकार कर । ( सुष्टुतयः मे गिरः ) उन्नत क्षुण्ण करनेवाली मेरी वायियों ( त्वा वर्धन्तु ) मेरी माँझ बढ़ाये । हे विष्णो ! ( यूयं ) तेरे साथ सब देवता ( स्वस्तिभिः न सदा पात ) कल्पस्थ करनेवाली शमितयोंसे हमारी तब्रा रक्षा करें ॥ १ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १६२८ ] हे ( वायो ) वायो ! ( शुक्रः ) विरॉय मैं ( दिविष्टिषु ) यत्तोंमें ( ते ) तुम ( मध्वः ) सोमरत्न ( अग्रं अयामि ) सबसे प्रथम वर्धन करता हूँ । हे ( देव ) देव ! ( स्वाहो ) गर्जनशील ऐसा हूँ ( नियुस्वता ) नियुक्त मानस मोहने ( सोमपीतये आ याहि ) सोमपान करनेके लिए आ ॥ १ ॥

[ १६२९ ] हे ( वायो ) वायु ! तू ( इन्द्रश्च ) और इन्द्र ( य्वां सोमार्ना पीति वर्धयः ) दोनों इस सोमके पीनेके योग्य हो । ( हि ) इतीक्ष्ण ( निश्रं आयः न ) निश्रमकर मोचकी तरह बलीका प्रबल रहता है, उत्तमकर ( सध्वक् ) एवम ( युवाश्च इन्दवः यन्ति ) तुम्हारे पास सोमके प्रवाह जाते हैं ॥ २ ॥

[ १६३० ] हे ( वायो ) वायु ! तू ( इन्द्रश्च ) और इन्द्र ( शयसः शती ) बलके स्वामी और ( शुग्मिणा ) क्षमयोग्य हो । ( नियुस्वन्ता ) नियुक्त मानस मोहने करनेवाले तुम दोनों ( नः ऊतये ) हमारे रक्षणके लिए और ( सोमपीतये ) सोम पीनेके लिए ( सरथश्चायातं ) एक एवसे आओ ॥ ३ ॥

- १६३१ अध क्षया परिष्कृतो वाजा२अभि प्र गाहसे ।  
यदी विवस्वतो भियो हरि२हिन्यन्ति याववे ॥ १ ॥ ( ऋ १।९९।१ )
- १६३२ तमस्य मर्जयामसि मदा य इन्द्रपातमः ।  
यं राघ आसमिदधुः पुरा नूनं च सरयः ॥ २ ॥ ( ऋ १।९९।१ )
- १६३३ तं गाथया पुराण्या पुनानमम्यनूयत ।  
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम विप्रतीः ॥ ३ ॥ ६ ( छु ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ऋ १।९९।४ )
- १६३४ अर्थं न त्वा वारवन्तं चन्दस्या अभि नमोभिः । सम्राजन्तमस्वराणाम् ॥ १ ॥  
( ऋ. १।९७।१ )
- १६३५ स पा नः स्रुतः क्षमसा पृथुप्रगामा सुषेवः । मीदवा२अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥  
( ऋ. १।९७।२ )
- १६३६ स मो द्राक्षासाच नि मर्यादायोः । पाहि सदनिदिश्यायुः ॥ ३ ॥ ७ ( टि ) ॥  
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।९७।३ )

[ १६३१ ] ( क्षया अघ ) रक्त बीत जाने पर प्रातः काल ( परिष्कृतः ) लक्ष्मा मिथय करके गोभायनाम हुआ सोम तैय्यार होता है, ऐसा है सोम ! तू ( याजान् अभि प्रगाहसे ) अग्निके ओर जाता है । ( वियसतः धियः ) सत्कार करनेवालोंकी अगुत्तियाँ ( हरि यातये ) हरे शयके सोमको कलसने जानेके लिए ( यदि हिन्यन्ति ) जब प्रेरणा करती है, तब तू सबनमें जाता है ॥ १ ॥

[ १६३२ ] ( अस्य तं मर्जयामसि ) इस सोमके उस रक्तको हथ छावते है । ( यः मद् इन्द्रपातमः ) जो भाग्य्य बजानेवाला सोमरक्त इन्धके पीनेके योग्य है । ( यं सरयः पुरा च नूनं ) जिस सोमरक्तकी बिडान् सोम पहले ओर अब भी पीते है । ( राघः आसमिः दधुः ) चाप्ये अपने मुहसे उस सोमका प्रसव करती है ॥ २ ॥

[ १६३३ ] ( पुनानं ) छाने जानेवाले सोमकी ( पुराण्या गाथया अम्यनूयत ) पुराने स्तोत्रसे स्तुति की जाती है । ( उतो उ ) और ( नाम विप्रतीः धीतयो ) हविके धारण करनेवाली अगुत्तियाँ ( देवानां कृपन्त ) देवोंके लिए सोम अर्पण करनेमें समर्थ होती है ॥ ३ ॥

[ १६३४ ] ( मध्यराणां सम्राजन्तं स्या अभि ) यद्येके सभादं तुम अग्निको ( नमोभिः चन्दस्यै ) हवि अर्पण करते हम नमस्कार करते है ( वारवन्तं अर्थं न ) जिसप्रकार अवाकवाले घोड़ेसे उस पर चढ़नेवाले प्रेरण करते है ॥ १ ॥

[ १६३५ ] ( स पा नः सुषेवः ) वह अग्नि हमारे द्वारा उत्तम रीतिसे सेवित होता है । ( क्षमसा स्रुतः पृथुप्रगामा ) वह लक्ष्मा पुत्र सोम प्रसव करनेवाला अग्नि ( अस्माकं मीदवा च बभूयात् ) हमें तुम देनेवाला हो ॥ २ ॥

[ १६३६ ] हे अग्नि ! ( शिभ्यायुः ) तब अनुषोंका हित करनेवाला तू ( द्राक् च आसात् च ) हरो और पातो ( मर्यादोः मर्यात् ) पानी अनुष्यति ( नः स्रुतं इह निपाहि ) हमारी हवैया रक्षा कर ॥ ३ ॥

१६३७ त्वमिन्द्र प्रतूर्विष्मामि विष्वा असि स्पृधः ।

अश्रुतिहा जनिता घृत्रासि त्वं त्वर्यं वरुण्यतः

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९९।२ )

१६३८ अनु ते शुष्मं तुरयन्तपीपतुः क्षोणीं शिशुं न मातरा ।

विशास्ते स्पृधः अथयन्त मन्यसे घृत्रं यदिन्द्र तूर्वासि

॥ २ ॥ ८ ( दा ) ॥

[ धा० ८। उ० १। ख० २ ] ( ऋ. ८।९९।६ )

॥ इति त्रितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१६३९ यक्ष इन्द्रमवर्षयदभूमिं ज्यवर्तयत् । चक्राणं औषधं दिवि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१४।९ )

१६४० व्यर्षेन्तरिक्षमतिरेग्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रा यदभिनदलम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१४।६ )

१६४१ उद्गा आजदक्षितोम्य आविष्कृण्वन्मुहा सतीः । अवांश्चं जुनुदे वलम् ॥ ३ ॥ ९ ( वी ) ॥

[ धा० २०। उ० १। ख० ४ ] ( ऋ. ८।१४।८ )

१६४२ त्वम् वः सत्रासाहं विश्वासु भीष्वायतम् । आ क्वावयस्पृतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।१० )

[ १६३७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( प्रतूर्विषु ) पृथ्वीं ( विष्वाः स्पृधः अभि असि ) सब स्वर्ग करनवाले समुओंकी करता है । हे ( त्वर्यं ) घमृओंकी पीप हो दूर करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं अ-अश्रुतिहा ) ॥ विपतिवोंको दूर करनेवाला ( जनिता ) सन्पतियोंका छापावक नीर ( घृत्र-तुः ) प्रभुओंका नाम करनेवाला तथा ( वरुण्यतः ) अस्ति ) भाषा करनेवालोंको दूर करनेवाला है ॥ १ ॥

[ १६३८ ] हे इन्द्र ! ( तुरयन्तं ते शुष्मं ) समुहा नाम करनेवाले तेरे बल हैं । ( क्षोणीं ) छापापृथिवी लोक ( मातरा शिशुं न ) जितप्रकार मातापिता अपने बच्चोंकी पीछे जाते हैं, उसीप्रकार तेरे पीछे चलते हैं । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् घृत्रं त्वर्यसि ) जब तू मूत्रका नम करता है, इन कारण ( ते मन्यसे ) तंदेरीयके भावे ( विष्वाः स्पृधः ) सब मुहावाला करनेवाले समु ( अथयन्त ) डोलें वह जाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १६३९ ] ( यक्ष इन्द्रं अवर्षयत् ) यक्ष इन्द्रको यदाता है, इसका कारण ( यत् ) वह है कि वह ( दिवि औषधी चक्राणः ) अक्षरिभमें औषधी छिटा देता है और उसकी बरसातसे ( भूमिं ज्यवर्तयत् ) भूमिको जोषण करनेवाली बनाता है ॥ १ ॥

[ १६४० ] ( सोमस्य मदे ) सोमपात्र कबके हस्तित होनेके बाद ( इन्द्रः ) इन्द्र ( रोचना मन्यतेरि ) तेराको अक्षरिभसे ( वि आतिरम् ) विशेष तेरास्वी करता है ( यत् ) क्योंकि वह ( चलं अभिनदत् ) बारकोंकी पावता है ॥ २ ॥

[ १६४१ ] ( मुहा नं वृत्तं वसी हर्दं गम् ) गायोंकी इन्द्र ( आविष्कृण्वन् ) बाहर लाता है और ( अंगिरोग्म्यः उद्गाजत् ) अंगिरा ऋषियोंको वह देता है, और ( वलं अवांश्चं जुनुदे ) जब गायोंकी चुराकर से लावेवाले वनामुपकी नीचे मुह करके भाषना करता है ॥ ३ ॥

[ १६४२ ] ( सत्रा-साहं ) अनेक समुओंको हरानेवाले ( वः विष्वासु भीष्वा ) यक्षोंसे सब स्तोत्रोंमें वर्णित ( त्वं उ ) उस इन्द्रको ( उताये ) हमारे संरक्षणके लिए ( आविष्वावयसि ) हमारे पास आने के ॥ १ ॥

१६४३ <sup>३ १</sup> युष्मश्च<sup>१२ ३ १ २</sup> सन्तमन<sup>३ १ २४</sup> वर्णा<sup>१२ ३ १ २</sup> षसो<sup>१२ ३ १ २</sup> मपाम<sup>१२ ३ १ २</sup> पच्युतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९२।८ )

१६४४ शिक्षा<sup>१ २</sup> ण इन्द्र<sup>३ १ २</sup> राय<sup>३ १ २</sup> आ पुरु<sup>३ १ २</sup> विद्वा<sup>३ १ २</sup> ष्चकी<sup>३ १ २</sup> षम । अवा<sup>३ १ २</sup> नः<sup>३ १ २</sup> पाय<sup>३ १ २</sup> धने ॥ ३ ॥ १० ( ता ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९२।९ )

१६४५ तम<sup>१ ३</sup> स्पदिन्द्रिय<sup>१ ३</sup> मृहचव<sup>३ १ २</sup> दध्मृत<sup>३ १ २</sup> ऋतुम् । वज्र<sup>१ ३</sup> ष्छिक्षाति<sup>३ १ २</sup> विषणा<sup>३ १ २</sup> वरेणम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।९१।७ )

१६४६ तव<sup>१ ३</sup> द्यौरिन्द्र<sup>१ ३</sup> पौ<sup>१ ३</sup> ष्श्य<sup>१ ३</sup> ष्थिवी<sup>१ ३</sup> वर्धति<sup>१ ३</sup> श्रवः । त्वामापः<sup>१ ३</sup> पर्वता<sup>१ ३</sup> सश्च<sup>१ ३</sup> हिमिवरे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।९१।८ )

१६४७ त्वां<sup>१</sup> विष्णु<sup>१२ ३ १</sup> दृष्ट्व्यो<sup>१२ ३ १</sup> मित्रो<sup>१२ ३ १</sup> मृणाति<sup>१२ ३ १</sup> वरुणः ।  
त्वा<sup>१</sup> च<sup>१</sup> द्वा<sup>१</sup> मदत्यनु<sup>३ १ २</sup> माहवम् ॥ ३ ॥ ११ ( ठी ) ॥  
[ धा० १२ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९१।९ )

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥ १ ॥

[ ४ ]

१६४८ नमस्ते<sup>१</sup> अग्रे<sup>१</sup> ओजसे<sup>१</sup> मृणन्ति<sup>३ १ २</sup> देव<sup>३ १ २</sup> ऋतयः । अग्रे<sup>३ १ २</sup> मित्रमर्देय<sup>३ १ २</sup> ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।१० )

१६४९ कुविस्तु<sup>१</sup> नो<sup>१</sup> गविष्टये<sup>३ १ २</sup> ऽमं<sup>३ १ २</sup> संवेपिषो<sup>३ १ २</sup> रमिम् । उरु<sup>३ १ २</sup> कुरु<sup>३ १ २</sup> णस्कृधि ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७९।११ )

[ १६४३ ] ( युष्मश्च सन्तं ) युद्ध करनेवाले होनेपर भी ( अनवर्णा ) कभी न हारनेवाले ( अमपच्युतं सोमपां ) न हारनेवाले और सोम पीनवाले ( अशार्पकं नर ) जिसका कार्यक्रम कोई बल नहीं सकता, ऐसे नेता इन्द्र को सहायता के लिए हनु बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ १६४४ ] ( ऋक्षीषम इन्द्र ) हे वर्धनीय इन्द्र ! ( विद्वां ) तब कुछ जाननेवाला तू ( राय आ ) मन लेकर ( नः ) पुत्र शिष्ट ) हमें वह बहुत दे । ( पाय धने न अय ) शत्रु के पासते धन समकर उससे हमारा संरक्षण कर ॥ ३ ॥

[ १६४५ ] हे इन्द्र ! तेरी ( विषणा ) मुद्रि ( तव स्यत् मृहत् इन्द्रियं ) तेरे उस महान् बलको, ( तव दृष्टं ) तेरी दलताकी ( उत ऋतुं ) और तेरे पराक्रमकी और ( वरेण्यं घञ् ) तेरे श्रेष्ठ बलकी ( शिक्षाति ) सीधण करती है ॥ १ ॥

[ १६४६ ] हे इन्द्र ! त्वः ( पौ ष्यं ) तुलोक तेरे पीतवर्णी ( पृथिनि श्रवः ) वर्धति और पृथ्वी तेरे पदाको बढ़ाती है । ( त्वां आपः ) तेरे पास जलप्रवाह और ( पर्वतासः च ) वर्धते ( हिमिवरे ) तुमो त्वामो मानकर आते हैं ॥ २ ॥

[ १६४७ ] हे इन्द्र ! ( मृहत् क्षयः ) महान् धर देनेवाला कह करके ( विष्णुः मित्रः वरुणः ) विष्णु मित्र और वरुण ( त्वां मृणाति ) तेरी स्तुति करते हैं । ( माहवत् शर्दः ) महत्तोग बल ( त्वां अनुमदति ) तुमो मानप्रिय करता है ॥ ३ ॥

॥ यदां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थ खण्डः ।

[ १६४८ ] हे ( अग्रे देव ) अग्नि देव ! ( ऋतयः ) यक्ष करनेवाले लोग ( ओजसे ते नमः मृणन्ति ) बल प्राप्त करनेके लिए तुमो गमरार करके तेरी स्तुति करते हैं । ( अग्रे अग्निर्न अर्देय ) अपने बलसे तू शत्रुकी नाश कर ॥ १ ॥

[ १६४९ ] हे ( अग्रे ) बल ! ( नः गविष्टये ) हमें धायें मिले इमिष्टयू ( कुविस्तु नु रमि संवेपिषः ) बहुत साथ धन हमें दे । ( उरु कुरु ) महिला बढ़ानेवाला तू ( नः उरु कृधि ) हमें महान् कर ॥ २ ॥

१६५० मा नो अग्रे महाधने परा वग्मारिमृयथा । संवर्गं स५ रयि जय ॥ ३ ॥ १९ (प) ॥

१६५१ समस्य मन्यवे विप्रो विश्वा नमन्त ऊटयः । समुद्रापेव सिन्धवः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।७५।१२ )

१६५२ वि चिदुवस्य दोषता शिरौ भिमेद वृष्णिना । वज्रेण श्रुतपर्वणा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।६ )

१६५३ ओजस्तदस्य तित्विष उमे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मैव रोदसी ॥ ३ ॥ १३ (तौ) ॥

[ भा० १४ । उ० १ । ख० १ ] ( ऋ. ८।६।५ )

१६५४ सुमन्मा वसवी रन्तो सूनरी ॥ १ ॥

१६५५ सरूप वृषजा गहीनी अद्री ध्रुवावभि । वाविमा उप सर्पतः ॥ २ ॥

१६५६ नीव शीर्षाणि मृद्वं मध्य आवस्य तिम्रति । शून्भिर्दशभिर्दिशन् ॥ ३ ॥ १४ (यि) ॥

[ भा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ]

॥ इति चतुर्थं खण्ड ॥ ४ ॥

॥ इत्यष्टम-प्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ८-१ ॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

[ १६५० ] हे (अग्रे) अग्ने ! (मः महाधने) हमें सदात्मने (या वरावर्ध) दूर मत कर । (यथा भारभृत्) विसर्पकार शीस धोनेवाला आर पशुवाला है, उसीप्रकार (संवर्गं रयि संजय) एकत्र किए गये धन जीत कर ला, धीरे धन हूँ हूँ है ॥ ३ ॥

[ १६५१ ] (विप्रः) विप्रः ऊटयः) सब प्रजाजन (वस्य मन्यवे) इस इन्द्रके शोचके आये (सं समन्त) घूम कर रहते हैं, (समुद्राय सिन्धवः न) समुद्रके आगे जैसे नहिये मुकती है ॥ १ ॥

[ १६५२ ] (दोषताः) यवस्य शिरः शिरः शिरः) जगदीकधनेवाले वृत्रके शिरको (वृष्णिना) बलवान् इन्द्रने (श्रुत-पर्वणा) वज्रेण यि भिमेद) संकष्टों धारवाले बलसे खेद डाला ॥ २ ॥

[ १६५३ ] (अस्य तत् ओजः) तित्विषे) इसका बहु सामर्थ्य चमकने लग गया । (यत् इन्द्रः) जिस बलसे इन्द्रने (उमे रोदसी) दीर्घा मूलोक और ध्रुवकी (चर्मैव समवर्तयत्) चमकने लगने लगे अग्ने भावीन किया है ॥ ३ ॥

[ १६५४ ] हे इन्द्र ! तेरे घोड़े (सुमन्मा वसवी) उलम समसवार और धनपुत्र हैं, तथा वे । रन्तो सूनरी) रत्नपीय और ध्रुवर भी हैं ॥ १ ॥

[ १६५५ ] हे (सरूप वृषज) वृषज और बलवान् वृष । (अद्री रमो ध्रुवा) उलम शतबाण करनेवाले इस रथमें बोधेमानेवाले शीर्षा शीर्षा जोड़कर (अभि आगहि) हमारे यत्ने आ । (नी इमो उप सर्पतः) तेरे ये शीर्षा घोड़े तेरी उत्तम सेवा करते हैं ॥ २ ॥

[ १६५६ ] हे नहिये ! (दशभिः शून्भिः) दशों अश्विनि (द्व दिशान्) हमारे चारों पक्षों से । (यि) इन्द्र (आपस्य मध्ये तिम्रति) हमारे मध्यमें लड़ा हुआ है । (शीर्षाणि नि मृद्वं) अपने शिर शृङ्गावर उठे देखो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥





## सप्तदश अध्याय

इत जप्यामये इन्द्र, अग्नि, विष्णु, वायु और तोम इन पांच देवताओंका वर्णन है। उनमें इन्द्रका वर्णन बड़ा है, इस-लिए उसे पहले देखें—

इन्द्र

१ विभ्रतः जनेभ्यः परि इन्द्रं हवामहे [ १६२० ]—सब लोगोंको अपनेआ मेंष्ट इन्द्रको तुम सबोंके हितके लिए हम बुलाते हैं।

२ अस्माकं केवलः वक्तु [ १६२० ]—इन्द्र तिस्रोंहमें ही अधिक लाभ देनेवाला हो।

३ सना-दायन् वृषम् । सः नः अमुं सक्तं अपावृषधि, अस्मभ्यं अग्रतिष्कृत [ १६२१ ]—हे एक साथ फल देनेवाले बलवान् इन्द्र ! वह तू हमारे अन्नको खींचकर कर, हमसे बदला न ले, अतितु हमारा सहायक हो।

४ ईद्याम अग्रतिष्कृतः घृषा ओजसा हृष्टीः इयति यंसाः घृषा दध [ १६२२ ]—सर्वाका स्वामी, हमारे विषय कार्य न करनेवाला बलवान् इन्द्र अपने सामन्यसे उपकार करनेके लिए मनुष्योंके पास आता है, जैसे कि बेल मृष्टमें जाता है।

५ हे इन्द्र ! प्रतर्तिषु विभ्रवा स्मृषः अग्निं असि [ १६३७ ]—हे इन्द्र ! तू पुष्टमें सब मुकाबला करनेवाले शत्रुओंको हराता है।

६ हे त्वयं । त्व्य अशस्ति-हा, जनिता वृत्रद् सरप्यतः असि [ १६३७ ]—गीमसासे शत्रुओंको डूर करनेवाले हे इन्द्र ! तू विपत्तियोंको डूर करनेवाला, सम्पत्तियोंका निर्माता, शत्रुओंका नाश करनेवाला बाधा डालनेवाले शत्रुओंको डूर करनेवाला है।

७ तुरयन्त ते शुम्भं [ १६३८ ]—शत्रुओंको नष्ट करनेवाले तेरे सामर्थ्य हैं।

८ यत् वृषं त्वयंभि, ते मन्यसे विभ्रवाः स्मृषः अग्रयन्त [ १६३८ ]—हे इन्द्र ! जब तू वृषका घप करता है, तब तेरे कोषमें आगे सब वर्षा करनेवाले शत्रु ढोले पड़ जाते हैं।

९ पत् पलं अग्निनत्, इन्द्रः रोचना अन्तरिक्षं वि आनेरत् [ १६४० ]—इन्द्रने जब पलायुरको फाटा, तब उसने तेजसी अन्तरिक्षकी ओर अधिक तेजस्वी बनाया।

१० मुहा खती गाः आविष्कृषन् अंगिरोम्य उदाजत् । अर्वाचं पलं जुनुवे [ १६४१ ]—मुफामें छिपाकर एसी गई गायोंको इन्द्रने निकाला और अग्निरा श्रुतिपियोंको वे गायें दीं। तब उन गायोंको घुराकर ले जानेवाले बल रालसको भीसे धुह करके भागना पड़ा।

११ सत्रासाहं वः विभ्रानु गोषु आयतं त्य ऊतये आच्यावयसि [ १६४२ ]—अनेक शत्रुओंको एक साथ हरा देनेवाले तथा तुम्हारे सभी शत्रुओंमें बगित उस इन्द्रको अपने सरसणके लिए मृग अपने पास बुलाते हैं।

१२ शुभं सन्त अमर्वाण्य मनपच्युतं अवार्यकतुं नरं [ १६४३ ]—पुष्ट करनेवाले, पर कभी भी न हारनेवाले, कित्तिके भी भागे न मुकनेवाले, जिसका कार्यक्रम कोई बल नहीं सकता ऐसे नेता इन्द्रको सरसणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं।

१३ हे ऋषीवम इन्द्र ! विद्मन् रायः आ नः पुष्ट शिक्ष, पायं धने नः अय [ १६४४ ]—हे ऋषीवम इन्द्र ! तब जाननेवाला तू पन लेकर आ और हमें बहुत सारा धन दे। शत्रुके वासते पन लेकर उनसे हमारा सरसण कर।

१४ पिपणा तव शूद्र इन्द्रियं वक्षं कतुं घरेण्यं यज्ञं शिशाति [ १६४५ ]—तेरी बुद्धि तेरे महान् बल, शक्ती, पराक्रम और भेद बखलाके लक्षण करती है।

१५ वी तव पांस्ये, पृथिवी श्रयः धर्षति [ १६४६ ]—धूलिके तेरे पीरपको और पृथ्वी तेरे पतनको बढाती है।

१६ वृहत् क्षयः गुणाति [ १६४७ ]—तू बहान् आश्रय देनेवाला है, इसलिए तेरी स्तुति होती है।

१७ विभ्रवाः हृष्टयः विशः अस्य मन्यसे स्वं नमन्त [ १६४८ ]—सारी प्रजायें इसके कोषके आगे मुकती हैं।

१८ दोधतः वृषस्य शिघ्रः पुथिना शतपर्वणा वज्रेण विभेद [ १६४९ ]—सब जगत्को कंपनेवाले वृषरा तिर इन्द्रने बलवृषत तथा हजारों बारवाले वज्रसे काट डाला।

१९ अस्य जोञः तित्थिपे [ १६५० ]—इत इन्द्रका सामर्थ्य चमकने लग गया।

२० शुम्भमा घसवी रन्ती सृती [ १६५१ ]—हे इन्द्र ! तेरे शीर्षमें पोछे बहुत ममसदार, घनवृत्त, रमणीय और घुरर है।

२१ सरूप धृगम् । अर्धैः इमौ धुर्याः, तौ इमौ उप-  
सर्पतः, अभि आगाहे [१६५५]- हे सुलभ और बलवान्  
इन्द्र । ये उत्तम कल्याण करनेवाले दोनों घोड़े रथमें जोड़-  
कर उत्तम प्रकारसे आगे आते हैं । उन्हें ओढ़कर हमारे  
यत्नमें आ ।

२२ दशभिः श्रुगेभिः दिशाम् आभस्वमभ्ये तिष्ठति,  
शीर्गणि नि मृद्वं [१६५६]- बत्तों अपुलियोंसे घन देता  
हुआ हमारे यत्नमें इन्द्र लडा हुआ है । अपने शिर मुकाकर  
उभे देखो !

इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है, जतने बड़कर सामर्थ्यवान् इन्द्रा कीर्ति  
गहीं । वह हमारे सहोदरता करनेवाला है । वह एक ही साथ  
शत्रुओंकी हराता है । वह हमारे द्वारा दिए गए अश्वोंकी  
स्वीकार करके हमपर प्रसन्न हो । वह कभी भी न हारनेवाला  
इन्द्र यत्नमें हमारे बीचमें आकर बैठे । युद्धमें यह सब शत्रुओंकी  
हराये । इन्द्र सब विपत्तियोंको दूर करनेवाला, सम्पत्ति उत्पन्न  
करनेवाला और शत्रुओंकी दूर करनेवाला है ।

जब इन्द्र वृत्रको मारता है, उस समय सब शत्रु डीसे पड़  
जाते हैं । जब बस राक्षसको उतने मारा सब अन्तरिक्षमें  
महान् प्रकाश पैदा हुआ । यत्नमें शत्रुओंको धुत्तकर मुक्तार्थ  
मान कर दिया था । इन्द्रने उस मुक्तार्थकी ओढ़कर उन शत्रुओंकी  
बाहुर निकाला तथा उन्हें अंधिरा अविबीकी दे दीं ।

वह सब शत्रुओंकी एकदम हराता है ऐसा वह इन्द्र है ।  
उसकी कीर्ति भी नहीं हरा सकता और उसके कर्मक्रममें कीर्ति  
भी और बढ़ान नहीं कर सकता । इन्द्र शत्रुओंसे घन ओढ़कर  
हमें बाँधता है । उसका सामर्थ्य बल, श्रेष्ठ इत्यादि सब  
शस्त्रयै युक्त हैं । सब लोग उसके आगे शिर झुकते हैं । वृत्रने  
सब जगत्की नमस्ती किया, पर यत्नमें इन्द्रने वृत्रकी मार  
डाला । इस कारण इन्द्रका तेज सब जगत् फल गया ।

इन्द्रके दो घोड़े रथमें ओढ़े जानेके लिए हैं । ये घोड़े उत्तम  
सुगन्धित, समसवार, मनुष्य और देवतन्त्रमें सुष्ठर हैं । उन्हें  
रथमें जोड़कर वह यत्नमें स्थान पर जाता है ।

### अग्नि

१ हविः रये हव्ये हव्ये [ १६१८ ]- हे अग्ने ! तुझमें  
हविर्गंधोंका हवन किया जाता है ।

२ देव्यं देव्यं यजामहे [ १६१८ ]- श्राव्य देवके लिए  
हम यज्ञ करते हैं ।

३ विस्पतिः होता मन्द्रः वरेण्याः नः प्रियः अस्तु,  
स्वसयाः पयं मिथाः [ १६१९ ]- प्रजापति, नित्य हमने

होता है ऐसा मन्त्र वेनेवाला श्रेष्ठ अग्नि हमें प्रिय हो और  
उत्तम रीतिसे अन्नको रखनेवाले हव्य उत्तम अन्नके प्रिय हों ।

अग्नि " विष्णु-पतिः " प्रजापति का पावन करनेवाला  
है, उन्हें नीरोगी बनाता है ।

४ हे यज्ञो ! विश्वः त्वं कृत्या राधांसि नः चोदय  
[ १६२३ ]- हे निवासण आने ! तू बिलक्षण शक्तिवाला  
है, हमारी रक्षा कर और उसके साथ वन भी हमारे पास  
भेज ।

५ हे अग्ने ! त्वं अथ रायः रथीः अस्ति [ १६२३ ]-  
हे अग्ने ! तू हव्य घनोंकी रथसे ले जानेवाला है ।

६ नः तुचे माध्वे विदुः [ १६२४ ]- हमारे पुत्रवीर्यको  
प्रतिष्ठाका स्थान मिले ।

७ हे अग्ने ! त्वं अग्रयुज्यभिः अद्वयैः पृथ्वीभिः  
तोकं तनयं पयि [ १६२४ ]- है अग्ने ! तू शबरीयो  
भावनामोंसे युक्त और किरीसे न बहनेवाला जपने संरक्षणसे  
साधनोंसे हमारे पुत्रवीर्यका पावन कर ।

८ देव्या हेडांसि नः सुबोधि [ १६२५ ]- येको प्रलोपो-  
की हमसे दूर कर ।

९ अवेयानि ध्वरांसि च [ १६२५ ]- मनुष्यों और  
प्राणिकों के पोषकों भी हमसे दूर कर ।

१० अथरायां सज्जाजयं रथा आर्षि तनेभिः  
वद्व्यै [ १६३४ ]- यत्नके सज्जा युव अन्निकों हविष्यास  
अग्नि करके बलन करते हैं ।

११ नः सुबोधः शयता स्रुतः पुषुप्रगागा, अस्माकं  
भीद्वान् भूयात् [ १६३५ ]- वह अग्नि हमारे द्वारा उत्तम  
रीतिसे सेवित होता है । वह बलका पुत्र, बहुत प्रगति करने-  
वाला हमें बहुत सुख देनेवाला होवे ।

१२ हे अग्ने ! सिध्वायुः दूरत्वा व्यासात् च अघापोः  
मर्त्याव नः सव्ये हव्य पति [ १६३६ ]- है अग्ने ! सब  
मनुष्योंना हित करनेवाला तू दूरके ओढ़ पावके बांधी मनुष्योंसे  
हमारी रक्षा हमेशा कर ।

१३ हे अग्ने देव ! ऊद्यः ओजसे ते नमः शृणुमि ।  
अग्नेः अग्निश्च अद्वय [ १६४८ ]- है अग्नि देव ! तप प्रजापते  
बल प्राप्त करनेके लिए नमस्कार करके तेरी स्तुति करती  
हैं । अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश कर ।

१४ हे अग्ने ! अविष्टये कुवित् सुरार्थं संवेदियाः ।  
उरुहृत् । नः उरु रुमि [ १६४९ ]- है अग्ने ! हमें पाप  
मिले इसलिये हमें बहुत घन दे । हे बहुत शर्म करनेवाले  
अग्ने ! तू हमें महान् कर ।

१५ हे अग्ने ! नः महाघने मा परावर्क । संसर्गं रायं संजय [ १६५० ] - हे अग्ने ! हमें संप्रामांस दूर मत कर । द्रुक्ते किये ॥ यत्न जीत कर ल ।

अग्निमें हविर्द्वयोका हवन ऋतुके अनुसार किया जाता है, इस कारण वायु आदि देव प्रसन्न होते हैं । यह अग्नि प्रजाका पावन उत्तम रीतिसे करनेवाला है । अतः लोगोंको ऋतुके अनुसार यत्न करके अग्निको प्रसन्न करना चाहिए । यह अग्नि सब रोगबीजोंको दूर करता है और सब मनुष्योंका आरोग्य बढ़ाता है । पुत्रपौत्रोक्ता यह कल्याण करता है । दैवी, मानुषिक और राक्षसोंका प्रकोप यह दूर करता है । रोगादि दैवी प्रकोप हैं । चोरी, लूट और युद्ध आदि मानुषिक प्रकोप हैं । इन सभी भयोंको अग्नि दूर करता है । और लोगोंको सुखी करता है । सभी लोगोंका कष्ट यह दूर करता है । यत्न बढ़ाता है । इस कारण यह युद्धमें यत्न प्राप्त करता है ।

### विष्णु

१ हे विष्णो ! ते तन् नाम किं परिच्छिन्नि [ १६२५ ] हे विष्णो ! तेरा वह नाम किन्तु उत्तम है ।

२ यत् नाम " शिपि-विष्टः अस्मि " इति वयस्ये [ १६२५ ] - जो नाम " किरणोंमें व्याप्त है " ऐसा भाव दिखाता है ।

३ एतत् सप्ये अस्मन् मा अप गूह [ १६२५ ] यह एव तु हमसे दूर मत रख ।

४ यत् समिधे अग्नयः इह यभूय [ १६२५ ] - युद्धमें तु अग्नयः पारण करके ही हमारी सहायता करता है ।

५ हे शिपि-विष्ट ! ते तन् अर्थः ययुनानि विद्वान् अथ प्रदीप्तामि [ १६२६ ] - हे किरणोंमें सबको व्यापनेवाले विष्णो ! तेरे उस नामका महत्व जाननेवाला विद्वान् मैं आज तेरी प्रशंसा करता हूँ ।

६ हे विष्णो ! ते अस्तः आ चपद छणोमि । हे शिपि-विष्ट ! तन् मे हव्यं जुपस्व । मे सुन्दृतय विष्टः त्वा वर्धन्तु [ १६२७ ] - हे विष्णो ! मैं मुखमें से वषट्कार-पूर्वक हवि अर्पण करता हूँ । हे प्रकाशसे व्याप्त देव ! मेरी हविकी तु स्वीकार कर । मेरी उत्तम स्तुति तेरी महिमा बढ़ावे ।

विष्णुका नाम शिपि-विष्ट है । क्योंकि वह चारों ओरके किरणोंसे व्याप्त करता है । चारों ओर उसकी किरणें फैली हैं । पर वह अपने अपने कर्तव्य मनुष्योंका दित्त करता है । किरणोंमें व्यापनेवाला आकाशमें धुँवें हैं, पेघोंमें विद्युत् है

और पृथ्वीपर अग्नि है । इस अग्निमें हवन किया जाता है । उन हवनीय पदार्थोंको तृप्त करके वह चारों दिशाओंमें फैलाता है, इस कारण चारों ओर आरोग्यका वातावरण उत्पन्न होता है । सब लोगोंका जीवन इस कारण सुख और आरोग्यका जीवन होता है ।

### वायु

१ हे वायो ! शुक्रः द्विविष्टु ते मध्याः अग्रं मधामि [ १६२८ ] - हे वायो ! मैं निर्वीज होकर यत्न करता हूँ । उस यत्नमें सुखें ताबते प्रथम सोमरस देनेके लिए अर्पण करता हूँ ।

२ स्वाहुः सोमपीतये आयदि [ १६२८ ] - प्रशंसीय तु सोम पीनेके लिए आ ।

३ हे वायो ! इन्द्रः च यपां सोमानां पीति अर्धयः [ १६२९ ] - हे वायो ! तु और इन्द्र दोनों सोम पीनेके योग्य हो ।

४ युवां इन्द्रयः यमि [ १६२९ ] - तुम्हारे पात सोम रख बढ़ता है ।

५ हे वायो ! इन्द्रः च दायस्यः पत्नी शुष्मिण्या । नः ऊतये आयाते [ १६३० ] - हे वायो ! तु और इन्द्र दोनों बलके स्वासी और बीर्यवान् हो । हमारी रक्षाके लिए आओ ।

वायुकी प्रशंसा सब जगह होती है । वायु और इन्द्र दोनों देव बहुत सामर्थ्यवान् हैं, इसलिए उन्हें सर्वप्रथम सोमरस दिया जाता है । लोगोंकी रक्षा वायु करता है । वायु यदि ब हो, तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता । देवाओं जख्म करके हो मनुष्य जीवित रहता है । अतः मनुष्योंका जीवन वायु पर अवलम्बित है । इसलिए सब यत्नमें वायुको प्रथम स्थान दिया जाता है और उसको पुना प्रथम होने है । वायु दृढ़ हो तो प्राणियोंका जीना सम्यक् सम्यक्त हो सकता है । अन्न और पानीकी अपेक्षा वायुकी आवश्यकता ज्यादा होती है । यह आवश्यकता मनुष्योंको ही नहीं अपितु सभी प्राणियों और वनस्पतियोंको भी होती है । यह वायुका महत्व ऊपरके श्रवणोंमें उत्तम प्रकारसे दिखाया है ।

### सोम

१ शिवस्वत धियः हविं यातये हिन्यन्ति [ १६३१ ] - सत्कार करनेवालोंकी अनुतिपहरे रखके सोमको कलशमें जानेके लिए प्रेरित करती हैं ।

२ अस्व तं मज्जयामसि [ १६३२ ] - इस सोमके उस रसको हम शुद्ध करते हैं ।

३ यं सूरयः पुरा च नूनं गावः आसभिः वधुः [ १९३२ ]- जिस सोमरसकी विद्वान् लोग जंसे पहले पीते थे, वेते ही अब भी पीते हैं । पाथे भी अपने मुखसे सोमका भक्षण करती हैं ।

४ पुनानं पुराण्य गायथा व्यभ्यूषत [ १९३३ ]- छाने जानेवाले सोमकी पुराने स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है ।

५ नाम विभ्रतीः पीतयः देवानां कृण्वन्त [ १९३४ ]- हवि धारण करनेवाली भंगुलियाँ देवोंकी सोमरस अर्पण करनेमें समर्थ होती हैं ।

सोम कूड़ा जाता है । भंगुलियोंसे इवाकर उसका रस निकाला जाता है और उसका रस कलशमें भरकर रखा जाता है । बाइमें उसमें पानी मिलाकर वह छाना जाता है । विद्वान् लोग इस रसको पहलेके समान पीते हैं । सोमरसके छाने समय देवीके स्तोत्र कही जायजयें बोले जाते हैं । बारमें यह देवीकी विद्या जाता है, फिर बाइमें यज्ञ करनेवाले भी सोमरस पीते हैं ।

इस प्रकार सोमका कर्षण इस अध्यायमें माना है ।

## सुभाषित

१ हे सहस्र! यशो ! विभेभिः अग्निभिः इमे यशे इयं यथा, यतः धाम [ १९१७ ]- हे बलके पुत्र ! सब अग्नियोंके साथ इस यज्ञमें आ, यह स्तुति तुम और हमें अन्न दे ।

२ यत् प्रियं हि श्रद्धया तना देवं देवं यजामहे हविः त्वे इयं हव्यते [ १९१८ ]- जो कुछ भी हमेंता हवि अर्पण करके प्रार्थन देवताका यजन हम करते हैं, वे हवन सुशर्मे मिल जाते हैं ।

३ विश्वपतिः होता भन्द्रः श्रेष्ठयः नः प्रियः अस्तु, ह्यप्रयः ययं प्रियाः [ १९१९ ]- प्रजाओंका पालक, हवन करनेवाला और सुलक्षणी ऐसा भेद्य जनि हमें प्रिय हो । तथा उत्तम रीतिसे मजिदी अपने घरमें रखनेवाले हम भी उसे प्रिय हों ।

४ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं यः हवामहे, अस्माकं केयलः अस्तु [ १९२० ]- सब लोगोंमें भेद्य ऐसे इन्द्रकी पुष्टीके हितके लिए हम बुलाते हैं, वह इन्द्र देवता हवें हों । आप देनेवाला हो ।

४१ [ साम हिमो ना २ ]

५ ईद्वानः अग्रतिष्कुतः कृषा भोजसा कृष्टीः इयति [ १९२१ ]- वह सबका ईश्वर और हमारा प्रतिकार न करने-वाला वलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे अनुग्रह करनेके लिए मनुष्योंके पास जाता है ।

६ हे घतो ! विप्रः त्वं ऊत्या राधांसि नः वोदय [ १९२२ ]- हे निवासक अने ! मुखर और वर्तनीय ऐसा तू संरक्षणसे युक्त यम हमारी तरफ भेज ।

७ त्वं अस्थ रायः रयीः मसि [ १९२३ ]- तू इस धनकी रखे सानेवाला है ।

८ नः तुचे गाव्यं विद्वः [ १९२४ ]- हमारे पुत्रोंकी प्रतिष्ठाका स्थान मिले ।

९ अग्ने ! त्वं अग्रपुरयभिः अद्वयैः पर्वभिः तोकं तनयं पर्वि [ १९२५ ]- हे अग्ने ! अग्नियोंकी भावनाओंसे युक्त और किसीके द्वारा न दयाया जानेवाला तू अपने संरक्षणके साथनीति हमारे पुत्रोंकीका पालन कर ।

१० देव्या हेडांसि नः युषोधि [ १९२६ ]- देवके श्रोत्रको हमसे दूर कर ।

११ अदेवमि कूरसि च [ १९२७ ]- मनुष्यों की रक्षाओंके कोषको दूर कर ।

१२ हे शिपि-विष्ट ! ते सयं अयं घयुनानि विद्वान् अय प्रदोसामि [ १९२८ ]- हे किरणोंसे व्यापनेवाले विद्वान् ! उस तेरे नावकी, भेद्य और सब यम माननेवाला आ, आज प्रसन्न करता हूँ ।

१३ सुष्टुतयः मे तिरा त्वा धर्घन्तु [ १९२९ ]- मेरी उत्तम स्तुतियाँ तेरी महिमा बढ़ावें ।

१४ यूयं स्वल्पिभिः सः स्वदा पात [ १९३० ]- तुम कल्याण करनेवाले साथनीति हमारी तब रक्षा न की ।

१५ शायसः पतो शुभिषा [ १९३१ ]- तुम बीनों बलके स्वामी और साथध्वंजान् हो ।

१६ नः ऊतये आयातं [ १९३२ ]- हमारी रक्षाके लिए आओ ।

१७ शायसा स्तुतः अस्माकं मीदधान् बभूयान् [ १९३३ ]- वह बलका पुत्र हमें पुत्र देनेवाला हो ।

१८ विश्वायु दूराय च आसात् च अयायोः मर्याय नः सदे इयं निपादि [ १९३४ ]- सब मनुष्योंका रित करनेवाला तू दूरके और पासके पारी मनर्थोंसे हमेंता हमारी रक्षा कर ।

१९ हे इन्द्र । मर्दतेषु विभ्याः सृष्टः अग्निं अग्निः [ १६३७ ]- हे इन्द्र । तू सप्त मर्दोंमें सब भूकावला करनेवाले धनुओंको हरा ।

२० त्वयं । त्वं अशस्तिहाजनिता वृत्र-तु तदुप्यतः अग्निः [ १६३७ ]- हे सोमप्रतापे धनुओंको बुर करनेवाले इन्द्र । तू विपत्तियोंको बुर करनेवाला, सम्पत्तिका उत्पन्न करनेवाला, धनुओंका विनाशक और बाधा डालनेवाले धनुओंको बुर करनेवाला है ।

२१ तुरय-तं ते शुभ्रम् [ १६३८ ]- धनुओंको बल करनेवाला तेरा बल है ।

२२ यत् वृत्रं त्वयंति, ते मन्यवे विभ्याः सृष्टः अश्वयन्त [ १६३८ ]- जब तू वृत्रका बध करता है, तब तेरे कोपके आगे सब मुक्तावला करनेवाले धनु विपत्ति हो जाते हैं ।

२३ इन्द्र । यत् पलं अभिनत् रोचमा अमरिखिं वि मतिरत् [ १६४० ]- इन्द्रने जब बल रासवको फाड़ जाता, तब वहने तेजस्वी अमरिखिओ और अमिक तेजस्वी बनाया ।

२४ गुहा सतीः गाः आधिष्णुवन् पलं अर्पाचं त्रुवेद [ १६४१ ]- गुहामें रक्ती हुई गाँवोंकी इत्रने बाहर निकाला, तब गुहामें उनको रक्तनेवाले बल राजसको मोक्ष पहुँच करके प्राणवा पड़ा ।

२५ सत्रासाहं विभ्यास्तु गोपुं आपत त्वं ऊतये आ चयापयति [ १६४२ ]- जनत धनुओंको एकत्र भावनेवाले सब स्त्रीयोंके द्वारा शक्ति किए गए उस इन्द्रकी हमारे सारलके लिए हमारे पास आने दे ।

२६ शुभ्रं सन्तं अनुर्याणं अनुरप्युतं अयार्यमन्तुं नरं [ १६४३ ]- युद्ध करने पर भी कभी भी न हारनेवाले, ॥ इवनेवाले, जिसने दार्यकमकी कोई बदत नहीं सकता ऐसे और नेता इन्द्रकी हम सहप्राप्तके लिए बुलाते हैं ।

२७ हे अजीवम इन्द्र । विद्राज् रायः नः पुराविह, पापे धने नः अय [ १६४४ ]- हे सुवर इन्द्र । तब जाननेवाला तू धन लेकर उसमेंसे हमें बहुत सारा दे और धनो धन लाकर उसमें हमारी रक्षा कर ।

२८ धिपया त्वत् वृहत् इन्द्रियं तय दुर्षं उत कन्तुं परेयं यज्ञा निद्राति [ १६४५ ]- तेरी बुद्धि तेरे बलकी, तेरी शक्तिकी, तेरे शर्मकी और तेरे श्रेष्ठ बलकी तीव्र करनी है ।

२९ हे इन्द्र । योः तय रीत्यंशुपिथी अयः यर्पाति

[ १६४६ ]- हे इन्द्र । धुलोक तेरे योस्यकी और पृथ्वी तेरे यज्ञकी बढाती है ।

३० वृहत् स्य गृणान्ति [ १६४७ ]- बड़े-बड़े वर देनेवालेके रूपमें तेरी स्तुति होती है ।

३१ हे अग्ने देव । कृष्टयः ओजसे ते नमः गृणान्ति, अग्नेः अमित्रं अर्धय [ १६४८ ]- हे अग्नि देव । मनुष्य बल प्राप्त करनेके लिए तुझे नमन करने तेरी स्तुति करते हैं, अपने बलसे तू धनुओंका नाश कर ।

३२ हे अग्ने । नः गमिष्ये कृष्टिः सु-रयि सं-घेपिषः उरकृत् नः उरकृधि [ १६४९ ]- हे अग्ने । हमें बहुतसी गाँवें मिलें इतलिए तू हमें बहुत सारा धन दे । तू वज्र बढानेवाला हमें बहातू कर ।

३३ हे अग्ने । नः महाधने मा परावर्क । सद्यो रयि संजय [ १६५० ]- हे अग्ने । हमें संपादनमें बुर मत कर । इकट्ठा करके और बीतकर धन ला ।

३४ विभ्याः विद्राः कृष्टयः अस्य मन्यवे सं नमस्त [ १६५१ ]- सब प्रभावजन इतके कोपके आगे भुक्कर रहते हैं ।

३५ रोधतः वृत्रस्य शिरः पुष्पिणा शतपर्यया घसेय वि शिमेद् [ १६५२ ]- जगत्को कपानेवाले वृत्रके तिरको इत्रने सैकड़ों बारवाले बलसे कोड़ जाता ।

३६ अस्य तत् ओज तिरिपि, यत् इन्द्रः उमे वेदस्य चर्म इव समघर्तयत् [ १६५३ ]- इसका वह सामर्थ्य बनकने लग गया, जिसके बलसे इन्द्रने धु और पृथ्वीको बनबेके समान लपेट कर रख दिया ।

३७ दशभिः शृगैर्मि-इय विशन् आपस्य मध्ये तिष्ठति, शीर्याणि निमृदयम् [ १६५४ ]- बलों अंगुलियों हमारे बाले हुए बनकी बलें हुए हमारे पक्षमें इन्द्र लडा हुआ है । हे कोपों । उसके आगे अपने तिरकी मोक्ष करो ।

## उपमा

१ धंसगः यूया इय [ १६२२ ]- जैसे बंस लुण्ठन जाता है, उत्तीवकार ( युवा भोजनवा कृष्टीः इयति ) बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे मानवो तम्ह-यत्-में जाता है ।

२ निम्नं आपा न [ १६२९ ]- त्रिप्रकार कीकी जगहपर पानीका प्रवाह चलता है, उत्तीवकार ( युवा इन्द्रः यन्ति ) सुहृदों तरफ सोवरत आते हैं ।

३ धारयन्तं धर्म्यं न [ १६३४ ]- बैसे अयातवाले मोहेते उत्तर बैठनेवाले लोग प्रेम करते हैं, उत्तमकार ( भर्षि नमोभिः यन्धये ) अन्विको धर्मकर्ता हविर् धर्म्य करने प्रेम करते हैं ।

४ मातरा विष्टुं न [ १६३८ ]- जितप्रकार मातायें अपने बच्चोंके पोषे करती हैं, उत्तमकार ( क्षोणी ) छाया-पृथिवी इष्टके अनुवृत्त करती हैं ।

५ यथा भारशृणु [ १६५० ]- जैसे बौध उठानेवाला

भजद्वर बोझको धाराधाम पहुँचाता है, वैसे ही ( रवि संजय ) धृ पन बौधकर लभ ।

६ समुद्राय सिन्धवः न [ १६५१ ]- बैसे समुद्रमें नदियाँ नष्ट होकर मिलती हैं, वैसे ही ( विश्वाः विशाः अस्य मन्यये सं समन्त ) सब प्रजायें इस इष्टके शेषके प्रागे नष्ट होकर रहती हैं ।

७ यमं इव [ १६५१ ]- यमकीके समान ( उन्ने रोदुसी समयर्तयत् ) धृ मोर पुष्पो रोगीरो इष्टके लपेट कर रख दिया ।

## सप्तदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रांख्या	ऋषिहरणम्	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
१६१७	१।१६।१०	धुमन्तोष आशीर्वाता	अग्निः	गायत्री
१६१८	१।१६।१६	धुमन्तोष आशीर्वाता	"	"
१६१९	१।१६।३	धुमन्तोष आशीर्वाता	"	"
१६२०	१।३।१०	मधुचन्द्रमा वैशवाभिरः	इन्द्रः	"
१६२१	१।३।१	मधुचन्द्रमा वैशवाभिरः	"	"
१६२२	१।३।८	मधुचन्द्रमा वैशवाभिरः	"	"
१६२३	१।३।९	समुद्रार्हिस्यात् ( धुमन्वाभिः )	अग्निः	प्रवाचः ( विदवा दृष्टी, शमा कपोदृष्टी )
१६२४	१।३।१०	समुद्रार्हिस्यात् ( धुमन्वाभिः )	"	"
१६२५	३।१०।१६	वसिष्ठो भृगवर्वाभिः	विसृष्टः	त्रिष्टुप्
१६२६	३।१०।१५	वसिष्ठो भृगवर्वाभिः	"	"
१६२७	३।१०।१७	वसिष्ठो भृगवर्वाभिः	"	"
( २ )				
१६२८	४।४।११	वामदेवो गौतमः	वायुः	अनुष्टुप्
१६२९	४।४।१२	वामदेवो गौतमः	इन्द्रवज्रम्	"
१६३०	४।४।१३	वामदेवो गौतमः	"	"
१६३१	५।५।१२	देवशृङ्ग वामदेवो	वसुधावः सोमः	"
१६३२	५।५।१३	देवशृङ्ग वामदेवो	"	"
१६३३	५।५।१४	देवशृङ्ग वामदेवो	"	"
१६३४	६।६।१२	धुमन्तोष आशीर्वाता	अग्निः	गायत्री
१६३५	६।६।१३	धुमन्तोष आशीर्वाता	"	"
१६३६	६।६।१४	धुमन्तोष आशीर्वाता	"	"

मन्त्रवर्ण्य	श्रुवेदस्थानं	श्रुतिः	रेवता	छन्दः
१६३७	८।९९।५	नृमेघ आगिरसः	इन्द्रः	प्रगायः= ( विषमा बृहती, सप्ता सतोऽबृहती )
१६३८	८।९९।३	नृमेघ आगिरसः	"	"
( ३ )				
१६३९	८।१४।५	गोषूक्तयश्चसूचितनी काम्वायनी	इन्द्रः	गायत्री
१६४०	८।१४।७	गोषूक्तयश्चसूचितनी काम्वायनी	"	"
१६४१	८।१४।८	गोषूक्तयश्चसूचितनी काम्वायनी	"	"
१६४२	८।१९।७	भुतकस्तः सुकशो वा आगिरसः	"	"
१६४३	८।१९।८	भुतकस्तः सुकशो वा आगिरसः	"	"
१६४४	८।१९।९	भुतकस्तः सुकशो वा आगिरसः	"	"
१६४५	८।१५।७	विक्रप आगिरसः	"	जगिष्
१६४६	८।१५।८	विक्रप आगिरसः	"	"
१६४७	८।१५।९	विक्रप आगिरसः	"	"

( ४ )

१६४८	८।७५।१०	विक्रप आगिरसः	अग्निः	गायत्री
१६४९	८।७५।११	विक्रप आगिरसः	"	"
१६५०	८।७५।१२	विक्रप आगिरसः	"	"
१६५१	८।६१।४	वसः काम्वा	इन्द्रः	"
१६५२	८।६१।३	वसः काम्वा	"	"
१६५३	८।६१।५	वसः काम्वा	"	"
१६५४	—	धुनदोष आशीर्षति	"	"
१६५५	—	धुनदोष आशीर्षति	"	"
१६५६	—	धुनदोष आशीर्षति	"	"

## अथाष्टादशोऽध्यायः ।



अथाष्टमप्रपादके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८-२ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १ मेधातिथिः काव्यः प्रियमेवामिरतः; २ कृतकलः मुकल्लो वा काविरतः; ३ ध्रुवनीय माजीगतिः;  
 ४ हांयुर्वाहृत्यत्यः; ५ मेधातिथिः काव्यः; ६, ९ वसिष्ठो मेधावर्णः; ७ बालविन्यम् ( आयुः काव्यः ); ८ अम्ब-  
 रिषो वापतिरि, ऋजिरवा भारद्वाजश्च; १० विरचयना वेदव्यः; ११ सोमरि कव्यः; १२ तत्पर्यः ( १ भरद्वाजो  
 वाहृत्यत्यः, २ काव्यो भार्गवः, ३ पोतनो रघूवणः; ४ अश्विनैः, ५ विरचयितो वाचिनः, ६ जमदग्निर्गणैः,  
 ७ वसिष्ठो मेधावर्णः ); १३ कलिः प्राजाप्यः; १४, १७ विरचयित्रः प्राजाप्यः; १५ मेध्यातिथिः काव्यः,  
 १६ निधूमिः काव्यः; १८ भरद्वाजो वाहृत्यत्यः ॥ १-२, ४, ६-७, ९-१०, १३, १५ इन्द्रः; ३, ११,  
 १८, १९ मरिचः; ५ विलुः, ५ ( ६ ) देवो वा; ८, १२, १६ वयव्यः सोमः; १४, १७ ब्रह्मानी ॥ १-५,  
 १४, १५-१८, १९ वायवीः; १, ७, ९, १२, १३ प्रजाप्यः- ( विषया बृहती, सप्त सतीबृहती );  
 ८ अनुष्टुप् १० उज्जिह्वः, ११ काकुत्था प्रजाप्यः- ( विषया ककुत्थ, सप्ता सतीबृहती ); १५ बृहती ॥

१६५७ पन्थेपन्यमित्सोत्तर आ धावत मघाय । सोमं वीराप भूराय ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१९ )

१६५८ एह हरी मघयुजा शुम्भा वधतः सत्तापम् । इन्द्रं गीर्मिगिषेणसम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।२० )

१६५९ पाता वृत्रहा सुतमा धा ममभारे असात् । नि यमते श्वसमूहिः ॥ ३ ॥ १ ( वि ) ॥  
 ( घा० १४ । उ १ । स्व० ३ ) ( ऋ. ८।१।२१ )

१६६० आ स्वा विद्यन्निबन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न स्वामिन्द्राणि रिचवत् ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१।२२ )

[ १ ] प्रथमा सूत्रः ।

[ १६५७ ] हे ( सोत्तरः ) सोमरत निकालनेवाले धनवान् ! ( मघाय वीराय ) प्रत्यक्ष और वराधमो ( शूराय )  
 धूर इन्द्रके पास ( पन्थं पन्थं द्रुत् सोमं ) अथवा प्रसन्ननीय सोमरतको ( आ धावत ) पहुँचाओ ॥ १ ॥

[ १६५८ ] ( मघायुजा शुम्भा ) धार्वके इन्दारेते जुह्व कानेवाले, सुत देवेवाले ( हरी ) इन्द्रके शो घोड़े ( एह )  
 इस मत्तमे ( सत्तापं गीर्मिः गिषेणसं इन्द्रं ) मित्र और वाचियेति स्तुत्य इन्द्रको ( आवधूतः ) लेकर आओ ॥ २ ॥

[ १६५९ ] ( सुतं पाता वृत्र-हा ) सोम घोलनेवाला और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र ( ममभारं असात् ) हमारे पास  
 ( एव आगमन् ) अवश्य आये । ( नि यमते श्वसमूहिः ) संकष्टों कायनोति संरक्षण करनेवाला इन्द्र ( नियमते ) शत्रुघोरों पर  
 करता है ॥ ३ ॥

[ १६६० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( इन्द्रयः स्वा धा विद्यन्तु ) सोमरत जुते प्राप्त हों । ( सिन्धवः समुद्रं इव )  
 जैसे नदियाँ समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसीप्रकार इन्द्रको सोम प्राप्त हों । हे इन्द्र ! ( स्वां न अतिरिच्यते ) तेरी भपेला  
 और कोई भाँच नहीं है ॥ १ ॥



१६६१ विव्यवथ महिना वृषन्मस्य सोमस्य जायवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥२॥ ( ऋ. ८९१।२३ )

१६६२ अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृषहन् । अरं धामभ्य इन्द्रवः ॥ ३ ॥ २ ( क ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ ख० १ ] ( ऋ. ८९२।१४ )

१६६३ जराबोध तद्विविद्धि विश्वेविश्वे यक्षिषाम । स्वोमश्चद्राय दक्षीकम् ॥१॥ ( ऋ. १।१७।१० )

१६६४ स नो महा अनिमानो धूमकेतुः पुरुषन्द्रः । धिये वाजाय हिंस्यतु ॥२॥ ( ऋ. १।२७।११ )

१६६५ ॥ रेवाश्च विश्वपतिर्देव्यः केतुः शुणोतु नः । उक्थेरभिष्टुहृद्भानुः ॥ ३ ॥ ३ ( ह ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नासित । स्व० १ ] ( ऋ. १।२७।१२ )

१६६६ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहवाय सत्यने । यं यद्वे न शाकिने ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४५।२९ )

१६६७ न धा वसुनि यमते दाने वाजस्य गोमसः । यस्तीमुषध्रवद्विरः ॥२॥ ( ऋ. ६।४५।३१ )

१६६८ कुवित्सस्य प्र हि वज गोमन्तं दस्युहा गमत् । अचीमिर्य नो वत् ॥३॥ ४ ( फी ) ॥  
[ धा० १६ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।४५।३४ )

॥ इति प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

[ १६६१ ] हे ( वृषन् जायवे ) बलवान् और भाव्य रहनेवाले इन्द्र । तू ( सोमस्य भक्ष ) सोम पीनेके लिए ( महिना विव्यवथ ) अपनी महिमाके सर्वत्र व्याप्त होकर रहता है । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यः ते जठरेषु ) जो सोम तेरे पेटमें जाता है, वह महान् है ॥ २ ॥

[ १६६२ ] हे ( वृषहन् इन्द्र ) वृषनाशक इन्द्र ! ( सोमः ते कुक्षये अरं भवतु ) हमारे द्वारा दिए गए सोम तेरे पेटमें भर जाए, ( इन्द्रवः धामभ्यः अरं ) सोमरस सब देवताओंको भरपूर हो ॥ ३ ॥

[ १६६३ ] हे ( जराबोध ) स्तुतिसे जगत् हीनेवाले अपने ! ( विश्वे विश्वे ) प्रत्येक प्रजाजनके हितार्थ ( यक्षिषाम ) यक्ष सिद्ध करनेके लिए ( तत् विविद्धि ) उस यक्षशालामें प्रवेश कर । ( दक्षाय दक्षीकं स्वोमं ) यह सबकी अभिषेकके लिए सुवर्ण स्तोत्र बोली ॥ १ ॥

[ १६६४ ] ( महान् अनिमान ) यहान् और न आपने योग्य ( धूमकेतुः पुरुषन्द्रः सः ) धूमकी प्रकाशनाश और बहुत आनन्द देनेवाला वह अग्नि ( नः धिये वाजाय हिंस्यतु ) हमें जान और अश्रु प्राप्त करनेके लिए प्रेरित करे ॥२॥

[ १६६५ ] ( दैव्यः विश्वपतिः ) विश्व प्रजापालक ( वृष्टद्भानुः केतुः सः ) यहान् प्रकाशमान् और स्वर्णके ताम्रान् वह अग्नि ( देवान् इय ) बलवान् राजाके समान ( नः उक्थैः शृणोतु ) हमारे स्तोत्र सुने ॥ ३ ॥

[ १६६६ ] हे स्तुति करनेवालों ! ( सुते ) लोगका रस निकालनेके बाद ( धाः ) तुम ( पुरुहवाय सत्यने ) बहुशक्ति के द्वारा प्राप्तित और बलवान् ऐसे इन्द्रके लिए ( तत् सचा गाय ) उस स्तोत्रोंको एक जगह बैठकर पावो । ( यत् गये नः ) जिसप्रकार पापोंको प्राप्त कुल देती है, उसीप्रकार ( शाकिने वा ) शक्तिमान् इन्द्रको ये स्तोत्र आनन्ददायक होते हैं ॥ १ ॥

[ १६६७ ] ( यत् सौं ) यदि यह इन्द्र ( गिरा उष अयत् ) हमारी स्तुति सुनेगा तो ( वसुः ) सौंके निवासक इन्द्रको ( गोमन्तं वाजस्य वृषन् ) हमें पावेति पुष्ट अन्नका वान करनेसे ( न ध नियमते ) कोई भी रोक नहीं सकता ॥२॥

[ १६६८ ] ( दस्यु-हा ) अनुजोंको मारनेवाला इन्द्र ( कुवित्सस्य ) बहुत हिसा करनेवाले अनुजके ( गोमन्तं प्रज प्रागमत् ) गांभीते भरे हुए बाड़े पर अधिकार करता ( तथ ( हि दाचीमिर्य ) अपनी शक्तिपूर्वक ( नः [ गायः ] अपघर्त् ) वह हमारी पापोंको क्षान्त करने देता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

१६६९ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रैवा नि दधे पदम् । समूढमस्य वात्सुले ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२१।७ )

१६७० श्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोवा अदाम्ब्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥  
( ऋ. १।२१।८ )

१६७१ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यथे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥  
( ऋ. १।२१।९ )

१६७२ तद्विष्णोः परमे पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवौ च क्षुरातसम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२१।१० )

१६७३ तदिप्राप्तो विपन्नुवो जायुवांसः समिन्धते । विष्णोर्यदपरमं पदम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।२१।११ )

१६७४ अतो देवा अगन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या अधि सानेवि ॥ ६ ॥ ५ ( ऋ. ) ॥  
[ पा० १६ । उ० २ । सू० ६ ] ( ऋ. १।२१।१६ )

१६७५ सो पु स्वा वायवश्च नो अस्मन्नि रीरमन् ।  
आराताश्च सधमादं न आ गहीह वा सन्नुष ध्रुधि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२१।१ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १६६९ ] ( विष्णुः इदं विचक्रमे ) विष्णुने अब इस जगमें पराक्रम किया, सब उसने ( त्रैवा पदं निदधे ) तीन प्रकारसे अपने पावोंकी बहाई रक्ता । ( अस्य पात्सुले समूढम् ) इसके वृत्तिभूत पावोंके स्थान पर सब जगत् रह रहा है ॥ १ ॥

[ १६७० ] ( अ-दाम्ब्यः गोपाः विष्णुः ) न बबनेवाला रसक विष्णु ( अतः धर्माणि धारयन् ) बहाते सबके कर्तव्योंका पोषण करता हुआ ( श्रीणि पदा विचक्रमे ) अपने तीन पावोंसे सब जगत्को घेरता है ॥ २ ॥

[ १६७१ ] हे मनुष्यो ! ( विष्णोः कर्माणि पश्यत ) विष्णुके पुत्रपापोंकी देखो, ( यतः व्रतानि पश्यथे ) जिसके कारण सब व्रत-कर्मे बनते हैं । यह विष्णु ( इन्द्रस्य युज्यः सखा ) इन्द्रका योग्य मित्र है ॥ ३ ॥

[ १६७२ ] ( सूरयः ) विद्वान् ( विष्णोः तत् परमं पदं ) विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको ( सदा पश्यन्ति ) हमेशा देखते हैं । ( दिवि धाततं क्षुद्रः इव ) आकाशमें फँडे हुए नैऋत्यी सूर्यको देखनेके समान इस श्रेष्ठ स्थानकी विद्वान् लोग देखते हैं ॥ ४ ॥

[ १६७३ ] ( विष्णोः नत् परमं पदं ) विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको ( विप्रांसः जायुवांसः विपन्दयः ) साग्री, क्षाणुत और वृद्धि करनेवाले ( यत् समिन्धते ) प्रबोध करते हैं ॥ ५ ॥

[ १६७४ ] ( विष्णुः पृथिव्याः अधिसानेवि ) विष्णु पृथ्वीपरके अत्यन्त उच्च स्थानमें ( यतः विचक्रमे ) बहाते अपना चिकम करता है, ( अतोः ) उस स्थानकी ( देवाः नः अगन्तु ) सब देव हमारी रक्षा करें ॥ ६ ॥

[ १६७५ ] हे इन्द्र ! ( स्वा ) तुम ( वायवः च न ) क्षुत्ति करनेवाले ( अस्मन्नि रीरमन् ) हमसे दूर ( मा नि रीरमन् ) न रमावें । इतीत्य् पृ ( आराताश्च वा ) दूर हों तो भी ( नः सधमादं आगहि ) हमारे यत्नेके स्थानपर मा, नीर ( इह वा सन् ) यहां रहते हुए भी ( उप ध्रुधि ) हमारी क्षुत्ति मुन ॥ १ ॥

१६७६ <sup>३१ ३२ १३ ३ २४ ३ २ ३ १६ ३ ३ १</sup> इमे हि ते ब्रह्मकृताः <sup>३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> न ते सचा मघी न मध आसते ।

इन्द्रे कामं जरितारो वसुधयो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥ ६ ( ङी ) ॥

[ धा० १३ । उ० ४ । स्व० ४ ] ( ऋ ७३१२ । )

१६७७ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> अस्तावि मन्म पूर्ण्य ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

पूर्वांशैतस्य बृहतीरभूषत स्तोत्रमेघा अमृषत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८१९१९ )

१६७८ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> समिन्द्रो रायो बृहतीरभूषत सं क्षोणी सस्रु धर्म्य ।

संश्रुकासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ २ ॥ ७ ( ङा ) ॥

[ धा० १३ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ ८१९११० )

१६७९ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> इन्द्राय सोमं पातवे वृषमे परि विध्यसे । नरे च दक्षिणावते वीराय सदानासदे ॥ १ ॥

( ऋ ९१९८१० )

१६८० <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> संसखायः पुरुषं वयं यूपं च सूर्यः । अदयाम वाजगन्ध्वं सनेम वाजस्पत्यम् ॥ २ ॥

( ऋ. ९१९८१२ )

[ १६७६ ] हे इन्द्र ! ( ते सुते ) तेरे लिए सोमरस निचोढ़नेके वाद्य ( ब्रह्म-शृङ्गः ) स्तोत्र कहनेवाले ऋत्विज ( मघी ब्रह्मः न ) गह्वरेके लिए मन्त्रिणां मिश्रप्रकार एक जगह जमा होती है, उसीप्रकार ( सचा आसते ) एक जगह बैठते हैं । ( वसुधयो जरितार ) धनकी इच्छा करनेवाले स्तोता ( कामं ) अपने इष्ट फलको ( रथे पादं न ) जित-प्रकार रथमें पांव रखते हैं, उसीप्रकार ( आदधुः ) चारख करते हैं ॥ २ ॥

[ १६७७ ] हमने ( अस्तावि ) इन्द्रकी स्तुति की, हे ऋत्विजो ! उस ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( पूर्ण्य मन्म ब्रह्म वोचत ) पहलेके मन्त्रीय स्तोत्र कहो । तथा ( पूर्वांशैतस्य बृहतीरः अभूषत ) पहलेके वसंत बृहती छन्दमें ताम्रपात्र करो, ( स्तोत्रः मेघाः अमृषत ) स्तुति करनेवालोंको ऐसी बुद्धियां दो ॥ १ ॥

[ १६७८ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( बृहतीः रायो ) बृहत धन ( सं क्षोणी ) हमें देवे । ( क्षोणीः सं ) भूमि हमें है, ( सूर्यं सं ) सूर्यप्रकाश हमें प्राप्त हो, ( शुचयः शुकासः इन्द्रं सं ) शुद्ध किए गए सोम इन्द्रको प्राप्त हों । ( गवाशिरः सोमाः इन्द्रं अमन्दिषु ) गो दुग्धमें मिलाये गए सोमरस इन्द्रको प्रसन्न करें ॥ २ ॥

[ १६७९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृषमे इन्द्राय पातवे ) वृषको मारनेवाले इन्द्रको पीनेको देनेके लिए ( परि विध्यसे ) तू कलशमें भरता जाता है । ( दक्षिणावते ) बलिणा देनेवाले ( वीराय ) वीर इन्द्रको देनेके लिए ( सदानासदे ) मत्तगामां बैठनेवाले ( नरे ) नेता पञ्चमलको प्राप्त होनेके लिए कलशमें भरता जाता है ॥ १ ॥

[ १६८० ] हे ( सखायः ) स्तुति करनेवालो ! ( यूपं सूर्यः ) तुम बिद्यान् ( वयं च ) और हम ( सं पुरुषं वाजगन्ध्वं अदयाम ) उस अति सेलहवी थोढ़ सुगन्धले मुक्त सोमको पीयें, ( वाजस्पत्यं सनेम ) अन्न बढ़ानेवाले सोमको ॥ २ ॥

१६८१ परि त्व॑ ह॒र्यश्च॑ ह॒रिं व॒श्रुं पुन॑न्वि वा॒णे ।

यौ दै॒वान् वि॒द्यां ह॒व॒ परि॑ म॒देन॑ सह॒ गच्छ॑ति

॥ ३ ॥ ८ ( हा ) ॥

[ पा० १६ । उ० नास्ति । १२० २ ] ( ऋ. ९।१८।७ )

१६८२ क॒स्तमि॑न्द्र॒त्वा व॑स॒वा म॒र्त्यो द॒घर्ष॑ति ।

अ॒द्वा इ॒त् ते म॑घ॒वन् पा॒र्ये दि॒वि वा॒जो वा॒जं सि॒पास॑ति

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१२।१४ )

१६८३ म॒घोनः॑ र॒म वृ॒त्रह॑त्ये॒षु चो॒दय॑ ये द॒दति॑ प्रि॒या व॒शु ।

त॒व प्र॑णी॒ती ह॒र्यश्च॑ स॒रिभि॑र्वि॒द्या तरे॑म॒ दुरि॑ता

॥ २ ॥ ९ ( पि ) ॥

[ पा० १७ । उ० नास्ति । १२० १ ] ( ऋ. ७।१२।१५ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१६८४ ए॒दु म॒घोमि॑दि॒न्तर॑सि॒न्ध्याव्य॑पो॒ अन्ध॑सः । ए॒वा हि॑ वी॒र स्व॑व॒ते स॒दावृ॑षः ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१४।१६ )

१६८५ इ॒न्द्र स्था॑त॒र्हरी॑णां न॒ किष्टे॑ पू॒न्यैर॑नु॒विष् । उ॒दान॑श्च॒ श्रव॑सा न॒ मन्द॑ना ॥ २ ॥

( ऋ. ८।१४।१७ )

[ १६८१ ] ( हर्यश्च ह॒रिं व॒श्रुं त्वं ) मनी॒ह॒र, वृ॒त्रह॒रण॒ करने॑वाले और अ॒रण्यो॒षण॒ करने॑वाले उस सोमको ( वारेण॑ परि पुन॑न्वि ) म॒घनी॒शे के॑ धानते है : ( या॒ वि॒द्यान् वे॒द्यान् ) जो सब वेदोंको ( म॒देन॑ सह॒ ह॒व॒ ) आ॒गव॑के साथ हो ( परि गच्छ॑ति ) प्राप्ति होता है ॥ ३ ॥

[ १६८२ ] हे ( पक्षो॑ इन्द्र ) नि॒वात॑क इन्द्र ! ( तं॒ त्वा ) उस वृ॒शे ( का॒ व्या॒घर्ष॑ति ) कौन भला घमको बेता है ? हे ( म॒घव॑न् ) इन्द्र ! ( ते॒ श्र॒द्धा ) वृ॒त्रघ्न॒को य॒द्धा र॒क्षता॑ है, वह ( पा॒र्ये ) बल॒वान् ह॒वि ले॒कर ( पा॒र्ये दि॒वि ) वी॒रव॒श्र के॑ दिन ( वा॒जं सि॒पास॑ति ) अ॒ध्वरा॒ वाण॑ करने॒की इ॒च्छा॒ करता॑ है ॥ १ ॥

[ १६८३ ] हे इन्द्र ! ( म॒घोनः॑ ) म॒घवान् ऐसे तेरे लिए ( प्रि॒या व॒शु ये द॒दति॑ ) प्रिय प॒न-ह॒वि-जो देते हैं उन्हें ( वृ॒त्रह॑त्ये॒षु चो॒दय॑ ) वृ॒त्रघ्न॒ जल॑का उ॒त्ताह॑ दे । हे ( ह॒र्यश्च॑ ) ज॒तन॒ पो॒से र॒खने॑वाले इन्द्र ! ( त॒व प्र॑णी॒ती ) तेरी प्रेरणाके ( स॒रिभिः॑ ) वि॒द्वानोंके॑ साथ ( वि॒द्या दुरि॑ता॒ तरे॑म ) सब पाप॑सि ह॒न मु॒क्त हों ॥ ५ ॥

॥ यद्यौ दुसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १६८४ ] हे ( अ॒न्धर्व्यो॑ ) अ॒न्धर्षु ! ( म॒घोः अ॒न्धमः॑ ) बी॒डे सोम॑का आ॒नन्त॒रप्र॑क र॒त ( म॒दिन्त॑र ) अ॒ध्वन॒ ह॒र्षको॑ प्राप्ति होने॒वाले॑ इन्द्रके पास ( आ॒सि॒न्ध॑ ) र॒ष्य । ( स॒दावृ॑षः वी॒र ए॒व हि॑ स्व॑व॒ते ) म॒घने॑ बल॒से स॒दा ब॒धते॑ रहते, बाला वी॒र इन्द्र ही॑ वृ॒त्र उ॒त्ता होता॑ है ॥ १ ॥

[ १६८५ ] हे ( ह॒रीणां॑ स्था॒तन॑ इन्द्र ) पो॒से प॒नसे॑ र॒खने॑वाले इन्द्र ! ( ते॒ पू॒न्यै-र॑नु॒विष् ) तेरी॒ प॒नके॑ की गई॒ वृ॒त्रि ( श्र॒वसा॑ न॒ किः उ॒दान॑श्च ) म॒घने॑ बल॒से वृ॒त्रता॑ की॒ई भी॑ प्राप्ति नहीं कर सक॒ता तथा ( म॒न्दना॑ न ) तेज॒स भी॑ की॒ई प॒न नहीं॑ सक॒ता ॥ २ ॥

४२ [ साध. द्वितीया भा. २ ]

१६८६ तं वो वाजानां पतिमहमहि अवसवः । अप्रायुमिर्गन्नेमिर्वावृषेन्यम् ॥३॥ १० (क) ॥  
[ धा० १६ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।२४।१८ )

१६८७ तं गृध्या स्वर्णं देवासो देवमरति दधन्विरे । देवत्रा ह्यमृद्दिपे ॥ १ ॥ ऋ. ८।१९।१ )

१६८८ विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिपमग्निर्मोहिष्व यन्तुरम् ।  
अस्य मेघस्य सोम्यस्व सोमरे प्रेयश्चराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥ ११ ( या ) ॥  
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१९।२ )

१६८९ आ सोम स्वानो अद्रिमिस्तिरां वाराण्यकथया ।  
जनौ न पुरि चम्बोविशद्विरेः सदा वनेषु दधिपे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।०७।१० )

१६९० स माम्बुले तिरौ अण्वानि मेप्यो मीद्वारसस्तिर्न वाजयुः ।  
अनुमाद्यः पयमानो मनोपिमिः सोमो विप्रेमिर्भक्षमिः ॥ २ ॥ १२ ( तु ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।१०७।११ )

१६९१ वयमेनमिदा सोऽपिपेमिह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य सवने सुर्व भरा नूनं भूयत भुवै ॥१॥  
( ऋ. ८।६९।७ )

[ १६८६ ] ( अवसवः ) यज्ञकी इच्छा करनेवाले हम ( वाजानां पति ) यज्ञकी स्वामी ( अप्रायुमिः यज्ञेभ्यः प्रायुधेभ्यः ) प्रमादरहित मनुष्योंके द्वारा किये जानेवाले यज्ञोंमें बढनेवाले ( व० ते ) कुम्हारके उस बग्नको ( महमहि ) हम सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ १६८७ ] ( स्व-नरं तं गृध्या ) स्वर्णके नेता उस अग्निकी स्तुति कर । ( देवासः देवैः भरति दधन्विरे ) स्तुति करनेवाले ऋषिज विषय पनको प्राप्त करते हैं । हे अग्ने ! तू (हव्यं देवत्रा ऊहिपे ) हविकी देवोंकी ओर पशुपता है ॥ १ ॥

[ १६८८ ] है ( सोमरे विप्र ) सोमरे ऋषि । ( विभूतरातिं चित्रशोचिप ) बहुत बान देनेवाले विषय प्रकाशनाम् ( सोम्यस्य अवय यन्तुरे ) इस सोमयागके वातक वृक्षे ( पूर्व्यं अग्निं ) प्राचीन अग्निकी ( अश्वराय ई हिदिष्व ) दत्त करनेके लिए स्तुति कर ॥ २ ॥

[ १६८९ ] है ( सोम ) सोम । ( अद्रिमिः स्वानां ) पत्थरोंके कूटकर रस विजोहा गया ( भन्यया वाराणि तिर. या ) भेड़के बालोंकी छलनीमें छनकर ( हरिः चम्बोः विशत् ) हरे रबका सोम कलशमें जाता है । ( पुरि जन. अ ) यगस्थे निवस्रकार कोई मनुष्य जाता है, वस्रकार वह सोम ( वनेषु सवः दधिपे ) लकड़ोंके पात्रमें अपना स्थान बनाता है ॥ १ ॥

[ १६९० ] ( याजयुः ) बस बजानेवाला ( मीद्वार्य सतिः न अनुमाद्यः ) धर्मवान् धर्मके समान प्रेम करने योग्य ( सः पयमान सोम ) वह छाया जानेवाला सोम ( मनोपिमिः मेप्यः अण्वानि तिरः ) विद्याओं द्वारा भेड़के-बालोंकी बनी छलनीमें छाना जाता हुआ । ( क्षत्रियभिः विप्रेभिः माम्बुजे ) ऋषिज विप्रों द्वारा स्तुत व प्रशंसित होता है ॥ २ ॥

[ १६९१ ] ( वयं एन वाजिर्ज ) हमने इस बजपायी इन्द्रकी ( इदा ह्य. इह ) इस समय और पहिले भी इस यज्ञमें ( अपिपेम ) सोमके पुत्त किया, ( तस्मा उ ) उन्हीं इन्द्रके लिए ( अद्य सवने ) आजभी इस यज्ञमें ( स्तुते भर ) सोमरस भरण करी । ( नूनं भुवै याम्भूयत ) निश्चयसे स्तोत्रपाठ सुननेके लिए वह यहाँ आये ॥ १ ॥

१६९२ वृक्षश्चिदस्य चारुण उरामथिरा वयुनेषु भूपति ।

समं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चिनया विषा ॥ २ ॥ १३ (खा) ॥

[ पृ० १६ । उ० २ । स्त० २ ] ( अ. ८।६६।८ )

१६९३ इन्द्राग्नी रोचना दिवः परी नालेषु भूषणः । तर्द्धा चेति प्र वीर्यम् ॥ १ ॥ (शु ३।१२।९)

१६९४ इन्द्राग्नी अपसस्पृश्यं प्र यन्वि वीतयः । अतस्य पथ्या३ अनु ॥ २ ॥ ( ऋ. ११/१७ )

१६६५ इन्द्रायै तन्वियाणि वां सधस्यानि प्रयांसि य । यवोरपत्यै दिवम् ॥ ३ ॥ १४ (क) ॥

[ धा० ६ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ ११२५८ )

१६९६ क० वेद सुत सखा पिपन्तं कद् ययो दधे ।

अ<sup>३</sup>पं<sup>१</sup> यः<sup>२</sup> पु<sup>३</sup>र<sup>४</sup>ो वि<sup>५</sup>मि<sup>६</sup>न<sup>७</sup>च्यो<sup>८</sup>ज<sup>९</sup>सा म<sup>१०</sup>न्दा<sup>११</sup>नः<sup>१२</sup> शि<sup>१३</sup>ष्य<sup>१४</sup>न्ध<sup>१५</sup>सः॥ १ ॥ ( ऋ ८।१९।७ )

१६९७ दानां मुगो न वारणः पुरुषा च रथे वधे ।

न किंवा नि यमदा सुते गमो महाश्वरस्योजसा ॥ २ ॥ (अ. ८।१।८)

[ १६९२ ] ( अथ यद्युनेषु ) इस इन्द्रके आगमें ( उरामधिः वारणाः युक्तविश्वः ) कण्ट देनेवाला भीर बिल बालनेवाला शत्रु भीतिपैके समान कर भी हो तो भी ( आभूपाति ) अनुकूल होकर उसकी सेवा करने लगता है । ( स्तः इन्द्र ) वह स्व है इन्द्र । ( नः इमं स्तोमं जुजुषावः ) हमारे इस स्तोत्रकी स्वीकार करके ( विजयया धिया म आगति ) फल देनेवाली बुद्धिके साथ यहाँ आ ॥ २ ॥

[ १११५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( दिव्यः रोचन्वा ) दुर्लभको प्रकाशित करनेवाले पुत्र ( धातेऽमु पतिभूषणः ) युद्धमें विजय प्राप्त करने सुगोचर होते हो । ( वां तत् धीर्यं प्र च्येति ) तुम्हारा यह धीर्य इस प्रकार प्रकट होता है ॥ १ ॥

[ १६९४ ] ॥ ( इन्द्राक्षी ) इन्द्र और माने ! ( धृतिरा ) तानी लीग ( क्षमस्व पर्या भद्र ) साथ मार्गते जाकर ( भयस्तः परि उप प्रयन्ति ) कर्मकी सिद्धिकी प्राप्ति करते ॥ २ ॥

शान्ति सौम्य सत्यके मार्गसे जाकर कर्मकी सिद्धि प्राप्त करते हैं।

[ १६९५ ] है ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने । ( वां सविषाणि ) तुम्हारे वस और ( प्रयांसि ) साव ( सप्त-स्थानि ) एक साथ रहते हैं । ( युवोः अभ्युर्व हितं ) तुममें शोभताते काम करनेका सामर्थ्य स्थापित किया गया है ॥३॥

[ १६९६ ] [ सुते सच्चा पित्रन्तं हँ कः खेव ] सोमयज्ञमे सख्ये साधु बैठकर सोमरस पीनेवाले इस इन्द्रको भला कौन जानता है ? ( कदु वयः दधे ) उन्नवी कितनी मायु है, यह भी भला कौन जानता है ? ( अयं यः शिमी ) जो यह तिरपट शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र है, वह ( अन्धसः मन्दानः ) सोमरससे भ्रान्तबुद्धि होकर ( ओजसा ) अपने सामर्थ्यसे सबको ( परः विभ्रामाचि ) नगरोंकी सीढ़ डालता है ॥ १ ॥

[ १६२७ ] ( मृग. वारणः दान्ता न ) अमुना घोष करनेवाले मरुभूमत हाथीके समान ( पुद्गला व रथं दधे )  
 भवेत् यतोमिं नृ अना रथके जाता है । ( त्या न किः नियमत् ) मुझे कोई भी रोक नहीं सकता । हे रथ । ( मुते आगमः )  
 तोम यतोमिं नृ अ । ( नः अहम् ) हमारे लिए नृ गहन आदरणीय है, और नृ ( भोजता चरति ) अपने सामर्थ्यसे  
 सर्वत्र संचार करता है ॥ २ ॥

१६९८ य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय सत्स्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मथवा शृण्वद्भवं नेन्द्रो योपत्या गमत् ॥ ३ ॥ १५ ( ही ) ॥

[ भा० ११ । उ० नास्ति । १५० ४ ] ( ऋ ८।३।१९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१६९९ पयमाना अस्वस्त सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काष्ठा ॥ १ ॥ ( ऋ ९।६।१९ )

१७०० पयमाना दिक्स्पष्टन्तरिक्षादसुसत । पृथिव्या अधि सानवि ॥ २ ॥ ( ऋ ९।६।१७ )

१७०१ पयमानास आश्वनः शुभ्रा असुग्रमिन्दवः । प्रन्वो विश्वा अप दिपः ॥ ३ ॥ १६ ( क ) ॥

[ भा० १५ । उ० २ । १५० १ ] ( ऋ ९।६।२६ )

१७०२ तौष्ठा वृषहणा हुवे सजित्वानामपराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥ ( ऋ ३।१।४ )

१७०३ प्र धामर्चन्त्युक्थिनो नीधाविदो अरितारः । इन्द्राग्नी इव आ वृणे ॥ २ ॥ ( ऋ ३।१।५ )

१७०४ इन्द्राग्नी नवर्ति पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ ३ ॥ १७ ( र ) ॥

[ भा० ८ । उ० नास्ति । १७१ ] ( ऋ ३।१।१९ )

[ १६९८ ] ( य उग्र सन्न ) जो उग्रवीर होनेके कारण ( अनिष्टृतः ) शत्रुओंसे न हारते हुए ( स्थिरः ) स्थिर रहता है, और ( रणाय सत्स्कृतः ) युद्धके लिए शस्त्रोंसे भूषित हुआ रहता है ऐसा वह ( मथना इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ( यदि स्तोतुः हवे शृण्वत् ) यदि स्तोताकी आर्चना पुनः से तो वह ( न योपति ) इतारी तरफ जायगा नहीं और ( आगमत् ) यहाँ यत्नमें आया ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १६९९ ] ( शुक्रासः इन्दवः ) स्वच्छ और समकनेवाले ( पयमानाः सोमाः ) छात्रों जानेवाले सोमरस ( विश्वानि काष्ठा ) सब वेदमन्त्रोंकी स्तुतिके चलनेपर ( अभि अस्वस्त ) युद्ध किए जाते हैं ॥ १ ॥

[ १७०० ] ( पयमानाः ) युद्ध होनेवाले सोमरस ( दिक् गन्तरिक्षात् ) ध्रुवोंके और अन्तरिक्षसे ( पृथिव्या अधि सानवि ) भूमिपरके ऊंचे पक्ष स्थानमें ( धर्मस्सुसत ) रहते हैं ॥ २ ॥

[ १७०१ ] ( आश्वनः शुभ्रा ) वेदवान् और शुभ ऐसे ( पयमानासः इन्दवः ) युद्ध होनेवाले सोमरस ( विश्वा दिप अपचनन्तः ) सब शत्रुओंको विनष्ट करते हुए ( असुग्रम् ) कलत्रमें जाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७०२ ] ( तौष्ठा ) शत्रुओं पर विजय प्राप्तनेवाले, ( वृषहणा ) शत्रुओंका नाश करनेवाले ( सजित्वाना अपराजिता ) शत्रुओंको जीतनेवाले और स्वयं अपराजित ऐसे ( वाजसातमा इन्द्राग्नी हुवे ) जल देनेवाले इन्द्र और अग्निकी में आर्चना करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७०३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( उक्थिनः वा अर्चन्ति ) वेदवाओ पुम्हारी अर्चना करते हैं । ( नीधाविदो अरितारः ) सामयावक पुम्हारी स्तुति करते हैं ( इव आ वृणे ) जल प्राप्तिके क्रिय में भी तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ १७०४ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( दास पत्नीः नवर्ति पुरा ) वारंवार द्वारा रजित करने मगरोंकी ( एकमेन कर्मणा साकः अधूनुत ) एक प्रयत्नसे एक साथ तुम्हें हिला दिया ॥ ३ ॥

१७०५ उप त्वा रण्यसंघं प्रयस्यन्तः सहस्रकृतः । अग्रे ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥ (ऋ ६।१६।३७)

१७०६ उप न्छायामिव घृणेरयन्म शर्म ते वयम् । अग्रे हिरण्यसंदृष्टः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।३८ )

१७०७ य उग्र इव शूर्यहा तिग्मशृङ्गो न वत्स्रयः । अग्रे पुरो रुरोञ्जित ॥ ३ ॥ १८ (य) ॥

[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० ? ] ( क्र. ६ । ६३/९ )

१७०८ अतावानं पैशानरमृतस्य ज्योतिषरूपसिम् । अजस्रं धर्ममीमहे ॥ १ ॥ ( अथ. ६।१६।१ )

१७०९ य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुचिरन् । अतनुत्सुजवे वधी ॥ २ ॥

१७१० अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भन्पस्य । सप्राढेको निराजति ॥ ३ ॥ १९ (का) ॥

[ ਖਾ० ੧੧ । ਤ० ੧ । ਸਯ० ੧ ]

॥ इति चतुर्थं सर्गः ॥ ४ ॥

॥ इत्यष्टमपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ ८-२ ॥

॥ इत्यष्टावशोऽभ्यासः ॥ १८ ॥

【 १७०५ 】 हे ( सहस्रकृत अक्षरे ) यस्तुते उत्पन्न विष्टे तपु आने । ( प्रयत्यव्युत् ) हवि सेवर भागेवाले हम ( रण्यव्यवस्थां त्वा उप ) रमणीय और बानीय ऐसे तेरे पास रहकर ( गिरः समुज्जम्हे ) अपनी प्राणीमे तेरी शक्ति करते हैं ॥ १ ॥

[ १७०६ ] हे ( ज्ञाने ) जगत् । ( तिरव्यस्तद्वशः प्रणेते ) सुवर्णके समान तेजस्वी बीजनेत्राते तेरे ( धर्म ) आधरणे आकर ( धर्म उप आत्म ) हम सुख प्राप्त करें ( छाया द्य ) निराकार कोई रूपसे आकर छायामें सुख प्राप्त है, जसीप्रकार हम भी तेरे आधरणमें सुख प्राप्त करें ॥ २ ॥

[ १७७ ] ( यः उग्र इव ) सो अग्नि उग्रवीर यन्वीर्ये शूरवीर्ये समान है, ( यस्यः स निःस्रष्टाः ) येषाम् शूल ज्ञेयं तेन सांगीति युक्त रहता है, वैसे ही वह अपनी तीक्ष्ण उदात्तांगति युक्त रहता है । हे ( अग्ने ) अपने ( पुरः ऋतो जिह्वा ) तुने शत्रुके नगर तोड़े है ॥ १ ॥

[ १४०८ ] हे माने । (कृताचाराने वैश्वानर) यत्न करणेवाला, मनुष्यांचा हित करणेवाला । (नृत्य उद्योगिणः पतिं) यत्नशील व्यक्तीं ते श्वेत रत्ना करणेवाला (अजकृत धर्म ईश्वरे) निरंतर प्रदीप्त होतेवाले अतिशय ह्म उपासना करते हे ॥ १४ ॥

[ १०९ ] (घ) जो अग्नि (इह) इस जगत्को धुँसी करनेके लिए (यस्यै स्वः उत्तिरन्) यहाँ तब विष्णोको दूर करता है, ऐसी (अग्निं पश्येत्) जिसको प्रगिति है । यह (यद्वा) सबको अपने भयान करने (प्रागून् उत्तरुजते) श्वेतर्षोको जगस करता है ॥ २ ॥

[ १७१० ] ( भूतस्य अद्यस्य कामः ) उत्पन्नं हृदं और भागे उत्पन्न होनेवाले मिलती इच्छा करते हैं, ऐसा ( एकः सद्भाट अग्निः ) अनेक सद्भाट भग्नि ( भियेषु भामसु विराजति ) प्रिय यह स्थानोंमें विराजता है ॥ ३ ॥

॥ यद्वा जीवा खण्ड समाप्त इति ॥

॥ अष्टादशोऽध्यायः ॥





## अष्टादश अध्याय

इस अध्यायके अध्यायमें इन्द्र, अग्नि, इन्द्राग्नी, विष्णु और सोम इन पांच देवताओंका वर्णन है। इसमें इन्द्र देवताका विस्तृत वर्णन है—

इन्द्र

१ मध्याय दीराय इराय पयं सोमं आधावत् [ १६५७ ]— प्रसन्नचित्त और पराक्रमी ब्रह्म इन्द्रके पास प्रशंसनीय सोम वीर्य पहुंचाओ। इन्द्र पराक्रमी और ब्रह्म है। सोम पीकर वह और अधिक पराक्रम करनेवाला हो जाता है।

२ वृषहा असत् आरे आगमत्, शवं कतिः नियमते [ १६५९ ]— वृषकी आरनेवाला इन्द्र हमारे पास आये। तैरकों संरक्षणके साथनौसे युक्त इन्द्र वायुओंको ब्रह्म करता है।

३ हे इन्द्र। त्वां न अतिरिचयते [ १६६० ]— हे इन्द्र। तेरी अपेक्षा अधिक नेष्ठ और कोई नहीं है। तू ही सबसे नेष्ठ है।

४ पुष्टकृताय स्वधने सचा गाय, वाकिने वां [ १६६६ ]— जिते बहुते लौघ सहायताके लिए बुलाते हैं, उस सचवान् इन्द्रके लिए एकत्र बैठकर स्तोत्रीका गान करो। शशितवान् इन्द्रके लिए वे आगन्धवायक हों।

५ वसुः गोमतः वाजस्य दानं न घ नियमते [ १६६७ ]— तर्कोंकी बतानेवाले, वाय और अन्नका वान करनेवाले इन्द्रकी उसके दान करनेसे कोई रोक नहीं सकता।

६ दक्षुदा कुविरास्य गोमन्तं वज्रं प्रागमत्, दाक्षिभिः मः [ माः ] अपघरत् [ १६६८ ]— दक्षुकी मारनेवाला इन्द्र बहुत हिंसा करनेवाले अनुवीकी भाषोंके भाषों पर अपना अधिकार करता है, सब अपनी शक्तिसे वह हमें गायें देता है।

७ वाघतः असत् आरे त्वा मा निरीरमत्। नः स्वधमादि आगदि इह उप ध्रुधि [ १६७५ ]— वे स्तुति करनेवाले मनुष्य तुम हमसे ब्रह्म न करे। तू हमारे यज्ञके स्वाग पर आ और पहा स्तुति पुनः।

८ ते सुते प्रहृकृता सचा आसते [ १६७६ ]— तेरे लिए सोमरस निकालनेके बाद स्तोत्र पाठ करनेवाले एक बैठते हैं और स्तोत्र बोलते हैं।

९ पूर्वीः ऋतस्य वृहतीः अनुपत् [ १६७७ ]— पहलेके यज्ञमें बोले जाने योग्य वृहतीछन्दमें सामगान करो।

१० इन्द्रः वृहती रायः सं अधुसुत [ १६७९ ]— इन्द्र बहुत यश हमें है।

११ क्षोणी सं [ १६७९ ]— भूमि भी हमें देवे।

१२ गवाशिरः सोमाः अमन्विषुः [ १६७९ ]— गो-धुग्धमें मिलावे गध सोमरस इन्द्रकी आर्तब देवें।

१३ वृषमे इन्द्राय पातये परिपिच्यते [ १६७९ ]— वृषका वध करनेवाले इन्द्रकी शीशेकी देनेके लिए हे सोम ! तुम कलशमें भरा जाता है।

१४ हे मधवन्। ते अथा घाजी पायें दिधि घाजं सिपासति [ १६८९ ]— हे धनवान् इन्द्र। तुम पर अथा रखनेवाला बलवान् होकर सोमरस निकालनेके दिन अन्न दान करनेकी इच्छा करता है।

१५ मघोनः तय मिया वसु ये ववाति, धूम-हस्येऽनु जोदय [ १६८१ ]— धनवान् इन्द्रकी प्रिय वस्तु जो देता है, युद्धमें जानेका उसका उत्साह है इन्द्र। तू बड़ा।

१६ हे हर्षश्च। तव प्रणीतिस्त्रिभिः विश्वा तुरिता तरेम [ १६८९ ]— हे वसन्त घोड़े पालनेवाले इन्द्र। तेरी श्रेणामे विद्वानोंके साथ रहकर हम सब पापोंसे मुक्त हो जायें।

१७ सदा वृषः घीरः स्तब्धते [ १६८४ ]— अपने बलसे सदा बढनेवाला घीर इन्द्र प्रसन्नित होता है।

१८ हे हरीणां स्वातः इन्द्र। ते पूर्व-स्तुति शवसा न कि उदानेश [ १६८५ ]— हे घोड़े पातमें रखनेवाले इन्द्र। तेरी पहलेकी गई स्तुतिकी अपने बलसे दूसरा कोई प्राप्त नहीं कर सकता। तू ही ऐसा सामर्थ्यवान् है कि जिसकी ऐसी प्रशंसा होती है।

१९ अवस्थयः वाजान्तं पति म-प्रायुभिः यक्षेभिः वायुधेभ्यं वा तं अहमदि [ १६८६ ]— वाजोंकी इच्छा करनेवाले हम बलके स्वामी और योगरहित यक्षोंसे बढानेवाले तुम्हारे उस इन्द्रकी सहायताके लिए बुलाते हैं।

२० वयं यन् वशिष्णं इह अपीम [ १६९१ ]— हम इस वसुधापी इन्द्रकी इत यज्ञमें सोमरससे युक्त करते हैं।

२१ अस्य वसुनेषु उग्रमग्निः वारणः घृकः चित्

सामूपाति [ १६९२ ]- इस इन्द्रके कृत्यमें कष्ट देनेवाला और प्रतिघ्न करनेवाला शत्रु अने ही भेदोंके समान कर हो तो भी वह उतके अनुकूल होकर सुखोन्नति होने लगता है ।

२२ शिरीर अन्धसः श्मन्शनः योजसा पुरः विमि-  
नन्ति [ १६९६ ]- इन्द्र सोमपानसे आनन्दित होकर अपने सामर्थ्यसे शत्रुके नगरोंको तोड़ता है ।

२३ पुत्रशर रथं दधे, त्या न किः नियमत् [ १६९७ ]-  
हे इन्द्र ! तू अपना रथ आगे चला । तुझे कोई भी रोक नहीं  
सकता ।

२४ हे चसो इन्द्र ! त्या काः याद्वर्षति [ १६८२ ]-  
हे विधातक इन्द्र ! तुझे भय विधानमें भला कौन समर्थ है ?

२५ याः उग्रः सन् नमिपुताः, स्थिरः रणाय संस्तुताः  
मपसा इन्द्र ! यदि स्तोतुः ह्येष ऽष्टणपत्, न गोपनि,  
आगमत् [ १६९८ ]- जो उग्रवीर होनेके कारण कभी भी  
नहीं हारता, युद्धभूमि पर स्थिर रहकर युद्ध करनेके लिए  
तैय्यार रहता है, वह धनवान् इन्द्र यदि स्तुति करनेवालेकी  
प्रार्थना सुन ले, तो दूसरी तरफ आयोग ही नहीं, निराश्रयसे  
यहाँ धानमें छाएगा ।

२६ मधुमुखा शग्मा हरी इह स्वकार्ये इन्द्र ! भाव-  
स्तः [ १६५८ ]- चाव कहते ही बुद्ध जानेवाले और सुख  
देनेवाले इन्द्रके मोठे मधु बलमें भिन्न और स्तुतिके योग  
इन्द्रको लेकर आते हैं ।

इन्द्र हमेशा आनन्दित, उत्साहित और दूरवीर है । उसके  
पास संरक्षणके अनेक साधन हैं, उसके समान शूरवीर दूसरा  
कोई नहीं । वह जब पराविका इन्द्र करता है तब उसे कोई  
रोक नहीं सकता । गाँवें घुरानेवाले असुरोंकी हराकर वह  
गाँवें वापस प्राप्त करता है । फिर उन गाँवोंकी भत्तीमें बाट  
देता है । इस इन्द्रके रास्ते पर चलनेवाले सब पापोंसे मुक्त  
हो जाते हैं । सप सौम इन्द्र इन्द्रको जन्मो सहायताके लिए  
मुलाते हैं, और वह इन्द्र उनकी मददके लिए जाता है । वह  
हतला बलवान् है कि एक ही आक्रमणसे शत्रुके संकटों नष्टोंको  
सोझकर बिलयी होकर धराशैरी होता है । ऐसा इन्द्र सबीके  
द्वारा प्रशंसित होने योग्य है ।

### अग्नि

१ हे अप्यपोष ! विदो विदो जनाय यन्नियाय तत्  
तत् विविदिह [ १६९२ ]- हे स्तुतिके आश्रुत होनेवाले  
अग्नि ! प्रत्येक मनुष्यके हितके लिए जो बल दिया जाता है,  
उसे सिद्ध करनेके लिए तू यज्ञशास्त्रमें आ ।

यज्ञशास्त्रमें अग्नि बलाकर उसमें विशेष धानुओंका हवन  
किया जाता है और उस बलसे सब मनुष्योंका कल्याण होता है ।

२ महान् अग्निमानः धूमकेतुः पुरुदक्षमन्त्रः सः नः  
धियो याताय हिन्वतु [ १६६४ ]- महान् इतौलिह भावनेके  
अयोग्य, धुआँ हो प्यत्र है जिसका ऐसा बहुत आनन्द देनेवाला  
बहु अग्नि हमें ज्ञान, बल और धनको प्राप्तिके लिए प्रेरणा  
देवे । उस रातसे हमें के जाए कि जिस मार्गसे हमें ज्ञान  
और बल प्राप्त हो ।

३ देव्यः विश्वसिः शुद्ध भानुः सः रेवान् इय नः  
उपश्रैः ष्टणोत्तु [ १६६५ ]- यह दिव्य शक्तिके पुत्र  
प्रजाका वासन करनेवाला, बहुत तेजस्वी बहु अग्नि पतवान्  
रामाके समान हमारे स्तोत्र सुने । अग्निमें दिव्य शक्ति है ।  
अग्निमें जो यज्ञ होता है, उससे प्रजा कीरणी होती है, और  
दोगोंसे रक्षा होती है । ऐसी यह अग्नि हमारी स्तुतिके  
स्तोत्र सुने ।

४ धिभूतराति चित्रशोचिर्न पृथ्वी अर्धवराय  
ईडिप्य [ १६८८ ]- बहुत दान देनेवाले, विशेष प्रकाशमान  
प्राचीन अग्निकी पक्ष करनेके लिए स्तुति कर ।

५ ते सहस्रस्तुत अग्ने ! प्रयस्यन्तः रण्यस्तं ददां त्या  
उष गिरा ससुजमहे [ १७०५ ]- हे धनसे उत्पन्न होनेवाले  
अग्ने ! अन्न लेकर बानेवाले हवन रातगोय दीखनेवाले तेरे  
पास आकर अपनी बानोंसे तेरी स्तुति करते हैं ।

६ हे अग्ने ! हिरण्यसंहराः घृणेः ते हार्मै, छायां  
इह स्य उष आगन्तु [ १७०६ ]- हे आग्ने ! सोनेके समान  
तेजस्वी दीखनेवाले तेरे आध्ययमें आकर, जैसे कीर्ति धूपसे  
आकर छायामें सुख प्राप्त करता है, उसीप्रकार हवन सुख  
प्राप्त करें ।

७ य उग्र इह, संस्तवाः न तिम्रभृगाः, पुरा  
रुदोजिध [ १७०७ ]- यह अग्नि महान् मनुष्योंके समान  
और है, वेगवान् तेज तीव्रोंवाले बलके समान भयकर वह  
अग्नि शत्रुओंके नगरोंको तोड़ता है ।

८ श्रुतावानं वैभ्यानरं, कतरय उजोतिर्य । पति  
अजर्ह धर्म ईमहे [ १७०८ ]- सत्य यज्ञ मार्गसे जानेवाला  
सब मनुष्योंका हित करनेवाला, यज्ञके तेजसे रक्षा करनेवाला,  
अग्नि है । उस आधारहित प्रबोध अग्निही हवन शाराधना  
करते हैं ।

९ या इव यक्षस्य रुधः उत्तिरज्, प्रति पश्ये,  
वशी मस्तू उतृजते [ १७०९ ]- जो अग्नि इत बलवान्

गुणो करनेके लिए पहले सबके हाथ धोनोंकी दूर करता है, ऐसी उसकी प्रतिदि है। यह सबको अपनेआपोंन करने श्रुतोंको उत्पन्न करता है और उसके कारण सबको सुख देता है।

१० भूतस्य भव्यस्य काम सम्राट एकः अग्नि-प्रियेयु धामसु विराजति [ १७१० ]- पहलेके तथा आगे होनेवाले जिसकी इच्छा करते है ऐसा अकेला ही सम्राट् भगि अपने यत्ने प्रिय स्वान-यशकुण्ड-में विराजमान होता है।

अग्निवा ऐसा यशम इत सम्पादनमें है। अग्निमें योय परापूर्वका हवन करनेसे सब लोग योगरहित होकर सुखी होते है।

### इन्द्र और अग्नि

१ हे इन्द्राग्नी ! दिव्य योजना धामेषु परिभूषय, या तत् पर्यं प्रचेति [ १६९३ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! सुखीकी प्रकाशित करनेवाले तुम युद्धमें विजय प्राप्त करके सुखीभित होते हो, तुम्हारा सामर्थ्य ऐसे प्रकट होता है।

२ हे इन्द्राग्नी ! यां तथियाणि प्रयासि सप्यस्यानि युया भान्द्यं हितम् [ १६९५ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम्हारे बल और शान एक साथ रहते हैं। तुममें हीम्रातासे कार्य करनेका सामर्थ्य है।

३ तोशा, वृत्रहणा, सजित्याना, अपराजिता धाजसातमा इन्द्राग्नी कुये [ १७०२ ]- शत्रुभीकी भाषा पट्टवानेवाले, शत्रुभीकी मारनेवाले, विजयी, पराजित न होनेवाले, अक्रमा दान करनेवाले इन्द्र और अग्नि हैं, उनकी अपनी सहायताके लिए ये मुक्तता हैं।

४ इन्द्राग्नी ! दासपत्नी-नयति पुरः एकेन कर्मणा साका अधनुतम् [ १७०४ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! सर्वोके द्वारा रक्षित करने जगत्की एक ही आक्रमणसे तुमने हिला दिया।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निकी शूरवीरता और पराक्रमका वर्णन इस अध्यायमें है। ये छह कुशलतासे युद्ध करनेवाले, कभी मो न हारनेवाले होनेके कारण हमेशा विजयी हो रहते हैं।

### विष्णु

१ विष्णु इद विचक्रमे [ १६६९ ]- विष्णुका यह पराक्रम है।

२ अदान्पः गोषा निष्णुः धर्माणि धारयन्, त्रीणि पदा विचक्रमे [ १६७० ]- न बचनेवाला, समक

सरक्षण करनेवाला विष्णु, सब धर्म-कर्तव्यका पालन करने अपने तीन पावोंसे सब जगत् ध्यापता है।

३ त्रिष्णोः कर्माणि पश्यत, यतः प्रतानि परपरो, इन्द्रस्य युज्याः सखा [ १६७१ ]- विष्णुके पराक्रमके बर्णन करते, जिसके कारण सबके काम उत्तम रीतिसे चलते हैं। यह विष्णु उत्तम मित्र है।

इन्द्र और विष्णु ये दो देव हैं। विष्णु यह उपेन्द्र है। जैसे भव्यस और उपाध्यक्ष होते हैं, उसीप्रकार ये " इन्द्र और उपेन्द्र " हैं।

४ सूर्यः विष्णोः तत् परम पद, दिवि आततं चक्षुः इध, सदा पश्यन्ति [ १६७२ ]- तानी लोग विष्णुके उस परम पदकी, सुखीकमें जगत्की आस सुपंकी देखनेके समान, देखते हैं।

५ विष्णो तत् परमं पर्वं विप्रास विपन्ययाः जाग्रुः खांसः समिन्धते [ १६७३ ]- विष्णुके उस परम पदकी शानी और जागृत लोग प्रसीत करके स्वय देखते हैं।

६ विष्णुः पृथिव्या अधि सानवि, यता विचक्रमे, अत देयाः ना अयन्तु [ १६७४ ]- विष्णु पृथ्वीके ऊंचे स्थान पर जतुते बहु पराक्रम करता रहता है। उस स्थानसे सब देव हचारी रखा करें।

विष्णु " उपेन्द्र " ( उप+इन्द्र ) है, बहु इन्द्रकी सहायता करता है। अथवा उपाध्यक्षके समान ये दोनों एक दूसरेकी सहायता करते हैं। सर्वत्र विदयमें विष्णुका पराक्रम रीसता है। तानी मनुष्य इसके पराक्रमकी देखते हैं। लोग इसके पराक्रमकी देखें और स्वय भी पराक्रमी बनें।

### सोम

१ हे सखाय ! यूय सूर्यः वयं वा स पुरुषस्य धाजर्गध्यं अद्याम, धाजस्पत्यं सनेम [ १६८० ]- हे मित्रो ! तुम विद्वान् और हम मिलकर उस बहुत धनकरनेवाले तथा उत्तम सुगन्धसे युक्त सोमकी पीये, बल बढ़ानेवाले सोमको पीये।

२ हर्षत हर्षि यधुं त्य धारेण परि पुनन्ति, य विश्वान् देवान् गच्छति [ १६८१ ]- मनोहर, दु लहण करनेवाले, वरण पोषण करनेवाले उस सोमकी छतनीसे छावते हैं। उसके बाद यह सोम देवोंकी ओर जाता है।

३ अग्निमि स्वानः अययया चारणि तिरः भाः हरिः सम्बोः विश्वं यनेषु सद्ः दधिषे [ १६८१ ]- परवर्ति बूटकर निबोडा गया रत भेड़े घालोंकी छतनीसे

छाना जाता है । वह हरे रंगका सोमरस कलत्रमें उतरता है ।  
सकृदधिके बर्तनमें अपना स्थान बनाता है ।

४ याजयुः सन्निधानं पयमानः सोमः प्रोष्यः अज्यानि  
तिरः विप्रैर्मिः प्राप्नुजे [ १६९० ]- यक्ष बजानेवाला, शीघ्र  
बजानेवाला, योद्धेके सत्यतः प्रेर्य करनेके योग्य, ऐसा वह छाना  
जानेवाला सोम भँडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है, तथा  
सानियों द्वारा प्रार्थित होता है ।

५ शुक्रासः इन्द्रयः पयमानः सोमः विप्रानि  
काप्या अभि अस्तुतः [ १६९१ ]- स्वच्छ और चमकने-  
वाले छाने जानेवाले सोमरस वेदभण्डों द्वारा प्रार्थित होते  
हुए गुब्बे लिए जाते हैं ।

६ पयमानाः दिव्यः वृद्धिप्याः अधि सानपि पर्य-  
स्वस्तः [ १७०० ]- गुब्बे होनेवाला सोमरस धूलिकेने पुष्पोंके  
ऊँचे भागमें सँभार दिया जाता है ।

७ आशायः शुभ्राः पयमानासः इन्द्रयः विप्रानि दिव्यः  
अपमन्तः अस्तुमन् [ १७०१ ]- बेगवान्, गुब्बे और गुब्बे  
होनेवाले सोमरस सब धनुषीको मष्ट करते हुए कलत्रमें  
जाते हैं ।

सौमलता परावर्तित कूटी जाती है । बाह्यमें उसका रस  
मिलाया जाता है, फिर उसमें पाणी मिलाकर भँडके बालोंकी  
छलनीसे छाना जाता है । वह छाना गया सोमरस कलत्रमें  
भरकर रखते हैं । इस समय वेदपाठ उच्च स्वरसे किया जाता  
है । यह सोम हिम पर्वत पर अंबाई पर होता है । बहुतेक वह  
यज्ञ करनेके स्थान पर लाया जाता है, और उससे रससँभार  
किया जाता है । जानकर इस रसके सँभार होनेके बाद उसे  
देवीसे लिए अर्पित किया जाता है, फिर यज्ञ करनेवाले स्वयं  
इस सोमरसकी पीते हैं । इसके पीनेसे शरीरमें शक्ति बढ़ती  
है और मनका उत्तम बढता है, तथा सब धनुषीकी हारनेका  
सामर्थ्य मनके अन्दर पैदा होता है ।

### सुभाषित

१ परीय श्राव्य पन्थं सोमं आधावत [ १६५७ ]  
-शरीर और इन्द्रकी प्रार्थनासे सोमरस पहुंचाओ ।

२ प्रहयुजा शम्भा हरी इह सखायं निर्वपसं  
इन्द्रं आवधतः [ १६५८ ]- शत्रुके कहते ही रथमें बैठ  
जानेवाले, सुखदायी वो छोटे इस यज्ञमें मित्र और स्तुत्य  
इन्द्रकी लेकर आओ ।

४३ [ साम हिवी या ५ ]

३ शते उतिः वृषदा नियमते [ १६५९ ]- सँकटों  
साधनसे संरक्षण करनेवाला, वृषदा यज्ञ करनेवाला इन्द्र  
धनुषीको बुर करता है ।

४ स्यां न अतिरिच्यते [ १६६० ]- हे इन्द्र ! तेरी  
अपेक्षा और कोई भेद नहीं ।

५ हे वृषन् जायते । महिना धियन्त्य [ १६६१ ]  
हे बलवान् और जागृत रहनेवाले ! तू अपने महत्त्वसे सबको  
स्वापता है ।

६ हे जपयोध ! विश्वे विश्वे रुद्राय धनुषीं [ १६६२ ]  
-हे जागृत रहकर सबको जाननेवाले शत्रु ! प्रत्येक मनुष्यके  
हित करनेवाले रुद्र देवताके लिए रुद्र स्तोत्र पढ़ो ।

७ मः धिये वाजस्य हिन्त्यतु [ १६६४ ]- हमें बुद्धि  
बढ़ाने व अन्न प्राप्त करनेके लिए प्रेरित कर ।

८ दीप्यः विद्वसतेः वृहद्भासुः केतुः सः रेधाव इव  
नः उक्थैः गृणेतु [ १६६५ ]- विष्य अज्ञापासक महान्  
प्रकाशमान् और धनवाने समान शोभित होनेवाला धनवान्  
अग्नि राजाके समान हमारे स्तोत्र सुने ।

९ पुष्टव्यस्य सत्येने तस्य सखा भाय, सत्यवाकिने  
वर्षे [ १६६६ ]- बहुत शीघ्र मिते सहायताके लिए बुलाते  
हैं, उसा बलवान् इन्द्रके लिए स्तोत्र एक जगह बँडकर गावों,  
उससे शक्तिप्राप्त इन्द्रको आत्म्य मिलाता है ।

१० यस्तुः सोमतर यज्ञस्य दानं न घ नियमने  
[ १६६७ ]- सबको बसानेवाले इन्द्रको गायके रूपसे होनेवाले  
अन्नके दाव करनेसे कोई शोक नहीं सकता ।

११ वस्य-इह कुविरसस्य सोमस्यं ब्रजं मा गमत्,  
हि शशीभिः नः [ गतः ] अपधरत् [ १६६८ ]-समुज्जितो  
भारनेवाला इन्द्र जब बहुत हिंसा करनेवाले यस्तुओंकी गायोंसे  
अरे हुए बाड़ेपर अपना अधिकार करता है, तब वह अपनी  
शक्तिके हमारे गायोंको बँडकर हमें देता है ।

१२ विष्णुः इदं विचक्रमे [ १६६९ ]- विष्णुने यहां  
पराक्रम किया ।

१३ अवाभ्यः श्रौपाः विष्णुः प्रमोणि धारयन् पदा  
विचक्रमे [ १६७० ]- व बजनेवाला सरसक विष्णु तबके  
करने योग्य कर्मेका योग्य करता हुआ अपने पाँवसे तब जगत्  
पर आक्रमण करता है ।

१४ विष्णोः कर्मणि पदयत्, यत प्रतपति पस्परो  
इन्द्रस्य सुजयः सखा [ १६७१ ]- विष्णुके कार्योंके देखो  
जिसके कारण सबके कार्य उत्तम रीतिसे चलते हैं । यह विष्णु  
इन्द्रका योग्य मित्र है ।

१५ सूर्यः विष्णोः तत् परमं पदं, दिवि धातवं चक्षुः इयः सदा पश्यन्ति [ १६७२ ]- शानी छौब विष्णुके उत भेष्ट स्थानकी, जितप्रकार वाक्यमार्गं प्रकाशकी फंसाने-वाले विश्वके नेत्रहवी सूर्यको छेब देखते हैं, उतप्रकार हमेशा देखते हैं ।

१६ विष्णोः तत् परमं पदं विप्रासः जागृवांसः विपश्ययः यत् समिन्धते [ १६७३ ]- विष्णुके उत भेष्ट स्थानकी शानी जाग्रत रहकर स्तुति करनेवाले प्रदीप्त करते हैं ।

१७ हे इन्द्रः ! घाघतः स्वा असत् आरे मा निरीरमन् [ १६७५ ]- हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले मनुष्य तुमसे हमसे दूर ले जाकर आनन्तित न करें ।

१८ आरास्ताव नः सधमार्त्तं आगाहि [ १६७५ ]- भले ही तू दूर हो फिर भी बहोसे हमारे यमों का ।

१९ इह सन् उपश्रुति [ १६७५ ]- यहां रहकर हमारी स्तुति तुम ।

२० इन्द्रः बृहतीः रावः सं अध्वुत [ १६७८ ]- इन्द्र बहुत सारा मन हमें ।

२१ इन्द्रः क्षोणीः सं अध्वुत [ १६७८ ]- इन्द्र हमें भूमि देवे ।

२२ वृष-हृत्पुषो बोधय [ १६८१ ]- अपने भक्तोंको शत्रुके बधकी प्रेरणा कर ।

२३ हे हर्षय ! सव प्रकीर्त्ती सुरभिः विभवा दुरिता तरेम [ १६८३ ]- हे उत्तम घोड़े रत्ननेवाले इन्द्र ! तेरी प्रेरणासे विद्वान्के साथ हम सब पापसे मुक्त हों ।

२४ हे हरीणां स्वातः इन्द्र ! ते पूर्व्यस्तुति रावसा न किः उवांशः भवन्वा न [ १६८५ ]- हे घोड़े रत्नने-वाले इन्द्र ! तेरी स्तुतिको अपने बलसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता ।

२५ अस्य वयुनेषु उरामयिः वारयः वृकश्चित् आभूयति [ १६९२ ]- इस इन्द्रके मार्गमें कष्ट देनेवाला और विषम शत्रुनेवाला कोई दूर हो गया तो वह भी इतके अनुकूल होकर इसकी सेवा करने लगता है ।

२६ हे इन्द्र ! चित्रया चिया अ आगाहि [ १६९२ ]- हे इन्द्र ! अपनी उत्तम बुद्धिके साथ तू बहो का ।

२७ हे इन्द्राग्नी ! दिव रोचमा पाजेवु परिभूयथः धीयं तत् प्रवेति [ १६९३ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! बुद्धिको प्रकाश करनेवाले तुम मुझमें बिजली होकर घोषित होते हो । तुम्हारा सामर्थ्य इस प्रकार प्रकट होता है ।

२८ धीतयः क्रतस्य पय्या अनु अपसः परि उप प्रयन्ति [ १६९४ ]- शानी साथ मार्गसे जाकर कर्मकी तिष्ठि-की प्राप्त करते हैं ।

२९ घां तविपाणि प्रयांसि सधस्थानि, युवो अप्त्यं हितम् [ १६९५ ]- दुम्हारे बल और ज्ञान एक साथ रहते हैं । युवमें क्षीणतासे कार्यको समाप्त करनेका सामर्थ्य है ।

३० य विमी ओजसा पुरः विमिनसि [ १६९६ ]- जो इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुके नगरोंको तोड़ता है ।

३१ स्वा न किः नियमत् [ १६९७ ]- तुमसे कोई भी रोक नहीं सकता ।

३२ नः महान् ओजसा खरसि [ १६९७ ]- हमारे लिए तू बहाव है, और अपने सामर्थ्यसे तू सब जगह विचरता है ।

३३ यः उग्रः सन् अनिष्टतः स्थिरः रणाय संस्कृतः [ १६९८ ]- जो उपवीर है, और न हारता हुआ युद्धमें जो स्थिर रहता है और युद्धके लिए सदा सैन्धार रहता है ।

३४ आशयः विभवाः द्विवाः अपमन्तः [ १७०१ ]- वेगवान् वीर सब शत्रुओंका नाश करते हैं ।

३५ लोहा बृहहृण्य सजित्याना अपराजिता पाज सातमा इन्द्राग्नी हुवे [ १७०२ ]- शत्रुओंका नाश करने-वाले, वृद्धको पारनेवाले, शत्रुओंकी जीतनेवाले, स्वयं अवर ! जित, अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्नि को मे मुक्तता हों ।

३६ इयः आपुषे [ १७०३ ]- अन्न प्राप्तिके लिए मैं उनकी स्तुति करता हों ।

३७ हे इन्द्राग्नी ! दास्तपत्नीः नयति पुरः एकेन कर्मणा स्वाः अध्वनुतम् [ १७०४ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! दासिके द्वारा रक्षित नवमे नगरोंको तुमने एक आक्रमणसे ही मष्ट कर दिया ।

३८ हे अग्ने ! पुरः चरोविध [ १७०५ ]- हे अग्ने ! तुमने शत्रुओंके नगरोंको तोड़ा ।

३९ क्रतावानं वैभानरः क्रतस्य ज्योतिषः पतिं अजस्रं धर्म ईसहे [ १७०८ ]- पण करनेवाले, सब लोगोंका कल्याण करनेवाले, यशकी तेजसे रसा करनेवाले, जिसे कोई माया नहीं पहुँचा सकता ऐसे प्रगल्भ ज्ञानिकी हम आराधना करते हैं ।

४० यः इदं यक्षस्य साः उच्चिरम् प्रति पमये [ १७०९ ]

— जो यत्ने स्वयंका रक्षण करता है, यत्ने विघ्नोंको दूर करता है, ऐसा वह अग्नि प्रसिद्ध है ।

४१ भूतस्य भव्यस्य कामः एकः स्रज्वाद् अग्निः प्रियेषु धामसु विराजति [ १७१० ]— पूर्व उत्पन्न हुए और भागे होनेवाले, अग्निको इच्छा करते हैं, ऐसा अग्नितीय स्रज्वाद् अग्नि अपने प्रिय ऐसे यत्ने स्वयंका विराजता है ।

### उपमा

१ सिन्धवाः समुद्रं इव [ १६६० ]— जैसे गहिरा समुद्रमें मिक्तो है, ( इन्द्रयः स्वा आधिष्ठान्तु ) जैसे ही ये सोमरस है इन्द्र । तुल्यमें प्रसिद्ध हों ।

२ रेयान् इव [ १६६५ ]— धनवान् राजाके समान ( वृहद् भान्तुः नः उपयेभिः शृणोतु ) विनोय प्रकथनमान अग्नि हमारे स्तुति सुने ।

३ तत् गवे न [ १६६६ ]— गायोंको जैसे घास त्रिय होनी है, उत्तीप्रकार ( शाकिने धां ) शक्तिमान् इन्द्रको ये स्तोत्र प्रिय लगते हैं ।

४ त्रिवि आतर्तं चक्षुः इव [ १६७२ ]— आकाशमें जिसप्रकार प्रकाशमान सूर्य दीप्तता है, उत्तीप्रकार ( विष्णोः पर्यन्तं पद् सूर्यः पश्यन्ति ) विष्णुके धेत स्वानकी शान्ति देखते हैं ।

५ मयौ मक्षः न [ १६७६ ]— दाहकी मधुमक्षिणां जिसप्रकार दहट्टी होती है, उत्तीप्रकार ( ध्रुवस्तः सत्वा मासते ) स्तुति करनेवाले एकत्र बँधकर स्तुति करते हैं ।

६ पुरिः जनः न [ १६८९ ]— नगरमें जैसे मनुष्य जाता है, उत्तीप्रकार ( घनेषुः सद्ः दधिने ) लक्ष्मीके वर्तनमें सोम अपना स्थान प्राप्त करता है ।

धनं— लक्ष्मीके वर्तन, लक्ष्मी वर्तनमें रँदा होती है, और लक्ष्मीसे धोमपान बनता है अतः लक्ष्मीके वर्तनको ' धनं '—अपल कह दिया । अंशके लिए पूर्णता प्रयोग करना देवकी शैली है ।

७ सतिः न [ १६९० ]— योद्धेके समान प्रेम करने लायक ( सः सौमः ) वह सोम है ।

८ मृगः वारणः वानः न [ १६९५ ]— शत्रुको लीननेवाले मरोगमत् हाथीके समान ( पुरुषा रथं दधे ) अपने स्वकी नू अग्ने स्थापित करता है ।

९ छायां इव [ १७०१ ]— जैसे पूरते तथा हुआ मनुष्य छायामें भाकर आनन्दित होता है, उत्तीप्रकार ( ते शर्मं स्वयं उप याम् ) तेरे आश्रयमें हम आनन्दित हों ।

१० घग्घी इव [ १७०७ ]— धनुर्बादी धीरेके समान ( यः उग्रः ) जो उग्रवीर है ।

११ तिष्ठमर्त्यः संस्रगः न [ १७०७ ]— तेज सींगोंवाले बैलके समान वह इन्द्र पराक्रमी है ।

### अष्टादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋषिदेवता	ऋषिः	देवता	छन्दः
१६५७	८११/१५	मेधातिथिः काण्वः त्रियम्पेयर्वागिरसः	इन्द्रः	गायत्री
१६५८	८११/१७	मेधातिथिः काण्वः त्रियम्पेयर्वागिरसः	"	"
१६५९	८११/१९	मेधातिथिः काण्वः त्रियम्पेयर्वागिरसः	"	"
१६६०	८११/१९२	धृतकस्तः सुकशो वा आगिरसः	"	"
१६६१	८११/१९३	धृतकस्तः सुकशो वा आगिरसः	"	"
१६६२	८११/१९४	धृतकस्तः सुकशो वा आगिरसः	"	"
१६६३	११७५/१०	द्वय श्रेष्ठ आजीर्गतिः	अग्नि	"

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१६६४	११५७।११	शुक्ल.शेष आनीमतिः	अग्नि	गायत्री
१६६५	११५७।१२	शुक्ल.शेष आनीमतिः	"	"
१६६६	६।१५।१२	संयुक्ताहंस्पत्यः	इन्द्रः	"
१६६७	६।१५।१३	संयुक्ताहंस्पत्यः	"	"
१६६८	६।१५।१४	संयुक्ताहंस्पत्यः	"	"
( २ )				
१६६९	१।१२।१७	मेधातिथिः काण्वः	विष्णुः	"
१६७०	१।१२।१८	मेधातिथिः काण्वः	"	"
१६७१	१।१२।१९	मेधातिथिः काण्वः	"	"
१६७२	१।१२।२०	मेधातिथिः काण्वः	"	"
१६७३	१।२२।२१	मेधातिथिः काण्वः	"	"
१६७४	१।२२।२२	मेधातिथिः काण्वः	देवा वा	"
१६७५	७।१२।११	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	इन्द्रः	प्रगाथः = ( विद्यमा बृहती, समा सतोबृहती )
१६७६	७।१२।१२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१६७७	८।१०।११	वाल्मिल्यम् ( आयुः काण्वः )	"	"
१६७८	५।५६।१०	वाल्मिल्यम् ( आयुः काण्वः )	"	"
१६७९	९।१८।१०	अम्बरीषो वायामिरः ऋजिस्वा भारद्वाजश्च	यजमानः सोमः	अनुष्टुप्
१६८०	९।१८।११	अम्बरीषो वायामिरः ऋजिस्वा भारद्वाजश्च	"	"
१६८१	९।१८।१२	अम्बरीषो वायामिरः ऋजिस्वा भारद्वाजश्च	"	"
१६८२	७।१२।१३	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	इन्द्रः	प्रगाथः = ( विद्यमा बृहती, समा सतोबृहती )
१६८३	७।१२।१४	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
( ३ )				
१६८४	८।१४।१५	विश्वमना वैश्वः	इन्द्रः	उद्दिगम्
१६८५	८।१४।१६	विश्वमना वैश्वः	"	"
१६८६	८।१४।१७	विश्वमना वैश्वः	"	"
१६८७	८।१४।१८	सौमतो काण्वः	अग्निः	काकुभः प्रगाथः = ( विद्यमा ककुप् समा सतोबृहती )
१६८८	८।१४।१९	सौमतो काण्वः	"	"
१६८९	९।१०।१०	सुप्तयवः	यजमानः सोमः	प्रगाथः = ( विद्यमा बृहती, समा सतोबृहती )
१६९०	९।१०।११	सुप्तयवः	"	"
१६९१	८।१६।१३	कस्मिः प्रगाथः	इन्द्रः	"
१६९२	८।१६।१८	कस्मिः प्रगाथः	"	"
१६९३	३।१२।१९	विश्वामित्रः प्रगाथः	इन्द्राप्ती	गायत्री
१६९४	३।१२।२०	विश्वामित्रः प्रगाथः	"	"
१६९५	३।१२।२१	विश्वामित्रः प्रगाथः	"	"

## अष्टादश अध्याय ]

## सामवेदका सुयोध अनुवाद

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१६९६	८।३३।७	मेघ्यातिथिः काण्वः	इन्द्रः	बृहती
१६९७	८।३३।८	मेघ्यातिथिः काण्वः	"	"
-१६९८	८।३३।९	मेघ्यातिथिः काण्वः	"	"

( ४ )

			यवमानः सोमः	वायवी
१६९९	९।६३।१५	निधुकिः काश्यपः	"	"
१७००	९।६३।१७	निधुकिः काश्यपः	"	"
१७०१	९।६३।१८	निधुकिः काश्यपः	"	"
१७०२	३।११।७	विश्वामित्रः प्रागाय	इन्द्राग्नी	"
१७०३	३।११।५	विश्वामित्रः प्रागाय	"	"
१७०४	३।११।६	विश्वामित्रः प्रागाय	"	"
१७०५	६।१६।७	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	अग्निः	"
१७०६	६।१६।८	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१७०७	६।१६।९	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	"	"
१७०८	अपर्वः ६।३६।१	अपर्वा ( स्वस्त्ययनकायः )	"	"
१७०९	—	—	"	"
१७१०	—	—	"	"





## अथैकोनविंशोऽध्यायः ।



अथाष्टमपाठके तृतीयोऽर्थः ॥ ८-३ ॥

[ १ ]

( १-१८ ) १ विषय आगिरतः; २, १८ अचत्तारः काश्यपः; ३ विद्वान्नो यापिनः; ४ देवातिथिः काश्यपः; ५, ८, ९, १६ गीतमी वाह्यपणः; ६ वामदेवो गीतमः; ७ प्रसकण्यः काश्यपः; १० वसुस्त आत्रेयः; ११ तत्पथका आत्रेयः; १२ अक्षपुरात्रेयः; १३ वृषविष्टिरायात्रेयो; १४ कुत्त आगिरतः; १५ अत्रिर्भोमः, १७ दीर्घतमा भीक्ष्म्यः ॥ १, १०, १३ अग्निः; २, १८ पथमलः सोमः; ३-५ इन्द्रः; ६, ८, ११, १४ ( १ उत्तरार्चः यापिनः ), १६ उषाः; ७, ९, १२, १५, १७ अश्विनौ ॥ १-२, ६-७, १८ गायत्री; ३, १३-१५ विष्णुः; ४-५ प्राजापः ( विषमा बृहती, सप्ता सप्तोबृहती ); ८-९ उष्णिहः; १०-१२ वद्वितः; १६, १७ जयती ॥

१७११ अग्निं प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्व२५ स्वां । कविर्विप्रेण वावृचे ॥१॥ ( ऋ. ८।४४।१२ )

१७१२ ऊजो नपातमा ह्रवेऽग्निं पावकशोचिपम् । असिन्पृष्टे स्वचरे ॥२॥ ( ऋ. ८।४४।१३ )

१७१३ स नो मिश्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा ससिं यद्विधिं ॥३॥ १ ( ली ) ॥

[ या० ९। उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।४४।१४ )

१७१४ उतै शुम्भासो अस्यू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिषः । नुदेस्व या परिस्पृधः ॥४॥ ( ऋ. ९।५३।१ )

१७१५ अया निजिर्गिरोजसा रथसंके घने हिते । स्ववा अविस्पृषा हृदा ॥५॥ ( ऋ. ९।५३।२ )

[ १ ] प्रथमा वृण्डः ।

[ १७११ ] ( कविः अग्निः ) सानी अग्नि ( प्रत्नेन जन्मना ) प्राचीन स्तोत्रते ( स्वां तन्वं शुम्भानः ) अग्ने तेभ्योप दातृरी नृपोतिनं वरते हृद ( विशेषेण वावृचे ) वाह्यर्चोः द्वारा प्रवीण किया जाता है ॥ १ ॥

[ १७१२ ] ( ऊजः न-पातं ) बलस्य कथं न करनेवाले ( पावक-शोचिपं ) पवित्रता करनेवाले प्रजापति युक्त ( अग्निं ) अग्निरौ ( असिन् स्वचरे यजे ) इस उत्तम हितारहित यज्ञमें ( आहूये ) हम बुझते हैं ॥ २ ॥

[ १७१३ ] ( मिश्र-महः अग्ने ) हे मित्रोः द्वारा पुण्य अग्ने ! ( सः त्वे ) यह नृ ( नृयेण शोचिषा ) शुद्ध श्रद्धाप्रति युक्त होकर ( देवैः यद्विधिं आसस्ति ) देवोः साथ इस यज्ञमें आकर बैठ ॥ ३ ॥

[ १७१४ ] हे ( अद्रिषः स्तोम ) पत्नरिणि कूटे जानेवाले स्तोम ! ( ते नृप्पासः ) तेरे बल ( रक्षः भिन्दन्तः ) राजर्षीरा नाश करते हृद ( उदम्युः ) ऊपर आने हैं । ( याः परिस्पृधः ) जो शुभावला करनेवाले नानु हैं, उन्हें ( नुदेस्व ) हृद पर ॥ ४ ॥

[ १७१५ ] हे सोम ! नृ ( अया ओजसा निजिग्निः ) इस बलसे वाह्यर्चो नष्ट करता है, ऐसे तेरी हम ( अविस्पृषा हृदा ) निर्मम आत्मा करनेमें ( रथसंके हिते ) रथोः युद्धमें नानुर्गो नष्ट होनेपर ( घने स्तये ) घनरी आगिमें दिए स्फुटि करते हैं ॥ ५ ॥

१७१६ अस्य व्रतानि नाभूय पवमानस्य दृढया । रुज यस्या पृतन्यति ॥३॥ ( ऋ. २।१३।१ )

१७१७ अ० हिन्वन्ति गदन्धुव० हरि नदीषु बाजिनम् । इन्द्रमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥ २ ( पी ) ॥  
[ या० २० । उ० १ । २०४ ] ( ऋ. २।१३।४ )

१७१८ आ मन्द्रेन्द्र हरिभिर्योहि मयूतोमभिः ।  
मा त्वा के चिन्नि येसुरिभ्य पाशिनोऽजति धन्वेव ता० इहि ॥१॥ ( ऋ. ३।४१।१ )

१७१९ वृत्ररादां वलं रुजः पुरां दर्मा अपामजः ।  
स्थाता रथस्य हयोरभिस्वर इन्द्रा दृढा चिदा रुजः ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।४१।२ )

१७२० गम्भीरा० उदधी० रिव कतु पुष्यसि गा इव ।  
अ सुगोषा यवसं धेनवो यथा हृदं कुत्सा इवाश्रत ॥ ३ ॥ ३ ( छा ) ॥  
[ या० १७ । उ० २ । २१० २ ] ( ऋ. ३।४१।२ )

१७२१ यथा गौरी अपा कृतं दृष्यन्त्येवोरिणम् ।  
आपित्वे नः प्रपित्वे तृपमा गहि कण्वेषु सु सत्त्वा पिब ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।३ )

[ १७१६ ] ( पवमानस्य अस्य व्रतानि ) छाने जानेवले इत सोमके कर्मोत्ते ( दृढया न नाभूये ) बुद्ध राक्षस प्रगति नहीं कर सकते । हे सोम । ( य. त्वा पूनन्यति ) जो तुम पर तपः भोजनेकी इच्छा करता है, उसे ( रुज ) घृष्ट मष्ट कर दूँ ॥

[ १७१७ ] ( मधुच्युतं हरि ) आनन्द देनेवाले हरे रणके ( याजिनं मत्सरं ) बल और जलाहृ बढानेवाले ( सं हृदुं ) इस सोमकी ( मदीषु ) पानीमें ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( हिन्वन्ति ) मिलते हैं ॥ ४ ॥

[ १७१८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( मन्द्रैः मयूत रोमभिः हरिभिः ) आनन्द देनेवाले, मोरके बलके समान बालोंवाले घोडोंके त्त ( मायादि ) महा यज्ञमें आ । ( केचिन्नि त्वा ) कोई भी तुम ( पाशिनः न ) जाल डालनेवाले शिकारी जितप्रकार वशियोंको बकते हैं, उसीप्रकार ( मा निषेयु ) न बकते । ( धन्वेव तान्वा अति इहि ) देवित्तानके समान ऊर्ध्वं छोडकर महा आ ॥ १ ॥

[ १७१९ ] ( इन्द्रा ) वह इन्द्र ( वृत्र-रादाः ) वृत्रका नाश करनेवाला ( वलं रुजः ) बल राक्षसकी छिन्न निग्र करनेवाला ( पुरां दर्मा ) शत्रुके नगर तोडनेवाला ( अपां अजाः ) पानीकी वृष्टि करनेवाला ( हयोरभिः स्वरस्य स्थाता ) घोडोंके रथमें बैठनेवाला ( दृढाचिदा रुजः ) बलवान् शत्रुको भी हरानेवाला है ॥ २ ॥

[ १७२० ] हे इन्द्र । तू ( गम्भीरान् उदधीन् इव ) गम्भीर समुद्रको घुट्ट करनेके समान ( कतु पुष्यसि ) यज्ञका पोषण करता है । जितप्रकार ( सु-गोषाः ) उत्तम गोपालक ( गाः इव ) गायोंको उत्तम घास आदि देकर घुट्ट करता है, ( यथा धेनवः यवसं प्र ) जितप्रकार गायें घास खाती हैं, अथवा ( कुत्सा हृदं इव आश्रते ) भविष्य जितप्रकार तालावमें मिलतो हैं उसीप्रकार सोम तुझे प्राप्त होता है और घुट्ट करता है ॥ ३ ॥

[ १७२१ ] ( गौरीः तृप्यन् ) जैसे हिरण्य प्राप्त होकर ( यथा अपाश्रुतं हरिषं पति ) पानीसे भरे हुए तालावकी ओर जाता है, उसीप्रकार हे इन्द्र । तू ( नः नृष्यं ) हमारे पास वीरगर्हो ( आपित्वे प्रपित्वे आगहि ) मित्र भावनासे आ और ( कण्वेषु सत्त्वा सु पिब ) कण्वोंके पासमें बैठकर सोम पी ॥ १ ॥

१७२२ मन्दन्तु स्वा मघवसिन्द्रेन्द्वौ राषादेयाय सुन्यते ।

आष्टुर्या सोममविबध्मू सुतं ज्येष्ठं तदधिपे सहः

॥ २ ॥ ४ (घ) ॥

[ भा० २१ । उ० ४ । स्व० १ ] ( ऋ ८४१४ )

१७२३ स्वमङ्ग प्र अर्धसिपो देवः श्विष्टु मत्स्यम् ।

न त्वदम्यो मघवसस्ति मर्दितेन्द्र अवीमि ते वचः

॥ १ ॥ ( ऋ १८४१९ )

१७२४ मा ते राधाधसि मा ते ऊतयो वसाऽसान्कदा चना दभन् ।

विधा च न उपमिमीहि मानुष वयूनि चर्मणिम्य आ

॥ २ ॥ ५ (का) ॥

[ भा० २१ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ १८४१० )

॥ इति प्रथम खण्ड ॥ १ ॥

[ २ ]

१७२५ प्रति स्या सुतरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अर्धसि दुहिता ॥ १ ॥ ( ऋ ४१२११ )

१७२६ अम्येव चित्राक्षी माता गवामुतायरी । सखा भूदग्निनाक्षीः ॥ २ ॥ ( ऋ ४१२१२ )

१७२७ उत सखास्यग्निनाक्ष माता गवामसि । उताषौ वद्व ईमिपे ॥ ३ ॥ ६ (लि) ॥

[ भा० २१ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ ४१२१३ )

[ १७२२ ] हे ( मघवन् इन्द्र ) वनवान् इन्द्र ! ( सुन्वते राघ. देवाय ) सोम दाग करनेवालेको घन देनेके लिए ( इन्द्रयः स्वा मन्दन्तु ) सोमरस तुमे प्रसन्न करें । तु ( अमृपुतं सोमं आमुष्य अपियः ) कलशमें रखे गए सोम-रसको जलसीत लेकर पीता है । ( तत् ज्येष्ठं सहः दधिपे ) क्योंकि तु विशेष बल धारण करता है ॥ २ ॥

[ १७२३ ] ( अर्ध श्विष्टु ) हे मित्र और वनवान् इन्द्र ! ( देवः ) तेजस्वी ऐसा तु ( मत्स्यं मर्दसिपः ) स्तुति करनेवाले अनुव्यकी प्रशंसा करता है । हे ( मघवन् इन्द्र ) वनवान् इन्द्र ! ( त्वद अम्यः मर्दितं न अस्ति ) तेरे सिपाय हूरा कोई मुझ देनेवाला नहीं, इसलिए ( ते वचः अवीमि ) मैं तेरे स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७२४ ] हे ( वसो ) निपासक इन्द्र ! ( ते राधाधसि ) तेरे घन ( असां कदाचन मा दभन् ) हवें कभी नष्ट न करें । ( ते ऊतय मा ) तेरे सरखभके साथन हमारा नाश न करें । हे ( मानुष ) अनुव्योकाहित करनेवाले इन्द्र ! ( नः चर्मणिम्य ) हम प्रजाजनोंकी ( विधा वसूनि आ उप मिमीहि ) सब धन लेकर दे ॥ २ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्ड ।

[ १७२५ ] ( स्वा सुतरी ) उत उत्तम घेरणा देनेवाली ( जनी ) फल देनेवाली ( स्वसुः परि व्युच्छन्ती ) अपनी कहिके समान राक्षीके उत्तरभागमें प्रकाशित होनेवाली ( दिवः दुहिता ) सूर्यको पुत्री उधर ( प्रत्यर्द्धिना ) सोसने लग गई है ॥ १ ॥

[ १७२६ ] ( अम्या इय चित्रा ) घोड़ोंके सखन सुन्दर ( अयरी ययां माता ) चमकनेवाली किरणोंको माता ( मतायरी उवा ) पक्ष करनेवाली उवा ( अग्निनोः सखा भभूत् ) अग्निको बेधोंकी मित्र हो गई है ॥ २ ॥

[ १७२७ ] ( उत अग्निनोः सखा अस्ति ) और तु अग्निकी कुमारीकी मित्र है । ( उत गवां माता अस्ति ) और किरणोंकी माता है । ( उत ) इसलिए तु हे ( उवा ) उवे ! ( वद्व ईमिपे ) तु धन पर प्रभुता करती है ॥ ३ ॥

१७२८ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रियां दिवः । स्तुपे वामशिना धृष्ट ॥१॥ ( ऋ. १।४६।१ )

१७२९ या दत्ता सिन्धुमातरा मनोतरा रथोण्याम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥ ( ऋ. १।४६।२ )

१७३० वच्यन्ते वा ककुदासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वा२ रथो विमिष्यतात् ॥३॥ ७ ( लि ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । ख० १ ] ( ऋ. १।४६।३ )

१७३१ उपस्तधित्रमा भ्रासभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१॥  
( ऋ. १।२९।१३ )

१७३२ उषो अद्यह गोमत्पश्चावति विमावति । रेवदस्मे व्युच्छ सनृतावति ॥२॥ ( ऋ. १।२९।१४ )

१७३३ युंक्ष्वा हि वाजिनीवत्पथा२ अधारुणा२ उपः ।  
अथा नो विश्वा सौमगान्या वह ॥३॥ ८ ( हि ) ॥  
[ धा० ६ । उ० नास्ति । ख० १ ] ( ऋ. १।२९।१५ )

१७३४ अग्निना चर्तिसदा गोमदज्ञा हिरण्यवत् । अवाग्रथ२ समनसा नि यच्छतम् ॥१॥  
( ऋ. १।२९।१६ )

१७३५ एह देवा मयोमुना दत्ता हिरण्यवर्तनी । उपमुंक्षो वहन्तु सोमपीतये ॥२॥ ( ऋ. १।२९।१८ )

[ १७२८ ] ( एषा प्रिया अपूर्व्या उषाः ) यह प्रिय अपूर्व उषा ( धिया व्युच्छति ) द्युमीरुकी प्रकाशित करती है । हे ( अग्निनी ) अग्निवीरुमारो ! ( यां धृष्ट स्तुपे ) तुम्हारी बहुतसी स्तुति में करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७२९ ] ( या देवा ) जो अग्निनी देव ( दत्ता ) शत्रुका नाश करनेवाले ( सिन्धुमातरा ) नदियोंको उत्पन्न करनेवाले ( रथोण्यां मनोतरा ) पन देनेवाले ( धिया वसुविदा ) बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालोंको पन देनेवाले हूँ ॥ २ ॥

[ १७३० ] हे मयिनी देवो ! ( या रथ ) तुम्हारा रथ ( जूर्णायामधि विष्टपि ) प्रसन्ननीय स्वर्गलोकमें ( यद्वा विमिष्यतात् ) जब पक्षियोंके लिये आया जाता है, उस समय ( यां ) तुम्हारे विष्ट ( ककुदासः वच्यन्ते ) स्तोत्र बोले जाते हूँ ॥ ३ ॥

[ १७३१ ] हे ( वाजिनीवति उपः ) हवर्गोंको प्रारम्भ करनेवाली उपे ! ( अस्वभ्यं तत् चित्राभार ) हमें यह विलसत पन भर्पूर ( येन ) ( येन तोकं तनयं च धामहे ) जिसकी लक्ष्म्यवाले पुंश्चर्याओंका रक्षण हम कर सकें ॥ १ ॥

[ १७३२ ] ( गोमते ) गायेंति युक्त, ( अभ्यावति ) घोडेंति युक्त, ( सनृतावति ) विमावति उपः ) पक्षोंके युक्त और तेजस्विनी उपे ! ( अद्य हह ) आज यहां ( अस्मे रेवत् व्युच्छ ) हमें तु घनयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १७३३ ] हे ( वाजिनीवति उपः ) पक्षोंको युक्त करनेवाली उपे ! ( अरुणा२ अभ्यान् ) लालरपके घोडोंको ( अथ युंक्ष्वा हि ) अपने रथमें आज जोड़ और ( विश्वा सौमगानि नः अग्रह ) सब लोकग्रह हमें दे ॥ ३ ॥

[ १७३४ ] हे ( अग्निना ) अग्निदेवो ! ( दत्ता ) शत्रुका नाश करनेवाले तुम ( अस्वत् चर्तं वा ) हनारों परकी तरह आगे-पतझातकी ओर भावो ! ( गोमत् हिरण्यवत् रथ ) गाय और युवर्गोंके युक्त रथको ( समनसा अर्थात् नियच्छतम् ) मन पूर्वक हमारे पास लावो ॥ १ ॥

[ १७३५ ] ( उपमुंक्षुः ) उप काल में चमनेवाले घोडे ( एह सोमपीतये ) यह सोमपीनेके लिये ( दत्ता मयोमुना ) शत्रुका नाश करनेवाले और युक्त देनेवाले ( हिरण्यवर्तनी देवा ) सोनेके रथोंवाले धनिदेवोंको ( आवाहन्तु ) लावें ॥ २ ॥

१७३६ यावित्था श्लोकसा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रयुः ।

आ न ऊर्जे वहतमग्निना युवम्

॥ ३ ॥ ९ (मा) ॥

[ धा० २० । उ० ४ । स्व० २ ] ( ऋ. १।९।१७ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ १ ]

१७३७ अग्निं सं मन्ये यो वसुरस्ते यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमर्धेन्द आशुबोऽस्तं निस्वासा वाजिन इष्यं स्तोतुम्य आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१ )

१७३८ अग्निं हि वाजिनं विधे ददाति विश्वचर्यणिः ।

अग्नौ राये स्वाशुव्यं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतुम्य आ भर ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।१ )

१७३९ सो अग्निर्यो वसुरग्ने सं यमायन्ति धेनवः ।

समर्वन्तो रघुद्रव्यः सद्यं तुजातासः सूरय इष्यं स्तोतुम्य आ भर ॥ ३ ॥ १० (घु) ॥

[ धा० १६ । उ० ४ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।६।१ )

[ १७३६ ] हे ( अग्निना ) अग्निनीकुमारो ( यौ ) जो युव ( दिवः श्लोकं ज्योतिः ) सुबोधके प्रकाशनीय प्रकाश ( इत्या जनाय चक्रयुः ) इस तरह लोगके हितके लिए करते हो, ( युवं ) ऐसे युव ( नः ऊर्जे आ वहतं ) हमें बल दो ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १७३७ ] ( सं ) सभी ( मन्ये ) उस अग्निकी ये स्तुति करता हूँ ( यः वसुः ) जो सबको बसानेवाला है । ( भस्ते यं घेतया यन्ति ) जिसके आश्रयमें गावें जाती हैं, ( अस्ते आशुवः अर्धेन्दः ) जिसके आश्रयमें घोड़े जाते हैं ( अस्ते निस्वासाः वाजिनः ) जिसके आश्रयमें निर्याकर्म करनेवाले, हवि प्राप्तमें रजनेवाले यजमान जाते हैं, ऐसा ॥ ( स्तोतुम्यः इष्यं आभर ) स्तुति करनेवाले हमें भरपूर बल दे ॥ १ ॥

[ १७३८ ] ( अग्निः हि ) अग्नि निजवशसे ( विधे वाजिनं ददाति ) यजमानको युव देता है । ( विश्वचर्यणिः सः अग्निः ) सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला यह अग्नि ( प्रीतः ) प्रसन्न होकर ( स्वाशुवं वार्यं ) स्वयं सज्जमानेवाले ( राये याति ) धन देनेके लिए यत्नमें जाता है । हे अग्ने ( स्तोतुम्यः त्वाम् आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर बल दे ॥ २ ॥

[ १७३९ ] ( यः वसुः ) जो सबको बसानेवाला है, ( यं घेतयः समायन्ति ) जिसके पास गावें मिलकर जाती हैं । ( रघुद्रव्यः अर्धेन्दः सं ) अर्ध वीर्यवान्ते घोड़े जिसके पास जाते हैं । ( तुजातासः सूरयः सं ) उत्तम प्रतिष्ठ विद्वान् जिसके पास जाते हैं, ऐसा ( सः अग्निः ) यह अग्नि ( युगे ) प्रशस्ति होता है । हे अग्ने ! ( स्तोतुम्यः इष्यं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर बल दे ॥ ३ ॥

- १७४० महे नो अय बोधयोषो राये दिवित्मती ।  
यथा चिन्ता अवाधयः सत्यश्रवसि वाग्ये सुजाते अश्वसन्तुते ॥ १ ॥ ( अ. १/७९/१ )
- १७४१ या सुनीये औचद्रये व्योच्छो दुहितर्दिवः ।  
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाग्ये सुजाते अश्वसन्तुते ॥ २ ॥ ( अ. १/७९/२ )
- १७४२ सा नो अद्याभरद्भसुव्युच्छा दुहितर्दिवः ।  
यो व्योच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाग्ये सुजाते अश्वसन्तुते ॥ ३ ॥ ११ ( तु ) ॥  
[ घा० १९ । ख० १ । ख० १ । ( अ. १/७९/१ )
- १७४३ प्रति प्रियतमं रयं वृषणं वसुवाहनम् ।  
स्तोता वामश्विनोऽपि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम भुवः हवम् ॥ १ ॥ ( अ. १/७९/१ )
- १७४४ अत्यायातमश्विना तिरा विश्वा अहं सना ।  
दत्ता हिरण्यवर्तनी सुपुण्या सिन्धुवाहसा माध्वी मम भुवः हवम् ॥ २ ॥ ( अ. १/७९/२ )

[ १७४० ] ( अय ) आज है ( उय ) जवे । दिवित्मती ) प्रकाशयुक्त वृ ( नः महे राये बोधय ) हमें बहुत धन प्राप्ति के लिए जानयुक्त कर । ( यथा चिन्ता नो अवाधयः ) जिसप्रकार पहले जानयुक्त करती थी, उसीप्रकार अब भी कर । है ( सुजाते अ-श्व सन्तुते ) कुलीन और हमेशा सत्य श्रोतनेवाली जवे । ( वाग्ये सत्यश्रवसि ) वग्य के पुत्र सत्यश्रवण रूप का कर ॥ १ ॥

[ १७४१ ] है ( दिव्यः दुहितः ) कुलीनकी कान्वे । ( या ) वो वृ ( सुनीये औचद्रये व्योच्छ ) सुनीय नामक शुचद्रय के पुत्र के लिए प्रकाशित हई, ( सा ) वह वृ ( सह्ययसी वाग्ये सुजाते सत्यश्रवसि व्युच्छ ) जति बलवान् वग्य के सत्यश्रवण नामक कुलीन पुत्र पर अपने प्रकाशरूपी अनुग्रहको कर ॥ २ ॥

[ १७४२ ] है ( दिवः दुहितः ) कुलीनकी पुत्री । ( सा वसु आभरद् ) वह वृ हवे धन भरपूर है, तथा ( माः अहं व्युच्छ ) हमारे लिए आज प्रकाशित हो । है ( सह्ययसि ) अत्यन्त बलवत्तवे ( या व्योच्छ ) जिस वृ ने अन्धकारको दूर किया है, ऐसी है ( सुजाते अ-श्वसन्तुते ) कुलीन और सदा सत्य श्रोतनेवाली जवे । ( वाग्ये सत्यश्रवसि ) वग्य के पुत्र सत्यश्रवण पर अनुग्रह कर ॥ ३ ॥

[ १७४३ ] ( अश्विनौ ) अश्विनदेवो । ( स्तोता ऋषिः ) शक्ति करनेवाला ऋषि ( वां ) तुम्हारे ( वृषणं वसुवाहनं ) बलवान् और धन बोकर ले जानेवाले ( प्रियतमं रयं ) अत्यन्त प्रिय रथको ( स्तोमेभिः प्रतिभूषति ) स्तोत्रों से सुशोभित करता है । इस कारण है ( माध्वी ) मधुविशको जाननेवाली । ( मम भुवः हवम् ) हमारी प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥

[ १७४४ ] है ( अश्विना ) अश्विनदेवो । ( अत्यायातं ) तुम अन्य यजमानोंको धार करके हमारी तरफ आओ । ( अहं विश्वाः सना तिरा ) मैं अपने सब शत्रुओंको हराऊँ । है ( दत्ता हिरण्यवर्तनी ) शत्रुका नाश करनेवाली और सोने के रथवाले ( सुपुण्या सिन्धुवाहसा ) उत्तम धनके युक्त और नदियोंमें जो जानेवाले तथा ( माध्वी ) मधुविशको जाननेवाले अश्विनदेवो । ( मम भुवः हवम् ) हमारी प्रार्थना सुनो ॥ २ ॥

१७४५ आ नो रत्नानि विभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।

रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुपाणा वाजिनीवस् माच्यी भम ध्रुतः इवम् ॥ ३ ॥ १२ ( वा ) ॥  
[ धा० ३० । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ५।७५।३ )

॥ इति तृतीयाः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१७४६ अघोषमिः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुपासम् ।

यद्वा इव प्र वयासुजिह्वानाः प्र भानवः सन्नतं नाकमच्छ ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१।१ )

१७४७ अघोषि होता यजथाय देवानृषो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।

समिदस्य रुशददशि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१।२ )

१७४८ यदी गणस्य रथनामजीगः शुचिरश्वे शुचिमिगोभिरभिः ।

आक्षिणा युज्यते वाजयंत्युत्तानामृषो अधयजुहुभिः ॥ ३ ॥ १३ ( लि ) ॥

[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ५।१।३ )

[ १७४५ ] हे ( अश्विना ) अश्वदेवो ! ( रुद्रा हिरण्यवर्तनी ) तुम वाजुओंकी चलाने वाले तथा सोनेके रत्नके बैठनेवाले ( रत्नानि विभ्रता ) रत्नों की धारण करनेवाले ( वाजिनीवस् जुपाणा ) भ्रम और घनोंसे युक्त तथा यकन जानेवाले ( युर्व आगच्छतं ) तुम हमारे पास जाओ । ( माच्यी । भम हव्यं ध्रुतं ) हे अघुमिधाके जाननेवालो ! मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १७४६ ] ( अग्निः जनानां समिधा अघोषि ) अग्नि याजकोंकी समिधासे प्रज्वलित हुआ है । ( धेनुं इव ) पावोंकी जितप्रकार प्रातः काल उठते हैं, उसीप्रकार अग्नि जागृत हुआ है । ( आयती उपार्धं प्रति ) जानेवाले उस कालमें ( भानवः ) अग्निकी अग्राहकें ( वयां प्रोजिह्वानाः यद्वाः इव ) अपनी जालियोंकी फैलानेवाले वृक्षके समान ( नाकं अच्छ प्रलच्छते ) अनापिकी और फैलते हैं ॥ १ ॥

[ १७४७ ] ( होता अग्निः ) हवन करनेवाला अग्नि ( देवानृषो यजथाय अघोषि ) देवों द्वारा यज्ञ किए जानेके लिए प्रज्वलित हुआ है । यह अग्नि ( प्रातः सुमनाः ) प्रातःकाल उत्तम मनसे ( ऊर्ध्वः अस्थात् ) ऊपर उठ गया है । ( समिदस्य रुशत् ) प्रज्वलित हुए हुए अग्निका ( पाजो अददशि ) तेजवाली बल कीलने लगा है । यह ( महान् देवः ) तमसः निरमोचि ) महान् वेध जगत्को अन्धकारसे छुड़ता है ॥ २ ॥

[ १७४८ ] ( यद्वा इव ) जब यह अग्नि ( गणस्य रथानां अजीगः ) जन समूहवाले कायोंमें बिघ्न डालनेवाले अन्धकारकी प्रतिबधनी नियत जाता है, तब ( शुचिः अग्निः ) शुद्ध तेजस्वी अग्नि ( शुचिमिः गोभिः ) शुद्ध किरणोंसे ( अश्वे ) जगत्को प्रकट करता है । ( आत् ) उत्तके वायु ( वाजयन्ती वृक्षिणा ) बल देनेकी इच्छा करती हुई पीकी मोटी पारा ( जुहुभिः युज्यते ) यज्ञवाक्यसे संयुक्त होती है । तब ( उत्तानां ऊर्ध्वः अधयजुः ) ऊपरसे जानेवाली पीकी उस पाराकी यह अग्नि ऊपर उठकर पीता है ॥ ३ ॥

१७४९ इदं<sup>३४२</sup> अथ<sup>३४३</sup> ज्योतिषां<sup>३४४</sup> ज्योतिषां<sup>३४५</sup>माध्विः<sup>३४६</sup> प्रकृतो<sup>३४७</sup> अजनिष्ट<sup>३४८</sup> निम्वा<sup>३४९</sup> ।

यथा<sup>३५०</sup> प्रसूता<sup>३५१</sup> सवितुः<sup>३५२</sup> सवायेवा<sup>३५३</sup> रात्र्युपसे<sup>३५४</sup> योनिमरैक्<sup>३५५</sup> ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१।३।१ )

१७५० रुद्रहस्ता<sup>३५६</sup> रुद्रती<sup>३५७</sup> श्वेत्यामादभे<sup>३५८</sup>गु<sup>३५९</sup> कृष्णा<sup>३६०</sup> सदनाप्यस्याः<sup>३६१</sup> ।

समानरन्धू<sup>३६२</sup> अमृते<sup>३६३</sup> अनुची<sup>३६४</sup> धावा<sup>३६५</sup> वर्ण<sup>३६६</sup> चरत<sup>३६७</sup> आमिमाने<sup>३६८</sup> ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।१।२ )

१७५१ समानो<sup>३६९</sup> अथा<sup>३७०</sup> स्वसौरनतस्तमन्यान्था<sup>३७१</sup> चरतो<sup>३७२</sup> देवशिष्टे<sup>३७३</sup> ।

न मेधेते<sup>३७४</sup> न तस्यतुः<sup>३७५</sup> सुमेके<sup>३७६</sup> नकोषासा<sup>३७७</sup> समनसा<sup>३७८</sup> विरूपे<sup>३७९</sup> ॥ ३ ॥ १४ ( म ) ॥  
[ धा० ३० । उ० ५ । ३५० १ ] ( ऋ. १।१।३।५ )

१७५२ आ<sup>३८०</sup> भास्यप्रिषसा<sup>३८१</sup>मनीकमुद्रिधायां<sup>३८२</sup> देवया<sup>३८३</sup> वाचो<sup>३८४</sup> अस्थुः<sup>३८५</sup> ।

अवाश्वा<sup>३८६</sup> नूनं<sup>३८७</sup> इध्वेह<sup>३८८</sup> पातं<sup>३८९</sup> पीपिवाश्चमक्षिना<sup>३९०</sup> धर्ममच्छ<sup>३९१</sup> ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।७६।१ )

१७५३ न<sup>३९२</sup> सस्कुतं<sup>३९३</sup> प्र<sup>३९४</sup> मिमीतो<sup>३९५</sup> गमिष्ठान्वि<sup>३९६</sup> नूनमशिनोपस्तुवेह<sup>३९७</sup> ।

दिवामिषिरेव<sup>३९८</sup>सगमिष्ठा<sup>३९९</sup> प्रत्थवातं<sup>४००</sup> दाशुषे<sup>४०१</sup> अम्मविष्ठा<sup>४०२</sup> ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।७६।२ )

[ १७४९ ] ( ज्योतिषां इदं अथ ज्योतिः ) तेजस्वी यदायोनं सबले तपिक तेजपत्नी बहु उवा ( आगाव् ) उवय हुई है । ( चित्रः प्रकृतः ) उत्तक प्रकाश विलक्षण तेजस्वी ( चित्रया अजनिष्ट ) और चारों ओर फैला हुआ है । ( यथा सवितुः प्रसूता धात्रिः ) सूर्यतेजः उत्पन्न हुई हुई अर्थात् सूर्यके इव आनेसे उत्पन्न हुई हुई रात्री ( उपसे सत्राय ) उवाको उत्पन्न करनेके लिए ( योनिं आरैक् ) अर्थात् बीजमें उत्तरे किए स्थान बनाती है ॥ १ ॥

[ १७५० ] ( रुद्रती श्वेत्या ) प्रकृतिगत होनेवाली श्वेत रंगकी उवा ( रुद्रहस्ता आगाव् ) तेजस्वी सूर्यरूप पुत्रको लेकर आई है । ( सस्याः कृष्णाः सदनाग्नि आरैक् ) इस रात्रीके फले रंगके स्थान हैं । उवा य रात्री दोनोंका ( सामान-रन्धू ) सूर्यके साथ समान बन्धुत्व-संबंध है, ( अमृते अनुची ) अमर और कमसे एकके पीछे दूसरे भागेवाले हैं और ( धर्मं आमिमाने ) दोनों एक दूसरेके रंगकी गच्छ करनेवाले हैं, तथा ( धावा चरतः ) दोनों ही छुलोकमें बिचरनेवाले हैं ॥ २ ॥

[ १७५१ ] ( स्वस्रोः अध्या समानः ) रात्री और उवा दोनों ही बहिराँक धर्म एक ही है, और बहु धर्म ( अनन्तः ) अक्षरहित है । ( तं देवशिष्टे ज्ययाम्या चरतः ) उस भागते सूर्यके द्वारा कहे हुएके अनुसार एकके पीछे दूसरी कमसे धनती है । ( सुमेके अफतोषासा ) उत्तम कार्य करनेवाली से उवा और रात्री ( विरूपे समनसा ) विच्छन्न रूपवाली होती हुई भी एक बिचरवाली हैं तब कभी भी ( न मेधेते ) आपसमें झगडा नहीं करती तथा ( न तस्यतुः ) त्विर भी नहीं रहती । अपने लपने कार्यको करती रहती हैं ॥ ३ ॥

[ १७५२ ] ( उपसां अनीकं अग्नि आमाति ) उवाका सुधरूपी बहु अग्नि प्रदीप्त हो गया है । इस समय ( विप्राणां देवयाः वाचः उदस्थुः ) कामिनीदेवि दिव्य स्तुतिकर्य वाचिनीं मुख होवाई है । इस कारण ( रथया अभ्यिना ) हे रथमें बैठनेवाले अग्निदेवको ! ( अर्वाया नूनं इह ) हमारे पास यहाँ आओ । यज्ञमें ( पपिवांसं धर्मं अच्छ ) पीने योग्य सोमरसके पास ( आयातं ) आओ ॥ १ ॥

[ १७५३ ] हे अश्विनीकुमारो ! ( संस्कुतं न प्रमिमीतः ) संस्कार किए गए यवायोंको लेनेसे घना मत करो । ( अग्नि नूनं इह गमिष्ठा ) फलमें होनेवाले इस यज्ञमें आओ । ( अभ्यिना उपस्तुता ) अश्विनीदेवोंकी स्तुति की जाती है । ( दिवामिषिरेव ) दिनके प्राप्त बाल होते हो ( अवसा अधर्ति प्रथमागमिष्ठा ) रथ करनेवाले अन्नके साथ पुत्र माते हो । इति १२ ( दाशुषे अम्मविष्ठा ) दान देनेवालेको सुख देनेवाले होओ ॥ २ ॥



१७५४ उवा यात संगवे प्रातरहो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।

दिवा नक्तमवसा श्रुतमेन नैदानी पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥ १५ (लो) ॥

[ धा० २४ । उ० नासित । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।७६।१ )

॥ इति षष्ठ्यं खण्ड ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१७५५ एवा उ स्या उपसः केतुमकत पूर्व अर्धे रजसो मानुमञ्जते ।

निष्कृष्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रवि गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९२।१ )

१७५६ उदपततकृष्णा भानवो वृषा स्वायुजो मरुषीर्गा अयुक्षत ।

अक्रक्षुपातो वयुनानि पूर्वेषा कृशन्तं मानुमरुषीराश्विभयः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९२।२ )

१७५७ अवेन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।

इयं ग्रहन्ती। सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥ १६ (कि) ॥

[ धा० २६ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।९२।३ )

[ १७५४ ] हे ( अश्विना ) अश्विवेदो ! ( अह्नः संगवे ) दिवसे गाय कुहनेके समय ( प्रातः ) तबरे ( सूर्यस्य ) उदिता । सूर्यके उदय होनेपर ( मध्यन्दिने ) मध्याह्नके ( दिवा ) दिवसे ( नक्तमे ) रात्रिमें अर्धात् होनेवा ( श्रुतमेन अवसा ) कुलराज्य रक्षके तापनेमें साथ ( आयातं ) आधो । ( उत ) क्योंकि ( इदानीं ) पीतिः न ततान ) अभी तोम पीना मुख नहीं हुआ है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १७५५ ] ( स्या पता उपसः ) के ये उपाय ( केतु मकत ) प्रकाश करती हैं । ( रजसः पूर्वे अर्धे मानुं अञ्जते ) अन्तरिक्षके पूर्व अर्धमें प्रकाश हो गया है । ( धृष्णवः आयुधानि इव ) धीर क्षीय जैते तान् तोषण करते हैं, उसीप्रकार ( निष्कृष्वानाः ) अपने प्रकाशके जगत्की प्रकाशित करते हुए ( वायुः ) गमन करनेवाली तथा ( मातरः ) अरुषीः ) जगत्की माता तैरमुख उपायों ( प्रति यन्ति ) प्रतिष्ठित आती हैं ॥ १ ॥

[ १७५६ ] ( अक्रणाः भानवः ) अथन रजरी चित्तों ( वृषा उदपतन् ) सरलतासे ॥ ऊपर आगे हैं । ( स्वायुजः मरुषीः ) गाः अयुक्षत । स्वय ही जुड़मानेवाले बेल-चिरण-रथमें जोड़े गए हैं । ( उपासः पूर्वेषा वयु नानि भयन् ) उपायों पहले तोमका प्रसार करती हैं । भावनों ( अरुषीः ) कृशन्तं मानुं आदिभयः । प्रकाश करनेवाली उपायों तेजस्वी सूर्यकी सेवा करने लगीं ॥ २ ॥

[ १७५७ ] ( सुकृते सुदानवे ) उत्तम बर्ष करनेवाले और उत्तम दान देनेवाले ( सुगृते यजमानाय ) तोमरत निवासेवाले यजमानको । ( विश्वा इव अहं ग्रहन्ती ) बहुत अन्न देनेवाली ( नारीः ) उपास्यो दिवसे ( विष्टिभिः ) करने की शक्ति ( समानेन योजनेन ) समान योजनसे ( परायणः आ अर्चयन्ति ) दूर बैठके आराधनो गृह्यर बनाती हैं । ( अपतः न ) मिलकर कुछ करनेवाले और अपने शक्तियोंके रक्षामूर्ध्वमें मुखर बनाये हैं, उसीप्रकार उपायों मातापती मुखर बनाती हैं ॥ ३ ॥

- १७५८ अगोष्पादिर्जम् उदेति सूर्यो ज्यैष्ठाश्चन्द्रा मन्वावो अचिषा ।  
 अगुष्ठावामश्विना यातेवे रथं प्रासावीदिवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१७।१ )
- १७५९ यद्युजायै वृषणमश्विना रथं धृतेन नो मधुना क्ष्वमृक्षतम् ।  
 अस्माकं मृक्षं वृतनासु जिवन्तं वयं घना शूरसावा मजेमहि ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१७।२ )
- १७६० अवीद् विचक्रो मधुवाहनो रथो जीरायो अभिनोर्यासु सुद्युतः ।  
 त्रिवन्धुरो मधवा विश्वसौभगः श्वं न आ वक्षद्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥ १७ ( छा ) ॥  
 [ घा० ११।४२ । २०० १ ] ( ऋ. १।१७।३ )
- १७६१ म ते धारा असश्वतो दिवो न यन्ति वृष्टया । अष्टा वाजः सहस्रिणम् ॥ १ ॥  
 ( ऋ. १।१७।४ )
- १७६२ अभि प्रियाणि काण्डा विश्वा चक्षाणो अर्पति । हविस्तुजान आयुधा ॥ २ ॥  
 ( ऋ. १।१७।५ )
- १७६३ स मर्मैजान आयुभिरिमां राजेव सुयतः । इवैनो न वक्षुं वीदति ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१७।६ )

[ १७५८ ] ( अग्निः उमा अयोधि ) अग्नि अपनी वेदीयें प्रदीप्त हुआ है । ( मही उपाः अचिषा चन्द्रा वि आद्यः ) वही उपा अपने तेजसे लोनोंकी आत्म्य देती हुई प्रकट हुई है । हे ( अश्विना ) अश्विवेदो ! ( यत्तये रथं आयुक्षातां ) यत्तये जानके लिए अपने रथको मीठी । ( सविता देवः ) सूर्य देव ( जगत् पृथक् प्रासावीत् ) जगत्के सब प्राणिमोको अपने-अपने बर्तव्यमें लगाता है ॥ १ ॥

[ १७५९ ] हे ( अश्विना ) भवेबनीह्वारो ! ( यत् धृणं रथं मुष्ठाये ) जब तुम अपने बलवान् रथको कोठे हो, तब ( नः क्षत्रं ) हमारे अग्निमोको ( मधुना धृतेन उत्तरे ) मीठे वीसे पुष्ट करो । ( अस्माकं वृतनासु मृक्ष जिवन्तं ) हमारी ब्रह्मर्षीयों नामकी वृद्धि करो । ( वयं शूरसावो घना भजेमहि ) और हम मुझमें यत्तये प्राप्त करें ॥ २ ॥

[ १७६० ] ( अश्विनो रथः अगोष्क यासु ) अश्विनोका रथ हमारे पास आये । ( विचक्रः मधुवाहनः ) तीन पहियोंवाला मीर मीठे अमृतको धारण करनेवाला ( जीरायोः सुद्युतः ) जन्मे चलनेवाले घोड़े जिसमें मूत्रे हुए हैं, और जितनी उत्तम स्त्रुति होती है, ऐसा । ( त्रिवन्धुरः मधवा विश्वसौभगः ) तीन बंधनों वाला, यत्तये भरद्वाजा तथा सब सौभाग्यसे युक्त रथ ( नः द्विपदे चतुष्पदे वा आयुक्षात् ) हमारे रथयें और चोखोंके लिए मुख लेकर आये ॥ ३ ॥

[ १७६१ ] हे सोम ! ( ते असश्वतः धाराः ) तेरी न बन्द होनेवाली धारायें ( सहस्रिणं वाजं अष्टसु प्रयन्ति ) हमारे तरहेव सब हमें देती हैं । ( द्विषः वृष्टय न ) जैसे दुल्लेकसे वृष्टि होती है, उसीप्रकार तेरी धारायें हम पर जलती वृष्टि करती हैं ॥ १ ॥

[ १७६२ ] ( हरिः ) हरे रगका सोम ( विश्वा प्रियाणि काण्डा चक्षाणः ) सब दिव्य कर्णोंको देखाते हुए ( आयुधा तुजानः ) आयुधोंकी अश्वयोंपर फेंकते हुए ( अश्वयर्पति ) आगे जाता है ॥ २ ॥

[ १७६३ ] ( सुयतः सः ) उत्तम कर्ष करनेवाला यह सोम ( आयुभिः मर्मैजानः इमाः राजा इव ) अतिबलवान् हुए हुए होता हुआ निर्भीक राजाके समान वीर्यवान् है और ( इवैनः न ) इमै यत्तये समान ( वक्षुं वीदति ) यानीने मिलाया जाता है ॥ ३ ॥

१७६४ स नो विधा दिवो वदतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्द्रवा भर ॥ ४ ॥ १८ ( ती ) ॥  
[ चा० १४ । त० १ । ख० ४ ] ( ऋ ९।५।४ )

॥ इति पञ्चम खण्डः ॥ ५ ॥

॥ इति अष्टमप्रपाठके तृतीयोऽर्थः ॥ ३ ॥ अष्टम प्रपाठकस्य समाप्तः ॥ ८ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

[ १७६४ ] हे ( इन्द्रो ) सोम । ( पुनानः ) शुद्ध होनेवाला ( सः ) वह तू ( दिवः अधि ) धूलोत्तम ( उत पृथिव्या ) और पृथिवीपर रहकर ( विधा वसु नः आभर ) सब धन हमें भरपूर दे ॥ ४ ॥

॥ यहाँ पाँचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥



## एकोनविंश अध्यायः

इति अध्यायमें उपा, अग्निवी, इन्द्र और सोम देवताओंका वर्णन है । उनमेंसे उपा देवताका वर्णन इस प्रकार है—

उपा देवता

१ स्या सूनवी दिव्यः दुहित्वा प्रत्यर्द्धि, जनी रूपसुः परिप्युच्छन्ती [ १७२५ ]— वह उपा उत्तम प्रेरणा करनेवाली सूर्यकी पुत्री होकरने लग गई है, उसके प्रभावकी वृद्धा करनेवाली रात्रीरूपी अग्नि बायें चारों ओरसे प्रकाशित होती है ।

२ अथ्या इय चित्रा, अदयी गवां माता, अतायरी उपा अभियनोः सक्ता अभूत् [ १७२६ ]— गोश्रेष्ठे समान सुन्दर, अमरनेवाली निरर्णोरी माता, यतकी प्रेरक उपा अग्निवीके भित्रसे समान हो गई है । अग्निवी प्राप्त बाल पीतसे है, इसलिये उपा उनकी भित्र है ।

३ हे उपा ! यश्च ईशिये [ १७२७ ]— हे उपा ! तू बनरी स्वामिनी है ।

४ गवां माता मरि [ १७२७ ]— प्रकृत निरर्णोरी उत्तम करनेवाली उनकी माता है ।

५ एवाप्रिया अपूर्णा उपादिव्यः प्युच्छति [ १७२८ ]— यह प्रिय अपूर्ण उपा धूलोत्तम प्रकाशित करती है ।

६ याग्निनीषति उपा ! अस्मभ्यं तन् चित्र आभर मेन तोषः तनयं च धामिदे [ १७३१ ]— हे अग्नि वामने

रखनेवाली उपा ! हमें वह चोट धन दे, जिसकी सहायतासे हम पुत्रपौत्रोंका उत्तम पोषण कर सकें ।

७ अथ्यायति गोमति पृथुतायति विमायति उपा ! अथ इह असे देवत प्युच्छ [ १७३२ ]— हे पोष्टे और गावेंसे युक्त, यज्ञ करनेवाली प्रकाशमान् उपा ! आज यहाँ हमें धनसे युक्त करने प्रभावित कर ।

८ हे याग्निनीषति उपा ! अरुणान् अध्यान् अथ सुन्दर, विश्वा सौमगाति नः आ वह [ १७३३ ]— हे अग्नि को अपने पास रखनेवाली उपा ! अपने हममें लात रंगने पोष्टे और और सब सौभाग्य हमें दे ।

९ हे सुजाते अ-भ्य स्रुते ! दिविमती नः मदे शये बोधय यथा चित् नः अपोधयः [ १७४० ]— हे उत्तम कुलमें जन्म लेनेवाली, माता यतकी गृह करनेवाली उपा ! तू प्रकाशयुक्त होकर हमें बहुत धन प्राप्त करनेका मार्ग बता, जैसा कि तुने पहले भी बताया था ।

१० हे दिव्यः दुहित्वा ! सा आभरन् वसु नः अथ प्युच्छ [ १७४२ ]— हे धूलोत्तरी पुत्री उपा ! तू भरपूर धन देनेवाली होकर हमारे लिए प्रकाश दे ।

११ ज्योतिर्गा इदं धेष्टं ज्योतिः बागान्, चित्रा प्रजेनः विख्या अग्निविष्ट [ १७४९ ]— तेजावी धराधीन विनये तेजवाली उपा उच्च हो गई है, उपाका प्रकाश सब जगत्पर फैल गया है ।

१२ उपसां अनीके अग्निः आगमति, यिमाणां देवया वाचाः उद्वस्युः [ १७५२ ]- उवाचां वृषकृषीं सनि प्रबोधो हो यथा है, बाहुगोत्रा विष्य संत्र घोष शुक्र हो गया है ।

१३ एषा यताः उपसाः केतुं अकन, रजसः पूर्वे अर्धे मानुं अंजते, निष्कृषयानाः आतरः उपसाः प्रति यन्ति [ १७५५ ]- यह यह उपाका प्रकाश कंत रहा है अन्तरिक्षकी पूर्वं दिशाके अर्धमें प्रकाश हो गया है । अपने प्रकाशसे वातको प्रकाशित करते हुए यह जाता गया प्रतिदिन जाती है ।

उवा पूर्वाकी अपवा दूतीरकी पुत्री है । उसकी पहिल राजी है । ये दोनों कमलः एकके पोछे दूसरी जाती हैं । उपा बीरनेमें सुन्दर है, क्योंकि वह प्रकाशवाली है । प्रकाशके किरणोंकी यह माता है । उपातेहो प्रकाशकी किरणें निकलती हैं । आकाशकी पूर्वं दिशाके आधे भागमें उसका लाल प्रकाश बीरने लगाता है । वह उपा ही होती है । यज्ञ करनेवाले हविर्द्वय और अन्न लेकर अग्निकी सेवा करनेके लिए सौम्यार होते हैं, उस समय जब काल होता है ।

उपकाश होते ही वाय और धीरे धीरे बरनेके लिए छोर दिए जाते हैं । यज्ञशालामें यज्ञक घस करनेकी धैर्यारी करते हैं, वेदपाठियोंका वेदपाठ शुक्र हो जाता है । अग्नि प्रदीप किमा जाता है और हवन प्रारम्भ होते हैं ।

यह सुन्दर वर्णन उपाका इन अर्थोंमें आया है । उप कालमें अग्निर्वा ( नक्षत्र ) उपज होते हैं, इसलिये उपाकी अग्निर्वाकी सहोत्री बताया है ।

### अग्निनी

१ उक्ता सिन्धु मातरा रयीनां मनोहरा धिया वलुधिया [ १७२९ ]- ये अग्निनी वैष शत्रुका नाश करनेवाले, नदियोंकी उत्पन्न करनेवाले और बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवालोंको धन देनेवाले हैं ।

२ यो रयः जूषायां अधि विधायि, यत् विमिः पतात् यां ककुदासिः चक्षयस्ते [ १७३० ]- तुम्हारे रथ प्रसन्ननीय अन्तरिक्षमें अब पलियों द्वारा से लाये जाते हैं, उस समय तुम्हारे लिए स्त्रीज बड़े भाले हैं ।

३ हे अग्निनी ! दूखा अस्मात् वर्ति, आ । गोमत् हिरण्यवत् रथं समनसा अर्वाक् नि वच्छतम् [ १७३४ ]- हे अग्निनी ! शत्रुका नाश करनेवाले तुम हमारी यज्ञशालाको और आओ । गाय और सोनेसे युक्त अपने रथको बुद्धिपूर्वक हमारे पास से आओ ।

५५ [ साम हिम्यी भा. २ ]

४ हे अग्निनी ! यो दिपः श्लोकं ज्योतिः इत्था जनाय चाक्रतुः, युधं ना ऊर्जं आयहतम् [ १७३६ ]- हे अग्निनी ! वो तुम आकाशसे प्रज्वलनीय प्रकाशकी इस प्रकार योगिके कृतके लिए जाते हो, ऐसे तुम हमें यज्ञ यज्ञनेवाले भन्न दो ।

५ हे दूखा हिरण्यवर्तनीं सुधुसा सिन्धुयाहसा माग्नी ! मम हव्यं धृतं [ १७४४ ]- हे शत्रुके नाश करनेवाले, सोनेके रथमें बँडेवाले, उत्तम धन वातमें रखनेवाले, नदियोंसे आनेवाले और नदु विद्याको आनेवाले अग्निनी देवो ! हमारी प्रार्थना सुनो ।

६ हे अग्निनी ! दूखा हिरण्यवर्तनीं चाग्नीनीषसु शुचापा युधं नावच्छतम् [ १७४५ ]- हे अग्निनी देवो ! तुम शत्रुकी बलासेवाले, सोनेके रथ पर बँडेवाले, अन्न और धन वातमें रखनेवाले और यज्ञमें आनेवाले हो । तुम हमारे यज्ञमें आओ ।

७ दिव्यामपितये अयसा अर्वाक् प्रत्यागमिषा, वाधुपे शंसमिषा [ १७५१ ]- दिनके प्रारम्भ होते ही अन्नके साथ धुम आते हो । इसलिये वात देनेवालोंको धुम देनेवाले धुम होवो ।

८ हे अग्निनी ! अन्ना खम्ब्ये प्रातः दिया नक्तं शीतमेन मयसा आयातं [ १७५४ ]- हे अग्निदेवो ! दिनमें गाय बुढ़नेके समय प्रातः काल दिनरात धुम देनेवाले तंत्रज्ञके साथमें साथ आओ ।

९ अग्निनोः रथः अर्वाक् यातु, मिचक्रः सधु-वाहनः क्षीराभ्यः सुष्ठुता, मिचक्रधुरा, मधया, विध्वस्तैरभाः नः दिपदे वलुधिये शो वायक्षतुः [ १७६० ]- अग्निनोका रथ हमारे पास आये । सोन पहियोंवाला, मोठे रथको वाहन करनेवाला, तेज दीजनेवाले घोड़ोंसे युक्त, मिचक्री उत्तम प्रज्ञा होती है, ऐसे सोन बँडेवाला, धनसे भरा हुआ, सब सोबागवते युक्त रथ हमारे विषय और घोषालोंको धुल देवे ।

अग्निनी शत्रुओंके वध करते हैं, धन देते हैं, धन लगाकर कार्य करनेवालोंको ऐश्वर्य देते हैं । उनका विमान अन्तरिक्षमें भी जाता है, उस समय जब रथमें पक्षी जोड़े जाते हैं । नोरस-धी और बृहत्तरा सोना इनके रथमें होता है । सोनेके यज्ञ यज्ञनेवाले यज्ञमें इनके रथमें होते हैं । इनका यह रथ सोनेका अर्वाक् सोनेसे सजा हुआ है । अपने पराक्रमसे शत्रुओंको बलासे हैं, अन्न और धनको अपने रथमें रखते हैं । ये

रावेरे गाय वृहदेके समय विनरात अपने कल्याण करनेके साधनोंके साथ रोगियोंके पास जाते हैं और उनका इलाज करते हैं। इनके रूपमें तीन पहिए और तीन बँधनेके स्थान हैं। इनके पास सबके आरोग्य पथानोंके साधन हैं।

### अग्नि

१ ऊर्जो-न-पातं पातकशोचियं अग्निं अग्निम् स्वप्नरे यस्मै आहुये [ १७११ ]- बल कम न करनेवाले, प्रकाशसे युक्त अग्निको उल्लभ हिसारहित यत्नमें हृदय बलाने हैं।

२ मित्रमह- अग्ने ! शुक्लेण शोचिषा देवैः वर्हिषि व्यासिस्ति [ १७१३ ]- हे मित्रोंके द्वारा पूज्य अपने ! यह तू शुद्ध व्यासोंमेंसे युक्त होकर देवोंको अपने साथ लेकर आगन पर बैठ ।

३ यः यस्तुः । अस्तं यं पेनयः यमिन्, अस्तं आशयः अर्घ्यस्तः [ १७१७ ]- अग्नि धवको बसानेवाला है, उसके आधर्यमें गायें रहती हैं और उसके आधर्यमें घोड़े भी रहते हैं।

४ विश्वधर्षणिः अग्निः प्रीतः यथाभ्रुयं पायं राये दति [ १७१८ ]- सब लोगोंका कल्याण करनेवाला अग्नि प्रसन्न होकर सलसल करनेवाले धन देनेके लिए यत्नमें जाता है।

५ अग्निः जनानां समिधा अयोधि [ १७४६ ]- अग्नि धानियोंकी समिधामेंसे प्रवीण हुआ है।

६ आपती उपालं प्रति आनयः धर्षां प्रीजिह्वाना यताः । इयं तां अच्छ प्र सज्जते [ १७४६ ]- आनेवाले छप बालमें अग्नि, जितप्रकार वेद अपनी शक्तियोंकी आकाशमें फैलाना है उसीप्रकार अपनी व्यासोंमेंसे अन्तरिक्षमें फैलाना है। अग्निके अन्तरे ही उसकी व्यासमें, ब्रह्माकी शास्त्रात्मिक समान, अन्तरिक्षमें फैली है।

७ अग्निः देवान् यजयाय अयोधि । प्रातः सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात् । समिद्धयं दद्यात् पात्रं अर्घ्यं । मधन्त्येयः तमसः निरमोधि [ १७४७ ]- अग्नि देवोंकी पूजा करनेके लिए प्रवीण हुआ है। सबदे सबदे उल्लभ करनेके उपर उद्यम है। प्रज्वलित हुए हुए अग्निका तेजस्वी बल श्रोतने लय गया है। यह महान् वैद्य अपनेको अन्धकारसे मुक्त करता है।

८ शुचिः अग्निः शुचिभिः गोभिः अंकेत [ १७४८ ]- शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणोंके प्रकाशित करता है।

९ अग्निः उमः अयोधि [ १७५८ ]- अग्नि देवीमें प्रज्वलित हो गया है।

अग्नि बल कम न करनेवाला है। शरीरमें अग्नि जल्लताके रूपमें रहता है। उसके रहने तक ही शरीरमें बल बढ़ता है। जीवन एक यज्ञ है उस जीवन यज्ञका आधार शरीरकी जल्लता है। सब इन्द्रियोंमें देवोंके अंग रहते हैं। उन देवोंके साथ अग्नि यहाँ रहता है, और शरीर चलता है। शरीरमें यहाँ कस्य [ १७५८ ] कि देव निकल जाते हैं और शरीर कार्य करनेमें सक्षम हो जाता है।

यह अग्नि सब शक्तिशाली निदातक है। उसमें गायका हृदय और चीका हृदय होता है। दूसरे हवनीय पदार्थ भी हवनके लिए लाये जाते हैं। सब मनुष्योंका कल्याण करने वाला अग्नि है।

यह अग्नि क्षत्रियाओंसे जलाना जाता है और ब्राह्मणों उसमें हृदय पदार्थोंका हवन किया जाता है। यत्न स्थानमें सबदे सबदे अग्नि प्रवीण किया जाता है। वह प्रवीण होते ही अपनी व्यासोंमें अन्तरिक्षमें फैलाने लगता है।

अग्नि महान् वैद्य है। वह अन्धकार दूर करता है और प्रकाश फैलाने है। अपने प्रकाशसे सब अन्ध दुष्टता करके सब मनुष्योंका कल्याण करता है।

### इन्द्र

१ हे इन्द्र ! मयैः मयूररोमभिः हरिभिः भायादि [ १७१८ ]- हे इन्द्र ! मानस देनेवाले मोरके पक्षके समान रमकले यत्नेसे युक्त घोड़ोंके द्वारा तू पहाँ आ।

२ केचिद् रवा मा निपेमुः धग्नेयं ताव अति इहि [ १७१८ ]- कोई ही तुमसे बोधन न रोके, जैसे मनुष्य वेग-स्तानकी जलोसे पार कर जाता है, उसीप्रकार तू भी उन्हें वीम्वतासे पार करे आ।

३ इन्द्रः शुभ्रपादः, पल्लं गजाः, पुरां वर्मः, दद्या- चित् आयुजः, इयोंः अमिष्टरे रथस्य स्थाता [ १७१९ ]- इन्द्र वृत्रका नायक, सब राक्षसका विनाशक, दानके नगरोंकी सोधनेवाला, यज्ञरथ मनुष्योंकी हरानेवाला और घोड़ोंके रूपमें बँधनेवाला है।

४ कृतं पुण्यसि, सुगोषाः [ १७२० ]- दू यत्नका बोधन करता है और तू पार्थिव उत्तम पालन करनेवाला है।

५ हे मधयन् ! हे इन्द्र ! स्वत् अग्न्यः मर्हिता नास्ति [ १७२३ ]- हे यजमान हृदय ! तेरे दिना शुद्ध देने-वाला हुल्ला और कोई नहीं है।

६ हे यतो ! ते राघांसि अस्मान् वदगचन मा दमन् [ १७२४ ]- तेरे यत्न हमें बन्धी भी नष्ट न करे।

७ ते ऊतयः मा दधन् [ १७२४ ]-तेरे सरक्षणके सायन हमारा नाश न करें ।

८ मः चर्यणिभ्यः विश्वा घसुनि आ उप मिमीहि [ १७२५ ]-हमारी प्रजाओंको तब धन भरपूर उभार दे ।

इन्द्र सुन्धर अयासले घुसत घोड़ोंवाले रथमें बँटकर यशके स्थान पर जाता है । इन्द्र युधका धध करता है, बल राक्षसको मारता है । शत्रुके नगरोंको तीव्रता है । जो सामर्थ्यवान् धान् हैं उन्हें यह हरता है । माघ और घोड़ोंका पालन करता है । इन्द्रके सिवाय दूसरा कोई भी सुख देनेवाला नहीं । इन्द्र लोगोंको अनेक प्रकारके धन देता है और उन्हें बड़ा बनाता है । सबका बहु संरक्षण करता है और सबको निर्भय बनाता है । इस प्रकार यह सब लोगोंका कल्याण करता है ।

### सोम

१ हे अद्रिया सोम ! ते दुष्प्रसासः रक्षः सिन्द्वन्तः उद्वस्युः, याः कृष्यः जुद्धस्य [ १७१४ ]-हे परवरति कूटे जानेवाले सोम ! तेरे सामर्थ्य राक्षसोंका नाश करते ॥ ऊपर प्रकट होते हैं । मूकालस्य करनेवाले जो सन्तु हैं उन्हें हूर कर ।

२ अया ओजसा निजिभिः, अभिभ्युया ह्यत्र रथ-सोने हिते धने स्तौषे [ १७१५ ]-जित अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश करता है, जस बलको निर्भय हृदयसे रथके युद्धमें शत्रुको मध्य करनेके माघ प्राप्त करनेके लिए मैं तेरी स्तुति करता हूँ ।

३ पयमानस्य भस्य प्रसन्ति वृक्षा न आधूपे, याः त्वा वृत्तय्याति, यज [ १७१६ ]-इस छाने जानेवाले सोमके कमंडले वृद्ध राक्षस प्रगति नहीं कर सकते । हे सोम ! जो वृक्ष पर तेजा भेजनेकी इच्छा करता है उसका नाश कर ।

४ सद्कयुते हरिं याजिनं मस्वरं ले हन्तुं मदीयु-इन्द्राय [ १७१७ ]-मानव देनेवाले हरे रथके, यज्ञमदाने-वाले और उत्साह बढ़ानेवाले, धमकनेवाले सोमकी गवोंके पानीमें मिलाओ और यह इस इन्द्रकी ओ ।

५ ते असद्वचत धाराः सहस्रिणं धार्जं वन्द्य प्रयान्ति [ १७१८ ]-तेरी ॥ पत्नी हुईं बहुनेवाली पाषाण हमारी प्रकारके धार हमें देती हैं ।

६ हरिः विभ्या मियाणि काउय नक्षत्राणः, आयुषा तुजानः अभ्यर्पति [ १७१९ ]-हरे रथका सोम सर्वे म्रिय बल कर्मके देता है, स्तुति सुवता है और शत्रुओंको सन्तु पर संजता हुआ धाने जाता है ।

के

७ सुवतः सः आयुषिः मर्त्यजानः ह्यमः राजा इव वंसु सीदति [ १७१८ ]-उत्तम कर्म करनेवाला यह सोम श्रुतिशक्तियों द्वारा शूद्र होता हुआ राजाके समान सीधता है, बादमें यह पानीमें मिलाया जाता है ।

८ हे इन्द्रो ! पुनामः दिव्यः अग्नि उत पृथिव्याः विश्वा घसु नः आमर [ १७१९ ]-हे सोम ! शूद्र होता हुआ तू धृतीक और पृथ्वीको पर रहकर सब मन हमें भरपूर दे ।

सोम परवरति कूटा जाता है, छिद्र उसका रस निकाला जाता है । उस समय उसका प्रकाश बाहर पड़ता है और उससे जलधार बहती है । यह सोम अपने सामर्थ्यसे धीरोंमें अपरिमित उत्साह उत्पन्न करता है । उसके द्वारा सब शत्रुओंको हूर करता है । देव करनेवालोंका नाश करता है ।

सोमरसको पानीमें मिलाते हैं । इसकी वारा अनेक प्रकारसे व्यभ देती हैं । सोमरस अन्नका काम देता है । अभिय और इसे पीते हैं और उपाहित होकर शत्रुमें युद्ध करते हैं और अन्तमें विजयी होते हैं । सोमरसको पानीमें मिलानेके बाद छामते हैं । ऐसा सोमरस किया गया रस पृथ्वीपरके सब ऐश्वर्य देनेमें समर्थ है ।

“सोम स्वर्गं शत्रुपर शस्त्रं वीकता है” ऐसा वर्णन भार-कारिक है । और सोमरस वीकर उपाहित होकर शत्रु पर शस्त्र फेरते हैं और विजय प्राप्त करते हैं । सोमका यह आल-कारिक वर्णन समझना चाहिए, नहीं तो अर्थका अर्थ हीना लग्न है ।

### सुभाषित

१ कविः अग्निः शत्नेन जग्मना ह्यो तन्नं शुम्भानः विधेयं वाधुषे [ १७१९ ]-कानी अग्नि पुराने तत्त्वोंमें अपने परीरको धोना यज्ञता हुआ बाह्यमंडले द्वारा की गई स्तुतिमेंसे बढ़ता है । बालुग अग्निको मदीय करते हैं और तबो बोलकर हवनके द्वारा उसे वदते हैं ।

शानी पुत्र अपने परीरको सुन्धर बनाकर मानने अपनेको मताता है ।

२ ऊर्जः मयातं पाषाणशोचिर्गं अग्नि अस्मिन् स-व्यदे यथे साधुषे [ १७२० ]- बल कम न करनेवाले,

सबरे गाय दुहुनेके समय दिनरात अपने कल्याण करनेके साधनोंके साथ रोगियोंके पास जाते हैं और उनका इलाज करते हैं। इनके रथमें सोन पहिए और सोन बैठनेके स्थान हैं। इनके पास सबके आरोग्य बढ़ानेके साधन हैं।

### अग्नि

१ ऊर्जो-न-पात पावकशोचिषं अग्निं अस्मिन् स्वधरे यन्ने आहुये [ १७१२ ]- बल कम न करनेवाले, प्रकाशमें युक्त अग्निको उत्तम हिसारहित यज्ञमें हथ बुलाते हैं।

२ मिथमह अग्ने । शुकेण शोभेयिषा देवैः यद्विपि आसत्सि [ १७१३ ]- हे मिथोंके द्वारा पूज्य अग्ने । वह तु शुद्ध स्वात्मजसि युक्त होकर देवोंको अपने साथ लेकर आत्मन कर बैठ ।

३ य. वसु. । अस्तं यं घेनघः यमिन्, अस्तं आवायः शर्यन्तः [ १७१७ ]- अग्नि सबको बसानेवाला है, उसके आधनमें गायें रहती हैं और उसके आधनमें घोड़े भी रहते हैं।

४ विश्वघर्षणिः अग्निः प्रीतः स्वाधुयं यार्यं राये याति [ १७३८ ]- सब लोगोंका कल्याण करनेवाला अग्नि प्रसन्न होकर हलचल करनेवाले घन देवोंके लिए यज्ञमें जाता है।

५ अग्निः जनानां समिधा अघोषि [ १७४१ ]- अग्नि मानकोंकी समिधामें प्रति प्रवीण हुआ है।

६ आयतीं उपार्तं प्रति मानयः ययां प्रोजिहामा यताः इष मार्कं यच्छ प्र सधते । [ १७४५ ]- मानेवाले छप बालमें अग्नि, जिताप्रकार वेद अपनी कालियोंको आकाशमें फैलाना है उसीप्रकार अपनी स्वात्मजोंको अकारिलमें फैलाना है। अग्निदे जलते ही उसकी स्वात्मज, बुझती आत्मजोंके समान, अकारिलमें फैलती हैं।

७ अग्निः देवान् यजघाय अघोषि । प्रातः सुमना, ऊर्ध्वं अघ्रात् । समिद्धस्य स्वात् पाद्मः आदृशि । महान् देवः तमराः निरमोयि [ १७४७ ]- अग्नि देवोंकी पूजा करनेके लिए प्रवीण हुआ है। सबरे सबरे उत्तम मनसे ऊपर उठा है। मग्नचित्त हुए हुए अग्निवा तेजस्वी बस बोझने लग गया है। महा महान् देव अवतृको अग्निकारो वृत्त करता है।

८ शुचिः अग्निः शुचिभिः शोभिः संपते [ १७४८ ]- शुद्ध अग्नि शुद्ध चिह्नोंसे अग्निको प्रकाशित करता है।

९ अग्निः उमा अघोषि [ १७५८ ]- अग्नि देवीसे प्रगलित हो गया है।

अग्नि बल कमन करनेवाला है। शरीरमें अग्नि उष्णताके रूपमें रहता है। उसके रहने तक ही शरीरमें बल बढ़ता है। जीवन एक बात है उस जीवन यज्ञका आधार शरीरकी उष्णता है। सब इन्द्रियोंमें देवोंके अंश रहते हैं। उन देवोंके साथ अग्नि बड़ा रहता है, और शरीर चलता है। शरीरमें गर्वी कम हुईंकि देव निकल जाते हैं और शरीर कार्य करनेमें असमर्थ हो जाता है।

यह अग्नि सब शक्तियोंका निवासक है। उसमें गायका हृव और घीका हवन होता है। दूसरे हवनीय पदार्थ भी हवनके लिए लाये जाते हैं। सब मनुष्योंका कल्याण करने वाला अग्नि है।

यह अग्नि समिधामें अलम्य जाता है और बारमें उसमें हृव पदार्थोंका हवन किया जाता है। यज्ञ स्थानमें सबरे सबरे अग्नि प्रवीण किया जाता है। वह प्रवीण होते ही अपनी स्वात्मजों अन्तरिक्षमें फैलाने लगता है।

अग्नि महान् देव है। वह अग्निकार बुर करता है और प्रकाश फैलता है। अपने प्रकाशसे सब जगह शुद्धता करने सब मनुष्योंका कल्याण करता है।

### इन्द्र

१ हे इन्द्र । मन्दैः मयूर रोमभिः हरीभिः भायादि [ १७१८ ]- हे इन्द्र । आलस्य देनेवाले मोरोंके पंखोंके स्थान रगबाले बालेसि युक्त घोड़ोंके द्वारा तु यहाँ आ।

२ केचित् रथा मा नित्येमुः घग्नेय तान् अति इदि [ १७१८ ]- कोई भी तुझे बीचमें न रोके, जेंते अनुप्य रथि-स्तावको अस्वीते पार कर जाता है, उसीप्रकार तू भी उन्हें समीपतासे पार करके आ।

३ इन्द्रः सुमरदाः, घलं रजाः, पुरां वर्मः, इडा चित् आरजः, हयोः अमिकरे रथस्य स्याता [ १७१९ ]- इन्द्र वृषका नासक, बल राक्षसका विनाशक, शत्रुके नगरों-को तोड़नेवाला, धनवृत्त शत्रुओंको हरानेवाला और घोड़ोंके रथमें बंजनेवाला है।

४ यत्तुं पुष्यसि, सुयोपाः [ १७२० ]- तू यज्ञका पोषण करता है और तू गार्वांरा उत्तम पालन करनेवाला है।

५ हे मयवन् । हे इन्द्र । स्वस्व अग्न्यः मंडिता भासि [ १७२३ ]- हे यमवान् इन्द्र । तेरे बिना गुरु देने वाला कुनरा और कोई नहीं है।

६ हे यक्षो । ते राधांसि अस्मान् कदाचन मा दमन् [ १७२४ ]- तेरे वन हर्षे कभी भी गन्ध न करे।

७ ते ऊतयः मा वमन् [ १७२४ ]- तेरे संरक्षणके साथन हमारा नाम न बर्ने ।

८ ना चर्यमिधया विभ्या वसुभि आ उष मिमीदि [ १७२५ ]- हमारी प्रजाओंकी साथ धन भरपूर लाकर दे ।

इन्द्र सुम्बर अयासते मुक्त घोड़ोंवाले रथमें बैठकर यज्ञके स्थान पर आता है । इन्द्र मुखका बंध करता है, बल राक्षसको मारता है । वसुके नगरोंकी तोड़ता है । सो रायधर्मवान् वायु है उन्हें बंध हटाता है । माय और घोड़ोंका पालन करता है । इन्द्रके सिवाय दूसरा कोई भी मुक्त देनेवाला नहीं । इन्द्र लोगोंकी मनेत्र प्रसारने धन देता है और उन्हें यज्ञ बनाता है । सबका वह संरक्षण करता है और सबकी निर्णय बनाता है । इस प्रकार वह सब लोगोंका कल्याण करता है ।

### सोम

१ हे अद्रियः सोम । ते शुष्मासः रथः भिम्बन्तः उदस्यः, याः स्पृशः जुदस्य [ १७२५ ]- हे पथरोंके कुटे जानेवाले सोम । तेरे सामर्थ्य राक्षसोंका नाश करते हुए ऊपर प्रकट होते हैं । मुकाबला करनेवाले ओ वायु हैं उन्हें हार कर ।

२ अया ओजसा निजधिया, अविभ्युषा ददा रथः खगे हिते धने सखि [ १७२५ ]- जिता अपने बलसे तू वायुओंका नाश करता है, उस बलकी निर्भय हृदयसे रथके युद्धमें वायुको मद करनेके बाद प्राप्त करनेके लिए मैं तेरी स्तुति करता हूँ ।

३ पयमानस्य अश्व प्रतामि दूषया न माधूये, वाः स्वा पुतन्याति, रुज [ १७२६ ]- इस छाने जानेवाले सीमके कर्माति दूष्य राक्षस प्रगति नहीं कर सकते । हे तीर्थ । जो ब्रह्म पर सेवा भेजनेकी इच्छा करता है उसका नाश कर ।

४ मद्रक्युतं हरि वाजिनं मरसं ते इन्दुं नदीषु इन्द्राय [ १७२७ ]- वाहन देनेवाले हरे रथके, बल बढ़ानेवाले और उरवाह बरानेवाले, धनकर्मजाली सोमकी नवीके पानीमें गिलायी और वह इस इन्द्रकी दो ।

५ ते असदच्यत धाराः सदसिणं धाजं अच्छ प्रयति [ १७२८ ]- तेरी न यमकी हुई बहनेवाली धारा हमारा प्रकाशके साथ हमें देवी है ।

६ हरिः विभ्या प्रियाणि कान्या चक्षणाः, आयुषा तुजातः अर्यपति [ १७२९ ]- हरे रथका सोम सर्व प्रिय पक्ष कर्मकी देवता हुआ, स्तुति सुनता हुआ और धर्मोंकी वायु पर संकता हुआ सागे आता है ।

✽

७ सुवतः सः आयुभिः मर्तृजानः इमः राजा इव संसु खीदति [ १७३० ]- उत्तम कर्म करनेवाला वह सोम अतिबलके द्वारा युद्ध होता हुआ राजाके समान वीरता है, बावमें वह पानीमें गिलाया जाता है ।

८ हे इन्दो ! धुनातः दिवः अधि उत पृथिव्याः विभ्या वसु नः आभर [ १७३१ ]- हे सोम ! युद्ध होता हुआ तू धूलों और पृथ्वीलोक पर रहकर सब धन हमें भरपूर दे ।

सोम पथरोंके कुटा जाता है, फिर उसका रस गिलाया जाता है । उस समय उसका प्रकाश बाहर पड़ता है और उससे अथकार बुर होता है । यह सोम अपने सामर्थ्यसे वीरोंमें अथरिक्त उत्साह उत्पन्न करता है । उसके द्वारा सब वायुओंकी बुर करता है । ऐसे करनेवालोंका नाश करता है ।

सोमरसको पानीमें मिलाते हैं । इसकी धारा अनेक प्रकारसे बज देती है । सोमरस अथका काम देता है । समिप वीर इसे पीते हैं और उत्साहित होकर वायुसे युद्ध करते हैं और अन्तमें विजयी होते हैं । सोमरसकी पानीमें मिलानेके बाद छागते हैं । ऐसा तैय्यार किया गया रस पुष्पीररके साथ दूधमय देनेमें समर्थ है ।

“ सोम स्वयं वायुपर शस्त्र फैलता है ” ऐसा वर्णन आस-कारिक है । और सोमरस पीकर उत्साहित होकर वायु पर शस्त्र फैलते हैं और विजय प्राप्त करते हैं । सोमका यह आस-कारिक वर्णन समस्तका वाक्षिप, वहीं तो अर्थका अनर्थ होता सम्भव है ।

### सुभाषित

१ कविः अक्षिः अन्तेज जन्मना स्यां तन्पुं शुष्मानः विप्रेण वाधूये [ १७३२ ]- ज्ञानी अग्नि पुराणे स्तोत्रोंके अपने शरीरकी शोभा बढ़ाता हुआ ब्राह्मणोंके द्वारा की गई स्तुतिपाँति बढता है । ब्राह्मण अग्निकी प्रशंसा करते हैं और स्त्रीज बोलकर हवनके द्वारा उसे बढ़ाते हैं ।

ज्ञानी पुरुष अपने शरीरको सुम्बर वनकर ज्ञानसे अपनेकी बढाता है ।

२ ऊर्जं नपत्तं पाथकश्चोच्चिं अग्निं अग्निम् स्व-धरे यजे आहूये [ १७३३ ]- बल कम न करनेवाले,



२५ हे अग्निना । नः ऊर्जनं आब्रहते [ १७३६ ]- हे मन्त्रिवेदे । हमें बल बढ़ानेवाले अब हो ।

२६ ते आग्निं मन्येयः यस्तु, अक्षते यं घेनवः यग्निः, अस्ते यं आशवः अर्यस्तः [ १७३७ ]- उस जिनकी में स्तुति करता हूँ, जिसके आश्वयमें गावें जाती हैं, जिसने मायमयें घोड़े आने हैं ।

२७ अग्निः हि विश्वे याजिनं वृधाति [ १७३८ ]- अग्नि विश्वपते मनुष्योंको पुत्र देता है ।

२८ विश्वचरणिः अग्निः प्रीतः स्वासुयं वार्यं राये याति [ १७३९ ]- सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला अग्नि सन्तुष्ट होनेपर स्वयं ही सज्जन करनेवाले धन देनेके लिए जाता है ।

२९ सः अग्निः लघुः [ १७४० ]- वह अग्नि सबको ब्रह्मानेवाला है ।

३० हे उपः । विदिरमती नः मदे राये योचय [ १७४० ]- हे उदः । तू प्रकटा युक्त होकर हमें बहुत धन मिले ब्रह्मलिए हमें जाग्रत कर ।

३१ सु-जाते । अश्वस्तुते । यथा चित् नो अयो-धयः [ १७४० ]- हे वरुण कुलीन और आज सत्य बोलनेवाली वधे । जिसप्रकार पहले भी तूने जगाया वंसा ही अब जगा ।

३२ हे विश्वः उद्दिष्टः सा अमरद्वयु । नः अद्य इमुच्छ [ १७४२ ]- हे दृष्टीकी पुत्री और भरपूर धन देनेवाली वधे । हमारे लिए आज प्रकाशित हो ।

३३ एवं विश्वा खना तिरः [ १७४४ ]- ये सब बिरोधिपीका पराजय करता हैं ।

३४ अग्निः जनानां समिधा अयोधि [ १७४५ ]- अग्नि लोगोंकी समिधाजोते प्रदीप्त हुआ है ।

३५ मायतीं उपासं प्रति मानय नाम्नां अष्टछ प्रसकृते [ १७४६ ]- मानेवाली उय कालकी जिल्ले में अन्तःरिक्षमें उत्तम रीतिसे दन्ती है ।

३६ होता अग्निः प्रातः सुमना ऊर्ध्वः अस्थात् [ १७४७ ]- हवन जिसमें होते हैं ऐसा अग्नि प्रातः काल उत्तम मनसे उग्र उठने लगता है, अन्तरे लगता है ।

३७ समिदस्य दशध पाजः अवर्णि, महस्य देव-तमसा निरमोचि [ १७४७ ]- प्रदीप्ता हुए हुए अग्निना बल घोलने लगा है, उस महान् देवने जपतुर्ही अन्धकारसे छुड़ा दिया है ।

३८ यत् राणस्य रक्षानां अजीगः, शुचिः अग्निः, शुचिभिः गोभिः बन्धते [ १७४८ ]- जब समुदायमें निज डालनेवाला अन्धेरा दूर हो गया, सब तेजस्वी शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणोंसे जपतुर्ही प्रकाशित करने लगा ।

३९ ज्योतिषां इदं श्रेष्ठं ज्योतिः आगात्, चित्रः प्रकोतः विश्वा अजनिष्ट [ १७४९ ]- तेजस्वी पदार्थोंमें यह उग्र सर्वाधिक तेजस्वी है, उलका प्रकाश चारों ओर फैला है ।

४० अस्माकं पृतनास्तु ब्रह्म जिय्वते [ १७५० ]- हममें सान बड़ा ।

४१ वधं दूरसातो घना भजेमहि [ १७५१ ]- हम युद्धमें धन प्राप्त करें ।

४२ आयुषा तुञ्जानः अश्वपयंति [ १७५२ ]- वह वीर शस्त्र सश्वर कैला हुआ आगे जाता है ।

४३ पुनानः विश्वावस्तु नः आभर [ १७५३ ]- पवित्र होकर सब धन हमें भरपूर दे ।

## उपमा

१ याजिनः न [ १७५८ ]- लाल फंतानेवाले सिकारी जोते पक्षियोंको पकड़ते हैं, उत्सप्रकार इन्द्रको कोई पकड़ नहीं सकता ।

२ सुगोपा माः इव [ १७५९ ]- उत्तम गोपाल गायोंका जिसप्रकार पालन करता है, उत्तीप्रकार इन्द्र ( कर्तुं पुष्यसि ) यतका बोधन करता है ।

३ यथा घेनवः ययसं प्र [ १७६० ]- जिसप्रकार गावें घास खाती हैं, उत्तीप्रकार इन्द्र शीघ्रतः प्राप्त करता है ।

४ कुन्त्या हर्दं इव [ १७६० ]- जैसे नदियों सालाव व सचुद्धमें जाकर मिलती हैं, वैसे ही शीघ्रतः इन्द्रको मिलते हैं ।

५ गौर दृष्ट्यत् यथा भगारुते हरिणे [ १७६१ ]- जैसे घ्राता मृग पानीसे भरे घालाबरे पास जाता है, वैसे ही ( त्वं ) आगादि यज्ञेषु सत्वा सु पित्र । हे इन्द्र । तू जल्दी आ और कबके यतमें बैठकर सबके साथ सोय हो ।

६ अग्ना इव चित्रा [ १७६२ ]- पीछेके ममल गुम्बर ( अरुणी उपा ) तेजस्वी उपा है ।

७ येजुं इव [ १७६६ ]- गावें जैसे तबड़े बाधनी हैं, वैसे ही ( अग्निः ) जनानां समिधा अयोधि अग्नि लोगोंकी समिधाजोते तबड़े प्रदीप्त किया गया है ।

८ नाकं यद्वाः धर्मां प्रोजिहन्नाः इव [ १७४९ ]-  
अन्तरिक्षमे वंते वृक्षो धास्यमे फलनी हं, उसीप्रकार  
( अग्निः भानवः ) अग्नि अपनी ज्वालाओंको आकाशमें  
फंसाता है ।

९ अपसः न [ १७५७ ]- युद्ध करनेवाले घोर जित-  
प्रकार शस्त्रोंसे रणभूमिको सुतोभित करते हैं, उसीप्रकार  
( विष्टिभिः मारीः मा अर्यन्ति ) किरणोंसे उपासकी  
त्रिणां आकाशको सुन्दर बनाती है ।

१० दिवः वृष्टयः न [ १७६१ ]- जितप्रकार धूलोको  
घुंटीहोती है, ( धाराः चाजं प्रयन्ति ) उसीप्रकार होमरसकी  
धारायें अन्न देती हैं ।

११ राजा इव [ १७६३ ]- राजाके समान ( मर्म-  
जानः ) घुड़ होनेवाला सोम दीक्षता है ।

१२ द्येयः न [ १७६३ ]- द्येय वशीके समान ( वंस्तु  
सिद्धिः ) सोम पानीमें बँडता है, दृढको मारता है । पानीमें  
मिलाया जाता है ।



## एकोनविंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मंत्रसंख्या	ऋग्वेदस्थानं	ऋषिः	देवता	छन्दः
( १ )				
१७११	८।७७।१२	विष्णु आश्विनः	अग्निः	वायवी
१७१०	८।७७।१३	विष्णु आश्विनः	"	"
१७१३	८।७७।१४	विष्णु आश्विनः	"	"
१७१४	९।५३।१	अवतारः काश्यपः	वधमानः सोमः	"
१७१५	९।५३।२	अवतारः काश्यपः	"	"
१७१६	९।५३।३	अवतारः काश्यपः	"	"
१७१७	९।५३।४	अवतारः काश्यपः	"	"
१७१८	१।४५।१	विश्वामित्रो यागिनः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१७१९	१।४५।२	विश्वामित्रो यागिनः	"	"
१७२०	१।४५।३	विश्वामित्रो यागिनः	"	"
१७२१	८।७३	देवातिथिः काण्वः	"	ब्रह्मपादः ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती )
१७२३	८।७।३	देवातिथिः काण्वः	"	"
१७२४	१।८७।१९	गीतमी राष्ट्रमणः	"	"
१७२५	१।८७।२०	गीतमी राष्ट्रमणः	"	"
[ २ ]				
१७२५	७।५२।१	वामदेवो गीतमः	उषाः	वायवी
१७२६	७।५२।२	वामदेवो गीतमः	"	"
१७२७	७।५२।३	वामदेवो गीतमः	"	"
१७२८	१।४६।१	प्रसवन्धः काण्वः	अश्विनो	"
१७२९	१।४६।२	प्रसवन्धः काण्वः	"	"
१७३०	१।४६।३	प्रसवन्धः काण्वः	"	"

मंत्रसंख्या	आवेदस्थानं	ऋषिः	वेद्यता	छन्दाः
१७३१	१।९२।१३	गोतमो राहूगणः	उषाः	उष्णिहः
१७३२	१।९२।१४	गोतमो राहूगणः	"	"
१७३३	१।९२।१५	गोतमो राहूगणः	"	"
१७३४	१।९२।१६	गोतमो राहूगणः	अग्निबन्धो	"
१७३५	१।९२।१८	गोतमो राहूगणः	"	"
१७३६	१।९२।१७	गोतमो राहूगणः	"	"

( ३ )

१७३७	५।६।१	वसुभृत आश्वेयः	अग्निः	यज्ञितः
१७३८	५।६।३	वसुभृत आश्वेयः	"	"
१७३९	५।६।५	वसुभृत आश्वेयः	"	"
१७४०	५।७९।१	सत्यभवा आश्वेयः	उषाः	"
१७४१	५।७९।२	सत्यभवा आश्वेयः	"	"
१७४२	५।७९।३	सत्यभवा आश्वेयः	"	"
१७४३	५।७९।४	अवस्पुरात्रेयः	अग्निबन्धो	"
१७४४	५।७९।५	अवस्पुरात्रेयः	"	"
१७४५	५।७९।६	अवस्पुरात्रेयः	"	"

( ४ )

१७४६	५।१।१	बृषगविष्टिरावात्रेयो	अग्निः	त्रिष्टुप्
१७४७	५।१।२	बृषगविष्टिरावात्रेयो	"	"
१७४८	५।१।३	बृषगविष्टिरावात्रेयो	"	"
१७४९	१।११३।१	क्रुस्त आगिरसः	उषाः	"
१७५०	१।११३।२	क्रुस्त आगिरसः	"	"
१७५१	१।११३।३	क्रुस्त आगिरसः	"	"
१७५२	५।७९।१	अग्निर्मथः	अग्निबन्धो	"
१७५३	५।७९।२	अग्निर्मथः	"	"
१७५४	५।७९।३	अग्निर्मथः	"	"

[ ५ ]

१७५५	१।९२।१	गोतमो राहूगणः	उषाः	सगनी
१७५६	१।९२।२	गोतमो राहूगणः	"	"
१७५७	१।९२।३	गोतमो राहूगणः	"	"
१७५८	१।१५७।१	दोष्यतमा औषध्यः	अग्निबन्धो	"
१७५९	१।१५७।२	दोष्यतमा औषध्यः	"	"
१७६०	१।१५७।३	दोष्यतमा औषध्यः	"	"
१७६१	९।५७।१	अवत्सातः कादयः	श्रवणाः सोमः	गायत्री
१७६२	९।५७।२	अवत्सातः कादयः	"	"
१७६३	९।५७।३	अवत्सातः कादयः	"	"
१७६४	९।५७।४	अवत्सातः कादयः	"	"



## अथ विंशोऽध्यायः ।

अथ नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९-१ ॥

[ १ ]

( १-१८ ) १ नृमेष आगिरसः; २ --३ प्रियमेष आगिरसः; ४ दीर्घतम आगिरसः; ५ वासदेवो गीतमः; ६ प्रसकणः काण्वः; ७ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ८ बिभुः पूतवसो वा आगिरसः; ९, १७ अथदग्निर्भाग्यः; १० मुक्त आगिरसः; ११-१३ यमिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ सुवासः वैनवमः; १५ वेपातिभिः वनवः; १६ जीवातिभिः काण्वः; १८ पण्डेवो वैशोवातिः ॥ १, १७ वमवानः सोमः; २, ७, १०-१९ इन्द्रः; ४-६, १८ अग्निः; ७ मरुतः; ९ सूर्यः।  
२.....१ १, ८, १०, १५-१७ गावयी; ( १७ नित्यववा ) २.....; ३ अनुष्टम्बुजः प्रगाथाः=  
( १ अनुष्टुप्+गावयी ) ४, ११, १३ विराट्; ५ यवपतिः; ६, ९, १२ प्रगाथाः= ( विषसा बृहती, तमा लोबृहती ); ७ त्रिष्टुप्; १४ तवकरी; १८ अत्यतिः ॥

१७५५ प्रास्य चारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्योजसः । देवा अनु प्रभूयतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१९।१ )

१७५६ सति मृजन्ति वैषसो मृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जिज्ञानमुक्थयस् ॥ २ ॥

( ऋ. ९।२९।२ )

१७५७ सुवहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूयसो । वषा समुद्रमुक्थय ॥ ३ ॥ १ ( पि ) ॥

[ भा० १९। उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।२९।३ )

१७५८ एष ब्रह्मा य अन्विष इन्द्रो नाम भुवो मृणे ॥ १ ॥

१७५९ स्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरा न सयसः ॥ २ ॥

१७६० वि सुतया यथा वषा इन्द्र त्वयन्तु रातयः ॥ ३ ॥ २ ( प ) ॥

[ भा० ९। उ० १। स्व० १ ]

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १७५५ ] ( देवान् अनु प्रभूयतः ) देवों वर अपना अनुकूल प्रभाव बालनेकी इच्छा करनेवाले, ( मृणः ) बल बजानेवाले ( अथ सुतस्य चाराः ) इस सोमरसकी चारामें ( ओजसः ॥ अक्षरन् ) वेगसे बर्तनमें गिरने लग गयी हैं ॥१॥

[ १७५६ ] ( येषसः कारयः ) जानी अथर्व ( गिरा मृणन्तः ) अपनी बालीते स्तुति करते हुए ( ज्योतिः ) ज्ञानार्थं तेन प्रकट करनेवाले ( उक्थय सति ) सूर्य और चोदेके समान वेपयन् सोमको ( मृजन्ति ) मूढ़ करते हैं ॥२॥

[ १७५७ ] ( प्रभूयसो उपपद्य सोम ) हे बहुत धनवान् और प्रशान्तीय सोम । ( पुनानाय ते ) छाने जानेवाले तेरे ( तानि सुवहा ) वे तेज तेरी उत्तम रक्षा करते हैं ( समुद्रे वषा ) समुद्रके समान उस वर्तनको मर दे ॥ ३ ॥

[ १७५८ ] ( यः इन्द्रः नाम भुवः ) ओ इन्द्रके नामसे प्रसिद्ध है, ( एषः अन्विषः ब्रह्मा ) यह ऋतुके अनुसार बजनेवाला ब्रह्मा - जानी - है, इतनी ( मृणे ) में स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७५९ ] ( हे वायसः पते ) हे बलवान् इन्द्र । ( सयसः न ) जिसप्रकार लोग धर्मकी धुपको प्राप्त होते हैं, उसके बात आते हैं, उत्तीप्रचार ( गिरा ) सूर्यमार्ग ( स्वां इव यन्ति ) तुम ही प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

[ १७६० ] ( हे इन्द्र ) ब्रह्म । ( यथा पया मृणय ) जिसप्रकार बड़े रास्तेके अनेक छोटे-छोटे रास्ते निबलने हैं, उसीप्रकार ( इत्यु रातयः पि यन्तु ) तुमके अनेक प्रचारके धाम उपासकीनी और आते हैं ॥ ३ ॥

१७७१ आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि । त्विकूर्मिमुतीषहमिन्द्रं श्विष्ठं सरपतिम् ॥ १ ॥  
( ऋ ८।६।८।१ )

१७७२ त्विशुष्म त्विकृत्वा श्वीवो विशया मवे । आ पमाथ महित्वना ॥ २ ॥ ( ऋ ८।६।८।२ )

१७७३ यस्य ते महिना महः परं जमायन्तमौयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥ ३ ( व ) ॥  
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ ८।६।८।३ )

१७७४ आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदस्यः कविर्नमन्योश् नार्वा । श्रो न कुरुकां छतात्मा ॥ १ ॥  
( ऋ १।१४९।१ )

१७७५ अग्निं द्विजन्मा श्री रोचनानि विशा रजांसि शुश्रुचानां अस्यात् ।

होता यजिष्ठो अपां स चरस्य ॥ २ ॥ ( ऋ १।१४९।४ )

१७७६ अयं स होता यो द्विजन्मा विशा दधे वापांनि अस्वपा ।

मठां पां असौ सुतुको ददाद्य ॥ ३ ॥ ४ ( छ ) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ १।१४९।५ )

[ १७७१ ] हे इन्द्र ! हम ( उत्तये सुम्नाय ) स्वतराज और मुखली प्राणिके लिये ( त्विकूर्मिं ) अनेक कर्म करनेवाले और ( मुती-पहं ) हिसक वाग्म्यकी वृद्ध करनेवाले ( श्विष्ठं सरपतिं ) बलवान् और सज्जनोंके पासव करनेवाले ( १७७२ ) तुम इन्द्रकी ( रथं यथा ) जिसप्रकार लोग रथकी उपासना करते हैं, उसीप्रकार ( आपर्तयामसि ) प्रदक्षिणा करते हैं, तेरी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ १७७२ ] ( त्वि-शुष्म त्वि-कृत्वा ) महान् बलवान् और बहुत कर्म करनेवाले ( श्वीवोः मवे ) शक्तिमान् और सज्जनों इन्द्र ! तू ( विशया महित्वना ) सब प्रकारके महाबले युक्त होकर ( आ पमाथ ) व्यापक होता है ॥ २ ॥

[ १७७३ ] ( यस्य महः ते हस्ता ) जिस महान् पुत्रवले - तेरे हाथ ( जमायन्तं हिरण्ययं यजं ) धूमकी वर सब जगह संचार करनेवाले सोमके वज्रकी ( महिना परि ह्येतुः ) क्षतिपूर्वक पारण करते हैं ॥ ३ ॥

[ १७७४ ] ( यः ) जो अग्नि ( नार्मिणीं पुरं ) घनमानोंके ड्राय बनाये गए वेदोंकी स्थापकी ( अदीदेत् ) प्रदीप्त करता है । ( यः अपां नमन्यः न ) जो शक्तिमान् घोड़े और वायुके समान ( अस्यः कविः ) गति करनेवाला और कुरुकां है । वह ( श्रो न कुरुकां छतात्मा ) अनेक कर्मोंमें रहनेवाला अग्नि धूमके समान ( कुरुकां ) तेजस्वी है ॥ १ ॥

[ १७७५ ] ( द्वि-जन्मा ) जो अग्निवर्ति उत्पन्न हुआ हुआ, ( रो-चनानि ) ग्राह्यत्व साधि लोग स्थापकी और ( विशा रजांसि शुश्रुचानां ) सब ओकोंकी प्रकाशित करते हुए ( होता यजिष्ठः ) वेदोंकी ब्रह्मर मानेवाला, पूज्य यह अग्नि ( अपां स चरस्य ) जलके स्थानमें बलतात्मावर्ण ( अस्थायि ) रहता है ॥ २ ॥

[ १७७६ ] ( यः द्विजन्मा ) जो जो अग्निवर्ति उत्पन्न हुआ हुआ ( यः होता ) वेदोंकी ब्रह्मर मानेवाला ( अर्थ ) यह अग्नि ( विशा वापांनि ) सब स्वीकार करने योग्य बनकी और ( अस्वपा दधे ) मारकी बर्बरों परण करता है । ( अर्थ ) यः मनेः ददाद्य ) हम जो प्रवृत्त हवि देता है, वह ( सु-तुको ) उत्तम पुत्रवर्ति युक्त होता है ॥ ३ ॥

४६ [ ताम हिमो वा. १ ]

१७७७ अग्ने तमघाथं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । आध्यामा त ओहिः ॥ १ ॥

( ऋ. ४।१०।१ )

१७७८ अधा धग्ने क्रतोर्मद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीक्रतस्य बृहतो बभूव ॥२॥ ( ऋ. ४।१०।२ )

१७७९ एभिर्नो अर्कैर्नवा नो अर्वाङ्गस्वर्णं ज्योतिः ।

अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः

॥ ३ ॥ ५ ( वि ) ॥

[ धा० ७ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ४।१०।३ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१७८० अग्ने विवस्वदुपसमिन्नं राधो अमर्त्य ।

आ दागुपे मातवेदो यहा त्वमघा देवा उपबुधः

॥ १ ॥ ( ऋ. १।४४।१ )

१७८१ जुष्टो हि दूतो असि हव्यपाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

सजूरमिन्मामुपसा सुवीर्यमस्मे वेदि भवो बृहत्

॥ २ ॥ ६ ( ला ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । इ० २ । ( ऋ. १।४४।२ )

[ १७७७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने । ( अघ ) आज ( ओहिः ते स्तोमैः ) इन्द्रादि देवैर्न पात पशुघनेनास्ते तेरे स्तोत्राणि ( अर्धं न ) घोडेके समान हविर्को छीक स्थापनपर पशुघनेनास्ते ( क्रतुं न भद्रं ) यत्नेके समान कत्यागकारक ( हृदिस्पृशं तौ आध्यामा ) हृदयको मिय ऐसे उस लुप्त अभिनको हम बहाते हैं ॥ १ ॥

[ १७७८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने । ( अधा हि ) अभी ( भद्रस्य दक्षस्य ) कत्यागकारक और ब्रह्म बहानेनास्ते ( साधोः मातस्य ) इष्ट फलको सिद्ध करनेवाले और सत्यस्वरूप ऐसे ( बृहतोः क्रतोः ) गहन पशुका ( रथीः यमूय ) क्षात्रक होता है ॥ २ ॥

[ १७७९ ] हे ( अग्ने ) अग्ने । ( ज्योतिः स्वः न ) ज्योतिस्त्व सुवीर्य समान ( विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः ) सब तीनोंति मुक्त और उत्तम मन पारण करनेवाला ( अर्कैः अर्कैः ) हमारे इन पुरुष देवोंके साथ ( नः भवार्कं भव ) हमारे पास आ ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १७८० ] हे ( अमर्त्य जातवेदः अग्ने ) अमर सर्वत्र अग्ने । ( त्वं ) तू ( उपसः ) उपा बैठताले ( दागुपे ) बाताको बैठनेके लिए ( विवस्वदुपसमिन्नं राधो ) उत्तम घर जिसके पास है ऐसे अनेके प्रकारके धन ( आयुः ) तेकर आ और ( अघ उपबुधः देवान् ) आज उप फलमें उठनेवाले देवोंको भी यत्नेके तेकर आ ॥ १ ॥

[ १७८१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने । तू ( जुष्टः ) सेवा करने योग्य ( हव्यपाहनः दूतः ) देवोंको हवि पशुघानेवाला दूत और ( रथीः अमि ) यत्नेमें देवोंको क्षानेवाले रथके समान है । ( अविद्यम्या उपसा राज्ञः ) अविद्वानों और उपाको पापमें तेकर ( अस्मे सुवीर्यं बृहत् धवः वेदि ) हमें उत्तम वीर्यति मुक्त बहुत यत्न है ॥ २ ॥

१७८२ विधु दद्राणः समने बहूनां युवानः सन्तं पलितो जगार ।

देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ १ ॥ ( ऋ. १०१५१५ )

१७८३ क्षाममना शको अहणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।

यधिकेत सत्यमित्तन्न मोघं नसु स्पाह्युत जेतोव दाता ॥ २ ॥ ( ऋ. १०१५१६ )

१७८४ ऐमिर्देदं वृष्ण्या पीरुस्थानि यमिरोषद्वृहत्याय वजी ।

ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह झते कर्ममुदजापन्त देवाः ॥ ३ ॥ ७ ( ये ) ॥

[ धा० ३१ । उ० ४ । स्व० ७ । ( ऋ. १०१५१७ )

१७८५ अस्ति सोमो अयः सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उड स्वराज्ञो अश्विना ॥ १ ॥

( ऋ. ८१९४४ )

१७८६ पिबन्ति मित्रो अयमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिपद्यस्य जायतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८१९४५ )

१७८७ उतो नमस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतव्य मत्सवि ॥ ३ ॥ ८ ( ली ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८१९४६ )

[ १७८२ ] ( विधुं समने बहूनां दद्राणः ) अनेक कार्य करनेवाले और युवक बहुतसे शत्रुओंकी मारनेवाले ( युवानं सन्तं पलितः जगार ) तपनकी भी दृढावस्था निकल जाती है । ( देवस्य महित्वा काव्यं पश्य ) देवकी बहुतबोली परिपूर्ण इस काव्यको देख ( ममार स ह्यः समान ) भी ध्यान भरता है ( सः ह्यः समान ) वह ही कल मकड़ होता है ॥ १ ॥

[ १७८३ ] ( क्षाममना शकः ) अधिकते सामर्थ्यवान् ( अहणः सुपर्णः शूरः ) अरण्य रंगका कोई वही जाता है, ( सः महः शूरः ) जो महा शूरवीर है पर ( सनादु अ-नीडः ) अवसकालते पीतला-घर-रहित है, ऐसा वह इन्द्र ( यत् अधिकेत ) जो कर्तव्यके कर्ममें निश्चित करता है ( तत् सत्यं इत् ) उसे सत्य करके दिखाता है । ( मोघं न ) वह कभी भी भ्रमं काम नहीं करता । ( उत स्पाह्युत जेतोव दाता ) वह युवक वाहने योग्य धनकी भीतकर लानेवाला ( उत दाता ) और स्तुति करनेवालेकी वष वेंनेवाला है ॥ २ ॥

[ १७८४ ] वह इन्द्र ( यमिः वृष्ण्या पीरुस्थानि धादे ) इन अवतोंके साथ रहकर अल युवत युववार्यके कार्य करता है । ( येमिः वृष्टदस्याय वजी ओषत् ) जिसके साथ रहकर शत्रुकी मारनेके लिए वज्रधारी इन्द्र युष्टि करता है । ( ये देवाः ) जो मरुत् देव ( मद्रः क्रियमाणस्य कर्मणः ) महान् किन्हे जानेवाले कर्मको ( झते कर्म मुदजापन्त ) साथ कर्म करके दिखाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७८५ ] ( अयं सोमः सुतः अस्ति ) यह सोमरस निबोड कर संभार किया गया है, ( अस्य स्वराज्ञः मरुतः ) इसके स्वयंके तेजसे तेजस्वी हुए मरुत् ( उत अश्विना ) और अश्विनी इसे ( पिबन्ति ) पीते हैं ॥ १ ॥

[ १७८६ ] ( मित्रः ) मित्र ( अयमा घटण्या ) अयमा और वरुण देव ( तना पूतस्य ) घटनीते पुत्र हुए हुए ( त्रिपद्यस्य जायतः पिबन्ति ) तीन कर्तव्यमें रले हुए स्तुत्य सोमकी पीते हैं ॥ २ ॥

[ १७८७ ] ( उत उ इन्द्रः ) और इन्द्र ( सुतस्य गोमतः अस्य जोषः ) रस निकाले पद तथा पायके मूष मिलाने पाद रस सोमकी पीनेकी ( अस्तः उ मत्सवि ) प्रातः काल इच्छा करता है, ( होता इय ) वित्तप्रसार होता स्तुति करनेकी इच्छा करता है, ज्योतिष्कार इन्द्र सोम पीनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

१७८८ वयमहा॑ असि॒ ध्रुव॑ नडादित्य॒ महा॑ असि ।

महस्ते॑ सतो॒ महिमा॑ पनिष्टम॒ महा॑ देव॒ महा॑ असि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।१।१ )

१७८९ वट॒ ध्रुव॑ श्रवसा॒ महा॑ असि सत्रा॒ देव॒ महा॑ असि ।

महा॑ देवानामध्र्यः॒ पुरोहितो॑ विभ्रु॒ ज्योतिरदाम्यम् ॥ २ ॥ ९ ( त ) ॥

[ धा० १५ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१०।१।२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१७९० उप॑ नो हरिभिः॒ सुव॑ यादि॒ मदानां॑ पते । उप॑ नो हरिभिः॒ सुवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९३।११ )

१७९१ द्विता॑ यो वृत्रहन्तमो॒ विद॑ इन्द्रः॒ शत्रुकृत् । उप॑ नो हरिभिः॒ सुवम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९३।१२ )

१७९२ स्व॑ हि वृत्रहृषेपां॑ पाता॒ सोमानामसि॑ । उप॑ नो हरिभिः॒ सुवम् ॥ ३ ॥ १० ( री ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९३।१३ )

१७९३ प्र॑ वो महे॒ महवृषे॑ भरष्वे॒ प्रचेतसे॑ प्र॒ सुमतिं॑ कृणुध्वम् ।

विश्वः॑ पूर्वोः॒ प्र चर॑ चर्षणिश्राः

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।११।१० )

[ १७८८ ] हे ( सूर्य ) ध्रुव ! ( महान् असि वट ) तू निम्नचरते महान् है, ( अतदित्य ) महान् असि वट हे आदित्य । तू महान् है यह सत्य है । हे ( पनिष्टम ) स्तुतिके घोष्य ! ( ते महाः सतोः महिमा ) तुम जैसे महानकी महिमाकी स्तुति की जाती है । ( पनिष्टम ! मद्रा महान् असि ) हे प्रगतनीय । तू अपने महत्वके कारण मद्रा है ॥ १ ॥

[ १७८९ ] हे ( सूर्य ) ध्रुव ! तू ( श्रवसा महान् असि वट ) तू अपने यज्ञके कारण महान् है । हे ( देव ) ध्रुव देव । तू ( देवानां मद्रा महान् असि सत्रा ) देवीके बीचमें महत्वके कारण मद्रा है, यह सत्य है । तू ( असुर्यः पुरोहितः ) असुरीय नाश करनेवाला है, इसलिए देवीने तुझे आगे स्थापित किया है । ( उपोनिः विभ्रुः अद्राम्य ) तेरे तेज व्यापक और किसीसे बचनेवाले हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १७९० ] हे ( अदानां पते ) लोगके स्वामी इन्द्र ! ( हरिभिः नः सुतं उप यादि ) घोड़ेके द्वारा हमारे सोमपानके यज्ञमें आ । ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोड़ेके हमारे सोमपानके आ ॥ १ ॥

[ १७९१ ] ( वृत्रहन्तमः शत्रुकृत् ) या इन्द्रः ) अनुश्रोते मारनेवाला और शत्रुओं के मारनेवाला जो इन्द्र है वह ( द्वितां विदे ) दो प्रकारके कर्म करनेवाला है, यह सबको मालूम है । ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोड़ेके द्वारा सोमपानके पास आ ॥ २ ॥

शत्रुको मारना और आर्षेय खण्ड करना ये दोनों काम वह करता है ।

[ १७९२ ] हे ( वृत्रहन् ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( हि न्ये ध्रुवां सोमानां यता असि ) तू इन सोमपानों को लेनामा है । इसलिए ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोड़े और वट हमारे सोमपानके पास आ ॥ ३ ॥

[ १७९३ ] हे मनुष्यो ! ( या महवृषे ) तुम अपने कर्णों के बजनेके लिए ( महे प्र भरष्वे ) महान् इन्द्रको सोम भरण करो । ( प्र चेतसे सुमतिं प्र कृणुध्वं ) जानो इन्द्रकी स्तुति करो । हे इन्द्र ! ( चर्षणि-म्राः ) प्रमात्रिका लोग करनेवाला तू ( पूर्वाः विद्यां प्र चर ) हविने तुझे पूर्व करनेवाली प्रमात्रिका के पास आ ॥ १ ॥



१७९४ उरुपचसे महिने सुवृक्मिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।

तस्य प्रतानि न मिनन्ति घौराः

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३।१।१ )

१७९५ इन्द्रं वाणीरनुचयन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहृष्य ।

हर्षमाय बर्हिषा सभापीन्

॥ ३ ॥ ११ ( हि ) ॥

[ धा० २६। उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ७।३।१।२ )

१७९६ यदिन्द्र यावत्स्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिदधिषे रदावसो न पापत्वाय रक्षिष्य

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२।१।८ )

१७९७ शिक्षेपमिन्महयते दिवेदिये राय आ कुहचिद्विदे ।

न हि स्वदन्यन्मघयन्न आप्य वस्यो अस्ति पिवा च न

॥ २ ॥ १२ ( ता )

[ धा० १४। उ० १। ए० २ ] ( ऋ. ७।३।१।९ )

१७९८ भूषी हवं विपिपानस्याद्रेषांषा विप्रस्यार्चसो मनीषाम् ।

कृष्या दुवा रस्यन्तमा सचेमा

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२।४ )

[ १७९४ ] हे ( विप्राः ) ब्राह्मणो ! ( उरुपचसे महिने इन्द्राय ) विशेष व्यापक ऐसे महान् इन्द्रको ( सुवृक्मिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त ) उत्तम स्तुति और अप्र गुप्त अर्पण करते हो, ( तस्य प्रतानि ) उस इन्द्रके प्रतीको ( घौराः न मिनन्ति ) घृष्टिमान् लीप नहीं तोड़ते ॥ १ ॥

[ १७९५ ] ( सत्रा राजानं ) तपके इष्य ( अनुचयन्यु इन्द्रं एव ) जितके श्रेयके सागे कोई टिप् नहीं लकता ऐसे इन्द्रको ही ( वाणीः सहृष्ये दधिरे ) स्तुतिमा श्रुतके पराभव करनेके लिए भागे स्थापित भरती है । इसलिये हे स्तुति करनेवाली ! ( हर्षमाय आपिन्, स वर्येय ) इन्द्रको स्तुति करनेके लिए अपने मित्रोंको उत्तेजित करो ॥ ३ ॥

[ १७९६ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( यावत् यावत् ) जितने धनका तु स्वाधी है, ( एतावत् अहं ईशीय ) उतने ही धनका मैं भी स्वाधी होऊँ । हे ( रदावसो ) धन देनेवाले इन्द्र ! मैं ( स्तोतारं इत् रक्षिष्ये ) अपने स्तोताको धन देकर उसका दीपण मैं कर सकूँ इतना ही धन मैं दूँगा । ( पापत्वाय न रक्षिष्ये ) पापी होनेके लिए उसे ज्यादा धन नहीं दूँगा । मैं निर्धन हो फाड़ दूँगा धन नहीं दूँगा ॥ १ ॥

[ १७९७ ] ( कुहचिद्विदे महयते ) कहीं भी रहकर स्तुति करनेवालेको ( दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत् ) प्रतिदिन धन देता हूँ । इन्द्रको यह बात सुनकर ज्यादाक कहता है ( अमघवन् स्वत् अन्यत् आप्ये नहि ) हे इन्द्र ! तेरे सिपाय और कोई मेरा भाई नहीं, और ( यद्वयः पिता च न अस्ति ) अतस्तुतेय रसक भी कोई दूसरा नहीं है, ॥ २ ॥

[ १७९८ ] हे इन्द्र ! ( विपिपानस्य अद्रेः हवं भुवि ) सीप कूटनेवाले मेरे पक्षियोंके आवाज सुन, ( अर्चयन्तः विप्रस्य मनीषां योष ) स्तुति करनेवाले विद्वानोंको कर्त्त सुन, ( इमा दुवास्ति ) इन मेवाओंके ( अन्नमा सच्या कृष्य ) अपने समीपके मित्रको सेवायें हूँ, ऐसा धानकर खीरकर कर ॥ १ ॥

१७९९ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।

सदा ते नाम स्वयशो विवक्षिम्

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२।१५ )

१८०० भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवसे त्वामित् ।

मारि असन्मधये ज्योतिः

॥ ३ ॥ १३ ( वा ) ॥

[ पा० १५ । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।२।१६ )

॥ इति सुतीम. खण्ड ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१८०१ प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय धूपमर्चत । अमीकिं चिदु लोककृतसङ्गे समत्सु धृष्टहा ।

अस्माकं षोधि चोदिता नमन्तामन्यकेषां ज्याकां अपि धन्यसु ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।११।१ )

१८०२ त्वं सिंधून् रवासृजोऽमराको अहवहिम् । अशत्रुनिन्द्रं जहिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।

तं त्वा परि ष्वजामह नमन्तामन्यकेषां ज्याकां अपि धन्यसु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।११।२ )

[ १७९९ ] हे इन्द्र ! ( तुरस्य ते गिरः ) शत्रुको शीघ्रतासे बन्ध करनेवाले तेरी स्तुतिको ( असुर्यस्य विद्वान् ) तेरे बलको जाननेके कारण ( न अपि मृष्ये ) में छोट नहीं सकता । ( स्वयशः ते नाम सदा विवक्षिम् ) अपने मा बढानेवाले तेरे स्तोत्रोंकी ही मैं हमेशा बीमता रहता हूँ ॥ २ ॥

[ १८०० ] हे ( मधवन् ) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! ( मानुषेषु ते भूरि सवना ) मनुष्योंमें तेरे लिए तोमबल बहुत होते हैं । ( मनीषी त्वा इत् भूरि हवसे ) बुद्धिमान् तेरे लिए बहुत हवन करते हैं, ( असन्मधये ) हमसे दूर ( ज्योति मा कः ) बहुत समय मत रह ॥ ३ ॥

॥ यहाँ बीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थ. खण्डः ।

[ १८०१ ] हे शीतल पाशको ! ( अस्मै इन्द्राय ) इस इन्द्रके ( पुरो रथं धूपं ) रथके भागे रहनेवाले बलकी ( सु प्र अर्चत उ ) उत्तम प्रकारसे पूजा करो । ( समत्सु संगे अमीके चित् ) पृथक् शत्रुको रोगा हन पर आक्रमण करती हुई हमारे पास आनाम, तो ( लोककृतं धृष्टहा ) लोकपालक और शत्रुको मारनेवाला इन्द्र ( अस्माकं चोदिता षोधि ) हमारा भेरक है यह तुम जानो । ( अन्यकेषां धन्यसु अपि ज्याका नमन्तां ) अन्य शत्रुओंके धन्यको डोरिया दूट जाय ॥ १ ॥

[ १८०२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं तु ( सिंधून् अमराकोऽवास्तुजः ) नदियोंकी नीची जगह पर बहकर लानेवाले मेघोंको विरता है, उन्हें बरसता है । ( अहिं आहून् ) मेघोंको कोबता है, इसलिए हे इन्द्र । तु ( अशत्रुः जहिषे ) शत्रुहीन होता है; तु ( विश्वं वार्यं पुष्यसि ) सब स्वीकार करने योग्य वन बढ़ाता है । ( तं त्वा परिष्व-जामहे ) उस मुझे हम हवि देकर भक्षण करते हैं । ( अन्यकेषां धन्यसु अपि ज्याका नमन्तां ) शत्रुओंके धन्यकी डोरिया दूट जाय ॥ २ ॥

१८०३ विं पु विद्या अरातयौऽयौ नञस्त नो धियः ।

अस्तासि शश्वे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।

या ते रातिर्दिविषु नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥ १४ (टि) ॥  
[ धा० ४१ । उ० ६ । स्व० १ ] ( ऋ १०१३१३ )

१८०४ रेवाऽ इद्रेव स्तोता स्वावावतो मधानः । अदु हरिवः सुतसः ॥ १ ॥ ( ऋ ८१११३ )

१८०५ उक्थं च न शसमानं नामा रपिरा चिकेत । न गायत्रं मीपमानम् ॥ २ ॥ ( ऋ ८१११४ )

१८०६ मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्षते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीमिः ॥ ३ ॥ १५ (ति) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ ८१११५ )

१८०७ एन्द्रः याहि हगिरिषु कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥ ( ऋ ८१११६ )

१८०८ अत्रा वि नेमिरेषामुरा न ध्रुवते वृकाः ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥ ( ऋ ८१११७ )

[ १८०३ ] ( नः विद्याः अरातयः अर्यः ) हमारे सब शत्रु जो हमपर बर्षा करते हुए भाते हैं, वे ( सु धित-शान्त ) उत्तम रीतिसे लब्ध हो जायें । हे इन्द्र ! ( यः नः जिघांसति ) जो हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, उस ( शत्रु)से वधं अस्ता अस्ति ) शत्रुपर तु शासन चकता है । हे शत्रु ! तेरे पास ( धियः ) हमारे बुद्धिपूर्वक किए गए कर्म पहुंचे । ( ते या रातिः वासु ददिः ) तेरे जो वायु हैं, वे हमें पत नें । ( अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः समस्तां ) शत्रुके शत्रुपक्षी कोटियां दूर जाएं ॥ ३ ॥

[ १८०४ ] हे ( हरिवः ) घोड़े रत्नवेले इन्द्र ! ( रेवतः स्तोता रेवान इत् स्यात् ) तेरे समान धनवान्की स्तुति करनेवाला मधव्य धनी होगा । ( स्वावातः मधानः सुतस्य मेधुः ) तेरे समान धनवान्की स्तुति करनेवाला मधव्य ऐश्वर्यवान् होता है ॥ १ ॥

[ १८०५ ] हे इन्द्र ! ( नः ) इस समय ( अ-गोः रयिः आ चिकेत ) स्तुति व करनेवालोंका घन वृ जानता है, ( नः ) जब ( शस्यमानं उक्थं च ) बोले जानेवाले स्तोत्रकी भी वृ जानता है । ( नः ) जब ( गायत्रं गायत्रं ) गाये जानेवाले गायत्र सामकी भी वृ जानता है ॥ २ ॥

[ १८०६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तु ( पीयत्नवे नः मा परदाः ) हितक शत्रुओंके आधीन हमें पत कर ( शर्षते मा ) हमारा नाश करनेवालेके स्वाधीन हमें पत कर । हे ( शची-यः ) शक्तिवान् इन्द्र ! ( शचीमिः शिक्षा ) अपनी शक्तिमेंसे हमें पत दे ॥ ३ ॥

[ १८०७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( हरिमिः ) घोड़ोंकी सहस्रतासे ( कण्वस्य सुष्टुति उय याहि ) कण्वकी उत्तम स्तुतिके पास पहुंच ( अमुष्य विध शासतः ) इस शत्रुपक्षके शासनमें हम शत्रुसे रहते हैं, हे ( दिवावसो ) शत्रुपक्ष रहनेवाले इन्द्र ! ( दिवं यय ) शत्रुओंमें जा ॥ १ ॥

[ १८०८ ] ( अत्र वेदां नेमिः ) जब इन गोप कूटनेवाले पाषणोंकी धारें ( उरां वृकाः नः ) भंडको नितप्रकार भेंदिया बंधता हैं, उत्तमप्रकार सोमकी ( विपुत्रुते ) फूटते हुए बंधाती हैं । ( अमुष्य विधः शासतः ) इस इन्द्रके शत्रुपक्ष पर शासन करते हुए हम [ इतके शासनमें ] शत्रुसे रहते हैं । हे ( दिवावसो ) तेरास्वी धनवान् इन्द्र ! ( दिवं यय ) शत्रुओंमें जा ॥ २ ॥

१८०९ आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमो घोषेण वधतु ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो

॥ ३ ॥ १६ ( व ) ॥

[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१४।२ )

१८१० पयस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमचमः

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६७।१६ )

१८११ ते सुतासो विपश्चिवः शुक्रा वाशुमसृक्षत

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६७।१८ )

१८१२ असृमं देववीतये वाजयन्तो रया इव

॥ ३ ॥ १७ ( रौ ) ॥

[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ९।६७।१७ )

॥ इति ऋग्वेदः सप्तः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१८१३ अमि॒त॒ होतारं॑ म॒न्ये दा॒स्वन्ते॑ य॒सोः सृ॒क्षुः स॒हसो॑ जा॒तवे॑द॒सं वि॒मं न॑ जा॒तवे॑द॒सम् ।

य ऊ॒र्ध्वया॑ स्व॒ध्वरो॑ दे॒वो दे॒वाभ्या॑ कृ॒षा ।

घृ॒तस्य॑ वि॒आदि॒मनु॑ शु॒क्राधि॑चिप॒ आजु॑ह्वा॒नस्य॑ स॒र्पिषः॑

॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२७।१ )

[ १८०९ ] हे इन्द्र ! ( इह सोमो यद्वन् ग्रावा ) यह इत यवर्ग से सोम कूटनेके लक्ष्य करनेवाला पावर ( घोषेण आवधतु ) शब्द करते हुए सोमको तेरे पास पहुँचावे । ( अमुष्य दिवः शासतः ) इस इन्द्रके घुलोकपर शासन करते हुए [ इसके शासनमें ] हम सुजते रहते हैं । ( दिवावसो ) हे तेजस्वी पनवान् इन्द्र ! ( दिवं यय ) तू घुलोकमें जा ॥ १ ॥

[ १८१० ] हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमत्तमः मन्दयन् ) अत्यन्त मधुर ऐला तू हर्ष उत्पन्न करता हुआ ( इन्द्राय पयस्व ) इन्द्रके लिए मूख हो ॥ १ ॥

[ १८११ ] ( विपश्चितः ) बुद्धिबर्धक ( सुतासः ) सोमरस ( शुक्राः ते ) शूद्र होनेके बाद ये सोमरस ( वायुं मसृक्षत ) वायुके लिए तैयार होते हैं ॥ २ ॥

[ १८१२ ] ये सोमरस ( वाजयन्तः देववीतये ) अत प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले प्रियमान देवोंकी देनेके लिए ( असृमं ) तैयार करते हैं । ( रयाः इव ) जितप्रकार रथ तैयार करते हैं, उसीप्रकार सोमको तैयार करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १८१३ ] ( दास्वन्ते यसोः ) दाम देनेवाला, सबको बलानेवाला ( सहस्रः सृक्षुः जातवेदसं ) बलसे उत्पन्न होनेवाला, सब जाननेवाला, ( विमं न जातवेदसं ) बालकके समान सली ( यः देवः स्वध्वरः ) जो प्रशस्तमान और उत्तम यह करनेवाला है, ऐसे ( ऊर्ध्वया देवाभ्या कृषा ) ऊच्च अर्थात् श्रेष्ठ देवी ताम्रपत्रे युरत, ( शुक्राधिचिपः आजुह्वानस्य ) उत्तम तेजस्वी और हवन किए जानेवाले ( सर्पिषः ) घृतस्थ विश्वार्ष्टि अनु ) धीके तेजके अनुकूल ( अमि होतारं मन्ये ) ऐसे अग्निको मैं देवोंकी बुलानेवाला मानता हूँ ॥ १ ॥

१८१४ यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेमे ज्येष्ठमङ्गिरसां निमं मन्मसिर्विशेभिः शुक्रं मन्मसिः ।

परिजमानमिव धा२ होतारं चर्षणीनाम् ।

शोचिष्केयां वृषणं यमिमां विशुः प्रावन्तु जूतये विशुः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२७।२ )

१८१५ स हि पुरुं चिदोजसा विरुक्कमता दीधानो मयति द्रुहन्तरः परशुनं द्रुहन्तरः ।

वीडु चिदस्य समुतो श्रवद्वनेव पस्तिथरम् ।

निष्पहमाजो यमते नायते घन्वासह नायते ॥ ३ ॥ १८ ( टी. ) ॥

[ धा० ४३ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।१७।३ )

॥ इति नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्घ्यः ॥ १-२ ॥

अथ नवमप्रपाठके द्वितीयोऽर्घ्यः ॥ १-२ ॥

( १-१३ ) १ अग्निः पावकः २ शीमरिः काण्डः ३ अक्षणी वंतहम्बाः ४ अग्निः प्रकाशितः ५-६ अक्षरतारः काशयः ७ मूतः ८ गोमूत्रावस्वक्षितनी काण्डाण्योः ९ त्रिगिरास्तवायुः सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वाः १० उलो वातायनः ११ वेतो भागिकः ४, ७, ८, १२ १-४, ७-८, १२ अग्निः ५-६ शिखरे देवाः १ इन्द्र, १० आपः ११ वायुः १३ वेतः ११ ( १-२ ) विष्टारयन्तिः १ ( १-५ ) सतोद्गृहीतो, १ ( ६ ) उपरिष्ठाङ्गयोतिः, २ कान्कुभः प्रपायः

( विजमाना कन्कुभः सत्तोद्गृहीतो ) ३ जगती ५-६, १३ त्रिष्टुप् ४, ७-११, ताम्ररी ४, ७, ८, १२ ।

१८१६ अमे तव श्रवो ययो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।

बृहन्नानो श्ववसा पाजमुकभ्या२३ दधासि दाशुये कवे ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१४।१ )

[ १८१४ ] हे ( यिज शुक्र ) जानी भीर तेजस्वी अग्ने ! ( यजमानः ) ह्य यजमान ( यिमेभिः मन्मसिः ) जानी विचारको भीर ( मन्मसिः ) मन्मसीय मन्त्रिक कारण ( अङ्गिरसां ज्येष्ठ ) तेजस्वी लोगोंमें अंश ह्य ह्य ( यजिष्ठं त्वा हुवेम ) यजनीय तुमसे हुवेम अर्घ्य करते हैं । उसके बाद ( धा१ ह्य परिजमाने ) पूर्वके समान पूजनवाले ( चर्षणीनां होतारं ) लोगोंके लिए हुवन करनेवाले ( शोचिष्केयां वृषणं यं ) प्रवीण किरणसे युक्त अग्निवत् ( हमाः पिशः ) ये प्रजापते ( जूतये म अयन्तु ) इष्ट फलकी प्राप्तिके लिए सरसम करतो हैं ॥ २ ॥

[ १८१५ ] ( सः हि ) वह अग्नि ( विरुक्कमता योजसा ) तेजस्वी जल्ले ( पुरुचिद दीधानः ) आर्वायिक प्रकाशमान ( द्रुहन्तरः परशुः न ) शत्रुओंकी कर्षनेवाले फरसेके समान ( द्रुहन्तरः भवति ) द्रोह करनेवालोंका नाश करनेवाला होता है । ( यस्त्व समुतो ) जिसके साथ-साथ रहनेसे ( वीडु चिद्व श्रवत् ) वसवान् शत्रु भी हार जाते हैं । ( यत् स्थिरं घना इव ) जो स्थिर होता है वह भी लालके समान छिन्नभिन्न हो जाता है । इस कारण यह अग्नि ( निः पदमाणाः यमते ) शत्रुओंकी हत्याकर सबका विध्वंस करता है । ( न अयते ) अपनी जगहसे भगता नहीं । घन्वासह नायते न अयते ) शत्रुओंको धारण करनेवाले बीके समान अपनी जगहसे भूट नहीं होता ॥ ३ ॥

[ १८१६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने । ( तव घयाः श्रवः ) तेरे बाल प्रशस्तीय हैं । हे ( विभावसो ) मति तेजस्वी अग्ने । ( अर्चयः महि भ्राजन्ते ) तेरी बजालाके बहुत प्रवीण हो गई हैं । हे ( बृहद् भानो कवे ) आर्वायिक तेजस्वी जानी देव । ( पावसाः ) अपने बलसे ( उपरिष्ठां योजं ) प्रशस्तीय अल्लो ( दाशुये दधासि ) प्रत्येक बाल देनेवाले यजमानोंको देता है ॥ १ ॥

४७ [ ताव. द्विती भा. ५ ]

- १८१७ पावकघर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियार्पि मानुना ।  
पुनो मातरा विचरन्नुपावसि पृष्ठाक्षि रोदसी उभे ॥ २ ॥ ( ऋ १०।४०।२ )
- १८१८ ऊर्जो नपाज्ञातवेदः सुप्रस्तिभिर्मन्दस्व घीतिगहितः ।  
त्वे इयः ॥ दधुभूतिवर्षसन्निवातयो वामजाताः ॥ ३ ॥ ( ऋ १०।४०।३ )
- १८१९ हरज्यस्य प्रथयस्व जन्तुभिरस्मै राशो अमर्त्य ।  
स दर्शतस्य वपुषो वि राजमि पृष्ठाक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥ ४ ॥ ( ऋ १०।४०।४ )
- १८२० इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं ध्वन्तं राघसो महः ।  
राति वामस्य सुभर्गो महीमिष दधाति सानमि रयिम् ॥ ५ ॥ ( ऋ १०।४०।५ )
- १८२१ क्रतायानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुभ्राय दधिरे पुरा जनाः ।  
भुरकर्णं सप्रथस्तम त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥ १ ( दि ) ॥  
[ वा० ९९। १०३। २००। १ ] ( ऋ १०।४०।६ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ १८१७ ] हे अने ! ( पावकघर्चाः ) पवित्रता करनेवाली किरणें युक्त ( शुक्रघर्चा ) निर्जल तैलसे युक्त ( अनूनघर्चा ) पूर्ण तेजस्वी वृ ( मानुना उदियार्पि ) अपने तेजसे उज्य होता है । ( पुनः ) पुनरप्य अग्नि । ( मातरा विचरन् ) माताकपी यो मरिचियं उत्पन्न होनेके बाद ( उपावसि ) समीप रहकर पक्ष करनेवालोंकी रक्षा करता है । ( उभे रोदसी पृष्ठाक्षि ) दोनों ध्रुवीय और पृथ्वीकीकरी बहू जोड़ता है अर्थात् हमारे स्वर्गको और वृद्धिसे पृथ्वीकी बहू पूज करता है ॥ २ ॥

[ १८१८ ] हे ( ऊर्जः नपात् ) बलके पुत्र ! ( आतवेद् ) सबको जाननेवाले अग्नि देव ! ( सुप्रस्तिभिर्मन्दस्व ) उत्तम स्तुतिपति वृ मानवित हो । ( घीतिगहित ) हमारे द्वारा किए गए कर्माँ वृ मूल हो । ( भूरि वर्षसः विप्रोतयः ) अनेक वर्षोंसे युक्त और विरलजन सरलजन करनेवाले ( वामजाताः इयः ) उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए भक्षका ( त्वे तद्वपुः ) तुममें बजमान हवन करते हैं ॥ ३ ॥

[ १८१९ ] हे ( अमर्त्यं अग्ने ) अमर अग्ने ! ( जन्तुभिः हरज्यन् ) अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाला वृ ( अस्मै राशः प्रथयस्व ) हमारे अगले बड़ा । ( सः ) वह वृ ( दर्शतस्य वपुषः ) वर्गनीय यज्ञ कर्मको उत्तम फल देता है ॥ ४ ॥

[ १८२० ] ( अध्वरस्य इष्कर्तारः ) यज्ञके वरुण करनेवाले ( प्रचेतसः ) विशेष ज्ञानी ( महः राघसः क्षयन्तः ) बहुततन पन पालने रखनेवाले और ( वामस्य राति ) उत्तम पन देनेवाले ऐसे सुम्हारी स्तुति हम करते हैं । वृ ( सुभर्गो मही इष ) उत्तम साधक युक्त बहुत अन्न और ( सानमि रयि ) सेवन करने योग्य पन ( दधाति ) देता है ॥ ५ ॥

[ १८२१ ] ( जनाः ) पक्ष करनेवाले लोग ( क्रतायानं महिषं ) यज्ञ करनेवाले और वृष्य ( विश्वः दर्शतं अग्निं ) सर्वत्र वर्गनीय अग्निकी ( सुभ्राय पुरा दधिरे ) सुख प्राप्त करनेके लिए अपने सामने स्थापित करते हैं । हे अने ! ( भुरकर्णं ) उत्तम प्रकारसे श्रमणा सुननेवाले ( सप्रथस्तमं ) अत्यन्त प्रतिष्ठ ( दैव्यं त्वा ) विश्वयुक्त युक्त तेरी ( युगा मानुषा ) पति और पत्नी मिलकर दोनों ही ( गिरा ) अपनी बाणीसे स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

॥ यहाँ पाँचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

१८२२ प्र सो अग्ने नवोतिभिः सुवीरामिस्तरति वाक्कर्मभिः । यस्य स्वत् सख्यमाविध ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१।१० )

१८२३ तव द्रष्टो नीलवान्वाध ऋत्विष इन्धानः सिण्णवा ददे ।

त्वं महीनामुपसामसि प्रियः क्षपा वस्तुषु राजसि ॥ २ ॥ २ (यी) ॥

( धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ) ( ऋ. ८।१।११ )

१८२४ तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्विषं तमाषां अग्निं जनयन्त मातरः ।

तमिन्समानं वनिनश्च वीरुषोऽन्ववतीश्च सुवते च विश्वहा ॥ १ ॥ ३ (रि) ॥

( धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३ ) ( ऋ. १०।१।१६ )

१८२५ अग्निर्विन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । माहेपीव वि जायते ॥ १ ॥ ४ (या) ॥

( धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० २ ।

१८२६ यो जागार तमुचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।

यो जागार तमयत् सोम आह तवाहमग्निं सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥ ५ (या) ॥

( धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ) ( ऋ. ९।४।१४ )

[ ६ ] पद्यः खण्डः ।

[ १८२२ ] हे ( अग्ने ) जने । ( त्वं यस्य सख्यं आ विध ) तू जितके साथ मित्रता करता है, ( स्वः ) वह मजमान ( सुवीरामिः ) जलम बीर पुत्रति युक्त ( वाज-कर्मभिः ) और वलवर्धक बनति युक्त ( तव ऊतिभिः ) ऐसे तेरे सारवर्णको सहयताये ( प्रतरति ) संकटति पार हो जाता है ॥ १ ॥

[ १८२३ ] हे ( सिण्णो ) सोमको आहुति जिते बी जानी है ऐसे जने । ( द्रष्टः नीलवान् ) प्रवाह रूप धीर वालने रत्ननेवाला ( वादाः ऋत्विषः ) स्तुत्य और ऋतुके अनुकूल वैद्य ( इन्धानः आददे ) तेजस्वी सोम हवन करनेके लिए प्राप्त किया जाता है । ( त्वं महीनां उपसां प्रियः अग्निः ) तू बहुतम ज्याओंको प्रिय है । ( क्षपाः वस्तुषु राजसि ) राजाके समय हवनोय पदायति तू प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ १८२४ ] ( ऋत्विषं गर्भं तं ओषधीः दधिरे ) ऋतुके अनुकूल प्रदीप्त वैश्वदेविको गर्भ रूपते वरणिषां धारण करती है । ( तं अग्निं ) जल अग्निको ( मातरः आधः जनयन्त ) पानीछपी माताये उत्पन्न करती है । ( वनिनः च समानं तं इव ) वनस्पतिषां गर्भ रूपतं रहनेवाले उस अग्निको उत्पन्न करती है । ( अन्ववतीः वीरुषः च ) गर्भ धारण करनेवाली गीर्वाणि उसे ( विश्वहा सुवते ) हमेसा उत्पन्न करती है ॥ ३ ॥

[ १८२५ ] ( अग्निः इन्द्राय पवते ) अग्नि इन्द्रके लिए प्रदीप्त होता है, वह ( शुक्रः दिवि विराजति ) प्रदीप्त होकर अन्तरिक्षमें प्रकाशित होता है । ( अहिपी इव विजायते ) राजाके समान वह विशेष रूपसे सुतोमिव होता है ॥ ४ ॥

[ १८२६ ] ( यः जागारः ) जो जागता है ( तं ऋचः कामयन्ते ) उसको ऋचाये इच्छा करती है, ( यः जागारः ) जो जागृत रहता है, ( तं उ सामानि यन्ति ) उसे साथ प्राप्त होते है, ( यः जागारः ) जो जागता है, ( तं अयं सोमः आह ) जलो पह लोग कहता है, कि ' तव सख्ये आह अग्निम् ' तेरी मित्रतामें मैं हूँ । ( अहं न्योकाः वारिम् ) मैं वारते युक्त ॥ १ ॥

१८२७ अग्निर्जागार तमुचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।

अग्निर्जागार तमयः सोम आह तवाहमसि सख्ये न्योक्ताः ॥ १ ॥ ६ ( वा ) ॥  
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २ ( ऋ. ५।४४।१५ ) ]

१८२८ नमः सखिभ्यः पूर्वसङ्ग्रयो नमः साकंनिषेभ्यः । युञ्जे वाचः शतपदीम् । ॥ १ ॥

१८२९ युञ्जे वाचः शतपदी गाये सहस्रवर्तनि । गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥

१८३० गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विद्या रूपानि सम्भूता । देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ३ ॥ ७ ( घृ ) ॥  
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ९ ]

१८३१ अग्निज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥

१८३२ पुनरुजा नि वर्तस्व पुनरप इषायुषा । पुनर्नः पाक्षश्चसः ॥ २ ॥

१८३३ मह रय्या नि वर्तस्वामि पिन्वस्व धारया । विश्वस्प्या विश्वतस्परि ॥ ३ ॥ ८ ( डा ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । स्व० २ ]

॥ इति षष्ठा कण्ठः ॥ ६ ॥

[ १८२७ ] ( अग्निः जागार ) अग्नि जागृत है, ( तं श्रुयः कामयन्ते ) इच्छन्ति स्वर्ग्यो उत्तरी कामना करता है । ( अग्निः जागार ) अग्नि जागृत रहता है, इच्छन्ति ( तं उ सामानि यन्ति ) उसके पास साम जाते हैं, ( अग्निः जागार ) अग्नि जागृत रहता है, इच्छन्ति ( तं अयं सोम आह ) उसके यह सोम कहता है कि ( तव सख्ये ) तेरी निजगणमें ( अह न्योक्ताः अस्मि ) मैं गृहमुख रहता ॥ १ ॥

[ १८२८ ] ( पूर्व-सङ्ग्रयोः सखिभ्यः नमः ) पहलेसे पहले के देवोंकी नमस्कार करता हूँ । ( साकंनिषेभ्यः नमः ) पास पास बैठनेवाले देवोंकी नमस्कार करता हूँ ( शतपदी वाचं युञ्जे ) अतएव प्रकारसे स्तुतिवीरो में करता हूँ ॥ १ ॥

[ १८२९ ] ( शतपदी वाचं युञ्जे ) अतएव प्रकारसे वहाँ गई स्तुतिवीरो में भीजता हूँ । ( गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ) गायत्री त्रिष्टुप, त्रयणी इन छन्दोंसे मुक्त तापीकी ( सहस्रवर्तनि ) हजारों प्रकारसे ( गाये ) मैं गाता हूँ ॥ २ ॥

[ १८३० ] ( गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ) गायत्री, त्रिष्टुप और त्रयणीसे छन्दोंमें ( संभूता ) जो इन्द्रकी ही गई है, ऐग ( विश्वा रूपानि ) अनेक रूपोंवाले उन तापीकी ( देवाः ओकांसि चक्रिरे ) देवोंने अनेक रहनेवा रूपान बनाया है, [ उन तापीकी में गाता हूँ ] ॥ ३ ॥

[ १८३१ ] ( अग्निः ज्योतिः ) अग्नि क्वास्ता रूप है । ( ज्योतिः अग्निः ) और क्वास्ता भी अग्नि हूँ है । ( इन्द्रः ज्योतिः ) इन्द्र प्रकाशरूप है, ( ज्योतिः इन्द्रः ) और प्रकाश भी इन्द्र ही है । ( सूर्यः ज्योतिः ) सूर्य प्रकाशरूप है, ( ज्योतिः सूर्यः ) ज्योतिः सूर्य है ॥ १ ॥

[ १८३२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( ऊर्जा पुनः निषर्तस्य ) बगले साथ फिर हमारे पास आ । ( इषा आयुषा पुनः ) अन्न और आयुषे साथ हमारी तरफ आ । ( अहस्यः नः पुनः पारि ) पावसे हमारी पुन पुन रक्षा कर ॥ २ ॥

[ १८३३ ] हे अग्ने ! ( रय्या राह निषर्तस्य ) बग साथमें लेकर हमारे पास आ । ( विश्वतः पारि ) सबके ओर और ( विश्वस्प्या धारया ) सबके तिसु उपभोगके योग्य धारणे हूँ ( पिन्वस्व ) मुक्त कर ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा कण्ठ समाप्त हुआ ॥





१८४२ यददो वात ते गृहेऽऽमृतं निहितं गुहा । तस्य नो घृहि जीवसे ॥ ३ ॥ ११ (पौ) ॥

[ धा० १० । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ १० । १८६ । १ )

१८४३ अभि बाजी विश्वरूपो जनित्रः५ हिरण्यं विभ्रदत्कः५ सुपर्णः ।

१३ ३१२५३ २२३ ३२ ४३ २२३ १  
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्जो जज्ञान ॥ १ ॥

१८४४ अ०३१ रेतः शिथिले विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्संभवम् ।

अन्तरिक्षं स्वं सहिमानं मिमानः कनिक्रान्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥ २ ॥

१८४५ अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।

सहस्रदाः १३१ १३१२ ४१ ३१ १२ ३१ १  
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवा धुवनस्य विशपतिः ॥ ३ ॥ १२ (पु) ॥

[ ਧਾ० ੨੦ । ਤੇ ੩ । ਵਧ ੨ ]

१८४६ नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तः हृदा धेनन्ती अग्नयश्चक्षत त्वा ।

हिरण्यपक्षं नरुणस्य दत्तं यमस्य योनौ धनुर्न धारण्यम् ॥ १ ॥ (ऋ. १०।१९३।६)

[ १८४९ ] हे (चात) बायो ! ( ते गृहे ) तेरे घरमें ( यत् भद्रः गुहा भस्यति निहितं ) जो गुप्त स्थानमें प्र  
भूत रहा हुआ है । हे ( पित्रायसो ) तेजस्वी धन प्राप्तमें रखनेवाले बायो ! ( तस्य नः घोषि ) वह भूत हमें वे ॥ ३॥

[ १८५३ ] ( सुपर्वा : पात्री ) गण्डक समान बलवान् ( शिथिलरूपः स्रग्धरः ) अनेक कर्पाति युक्त भीरु पापनाशक  
 अग्नि ( जनित्रय अटक ) अपने उत्पत्ति स्थान - आर्याभ्यां - को अपने तेजसे स्वाप्त करता है और ( हिरण्यं ) अभि विभक्त  
 सोनेके समान तेज धारण करता है । ' सूर्यस्य भानु ' सूर्यके तेजको ( शत्रुनाथा वसानः ) शत्रुके अनुसार धारण करके  
 ( मेघ परि स्वयं जज्ञान ) यज्ञकी स्वयं सम्पन्न करता है ॥ १ ॥

[ १८४४ ] ( रेतः धिक्वरूपं यत्नेज ) दीर्घं त्वमात्रं अवस्य लघुवाले ये तेज ( अप्यु निधिधिये ) लल्लं प्राथम्ये  
 रहते है । ( यत् पुथिधियां अधि सं यमुप ) वो वृष्णी वर है और ( अन्तरिक्षे स्यं मदिमानं मिमानः ) वो अन्तरिक्षं  
 अपनी महिमाको संज्ञाता है, ( धृष्टजः सम्भवस्य रेतः कनिकम्ति ) बलवान् सोमका योग्यं चरय करता हुआ पुरे प्राप्य  
 होता है ॥ २ ॥

[ १८४५ ] ( दिव्यः भुवनस्य घर्ता ) ध्रुवो ज भीर पुष्पोलोकरो धारण करनेवाला ( विद्यपतिः ) प्रजापति का पालन करनेवाला ( सहस्रदाः शतदाः सूरिदाया ) यत् करनेवालोंको हजाराँ, सौकों ( ताहके बहुतता धन देनेवाला ( यशः भय ) यत् करनेवाला यह मणि ( युक्ता सहस्रा परि धनान् ) अपने पास रखी हुई हजाराँ किरानोंकी संख्या हुआ ( सूर्यस्य भातुं वधोर ) सूर्यके तेजको धारण करता है ॥ ३ ॥

[ १८५६ ] हे येन । (सुप्रीं पतन्तं) गच्छे समान उच्चैःवाते (हिरण्यपक्षं युरणस्य दूतं) सोनेके समान  
 चरन्वाते वरषाके दूतको (यमस्य योनौ शकुन्तं भुरण्युं) नियमन करनेवाले विष्णु रूप आत्मके स्थान अन्तरिक्षमें पक्षीके  
 समान उच्चैःवाते सब अपवृत्ता बोधन करनेवाले (त्या हृद्वा येनन्तः) तुम अन्तःकरवाते प्राप्ता करनेको इच्छा करते हुए  
 ह्योता (नाके यत् अङ्गयच्छत) अन्तरिक्षमें जय देनाते हैं, नम (उप) तैरे पास याते हैं ॥ २ ॥

१८४७ ऊ३शो गन्धर्वो अ३धि ना३के अ३स्थात्प३य३इ३चि३त्रा वि३म्र३द३धा३यु३धानि ।

व३सानो अ३त्क३रु३रि३मि द३शे क३रु३स्वा३र्षे ना३म ज३नत प्रि३याणि ॥२॥ ( ऋ. १०।१२१।७ )

१८४८ इ३त्ताः स३मु३द्र३ममि य३जि३गाति प३श्यन् मु३ध३स्य च३क्ष३मा वि३ध३र्गन् ।

मा३नु शु३केण शो३चि३या च३कान३स्तृ३तीये च३के र३ज३सि प्रि३याणि ॥३॥ १३ ( खु ) ॥

[ भा० १६ । उ० १ । ख० ९ ] ( ऋ. १०।१२३।८ )

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

॥ इति नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्थः ॥ १-२ ॥

॥ इति विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

[ १८४७ ] ( ऊ३ध्वः गन्धर्वः प्रत्यङ् ) ऊ३त्तर रहनेवाला जलोकी धारण करनेवाला वेन जब हमारे सामने आकर ( धाके अ३धि अ३स्थात् ) मन्तरिलने स्थिर होता है, तब यह ( अ३स्य चि३त्रा मा३यु३धानि वि३भ३त् ) अपने वित्तमण दातृओंको धारण करके ( द३शे सु३रभि अ३त्के य३सानः ) देखनेके लिए सुन्दर रूप धारण करते हुए ( स्थः स ) सूर्यके समान ( नाम प्रि३याणि ज३नत ) प्रिय जनोंको उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

[ १८४८ ] ( वि३ध३र्गन् द्र३प्सः ) वित्तमण गुणोंसे युक्त, प्रवाह युक्त ( मु३ध३स्य च३क्ष३मा प३श्यन् ) गृध्र - सूर्य - के तेजो सँजली होकर देखनेवाला वेन ( यत् स३मु३द्रं अ३भि भ्रि३गाति ) जब पानीसे चरे हुए नेत्रोंके पास जाता है, तब ( मा३नुः शु३केण शो३चि३या ) सूर्य स्वच्छ तेजसे ( तृ३तीये र३ज३सि च३कान ) तीसरे सुलोके प्रकाशित होकर ( प्रि३याणि च३के ) प्रिय जनोंको उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

॥ यद्वां सामवां खण्ड नमस्त हुभा ॥

॥ विंशोऽध्यायः ॥

## विंश अध्याय

इति बीतार्थे सव्याप्तमे इन्द्र, अग्नि, सूर्य, आप् और सोम  
देवताओंका वर्णन है, उन्हें हम ऊपरसे देखिए—

इन्द्र

१ इन्द्रः नाम श्रुता, अतिशयः प्रज्ञा [ १७५८ ]—यह  
इन्द्रके नामसे विख्यात है, यह ऋतुओंके अनुसार कार्य करने-  
वाला और उत्तम जानी है ।

२ हे शयसः पते । त्वां इह संवत्स न गिरः  
यन्ति [ १७५९ ]—हे बलके स्वामी इन्द्र ! संवसो गुरुवकी  
भँसी स्तुति होती है, उत्तमकार तेरी स्तुति होती है ।

३ हे इन्द्र ! यथा यथा श्रुतयः त्वत् रातयः पि  
यन्तु [ १७७० ]—हे इन्द्र ! जिसप्रकार जिन जागते सनेक  
छोटे मार्ग निकलते हैं, उसीप्रकार तुमसे अनेक प्रकारके बल  
उपायोंको धोर निकलते हैं ।

४ ऊतये सुम्नाय तुयिर्कर्म प्रतीपदं दाधिष्ठं  
सत्पतिं त्वा इन्द्र आयतयामसि [ १७७१ ]—इधरपरसण  
और तुम प्रास्तिके लिए सनेक उपयोगी कर्म करनेवाले, हितक  
दानोंको नष्ट करनेवाले, बलवान् सज्जनोंका पालन करने-  
वाले तुम इन्द्रको हय अपने पास बुलाते हैं ।

५ तुयिन्मृषा तुयिन्मो दाधीयः मते ! यि३ध३या

महिष्यता आ प्रमाथ [ १७७२ ]- महा बलवान्, बहुत कार्य करनेवाले शक्तिमान् और बुद्धिमान् इन्द्र ! तू सब प्रकारकी महावपुर्ण शक्तियोगी, युक्त होकर व्याप्त होता है ।

६ यस्य महः ते हस्ता उग्र-यव्यं हिरण्ययं च ज्यो परि ईयतुः [ १७७३ ]- जिस महान् पुरुषके - तेरे - हाथ मृषी पर संवार करनेवाले वज्रकी धारण करते हैं, वज्रका प्रयोग करते हैं ।

७ शाकमना शाकः महः द्यौः यत् चिकेत, तत् सायं वृत् मोघं न [ १७८१ ]- अपनी चित्तिते सातव्यं सन्धय ऐसा महान् द्यौ इन्द्र ओ करनेका विषय करता है, वह विषयसे करके दिखाता है, वह निष्फल नहीं होता ।

८ इवाहं वसु जेता, उत दाता [ १७८३ ]- स्पृहीय घन वह जीतकर लाता है और उसका दान करता है ।

९ एभिः घृण्यया पौस्प्यानि आ वदे [ १७८४ ]- इन गरलैके साथ रहकर वह इन्द्र ताम्रव्यसे होनेवाले कार्य करता है ।

१० येभिः वृत्रहस्याय यजी शंसिद् [ १७८५ ]- इन भस्मैके साथ रहकर वह वज्रधारो इन्द्र अनुको मारनेके लिए बुद्धि करता है, कार्यकी वर्षा करता है ।

११ घृत्रहन्तमः शतकतुः इन्द्रः दिता विदे [ १७९१ ]- शत्रुको मारनेवाला, सैकड़ों कर्म करनेवाला इन्द्र दोनों ही तरहके काम करता है ।

१२ महेधुधे महे प्रमरज्यम् [ १७९३ ]- महान् बुद्धि हो, इसलिए महान् इन्द्रको भरपूर हवि अर्पण करो ।

१३ अचेतसे तुमति प्रवृणुष्ये [ १७९३ ]- तानी इन्द्रके बारेमें उत्तम भावना हुबहुमें धारण करो ।

१४ त्वर्पणि-शः दिशः प्रचर [ १७९१ ] प्रजाओंका पोषण करनेवाला तू प्रजाओंकी सहायता कर ।

१५ हे विप्रः ! उग्रयवसे मयिने इन्द्राय सुवृत्तिकः अग्र अनयत, सस्य यतानि धीराः न भिन्नेन्ति [ १७९५ ] हे विप्रानो ! बिदेय व्यापक महान् इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो ।

१६ सत्रा राजानं अनुस्रम्यन्तु इन्द्रं एष याणीः स्रह्यं दधिरे [ १७९५ ]- सबका राजा, जिसके कोषके भागे कोई भी टिक नहीं सकता, ऐसे उता इन्द्रको अनुको हरानेके लिए स्तुति भागे करती है ।

१७ हे इन्द्र ! यत् थायता, यतायत् अहं ईदीय [ १७९६ ]- हे इन्द्र ! जिनसे पणव तू स्वामी है, उनसे बनना मे भी स्वामी होऊँ ।

१८ पापत्वाय न संसिपम् [ १७९६ ]- पापी होनेसे लिए मैं किसीको धन नहीं दूँगा ।

१९ हे मघवन् ! त्वत् अम्यत् भाव्यं नदि, [ १७९७ ]- हे धनवान् इन्द्र ! तेरे सिवाय हमारा कोई दूसरा भाई नहीं है ।

२० यस्यः पिता स न मरित [ १७९७ ]- जिस सिवाय प्रजसनीय सरलका भी दूसरा कोई नहीं ।

२१ अस्य इन्द्राय पुरो रथं शपं सु प्र अर्चत [ १८०१ ]- इस इन्द्रके रथके भागे जानेवाले बलकी स्तुति करो ।

२२ सप्रभुसु संगे अमीके चित् लोककृत् वृत्रहा अस्माकं चोदित्ता योधि [ १८०१ ]- युद्धमें शत्रुके सैनिकों अपने ऊपर चढ़ते हुए चले आने पर, लोभीका कल्याण करने-वाला और शत्रुका नाश करनेवाला इन्द्र हमारा प्रेरक है, यह तू जान ।

२३ अम्यकेयां घम्वसु अधि ज्याकाः नमन्ताम् [ १८०१ ]- शत्रुके घम्वकी शेरियां दूट जायें ।

२४ हे इन्द्र ! अहिं अहन्, अशत्रुः जज्ञिषे, विश्वं चार्यं पुरयसि [ १८०२ ]- हे इन्द्र ! मैं अहिंको मारकर शत्रुहित हो गया । तू सब स्वीकार करने योग्य धन अपने पास बढाता है ।

२५ नः चिग्या अरातयः अयः सु विनशस, यः नः शिघ्रांसति, दात्रये घर्षे अस्ता अति [ १८०३ ]- हमारे सब शत्रु ओ हम पर चढाई करते हैं मरू हो जायें । जो हमें मारना चाहता है, उस पर तू दाह देक ।

इन्द्र मुप्रसिद्ध है । वह महान् तानी और लोक ताय पर काम करनेवाला है । वह संयमी है । अनेक उपयोगी कार्य वह करता है । वह वायन्त सासर्गवान् है । वह शरजनीका अष्टो तरह वायन्त करता है । वह हाथीयं वध धारण करता है और उनका उपयोग शत्रुके मरना करनेसे लिए करता है । ओ वरमेव विषय करता है, वह कार्य वह करता ही है । साधव्यसे होनेवाले महान् महान् कार्य वह करता है । वह शत्रुका नाश करके आर्योकी रक्षा करता है । वह दोनों ही काम करता है । वह प्रजार्थीका धामन अष्टो तरह करता है । इसलिए उस इन्द्रके बारेमें उत्तम विचार धारण करने-काहिए । वह इन्द्र सबका राजा है । उसका कोष जिस पर पड़ता है वह मरू हो जाता है । इसलिए उसे प्रत्यक्ष रक्षक काहिए । इन्द्रसे सिवाय दूसरा कोई भी सत्त्वा नित्र नहीं है । वह ही सबका कल्याण करनेवाला है । युद्धमें वह ही सत्त्वा नरलक है । उसने रातलोने मार। इस कारण उसका कोई

भी शत्रु बना नहीं। हमारे शत्रुओंको भी इन्द्र मार दे और हथी भी शत्रु रहित करे।

अग्नि

अथ अग्निका वर्णन देखिये—

१ या विजग्मा सः होता अयं विम्बा वार्याणि श्रवस्या दग्ने [१७७१]— वो अग्निपोते उत्पन्न हुआ हुआ, दोनोंको बुलाकर यज्ञस्थानमें लानेवाला यह अग्नि सब चाहने योग्य दोनोंको और यज्ञस्थी कर्मोंको पारण करता है।

२ हे अग्ने ! भद्रस्य दक्षस्य साधोः यज्ञस्य बृहतः प्रतोः रथी। यभूय [१७७८]— हे अग्ने ! कल्याणकारक और बल बढ़ानेवाले उत्तम साथ ऐसे महान् बलका तू संभाल सक होता है। यह कल्याण करता है, बल बढ़ाता है ऐसा यह बल अग्निमें होता है।

३ हे अग्ने ! हव्ययाह्नः दूतः अश्वराणां रथीः अक्षि। अस्मे सुवीर्यं युहव्यं अश्वः घेहि [१७८१]—है अग्ने ! तू हवीय इन्द्र्य देखोके पास पहुंचानेवाला दूत और अहितापूर्ण बलका संभालक है। हमें उत्तम वीर्यसे युक्त महान् बल दे। अग्निमें हवन किए हुए यवायं बलि युष्म हो जाते हैं और अग्नि उन्हें जहाँ पहुंचाना होता है वहाँ पहुंचा देता है। यह अग्नि हिंसके बिना यज्ञ करता है। इस यज्ञमें हिंसा नहीं होती। इन यज्ञोंसे वीर्य बढ़ता है और बल भी बढ़ता है।

४ विधमता भोजसा युदधिव्यं वीधानः दुहन्तरः परन्तु न दुहन्तरः भवति [१८१५]— विजय तैराकी और बस्ती अधिक प्रकाशमान होकर, शत्रुओंको बधनेवाले करतेके समान, रोह करनेवालोंका भक्षण करनेवाला होता है।

५ यस्य समृती धीवु चित् धुषव् [१८१५]— जिसके साथ रहनेसे शत्रुकी भी हारना आसान हो जाता है।

६ निःपदमाणः यमते [१८१५]— शत्रुको हराकर बलका नियमन करता है।

७ पायकयर्चाः शुकयर्चाः अनुनयर्चाः भातुता उदियर्षि [१८१७]— शुद्धता करनेवाली किरणोंसे मुख, निर्मल किरणोंसे मुख, पूर्ण तेजस्वी, ऐसा तू अपने तेजसे उदमको प्राप्त होता है।

८ अश्वरस्य इष्कर्तारं प्रवेतसं अहः राघसः क्षयन्तं पागमय रथि [१८२०]— यह करनेवाले, लानी, बहुत बल प्राप्त करनेवाले ऐसे अग्निमें होय स्तुति करते हैं।

४८ [ साम. हिन्दू ]

९ सुभगां महीं इयं सानसि रथि दधासि [१८२०]—अधिक भाव्ययुक्त अथ और तेजस्व करने योग्य वन अग्नि देता है।

१० जनाः कृतावानं महियं विम्बदशीतं यग्निं सुम्नाय पुः दधिरे [१८२१]— लोग वन करनेवाले, गृह्य, सर्वत्र दर्शनीय अग्निमें लाने सुधकी प्राप्तिके लिए अपने आगे स्थापित करते हैं।

११ हे अग्ने ! त्वं यस्य सख्यं आधिर, सः सुवीर्याग्निं घाजकर्मभिः तव ऊतिभिः प्रनरति [१८२२]—हे अग्ने ! तू जिसके साथ मित्रता करता है, वह उत्तम वीर पुर्वींसे और बल बढ़ानेवाले कर्मोंसे युक्त तेरे तरफागि संकटोंसे बच हो जाता है।

१२ हे अग्ने ! ऊर्जा इयं आयुषा निवर्तस्य। अंहसः नः पाहि [१८३२]—हे अग्ने ! तू बल, अन्न और आयुके साथ हमारे पास आ। पासी हमारे रक्षा कर।

१३ हे अग्ने ! रव्या सद्य नियर्त्तस्य [१८३३]—हे अग्ने ! तू यन्त्रे साथ हमारे पास आ।

यह अग्नि वो अग्निर्वीरोंको रणक्षे उत्तम होता है। यह बलवान करनेवाले बल बढ़ाता है। यह हवनमें इन्द्रिय पदार्थोंको जहाँ पहुंचाना होता है वहाँ पहुंचाता है और उत्तम वीर्य बढ़ाता है। जिसप्रकार फलता लकड़ीको काटता है, उसीप्रकार यह अग्नि रोहवीरोंको नष्ट करती है। इसकी सहायतासे बलवान् रोहवीर भी नष्ट हो जाते हैं। इसका प्रकाश दधिवरा करनेवाला है। यह अग्नि उत्तम बल बढ़ानेवाले अथ और यज्ञ देता है। इस और आरोग्यके लिए हमने लोग इस अग्निमें स्थापना करते हैं। इस अग्निमें हवन करना बल बढ़ानेवाला कर्म है। अग्निमें तेजस्वर दिए गए अन्न अनुष्ठीके अन्न, आरोग्य और आयु बढ़ाते हैं।

आषा ( जल )

१ वायः मयोभुयः, साः मा ऊर्जं दधातन, मदे रणाय चक्षते [१८३७]— जल नि सारेह गुण बढ़ानेवाले हैं। वे हमारे बल बढ़ानेवाले हैं तथा वे महान् और सुन्दर वर्जन करानेवाले हैं।

२ इह वाः यः क्षियतमः रसः तस्य नः भाजयग [१८३८]— यहाँ जो गुणमें सत्यत बलवान् करनेवाला रस है, उसका तेजस्व हमारे द्वारा हो, ऐसा कर।

३ हे आषा ! यस्य क्षयाय जिह्वय, तस्य अरं पः

गमाम [ १७३९ ]- हे जलो ! जिसको सुखसे निवास करानेके लिए तुम प्रयत्न करते हो, वे कार्य हम तुमसे पूर्वस्वप्ने करवाये।

पानी आरोग्य बढ़ानेवाले और सुख देनेवाले हैं। उससे शरीरका थल बढ़ता है, और शरीरको सुन्दरता बढ़ती है। पानीमें जो रस है, वह कल्याण करनेवाला है। उसे पानेवाला मनुष्य निरोगी होकर सुखी होता है। इन मंत्रोंमें जल जिसरसाका वर्णन है। पानी एक उत्तम औषधि है। जल-क्षित्तासे बहुत रोग दूर हो सकते हैं। इस प्रकार शुद्ध जल अत्यन्त उपयोगी है।

### वायु

१ वातः नः हृदये शंसु मयोरुभ्येकजं आवातु, नः आर्युषि प्रतारिषत् [ १८४० ]- वायु हमारे हृदयका आनन्द बढ़ानेवाला और आरोग्य बढ़ानेवाला होकर बड़े और हमारी आयु बढ़ावे।

१ हे वात ! मेरे हृदये यत् अद्ः शुद्ध अमृतं निहितं, तस्य नः प्रेक्षि [ १८४२ ]- हे वायो ! मेरे घरमें जो अमृत रखा हुआ है, उसे हमें दे।

२ हे वात ! नः पिता, आत्मा, सखा अस्मि, नः जीवात्तये रुचि [ १८४३ ]- हे वायो ! तू ही हमारा पिता, भाई और मित्र है, इसलिये तू हमारा जीवन दीर्घ कर।

वायुमें औषधिका गुण है, वायु उन गुणोंको लेकर हमारे पास आवे और हमारी उमर बढ़ावे। वायुमें अमृत है। इसलिये वायुका ठीक तरह सेवन करनेसे मृत्यु दूर होकर आयु बढ़ती है।

### सोम

१ यः जागार ते अय सोम आह, सय स्वयमे अहं अस्मि [ १८२९ ]- जो जागता रहता है, उग्राते यह सोम कहता है कि तेरी मित्रतामें मैं हूँ। तेरा भी मित्र हूँ।

जागृत रहनेवाले सोमोंसे सोम मित्रता करनेवाला है। वह उत्साह करवाने करनेवाला है। सोमका उपयोग जागृत रहकर करना चाहिए।

### सुभाषित

१ चेष्टसः फारयः ज्योतिः शशानं भुजन्ति [ १७६६ ] - कार्य करनेवाले ज्ञानी तेजस्विनता प्रकट करनेवालेको युद्ध करते हैं।

२ पुनानाय ते तानि सुपहा [ १७६७ ]- शुद्ध होनेवाले सुप्तों में उत्तम प्रकारसे रक्षा करनेवाले बल प्राप्त होते हैं।

३ यथाऋतियः ब्रह्मा गृणे [ १७६८ ]- यह ऋतुओंके अनुसार कार्य करनेवाला ज्ञानी प्रशंसित होता है।

४ हे श्वसतः पते ! संयतः न त्वां गिरः यन्ति [ १७६९ ]- हे बलके स्वाधी इन्द्र ! जंते मनुष्य सपत्नी पुष्टको प्राप्त होते हैं, उसीप्रकार स्तुतिमें तुम प्राप्त होती हैं।

५ हे इन्द्र ! यथा पथा मृतयः, स्वत् रातयः वि यन्तु [ १७७० ]- हे इन्द्र ! जैसे बड़े रातमें छोटे-छोटे रातमें निकलते हैं, उसीप्रकार तुमसे अनेक प्रकारके बल निकलते हैं।

६ ऊतये सुज्ञाय तुषिकृमिं मत्तौपहं शविष्ठं सत्यति रवा इन्द्रं आयतयामसि [ १७७१ ]- स्वर्गभजन और सुख प्राप्तिके लिए अनेक कर्म करनेवाले हितक शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रको हम उपासना करते हैं।

७ तुषिगुप्त तुषिकृतो शचीयः मते। विम्बया महिरयना आ प्रभाय [ १७७२ ]- हे महा बलवान् अनेक कर्म करनेवाले, शक्तिवान् और बुद्धिमान् इन्द्र ! सब प्रकारके महत्त्वपूर्ण शक्तियोंके साथ तू सर्वत्र व्याप्त है।

८ मद्रस्य दक्षस्य साधोः अतस्य बृहत् क्रतोः रथीः वभूय [ १७७३ ]- कल्याण करनेवाले, बल बढ़ानेवाले, उत्तम, सत्य और बड़े-बड़े कर्मोंका तू संचालक है।

९ ज्योतिः द्यवः नः विम्बेभिः अर्तकिः सुममाः नः अर्वाक्ष अय [ १७७४ ]- ज्योति स्वर्ग्य सुर्वके समान, सब तेजोंसे युक्त उत्तम मन धारक करनेवाला तू हमारे पास आ।

१० विवस्वत् चिन्वं राधः आ वह, अद्य उपयुधा देवान् आ वह [ १७८० ]- तेजस्वी और विलक्षण धन लेकर आ और आज सबसे प्राप्त रूपक उठनेवाले विद्वानोंको लेकर इस घरमें आ।

११ अर्चरापां रथीः अस्मि [ १७८१ ]- हितारहित कर्मोंका तू संचालक है।

१२ अस्मे सुधीर्यं बृहत् अयः धेदि [ १७८१ ]- हमें उत्तम वराक्रम करनेके सामर्थ्य और महान् यश दे।

१३ विष्णुं समने यदुनां दद्वर्णं युवानं सन्तं पलितं जगार [ १७८२ ]- अनेक कार्य करनेवाले, युद्धमें बहुतसे शत्रुओंको मारनेवाले सफलको भी बुढ़ावस्था जगल जाती है।

१४ देवस्य महिरयना कार्यं पश्य [ १७८२ ]- देवके महिमासे भरे हुए इस वाण्यकी देखो।

१५ अथ ममार स ह्यः समान [१७८२]- आज जो भर गया वही कल प्रकट होता है । 'समान' (सं-मान) उत्तम रीतिसे प्राण धारण करता है ।

१६ यत् चिकेत, तत् सत्यं इत्, मोघं न [१७८३]- इन्द्र जो कर्तव्य करनेका निरचय करता है, उसे सत्य करके दिखाता है, उसे व्यर्थ नहीं जाने देता ।

१७ स्वाहं यस्तु जेता उत दाता [१७८४]- वह चाहने योग्य पनको ओतकार साता है और उसका दान करता है ।

१८ वृणया पीत्वानि आ वदे [१७८५]- वह बल बढ़ानेवाले पीरवके काम करता है ।

१९ ये देधाः मन्त्राः श्रियमायस्य कर्मणाः जने कर्म उदजायन्ता [१७८६]- जो देव महत्त्वके करने योग्य कार्योंमें सत्य करने ही करके दिखाते हैं ।

२० हे सूर्य ! महान् अस्ति यद् [१७८७]- हे सूर्य ! तू निरचयसे महान् है ।

२१ आदित्य ! महान् अस्ति यद् [१७८८]- हे सूर्य ! तू महान् है, यह सत्य है ।

२२ ते सताः मन्त्राः प्रथिमा [१७८९]- तेरे जैसे महान्-नी महिमा भी महान् है ।

२३ पणिष्ठम ! मन्त्रा महान् अस्ति [१७९०]- हे रुद्र ! तू धरणी अहिवासे महान् है ।

२४ हे सूर्य ! अचसा महान् अस्ति यद् [१७९१]- हे सूर्य ! तू अपने महान् यज्ञसे महान् है । वह धाव है ।

२५ देवानां मन्त्रा महान् अस्ति [१७९२]- तू देवोंके महत्त्वके कारण बड़ा है ।

२६ असुर्यः पुरोहितः [१७९३]- तू असुरोंका नाश करनेवाला है इसलिए तुझे आगे स्थापित किया है ।

२७ ज्योतिः धिभुः छन्दमयं [१७९४]- तेरे तीव्र ध्यापक और न बधनेवाले हैं ।

२८ वृषप्रहन्तमः शतप्रभुः इन्द्रः द्विता विदे [१७९५]- वृषको मारनेवाला, सैकड़ों कर्म करनेवाला इन्द्र दोनों प्रकारके कार्य करता है । आयोना संस्रव्य और कुन्तोका नाम ये दोनों उसके काम हैं ।

२९ वाः महेष्टुधे अतो प्रमरयाम् [१७९६]- अपने महान् संवर्धनके लिए महान् बीरका विशेष सम्मान करो । उसे जो देता हो, भरपूर दो ।

३० प्र चेत्तसे सुमतिं प्रहृष्युष्यं [१७९७]- विशेष बुद्धिमान्के विषयमें अपने उत्तम विचार बना ।

३१ चर्यणिप्राः विशा प्रचर [१७९८]- प्रजामोका पोषण करनेवाला तू सब प्रजामोका पोषण कर ।

३२ हे विप्राः ! उद्व्यग्नसे मदिने इन्द्राय सुमुक्तिं ब्रह्म जनयन्त, तस्य प्रतापिं धीरा- न मिमन्ति [१७९९]- हे ब्राह्मण्यो ! विशेष व्यापक इन्द्रके लिए उत्तम स्तुतिके स्तोत्र हो । उसके कार्य बुद्धिमान लोग दिनष्ट नहीं कर सकते ।

३३ सत्रा राजानं अनुत्तमस्युं इन्द्रं पय वाप्यीः सहृष्ये दधिरे [१८००]- सबका एक ही समर्थ राजा होनेवाले, जिसके कोयले आगे कोई रुहर नहीं सकता, ऐसे इन्द्रको ही हमारा वाणी समुपमोको हारनेके लिए आगे करती है ।

३४ ह्यश्वश्वाप्य आपीन् सं वर्धय [१८०१]- इन्द्रकी स्तुति करनेके लिए निम्नको प्रोत्साहन दो ।

३५ हे इन्द्र ! यत् यावत्, यतायत् बर्ध ईशिय [१८०२]- हे इन्द्र ! जिसने पनका तू स्वामी है, उतनेका ही मैं स्वामी होऊँ ।

३६ स्तोतारं इत् दधिरे, पापत्याय न संस्रवम् [१८०३]- स्तोताको मैं बल देकर उसका धारण करूँगा, पर उसे पापमें प्रवृत्त नहीं होने दूँगा । पाप करनेमें वह जानबूझने वाले ऐसा उसे अवगत नहीं होने दूँगा ।

३७ कुहचिद् विदे महयसे दिवे दिवे रापः शिश्नेयं इत् [१८०४]- इन्द्र कहता है तो कहीं पर भी रहकर महत्त्वके कार्य करनेवालेको मैं बल देता हूँ ।

३८ हे मघव ! त्वत् अम्यत् आर्यं नदि, वस्यः पिता च न अस्ति [१८०५]- हे इन्द्र ! तेरे पिता हमारा बुधरा कोई भाई नहीं है, और प्रसन्तनीय पिता भी बुधरा कोई नहीं ।

३९ अर्यतेः धिप्रस्य अतीयां योध [१८०६]- अर्यता करनेवाले ब्राह्मणोंके कल तु जान ।

४० अन्तमा सत्वा इमा दुपौलि रुध्व [१८०७]- मैं बहुत निरुद्धका मित्र हूँ ऐसी याचनासे इन तैवाभोंको स्वीकार कर ।

४१ तुरयसे गिरः असुर्येभ्य धिदान् ॥ अयि सुभ्ये [१८०८]- धीमताते दामोका नाम करनेवाले तेरी स्तुतिवालोंके तेरे बलको जाननेवाला मैं दूर नहीं कर सकना । तेरी स्तुति में सबधय करूँगा ।

४२ स्वयदाः से नाम सदा विवक्षितम् [ १७९९ ]-  
अपने यशको बढ़ानेवाले तेरे नामको मैं सदा सेता रहा हूँ।

४३ मनीषी त्वां इत् भूरि हवते [ १८०० ]-मुझिमान्  
तेरे लिए बहुत हवन करता हूँ।

४४ अमत् आरे ज्योक् आ काः [ १८०० ]-हमसे  
हूँ तू बहुत ज्यादा समय तक च रहा।

४५ असे इन्द्राय पुरोरथ शर्पे सु म अर्चत [ १८०१ ]  
इस इन्द्रके रथके आगे रहनेवाले सामर्थ्यका अण्ठी तरह  
पूजन करो।

४६ समस्तु संगे अग्नीके चित् लोकहृत् वृत्रहा  
अस्माक सोदिता घोषि [ १८०१ ]-यदि युद्धमें शत्रुको  
सेना हम पर घडती हुई पास आ जाये, तो सोयीया पालन  
करनेवाला और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र हमारा उत्साह  
बढ़ानेवाला है, यह हम जानी।

४७ अम्यकेयां धन्यस्तु अधि ज्याका नभन्तां [ १८०१ ]  
-अम्य सामूहिक धन्यकी ओरियो हूँ जाये।

४८ अहिं अहन् अशमः जशिषे [ १८०२ ]-महिको  
मारकर तू शत्रुहित होता है।

४९ धिभ्यं धार्यं पुण्यालि [ १८०२ ]- तब चाहने योग्य  
धनको तू बढाता है।

५० तं त्या पटियजामहे [ १८०२ ]- उस तुझे हम  
यशमें करते हैं।

५१ नः धिभ्याः मरातयः गर्भः सुचिन्तशस्त [ १८०३ ]  
-हम पर चढ़कर बने आनेवाले सब शत्रु उत्तम रीतिसे मर  
ही जायें।

५२ यः नः जिघांसति क्षत्रये घर्षं अशता शसि  
[ १८०३ ]- जो हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, उस  
शत्रु पर तू बार-बार अशर बरकता है।

५३ ते या शसिः घम्सु ददिः [ १८०३ ]- तेरे वे  
शस्त्र हूयें घन देखें।

५४ हे हरियः रेवतः स्लोना रेवान् स्वभात् [ १८०४ ]  
-हे जोड़े घासमें रहनेवाले इन्द्र ! तेरे समान धनवान्की  
स्तुति करनेवाला धनवान् होगा ही।

५५ त्वायत मघोनः सुतस्य प्रेक्षुः [ १८०४ ]- तेरे  
जैसे धनशालेकी स्तुति करनेवाला अगवध धनवान् होगा ही।

५६ अ-गोः रयिः आ चित्वे [ १८०५ ]- गाय न  
पालनेवाले धन का जानना है।

५७ पीयान्ये नः आ परा दशः [ १८०६ ]- हिनक  
शत्रुओंके आघात हूयें न कर।

५८ शर्षते मा [ १८०६ ]- नाश करनेवालोंके क्षपीन  
हूयें मत कर।

५९ हे शर्षाचिवः ! शर्षाचिभः शिक्ष [ १८०६ ] हे  
शक्तिमान् इन्द्र ! अपनी शक्तिसे हूयें घन दे।

६० सः विक्षमता ओजसा पुरचिस् दीधानः  
हुहन्तरः भवति [ १८१५ ] वह अपने तेजस्वी बलसे  
अत्यन्त तेजस्वी होकर शत्रुका नाश करनेवाला होता है।

६१ घम्य समूतो वीष्टु चित् ध्रुयत् [ १८१५ ]-  
जिसके साथ रहनेसे बलवान् शत्रु भी हार जाता है।

६२ धम्यासहा न अवते [ १८१५ ]- धन्यकारी और  
अपनी जगहसे नहीं हटता।

६३ निःपहमाणाः यमते [ १८१५ ]- शत्रुको हारने-  
वाला सबका नियमन करता है।

६४ वय घम्यः ध्रुय [ १८१५ ]- तेरा मज्र प्रशस्तयोग्य है।

६५ हे विमावसो ! अर्चयः मदि भ्राजन्ते [ १८१६ ]  
-हे तेजस्वी अग्ने ! तेने उबालयें बहुत प्रवीण हो चुकी हैं।

६६ पायकवर्षाः, शुक्लवर्षाः, अनुनवर्षाः आहुता  
उदियिर् [ १८१७ ]- शुद्ध करनेवाली किरासि युक्त,  
निर्वस्व तेजसे युक्त, पूर्ण तेजस्वी ऐसा तू अपने तेजसे उदयको  
प्राप्त होता है।

६७ हे अमर्त्य अग्ने ! जगत्पुभिः इत्ययन् अस्मे  
रायः प्रथयस्व [ १८१९ ]- हे अमर अग्ने ! अपने तेजसे  
तेजस्वी हुआ हुआ तू हमारे घन बढा।

६८ दुर्मास्य ययुयः विराजसि [ १८१९ ] तू सुन्दर  
करीरसे सुशोभित होता है।

६९ दुर्माते कर्तुं पूषसि [ १८१९ ]- बर्गनीय सुन्दर  
यत्कर्तव्यको उत्तम फल देता है।

७० अघ्यरस्य इत्कर्तारि प्रवेतस्, मधुः राघसः  
क्षयन्तं, घामस्य राति सुमर्गा मर्द्दा इयं, खानसि रायि  
युधासि [ १८२० ]- अहिंसापूर्ण यामके संस्कार करनेवाले,  
विजय गानी, बहुत घन शक्तयें रखनेवाले और उत्तम घन  
बैनेवाले तेरी मैं स्तुति करता हूँ। तू उत्तम भाग्य मुक्त बहुत  
मज्र और तेजस्वी घन हूयें देता है।

७१ अनाः कृतपादान् मदिपं विभदुर्माते यमि  
सुम्नाय पुरः दधिरे [ १८२१ ]- यात्रर घन करनेवाले  
गुरु, सब प्रकारसे दर्जनीय मजिन्को मुक्त हो, इसलिए अपने  
आगे स्थापित करते हैं।

७२ त्वं ययस्व सख्यं आविध, सः सुधीरामिः यात्र



कर्मभिः तव ऊतिभिः प्र तरति [ १८२२ ]- तू जिताने साथ मित्रता करता है, वह धीरे धीरे पुत्रोंसे और बलवर्धक कर्मोंसे पुनः होता है और तेरे सरसर्वांसि मुक्त होकर सकटोंसे शार हो जाता है ।

७३ शुक्रं विधि चिराजति, महिषीय विजायते [ १८२५ ]- अग्नि प्रदीप्त होकर आकाशमें प्रकाशित होता है, रात्रिके समान वह सुबोधित होता है ।

७४ यो जागार तं जलः कामयन्ते [ १८२६ ]- जो जागता है, उसको इच्छा झूठायें करती है ।

७५ यो जागार तं ज सामानि यति [ १८२६ ]- जो जागता रहता है उसे साम प्राप्त होता है ।

७६ यः जागार तं अयं सोम आह, तव सख्ये अहं भस्मि [ १८२६ ]- जो जागता रहता है, उससे वह सोम रहता है कि मैं तेरा मित्र होकर रहता हूँ ।

७७ अहं न्योब्राः मसि [ १८२६ ]- मैं घर बनाकर नहीं रहता ।

७८ पूर्वसङ्ग्रहः सखिभ्यः नमः [ १८२८ ]- पहलेसे यज्ञमें बैठनेवाले मित्रोंको मैं नमस्कार करता हूँ ।

७९ साकेनियेभ्यः नमः [ १८२८ ]- बात बात बैठनेवालोंको नमस्कार करता हूँ ।

८० विश्वा कपाणि ओकांसि देवाः चाकिरे [ १८३० ]- अनेक रूपोंके घर देवोंने बनाये हैं ।

८१ हे यज्ञे ! ऊर्जा दया आयुषा पुनः निवर्तस्य [ १८३१ ]- तू बल, अन्न और आयुके साथ हमारे पास आ ।

८२ अहस्तः नः पुनः वाहि [ १८३२ ]- वायसे हमारी बार बार रक्षा कर ।

८३ अग्ने ! रज्या त्वह नियर्चस्य [ १८३३ ]- हे आग्ने ! वनके साथ तू हमारे पास आ ।

८४ हे इन्द्र ! यथा त्वं गन्धः एकः इव, यत् अहं ईशीय, मे स्तोता मोक्षसा म्याव् [ १८३४ ]- हे इन्द्र ! मैंता तू मक्षेला हो धनका स्वामी हूँ, वंता हो मैं वनका स्वामी यदि हो जाऊ, तो मेरी स्तुति करनेवाला पावोंबरा मित्र हो ।

८५ आपः मयोमुचः स्य, ताः न ऊर्जे दधातन, महे रणाप चक्षसे [ १८३७ ]- तन निस्सन्नेह तुल देने-पाते हूँ, वे हमारे बल बढ़ानेवाले हूँ, वे महान और सुन्दर तानको देनेवाले हूँ ।

८६ इह वा य शिष्यतमः रस, तस्य नः भानयत [ १८३८ ]- हे जलो ! यहाँ जो तुम्हारा अत्यन्त सुख देने-वाला रस है, उसे हमें सेवन करनेके लिए दो ।

८७ हे आपः ! यस्य स्याव जिन्वथ, तस्ये अरं गमाम [ १८३९ ]- हे जलो ! जिसका यहाँ निवास हो, ऐसी इच्छा करते हो, उसके लिए हम पूर्ण रूपसे उद्योगी हों, ऐसा तुम करो ।

८८ वातः नः हृदे शम्भु मयोमु मेवजं भा यातु, नः आयूषि प्रतरिषन् [ १८४० ]- वायु हमारी तरफ हृदयको आकष्य देनेवाले और सुखकारक बोध लेकर आये, और हमारी आयु बढ़ावे ।

८९ हे वात ! नः पिता, आता, सखा भस्मि, सः न जीवास्वै छधि [ १८४१ ]- हे वायो ! तू हमारा पिता, भाई और मित्र है, वह तू हमारी आयु दीर्घ कर ।

९० हे वात ! ते गृहे गृहा अमृतं निवर्ति, दे विभा-वसो ! तस्य नः वेदि [ १८४२ ]- हे वायो ! तेरे घरमें तुल स्थान पर अमृत रखा हुआ है । हे धन वातमें रत्न-वासे वायो ! वे धन हमें दे ।

## उपमा

१ समुद्र वर्ध [ १७६७ ]- समुद्रने समान पावोंनी भर दे ।

२ संयतः न [ १७६९ ]- तययी सुखके समान (गिरः यस्मिन्) स्तुतियोंको प्राप्त होती है ।

३ यथा यथा स्तुतयः [ १७७० ]- जैसे जड़े रास्तेसे अनेक छोटें रास्ते फूटते हैं, (स्वयं रास्य पियन्तु) वसी-प्रकार तुमसे अनेक हल निकलते हैं ।

४ यः वर्षा नमन्यः न [ १७७४ ]- जो (अग्नि) गतिमान् वायुके समान वेपवाला होता है ।

५ अयं न [ १७७७ ]- अतिप्रकार मोटा मनुष्यको यथास्थान बहुबाता है, उत्तीप्रकार वह अग्नि (सम्रे वसुं) कल्याण करनेवाले यज्ञको बढ़ाता है ।

६ होता इव [ १७८७ ]- अतिप्रकार होना स्तुति करता है, जसीप्रकार (आतः अत्यन्ति) वह प्रातः नाम सोम-इच्छा करता है ।

७ उरां ध्रुवः न [ १८०८ ]- भेडकी जितप्रकार भेडिया कपाता है, उसीप्रकार ( एषां नेमिः विधुनुते ) ये पावरोंकी धारें सोमत्वताको कूटते हुए कपाती हैं।

८ रथाः इव [ १८१२ ]- जितप्रकार रथोंको तैय्यार करते हैं, उसीप्रकार ( अस्त्रान् ) अस्त्र तैय्यार करते हैं।

९ यिमे न जातयेदस्ते [ १८१३ ]- विप्रेके समान हानो अन्विके समान तेजस्वी होता है।

१० द्यां इव परिजमाने [ १८१४ ]- सूर्यके समान घूमनेवाला।

११ द्रुहन्तरः परज्जुः न [ १८१५ ]- सक्कीको काटने-वाले करतके समान वह अग्नि ( द्रुहन्तरः भवति ) दात्रोंको काटनेवाला होता है।

१२ महिषी इव विजायते [ १८२५ ]- रानीके समान वह अग्नि सुशीमित होता है।

१३ स्वाः न [ १८४७ ]- सूर्यके समान ( दुरो सुरसि अत्कं वसानः ) शीतनेमें सुन्दर लगनेवाले रूपको धारण करता है।

## विंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

अंशसंख्या	ऋषिदेवतासं	ऋषिः	देवता	छन्दः
१७६५	१।१९।१	वृन्नेष आगिरतः	पशुमानः सोमः	वायमी
१७६६	१।१९।१	वृन्नेष आगिरतः	"	"
१७६७	१।१९।३	वृन्नेष आगिरतः	"	"
१७६८	—	वृन्नेषः वामदेवो वा	इन्द्रः	द्विपदा पवितः
१७६९	—	वृन्नेषः वामदेवो वा	"	"
१७७०	—	वृन्नेषः वामदेवो वा	"	"
१७७१	८।६८।१	त्रियमेघः आगिरतः	"	अगृष्टुप्
१७७२	८।६८।१	त्रियमेघः आगिरतः	"	वायमी
१७७३	८।६८।३	त्रियमेघः आगिरतः	"	"
१७७४	१।१४९।३	दीर्घतमा औषध्याः	अग्निः	वि१।ट्
१७७५	१।१४९।४	दीर्घतमा औषध्याः	"	"
१७७६	१।१४९।५	दीर्घतमा औषध्याः	"	"
१७७७	४।१०।१	वामदेवो गीतमः	"	परपंक्तिः
१७७८	४।१०।१	वामदेवो गीतमः	"	"
१७७९	४।१०।१	वामदेवो गीतमः	"	"

( २ )

१७८०	१।४४।१	प्रत्कण्वः काण्वः	"	प्रवापः- ( विपदा बृहती, समा तातो बृहती )
१७८१	१।४४।२	प्रत्कण्वः काण्वः	"	"
१७८२	१०।५५।१	बृहदुक्थो वामदेव्यः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१७८३	१०।५५।६	बृहदुक्थो वामदेव्यः	"	"
१७८४	१०।५५।७	बृहदुक्थो वामदेव्यः	"	"

विंश अध्याय ]

सामवेदका सुबोध अनुवाद

संस्कृत्या	आग्नेयवर्णानं	श्रुतिः	वेद्यता	छन्दः
१७८५	८१९८१४	विन्दुः पूतवक्षो वा आगिरसः	यस्य	साम्पनो
१७८६	८१९८१५	विन्दुः पूतवक्षो वा आगिरसः	"	"
१७८७	८१९८१६	विन्दुः पूतवक्षो वा आगिरसः	"	"
१७८८	८१०११११	जम्बदन्तिनार्गवः	सूयः	प्रभाषः ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती )
१७८९	८१०१११२	जम्बदन्तिनार्गवः	"	"
( ३ )				
१७९०	८१९८१३१	सुकल आगिरसः	दृष्टः	वायवी
१७९१	८१९८१३२	सुकल आगिरसः	"	"
१७९२	८१९८१३३	सुकल आगिरसः	"	"
१७९३	७१३११२०	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	चिराद्
१७९४	७१३११२१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१७९५	७१३११२२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	प्रभाषः ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती, )
१७९६	७१३११२८	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१७९७	७१३११२९	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१७९८	७१३११३०	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	चिराद्
१७९९	७१३११३१	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
१८००	७१३११३२	वसिष्ठो मंत्रावरणिः	"	"
( ४ )				
१८०१	१०११३३१	सुदासः वैजयन्तः	"	शम्भरी
१८०२	१०११३३२	सुदासः वैजयन्तः	"	"
१८०३	१०११३३३	सुदासः वैजयन्तः	"	"
१८०४	८१९१३३	मेघातिथिः काण्वः	"	वायवी
१८०५	८१९१३४	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१८०६	८१९१३५	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१८०७	८१९१३६	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१८०८	८१९१३७	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१८०९	८१९१३८	मेघातिथिः काण्वः	"	"
१८१०	९१६७११६	जम्बदन्तिनार्गवः	वज्रपादः सोमः	"
१८११	९१६७११७	जम्बदन्तिनार्गवः	"	"
१८१२	९१६७११८	जम्बदन्तिनार्गवः	"	"
( ५ )				
१८१३	११११७११	परच्छेपो ब्रह्मोदातिः	अग्निः	अपष्टिः
१८१४	११११७१२	परच्छेपो ब्रह्मोदातिः	"	"
१८१५	११११७१३	परच्छेपो ब्रह्मोदातिः	"	"
१८१६	१०११८०११	अग्निः वायव्यः	अग्निः	विष्टारपणिः
१८१७	१०११८०१२	अग्निः वायव्यः	"	"

मन्त्रसंख्या	ऋग्वेदस्थान	ऋषिः	वेषता	छन्दः
१८१८	१०।१४०।३	अग्निः पायकः	अग्निः	सतोमृहती
१८१९	१०।१४०।४	अग्निः पायकः	"	"
१८२०	१०।१४०।५	अग्निः पायकः	"	"
१८२१	१०।१४०।६	अग्निः पायकः	"	उपरिष्टाद्वयोतिः
( ६ )				
१८२२	८।१९।३०	सोमसिः काण्वः	"	काकुभः प्रगाथः ( विपमा ककुपु, समा सतोमृहती
१८२३	८।१९।३१	सोमसिः काण्वः	"	"
१८२४	१०।१९।३	अरुणो वैतहव्यः	"	जगती
१८२५	—	अग्निः प्रजापतिः	"	पायत्री
१८२६	५।४४।१४	अवस्तातः काश्यपः	विश्वे देवाः	विष्णुपु
१८२७	५।४४।१५	अवस्तातः काश्यपः	"	"
१८२८	—	भृगुः	अग्निः	पायत्री
१८२९	—	भृगुः	"	"
१८३०	—	भृगुः	"	"
१८३१	—	अवस्तातः काश्यपः	"	"
१८३२	—	अवस्तातः काश्यपः	"	"
१८३३	—	अवस्तातः काश्यपः	"	"
( ७ )				
१८३४	८।१४।१	सोमस्यस्यसूक्तितनी काण्वायनी	इन्द्रः	"
१८३५	८।१४।२	सोमस्यस्यसूक्तितनी काण्वायनी	"	"
१८३६	८।१४।३	सोमस्यस्यसूक्तितनी काण्वायनी	"	"
१८३७	१०।१९।१	त्रितिरास्तवायुः, तिमृहतीषो आम्बरीषो वा	वायुः	"
१८३८	१०।१९।२	त्रितिरास्तवायुः, तिमृहतीषो आम्बरीषो वा	"	"
१८३९	१०।१९।३	त्रितिरास्तवायुः, तिमृहतीषो आम्बरीषो वा	"	"
१८४०	१०।१८६।१	उलो वातायनः	वायुः	"
१८४१	१०।१८६।२	उलो वातायनः	"	"
१८४२	१०।१८६।३	उलो वातायनः	"	"
१८४३	—	सुपर्णः	अग्निः	विष्णुपु
१८४४	—	सुपर्णः	"	"
१८४५	—	सुपर्णः	"	"
१८४६	१०।१९३।६	वेनो भार्गवः	वेनः	"
१८४७	१०।१९३।७	वेनो भार्गवः	"	"
१८४८	१०।१९३।८	वेनो भार्गवः	"	"



## अथैकविंशोऽध्यायः ।

अथ नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ९-३ ॥

( १-९ ) १-४, ५ ( १-९ ) अत्रतिरय ऐंश्च ; ५ ( १ ), ६ ( १ ), ८ ( १, ३ ) पायुर्नरऽश्च ; ७ ( १-२ ) गतो  
भाद्याजः ; ९ ( १ ) जय ऐंश्च ; ९ ( २-३ ) गोतमो रक्ष्मणः ; ४ ( ३ ) ६ ( १-२ )-७ ७ ( ३ ) ... ८ ( २ ) ...

॥ १, २ ( २-३ ), ३-४, ५ ( २ ), ६, ७, ९ ( १ ) इन्द्रः ; ५ ( २ ) इन्द्रो यतो वा ; २ ( १ ) बृहस्पति ;

५ ( १ ) जम्बा देवो, ५ ( २ ) इवय ; ६ ( ३ ) ( संज्ञामासिप ) युद्धभूमि - कञ्चव - बहुमत्पत्न्यावितप ।

८ ( १, २ ) [ संज्ञामासिपः १ बर्मे - सोम - यवना, ३ वैवस्वताग्नि ; ९ यौमावयवो ( २-३ ) विन्वे

वेवा ; ८ ( ३ ) ... ३ ॥ १-४, ५ ( १ ), ६ ( १ ) ८ ( १ ) ९ ( १-२ ) त्रिवृत्प,

५ ( २ ३ ), ६ ( २ ) ७ ( १-२ ), ८ ( २ ) अनुवृत्प ; ९ ( ३ ) पतित ;

९ ( ३ ) विराट्पत्न्या ; ७ ( ३ ) विराट् जगती ८ ( ३ ) ... ॥

१८४९ आशुः शिष्टानो धृष्यो न भीमो घनाघनः क्षोभेन धर्षणीनाम् ।

सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्सकमिन्द्रः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०।१।१ )

१८५० सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युक्कारेण दुहस्तेन धृष्युना ।

तदिन्द्रेण जयत तत्सहस्रं युधो नर इयुहस्तेन धृष्या ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०।२।२ )

१८५१ स इयुहस्तेः स निषद्गिमिर्वेद्यी सस्त्रया स युध इन्द्रो गणेन ।

सस्त्रं सुष्टितसोमपा बाहुशुर्वैप्रपन्वा प्रतिहिताभिरैवा ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।१०।३।३ )

[ धा० ४०।४०।२० स्वं ७ ] ( ऋ. १०।१०।३।३ )

[ १८४९ ] ( आशुः भीमः ) शीघ्रता करनेवाला और भयंकर ( धृष्यः न शिशानः ) बँतके समान शत्रुको  
मारनेवाला ( घनाघनः ) शत्रुका नाश करनेवाला ( धर्षणीनां क्षोभणः ) डेर करनेवाले दुष्टोंमें क्रोध उत्पन्न करनेवाला  
( सङ्क्रन्दनः अनिमिषः ) शत्रुओंको बलनेवाला और नाशपूर्ण न करनेवाला ( एकवीरः इन्द्रः ) ऐसा अद्वितीय वीर  
इन्द्र ( शतं सेनायाः सार्क अजयत् ) संकटों शत्रुओंकी सेनाको एक ही साथ जीतकर हराता है ॥ १ ॥

[ १८५० ] ( युधः नरः ) है युद्ध करनेवाले नेताओ । ( सं क्रन्दनेन ) शत्रुओंको बलनेवाले ( अ-निमिषेण )  
मात्सर्य न करनेवाले ( जिष्णुना ) जय प्राप्त करनेवाले ( युक्कारेण ) युद्ध करनेमें निपुण ( दुहस्तेन धृष्युना ) धनप्रेरणा  
पर नियंत्रण करनेवाले ( धृष्युना ) शत्रुओंकी पराजित करनेवाले ( इयु-हस्तेन धृष्या इन्द्रेण ) बाण शरोंमें धारण  
करनेवाले बलवान् इन्द्रको सहायतासे ( तत् जयत ) वह युद्ध जीतो, और ( तत् सहस्रं ) उसमें शत्रुको हराको ॥ २ ॥

[ १८५१ ] ( सः इयुहस्तेः यद्यी ) वह इन्द्र बाण शरोंमें धारण करनेवाले योधाओंकी सहायतासे सब शत्रुओं  
पर अपना अधिकार रखता है, ( सः निषद्गिमिः ) वह तलवारपारी योधाओंकी सहायतासे सब शत्रुओंको घसीट  
है । ( सः इन्द्रः ) वह इन्द्र ( युधः ) युद्ध करनेमें प्रवीण ( गणेन संक्रया ) शत्रु समूहापने साथ युद्ध करता है । ( सं-  
वृष्टिजित् ) युद्ध जीतनेवाला ( सोमपा ) सोम पीनेवाला, ( बाहु-शुर्वी ) बाहुबलमें युक्त ( उप-धम्वा ) धनुष बनाने-  
में कुशल ( प्रतिहिताभिः मस्त्रा ) छोटे हथ बाणोंसे शत्रुओंको मारनेवाला है ॥ ३ ॥

४५ [ तस्य हिन्दी भा. २ ]

- १८५२ वृहस्पते परि दीया रश्मि रक्षोहामित्रा अपवाधमानः ।  
प्रमञ्जन्तेनाः प्रमृणा युधा जवन्नस्माकमेध्याविता रथानाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।०१४ )
- १८५३ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।  
अभिवीरो अभिसन्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।०१५ )
- १८५४ गोत्रमिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।  
इमं सजाता अनु वीरयधमिन्द्र सखाया अनु सध रमध्वम् ॥ ३ ॥ २ ( हे ) ॥  
[ धा० ३६ । उ० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. १०।०१६ )
- १८५५ अग्नि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युस्त्रिन्दुः ।  
दुदध्यवनः पृतनापाटयुधोऽस्माकं सेना भवतु प्र युस्तु ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।०१७ )
- १८५६ इन्द्र आसां नेता वृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।  
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्स्वप्सु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।०१८ )

[ १८५२ ] हे ( वृहस्पते ) बहुतोंका पालन करनेवाले इन्द्र ! ( रथेन परिदीय ) रथसे यहाँ जा । ( रक्षो-हा ) राजहत्तोंकी मारनेवाला और ( अमित्रान् अपवाधमानः ) शत्रुओंके साथ बहुतानेवाला ( सेनाः प्रमंजन् प्रमृण ) शत्रुको तेनाकी छिलभिन्न करने उनका नाश कर । ( युधा जयत् ) युद्धमें जय प्राप्त कर, ( अस्माकं रथानां भविता यधि ) हमारे रथोंका रक्षक होकर तु वध ॥ १ ॥

[ १८५३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( बल-विज्ञायः ) सबके बल जाननेवाला ( स्थविरः ) बड़ा ( प्र-वीरः सह-स्वान् ) विशेष वीरता विमानेवाला, शत्रु को हरा देनेमें समर्थ ( वाजी सहमानः ) बलवान् और ताहस दिला देनेवाला ( उग्रः अभिवीरः ) उग्र, महावीर ( अभि सन्वा सहोजाः ) बलवान् और बलके साथ जलपक्षीभा हुआ ( गोवित् ) गोपोंका पालन करनेवाला तु ( जैत्रं रथं वा तिष्ठ ) विजयी रथ पर बैठ ॥ २ ॥

[ १८५४ ] हे ( सजाताः ) एक स्थानमें रहनेवाले योद्धाओं ! ( गोत्रमिदं ) शत्रुके किलोंकी तोड़नेवाले ( गोविदं ) बाघ पालनेवाले ( वज्रबाहुं ) बलके समान मजबूत गुजालोंवाले ( अज्म जयन्तं ) युद्ध जीतनेवाले ( ओजसा प्रमृणन्तं ) बलके शत्रुका नाश करनेवाले ( इमं ) इस इन्द्रकी आगे करके ( मन्युरयध्वं ) उसके अनुकूल रहकर वीरता दिखाओ । हे ( सखाय ) मित्रो ! ( अनु संरमध्वम् ) इस इन्द्रके अनुकूल रहकर शत्रु पर क्रोध करो ॥ ३ ॥

[ १८५५ ] ( गोत्राणि सहसा अग्नि गाहमानः ) शत्रुके किलोंमें अपनी दानितसे प्रवेश करनेवाला ( अ-दयो वीरः ) शत्रु पर बया न दिला देनेवाला वीर ( शत-मन्युः ) बहुत शत्रुओं पर क्रोध करनेवाला ( दुदध्यवनः ) जो अपने स्वान्तरे हिलाया नहीं आ सकता ( पृतना-पाट ) शत्रुको तेनाकी हरा देनेवाला, ( अयुध्यः इन्द्रः ) जिसके साथ कोई भी शत्रु युद्ध नहीं कर सकता, ऐसा इन्द्र ( युस्तु ) युद्धमें ( अस्माकं सेनाः अ भवतु ) हमारे तेनाका सरक्षण करे ॥ १ ॥

[ १८५६ ] ( आसां नेता इन्द्रः ) हमारी इन सेनाओंका नेता इन्द्र है । ( वृहस्पतिः पुरः एतु ) वृहस्पति समर्थ आगे जाये । ( दक्षिणा यज्ञः सोमः ) चतुरतासे युद्धरूप यज्ञ बलानेवाला सोम जो आगे जाये, ( मरुतः ) मरुतवी ( अभिभञ्जतीनां ) शत्रुओंकी मारनेवाले ( जयन्तीनां देवसेनानां ) जिसमें देवोंकी तेनाके आगे जाये ॥ २ ॥

- १८५७ इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताश्च अथ उग्रम् ।  
महामनसा भुवनक्यवानां घोषा देवानां जयतामृदस्यात् ॥ ३ ॥ ३ ॥ ( च ) ॥  
[ भा० २७। उ१। २३० १। ( ऋ १०। १०। ३१२ )
- १८५८ उद्धर्षय मयश्चायुधान्युत्तमत्वनो मामकानां मनाःसि ।  
उद्ध्वहन्वाजिनो वाजिनान्युदयानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ १ ॥ ( ऋ १०। १०। १० )  
१८५९ अस्माकमिन्द्रः समुतेषु ह्यजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।  
अस्माकं वीरा उच्येर भयन्त्वस्माश्च उ देवा अवतां इवेषु ॥ २ ॥ ( ऋ १०। ११। ११ )
- १८६० असी या सेना भरतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पृघमाना ।  
तां गृह्य तमसापव्रतते यथेतवामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ३ ॥ ४ ( जु ) ॥  
[ भा ३२। उ० १। २४० ५ ] ( अथर्व ३। १। ५ )

- १८६१ असीषां चित्तं प्रतिलोमयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्ये परेहि ।  
अभि प्रेहि निर्दह इत्सु ओकेरन्धेनामिश्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १ ॥ ( ऋ १०। १०। ११२ )

[ १८५७ ] ( वृष्णः इन्द्रस्य ) वरुणान् इन्द्रके ( राज्ञः वरुणस्य ) राजा वरुणके ( आदित्यानां मरुतां ) आदित्योक्तिं भीरु मरुतकिं ( उग्रं शर्षपं ) उग्र मरु हमारे सहायक हों। ( महामनसां ) बिराल हृषयवति ( भुवनक्यवानां ) वायुके क्षीणोकी हिला केने शक्ति ( जयतां देवानां घोषः ) विजयी देवोंकी जयजयकार ( उदस्यात् ) गुनाई देती है ॥ ३ ॥

[ १८५८ ] हे ( मयश्च ) मयवान् इन्द्र ! हमारे ( आयुधानि उद् धर्षय ) सार्वधारी बीरोंका उत्साह बढ़ा, ( वाजिनान् वाजिनान् ) हमारे वलवान् सैनिकोंका मन उत्साहित कर । हे ( युद्धवन् ) वायुको मारनेवाले इन्द्र ! ( वाजिनो वाजिनान् ) हमारे घोड़ोंकी गति बढ़ा, तथा ( जयतां देवानां घोषाः ) उद् यन्तु ) विजयी होकर मानेवाले हमारे रथोंके अथ गुनाई दें ॥ १ ॥

[ १८५९ ] ( अस्माकं समुतेषु इष्वेषु ) हमारे वरुणधारी सैनिकोंका रक्षण ( इन्द्रः ) इन्द्र करे । ( अस्माकं याः इषवा जयन्तु ) हमारे ओ माण है, वे विजयी हों । ( अस्माकं वीराः उच्येर भयन्तु ) हमारे बीर भेद्य हों । हे ( देवा ) देवो ! ( अस्मान् उ ह्वेषु जयत ) पुत्रों हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥

[ १८६० ] हे ( भरतः ) भरतो ! ( या असीं ) ओ वह ( ओजसा स्पृघमाना ) अपने सामर्थ्यो हमारे साथ-सुशक्तता करती हुई परेषां सेना न अभ्येति ) वानुको सेना हथ पर आक्रमण करती हुई जाती है । ( तां अप-प्रतेन तमसा गृह्यत ) उस सेनाको, जिसमें कुछ भी काम नहीं बिचा जा सकता ऐसे, पहले भयंकारसे डक दे, ( यथा पतेषां अन्यः अन्यं न जानात् ) जिसने नि वानु सेनाके लोग वानु-विजयी वरुणस्य सके बीर आगत्यों ही बट मरे ॥ ३ ॥

[ १८६१ ] हे ( अध्ये ) पापके देखते । ( परा इहि ) तू मुझसे दूर हो जा, ( असीषां चित्तं प्रतिलोमयन्ती ) इन वानुभूति चित्तको मोड़ित कर और ( अगानि गृहाणा ) उनके अगोंको जकड़ दे । ( अभि प्र हेहि ) उन वानुओं पर आक्रमण कर । ( इत्सु दाकिं निर्दह ) उनके हृदयोंको तोड़ते जग्य दे । ( अमियाः अन्धेन तमसा सचन्तां ) हमारे वानु पहले अन्धकारके कारण व्याकुल हो जायें ॥ १ ॥

१८६२ प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शुर्म यच्छतु ।

उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधुष्या यथासथ

॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०१।१ )

१८६३ अवसृष्टा परा पत शूरव्ये ब्रह्मसंश्रिते ।

गच्छामिन्नान् पथस्य मामीषां कै च नोच्छिषः

॥ ३ ॥ ५ ( ठा ) ॥

[ धा० १८।३० २।२५-२ ] ( ऋ. ६।७९।१६ )

१८६४ कङ्काः सुपर्णा अनु यन्सेनान् वृषाणामजमसावस्तु सेना ।

मैषां मोक्षयपहारश्च नेन्द्र यथास्येनाननुपयन्तु सवान्

॥ १ ॥

१८६५ अमित्रसेनां मघवज्जम्भां छुनुयतोममि । उभौ तामिन्द्र वृषहन्मथिश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥

१८६६ यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारं विशिखा इव ।

तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरिदितिः शुर्म यच्छतु विश्वाहा शुर्म यच्छतु

॥ ३ ॥ ६ ( या ) ॥

[ धा० २७।३० नास्ति । स्व० १ ] ऋ. ६।७९।१७ )

१८६७ वि रक्षो वि मूर्धो जाहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।

वि मनुमिन्द्र वृत्रहमिमित्रस्याभिदासतः

॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१९१।२ )

[ १८६२ ] हे ( नरः ) वीरो । ( प्र इत, जयत ) शत्रु पर बघाई करो और विजय प्राप्त करो । ( इन्द्रः वः शुर्म यच्छतु ) इन्द्र तुम्हें पुन देवे । ( वः बाहवः उग्राः सन्तु ) तुम्हारी भुजाएं बोरता वृत्त हों । ( यथा अनाधुष्याः यथासथ ) जिसके कारण तुम पर शत्रु आक्रमण न कर सके ॥ २ ॥

[ १८६३ ] हे ( ब्रह्मसंश्रिते शूरव्ये ) सामने प्रेरित किसे यह बाण ! ( अवसृष्टा परा पत ) छोड़े जानेके बाद तू हार जाकर गिर और ( अमित्रान् ) शत्रु पर ( प्र पथस्य ) जाकर गिर । ( मामीषां कै च नोच्छिषः ) उनमेंसे कोई भी प्रीति न रहे ॥ ३ ॥

[ १८६४ ] ( सुपर्णाः कङ्काः ) उत्तम बलवाले मांस भक्षक पक्षी [ बाण ] ( एतान् अनु यन्तु ) इन शत्रुओंका पीछा करे । ( असी सेना ) यह शत्रुकी सेना ( शुषाणां अज अस्तु ) मिटोका अज बने । ( यथा मा अमोधि ) इनमेंसे कोई भी न बचे । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अघहारः च न ) जो अधिक पापों से हो बह शत्रु भी न बड़े, ( यथासि पनाज सवान् अनु स्ययन्तु ) मांसभक्षक पक्षी इन सबका पीछा करें ॥ १ ॥

[ १८६५ ] हे ( मघवन् वृषहन् इन्द्र ) वनवान् और शत्रुके वध करनेवाले इन्द्र ! तू ( अग्नि, च ) और अग्नि ( उभौ ) दोनों ( अस्त्रान् तां अग्निं शत्रुयतो ) हमसे शत्रुता करनेवाले ( अमित्रसेनां प्रति दहतं ) शत्रुकी सेनाको जला डालो ॥ २ ॥

[ १८६६ ] ( यत्र, जित सशस्त्रं ) ( विशिखाः कुमारं इव ) जिसपरहित लड़कोंके समान ( बाणाः संपतन्ति ) बाण गिरते हैं, ( तत्र नः ) वहाँ हमें ( ब्रह्मणस्पतिः अमितिः ) ब्रह्मणस्पति और अधिक ( शुर्म यच्छतु ) तुम देवे । ( विश्वाहा शुर्म यच्छतु ) हमेशा तुम देवें ॥ ३ ॥

[ १८६७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( रक्षः विजहि ) राक्षसोंका नाश कर, ( मूर्धः विजहि ) हितक शत्रुओंका नाश कर । ( वृत्रस्य हनू रुज ) वृत्रकी डोरी तोड़ दे । हे ( वृत्रहन् ) वृत्रका नाश करनेवाले इन्द्र ! ( अभिदासतः अमित्रस्य मनु ) हमारी हानि करनेवाले शत्रुके कोषको समाप्त कर ॥ १ ॥



१८६८ वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पूतन्यतः ।

॥ २ ॥ ( ऋ. १०।५२।४ )

यो अस्मा॑ अमिदा॒सत्यधरं॑ गमया॒ तमः॑

१८६९ इन्द्रस्य बाहू स्वर्गिरो युवानावनापय्यौ सुप्रतीकावसत्तौ ।

तौ युज्जीत प्रथमो योग आगते याम्यां जितमसुराणां मह्य ॥ ३ ॥ ७ ( यि ) ॥  
[ धा० २९ । उ० २ । स्व० ३ ]

१८७० मर्मोणि च वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।

उरोर्वीर्यो वरुणस्ते कृणोतु जयन्त स्वानु देवा मदन्तु ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।७५।१८ )

१८७१ अन्वा अमित्रा मयतास्त्रीर्षाणोऽहय इव ।

॥ २ ॥ ( अथ०. ६।६७।२ )

तेषां वो अमिहुज्जानामिन्द्रो हन्तु वरवरम्

१८७२ यो नः स्वोऽरणा यश्च निष्ठयौ जिघात्समहि ।

देवास्त॑ सर्वं धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म समान्तरम् धर्मं धर्म समान्तरम् ॥ ३ ॥ ८ ( वी ) ॥  
[ धा० २९ । उ० नास्ति । ल० ४ ] ( ऋ. ६।७५।१९ )

[ १८६८ ] हे ( इन्द्र ) ब्रह्म । ( नः मृधः विजहि ) हमारे शत्रुओंका मध्य कर, ( पूतन्यतः नीचा पच्छ ) हथ पर तेजा भेजनेवाले शत्रुओंकी नीचे गिरा । ( य. अस्मा॑ अमिदा॒सति ) जो हमें शत बरानोंकी ब्रह्मा करता है, उसे ( अधरं तमः गमय ) गहरे जलधरेमें बाल दे ॥ २ ॥

[ १८६९ ] ( याम्या अनुसुराणां मह्य सहः जिते ) जितके द्वारा शत्रुओंके पहान् बलको जीता, ( तौ इन्द्रस्य ) वे इन्द्रके ( स्वर्गिरो युवानो ) बड़े नीर तरुण ( अनापय्यौ सु प्रतीको ) जिनपर किनीका आक्रमण नहीं हो सकता, ऐसे हाथोंकी सूटके समान ( अस्तहो बाहू ) व एहने योग युवायें ( योगे आगते ) युद्धके समयमें ( प्रथमो युज्जीत ) सबसे पहले उपयोगमें आती हैं ॥ ३ ॥

[ १८७० ] हे राजन् ! ( ते मर्मोणि ) तेरे मर्मस्थानोंकी ( वर्मणा छादयामि ) कवचसे ढक देता हूँ । उतने बाद ( सोम राजा त्वा ) सोम राजा तुझे ( अमृतेन अनु चस्तां ) अमृतसे ढक देवे । ( वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु ) वरुण तुझे अधिक शुच देवे । ( देवाः जयन्त॑ तथा अनु मदन्तु ) तब देव विजय प्राप्त करनेवाले तुझे मानन्दित करें ॥ १ ॥

[ १८७१ ] ( अमित्रा ) शत्रु ( अशीर्षाणः अहयः इव ) कटे हुए तिरवाले सर्वोक्ति समान ( अन्वा ) अन्व आवे हो जाए । ( तेषां अमिहुज्जानां य. ) अग्निसे जलनेसे बचे हुए शुभ शत्रुओं में से ( वरे परं इन्द्रः हन्तु ) श्रेष्ठ शत्रुकी इन्द्र मारे ॥ २ ॥

[ १८७२ ] ( यः नः अरणा ) जो अपना होते हुए भी शत्रुता करता है, ( यः च निष्ठयः ) जो गुण रहकर ( नः जिघात्सति ) हमें मारना चाहता है, ( त सर्वे देवाः धूर्वन्तु ) उसे सब देव नष्ट करें । ( ब्रह्म धर्म अन्तरं धर्मं ) गान मेरे शत्रुवत्ता ब्रह्म है । ( धर्मं धर्मं अन्तरं अस्तु ) ब्रह्मण की मेरा आन्तरिक ब्रह्म ही ॥ ३ ॥

- १८७३ <sup>३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ ३ १ २</sup> मगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्धा परस्याः ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सुकं सखाय परिमिन्द्र विग्मं वि श्वतू तादि विमृषो नुदस्व ॥ १ ॥ ( ऋ १०१८०१२ )
- १८७४ <sup>३ १ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।  
<sup>३ १ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाच सस्तनूभिर्गन्धर्वैर्हविर्देवहितं यदायुः ॥ २ ॥ ( ऋ १८९१८ )
- १८७५ <sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ॐ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ३ ॥ ९ ( कृ ) ॥

[ धा० २६ । उ० १ । ख० ६ ] ( ऋ १८९१६ )

॥ इति नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्थः ॥ ९-३ ॥ नवमप्रपाठकस्य समाप्त ॥ ९ ॥

॥ श्वेत्कविशोऽध्याय ॥ २१ ॥

॥ इत्युत्तरार्चिक समाप्त ॥

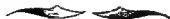
॥ इति सामवेदसंहिता समाप्ता ॥

[ १८७३ ] हे ( इन्द्र ) ब्रह्म । तू ( कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न भीमः ) पर्वतपर रहनेवाले द्विसक सिंहके समान भयकर है । ( परस्याः परावत आ जगन्धा ) बहुत दूरके स्थानसे भी तू यहाँ आ ( सुकं तिग्म परि सखाय ) दूर पहुँचनेवाले लीक्ष्य वस्त्रकी ओर अधिक लीक्ष्य करके ( शत्रून् वितदि ) शत्रुओंको बध कर । ( वि श्वतू नुदस्व ) समान करनेवाले शत्रुओंको हार कर ॥ १ ॥

[ १८७४ ] हे ( देवा ) देवो । ( कर्णेभिः भद्र शृणुयाम ) कानोंसे हय कल्याण करनेवाली बातें सुनें । हे ( यजत्राः ) पातकी ! ( अक्षभिः भद्र पश्येम ) आँखोंसे हितकारी वृत्त ही देखें, ( स्थिरैः अङ्गैः तनुभिः ) मजबूत भयप्रयोगके शरीरसे ( तुष्टुवाच ) वृन्धारी स्तुति करते हुए ( यत् देवहितं यायुः ) देवोंके द्वारा नियत की गई आयुकी ( व्यशोमहि ) हम प्राप्त करके अन्त तक हय कार्य करते रहे ॥ २ ॥

[ १८७५ ] ( वृद्धश्रवा इन्द्र न स्वस्ति ) बहुत प्रशंसित इन्द्र हमारा कल्याण करनेवाला हो, ( विश्ववेदाः पूषा न स्वस्ति ) सबत पूषा हमारा कल्याण करनेवाला हो ( अरिष्टनेमि तार्क्ष्य न स्वस्ति ) आर्हसित शत्रुओंके पातमें रक्षनेवाला मुपय हमारा हित करनेवाला हो । ( बृहस्पति न स्वस्ति विदधातु ) ज्ञानका स्वामी हमारा कल्याण करे ॥ ३ ॥

॥ इति पक्षविशोऽध्यायः ॥



# एकविंश अध्याय

## सुभाषित

१ आशुः भीमः घृषमः न शिशानः घनाघमः चर्य-  
गानि शोभणः, संक्रन्दनः अनिमियः एकवीरः इन्द्रः  
शले सेनाः साके अजयत् [ १८४९ ]- लोप्र कार्य  
करनेवाला, अर्धकर धूर, बलके समान शत्रुको मारनेवाला,  
शत्रुका समूल नाश करनेवाला, हँस करनेवाले बूढ़ोंमें कोम  
उत्पन्न करनेवाला, शत्रुओंको बलानेवाला, आत्मय न करने-  
वाला अद्वितीय वीर इन्द्र संकटों शत्रुओंको तेजाओको मोतकर  
हृता है ।

२ हे युधः नरः ! संक्रन्दनेन अनिमियेण जिष्णुना  
युक्तारेण दुद्रुच्ययमेन घृष्णना इयुहस्तेन घृष्णा  
इन्द्रेण तत् जयत, सहर्ष्व [ १८५० ]- हे युद्ध करनेवाले  
नेतामी ! शत्रुओंको बलानेवाले, आत्मय न करनेवाले, विजयी,  
युद्धमें प्रवीण, युद्धमें अपने स्थानपर स्थिर रहनेवाले, शत्रु-  
ओंको हरा देनेवाले, बाणोंको हाथोंमें धारण करनेवाले मल्लान्  
इन्द्रकी सहायतासे युद्ध जीतो और शत्रुओंको हटाओ ।

३ सः इयुहस्तेः यशसि, सः जिपक्रिमिः सः इन्द्र-  
युधः यणेन संघट्टा, संघट्टजित्, यादुशर्षी उग्रधन्वा  
प्रक्षितामिः अरता [ १८५१ ]- वह इन्द्र बाण हाथमें  
धारण करनेवाले योधाओंको तहपतासे सन शत्रुओंको अपने  
अधिकात्माने रक्षता है । वह तलवार हाथमें रखनेवाले योधाओं  
की सहायतासे शत्रुओंकी वधमें करता है । वह इन्द्र युद्ध  
करनेमें प्रवीण शत्रुओंके समूहके साथ एकदम युद्ध करता है ।  
वह युद्ध जीतनेवाला, बाणबलसे सामर्थ्यवान्, धनुष चलानेमें  
कुशल और छोड़े हुए बाणोंका वध करनेवाला है ।

४ हे हृहरूपते ! रथेन परित्यज्य, रक्षोहा, अभिजान्  
अपवाधमानः, सेनाः प्रसंजन् प्रमृण, युधा जयन्  
अस्माकं रथानां अघिता यन्त्रि [ १८५२ ]- हे बहुतेका  
पालन करनेवाले इन्द्र ! रथसे यहाँ आ, रक्षकोंको मारने-  
वाला, शत्रुओंकी रोकनेवाला, शत्रुकी सेनाको शिथिल  
करके उनको नष्ट कर । युद्धमें अपवाध कर और हमारे  
रथका रक्षक हो ।

५ हे इन्द्र ! बलविशालः स्वधिरः प्रवीरः सह  
स्वान् पात्री सहमानः उग्र अधिवीरः अभिमत्यः,

सहोजाः गोधित्, जैत्रं रथं आतिष्ठ [ १८५३ ] हे  
इन्द्र ! तू सख्यक बल जागता है । महान् विजय सामर्थ्यवान्  
वीर, शत्रुकी हारनेवाला, बलवान् वीर साहस बलानेवाला,  
उग्र महावीर, प्रभाव हासनेवाले सामर्थ्यसे युक्त, पात्रोंको  
बलनेवाला तू विजयी रथ पर बैठ ।

६ हे सजाता ! गोत्रभिर्गोविन्दं यज्याहुं अग्र  
जयन्तं ओजसा प्रमुण्यन्तं इमं इन्द्र अनुवीर्यरथं अह-  
संरम्भयम् [ १८५४ ]- हे युद्ध करनेवाले वीरो ! शत्रुओंके  
किले तोड़नेवाले, गाव बलनेवाले, मखके समान कठोर  
बाहुओंवाले, युद्ध जीतनेवाले, अपने बलसे शत्रुओंको मष्ट  
करनेवाले इस इन्द्रको आगे करके वीरता दिखाओ, शत्रु  
पर कोष दिखाओ ।

७ गोत्राणि सहस्रा अभिगाहमानः अय्यः धीरः  
शतमन्युः दुद्रुच्ययनः, घृत्तमायाद् अयुधयः इन्द्रः  
युम्सु अस्माकं सेनां प्र जयतु [ १८५५ ]- शत्रुके किलेमें  
अपनी शक्तिसे प्रवेश करनेवाला, शत्रु पर दया न करनेवाला,  
संकटों प्रकारसे शत्रुपर कोष करनेवाला, जो अपने स्थानसे  
हिलाया नहीं जाता, शत्रुकी सेनाकी हारनेवाला, जिसके  
साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता ऐसा इन्द्र हमारी सेनाकी  
रक्षा करे ।

८ मरतः अभिर्भज्यतीनां जयतीनां देय-सेनानां  
अग्रं यन्तु [ १८५६ ] मरत वीर शत्रुओंकी मारनेवाले  
विजयी देवसेवाके आगे बढे ।

९ उग्रं शर्घः महाप्रनलां धुधनच्यवानां जयतां  
देवानां घोषः उदस्वात् [ १८५७ ]- उग्र मनेके, शत्रुके  
वीरोंको स्थान अष्ट करनेवाले विजयी देवोंके उग्र बलके  
कारण होनेवाले जययोग सुनाई देते हैं ।

१० हे मघयन् ! आयुष्यानि उदयय [ १८५८ ]  
- हे इन्द्र ! हमारे शत्रुपारो वीरोंका उत्साह बढ़ा ।

११ मामकानां सत्त्वनां मनांसि उग्र हय्य  
[ १८५९ ]- हमारे बलवान् वीरोंका मन हवित कर ।

१२ वाजिनां धाजिनानि उग्र जयतां रथानां  
घोषाः उग्र यन्तु [ १८५८ ]- हमारे घोड़ोंके वेग बढ़ा ।  
हमारे विजयी रथोंका शब्द सुनाई दे

१३ अस्माकं समृतेषु ध्यजेषु इन्द्रः । [ १८५९ ] - हमारे ध्यजापारो संनिर्वाको इन्द्र रक्षा करे ।

१४ अस्माकं इषयः जयन्तु । [ १८५९ ] - हमारे माण विजयी हों ।

१५ यस्माकं वीराः उत्तरे मयन्तु । [ १८५९ ] - हमारे वीर विजयी हों ।

१६ देवाः । अस्मान् हवेषु अथतः । [ १८५९ ] - हे देवो ! हमें युद्धमें दुरसित रखो ।

१७ या असौ ओजसा स्पर्धमना परेषां सेना नः अभ्येति, तां अपप्रतेत तमसा गृह्यत, यथा यत्तेषां अयः अयं न जानाम् । [ १८६० ] - जो यह अपने सामर्थ्यसे हमसे युकाबला करती हुई शत्रुको सेना हम पर धाई करती हुई आती है, उस शत्रुकी सेना पर अग्रकार छा जाय ऐसा कर, जिससे कि वै एक दूसरेको पहचान न सके ।

“ अपप्रत तमसात् ” नामका अस्र प्रयोग युद्धमें होता था, उससे शत्रुके वीर अन्धेरेके कारण मन्थेते हो जाते थे और आपसमें एक दूसरेको पहचान भी नहीं सकते थे ।

१८ अथे । परा इहि, अमीषां चित्तं प्रतिलो-  
भयसीं अंगानि गृहाण । [ १८६१ ] - हे पाव ! हमसे दूर हो, इन शत्रुके चित्तोंकी मोहित कर और उनके शरीरके अंग शक्य है ।

१९ अग्नि मेहि, हस्तु शोकैः निर्दह । [ १८६१ ] - शत्रु पर आक्रमण कर, उनके हृदय शोकसे जला दे ।

२० अग्नित्राः अग्नेन तमसा सचन्ताम् । [ १८६१ ] - हमारे शत्रु घोर अग्रकारसे व्याकुल हों ।

२१ नरा प्र हत, जयत, इन्द्रः यः शर्म यच्छतु । [ १८६२ ] - हे वीरो ! शत्रु पर आक्रमण करो, विजय प्राप्त करो, इन्द्र कुहारा कृपाण करे ।

२२ यः यद्वयः उग्रः सन्तु, यथा अनाभृष्याः आस्थ । [ १८६२ ] - तुम्हारी मृज्यां वीरताय विद्यानेवासी हों, जिनके कारण तुम पर शत्रु आक्रमण न कर सके ।

२३ हे अक्षसंशिते शरव्ये । अवच्छेष्टा परा पत, अमित्रान् प्र पश्य, अमीषां कंचन मा उच्छिद्यः । [ १८६३ ] - हे शत्रुशर्क छोटे गए माण ! तु दूर जाकर शत्रुपर गिर । उनमें कोई भी शिवा न रहे ।

२४ सुपर्णा ! क्वाः एनान् अनु यन्तु । [ १८६४ ] - उत्तम पक्षवले मांसमशक पक्षी ( बाण ) इन शत्रुओंका पीछा करें ।

२५ असौ सेना गृधानां भग्नं अस्तु । [ १८६४ ] - यह शत्रुकी सेना गिद्धोंका भग्न बने ।

२६ एषां मा अमोघि, अघहारः च न, ययांसि एनान् सर्वान् अनु संयन्तु । [ १८६४ ] - इन शत्रुओंमेंसे कोई भी न बचे । अव्यक्ति पापी न होनेवाला शत्रु भी न बचे, मांसमशक पक्षी इन शत्रुओंका पीछा करें ।

२७ अस्मान् तां अग्नि शत्रुयतीं अमित्रसेनां प्रति-  
दुहते । [ १८६५ ] - हम पर धतकर आनेवाले उस शत्रुकी सेनाको जला दे ।

२८ यत्र याणाः सम्पन्नन्ति, तत्र नः शर्म यच्छतु । [ १८६५ ] - जहाँ बाण शत्रुकी ओरसे आकर हम पर गिरते हैं, उस युद्धमें हमें सुख मिले ।

२९ हे इन्द्र ! रक्षः मूधः विजहि, अमिदासतः अमित्रस्य मय्यु । [ १८६७ ] - हे इन्द्र ! राक्षसों और हित्वांकी पार, हमारी हानि करनेवाले शत्रुओंके कोधको समाप्त कर ।

३० हे इन्द्र ! नः मूधः विजहि, पृतन्यतः नीचा यच्छ, यः अस्मान् अमिदासति, अघरे तमः गमय । [ १८६८ ] - हे इन्द्र ! हमारे हितक शत्रुओंकी हटा, हम पर सेना भेजनेवालोंकी नीचे गिरा । जो हमें शत बयानेकी इच्छा करता है उसे गहरे अग्रकारमें डाल दे ।

३१ याभ्यां मसुराणां महान् सारः जिते, तौ इन्द्रस्य स्वचिरौ युयानी अनाभृष्या सुमतीकी असह्य पाहू योमे आसते प्रथमौ युंमौत । [ १८६९ ] - जितने मसुरोंके महान् बलको जीता, उन इन्द्रकी दही, सरण, आक्रमण किए नामके बयोध, उत्तम प्रतीक, शत्रुके लिए असह्य ऐसी दोनों हों भुजाय युद्धके समय उपयोगमें आती हों ।

३२ हे राजन् ! ते मर्माणि धर्मणा छादयामि । [ १८७० ] - हे राजन् ! तेरे मर्मस्थान कवचसे मैं ढकता हूँ ।

३३ देवाः जयन्ते त्वा अनुमदन्तु । [ १८७० ] - देव भीतनेवाले तुझे आनन्दित करें ।

३४ अग्नित्राः अग्निर्पाणः अहयः इय अग्धाः अथत । [ १८७१ ] - शत्रु कटे हुए तिरवले शरीरोंके समान अथे हो जाए ।

३५ तेषां चरं चरं इन्द्रः हनन्तु । [ १८७१ ] - शत्रुओंके मुख्य-मुख कोरोंके इन्द्र मारे ।

३६ यः स्वः अरणः यः न निष्ठयः नः जिघांसति तं स्वयं देयाः धूर्वन्तु । [ १८७२ ] - जो अपना होते हुए भी

## एकविंश अध्याय ]

## सामवेदका सुगोप अनुयाय

देव करता है और वो गुप्त रह करके हमें मारना चाहता है । उसे शय नष्ट करें ।

३७ ब्रह्म मम अन्तरे धाम [ १८७२ ]- शाल येरे अन्तरका कवच है ।

३८ हे इन्द्र ! कुचरः गिरिष्ठाः मृगा न भीमः [ १८७३ ]- हे इन्द्र ! पर्यंत पर रहनेवाले तिहारे छमान वृक्षान्तेति सिद्ध सम्यकर है ।

३९ परस्व्याः परावतः आजगन्ध [ १८७४ ]- बहुत दूरे स्थानसे भी तु हमारे पास आ ।

४० सूक्तं दिग्मं पथि संशाय वानुव्यधितदि, मृगः पथि सुवस्व [ १८७५ ]- दूर, पशुबन्धनेवाले तीक्ष्ण शत्रुकी और अधिक तीक्ष्ण करके धनु पर फेंक व वृष्टोंको मार ।

४१ हे देवाः ! कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम [ १८७६ ]- हे देवो ! कानोंसे हम कहवाण करनेवाली बात सुनें ।

४२ असभिः भद्रं पश्येम [ १८७७ ]- मोक्षोंसे कथाण-कारक वृत्त देखें ।

४३ स्थिरैः अंगैः सन्नुमिः तुष्टुपांसः यम् देयहिती

आयुः न्यनोमहि [ १८७४ ]- स्थिर अंगोंसे युक्त धरीरोंसे ईश्वरकी स्तुति करते हुए देवों द्वारा वो हुई मायका उपभोग करें ।

४४ इन्द्रः पूषा युहस्पतिः नः स्थितिं दधातु [ १८७५ ]- इन्द्र, पूषा, युहस्पति आदि देव हमारा बचाव करें ।

## उपमा

१ मृगमः शिवाशनः न [ १८७६ ]- बिलके सामान शत्रुको टक्कर देनेवाला ।

२ विमिषाः कुमार इय [ १८७७ ]- शिवासे रहित कुमारोंके समान तीक्ष्ण ( याजाः ) बाण होते हैं ।

३ अशीर्षाणः अहयः इय [ १८७८ ]- कटे हुए तिर-वाले सर्पोंके समान ( अमिषाः अन्धाः भवत ) शत्रु मर्त्ये हो जायें ।

४ कुचरः गिरिष्ठाः मृगा न [ १८७९ ]- पर्यंत पर रहनेवाले तिहारे सामान ( इन्द्रः भीमः ) इन्द्र भयकर है ।

## एकविंश अध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

मन्त्रसंख्या	ऋषिदेवता	ऋषिः	देवता	छन्दः
१८४९	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१८५०	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५१	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५२	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	युहस्पतिः	"
१८५३	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	इन्द्रः	"
१८५४	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५५	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५६	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५७	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५८	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	"	"
१८५९	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	यमताः	"
१८६०	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः	जम्वा	"
१८६१	१०।१०१।१	अप्रतिरथ ऐन्द्रः		

मन्त्रांख्या	श्रुत्येवस्थान	श्रुतिः	वेदाः	छन्दः
१८६१	१०।१०३।१३	अप्रतिरप ऐर्य	इन्द्रो मरुतो वा	अनुष्टुप्
१८६२	६।१५।१७	पापुर्भारिहामः	इषव	"
१८६३	—	—	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१८६४	—	—	"	अनुष्टुप्
१८६५	६।७५।१७	पापुर्भारिहामः	सधामासिधः	धनिः
१८६७	१०।१५१।३	सातो भारिहामः	इन्द्रः	अनुष्टुप्
१८६८	१०।१५१।७	शातो भारिहामः	"	"
१८६९	—	—	"	विराट् जगती
१८७०	६।७५।१८	पापुर्भारिहामः	वर्मसोमवदणाः	त्रिष्टुप्
१८७१	अथर्व. ६।१७।१	अथर्वी	इन्द्रः	अनुष्टुप्
१८७१	६।७५।१९	पापुर्भारिहामः	वर्म सोमवदणाः	"
१८७३	१०।१८०।१	अथ ऐर्यः	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१८७३	१।८१।८	गोतमो राहुगण	विश्वदेवाः	"
१८७४	१।८१।९	गोतमो राहुगण	"	विराट्स्थाना





अप टारा मतीनी	११२४
अपा नपात सुभय	१४१४
अपा केनेन नमुचेः	२११
अपातु सिन्दधमः	१४५
अपादीनामपदिर	३३७
अपातिवेईररततुकाणा.	५४४
अपिरकट्टनः	१३१
अपुष्टो पुरतमा	३३१
अपुष्टा इन्द्राय वायव	१३५
अपुष्ट रेणः शिथि	१८४४
अपुष्टि शाता सज्जाम	१७४७
अपुष्टिनि. वमिवा	७३; १७४६
अपुष्टिनिमिज्जो ईदित	१७५८
अपुष्टिपुष्टपुष्ट	१०३१
अपि गवामिनी वीटये	१०६१
अपि गावो अरिगुपु(गो)	१३६
अपिगोपाणि सहा	१८५१
अपि ते मण्डला	६५११
अपिः येवं सतिता	४६४
अपि रयं भव	३७१
अपि मिट्टे वपये	५१८; १४०८
अपि रयः पूदनीय	३५१; १५७३
अपि रयः वृष्टा क्रोते	१३३; ७३३
अपि रयः वृष्टा क्रोते	१३३; ७३३
अपि वृष्ट वृष्टा	५७१; १०११
अपि शैलाणि बभूवः	७६५
अपि द्विजम्मा त्री	१७७१
अपि प्र वीरति	१६८; १४८७
अपि प्रवर्ति वाहता	१५१७
अपि प्र वः वृष्टा	३३५; ८११
अपि प्रिद्विजवपु	११३७
अपिप्रियाणि वाहता	१७३३
अपि प्रियेति वरने	५५४; ७७०
अपि प्रिया दिव	११७०
अपि प्रिया वः वृष्टा	८७०
अपि वया सुवपन वृष्टा	१३४७
अपि वया विवपन	१८४३
अपि वपु विवपन	११४७
अपि विरा अनाप	११४७
अपि वः वृष्टा	३६५

अग्निं वनानि पर्वते	१०११
अग्निं सान्नास आसवः	५१८१ ८५६
अग्निं हि सखा सोमपा	१५४८
अग्नीं वक्त्रो अमुद्रः	५५०
अग्नीं नो वप्यं दिव्याः	१४९८
अग्नीं नो वायुसातमं	५४९१ १३३८
अग्नीपतस्तदा	१०३
अग्नीं पु नः सखीनाम्	६८८
अभ्यग्निं हि धरुवा	१५०७
अभ्यग्नें वृद्धपात्रो	९०१
अभ्यग्नें स्नायुच	१०५३
अभ्यग्नेर्वाभ्यग्नुतो	१०५३
अभ्यग्नाग्निर्दह्यो	१६०६
अभ्यागुच्यो अग्नीं	३९९१ १३८९
अग्निं तेनीं सयपत्रं	१८६५
अग्निमद्वा विचयेभिः	१४४७
अग्नीं ये देवाः	१६८८
अग्नीं वा विप्रां अग्निं	१८६१
अग्नें त इन्द्र सोमो	१५९१ ७३५
अग्नें दक्षस्य सधनीं प्रवे	११००
अग्नें पुनाम तपछी	८२१
अग्नें पूषा रथिर्गन्ध	५४६६ १८८८
अग्नें अरात्र सानसिः	६९५५
अग्नें यथा न आमुनय	९४४०
अग्नें वा मधुमत्तया	१०१
अग्नें वा मित्रावरुणा	९१०
अग्नें विष्वक्मिहिः	५०८
अग्नें विश्वा अग्निं	९४८
अग्नें विधानि रिष्ठो	७५७
अग्नें वा यो दिवद्वपि	९००
अग्नें सारुक्षमन्वे	४१८
अग्नें सधस्यमिभिः	१६०८
अग्नें सखा वरि मुष्ठा	१८४५
अग्नें स होवा नो	१०५६
अग्नें सूर्यं द्यौपयवर्गं	७५६
अग्नें सोम इन्द्र	१४४१
अग्नेयसिः सुवीर्यश	६०
अग्नेमु ते सप्तसि	१८३१ १५९९
अग्नां विप्रो विधानव	८०५
अग्नां विप्रो व दग्धस्य	१८८८

[illegible]



अवाभि देवं	३१३	आ ते दक्ष मयोमुख	४९८; १११३	आपापासो विवस्वतो	११२३
अवाभि योम इन्द्र	३४७; १०९८	आ ते वरुणे मनो	८; ११६६	आपो हि मा मयोधुव	१८२७
अवाभि क्षेमो अश्वयो	५६०; १३१६	आ त्वा गिरि	३८९	आ प्रागान्नद	६०८
अवाभ्यर्च्युर्दयापातु	४७३; १००८	आ त्वा प्रावा वदधिद	१८०९	आ तु-र्द्ध इन्द्रा ददे	२१६
अवि हि नी। सेनो	१००१	आ त्वा १५ खण्डुर्वा	२९५	आ मात्यमिरवर्वा	१७५१
अग्रसुत प्र वाजिनो	४८९; १०३४	आ त्वा मङ्गमुखा इति	६६७	आग्निद्युवमग्निष्टिमि	६४९
अग्रम वेदवीर्ये	१८१९	आ त्वा रथं नयो	१५४; १७७१	आ अन्नमा वरेण्यमा	११३८
अग्रमग्निन्द्रः यथा	१११८	आ त्वा रथे हिरण्ये	१३९२	आ सन्निन्द्र हरिणिः	३४९; १७१८
अग्रमग्निन्द्र ते गिरः	२०५	आ त्वा विशाग्निष्वन्वाः	१९७; १६६०	आमसु पकमैव	१४३१
अग्नी या वेमा मरुतः	१८६०	आ त्वा सखाय	१४७	आ मित्र वह्ने यो	१११५
अहन्ति मन्म वृष्ये	१६७७	आ त्वा उदसमा	२४५; ११९१	आ नः पुर्दे नार्मिर्गिम्	१७७४
अहिन्त वीर्यो अयं सुतः	१७७७; १७८५	आ त्वा सोमस्य	१०७	आय योः पुदिनरकर्मिन्	६३०; ११७६
आहु औपत्युरी	४६१	आ त्वा नि बाँदते	१६४; ७४०	आ यद् दुःखः सप्तजनवा	१०८६
आरमन्ते त्वा वद्विषमग्नि	५७१	आहव रवयामु	८५१	आ वयोः कर्तव्यं	१०३०
आरमन्ते देवस्यै	११३६	आदिमज्जत् रेतयो	३०	आ वाहि वनवा	४४३
आरमन्मग्निन्द्रमिन्द्रं	१०४६	अद्यदेवेन्द्रः उगण्ये	१११९	आ वाहि वृष्टुमा हि त	१९११; ६६६
आरमाअरमा इन्द्रयवी	१४४४	आदि हतो यथा नय	७७०	आ वायवमिन्द्रये	४२९
आरमाकमिन्द्रः चमृतेषु	१८५९	आदि वैविश्वरवमागच्छ	१४७५	आ वायु प नः	९९७
अर्य प्रणाममुत्त	७५५	आदि त्रिष्टय योययो	७७१	आ योनिमहो	९७५
आर प्रया हेमना	५१६; १३७९	आदीमध न	१०१०	आ रयिमा वृष्टेयुममा	११३९
आर प्रणालि पूये	१७१९	आ न इन्द्रो वातमिधन	८२५	आ व इन्द्र इति यथा	९१४
आर्येन्द्रो मदेव्या	६९६	आ नः सुतात	१३९८	आ वैवते मयथा	८७७
आर्येन्द्रो वाधे	१५७४	आ नः योम सवत्	११५४	आ वयस्य सदि	१०३८
अर्ध प्रमेन अन्नमा	१५०१	आ नः कोम सहे	८१४	आ वयस्य वृष्टय	१०३९
अहमस्मि अन्नमा	५९४	आ नरते यज्ञं मरुतो	१४३३	आवेर्मर्वा आ वाजं	४३५
अहमिन्द्रि विष्टुमरि	१५९; १५००	आ नो अग्ने यमोक्ष	४३३	आविवाअन्नायतो अयो	९००
आ गता मा दिव्यय	४०१	आ नो अग्ने सुमोक्ष	१५०६	आ विष्टुमहमा भुतो	४८५
आग्नि हवर्धुमि	४४९	आ नो अन्न परमेष्वा	१६९९	आ नो राजानमरारार	६९९
आग्नि सृष्टे रयि	१५९९	आ नो मित्रायवधा	३१७१; ६६३	आग्निः शिवायो पुषमा	१८९९
आ या गमयति धवन्	७८५	आ नो रत्नाग्नि विजयी	१७४५	आग्निः वृष्टमते	८९८
आ या त्यावान् रमना	१०८५	आ नो नयो वय	३५३	आ नुते प्रियत मित्र	१४८०
आ या ये कस्मिन्पते	११३३; १३३८	आ नो विष्टुमहमिन्द्र	३६९; १४९२	आ योता परि	५८०; ११७४
आ जाग्रदग्निर्ध न्त	११५७	आ यमय गन्ति	८६३	आ योम त्वायो	५१३; १६८९
आ जाग्रदग्निर्ध न्त	१३८७	आ यमय गन्ति	१०८३	आ हरः अग्रजिरे	१४९०
आ जुहोति इविवा	६६	आ यमय गन्ति	१०८३	आ इवेण पुण्ये	५५३
आ रिष्ठ दग्धयय	१०९९	आ यमय गन्ति	१०८३	आ इवेणो अहो	७३८
आ रू न इन्द्र उमन्तो	१६७; ७९८	आ यमय गन्ति	१०८३	आग्निः वृष्टमते	८९८
आ रू न इन्द्र उमन्तो	१८१	आ यमय गन्ति	१०८३	आग्निः वृष्टमते	८९८
आ ते आन इयीपहि	४१९; १०२१	आ यमय गन्ति	१०८३	आग्निः वृष्टमते	८९८
आ ते आन अया इनि	१०२३	आ यमय गन्ति	१०८३	आग्निः वृष्टमते	८९८



[illegible]

एष यमरुचिः	१०८९	ओक्विपुनरुचिः	१०८९	गम्भीरः उदधीरिः	१७९०
एष दिवं वि धारति	१०९०	क इमं मातृवत्	१०९०	गम्भी मातुः पित्राभ्यां	१७९१
एष दिवं व्याधति	१०९१	क ईं वेदं छतं तवा	१०९१	गम्भी सु धीं यथा पुत्रा	१०९२
एष देवां शुभायेत	१०९२	क ईं स्वपात्रं नरः	१०९२	गायत्रं त्रैलोक्यं जगत्	१०९३
एष देवो अमर्यः	१०९३	कङ्कः सुपात्रो अत्रु	१०९३	गायन्ति तथा गायन्ति	१०९४
एष देवो रथयति	१०९४	कङ्का इन्द्रं यदकत	१०९४	गाय तव वदामहे	१०९५
एष देवो विप्राकुम्भः	१०९५	कङ्का इव मृगवः	१०९५	गायन्ति इन्द्र ओम्ना	१०९६
एष देवो विप्रा कुतो	१०९६	कङ्कमिर्गुणवत्	१०९६	गायन्ति इन्द्र ओम्ना	१०९७
एष विप्रा वायव्यः	१०९७	कङ्का कस रतरीति	१०९७	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१०९८
एष विप्रा मे मीयते	१०९८	कङ्का मर्त्यराज्यं	१०९८	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१०९९
एष वसिष्ठे अक्षरतोमो	१०९९	कङ्का कसो रतोर्ध्वं ह्येत	१०९९	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११००
एष पुत्र विशाखे	११००	कङ्का प्रवर्तते महे	११००	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११०१
एष प्र कौतिल्यमो	११०१	कङ्का कसि रतरीति	११०१	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११०२
एष प्रलेख जम्बवः	११०२	कङ्का ते अस्ते अक्षर	११०२	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११०३
एष प्रलेख मन्मथः	११०३	कङ्का ते न जम्बवः	११०३	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११०४
एष प्रलेख मन्मथः	११०४	कङ्का ते न जम्बवः	११०४	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११०५
एष प्रलेख मन्मथः	११०५	कङ्का ते न जम्बवः	११०५	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११०६
एष प्रलेख मन्मथः	११०६	कङ्का ते न जम्बवः	११०६	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११०७
एष प्रलेख मन्मथः	११०७	कङ्का ते न जम्बवः	११०७	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११०८
एष प्रलेख मन्मथः	११०८	कङ्का ते न जम्बवः	११०८	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११०९
एष प्रलेख मन्मथः	११०९	कङ्का ते न जम्बवः	११०९	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१११०
एष प्रलेख मन्मथः	१११०	कङ्का ते न जम्बवः	१११०	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११११
एष प्रलेख मन्मथः	११११	कङ्का ते न जम्बवः	११११	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१११२
एष प्रलेख मन्मथः	१११२	कङ्का ते न जम्बवः	१११२	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१११३
एष प्रलेख मन्मथः	१११३	कङ्का ते न जम्बवः	१११३	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१११४
एष प्रलेख मन्मथः	१११४	कङ्का ते न जम्बवः	१११४	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१११५
एष प्रलेख मन्मथः	१११५	कङ्का ते न जम्बवः	१११५	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१११६
एष प्रलेख मन्मथः	१११६	कङ्का ते न जम्बवः	१११६	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१११७
एष प्रलेख मन्मथः	१११७	कङ्का ते न जम्बवः	१११७	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१११८
एष प्रलेख मन्मथः	१११८	कङ्का ते न जम्बवः	१११८	गिरा वज्रां न सम्भूतः	१११९
एष प्रलेख मन्मथः	१११९	कङ्का ते न जम्बवः	१११९	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२०
एष प्रलेख मन्मथः	११२०	कङ्का ते न जम्बवः	११२०	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२१
एष प्रलेख मन्मथः	११२१	कङ्का ते न जम्बवः	११२१	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२२
एष प्रलेख मन्मथः	११२२	कङ्का ते न जम्बवः	११२२	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२३
एष प्रलेख मन्मथः	११२३	कङ्का ते न जम्बवः	११२३	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२४
एष प्रलेख मन्मथः	११२४	कङ्का ते न जम्बवः	११२४	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२५
एष प्रलेख मन्मथः	११२५	कङ्का ते न जम्बवः	११२५	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२६
एष प्रलेख मन्मथः	११२६	कङ्का ते न जम्बवः	११२६	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२७
एष प्रलेख मन्मथः	११२७	कङ्का ते न जम्बवः	११२७	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२८
एष प्रलेख मन्मथः	११२८	कङ्का ते न जम्बवः	११२८	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११२९
एष प्रलेख मन्मथः	११२९	कङ्का ते न जम्बवः	११२९	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११३०
एष प्रलेख मन्मथः	११३०	कङ्का ते न जम्बवः	११३०	गिरा वज्रां न सम्भूतः	११३१
एष प्रलेख मन्मथः	११३१	कङ्का ते न जम्बवः	११३१		

त हिन्वन्ति मयस्मृत	१७१७	तारिषिदिवापवति	१३८: ८६३	ते मन्वत प्रथम	६०३
तं हि स्वराज्य दृढमे	१७१४	तारिषिधरतो	६३१	विषा दारणे	१०११
त होतारामभरस्य	१५१४	तारस मन्वी वावति	५००: १०५७	ते सुतासं विविधता:	१८११
तपयती मनयो	५०७	तारसमुद्रं पयवान	८५७	ते स्वाय देवबल	१०६९
तं गायमा गुराया	१६१३	तारिषि विद्वदुमिग	१३७: ६८७	तोषा दृष्टया दुःखे	१७०१
त गुर्याया स्वगरे	१०१३: १६८७	तप कपा तकोविता	१०५१	तोषाया रमयावाता	१०७४
ततो विराजजायत	६११	तप स्व इन्दो अजयती	१३२६	ययुषः यजार्थ	१७०१: १६४१
तते यतो अजायत	१४१०	तप त्वदिग्मय दृष्टता	१६४५	ययुषो अयय	१५७
तत्त्वविबुधैरेवं	१६४१	तप स्वयं नृजोड	४६६	ययुषु वाजिने	३३३
तद्वने युष्मदा मर	१३३	तप योदिग्म वीत्ये	१६४५	यं स्व मेवं महता	१७७
तद्वया पित उक्थियो	८८३	तप द्रष्टा वतद्रुप	१३१७	जगतामिन्द्र	३३३
तदिदं च द्रुवमेव	१८८३	तप द्रष्टो जीकपा	१८१३	विजयता वि रजति	६३३: १३७८
तदिपति विषमयो	१७७३	तप प्रियो नययैवेव	१८१	विद्रुष्टेय वेन	७१७
तदिग्मोः परम वर	१६७३	तवाहं मरुमुत जोम	१९३	विद्रुष्टेय मन्त्रि	४५७: १४८६
तद्वो वाय सुते पया	१३५: १६६६	तवाहं जोमै राय	५१११: १३१	विद्रुष्टेयं वदोद्वय	६१८
तं ते मवं शुगीमति	१८८३	तवेतिश्रवमे वयु	१७०	शिरैमे सप्त धेनवो	५६०: १४६३
तं ते यवं यथा गोभि	७३६	तवोः धूरं नमाम वो	१८१९	जोति दिवस्य पारसा	१०१५
तं स्वा गोवयसो	१५११	ता अरय ममसा दृष्ट	१००७	जोति पदा वि कफमे	१६४६
तं स्वा दृष्टमदीमहे	८०४	ता अरय दृष्टनायुव	१००७	रवं कश्चिद् दृष्टायो	१७३
तं स्वा पर्वारोमो	८३६	ता न राक वागिवरय	१३४५: १३५५	रा रश्मि गुमता	१३०६
तं स्वा नृज्यानि विभर्त	१०४४	ता यो वाजवतीरि	१३५१	रा वरन उत मिने	१३५१
तं स्वा मदाय द्रुपय	१०७७	तामिहा कथत	१३५	रा वरवर्ष गोमते	१०७४
तं स्वा विरा यवोधिप	११०९	ता यो सम्पदगुण	८०१	रा विरसर्ष कश्चि	७३६
तं स्वा होपिपुत्रीय	६६१	ता यो गीमिर्गिणयुव	६९१	रा वरु द्विवा व्यो	१८०९
तं स्वा चमिद्रिगिरे	६९९	तामनस्य मरिमा	१३१	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तं दुरेदमनी नर	८७६	ता यमता यूनानुदी	८०३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तवोवाविर्षितस	१३७४	ता हि वायव्य ईश	८५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तमिमिलते वदवी	१६६३	ता दुवे वयोदि	८५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तमस्य मन्ममसि	१३६३	तिवो वाय ईशति	८५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तमिद्रुपेयु गो गिरी	४६०	तिवो वाय उरीते	८५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तमिन् कोहनीमि	१३१३: १३१३	तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तमिन् वायवामि	१३४३	तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तमीकिन् वो अर्धिया	१८१	तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तयु आने प्रयायत	१४११	तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तयु रवा यूनानु	८८५	तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तयु प्रयायं गिर	७४८	तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तयु दुवे वायवता	१८१३	तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तयोवपीरि	१४१३	तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तया पयर्षा वाया	१०४	तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५
तयि वो अर्धिया		तुवे वदय दारु वो	४५३	रा वरु द्विवा व्यो	१३१५

[illegible]

[illegible]

[illegible]



मा ते रापोहि मा त	१७९४	यज्ञा गो विभावल्या	१५३७	यद्वा ह्ये ह्यमे	१९३३
मा रवा मृदा क्षिप्रयो	७३३	यज्ञावह इन्द्रं यज्ञ दक्षिणं	३३४	यज्ञमिह तदममे	८६
मा न इन्द्र पदा वृणु	२६०	यज्ञिष्ठे रवा यज्ञयाया	१८१४	यज्ञीकानिन्द्र परिपरे	१०७, १०७०
मा न इन्द्र पीयन्वे	१८०६	यज्ञिष्ठे रवा यज्ञमहे	११५, १४१३	यज्ञमन्वे वरेणमिन्द्र	१९७३
मा न इन्द्राग्वा ३ दिशः	१०८	यज्ञयाया व्यपूर्य	६०१, १४१७	यज्ञानं इन्द्र मन्वसा	१४१५
मा यो धर्म महापते	१६५०	यज्ञ इन्द्रमन्वस्य	१२१, १६३९	यज्ञा या आद्यामहे	१५२८
मा नो अज्ञाता वृजना	१४५७	यज्ञे च नस्तन्यं च	११११	यज्ञेयं नो अन्वया	९७१
मा नो ह्यनीया अतिभि	११०	यज्ञस्य केतुं प्रथमं	९०९	यज्ञे मा धामाशुमिवी	६११
मा पापराया मो	११८	यज्ञस्य हि रथ क्षत्रिया	१०७३	यज्ञिहि रवा यज्ञस्य आ	१९४३
मा मेम मा अग्निमीमरय	१६०५	यज्ञावतां यो जामये	३५, ७०३	यज्ञे इन्द्र नवीयसी	८८४
मित्रं वदं हवामहे	७३३	ये जवासी हविष्यन्तो	१५६५	यज्ञे अत्रु वचामवद	७३८
मित्रं हवे दूतदशं	८४७	यत इन्द्र मयामहे	२७४, १३११	यज्ञे नूनं शतकनविद	१९६
मृधामि दिवो भरति	६७, ११४०	यतो निरु प्रपार्थ्य मनो	११४४	यज्ञे नवी पुत्रयथाहा	९९८
मृगो न भीम कुचरो	१८७३	यज्ञ वद च ते मवी	७०६	यज्ञे मरी वरेणा	४७०, ८१५
मृशन्ति रवा दश क्षिरो	११८१	यज्ञ वाग्वाः क्षपतन्ति	१८६६	यज्ञे मरुतवो नपात	७३७
मृचयमानाः सुहृदसा	५७, १००३	यज्ञातोः क्षान्वाकरो	१३४५	यज्ञेयाममे हविषाति	८४५
मृदि न रवा वज्रिण	३३७	यक्षीम विप्रमुच्यं	७७५	यज्ञेयमन्त कृष्टयवर्कृष्टानि	१५१६
मेधाकारं मिदधरम	९८४	यज्ञो यमिन्द्र सिन्धवि	३८४	यज्ञिमा निष्ठा अग्नि	७३३
मो जु स्वा वाचतव	१८४, १६७५	यज्ञा गोरा अवा कृतं	१५९, १७३१	यज्ञे त इन्द्रा पिशाचस्य	१०९७
मो जु मरुत तन्नुः	८२६	यज्ञो बला ते यहे	१८४२	यज्ञे ते पीना इवमे	६५३
य आगमयरागताः	१३७	यज्ञिन्द्रः पतिव्यवते	७८५	यज्ञे त मग्निना महा	१७७१
य आग्नेयु कालस्य	११६४	यज्ञे कचन वृषद्वज	१९६	यज्ञे ते विश्वामात्रवामूरैरतम	१०७१
य हवे प्रविपदमे	१७०४	यज्ञे ह्य उचिते	११११	यज्ञे ते सग्ने वयं	७७९
य इक्ष आभिवासति	११५०	यज्ञा करा च सोदुये	१८८	यज्ञे त्वयन्वर्	३३३
य इन्द्र अनवेधवा	१६९	यदिन्द्र चित्र म रव	३४५, ११७१	यज्ञे त्रिधातवर्त	१५७१
य इन्द्र वीमतामो	३३७	यदिन्द्र बाहुर्धमा	३६३	यज्ञेयं विश्व आगो	१६०९
य उम इव शयैता	१०७७	यदिन्द्र प्रापयागुदन्मवा	२७९, १३३१	यज्ञेयमाः (ओ) मुञ्चस्तुमे	५८८
य उमः सप्तानिद्रुः	१६९८	यदिन्द्र वाचतस्वरुपेना	११०, १७७६	या ते अग्निनामुवा	७८०
य उदिता अवि या	५८५	यदिन्द्र आगो अग्रतं	२९७	या ददा सिन्धुमाता	१७१९
य सप्त विरमिधियः	२४४	यदिन्द्राहं यथा लो	११९, १८३४	या हि सन्ति	९९१
य रेक इन्द्रियते	३८३, १३४१	यदिन्द्रो जगन्निद्रो	८९	यानिष्ठा ओदमा दिवो	१०१६
य अजिष्ठस्तमा मर	८२६	यदि वीरो अग्रम्याम्	८९	या ह्यनीवे गोचरव	१७३१
या पावमानी रमेति	१९९८	यदी यमरव रजनाम्	१७४८	याने याः अनुजुगो	९०९
याः क्षत्राहा विवर्णिः	१८६	यदी बहन्वायसी	१४४२	मुद्रा हि केतिना	१३४६
याः सोमा वतशोऽत्रा	११००	यदी क्षतेमिन्द्रुमि	१४४२	मुद्रा हि वाजिनीवो	१७३३
या रानिहीतु वृषं	११८०	यदुदीरात ज्ञानो	७१४, १००४	मुद्रा हि वृषदत्तम	३०१
य रान्ति प्रवेदोः	१८५	यद्येवा इन्द्र ते ज्ञाते	७७, ८८६३	मुद्रा हि वृषदत्तम	१४६८
यं वेते पुं सितम	३३७	यद्युगो वरुणम्	१७५९	मुद्रा हि वृषदत्तम	७३९
योचिहि शयता	१६१८	यद्युगो वरुणम्	६३४	मुद्रा हि वृषदत्तम	१४६९
यच्छाति पदायति	३३४	यद्युगो वरुणम्	६३४	मुद्रा हि वृषदत्तम	१४६९

प्रत्यु अदरवीयत	३०३; ७११	प्र सोम देववीतये	५१४; ७६७	महापत्नी तुमा नये	६६८
प्रयथ वस्य प्रप्रयथ	५९९	प्र सोम वाहीम्वर्य कुट्टा	११६५	महापत्नीदिः शयनः	२१९
प्र देवमन्त्रा मनुमन्त्र	५६३	प्र सोमासो आपन्विषुः	९६१	मयो न विमो	४४४
प्र देवोदायो	५१३; १५१७	प्र सोमासो मदपुलः	७७७; ७६९	मयं कर्णोभिः शृणुयाम वेदाः	१८७७
प्र धन्वा सोम आरुविः	५६७	प्र सोमासो विपथितो	४७८; ७६४	मयं नो अपि वातय	४२१
प्र धारा मधो अमिषो	११३९	प्र स्वनोनासो रया हव	१११९	मयं नमं न का अरे	१७१
प्र न इन्द्रो महे द्यु व	५०९	प्र हंसावस्तुपला	१११७	मयं मनः कृणुव	१५६०
प्र पवमान मन्वसि	९६३	प्र द्विन्वातो जनिषा	५३६	मन्वास्त्रा पमन्वा १ वज्रो	१४००
प्र पुनःचाय वेधसे	५०३	प्र हंसा जातो महान्	७७	मनो नो अमिराकुतो	१११; १५५९
प्र स धापाप पन्दसे	९३७	प्र होमि पृथ्वी वयो	९८	मनो अदवा वचमान	१५४८
प्र स वसिष्ठममिदे	३६०	प्र वीमशु मदेवं याति	१५९१	मनोमेध कृणवान्	१०६५
प्र सती शूरो मपवा	१४५९	मणा पिशुमेहीना	५७०; १०१३	मिषि विष्ठा अप द्विपः	१३४; १०७०
प्र भूमेपात महा	७४	मातराभिः पुदपिषो	८५	भुवाम से द्रुपतो	१४९१
प्र मो जनश्च पुनहन्	६७९	मानीवेष्टाव ऊमि	९७५	भुरि हि से वज्रना	१८००
प्र महेष्टाव गायत	१०६; ८७८	मनश्च धारा अमरन्	१७७५	प्रजान्मवने अमिषान्	६३५
प्र मरिदने भिनुमदवसा	३८०	मियो नो अस्तु विषपतिः	१६१९	मपोन का पवस्व	११८४
प्र मित्राय प्रमये	५५५	मिषा वयता नर	१८६२	मपोनः स्व वज्रहायेतु	१६८३
प्र मद्रावो न भूर्णयः	७९१; १८१९	मद्रो अम चीमिदि	१३७५	मरि वासुमिदये	१५४४
प्र मुखा वायो अमियो	११३०	मिष नो आतये	५; १३४४	मन्वमपामि से मरः	१४११
प्र यो राधे विनीतयि	५८	मिषाभि विष्णुहि	४११	मन्वना वृषिप्रह	८१४
प्र यो रिषिष ओमदा	३११	मिषु मद्रामरपतिः	५६	मन्वपुष्कति छादने	११९८
प्र य ईन्द्राव वृहते	२५७	ममसीविन्दुतिम्वर	५५७; ११५१	मन्वमन्ते तन्मनापयं	१३४८
प्र य इन्द्राव माधन	१५६; ७१६	मोयदशी न यवते	१२२०	मनीविमिः पवते	८२१
प्र य इन्द्राव पुनदस्तमाव ४४४६; १११३		मो व्यरिषे पुरोरय	१८०१	मन्वन्तु त्या मयवन्	१७३१
प्र यामर्षमनुविषते	१५७५; १७०३	मद्र पूर्व अयता महो	१७८९	मन्वे होतारमृविमं	१५४३
प्र यो मदि यवी	१५९६	ममर्षो अवि मूय	७७६; १७८८	मन्वना नेम भारवा	५०६
प्र यामिन्द्रुविषति	११०१	ममये शु स्वतमसे	१४४४	मन्वे नो वासावृषिषी	६२१
प्र यारः ०३५५ मद्रवागारितर	११६०	ममिष्टायाः स्मरिः	१८५३	मयि वयो अयो मयी	७०१
प्र यो पिषो मन्वयुवी	११५३	ममवुव हवामहे	१६७	मयोपि से वर्मणा	१८७०
प्र यो महे मत्तवी	४४९	ममवन्तुय गायन	२५८	मवृतामो महिषधारा १५७१; १२५५	१२५५
प्र यो महे महे	३१८; १०६३	ममवन्तुय अविमि	३७	मयो इन्द्रः पुरवन्तो	१६६
प्र यो मित्राय गायत	११४३	ममवन्तुय दि जानवो	८८	मयो इन्द्रो य ज्ञावता	१२०७
प्र यो मद्र पुकणाम्	५९	ममवन्तुय पयो	१३३१	मद्रात एवा महीरन्तु	१०४०
प्र यामममममम	७८	ममवन्तुय परि वीया रथन	१८५१	महि श्रीगामवरन्तु	१२९
प्र यामाज नवनीमाम्	१४४	ममवन्तुय वदन्तु नो	१४०	मही मित्राय धापया	१५९८
प्र य विष्णोमाममिन्द्रा	१५०४	मोधा शु मे मयवन्	९६९	मही मे अरय वृष नाम	११८६
प्र यते त उदीरते	१००६	मममममममममम	३३१	महो च न रात्रिः	१२१
प्र यमनामापयवो ५५३; ७७७; १३८६		मममममममममम	१२९८	महे नो अय कोयवोषो २२११; १०७०	१२१४
प्र येमानी शूरो	५०३	मममममममममम	९७४	महो नो राम का नर	१२१४
प्र यो अमे तवातिभिः १०८; १८११		मममममममममम	४१९	मा विदमहि कोमन	१४१; १३६०

मा ते राधाधि मा त	१७७४	यत्रा नो मिश्रवस्त्रा	१५३७	यद्वा कमे ठरमे	१९३९
मा इवा मृदा भस्मिन्वो	७३१	यत्रासह इन्द्रं यज्ञं वक्षिणं	३३४	यद्वाहितं तदमये	८६
मा न इन्द्रं वरा वृणु	२६०	यजिष्ठं त्वा यजमाना	१८१४	यद्वाविन्द यद्विन्दे	१०७, १०७७
मा न इन्द्रं पीबानवे	१८०६	यजिष्ठं त्वा यजमाने	११२, १४१३	यन्मन्वते यद्विन्दमिन्द्र	११७३
मा न इन्द्राग्ना ३ विस्वः	१०८	यज्जगत्या अपूर्यते	६०१, १४२९	यमने पुष्टं मर्ममहा	१४१५
मा नो अग्ने महाधमे	१६५०	यज्ञ इन्द्रवर्षयन्	१२१, १६३९	यवा वा आचरामहे	१५२८
मा नो अग्नाता वृजता	१४५७	यज्ञं च नरत्नं च	११११	यवर्षये यो अन्वष्टा	९७१
मा नो हृषीया अतिभि	११०	यज्ञस्य कर्तुं प्रथम	९०९	यज्ञो वा यावाधुमिवी	६११
मा पश्यथाव नो	९१८	यज्ञस्य हि रथं चातिवज्रा	१०७३	यजिहि । आ वृद्धय आ	१३४२
मा जेम मा धमिन्वोऽग्रम	१६०५	यज्ञावरा यो अमये	३५, ७७३	यस्त इन्द्रं नवीयती	८८४
मित्रं ययं हवामहे	७७३	य अवातो हस्तिपान्तो	१५६५	यस्ते अमुं दवायामद्य	७३८
मित्रं जुवे पूतयज्ञं	८४७	यत इन्द्रं यवामहे	१७७, १३२१	यस्ते नूनं मातृजनमिन्द्र	११६
मूर्धान दिवो भरति	६७, ११४७	यतो हिमुं प्रशस्य मनो	१०७४	यस्ते मदीं पुत्रमथाव	९९८
मृगौ न मीम कृञ्चरो	१८७३	यत्र क्व च ते मनो	७०६	यस्ते मदीं वरेणः	४७०, ८१५
मृगमिह त्वा द्या दिवो	११८१	यत्र वाणाः संवृण्वन्ति	१८६६	यस्ते मृग इवो मयाव	७९७
मृगयमाणाः सुहवः	७१७, १०७३	यश्चानो यान्वावहो	१३४५	यश्चामग्ने दिव्यवति	८४५
मेवि न इवा भिक्षिण	३९७	यस्योमि विजृम्भस्य	९७९	यस्मिन् अन्तं कृष्टयथर्हं गानि	१५१६
मेधाकारं विदवहय	९८४	यस्योमिमिन्द्रं मित्राणि	३८४	यस्मिन्निष्ठा भवि	७३३
मो पुं त्वा वापतव्य	७८४, १६७५	यसा नोरो अथा कर्तुं	१५१, १७३१	यस्य त इन्द्रः विवाधाय	१०७७
मो पुं प्रमोक्षं तन्वतुः	८२६	यस्मिन् वाता ये एवे	१८४७	यस्य ते पी रा इमो	६९३
य आगमयात्तता	११७	यदग्निं परिचित्यते	७८५	यस्य ते महिषा महा	१७७१
य आभीकेषु कृत्वस्तु	११६४	यदय कृत्व वृणुहन्	१९६	यस्य ते विष्णोः पुत्रमामूरेदं तम	१०७१
य इव प्रणिप्रमे	१७०५	यदय कृत्वा ठसिते	३३५१	यस्य ते उदये ययं	७७९
य इव आगिवावति	११५०	यदा कदा न गोदुषे	१८८	यस्य तपस्वमर	३९९
य इन्द्रं चमसेषा	१६१	यदिन्द्रं पित्रं य इव	३४५, १७७९	यस्य मित्राणां हतं	१५४१
य इन्द्रं वीमवातमो	३९४	यदिन्द्रं वाहुवीणा	१९१	यस्याय विष्णुं आयो	१९०९
य इन्द्रं वीमवातमो	१७०७	यदिन्द्रं प्राणप्रवृत्तमया	७७७, ११३१	यस्येयमा त्रैदुःखस्तमे	५८८
य इन्द्रं वीमवातमो	१६९८	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	३१०, १७७६	य इन्द्रं पुत्रं आभवा	१५४
य इन्द्रं वीमवातमो	७८५	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१९८	या ते योऽनन्वमुवा	७८०
य इन्द्रं वीमवातमो	११५०	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१९८	या दद्यात् सिन्धुमाता	१०७९
य इन्द्रं वीमवातमो	३८३, १३४१	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	८१	या वां धरति	९९१
य इन्द्रं वीमवातमो	८१०	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१७८	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१०७९
य इन्द्रं वीमवातमो	११९८	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१७८	या मुनीवे गोचरेष	१७७१
य इन्द्रं वीमवातमो	१८६	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१७८	यास्ते वाता मयुरावृते	९३९
य इन्द्रं वीमवातमो	१९००	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१७८	युक्ता हि केदिना	१३४६
य इन्द्रं वीमवातमो	१३८०	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१७८	युक्ता हि वाजिनीयनी	१०१
य इन्द्रं वीमवातमो	१८५	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१७८	युक्ता हि वृत्रहन्तम	१४६८
य इन्द्रं वीमवातमो	३३७	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१७८	युक्ता हि वृत्रहन्तम	७३९
य इन्द्रं वीमवातमो	१६१८	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१७८	युक्ता हि वृत्रहन्तम	१४६८
य इन्द्रं वीमवातमो	१६४	यदिन्द्रं वापतस्त्वमेवा	१७८	युक्ता हि वृत्रहन्तम	१४६८

सुजे वाचं शतपदी	१८९९	वयः सुतर्णां त्व	३१९	विश्राद् युद्धस्थपति	१४५४
सुमं वनतममवाधिं	१६४३	वयं व त्या सुतावन्तः	२६१; ८६४	वि रक्षो वि मृधो जहि	१८६७
सुवं चित्र दक्षयुजोन	७५४	वयं वा ते अपि समसि	२३०	विश्ववध महिना	१६६१
सुवे वि स्याः स्वापतीः	१००१	वय ते वर्य राधसो	१२३९	विशो विशो वो अतिवि ८७	१५६४
मे ते वन्धा अधो दिवो	१७५	वयसिन्द्र स्वावयो	१३९	विश्वकर्मन्दिना वावधानः	१५८३
मे ते धवित्रर्मवो	७८८	वयसु रथामपश्ये	४०८; ७०८	विश्वतोदावनिवधतो	४३३
मे स्वागिन्द्र न सुपुसु	१५०९	वयसु स्वा तदिदया	१५७; ७१९	विश्वस्या ह रररि	८४७
मेन ययौतिव्यायवे	८८१	वयमेवमिदा	२७१; १६९१	विश्वस्य प्र स्तोम पुरो	४१०
मेन देवाः पवित्रेकारमाने	१३०२	वयसिते पतिगो	१६७	विद्याः वृत्तना अग्निमूर्त १७०; ९९०	१७०; ९९०
मेना नवस्था वषष्	९१९	वसिवापातयो सुवो	६९१	विद्या यानानि विश्ववध	८८८
मेना पावक वषष्वा	६३७	वयसाः श्रानिदा सुवन्मिमा	७९५	विद्यानरय वरपातम्	३५४
मे सोमासः परावति	११६६	वयसु ते विष्वावाध	१६२७	मित्रे देवा मम स्वयन्तु	६१०
मो अग्नि देवर्षितये	८४६	वयसु स्वा रम्भो	६१६	मित्रेभिर्मम अमित्रिर्मम	१६१७
मोमेयो तवस्तरे	१६३; ७४३	वयसुमिमेवमुप्रा	११०८	वि सु विद्या आरातयो	१८०३
मो आगार तम्वः	१८१६	वयसो ह्मन्ति मे	२९१	विष्णोः कर्माणि वर्यत	१६७१
मो जिनाति न जीपते	९७८	वयस्येष्टापदीमर्दं	९९०	वि सुतयो वया यथा १५१	१७७७
मो वारया व वषष्वा	६९८	वयसो वानेपु पीयते	१४७८	वीतु विश्वान्द्रुमिः	८५१
मो व इदमिदं पुरा	४००	वयस्य आ वासु मेवमं	१८४; १८४०	वीतिहोयं स्वा कवे	१५६३
मो वाः श्वोऽरयो यथ	१८७१	वयसो वानेपु पीयते	९८३	वृद्धिवास्तव्य वारय	१६५२
मोमिह इह वदने	३३४	वयसिन्द्रस्य गुणिमया	१६३८	वृद्धवादी वलं वयः	१७७१
मो मो वषष्वा	३३६	वयसो सुकोः अयानि	३३६०	वृद्धव्य स्वा धवध	३२४
मो मंहिष्ठो मन्वेनाम्	६४५	वयसो स्वा मन्मानिर्वर्धयति	७२१	वृद्धयं स्वा वयं	१५४०
मो रिमि वा रियन्तमो	३५१	वयस्यधनः वावसा	१४८४	वृद्धा पवस्व धारया	४६९; ८०३
मो राजाः सर्वर्गानां	१७३; ९१३	वयसो अर्धवीर्यवो	११९१	वृद्धा युवान आरुयि	१००८
मो वाः शिष्टतमो रयः	१८१८	वयसो वानेपु पीयते	२०५	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	५५९; ८२१
मो विद्या दमते ॥	४४४; १५८०	वयसो वानेपु पीयते	८१३	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	१६१२
मोहोदा विश्ववर्षिणमि	६९०	वयसो वानेपु पीयते	१६५२	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	८०३
मि मिथिनामिधम्	१०५६	वयसो वानेपु पीयते	१६	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	५०४; ७८१
मि ते मित्रो अर्धमा	१०७८	वयसो वानेपु पीयते	६४१	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	४८८; ७८४
मि यः पवसा	८७७	वयसो वानेपु पीयते	६४४	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	१५१६
मिथानावमिहृदा	९११	वयसो वानेपु पीयते	७२९	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	११८६
मिथानां न प्रवर्षितमि	११११	वयसो वानेपु पीयते	३१५	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	१४५४
मिथानां मेधाभिधमि	८३३	वयसो वानेपु पीयते	१८६५	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	७८९
मिथानां सुमुदावृद्धो	८७१	वयसो वानेपु पीयते	१६१५	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	१९९६
मिथानां हिमयवा	१०६८	वयसो वानेपु पीयते	१४९८	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	१४७६
मिथानां वर्यते महे	९३	वयसो वानेपु पीयते	१६८८	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	१६४०
मिथानां वर्यते	१७१०	वयसो वानेपु पीयते	११६५	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	७१७
मिथानां वर्यते	१५३; १०८४	वयसो वानेपु पीयते	३६६	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	१३
मिथानां वर्यते	१८०४	वयसो वानेपु पीयते	१०१७	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	४४१
मिथानां वर्यते	१७३०	वयसो वानेपु पीयते	६१८; १४५३	वृद्धा वृद्धिनां वर्यते	१०६६

सामयुक्तु शचीवत	१५३; १५७९	सामयुक्तु वसुमहे	६९	स शिखे विनक्ष्मो	१२९२
शचीमिर्नः शचीवसु	१८७	सवने त इन्द्र वाजिनो	८१८	त पुनान उप हरे	१३५८
शातानिदेव प्र जिगति	८११	स मा तं वृषणे	४२४	त पुष्प्यो महोनी	३५५
शामानस्य वा नरा	१५७४	स मा ना सुत्र	१६३५	उत त्वा हरितो रमे	६४०
शाकमना शोको अरणः	१७८३	स मा नो योग आ	७४९	शानि सुश्रुति मेघो	१७३६
शान्तिगो शापिपूजनाय	७३६	स मा नरते शिवो	३६५	स अयमे भ्योमनि देवाभा	७४७
विष्ठा ग इन्द्र राय	१६४४	संक्रमेनामिमिणे	१८५०	स मयुमागो आयुतस्य	१४२४
विष्टेवमस्मे शित्तये	१८३५	समामित्या वृषेदि	२६३	समास्वमिमाहे	११६८
विष्टेवमिन्द्रयते	१७७७	सराहणे दापुमि	१३५	समया वसुपुत्रमन्त्राः	६७७
विष्टु अहाने हरि	१३३४	स नितरपाभि सानि	१३७५	स मयुजान आयुमि	१७३३
विष्टु अहाने हर्यते	११७५	स त्वं नमिन वज्रदस्त	८१०	समस्य मन्त्रे विमो	१३७, १६५१
वृकः पथरव देवेभ्यः	१२४१	सदसत्पतिद्रुत	१७१	स महा विश्वा	११०५
वृकं से अयममनत	७५	सदा यावः सुवयो	४४१	भयायो अथा स्वलोः	१७५१
वृषि पावक उच्यते	९६७	सदा व इन्द्रयर्हयदा	१९६	स मायुजे दीरो	१६५०
वृण हुवेम मयवाने	३१२	स देवः कविनिद्रो	१६९७	समिद्रमि सभिधा	१५६७
वृषमन्त्रो देववातमप्यु	१००९	स न इन्द्रा शिवः	१६५१	समिद्रोयत वायुना	१०८२
वृषमन्त्रा न्नातुभिः	१०३५	स न इन्द्राय नमये	५९२; ६७३	समिद्रो रावो वृहदी	१६७८
वृषमी शपो न माहतं	१४७३	स म ऊर्जे अय इन्द्रो	१४२८	समी वषं त मायुमिः	११५८
वृषमासः सर्वतोः	१४०९	स नः पथरव को गवे	६५३	समीचीना अन्वत	९०१
वृषो न वस मायुधा	११२९	स नः पुनान आ नर	७८६	समीचीनाय आशत	११९५
वृषुतं गरिष्ठः	९१७	स नः वृषु अवाप्यमन्त्रा	६६९	समुद्रो आयु मायुजे	१०४१
वृषवे वृष्टेतिव दवनः	८९४	सना न कोम जेयि	१०४७	समु श्रिया अन्वत	८१९
वोवे वनेषु मायुज	४६	सना जयोतिः सन	१०४८	समु श्रिवो मृष्टते सामे	१४०१
व्यते द्यामि प्रथमस्य	३७१	सता दक्षयुत	१०४९	समु रैमाघो अवरम	९३१
आयत हव त्वं	२६७, १११९	सनादमे शुपकि	१०	समेत विश्वा ओजसा	३७१
वृषं नो वृषदन्तमं	१०८	सनेमि वसवमवा	१६१३	सं मायुमिने किशुर्वावसागो	१४१९
वृषि अरुणं वशिनिः	५०	स नो वृषाणां वन	१६३६	समिच्छो अरयो भुवः	८१७
वृषी हवं तिरयथा	१४६; ८८३	स नो मयाम वायवे	१०८३	समना या सुतयोनी	११४४
वृषी हवं तिरिपानस्य	१७९८	स नो मन्दामिराचरे	१४७१	स योशत ववगवस्य	१११८
वृष्यमि मयस्य मे	१०६	स नो महो अमियागो	१६६४	स ओजते जवया	७१०
स द्यनो मध्वकविः	१५६१	स नो मिश्रमद	१७१३	सकप वदना गदीमी	१६५५
स इन्द्रहस्तेः स निवत्रिभि	१८५१	स नो विश्वा दिवो	१७३४	स रौद्र इव विप्रपतिर्द्वय	१६६५
स ई रयो न	१४७१	स नो वृषमं वव	१६९१	स सविता वर्धन	१३५५
सं ते पयसि वसु	६०१	स नो नैरो अवात्यममी	१२८१	स सहिष्णु दुहरो	९७३
सं वास इव मायुमि	१०९९	स नो हवीणां वत	१६१२	स मान विश्ववर्धनिराचिरेन्द्र	१४११
सं वृष्यमप्युपमं	८३७	स नैरो योमते	९१०	सा वागी रोषन	११९४
सताय आ नि	५६८; ११५०	स ववस्य मदिन्मस	१६०९	स मायमदाः स मरेता	११६१
सक्षाय आ पितामहे	३९०	स पथरव न आविनेन्द्रं	४९४	स मायुमिन्द्रयमिना	११३४

मुञ्च वाच शतपदी	१८१९	यम सुवर्णा नय	३१९	विश्राद् वृद्धसुधर्त	१४५४
सुख्य धन्तममर्वाण	१६४३	यय व रथ सुताषन्ता	१६१, ८६४	वि रथो वि गृधो जहि	१८६७
सुय चित्र दधधुर्नोजन	७५४३	यय वा ते अपि स्मति	१३०	विष्मन्त्र मदिना	१६६१
सुय हि स्थ स्वाःपता	१००१	यय ते वरय रापयो	१२३९	विशो विशो यो भानिधि ८७	१५६४
ये ते पन्था अधो विशो	१७१	ययभिन्द स्वाययो	१३१	विश्वकर्मन्हविदा वायुवान	१५८९
ये ते पवित्रपूर्वो	७८८	ययसु स्वाभययय	४०८, ७०८	विश्वतोदाविश्वतो	४१७
ये रक्षामिन्द न तुष्टुः	१५०१	ययसु स्वा तदिदया	१५७, ७१९	विश्वस्मा इ रवर्तते	८४०
येन जयातिधायये	८८१	ययमेनविदा	१७१, १६२१	विश्वस्य प्र स्तोम सुता	४१०
येन देवा पविश्यारमाय	१३०१	यययिते पतत्रिणो	३६७	विश्व प्रतना अभिभूतर् १७०, ९१०	८८८
येना नवस्ता दयय	१३९९	ययिरोपातयो सुवो	६९१	विश्व पायानि विश्ववध	८८८
येना पावक चक्षुषा	६३७	ययन प्रायिता सुवग्निमयो	७९५	विश्वानरयय वसति	३६४
ये सोमास पराधति	११६३	ययत् ते विष्णवाय	१६१७	विश्वे देवा मम शृण्वन्तु	६१०
यो अग्नि देवतोते	८४६	ययन्त इन्तु रथो	६१६	विश्विभरते भानिभिरिभ	१६१७
योगेयोगे सवस्तर् १६३, ७४३		ययसु रमिर्गुभया	११०८	विश्व विश्वा भरातयो	१८०१
यो जागर तयय	१८१६	ययतो इन्द्राति मे	१९२	विष्णोः कर्मणि वरयत	१६७१
यो जिनाति न जीयते	९७८	ययमश्रययीयह	९९०	वि सुतयो यया यया ४५१	१७७०
यो भारया य वक्षसः	६९८	ययो ययिषु धीयते	१४७८	वीड विदावज्जुभि	८५१
यो न इदमिद युता	४००	ययता भा वायु मेयय १८४, १८४०		वीडिहोय स्वा कवे	१५१६
यो न रथोऽग्नो यय	१८७१	ययतोपनूत इयितो	९८३	ययविदयय ययन	१६९९
ययिष्य इ इ ययने	३१४	ययविदयय सुमया	१९३०	यययादो यय यय	१७१९
यो यो यययय	३२६	ययो युक्तो अयामि	१९६८	यययय स्वा ययय	३९६
यो महिष्ठ मयानाम्	६४५	ययो स्वा ययामिर्गुभित	७११	ययय स्वा यय	१५४०
यो रयि यो रयिस्तयो	३५१	ययुवानः सवता	१४८४	यय यययय चारया	४६९, ८०१
यो राजा यययानां	१७३, १३३	ययथा अयिन्तीन्दी	११९३	यय युवाना यययि	१०००
यो य ययययो यय	१८३८	ययतोपनूत युता	३७५	यय मयानां ययते	५५९, ८९१
यो विश्वा ययते यय	४४, १५८८	ययिन्ती युतिता	८३१	यय यययय यय	१६६१
ययोहा विश्वययिगिभि	६९०	ययि विद यययय ययय	१६५२	यय यययो अयि	८०६
ययि ययिगमयिगम्	१०५६	ययि रवदयो य यययय	६८	यय यय यययो	५०४, ७८१
यय ते ययिः अयमा	१०७८	ययि मययय विदा	३४१	यय ययि मायुना	४८८, ७८८
ययय ययता	८०७	ययि राये सुयौर्	६४४	ययो अयि ययययते	१५३९
यययानययिगुदा	९९१	ययि हि स्वा तयिगुभि	७९९	ययि ययः परि यय	११८६
ययानो न यययिगिभि	११९१	ययि ददा ययने	११९, १७८१	ययि ययः ययययययते	१४६७
ययय यययिगिगि	८३३	ययि न इन्द्र ययो जहि	१८६८	ययययते ययय ययो	७८२
यय ययययययय	८०१	ययययते ययययय	१६१५	यय हि ययिगिगिगि	३९९
ययय हि ययय	१०६८	यययययि ययययय	१४७८	ययय हि ययो	१४७६
यय ययने महे	९३	ययययययि यय	१६६८	ययय यययययययय	१६४०
ययययय ययय	१४१०	ययययय ययय	१६९९	ययययययययययय	७१७
ययययय यययय	१५३, १०८४	ययययय ययय	३६६	ययययययययययय	३१
ययययय यययय	१८०४	ययययय ययय	१०९७	यय यय यय	४४१
ययययय यययय	१७३०	ययययय ययय	६९८, १४५३	यययय ययय	१०९६



स पीतो दससाधनो	१३८८	सुत इति पवित्र भा	१०१	शोमः पुत्रा च	१५४
स वृत्रहा वृषा	१२९६	सुता इन्द्राय वायवे	७६६	शोमं गावो घेनवो	८६०
स ग्यामसु रिक्ताय वाहुषे	१६०६	सुतायो मधुमत्तमाः	५४७, ८७१	शोमं राजानं वदन्	९१
स सुतः पीतये	१२९२	सुतायो या स मार्यो	२०६	शोमा असुप्रमिन्दवः	११२६
स सुग्वे यो वसुतो	५८१, १०९६	सुतोता शोमपात्रने	२८५	शोमाः पवन्त इन्द्रवो	५४८, ११०१
स सुनुमातरा	९३६	सुमावीरस्तु स सय.	१३५२	शोमाता स्वराणं	१३९, १४६३
सह रस्या नि वर्तस्व	१८३३	सुमग्या वरवी	१६५४	स्तोत्रं राधायां पते	१६००
सहर्षमाः सहवासः	६२६	सुप्रपृष्टमूलये	१६०, १०८७	स्वरन्ति त्वा सुते	८६५
सहस्यारः पवते	८७४	सुमितस्य वनामहे	८९३	स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः	१८७५
सहस्यारं वृषमं	१३९५	सुयमिदो न भा वह	१३४७	स्वादिष्टवा मदिष्टवा	४६८, ६८९
सहस्यार इन्द्र	६२५	सुयदा शोम तानि ते	१७६७	स्वादोरिवा विदुस्तो	४०९, १००५
सहस्यारीयाः सुदवः	६१७	सुय्याणां इन्द्र	३१६	स्व युधः पवते देव	६७८
स हि पुत्र पिबोजसा	१८१५	सुय्याणां गो व्यादिमिषिताना	११०३	सुयो वृत्राण्यायां	८५५
स हि य्मा करिमुम्य	९६९	सुयैत्येव इन्द्रवो	१३७०	सुतो न इन्द्र इममृग्युतो	६२३
सार्क जातः ऋतुना	१४८७	सो अमिषो वसुर्गणे	१७३९	सुतपुतेभिरग्निभिः	१४४१
सार्कसुधो मर्जयन्त	५३८, १४१८	सो अर्धेन्द्राय पीतये	२८०	स्तिवन्ति सूरमुसवः	९०४
सा यो अद्याभरद्वसुः	१७४९	सोम तत्वासाः सोतुभिरधि	५१५, १९७	स्तिवन्तायो रथा	१११०
साह्यमिष्या अमिषुषः	१५५८	सोमः पवते जनिता	५१७, २४३	स्तिवन्तो देतुभिः	६५५
सिधति तमसावटमुषावर्क	१६०४	सोमः पुतात कर्मिणाभ्यं	५७१, ६४०	स्तोता देवो अमर्या	१४७७
सीदन्तस्ते वयो	४०७	सोमः पुतामो अर्वाति	११८७		

